श्री गुरुवंश पुराण

कलियुग खण्ड

(द्वितीय भाग)



श्रीमद्दण्डीस्वामी शिवबोधाश्रम

दण्डी आश्रम प्रभात नगर,

जालन्धर नगर।



श्री हरिः

श्री गुरुवंश पुराण

द्वितीय भाग
(कलियुग खण्ड)

(२००० गुरुओं के जीवन चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त से युक्त विश्व का अद्वितीय, अभूतपूर्व संकलित ग्रन्थ)

प्रणीतम्

श्रीमद् दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम

(दण्डी स्वामी रमेशाश्रम)

दण्डी आश्रम प्रभात नगर, जालन्धर नगर

पञ्चनद प्रदेश (पंजाब)

प्रणेता :
अनन्त श्री विभूषित दण्डी स्वामी
श्री शिवबोधाश्रम (श्री रमेशाश्रम) जी महाराज

प्रथम संस्करण, शाङ्कर सम्वत् २४७० विक्रमी सम्वत् २०५६

मूल्यम् : ४००/-

प्रकाशक
दण्डी आश्रम
प्रभात नगर, जालन्धर शहर—१४४००८
फोन नं० २१४४१३
(पञ्चनद प्रदेश) पंजाब

प्राप्ति स्थान :
शान्ति आश्रम लड़ोई (भोगपुर)
जालन्धर ।
फोन : ७२२१३०

कम्पोजिंग :
सी के ग्राफिक्स
मिट्ठा बाज़ार, जालन्धर ।

मुद्रक :
एरीमा ऑफ़सैट प्रिन्टर्ज़,
जालन्धर शहर ।

समर्पणम्

यद्द्धि ब्रह्म वेदादि-वेदान्तवेद्यं, निराकारं निराभासं निरञ्जनं, निरुपाधिकञ्च कथ्यते । तदेव साकारं, सगुणं, साभासं, साञ्जनं, सोपाधिकं मायाविशिष्टं सत्, स्वामनिर्वाच्यां, मिथ्याभूतां, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थां मायां स्वायत्तीकृत्य इव, भक्तानां भावानुसारेण कलियुगीय जीवानामुद्धारणार्थाय श्री नृसिंह मुनि—श्री महेशमुनि—श्री भास्करयोगी—श्री महेन्द्रमुनि—श्रीमाधवानन्द—श्रीजिष्णुदेव—श्रीगौडपादाचार्य—श्रीगोविन्द भगवत्पादाचार्य—श्री आद्यशंकराचार्य—श्री पद्मपादाचार्य—श्री विश्वरूपाचार्य—श्री हस्तामलकाचार्य—श्री त्रोटकाचार्य—श्री चित्सुखाचार्या—प्रतिवादी भयङ्कर-कालकलनाचार्य—श्री विशुद्धानन्द—श्री आनन्दगिरि—श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्यदारभ्य अनन्त श्री श्रीधराश्रम—श्री दामोदराश्रम— श्रीकेशवाश्रम—श्रीमाधवतीर्थ—श्री चन्द्रशेखराश्रम— श्रीशान्त्या-नन्दसरस्वती—श्रीत्रिविक्रम- तीर्थ[२५]—श्रीराजराजेश्वरशङ्कराश्रम—श्री भारती कृष्णतीर्थ—श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ—अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती पर्यन्तानां (प्रभृतीनाम्) द्वारका-शारदा पीठाधीश्वराणाम् भोगवाराम्नायस्य (श्री गोवर्धनमठस्थाना) जगद्गुरु शङ्कराचार्याणां श्री शूलपाणित आरभ्य श्री दामोदरतीर्थ—श्री मधुसूदन तीर्थ—श्री भारतीकृष्णतीर्थ—श्री निरंजन देव तीर्थ—श्री निश्चलानन्द सरस्वती प्रभृतीनाम्; शृंगेरी पीठस्थाचार्या पाद श्री ज्ञानोत्तमाचार्यादारभ्य मध्येऽनेकाचार्य प्रभृतीनाम्; श्री नित्यबोधघनाचार्यदारभ्य श्रीनृसिंहभारती—श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती—श्री चन्द्र शेखर भारती—श्री अभिनव विद्यातीर्थ—श्री भारती तीर्थ पर्यन्तानाम् शृंगेरी मठ पीठाधीश्वराणाम्; ज्योतिर्मठस्थ पीठाधीश्वराणां—यथा—

"त्रोटको विजयः कृष्णः, कुमारो गरुडध्वजः ।
विन्ध्यो विशालो बकुलो, वामनः सुन्दरोऽरुणः ॥१ ॥
श्रीनिवासः सुखानन्दो, विद्यानन्दः शिवो गिरिः ।
विद्याधरो गुणानन्दो, नारायण उमापतिः ॥२ ॥
एते ज्योतिर्मठाधीशा आचार्याश्चिरजीविनः ।
य एतान् स्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दति ॥३ ॥

तथा च श्री विजयकृष्णादारभ्य—श्री रामकृष्ण—श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती—श्री कृष्णाबोधाश्रम—श्री स्वरूपानन्द सरस्वती—ज्योतिर्पीठाधीश्वरस्य शिष्यः श्री हरिहरानन्द सरस्वती (स्वामी करपात्री जी महाराज) पर्यन्तानाम्; श्री कामकोटि पीठस्य श्री सर्वज्ञात्ममुने रारभ्य श्री शंकरानन्द सरस्वती मध्यगानां—श्री चन्द्रशेखर सरस्वती—श्री जयेन्द्र सरस्वती—श्री विजयेन्द्रसरस्वती प्रभृतीनाम्; श्री काशीस्थचतुःषष्ठिमठस्य प्रथमाचार्य; श्री मधुसूदनादारभ्य श्रीशिवा-

श्रम—श्रीवेणीमाधवाश्रम—श्री विश्वरूपाश्रम—श्रीरामेश्वरा- श्रम—श्रीवेणीमाधवाश्रम— श्रीविष्ण्वाश्रम—श्रीशान्ताश्रम— श्री पुरुषोत्तमाश्रमं—श्री विश्वेश्वराश्रम (१)—श्री विश्वेश्वराश्रम (२)—श्री कृष्णाश्रम पर्यन्तानाम्; श्री काशीस्थ चतुःषष्ठिस्थ (चौंसट्टी) ईशानेश्वरमठस्थ पञ्चनद प्रदेशस्थशाखानामनन्तविज्ञानमठस्थानां श्रीअनन्तविज्ञानाश्रमादारभ्य श्रीओंकाराश्रम, श्री सच्चिदानन्दाश्रम—श्रीओमाश्रम—श्रीकृष्णबोधाश्रम (त्यागी महाराज) पर्यन्तानाम्; वाराणस्यां गोघाटमठस्थ मछली बन्दर पीठाधीश्वराणां स्वामी महादेवाश्रमादारभ्य स्वामी स्वयं प्रकाशाश्रम— स्वामी केशवाश्रम, स्वामी श्री निवासाश्रम, श्री गणेशाश्रम, स्वामीमधुसूदनाश्रम—स्वामीमहादेवाश्रम प्रभृतीनाम्; कुरुक्षेत्रस्थानन्तश्री अद्वैताश्रमादारभ्य पंचनद प्रदेशस्थ तपोमूर्ति—उत्कट वैराग्य मूर्ति स्वामी शंकराश्रमभगवत्पाद—श्री कमलनाभाश्रम, श्री महादेवानन्दतीर्थ—श्री परमानन्द तीर्थ—श्रीईश्वरानन्द तीर्थ—श्रीघनश्यामानन्द तीर्थ—श्री गंगानन्द तीर्थ—श्री भूमानन्द तीर्थ—श्री रामतीर्थ—साधनचतुष्टय सम्पन्न विवेक वैराग्य सम्पन्न श्री लक्ष्येश्वराश्रम प्रभृतीनाम्; कामरूप मठ—मुमुक्षुभवन—भूमानिकेतनस्थानां गुरूणां (मध्ये), स्वामी सोमेश्वराश्रमा (श्री प्रभासभिक्षुः), दारभ्य—श्री रामकृष्णाश्रम—श्री ब्रह्माश्रम—श्री नारायणाश्रम—श्री गोपालाश्रम—श्री विष्ण्वाश्रम पर्यन्तानाम्; शुकतालस्थ गुरूणां, गंगातटस्थ कर्णपुरवासिनां श्री रामदेवस्वामी श्री अद्वैताश्रम—श्री रामेश्वराश्रम-आदीनामनेकानां गुरूणां विशेषतया श्री नीलकण्ठ सरस्वती—श्रीराम सरस्वती—श्री विश्वेश्वरसरस्वती—श्रीमधुसूदनसरस्वती—श्रीविद्यानन्दस्वामी—स्वामीअमलानन्द— स्वामीगोपालतीर्थ—स्वामी अच्युताश्रम—स्वामीसम्पूर्णानन्दसरस्वती—स्वामीविरजानन्द—श्री दयानन्द—श्री दयानन्द—अवधूत ब्रह्मानन्दतैलंग स्वामी—स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती—स्वामी भास्करानन्द सरस्वती—श्री कण्ठाचार्य, परमेश्वराचार्य, श्री स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती—श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती—श्रीद्राविड़ाचार्य—भर्तृहरिप्रपंचाचार्य—श्रीरामानुजाचार्य—श्री निम्बार्काचार्य— श्री वल्लभाचार्य—श्रीचैतन्यमहाप्रभु—श्रीनित्यानन्द—श्री सनातनगोस्वामी—श्री रूपगोस्वामी—श्री जीवगोस्वामी—श्री आनन्दतीर्थ—श्री निवासतीर्थ—श्री श्रीनिवासाचार्य— श्री जीवगोस्वामी—श्री आनन्दतीर्थ—श्रीनिवासतीर्थ—श्रीश्रीनिवासाचार्य—श्रीकृष्णाचार्यस्वामी—श्री भट्टदेव—श्री शिवाभिनवगुप्ताचार्य[५०]—श्रीधरस्वामी—श्री तुलसीदासद्वय—श्री कालिदासद्वय—श्री बच्चाशर्मा (स्वामी सुस्वरानन्द)—श्री जीवनाथ—श्री विश्नाथ चक्रवर्ती—पंडित वंशीधर शर्मा—श्री माधवाचार्य जी—श्री चतुर्थी लाल शर्मा—श्री हरिहर कृपालु—श्री प्रमथनाथ पंचाननतर्कभूषण—पंडित श्री दीनानाथ शास्त्री—पंडित श्री कालूराम शास्त्री—पंडित श्रीपाददामोदरसातवलेकर—श्री वाचस्पति मिश्र—श्री हर्षमिश्र—श्री हरीमिश्र—श्री अंप्पयदीक्षित—अवधूतस्वामीश्यामबिहारी आश्रम—श्री न्यान्टाबाबा—श्रीयोगानन्द—श्रीरामतीर्थत्रय—श्री रामकृष्णत्रय—श्री तोतापुरी— स्वामीएकरसा-

नन्द—जगदाचार्य श्रीनारदानन्द—श्री स्वामी शंकरबोधाश्रम—श्री स्वामी अनंगबोधाश्रम—श्री स्वामी अव्यक्तबोधाश्रम (परशुराम)—श्री शीतलास्वामी—स्वामी विभाश्रम—श्री रोटी बाबा—स्वामी शास्त्रानन्द—श्री खटखटा बाबा—श्री बर्फानी बाबा—श्री मैदानी बाबा—श्री नैपाली बाबा (श्री गोविन्दाश्रम) (श्री आलू वाले बाबा)—स्वामी योगानन्द—काली कमली वाले बाबा (विशुद्धानन्द स्वामी)—स्वामीगोपालाश्रम—स्वामीस्वरूपाश्रम—स्वामीभौमाश्रम—स्वामीहर-देवाश्रम (योगिराज)—स्वामी शान्ताश्रम २००—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी—श्री श्याम जी चतुर्वेद—पंडित अखिलानन्द—श्री नन्दनन्दन सरस्वती (शास्त्री स्वामी)—स्वामी महादेवानन्द सरस्वती—;स्वामी नरोत्तमाश्रम (मन्त्री स्वामी)—स्वामी चिद्घनानन्दगिरि—पंडित काकाराम शास्त्री-–श्री जीवनदत्त ब्रह्मचारी; अन्ये च ये केऽपि तेषां रूपाणां नित्यनैमित्तकानवतारान् स्वीकृत्य अनेकलीलाचिदाभासानां (जीवलोकानाम्) जन्ममरणादीनामाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकादित्र- याणां तापानामात्यन्तिकनिवृत्तिं, परमा- नन्दप्राप्तिं विधायाज्ञानान्धकारञ्चापास्य विदेहकैवल्यमुक्तिञ्च प्रयच्छन्ति । तस्यैव परमात्मनः विभिन्न रूपेष्वतीर्णानां, गुरु प्रवराणां, पूतानुपदेशान्, सिद्धान्तान् चरित्राणि च तेषां करकमलेषु सादरमानतमूर्ध्ना मे मनसा-वाचा-कर्मणामनेकशः प्रणामाञ्जलयः विलसन्तुतरामिति शम् ॥

अस्मिन्पुराणे गुरुवंशनामके, चित्रं चरित्रं परिकीर्त्यते यत् ॥
वक्ता त्वमेवाचरितं तवैव, समर्पणं चापि तवैव रूपम् ॥१ ॥
तवैव सर्वं खलु वस्तुजातं, ब्रह्माण्डभाण्डे परिदृश्यते यत् ॥
कृतिर्ममेयमिति चिन्तनं तु, मूलाङ्कुरो गर्वतरोरयं वै ॥२ ॥

शाङ्करजन्माब्द २४७०
विक्रमी सम्वत् २०५६
शारदीय पूर्णिमा

दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रमः
(रमेशाश्रमः)
दण्डी स्वामी आश्रम, प्रभातनगरम्
जालन्धर नगरम्
(पञ्चाम्बु प्रदेशः)

आशीर्वादम्

श्री श्री जगद्गुरु शंकराचार्य महासंस्थानम्
दक्षिणाम्नाय श्री शारदापीठ शृंगेरी

श्री दण्डी स्वामि शिवबोधाश्रम महाभागेषु

सप्रणतिर्विज्ञप्तिः ।

भवद्भिः महता प्रयासेन सङ्कलितस्य गुरुवंशपुराणस्य द्वितीय भागः प्रकाशयिष्यत इति विज्ञाय श्रीचरणाः अमोदन्त । सनातनधर्मानुयायिभिः ज्ञातव्याः बहवोविषया अत्र संगृहीताः । बहुग्रन्थ परिशीलन पुरस्सरं विरचितोऽयं ग्रन्थः भवतां बहुश्रुततामावेदयति । ग्रन्थान्तरेषु विप्रकीर्णतया स्थितानां एतावतां विषयाणां एकस्मिन्नेव ग्रन्थे सङ्कलनं जिज्ञासूनां नितान्तमुपकारकं भवतीति श्रीचरणा आशयमाविरकुर्वन् ।

भगवतो भवानी जानेरनुकम्पापूरेण ग्रन्थोऽयं विशिष्ट प्रचारमेत्विति श्री चरणाः आशासते ।

निवेदयिता

एन० एस० दक्षिणामूर्तिः

'श्री गुरुवंश पुराण' को

समर्पित

धर्म है, कर्म है, ज्ञान है, विवेक है।
गुरुवंश है, राजवंश है; अनेक में एक है॥
वेद है, वेदांग हैं, वेदान्त के स्वरूप हैं।
इतिहास, भूगोल और खगोल के खण्ड हैं॥
भक्ति है, शक्ति है, सनातन के अर्थ हैं।
जीव है, ब्रह्म है, विज्ञान के सत्यार्थ हैं॥
संग्रहकर्त्ता स्वामी श्री शिवबोधाश्रम हैं।

ऐसे 'श्री गुरुवंश पुराण' को नमस्कार है नमस्कार है॥

शुभम्—प्रेमानन्द गिरि

विक्रमी सम्वत् २०५६

३—श्रा० शु० २०५६ विक्रमी

स्वस्ति श्री स्वामी शिवबोधाश्रम जी महाराज सादर ॐ हरिः। अत्रानन्द। आपका भेजा ग्रन्थ मिला, देखा आपका बड़ा श्रम देखा, एक भारी आचार्यों की परम्परा का आलोडन आपने किया है यति परम्परा को इससे बड़ा ज्ञान मिलेगा, आदि श्री शंकराचार्य के आविर्भाव काल में विवाद है, सो है ही। आप तो इतिहास लेखक हैं। पृथक् मतभेद आपने लिख दिया वही ठीक है। यथार्थ ज्ञान का कोई विशेष साधन प्रमाण है नहीं, अतः इसी में से सन्तोष करना शरण है। संशोधन का कोई अंश मेरी समझ में आया नहीं, ठीक लिखा है मेरी दृष्टि भी वार्धक्य वश न्यून है अच्छी प्रकार देख नहीं सका, जो देखा वह सही ही प्रतीत हुआ। सूची भी देख ली विषय अच्छा चयन हुआ। काशी के "मछली बन्दर मठ" के महन्त श्री दण्डी स्वामी कृष्णाश्रम जी का नाम नहीं है। श्री करपात्री जी महाराज के शिष्यों में स्वामी श्री निश्चलानन्द का नाम नहीं आया है। मुमुक्षु भवन के संस्थापक श्री स्वामी "घनश्यामान्द तीर्थ जी" का नाम नहीं पाया, हो सके तो संग्रह कर लेना और सब ठीक है। विषय महान् गम्भीर है, आपने परिश्रम भी पर्याप्त किया है, आगे ईश्वरेच्छा ही मुख्य है, आपका नाम और पुण्य पर्याप्त चिरकाल तक आस्तिक जनों में प्रशस्त रहेगा। शम्॥

लक्ष्येश्वराश्रम
हरिद्वार

टिप्पणी—स्वामी जी की मन्द दृष्टि होने के कारण मछली बन्दर काशी के महन्त स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज, श्री स्वामी करपात्री जी के शिष्य पुरी पीठाधीश्वर श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज, काशी मुमुक्षु भवन के संस्थापक स्वामी श्री घनश्यामानन्द तीर्थ महाराज जी के चरित्र देख नहीं पाये। स्वामी कृष्णाश्रम जी का चरित्र नवम परिच्छेद के १३वें अध्याय में इनके शिष्यों सहित लिखा है। पुरी के स्वामी श्री निश्चलानन्द जी का चरित्र पुरी के शंकराचार्यों में द्वितीय परिच्छेद के २२वें अध्याय में तथा मुमुक्षु भवन काशी के संस्थापक श्री स्वामी घनश्यामानन्द तीर्थ जी का विस्तृत चरित्र दशम परिच्छेद के १८ से २० तक अध्यायों में लिखा गया है।

प्रशस्ति

वेदार्थतत्त्वसंवेत्ता वेदाङ्गेषु च कोविदः।
दण्डी स्वामी श्री शिवबोधाश्रमः पण्डितमान्यतां सदा॥
सोत्साहं निर्विरामं च प्राच्य भारतवाङ्मये।
सारान्वेषण संलग्नो रमेशाश्रमो विराजताम्॥
रमेशाश्रमं अग्रगण्यम् सुहृदाम्।
आनन्देनाभिनन्दामि वर्धमानं दिने-दिने॥
विद्याविनीतमुरुकीर्तिमनन्तसत्त्वं।
शान्तस्वभावमभिभूतरुषं प्रसन्नम्॥
ध्यायामि सम्मदरसेन श्री रमेशाश्रमम्।
परमादरेण शिष्यैः सदैव सम्पूज्यमानं तम्॥
एष शान्तश्च दान्तश्च विद्याव्रतो।
श्री 'गुरु वंश पुराणे' भूरि कृत्वा श्रमम्॥
या च शैली तदीया मनोहारिणी।
या च विद्या तदीया श्रेष्ठा विचारिणी॥

शुभम

डॉ. प्रेमानन्द : एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट०

श्रावण शु० ११ विक्रमी सम्वत् २०५६

पठानकोट (गुरदासपुर)

॥ ॐ नमो भगवते अव्यक्त बोधात्मने नमः ॥

आमुख कलियुग खण्ड

संभक्ष्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत्।
बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै मायात्मने नमः ॥१॥
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥२॥

जो निराकार, निर्गुण, परात्पर ब्रह्म, अखण्ड, अभेद्य, अच्छेद्य, अक्लेद्य तथा अशोष्य कहा गया है वह निर्विकार होने पर भी सदसत् से विलक्षण अनिर्वचनीया अपनी सतोगुण प्रधान माया से रहित होने पर भी जीवों के अज्ञान से त्रिगुणात्मिका माया को अपने अधीन कर, अपनी सत्य संकल्प शक्ति के प्रभाव से एक से अनेक होकर जगत् की उत्पत्ति रक्षा तथा संहार करता है। भगवान् की वह महामाया जल की कुछ बूंदों को दानव-मानव पशु-पक्षी आदि के रूप में दिखाती है। यह चेतन को जड़, जड़ को चैतन्य करती है। माया पति भगवान् अपनी महती कृपा से गूंगे को वाचाल तथा पाद रहित को सुमेरु जैसे पर्वतों को लांघने की शक्ति देते हैं। उन्हीं की कृपा से अति ठोस तथा सूखे पत्थरों से पानी झरने लगता है। वह जल पहाड़ी झरनों से नदी-नाले के रूप में होकर महानदी तथा सागर के रूप में परिवर्तित होता है। वही भगवान् ब्रह्मा की आयु के अन्त में मकड़ी के समान सारे जगत् को खाकर महाप्रलय कालीन महासागर में अक्षय वट के पत्ते पर बाल मुकुन्द के रूप में अपने हस्तारविन्द से पदारविंद को मुखारविन्द में चूसते हुये सबको मोहित करता है।

उन्हीं भक्त वत्सल भगवान् की महती कृपा से सन् १९५३ में इस शरीर के कक्षाध्यापक पंडित श्री जगदीश चन्द्र जी शास्त्री ने एक दिन कक्षा में विद्यार्थियों से कहा था कि यदि किसी के पास वीतराग, तपस्वी, भक्त, संन्यासी आदि का ऐसा लुप्त चरित्र हो, जो कहीं प्रकाशित न हुआ हो प्राप्त होने पर मैं प्रकाशित करा दूंगा। तभी से मेरे मन में हमारे कुल गुरु स्वामी श्री विष्णु आश्रम जी महाराज, उनके गुरु स्वामी श्री वेणीमाधवाश्रम जी महाराज एवं जिला होशियारपुर तथा जालन्धर के सुप्रसिद्ध परम तपस्वी सिद्धसन्त श्री जवाहर दास जी महाराज के चरित्र लिखने की इच्छा हुई।

सन् १९६० में मैं परम योगिराज दण्डी स्वामी श्री पुरुषोत्तम आश्रम जी महाराज नैनोवाल के चरणों में पहुंचा। उन्होंने मुझे पढ़ने के लिये गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित "माण्डूक्योपनिषद्" की पुस्तक, श्री गौडपादाचार्य की कारिकाओं एवं शांकर भाष्य सहित सानुवाद प्रदान की। मैंने आरम्भ में उसकी भूमिका देखी। उसमें अद्वैत वेदान्त के ग्यारह आचार्यों की वन्दना के श्लोक "**ॐ नारायणं**

पद्मभवं" आदि पढ़ा। इसको पढ़कर मेरा हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ। इससे पूर्व मैं सिखों के १० गुरुओं के सम्बन्ध में जानता था। इन श्लोकों में मुझे अपने गुरुओं का पता चला। तब मुझे इन सभी के चित्र तथा चरित्र देखने तथा जानने की जिज्ञासा हुई। लड़ोई तथा नैनोवाल में श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज तथा श्री पुरुषोत्तमाश्रम जी द्वारा भाई जवाहर दास जी के सहित तीन चार पीढ़ियों के गुरुओं की जीवनी प्राप्त हुई। इनको लिखने तथा प्रकाशित कराने की इच्छा हुई। कालान्तर में शान्ति आश्रम लड़ोई से सन् १९६१ में श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज के पास आया। उनके द्वारा उनसे पूर्ववर्ती चार पांच पीढ़ियों का पता चला। दण्डी आश्रम जालन्धर में मुझे प्रथम स्वामी श्री महादेवाश्रम जी द्वारा लिखित "पंचाक्षरी भाष्यम्" प्राप्त हुआ। इसके आरम्भ में संस्कृत के बृहत् श्लोकों में महाराज श्री का जीवन चरित्र था। मैंने यह चरित्र 'पंचाक्षरी भाष्यम्' सहित लिख लिया। परन्तु दुर्भाग्य वशात् काशी में दीमक के खाने से नष्ट हो गई। दिन प्रतिदिन मेरे गुरुओं की जीवनियां तथा उपदेश लिखने की इच्छा प्रबल होती गई।

भगवत्कृपा से सन् १९८९ में "श्री गुरुवंश पुराण" का आरम्भ श्री गीता सत्संग लखनऊ में हुआ। प्रारम्भ में मेरा अनुमान था कि लगभग १००८ गुरुओं के चरित्र, उपदेश तथा नाम होंगे। सन् १९९५ में यह ग्रन्थ सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तीन खण्डों से युक्त प्रथम भाग के रूप में मेरठ से प्रकाशित हुआ। जब लखनऊ में यह आरम्भ हुआ तब परम भक्त एवं हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू आदि के परम विद्वान् श्री अवधेश दयाल जी ने कहा कि गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित 'सन्त अंक', भगवद् भक्तांक तथा वेदान्त अंक में आपको बहुत कुछ प्राप्त होगा। श्री गीता सत्संग में यह सब सुलभ हुआ। उस समय मुझे पता नहीं था कि यह ग्रन्थ इतना विशाल हो जाएगा। सद्गुरुओं की महती कृपा से हिन्दी, अंग्रेज़ी, संस्कृत, तमिल, गुजराती, बंगाली आदि भाषाओं में कल्पनातीत सामग्री प्राप्त हुई। विशेषतः पुरी गोवर्द्धन मठ, दक्षिणशारदा, शृंगेरी मठ, कामकोटि मठ, द्वारका शारदा मठ तथा कालटी आदि स्थानों में विशेष साहित्य प्राप्त हुआ। जितना साहित्य मुझे प्राप्त हुआ है, उसका शतांश भी मैं नहीं लिख पाया। यदि विस्तार से लिखा जाता तो सैंकड़ों वर्षों में भी पूर्ण न हो पाता। अनेक ग्रन्थ रूपी सागरों में जितनी गहराई में अध्ययन रूपी गोता लगाकर मेरी झोली में जितने महामूल्यवान् रत्न प्राप्त हुये वे मैंने पाठकों को समर्पित कर दिये हैं।

यद्यपि इस ग्रन्थ में मैंने गुरु परम्परा क्रमबद्ध लिखने का प्रयास किया है फिर भी अनेक चरित्रों में क्रम भंग हुआ है। कुछ चरित्र जो यथा स्थान लिखने पर छूट गये थे, स्मरण आने पर विस्मृत चरित्र लिखे हैं।

भूल सुधार

मेरे प्रमाद से "श्री गुरुवंश पुराण" सत्ययुग खण्ड, पन्द्रहवां अध्याय, चतुर्थ परिच्छेद के ३१६वें पृष्ठ पर भगवान् **औबटायन** के विषय में लिखा है कि **योग दर्शन के व्यास भाष्य में भगवान् वेद व्यास जी ने भगवान् औबटायन का नाम बड़े आदर के साथ लेते हुये कहा है कि इनको दस हजार कल्पों के अनेकों जन्मों का ज्ञान था। वे अपने शिष्यों के प्रति उपदेश करते हुये कहते हैं कि "मुझे स्मरण है कि कई बार मैंने ८४ लाख योनियां भोगने के बाद मनुष्य शरीर प्राप्त करके देवराज इन्द्र का पद पाया। कई बार मैं ब्रह्मा, रुद्र, मनु तथा सूर्य हुआ। इन अधिकारी पुरुषों के पदों को पाकर मुझे प्रसन्नता हुई; किन्तु परिणाम में त्रिताप प्राप्त किये। अतः हे शिष्यो ! जब तक साधक अपने संचित कर्मों को ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध नहीं करता, तब तक दुःखों से छुटकारा नहीं हो सकता। औबटायन ऋषि कब हुये, इनके माता-पिता कौन थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में अभी तक हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। श्री भगवान् औबटायन का चरित्र पूर्ण हुआ।**

यहां पर गलती से औबटायन के स्थान पर जैगीषव्य जी का नाम होना चाहिए। यह सम्पूर्ण गद्यांश महर्षि जैगीषव्य के विषय में है। श्री भगवान् जैगीषव्य जी का चरित्र पूर्ण हुआ। इसका शीर्षक भी औबटायन के स्थान पर जैगीषव्य है।

कई चरित्र पहले संक्षेप में अधूरे मिले थे। कालान्तर में दूसरी बार मिलने पर अन्यत्र लिखे गये। मैंने जिस महापुरुष का चरित्र जिस ग्रन्थ में जैसा था वैसा ही लिखा है। मौखिक चरित्रों में जिनका चरित्र जैसे सुना वैसे ही लिखा है। लिखित तथा मौखिक चरित्रों में कहीं-कहीं बहुत अन्तर आया है। अतः प्रथम चरित्र तथा द्वितीय चरित्र शीर्षक देकर लिखे हैं।

इस ग्रन्थ में बहुत ऐसे परमोपयोगी ग्राह्य चरित्र थे ग्रन्थ विस्तृत होने के कारण नहीं लिख पाये। यथा श्रुत चरित्रों में त्रुटि भी हो सकती है। अतः यदि किसी चरित्र में किसी प्रकार की भावना को चोट पहुंचती हो तो उसमें मेरा दोष नहीं है। मैंने श्रुत-लिखित प्रमाण के आधार पर लिया है। इस ग्रन्थ के लेखन प्रकाशन, आर्थिक सहायता आदि के रूप में अनेक सत्पुरुषों ने शरीर, वाणी मन, धन आदि से सहयोग किया है। मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं। यहां पर उन सबका उल्लेख करना असम्भव है।

इस विशाल ग्रन्थ की मौलिक प्रति के लेखन, प्रकाशन प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में जिन्होंने सहयोग किया है वे सब साधुवाद के पात्र हैं।

प्रथम भाग में अनेक जगद् गुरुओं, विद्वानों महामण्डलेश्वरों के आशीर्वाद तथा सम्मतियां प्रकाशित हुईं थीं। भारत दिग्विजय भ्रमण के कारण अनन्त श्री दक्षिण शरदा शृंगेरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य भारती तीर्थ महास्वामिन् जी का आशीर्वाद नहीं प्राप्त हुआ था। वह कलियुग खण्ड के आरम्भ में दिया जा रहा है। अन्य कुछ विद्वानों की भी सम्मतियां इसमें हैं। इस ग्रन्थ का कलेवर विशाल होने के कारण यह ग्रन्थ तीन भागों में प्रकाशित होगा। इसमें (कलियुग खण्ड) प्रूफ तथा ग्रन्थ संशोधन में पूर्ण सहयोग जालन्धर के पुराने कर्मठ, राष्ट्रीय पण्डित, धार्मिक कार्य में मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा करने में सदैव तत्पर, संस्कृत तथा संस्कृति के परमोद्धारक अनेक ग्रन्थों के यशस्वी लेखक, "भारतीय संस्कृत भवन" के स्वामी पंडित श्री कृष्णानन्द शास्त्री जी ने परम श्रद्धा से सहयोग दिया है। मेरे पास इनकी सेवा के बदले धन्यवाद के लिये कोई उपयुक्त शब्द नहीं है।

मेरी उत्कट इच्छा होने पर भी अनेक आदर्श गुरुओं के भक्ति, ज्ञान, वैराग्य वर्द्धक चरित्र हैं, जिनका विस्तार अधिक होने के कारण मैं प्रकाशित न कर सका। इसका हमें खेद है। ग्रन्थ में उनमें से कुछ के नाम दिये हैं। मानव सुलभ अल्प बुद्धि के कारण अनेक प्रकार की व्याकरण, सिद्धान्त, चरित्र आदि की अनेक त्रुटियां हो सकती हैं। उनके लिये क्षमा प्रार्थी हूं। श्री रामा बाक्स फैक्टरी वालों सुपुत्र स्वर्गीय लाला श्री अमर नाथ जी सोंधी के श्री दुर्गादास जी सोंधी, श्री ज्ञान चन्द जी सोंधी, श्री रत्न लाल जी सोंधी तथा श्री राजकुमार जी सोंधी ने मिलकर कलियुग खण्ड के तीनों भागों के टाइटल तथा सम्पूर्ण चित्रों का भार वहन किया है। यह सभी लोग विशेष रूप से गुरुओं तथा परमात्मा के कृपापात्र हों। धन-धान्य से समृद्ध होकर सनातन धर्म की ऐसे ही सेवा करते रहें।

विक्रमी सम्वत् २०५६ रक्षाबन्धन

दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम

॥ श्री सद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ श्री मन्महागणाधिपतये नमः ॥

श्री गुरुवंश महापुराणस्य माहात्म्यमिदम्

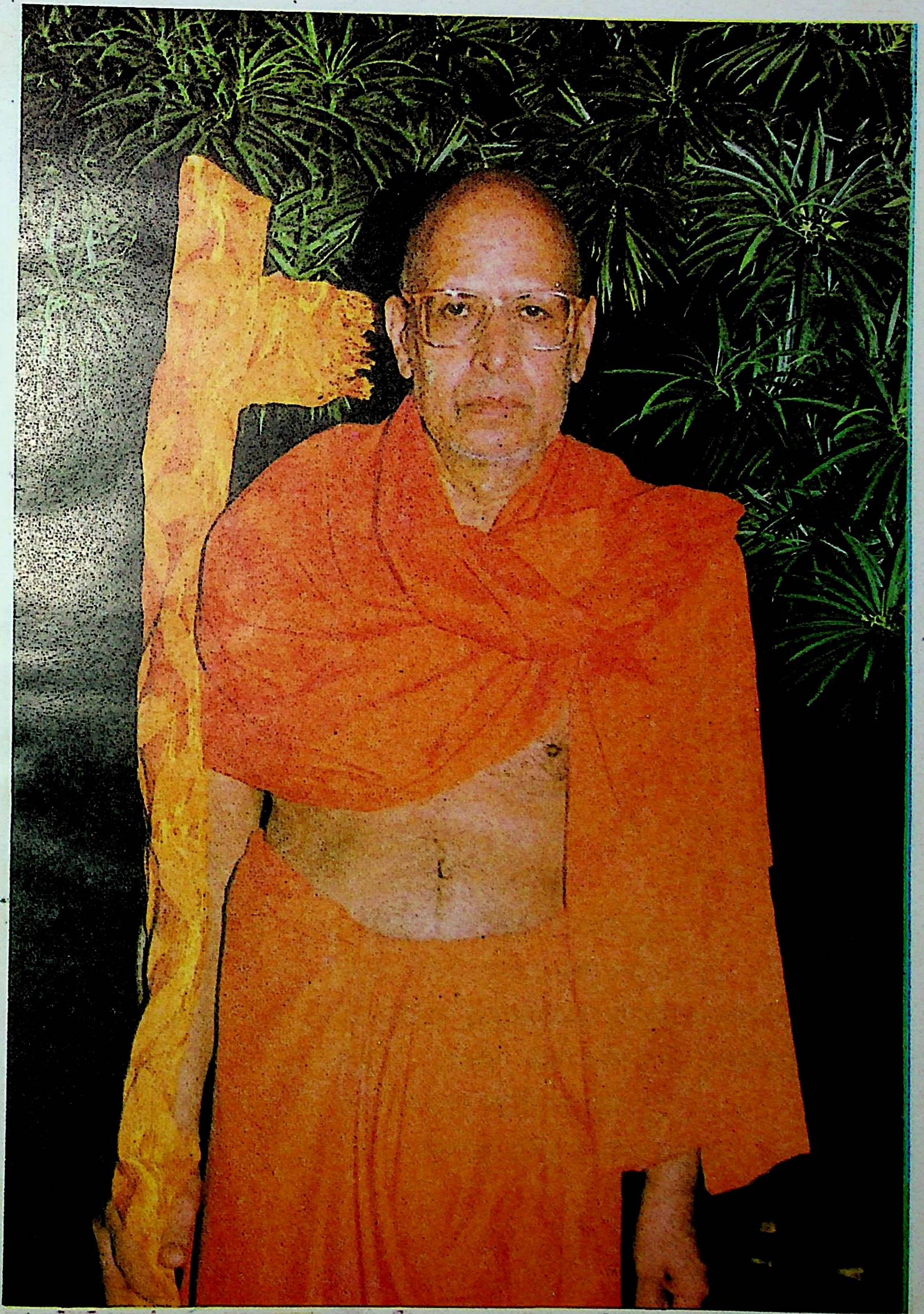
प्रणम्य शारदां शुभ्रवसनां सद्गुरूंस्तथा।
लिखितुं सम्प्रवृत्तोऽस्मि मानवानां हिताय वै ॥१॥
श्री गुरुवंश पुराणस्य माहात्म्यमखिलस्य च।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य संसिद्धिं लभते नरः ॥२॥
इतिहास पुराणानि वेदोपनिषदस्तथा।
मन्थनात् सारमुद्धृत्य नवनीतं समाहृतम् ॥३॥
परिश्रमेण महता गुरुवंश पुराणकम्।
शिवबोधाश्रमेणाथ अनन्त श्री युतेन च ॥४॥
गुरुवर्येण विदुषा व्यासेन परमर्षिणा।
प्रयासोऽयं तथास्य स्याद्यथा कश्चित् कमण्डलौ ॥५॥
सप्तानां सागर जलं सम्पूरयितुमिच्छति।
पुराणेऽस्मिन् सत्ययुगे शिव विष्णु प्रजापतेः ॥६॥
वशिष्टादेश्च चरितं सिद्धान्तमुपदेशकम्।
वर्णितं पठनाद्यस्य सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥७॥
धनं यशः सुसौभाग्यमायुष्यं लभते नरः।
मूर्खोऽनवद्यां विद्याञ्च ह्यपुत्रो पुत्रमाप्नुयात् ॥८॥
अपत्नीको लभेत् पत्नीं सतीं साध्वीं पतिव्रताम्।
भर्तारं लभते कन्या रूपौदार्य समन्वितम् ॥९॥
शास्त्राध्ययनजं पुण्यं पारणादस्य लभ्यते।
पुराणेऽस्मिन् सत्ययुगस्यादौ लिखितमस्ति यत् ॥१०॥
द्विजातेस्तु कृते सन्ध्या गायत्र्यास्तु जपादिकम्।
छन्दर्षि देवतायाश्च पाठेन यत्फलं भवेत् ॥११॥

तत्सर्वं लभते सम्यक् पुराण श्रवणेन हि।
निष्काम भावतः पाठं ग्रन्थस्यास्य करोति यः ॥१२॥
अन्तःकरण शुद्धेस्तु ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्।
सिद्धिं कामयमानो यः पुराणं श्रद्धया पठेत् ॥१३॥
अष्टसिद्धिंश्चोपसिद्धीन् साधको लभते ध्रुवम्।
अधिकारि शिशुक्षुर्यो गुरुभ्यश्चाधिकारिभिः ॥१४॥
षट्चक्र भेदन विधिं शिक्षते प्रक्रिया सह।
खेचरीमुद्रया सार्द्धं मूलबन्धादिकं तथा ॥१५॥
योगदर्शन सम्प्रोक्तं फलं हि लभते नरः।
पुराणे पठ्यमाने हि कोटिगोदानजं फलम् ॥१६॥
घृतकुल्या मधुकुल्या दानजं फलमाप्नुयात्।
धन धान्य युतां भूमिं स्वर्ण रत्नैरलङ्कृताम् ॥१७॥
वेदवेदाङ्ग विदुषे ब्राह्मणाय प्रयच्छतः।
तत्फलं लभते सम्यक् पुराणस्यास्य धारणात् ॥१८॥
अश्वमेध सहस्राणि वाजपेय शतानि च॥
कृच्छ्रार्धतप्तकृच्छ्रञ्च प्राजापत्य पराक् कृते ॥१९॥
कुरुक्षेत्रादि तीर्थेषु गंगादिषु नदीषु च।
पर्वेषु स्नान दानादौ यत्फलं तल्लभेन्नरः ॥२०॥
चन्द्र सूर्योपरागेषु काश्यां च कुरुजाङ्गले।
कार्तिके निवसेत् काश्यां माघे वै तीर्थ राजके ॥२१॥
चैत्रेऽयोध्यां द्वारकायां वैशाखे कल्पबासतः।
लभ्यते यत् फलं तत्तदस्यानुष्ठानतो भवेत् ॥२२॥
महापुराणस्य पठन्ति सम्यङ्—
माहात्म्यमेतत् खलु मानवाय।
भुक्त्वा सुभोगान् भुविदीर्घकाल-
मन्ते भवन्ति किल मुक्ति भाजः ॥२३॥

शास्त्रवाणे खनेत्राब्दगे वैक्रमे,
पूर्णिमायां तिथौ मासि चाषाढ़गे।
कीर्तितं ग्रन्थ माहात्म्यमेतद् गुरो:,
शास्त्रि विद्येश्वरेणार्पितं पादयो: ॥२४॥

अर्थ—मैं (विद्येश्वर शास्त्री, ग्रन्थ कर्ता का शिष्य) श्वेत वस्त्र धारण करने वाली सरस्वती देवी तथा सद्गुरुओं को प्रणाम करके मनुष्यों के हित के लिये समस्त श्री गुरु वंश महापुराण का माहात्म्य लिखने जा रहा हूं। जिसके पढ़ने और सुनने से मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होती है ॥१-२॥ इतिहास, पुराण, वेद उपनिषद् आदि ग्रन्थों को मथकर (श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा उसका सार मक्खन के रूप में महान् परिश्रम से अनन्त श्री विभूषित, व्यास के समान परमर्षि, विद्वान् गुरुदेव श्री शिवबोधाश्रम जी महाराज ने श्री गुरुवंश महापुराण को निकाला है। आपका यह प्रयास वैसा ही है जैसे कि कोई छोटे से कमण्डलु में सातों समुद्रों को भर दिया हो। ('गागर में सागर' वाली उक्ति चरितार्थ की है) इस पुराण के सत्ययुग खण्ड में शिव, विष्णु, ब्रह्मा और वशिष्ट आदि के चरित्र, सिद्धान्त और उपदेशों का वर्णन किया गया है। जिनको पढ़ने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥३-७॥

धन, यश, सौभाग्य तथा दीर्घायु प्राप्त करता है। मूर्ख उत्तम विद्या, पुत्रहीन पुत्र। ।८॥ अविवाहित को सती, साध्वी, पतिव्रता पत्नी, कन्या को रूपवान्, उदार पति प्राप्त होता है ॥९॥ इसके पढ़ने से शास्त्रों के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है। इस पुराण के सत्ययुग के आदि में वर्णित द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिये सन्ध्या, गायत्री जप, उसके छन्द, ऋषि, देवता आदि के पाठ से जो फल प्राप्त होता है, वह इस पुराण के विधिपूर्वक, सुनने मात्र से होता है। जो निष्काम भाव से इस ग्रन्थ का पाठ करता है वह अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है। सिद्धियों की प्राप्ति के लिये जो इस पुराण का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है ॥१०-१३॥ वह साधक आठ सिद्धियों और दस उपसिद्धियों को निश्चय ही प्राप्त करता है। जो अधिकारी शिष्य सीखने की इच्छा से, अधिकारी गुरुओं से षट् चक्र भेदन की विधि, खेचरी मुद्रा, मूलबन्धादि जो कि योग दर्शन में बताये गये है, प्रक्रिया सहित सीखता है (वह फल इस पुराण के श्रवण मात्र से होता है)। पुराण के पढ़ने से करोड़ों गोदानों का फल प्राप्त होता है ॥१४-१६॥ घृत कुल्या, मधुकुल्या दान का फल प्राप्त होता है। (जो मनुष्य)



स्वामी शिव वोध आश्रम जी

धन, धान्य, स्वर्ण, रत्न आदि से अलंकृत भूमि का वेद वेदांग से युक्त ब्राह्मण को दान करता है। वही फल इस पुराण को धारण (हृदयङ्गम) करने से होता है ॥१७-१८॥ हजारों अश्वमेध तथा सैंकड़ों वाजपेय यज्ञों को करने से, कृच्छ्रार्द्ध, तप्तकृच्छ्र प्राजापत्य पराक् आदि व्रतों के करने से ॥१९॥ पर्वों पर कुरुक्षेत्रादि तीर्थों गंगादि नदियों में स्नान, दानादि करने से जो फल प्राप्त होता है ॥२०॥ चन्द्र ग्रहण में काशी में, सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में स्नान दान से, तथा कार्तिक में काशी, माघ में प्रयाग, चैत्र में अयोध्या, वैशाख में द्वारका में कल्पवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इस महापुराण के अनुष्ठान से होता है ॥२१-२२॥

जो मनुष्य इस महापुराण के महात्म्य को ही विधिपूर्वक पढ़ेंगे वे इस पृथ्वी पर दीर्घ काल तक उत्तम भोगों का उपभोग करके अन्त काल में मुक्ति के अधिकारी होंगे ॥२३॥

इस माहात्म्य को विक्रमी सम्वत् २०५६ आषाढ़ पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा) को विद्येश्वर स्वरूप शास्त्री (विधाधर त्रिवेदी) ने रचना करके गुरु चरणों में अर्पित किया ॥२४॥

विद्येश्वर स्वरूप
(विद्याधर त्रिवेदी)
शास्त्री, साहित्य रत्न, एम० ए०
अवकाश प्राप्त प्रवक्ता (संस्कृत)
ग्राम व पो० बछवल जनपद (सीतापुर)
(उत्तर प्रदेश)

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, वुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वभावात्।
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि ॥२॥
अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्मया स्खलितं कृतम्।
प्रार्थिताः प्रणताः धीराः क्षमन्तुमर्हन्तु साधवः ॥३॥

श्री गुरुवंश पुराण महत्त्व

श्री गुरुवंश पुराण की महिमा अगम अपार।
संसारी पढ़ि सुख लहैं उदासीन भव पार ॥१॥
श्री गुरुवंश पुराण पढ़ि मूढ़ होहिं सुज्ञान।
रोम-रोम का तम मिटे दूर होत अज्ञान ॥२॥
श्री गुरुवंश पुराण पढ़ि कलिमल होत विनाश।
देह परम पावन बने देही करे प्रकाश ॥३॥
आगम निगम पुराण-मय श्री गुरुवंश पुराण।
प्रति दिन अनुशीलन किये करत परम कल्याण ॥४॥
घट-घट भीतर रहत है चेतन अमल प्रकाश।
बिनु गुरु कृपा न मिलइ सोइ चिदानन्द आभास ॥५॥
आगम निगम पुराण हैं कामधेनु के रूप।
दुह करके अमृत दिया श्री गुरुदेव अनूप ॥६॥
श्री गुरुवंश पुराण पय जे नित पियहिं सुजान।
सहजहिं तनु तजि ते सकल पद पावहिं निर्वाण ॥७॥
श्री गुरु वंश पुराण है पावन परम पुनीत।
जेहिं पढ़ि हरिहर पद मिलै विगत यातना भीत ॥८॥

रचयिता
श्री मद्‌गुरुचरणकमल
चंचरीक
चन्द्र किशोर अवस्थी "चन्द्रेश"
शास्त्री, एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी) एल. टी०
अवकाश प्राप्त प्रवक्ता संस्कृत,
नि० ग्रा० सिकन्दरपुर सरोसी
पो० सिकन्दर पुरा सिहुरा
जिला उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

जीवन चरितं वच्मि

अनन्त श्री विभूषितशिवबोधाश्रमगुरोः।
जीवनचरितं वच्मि वंशपरिचयान्वितम् ॥१॥
सारस्वत कुलोत्पन्नः 'गरोआ' ग्रामवासकः।
पितृभक्तः शिवसेवी सत्सङ्गी कीर्तने रतः ॥२॥
पदयात्रा समासेवी रूढिवादविदारकः।
प्रवचने भृशं दक्षः महाज्ञानी महामतिः ॥३॥
फलाहारी मिताहारी मृदुभाषी मितव्ययः।
मठपरम्परान्वेषी वेदान्ताध्ययने रतः ॥४॥
सुचेतः साधकः प्रह्वः ज्ञानराशिः सुलेखकः।
भस्त्रिकाज्ञानसम्पन्नः जन्ममृत्युविनाशकः ॥५॥
श्रावणे कर्क संक्रान्तौ गृहत्यागविधायकः।
परंवैराग्यसम्पन्नः रागद्वेषविवर्जितः ॥६॥
शान्तेरन्वेषणे लग्नः 'लड़ोई' शमदाश्रमे।
ब्रह्मानन्दसमीपस्थः साधनानिरतोऽभवत् ॥७॥
गीतापीताम्बरीटीकां वृहदारण्यकस्य च।
श्रवणेऽध्यापने सक्तः गुरुदेव प्रसादतः ॥८॥
श्रीवेणीमाधवं पूर्वं विष्णवाश्रमं ततः परम्।
संसेव्य काव्य संलग्नः पद्यान्यार भतात्मना ॥९॥
पिङ्गले दक्षतां प्राप्तः प्रतिभावान् महायतिः।
निर्भीको धर्मसम्पन्नो यतीनां प्रतिपालकः ॥१०॥
श्रुतिज्ञः शास्त्रसम्पन्नः पुराणानां प्रवाचकः।
गायत्र्याः वेदमातुश्च परमोपासकः सदा ॥११॥

संसेव्य परयाभक्त्या महादेवाश्रमं गुरुम्।
महावाक्यात्मिकां दीक्षा सुप्रीतादग्रहीत्ततः ॥१२॥
ब्रह्मरूपं महादेवं ज्ञानदं वीतरागिणम्।
महादेवाश्रमं पूज्यं नमामि परमं गुरुम् ॥१३॥
आश्रमं सच्चिदानन्दं समुपास्य विधानतः।
प्रसादात्तस्य जग्राह दण्डं संन्यासलक्षणम् ॥१४॥
आत्मज्ञान प्रबोधार्थं शिवतत्त्वप्रदायकम्।
सच्चिदानन्दरूपं तं नमामि परमं गुरुम् ॥१५॥
समाधिभवने काश्यां यतीनां समुपस्थितौ।
महावाक्यप्रदाता च यति धर्मप्रपालकः ॥१६॥
इत्थं सर्वगुणोपेतं लोकानां च हितावहम्।
जीव ब्रह्मैक्य वक्तारं नौमि दीक्षागुरुं हृदा ॥१७॥

रक्षा बन्धनम्
८।८।१९८ ई
२०५५

दुर्गेश स्वरूप वानप्रस्थी
(द्वारका प्रसाद शास्त्री) वृन्दावनम्
शाहटोला रायबरेलीस्थः

॥ ॐ श्रीः हरिः ॥

श्री गुरुवंश पुराण, कलियुग खण्ड, द्वितीय भाग के प्रथम खण्ड की विषय सूची

अध्याय	विषय	पृ०
	प्रथम परिच्छेद	
	मंगलाचरणाष्टकम्	१
१.	श्री नृसिंह मुनि, श्री महेश मुनि, श्री भास्कर, श्री महेन्द्र मुनि, श्री माधवानन्द जी योगी, श्री जिष्णु देव जी	३
२.	श्री गौडपादाचार्य जी का प्रथम चरित्र	६
३.	महर्षि पतञ्जलि, कात्यायन तथा पाणिनि	८
४.	श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य	१२
५.	श्री विद्यार्णवतंत्रानुसार गुरुपरम्परा, श्री शंकराचार्य जी की शिष्य परम्परा, पद्मपादाचार्य, बोधाचार्य, गीर्वाणेन्द्र की शिष्य परम्परा, कण्व, जाबालि, महागौड का द्वितीय चरित्र	१४
६.	पातञ्जलि चरितं के अनुसार श्री गौडपादाचार्य एवं श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी का चरित्र	२१
७.	भगवान् गौडपादाचार्य जी का सिद्धान्त तथा उपदेश माण्डूक्योपनिषद् की कारिकायें	२५
८.	उत्तर गीता का भाष्य (१)	३०
९.	उत्तर गीता का भाष्य (२)	४१
१०.	पूज्यपाद भगवान् गोविन्द पादाचार्य श्री गौडपादाचार्य जी का प्रथम तथा द्वितीय चरित्र	४३
११.	वेदान्त के व्यास जी से पूर्ववर्ती आचार्य कार्ष्णाजिनि, आत्रेय, औडुलोमि-आश्मरथ्य, काशकृत्स्न तथा काश्यप	४६
१२.	श्री शङ्कराचार्य जी से पूर्ववर्ती आचार्य भर्तृहरि, प्रपञ्च, उपवर्षाचार्य, बोधायनाचार्य, ब्रह्मनन्दी, टङ्काचार्य, आचार्य ब्रह्मदत्त, भारुचि, द्राविडाचार्य, सुन्दर पाण्ड्य	४९

१३. भगवान् वेद व्यास जी का ब्रह्मसूत्र तथा भाष्यकार, श्री शङ्कराचार्य, श्री कण्ठाचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री भास्कराचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बर्काचार्य तथा बलदेव, इनके अनुसार अध्यायों की सूत्र संख्यादि विचार ५५
१४. आचार्यों के सिद्धान्त, षड्दर्शनों, ऋषियों, आचार्यों का सैद्धान्तिक समन्वय ५९
१५. अद्वैत वेदान्त का ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त ६७
१६. अद्वैत शाङ्करमत संक्षिप्त विवरण तथा रामानुज का विशिष्टाद्वैत मत का संक्षिप्त विवरण ७१
१७. विशिष्टाद्वैत मत का स्पष्टीकरण ७६
१८. महर्षि कात्यायन, पाणिनि का चरित्र ८०
१९. श्री वोपदेव ८७
२०. श्री जगद् गुरु वल्लभाचार्य जी का पुष्टि मार्गीय शुद्धाद्वैत सिद्धान्त ८८
२१. श्री जगद् गुरु निम्बार्काचार्य जी का द्वैताद्वैत सिद्धान्त ९१
२२. श्री जगद् गुरु मध्वाचार्य जी का द्वैतवाद श्री चैतन्य महाप्रभु जी का अचिन्त्य भेदाभेद ९२
२३. अचिन्त्य भेदाभेद ९५
२४. अचिन्त्य भेदाभेद ९९
२५. योग दर्शन तथा वेदान्त दर्शन का समन्वय, सांख्य दर्शन तथा वेदान्त का तुलनात्मक विवेचन १०२
२६. स्वलीलाद्वैत १०५
२७. श्री भर्तृहरि प्रपञ्च का शब्दाद्वैत १०८
२८. शब्दाद्वैत तथा उसका मूल ११३
२९. जगद् गुरु श्री रामानुजाचार्य का ब्रह्मसूत्र पर भाष्य ११८
३०. त्रैतवाद (तथा उसका खण्डन) १२१
३१. प्रत्यभिज्ञावाद या स्पन्दवाद आचार्य, महेश्वर तथा आत्मा, ईश्वर और जगत्, जीव और मुक्ति, विज्ञान भिक्षु का समन्वयवाद १२५

द्वितीय परिच्छेद

१. गुर्वष्टकम्—अनेक ग्रन्थों में—शङ्करावतार की भविष्य वाणियां शङ्कर से पूर्व का भारत १३०

२. श्री शङ्कराचार्य जी का प्राकट्य तथा काल निर्णय १३८
३. कुम्भकोणम् मठ की परम्परा से, विमर्श पुस्तक के अनुसार १४५
४. महाराज सुधन्वा का ताम्रशासन तथा शंकराचार्य समय तिथिपत्र १४८
५. "शंकराचार्य के काल के सम्बन्ध में विविध ज्ञान विस्तार" नामक मराठी लेख १५८
६. "शंकराचार्य समय" के आधार पर काल निर्णय १६२
७. बाल लीला. १६५
८. उपनयन संस्कार, दरिद्रा ब्राह्मणी पर कृपा, आतुर संन्यास १६८
९. विविदिशा संन्यास, गोविन्द तथा गौडपादाचार्य की गुफा १७२
१०. चातुर्मास्य व्रत तथा गुरु सेवा, प्रस्थानत्रयी का श्रवण, मनन, निदिध्यासन, नर्मदा का जल कमण्डलु में भरना, श्री सनन्दन जी की संन्यास दीक्षा, विश्वनाथ जी की कृपा, परम गुरु जी की कृपा १७५
११. श्री सनन्दन जी की गुरु भक्ति तथा पद्मपाद नाम से प्रसिद्धि, व्यास जी से शास्त्रार्थ तथा उनकी कृपा १७९
१२. शिष्य संग्रह तथा बद्रीनरायण प्रतिष्ठा, माता जी की परलोक यात्रा, आर्याम्बा की समाधि १८४
१३. श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य का तिरोधान, श्री कुमारिल भट्ट पाद से भेंट, कुमारिल चरित्र १८८
१४. कुमारिल के ग्रन्थ एवं शिष्य १९२
१५. श्री मण्डन मिश्र तथा उभय भारती का पूर्व चरित्र, मण्डन के साथ शास्त्रार्थ एवं दोनों की सैद्धान्तिक प्रतिज्ञा १९७
१६. परकाय प्रवेश की यौगिक प्रक्रिया, पराकाय प्रवेश की नवीन प्रक्रिया २००
१७. काम-कलाओं का अध्ययन, पुनः निज शरीर की प्राप्ति, लिखित उत्तर तथा उभय भारती का ब्रह्मलोक गमन। श्री पद्म पाद द्वारा बद्रीनाथ मन्दिर का निर्माण, परम गुरु जी का दर्शन तथा आशीर्वाद २०३
१८. दिग्विजय तथा तीर्थ यात्रा, श्री हस्तामलकाचार्य का चरित्र २०९
१९. त्रोटकाचार्य चरित्रम्, भगन्दर व्याधि की निवृत्ति, श्री पद्मपादाचार्य द्वारा पञ्चपादिका प्रणयन, शृंगेरी वास तथा शारदा प्रतिष्ठा, श्री सुरेश्वराचार्य द्वारा वार्तिक रचना तथा पंच पादिका का पुनर्लेखन २११

२०. तीर्थ यात्रा, चार्वाकों के गुरु पर विजय, काश्मीर यात्रा तथा सर्वज्ञ सिंहासनारोहण, शारदी पीठ कहां है ? २१६
२१. शिव काञ्ची तथा विष्णु काञ्ची, एकाम्रेश्वर वरदराज तथा कामाक्षी मन्दिरों का निर्माण, काम-कोटि पीठ तथा शारदा मठ प्रतिष्ठा, आचार्य पाद का कैलाश गमन २२२
२२. प्रकारान्तर से शंकर चरित्रम् कूष्माण्डीय दिग्विजय से २३०
२३. भगवत्पाद के संन्यासी शिष्य प्रधान तथा उपमठ २३१
२४. मठों का विस्तृत विवरण, मठाम्नाय २३२
२५. प्रथम आचार्यों के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों का मत २३८
२६. महानुशासनम् २४१
२७. उपमठ, श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से २४६
२८. करवीर मठ की उत्पत्ति २५०
२९. दशनामी सम्प्रदाय, गोसाईयों का इतिहास, दशनामी अखाडे २५३
३०. भगवान् भाष्यकार के भाष्य ग्रन्थ, संदिग्ध उपनिषद् भाष्य, वेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ प्रकीर्ण स्तोत्र ग्रन्थ २५६
३१. भगवत्पादाचार्य जी के उपदेश, साधन पञ्चकम्, कौपीन पञ्चकम्, विज्ञान नौका २६०
३२. आत्मानात्म विवेकः २६५
३३. श्रवण मनन निदिध्यासन का फल, पृथ्वी के पांच अंश, सूक्ष्म शरीर; अन्तःकरण पंच प्राण, पंच उपप्राण, इन्द्रियों के देवता २७३
३४. कारण शरीर, पंचकोश विवेक २८३
३५. यति दण्डैश्वर्य विधानम्, दण्ड प्रणाम रहस्यम्, प्रणव महिमा, मात्राओं के वर्ण तथा गुण, साधन पाद तथा योग की महिमा, प्राणादिकों के कार्य, नाडी वर्णन, जप तथा ध्यान, जप का फल, मानव मस्तिष्क की नाड़ियों का विवरण २९०
३६. ब्रह्मचर्य में सहायक औषधियां २९८

अथ तृतीयः परिच्छेदः

१. श्री मत्पद्मपादाचार्य जी गोवर्द्धन मठपुरी के शंकराचार्यों की परम्परा, ब्रह्मीभूत पुरी पीठाधीश्वर श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज ३००
२. उडिया बाबा स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ जी महाराज ३०६
३. उडिया बाबा का उपदेश ३०९
४. उडिया बाबा का उपदेश ३१३

५. अनन्त श्री जगद् गुरु भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज का जीवन वृत्त, तपश्चर्या, विद्यार्थी जीवन की झांकियां, पान खाने की विधि, ईसा का भारत आगमन ३१९
६. धर्म तथा विज्ञान, संन्यासी जीवन ३२४
७. खिलाफत आन्दोलन में स्वामी जी का सहयोग, जगद् गुरु जी की दिनचर्या ३२७
८. वाणी का संयम, छुआछूत पर विचार, मानसिक रोगों का रहस्य, रज-तम के परमाणु, भाषा विज्ञान, नेत्रों की चिकित्सा ३३१
९. अमरीका यात्रा, जीवन सन्ध्या, उत्तराधिकारी की खोज ३३६
१०. स्तोत्र काव्यों का संकलन, हृदय शूल, बम्बई प्रवास, महासमाधि उपसंहार, भारती कृष्ण तीर्थ की व्याख्या ३३९
११. ईश्वर जीव और संसार के सम्बन्ध में पुरी पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत, अनन्त श्री जगद् गुरु भारती कृष्ण तीर्थ का लेख सनातन धर्म के ग्रन्थ ३४४
१२. अन्य धर्म, पाश्चात्य दार्शनिक, आत्मा का अस्तित्व और लक्षण उपाधि तथा उपलक्षण, आत्म ज्ञान कैसे हो, समन्वयात्मक पद्धति ३४९
१३. सनातन अस्तित्व, वस्तुतत्त्वात्मक दृष्टि कोण ३५६
१४. ज्ञान ३६१
१५. एक फ्रांसीसी लड़की की कथा, अनन्त आनन्द, स्वतन्त्रता, ऐश्वर्य, सारांश ३६६
१६. एक या अनेक, जीव और ईश्वर सृष्टि की कथा ३७१
१७. अद्वैतवाद तथा नास्तिकवाद, पंच महाभूत ईश्वर की सर्व व्यापकता ३७६
१८. सगुण ब्रह्म तथा त्रिशक्ति मीमांसा, तीनों के रंग पारस्परिक सम्बन्ध, महाकाली और रुद्र का काम, महालक्ष्मी तथा विष्णु का काम, महासरस्वती तथा ब्रह्मा का काम, निष्कर्ष ३८२
१९. अनन्त श्री पू० पा० ज० पुरी पीठाधीश्वर स्वामी निरंजन देव तीर्थ का वंश परिचय, जन्म भूमि, व्यावर में आगमन शिक्षा, अध्यापन कार्य ३८५
२०. संन्यास, प्रथम चातुर्मास, सर्ववेदशाखा सम्मेलन अमृतसर, ब्रह्मीभूत स्वामी जगन्नाथानन्द सरस्वती जी उत्तराधिकारी ३८८
२१. जगद् गुरु जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थ, वर्तमान काल में पौराणिक सात समुद्र कहां हैं ? मूर्ति पूजा, जगद् गुरु जी के शिष्य, उपसंहार ३९२
२२. पुरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री निश्चलानन्द जी का जीवन चरित्र ३९९

२३. जगद् गुरु जी के उपदेश ४०२
२४. पुरी के शंकराचार्यों का तिथिपत्र ४०६

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

१. शृंगेरी मठ के शंकराचार्यों की सूची तथा काल, द्वितीय माधव के गुरु, तृतीय माधव ४११
२. श्री स्वामी विद्यारण्य जी का जीवन वृत्त ४२२
३. श्री चन्द्रशेखर भारती आदिकों का जीवन वृत्त ४२७
४. श्री विद्यारण्य स्वामी का सिद्धान्त तथा उपदेश प्रतिबिम्बवाद ४३४
५. श्री वाचस्पति मिश्र का अवच्छेदवाद ४४२
६. श्री विद्यारण्य स्वामी का ब्रह्म जीवात्मा, ईश्वर एवं कूटस्थ ब्रह्म का विवेचन, ईश्वर तथा जीव की सृष्टि ४४५
७. श्री चन्द्रशेखर भारती तृतीय, श्री अभिनव विद्या तीर्थ जी का जीवन वृत्त, संन्यास दीक्षा, पूर्णाधिकार, स्वभाव ४५१
८. वर्तमान शृंगेरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री भारती तीर्थ जी, की भारत यात्रा ४५९
९. शृंगेरी मठ के उपपीठ कूडली मठ की परम्परा ४६१
१०. शृंगेरी मठ गुरु परम्परा स्तोत्रम् ४६८

अथ पञ्चम परिच्छेद

१. द्वारका शारदामठ के आचार्यों की परम्परा, शारदा द्वारका मठस्थ शिलालेख ४७५
२. शारदा मठ के ७१ से लेकर अन्तिम आचार्य पर्यन्त आचार्यों की क्रमबद्ध चरितावली ४७७
३. जगद् गुरु श्री माधवतीर्थ, शान्त्यानन्द, सरस्वती जी, श्री चन्द्रशेखराश्रम जी तथा स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी का जीवन वृत्त ४८३
४. अनन्त श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी का जीवन वृत्त, द्वारका पुरी का इतिहास, जगद् गुरु जी द्वारा कैलाश मान सरोवर यात्रा, श्री शारदीय सर्वज्ञ पीठम्, स्वामी जी का संक्षिप्त परिचय ४८७
५. सन् १९६७ बम्बई में गो रक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का सारांश, सनातन धर्म अनादि, अखिल भारतीय धर्म संघ के ३२वें महाधिवेशन (जमदेशपुर) में दिये गयें भाषण का सारांश ४९२
६. वर्तमान ज० शं० अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी का जीवन वृत्त ४९५

७. उपदेश, कर्म विज्ञान ४९८
८. भक्ति ५०१
९. ज्ञान ५०४
१०. शारदा मठ की परम्परा ५०७

अथ षष्ठ परिच्छेदः

१. ज्योतिर्मठ की परम्परा ५११
२. पूज्य पाद स्वामी अनिरुद्धानन्द जी, श्री स्वामी कृष्णानन्द एवं श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी की जीवनी, सद्गुरु की खोज, गुरु निष्ठा, चमत्कार पूर्ण घटनायें ५१६
३. संन्यास दीक्षा, ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य स्वामी जी के संन्यासी शिष्य ५२३
४. दिल्ली का शतकोटि चण्डी महायाग, परम प्रिय शिष्य ५२७
५. स्वामी जी के उपदेश तथा संस्मरण ५३३
६. हनुमन्मंत्र चमत्कार, अनुष्ठान पद्धति, पूज्य पाद जगद् गुरु जी का गुरु पूर्णिमा पर दिया गया सदुपदेश, सुख शान्ति का अमोघ उपाय ५३५
७. अनन्त श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी का जीवन वृत्त, वंश परिचय ५४१
८. तपस्या, शतकोटि महायज्ञ, सर्ववेदशाखा सम्मेलन ५४५
९. ज्योतिष्पीठ पर अभिषेक ५४८
१०. शंकराचार्य जी का दिव्य सन्देश, गो रक्षा के विषय में जगद् गुरु जी का विचार, शिक्षा ५५१
११. जगद् गुरु जी की दिनचर्या, महाप्रयाण, पुष्पाञ्जलि तथा अन्तिम संस्कार, मदन मोहन शब्दार्थ ५५४
१२. जगद् गुरु जी के उपदेश, कलियुग में दुर्व्यवस्था अध्यात्मभाव ५६०
१३. संस्मरण, फक्कड जगद् गुरु, गुरु जी के शिष्य मृत्यु ज्ञान लक्षण ५६४
१४. जगद् गुरु जी के अमोघ चमत्कारी शास्त्रीय अनुष्ठान, मातान्नपूर्णा स्तोत्रम्, वाल्मीकीय सुन्दर काण्ड का नवाह पारायण ५६९
१५. श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती, स्वामी विष्णुदेवानन्द, स्वामी वासुदेवानन्द, स्वामी ओम प्रकाशानन्द सरस्वती, स्वामी माधवाश्रम जी ५७७
१६. स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य एवं धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी का जीवन चरित्र, विवाह तथा गृह त्याग ५७९

१७.	संन्यास तथा दण्ड ग्रहण, तपस्या	५८२
१८.	धर्मसंघ की स्थापना, धर्म प्रचार, उपदेशों का सार, दो महापुरुषों का मिलन, यज्ञानुष्ठान	५८५
१९.	धर्म विरोधी बिल, गो वध बन्दी आन्दोलन, अन्य संस्थायें, निर्भीक वक्ता, गुरु गोलवल्कर जी से भेंट, ज्योतिष्पीठ, शास्त्रार्थ	५८७
२०.	पंडित श्री हरिहर कृपालु जी से वार्तालाप	५९१
२१.	धारा प्रवाह वक्तृत्व तथा निरभिमानिता, काशी के स्थान, कायाकल्प	५९३
२२.	साहित्य, वेदार्थ पारिजात, रामायण मीमांसा, भगवत्तत्व, जीवन सम्बन्धी ग्रन्थ	५९५
२३.	ब्रह्म निर्वाण, जल समाधि	५९७
२४.	श्रद्धाञ्जलियां	६००
२५.	उपदेशामृत, क्या धर्म निष्फल है ?	६०३
२६.	पातिव्रत महत्त्व	६०४
२७.	वेदार्थ पारिजात प्रथम भाग से, प्रमा, प्रमाण लक्षणादिकम्	६०७
२८.	वेदलक्षणम्, वेद की अपौरुषेयता	६१३
२९.	स्वामी जी का विशालतम अध्ययन, संस्कृत की २७ रामायणों का विश्लेषण	६१५
३०.	अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी, काशी में अध्ययन, वैराग्य, साधना, सिद्धों के सम्पर्क में	६२१
३१.	सन्तों में प्रसिद्धि, संन्यासाश्रम, अलौकिक घटना	६२४
३२.	श्री माता जी का परिचय तथा मृत्यु, पैदल यात्रायें, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, वालू का ब्रह्म, एकदिव्य घटना, भागवत की दक्षिणा दूसरों के सुख का ध्यान	६२६
३३.	उपदेश	६३०
३४.	वेदान्तियों और भक्तों में समानता, शुद्धि और ज्ञान, मन हटा लो, ठोस ईश्वर, स्वामी जी का साहित्य, स्वामी भागवतानन्द जी महाराज, श्री स्वरूपानन्द जी की शिष्य मण्डली	६३३
३५.	अनन्त श्री स्वामी महादेवानन्द सरस्वती (शास्त्री स्वामी) स्वामी परमानन्द जी महाराज	६३६
३६.	अनन्त श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी कानपुर	६३८
३७.	धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी के शिष्य, अनन्त श्री स्वामी नन्द नन्दनानन्द जी शास्त्री स्वामी	६३९

३८. अनन्त श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी, अनन्त श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी ६४३
३९. अनन्त श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी, दण्डी स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती, दण्डी स्वामी सदानन्द सरस्वती (वेदान्ती स्वामी), भाषण शैली, दण्डी स्वामी विपिनचन्द्रानन्द सरस्वती (जज स्वामी), अनन्त श्री डॉ. लक्ष्मण चैतन्य जी ब्रह्मचारी, श्री प्रवर तथा आशुतोष ब्रह्मचारी, श्री भगीरथ ब्रह्मचारी, उपसंहार ६४७

अथ सप्तम परिच्छेद

१. अनन्त श्री सर्वज्ञात्ममुनि, पंचम काम-कोटि मठ के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय, श्री सर्वाज्ञत्म मुनि से लेकर परिपूर्ण बोध जी तक ६५०
२. स्वामी सच्चित्सुख जी से लेकर स्वामी आनन्द घन जी तक ६५५
३. स्वामी पूर्णबोध जी से स्वामी विद्यातीर्थ तक ६५८
४. स्वामी अवधूत शिरोमणि भगवत्पाद, श्री शंकरानन्द सरस्वती जी, तात्पर्यबोधिनी की विशेषता, उपदेश तथा सिद्धान्त ६६२
५. आत्मपुराण, सारांश ६६८
६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी तथा पंडित श्री काकाराम शास्त्री ६७२
७. श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से स्वामी महादेवानन्द सरस्वती तक ६७४
८. अनन्त श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी की २१ वर्ष की दिग्विजय यात्रा, उपसंहार ६७६
९. स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी, आचार्य पद की प्राप्ति, विजय यात्रा ६८१
१०. अनन्त श्री विजयेन्द्र सरस्वती जी ६८३
११. कामकोटि मठ के शंकराचार्यों की परम्परा तथा काल, कामकोटि शब्दार्थ तथा मठ की प्रामाणिकता, प्राचीन मठ ६८४

अथ अष्टम परिच्छेद

१. सन्तों की महिमा तथा स्वभाव ६८९
२. वनस्पति योनि के सन्त श्री रामवृक्ष जी ६९०
३. पशुयोनि में सन्त (श्री जानकी दास जी) ६९५
४. अनन्त श्री परमहंस गन्धा बाबा ६९७
५. काशी के तीन जीवन्मुक्त यति, महात्मा तैलंग स्वामी, श्री भास्करानन्द सरस्वती ६९९
६. स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी ७०४

७.	द्वारका शारदा मठ की शाखायें, अनन्त श्री स्वामी शिवाश्रम जी, स्वामी नारायणाश्रम जी, स्वामी मधुसूदनाश्रम जी, स्वामी शिवाश्रम जी, स्वामी वेणीमाधवाश्रम जी, स्वामी गोविन्दाश्रम जी, स्वामी विश्वरूपाश्रम जी	७०७
८.	अनन्त श्री रामेश्वराश्रम जी, अनन्त श्री वेणीमाधवाश्रम जी पंजाब, गुरु वन्दना, परिचय	७१०
९.	पंचनद प्रदेश में, मृतक को जीवन दान, भाई जवाहर दास पर कृपा	७१६
१०.	पुनः गुरु दर्शन, अन्तिम समय, मूर्ति स्थापना वेणी माधव मठ फम्बियां	७२०
११.	परम गुरु भक्त बाबा जवाहर दास जी, क्षत्रिय सेवक	७२४
१२.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज, श्री विष्ण्वाष्टकम्, प्रारम्भिक शिक्षा तथा दो चमत्कारी सन्त, संन्यास दीक्षा	७२७
१३.	शान्ति आश्रम में , पंडित श्री रामदत्त जी	७३२
१४.	अनेक शिष्य संन्यासी तथा गृहस्थ, दण्डी स्वामी वासुदेवाश्रम जी, श्री शुकदेवाश्रम जी, श्री रामाश्रम जी, ब्रह्मचारी अच्युत स्वरूप, स्वामी नारायण गिरि, स्वामी अनन्ताश्रम जी, उपदेश	७३४
१५.	उपदेश, भागवत सप्ताह	७३९
१६.	विविध घटनायें, अन्तिम समय, अद्भुत चमत्कार	७४२
१७.	अनन्त श्री ब्रह्मचारी चैतन्य स्वरूप जी, सिद्धान्त निरूपण, विदेह मुक्ति तथा महाविदेह मुक्ति	७४७
१८.	अनन्त श्री ब्रह्मानन्द जी, दिनचर्या, तीर्थ की खुदाई, गुरु गद्दी पर	७५२
१९.	सम्भूति, असम्भूति, विद्या, अविद्या का स्पष्टीकरण, उत्तराधिकारी, अन्तिम बीमारी	७५५
२०.	दण्डी स्वामी नारायणाश्रम जी, अन्तिम क्षण	७६०
२१.	स्वामी शंकरबोधाश्रम जी, चौंसट्ठी मठ की परम्परा, प्रमुख घटनायें तथा संस्मरण, विरञ्जी देवी पर कृपा, एक भक्त पर अनुग्रह	७६३
२२.	स्वामी अनङ्गबोधाश्रम जी	७७३
२३.	स्वामी करपात्री जी की श्रद्धा, पूज्य स्वामी अनंगबोधाश्रम जी की लोकैषणा	७८१
२४.	शेर के साथ खेल, अनङ्ग और भुजङ्ग बच्चे की प्राण रक्षा, पंडित शीतला प्रसाद व श्री गंगा प्रसाद मिश्र पर कृपा	७९०
२५.	स्वामी अव्यक्तबोधाश्रम जी (स्वामी परशुराम जी), स्वामी जी के गुरु भक्ति के भजन	७९५

२६.	श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, हरिहर बाबा, श्री शंकर चैतन्य भारती	७९९
२७.	स्वामी रामाश्रम जी, स्वामी ब्रह्माश्रम जी, स्वामी रामचन्द्राश्रम जी	८०२
२८.	स्वामी विश्वेश्वराश्रम, स्वामी शिवशंकराश्रम, स्वामी चैतन्यदेवाश्रम, ब्रह्मचारी महानन्द, श्री वंशी स्वामी, स्वामी ईश्वराश्रम जी	८०६
२९.	स्वामी शिवरामाश्रम (मौनी स्वामी), प्रमुख घटनायें, गुरु आरती	८०८
३०.	काशी ईशानेश्वर मठ की परम्परा अनन्त श्री स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी की गुरु परम्परा	८१३
३१.	उग्रतप, कठोर नियम तथा दिनचर्या, देहाध्यास रहित संन्यासी, प्रथम दर्शन	८१७
३२.	संन्यासी शिष्य ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ शिष्य मित्र संन्यासी, चमत्कार	८२१
३३.	स्वामी जी की डायरी से विशेष वातें, भूचरी मुद्रा, कपालासन तथा खेचरी मुद्रा, पुत्रोत्पत्ति का उपाय	८२५
३४.	अन्तिम समाधि	८२९
३५.	दण्डी स्वामी कृष्णाश्रम जी	८३१
३६.	दण्डी स्वामी पद्मनाभाश्रम जी	८३४
३७.	स्वामी हरीशाश्रम (जजस्वामी)	८३५
३८.	दण्डी स्वामी अनन्त विज्ञानाश्रम जी अनन्त विज्ञान मठ काशी, परमगुरुदेव महावेदान्त केसरी स्वामी ओंकाराश्रम जी, दण्डी शिष्य	८३७
३९.	उपदेश "वेदान्त मणि माला" से	८३९
४०.	पूज्य पाद दण्डी स्वामी चतुर्भुजाश्रम जी, स्वामी वेदाश्रम जी, आनन्दाश्रम, पूज्य पाद स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज, जन्म कुण्डली, गुरु की खोज तथा संन्यास, यति दण्ड तथा ब्रह्मसूत्र विचार	८४९
४१.	नास्तिक से शास्त्रार्थ, क्षय रोग का प्रकोप, यति शिष्य	८५६
४२.	सद्गुरु सेवक संघ तथा गृहस्थ शिष्य, पूर्व गीता तथा उत्तर गीता का प्रकाशन, अन्तिम यात्रा	८६१
४३.	श्री ओमाश्रम जी, ज्योतिस्वरूप जी, विद्यारण्य जी, कल्कि अवतार परशुराम जी, स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी, उपेन्द्राश्रम जी, ब्रह्मबोधाश्रम, डॉक्टर स्वामी, रुद्रबाबा, दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी नवांशहर	८६५

४४. अनन्त श्री पूज्य पाद दण्डी स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी (त्यागी जी) योगेश्वराष्टकम्, संन्यास काशीवास तथा देह त्याग, स्वामी जी के उपदेश ८७०
४५. स्वामी निरालम्बाश्रम, श्री प्रणवबोधाश्रम, प्रकाशाश्रम, सिद्धेश्वराश्रम जी, महारुद्रयज्ञ, शिष्य ८७५
४६. श्री स्वामी गुणातीताश्रम, तत्त्वबोधाश्रम, स्वामी सदाशिवाश्रम, रामेशाश्रम, श्री सदानन्दाश्रम, निर्वाणाश्रम, आत्म देवाश्रम ८७९
४७. परम गुरु जी के शिष्य—स्वामी पूर्णाश्रम, चैतन्याश्रम, भगवदाश्रम, बुद्धदेवाश्रम, चन्द्रशेखराश्रम (नेपाली स्वामी), प्रवचन शैली तथा उपदेश ८८३
४८. स्वामी माधवाश्रम, वामनाश्रम, स्वानन्दाश्रम ८८६
४९. षड्दर्शनाचार्य अनन्त श्री दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी (पंडित स्वामी नरवर), विश्वेश्वराष्टकम्, चरित्रम्, विदेह मुक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार, विश्वेश्वर वन्दन ८८७
५० अनन्त श्री स्वामी सोमेश्वराश्रम जी (प्रभास भिक्षु) शुकताल दण्डी आश्रम की परम्परा तथा इतिहास, अनन्त श्री स्वामी ब्रह्माश्रम जी, स्वामी नारायणाश्रमः जी, स्वामी ८९५

गोपालाश्रम जी, स्वामी विष्णु आश्रम जी भागवत पण्डित
५१ स्वामी जी के संन्यासी ब्रह्मचारी शिष्य जगन्नाथाश्रम जी, विश्वरूपाश्रम जी, श्री श्रीधराश्रम, सुखदेवाश्रम, हरवल्लभाश्रम, श्री रवीन्द्राश्रम (डॉक्टर स्वामी), प्रमोदस्वरूप ब्रह्मचारी, श्री भगवत्शरण ब्रह्मचारी, श्री राम लोचन स्वरूप ब्रह्मचारी, ब्रह्मीभूत शिव स्वरूप जी ८९९
५२. उपदेश ९०२
५३. उपदेश ९०८
५४. स्वामी आत्मबोधाश्रम जी ९१०
५५. अनन्त श्री अवधूत शिरोमणि स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज गंगोत्री, अनन्य गुरुभक्त वालिका, सेठ मोदी की दीक्षा तथा मोदीनगर में आगमन, अन्तिम समाधि ८१४
५६. स्तोत्र, आरती, उपदेश, कर्म, उपासना ब्रह्मचारिणी भगवत्स्वरूपा ९२१
५७. कृतिकार—एक विवेचन ९२३
५८. श्री गुरुवंश पुराण की आरती ९२६
५९. दान दाताओं की सूची ९२८



श्री श्रृंगेरी शारदाम्बा

॥ मंगलाचरणाष्टकम् ॥

साक्षाच्छुकस्य शिष्यस्य श्री नृसिंह मुनेः सदा।
जीवन्मुक्ति विवेकार्थं पादयोरहमाश्रये ॥१॥
महेशमिव परमं तपोपूतं महामुनिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यं महेशमुनिमाश्रये ॥२॥
भास्वन्तं भास्करमिव निष्णातं योगदर्शने।
योगिनं बाल सुलभं भास्करं मुनिमाश्रये ॥३॥
योग शक्ति प्रभावेण कर्त्तुं चाकर्त्तुमेव तम्।
समर्थो योऽन्यथाकर्तुं महेन्द्र-मुनिमाश्रये ॥४॥
गोपीनां परमानन्दः दाने यः सर्वदा क्षमः।
माधवं माधवानन्दं योगिनं तमुपास्महे ॥५॥
काम क्रोधादिकान् शत्रूञ्जित्वा शाश्वत शान्ति भाक्।
तत्त्व विज्ञानिनां श्रेष्ठं जिष्णुदेवं समाश्रये ॥६॥
प्रातः सायन्तु यो नित्यं ब्रह्म वेत्तानिमान् सदा।
चिन्तयिष्यन्ति मनसि कीर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥७॥
भृङ्गीकीटस्य न्यायेन ब्रह्म चिन्तन तत्पराः।
स्वयं ब्रह्मैव भवति ब्रह्मविन्नात्र संशयः ॥८॥

॥ इति मंगलाचरणाष्टकम् सम्पूर्णम् ॥

अर्थ—मैं सदैव साक्षात् शुकदेव जी के शिष्य श्री नृसिंह मुनि के चरणों का, जीवन्मुक्ति के विवेक के लिये आश्रय लेता हूं ॥१॥ जो महेश मुनि जी महेश (भगवान् शंकर) जी के समान तपस्या से पवित्र हो गये हैं तथा सागर के समान अक्षोभ्य हैं, उन महेश मुनि जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२॥

भगवान् सूर्य के समान तेजस्वी, योगदर्शन में निष्णात, बाल सुलभ योगी भास्कर मुनि का मैं आश्रय लेता हूं ॥३॥ जो अपनी योग शक्ति के प्रभाव से करने, न करने तथा अन्यथा करने में समर्थ हैं। उन महेन्द्र मुनि का मैं आश्रय लेता हूं ॥४॥

भगवान् श्री कृष्ण के समान जो गोपियों को परमानन्द देने में सर्वथा समर्थ हैं। ऐसे योगियों में उत्तम स्वामी माधवानन्द जी की मैं आराधना करता हूं। अथवा गोपीनां = अपनी अन्तः करण की वृत्ति के द्वारा, गो = ब्रह्म विद्या द्वारा परमानन्द रस का पान करने वाली इन्द्रियों को निरन्तर (अखण्ड तैल धारावत्) पान कराने में दक्ष हैं, ऐसे मा—मोक्ष लक्ष्मी के, धव—स्वामी, योगी श्री माधवानन्द जी की उपासना करता हूं ॥५ ॥

काम क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर जिन्होंने शाश्वत शान्ति प्राप्त कर ली है, तत्त्व ज्ञानियों में श्रेष्ठ उन जिष्णु देव जी का मैं आश्रय लेता हूं ॥६ ॥

जो मनुष्य नित्य निरन्तर प्रातः सायंकाल इन ब्रह्म वेत्ताओं का मन से चिन्तन या कीर्तन करेंगे, वे ब्रह्म-चिन्तन करने में तत्पर उपर्युक्त ब्रह्म वेत्ताओं के समान भृङ्गी कीट न्याय से "ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति" इस प्रमाण के अनुसार ब्रह्मत्व प्राप्त करेंगे ॥७ ॥८ ॥

इति श्री मंगलाष्टकम् का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।



कलियुग खण्ड, प्रथम परिच्छेद

अथ प्रथम अध्याय

जीवन्मुक्त अजर-अमर योगी

१ से ६ तक—अ. श्री नृसिंह मुनि (२८६)

परम पूज्य पाद परमाराध्य श्री शुकदेव जी के पूर्ण कृपा पात्र श्री गौडपादाचार्य जी से कई पीढ़ी पूर्व श्री नृसिंह मुनि ज़ी हुए थे। इनके बाल चरित्र तथा माता-पिता का पता नहीं चलता। सुना है आपको समस्त वेद-वेदांग व पुराण पढ़ने पर भी शान्ति नहीं मिली; तो शाश्वत शान्ति के लिये अनेक देश-देशान्तरों में भ्रमण करने पर भी सद्‌गुरू की प्राप्ति नहीं हुयी, तब निराश होकर भगवान् से प्रार्थना करने लगे। भगवत्कृपा से श्री शुकदेव जी के आश्रम में पहुंचे। व्यास नन्दन समाधिस्थ थे। आप दूर से ही धीरे से प्रणाम करके बैठ गये और समाधि खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। वहीं बैठे-बैठे आत्मचिन्तन करने लगे। धीरे-धीरे अन्तःकरण में शान्ति अनुभव की। आश्रम के प्रभाव से इनका मन एकाग्र हो गया। आप निर्निमेष नेत्रों से शुकदेव जी के श्याम वर्ण, सुगठित किशोर अवस्था के शरीर को देखने लगे। उनकी समाधि खुली। आपने उनके श्री चरणों में प्रणाम किया। त्रिगुणातीत सन्त ने इन्हें उठाया और अधिकारी जान कर रहस्यमय दीक्षा दी। यद्यपि शुकदेव जी निःसंग निःस्पृह सन्त हैं, तथापि सम्प्रदाय की मर्यादा के अनुसार शिष्य रूप में स्वीकार किया। श्री नृसिंह जी बहुत समय तक आश्रम में रहकर कन्दमूल खाकर गुरु सेवा करते रहे।

इनके तप को देखकर देवराज इन्द्र भी भ्रमित हो गये। इन्द्र ने तप भंग करने के लिए उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि अप्सराएं भेजीं। वे इनके प्रभाव से भयभीत होकर लौट गयीं. काम भी अपने सखा बसन्त के साथ इन्हें विचलित करने आया। परन्तु इनके ललाट से सूर्य की भांति निकलती हुयी ज्योति को देखकर साक्षात् शंकर समझ कर प्रणाम कर स्वर्ग को चला गया। उसे शंकर जी के द्वारा अपने भस्म होने की घटना स्मरण हो गयी। आप इसी शरीर से आज भी तपस्या में तल्लीन हैं। इनका ज्ञान रूपी तप अपने मोक्ष के लिये नहीं है वरन् जगत के कल्याण के लिये है। आपका दर्शन अधिकारी पुरुषों को आज भी होता है। आप यदि योग शक्ति के प्रभाव से आकाश मार्ग से चलकर हमारे पास इसी रूप में आ भी जाएं तो हम इन्हें पहिचान भी नहीं पाएंगे।

२. जीवन्मुक्त अ. श्री महेश मुनि जी (२८७)

श्री नृसिंह मुनि के समान श्री महेश मुनि के विषय में भी जानकारी नहीं है। ये बचपन में अतिगम्भीर और शान्त थे। इनके मन में जो बात आ जाती थी उस पर इतना विचार करते तथा निश्चय करते थे। लोग आश्चर्य करते थे। इनके शरण्य भाव, योग्यता तथा जिज्ञासा को देखकर नृसिंह मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए, आप ने इन्हें गुरु परम्परा प्राप्त योग ज्ञान के सम्पूर्ण रहस्यों का उपदेश किया। इनकी तत्परता, लगन और निष्ठा देखकर गुरु जी को पूर्ण विश्वास हुआ कि यह कृतार्थ हो चुके हैं। इनको दीक्षा देकर नृसिंह मुनि आकाश में विचरण करने लगे। गुरु जी के जाने के बाद महेश मुनि ने विचार किया कि मुझे एक स्थान पर रहकर तपस्या करने से आसक्ति बढ़ जाती है तथा इन्द्रादि देवताओं के मन में शंका होने लगती है, कि ये मेरे राज्य के लिये तप कर रहे हैं। अतः एक स्थान, एक व्यक्ति अथवा एक वस्तु से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। यह विचार कर वे विचरण करने लगे। एक रात्रि से अधिक कहीं नहीं रुकते थे। लोगों को दुखी देखकर इनके मन में दया आयी। इन्होंने अपने संकल्प तथा उपदेश से अनेकों का कल्याण किया। ये देखने में साक्षात् शंकर रूप से दिखाई देते थे। इनका शंकर नाम सार्थक हुआ। सभी सिद्ध सन्त जैसे समय-समय पर अपने को प्रकट करते हैं वैसे आप भी करते हैं। अलक्षित रूप से आप आज भी जगत का कल्याण करते हैं।

३. जीवन्मुक्त अ. श्री भास्कर योगी (२८८)

श्री भास्कर योगी जी बाल्यावस्था से बड़े मनन शील थे। इनमें योग दर्शन के यम नियम स्वभाव सिद्ध थे। एक आसन से बैठ कर ध्यान में इतने मग्न हो जाते थे कि शरीर का भान नहीं रहता था। जब इन्हें जगत की दुःखरूपता का अनुभव हुआ, तब इन्होंने गृह-त्याग कर महेश मुनि की शरण ग्रहण की। इन्हें शान्त, नम्र, शरणागत देख कर महेश मुनि ने ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान कराया। उसके श्रवणमात्र से आपका अज्ञान नष्ट हो गया। मर्यादा की रक्षा के लिए मनन और निदिध्यासन किया। वे प्रत्येक स्थिति में ब्रह्म में स्थित रहते थे। इस शरीर से आज भी जीवित हैं।

४. अ. श्री महेन्द्र मुनि जी (२८९)

पिछले सद्गुरुओं की तरह इनका भी जन्म कर्म अज्ञात है। इनकी सिद्धियां प्रसिद्ध थीं। ये योग शक्ति के प्रभाव से असम्भव को सम्भव कर देते थे किन्तु इन सिद्धियों से इन्हें सन्तोष

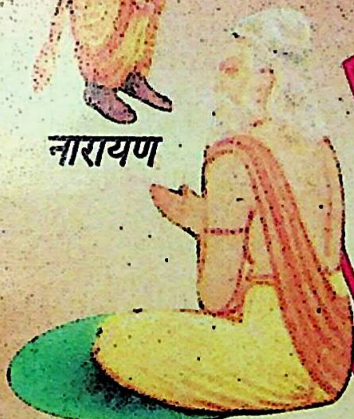
श्री गुरुवंश पुराण



नारायण



बृह्मा



बृह्मार्षि वशिष्ठ



भगवान सदाशिव



श्री शक्ति देव



श्री पराशर



भगवान वेद व्यास



श्री शुकदेव जी



श्री गौड पादाचार्य



श्री गोविन्द भगवत पादाचार्य



श्रीमद आद्य शंकराचार्य

नहीं हुआ। इनकी ज्ञानामृत की प्यास सिद्धियों से शान्त नहीं हुई। अतः इन्होंने भास्कर योगी की शरण ली। इन्हें साधन चतुष्टय सम्पन्न व विरक्त देखकर इन्होंने उपनिषदों के रहस्य का तत्त्व ज्ञानोपदेश किया। अन्तःकरण पहले ही शुद्ध था। सद्गुरुओं की कृपा हो गयी जिससे पूर्ण बोध प्राप्त हुआ। निर्भय होकर जगत के दुःखी प्राणियों को शान्ति देने के लिये विचरने लगे। एक बार विचरण करते हुए इनकी दृष्टि उन संन्यासियों पर पड़ी जो काञ्चन-कामिनी कीर्ति त्याग कर भी ऐषणा, त्रय से युक्त संन्यासी हुए थे। संन्यास संसार के भोग भोगने तथा लूटने के लिये नहीं है। यदि इन्हें ज्ञान हुआ है तो आश्रम धर्म के विरुद्ध यह स्वांग क्यों? यदि ज्ञान नहीं हुआ तो उसके लिंये निरन्तर गुरुसेवा जप आदि के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करके ज्ञान अर्जन करना चाहिए।

इन्होंने डांटते हुए वेशधारी यतियों को फटकारा—**"मूर्खो! तुमने संन्यास क्यों लिया। इसका उद्देश्य पेट पूजा है या मोक्ष? यदि मोक्ष है तो वह ज्ञान से प्राप्त होता है या अन्य साधन से। ज्ञान छः युक्तियों द्वारा श्रवण से होता है। श्रवण महात्माओं की सेवा तथा जिज्ञासा से होता है। अतः संन्यास लेकर तुम्हें सद्गुरुओं की शरण ग्रहण करके श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिए। व्यर्थ की पेट पूजा में लगकर अपने जीवन तथा पवित्र आश्रम धर्म को नष्ट मत करो।**

इनकी डांट भरी फटकार सुन कर ढोंगी संन्यासी पहले तो बहुत रुष्ट हुए परन्तु बाद में इनकी योग शक्ति, प्रभाव तथा ज्ञान को देखकर सब इनकी शरण में आये। इन्होंने सस्नेह उन्हें अपना कर उनका जीवन सुधारा। उन्हें ज्ञान-विज्ञान का उपदेश देकर संन्यास धर्म पर आरूढ़ किया। इनके उपदेशों से मूकतपस्या तथा संकल्प से अनेकों का कल्याण हुआ।

५. अ. श्री माधवानन्द जी महाराज (२९०)

श्री माधवानन्द जी बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर महेन्द्र मुनि जी की शरण में गये थे। उन्होंने इनके हृदय को शुद्ध जानकर मन्त्र दीक्षा दी। उपनिषदों का रहस्यों सहित उपदेश किया। उनकी कृपा मात्र से आपका जन्म सफल हुआ। गुरु उपदेश का प्रचार संसार में करने लगे। कई पतितों का उद्धार किया। इनके विषय में प्राचीन सूक्ति है कि—**"जैसे माधव श्री कृष्ण ने कृपा करके भयभीत देवताओं की रक्षा और दैत्यों का विनाश किया, वैसे ही परमसिद्ध माधव जी ने अज्ञान रूपी राजा के काम-क्रोध आदि सैनिकों द्वारा सताये हुए आन्तरिक शत्रुओं का नाश करके दैवी सम्पदा की रक्षा की।"**

६. अ. श्री जिष्णुदेव जी (२९१)

आप श्री माधवानन्द जी के शिष्य थे। इनकी तपस्या और स्वभाव से सन्तुष्ट होकर उन्हें अपना शिष्य बनाया। आपने उनसे तत्त्व ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर सच्ची शान्ति का अनुभव किया। इनका चेहरा तपस्या के तेज से जगमगाता था। इनके लिये मिट्टी, पत्थर, सोना एक समान था। इन्होंने विचार किया कि कलियुग है। कोई योग्य अधिकारी तो है नहीं, उपदेश किसको करें। यह विचार कर एकान्त में ध्यान करने लगे। इनकी उपरति, आत्मनिष्ठा तथा भगवत् प्रेम देखकर लोग इन्हें 'शुकदेव' कहते थे। इन्हें लोगों से अधिक मेल-मिलाप करना पसन्द नहीं था। अतः गौड़ देश के एक कोने में जाकर समाधि का अभ्यास करने लगे। इनके तप तथा उपदेश से जगत का विशेष कल्याण हुआ।

पूर्वोक्त सभी सद्गुरु जीवन्मुक्त महात्मा **"तस्य कार्यं न विद्यते"** ज्ञान की षष्ठ या सप्तम भूमिका में स्थित हैं। ऐसे यतियों के द्वारा पृथ्वी धारण की हुई है। महाभारत में कहा है कि गौ, ब्राह्मण, वेद, सती, सत्यवादी, दानी तथा धर्मात्मा इन सात के द्वारा पृथ्वी धारण की हुई है।

—कल्याण सन्त अङ्क से साभार।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

नोट—श्री गुरुवंश महापुराण के प्रथम भाग के परिशिष्टांश के महर्षि २८१ महर्षि ऐतरेय (महीदास) २८२ महर्षि ऐलूष कवष, २८३ महर्षि मतङ्ग, २८४ सत्यकाम जाबाल २८५ ब्रह्मर्षि कक्षीवान् हैं। यहां से आगे कलियुग खण्ड के गुरुओं के चरित्र—उपदेश आदि प्रारम्भ होते हैं।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

(२९२) श्री गौड़ पादाचार्य जी (१) प्रथम चरित्र

श्री शुकदेव जी के आश्रम के पास एक भूपाल नाम का ग्राम था। जिसमें विष्णुदेव और गुणवती नाम के ब्राह्मण दम्पति निवास करते थे। वे ब्राह्मण धन-धान्य, वेदशास्त्र आदि से सर्वथा सम्पन्न थे। देवता, अतिथियों की पूजा सत्कार में उनकी बड़ी प्रीति थी। वे अपनी शक्ति भर दूसरों की भलाई करते थे। उनकी अवस्था ढलती जा रही थी। अब तक पुत्र नहीं हुआ था, इससे चिन्तित होकर वे एक दिन शुकदेव जी के आश्रम में पहुंचे। उस सिद्ध स्थान पर






अनन्त श्री विभूषित दण्डी स्वामी श्री महादेवाश्रम जी महाराज



जाकर एक आसन से बैठे रहकर बिना अन्न-जल के सात दिन तक बड़ी श्रद्धा-भक्ति से गायत्री जप करते रहे। अन्तिम दिन शुकदेव की गुहा से एक आवाज़ सुनाई पड़ी—ब्राह्मण ! तुम्हें एक बड़ा यशस्वी पुत्र प्राप्त होगा। वह सर्वज्ञ और सर्व सिद्धि सम्पन्न होगा। सभी सिद्ध उसका सम्मान करेंगे। शुकदेव जी की यह वाणी सुनकर वे बड़ी प्रसन्नता से घर लौटे और समय पर सूर्य की भांति कान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। पिता ने जात-कर्म करके उसका 'शुकदत्त' नाम रखा। शुकदेव जी के आशीर्वाद से उत्पन्न होने के कारण यह नाम पड़ा। पांच वर्ष की अवस्था में समस्त वेद, वेदांग शास्त्रों आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। अब वे परमतत्त्व की प्राप्ति के लिये शुकदेव जी के आश्रम में गये। गुरू जी के सामने आठ प्रहर तक बिना अन्न जल लिये खड़े रहे। शिष्य गुरु जी की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। गुरु जी ने गौड़पाद जी से कहा, हे शिष्य ! तुम गौड़ देश में जाओ वहां पर मेरे सद्‌गुरू देव जिष्णु देव जी हैं। यद्यपि अद्वैत वेदान्त की गुरू परम्परा में श्री शुकदेव जी के पिता तथा गुरु इतिहास पुराण से भगवान् वेद व्यास सिद्ध होते हैं। हो सकता है कि श्री जिष्णु देव जी का द्वैपायन व्यास जी से गुरु भाई का नाता हो, अथवा युग या मन्वन्तर भेद से इन दोनों का गुरु शिष्य का नाता हो। गुरु जी की आज्ञा प्राप्त कर श्री गौड़पादाचार्य जी जिष्णु देव जी के पास पहुंचे, उनसे तत्त्व ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु जगत में वे शुक-शिष्य के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। श्री शुकदेव जी ने यह भी आशीर्वाद दिया कि जिष्णु देव से उपदेश प्राप्त कर आपको सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा।

गुरु आज्ञा प्राप्त करके शुकदत्त अपने माता-पिता के पास आये। उनसे सब बातें कहीं। माता-पिता ने इन्हें हठपूर्वक रोका, किन्तु आप नहीं माने। पुत्र का हठ देखकर माता-पिता साथ लग गये। वे त्रिकालज्ञ थे। माता-पिता से कहा—आपके दूसरा पुत्र होगा, यह कहकर घर लौटा दिया। वह पांच वर्ष का बालक पैदल चलकर गौड देश पहुंचा। गुरू जी की गुफा में जाकर गुरू दर्शन किया। जिष्णु देव जी के पूछने पर इन्होंने सभी बातें बता दीं। शुकदेव जी की आज्ञा सुनकर इन्होंने परम ज्ञान का उपदेश दिया। समस्त योग की सिद्धियों तथा मंत्रों का रहस्य बताया। जिष्णुदेव जी वेद-वेदान्त आदि अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् थे। शुकदत्त जी शुकदेव जी के आश्रम में सपाद चलकर गौड़ देश में पहुंचे थे। इसलिये इनका नाम 'गौडपाद' हुआ। कुछ विद्वान् श्री सुरेश्वराचार्य जी महाराज की "नैष्कर्म्य सिद्धि" के एक श्लोक के आधार पर मनः कल्पित अर्थ करके इन्हें गौड़ देशीय सिद्ध करते हैं, पर वह निराधार है।

इन्हें शुकदेव जी की कृपा से सर्वत्र उनका दर्शन होता था। इनके स्मरण करते ही वे प्रकट हो जाते थे।

इन्होंने कलियुगी जीवों की मन्दबुद्धि तथा अल्पायु देखकर विचार किया कि सभी लोग समस्त उपनिषदों का श्रवण आदि पूर्ण रूप से नहीं कर सकते, तब इन्होंने "मुक्तिकोपनिषद्" के अनुसार एक मात्र "माण्डूक्योपनिषद्" के अध्ययन से कल्याण हो सकता है, यह विचार कर इन्होंने इसकी व्याख्या के उद्देश्य से चार प्रकरणों में कारिकायें लिखीं।

एक बार भगवान् शंकराचार्य गंगा तट पर आत्म-चिन्तन में बैठे थे। उस समय परम गुरु देव जी ने दर्शन दिया। उन्होंने तत्काल उठकर उनको प्रणाम कर, पूजन और स्तुति की। फिर उनकी आज्ञा प्राप्त कर प्रस्थानत्रयी का भाष्य लिखा। इन्होंने भली प्रकार से देखने के अनन्तर प्रसन्न होकर आचार्य शंकर से वर मांगने को कहा। भाष्यकार ने आत्म-चिन्तन के अतिरिक्त कुछ नहीं मांगा। तब वे वरदान देकर प्रसन्न चित्त से चले गये।

इनका काल के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वान् इन्हें विक्रम सम्बत् सौ या दो सौ वर्ष पूर्व या बाद में मानते हैं। परन्तु जब शंकराचार्य का जन्म ही महाराज सुधन्वा के ताम्र शासनानुसार तथा द्वारका शारदा मठ की परम्परानुसार चार सौ चौदह वर्ष विक्रम से पूर्व सिद्ध होता है श्री शंकर के गुरु गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी संन्यास की दीक्षा के लिये इनकी गुफा में अन्य शिष्यों सहित १५०० वर्ष समाधि खुलने की प्रतीक्षा में रहे। अतः इनका काल शंकर जन्म से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व का सिद्ध होता है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महर्षि पतञ्जलिः, पाणिनि जी तथा कात्यायन जी
(२९३-२९४-२९५)

स्तुवे पतञ्जलिं व्यासं शंकरं च मुनित्रयम्।
कर्तृ सूत्रस्य भाष्यस्य क्रमाद्विवरणस्य च ॥१॥
कायवाग्बुद्धि विषया ये मलाः समवस्थिताः।
चिकित्सा लक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्धयः ॥२॥

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥३ ॥

श्री पतञ्जलि, व्यास तथा शंकराचार्य की स्तुति करता हूं। जो क्रमशः योग दर्शन सूत्र, भाष्य तथा विवरण ग्रन्थ के कर्ता हैं ॥१ ॥ जिन्होंने शरीर, वाणी तथा बुद्धि से सम्बन्धित मलों को दूर करने के लिये क्रमशः चिकित्सा, व्याकरण का महाभाष्य तथा योग दर्शन शास्त्रों की रचना की है। (ऐसे पतञ्जलि को प्रणाम है) ॥२ ॥ जिन्होंने योग द्वारा चित्त के दोषों को, व्याकरण द्वारा वाणी के दोषों को, वैद्यक से शरीर के दोषों को दूर किया है। ऐसे मुनियों में श्रेष्ठ पतञ्जलि जी को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं ॥३ ॥

चिदम्बरम् में भगवान् श्री शंकर ने ताण्डव नृत्य करने से पूर्व संसार के जीवों का कल्याण करने के लिए चौदह बार डमरु बजाया। किसी ग्रन्थ में प्रयाग राज में कहा गया है। उससे व्याकरण के "अइउण्" इत्यादि १४ सूत्र निकले। इन्हीं के आधार पर पाणिनि जी ने अष्टाध्यायी की रचना की। 'पतञ्जलि चरितम्' नामक ग्रन्थ में पाणिनि के सम्बन्ध में कथा आई है कि 'पणि' नाम के एक मुनि थे उनके पुत्र का नाम पाणिनि हुआ। कालान्तर में स्वामिकार्तिक ही पाणिनि के रूप में अवतरित हुये। इन्होंने शंकर जी को प्रसन्न करने के लिये कठोर तप किया। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने १४ बार डमरु बजाया। जिससे व्याकरण के १४ सूत्र प्राप्त हुये। यह १४ सूत्र स्वर्ग प्राप्ति के लिये सोपानभूत हैं। कात्यायन ऋषि ने भी शंकर की कठोर तपस्या करके उन्हें प्रसन्न करके, सूत्रों का अर्थ ज्ञान कराने वाले वार्तिक की रचना की। तब भगवान् शंकर की आज्ञा प्राप्त कर इन्होंने चिदम्बरं क्षेत्र में भगवान् शंकर का ताण्डव नृत्य देखा। इधर शंकर की आज्ञा प्राप्त करके भगवान् शेष ने पतञ्जलि के रूप में अवतरित होने की इच्छा की। वहीं पर एक मुनि की कन्या गोणिका नाम वाली पुत्र प्राप्ति के लिये दारुण तपस्या करती थी। वह नेत्र बन्द करके भगवान् सूर्य को अर्घ्य दे रही थी तथा प्रार्थना की कि हे सूर्य ! मुझे पुत्र प्राप्त हो। तब उसकी अञ्जलि में शेष जी छोटे से सांप के रूप में आ गये। जब उसने जल छोड़ा तब तपस्वी ऋषि के रूप में प्रकट हो गये। वह प्रसन्न होकर बोली, "मेरे पुण्य के परिपाक से अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त हुआ।" उसने प्रसन्न होकर बालक का मस्तक सूंघा। उस बालक ने माता को प्रणाम किया। उन्होंने कहा—अञ्जलि के जल में गिरने से तुम प्राप्त हुये हो, अतः तुम्हारा नाम पतञ्जलि है। वह

बालक माता को प्रणाम करके तपस्या करने के लिये चला गया। उसने कैलाश पर्वत पर जाकर शंकर जी को प्रसन्न करने के लिये तप किया। भगवान् शंकर जी ने नन्दी पर सवार होकर दर्शन दिया। ऋषि ने स्तुति करके सन्तुष्ट किया।

शंकर जी ने कहा—"हे शेष ! तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर मैं आया हूं। तुम शीघ्र मुझ से वर मांगो।" ऋषि ने अष्टाध्यायी के सूत्र तथा वार्तिक पर भाष्य करने की कुशलता प्राप्त करने का वर मांगा। शंकर जी ने तथास्तु कहकर कहा—"हे वत्स ! तुम इसी वन के मार्ग से चिदम्बरम् नगर जाओ। वहां पर मेरा ताण्डव नृत्य देखो। ऐसा कह कर अन्तर्ध्यान हो गये।" शंकर जी की यह आज्ञा सुनकर उनका ताण्डव नृत्य देखने की इच्छा से चिदम्बरम गये। इधर देवराज इन्द्र ने विश्वकर्मा को भेजकर शंकर जी के ताण्डव नृत्य के लिये स्वर्णमयी सभा तथा शिव मन्दिर का निर्माण किया।

यह चिदम्बरम तीर्थ मद्रास एगमोर स्टेशन से छोटी लाइन जो रामेश्वरम् के लिये गई है उसी पर चिदम्बरम् स्टेशन है। शंकर जी भी वहीं पर पहुंचे। वहीं पर इनके भक्त व्याघ्रपाद तथा पतंजलि जी ने शंकर जी की स्तुति की। ताण्डव नृत्य देखने के लिये इनको दिव्य दृष्टि दी। इनके अतिरिक्त ऋषि भी थे। नृत्य करते हुये शंकर जी ने बीच में पर्दा डाल दिया था। भगवान् शंकर ने नृत्य के अनन्तर आज्ञा दी। हे नागपते ! तुम सूत्र तथा वार्तिक पर भाष्य की रचना करो। ऐसा कह कर शंकर जी पार्वती जी के सहित अन्तर्ध्यान हो गये।

इसके अनन्तर इन्होंने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य की रचना की। इनसे महाभाष्य का अध्ययन करने के लिये हजारों पण्डित आते थे। वह पढ़ाते समय एक पर्दा डाल देते थे। बाहर बैठे शिष्य पढ़ते तथा लिखते जाते थे। वे शेष के रूप में ही पढ़ाते थे। सभी शिष्यों को आज्ञा दी कि कोई भी पर्दा उठाकर न देखे। शिष्य प्रतिदिन गुरु चरणों में बैठकर शान्ति पाठ के अनन्तर अध्ययन करते थे। इन शिष्यों में से किसी एक शिष्य की पर्दा उठाकर देखने की इच्छा हुई। ऋषि भाष्य लिखाते हुये प्रत्येक शब्द या वाक्य को विभिन्न मुखों से उच्चारण करते थे। इन्होंने कह रखा था जो पर्दा उठायेगा उसका अनर्थ हो जाएगा। एक छात्र ने पर्दा उठा कर देखा। गुरु कुपित हुए। भयभीत होकर अपना मस्तक गुरु चरणों पर रख दिया। रोते हुये कहा मुझे क्षमा करें। क्रोध में आकर गुरु जी ने शाप दिया। तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। जा राक्षस हो जा। वे चरणों पर गिरकर स्तुति करके उन को प्रसन्न करने

लगे। तब ऋषि ने कहा—खेद मत करो, जगत में कर्म की गति विचित्र है। शाप निवृत्ति का उपाय बताते हुये कहा—**निष्ठायां किं रूपं पचेरिति त्वं बुधान् पृच्छ पक्वमिति वदति यस्तं मम कृतिमध्याप्य मुच्यसे शापात्॥** पच धातु का निष्ठा अर्थ में क्या रूप होता है। यह तुम विद्वानों से पूछना। जो इसका पक्वम् रूप बता दे। उसे पढ़ाकर तुम शाप से छूट जाओगे। मेरी कृपा से तुम पूर्ण महाभाष्य कण्ठस्थ कर सकोगे। यथेष्ठ विचरण करो। वहां से पतंजलि गोनर्ददेश आकर माता गोणिका को प्रणाम करके उनके स्वर्ग जाने तक माता की सेवा करते हुये वहीं रहे।

इधर वह शिष्य भी राक्षस होकर वट वृक्ष पर रहने लगा। निष्ठा अर्थ में पच्धातु का रूप पूछने पर जो पचितम् कहता था उसे खा जाता था। ऐसे ही बहुत वर्ष बीत गये। एक विद्वान् से पूछने पर उसने पक्वम् रूप कहा। इस बात को सुनते ही वह राक्षस कानों को मधुर लगने वाला शब्द सुनकर वट वृक्ष से उतर कर, यह शाप मुक्ति का समय आ गया है। प्रसन्न होकर ब्राह्मण से पूछा—आप कौन है? कहां रहते हैं? यहां आने का क्या कारण है? तुम्हारे मन में क्या है? यदि आप चाहे तो पतञ्जलि का महाभाष्य मैं तुमको पढ़ा दूं।

उनकी बात सुनकर चन्द्र शर्मा ने कहा—मेरा नाम चन्द्र शर्मा है। उज्जैन में रहता हूं। शिव जी की आज्ञा प्राप्त कर आप के पास महाभाष्य पढ़ने आया हूं। पतञ्जलि ही चन्द्र शर्मा के रूप में अवतरित हुये थे। सुनकर राक्षस ने कहा कि दो माह तक मेरे पास रहकर महाभाष्य पढ़ो। तब प्रतिदिन चन्द्र शर्मा व्याकरण पढ़ने लगे। वट पत्र पर नाखून की नोंक से महाभाष्य लिखा। पूरा होते ही राक्षस दिव्य रूप को प्राप्त हुआ। शापित पतञ्जलि जी के शिष्य वहां से हिमालय पर्वत पर पहुंचे। वहां पर शुकदेव जी के पास पहुंचे, प्रणाम किया तथा सेवा करते हुये, अध्ययन करने लगे। उनसे (शुकदेव जी से) संन्यास लेकर, गौड़देश में जन्म होने के कारण गौडपादाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुये।

जिस समय भाष्य लिखाया जा रहा था, उसी समय एक बछड़ा आ गया। वह महाभाष्य के बहुत से पत्ते चबा गया। तब बहुत से शिष्यों ने उसके मुंह से बहुत से कटे-पिटे वट पत्र निकाले। किन्तु प्रसिद्ध कथानुसार बकरी के खाने का उल्लेख मिलता है। इसलिए महाभाष्य के बहुत से पदों की संगति नहीं लगती है। वहां पर अजाभक्षितम् पाठ मिलता है।

मुनित्रय का काल निर्णय

अन्यत्र इन तीनों मुनियों का जन्म २७वें कलियुग में होना निश्चित माना जाता है। किन्तु आधुनिक विद्वान् इनके काल को बहुत बाद का मानते हैं, परन्तु तथ्य यह नहीं है। पतञ्जलि जी के महाभाष्य से सिद्ध होता है कि भगवान् शंकराचार्य से बहुत पहले हुये हैं इतना ही नहीं बल्कि पतंजलि योग दर्शन के सूत्रों पर व्यास जी का भाष्य है तथा इनके भाष्य पर आद्य भगवान् शंकराचार्य का विवरण ग्रन्थ मिलता है। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से इनका काल व्यास जी से पहले का सिद्ध होता है। इसी सम्बन्ध में मद्रास सरकार के मद्रास से प्रकाशित होने वाले "पातंजलि योग सूत्र भाष्य विवरणम्" ग्रन्थ की प्रस्तावना में विस्तार से सिद्ध किया गया है, वहीं पर देखें।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गोविन्द भगवत्पाद

इन्होंने बचपन से ही आचार्य गौडपाद की शरण ली थी और इनकी कृपा से सिद्धि लाभ कर लिया था। ये नर्मदा तट पर एकान्त में ही रहते थे। ये आत्म-चिन्तन में ही सदा संलग्न रहते थे, जान पड़ता है कि इसी से इन्होंने किसी ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया।

जिस समय शंकराचार्य इनके पास संन्यास ग्रहण करने के लिये गये, उस समय ये एक गम्भीर गुहा के अन्दर बैठे थे। शंकर के बहुत अनुनय-विनय करने पर इन्होंने उनसे पूछा—तुम कौन हो? शंकर ने 'चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं' आदि उत्तर दिया। इस पर प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें सम्प्रदायागत उपदेश दिया।

इनका सम्बन्ध व्यास आदि से था। यह बात इस प्रकार प्रकट होती है कि जब इनके समाधिस्थ होने पर नर्मदा में भयंकर बाढ़ आयी तब गुरु की समाधि न टूटे, इसलिए शंकर ने उसका जल कमण्डल में भर लिया। धीरे-धीरे गोविन्द भगवत्पाद को इस बात का पता चल गया। उन्होंने शंकर से कहा कि एक बार वेद व्यास उपनिषदों का व्याख्यान कर रहे थे तब मैंने पूछा कि 'महर्षे ! आपने ब्रह्म सूत्रों का भी भाष्य क्यों नहीं बना दिया?' इसके उत्तर में व्यास देव ने कहा कि 'भाष्य बनाने का काम तुम्हारे उस शिष्य पर है जो नर्मदा का सारा जल

अपने कमण्डल में भर लेगा। भैया ! तुम साधारण पुरुष नहीं हो, अब काशी जाकर भाष्य का निर्माण करो' शंकर चले गये।

इनके समय का भी ठीक पता नहीं। गौडपाद और शंकर के बीच का समय ही ऐतिहासिक दृष्टि से इनका उचित समय जान पड़ता है।

मैं यही एक बात बड़ी नम्रता से निवेदन करना चाहता हूं वह यही है कि इन सिद्ध संतों का ऐतिहासिक दृष्टि से समय निर्णय करना ठीक नहीं जंचता। कारण, इन्होंने काल पर विजय प्राप्त की है, इनका शरीर भी चिन्मय हो गया है, ये काल के माप के अन्दर नहीं आ सकते। व्यास उधर धृतराष्ट्र और पाण्डु के पिता के रूप में हैं तो इधर मण्डन मिश्र के घर भी पधारते हैं। शुकदेव व्यास के पुत्र के रूप में भी हैं और चरण दास को ज्ञानोपदेश भी करते हैं। गौडपाद शुकदेव और शंकर दोनों से ही मिलते हैं। इनकी आयु का भी हम लोगों की भांति ही सौ-पचास वर्ष का अनुमान लगा लिया जाय तो यह संत शरीर की अनभिज्ञता ही होगी। अतः सनकादि से लेकर गोविन्द पाद तक के सिद्ध सन्तों सद्गुरुओं का समय इतिहास के ऊपर मानना ही न्याय संगत होगा। कल्याण सन्त अंक के अनुसार इनका नाम गौडपाद पड़ा। किसी-किसी सज्जन ने इनके 'गौडपाद' नाम और 'नैष्कर्म्य सिद्धि" के एक श्लोक का मनः कल्पित अर्थ करके इन्हें गौडीय सिद्ध किया है, परन्तु वह ठीक नहीं है।

इन्हें शुकदेव की कृपा से सर्वत्र उनके दर्शन हुआ करते थे स्मरण करते ही वे इनके सामने आ जाते। लोगों की मन्द प्रज्ञा और अल्पायु आदि देखकर इन्होंने विचार किया कि अब सब लोग उपनिषदों का चिन्तन मननादि पूर्णतः नहीं कर सकते और मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार एकमात्र माण्डूक्य के अध्ययन से कल्याण हो सकता है, अतः माण्डूक्य उपनिषद पर कारिका की रचना की। यह माण्डूक्य कारिका वेदांत का अप्रतिम ग्रन्थ है। इस पर शंकराचार्य ने विशद भाष्य किया है।

कहते हैं कि एक दिन जब शंकराचार्य गंगा तट पर आत्मचिंतन में लगे थे तब गौडपाद जी उनके पास पधारे। शंकर ने ससम्भ्रम उठकर उनकी अभ्यर्थना की। तत्पश्चात् गौडपाद की आज्ञा से उन्होंने इन्हें अपना भाष्य दिखलाया। देखकर उनके परमगुरू ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, उन्होंने शंकराचार्य से वर मांगने का आग्रह किया, परन्तु आचार्य ने आत्मचिन्तन के अतिरिक्त और कुछ मांगने से अस्वीकार कर दिया। इस पर उनकी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी। वे इन्हें आशीर्वाद देकर यथेच्छ चले गये।

गौडपाद के और भी कई ग्रन्थ देखे जाते हैं—जैसे सांख्यकारिका का भाष्य और उत्तरगीता का भाष्य। परन्तु कई विद्वान् इन ग्रन्थों को उनका नहीं स्वीकार करते। इनके समय के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। कोई इन्हें विक्रम संबत से १००—२०० वर्ष पूर्व मानते हैं, और कोई बाद। परन्तु अब तक शंकराचार्य के समय पर ही मतैक्य न होने के कारण इनके समय का ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता।

॥ इति श्री गुरूवंश पुराणे, कलि ख. प्रथम. प. चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

शंकर विजय मकरन्द द्वितीय तृतीय आस्वाद तथा पातंजलि चरितं पातंजलि विजय से ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

विद्यार्णवतंत्रानुसार गुरू परम्परा

अद्वैत वेदान्त की परम्परानुसार ॐ नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं इत्यादि श्लोक जो कि व्यास जी के बाद शुकदेव जी उनके बाद कलियुग में हुये श्री गौडपादाचार्य जी गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी तथा भगवत्पाद शंकराचार्य तथा उनके शिष्यों तक है। यह ब्रह्मविद्या आचार्यों की परम्परा है। विद्यार्णव तन्त्र में श्रीविद्या की परम्परा का क्रम इससे भिन्न है। इस तन्त्र में सम्पूर्ण तन्त्रों का सिद्धान्त आ गया है। इसमें भगवत्पाद श्री शंकर की गुरु परम्परा का उल्लेख है। किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ। श्री विद्या के सम्बन्ध में श्री शंकराचार्य जी ने 'सौन्दर्य लहरी', 'प्रपञ्च सार' आदि ग्रन्थों में 'त्रिपुरा रहस्य' के आधार पर इस विद्या का वर्णन किया है। 'ललिता त्रिशती' का भाष्य भी इसी कोटि का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अनुसार शंकराचार्य जी, भगवान् गौडपादाचार्य जी के प्रशिष्य नहीं थे, परन्तु गौडपाद से लेकर शंकराचार्य तक सात गुरुओं के नाम आये हैं।

महागौडपाद, पावक, पराचार्य, सत्यनिधि, रामचन्द्र, गौडपाद, गोविन्द भगवत्पादाचार्य तथा शंकराचार्य। इससे सिद्ध होता है कि श्री शंकराचार्य जी के गोविन्दभगवत्पादाचार्य गुरू थे। किन्तु गौडपादाचार्य परम गुरू नहीं थे। परन्तु अद्वैत वेदांत की परम्परा में भी गौडपादाचार्य जी शुकदेव जी के साक्षात् शिष्य कहे जाते हैं। परन्तु विद्यार्णव में शुकदेव तथा गौडपादाचार्य के बीच में कई गुरुओं का व्यवधान है। कुछ विद्वान् कल्पना करते हैं कि शुकदेव के बाद अद्वैत वेदान्त की धारा लुप्त हो गयी थी। बाद में गौडपादाचार्य जी ने अलौकिक उपाय से

शुकदेव जी का दर्शन करके उनसे ज्ञान तथा संन्यास लिया । परन्तु ऐतिहासिक लोग इसको प्रमाण नहीं मानते ।

इस ग्रन्थ में गौड पादाचार्य जी के पूर्ववर्ती गुरुओं के नाम दिये हैं । जिससे दोनों के बीच में कई पुरुषों का व्यवधान दीखता है । यह गुरु परम्परा आदि विद्वान् कपिल देव जी से आरम्भ होती है । १. कपिल, २. अत्रि, ३. वशिष्ट, ४. सनक, ५. सनन्दन, ६. भृगु, ७. सनत्सुजात, ८. वामदेव, ९. नारद, १०. गौतम, ११. शौनक, १२. शक्ति, १३. मार्कण्डेय, १४. कौशिक, १५. पराशर, १६. शुक, १७. अंगिरा, १८ कण्व, १९. जाबालि, २०. भरद्वाज, २१. वेदव्यास, २२. ईशान, २३. रमण, २४. कपर्दी, २५ भूधर, २६. सुभट, २७. जलज, २८ भूतेश, २९. परम, ३०. विजय, ३१. मरण, ३२. पद्मेश, ३३. सुभग, ३४. विशुद्ध, ३५. कैवल्य, ३६. गणेश्वर, ३७. सपाथ, ३८. विबुध, ३९. योग, ४०. विज्ञान, ४१. अनंग, ४२. विभ्रम, ४३. दामोदर, ४४. चिदाभास, ४५. चिन्मय, ४६. कलाधर, ४७. विश्वेश्वर, ४८. मन्दार, ४९. त्रिदश, ५०. सागर, ५१. मृड, ५२. हर्ष, ५३. सिंह, ५४. महागौड, ५५. वीर, ५६. अघोर, ५७. ध्रुव, ५८. दिवाकर, ५९. चक्रधर, ६०. प्रथमेश, ६१. चतुर्भुज, ६२. आनन्द भैरव, ६३. धीर, ६४. गौडपादाचार्य, ६५. गोविन्दभगवत्पादाचार्य, ६६. श्री शंकराचार्य—**गौडादि शंकरान्ताश्च सप्त संख्या समीरिताः। एकसप्तति संख्याश्च गुरवः शिव रूपिणः ॥ तच्छिष्याणां क्रमं ज्ञात्वा सगुरुत्व विधानतः । स्मारणात् सिद्धि माप्नोति साधक स्तु न संशयः । (श्री विद्यार्णवतन्त्र प्रथम श्वास श्लोक स. ११९—१२०)**

गौडपादाचार्य जी से लेकर शंकराचार्य तक सात गुरु कहे गये हैं । इस प्रकार यह शिव स्वरूप ७१ गुरु हैं । इनके शिष्यों का क्रम गुरुओं के कहे विधान से स्मरण करने से साधक सिद्धि को प्राप्त करता है । इसमें सन्देह नहीं है । १. गौडपादाचार्य, २. पावक, ३. पराचार्य, ४. सत्यनिधि, ५. रामचन्द्र, ६. गोविन्द, ८. भगवत्पाद, ९. शंकराचार्य ॥ इस प्रकार कपिल भगवान् से लेकर भगवान् शंकराचार्य तक ७१ गुरु हुये । शुकदेव जी से लेकर गौडपादाचार्य तक ४९ आचार्यों का नाम आता है । (वेदांत-अंक तथा श्री शंकराचार्य नामक ग्रन्थों में कुछ अन्तर है)

श्री शंकराचार्य जी की शिष्य परम्परा

श्री शंकराचार्य जी के जीवन चरित्र में अनेकों दिग्विजयों के आधार पर शिष्यों के नाम आगे लिखे जाएंगे । यहां पर 'विद्यार्णव तन्त्र' के अनुसार शिष्यों का उल्लेख किया है । इस

ग्रन्थ में आचार्य के १४ शिष्य कहे गये हैं। यह सबके सब भगवती के उपासक निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ अलौकिक शक्ति सम्पन्न थे। इनमें से पांच संन्यासी तथा नौ गृहस्थ थे। संन्यासी शिष्यों में एक का नाम शंकर था। शेष चार के नाम १. पद्मपाद, २. बोध, ३. गीर्वाण, तथा ४. आनन्दतीर्थ थे। गृहस्थ शिष्यों में १. सुन्दर, २. विष्णु शर्मा, ३. लक्ष्मण, ४. मल्लिकार्जुन, ५. त्रिविक्रम, ६. श्रीधर, ७. कपर्दी, ८. केशव तथा ९. दामोदर थे।

पद्मपादाचार्य जी के शिष्यों के नाम

इनके नाम १. माण्डल, २. पर पावक, ३. निर्वाण, ४. गीर्वाण, ५. चिदानन्द, ६. शिवोत्तम यह सब संन्यासी थे।

बोधाचार्य के शिष्य—इनके बहुत शिष्य थे। सभी देशों में इनके संन्यासी तथा गृहस्थ शिष्य थे।

गीर्वाणेन्द्र के मुख्य शिष्य का नाम विद्युत गीर्वाण था। उनके सुधीन्द्र तथा सुधीर दो शिष्य थे। सुधीर के मन्त्र गीर्वाण। मंत्र गीर्वाण के रहस्य तथा संन्यासी दोनों प्रकार के शिष्य थे।

आनन्द तीर्थ के शिष्य—"मध्व तन्त्र मुख मर्दनम्" नामक ग्रन्थ में अप्पय दीक्षित जी ने इनको पद्म पादाचार्य का शिष्य कहा है। इनका ही दूसरा नाम मध्वाचार्य था। वैष्णव लोग इनको पवन देव या भीमसेन का अवतार मानते हैं। कहीं-कहीं इनको अग्नि देव का अवतार भी कहा है। इनका दूसरा नाम पूर्ण प्रज्ञ भी था। यह द्वैतवादी थे। गीता पर इनका लेश भाष्य है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में श्रीमदानन्द तीर्थ के नाम से उल्लेख हुआ है। इन्होंने शंकराचार्य रामानुजाचार्य श्री वल्लभाचार्य तथा श्री निम्बार्काचार्य के गीताओं के भाष्य से जो अंश छूट गया है। उसको लेकर भाष्य करने के कारण इसका नाम "लेश भाष्य" रखा है। इसमें व्याकरण सम्बन्धी शंकाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इनके "गीतालेश भाष्य" पर जय तीर्थ जी की टीका, इस टीका पर श्री निवास तीर्थ जी की टीका तथा दूसरी पर कृष्णाचार्य जी की टीका तीनों टीकायें भाष्य सहित वैंकटश्वर प्रेस से खुले पत्रा में छपी थीं।

आनन्द तीर्थ जी के सभी गृहस्थ शिष्य थे। उनमें प्रधान सुन्दराचार्य हुये। सुन्दराचार्य जी के तीन प्रकार के शिष्य थे। एक पीठाधीश्वर दूसरे संन्यासी तीसरे गृहस्थ। इनके शिष्य विष्णु शर्मा तथा इनके शिष्य प्रगल्भाचार्य थे। इन्होंने 'विद्यार्णव तन्त्र' नाम का ग्रन्थ लिखा

है। इन्होंने महामाई की आराधना की। मां ने प्रकट होकर वर के लिये कहा। इन्होंने वर मांगा। हे माता जी ! यदि कोई साधक गुरु परम्परा तथा मंत्र को मेरे ग्रन्थ को देखकर मुझे गुरु मानकर भक्तिपूर्वक जप करे तो बिना दीक्षा के भी उसे सिद्धि प्राप्त हो। देवी 'तथास्तु' कहकर वर देकर चली गयीं।

लक्ष्मणाचार्य की तपस्या तथा विद्या असाधारण थी। चौथी अवस्था में वे विरक्त होकर तीर्थ यात्रा के लिये निकले। घूमते हुये प्रौढ देव राजा की राजधानी में पहुंचे। राजा ने उनके लिये रहने का स्थान, अन्न व वस्त्र तथा सेवकों का प्रबन्ध किया। एक दिन राज सभा में बैठे हुये लक्ष्मण की उपस्थिति में द्वीपान्तरवासी वणिक् ने बहु मूल्य वस्तुयें राजा को भेंट कीं। राजा ने इन वस्तुओं को आचार्य लक्ष्मण को दिया। आचार्य लेकर अपने स्थान पर चले गये। उन्होंने कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करके वस्त्रों की आहुति दे दी। राजा को जब पता चला। उसने वस्त्र वापस करने या मूल्य देने के लिये कहा—आचार्य ने कुपित होकर निर्वंश होने का शाप दिया। इसके बाद आचार्य ने इष्ट से प्रार्थना करके वस्त्र लौटा दिये। तदनन्तर आचार्य राजा के नगर को छोड़कर दक्षिण में चले गये। गुरु की अलौकिक शक्ति की बात सुनकर राजा चिन्तित हुये। उनके पास जाकर क्रोध शान्ति की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना से वे शान्त हो गये, तथा कहा—तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा, पर सुख नहीं मिलेगा। कालान्तर में राजा के पुत्र हुआ। उसी समय राजा का देहान्त हो गया। उसी समय उस ग्रन्थ के रचयिता प्रजा के अनुरोध से राज कुमार के प्रतिनिधि के रूप में राज कार्य संचालन करने लगे। उन्होंने श्री चक्र के आकार का नगर बसाया। उसका नाम "श्री विद्या नगर" रखा। जब राजकुमार युवक हुआ। तो उसे राज्य गद्दी दी। उसका नाम अम्बदेव था। अम्बदेव के आदेश से विद्वन्मण्डली के प्रार्थना करने पर भगवती की आज्ञा लेकर प्राचीन आगम ग्रन्थ "तन्त्र-राज, मातृकार्णव, त्रिपुरार्णव, योगिनी हृदय तथा यामल" आदि ग्रन्थों का पठन पाठन अधिक हुआ। इन ग्रन्थों के आधार पर तथा तन्त्र के कादिमत, हादिमत दोनों के सूक्ष्म रहस्यों का अनुसरण करते हुये, लक्ष्मणाचार्य जी ने, "श्री-विद्यार्णव ग्रन्थ का निर्माण किया।

मल्लिकार्जुन के शिष्य, विन्ध्य प्रदेश, त्रिविक्रम के शिष्य जगन्नाथ क्षेत्र में, श्रीधर के शिष्य, गौड मिथिला तथा बंग प्रदेश में, कपर्दी के शिष्य काशी, अयोध्या आदि स्थानों में रहते थे। केशव तथा दामोदर के विषय में इस ग्रन्थ में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। ऊपर लिखे हुये

कपिल से लेकर रामचन्द्र पर्यन्त गुरुओं की परम्परा में कुछ गुरुओं के चरित्रों तथा नामों का उल्लेख पीछे हो चुका है। कुछ का नाम तथा चरित्र यथा प्राप्त लिख रहे हैं। **(सन्त कल्याण अंक से)**

वामदेव—वामदेव नाम के कई ऋषि आते हैं। शंकर जी के पांच मुखों में से एक मुख का नाम वामदेव है। वशिष्ठ के सौ पुत्रों में वामदेव नाम के एक पुत्र थे। जब महाराज दशरथ से श्रवण कुमार की हत्या हो गयी। दशरथ को शाप देकर माता-पिता भी शरीर छोड़ गये। तीनों की अन्त्येष्टि के अनन्तर महाराज सीधे गुरु जी के आश्रम में पहुंचे। संयोग से गुरु जी वहां नहीं थे। वामदेव ऋषि वहां थे। इनको प्रणाम कर राजा ने तीनों की हत्या का प्रायश्चित्त पूछा। इन्होंने दो बार राम कहलवा दिया। महाराज हत्या से छूट गये। लौट कर गुरु जी जब आश्रम में आये। तो वामदेव जी ने सब बातें बतायीं। कुपित होकर पिता ने पुत्र को शाप दिया। हे पुत्र ! जब एक बार का राम नाम जीव के अनन्त जन्मों के पापों को भस्म कर देता है। तो तुमने दो बार राम नाम क्यों कहलवाया। इससे सिद्ध होता है कि तुमने राम नाम का दुरुपयोग किया है। अथवा एक बार के राम नाम में अनन्त जन्मों के पापों के नाश करने की शक्ति है। इस पर तुम्हें पूर्ण विश्वास नहीं था। इसलिये दो बार राम नाम कहलवाया। अतः मैं शाप देता हूं कि तुम निषाद हो जाओ। उन्होंने प्रार्थना की, इससे उद्धार कब होगा। तब गुरु जी ने कहा, दशरथ के पुत्र के रूप में राम अवतरित होंगे। उनको गंगा पार करने के बाद जब मैं भरत जी के साथ जाऊंगा। तब तुम मेरा दूर से चरण स्पर्श करोगे। जब मैं तुम को उठाकर हृदय से लगाऊंगा। तब तुम इस शाप से मुक्त हो जाओगे। ऐसा ही हुआ।

दूसरे वामदेव ऋषि जनक के कुलगुरुओं की परम्परा में थे।

तीसरे वामदेव की कथा वेदों-उपनिषदों में आती है। वह गर्भज्ञानी थे। जन्म लेते ही माता-पिता को प्रणाम करके शुकदेव जी के समान संन्यासी हो गये थे। यह जाति स्मर जीव थे। इन्हें पिछले जन्मों की स्मृति थी। वे कहते हैं, पहले मैं सूर्य था, फिर मनु हुआ, बाद में कक्षीवान् नाम का ऋषि हुआ। अब वामदेव के रूप में अवतरित हुआ हूं।

आत्म पुराण के प्रथम अध्याय में स्वामी शंकरानन्द जी महाराज ने सृष्टि के आरम्भ में अपने मानस पुत्रों निवृत्ति परायण सनकादिकों के प्रति तथा प्रवृत्ति परायण वशिष्ट अत्रि आदि के प्रति विवेक सहित वैराग्य की प्राप्ति के लिये पितामाता के गर्भवास से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनेक प्रकार के दुःखों का वर्णन किया है। भाव यह है कि जीव एक वर्ष तक पिता के गर्भ में

वास करता है। श्री स्वामी जी ने लगभग २५० श्लोकों में पिता के गर्भ में वास करने का विशद वर्णन किया है। इन ब्रह्मा जी के पुत्रों में से सनकादिकों ने श्रवण के बाद मनन निदिध्यासन करके जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त किया। परन्तु इन्हीं ऋषियों में वामदेव भी उपदेश सुन रहे थे। वे श्रवण तक ही सीमित रहे। मनन निदिध्यासन नहीं किया। अतः इनको एक जन्म और लेना पड़ा। इन तीन वामदेवों से भिन्न शांकर परम्परा के वामदेव जी थे।

कण्व—इनके नाम से "बृहदारण्यक उपनिषद्" प्रसिद्ध है। उसे इन्हीं के नाम पर काण्वीय शाखा कहते हैं। यह तपस्वी, त्यागी, वीतराग महात्मा थे। मालिनी नदी के तट पर इनका आश्रम था। विश्वामित्र द्वारा मेनका के गर्भ से उत्पन्न शकुन्तला का पालन-पोषण इन्होंने ही अपने आश्रम पर किया था। इन्हीं के द्वारा शकुन्तला का दुष्यन्त के साथ गान्धर्व विवाह हुआ था, और इनके पुत्र भरत का जन्म भी इन्हीं के पास हुआ।

जावालि—यह शिव भक्त थे इनकी "जाबालोपनिषद" प्रसिद्ध है। यह उच्चकोटि के ब्रह्म वेत्ता थे।

ईशान, रमण, कपर्दी, भूधर, सुमित, जलज, भूतेश, परम, विजय, भरत—संस्कृत वाङ्मय में अनेकों भरतों की कथा आती है। इनमें एक भगवान् ऋषभदेव के प्रथम पुत्र भरत जिन्होंने पुलह आश्रम में गण्डकी के तट पर वानप्रस्थी होकर तपस्या की थी, किन्तु एक हिरण के बच्चे में आसक्त होने के कारण इनको मृग का जन्म मिला। पूर्व जन्म की तपस्या के प्रभाव से यह जाति स्मर हुये। अतः एकान्त में वास करते थे। मृगोचित चंचलता इनमें नहीं थी। एक वर्ष में उस शरीर को छोड़कर अंगिरा गोत्रीय ब्राह्मण की छोटी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुये। हमारे देश का नाम पहले अजनाभ वर्ष था। किन्तु भरत जी के नाम से भारतवर्ष हुआ। किन्तु शतपथ ब्राह्मण तथा रामायण मीमांसा से कल्प भेद से शकुन्तला पुत्र भरत के नाम से भी भारतवर्ष नाम सिद्ध होता है। तीसरे जन्म में भरत जी निश्चेष्ट रहते थे। अतः इन्हें जड भरत कहा जाता था। पिता के विशेष प्रयास करने पर गायत्री भी नहीं सीखा था। इन्होंने रहूगण राजा को अधिकारी जानकर अध्यात्म ज्ञानोपदेश विस्तार से किया। विष्णु पुराण के दूसरे अंश में तथा भागवत के पंचम स्कन्ध में इनका चरित्र मिलता है। महा देहाध्यासी सौवीर नरेश जो अध्यात्म ज्ञानोपदेश के लिये सिन्ध से गंगा सागर में भगवान् कपिल से ज्ञानोपदेश प्राप्त करने जा रहा था। दोनों ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि साधन चतुष्टय में एक साधन भी

इसमें नहीं था ।इतनी दूर की यात्रा में अवैतनिक कहार लगाये था । ऐसे क्रूर राजा पर जडभरत जी ने क्यों कृपा की इस शंका के होने पर उत्तर दिया जाता है । जड भरत जी जीवन्मुक्त त्रिकाल दर्शी, सर्वान्तर्यामी अवधूत सन्त थे । इन्होंने दिव्य दृष्टि से देख लिया था, पिछले जन्म में जिस मृग का मैंने भरण पोषण किया था, जो मेरा पूर्ण कृपा भाजन था । जिसका चिन्तन करते हुये शरीर छोड़ा, वही मृग मरने के बाद, सिन्ध देश का रहूगण नाम का राजा हुआ है । इस प्रसंग से सिद्ध होता है कि सन्त एक बार जिस पर कृपा कर देते हैं । जब तक उसका परम कल्याण नहीं होता तब तक वह कृपा दृष्टि बनाये रखते हैं । इसलिये साधन हीन होने पर भी उस नरेश पर विशेष कृपा की । इसका विस्तार दोनों पुराणों में देखें ।

रामानुज भरत—भगवान् राम के छोटे भाई भरत प्रसिद्ध ही हैं । आनन्द रामायण के अनुसार इनके नाम से भी इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ ।

शकुन्तला पुत्र भरत—महाभारत के आदि पर्व में इनका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है ।

नाट्यशास्त्रकार भरत—आदि नाट्यकार भरत मुनि के नाम से प्रसिद्ध हैं । प्रासंगिक भरत उपर्युक्त चारों भरतों से भिन्न हैं ।

पद्मेश, सुभग, विशुद्ध, कैवल्य, गणेश्वर, सपाय, विवुध, योग, विज्ञान, अनंग, विभ्रम, दामोदर, चिदाभास, चिन्मय, कलाधर, वीरेश्वर, मन्दार, त्रिदश, सागर, मृड, हर्ष ।—हर्ष मिश्र के नाम से प्रसिद्ध हुये । इनका वेदान्त का "खण्डन खण्ड खाद्य" अद्वितीय प्रसिद्ध ग्रन्थ है । तथा "मन्त्र महोदधि", "नैषधीय चरितम्" इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं । हर्ष वर्द्धन नाम के एक राजा भी हुये । यह भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, तथा सर्वस्वदान प्रत्येक पांचवें वर्ष करते थे । कुरुक्षेत्र में थानेश्वर नाम का नगर उनकी राजधानी थी । इनका बनाया किला आज भी है जिसका जीर्णोद्धार किया जा चुका है ।

श्री महागौड पादाचार्य (२) सिंह । द्वितीय चरित्र

ऊपर दी गई श्रीविद्या की परम्परा में दो गौडों का वर्णन हुआ है । पहले शुकदेव जी के बाद "गौड पदं महान्तम्" यहां पर महान्तं शब्द का सम्बन्ध श्री गौड पादाचार्य तथा श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य इन दोनों से है । अर्थात् महागौडपाद तथा महागोविन्द भगवत्पादाचार्य दोनों के लिये महान्तम् शब्द प्रयुक्त हुआ है । यह दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति सिद्ध होते हैं । महा गौड

पादाचार्य के कई पीढ़ी बाद गौड पादाचार्य तथा गोविन्द भगवत्पादाचार्य का नाम आता है। अतः दोनों व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्ति सिद्ध होते हैं। श्री विद्यार्णव तन्त्र के वामदेव जी से लेकर श्री राम चन्द्र जी पर्यन्त पचास गुरु हुये। कुल गुरु संख्या २८४ से ३३३ तक गुरु हुये।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् गौडपादाचार्य जी का चरितम्

गूढा माया यस्य वाक्यै र्व्रीडिता विलयंगता।
क्रीडन्तं विद्यया सार्द्धं गौडपादं तमाश्रमे ॥१॥ गुरुवंश काव्यम् ॥
परम्परा शुकाद्याहि, गुरु-शिष्यक्रमागता।
शुक शिष्य परिब्राजामाद्यो गौडस्य जन्मता ॥ श्री शंकर विजय मकरंद ॥
महत्त्वार्थक पादाख्य प्रख्यातः परमो गुरुः।
भगवत् पाद संज्ञाकौ, गोविन्द गुरु शंकरौ ॥ श्री शंकर विजय मकरंद ॥

जिनके वचनों से अत्यन्त गूढ माया लज्जित होकर नष्ट हो गयी। ब्रह्म विद्या के साथ क्रीडा करने वाले गौड़ पाद जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं। शुकदेव जी से प्रारम्भ हुई गुरु शिष्य की परम्परा में शुकदेव जी के संन्यासी शिष्य आद्य गौड़ वंश में जन्मे महागौड पादाचार्य जी शंकराचार्य जी के परम गुरु हैं तथा गोविन्द भगवत्पादाचार्य नाम वाले श्री शंकराचार्य के गुरु हैं। इन दोनों की वन्दना करता हूं। नीचे के दो श्लोक श्री शंकर विजय मकरन्द से लिये गये हैं। इस ग्रन्थ में गौडपादाचार्य जी से पूर्ववर्ती आचार्यों के सम्बन्ध में भी उल्लेख हुआ है, जो इस प्रकार हैं—तः

आचार्यं प्रणमामि सादरमहं तं ब्रह्मनन्दीति यः।
प्रख्यातो मुनिरत्रिवंश्य उदितः संक्षेप शारीरिके ॥
छान्दोग्योपनिषच्च येन विवृता वाक्यैर्हि सूत्रात्मभिः।
यं ग्रन्थेषु परा पुनः पुनरपि ब्रूते प्रमाणं परम् ॥ १० ॥
छान्दोग्योपनिषद् वाक्य ग्रन्थ कर्तृन्नुमोवयम्।
अद्वैत निष्ठानाचार्यानात्रेय ब्रह्मनन्दिनः ॥११॥

आचार्यान्द्रविड़ाख्यया सुविदितान् स्तौमि प्रमाणी कृतान्।
श्रीमच्छंकर देशिक प्रभृतिभीरामानुजाद्यैरपि।
छान्दोग्योपनिषद् प्रमेय विवृतियैर्ब्रह्मनन्दीरिता।
वाक्याख्याति गभीर सूत्र सरणिर्भाष्येन संभूषिता॥१२॥
छान्दोग्योपनिषद्वाक्यभाष्य कर्तृन्नुमो वयम्।
अद्वैत भावनाचार्यान् द्रविडाचार्य संज्ञितान्॥१३॥
आचार्य सुन्दरं पाण्ड्यं नमामः प्राक्तनं गुरुम्।
पूर्वोत्तरे च मीमांसे वार्तिके येन मण्डिते॥१४॥
प्रभवात्परमार्थ संग्रहाच्च प्रणयस्थानममुष्य सिद्धशिष्यः।
विरत क्षिति रक्षणो विरक्त्या हरिरंहो मम दुंहतां स्वशक्त्या॥१५॥
द्रविडत्रयमात्रेय त्रयं गौडत्रयं तथा।
अद्वैत बोध सिद्ध्यर्थं नमामः करणैस्त्रिभिः॥१६॥

अत्रि वंश में उत्पन्न हुये प्रसिद्ध संक्षेप शारीरिक के रचयिता ब्रह्मनन्दी को मैं सादर प्रणाम करता हूं। जिन्होंने संक्षिप्त सुन्दर वाक्यों द्वारा छान्दोग्योपनिषत् पर सुन्दर वृत्ति लिखी है। जिनके व्याख्यान को परवर्ती आचार्यों ने परम प्रमाण रूप से कहा है॥१०॥ अत्रि वंश में उत्पन्न हुए ब्रह्मनन्दीय छान्दोग्योपनिषत् के वाक्यार्थ कर्ता अद्वैत में निष्ठावान् आचार्यों को हम प्रणाम करते हैं॥११॥ द्राविड देशीय सुन्दर बोध वाले श्री शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि की स्तुति करता हूं। जिन्होंने, छन्दोग्योपनिषत्, प्रमेय विवृत्ति आदि ग्रन्थों की अति गम्भीर सूत्रानुसार ब्रह्मानन्द नामिका टीका की है। इसी के अनुसार शंकराचार्य आदि ने भाष्य किया है॥१२॥ छान्दोग्योपनिषत् के अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक उपनिषद के वाक्यों के अनुसार भाष्य करने वाले द्रविडाचार्यों को हम प्रणाम करते हैं॥१३॥ सुन्दर पाण्ड्य नामक आचार्य प्राचीन गुरूओं को हम प्रणाम करते हैं। जिन्होंने पूर्वोत्तर मीमांसा की वार्तिक रचना की है॥१४॥ परम सिद्ध भगवत् पाद गोविन्दाचार्य के पुत्र तथा परमप्रिय शिष्य जिन्होंने विरक्त होकर राज्य का त्याग करके परम प्रभाव शाली परमार्थ संग्रह नामक ग्रन्थ की रचना की वे हरि नामक आचार्य अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा मेरे पापों को नष्ट करें॥१५॥ अत्रि गोत्रीय तीन द्राविड आचार्यों को मैं अद्वैत ज्ञान की सिद्धि के लिये मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करता हूं।

दसवें श्लोक से तेरहवें श्लोक तक का भाव—यह श्लोक द्रविडात्रेय दर्शन से लिये गये हैं। इनमें अत्रि गोत्रीय ब्रह्म नन्दी द्राविडाचार्य, सुन्दर, पांड्य, भर्तृहरि यह चारों आचार्य विशुद्ध अद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक भगवत्पाद शंकर के पूर्ववर्ती आचार्यों में अन्यतम हैं। इन आत्रेय गोत्री आचार्यों ने, छान्दोग्योपनिषत् अर्थ विवरणात्मक नामक भाष्य तथा ब्रह्म सूत्र के वाक्य समूहों की "वाक्य निचय मण्डित" नाम की टीका की है। इन द्राविडाचार्यों का अति निर्मल भाष्य है। अतः यह चारों वाक्य कार तथा भाष्य कार नाम से प्रसिद्ध हुये, परन्तु दुर्भाग्य से इनके वाक्य तथा भाष्य ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। इनके आठ ग्रन्थ तथा नौ भाष्य ग्रन्थ थे। यह सत्रह ग्रन्थ अद्वैत ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं। आगे चलकर वाक्य ग्रन्थ की टीकायें २२ और भाष्य टीकायें ११ हुईं। यह कुल ३३ ग्रन्थ रामानुजाचार्य के गीता तथा ब्रह्मसूत्र आदि के भाष्यों में प्रमाण रूप में उद्धृत हैं। व्यास पूजा के समय अद्वैत संन्यासियों के द्वारा पंच द्राविडाचार्यों के बीच में, शंकराचार्य सहित उनके चार शिष्य पंच द्राविडाचार्य हैं, इन चार द्राविडाचार्यों की पूजा होती है। जैसे गौड शब्द गौड देश का सूचक है। वैसे द्राविड शब्द द्रविड देश का वाचक है। (१० से १३ तक)

आचार्य सुन्दर पाण्ड्य कब हुये इनके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता है। इन्होंने कौन से ग्रन्थ रचे इनकी भी जानकारी नहीं है, परन्तु भगवान् शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र के समन्वय अधिकरण के अन्त में **गौणमिथ्यात्मनोऽसत्वे**" इत्यादि तीन श्लोक प्रमाण रूप से उद्धृत किये हैं, तथा पद्म पादाचार्य जी की ब्रह्मसूत्र की "पंचपादिका" नाम की टीका पर "प्रबोध परिशोधिनी" टीका के कर्त्ता आत्मस्वरूपाचार्य जी महाराज ने **सुन्दर पाण्ड्य प्रणीतं** इतना ही परिचय दिया है ॥१४॥ यह श्लोक जगद्गुरू रत्न माला स्तव से लिया गया है। इसमें अमुष्य शब्द का अर्थ श्रीमद्गोविन्द भगवत् पादाचार्य किया है। इनका संन्यास से पूर्व का नाम चन्द्र शर्मा था। इनके भर्तृहरि, भट्टि, विक्रम, वररुचि चार पुत्र थे। चन्द्र शर्मा विषयों से विरक्त होकर एकान्त वासी हुये। इन्होंने 'वाक्यपदीय' नामक महाप्रबन्ध की रचना की। इस ग्रन्थ में अनेक बार अद्वैत तत्त्व का अति स्पष्ट रूप में प्रतिपादन किया है। प्राचीन अद्वैत के आचार्यों में इनका विशेष स्थान है ॥१५॥

चन्द्र शर्मा जी ने गौडपादाचार्य जी से संन्यास लिया इनका योग पट्ट गोविन्द योगीन्द्र हुआ। यह श्लोक द्रविड त्रय दर्शन नामक ग्रन्थ से लिया है। तीन द्राविडाचार्यों में प्रथम

भगवत्पाद श्री शंकर, दूसरे अप्पय दीक्षित तथा तीसरे अभिनव द्राविडाचार्य बाल कृष्णानन्द जी सरस्वती हैं। आत्रेय तीन आचार्यों में प्रथम दत्तात्रेय, दूसरे ब्रह्मनन्दी, तीसरे भगवत्पाद शंकर। गौड त्रय में, प्रथम गौडपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य गौड, ब्रह्मानन्द सरस्वती। भर्तृहरि—यह भर्तृहरि महाराज विक्रमादित्य के समकालीन भर्तृहरि से भिन्न हैं। राजा भर्तृहरि का जन्म शंकराचार्य के ४१४ वर्ष बाद हुआ है। विक्रम का जन्म शंकराचार्य जी के गृहस्थ शिष्य महाराज सुधन्वा की नवमी पीढ़ी में जो राजा हुये उनकी पुत्री का विवाह विक्रमादित्य के पिता से हुआ था। अतः श्री शंकराचार्य जी से ४१४ वर्ष पश्चात् विक्रम पैदा हुये। वह राजा भर्तृहरि उनके समकालीन थे। इसके सम्बन्ध में विशेष रूप से जगद् गुरु शंकराचार्य द्वारका पीठाधीश्वर श्री राज राजेश्वराश्रम जी महाराज द्वारा लिखित "विमर्श" नामक पुस्तक जो कि संस्कृत में है, देखें—अथवा मेरे द्वारा लिखित "गुरुवंशावली" में देखें।

पतंजलि चरितम् तथा पतंजलि विजय के आधार पर गौडपाद जी का चरित्र

भगवान् गौडपादाचार्य जी ने शुकदेव जी से जो ब्रह्मविद् वरिष्ठ हैं, बद्रिकाश्रम में रहकर ब्रह्मविद्या का अध्ययन किया। इन्होंने विचार किया कि सम्पूर्ण उपनिषदों के भाव को सभी लोग हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। अतः बारह मंत्रों में ब्रह्म के चार पाद तथा प्रणव की चार मात्राओं का अति गम्भीर विस्तृत "माण्डूक्य कारिका" के रूप में विवरण लिखा। जो कि चार प्रकरणों में है। १. आगम प्रकरण, २. वैतथ्य प्रकरण, ३. अलात शान्ति प्रकरण, ४. अद्वैत प्रकरण। दण्डी स्वामी बाल कृष्णानन्द सरस्वती महाराज के "शारीरिक मीमांसा भाष्य वार्तिक" में लिखा है कि गौड पादाचार्य जी महाराज कुरुक्षेत्र देश गत हिरावती नदी के तीरवर्ती निवासी थे। द्वापर युग से लेकर समाधि में स्थित होने वाले आधुनिक कलिकाल के लोगों से बचकर समाधि में तल्लीन रहते थे। महाभाष्य कार पतंजलि के व्याकरण के आचार्यों में गौडपाद जी प्रथम आचार्य थे। इतने बड़े विद्वान् होने पर भी निर्विकल्प समाधि में अधिक रहा करते थे। हिमालय की चोटी पर स्थित सिद्ध बौद्धाचार्यों के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ। उनको जीत कर अद्वैत वेदान्त का प्रचार प्रसार किया। इनके शिष्यों में गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी के अतिरिक्त हरिमिश्र आदि अनेकों शिष्य "श्रीरत्नमालास्तोत्र" की टीका में कहे गये हैं। इनके माण्डूक्योपनिषत् की कारिकाओं में अलात शान्ति प्रकरण में **ज्ञानेनाकाश कल्पेन** इसकी टीका करते हुये आनन्द गिरि जी ने लिखा है।

"आचार्योंहि पुरा बद्रिकाश्रमे नरनारायणाधिष्ठिते नारायणं भगवन्तमभिप्रेत्य तपो महदतप्यत्। ततो भगवानतिप्रसन्नः तस्मै विद्यांप्रादादिति प्रसिद्धम् परं गुरुत्वं परमेश्वरस्येति भावः। इति। भगवान् गौडपादाचार्य जी ने कई वर्ष पूर्व नर नारायण के स्थान बद्रिकाश्रम में भगवान् नारायण के लिये महान् तप किया। तब भगवान् ने अति प्रसन्न होकर ब्रह्म विद्या प्रदान की। इससे उन्होंने शंकराचार्य जी के परम गुरुत्व को प्राप्त किया। यह भाव है। इससे सिद्ध होता है कि इन्होंने तपस्या से विद्या प्राप्त करके शुकदेव जी का शिष्यत्व प्राप्त किया।

इन्होंने इसके बाद लगभग सवा महीने का एक विशेष अनुष्ठान किया उसके प्रभाव से अत्यन्त लुप्त हुई वेदों की मंत्र संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों को प्राप्त किया। इष्ट ने प्रसन्न होकर कहा, मैं तुम्हें ऐसी वेद विद्या प्रदान करता हूं, जो लुप्त हो चुकी थी, आज तक किसी को नहीं प्राप्त हुई। जितनी देर तक बिना विराम किये आप लिखते रहोगे उतनी देर तक मैं लिखाता रहूंगा। तुम्हारी लेखनी रुकते ही मैं छोड़कर चला जाऊंगा। यह तुरन्त ही जिस पेड़ के नीचे बैठे थे, उसकी शाखा तोड़ कर एक लकड़ी लेकर तथा जांघ से रक्त निकालकर लिखने लगे। सात दिन रात्रि लगातार लिखते रहे। आठवें दिन निद्रा से विवश होकर अपने हाथ आंखें बन्द होने लगीं। देवता वहीं लुप्त हो गये। शरीर का खून पसीना बहाकर यह विद्या उन्होंने प्राप्त की। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मविद्या की साधना कोई सरल नहीं है।

इति जीवन वृत्तम्

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् गौडपादाचार्य जी का सिद्धान्त तथा उपदेश

आचार्य पाद ने प्रणव के प्रतिपादक माण्डूक्योपनिषत् के बारह मंत्रों की व्याख्या चार प्रकरणों में की है।

१. आगम प्रकरण—इसमें प्रणव के तीन पाद विश्व, तैजस, प्राज्ञ व्यष्टि में तथा विराट, हिरण्य गर्भ, ईश्वर समष्टि में, एवं प्रणव की अकार, उकार, मकार तीन मात्राओं का वर्णन हुआ है। इसके बाद अर्द्धमात्रा का प्रतिपादन विस्तार से करते हुये अन्त में व्यष्टि, समष्टि भेद से

तीनों पाद तथा तीनों मात्राएं तथा इनसे उत्पन्न हुआ स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत तथा तीन अवस्थाएं, तीनों अभिमानी रस्सी में सर्प के समान मिथ्या हैं । यथा सर्प का आधार रस्सी सत्य है, सर्प मिथ्या है । वैसे ही (तथा) तीनों जगत् मिथ्या तथा ब्रह्म सत्य कहा है ।

२. वैतथ्य प्रकरण—वैतथ्य = मिथ्या इसमें जगत् के मिथ्यात्व का विशद वर्णन है ।

३. अद्वैत प्रकरण—इसमें तीनों भेदों से रहित एक अद्वितीय ब्रह्म का प्रतिपादन किया है ।

४. अलात शान्ति प्रकरण—संस्कृत में जलती लुकाठी को अलात कहते हैं । जब कोई जलती हुई लकड़ी या मशाल को तेज़ी से घुमाता है तो वह घूमती हुई लुकाठी गोल न होने पर भी चक्राकार दीखती है । किन्तु घुमाना रोकने पर गोलाई नहीं दीखती । वैसे ही जीव का मन जितनी तेजी से घूमता है उतना ही अशान्त होता है तथा जगत का भास होता है । मन के शान्त हो जाने पर जगत् का भास नहीं होता । यह बात इस प्रकरण में कही गयी है ।

पहले प्रकरण में २९ कारिकायें, दूसरे में ३८, तीसरे में ४८ तथा चौथे में १०० कारिकायें हैं । कुल २१५ कारिकायें (श्लोक) हैं ।

आगम प्रकरण में जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करते हुये परमाचार्य जी ने कहा है ।

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
वेदेतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ॥५ ॥

तीनों धामों में अर्थात् जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में, स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों में एक भोक्ता होने पर भी तीन रूपों में भासता है । वह भोक्ता मैं ही हूं । उपाधि से अनेक प्रतीत होने पर भी वास्तव में जो अपने को एक अनुभव करता है । वह संसार के भोग भोगने पर भी लिप्त नहीं होता ।

आगे कहते हैं । सृष्टि की उत्पत्ति तथा विनाश ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है । कोई सृष्टि को काल से उत्पन्न हुआ मानते हैं । परन्तु जब जीव को विवेक सहित वैराग्य होता है । वह सद्गुरु की शरण में जाता है तब उसे गुरुओं से श्रवण के छः लिंगों सहित मनन, निदिध्यासन की प्राप्ति होती है । तब उसकी मोह निद्रा भंग होती है । इसका वर्णन करते हुये कहते हैं ।

अनादि मायया सुप्तो यदाजीवः प्रबुद्धयते ।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुद्धयते तदा ॥१६ ॥

जब अनादि माया से सोया हुआ जीव जागता है । तब अपने जन्म आदि षड् विकारों से रहित जागता है । अर्थात् तत्त्व वेत्ता परम गुरुओं की कृपा से रूप साक्षात्कार करता है तब अपने तुरीय स्वरूप को प्राप्त करके जगत् को स्वप्न के समान मिथ्या समझ कर अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित होता है ।

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः ।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥१७ ॥

यदि जगत सच्चा होता तो कभी भी निवृत्त न होता । अतः माया से प्रतीत होने वाला यह जगत् नहीं है । परमार्थ में एक मात्र अद्वैत ब्रह्म ही है । जगत जो दीखता है मायामात्र ही है और वह ब्रह्म परमार्थ है ऐसा समझ कर परम हंस यति को निर्भय पद की प्राप्ति होती है । यति को प्रणव ब्रह्म में मन लगाना चाहिये ।

२. वैतथ्य प्रकरणम्—जैसे स्वप्न दृष्टा स्वप्न में अपने जागृत अवस्था के संस्कारों से अनेक नदी, पर्वत आदि देखता है । वैसे ही जगत् मिथ्या है ।

न निरोधो नचोत्पत्तिः न वद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तः इत्येषा परमार्थता ॥२ ॥३२ ॥

जगत् की न तो उत्पत्ति है न विनाश है, जीव न बद्ध है न साधक है । न मोक्ष की इच्छा वाला है न मुक्त है । यही परमार्थ सत्ता है ।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथा सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षितः ॥२ ॥६ ॥

जो जीव उत्पत्ति से पहले विनाश के बाद नहीं है वह बीच में भी नहीं है । जगत मिथ्या होने पर भी सत्य के समान प्रतीत होता है ।

कल्पयत्यात्मनात्मानमात्म देवः स्वमायया ।
स एव बुद्धयते भेदानिति वेदान्त निश्चयः ॥२ ॥१२ ॥

आत्म देव अपनी माया से अपने अन्तःकरण में अपने आप की कल्पना करता है । वही (आत्म देव ही) भेदवत् प्रतीत होता है । यह वेदान्त का निश्चय है ।

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते ।
एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किंचिन्न जायते ॥२ ।४८ ॥

कोई जीव उत्पन्न नहीं हुआ। इस जीव की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। अतः जीव उत्पन्न नहीं होता यही उत्तम सत्य है, जहां कोई पैदा ही नहीं होता।

३. अद्वैत प्रकरणम्—मरण धर्मा शरीर अमर नहीं हो सकता। अमर आत्मा नाश रहित है। कारण से कार्य उत्पन्न होता, कार्य से कारण नहीं। जन्म रहित आत्मा का जन्म कैसे। अतः किसी देश, काल में उत्पन्न नहीं हो सकता। पैदा होने वाला अजन्मा कैसे हो सकता है। अविनाशी का जन्म कैसे होगा। महत्तत्व आदि का कारण मूल प्रकृति है। सांख्य वेत्ता प्रकृति से जगत की उत्पत्ति मानते हैं। इसका कोई दृष्टान्त नहीं। दृष्टान्त के अभाव में उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती। अर्थात् जड़ प्रकृति से बिना चेतन की सहायता के जगत उत्पन्न नहीं हो सकता। कारण से कार्य की उत्पत्ति सबने कही है। किन्तु कौन किसका कारण, कौन किसका कार्य आज तक निश्चय नहीं हो सका। यदि कहो कि शुभाशुभ कर्म रूपी कारण से शरीर उत्पन्न होता है। तो भी बात बनती नहीं, क्योंकि बिना शरीर के शुभाशुभ कर्म नहीं हो सकते। अतः दोनों ही एक-दूसरे के कारण सिद्ध होते हैं। फल से वृक्ष हुआ या वृक्ष से फल हुआ। बिना वृक्ष के फल नहीं हो सकते फल बिना वृक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि फल के भीतर बीज रहता है। बीज के बिना वृक्ष हो नहीं सकता। यदि उत्पत्ति में कारण को पहले कार्य को बाद में माने तो भी सम्भव नहीं। यदि कहो कि कारण कार्य एक साथ पैदा होते हैं, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि एक साथ उत्पन्न होने वाली दो वस्तुओं में कार्य कारण भाव हो नहीं सकता। अतः शशशृंग के समान जगत नितान्त असत्य है। अतः वशिष्ट आदि पूर्ववर्त्ती विद्वानों ने अजातबाद स्वीकार किया है।

स्वतो वा परतो वापि न किञ्चिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वापि न किंचिद्वस्तु जायते॥४॥२२॥

अलात शान्ति प्रकरणम्—अपने या दूसरे से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। अर्थात् घट से घट की उत्पत्ति या घट से पट की उत्पत्ति नहीं होती। यदि कहो कि कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। अर्थात् मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है। तो आपका कहना ठीक है। ऐसी प्रतीति मूढों को होती है तत्त्व दर्शियों को नहीं। यह वाणी का विकार है। मृत्तिका और घट में मृत्तिका ही सत्य है घट मिथ्या है। अतः सत से असत और असत से सत उत्पन्न नहीं होता।

जब जगत तीनों कालों में नहीं तो भासता क्यों है। इस पर कहते हैं कि जैसे जलती लकड़ी को तेजी से गोल लम्बी या टेढी-मेढ़ी घुमाने से आकारों से रहित होने पर भी आकारों जैसी भासती है. ऐसे ही मन जितनी तेजी से घूमता है, उतना ही जगत में द्वैत भासता है। यह अविद्या कल्पित है—वास्तव में नहीं। अतः वेदान्त का सिद्धान्त यही है, कि जीव का कभी जन्म नहीं होता, किन्तु उत्पन्न हुये के समान प्रतीत होता है। आगे जैनादिनास्तिक सिद्धान्त का खण्डन करते हुये लिखते हैं।

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीतिनास्ति नास्तीति वादिनः (वा पुनः)
चल स्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः ॥४॥८३॥

किन्तु मूर्ख लोग कहते हैं कि जगत है, नहीं है, है नहीं है, नहीं है यह बार-बार कहते हैं। ऐसे लोग चल स्थिर तथा दोनों ही भावों से अज्ञान से ढके हुये हैं। अर्थात् कुछ लोग कहते हैं, आत्मा है, क्षणिकविज्ञानी कहते हैं आत्मा नहीं है और आत्मा का नाश मानने वाले कहते हैं कि शरीर के जन्म के साथ आत्मा का जन्म तथा मृत्यु के साथ मृत्यु हो जाती है।

दिगम्बर जैनियों का सिद्धान्त

आत्मा की सत्ता ही नहीं है यह शून्यवादी मानते हैं। इनमें से अस्तिभाव चल है। नास्ति भाव स्थिर है। उभय भाव चल-स्थिर है। अत्यन्त अभाव मानने वाले अविवेकी लोग विद्वान् होने पर भी उनका अन्तःकरण अज्ञान से ढका हुआ है। परमार्थ तत्त्व से रहित होने के कारण मूर्ख कहा है।

ब्रह्म वेत्ताओं का स्वभाव विनय से मुक्त है। वे मन को अन्तर्मुख करके ब्रह्म स्वरूप को कैसे प्राप्त करते हैं। यह नीचे दिखाया जा रहा है। इसके विपरीत जिन्हें ब्रह्म बोध नहीं है, वे अविद्या से कल्पित अनेक मार्गों में भटकते हुये भेद-वादी कृपण कहे जाते हैं, किन्तु अविनाशी ब्रह्म में अपनी बुद्धि को समाहित करने वाले ज्ञानी कहे गये हैं। ऐसे ज्ञानियों के परमाचार्य भगवान् गौडपादाचार्य आजकल के वेदान्तियों के समान—

बोध चहत जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरी है आत्मा-काको करुं प्रणाम ॥३॥

अभिमान न करके परम नम्रता पूर्वक वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म को प्रणाम करते हैं।

दुर्दर्शमति गम्भीरमजं साम्यं विशारदम्।
बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मो यथा बलम्॥४।१००॥

ग्रन्थ की समाप्ति पर परमार्थ तत्त्व की स्तुति करते हुये नमस्कार करते हैं कि अनन्त जन्मों की साधना से अति कठिनाई से जिनका दर्शन होता है। महा समुद्रवत् गम्भीर होने के कारण जिनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है, ऐसे अजन्मा, समदर्शी, विशारद, सम्पूर्ण उपाधियों से रहित एक ब्रह्म को जानकर यथाशक्ति प्रणाम करता हूं। श्री गौडपादाचार्य जी ने अपनी कारिकाओं में योग वाशिष्ठ के अजातवाद का प्रतिपादन किया है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

उत्तर गीता पर गौडपाद जी का भाष्य

अर्जुन ने युद्ध होने से पूर्व जो अट्ठारह अध्याय वाली भगवद् गीता सुनी थी। युद्ध में व्यस्तता के कारण वे भूल गये। भगवान् वेद व्यासजी, भगवान् श्री कृष्ण तथा भीष्म पितामह की आज्ञानुसार युद्ध में हुई हत्या के प्रायश्चित्त के लिये युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। भगवान् कृष्ण तथा अर्जुन हिमालय की गुफा में महाराज मरुत का धन लेने जब गये, तब अर्जुन ने भगवान् से पूछा—युद्ध से पूर्व सुनी हुई गीता मैं भूल गया। मुझे फिर उपदेश कीजिये। फिर भगवान् ने इसी गीता का विस्तृत भाष्य लगभग ७५ अध्यायों में सुनाया, बाद में सुनाये जाने के कारण इसका नाम 'अनुगीता' पड़ा। उसी गीता के अन्तर्गत संन्यासियों के लिये उपयोगी उत्तर गीता है। इसके तीन अध्यायों पर भगवान् गौडपादाचार्य जी की व्याख्या है। वर्तमान महाभारत में इस गीता का पाठ नहीं मिलता।

अर्जुन उवाच— यदेकं निष्कलं ब्रह्म व्योमातीतं निरंजनम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं विनाशोत्पत्ति वर्जितम्॥१॥
कारणं योग निर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम्।
हृदयाम्बुजमध्यस्थं ज्ञानज्ञेय स्वरूपकम्॥२॥
तत्क्षणादेव मुच्येत यज्ज्ञानाद् ब्रूहि केशव।

अर्जुन ने पूछा—हे केशव ! जो ब्रह्म एक निरंश, आकाश से परे, स्वयं प्रकाश, तर्क से रहित उत्पत्ति-विनाश से रहित, योग साधन से रहित, हृदय रूपी कमल में स्थित है। जिसके ज्ञान से जीव मुक्त हो जाता है। उसका मुझे उपदेश कीजिये। अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण समझाकर कहिये। वह ब्रह्म तीनों भेदों से रहित एक है। चौबीस तत्त्वों से परे है तथा किसी प्रकार से जाना नहीं जाता। उसका ज्ञान कैसे हो। यह अर्जुन का भाव है।

श्री भगवान् बोले—हे महावाहो, हे पाण्डव ! भगवान् ने महाबाहो सम्बोधन से कहा, कि तुम भीतर रागद्वेषादि शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो। पाण्डव हो। पाण्डव से बताया कि तुम शुद्ध वंश प्रसूत हो। मैं तुमसे कहता हूं। आत्म तन्त्र हंस मंत्र का जप करो। 'सोऽहमस्मि' जो प्रणव का प्रतीक है, प्रणव और सोऽहम् का अर्थ एक ही है। हंसस्य की व्याख्या करते हैं—हन्ति स्व तत्त्व ज्ञानेन ज्ञातृ संसारमिति हंसः। जो स्वतत्त्व ज्ञान से ज्ञाता के जन्म मरण रूप संसार को नष्ट करे उसे हंस कहा गया है।

काकी मुखं ककारन्तमुकारश्चेतना कृतिः।
मकारस्य तु लुप्तस्य कोऽर्थः सम्प्रतिपद्यते ॥७॥

महाभारत में आठ हज़ार आठ सौ कूट श्लोक हैं। जिनके सम्बन्ध में व्यास जी महाभारत के आरम्भ में आदि पर्व में कहते हैं—

अष्टौ श्लोक सहस्राणि अष्टौ श्लोक शतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति, संजयो वेत्ति वा न वा।

आठ हज़ार आठ सौ श्लोक ऐसे हैं जिनके अर्थ को मैं तथा शुकदेव जी जानते हैं। संजय बहुत से श्लोकों का अर्थ जानते हैं तथा कुछ का नहीं जानते। इन कूट श्लोकों में भी तीन प्रकार के कूट हैं। पहले साधारण कूट, दूसरे काल कूट, तीसरे दार्शनिक कूट। यह दार्शनिक कूट श्लोक हैं। श्री गौडपादाचार्य जी साक्षात् शुकदेव जी के परम कृपा पात्र शिष्य हैं। अतः वे इसका अर्थ भली प्रकार से जानते हैं।

काकी में 'का' का अर्थ जीव और 'की' का अर्थ विम्बभूत ईश्वर है। माण्डूक्योपनिषद् में कहे हुये विश्व तथा तैजस के जागृत अवस्था में १९ मुखों द्वारा १९ प्रकार का स्थूल भोग

तथा सूक्ष्म भोग यह मुख शब्द का अर्थ है। उकार का, तेजस का, लुप्त मकार सुषुप्ति के अभिमानी प्राज्ञ का क्या अर्थ है इसका प्रतिपादन करते हैं—

कं च अकं च काके सुख दुःखे अस्य स्तः इति काकी जीवः अविद्या प्रति बिम्बः तस्य मुखं मुखस्थानीयं बिम्बभूतं यद्ब्रह्म, तत् प्रतिपादकं यत् ककारान्तं, मुखमेतत् काकाक्षि न्यायेन अत्रापि सम्बद्ध्यते। तथा च शब्दश्लेषः मुख भूत ककारस्य काकीत्यत्र प्राथमिक ककारस्यान्तं अन्तिमं यदक्षरं अकारात्मकं "पंचीकृत पंच महाभूतानि तत्कार्याणि सर्वं विराडित्युच्यते। एतत्स्थूल शरीरमात्मनः इन्द्रियैरर्थोपलब्धिर्जागरितम् तदोभयाभिमान्यात्मा विश्वः" एतत् त्रयं अकारस्यार्थः। उकार श्चेतना कृतिः। काकी मुखेत्यत्र मकारात् परो यः उकारः "अपंचीकृत पंच महाभूतानि तत् कार्यं सप्त दशकं लिंगं हिरण्यगर्भ इत्युच्यते। एतत्सूक्ष्म शरीरमात्मनः। करणेषूपसंहर्तेषु जागृत संस्कार जन्य प्रत्ययः स विषयः स्वप्नः, तदुभय्राभिमानी आत्मा तैजसः। एतत् त्रयमुकारस्यार्थः।" अतएव उकार श्चेतना कृतिरित्युक्तं। चेतना कृतिः चेतनस्य हिरण्य गर्भात्मक तैजसस्य आकृतिः वाचकः। मकारस्य काकी मुखेत्यत्र उकारात्पूर्वमभिहितो योमकारः "शरीरद्वय कारणमात्मा ज्ञानं साभासं अव्याकृतमित्युच्यते। तच्च न सत्, नासत्, नापि सदसत्, न भिन्नं, नाभिन्नं, नापि भिन्नाभिन्नं कुतश्चित्; न निरवयवं, न सावयवं, नोभयं केवल ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानापनोद्यं। सर्वप्रकारक ज्ञानोपसंहारे बुद्धेः कारणात्मनावस्थानं सुषुप्तिः तदुभयाभिमान्यात्मा प्राज्ञः। एतत्त्रयं" तस्य मकारस्यार्थः। लुप्तस्य "अकार उकारे उकारो मकारे, मकार ओंकारे" एवं लुप्तस्य कोअर्थः ककारात्परो यः अकारः, तस्य योऽर्थः लक्ष्य स्वरूपं मकारात्परस्योंकारस्य अर्थः लक्ष्यस्वरूपं उपलक्षणमेतत् द्वयम् उकारात् पूर्वमकारस्यार्थः लक्ष्य स्वरूपं "ओंकारात्मा साक्षी केवल चिन्मात्र स्वरूपः नाज्ञानं नापि तत्कार्यं किन्तु नित्यशुद्ध बुद्धमुक्त, सत्य, परमानन्दाद्बितीयं ब्रह्मैव" सम्प्रतिपद्यते तदैक्यं प्राप्नोतीत्यर्थः। "अयमात्मा ब्रह्म" "स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये स एकः", "तत्त्वमसि", "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि श्रुतिभ्य इति भावः।

यद्वा पाठान्तरे— काकी मुखी ककारान्तमुकारश्चेतनाकृतिः।
अकारस्य तु लुप्तस्य कोऽर्थः सम्प्रतिपद्यते ॥

भाष्यम्—कं च अकं च काके सुख दुःखे तेऽस्य स्तः इति काकी जीवः तत्प्रतिपादक शब्दस्य मुखे अग्रे यः ककारः तस्यान्तः अकारः ब्रह्म, चेतना कृतिः जीवाकारवदित्यर्थः। ब्रह्मैव स्वाविद्यया संसरतीतिं न्यायात् उकारस्य जीवत्वाकारस्य लुप्तस्यापगतस्य कोऽर्थः अखण्डाद्वितीय सच्चिदानन्द-स्वरूपोऽर्थः। तं काकीमुखेत्यादि उक्त प्रकारेण ऐक्य अनुसन्धानवान् सम्प्रति-पद्यते प्राप्नोतीत्यर्थः। यद्वा हे काकी मुख ! ब्रह्मत्व ककारान्तः ककारस्य अन्तिमो वर्णो यः अकार तत्प्रतिपाद्य ब्रह्म एवेत्यर्थः। उकारः मूल प्रकृतिः तस्य ब्रह्मणः चेतना चेतायमाना आकृतिः शक्तिः। मकारस्य च लुप्तस्य परिणममाना अविद्या लोपवतो ब्रह्मणः कोऽर्थः ककारात्परो य अकारः तस्य योऽर्थः लक्ष्य स्वरूपं तत्सम्प्रतिपद्यते तदैक्यं प्राप्नोतीत्यर्थः। एवं उपास्येति शेषः। तथा च श्रुति "आप्लवस्य प्रप्लवस्य आण्डीभवज मा मुहुः, सुखादीन् दुःख निधनां प्रति मुंचस्व स्वां पुरमिति।" अस्यार्थः हे जन्म मरण युक्त जीव! त्वं आप्लवस्व जीवन्मुक्तोभव। प्रप्लवस्व साक्षात् मुक्तोभव, आण्डी ब्रह्माण्डान्तर्वर्ती संसारी मुहु र्मा भव, मा भूः। संसारी चेत् किमपराध इत्याशङ्क्याह-सुखादीं वैषयिक सुख हेतुं दुःख निधनां दुःखमेव निधने अन्ते यस्यास्ताम् स्वांपुरम् स्थूल सूक्ष्म रूप देह द्वयम्, प्रतिमुंचस्व।

कं सुख, अकं = दुःख सुख-दुःख जिसमें दोनों हैं, उस जीव को काकी शब्द से कहा अर्थात् अविद्या में प्रतिबिम्बित जीव, मुख = मुखस्थानीय बिम्बभूत ब्रह्म, उसका प्रतिपादक जो ककरान्त मुखं काकाक्षि न्याय से यह ईश्वर जीव दोनों में घटित होता है, अर्थात् जैसे कौवा दायें बायें देखने के लिये एक ही पुतली को घुमाता है वैसे काकी मुखी का सम्बन्ध ईश्वर और जीव दोनों से है। यहां पर श्लेषालंकार होने से काकी के प्रथम ककार का अन्तिम अक्षर अकार यह प्रणव की अकार मात्रा जागृत के अभिमानी विश्व तथा जागृत अवस्था तीनों का बोधक है। इस अकार मात्रा के सम्बन्ध में पंचीकरण में कहा है। पंचीकृत पंच महाभूत तथा उनके कार्य सब मिलकर विराट कहा जाता है। अर्थात् आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच के पांच-पांच भागों को मिलाकर पच्चीस तत्त्वों से व्यष्टि में जीव के स्थूल शरीर का अभिमानी विश्व तथा समष्टि में विराट कहते हैं। यह जीवात्मा का स्थूल शरीर है। स्पष्ट रूप से पंच

ज्ञानेन्द्रियों के विषयों की उपलब्धि जाग्रत अवस्था है। इन दोनों का अभिमानी आत्मा व्यष्टि में विश्व, समष्टि में वैश्वानर या विराट है यह तीनों मिलकर अर्थात् विश्व विराट तथा जाग्रत अवस्था तीनों ओंकार के प्रथम अकार का अर्थ है।

उकारश्चेतना कृतिः जीव के वाचक स्थूल शरीर तथा अकार मात्रा से परे जोड़कर वह "सूक्ष्म पंच महाभूत" जिनका पंचीकरण नहीं हुआ जो सभी कार्यों में व्याप्त है तथा इनका कार्य सत्रह तत्त्वों वाला (पंच कर्मेन्द्रिय पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच प्राण मन तथा बुद्धि) लिंग या समष्टि सूक्ष्म शरीर, हिरण्य गर्भ कहा जाता है। सभी कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों के करणों के लीन होने पर जागृत अवस्था के संस्कारों से उत्पन्न विषय सहित इन दोनों का अभिमानी आत्मा तैजस कहा जाता है। यह तीनों मिलकर ॐ की उकार मात्रा का अर्थ है। अर्थात् तैजस, स्वप्नावस्था तथा हिरण्यगर्भ यह उकार का अर्थ है।" इसलिये उकारश्चेतना कृति यह कहा। चेतना कृति का अर्थ करते हैं हिरण्य गर्भात्मक तैजस वाचक है जिसका उसे चेतना कृति कहा। **मकारस्य** काकी मुख के नाम से कहे हुये उकार से पूर्व कहा गया मकार स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों का कारण आत्मा के अज्ञान से आभासित होने वाला समष्टि कारण शरीर के अभिमानी को अव्याकृत कहते हैं। यह न सत् है न असत् है न सत् असत् दोनों है। न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न, वह न निरवयव है न सावयव है न उभयात्मक है अर्थात् मिथ्या होने पर भी प्रतीत होता है। एक मात्र जीवात्मा परमात्मा की एकता कराने वाले ज्ञान के द्वारा निवृत्त होता है। जैसे प्रकाश से अन्धकार निवृत्त होता है वैसे ही ज्ञान से अज्ञान दूर होता है। सभी प्रकार के ज्ञानों का उपसंहार होने पर कारण आत्मा रूप से स्थिर सुषुप्ति अवस्था है। सुषुप्ति तथा स्वप्न में थोड़ा भेद है स्वप्न में दसों इन्द्रियां अपना काम नहीं करती", मन बुद्धि जागते हैं। किन्तु गाढ़ निद्रा में मन बुद्धि भी सो जाते हैं। साक्षी चेतन से निद्रा के आनन्द को भोगता है। इसलिये जागने के बाद कहता है मैं ऐसा सुख से सोया कि कुछ नहीं जाना। इसमें कुछ नहीं जाना, मन बुद्धि के अज्ञान के कारण नहीं जाना। जब कुछ नहीं जाना तो निद्रा के सुख को किसने जाना? साक्षी चेतन ने जाना। व्यष्टि-समष्टि चेतन का अभिमानी आत्मा व्यष्टि में प्राज्ञ तथा समष्टि में ईश्वर है। यह तीनों कारण शरीर, सुषुप्ति अवस्था तथा प्राज्ञ ॐ के तीसरे मकार शब्द का अर्थ है। यह तीनों अनात्मा दुःख रूप हैं। **लुप्तस्य** इन तीनों का लय करने पर अकार को उकार में, उकार को मकार में, मकार को अर्द्धमात्रा में लीन करने पर कोऽर्थः-ककार

से परे जो अकार उसका जो अर्थ =लक्ष्य =स्वरूप मकार से परे ॐ का जो अर्थ लक्ष्य स्वरूप यह उपलक्षण है अर्थात् उकार का भी यही अर्थ, लक्ष्य स्वरूप समझना चाहिये अर्थात् ॐ आत्मा सबका साक्षी केवल ज्ञान स्वरूप है वहां पर अज्ञान तथा अज्ञान का कार्य तीन अवस्था, तीन गुण, तीन अभिमानी नहीं हैं, किन्तु अविनाशी; शुद्ध ज्ञान स्वरूप अर्थात् नित्य शुद्ध नित्यबुद्ध, सत्य, नित्य मुक्त, परमानन्द, अद्वितीय मैं ब्रह्म ही हूं।" **सम्प्रतिपद्यते** ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त करता है, अनुभव करता है, ऐसे ब्रह्म वेत्ताओं को यह आत्मा ब्रह्म है, जो मेरे शरीर में परम पुरुष है तथा जो आदित्य मण्डल में है, ये दोनों एक हैं। तुम ब्रह्म हो, मैं ब्रह्म हूं। इस प्रकार का अनुभव होता है। इन श्रुतियों का भाव ही श्लोक में कहा है। **पाठान्तर व्याख्या—कं च अकं च काके** सुख दुःख है जिसके वह काकी =जीव उसके प्रतिपादक शब्द का **मुखे** = अग्रे ककार का अन्त अकार = ब्रह्म **चेतनाकृतिः** जीवरूप से प्रतीत होने वाला ब्रह्म, अर्थात् ब्रह्म ही अविद्या से जन्म मरण रूप संसार प्राप्त करता है इस न्याय से। **मकारस्य** जीव के अकार का **लुप्तस्य** उपाधि के निवृत्त होने पर **कोऽर्थः** अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप यह अर्थ है, उस **काकी मुखे** ऊपर कहे प्रकार से जीवात्मा की एकता का अनुसन्धान करने वाला **सम्प्रति पद्यते** ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है। अथवा **हे काकी मुख !** हे जीव ! तुम ब्रह्म हो। **ककारान्त** ककार अन्तिम अक्षर जो अकार **तत्** उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है। **उकारः** उस ब्रह्म की मूल प्रकृति **चेतना** चैतन्य होकर **कृतिः** शक्ति **मकारस्य च लुप्तस्य** परिणाम को प्राप्त हुई अविद्या का लोप होने पर ब्रह्म ही है। **कोऽर्थः** ककार से परे जो अकार उस का जो लक्ष्य स्वरूप है। **तत्सम्प्रतिपद्यते** उपाधियों को त्याग कर लक्ष्यार्थ में दोनों की एकता प्राप्त करता है यह अर्थ है। अर्जुन से भगवान् कहते हैं इस ऐक्य भाव से ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये यह इसका अवशिष्ट अर्थ है।

भावार्थ—अपने अज्ञान से जीव का जो सच्चिदानन्द स्वरूप असत्वापादक तथा आभानापादक आवरण से ढका हुआ है उसके कारण जीव शुभाशुभ कर्मों को करता है तथा उसके सुख-दुःख को भोगता है। उसी जीव को यहां काकी मुख शब्द से कहा है। वह जीव स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीरों के द्वारा जागृत स्वप्न सुषुप्ति में विश्व, तैजस, प्राज्ञ के नाम से कहा जाता है। ककार का जो अन्तिम अक्षर अकार है वह स्थूल, विश्व तथा जागृत अवस्था का अभिमानी विश्व कहा जाता है। यह ॐ के अकार का अर्थ हुआ। उकारश्चेतना कृतिः जो

कहा है। प्रणव का दूसरा अक्षर उकार है इसका सूक्ष्म शरीर, स्वप्नावस्था तथा आभासित भोग है यह स्वप्न का अभिमानी है। उकार का यह वाच्यार्थ है। प्रणव का अन्तिम अक्षर मकार इसे प्राज्ञ कहते हैं। यह अज्ञान की प्रधानता वाला कारण शरीर, सुषुप्ति अवस्था का अभिमानी है। यह तीनों शरीर, तीनों अवस्थाएं तथा तीनों अभिमानी अविद्या द्वारा कल्पित तथा मिथ्या हैं। अतः पूर्वोक्त विश्व के कार्य सहित अकार को उसके कारण उकार तैजस में लीन समझे, तैजस रूपी कार्य को भी उपर्युक्त वस्तुओं सहित इसके कारण प्राज्ञ मकार में लीन करे। जिसे व्यष्टि में विश्व तैजस प्राज्ञ कहा है उसे ही समष्टि में विराट हिरण्यगर्भ, ईश्वर कहा है। जैसे वृक्ष समष्टि है तथा वृक्ष की शाखाएं पत्ते फूल और फल व्यष्टि हैं अर्थात् अनेकों शाखाएं फूल फल मिलकर एक वृक्ष होता है। वैसे ही विराट को हिरण्यगर्भ में हिरण्यगर्भ को सूत्रात्मा ईश्वर में लीन कर दे यह अकार, उकार, मकार के समष्टि व्यष्टि भेद से वाच्यार्थ हुये। अन्त में मकार को ॐ कार में अर्थात् निरुपाधिक शुद्ध ब्रह्म में लीन करे। प्रणव को अर्द्धमात्रा में लीन करने के अनन्तर मैं निरुपाधिक शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं। प्रणव को अपना स्वरूप समझ कर प्रणव ब्रह्म का ध्यान करे यह भाव है। इसी बात को आगे वेद मंत्र से स्पष्ट करते हैं—

आप्लवस्व प्राप्लवस्व आण्डीभवजमामुहुर्माभूः सुखादीं दुःखनिधनां प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्। इसका अर्थ है हे जन्म मरण से युक्त जीव तुम जीवन मुक्त हो **प्राप्लवस्व** साक्षात् मुक्त हो। आण्डीभव ब्रह्माण्ड में बार-बार जन्म-मरण को मत प्राप्त करो। **मुहुर्माभूः** बार-बार जन्म-मरण को मत प्राप्त करो। मैंने जन्म-मरण की प्राप्ति किस अपराध से की? इस पर उत्तर देते हैं **सुखादीन्** वैषयिक सुखों की इच्छा ही इसमें कारण है। **दुःख निधनां** परिणाम में जिसका दुःख ही है ऐसे **स्वांपुरम्** अपने स्थूल, सूक्ष्म रूपी दोनों शरीरों को **प्रति मुञ्चस्व** त्याग दो। दोनों शरीरों के न रहने पर कारण शरीर अपने आप ही नहीं रहता ॥१ ॥७ ॥

यावत् पश्येत् खगाकारं तदाकारं विचिन्तयेत्।

जब तक खगाकार = हंस स्वरूप से देखे साक्षात् करें तदाकारं = ब्रह्म स्वरूप से चिन्तन करें, ध्यान करें।

खमध्ये कुरु चात्मानमात्म मध्ये च खं कुरु।
आत्मनं ख मयं कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

हृदंयाकाश में परमात्मा को स्थित करे अर्थात् अभिन्न रूप से चिन्तन करें तथा आत्ममध्ये = परमात्मा में शरीर तथा जगत् के उपादान कारण का चिन्तन करे। आत्मा और परमात्मा का एकत्व चिन्तन करते हुये अन्य का चिन्तन न करें। अर्थात् ब्रह्म का ही चिन्तन करें। यद्वा-ख शब्द से जीव कहा गया श्रुति ने **आकाश शरीरं ब्रह्म** आकाश को ब्रह्म का शरीर कहा है। आत्म शब्द से परमात्मा कहा गया है। इन दोनों की एकता के बोध के अनन्तर किसी दूसरे का चिन्तन न करें।

प्रभाशून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं निरामयम्।
सर्वशून्यं निराभासं समाधिस्तस्य लक्षणम्॥
त्रिशून्यं यो विजानीयात् स तु मुच्येत बन्धनात्॥१४॥

प्रभा शून्यं = सबको प्रकाशित करने वाली वृत्ति के प्रकाश से रहित अर्थात् स्वयं प्रकाश जब वृत्ति सबको प्रकाशित करती है तो आत्मा को क्यों नहीं करती ? तब कहते हैं मनः शून्यं = मन के बिना वृत्ति प्रकाश नहीं देती मन से वृत्ति को प्रकाश मिलता है, चूंकि आत्ना मन से परे है, इसलिये मन शून्य कहा। बुद्धि शून्यं = मन को मनन करने की शक्ति बुद्धि से मिलती है किन्तु बुद्धि मन को प्रकाशित करती है आत्मा को जानने की शक्ति मन तथा बुद्धि में नहीं है, बुद्धि जड़ है इसमें ज्ञान शक्ति आत्मा से प्राप्त होती है। अतः बुद्धि शून्य कहा है, आत्मा भ्रम रहित होने के कारण निराभास है अतः सर्वशून्य कहा। निरामयम् = आमय रोग शरीर में होता है। तीनों शरीरों से आत्मा रहित है इसलिये निरामयम् कहा। भाव यह है कि सब को मिथ्या समझ कर आनन्द एक रस ब्रह्म का ध्यान करे। अब समाधिस्थ का लक्षण बताते हैं। त्रिशून्यं, वृत्ति, मन तथा बुद्धि तीनों से रहित जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों से रहित जो ब्रह्म में समाहित होता है, वह जन्म-मरण से छूट जाता है। इस प्रणव ब्रह्म का चिन्तन यति अखण्ड, अविच्छिन्न तैल धारा वत् तथा दीर्घ घण्टा नादवत् यति अवाच्य ब्रह्म का ध्यान करने वाला वेदज्ञ है। अपने को अधरारणि करके प्रणव को उत्तरारणि करके ध्यान रूपी मन्थन के अभ्यास से अन्तः करण में छिपे हुये ब्रह्म का दर्शन करता है।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डस्थः पिण्ड वर्जितः।
विमलः सर्वदा देही सर्वव्यापी निरंजनः॥२७॥

कायस्थोऽपि न कायस्थः कायस्थोऽपि न जायते।
कायस्थोऽपि न भुञ्जानः कायस्थोऽपि न बध्यते ॥२८॥
कायस्थोऽपि न लिप्तः स्यात् कायस्थोऽपि न बाध्यते।
तिल मध्ये यथा तैलं क्षीर मध्ये यथा घृतम् ॥२९॥
पुष्प मध्ये यथा गन्धः फल मध्ये यथा रसः।
काष्ठाग्निवत् प्रकाशेत आकाशे वायु वच्चरेत् ॥३०॥
तथा सर्वगतो देही देह मध्ये व्यवस्थितः।
मनस्थो देहिनां देवो मनो मध्ये व्यवस्थितः ॥३१॥
मनस्थं मन मध्यस्थं मध्यस्थं मन वर्जितम्।
मनसा मन आलोक्य स्वयं सिद्ध्यन्ति योगिनः ॥३२॥
योगामृत रसं पीत्वा वायुभक्षः सदा सुखी।
यममभ्यस्यते नित्यं समाधि मृत्यु नाशकृत् ॥३३॥
ऊर्ध्व शून्यमधः शून्यं मध्यशून्यं यदात्मकम्।
सर्व शून्यं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम् ॥३४॥

अर्जुन उवाच— अदृश्ये भावना नास्ति दृश्यमेतद्विनश्यति ॥३५॥
अवर्णमस्वरं ब्रह्म कथं ध्यायन्ति योगिनः ॥

श्री भगवानुवाच—ऊर्ध्वं पूर्णमधः पूर्णे मध्य पूर्णं यदात्मकम् ॥३६॥
सर्व पूर्णे स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम् ॥

अर्जुन वाच— सावलम्बस्याप्यनित्यत्वं निरालम्बस्य शून्यता ॥३७॥
उभयोरपि दुष्टत्वात् कथं ध्यायन्ति योगिनः ॥

श्री भगवानुवाच—हृदयं निर्मलं कृत्वा चिन्तयित्वाप्यनामयम् ॥३८॥
अहमेव इदं सर्वमिति पश्येत् परं सुखम् ॥

अर्जुन उवाच— अक्षराणि समात्राणि सर्वे बिन्दु समाश्रितः ॥३९॥
विन्दुभिर्भिद्यते नादः स नादः केन भिद्यते ॥

श्री भगवानुवाच—अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ॥४०॥
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ॥
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥४१॥

अर्जुन उवाच— भिन्ने पंचात्माके देहे गते पंचसु पंचधा ॥
प्राणै र्विमुक्ते देहे तु धर्माधर्मौ क्व गच्छतः ॥४२ ॥

श्री भगवानुवाच—धर्माधर्मौ मनश्चैव पंचभूतानि यानि च ॥
इन्द्रियाणि च पंचैव याश्चान्याः पंच देवताः ॥४३ ॥
ताश्चैव मनसा सर्वे नित्यमेवाभिमानतः ॥
जीवेन सह गच्छन्ति यावत्तत्वं न विन्दति ॥४४ ॥

देही जीव अज्ञानी की दृष्टि में देश काल से दूर रहने पर भी ब्रह्म वेत्ता के लिये दूर नहीं है। उसी अज्ञ की दृष्टि से शरीर में रहने पर भी असंग होने के कारण देह सम्बन्धी अध्यास रहित है। अतः वह निर्मल, सर्वव्यापी, स्वयं प्रकाश है। इस प्रकार से इसका ध्यान करें। यह पूर्वश्लोक २५ से सम्बद्ध है। देहाध्यासी के लिये शरीर में रहने पर शरीर सम्बन्ध रहित है। शरीर में रहते हुये भोग भोगने पर भी बन्धन को नहीं प्राप्त होता। शरीर में होते हुये भी लिप्त नहीं होता तथा बाधित नहीं होता। वह शरीर में कैसे रहता है इसे दृष्टान्त से बताते हैं जैसे तिलों में तेल, दूध में घी, पुष्पों में सुगन्धि तथा फल में स्वाद, आकाश में वायु, काष्ठ में अग्नि के समान शरीर में रहता है ॥३० ॥ वैसे ही सर्वव्यापी आत्मा शरीर में स्थित है, देहधारियों के मन में स्थित है, वह मन के मध्य में स्थित है अर्थात् वह मन का साक्षी है। संकल्प आदि से रहित है। शुद्ध मन से देखकर योगियों को स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। अष्टांग योग के अभ्यास, योग रूपी अमृत को पीकर वायु मात्र का आहार करने वाला यति, यहां वायु भक्षण का अर्थ हित, मित तथा पवित्र भोजन है ऐसी भिक्षा लेने वाला यति सदा सन्तुष्ट रहता है। यति की यह समाधि जन्म-मरण के बन्धन को नष्ट करती है। इस योगी का लक्षण बताते हैं। ऐसा योगी ऊर्ध्व देश, मध्य तथा अधः तीनों देशों, तीनों कालों के परिच्छेद से रहित सर्वत्र आत्म भावना करता है ॥३५ ॥ अर्जुन ने पूछा—जो दीखता नहीं उसमें भावना नहीं हो सकती। दृश्य नाशवान है। ब्रह्म अक्षर मात्रा से रहित है अर्थात् रूप रहित है, तब योगी जन ध्यान कैसे करते हैं? श्री भगवान् बोले—वह ब्रह्म ऊपर, मध्य तथा नीचे पूर्ण है। सर्व पूर्ण आत्मा की भावना समाधिस्थ का लक्षण है। अर्जुन ने पूछा—मूर्ति आदि आकार वाला नाशवान है। निरालम्ब मूर्ति आदि आधार से रहित खरगोश के सींग के समान शून्य है, दोनों ही दोष युक्त होने से योगी ध्यान कैसे करते हैं? भगवान् ने कहा निष्काम यज्ञ, यागादि से

जिन्होंने अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है, उन्हें शून्य नहीं दीखता। इस साधन से निर्मल हुये अन्तःकरण वाले मैं तथा सारा जगत् ब्रह्म रूप है ऐसा चिन्तन करते हैं। अर्जुन ने पूछा—हे भगवन् ! मात्राओं सहित सभी अक्षर बिन्दु के आश्रित हैं। विन्दुनाद स्वरूप है, वह नाद कला से सम्बन्धित है। उस कला का किससे सम्बन्ध है। यद्यपि मूल में 'सनादः केन भिद्यते' यहीं तक प्रश्न है, तथापि नाद का कला से सम्बन्ध प्रसिद्ध है अतः नाद शब्द कला का उपलक्षण है।

भगवान् ने उत्तर दिया—हे अर्जुन, शब्द दो प्रकार का है। एक आहत दूसरा अनाहत। चोट करने से शब्द निकलता है उसे आहत कहते हैं। बिना चोट के जो शब्द होता है वह अनाहत है। कानों में उंगली लगाने से दस प्रकार का शब्द सुनाई पड़ता है, वह अनाहत है। उस शब्द की जो ध्वनि, उस शब्द के भीतर ज्योति, ज्योति के अन्तर्गत मन, वह मन जब लय हो जाता है वही विष्णु का परम पद है। अर्थात् वेदान्त जन्य निर्विकल्प समाधि में मन की वृत्ति का जब लय हो जाता है, तब उत्कृष्ट ब्रह्म स्वरूप की अनुभूति होती है ॥४१ ॥ अर्जुन ने पूछा—पंच महाभूतों से बने स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर शरीर के पंच प्राणों से रहित हो जाने पर जीव के लिये पुण्य पाप कहां जाते हैं? भगवान् उत्तर देते हैं—पुण्य पाप तथा मन पृथ्वी आदि पंच महाभूत, पंच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां इनके पांच-पांच देवता यह सबके सब जब तक जीव को तत्त्व बोध नहीं होता तब तक जीव के साथ ही जाते हैं ॥४६ ॥ अर्जुन ने पूछा—चराचर सभी प्रकार के जीव इन सब का आधार लिंग शरीर तैजस है यह तैजस से सिद्ध होते हैं। अर्जुन पूछते हैं कि तैजस जीव की सिद्धि किससे होती है। इसका उत्तर क्रमानुसार देते हुये भगवान् ने कहा—तैजस का आधार कारण शरीराभिमानी प्राज्ञ है इससे तैजस की सिद्धि होती है तथा प्राज्ञ की सिद्धि तुरीय से है।

हे अर्जुन ! मुख तथा नसिका के बीच में प्राण सदैव घूमता है अर्थात् अजपा का जप जीव निरन्तर करता है। प्राणों को आकाश पी जाता है। जब ब्रह्म वेत्ता योग की महिमा से ब्रह्म ज्ञान के अनन्तर ज्ञानी का जब तक प्रारब्ध है तब तक शरीर रहता है फिर जीव के कारणभूत प्राणों को आकाश पी जाता है अर्थात् जीव की अविद्या की निवृत्ति हो जाती है। जीव के ब्रह्म भाव की प्राप्ति के अनन्तर जीवत्व नहीं रहता है।

अत्यन्त मलिनो देहो देही चात्यन्त निर्मलः।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ॥५७॥

स्थूल शरीर जड होने से अत्यन्त मलिन है, देही आत्मा अहंकार तथा उपाधि रहित होने से अत्यन्त निर्मल है। इन दोनों में अन्तर शरीर कल्पित, आत्मा को सच्चिदानन्द स्वरूप जानकर किसकी पवित्रता की जाय, शरीर की या आत्मा की। यदि कहो शरीर की तो जड शरीर जड जल से शुद्ध नहीं हो सकता। यदि कहो आत्मा की, तो आत्मा तो पहले ही अत्यन्त शुद्ध है तो शुद्ध को किससे शुद्ध किया जाए।

गौडपादीय टीका युक्त उत्तर गीता का प्रथम अध्याय समाप्त

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, अष्टमोऽध्यायः ॥९॥

अथ नवमोऽध्यायः

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! जैसे नदी से भरा हुआ पात्र का जल नदी में छोड़ने से एक हो जाता है। दूध में दूध, घी में घी एक हो जाता है वैसे ही जीव उपाधि रहित होकर निरुपाधिक ब्रह्म में लीन हो जाता है। जो एक मुहूर्त दो घड़ी भी मन को एकाग्र करके ध्यान करता है। वह सौ जन्मों के पापों से रहित हो जाता है। एक पैर पर खड़े होकर हज़ारों वर्ष तप करने से जो फल मिलता है वह एक ध्यान योग की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है।

अलोड्य चतुरो वेदान्धर्मशास्त्राणि सर्वदा।
यो वै ब्रह्म न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ॥२॥४०॥
यथा खरश्चन्दन भारबाही सारस्य वाही नतु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य सारं त्वजानन् खरवत् वहेत् सः ॥४१॥
अनन्तकर्म शौचं च जपो यज्ञस्तथैव च।
तीर्थ यात्रादि गमनं यावत्तत्वं न विन्दति ॥४२॥
गवामनेक वर्णानां क्षीरं स्यादेक वर्णकम्।
क्षीर वद् दृश्यते ज्ञानं देहिनां च गवां यथा ॥४३॥
हन्यान् मुष्टिभिराकाशं क्षुधार्तः खण्डयेत् तुषम्।
नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्ति र्नजायते ॥४६॥



चारों वेदों तथा सम्पूर्ण धर्म शास्त्रों का सदैव विचार करने पर भी यदि ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानता। उसका अध्ययन कर्छुल के भोजन के स्वाद के समान व्यर्थ है। जैसे गधा चन्दन के बोझ को ढोता है, उसके सार सुगन्धि को नहीं जानता। वैसे ही विद्वान् बहुत शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी शास्त्रों के तत्त्व को नहीं जानता उसके लिये शास्त्रों का अध्ययन गधे के बोझ के समान है। जब तक ब्रह्म ज्ञान न हो तब तक तीर्थ यात्रा तथा कर्मों का अनुष्ठान करे। ब्रह्मबोध होने पर सर्व व्यर्थ है। अतः कहते हैं अनन्त कर्म हैं, शौच, जप, यज्ञ तीर्थ यात्रा तब तक करें जब तक ब्रह्म ज्ञान न हो। शरीरों के भिन्न होने पर भी आत्मा की एकता को दृष्टान्त से कहते हैं, जैसे अनेक रंग की गौओं का दूध सफेद ही होता है वैसे ही देहधारियों का ज्ञान दूध के समान है तथा शरीर गायों के समान है। भूख से व्याकुल भूख की निवृत्ति के लिये मुट्ठी से आकाश का हनन करे अथवा भूसी को कूटे तो परिश्रम के सिवा और कुछ भी नहीं मिलता। वैसे ही जब तक ब्रह्म को नहीं जानता तब तक मुक्ति नहीं होती है।

॥ उत्तर गीता का दूसरा अध्यायः समाप्त हुआ ॥

पुराणं भारतं वेद शास्त्रणि विविधानि च।
पुत्रदारादि संसार योगाभ्यासस्य विघ्न कृत् ॥३ ॥२ ॥
अग्निदेवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमास्वल्प बुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनः ॥७ ॥
दृश्यते चेतखगाकारं खगाकारं विचिन्तयेत्।
सकलं निष्कलं सूक्ष्मं मोक्षद्वारेण निर्गतम् ॥११ ॥
भिक्षान्नं देह रक्षार्थं वस्त्रं शीतनिवारणम्।
अश्मानं च हिरण्यं च शाकं शाल्योदनं तथा ॥
समानं चिन्तयेद्योगी यदि चिन्त्यमपेक्षते।
भूत वस्तून्यशोचित्वे पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६ ॥

निर्विकल्प समाधि में अनेक शास्त्रों का ज्ञान रूपी पाण्डित्य विघ्न रूप है अतः कहते हैं—सभी पुराण, महाभारत, वेदादि शास्त्र, स्त्री पुत्रादि संसार योगाभ्यास में विघ्न कारक है अतः इनका त्याग कर दे। द्विजातियों की अग्नि में मुनियों के हृदय में, स्वल्प बुद्धि वालों की प्रतिमा में, तथा समदर्शी के लिये सर्वत्र देवता है। अर्थात् उनकी सर्वत्र समदृष्टि है। यदि हंस

रूप से पर ब्रह्म की स्थिति हो तो हंस रूप से चिन्तन करें । क्योंकि त्रिदेव हंस रूप हैं । वह स्वयं प्रकाश, (सगुण) कलातीत, (निर्गुण) सूक्ष्म अर्थात् अणु से भी अणुतम है । मुक्ति के ज्ञान मार्ग द्वारा ही जानने योग्य हैं । इस प्रकार का समदर्शी योगी शरीर रक्षा के लिये भिक्षा ले, शीत निवारण के लिये वस्त्र ले (शरीर को अलंकृत करने के लिये नही) पत्थर तथा स्वर्ण को समान माने, शाक तथा चावल भात आदि को समान समझे । भाव यह है कि अनुकूल और प्रतिकूल में समान रहे । भूत भविष्य की चिन्ता से रहित होकर वर्तमान में सन्तुष्ट रहने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता है ।

॥ इति उत्तर गीता सम्पूर्ण ॥

सुना जाता है कि माण्डूक्य कारिका तथा उत्तर गीता की टीका के अतिरिक्त भी भगवान् गौडपादाचार्य जी के सांख्य दर्शन तथा योग दर्शन पर भी भाष्य हैं । आप जीवन्मुक्त महात्मा इसी रूप में आज भी विद्यमान हैं । अधिकारी पुरुषों को उनका दर्शन होता है ।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, नवमोऽध्यायः ॥९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

३४६ पूज्य पाद भगवान् गोविन्द पादाचार्य

श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी महाराज श्री गौडपादाचार्य जी के शिष्यों में परम कृपा पात्र प्रधान शिष्य थे । बाल्यावस्था में ही उनसे दीक्षा प्राप्त की । वे नर्मदा तट पर एकान्त में योगाभ्यास करते थे । सदैव समाधि में रहने के कारण इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता ।

जिस समय भगवान् भाष्यकार इनके पास संन्यास के लिये गये । स्तुति करके प्रणाम किया । तब इन्होंने पूछा, तुम कौन हो, शंकर ने **चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्** आदि से परिचय दिया । प्रसन्न होकर आपने संन्यास दीक्षा दी ।

एक बार भ्रमण करते हुये इनके परमेष्ठी गुरू वेद व्यास जी इनके आश्रम में पधारे । उन्होंने उपनिषदों की व्याख्या की । तब इन्होंने उनसे पूछा । "हे महर्षे ! आपने अति जटिल ब्रह्म सूत्रों की रचना की है । आपके अतिरिक्त कोई अल्पज्ञ जीव आपके भाव को न समझने के कारण सूत्रों का यथार्थ भाष्य नहीं कर पायेगा । अतः आप ही इस पर भाष्य लिखें" उत्तर

में व्यास जी ने कहा कि "भाष्य रचना का कार्य मैंने तुम्हारे उस शिष्य पर सौंपा है, जो नर्मदा की बाढ़ का जल अपने कमण्डलु में भर लेगा।" यह कहकर व्यास जी वहां से चले गये।

कुछ विद्वानों का कथन है कि महर्षि पतंजलि ही संन्यास के बाद गोविन्द भगवत्पादाचार्य के नाम से विख्यात हुए। व्यास जी से लेकर गोविन्द भगवत्पादाचार्य तक चारों गुरुओं की आयु या काल के सम्बन्ध में निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि व्यास, शुक तथा गौडपादाचार्य के समान गोविन्द भगवत् पादाचार्य भी सैंकड़ों वर्षों की समाधि में रहते थे। जिस समय श्री शंकराचार्य इनके पास संन्यास के लिये गये थे तो इनसे पूर्व कई ब्राह्मण सैंकड़ों वर्षों से संन्यास की इच्छा से युवावस्था में आये थे जो अत्यन्त बृद्ध हो चुके थे। श्री शंकर जी को छः दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ी। अतः किसी भी मनीषी को ऋषि की आयु मानवीय नाप तोल से नापने का अधिकार नहीं है। **—कल्याण सन्त अंक से साभार**

पूज्य पाद भगवान् गोविन्द भगवत् पादाचार्य जी का जीवन चरित्र (पतंजलि चरितम् से)

पूज्य पाद श्री गोविन्द भगवत् पादाचार्य जी का संन्यास से पूर्व का नाम चन्द्र शर्मा था। भगवान् पतंजलि ही शिष्य का उद्धार करने के लिये चन्द्र शर्मा के नाम से प्रसिद्ध हुये। इससे पूर्ववर्ती आचार्य विष्णु शय्या,[३४७] शिवचरण मंजीर,[३४८] भूमण्डली वह,[३४९] लक्ष्मण,[३५०] बलराम,[३५१] पतंजलि आदि थे। इन्होंने श्री गौडपादाचार्य जी से संन्यास लिया। संन्यास का नाम, जय गोविन्द मुनि तथा श्री गोविन्द भगवत्पाद दो नाम थे। रेवा नर्मदा नदी के तट पर आश्रम बनाकर समाधि का अभ्यास करते थे। यह बात "जगद् गुरु रत्न माला" की सुषमा टीका में कही है।

पतंजलि जी के शिष्य को शाप मुक्त करने के अनन्तर चन्द्र शर्मा इसी नदी तट पर पहुंचे। एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम किया शीतल जल पीकर थकावट दूर की। इसके पश्चात् समुद्र तट पर विचरण करने लगे। वहां पर इनको एक माखन वेचने वाली कन्या ने भूखा देखा। उस कन्या ने मुनि को देखकर अपनी मांखन की मटकी उतार कर नीचे रखकर उन्हें प्रणाम किया। भक्ति से हाथ जोड़कर नम्र भाव से पूछा हे तपोधन ! मैंने अनेक ऋषियों का फल, जल से स्वागत किया है। मेरी सेवा से प्रसन्न होकर ऋषियों ने वर देते हुये कहा, पतंजलि के एक शिष्य उनका महाभाष्य पढ़कर आयेंगे। हे कमललोचने ! तुम उनको प्रणाम कर उनका

पूजन करना। साक्षात् पतंजलि ही उस रूप में आयेंगे उनसे तुम्हारा कल्याण होगा। ऐसा कहकर चले गये। तब मैं उन्हीं की खोज में हूं।

यदि आप वही हैं, तो मेरा जन्म सफल हो गया। आप बहुत भूखे प्रतीत होते हैं। मेरा मक्खन ग्रहण करके मुझे कृतार्थ करो। उन्होंने उस कन्या का मक्खन सेवन किया। थकावट दूर हो गयी। फिर संकेत से समझाया मैं वही ब्राह्मण हूं। उसने कहा—हे कृपानिधे ! आप मेरे साथ विवाह करें उन्होंने उसकी प्रार्थना स्वीकार की, विवाह हो गया। इसके अतिरिक्त इनके तीन पत्नियां और थीं। क्रमानुसार इनके चार पुत्र हुये। चारों का विवाह होने के अनन्तर आप गंगा तट पर चले गये।

वहां पर शुकदेव जी के परम कृपा पात्र शिष्य गौडपादाचार्य जी से संन्यास ले लिया। उनसे संन्यास की प्रतीक्षा में लगभग १५०० वर्ष की प्रतीक्षा करनी पड़ी। इतने काल तक परमाचार्य समाधि में रहे। फिर गुरु आज्ञा प्राप्त कर भगवान् विश्वनाथ की नगरी काशी में आ गये। गंगा तट मणिकर्णिका में ज्ञानोपदेश करते हुये जीवों का कल्याण करने लगे। आप अमल आत्मा परम हंस संन्यासियों को महाभाष्य सहित ब्रह्म तत्त्व का उपदेश करने लगे। आपने कहा हे यतियो ! जगत स्वप्न वत् तथा मरु मरीचिका वत् मिथ्या है। ब्रह्म ही एक मात्र सत्य हैं। कुछ काल काशीवास के अनन्तर गंगा से रामेश्वर तक तीर्थों की यात्रा करते हुये योगियों की परम भूमि बद्रिकाश्रम पहुंचे। सारे जगत को अद्वैत ब्रह्म में देखते हुये वहां पर भी वेदान्त का प्रचार कर अनेकों के साथ शास्त्रार्थ किया। वहां से भगवान् वेद व्यास जी की आज्ञा प्राप्त करके भगवान् शंकर की प्रतीक्षा में नर्मदा तट पर आकर रहने लगे।

एक बार भ्रमण करते हुये गोविन्द स्वामी जी के परमेष्ठी गुरु भगवान् वादरायण इनके आश्रम में पहुंचे। इन्होंने बारह बार दण्ड सहित प्रणाम करते हुये, स्तुति की। पाद्यार्घ्य आदि से पूजन किया। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना निवेदित किया, हे स्वामिन् ! आपने ग्यारह सौ पचास उपनिषद मंत्रों के भाव को "ब्रह्मसूत्र" में रचकर गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ किया है, परन्तु कलिकाल का अल्पज्ञ जीव इनके महातात्पर्य को समझने में असमर्थ होगा। आप सर्वज्ञ हैं। सर्वज्ञ ही इस पर भाष्य कर सकता है। अतः अपने भावों को व्यक्त करने के लिये इस पर भाष्य लिखिये। तब व्यास जी ने कहा। हे गोविन्द ! इसकी तुम चिन्ता मत करो। हम सब ऋषियों तथा देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने द्रविड

ब्राह्मण बालक के रूप में जन्म लेकर प्रस्थान त्रयी पर भाष्य लिखने का वचन दिया है। अतः शंकर जी थोड़े ही समय में "कालटी" में जन्म लेकर आठ वर्ष की आयु में तुम से संन्यास की प्रार्थना करेंगे। अतः जो बालक नर्मदा की बाढ़ का जल अपने कमण्डलु में भर ले तथा "विष्णु सहस्रनाम" पर भाष्य लिख दें उसे शिवावतार समझना। वे दिग्विजय करके वैदिक सनातन धर्म का प्रचार करते हुये केवलाद्वैत मत की स्थापना करेंगे। ऐसी भविष्य वाणी करके व्यास जी वहां से चले गये। तब से गोविन्द भगवत्पादाचार्य शंकरावतार की प्रतीक्षा करने लगे। इनका जीवन चरित तथा कृतित्व बहुत कम मिलता है। अब दो श्लोकों से इनकी वन्दना करके इनकी जीवन गाथा पूर्ण कर रहे हैं।

वन्दे गोविन्द पादाब्ज चिन्ता सन्तुष्ट चेतसम्।
गोविन्द भगवत् पूज्यपादमादीनवच्छिदम्॥
रेवातीर निवासी पविरज्ञानाद्रि भेदने सुमहान्।
गोविन्दार्यो दद्यात् श्री विंद्यातारिणीं भवाम्भोधे॥

—श्री शंकर मकरन्द से

पूज्य पाद गोविन्द भगवत्पादाचार्य के चरण कमलों में मैं प्रणाम करता हूं। जो संसार की चिन्ता से ग्रस्त जीवों की दीनता, शोक, विघ्न बाधा दुर्भाग्य का छेदन करने वाले हैं। रेवा (नर्मदा) तीर निवासी गोविन्दार्य जो कि अज्ञान रूपी पर्वत को छेदन करने में वज्र के समान हैं। वे संसार सागर से तारने वाली ब्रह्म विद्या हमें प्रदान करें।

३४७ से ३५१ तक पांच गुरु ॥ इति गोविन्द भगवत्पादाचार्य वृत्तम् ॥

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, दशमोऽध्यायः ॥१० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः

वेदान्त के व्यास जी से पूर्ववर्ती आचार्य

१. आचार्य वादरि—३५२—कुछ लोगों का कथन है कि भगवान् वेद व्यास जी का ही दूसरा नाम वादरायण और वादरि है। धर्म शास्त्रानुसार अपना नाम नहीं लेना चाहिये। अतः वादरि लिखा। कुछ विद्वान् कहते हैं कि वादरि व्यास जी से भिन्न थे। ब्रह्म सूत्र के १-२.३० सूत्र में ३।१।११, ४।३।७, ४।४।१०, में इनका मत दिया है तथा पूर्व मीमांसा

दर्शन के सूत्र ३ ।१ ।३ ।,६ ।१ ।२७,८ ।३ ।६,९ ।२ ।३० में भी आता है । आचार्य वादरि व्यास तथा जैमिनि जी से प्राचीन प्रतीत होते हैं । व्यास जी ने जैमिनि के सिद्धान्त का खण्डन करने के उद्देश्य से इनका मत उद्धृत किया है । अतः वादरि आचार्य भी वेदान्ती थे । इनके मत से नीचे लिखी बातें सिद्ध होती हैं—

१. इनके मतानुसार ब्रह्म महान् होने पर भी वालिस्त भर के हृदय में उसका स्मरण हो सकता है । २. वेदानुसार आचरण करने से सगुण ब्रह्म की प्राप्ति होती है । अमानव पुरुष ही ब्रह्म को प्राप्त करा सकता है । इनके मत में वेदज्ञ पुरुष के शरीरादि नहीं होते । ३. मुक्त पुरुष शरीर इन्द्रियों से रहित हैं । ४. इनके मत से वैदिक कर्म में सबका अधिकार है ।

२. आचार्य कार्ष्णाजिनि—(३५३) —आचार्य कार्ष्णाजिनि का उल्लेख ब्रह्म सूत्र में ३ ।१ ।९ में तथा पूर्व मीमांसा दर्शन ४ ।३ ।१७, ६ ।७ ।३५ में हुआ है । यह भी दोनों मीमांसकों से पूर्ववर्ती थे । व्यास जी ने इनका मत देकर अपने मत का समर्थन तथा जैमिनि के मत का खण्डन किया है । इनका मत वादरि से मिलता है ।

३. आचार्य आत्रेय—(३५४) —इनके मत का उल्लेख ३ ।४ ।४४ में करके इनके मत का खण्डन किया है । यह कर्मकाण्डी पूर्व मीमांसक थे । इनका मत है कि यजमान को ही उपासना का फल मिलता है । आचार्य, ऋत्विज आदि को नहीं । अतः सारी उपासना यजमान को करनी चाहिये । पुरोहित द्वारा न करवाये । परन्तु इनके सिद्धान्त का खण्डन व्यास जी ने आचार्य औडुलोमि का मत देकर किया है । जैमिनि जी ने वेदान्त के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये आत्रेय का मत लिया है तथा वादरि के वैदिक कर्म के सब अधिकारी हैं जैमिनि जी ने आत्रेय का प्रमाण देकर सभी का वैदिक कर्म में अधिकार है इस का खण्डन किया है । आत्रेय पूर्व मीमांसक प्रतीत होते हैं जो व्यास जी से पूर्व हुये हैं ।

४. आचार्य औडुलोमि—(३५५) —आचार्य औडुलोमि का नाम ब्रह्मसूत्र के १ ।४ ।२१, ३ ।४ ।४५, ४ ।४ ।६ में मिलता है । जैमिनि सूत्रों में नहीं । वे वेदान्त के भेदाभेद-वादी आचार्य थे । इनका सिद्धान्त है, कि व्यावहारिक सत्ता या संसार दशा में जीव ब्रह्म का भेद है । मुक्ति में अभेद है । पूर्व मीमांसक आत्रेय के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये व्यास जी ने इनका प्रमाण दिया है । इनके मत का व्यास जी ने ४ ।४ ।५१ में समर्थन किया है । इस सूत्र में बताया कि मुक्त पुरुष ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करके निष्पाप, सर्वज्ञ तथा

ऐश्वर्य का अधिकारी होता है। इसके विरुद्ध औडुलोमि का मत प्रकट किया है, कि आत्मा चैतन्य स्वरूप है। इस कारण से मुक्त होने पर भी चैतन्य मात्र रहता है। ईश्वर के सत्य संकल्पत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व आदि धर्म उसमें नहीं होते।

५. आचार्य आश्मरथ्य—(३५६) —इनके मत का वर्णन करके व्यास जी ने जैमिनि मत का खण्डन किया है। अतः ये वेदान्त के आचार्य सिद्ध होते हैं। वेदान्त दर्शन के १।२।२१, १।४।२० इन सूत्रों में इनका मत आया है। ब्रह्म सूत्र के भाष्य में शंकराचार्य जी ने तथा भामती टीका कार वाचस्पति मिश्र जी ने इन्हें विशिष्टाद्वैतवादी सिद्ध किया है। इनका सिद्धान्त है कि ब्रह्म अनन्त होने पर भी उपासक पर परम अनुग्रह करने के लिये हृदय में प्रकट होता है। इनके मत में विज्ञानात्मा अर्थात् विज्ञान मय कोश तथा परमात्मा में परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध है। आचार्य आश्मरथ्य के भेदाभेद का ही प्रचार आगे आचार्य यादव प्रकाश ने तथा चैतन्य महाप्रभु जी ने अचिन्त्य भेदाभेद रूप में किया है।

६. आचार्य काशकृत्स्न—(३५७) —भगवान् वेद व्यास जी ने इनके मत का समर्थन किया है। यह अद्वैतवादी थे।

७. आचार्य काश्यप—(३५८) —प्राचीन काल में इनका एक सूत्र ग्रन्थ था। भक्ति के आचार्य शाण्डिल्य ऋषि ने शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में आचार्य काश्यप तथा वादरायणि का मत देकर अपना सिद्धान्त स्थापित किया है। शाण्डिल्य ऋषि के मत के काश्यप भेदवादी तथा वेद व्यास अभेदवादी थे।

इन आचार्यों के अतिरिक्त असित, देवल, गर्ग, जैगीषव्य, पराशर, भृगु आदि प्राचीन ऋषियों के नाम वेदान्ताचार्यों में पाये जाते हैं। **—कल्याण के वेदान्त अंक से॥**

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे एकादशोऽध्यायः ॥११॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

श्री शंकराचार्य जी से पूर्ववर्ती आचार्य

प्राचीन वेदान्त दर्शन के भाष्यों के अध्ययन से पता चलता है, कि भर्तरि प्रपंचाचार्य, ब्रह्मनन्दी, टंक, गुहदेव, भारुचि, कपर्दी, उपवर्ष, वोधायन, भर्तृहरि, सुन्दर पाण्डेय, द्रविडाचार्य, ब्रह्मदत्त आदि अनेकों आचार्यों के नाम मिलते हैं। यह कहना कठिन है, कि इन सभी ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा या नहीं, परन्तु इनमें से किसी ने गीता पर, किसी ने ब्रह्मसूत्र तथा गीता दोनों पर भाष्य किये। उपनिषदों पर भी कुछ की व्याख्याएं मिलती थीं। भर्त्तरि प्रपंच ने कठोपनिषद् तथा वृहदारण्यक उपनिषद् पर भाष्य लिखा है। इनके भाष्य का खण्डन श्री शंकराचार्य जी, सुरेश्वराचार्य जी ने वार्तिक में तथा आनन्द गिरि जी ने किया है। इन आचार्यों के काल में इनका भाष्य मिलता था। ऐसा आभास मिलता है। भर्तरि प्रपंच का सिद्धान्त है, कि अकेले ज्ञान या कर्म से मुक्ति नहीं होती, परन्तु ज्ञान, कर्म दोनों के एक साथ अनुष्ठान करने से मुक्ति मिलती है। अतः इनका ज्ञान कर्म समुच्चय वाद है। भाष्यकार श्री शंकर जी ने कहीं कहीं पर वृहदारण्यक उपनिषद के भाष्य में "औषनिषदम्मन्य" लिखकर इनकी खिल्ली उड़ाई है। परन्तु उस काल में दार्शनिक क्षेत्र में इनके पाण्डित्य का प्रभाव कम नहीं था। इसलिये शंकर के शिष्य सुरेश्वराचार्य जी ने अपने वार्तिक में इनको "सम्प्रदाय वित" तथा ब्रह्मवादी कहकर प्रशंसा की है। दार्शनिक दृष्टि से इनका मत द्वैताद्वैत, भेदाभेद अनेकान्तिक आदि अनेक नामों से कहा जाता है। श्री शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र के २ ।१ ।१४ वें सूत्र में भर्तरि प्रपंच के भेदाभेद मत का वर्णन इस प्रकार किया है। **शंका = ब्रह्म एक नहीं अनेक हैं जैसे वृक्ष एक है और वह शाखा पत्ती फल फूल के रूप में अनेक है। वैसे ही ब्रह्म एक होने पर भी अनेक शक्तियों से युक्त है। अतः ब्रह्म में एकत्व अनेकत्व दोनों ही ठीक हैं। जैसे समुद्र एक है फेन बुदबुंदे तरंग रूप में अनेक हैं। मिट्टी एक है घट सकोरा रूप में अनेक हैं। वहां एकत्व अंश रूप के ज्ञान से मुक्ति का व्यवहार सिद्ध होता है। अनेकत्व कर्मकाण्ड का आश्रय है। लौकिक वैदिक व्यवहार अनेकत्व के बिना सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार मिट्टी आदि के दृष्टान्त अनुरूप हैं। अतः** उनका मत है कि परमार्थ सत्ता में ब्रह्म एक है जगत रूप में अनेक है। इसलिये उन्होंने कर्म

तथा ज्ञान को उपयोगी कहा दोनों को सार्थक बताया । ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय इनका मुख्य सिद्धान्त है । इनकी दृष्टि में जीव नाना हैं । परमात्मा एक है । जैसे ऊषर भूमि, पृथ्वी के एक भाग में है । वैसे ही विद्या, कर्म, जीव के पूर्व जन्म के संस्कार जीव में रहते हैं । अविद्या परमात्मा से प्रकट होकर जीव में विकार उत्पन्न करती हुई अनात्म रूप से अन्तःकरण में रहती है । उनका कथन है कि जीव मुक्त होने से पहले हिरण्य गर्भ रूप को प्राप्त करता है अर्थात् सगुण साकार रूप में लीन होता है । बाद में मुक्त होता है । हिरण्य गर्भत्व की प्राप्ति मुक्ति नहीं है किन्तु मोक्ष की पूर्व कालीन अवस्था है । इस अवस्था में परमात्मा सदैव विद्यमान रहता है । काम वासना आदि जीव के धर्म हैं । जीव में अनेकत्व उन्होंने उपाधि से नहीं माना किन्तु धर्म तथा दृष्टि भेद से माना है । मुमुक्षु तथा मुक्त का आत्म दर्शन एक प्रकार का नहीं है । इन्होंने दो प्रकार का दर्शन स्वीकार किया है । १. परिच्छिन्न कर्मात्म दर्शन, २. अपरिच्छिन्न परमात्मा दर्शन । परिच्छेद युक्त अनुभूति ही अविद्या है । **अहमेव इदं सर्वंब्रह्म** यह ब्रह्म विद्या है ; जो परमात्मा में रहती है, किन्तु संसारी जीव को इसका बोध नहीं होता । अविद्या से सम्बन्धित ब्रह्म हिरण्यगर्भ का वाच्यार्थ है । हिरण्यगर्भ सर्वत्र व्याप्त परिपूर्ण है । यह हिरण्यगर्भ का लक्ष्यार्थ है । इसी ज्ञान से जीव को मुक्ति प्राप्त होती है । जीव वासना के कारण जीव भाव को प्राप्त करता है । जीव ही कर्ता भोक्ता ज्ञाता है । इनके मत में जीव ब्रह्म का विवर्त नहीं परिणाम है ।

इनके मत में इन्द्रियां भौतिक हैं अहंकार आदि नहीं है । मुक्ति दो प्रकार की मानी है— १. अपरा मुक्ति २. परामुक्ति । इसी शरीर में ब्रह्म साक्षात्कार होना अपरा मुक्ति है इसे उन्होंने अपवर्ग कहा है । शरीर छूटने पर ब्रह्म भाव की प्राप्ति परामुक्ति है यह मुक्ति अविद्या की निवृत्ति होने पर होंती है । इनके मत में ब्रह्म साक्षात्कार के अनन्तर भी अविद्या अंश के रूप में रहती है । ब्रह्मत्व की प्राप्ति के बाधक शरीर के छूटने पर परामुक्ति है । इन्होंने ब्रह्म का परिणाम तीन प्रकार का माना है । १. अन्तर्यामी जीव रूप में, २. अव्याकृत सूत्रात्मा तथा देवरूप में, ३. जाति तथा पिण्ड रूप में । जगत की ८ अवस्थायें कहीं हैं । तीन ऊपर कहीं हुई, ४. परमात्म राशि, ५. जीव राशि, ६. मूर्तामूर्तराशि आदि । यह प्रमाण समुच्चय वादी थे । इनके मत में लौकिक प्रमाण तथा वेद प्रमाण दोनों ही सत्य हैं ।

इनके सिद्धान्त का भर्तृमित्र ने जयन्तकृत "न्याय मंजरी" पृ. २१३ से २२६ तक तथा यामुनाचार्य रचित "सिद्धित्रय" के पृष्ठ ४ से ५ तक वर्णन हुआ है । इससे भर्तृमित्र भी

वेदान्ताचार्य माने गये हैं। इन्होंने पूर्व मीमांसा पर भी एक ग्रन्थ लिखा है। वार्तिक कार कुमारिलभट्ट जी ने १।१।१ के १ श्लोक से १० तक तथा १।१।६ का १३०—१३१ तक इनके मत का उल्लेख किया है। टीकाकार पार्थ सारथीमिश्र ने "न्याय रत्नाकर" नामक टीका में भी इनका आशय प्रकट किया है। आचार्य कुमारिल अन्त में कहते हैं, कि भर्तृमित्र आदि आचार्यों के वेद विरुद्ध सिद्धान्त के कारण ही वेद के कर्म की मीमांसा करने वाला मीमांसा शास्त्र लोकायत वत् हो गया है। विशिष्टाद्वैत ग्रन्थों में लिखित भर्तृमित्र तथा वार्तिक में कहे हुये भर्तृमित्र एक व्यक्ति थे या भिन्न, यह निश्चय करना कठिन है, परन्तु भट्टपाद की समालोचना से प्रतीत होता है कि यह दो व्यक्ति थे। मुकुल भट्ट जी ने भी "अभिधा वृत्तिमातृका" ग्रन्थ में भर्तृमित्र का नाम दिया है।

भर्तृहरि—(३५९)

श्री यामुनाचार्य जी के ग्रन्थों में भर्तृहरि का नाम आया है। सम्भवतः "वाक्य पदीय" के रचयिता यही हों, परन्तु इनका वेदान्त का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। "वाक्यपदीय" व्याकरण का ग्रन्थ होने पर भी दार्शनिक ग्रन्थ है। अद्वैत सिद्धान्त ही इसका आधार है। कुछ आचार्यों का मत है कि भर्तृहरि के ग्रन्थों में शब्द ब्रह्मवाद की प्रधानता है। मण्डन मिश्र ने ब्रह्मसिद्धि नाम का ग्रन्थ इसी के आधार पर लिखा है। ब्रह्मसिद्धि पर वाचस्पति मिश्र की ब्रह्मतत्त्व समीक्षा नामक टीका पुस्तक है। काश्मीरी गुरु उत्पलाचार्य के गुरु आचार्य सोमानन्द पाद ने "शिव दृष्टि" नामक ग्रन्थ में भर्तृहरि के शब्दाद्वैत सिद्धान्त की आलोचना की है। शान्तरक्षित कृत "तत्त्व संग्रह", अविमुक्त आत्म कृत "ईष्ट सिद्धि" तथा जयन्त कृत "न्याय मंजरी" में शब्दाद्वैत का उल्लेख हुआ है। उत्पल तथा सोमानन्द जी के ग्रन्थों से पता चलता है कि भर्तृहरि तथा उनके अनुयायी पश्यन्ती वाणी को शब्द रूप में मानते हैं। इनके मत में पश्यन्ती ही परावाक् रूप में है। यह वाणी तथा जगत् ब्रह्म से अभिन्न है।

उपवर्षाचार्य—(३६०)

ब्रह्म सूत्र के भाष्य में शंकराचार्य जी ने कहीं कहीं उपवर्षाचार्य के मत का उल्लेख किया है। इन्होंने पूर्वोत्तर मीमांसा दोनों ही ग्रन्थों पर अपनी टीकायें लिखी हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि भगवान् उपवर्षाचार्य का उल्लेख शबर स्वामी ने अपने "पूर्व मीमांसा" दर्शन के १।१।५ सूत्र में किया है। श्री शंकर ने ब्रह्मसूत्र ३।३।५३ में दोनों ग्रन्थों पर लिखी वृत्ति

का प्रमाण दिया है। अतः यह शबर स्वामी से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं, परन्तु कृष्णदेव द्वारा रचित तन्त्र चूड़ामणि में लिखा है कि शावर भाष्य पर उपवर्षाचार्य की वृत्ति थी। यदि कृष्णदेव का वचन प्रमाण मान लिया जाए तो दो उपवर्ष सिद्ध होते हैं। वैयाकरणों का कथन है कि अष्टाध्यायी सूत्रकार पाणिनि तथा कात्यायन ऋषि के आप गुरु थे।

बोधायनाचार्य—(३६१)

ब्रह्मसूत्र पर बोधायन की एक वृत्ति थी। जिसका उल्लेख रामानुजाचार्य जी ने अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में किया है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हेरीमन जोसिव का मत है कि कर्म मीमांसा सूत्रों पर बोधायन जी ने वृत्ति लिखी थी। 'प्रपंच हृदय' नामक ग्रन्थ से यह बात सिद्ध होती है कि इनकी वेदान्त वृत्ति का नाम 'कृतकोटि' था।

ब्रह्मनन्दी—(३६२)

इस नाम के प्राचीन वेदान्ताचार्य थे इनके मत का उल्लेख श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती जी ने 'संक्षेप शारीरिक भाष्य' की टीका में किया है। अतः यह भी अद्वैत वेदान्त के आचार्य थे। प्राचीन वेदान्त साहित्य में ब्रह्मनन्दी "छन्दोग्योपनिषद्" में वाक्यकार नाम से कहे जाते हैं।

टङ्काचार्य—(३६३)

श्री विशिष्टाद्वैत वादियों के ग्रन्थों में भी एक वाक्य कार का उल्लेख मिलता है। उसका नाम टंक है। वैष्णव ब्रह्मनन्दी व टंक को एक मानते हैं, परन्तु दोनों के सिद्धान्तों पर विचार करने से एकता सिद्ध नहीं होती।

आचार्य ब्रह्मदत्त—(३६४)

यह एक प्रसिद्ध वेदान्ती थे। इन्होंने भी वेदान्त दर्शन पर भाष्य किया है या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इनके मत में जीव नाशवान् है। एक मात्र ब्रह्म ही अविनाशी है। इनका मत है कि जीव तथा जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है उसी में दोनों लीन हो जाते हैं। अतः इनके सिद्धान्त में जीव ब्रह्म एक नहीं हो सकते, किन्तु 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" इन विधि वाक्यों में इनका कहना है, कि जीव तथा जगत ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होने पर भी वास्तव में अभिन्न हैं। साधक को किसी भी अवस्था में कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये।

प्राचीन आचार्यों में, 'आश्मरथ्य' का सिद्धान्त था कि जीव ब्रह्म से उत्पन्न होता है और उन्हीं में लीन हो जाता है। इन्होंने उनके ही सिद्धान्त का प्रचार किया। परन्तु आश्मरथ्य भेदाभेद वादी थे। ब्रह्मदत्त अद्वैत वेदान्ती थे। 'नैष्कर्म्य सिद्धि' में सुरेश्वराचार्य जी ने इनको अद्वैतवादी सिद्ध किया है। शांकर मत वेदान्त में महावाक्य से अविद्या की निवृत्ति होती है। इनके मत में ज्ञान उपासना से भिन्न है। शंकराचार्य कर्म उपासना में विधि को स्वीकार करते हैं, ज्ञान में नहीं। अतः आत्म ज्ञान में विधि की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः पूर्व मीमांसा, कर्म विधि प्रधान है और उत्तर मीमांसा भावना विधि प्रधान है। श्री शंकराचार्य जी ने बृहदारण्यक उपनिषद के पहले अध्याय के चौथे ब्राह्मण के सातवें मंत्र के भाष्य में ब्रह्मदत्त का उल्लेख किया है। ब्रह्मदत्त ने जीवन्मुक्ति नहीं स्वीकार की है। शंकराचार्य ने जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों को माना है। ब्रह्म दत्त संन्यास को आवश्यक नहीं मानते। भर्तृ आदि के समान ब्रह्मदत्त ने भी ज्ञान कर्म का समुच्चय स्वीकार किया है, किन्तु शंकराचार्य जी ने नहीं। अतः नैष्कर्म्य सिद्धि की ज्ञानामृत सुरभि टीका में इन्हें ज्ञान कर्म समुच्चयवादी कहा है।

भारुचि—(३६५)

श्री रामानुजाचार्य के 'वेदार्थ संग्रह' ग्रन्थ के पृष्ठ १५४ में प्राचीन काल के छः वेदान्ताचार्यों का नाम है। इन आचार्यों ने रामानुजाचार्य से बहुत पूर्व अनेकों ग्रन्थ लिखे थे। श्री रामानुज जी ने अति सम्मानपूर्वक इनका नाम लिखा है। यह निर्विशेष ब्रह्मवादी नहीं थे अर्थात् सगुण साकार के उपासक थे। भारुचि, टंक, बोधायन, गुहदेव, कपर्दिक, द्रमिलाचार्य (द्राविडाचार्य)। श्री निवास दास जी ने पूजा से प्रकाशित होने वाली 'यतीन्द्र मत दीपिका' पुस्तक के पृष्ठ २ में, वेदान्ताचार्यों में वेद व्यास जी, बोधायन, गुहदेव, भारुचि, ब्रह्मनन्दी, द्राविडाचार्य, श्री पराङ्कुश नाथमुनि और ज्योतीश्वर आदि के नामों का उल्लेख किया है। इनमें से टंक तथा ब्रह्मनन्दी एक हैं।

भारुचि के सम्बन्ध में विज्ञानेश्वर जी ने 'मिताक्षरा टीका' में माधवाचार्य कृत 'पराशर संहिता' की टीका एवं 'सरस्वती विलास' आदि ग्रन्थों में धर्माचार्य के रूप में भारुचि का नाम आया है। प्रतीत होता है कि इन्होंने विष्णु कृत धर्म सूत्र पर एक टीका लिखी थी।



द्राविडाचार्य—(३६६)

यह भी प्राचीन वेदान्ती थे। इनके विषय में छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यक, माण्डूक्योपनिषद् शांकर भाष्य में इन्हें आगमवित् कहकर लिखा है। वृहदारण्यक में इन्हें सम्प्रदायवित् कहकर बड़े आदर के साथ उल्लेख किया है। द्राविडाचार्य जी ने छान्दोग्योपनिषद् पर अति विस्तृत भाष्य किया है। शंकर ने इनके मत का कहीं खण्डन नहीं किया है। अतः दोनों का सिद्धान्त एक ही था। रामानुज सम्प्रदाय के ग्रन्थों में भी एक द्राविडाचार्य का उल्लेख मिला है। किसी-किसी विद्वान् का मत है, कि यह शंकरोक्त द्राविडाचार्य से भिन्न थे। इन्होंने पांचरात्र सिद्धान्त के आधार पर द्रविड भाषा में ग्रन्थ लिखे हैं। यामुनाचार्य जी ने 'सिद्धित्रय' में लिखा है, कि इन्होंने व्यास जी के ब्रह्म सूत्र पर गम्भीर भाष्य रचना की है। कुछ लोग कहते हैं कि द्रविड संहिता के रचयिता अलवर शठकोप तथा वकुलाभरण को ही द्राविडाचार्य कहा है।

सुन्दर पाण्ड्य

इनकी श्लोक बद्ध वार्तिक रचना मिलती है। यह वार्तिक किसी प्राचीन ब्रह्मसूत्र के भाष्य पर है, किन्तु इस वार्तिक से सम्बन्धित वृत्ति तथा भाष्य का ठीक पता नहीं चलता। वृत्ति के निर्माता बौधायन थे या उपवर्ष यह निश्चित नहीं कहा जा सकता, परन्तु **तत्तु समन्वयात्** १।१।४। इस समन्वय अधिकरण के भाष्य के अन्त में श्री शंकराचार्य जी ने 'अपिचाहुः' यह कहकर तीन श्लोक दिये हैं—

गौण मिथ्यात्मनोऽसत्वे पुत्र देहादि वाधनात्।
सद्ब्रह्माहमित्येवं बोधे कार्यं कथं भवेत्॥
अन्वेष्टव्यात्मविज्ञानात् प्राक् प्रमातृत्वमात्मनः।
अन्वेष्टं स्यात् प्रमातैव पाप्मदोषादि वर्जितः॥
देहात्म प्रत्ययो यद्वत् प्रमाणत्वेन कल्पितः।
लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वात्म निश्चयात्॥

आत्मा के गौण तथा मिथ्या असत्व में पुत्र शरीर आदि का बाध करने से मैं सद्ब्रह्म आत्मा हूं, ऐसा बोध होने पर पुत्र शरीरादि कार्य नहीं रहते। आत्मानुभूति होने से पूर्व प्रमाता, प्रमाण की कल्पना देहात्मा बुद्धि से की गई है। प्रमाता, प्रमाण तथा प्रमिति इन तीनों में से शुद्ध चैतन्य

परमात्मा ही सत्य है। किन्तु निर्विकल्प स्थिति में प्रमाता प्रमाण तथा प्रमिति तीनों ही नहीं रहते। आत्म बोध होने पर प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि प्रमाता तथा विषय दोनों ही नहीं होते। वहां पुण्य, पाप तथा गुण, दोष से रहित निर्विशेष ब्रह्म ही शेष रहता है। जब तक शरीर में आत्म बुद्धि है, तब तक उसमें प्रमाण कल्पित है। आत्मा का निश्चय होने पर नहीं रहता। इनके तीन श्लोकों के सम्बन्ध में भामती टीका में वाचस्पति मिश्र जी ने "ब्रह्म विदां गाथा" कहा है अन्यान्य ब्रह्म सूत्र के व्याख्याकारों ने भी इनके बड़े आदर पूर्वक प्रमाण दिये हैं। यह शैव वेदान्ती थे। किसी विद्वान् के मत में राजा ने डडुमार नायर इनका दूसरा नाम दिया था। कुमारिल भट्ट के वार्तिक में सुना है इन्होंने पूर्व मीमांसा पर भी वार्तिक की रचना की थी। इनके सम्बन्ध में कुप्पू स्वामी शास्त्री द्वारा लिखित (जो कि कामकोटि पीठ के सुलझे हुये पण्डित हैं) पुस्तक 'Some Problems of Indentity in the Cultural History of Ancient India' में देखना चाहिये।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भगवान् वेद व्यास जी का ब्रह्मसूत्र तथा भाष्यकार

वेदान्त दर्शन में चार अध्याय सोलह पाद तथा ५५५ सूत्र हैं। पहला समन्वय अध्याय, दूसरा अविरोधाध्याय, तीसरा साधन अध्याय, चौथा फलाध्याय। इन अध्यायों तथा पादों के सम्बन्ध में विशेष विवरण सत्ययुग खण्ड ग्रंथ के आरम्भ में दिया जा चुका है। सूत्रों की संख्या के सम्बन्ध में मत भेद है जो निम्न प्रकार वेदान्त दर्शन पर भी शंकराचार्य जी, श्री [३६७] कण्ठाचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, भास्कराचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, विज्ञान भिक्षु तथा बलदेव आदि के भाष्य पाये जाते हैं। श्री शंकराचार्य से पूर्व १०० से अधिक भाष्य थे जिनका खण्डन मण्डन करके आचार्यपाद ने अन्तिम निर्णय किया है।

आचार्यों के नाम	श्री शंकरा-चार्य	श्री कण्ठा-चार्य	श्री रामानुजा-चार्य	श्री वल्लभा-चार्य	श्री भास्करा-चार्य	श्री मध्या-चार्य	श्री निम्बार्का-चार्य	श्री विज्ञान भिक्षु	श्री बलदेव
सूत्र संख्या	५५५	५४५	५४५	५५५	५४७	५६२	५४९	५५६	५५६

इन आचार्यों में सूत्रों के सम्बन्ध में भी विवाद है। जैसे की शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य जी ने **जन्माद्यस्य यतः, तथा शास्त्रयोनित्वात्** इनको दो सूत्र माना है। परन्तु वल्लभाचार्य जी ने इन दोनों को एक सूत्र माना है। इन आचार्यों के मत से अध्यायों की सूत्र संख्या में भी मत भेद है।

आचार्यों के नाम	श्री शंकराचार्य	श्री कण्ठाचार्य	श्री रामानुजाचार्य	श्री वल्लभाचार्य	श्री भास्कराचार्य	श्री मध्वाचार्य	श्री निम्बार्काचार्य	श्री विज्ञान भिक्षु	श्री बलदेव
प्रथम अध्याय की सूत्र संख्या	१३४	१३८	१३८	१३४	१३३	१३५	१३७	१३४	१३५

अधिकरण संख्या के सम्बन्ध में भी मतभेद है। भगवत्पाद श्री शंकराचार्य जी ने अधिकरण संख्या १९१ श्री श्री कण्ठ ने १७२, श्री रामानुज जी ने १५६, श्री निम्बार्काचार्य जी ने १५१, श्री वल्लभाचार्य जी ने १६१, श्री बलदेव ने १९८ माना है। मध्वाचार्य जी ने २२३ संख्या मानी है। भास्कराचार्य तथा विज्ञान भिक्षु जी ने अधिकरणों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

उन सम्पूर्ण भाष्यों में भगवान् शंकराचार्य का भाष्य परम उच्च कोटि का है। इन्होंने अपने परम गुरुदेव जी गौडपादाचार्य जी के वेदान्त के अजात वाद का प्रचार प्रसार, प्रस्थानत्रयी के भाष्यों के माध्यम से किया है। ऊपर लिखे भाष्यों में से मध्वाचार्य जी के भाष्य से पूर्व इक्कीस आचार्यों ने भाष्य किये थे।

१. भारती विजय[३६८], २. सच्चिदानन्द[३६९], ३. ब्रह्म घोष[३७०], ४. शतानन्द[३७१], ५. उद्वर्त्त[३७२] ६. विजय[३७३], ७. रुद्रभट्ट[३७४], ८. वामन[३७५], ९. यादव प्रकाश[३७६], १०. रामानुज, ११. भर्त्तरिप्रपंच, १२. द्राविड[३७८], १३. ब्रह्मदत्त, १४. भास्कर, १५. पिशाच[३७७], १६. वृत्तिकार, १७ विजय भट्ट[३७८], १८. विष्णु क्रान्त[३७९], १९. वादीन्द्र[३८०], २०. मध्वदास[३८१], २१. शंकर। इनमें से कुछ के भाष्य प्राप्त नहीं हैं।

ऊपर लिखे भाष्यों पर अनेकों आचार्यों ने टीकायें, वार्तिक तथा विवरण लिखे हैं। श्री शंकराचार्य जी के शारीरिक भाष्य पर मण्डन मिश्र के अवतार वाचस्पति मिश्र जी ने "भामती टीका" लिखी है। यह भामती प्रस्थान के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्मसूत्र पर अति प्रसिद्ध प्रामाणिक

टीका है। इस टीका पर श्री स्वामी अमलानन्द जी ने "वेदान्त कल्पतरु" व्याख्या लिखी है। उस व्याख्या पर अप्पय दीक्षित जी ने "वेदान्त कल्पतरु परिमल" नाम की व्याख्या की है। अप्पय दीक्षित की टीका पर लक्ष्मी नृसिंह जी ने "अभोगाख्या" व्याख्या लिखी है। यही नहीं "भामती तिलक", "भामती विलास", "भामती व्याख्या", "वेदान्त कल्पतरु मञ्जरी" आदि अनेक व्याख्याएं हैं। ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम चार सूत्रों की भामती टीका सहित अंग्रेज़ी अनुवाद भी मिलता है।

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य की "रत्न प्रभा" नाम की टीका भी स्वामी गोविन्दानन्द महाराज जी ने की। यह टीका शांकर भाष्य सहित, आनन्द गिरि के न्याय निर्णय तथा भामती टीका सहित दो खण्डों में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित है। इसका हिन्दी अनुवाद अच्युत ग्रन्थ माला, ललिता घाट, काशी से हुआ है। चतुःसूत्री के भाष्य पर पद्म पादाचार्य जी की व्याख्या अधिक उपादेय है। यह अति प्रामाणिक ग्रन्थ है। भामती के समान इस पर अनेक आचार्यों ने टीकायें की हैं। "प्रकाश आत्मयती" जी ने "पंच पादिका" विवरण लिखी है तथा पंचपाद विवरण में अखण्डानन्द जी ने जो कि चौदहवीं शताब्दी में हुये, "तत्त्वदीपन" नाम की व्याख्या लिखी है। पंचपाद विवरण पर विष्णुभट्टोपाध्याय जी की "ऋजु विवरण' व्याख्या। यह व्याख्या तत्त्वदीपन से पूर्व की है। नृसिंह स्वरूप के शिष्य आत्म स्वरूप जी ने "प्रबन्ध परिशोधिनी" नामक व्याख्या की है। "धर्मराजाध्वरीन्द्र" ने भी "पंच पादिका" पर टीका की है। किसी ने "पंच पादिका" नाम की व्याख्या भी की है। इनके अतिरिक्त आनन्द पूर्ण ने टीकारत्न तथा रामानन्द जी ने, (एत्रि दण्डी वैष्णव रामानन्दचार्य से यह भिन्न हैं), त्रय्यन्त भाव प्रदीपिका विवरण पर टीका की है। श्री अनन्त कृष्ण शास्त्री जी ने अथक परिश्रम करके नौ व्याख्याओं सहित चतुःसूत्री भाष्य प्रकाशित किया है। इस समय पूरे ब्रह्म सूत्र पर शांकर भाष्य तीन टीकाओं सहित, 'भामती', 'वेदान्त कल्पतरु', 'वेदान्त कल्पतरु परिमल' टीकाओं सहित अनन्त कृष्ण शास्त्री की टिप्पणी सहित प्रकाशित हो चुका है। भामती पर निर्मित सम्पूर्ण टीकाओं में से भी स्वामी अखण्डानन्द जो कि १४वीं शताब्दी में हुये की "ऋजु प्रकाशिका" टीका सर्वोत्तम है। श्री स्वामी जगन्नाथाश्रम जी महाराज की "पंच पादिका विवरण प्रकाशिका" नामक टीका है।

श्री स्वामी प्रकाशानन्द का 'ब्रह्म विद्याभरण' तथा सर्वज्ञात्म मुनि द्वारा रचित 'संक्षेप शारीरिक भाष्य' अति उत्तम ग्रन्थ है। सर्वज्ञात्म मुनि के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है।

शृंगेरी मठ की परम्परा में इनको सुरेश्वराचार्य जी का शिष्य कहा गया है। इनका दूसरा नाम नित्यबोध घनाचार्य था, परन्तु कामकोटि मठ की गुरु परम्परा में इनको काम कोटि का प्रथम आचार्य, श्री शंकराचार्य जी का अन्तिम शिष्य कहा है। ब्रह्म सूत्र पर सदानन्द व्यास की "प्रत्यक् तत्त्व चिन्तामणि" टीका है। अनेकों अद्वैताचार्यों ने शांकर भाष्य पर वृत्तियां भी लिखी हैं। इनमें से श्री स्वामी शंकरानन्द जी की "दीपिका वृत्ति" प्रसिद्ध है। इनके पढ़ने से शंकर भाष्य खुलता है। हरि दीक्षित जी ने 'ब्रह्मसूत्र वृत्ति' नीलमेघ शास्त्री जी की "वेदान्त नवमालिका वृत्ति" सदाशिवेन्द्र सरस्वती का "ब्रह्मसूत्र प्रकाशिका" प्रसिद्ध हैं। नीचे आचार्यों तथा उनकी टीकाओं के नाम लिखे जाते हैं।

१. भाष्यार्थ न्याय माला-सुब्रह्मण्य, २. वैय्यासिक न्यायमाला स्वामी भारती तीर्थ, ३. शास्त्र दर्पण अमलानन्द जी महाराज, ४. वेदान्त न्यायभूषण स्वयं प्रकाश, ५. ब्रह्मसूत्र वृत्ति हरि दीक्षित, ६. ब्रह्मसूत्र दीपिका श्री स्वामी शंकरानन्द जी, ७. वेदान्त सूत्र मुक्तावली, ब्रह्मानन्द जी (यह करण सिंह जी महाराज के गुरु से भिन्न है।) ८. ब्रह्म सूत्र भाष्यार्थ संग्रह-ब्रह्मानन्दयति। ९. ब्रह्म सूत्रार्थ दीपिका वैंकट, १०. ब्रह्मसूत्र वृत्ति अन्नंभट्ट, ११. ब्रह्मसूत्र भाष्य व्याख्या ज्ञानोत्तम भट्टारक, १२. ब्रह्मसूत्र वृत्ति धर्मानन्द, १३. सूत्र भाष्य व्याख्यान स्वा. अद्वैतानन्द जी, १४. ब्रह्मसूत्र भाष्य व्याख्या—न्यायरक्षामणि अप्पय दीक्षित, १५. ब्रह्म तत्त्व प्रकाशिका श्रीसदाशिवेन्द्र सरस्वती शंकराचार्य कामकोटि, १६. ब्रह्मसूत्र न्यास—रामेश्वर भारती, १७. शारीरिक मीमांसा सूत्र सिद्धान्त कौमुदी—सुब्रह्मण्य अग्निचिन्मुनीन्द्र, १८. वेदान्त-कौस्तुभ श्री सीताराम, १९. शारीरिक न्याय मणिमाला अनन्यानुभव, २०. शारीरिक-मीमांसान्याय संग्रह—प्रकाशात्मयति, २१. शारीरिकमीमांसा संग्रह—कृष्णानुभूति।

पांचों दर्शनों की अपेक्षा वेदान्त दर्शन पर शांकर भाष्य को लेकर सर्वाधिक व्याख्याएं पायी जाती हैं। इससे इसका महत्त्व सिद्ध होता है। श्री सीतानाथ जी तत्त्व भूषण ने भी 'भाष्यच्छाया' नाम की सरल टीका की है। श्री गीता सत्संग भवन लखनऊ के वेदान्ताचार्य पं. श्री दुर्गादत्त जी उप्रैती ने अति संक्षिप्त सरल ब्रह्मसूत्र पर हिन्दी, संस्कृत टीका की है। यद्यपि अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त अनादि है, परन्तु श्री शंकराचार्य जी ने इसका विशेष प्रचार-प्रसार किया है। इसी अद्वैत सिद्धान्त के द्वारा स्वरूप चिन्तन करने से मुक्ति हो सकती है। अन्यथा नहीं।

(कल्याण वेदान्तांक के आधार पर)

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

आचार्यों के सिद्धान्त

षड्दर्शनों तथा ऋषियों, आचार्यों का सैद्धान्तिक समन्वय—हमारे यहां वेदों में अनेकों प्रकार की दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए छः ऋषियों ने सूत्रशैली में षड्दर्शनों की रचना की है।

१. प्रथम दर्शन सांख्य दर्शन—इसके रचयिता भगवान् कपिल देव हैं। इन्होंने निरीश्वरवादी सांख्य दर्शन का उपदेश अपने शिष्य आसुरि के प्रति किया। **'निर्मानचित्तमधिष्ठाय आसुरये तन्त्रं प्रोवाच'** निर्मानचित्त वाले आसुरि नाम के शिष्य के प्रति "सांख्य तन्त्र" का उपदेश किया। इसमें उन्होंने आठ प्रकृतियों तथा १६ विकृत्तियों, २५वें पुरुष का वर्णन किया है। इनकी संख्या करने के कारण इसे सांख्यदर्शन कहा गया है। इसमें प्रकृति के सत्व, रज, तम तीन गुणों का वर्णन होने के कारण अठारहवें अध्याय में भगवान् ने इसे गुण संख्यान के नाम से कहा है—

प्रोच्यते गुण संख्याने यथावच्छ्रणु तान्यपि १८।१९

भगवान् ने अर्जुन के प्रति ज्ञान कर्म तथा कर्त्ता, सत्व, रज, तम तीन गुणों के भेद से तीन गुणों की संख्या करने वाले सांख्य दर्शन में कहा है। उसे मैं कहता हूं, सुनो ! इस दर्शन में इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रलय के समय यह तीनों गुण सम होते हैं। सृष्टि काल में विषम होते हैं। प्रकृति माता जीव को अपने किये हुये अच्छे बुरे कर्मों का फल सुख-दुःख रूपी भोग देती है तथा "विवेक ख्याति" से मुक्ति देती है। इन्होंने प्रकृति पुरुष तथा ईश्वर तीन को अनादि कहा है। प्रकृति स्वतन्त्र है किसी से उत्पन्न नहीं होती। इसके सम्बन्ध में कहते हैं। **मूले मूलाभावादमूल मूलम्।** मूल प्रकृति के मूल का अभाव होने से प्रकृति अमूल है।

२. वैशेषिक दर्शन—इसमें मनुष्यों की तथा संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का विशेष ज्ञान कराया है। अतः इसे "वैशेषिक दर्शन" कहते हैं। इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि के परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति कही है। सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी से लेकर वायु

पर्यन्त जब इनके परमाणु मिलते हैं। तब सृष्टि की उत्पत्ति होती है। जब तक मिले रहते हैं तब तक सृष्टि रहती है। जब बिखर जाते हैं तब सृष्टि का प्रलय हो जाता है। प्रलय के आरम्भ में सर्वप्रथम पृथ्वी के परमाणु जल में घुल जाते हैं। जल को अग्नि पी जाता है। तेज के परमाणु अपने कारण वायु में लीन हो जाते हैं। वायु के परमाणु आकाश में लीन होते हैं। आकाश के परमाणु न मिलते हैं न भिन्न होते हैं। वायु के आकाश में मिलते ही प्रलय हो जाता है। परमाणुओं के मिलने से जगत का प्रलय होने के कारण इसे "आरम्भवाद" कहते हैं। इस दर्शन में सात द्रव्यों तथा १६ पदार्थों का वर्णन आता है। कणाद ऋषि इसके रचयिता हैं। इस दर्शन में भूगोल, खगोल, जीव-विज्ञान, शारीरिक विज्ञान, वकालत, समस्त संसार का कला-कौशल आ जाता है। यह दर्शन पंच महाभूत, काल, दिशा आदि का उच्चतम कोटि का ज्ञान कराकर प्रकृति तथा पुरुष का जिसमें अष्टधा प्रकृति १६ विकृतियां हैं। इनका सामान्य परिचय कराकर सम्पूर्ण हो जाता है।

३. न्याय दर्शन—इसके रचयिता गौतम ऋषि हैं। इसे तर्क शास्त्र भी कहते हैं। वैशेषिक दर्शन तथा न्याय दर्शन दोनों का प्रकृति पुरुष परिणाम, जीव, ईश्वर तथा जगत् के सम्बन्ध में एक जैसा विचार है। तीनों प्रकार का न्याय, फौजदारी, दीवानी तथा माल, इस सम्बन्ध में छोटी सी कचहरी से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक का न्याय इसी की देन है। साध्य, हेतु, पक्ष, दृष्टान्त, लिंग अनुमान प्रमाण यह पांच अंग कहे गये हैं, छल, वितण्डा, हेत्वाभास, निग्रह आदि बहुत से इसके अंग हैं। न्याय तथा वैशेषिक, योग तथा सांख्य दर्शन यह भेदवादी दर्शन हैं। यह दर्शन ईश्वर जीव जगत् में भेद मानते हैं।

४. योग दर्शन—इस दर्शन के आदि रचयिता ब्रह्मा जी हैं। उसी का संक्षेप महर्षि पतंजलि जी ने चार पादों में किया है। १. समाधिपाद, २. साधनपाद, ३. विभूतिपाद, ४. कैवल्य पाद। समाधि पाद में चित्त की मूढ़, क्षिप्त विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध। इनमें से चार भूमिकाओं का अतिक्रमण करके निर्विकल्प समाधि में पहुंचने पर ईश्वर साक्षात्कार होता है, परन्तु ईश्वर साक्षात्कार करने के लिये दूसरे साधन पाद में अष्टांगयोग का वर्णन किया है। योग के आठ अंग है—१. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि। इनमें प्रथम पांच अंग योग के बहिरंग साधन हैं। अन्तिम तीन अंग, धारणा, ध्यान समाधि योग के अन्तरंग साधन कहे हैं। इन साधनों का वैराग्य सहित अभ्यास करने से विवेक

ख्याति द्वारा निर्विकल्प समाधि से मुक्ति प्राप्त होती है। विस्तार भय के कारण इन अंगों को स्पष्ट नहीं किया जा रहा है।

३. विभूति पाद—इस पाद में धारणा, ध्यान, समाधि के परिपक्व होने पर एक ही लक्ष्य में धारणा,ध्यान समाधि रूप संयम करने से योगी को अष्ट सिद्धियां तथा मधुमती आदि योग की भूमिकाएं प्राप्त होती हैं। देवता निमन्त्रण देते हैं। इनके मधुर वचनों को सुनकर अपरिपक्व वैराग्य वाला योगी उनमें आसक्त हो जाता है तथा ईश्वर प्राप्ति रूपी लक्ष्य से च्युत होकर भोगों में आसक्त होकर योग से पतित हो जाता है और पुनर्जन्म प्राप्त करता है। परन्तु वैराग्य वान योगी इन लोभों में नहीं पड़ता। इनको अन्तराय समझता है। तब वह विवेक ख्याति द्वारा कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है। योग सिद्धियों में सूक्ष्म रूप धारण करके कठोर वस्तुओं में प्रवेश करके दूसरी ओर निकल जाना, अणिमासिद्धि है। शरीर को पर्वत के समान भारी करना गरिमा। रुई के समान हल्का करके उड़ना इत्यादि महासिद्धियां कही हैं। उपसिद्धियों में वाक्‌सिद्धि, निग्रहानुग्रह की सामर्थ्य, पर काय प्रवेश, दूरदर्शन दूर श्रवण आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

४. कैवल्य पाद—सिद्धियों के चमत्कार में न फंसने वाला योगी संप्रज्ञात समाधि (सविकल्प समाधि) की छः भूमिकाओं, सविचारा, निर्विचारा आदि को पार करके तथा समाधि से व्युत्थान, समाधि को खोलने वाले संस्कारों को रोककर जब असम्प्रज्ञात समाधि में पहुंचता है। तब धर्ममेघ समाधि से कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त करता है। धर्म मेघ समाधि—वर्षा ऋतु में जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। वैसे ही योगी के ऊपर बादलों के समान ब्रह्मानन्द रूपी अमृत की वर्षा होती है इसे धर्म मेघ कहा गया है।

योग दर्शन पर वेद व्यास जी का भाष्य तथा विज्ञान भिक्षु का वार्तिक, भगवान् शंकराचार्य जी का भाष्य विवरण तथा वाचस्पति मिश्र जी की तत्त्व वैशारदी" टीका है। इन टीकाओं पर अनेकों छोटी मोटी टीकायें हैं।

५. पूर्व मीमांसा दर्शन—इसके रचयिता भगवान् वेद व्यास जी के सामवेदीय शिष्य जैमिनी जी हैं। सुना जाता है कि जर्मन देश इन्हीं के नाम पर बसा है। आज कल जर्मनी के संस्कृत विद्वान् भारतीय धुरन्धर संस्कृत के विद्वानों को मात करते हैं। यह दर्शन १२ अध्यायों में हैं। इस पर शबर स्वामी जी का भाष्य तथा कुमारिलभट्ट जी का वार्तिक ग्रन्थ है। इसमें

वेद के पूर्वी भाग कर्म तथा उपासना पर विचार किया गया है इसलिये इसे पूर्व मीमांसा कहते हैं। इसमें कर्म का विशद वर्णन होने से कर्म मीमांसा भी कहते हैं। सकाम, निष्काम भाव से किये जाने वाले नित्य के पंचमहायज्ञों से लेकर, पुत्रेष्टि, कारीरी, श्येन, चातुर्मास्य, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, रासभ मेध, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, अजमेध आदि यज्ञों का वर्णन विधि विधान पूर्वक विस्तार से आया है।

यद्यपि सायण महीधर उव्वटाचार्य आदि वेदों के भाष्यकारों ने इन यज्ञों का कर्म परक अर्थ करते हुये यज्ञ के निमित्त दी जाने वाली पशु बलि अर्थ किया है। 'यज्ञीय (वैदिकी) हिंसा हिंसा न भवति' के अनुसार अर्थ किया है। परन्तु पण्डित विष्णु सूरिजी ने अध्यात्म परक अर्थ करते हुये लिखा है।

अजमेधोऽश्व मेधोरासभ मेधो गोमेध पुरुषमेधः इति। अत्रलोभ, काम क्रोध, मोह, मदाः यथा क्रमं पशवः। तत्राजो हि स्वयं कण्टकादिभिः उदर निर्वाहं कुर्वन् दीक्षितमुपकरोति। एवं वित्त संचयी लोभी स्वयं दैन्येन वर्त्तयन् मरणोत्तरं अन्यस्मै कस्मैचित् दत्त इति अजसाम्यात् लोभस्याजत्वम्। तज्जये तु त्रिकाल ज्ञान मुपतिष्ठते। एवं क्रोधी अन्धंतमं प्रविष्ट इवाविवेकी मातरं पितरं वा हन्यात् इति रासभ तुल्यः तज्जये तु आयु र्विद्योपतिष्ठते। कामी अश्वतुल्यः अश्वस्यैव नरत्व प्रसिद्धे तज्जये तु ब्रह्म विद्योपतिष्ठते ततश्च ब्रह्म हत्या निवर्तते। "तरति ब्रह्म हत्यां योऽश्वमेधेन यजते।" कामो हि प्राधान्येन ब्रह्म ज्ञान प्रतिबन्धकं। गोवाक् रूपिणी परोक्ष वादेन मुग्धान् मोहयति इति गौः मोह रूपा तन्मेधेन नग्ना वधूरिव सर्वापि विद्या अनावृत्तैव वुद्धौ प्रकाशते। मद एव अहंकारः स एव पुरुषोपाधित्वात् पुरुषस्य तन्मेधे स्वयं प्रत्यगात्म स्वरूपेणाविर्भवति। अस्य जीवत्वमारोपात्। साक्षिण्यवभासते आवृत्तो विनष्टायां भेदे, भाते, प्रयाति तत्। एवमध्यात्मरीत्या वास्तवार्थे परित्यज्य यथाश्रुतमनुष्ठितां नरक एव।

अजमेध, अश्वमेध, रासभमेध, गोमेध, पुरुषमेध यह पांच पशु याग हैं। यह क्रमानुसार लोभ, काम, क्रोध, मोह, मद रूपी पशु हैं।

१. अजमेध जैसे अज = बकरा स्वयं कांटे आदि से अपना पेट भरते हुये दीक्षित यजमान का उपकार करता है। वैसे ही धन का लोभी धन एकत्रित करने वाला लोभी स्वयं दीनता से

बर्ताव करते हुये किसी न किसी को मरने के बाद ही देता है । लोभी की बकरे से समानता होने के कारण अजत्व कहा । लोभ को जीतने वाला त्रिकालज्ञ होता है । क्रोधी गधे के तुल्य है, जैसे क्रोधी क्रोध में अन्धा हुआ विवेक खोकर माता-पिता की हत्या करता है । क्रोध को जीतने वाला आयु तथा विद्या प्राप्त करता है । कामी घोड़े के समान है घोड़े का नरत्व प्रसिद्ध है काम को जीतने से ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है । ब्रह्महत्या से छूट जाता है । श्रुति कहती है—'अश्वमेध यज्ञ करने वाले ब्रह्महत्या से छूट जाते हैं ।' ब्रह्म ज्ञान में प्रधान रूप से काम प्रतिबन्धक है । गाय वाणी रूप, मोह का प्रतीक है, गाय परोक्ष वाणी रम्भाने रूप से अपने स्वामी को मुग्ध करती है । गोमेध करने वाले को, अर्थात् मोह को जीतने वाले वस्त्रहीन वधू के समान सम्पूर्ण विद्याओं पर से आवरण हटाकर सम्पूर्ण विद्याएं बुद्धि में प्रकाशित होती हैं । मद अहंकार जीव की उपाधि होने से पुरुष मेध यज्ञ करने पर जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव करता है । श्रुति कहती है "उसे जीवात्मा परमात्मा का एकता जन्य ज्ञान, दोनों आवरणों की निवृत्ति भेद बुद्धि नष्ट होने पर होती है । ऐसा आचार्यों के बचन से सिद्ध है । इस प्रकार अध्यात्म रीति से प्राप्त होने वाले वास्तविक अर्थ को छोड़कर जो कर्म काण्ड की श्रुतियों के अनुसार यूप में बकरा, घोड़ा, गधा, गाय या वेदज्ञ ब्राह्मण बांधकर यज्ञ में बलि देते हैं वे अवश्य नरकगामी होते हैं ।

इस दर्शन में अधिकार विधि, परिसंख्याविधि, अपूर्वविधि तथा इनके भेदों का विस्तार से वर्णन हुआ है । इन यज्ञ यागादि नित्य नैमित्तिक कर्मों को यदि इस लोक या परलोक की कामना से करता है तो कामना पूर्ण होती है । यदि निष्काम भाव से करता है तो अन्तःकरण की शुद्धि होने से ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है । जैमिनी मीमांसा के अतिरिक्त एक भरद्वाज मीमांसा भी है । जो कि अप्राप्त है ।

छः-उत्तर मीमांसा—इसे वेदान्त दर्शन, शारीरिक दर्शन या ब्रह्म सूत्र भी कहते हैं । इनका आरम्भ जीव, ईश्वर से आरम्भ होकर माया का प्रतिपादन करते हुये, ब्रह्म के निरुपाधिक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये, मोक्ष की प्राप्ति ही इसका चरम लक्ष्य है । इसके सम्बन्ध में पीछे बहुत विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है । वेद के अन्तिम भाग में उपनिषदें हैं । इसमें वेद के ज्ञान का अन्त होने के कारण वेदान्त शास्त्र कहते हैं । उत्तर मीमांसा उपनिषदों की सैद्धान्तिक गुत्थियों को सुलझाता है । अतः इसे वेदान्त कहते हैं । इसी गुह्यतम वेदान्त के गम्भीर सिद्धान्तों

को गीता में सरल तथा रोचक ढंग से श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा है । अतः गीता भी वेदान्त शास्त्र है । गीता, उपनिषद ब्रह्मसूत्र तीनों का प्रक्रिया बद्ध ज्ञान कराने वाले श्री शंकराचार्य आदि आचार्यों द्वारा लिखित ग्रन्थ, आत्म पंचक, अपरोक्षानुभूति, आत्मानात्म विवेक, तत्त्व बोध, आत्मबोध, विवेक चूड़ामणि, उपदेश साहस्री, पंचदशी, अद्वैत सिद्धि, अद्वैत रत्नरक्षणम्, अद्वैतामोद, प्रत्यक्तत्व चिन्तामणि, विवरण प्रमेय, श्रुतिसार समुद्धरणम् इत्यादि ग्रन्थ वेदान्त के नाम से कहे जाते हैं ।

समन्वय—यद्यपि छः दर्शनों के सूत्रकारों तथा भाष्यकारों ने एक-दूसरे के सिद्धान्त का युक्ति तर्क, प्रमाण से खण्डन करके अपने सिद्धान्त का मण्डन किया है । परन्तु विचार करके देखने से यह परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी रहे । जैसे किसी अध्यापक को पढ़ाने के लिये प्रारम्भिक विद्यालय में लगाया जाता है तो वह अध्यापक कक्षा १ से ५ तक का ही ज्ञान कराता है । दूसरा अध्यापक माध्यमिक शिक्षा कक्षा ६ से १० तक, तीसरा ११ से १६वीं तक, चौथा पी०एच०डी०, डी० लिट् तक की शिक्षा देता है । ये चारों अध्यापक अपनी-अपनी योग्यता तथा विद्यार्थियों के स्तर के अनुसार अपने पाठ्यक्रम की प्रशंसा दूसरे की निन्दा करते हैं । वैसे ही गौतम तथा कणादमुनि को जगत् की प्रारम्भिक शिक्षा सौंपी गयी । अतः यह दोनों ऋषि पंच महाभूत तथा जगत् का विशद ज्ञान देकर अपना पाठ्यक्रम समाप्त करके सांख्य दर्शन के प्रकृति पुरुष विवेक का सामान्य परिचय देकर मौन हो जाते हैं । तब कपिल जी सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष से लेकर इसका पूर्णतम ज्ञान कराकर जीव ईश्वर का सामान्य परिचय देकर मौन हो जाते हैं । तब वेद व्यास जी जीव ईश्वर जगत का सामान्य विवेचन करते हुये ब्रह्म ही जगत् में अपनी माया से विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है । वे ब्रह्म का पूर्ण बोध कराकर मौन हो जाते हैं । तब गीता में भगवान् कृष्ण जीव तथा ईश्वर दोनों से उत्तम पुरुषोत्तम का ज्ञानोपदेश करते हैं । अथवा यूं समझना चाहिये कि सांख्य शास्त्र प्राचीन वेदान्त है । उसी का परिष्कृत रूप वेदान्त दर्शन में व्यास जी ने दिया है तथा योग दर्शन क्रियात्मक वेदान्त है । वैशेषिक तथा न्याय यह एक ही तन्त्र या दर्शन के दो रूप हैं । पूर्व मीमांसा दर्शन अन्तःकरण के दोषों की निवृत्तिपूर्वक ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में सहायक उसी का अंग है ।

अथवा ब्रह्म रूपी महासागर है । अनेकों व्यक्ति किसी महासागर के तट पर विभिन्न कालों में जाते हैं । आंधी तूफान में, अथवा ज्वार भाटा काल में समुद्र को देखने वाला समुद्र को

उत्तल तरंगों के रूप में देखता है। वायु के शान्त हो जाने पर शान्त रूप में देखता है। जिस काल में जिस व्यक्ति को जिस रूप में सागर दीखता है, वह उसका वर्णन उसी रूप में करता है। वह अपने को सत्य तथा दूसरे को असत्य कहता है। वैसे ही ब्रह्म रूपी महासागर है जिसको जैसा अनुभव हुआ उसने वैसा ही वर्णन किया। परन्तु जैसे विभिन्न तटों पर विभिन्न कालों में समुद्र को देखने वाले सभी यथार्थ दर्शी हैं। वैसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म रूपी महासागर अपरम्पार गम्भीर, निरपेक्ष तथा विशालतम है।

अथवा वेदान्त ने तीन सत्तायें मानी हैं, व्यावहारिक, प्रातिभासिक तथा पारमार्थिक। व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक सत्ता में जगत् सत्य है। जीव ईश्वर जगत में भेद है। किन्तु एक मात्र ब्रह्म की अनुभूति कराने वाली पारमार्थिक सत्ता में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

अथवा ब्रह्म के सम्बन्ध में अनेकों अन्धों के हाथी दर्शन के समान ब्रह्म दर्शन है। अन्धे को दीखता नहीं अतः वह टटोल कर देखता है। पांच अन्धों ने हाथी को जानना चाहा। एक के हाथ में हाथी की टांग आई। उसने कहा हाथी खम्भे की तरह है। दूसरे के हाथ में पूंछ आई. उसने कहा तुम गलत कहते हो हाथी रस्सी जैसा है। तीसरे के हाथ में पेट आया उसने कहा हाथी ढोल जैसा है। चौथे के हाथ में सूंड आई उसने सांप जैसा बताया। पांचवें के हाथ में कान आया उसने सबका खण्डन करके कहा हाथी सूप जैसा है। पांचों अन्धे अपना अपना अनुभव बताकर लड़ने-झगड़ने तथा मार पीट करने लगे। इतने में एक दोनों आंखों वाला व्यक्ति पहुंचा। उन्हें झगड़ते देखकर कहा कि क्यों लड़ते हो। पांचों ने अपने अपने विचार बताये। उन पांचों की बात सुनकर उसने कहा तुम सब लोग ठीक कहते हो। परन्तु तुम पांचों को हाथी के सम्बन्ध में ज्ञान एकांगी है सर्वांगीण नहीं। सर्वांगीण हाथी कैसा है ऐसा प्रश्न होने पर कहना चाहिये। हाथी के पैर खम्भे जैसा, पेट ढोल जैसा, पूंछ रस्सी जैसी, सूंड सर्प जैसी तथा कान सूप जैसा है। यह हाथी का पूर्ण ज्ञान है। वैसे ही ऋषियों के शास्त्र के सम्बन्ध में आजकल के लोगों का ज्ञान है। इनके श्रुति स्मृति सम्बन्धी नेत्र न होने के कारण अन्धे हैं। इन को ब्रह्म के सम्बन्ध में अपने अध्ययन तथा गुरु से अधूरा शास्त्र पढ़ने पर शास्त्र का एकांगी ज्ञान होता है। वे अपने एकांगी ज्ञान को लेकर अपने को पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी समझते हैं। परन्तु इन संकीर्ण साम्प्रदायिक लोगों को लड़ता देखकर पूर्ण बोध विवेक सम्पन्न गुरु ब्रह्म का

सर्वांगीण ज्ञान कराते हैं । तब झगड़े शान्त हो जाते हैं । हाथी और अन्धों का दृष्टान्त अज्ञानी जीवों के सम्बन्ध में दिया है । यह उदाहरण ज्ञानी, षड्दर्शनाचार्य सर्वज्ञ ऋषियों पर लागू नहीं होता ।

इन छःहों दर्शनों का अध्ययन क्रमानुसार करना चाहिये । जैसा कक्षा ५ पास किये बिना कोई ६ठी कक्षा में प्रवेश नहीं पा सकता १०वीं पास किये बिना ११वीं में, १२-१३ वां पास किये बिना १४वीं में, स्नातक (बी.ए.) उत्तीर्ण किये बिना स्नातकोत्तर (एम.ए.) में प्रवेश नहीं होता । वैसे ही वैशेषिक न्याय बिना, सांख्य का, सांख्य का अध्ययन किये बिना वेदान्त का अधिकारी नहीं हो सकता । अतः यह छःहों शास्त्र एक-दूसरे के विरोधी नहीं, किन्तु पूरक हैं ।

ब्रह्मीभूत श्रीमद् दण्डी स्वामी सोम तीर्थ जी महाराज द्वारा षड्दर्शन समन्वय

गर्भाधान से लेकर वेदारम्भ पर्यन्त दस संस्कारों से युक्त होकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये अपने मन को पवित्र करके वेद पढ़े । वेदाध्ययन के अनन्तर धर्मजिज्ञासा करें । धर्म का ज्ञान प्राप्त करने में पूर्व मीमांसा दर्शन का उपयोग है । धर्मानुष्ठान द्वारा अन्तःकरण को निर्मल बनाकर विवेक वैराग्यादि षट् सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता चार साधन सम्पन्न हो । मुमुक्षता की उत्पत्ति के अनन्तर ब्रह्म तत्त्व को जानने की इच्छा करें । ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये वेदान्त दर्शन का उपयोग है । ब्रह्म की प्राप्ति श्रवण, मनन निदिध्यासन तीन उपायों से होती है । श्रवण आदि के लिये वेदान्त शास्त्र का उपयोग है । मनन करने में न्याय तथा वैशेषिक सहायक है । यह दोनों ही दर्शन कहीं पूर्व पक्ष को लेकर विचार का द्वार खोलते हैं तो कहीं सिद्धान्त का समर्थन करके सहायक होते हैं । सांख्य तथा योग का निदिध्यासन में उपयोग होता है । इस प्रकार शास्त्रों की सहायता से साधन करने पर आत्मनिष्ठा होती है ।

इस प्रकार षड्दर्शनों का परस्पर समन्वय है । **(पातंजल योग प्रदीप से)**

॥ इति गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥



अथ पंचदशोऽध्यायः

अद्वैत वेदान्त का ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त

वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त जीव तथा ब्रह्म की एकता मुख्य है। यह वशिष्ठ, श्री गौडपादाचार्य, श्री शंकराचार्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के द्वारा प्रतिपादित है। ब्रह्म सूत्र तथा गीता में भी भगवान् वेद व्यास जी ने इसी का वर्णन किया है। गीता को व्यास जी ने भव द्वैषिणीम् तथा अद्वैतामृतवर्षिणीम् कहा है। उपनिषदों में भी **एकमेवाद्वितीयं, आत्मैवेदम् सर्वम्, ब्रह्मैवेदंसर्वम्, सर्वंखल्विदम् ब्रह्म,** नेह नानास्ति किंचन, सत्यं ज्ञानमनन्तं **ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि,** इत्यादि सैंकड़ों श्रुतियां, एक मात्र ब्रह्म का ही प्रतिपादन करती हैं। गीता के १३वें अध्याय के दूसरे श्लोक में भगवान् ने जीव ब्रह्म की एकता का वर्णन करते हुये कहा है—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥१३ ।२ ॥

हे अपने स्वरूप में तल्लीन रहने वाले अर्जुन ! सभी प्राणियों के शरीरों में रहने वाले, शरीरों के ज्ञाता जीव रूप से मुझे जानो। तीनों शरीरों तथा जीव का ज्ञान ही मेरा ज्ञान है। इस श्लोक में भी जीव ईश्वर का अभेद सिद्ध किया है। जैसे एक ही मिट्टी, मिट्टी के बने हुये खिलौनों तथा पात्रों में अनेक रूपता होते हुये भी एक मिट्टी ही है। जैसे एक लकड़ी, लकड़ी की बनी चौंकी, मेज, कुर्सी, आदि के रूप में एक लकड़ी ही अनेक रूपों में भासती है। जैसे एक ही बिजली, पंखा, हीटर, मीटर, कूलर, बल्ब तथा मोटर के रूप में अनेक प्रकार की क्रिया करती हुई एक ही है। जैसे एक ही आकाश मेघ, मठ, घट शरीर आदि अनन्त उपाधियों में एक होने पर भी अनेक रूपों में भासता है। वैसे ही ब्रह्म चिदाकाश, निरुपाधिक, अखण्ड मण्डलाकार एक होने पर भी अनेक शरीर तथा अन्तःकरण की उपाधियों से अनेक दीखता है। भाव यह है कि ज्ञानी की दृष्टि में ईश्वर जीव तथा संसार न था, न है, न होगा। एक मात्र शुद्ध ब्रह्म ही है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि में जीव ईश्वर तथा जगत एक ब्रह्म में चित्र पट पर दिखाई देने वाले संसार के समान अथवा स्वप्न के जगत के समान मिथ्या है।

अद्वैत वेदान्त में छः वस्तुएं अनादि कही गईं हैं। इनमें ब्रह्म, ईश्वर जीव, माया, जीव ईश्वर का सम्बन्ध तथा इन सबका परस्पर सम्बन्ध अनादि है। इन छःहों में ब्रह्म अनादि तथा अनन्त है। अनादि = "यस्य आदिः जन्म नास्ति स अनादिः", जिसका आदि या जन्म नहीं है उसे अनादि कहते हैं। अनन्त = "न अन्तो यस्यः स अनन्त" अर्थात् जिसका देशकाल वस्तु तीनों कारणों से नाश नहीं है वह अनन्त है तथा ऊपर लिखे हुये पांचों ईश्वर, जीव आदि अजन्मा होने पर भी अन्त वाले हैं। अर्थात् ज्ञान से इनका बाध होता है। ब्रह्म का बाध नहीं होता। बाध = वस्तु में अवस्तु की प्रतीति आरोप है। जैसे रस्सी में सर्प तीनों कालों में न होने पर भी मन्द अन्धकार, दृष्टिदोष, सामान्य का ज्ञान, विशेष का अज्ञान, वस्तु के तुल्य अवस्तु में भ्रान्ति जन्य प्रतीति (सर्प की मोटाई तथा लम्बाई वाली रस्सी में सर्प की भ्रान्ति होती है) वस्तु का यथार्थ ज्ञान न होने पर उसको अन्यथा रूप में देखना आरोप हैं। ऊपर कहे पांचों ईश्वर जीव आदि ब्रह्म में तीनों कालों में न होने पर भी भ्रान्ति से रस्सी में सर्प के समान प्रतीत होते हैं। अनुभूति जन्य ब्रह्म का यथार्थ बोध होने पर इन पांचों का बोध हो जाता है। शुद्ध ब्रह्म में इनकी प्रतीति कब हुई। इसका किसी को पता न होने से इन्हें अनादि कहा गया। अतः ये पांचों सान्त हैं।

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म ही था। इससे पूर्व और बाद भी वही रहेगा। अतः ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या सिद्ध होता है। इसी को भाष्यकार श्री शंकराचार्य जी ने कहा है—

श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। मिथ्या का अर्थ नितान्त असत्य नहीं, क्योंकि जगत दिखाई देता है इसलिये असत्य नहीं, बोध होने पर इसका बाध हो जाता है अतः सत्य नहीं। जिसे सत्य, असत्य न कहा जाए उसे मिथ्या कहते हैं। जीव ब्रह्म ही है उससे भिन्न नहीं इससे एक मात्र ब्रह्म ही सिद्ध हुआ क्योंकि ब्रह्म एक है अतः जीव भी एक है। यह वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है। यद्यपि कुछ आचार्यों ने अनेक जीव माने हैं। परन्तु उन्होंने अनेक अन्तःकरण तथा शरीरों को लेकर अनेक जीव कहा है। मुख्य जीव एक ही है। परन्तु उसके प्रतिबिम्ब अनेक हैं। जैसे सूर्य चन्द्र एक हैं परन्तु अरबों-खरबों घड़ों में भरे हुये जल की उपाधि से एक सूर्य चन्द्र होने पर भी अनेक सूर्य चन्द्र की परछाइयां प्रतीत होती हैं। वैसे ही एक जीव के होने पर भी उसके प्रतिबिम्ब अनेक हैं।

तर्क—जीव एक नहीं हो सकता यदि एक जीव मान लिया जाए तो एक को भूख लगने पर सबको भूख लगनी चाहिये। एक के विद्वान् या मूर्ख होने पर सभी विद्वान् या मूर्ख नहीं होते, एक के सिर या आंख में दर्द होने पर सब के सिर, आंख में दर्द नहीं होता। एक के स्वर्ग या नरक जाने पर सभी स्वर्ग या नरक नहीं जाते। अतः प्रत्यक्ष, अनुमान, अनुपलब्धि उपमान, अर्थापत्ति तथा निगम इन सभ। ग्नाणों से एक जीव सिद्ध नहीं होता।

समाधान—अधिष्ठान चैतन्य एक होने पर भी जीवों के अनेक जन्मों के कर्म वासना, संस्कार, पूर्व प्रज्ञा, विभिन्न प्रकार की होने के कारण कोई सुखी कोई दुःखी कोई स्वर्ग वासी, कोई नरकवासी, कोई विद्वान् कोई मूर्ख दिखाई पड़ता है। जीव ईश्वर में इस प्रकार का भेद शरीर या अन्तःकरणों के भेद से है। जैसे किसी एक का टी.वी. सैट या रेडियो खराब हो जाने पर उसके पड़ोसी का या नगर मोहल्ले वालों के टी.वी रेडियों नहीं बिगड़ते। क्योंकि उसके व्यष्टि (एक) रेडियो टी.वी. का दूसरे रेडियों टी.वी. पर प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु यदि टी.वी. या रेडियो स्टेशन में खराबी हो तब सब के रेडियो टी.वी. काम नहीं करते। अतः जिस ब्रह्मवेत्ता ने समष्टि ब्रह्म के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर दिया है उनके शरीर का सुख दुःख उनको नहीं भासता। दूसरों को होता है।

जैसे जब लक्ष्मण जी के शक्ति बाण लगा तो लक्ष्मण जी के घाव हुआ किन्तु वेदना लक्ष्मण जी को न होकर राम को हुई। औरंगजेब के समय सूफी महात्मा मंसूर को जब सूली दे दी गई तो किसी का कुछ नहीं बिगड़ा। परन्तु जब उनके मित्र सरमद को सूली दी जानी थी तो औरंगजेब के मंत्री ने कहा इनके आंखों में लाली है। सूली देने से पहले इनके शरीर में कोई घाव किया जाए। तब राजाज्ञा प्राप्त करके इनके दाहिने हाथ के अंगूठे में चाकू से चीरा दिया गया। चीरा देते ही इनका घाव भर गया। परन्तु वहां पर जितने भी लोग बैठे थे उनके अंगूठे से खून निकल रहा था। यहां तक कि पूरी दिल्ली में बच्चे-बच्चे के अंगूठे में चीरे का निशान था और खून बह रहा था। उस समय दिल्ली में जो बच्चे पैदा हुये उनके भी अंगूठे पर घाव तथा खून था।

श्री काशी के अवधूत शिरोमणि जीवन मुक्त महात्मा तैलंग स्वामी जी को जब शरारती लड़कों ने मिर्ची खिला दी तब उन बालकों को खूनी दस्त आने लगे। स्वामी जी का कुछ नहीं

बिगड़ा। इन दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि जिसने अपने व्यष्टि चैतन्य का सम्बन्ध समष्टि चैतन्य से कर दिया है, संसार के सुख-दुःख का प्रभाव उन पर तथा उनके सुख-दुःख का प्रभाव संसार पर पड़ता है। इन प्रमाणों से भी वेदान्त के एक मुख्य जीव वाद की पुष्टि होती है। श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी महाराज ने छःहों प्रमाणों से गीता के दूसरे अध्याय के १२वें श्लोक **नत्वेवाहं जातु नासं** इत्यादि श्लोक की व्याख्या में **इमे जनाधिपाः** के व्याख्यान में, इमे जनाधिपाः से अनेक जीव सिद्ध नहीं होते हैं। अतः पाठक तात्पर्य बोधिनी टीका देखें।

इन युक्तियों, तर्कों तथा प्रमाणों के अतिरिक्त ज्ञान की चतुर्थ, पंचम, षष्ठ तथा सप्तम भूमिकाओं को प्राप्त अनुभवी यतियों के द्वारा भी ब्रह्म की सत्यता जीव के साथ ब्रह्म की एकता तथा जगत के मिथ्यापने का अनुभव होता है। यद्यपि शक्ति विशिष्टाद्वैत, शब्दाद्वैत, स्वलीलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा द्वैतवादी आचार्यों ने गीता तथा ब्रह्म सूत्र के भाष्यों में अपने-अपने सिद्धान्तों का समर्थन किया है। परन्तु सूत्रकार भगवान् वेद व्यास जी के मत से उन्हें कौन सा सिद्धान्त अभीष्ट है। यह मण्डनमिश्र के साथ भगवान् शंकराचार्य जी के शास्त्रार्थ से सिद्ध होता है। दोनों के शास्त्रार्थ के समय भगवान् वेद व्यास तथा जैमिनि दोनों उपस्थित थे। जैमिनि जी जो द्वैतवादी हैं, के समर्थक, तथा कर्म ही सम्पूर्ण वेद का सार है इस विषय को लेकर मण्डन ने अपना मत उपस्थित किया। परन्तु श्री शंकराचार्य जी ने कहा कि वेदों का अन्तिम तात्पर्य ज्ञान में है। निष्काम कर्म अन्तःकरण के मल विक्षेप को दूर कर ज्ञान में सहायक हैं। अतः जीव ब्रह्म की एकता का अनुभव हुये बिना मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। वेदों का महातात्पर्य अद्वैत ब्रह्म ज्ञान में हैं। इसी से मुक्ति होती है। वेदों में आद्योपान्त्य अद्वैत वेदान्त दूध में विद्यमान घृत के समान है। जैसे दूध से घी निकालने के लिये उसे औटाया जाता है ठंडा होने पर जामन लगाने पर दही, दही को मथानी से मथने पर मक्खन, मक्खन को तपाने पर घृत प्राप्त होता है। दूध का सार घृत है। वैसे ही वेद मंत्रों को निष्काम कर्म, उपासना तथा गुरु सेवा रूपी अग्नि पर तपाने पर, फिर उसमें नित्यानित्य विवेक रूपी मथानी से मथने पर अद्वैत वेदान्त रूपी मक्खन निकलता है। इसमें अहंता ममता रूपी छाछ के जल जाने पर अनुभूति रूपी घृत प्राप्त होता है। शास्त्रार्थ में मण्डन के हार जाने पर मुक्त कण्ठ से शंकराचार्य की प्रशंसा करते हुये हृदय से लगाकर व्यास जी ने कहा हे शंकर ! मेरे सूत्रों का महातात्पर्य आपने जो अद्वैत ब्रह्म विज्ञान में घटित किया है वही मेरा इच्छित अर्थ है। तुम तो साक्षात्

शिव हो मेरे सूत्रों का शुद्ध अद्वैत परक अर्थ करने के लिये अवतरित हुये हो । ऐसा कहकर व्यास जी मौन हो गये । तदनन्तर जैमिनि जी ने भी उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुये कहा कि मेरे पूर्व मीमांसा के सूत्रों की जो आपने व्याख्या की है यह मुझे मान्य है । मेरे हृदय के भाव को आपने पूर्ण रूपेण खोल दिया है ।

सर्वज्ञ ईश्वर ही, सर्वज्ञ ईश्वर के भाव को समझ कर उनके सूत्रों तथा श्लोकों की व्याख्याकर सकता है । भगवान् वेद व्यास जी सर्वज्ञ विष्णु के अवतार है । अतः उन्हीं के प्रार्थना करने पर भगवान् शंकराचार्य के रूप में गीता तथा ब्रह्म सूत्र की व्याख्या की । इसका विस्तार से वर्णन शंकराचार्य चरित में दोनों के शास्त्रार्थ प्रकरण में होगा ।

अगले प्रकरण में शंकर के अद्वैत सिद्धान्त तथा आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत की प्रक्रिया दिखाते हुये, दोनों का तुलनात्मक विवेचन, वासुदेव शास्त्री कृत अद्वैतामोद ग्रन्थ के आधार पर करेंगे ।

॥ इति गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

अद्वैत शांकर मत संक्षिप्त विवरण विशिष्टाद्वैत रामानुज मत का संक्षिप्त विवरण

श्री शांकर मत	श्री रामानुज मत
१. आत्मा स्वरूप से एक ही है । उसके अतिरिक्त दूसरा कोई तत्त्व नहीं है ।	१. आत्मा चित् अचित् रूप शरीर विशिष्ट एक ही है आत्मा और शरीर के अतिरिक्त कोई अन्य तत्त्व नहीं है ।
२. आत्मा के अतिरिक्त अन्य सत्य नहीं, आत्मा सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेद से रहित है ।	२. आत्मा चेतन होने से स्व स्वजातीय जीवों से तथा अचेतन रूप से विजातीय जड़ों से तथा प्रधान आदि स्वगतों से तथा प्रधान के कल्याण कारक गुणों से भिन्न है ।

३. आत्मा निर्विशेष (निर्गुण, निरुपाधिक) होने से आत्मा ऐसा ही है। यह ऐसा ही है अर्थात् इसका ऐसा ही स्वरूप है, वाणी से इंगित नहीं किया जा सकता।	३. वह आत्मा सविशेष सगुण है। वह सर्वज्ञत्व नित्यत्व, व्यापित्व इत्यादि शब्दों से उसका वर्णन कर सकते हैं।
४. आत्मा निर्गुण ही है। वास्तव में आत्मा में कल्याणकारी गुण नहीं है।	४. आत्मा स्वभाव से ही पाप रहित है। अनेक कल्याणकारी गुणों का आधार है। उसमें निन्दनीय कोई दोष नहीं है।
५. आत्मा ज्ञान स्वरूप है। उसमें ज्ञान गुण नहीं वरन् स्वयं ज्ञान स्वरूप है।	५. आत्मा ज्ञान स्वरूप होने पर भी ज्ञान गुण का आधार है। गुणभूत ज्ञान, स्वरूप भूत ज्ञान से भिन्न ही है।
६. अतः आत्मा में वास्तव में ज्ञातृत्व तथा विज्ञातृत्व वास्तविक नहीं। किन्तु औपचारिक है (औपाधिक है)।	६. आत्मा ज्ञान गुण का आश्रय है इसलिये उसमें ज्ञातृत्व और विज्ञातृत्व, व्यावहारिक है।
७. आत्मा में ज्ञेयत्व भी नहीं है। एक ही वस्तु में आश्रयत्व तथा विषयत्व असम्भव होने से।	७. आत्मा में ज्ञेयत्व भी है। ज्ञान गुणभूत आत्मा के सान्निध्य से भिन्न होने से आत्मा में आश्रयत्व तथा विषयत्व दोनों हो सकते हैं।
८. परमात्मा अपने कूटस्थ (निर्विकार) रूप से नित्य है। उसी रूप से वह अद्वितीय है।	८. परमात्मा अपने स्वरूप से कूटस्थ नित्य है। परन्तु चिद् आत्मा, अचिद् शरीर की विशेषता से परिणामी नित्य है तथा विशिष्ट रूप से अद्वितीय है।
९. इसलिये ब्रह्म को अद्वैत कहते हैं।	९. ब्रह्माद्वैत प्रकाराद्वैत नहीं है, किन्तु प्रकार्य द्वैत है। ब्रह्म प्रकारी भूत जीवों का तथा जडों का अनेकत्व होने पर भी प्रकारी ब्रह्म में एकत्व है।

१०. ब्रह्म अविनाशी होने से अभिन्न, ज्ञान भी सद्रूप ही है। सद् का विषय नहीं। अर्थात् ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है।

११. परमात्मा ही माया की उपाधि से ईश्वरत्व तथा अविद्या की उपाधि से जीवत्व को प्राप्त हुआ है। जड जगत प्रातिभासिक (भ्रान्तिमूलक) मिथ्या है। ब्रह्म ही एक तत्त्व है।

१२. परमात्मा से परमात्मा की शक्ति अभिन्न होने पर भी त्रिगुणों की उपाधि से भिन्न के समान प्रतीत होती है। वह परमात्मा की शक्ति ज्ञान पद से भी कही जाती है। उस अज्ञान की उपाधि से युक्त परमात्मा जगत् तथा मूल प्रकृति भिन्न प्रतीत होते हैं।

१३. परमात्मा के अज्ञान से ही उसमें तीनों कालों में जीव जगत न होने पर भी रज्जु में सर्प वत् जगत् भासता है। ब्रह्म का विवर्त जगत है अर्थात् जीव के अज्ञान से ब्रह्म में जगत मिथ्या प्रतीत होता है। यह विवर्तवाद है।

१४. परमात्मा में विवर्तभूत जगत् परमात्मा का बोधन होने से मिथ्या है सत्य नहीं।

१०. ब्रह्म में ज्ञान गुणभूत है वह सद्रूप नहीं किन्तु सद् विषयक है।

११. परमात्मा ही ईश्वर है। उसका शरीर जीव वर्ग तथा जड वर्ग से भिन्न ही है। चित अचिद् तथा ईश्वर तीन तत्त्व है। परमार्थ में भी तीन तत्त्व हैं।

१२. परमात्मा से उत्पन्न त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति तथा जगत परमात्मा से भिन्न है।

१३. प्रधान (प्रकृति) ही ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करके जगत् के रूप में परिणत हुई है। यह परिणाम वाद है।

१४. प्रधान का परिणाम भूत यह जगत सत्य ही है। मिथ्या नहीं।

१५. जीव के अज्ञान दोष से प्रतीत होने वाले इस जगत को सत्य अथवा असत्य वाणी से नहीं कह सकते। इसलिये जगत तथा अज्ञान की अनिर्वचनीय ख्याति है।	१५. जगत् की प्रतीति सत्य तथा वास्तविक है अतः जीव सत्य तथा ईश्वर की सत् ख्याति है।
१६. शुक्ति में रजत तथा स्वप्न का जगत अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय पदार्थ भासित होते हैं।	१६. शुक्ति में रजत तथा स्वप्न आदि सत्य ही प्रतीत होते हैं, मिथ्या नहीं।
१७. गुरु वेद तथा शास्त्र जगत् के अन्तर्गत दिखाई देने वाले सभी पदार्थ मिथ्या हैं। मिथ्या होने पर भी तत्त्व ज्ञान के साधन होने से, स्वप्न पदार्थवत् सार्थक हैं।	१७. शास्त्र (वेदादि) सत्य होने से उनमें कहा हुआ तत्त्व ज्ञान तथा साधन सत्य ही है। असत्य से सत्य की उत्पत्ति असम्भव होने से।
१८. जीव ईश्वर का ज्ञान कराने वाले साधन भूत प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि (अभाव) तथा शब्द छः प्रमाण हैं।	१८. जीव ब्रह्म जगत के ज्ञान के साधन भूत प्रमाण, प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द तीन ही हैं।
१९. प्रमाणों से जो ज्ञान होता है उसको प्रकाशित करने वाला अन्तःकरण है।	१९. प्रमाणों से होने वाला ज्ञान वास्तव में जीव निष्ठ ही है।
२०. परमात्मा से उत्पन्न अभिन्न जीवों का ज्ञान परमात्मा के समान होने के कारण जीव भी ज्ञान स्वरूप ही है। वास्तव में जीव ज्ञान के आश्रित नहीं है। किन्तु अन्तःकरण की उपाधि के कारण ज्ञातृत्व प्रतीत होता है।	२०. परमात्मा से उत्पन्न परमात्मा के शरीर भूत जीव भी ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञान गुण वाले हैं। उनमें ज्ञातृत्व वास्तविक है।

२१. ज्ञान के आश्रय से प्रतीत होने वाला मैं कहने वाला जीवात्मा नहीं है। किन्तु अन्तःकरण की विशेषता वाला अहंकार है।	२१. ज्ञान के आश्रित अहं वाला जीव ही है। जीव के अतिरिक्त अहंकार ज्ञानाश्रय नहीं।
२२. जीव विभु है (सर्वव्यापी है)।	२२. जीव अणु (अतिसूक्ष्म) है।
२३. जीव स्वरूप से ही सम्पूर्ण शरीर के अंगों में व्याप्त है।	२३. जीव ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण शरीरों के अंगों में व्याप्त है।
२४. जीव एक तथा ब्रह्म स्वरूप ही है। उसमें अनेकत्व अविद्या अन्तःकरण अथवा शरीरों की उपाधि से है।	२४. जीव वास्तव में अनेक हैं। जीवाद्वैत प्रकार अद्वैत है।
२५. साधन चतुष्टय (चार साधन) १. नित्यानित्यवस्तु विवेक, २. इहलोक परलोक के भोगों से वैराग्य, ३. षट् सम्पत्ति, ४. मुमुक्षुता के बाद ही ब्रह्म विचार का अधिकारी होता है।	२५. कर्म के स्वरूप का ज्ञान होने के अनन्तर ही ब्रह्म विचार का अधिकारी है।
२६. प्रत्यक्ष सामग्री की समीपता में शब्द से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।	२६. शब्द से उत्पन्न हुआ ज्ञान परोक्ष है। कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता।
२७. चारों महावाक्यों के श्रवण मनन निदिध्यासन के अनन्तर आत्म-साक्षात्कार होने पर अविद्या की निवृत्ति होती है।	२७. महावाक्यों से उत्पन्न उपासना की दृढ़ता होने से परमात्मा प्रसन्न होता है।
२८. सुख-दुःख शीतोष्ण, भूख प्यास आदि द्वन्द्वों से अतीत आत्मा साक्षात्कार होने पर स्थूल शरीर रहने पर भी जीवित अवस्था में ही मुक्ति होती है।	२८. परमात्मा के प्रसन्न होने पर भी स्थूल शरीर के रहने पर सुख-दुःख का भाव आवश्यक होता है अतः जीवन काल में मुक्ति कभी नहीं होती।

२९. जीवन्मुक्त के प्रारब्ध कर्म के क्षीण होने पर शरीर का त्याग करने पर स्व स्वरूप में पूर्ण स्थिति होती है ।

२९. प्रारब्ध कर्म के क्षीण होने पर पांच भौतिक शरीर का त्याग करने पर दिव्य देह को प्राप्त कर यति परमात्मा के साथ परम सौम्यता को प्राप्त करता है ।

३०. तीनों शरीरों के त्याग के अनन्तर जीव को विदेह मुक्ति प्राप्त होती है ।

३०. दिव्य देह की प्राप्ति सहित परमात्मा के साथ परम समता ही मुक्ति है ।

३१. विदेह मुक्ति में अहंभाव नहीं रहता ।

३१. मुक्ति होने पर भी अहंभाव बना रहता है ।

३२. विदेह मुक्ति में जीव के साथ ब्रह्म का भेद नहीं रहता एकता हो जाती है ।

३२. मुक्त होने पर भी जीव ब्रह्म की कभी एकता नहीं रहती, भेद बना रहता है ।

३३. विदेह मुक्ति में अन्तःकरण के धर्म सुख-दुःख का लेश मात्र नहीं रहता ।

३३. इस मुक्ति अवस्था में नाममात्र दुःख रहता है । दुःख की अपेक्षा सुख की अनुभूति अधिक होती है ।

शंकर का केवलाद्वैत तथा रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का संक्षिप्त विवरण ॥

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे षोडशोऽध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विशिष्टाद्वैत मत का स्पष्टीकरण

विशिष्टाद्वैत = विशिष्टा = माया सहित अद्वैत यह विशिष्टाद्वैत का अर्थ हुआ । इनके मत के अनेकों यामुनाचार्य आदि आचार्य हो चुके हैं । इसी परम्परा में जगद् गुरु रामानुजाचार्य यामुनाचार्य के प्रशिष्य थे । इन्होंने गीता ब्रह्मसूत्र के भाष्यों में विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है । इन्होंने निर्गुण ब्रह्म का अर्थ त्याज्य गुणों से रहित किया है तथा सगुण का अर्थ सद्‌गुणों से युक्त किया है । इस सिद्धान्त में तीन तत्त्वों को (ईश्वर जीव तथा प्रकृति) सत्य कहा है । इसी को जड़ जीव तथा ईश्वर कहा है । सुख-दुख भोग का साधन शरीर है । जीव ईश्वर दोनों स्वभाव से विलक्षण हैं । बद्ध, बद्ध मुक्त तथा नित्य मुक्त तीन प्रकार के जीव कहे हैं । जीव का स्वामी

अन्तर्यामी ईश्वर है। वह सम्पूर्ण दोषों से रहित एक-मात्र कल्याणकारी, सद्गुण सम्पन्न जीवों की अपेक्षा विलक्षण है। वह सभी अवस्थाओं जीवों तथा जड़ पदार्थों में व्याप्त है। जड़ों तथा जीवों का अन्तर्यामी होकर उनका नियन्ता है। **यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः यस्य पृथ्वी शरीरं, यं पृथ्वी न वेद यः पृथ्वीमन्तरो यमैति। बृहदा. ३।७।३** इत्यादि जो पृथ्वी में स्थित होकर पृथिवी में रहता है पृथ्वी पर नियन्त्रण करता है। जिसका पृथ्वी शरीर है जो पृथ्वी को जानता है पृथ्वी जिसको नहीं जानती। वह अन्तरात्मा ईश्वर है। वह नारायण के रूप में बाहर भीतर व्याप्त है। जीव ईश्वर जगत का भेद सत्य है औपाधिक नहीं। वास्तविक है। गीता में भगवान् ने कहा है—**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः**। इस ज्ञान का आश्रय लेकर मेरे साधर्म्य को प्राप्त करते हैं। इनके मत में सम्पूर्ण अविद्या उपाधियों से रहित होने पर भी मोक्ष में जीव ईश्वर में भेद बना रहता है।

इन ईश्वर, जीव, जगत तीन तत्त्वों के अतिरिक्त द्रव्य तथा गुण दो तत्त्व और स्वीकार किये हैं। संकोच तथा विकास वाला द्रव्य है। यह छः प्रकार का है—१. ईश्वर, २. जीव, ३. नित्य विभूति, ४. ज्ञान, ५. प्रकृति ६. काल।

ईश्वर—परमात्मा ब्रह्म इसके पर्यायवाची हैं। यह सर्वाधार सर्वकर्ता है। उस ईश्वर के, जीव, नित्य विभूति, प्रकृति तथा काल यह चार दिव्य शरीर हैं। वह ईश्वर का स्वरूप, ज्ञान शरीर, तीनों में व्यापक हैं। वह ईश्वर पांच भेदों से युक्त हैं। १. पर, २. व्यूह, ३. विभव, ४. अन्तर्यामी, ५. अर्चावतार।

१. पर—पर ईश्वर वैकुण्ठ में लक्ष्मी सहित शेष तथा गरुड आदि नित्य जीवों के साथ क्रीड़ा करते हुये रहता है। वह पर ईश्वर ही उपासना के लिये वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध भेद से चार प्रकार का विद्यमान व्यूह कहा जाता है। जगत की उत्पत्ति उपासक पर कृपा तथा संसार की रक्षा करना उसका काम है। इनमें **वासुदेव, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, पराक्रम** तथा **तेज** छः गुणों से युक्त है। **ज्ञान**—सर्व विषयक ज्ञान सर्वदा, सब विषयों का प्रकाशक, स्वयं प्रकाश यह गुण विशेष है। **शक्ति**—जगत की उत्पत्ति पालन संहार कारिणी, कर्त्तुं, अकर्त्तुं, अन्यथा कर्त्तुं समर्था। **बल**—जगत् सृष्टि तथा पालन करने में परिश्रम का अभाव अथवा सकल वस्तु को धारण करने की सामर्थ्य का नाम बल है। **ऐश्वर्य**—उसमें स्वतन्त्र रूप से कर्त्तृत्व है अथवा सम्पूर्ण जीवों तथा जड पदार्थों के नियमन करने की सामर्थ्य है।

वीर्य—वह जगत का उपादान कारण होने पर भी उसमें विकार का अभाव है। **तेज**—किसी सहायक की अपेक्षा के बिना ही दूसरे को दबाने की शक्ति का नाम तेज है। यह चतुर्व्यूह के अन्तर्गत वासुदेव के छः गुण कहे गये हैं। **संकर्षण**—प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की अपेक्षा संकर्षण में ज्ञान तथा बल की अधिकता है। **प्रद्युम्न** में ऐश्वर्य तथा वीर्य की अधिकता है। **अनिरुद्ध** में शक्ति तथा तेज अधिक है। **विभव**—भगवान् के मत्स्य कूर्म आदि अवतार विभव कहे गये हैं। **अन्तर्यामी**—वह प्राणियों के हृदय में स्थित, योगियों का ध्येय है। यह जीव के साथ रहते हुये भी जीव के दोषों से लिप्त नहीं होता। **अर्चावतार**—भक्त द्वारा कल्पित प्रतिमा तथा शरीर उपासक के अधीन होकर देव मन्दिर में, मूर्ति में परमात्मा की स्थिति अर्चावतार है।

वह पांच भेदों से युक्त परमात्मा सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि गुणों से युक्त है। भक्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य आदि जिस भाव से उपासना करता है वे उसकी रक्षा करते हैं।

जीवों के भेद

जीवों के शरीरों में परमात्मा स्वयं प्रकाश तथा नित्य होकर अणु परिमाण वाला है। जीव का कर्तृत्व ईश्वर के अधीन है। जीव बद्ध मुक्त तथा नित्य भेद से तीन प्रकार के हैं। इनमें तिनके से ब्रह्मा पर्यन्त संसारी जीव बद्ध हैं। इनमें परमात्मानुभूति होती है। बद्ध दशामें इसके गुण ढके रहते हैं। मुक्त दशा में आठ गुण (ढके हुये) का आविर्भाव होता है। १. प्राकृत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, शक्ति, ज्ञान, आनन्द। नित्य जीवों में भगवान् के पार्षद, अनन्त, गरुड़, विष्वक्सेन आदि नित्य जीव हैं।

नित्य विभूति—शुद्ध सात्विक, स्वयं प्रकाश देश विशेष का नाम नित्य विभूति है। यह शुद्ध सत्त्व, द्रव्यात्मक, सतोगुण से विलक्षण, सतोगुण का आश्रय भूत है। यह देश विशेष (वैकुण्ठ) से नीचे परिच्छिन्न है। ऊपर परिच्छेद से रहित है। वैकुण्ठ लोक परमात्मा का मुक्तों का एवं नित्य जीवों का भोग स्थान है।

ज्ञान—ज्ञान बुद्धि अर्थ की प्रकाश शक्ति वह सदैव विषय से युक्त स्व प्रकाश तथा विभु है। यह सदैव द्रव्य रूप गुणात्मक होती है। नियम रूप से जीव ईश्वर की अन्तर्वृत्ति रूपा है। जैसे दीपक का प्रकाश द्रव्य रूपा दीप गुणों से युक्त है। वैसे ही जीव के अन्तःकरण में दीपक वत् बुद्धि प्रकाश करती है। जीव ईश्वर का स्वरूप भूत ज्ञान इससे अन्य है। यह केवल द्रव्य

है गुण नहीं। जीव ईश्वर का स्वरूप भूत ज्ञान स्वयं का प्रकाशक है। परन्तु गुण रूप ज्ञान अपने तथा दूसरे का प्रकाशक है।

गुण—वह गुणभूत ज्ञान, ईश्वर तथा नित्य जीवों में सदैव रहता है। कभी भी तिरोहित नहीं होता। बद्ध जीवों में अंश रूप में आविर्भूत होता है। परन्तु मुक्ति के अनन्तर तरुण पुरुष में विद्यमान बल के समान पूर्ण रूप में रहता है। वह ज्ञान नित्य है। व्यवहार में ज्ञान उत्पन्न हुआ, नष्ट हुआ जो कहा जाता है। ज्ञान का संकोच हो जाने पर ज्ञान नष्ट वत् है तथा विकसित होने पर उत्पन्न कहा जाता है। यह ज्ञान जीव के आश्रित है। ज्ञान इन्द्रियों द्वारा बाहर निकल कर घटादि पदार्थों को विषय करता है। विशिष्टाद्वैत का केवल दिग्दर्शन मात्र कराया है। अब बद्ध, नित्य तथा मुक्त जीवों के सम्बन्ध में गीता के १५वें अध्याय में श्लोक १६, १७, १८ के रामानुज भाष्य के अनुसार इसकी व्याख्या करेंगे।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोक त्रयमाविष्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥
यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

इस लोक में क्षर अक्षर दो पुरुष हैं। सम्पूर्ण भूत प्राणी क्षर हैं तथा आत्म ज्ञानी अक्षर हैं। इन दोनों से भिन्न उत्तम परमात्मा कहा गया है। जो तीन लोकों में प्रवेश करके अविनाशी ईश्वर रूप से सबका भरण पोषण करता है। क्योंकि मैं क्षर और अक्षर दोनों से परे उत्तम हूं। इसलिये लोक तथा वेद में पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूं।

क्षर शब्द—से चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त क्षरण स्वभाव वाले जीव कहे हैं। भूतानि = अचित् संगरूपी एक उपाधि से मुक्त पुरुष का निर्देश है तथा कूटस्थ अक्षर का अर्थ जड़ के सम्पर्क से रहित मुक्तात्मा कहा है। भाव यह है कि बद्ध, मुक्त तथा नित्य मुक्त तीन श्रेणियां चेतन की कही हैं। क्षर भूत प्राणी नाशवान् हैं इन्हें बद्ध कहा है तथा साधना अभ्यास से स्वरूप में स्थित को मुक्त कहा, वही अक्षर है। ईश्वर तथा परमात्मा नित्य मुक्त हैं। वह क्षर तथा अक्षर बद्ध तथा मुक्त दोनों से परे अन्य है। सम्पूर्ण श्रुतियों में उसे परमात्मा या ईश्वर

कहा गया है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका भरण पोषण करता है। वह क्षय रहित होने के कारण अव्यय है। वह परमात्मा प्रकृति जीव तथा मुक्तात्मा तीनों पर शासन करने के कारण ईश्वर है ॥१६ ।१७ ॥ क्योंकि मैं ऊपर कहे स्वभाव वाले बद्ध, क्षर पुरुष से तथा अक्षर मुक्त पुरुष से उत्कृष्टतम हूं इसलिये मैं लोक (स्मृति पुराणादि) तथा वेद में पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूँ। वेदार्थ का अवलोकन करने से स्मृति को लोक कहा। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है—वह उत्तम पुरुष स्वयं प्रकाश अपने स्वरूप से सम्पन्न होता है। विष्णु पुराण में भी कहा है—आदि मध्य तथा अन्त्य रहित अनादि पुरुषोत्तम विष्णु के यह सब अवतार हैं ॥१८ ॥

॥ रामानुजीय विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तं सम्पूर्णम् ॥

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, सप्तदशोऽध्यायः ॥१७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

महर्षि कात्यायन—पाणिनि

कात्यायन नाम के अनेक ऋषि शास्त्रों में पाये जाते हैं। इन्हीं के नाम से "कात्यायनि शान्ति" नामक कर्मकाण्ड की छोटी सी पुस्तक है। द्वापर के अन्त में जब गोपाङ्गनाओं ने कुल गुरु गर्गाचार्य जी के पास जाकर भगवान् कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने का उपाय पूछा, तब उन्होंने कात्यायनि भगवती की उपासना, व्रत तथा मन्त्र का उपदेश किया।

यह मुनि कब हुये। इसका कुछ पता नहीं चलता। धर्म सूत्रों के कर्त्ता कात्यायन तथा पाणिनीय सूत्रों के वार्त्तिककार मुनि (वररुचि) इनसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व कलियुगीय इतिहास समुच्चय के तीसवें अध्याय में इनका चरित्र इस प्रकार से आया है।

कलियुग में पितृशर्मा नाम के ब्राह्मण वेद वेदान्त के तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने घोरतम कलिकाल को देखकर सोचा, कि किस आश्रम का आश्रय लेना चाहिये। इस युग में संन्यास आश्रम दम्भियों द्वारा दूषित है। वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य भी कहीं देखने में आता है। अतः गृहस्थाश्रम ही उत्तम है। ऐसा विचार कर उन्होंने इच्छित पत्नी की प्राप्ति के लिये सच्चिदानन्द स्वरूपिणी विश्वेश्वरी की आराधना की। उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर आज्ञा दी कि विवाह करो। उन्होंने

मथुरावासी विष्णु यश की ब्रह्मचारिणी नाम की पुत्री के साथ विवाह किया। उसके गर्भ से इनके चार विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुये। जिनके नाम ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व हुये। ऋक् के न्याय शास्त्र में विशारद व्याडि हुये। यजुः के मीमांसक नाम का पुत्र हुआ। वह पाणिनि के समान व्याकरण शास्त्र में विशारद थे। अथर्वण के वररुचि नाम का पुत्र हुआ। मगध देश के राजा चन्द्र गुप्त के सभा पण्डित थे। राजा ने इनका सम्मान किया। महाराज ने इनसे पूछा, उत्तम ब्रह्मचर्य क्या है। तब इनके भाई व्याडि ने कहा, जो न्याय से धनोपार्जन करके देवताओं का पूजन करता है वह ब्रह्मचारी है। मीमांसक ने कहा, राजन ! जो यज्ञ द्वारा देवताओं की आराधना हवन तर्पण करके उनका प्रसाद ग्रहण करता है, वह ब्रह्मचारी है। पाणिनि ने कहा हे चन्द्रगुप्त ! जो तीन स्वरों (उदात्त अनुदात्त, स्वरित) से युक्त शब्द ब्रह्म की आराधना में रत है, वह ब्रह्मचारी परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। यह सुनकर वररुचि ने कहा हे मगध भूपते ! जो विधि से उपनीत होकर गुरु कुल में रहते हुये गुरु अग्नि की सेवा करते हुये दण्ड, केश, नाखून धारण कर, भिक्षा में तत्पर होकर वेदाध्ययन करता है वह ब्रह्मचारी है। उस सभा में इन चारों के पिता पितृ शर्मा थे। उन्होंने कहा—हे राजन ! जो ब्राह्मण गृहस्थ में रहते हुये ऋषि, पितृ, देव, अतिथि का सत्कार करता हुआ, ऋतु काल के अतिरिक्त जितेन्द्रिय है, वह मुख्य ब्रह्मचारी है। तब राजा ने कहा, हे स्वामिन् ! आपने जो धर्म का उपदेश किया, वह ठीक है। यह कहकर राजा पितृ शर्मा के शिष्य हो गये। मरने के बाद राजा ने स्वर्ग प्राप्त किया। पितृ शर्मा भी हिमालय पर जाकर दामोदर का ध्यान करते हुये परमगति को प्राप्त हुये।

कथा सरित सागर नामक ग्रन्थ में इनके (कात्यायन) दो जन्मों की कथा आई है। पूर्व जन्म में वे शंकर जी के गण थे। पार्वती जी का अपराध करने के कारण उनके शाप से वे पुष्पदन्त हुये। यह कथा काशी केदार माहात्म्य में पीछे सत्ययुग खण्ड में दी जा चुकी है। उसमें पुष्पदन्त क्षेमक कवि के नाम से प्रसिद्ध हुये। इन्हें गन्धर्व राज भी कहा जाता है।

परन्तु इस सरित्सागर की दूसरी तरंग के प्रथम श्लोक में लिखा है कि—**ततः स मर्त्य वपुषा पुष्पदन्तः परिभ्रमन्। नाम्ना वररुचिः किंच कात्यायन इति श्रुतः।** पुष्प दन्त ही घूमते हुये दूसरे जन्म में वररुचि या कात्यायन नाम से मनुष्य हुये।

इनका जन्म 'कौशाम्बी' में हुआ था। इनके पिता गुणाढ्य, वेदज्ञ 'सोमदत्त या अग्नि शिख' नाम से प्रसिद्ध हुये। माता का नाम 'वसुदत्ता' था। वाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु

हो गई थी । माता ने बड़ी कठिनाई से इनका भरण पोषण किया । इनकी बुद्धि अति प्रखर थी । किसी भी ग्रन्थ को एक बार सुनने के बाद भूलते नहीं थे । अतः इनका नाम 'एक श्रुतधर' भी पड़ा । इनकी कई बार परीक्षा भी की गई ।

एक बार अपने पिता के मित्र के साथ राज दरबार में पहुंचे । वे इनकी विद्या से विशेष प्रभावित हुये । इन्हें स्वामी कार्तिक जी का वरदान प्राप्त था । उन्हीं दिनों 'पाटलि पुत्र' नगर बसा था । वहां पर शंकर स्वामी नामक ब्राह्मण रहते थे । उनके वर्ष तथा उपवर्ष नामक दो पुत्र थे । इनमें वर्ष दरिद्र तथा मूर्ख थे, परन्तु उपवर्ष धनी तथा विद्वान् थे । एक दिन वर्ष पत्नी से अपमानित होकर घर से चले गये । स्कन्द स्वामी की आराधना की । उनकी कृपा से इन्हें समस्त विद्याएं प्राप्त हुई । साथ ही कहा, कि जब तक तुम्हें 'एक श्रुतिधर' विद्यार्थी न मिले, तब तक किसी को न पढ़ाना । इनसे वेदाध्ययन करने के लिये इन्द्रदत्त तथा व्याडि इनके आश्रम में पहुंचे । इनकी पत्नी ने कहा—जब तक एक श्रुतिघर विद्यार्थी नहीं आवेगा, तब तक तुम दोनों को विद्या नहीं प्राप्त होगी । वे दोनों बड़ी कठिनाई से एक श्रुतधर वररुचि को खोजकर लाये । दोनों के हर्ष की सीमा नहीं रही । इनके जन्म के समय आकाश वाणी हुई थी कि यह बालक एक श्रुतिधर होगा । वर्ष से विद्याध्ययन करके व्याकरण शास्त्र के आचार्य हो गये । इनको उत्तम वस्तु के प्रति रुचि होगी । इसलिये वररुचि नाम होगा । तीनों ने ही वर्ष से वेदाध्ययन किया । इनके दो सतीर्थ्य व्याडि द्वि श्रुतिधर तथा इन्द्रदत्त त्रिश्रुतिधर थे ।

नगरवासी वर्ष उपाध्याय को मूर्ख ही समझते थे । इन तीनों को पढ़ाने से विद्वान् ब्राह्मणों को महान् आश्चर्य हुआ । वे उन्हें प्रणाम तथा आदर करने लगे । उस समय के राजा नन्द थे । उन्होंने वर्ष को बहुत-सा धन दिया ।

वेदाध्ययन के अनन्तर उपवर्षाचार्य की पुत्री 'उद्कोशा' के साथ बररुचि का विवाह हुआ । उनके पातिव्रत से प्रभावित होकर महाराज नन्द ने उन्हें 'धर्म भगिनी' बनाया । वर्ष के दूसरे शिष्य पाणिनि जी ने महादेव जी से वर प्राप्त करके नया व्याकरण बनाया । दोनों का शास्त्रार्थ हुआ । शंकर जी ने हुंकार मात्र से अत्यन्त प्राचीन वररुचि का ऐन्द्र व्याकरण भुला दिया । तब इन्होंने शंकर जी की आराधना करके नवीन व्याकरण पढ़ा । पाणिनि के व्याकरण की न्यूनता को वार्तिक बनाकर पूर्ण किया । विद्या पूर्ण हो जाने पर इन्द्र तथा व्याडि ने अपने गुरु वर्ष को महाराज नन्द से एक करोड़ मुद्रा लेकर गुरु दक्षिणा देनी चाही, परन्तु इनके जाने से पूर्व ही राजा का शरीर छूट गया था ।

तब इन्द्र दत्त ने योग बल से राजा के शरीर में प्रवेश किया। प्रवेश से पूर्व निर्जीव शरीर की रक्षा के लिये व्याडि को नियुक्त किया। वे उनके शरीर को एक मन्दिर में ले गये। उसी समय वररुचि ने उनसे एक करोड़ मुद्रा मांगी। महा मन्त्री को सन्देह हुआ, कि राजा के शरीर में किसी योगी ने प्रवेश किया है। अतः सभी शव फुंकवा दिये। व्याडि के मना करने पर भी इन्द्र दत्त का शरीर जला दिया गया। वररुचि को धन प्राप्त हुआ। व्याडि ने गुरुदक्षिणा दी। राजा ने जीवित ब्राह्मणों को फुंकवाने के दोष में शकटार को हटा दिया तथा वररुचि को मन्त्री बनाया।

यह वररुचि की संक्षिप्त कथा 'कथा सरित् सागर' में आई है। जो इस ग्रन्थानुसार पूर्व जन्म में पुष्पदन्त थे। उनके इस नाम के विषय में कहा है कि प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) के महाराजा की कन्या से मिलने के लिये गोविन्द दत्त नाम के ब्राह्मण का पुत्र देवदत्त मिलने पहुंचा था। उस कन्या ने देखकर दांत से पुष्प गिराकर संकेत किया था, इसलिये इनका नाम पुष्पदन्त हुआ।

ततः समीपं तस्याश्च ययावन्तः पुराच्च सः।
सा च चिक्षेप दन्तेन पुष्पमादाय तं प्रति॥

इससे सिद्ध होता है कि उनका जन्म का नाम देवदत्त था। एक पुष्पदन्त महानाग का नाम भी आया है। लिंग पुराण में आया है।

पुष्पदन्तो महानागो विपुलानन्द कारकः।

अनेक ग्रन्थों में अनेक पुष्पदन्तों तथा कात्यायनों की कथा आती है। इनमें से कौन कात्यायन धर्म सूत्र कार हुये। कौन वार्तिक कार इसका निश्चय करना टेढ़ी खीर है। श्री मधुसूदन सरस्वती जी महाराज शिव महिम्नः स्तोत्र की व्याख्या प्रारम्भ करने के पूर्व कथा लिखते हैं कि 'कोई बाहु नाम का गन्धर्व राज किसी राजा की फुलवाड़ी में से शंकर जी के पूजन के लिये नित्य प्रति उत्तमोत्तम फूल तोडता था। आकाश मार्ग से जाता था। रोज फूल तोड़ने के कारण राजा मालियों पर कुपित हुये। दिन रात चौकसी होने पर भी चोर का पता नहीं चला। तब किसी अनुभवी ने बताया कि निश्चय कोई देवता या देवदूत अलक्षित रूप से चोरी करता है। अतः चोर को पकड़ने के लिये शिव निर्माल्य बिखेर दिया जाए। ऐसा ही

किया गया। पुष्प तोड़ते समय शंकर जी पर चढ़े हुये पुष्प उनके पैरों के नीचे पड़े। इस दोष के कारण उनकी आकाश गमन शक्ति लुप्त हो गई। मालियों ने पकड़ कर राजा को सौंपा। वे बन्दी बना लिये गये। तब कारागार में इस दोष की निवृत्ति के लिये "शिव महिम्नः स्तोत्र" से शंकर जी की स्तुति की। यही कालान्तर में वररुचि हुये। विक्रमादित्य के दरबार में नव रत्नों में एक थे। जिनके नाम—

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमर सिंह शंकु,
वैताल भट्ट घटकर्पर कालिदासः।
ख्यातो वराह मिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचि र्नव विक्रमस्य॥

उस समय की एक घटना है। एक बार महाराज विक्रम के दरबार में दो पुतलियां बनाकर एक कारीगर ने भेंट कीं। दोनों का रूप, रंग, नाप एक जैसा था। दोनों में कोई अन्तर नहीं था। कारीगर ने एक का दाम एक लाख रुपये तथा दूसरी का दो कौड़ी मांगा। तब दरबार में बड़ी हलचल मची। महाराज भी विस्मित होकर कवियों से पूछने लगे। कोई भी उत्तर न दे सका। तब एक दिन कुपित होकर विक्रम ने कहा, यदि एक मास तक विद्वान् उत्तर नहीं देंगे तो इनको मृत्यु दण्ड दिया जाएगा। समय बीत गया, किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। रात्रि में सब भाग गये। वररुचि भी अकेले रात्रि में वन में पहुंचे। रात्रि के अन्धकार तथा वन्य पशुओं के भय से आगे नहीं बढ़ पाये। एक पेड़ पर चढ़कर बैठ गये। वह बरगद का पेड़ था। उसके नीचे सियार का जोड़ा था। स्त्री गर्भवती थी। उसने स्वामी से मनुष्य का मांस मांगा। सियार ने कहा—तू धीरज धर ! कल तुझे पवित्र ब्राह्मणों का मांस पेट भर कर खाने को मिलेगा। सिंयारिन ने पूछा—किस प्रकार मिलेगा। सियार ने बताने से इंकार किया। उसके हठ करने पर राज दरबार की सारी घटना सुना दी। तब सियारिन ने दोनों पुतलियों के भेद का कारण पूछा। सियार ने बहुत टाल-मटोल के बाद बताया कि दोनों पुतलियों में इतना अन्तर है कि एक पुतली के कान में यदि कोई वस्तु डाल दी जाए तो उसके पेट में पड़ी रहेगी। दूसरे के कान में डाली वस्तु तुरन्त ही उसके मुख के रास्ते से बाहर निकल जाएगी। भाव यह है कि जिसके पेट में बात ठहरती है वह लाख रुपये का मनुष्य है जो कोई सुनते ही बकने लगता है वह दो कौड़ी का है।

वररुचि पेड़ पर बैठे हुये दोनों की बात सुन रहे थे। वे अपनी प्रसन्नता को संभाल न सके। जोर से हंसने लगे। तुरन्त ही पेड़ पर से कूद पड़े। उन्हें देखकर सियार ने कहा—**दिवा विचार्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च। पर्यटन्ति सदा धूर्ताः बटे वररुचि र्यथा॥** दिन में विचार कर बात कहना चाहिये रात्रि में कदापि नहीं। क्योंकि रात्रि में वररुचि के समान धूर्त सदा घूमते रहते हैं।

प्रातः काल ही वररुचि राज दरबार में पहुंचे। दोनों पुतलियों की परीक्षा की। दो वस्तुयें उनके कान में डाली, एक के पेट में रही दूसरी के मुख से बाहर निकल गयी। इस प्रकार इन्होंने अपने तथा पण्डितों के प्राणों की रक्षा की। विक्रम ने प्रसन्न होकर वररुचि तथा शिल्पकार को पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया।

इनका काल—इन तीनों मुनियों के समय में संस्कृत, प्राकृत, पैशाची तथा देश भाषायें प्रसिद्ध थीं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक भाषाएं थीं। उस काल में संस्कृत के अनन्त ग्रन्थ थे। जिनमें से छः लाख ग्रन्थ जला दिये गये। एक लाख ग्रन्थ राजा सातवाहन को दिये। इसका विवेचन "बृहत्कथा सरित् सागर" में हुआ है। वररुचि ईसा से १२० वर्ष पूर्व या विक्रम के समय हुये। कुछ विद्वान् दो वररुचि मानते हैं। "बृहत्कथा सरित् सागर" गुणाढ्य कवि की रचना मानी जाती है।

वर्तमान बृहत्कथा श्री रामदेव भट्ट के पुत्र सोमदेव भट्ट की बनाई है। इसकी रचना काश्मीर के राजा संग्राम देव के पुत्र अनन्तदेव की रानी सूर्यवती को प्रसन्न करने के लिये लिखी गई थी। अनन्त देव के कमल देव, उनके पुत्र हर्ष देव हुये। पूर्वोक्त राजाओं के नाम से और भ्रम पैदा होता है। क्योंकि "रत्नावली" कार हर्ष कालिदास से पहले हुये। क्योंकि कालिदास ने 'मालविक्ताग्निमित्र' में धावक कवि का नाम प्राचीन कवियों में लिखा है। 'बृहत्कथा' में विक्रम चरित्र आता है। अतः वह नवरत्न विक्रम से प्राचीन प्रतीत होते हैं। धावक से कुछ काल पहले कश्मीर में सोमदेव ने इसकी रचना की थी, क्योंकि इसमें नन्द, विक्रम की तरह कालिदास का नाम नहीं आता है। इससे विक्रम के वररुचि दूसरे सिद्ध होते हैं। उस समय के राजाओं तथा कवियों के नाम एक-दूसरे से मिलते थे।

प्राचीन राजाओं तथा कवियों का काल निश्चित करना बड़ा कठिन है। काशी नरेश महाराज 'शिव प्रसाद सितारे हिन्द' ने अपने **"इतिहास तिमिर नाशक"** ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में

लिखा है कि "समय के उलटफेर में हमारे पण्डित लोग जो कुछ अपनी पण्डिताई दिखलाते हैं, लिखने योग्य नहीं है। इसी एक बात से सोच लो कि जिस पण्डित से पाणिनीय व्याकरण का जमाना पूछोगे, पूछते ही कहेगा कि सत्य युग में हुये थे। लाखों वर्ष बीते हैं, परन्तु इससे इंकार न करेंगे कि कात्यायन की पतंजलि ने टीका लिखी (महाभाष्य) । पतंजलि जी की व्यास ने, (अर्थात् योग दर्शन पर व्यास जी ने भाष्य किया) टीका की।

आज कल के विचारक मानवीय संकीर्ण दृष्टि से काल विजयी सिद्ध योगिराज ऋषियों का समय संकीर्ण दृष्टि से निर्धारित करते हैं। महाभाष्य कार पतंजलि जी के सूत्रों के भाष्य कर्त्ता व्यास जी हैं जो कि आज भी इस धरातल पर विद्यमान हैं। अधिकारी पुरुषों को आज भी उनका दर्शन होता है। अतः यदि किसी प्राचीन आचार्य ने अपने से परवर्त्ती आचार्य के किसी ग्रन्थ की आलोचना की है तो वे अर्वाचीन नहीं हो जाते। जैसे सम्पूर्ण इतिहास पुराणों से सिद्ध है कि व्यास जी के साम वेदीय शिष्य जैमिनि जी थे। उन्होंने पूर्व "मीमांसा दर्शन" रचा। उनके कर्म सिद्धान्त का खण्डन करते हुये व्यास जी ने 'ब्रह्मसूत्र' में अनेकों स्थलों पर उनके मीमांसा दर्शन के सूत्र देकर खण्डन किया है। तब इस प्रमाण से व्यास जी उनसे परवर्ती सिद्ध नहीं होते। सर्वज्ञ ऋषियों की दिव्य दृष्टि वर्तमान प्रत्यक्ष के समान भूत भविष्य को भी प्रत्यक्ष वत् देखती थी। उन्होंने सभी पुराणों में कलियुग की भविष्य वाणियां की हैं। विशेष कर भविष्य तथा कल्कि पुराणों में विस्तार किया है। इससे व्यास जी परवर्ती नहीं हो जाते। प्राचीन इतिहास लेखकों तथा अर्वाचीन लेखकों में इतना ही अन्तर पाया जाता है कि प्राचीन ऋषि बाल्मीकि आदि घटना से पूर्व इतिहास लिखते थे। ऐतिहासिक घटनायें उनके लेखानुसार होती थीं। वर्तमान इतिहास लेखक घटनानुसार इतिहास लिखते हैं। उनमें भी कुछ पक्षपाती लेखक गोलमाल कर जाते हैं। अतः वर्तमान इतिहास के आधार पर किसी का काल निश्चय करना अत्यन्त कठिन है।

पाणिनि, पतंजलि तथा कात्यायन इनके ऋण से कोई भी परवर्ती विद्वान् उऋण नहीं हो सकता। मुनित्रय की वन्दना करते हुये यह लेख पूर्ण किया जाता है।

येन धौता गिरः पुंसां विमलैश्शब्द वारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः ॥१॥

वाक्य कारं वररुचिं भाष्यकारं पतंजलिम्।
पाणिनिं सूत्र कारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम्।।२।।
अस्तु नमः पाणिनये भूयो मुनये तथास्तु वररुचये।
किञ्चास्तु पतञ्जलये शब्द ब्रह्मात्मने च धूर्जटये।।३।।
येनाक्षर समाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।४।। भट्टोजि दीक्षित।।

अर्थ—जिन्होंने अपने निर्मल शब्द रूपी जल से मनुष्यों की वाणी को धोकर अज्ञानान्धकार को नष्ट किया है, उन पाणिनि जी को नमस्कार है।।१।। वार्तिक कार वररुचि (कात्यायन) महा भाष्य कार पतंजलि तथा सूत्रकार पाणिनि तीनों मुनियों को प्रणाम करता हूं।।२।। महर्षि पाणिनि मुनि कात्यायन तथा पतंजलि जी को प्रणाम करते हुये, शब्द ब्रह्म स्वरूप भगवान् शंकर को प्रणाम करता हूं।।३।।

जिन्होंने भगवान् शंकर से आम्नाय का ज्ञान प्राप्त करके सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र की रचना की, उन पाणिनि जी को प्रणाम है।।४।।

।। इति श्री गुरु पु. कलि. ख. प्र. परि. अष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

अथ ऊनविंशोऽध्यायः

श्री वोपदेव

तोताद्रि तीर्थ में वोपदेव नाम के ब्राह्मण थे। वे वेद वेदांग को जानने वाले कृष्ण भक्त थे। उन्होंने वृन्दावन में जाकर जनार्दन भगवान् का मानसिक पूजन किया। वर्ष के अन्त में भगवान् ने दर्शन देकर परीक्षित के प्रति शुकदेव द्वारा कही हुई श्री मद्‌भागवत की कथा वर्णन की, फिर वर मांगने के लिये कहा। उन्होंने भगवान् से इसका माहात्म्य पूछा श्री भगवान् ने उत्तर दिया। एक बार शंकर पार्वती सहित काशी पहुंचे। उन्होंने 'जय सच्चिदानन्द जगदानन्द' कहकर प्रणाम किया। यह सुनकर पार्वती जी ने पूछा—क्या आप से भी उत्तम कोई देव है? जिसको प्रणाम करते हो। शिव जी ने कहा, हे महादेवि ! यहां पर भागवत् सप्ताह यज्ञ हुआ था। इसलिये यह भूमि सम्पूर्ण तीर्थों से पवित्र, स्वयं सनातन ब्रह्म ही है। यह सुनकर पार्वती

जी ने गणेश, नन्दी आदि अनेक देवताओं की स्थापना नगर की रक्षा के लिये की। इसके अनन्तर भगवान् शंकर जी ने विस्तार से भागवत् का माहात्म्य सुनाया।

शंकर जी से भागवत् तथा व्याकरण शास्त्र प्राप्त करके इन दोनों ग्रन्थों की विस्तृत व्याख्या की। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। जिनका वर्णन द्वापर युग खण्ड में "भागवत् व्यास जी की ही रचना है" लेख में कर चुके हैं।

आपका जन्म वि. सं. १३४७ में हुआ था। यह द्राविड ब्राह्मण थे। आपने 'कवित कल्पद्रुम" नामक ग्रन्थ में अपने विषय में लिखा है कि मेरा जन्म धनेश्वर वैद्य के यहां हुआ था। इनका उपनाम 'वेद' था। आपने भागवत् पुराण पर "परमहंस प्रिया" नामक टीका की। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में **"इति श्री मद्भागवते महापुराणे अष्टादश साहस्त्र्यां परम हंस संहितायां वैय्यासिक्यां"** आदि लिखा है। इस प्रमाण से भी भागवत् व्यास जी की रचना सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त भागवत् पर "मुक्ता फल", "हरिलीला" आदि २६ ग्रन्थ लिखे गये हैं। मुक्ता फल की हेमाद्रि ने टीका की है। उसमें इनके २६ ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है।

॥ इति श्री गुरु. पु. कलि. ख. प्रथम परि. ऊनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

जगद् गुरु बल्लभाचार्य जी महाराज का पुष्टि मार्गीय शुद्धाद्वैत सिद्धान्त

(वेदान्त अंक से)

महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य जी ने गीता एवं ब्रह्मसूत्र पर भाष्य किया है। ब्रह्मसूत्र का भाष्य "अणु भाष्य" के नाम से प्रसिद्ध है। श्री मद्भागवत् पर "सुबोधिनी" टीका है। इन ग्रन्थों में तथा "बल्लभ दिग्विजय" में शुद्धा द्वैत का विस्तृत विवेचन है। इन्होंने जीव ब्रह्म की एकता स्वीकार की है। अतः यह कट्टर अद्वैत वाद के समर्थक हैं। परन्तु श्री शंकराचार्य के माया विशिष्ट ब्रह्म से अपने मत को भिन्न सिद्ध करने के लिये अद्वैत से पूर्व शुद्ध रखा है। "शुद्धाद्वैत मार्तण्ड" में इस नाम की व्याख्या करते हुये कहा है **"माया सम्बन्ध रहितं शुद्ध मित्युच्यते बुधैः। कार्य कारण रूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्॥** माया सम्बन्ध तथा कार्य कारण

रूप से रहित ब्रह्म को विद्वानों ने शुद्ध कहा है। मायिक ब्रह्म शुद्ध नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप श्री कृष्ण ही शुद्ध ब्रह्म हैं। जैसे अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं। वैसे ही परब्रह्म से जीवों का आविर्भाव होता है। भगवान् के आविर्भाव से जगत् की उत्पत्ति तथा तिरोभाव से प्रलय होता है।

पुष्टि मार्ग की आवश्यकता तथा विशेषता—यह संसार विपत्तियों का घर है। इसमें जीव को तीन तापों से प्राप्त होने वाली अनेकों विपत्तियां प्राप्त होती हैं। इनमें जन्म-मरण की विपत्ति सबसे बड़ी है। इस विपत्ति से छूटने के लिये प्राचीन आचार्यों ने मुमुक्षु के लिये ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीन उपाय बताये हैं। महा प्रभु जी ने इन तीनों ही उपायों को माना है। परन्तु उनकी दृष्टि में कलि काल में कर्म तथा ज्ञान का साधन अत्यन्त कठिन है। क्योंकि म्लेच्छों के आतंक के कारण देवता छिप गये हैं। ऐसे कठिन काल में शास्त्र विधि अनुसार यज्ञों का अनुष्ठान कठिन है। वेदानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का वैदिक कर्मों में अधिकार है। तब निर्बल बुद्धि द्विजातियों शूद्रों तथा स्त्रियों की मुक्ति कैसे हो। इसका कोई सरल उपाय होना चाहिये। जिस सरल उपाय को करके जीव संसार बन्धन से छूट जाए। अतः महाप्रभु ने पुष्टि मार्ग चलाया। इसमें भगवान् श्री कृष्ण जी की कृपा ही एक मात्र साधन है। जो कर्म उपासना ज्ञान में असमर्थ हैं। उन्हें चाहिये कि सब कुछ भगवान् के चरणों में समर्पित कर दें। यदि हम अपना सब कुछ भगवान् के चरणों में डाल दें तो वे करुणा सागर प्रभु हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करके हमारा पोषण करेंगे।

इसका दूसरा नाम "मर्यादा मार्ग' है अर्थात् जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है। मर्यादा मार्ग में शास्त्र विहित ज्ञान कर्म के आचरण से मुक्ति होती है। किन्तु पुष्टि मार्ग में इन सब की आवश्यकता नहीं है। अतः दीन-हीन अनाश्रितों का एक मात्र आश्रय भगवान् हैं। मर्यादा मार्ग से इस मार्ग की विशेषता है। मर्यादा मार्ग मर्यादा पुरुषोत्तम राम को प्रिय है। भगवान् राम को वही भक्त प्रिय है जो उनके समान वेद आदि शास्त्र की मर्यादा का पालन करें। राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो श्री कृष्ण पुष्टि पुरुषोत्तम लीला पुरुषोत्तम तथा नीति पुरुषोत्तम हैं। येन केन प्रकारेण जो भक्त उनकी शरण ग्रहण करता है। उसको वे अपना कर उसका भरण पोषण करते हैं। जैसे, गाय नवजात बछड़े को मैल का विचार किये बिना चाट चूम करके शुद्ध कर देती है। वैसे ही भगवान् श्री कृष्ण भक्त को शुद्ध करते हैं। परन्तु भगवान् कृष्ण उसी भक्त को अपनाते हैं। जो राम की मर्यादा का पालन करता हो। राम दरबार में जिसको प्रमाण

पत्र प्राप्त हुआ हो, वही कृष्ण को प्रिय है। पुष्टि मार्ग में सर्वभाव से सब विषयों का त्याग, मनसा-वाचा-कर्मणा शरणागति है। इन सम्पूर्ण दुःखों से छूटने के लिये भक्ति ज्ञान में तल्लीन सद्गुरुओं की शरण ग्रहण करनी चाहिये। तब अधिकारी जानकर गुरु शिष्य को **"श्री कृष्णः शरणंमम"** इस मंत्र की दीक्षा भगवान् के श्री विग्रह के सामने देते हैं। महा प्रभु जी को इस मंत्र की दीक्षा भगवान् ने स्वयं दी थी। **'सहस्र परिवत्सर मित काल जात कृष्ण वियोग जनित ताप क्लेशानन्द तिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय प्राणान्तः करणानि तद्धर्मांश्च दारागार पुत्राप्त वित्तेहापहारिणि आत्मना सह समर्पयामि, दासोऽहं कृष्ण तवास्मि।'** अनन्त काल पर्यन्त श्री कृष्ण के वियोग जनित ताप क्लेश तथा आनन्द से रहित मैं भगवान् कृष्ण के लिये शरीर इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण तथा उनके धर्म, स्त्री पुत्र घर, धन की इच्छा, अपने सहित, हे श्री कृष्ण ! यह आपका दास मैं, आपको समर्पित करता हूं।

पुष्टि शब्द का अर्थ—पुष्टि शब्द को देखते ही पूर्व तथा पश्चिमी विद्वान् खा पीकर शरीर को मोटा ताजा बनाने के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। परन्तु आचार्य ने "संन्यास निर्णय" ग्रन्थ में इसकी निन्दा करते हुये कहा है—विषय विलास में आसक्त जीवों के शरीर में परमात्मा का विशेष आविर्भाव नहीं होता है। पुष्टि शब्द भागवत् के दूसरे स्कन्ध दशम अध्याय के चौथे श्लोक में—**पोषणं तदनुग्रहः** ईश्वर की कृपा का नाम पुष्टि है। इसी श्लोक के आधार पर इन्होंने अपने सिद्धान्त को पुष्टि मार्ग कहा है। भागवत् में यह बचन मुण्डकोपनिषद् से आया है। उसमें कहा है—**"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमैवेष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्म विवृणुते तनूं स्वां।"** आत्मा की प्राप्ति, प्रवचन, बुद्धि, बहुश्रुतता से नहीं होती। परन्तु जिस पर कृपा होती है उसी को प्राप्त होती है। कठोपनिषद् में भी इसका संकेत मिला है। अतः यह पुष्टि मार्ग अत्यन्त प्राचीन है। भागवत् में स्थान-स्थान पर पुष्टि भगवत् कृपा का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। जो मूर्ख भगवान् का आश्रय त्याग कर दूसरे का आश्रय ग्रहण करता है। वह मानो कुत्ते की पूंछ पकड़ कर समुद्र पार होना चाहता है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, विंशोऽध्यायः ॥२०॥



अथ एकविंशोऽध्यायः

श्री जगद् गुरु निम्बार्काचार्य जी का द्वैताद्वैत सिद्धान्त

(वेदान्त अंक से)

निम्बार्काचार्य जी भेदाभेद का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि अज्ञान दशा में पड़ा हुआ जीव जन्म-मरण को प्राप्त करता है। उसको जब भगवत्कृपा से भक्ति प्राप्त होती है तब मुक्त होता है। जीव परमात्मा का ऐसा अंश है, जो परमात्मा से कभी भिन्न नहीं होता। जैसे स्वर्ण का अंश भूषण स्वर्ण से भिन्न नहीं है। जीव ब्रह्म की असीम शक्ति से युक्त है। यह ब्रह्म से भिन्नाभिन्न है। अंश अपनी शक्ति और गुणों से पूर्ण होने के साथ अंश होने के कारण ब्रह्म से भिन्न है। इस प्रकार बद्ध जीव का भेदाभेद सम्बन्ध है। चैतन्य अपने पूर्व निरपेक्ष अवस्था में ब्रह्म रूप है, तथा अहं के बोधक अज्ञान के साथ मिलकर जीव भाव को प्राप्त हुआ है। वह व्यवहार में जीव तथा कैवल्य अवस्था में ब्रह्म है।

बद्ध जीव अणु है विभु नहीं है। जीव के शरीर की गति के साथ जीव के आने जाने का पता चलता है। उसके जगत् में आने जाने से इस बात का भी पता चलता है, कि इसका आकार तथा धर्म शरीर का आकार धर्म नहीं है। जीव अमर है जन्म-मृत्यु शरीर के होते हैं आत्मा के नहीं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक ब्रह्म इसका स्वामी है। वह सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ, जगत् का निमित्तोपादान कारण है। ब्रह्मद्रष्टा दृश्य भेद से दो प्रकार का है। पंच ज्ञानेन्द्रियों से वह दृश्य भूमि, जल, अग्नि के रूप में है तथा वायु और आकाश के रूप में वह अदृश्य है। ब्रह्म का तीसरा रूप आकाश से सूक्ष्म है। वह इन्द्रियातीत ब्रह्म का स्वरूप है।

ब्रह्म की चार अवस्थायें हैं—१. निर्विकार, देश-काल-वस्तु के परिच्छेद से रहित, अचिन्त्य, अनन्त सुख सागर स्वरूप है। यह अवस्था निरपेक्ष है। २. जगदीश्वर की अवस्था है जिसमें सारे जगत् का भान होता है। ३. तीसरी अवस्था पांचों विषयों से युक्त जीव की है यह जीव बद्ध और मुक्त दो प्रकार के हैं। अविद्या के बन्धन में बंधा हुआ जीव बद्ध है और अज्ञान से छुटा हुआ मुक्त जीव है। ब्रह्म की चौथी अवस्था पांच विषयों सहित है। व्यष्टि-समष्टि ज्ञान से रहित जड़ जीव ब्रह्म स्वरूप होने पर भी दृश्य, अदृश्य, अणु, विभु, सगुण, निर्गुण है। ब्रह्म शुद्ध स्वरूप में तीनों कालों में एक रस है। यह महा महिमाशाली, श्री निम्बार्काचार्य जी का द्वैताद्वैत सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का ज्ञान प्रधान श्री शंकर, भक्ति प्रधान रामानुज तथा

सदाचार प्रधान मध्वाचार्य के साथ कोई विरोध नहीं है। ब्रह्मसूत्र पर इनका "वेदान्त पारिजात सौरभ" नाम का भाष्य है। इन्होंने इस भाष्य में किसी भी आचार्य का खण्डन न करते हुये अपने सिद्धान्त का विवेचन किया है। द्वैताद्वैत की विशेष जानकारी के लिये इनका भाष्य पढ़ना चाहिये।

इति निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैत सिद्धान्त पूर्ण हुआ।

॥ इति श्री गु. पु. कलियुग खण्डे प्रथम परिच्छेदे, एकविंशोऽध्यायः ॥२१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

जगद् गुरु श्री मध्वाचार्य जी का द्वैतवाद

(वेदान्त अंक से)

श्री मध्वाचार्य जी पद्म पादाचार्य जी के शिष्य कहे जाते हैं। इन्होंने एक दण्ड ग्रहण किया था। इनका योग पट्ट श्रीमदानन्द तीर्थ था। इन्हें पूर्णप्रज्ञ के नाम से भी कहते थे। अद्वैत मत में दीक्षित होने पर भी इन्होंने द्वैत मत का प्रचार किया। इनके सिद्धान्त का मूल श्लोक है—**विष्णुदेहाज्जगत् सर्वमाविरासीत्—(तत्त्व विवेक से)** —विष्णु के शरीर से सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। समस्त पदार्थों का मूल कारण परमात्मा है। परमात्मा तथा जीव दोनों जन्म रहित होने के कारण अनादि हैं। परन्तु दोनों में भेद है।

यथा पक्षी च सूत्रं च नाना वृक्ष रसाः यथा।
यथा नद्यः समुद्राश्च शुद्धोदलवणे यथा॥
यथा चौर्यापहार्यौ च यथा पुम्बिषयादपि।
तथा देवेश्वरौ भिन्नौ सर्व दैव विलक्षणौ॥

जैसे सूत्र में बंधा हुआ पक्षी तथा सूत्र भिन्न है। जैसे पेड़ तथा उनका रस भिन्न है। जैसे नदियां तथा समुद्र भिन्न हैं। शुद्ध जल तथा नमक भिन्न हैं। जैसे चोर तथा द्रव्य भिन्न हैं। वैसे ही जीव ईश्वर भिन्न हैं। इनका कथन है जीव परतंत्र होने के कारण तथा ईश्वर स्वतन्त्र होने से जीव विष्णु का दास है। ब्रह्म निर्दोष तथा सत्य गुण सम्पन्न है। जीव ईश्वर के तुल्य कभी नहीं हो सकता। उसे विष्णु का सदैव पूजन करना चाहिये। जीव को विष्णु की भक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा करनी चाहिये। यह संक्षेप में मध्वाचार्य जी के सिद्धान्त का वर्णन किया है।

श्री शंकराचार्य जी तथा रामानुजाचार्य के विरोधी स्थलों का समन्वय मध्वाचार्य जी ने किया है।

श्री चैतन्य महाप्रभु जी का अचिन्त्य भेदाभेद—श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने द्वैत मत का प्रतिपादन करते हुये मध्वाचार्य के अनुसार भगवान् विष्णु को वेदैकवेद्य, परमतत्त्व कहा है। इन्होंने जगत् जीव ईश्वर इन तीनों के भेद को सत्य कहा है। सभी जीव भी हरि के चरणों के दास हैं। इनमें पारस्परिक तारतत्म्य है। विष्णु के चरणों की प्राप्ति ही मुक्ति है। मोक्ष की प्राप्ति भजन कीर्तन से होती है। चैतन्य महाप्रभु वेद वेदांग तथा षड् दर्शनों के ज्ञाता होने पर भी हरि कीर्तन पर इन्होंने विशेष बल दिया है। इन्होंने मौखिक उपदेश दिया। कोई लिखित ग्रन्थ नहीं है। बाद में इनके शिष्यों ने ग्रन्थ के रूप में इनके सिद्धान्तों का प्रचार किया। इन्होंने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण माने हैं।

चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति की सम्पूर्ण कलाओं का विकास किया। इन्होंने कहा वृन्दावन धाम में भगवान् निरन्तर वास करते हैं। इनके मत में व्यावहारिक दशा में जीव और ईश्वर में भेद है। परमार्थ में अभेद है। पर यह भेदाभेद अचिन्त्य है। इन्होंने ईश्वर को सच्चिदानन्द घन कहा है। जीव को सच्चिदानन्द कण कहा है। जैसे सूर्य मण्डल का प्रकाश घन है, और उसकी एक किरण प्रकाश कण है। प्रचण्ड अग्नि प्रकाश घन है और उसकी चिनगारी प्रकाश कण है। जीव यदि अभिमान छोड़कर तिनके से भी अपने को नीच समझ कर तथा पर्वत से भी अधिक सहनशील होकर एकाग्रचित्त से भगवान् का कीर्तन करता है तो वह दुःखों से दूर हो जाता है।

चैतन्य महाप्रभु जी का शिक्षाष्टक

१. मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह भगवान् का कीर्तन करे। कीर्तन में इतना तल्लीन हो जाए कि आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाए। शरीर पुलकित हो जाए तथा उसका सुध न रहे।

२. भक्त अपने को तिनके से भी तुच्छ समझे।

३. तितिक्षा में वृक्ष तथा पत्थरों से भी अधिक सहन शील हो।

४. अमानी होकर दूसरे को मान दे।

५. भगवान् के नाम में देश, काल आदि का बन्धन नहीं है। जीव मात्र हरि कीर्तन कर सकता है।

६. भगवान् ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति तथा आनन्द नाम में भर दिया है।

७. भगवान् के किसी भी नाम का जप किया जा सकता है। पर आपने राम महामंत्र पर विशेष ज़ोर दिया है। यद्यपि कलि सन्तरणोपनिषद् में ब्रह्मा जी ने नारद के प्रति **"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।"** उपदेश किया है। इस नाप जप में देश काल आदि का कोई बन्धन नहीं है। ऋषि, छन्द, न्यास, ध्यान आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं है। शुद्धि, अशुद्धि में भी जप किया जा सकता है। परन्तु यह वैदिक मंत्र होने के कारण स्त्री, शूद्रों का अधिकार नहीं है। अतः आपने चैतन्य भागवत में इसको उलटा कर दिया है **अर्थात्—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।** आपने कहा यह महा मंत्र भगवत प्रीति बढ़ाने वाला है। भाव कुभाव किसी भी भाव से जपने से मंगल करता है।

८. भगवन्नाम दस अपराधों से रहित होकर जप करने से विपत्तियों को दूर कर दैवी सम्पदा को देने वाला है। भक्त में दया, अहिंसा, अभय, मत्सरशून्यता, सत्य, समता, उदारता, कोमलता, शौच, अनासक्ति, परोपकार, निष्कामना, चित्त की स्थिरता, इन्द्रिय निग्रह, लघु आहार, गम्भीरता, मैत्री तेज आदि गुण होने चाहियें। वे आचरण पर विशेष बल देते थे। इन्होंने संन्यासी शिष्यों पर प्रतिबन्ध लगा रखा था कि कोई भी यति स्त्री से बातचीत न करे। एक दिन इनके छोटे शिष्य हरिदास जी ने अतिवृद्धा माधवी से बातें कीं। वह महाप्रभु की अनन्य भक्ता थी। इसलिये निरपराधी हरिदास जी का आजीवन त्याग कर दिया।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलि. ख. प्रथम परि. द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२ ॥



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

इन्होंने वेद को स्वतः प्रमाण माना है। प्रत्यक्ष अनुमान तथा शब्द तीन मुख्य प्रमाण कहे हैं। वेदादिशास्त्र से ज्ञेय ब्रह्म प्रमेय है। उसके ज्ञान कराने वाले शास्त्र को प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष तथा अनुमान में भी भ्रान्ति रहती है। अतः वेद ही परम प्रमाण है। यथार्थ वक्ता का वचन भी प्रमाण है। परन्तु मनुष्य कितना भी यथार्थ वक्ता क्यों न हो। उसके वचन में भ्रान्ति प्रमाद लोभ, भय, मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियों की मन्दता या अन्धता के कारण यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। अतः ब्रह्म की अपौरुषेय वाणी ही जीव का कल्याण करने वाली है। वही यथार्थ, निरपेक्ष वक्ता है। अतः उसके निःश्वास से निकला वेद स्वतः प्रमाण है। जीव स्वभाव से ही अल्पज्ञ होने के कारण उसे स्वयं ही ज्ञान नहीं होता। जब भगवान् कृपा करके ज्ञान देते हैं तभी ज्ञान होता है। वही परमात्मा वेद व्यास जी के रूप में वेद-वेद्य परमात्मा का ज्ञाता तथा वेदान्त का कर्त्ता है। इनके अचिन्त्य भेदाभेद के अनुसार वेद का मुख्य तथा गौण दो प्रकार का अर्थ निकलता है। जिस शब्द का अर्थ सरलता से जाना जाए वह मुख्यार्थ है। जो अर्थ क्लिष्ट कल्पना से निकले वह गौण है। प्रधान रूप से शब्द का मुख्यार्थ ग्रहण होता है। कहीं-कहीं गौणार्थ लिया जाता है। जैसे नल से पानी चला जाने पर लोग कहते हैं नल चला गया। नल चला गया का मुख्यार्थ है कोई नल उखाड़ कर ले गया। किन्तु वक्ता का तात्पर्य इसमें नहीं है। नल के भीतर से पाने जाने के अर्थ में तात्पर्य है। ब्रह्म का लक्षण करते हुये व्यास जी ने प्रथम अध्याय के दूसरे सूत्र में **'जन्माद्यस्य यतः'** जिससे जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय होता है वह ब्रह्म है। अर्थात् जगत् ब्रह्म का परिणाम है। दूध के परिणाम दही के समान है। परिणाम मानने में यह दोष है कि ब्रह्म विकारी हो जाएगा। अतः ब्रह्म को जगत् का विवर्त मानना ही ठीक है। किसी वस्तु में अन्य वस्तु की प्रतीति विवर्त है। जैसे ठूंठ का विवर्त पुरुष है। वैसे ही ब्रह्म में जगत् की भ्रान्ति है परन्तु महा प्रभु के मत में यह सिद्धान्त ठीक नहीं। वे परिणाम को ठीक मानते हैं। देह आत्म बुद्धि में विवर्त ठीक है परन्तु जगत् ब्रह्म का परिणाम है विवर्त नहीं। परिणाम मानने पर ब्रह्म विकारी हो जाएगा। इस शंका का उत्तर देते हुये आपने कहा—ऐसी शंका भगवान् में नहीं करनी चाहिये। क्योंकि वह अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न है। वह स्वेच्छा से जगत् के रूप में परिणत होने पर भी निर्विकार है। जैसे चिन्तामणि, कल्पलता,

कल्पवृक्ष अथवा कामधेनु अनेकों वस्तुओं को उत्पन्न करने पर भी निर्विकार है। वैसे ही भगवान् भी अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से जगत् के रूप में परिणत होने पर भी निर्विकार हैं। जैसे बिजली उत्पन्न करने वाला डाइनुमो या जनरेटर बिजली पैदा करने पर भी निर्विकार है। डाइनुमा में चुम्बक लगी रहती है। उसमें कितनी भी बिजली निकलने पर उसकी शक्ति कम नहीं होती। वैसे ही अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न होने पर भी ईश्वर की शक्ति जगत् उत्पन्न करने पर भी कम नहीं होती। उसकी चित् शक्ति को न मानकर, उसको निर्विशेष मानने से उसकी पूर्णता में हानि है। सम्पूर्ण वेदों का सम्बन्ध भगवान् से है। वेद का बीज प्रणव रूपी महावाक्य है। यह भगवान् का गूढ़ नाम है। प्रणव के अतिरिक्त, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि आदि महावाक्य गौण तथा एक देशीय महावाक्य हैं।

यहां पर गौडीय सिद्धान्त के अनुसार लिखा है। परन्तु निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो वेद के किसी वचन के मुख्य किसी को गौण मानना महापाप तथा महापराध है। आगे अचिन्त्य भेद वादी कहता है कि उपनिषदों सहित वेदान्त सूत्र जिस तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। मुख्य वृत्ति से वही तत्त्व परम महत्त्वपूर्ण है। वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म शब्द का मुख्यार्थ सोपाधिक सगुण साकार भगवान् हैं। जिससे पूर्ण ऐश्वर्य यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य हैं वह भगवान् है। अर्थात् उनके समान अथवा उनसे अधिक छः ऐश्वर्य किसी में नहीं है। अन्य उनकी विभूति या चिदाकार हैं अर्थात् भगवान् सच्चिदानन्द घन हैं तथा जीव उसका अंश होने से सच्चिदानन्द कण है। कुछ लोग वेदान्त के मुख्यार्थ को छिपाकर गौणार्थ द्वारा भगवान् को निराकार निर्गुण तथा उनके वैभव को प्राकृत सत्त्व गुण का विकार मानते हैं। वास्तव में भागवत् महापुराण ही व्यास जी के ब्रह्म सूत्र का विस्तृत भाष्य है। इसके होते हुये अन्य भाष्यों की आवश्यकता नहीं। भागवत् क्या है? इस पर कहा कि—**"अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणाम्"** यह ब्रह्म सूत्रों का भाष्य है। इसीलिये चैतन्य महा प्रभु जी ने तथा उनके अनुयायी शिष्य प्रशिष्यों ने, सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी आदि आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य न लिखकर भागवत पर टीकायें की हैं। "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" यह इनके इष्ट देव हैं। भगवान् की परा अपराभेद से दो प्रकार की प्रकृति है। यह प्रकृति रूपी शक्ति भगवान् से अभिन्न है। श्री कृष्ण का जीव तथा जगत् से भेदाभेद सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध नित्य तथा सत्य है। शक्तिमान का शक्ति तथा जगत् से सम्बन्ध भेद सहित है या भेद रहित है यह मानव के चिन्तन से परे होने

के कारण महाप्रभु का "अचिन्त्य भेदाभेद" सिद्धान्त है। इसमें केवल शब्दों का ही हेर-फेर है। वास्तव में इसमें केवल श्री शंकराचार्य का अद्वैत वाद, श्री रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत वाद, श्री चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य भेदाभेद इन तीनों का समन्वय अगले लेख में करेंगे।

ज्ञानाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, तथा अचिन्त्य भेदाभेद का समन्वय

वेदान्त दर्शन पर श्री शंकराचार्य तथा श्री रामानुजाचार्य का भाष्य तो है। परन्तु अचिन्त्य भेदाभेद के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु या जीव गोस्वामी जी का स्वतन्त्र भाष्य नहीं है। परन्तु शांकर अद्वैत वाद तथा रामानुज के विशिष्टा-द्वैत का समन्वय करते हुये जीव गोस्वामी जी ने अचिन्त्य भेदाभेद सिद्ध किया है। जैसे शंकर ने अजातवाद तथा अद्वैतवाद की सिद्धि में अपने पूर्ववर्ती वशिष्ट जी तथा गौडपादाचार्य जी की कारिकाओं की सहायता ली है। वैसे ही जीव गोस्वामी जी ने भी शंकर तथा रामानुज के ग्रन्थों की सहायता ली है। कोई भी दार्शनिक आचार्य तत्त्व को सिद्ध करने के लिये मूल को लेकर समालोचना करता है। दोनों ही परस्पर विरोधी आचार्यों में एकत्व लाने के लिये जीव गोस्वामी जी ने शंकर के ब्रह्मवाद तथा रामानुज के ईश्वरवाद को लेकर इन दोनों के वचनों का भक्ति, ज्ञान तथा प्रेम में समन्वय किया है, जो कि तार्किक दृष्टि से भी खरा उतरता है। जीव ईश्वर का सम्बन्ध भेद वादियों के समान न करके अभेद को स्वीकार किया है। परन्तु इसके विपरीत अद्वैत व्यावहारिक सत्ता में भेद मानता है। देश तथा विदेश के दार्शनिकों में जीव ईश्वर में भेद है या नहीं, इसको लेकर बहुत मतभेद है। विशेष करके वेदान्त दर्शन में। जैसे किसी एक धातु के बने अनेक पात्रों में धातु की दृष्टि से अभेद है किन्तु पात्रों की दृष्टि से भेद है। वैसे ही मौलिक एक तत्त्व की दृष्टि से अभेद है और व्यक्तियों की दृष्टि से भेद है। जगत् के नामरूप माया द्वारा कल्पित हैं। एक अद्वितीय ब्रह्म ही है दूसरा नहीं। यह शंकराचार्य जी का श्रुति प्रतिपादित सिद्धान्त है। ब्रह्म निर्विशेष तथा अलक्ष्य है। जगत् सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म में रज्जु में सर्पवत् कल्पित है। जैसे रज्जु में सर्प की सत्ता नहीं है, वैसे ही ब्रह्म में जगत् की सत्ता नहीं है। कल्पित है, यह भगवान् शंकर का सिद्धान्त है।

परन्तु रामानुजाचार्य इसको नहीं मानते, वे कहते हैं जगत् सत्य है। एक मात्र भगवान् का सौंदर्य सब में है। निष्कल, निष्क्रिय ब्रह्म जगत् रूप में नष्ट हो यह बात सत्य नहीं। अविनाशी का विनाश नहीं हो सकता। सत् सोपाधिक है। वह अनेकों में रहता है। शंकर के मत में

अनेकत्व भ्रम मूलक है। ब्रह्म में आरोपित है। परन्तु रामानुज के विचार में अनेकत्व ही ब्रह्म की विशेषता है। इस विशेषता के कारण वह विशिष्टाद्वैत कहलाता है।

परन्तु जीव गोस्वामी इन दोनों विरोधी सिद्धान्तों में समन्वय ढूंढते हैं। वे वास्तविक अन्तर्मुख दृष्टि से विचार करते हैं तो तुरीय अवस्था में सत्य है तथा पूर्ण अभेद है। यह आध्यात्मिक सार है। परन्तु यदि धार्मिक व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाए, और प्रेमाभक्ति को लेकर परमानन्द स्वरूप श्री कृष्ण को ढूंढना हो तो अनेकत्व मिथ्या नहीं है। शंकर जी ने भी जगत् को मिथ्या कहा है असत् सत् से विलक्षण मिथ्या या अनिर्वचनीय है। यह जीव गोस्वामी जी का अचिन्त्य भेदाभेद दोनों आचार्यों के बचनों का समन्वय करता है। जीव गोस्वामी जी ने श्री शंकर के बचनों में तत्त्व ज्ञान तथा श्री रामानुज के बचनों में गुह्य धर्मत्त्व पाया। दोनों ही आचार्य सम्मानीय हैं। श्री शंकर धर्म तथा उपासना को ज्ञान में लीन करते हैं। तो रामानुज ने ज्ञान को भक्ति में तथा कर्मों को उपासना में लय कर दिया है। जीव गोस्वामी भक्ति, ज्ञान दोनों को परमावश्यक मानते हैं।

जैसे निरोगी जीवन के लिये सोना तथा काम करना दोनों ही परमावश्यक है। यह दोनों विरोधी अवस्थायें होने पर भी, जब हम काम करते-करते थक जाते हैं, तब सोते हैं। सोने पर जब थकावट दूर होती है, तब कार्य में लग जाते हैं। यह दोनों विरोधी होने पर भी एक-दूसरे से मिले हुये हैं। घर में जैसे लकड़ी, लोहा, मिट्टी, सूत आदि से बनी हई प्रत्येक वस्तु विशेष कार्य के लिये उपयोगी है अर्थात् मिट्टी गारे चूने से बना घर, सुई, कैंची, कुल्हाड़ी आदि अनेकों वस्तुएं जैसे आवश्यक हैं। वैसे ही जीवन में कर्म, उपासना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, देश काल परिस्थिति के अनुसार परमावश्यक हैं।

ब्रह्म निर्विकार होने पर भी माया को अपने अधीन कर के गतिशील होता है। जगत् की उत्पत्ति, रक्षा तथा विनाश करता है। जिस प्रकार हम देश काल के अनुसार कभी गर्म कभी ठण्डे वस्त्र पहनते हैं। एक होने पर भी पिता के लिये पुत्र, पत्नी के लिये, पति, शिष्य के सम्बन्ध से गुरु, इनके होने पर भी हम में कोई विकार नहीं होता। वैसे ही ब्रह्म के एक होने पर भी विकार नहीं होता जैसे घट बनता बिगड़ता है। घटाकाश बनता बिगड़ता नहीं। घट उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाने पर घड़ा चलता है आकाश नहीं। वैसे ही जीव का शरीर बनता बिगड़ता, आता जाता है, चिदाकाश आत्मा नहीं। वह निर्गुण होने पर भी सगुण अकर्त्ता होने

पर भी कर्त्ता है। यह शंकर की ज्ञान निष्ठा है। सृष्टि के आरम्भ में उसी ब्रह्म ने एक से अनेक होने का संकल्प किया। उस से सांख्य वादियों की मूल प्रकृति हुई। यह शंकर की एक निष्ठा तथा रामानुज की भक्ति निष्ठा का जीव गोस्वामी ने तत्त्व ज्ञान में समन्वय किया है।

एकत्व तथा नानात्व इसका वर्णन तीन शास्त्रों में, १. मानस शास्त्र, २. ज्ञान शास्त्र, ३. सृष्टि शास्त्र में किया है।

॥ इति श्री गुरु. पु. कलि. खं. प्रथम परि. त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

सभी आचार्यों तथा ऋषियों ने प्रकृति से उत्पन्न तत्त्व तथा गुण स्वीकार किये हैं। किसी ने ब्रह्म, जीव तथा जगत् को अनादि कहा, किसी ने ब्रह्म को सत्य कहा, किसी ने प्रकृति तथा ब्रह्म को सत्य, किसी ने ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनों को सत्य कहा है।

१. मानस शास्त्र को लेकर श्री शंकराचार्य जी ने जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय चार अवस्थायें अनुभव कीं तथा चार भूमिकाएं कहीं हैं। इनमें एक के होने पर शेष तीन नहीं होती हैं। इन चारों का आपस में समन्वय नहीं होता है। इनमें पहली तीन अविद्या मूलक हैं। चौथी शाश्वत सत्य है; किन्तु जीव गोस्वामी जी के मत में यह अवस्थाएं एक क्रिया के अन्तर्गत ही हैं। उसी जीव के रूपान्तर हैं। यह अवस्थाएं सार रहित नहीं है। तब ब्रह्म शक्ति विशिष्ट कहलाता है।

२. ज्ञान शास्त्र—इसी बात को ज्ञान शास्त्र में शंकराचार्य जी कहते हैं। अविद्या का कार्य क्षेत्र और विषय रूपी बाह्य जगत् दोनों एकाकार हैं। सभी विषय मिथ्या हैं। केवल साक्षी कूटस्थ सत्य है वह सबका अधिष्ठान है। किन्तु रामानुज भगवान् शंकर के कूटस्थ को नहीं मानते। दोनों का समन्वय करते हुये जीव गोस्वामी कूटस्थ चैतन्य तथा उसके विषय जीव की शक्ति ले लेते हैं तथा ब्रह्म शक्ति विशिष्ट कूटस्थ के स्थान पर कर्त्ता ब्रह्म का दर्शन कराते हैं तथा सभी विषयों एवं जगत् को अपने आप में रखने वाले ब्रह्म को जगत् का उत्पादक पालक, संहारक मानते हैं।

३. सृष्टि शास्त्र—इस क्षेत्र में सृष्टि ही ब्रह्म है। शंकर सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त मानते हैं। क्योंकि आत्मा में सृष्टि तीनों कालों में नहीं है। ब्रह्म अखण्ड अभेद्य है वह तीनों कालों

में एक, परिवर्तन रहित हैं। परन्तु रामानुज ने इसको विवर्त न मानकर परिणाम माना है। जिसमें जीव और प्रकृति ब्रह्म के विशेषण या विशिष्ट है। परन्तु जीव गोस्वामी परिणाम या विकास का सिद्धान्त मानते हुये विवर्त वाद को भी स्वीकार करते हैं। इन्होंने प्रकृति को ब्रह्म की बहिरंग शक्ति माना है। अतः विवर्त और विशिष्ट दो शब्द होने पर भी अर्थ एक है।

सारांश

रामानुजाचार्य जी ने प्रकृति को ब्रह्म का विशेषण कहा है। जीव गोस्वामी ने बहिरंग शक्ति कहा। ब्रह्म से शक्ति का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। परन्तु वह आत्म चैतन्य का आवरण है। आवरण से आवृत में विकार नहीं होता है। इसका विकास होता है परिणाम नहीं। अतः जगत् विवर्त है। जितनी मात्रा में शरीर के ज्ञान तन्तुओं का बुद्धि वृत्ति के साथ सम्बन्ध होता है उतनी ही प्रवृत्ति होती है। यहां पर प्राकृतिक जगत् का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा शंकराचार्य के मत में विवर्त्त में जगत् और जीव का है। किन्तु इसमें यह विशेषता है कि प्रकृति जगत् की रचना ईश्वर की शक्ति से करती है, स्वतन्त्र नहीं। जीव गोस्वामी के मत में विशिष्ट परिणाम का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सूर्य का किरणों के साथ। अर्थात् वह दूध के परिणाम दही के समान विकारी नहीं है। अतः विशिष्ट है। ब्रह्म अग्निपुंज है तो जीव चिनगारी है। प्रत्येक जीव दूसरे के प्रति स्वतन्त्र है। इस प्रकार जीव गोस्वामी विवर्त और परिणाम के ग्राह्य अंश को स्वीकार करके समन्वय करते हैं। जहां प्रकृति तथा ब्रह्म के सम्बन्ध का प्रश्न होता है वहां विशिष्ट या विवर्त से काम लेते हैं। जहां जीव ब्रह्म का विचार है वहां विशिष्ट तथा परिणाम से काम लेते हैं।

अब प्रश्न होता है कि यह पूर्ण समाधान है कि अधूरा, इतने में पूर्ण समाधान नहीं होता। यह तो केवल आरम्भ मात्र है। ब्रह्म की अपरा अष्टधा प्रकृति जड़ है। यह ब्रह्म की बाह्य शक्ति है। जीव रूपा अन्तरंग शक्ति पराप्रकृति है। इनको लेकर भी विवर्त तथा परिणाम पर विचार किया।

ऊपर के विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि किस प्रकार धर्म उपासना का एक मात्र ब्रह्म के साथ समन्वय होता है। अब अन्तःकरण की सूक्ष्म अन्तर्मुख वृत्ति से देखने पर पता चलता है कि अभेदोपासना ही ऐसा मार्ग है जो कैवल्य या सायुज्य मुक्ति देता है। परन्तु इससे उपासना मार्ग की प्रेम, सेवा, सायुज्य रूपी साध्य की साधना मात्र है। अपने प्रियतम भगवान् को प्राप्त

करने में पूर्ण तथा उत्कृष्ट प्रेम भक्ति का फल सायुज्य मुक्ति है। इसमें प्रेमाभक्ति साधन मात्र है। सायुज्य मुक्ति मिलने पर निस्वार्थ भगवत् प्रेम व्यर्थ हो जाता है। परन्तु जीव गोस्वामी जी जानते हैं कि यह प्रेम भक्ति निष्फल नहीं है। निश्चय ही जब तक साध्य प्राप्त न हो तब तक है। परन्तु साध्य के प्राप्त होने पर भी प्रेम सेवा का अन्त नहीं होता। साधन रूप से अन्त होता है। उनका नया अर्थ है कि नित्य भगवान् के सान्निध्य की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। जैसे उनको चैतन्य महा प्रभु की प्राप्ति हुई। चैतन्य महाप्रभु भक्त और भगवान् के अभेद स्वरूप के प्रतीक थे। अभेद प्राप्त होने पर भी अन्त नहीं होता। अभेद के आनन्द तथा माधुर्य की बाढ़ में भक्त ऊपर तैरता है। वह आनन्द महासुधासिन्धु अधिकाधिक उमड़ता हुआ, अन्तःकरण में अचल शान्ति देता है। तर्क की वहां पहुंच नहीं। अतः वह अचिन्त्य है। जिसको यह परमानन्द प्राप्त होता है वही जानता है, बता नहीं सकता। यही सबका गन्तव्य स्थान है। यह ब्रह्म की अन्तरंग शक्ति से प्राप्त होता है। यह पुरुषोत्तम की लीला है। यह शंकर के कूटस्थ के समान निर्विकार है। यह संशोधित तत् तथा त्वं पदार्थ है। यह माया नहीं किन्तु योग माया है। इसी अचिन्त्य शक्ति स्वरूपा श्री राधा जी के साथ श्री कृष्ण की अनन्तानन्द रास लीला है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उसी लीला के प्रतिबिम्ब हैं। ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अंग उस अनन्त आनन्द प्रवाह रूपी बाढ़ का पात्र है। इस जीव ईश्वर के अभेद प्राप्ति के लिये मृत्यु की प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार इस लेख से यह सिद्ध हुआ कि शांकर वेदान्त तथा रामानुजीय विशिष्टाद्वैत का भी जीव गोस्वामी जी ने विरोधी अंशों का पूर्ण समन्वय अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त में किया है। इसी शैली से हम शक्ति विशिष्टाद्वैत, शब्दाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, स्वलीलाद्वैत तथा द्वैत का समन्वय कर सकते हैं। अब अगले अध्याय में योग दर्शन तथा वेदान्त का सम्बन्ध बताते हुये समन्वय करेंगे। जीव गोस्वामी जी ने भागवत पुराण पर दो टीकाएं की हैं। पहली टीका अपने गुरुदेव श्री सनातन गोस्वामी जी की टीका पर टीका है। दूसरी स्वतन्त्र टीका है। इन्होंने ब्रह्म पुराण पर भी संस्कृत टीका की है।

श्री मध्वाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु की जीवनगाथा सम्पूर्ण।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२८॥



अथ पंचविंशोऽध्याय:

योग दर्शन तथा वेदान्त दर्शन का समन्वय

पीछे बता चुके हैं कि योग वेदान्त का क्रियात्मक स्वरूप है। ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में भगवान् शंकर ब्रह्मा जी से कहते हैं—

ज्ञान निष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञो संयतेन्द्रियः।
बिना देहेन योगेन न मोक्षं लभते विधे।

हे ब्रह्मन् ! ज्ञानी विरक्त, धर्मज्ञ मन सहित इन्द्रियों को जीतने पर भी शरीर से योगाभ्यास किये बिना मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। यद्यपि वेदान्त बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मानता। किन्तु ज्ञान विपरीत भावना की निवृत्ति के बिना नहीं हो सकता। अज्ञान से ही जीव को बन्धन है। वह ज्ञान दो प्रकार का है—१. शास्त्र जन्य ज्ञान, २. शास्त्रानुसार श्रवण मनन निदिध्यासन से, अनुभूति जन्य विवेक ज्ञान। इनमें शास्त्र जन्य ज्ञान प्रथम श्रेणी का है। विवेक जन्य ज्ञान से मुक्ति होती है। जैसे अंधेरे में दीपवत्ती की वार्त्ता से अंधेरा दूर नहीं होता, दीपक जलाने से ही अन्धकार दूर होता है। वैसे ही ज्ञान चर्चा से ज्ञान नहीं होता किन्तु ज्ञान की प्रक्रियानुसार स्वरूप चिन्तन से होता है। ऐसा विवेक जन्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये अष्टांगयोग की आवश्यकता है। महर्षि पतंजलि जी कहते हैं—**योगानुष्ठानादशुद्धिक्षयज्ञानदीप्तिराख्यायते**, अष्टांग योग का अनुष्ठान करने से अन्तःकरण की अशुद्धि का नाश होने पर अर्थात् श्रद्धा तथा उत्साह सहित गुरुओं की बताई हुई साधना के अनुसार योगांगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि दूर होती है। यहां अशुद्धि शब्द से पंचपर्वा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश कही है। जीव घटी यन्त्र वत् जन्म मरण के प्रवाह में पड़ा हुआ है। जन्म-मरण का हेतु अविद्या है उसका लोप होने पर या उसका बीज योगाग्नि से जलने पर ज्ञान के प्रकाश से विवेक ख्याति होती है। सजातीय, विजातीय, ग्राह्य तथा त्याज्य वस्तुओं का ज्ञान विवेक ख्याति है। कहा है—लोक में पशु-पक्षी मृगादि सब ज्ञानी हैं। परन्तु इनकी ज्ञान शक्ति पर अज्ञान रूपी बादल छाया हुआ है। सभी जीवों में ज्ञान बराबर है किसी में न्यूनाधिक नहीं, किन्तु उनकी ज्ञान शक्ति पर अज्ञान का आवरण पड़ा है।

ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु निर्मलम्।
मन्दभाग्याः न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत्॥

सब में ज्ञान एक जैसा तीनों कालों और अवस्थाओं में प्रकाशित होता है। परन्तु मल विक्षेप आवरण वाले मन्द भाग्य जीव अज्ञान से आवृत् होने के कारण अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूप को नहीं जानते हैं अथवा योग दर्शन के अनुसार योग के पांच बहिरंग साधन, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा तीन अन्तरंग साधन, धारणा, ध्यान, समाधि से रहित को मन्दभाग्य कहा है। वे आत्मा के देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित, अनन्त तथा अखण्ड स्वरूप को नहीं जानते। भाव यह है कि योगांगों का अनुष्ठान करने से अविद्या के दग्ध होने पर आत्म स्वरूप की प्राप्ति को तत्त्व वेत्ताओं ने ज्ञान कहा है। उस ज्ञान की दीप्ति (प्रकाश) होती है। वह ज्ञान कब होता है? इस पर कहते हैं—

आ विवेकख्यातेः—जब तक पूर्णतया विवेक ख्याति नहीं होती है तब तक ज्ञान नहीं होता। जब तक विवेक ख्याति नहीं तब तक प्रकृति के तीन गुण बाधक हैं। जिसके द्वारा तत्त्व का निश्चय हो वह विवेक ख्याति है।

सारांश

आत्मा, कूटस्थ, निर्गुण, अन्तर्यामी, एकरस है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति दर्पण के समान पुरुष का अनुसरण करती है। जिस समय वैराग्य सहित अष्टांग योग के अनुष्ठान से प्रकृति रूपी दर्पण को धो देते हैं, उस समय प्रकृति रूपी दर्पण अविद्या आदि पंच क्लेश रूपी मल से निवृत्त हो जाता है। तब प्रकृति रूपी दर्पण में पुरुष (जीव) का वास्तविक रूप प्रतिबिम्बित होता है। जिससे वह विवेक ख्याति रूपी ज्योति को प्राप्त करता है। अविद्या आदि पंच क्लेशों से युक्त पुरुष का अशुद्ध स्वरूप है। इनसे रहित शुद्ध स्वरूप है।

इति योग दर्शन तथा वेदान्त दर्शन का समन्वय पूर्ण हुआ।

अथ वेदान्त तथा सांख्य का तुलनात्मक विवेचन

सांख्य दर्शन	वेदान्त दर्शन
प्रकृति का रूप	**पुरुष का रूप**
तू प्रकृति है।	मैं पुरुष हूं।
तू जड़ है।	मैं चेतन हूं।

तू दृश्य है।	मैं द्रष्टा हूं।
तू कर्मी है।	मैं अकर्त्ता हूं।
तू नाचने वाली है।	मैं नचाने वाला हूं।
तू विकृत है।	मैं निर्विकार हूं।
तू चंचला है।	मैं अचल हूं।
तू संघात रूपा है।	मैं एक रूप हूं।
तू हृदय लता है।	मैं हृदय से मुक्त हूं।
तू अन्दर रहने वाली है।	मैं कूटस्थ हूं।
तू भ्रान्त है।	मैं निर्भ्रान्त हूं।
तू मुक्त होना चाहती है।	मैं नित्यमुक्त हूं।

इस प्रकार प्रकृति तथा पुरुष दोनों का स्पष्टीकरण किया गया है। इसके पश्चात् प्रकृति का पुरुष से संयोग होने पर भी प्रकृति लज्जित होकर घूंघट निकाले हुये कुल वधू के समान पुरुष का संसर्ग करने के लिये हाव-भाव कटाक्षों का परिवर्तन नहीं करती। भागवत में भी कपिल भगवान् देवहूति से कहते हैं—

भुक्त भोगा परित्यक्ता दृष्ट दोषा च नित्यशः।
नेश्वरस्याशुभं धत्ते स महिम्नि स्थितस्य च॥

अपनी महिमा में स्थित हुये ईश्वर का भोग कर त्यागी हुई प्रकृति ईश्वर का अशुभ नहीं करती।

इधर पुरुष भी निर्मल प्रकृति रूपी दर्पण में सरोवर के भीतर प्रतिबिम्बित हुये समीपवर्ती वृक्षों के समान सम्पूर्ण बाह्य त्याज्य वस्तुओं का संकलन करता हुआ निर्लिप्त तूम्बी के समान स्वभाव से केवल होकर भी योगाभ्यास के बल से कैवल्य नामक आनन्द अनुभव करता है। जिस प्रकार चूने से मंजा हुआ दर्पण शुद्ध होकर चमकने लगता है। उसी प्रकार अद्वितीय स्वरूप से आत्मानुभव करके शोक से रहित कृतार्थ हो जाता है। केवल शास्त्र का ज्ञान रखने वाले वेदान्तियों की यह अन्तिम समाधि है। परन्तु इसकी अनुभूति परब्रह्म के ज्ञान से होती है। अष्टांग योग का सेवन किये बिना कोई भी शुष्क वेदान्ती परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता। विवेक चूड़ामणि में भाष्यकार ने कहा है—

निर्विकल्प समाधिना स्फुटं ब्रह्म तत्त्वमवगम्यते ध्रुवम्।
अन्यथा चलतया मनोगतिः प्रत्ययान्तर विमिश्रितं भवेत्॥

निश्चय ही निर्विकल्प समाधि द्वारा ब्रह्म तत्त्व का प्रत्यक्ष होता है । अन्यथा मन की चंचलता के कारण ब्रह्म तत्त्व विषयाकार वृत्ति से मिश्रित हो जाता है ।

परन्तु भोग विलास में पड़े आधुनिक वेदान्ती कांचन, कामिनी में आसक्त रहने वाले व्यर्थ का आत्मज्ञान झाड़ने वाले कपट से संन्यास का चिन्ह धारण करने वाले मिथ्याचरण से विषयों का चिन्तन करने वाले नाम मात्र के संन्यासियों को निर्विकल्प समाधि सिद्ध नहीं हो सकती । समाधि के अभ्यास में लगे हुये ब्रह्म वेत्ता उत्तम हैं । इसके विपरीत नहीं । यदि वेदानुकूल आचरण नहीं है तो केवल वेद पाठ से कल्याण नहीं है । क्योंकि बहुश्रुतता तथा प्रवचन से आत्म बोध नहीं होता । आत्म ज्ञान से मुक्ति है शुष्क वेदान्त से नहीं । वेदान्त के साथ योगाभ्यास से मुक्ति है ।

(कल्याण वेदान्तांक से)

इति सांख्य दर्शन तथा वेदान्त दर्शन का समन्वय समाप्त ।

॥ इति श्री गु.वं. पु., कलि० खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, पंचविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः । ।२५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

स्वलीलाद्वैत

(वेदान्त अंक, कल्याण से)

केवलाद्वैत, शक्ति विशिष्टाद्वैत, विशिष्टाद्वैत के समान एक स्वलीलाद्वैत भी है । "त्रिपाद विभूति महा नारायणोपनिषद्" में लिखा है कि साधक ब्रह्म लोक में जाकर ब्रह्मा का पूजन कर उनसे पूजित होकर दिव्य स्थूल शरीर को त्याग कर विष्णु का रूप प्राप्त कर श्री गुरु को प्रणाम स्तुति प्रदक्षिणा करके जिन-जिन लोकों विमानों, राज महलों, नदियों, आनन्द वनों, पर्वतों तथा समुद्रों का जो वर्णन हुआ है वह स्वलीलाद्वैत के अन्तर्गत है । इसे भगवान् की अंतरंग लीला भी कहते हैं । इस अंतरंग लीला में पहुंचा हुआ भक्त किसी से भयभीत नहीं होता । भय दूसरे से होता है । अद्वैत में भय नहीं है । ऐसा भक्त प्रह्लाद आदि के समान विकट संकटों से भी विचलित नहीं होता है । वह क्रमानुसार एक की अपेक्षा दूसरे शतगुणा उत्तरोत्तर कर्मदेवों, देवों,

इन्द्रों, बृहस्पति, प्रजापति, ब्रह्मा के आनन्द से निरतिशय अधिकतम परमानन्द को प्राप्त करता है। वह आनन्द निर्विकार, अविनाशी, देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है। इस उपनिषद् में जो सामग्री धाम आदि का वर्णन हुआ है यह सब अद्वैत सच्चिदानन्द स्वरूप है, मायिक नहीं। वह रसमय लीला से युक्त **"रसो वै सः (ब्रह्म) ब्रह्म वै रसः।" रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति"** ब्रह्म रस रूप है, रस ब्रह्म है। उस रस (परमानन्द) को प्राप्त करके आनन्दित होता है। यह छान्दोग्योपनिषद् में कहा है। यही भगवान् श्री कृष्ण का महारास है। जो नित्य गोलोक धाम में होता है। वहीं प्रत्येक अट्ठाईसवें द्वापर युग के अन्त में भारत के ब्रजमण्डल वृन्दावन की रमण रेती में होता है। अधिकारी पुरुषों को भारत के दिव्यातिदिव्यरास का अनुभव आज भी होता है। इसी उपनिषद् में ब्रह्म लोक के तीसरे खण्ड का वर्णन हुआ है।

योग दर्शन के विभूतिपाद में सूत्र है—**"सूर्य संयमाद् भुवनानि ज्ञानम्"** साधक योगी को सूर्य में धारणा ध्यान समाधि रूपी संयम से लोकों का ज्ञान होता है। इस सूत्र पर भाष्य करते हुए भगवान् वेद व्यास जी ने पृथ्वी के सात महाद्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, नदियों का वर्णन करने के अनन्तर नीचे के सात लोकों का वर्णन किया है। फिर ऊपर के सात लोकों का वर्णन करते हुये सातवां ब्रह्मलोक कहा। इस सातवें लोक के भी सात खण्डों का वर्णन किया है। उसी के अन्तर्गत ब्रह्म लोक के तीसरे खण्ड का वर्णन हुआ है। इसमें एक आनन्दवन है वहां पर एक सर्व हर्षोत्पादक नाम का सरोवर है। वहां पर पीपल के वृक्ष के समीप सोम भवन है वहीं पर अमृत नाम का वन है। उसी लोक में अपराजिता नाम की ब्रह्म पुरी है। जो प्रभु कृपा से ही जानी जाती है। वह धाम तेजोमय के नाम से कहा जाता है। वहां पर भगवान् की रसमय नित्य लीला होती है। वहां पर ब्रह्म की लीला का अभेद दिखाया है। अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्म का सच्चिदानन्द स्वरूप लीला के बिना पूर्ण नहीं होता।

राम-कृष्ण आदि अवतार के रूप में भगवान् की लीला दो प्रकार की है—**१. मायिक**—इसे बाह्य भी कहते हैं। राम की यह लीला अनेकों रामायणों में तथा श्री कृष्ण की लीला, भागवत् विष्णु आदि पुराणों में आई है। दूसरी अंतरंग लीला, माया के लेश से रहित चिन्मय अविनाशी है अथवा यों समझें कि भगवान् की माया तीन प्रकार की है। १. साधारण माया जो ब्रह्म के एक पाद में है। जिसमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड है। **२. योगमाया**—जिसका वर्णन भागवत् विष्णु पुराण में आया है। जिसने आज्ञा प्राप्त करके देवकी के गर्भ में स्थित संकर्षण

को खींच कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया तथा यशोदा के यहां प्रकट हुयी। **३. महायोग माया**—इसका चमत्कार कृष्णावतार में भगवान् ने माता के द्वारा रस्सी में बांधे जाने पर दिखाया। ब्रज की सारी रस्सियां जोड़ने पर भी भगवान् की मुट्ठी भर कमर बन्धन में नहीं आई, दो अंगुल ही कम रही। दूसरा चमत्कार भगवान् ने रास क्रीडा के समय किया। शरद् पूर्णिमा की रात्रि के समय जब भगवान् ने रास क्रीडा की, तो प्राकृत रात्रि में पूर्ण योगमाया के प्रभाव से अनेक ब्राह्मी (ब्रह्मा जी की) रात्रियों का समावेश लौकिक रात्रि में किया। तीसरी बार ब्रह्मा द्वारा बछड़े तथा गोप बालकों को हरण किये जाने पर बछड़ों तथा बालकों का निर्माण करके किया। भगवान् ही बछड़ों तथा बालकों के रूप में एक वर्ष तक रहे। इस तीसरी योग माया में जड़ रूप से प्रतीत होने वाली वस्तुएं भी वास्तव में दिव्यातिदिव्य चिन्मय अविनाशी हैं। इसी को ब्रह्मानन्द लीला भी कहते हैं। ब्रह्म की अनन्त शक्तियों द्वारा जो कुछ लीला बिहार अनुभव होता है उसी को ब्रह्मानन्द लीला कहते हैं। श्रुति में भी कहा है—**परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बला क्रिया च**। परमात्मा की शक्ति स्वाभाविकी ज्ञान तथा बला अनेक प्रकार की सुनी जाती है। ब्रह्म की लीला मानने पर भी द्वैत नहीं हैं। **शक्ति शक्तिमतो भेदो दृश्यते नहि तत्त्वतः। यथार्कश्चातपैरेको न द्वैतो मृगवारिणा**। शक्ति तथा शक्तिमान में वास्तविक भेद नहीं दीखता। जैसे सूर्य तथा सूर्य की धूप एक है। मरुस्थल में प्रतीत होने वाला मृग जल जैसे मिथ्या है। वैसे ही जगत् भी मिथ्या है। धाम लीला आदि सामग्री का ब्रह्म से भेद नहीं, अभेद है। क्योंकि ब्रह्म में मायिक पदार्थों का अभाव है। सजातीय पदार्थों में भेद नहीं है। भगवान् गौडपादाचार्य जी कहते हैं—माया से ही ब्रह्म में भेद प्रतीत होता है वास्तविक नहीं। यदि भेद यथार्थ होता तो जीव कभी मुक्त नहीं होता। सांख्य दर्शन में भी कहा है, अद्वैत श्रुति सजातीय परत्व है अर्थात् ब्रह्म धाम आदि समस्त पदार्थ आनन्द स्वरूप होने से एक हैं, अतः विरोध नहीं। परमात्मा के सभी शरीर नित्य शाश्वत हैं, जन्म-मृत्यु से रहित होने के कारण पांच भौतिक नहीं है। मानस में भी तुलसी ने कहा है—**निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार। चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी**। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ब्रह्म लीलाद्वैत है अर्थात् लीला से प्रतीत नहीं होता वास्तव में अद्वैत है।

स्वस्मिन् या लीला तया सह अद्वैतं यद्वा स्वस्मिन्नात्मनि लीला विहारो यस्य तत्स्वलीलं द्वयोरितं ज्ञानं द्वैतं नाद्वैतं इत्यद्वैतं तं स्वलीलं च तदद्वैतं, स्वलीला द्वैतम्। अपने में स्थित लीला सहित अद्वैत लीला द्वैत है अथवा अपनी शुद्ध स्वरूप आत्मा में लीला बिहार है जिसका अर्थात् आत्म रति, आत्म क्रीडा, आत्म मिथुन को स्वलीला कहा। दोनों (लीला तथा लीला बिहारी) का ज्ञान द्वैत है, यह जिसमें नहीं है वह लीला और अद्वैत स्वलीला द्वैत है। अतः ब्रह्म लीलाद्वैतसिद्ध हुआ। अब प्रश्न होता है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म में यह कैसे घटित होता हैं। इसके उत्तर में श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं।

साकारस्य विनाशोऽस्ति निराकारस्य शून्यत्वात् शून्यस्य च अवस्तुत्वात् उभय पक्षं विभिन्नं वस्तु ज्ञानं मोक्षः। साकार पदार्थ सावयव होने से नाशवान् है निराकार शून्य होने से कोई वस्तु नहीं अतः साकार और निराकार दोनों से परे वस्तु का ज्ञान ही मोक्ष है। वह ब्रह्म निर्गुण से परे है। अतः उसे सगुण निर्गुण नहीं कह सकते। स्वतः शुद्ध बुद्ध नित्य विग्रह सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह अन्तशक्ति सम्पन्न ब्रह्मधाम में सदा विराजमान है। तब उसे स्वलीलाद्वैत माने बिना कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार सगुण-निर्गुण वाक्यों का अविरोध ब्रह्म का स्वरूप है। सांसारिक क्रियाओं से रहित होने से निष्क्रिय है। त्रिगुणातीत होने से वह निर्गुण है। ब्रह्म सूत्र में भी कहा है—**"लोक वत्तु लीला कैवल्यम्"** लोक रचना के समान उसकी रचना लीला कैवल्य है। अन्तर इतना है कि लोक साधारण माया का खेल है तथा कैवल्य लीला महायोग माया का चमत्कार दिव्यातिदिव्य चिन्मय अविनाशी है।

स्वलीलाद्वैत पूर्ण हुआ।

॥ इति श्री गु.पु. कलियुग खण्डे प्रथम परिच्छेदे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

श्री भर्तृहरि प्रपंच का शब्दाद्वैत

संस्कृत साहित्य में तीन भर्तृहरि हुये। १. भर्तृहरि प्रपंचाचार्य, २. राजा भर्तृहरि, ३. भर्तृहरि मिश्र। भगवान् भाष्यकार शंकराचार्य से कई वर्ष पूर्व भर्तृहरि प्रपंचाचार्य हुये थे। इन्होंने उपनिषदों पर शब्दाद्वैत सिद्धान्त को लेकर भाष्य किया। भगवान् शंकराचार्य जी ने, वार्तिककार सुरेश्वराचार्य तथा आनन्द गिर्याचार्य जी ने इनके भाष्य का उद्धरण देकर खण्डन किया है।

यहां पर इनके शब्दाद्वैत सिद्धान्त पर विचार किया जा रहा है। इन्होंने वेद तथा व्याकरण सम्मत भाष्य किया है। इनके सिद्धान्त का वर्णन करने के अनन्तर कितने अंशों में यह केवलाद्वैत सम्मत है कितने अंशों में विरुद्ध है, इस पर विचार करेंगे।

शब्दाद्वैत की प्रक्रिया—इन्होंने अपने सिद्धान्त को चार भागों में बांटा है—१. राशित्रय वाद, २. अनेकान्त वाद या भेदाभेदवाद, ३. परिणामवाद, ४. मोक्ष निरूपण।

१. राशित्रय वाद—इन्होंने ईश्वर जीव तथा जगत् को तीन राशियों में बांटा है—१. परमात्मा स्वयं उत्तम राशि में है। २. जीव मध्यम राशि हैं। ३. स्थूल, सूक्ष्म जगत् यह अधम राशि है। क्योंकि यह ईश्वर तथा जीव दोनों से नीचे है। इसमें भी, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक कोटियां हैं। आधिभौतिक कोटि में भूमि जल अग्नि मूर्त हैं। वायु तथा आकाश अमूर्त हैं। अध्यात्मिक कोटि में मूर्त स्थूल शरीर के निर्माता पंच महाभूत मूर्त हैं तथा पंच प्राण अमूर्त हैं।

निर्गुण शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा के एक देश में उसका अंश जीव है। जिस प्रकार हल्दी में चूना मिला देने पर चूना अपनी सफेदी तथा हल्दी अपनी पीतिमा को छोड़कर लाल हो जाते हैं और वस्त्र आदि को लाल कर देते हैं। उसी प्रकार ईश्वर का अंश जीव भी अपनी पूर्व जन्म की अर्जित पूर्व प्रज्ञा, विद्या, कर्म, राग आदि के समुदाय से संसारी हो जाता है। वासनाओं की वृद्धि के कारण उसमें जीवत्व आता है। इन वासना आदि के वश में हुआ जीव, ईश्वर होने पर भी जीवत्व को प्राप्त करता है। जीव का यह रूप भूतराशि और विचारों के संयोग से होता है। परन्तु यह रूप स्थूल आकार का नहीं होता है। यह भूत राशि से लिंग शरीर द्वारा (अन्तःकरण आदि द्वारा) आत्मा में संक्रान्त होता है। जैसे कई द्रव्यों के मेल से नशा उत्पन्न होता है किन्तु वह स्वयं तद्रूप नहीं होता। वैसे ही जीव का यह रूप पंच भूतों के मेल से उत्पन्न होने पर भी वह पांच भौतिक नहीं है।

परमात्मा का अंश जीव स्वयं निर्गुण होने पर भी वासनाओं के कारण सगुण सा होता है। वह कर्त्ता भोक्ता एवं बन्ध मोक्ष का भागी, वासना अविद्या, काम कर्म आदि विज्ञानात्मा का स्वाभाविक रूप नहीं है। किन्तु आगन्तुक है। सांख्य दर्शन की भांति यह अनात्म धर्म मानते हैं। जैसे पुष्पों में रहने वाली गन्ध निकलकर गुलाब जल तथा इतर आदि में आ जाती है। वैसे ही भावना, ज्ञान, राग, कर्म आदि का समुदाय भूत राशि से निकल कर सूक्ष्म शरीर तथा

जीव में आता है। तात्पर्य यह है कि वासना कर्म राशि आदि विज्ञानात्मा (विज्ञानमय कोश) के धर्म या गुण नहीं है। किन्तु भूत राशि से लिंग द्वारा लिंग रूप उपाधि और आत्मा में तादात्म्य रहने के कारण आत्मा में उसी प्रकार प्रविष्ट होते हैं, जिस प्रकार फूल की गन्ध इतर या तेल में। इन्हीं कारणों से आत्मा वास्तव में शुद्ध बुद्ध होने पर भी कर्त्ता भोक्ता अपने को मानकर जन्म-मरण आदि सांसारिक बन्धनों में जकड़ जाता है।

भूत राशेरगाल्लिंगं कर्म राशि सकाशतः।
लिंगादात्मानमागात्स लिंग सम्बन्ध कारणात्।

लिंग शरीर से सम्बन्ध के कारण भूत राशि में स्थित तथा कर्म राशि में मिलकर जन्म-मरण रूपी संसार को प्राप्त करता है।

अधोलिखित दृष्टान्त का शंकराचार्य जी द्वारा खण्डन

यहां जो पुष्पों की गन्ध या इतर आदि का दृष्टान्त दिया है यह शांकर वेदान्त के विपरीत है। जैसे रज्जु में सर्प न होने पर भी भ्रान्ति से प्रतीत होता है। उसमें न आता है न जाता है। किन्तु रज्जु के सामन्य ज्ञान तथा विशेष के अज्ञान से दीखता है। अतः रस्सी के साथ सर्प का तीनों कालों में सम्बन्ध नहीं है। मिथ्या सम्बन्ध प्रतीत होता है। पुष्प का सुगन्धि के साथ सम्बन्ध अध्यास मूलक सत है। इन्होंने अविद्या मूलक सम्बन्ध को यथार्थ सिद्ध किया। इसी का खण्डन आचार्य शंकर ने वृहदारण्यक उपनिषद में किया है। अतः त्याज्य है।

जिस प्रकार फूलों के न रहने पर भी उनकी गंध इतर या तेल में बनी रहती है। उसी प्रकार सुषुप्ति काल में लिंग के न रहने पर भी वासनाएं आत्मा में बनी रहती हैं। एवं जागृत में फिर से उदय होकर सांसारिक जीवन धारा को पुनः फैलाती हैं। अतः इस मत से यह स्पष्ट है कि जीवात्मा परमात्मा का एक देश या अंश है। जो अग्नि चिनगारी के समान निर्गुण है वह आगन्तुक कर्म राशि तथा वासनाओं के सम्बन्ध में सांसारिक जीव रूप में परिणत हो जाता है। इससे जीव का अंश से अंशीभाव सिद्ध हुआ।

जीव वासनाओं तथा कर्मों के कारण बन्धन को प्राप्त हुआ है। भर्तृहरि का यह सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त से मिलने के कारण ग्राह्य है।

२. भेदाभेदवाद—एक देश या एक देशीय जीव ईश्वर में भेदाभेद सम्बन्ध है। अतः इनका द्वैताद्वैतवाद है। यह बात उसी प्रकार से है, जैसे कोई कहे कि वह तीव्र गति से चलता

है तथा स्थिर है । जैसे दोनों क्रियाएं एक साथ नहीं हो सकतीं, वैसे ही इनका यह सिद्धान्त भी अमान्य है । अतः नैष्कर्म्य सिद्धि में सुरेश्वराचार्य जी ने इसका खण्डन इस प्रकार किया है । **अनुत्सारित नानात्वं ब्रह्म यस्यापि वादिनः । भिन्नाभिन्नं विशेषैश्चेद् दुःखी स्याद् ब्रह्म ते ध्रुवम् ।।** जिस वादी के मत में जीव में नानात्व है तथा भिन्नाभिन्न है तो तेरा ब्रह्म दुःखी होगा । परमानन्द स्वरूप नहीं । **सामान्य विशेषात्मना भिन्नाभिन्नं ब्रह्मेति यस्य मतं तन्मतेऽपि दुस्सम्पादः समुच्चयः ।** सामान्य = परमात्मा, विशेष = जीवात्मा (विज्ञानात्मा) जिसके मत से परस्पर भिन्नाभिन्न हैं । उनके मत में दोनों का समुच्चय होना कठिन है ।

भगवान् भाष्यकार जी ने भेदाभेद सिद्धान्त का अति सूक्ष्म तथा अतिमार्मिक खण्डन ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के प्रथम पाद के चौदहवें सूत्र की व्याख्या में किया है । जैसे वृक्ष-वृक्ष के रूप में एक है किन्तु शाखा पत्र पुष्प आदि के रूप में अनेक है । जैसे समुद्र-समुद्र के रूप में एक है किन्तु तरंग फेन आदि के रूप में अनेक है । जैसे मृत्तिका-मृत्तिका के रूप में एक है । वैसे ही ब्रह्म अपने शुद्ध स्वरूप में एक है । किन्तु अन्तःकरण तथा शरीरों की उपाधि के रूप में अनेक है । ब्रह्म पारमार्थिक सत्ता के रूप में एक है तथा व्यावहारिक तथा प्रतिभासिक सत्ता के रूप में अनेक है । श्रुति भी ब्रह्म का दोनों रूपों में वर्णन करती है । **"आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।** आत्मा आकाशवत् सर्वव्यापी अविनाशी है, ब्रह्म सत्य, ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त है । ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । मैं ही ब्रह्म हूं । निश्चय ही यह सब ब्रह्म है ।

अभेद के बिना, 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि श्रुतियों के सिद्धान्त का निश्चय नहीं हो सकता तथा भेद के बिना "ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति" यह सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म का द्रष्टा तथा ब्रह्म दो भिन्न सिद्ध होते हैं । यह सिद्धान्त निश्चित हुआ ।

३. मूर्तामूर्त राशि जगत्—यदि ब्रह्म का जीव तथा जगत् के साथ एकान्त भेद माना जाए तो भोग्य जगत् तथा भोक्ता जीव दो हो जाएंगे । इनको एक मानने पर लोक प्रसिद्ध व्यवहार लुप्त हो जाएगा । अतः श्रुति सिद्ध परमात्मा के साथ अभेद है तथा प्रत्यक्ष से परस्पर भेद सिद्ध होता है । समुद्र तरंग न्याय से भेदाभेद दोनों सिद्ध होते हैं । क्योंकि तरंग फेन बुदबुदे समुद्र के साथ अभेद रूप से रहते हैं । परिणामी तथा परिणाम अभिन्न है । स्थूल दृष्टि से भेद तथा सूक्ष्म दृष्टि से अभेद है । कहा है—एक ब्रह्म के परिणाम में भोक्ता और भोग में, परस्पर भिन्नत्व और अभिन्नत्व सिद्ध होता है ।

४. परिणामवाद—ऊपर दिये दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि भर्तृ प्रपंच परिणामवादी थे। जैसे एक ही मिट्टी अनेक खिलौनों तथा पात्रों के रूप में परिणत होती है। वैसे ही एक ही परमात्मा जीव भाव से अनेकों कर्म वासना के अनुसार अनेकों जीवों तथा पंच भूतों के रूप में परिणत होता है। वही जीव भावना के अनुसार भावना, ज्ञान, कर्म तथा रागादि के समुदाय से तदनुसार योग्य वर्ग मूर्तामूर्त राशि तथा उसके भोग के साधन ज्ञान कर्म आदि की उत्पत्ति होती है। इसीलिये जीव को कर्मराशि तथा वासना आदि का प्रयोजन कहा है।

५. मोक्ष निरूपण—इस प्रक्रियानुसार जीव वास्तव में परमात्मा का अंश तथा शुद्ध है। परन्तु कर्म राशि तथा वासनाओं के कारण जन्म-मरण को प्राप्त करता है अर्थात् प्राप्त नहीं होता किन्तु प्राप्त के समान प्रतीत होता है। अनेकों योनियों में भटकता हुआ अपने सुख-दुःख रूप शुभाशुभ कर्मों के फल भोगता है। वह अज्ञान के कारण अपने शुद्ध स्वरूप को नहीं समझता। अज्ञान स्वाभाविक होने पर परमात्मा में प्रकट होकर विकार पैदा करता है। इस मत की विशेषता यह है कि अविद्या न परमात्मा में रहती है न जीव में किन्तु अन्तःकरण में रहती है। अन्तःकरण अनात्म धर्म है।

यह शंका ठीक नहीं—अविद्या यदि परमात्मा में होती तो उसी में रहनी चाहिये न कि उसके एक भाग में। जैसे पृथ्वी से उत्पन्न ऊषर सारी पृथ्वी में न रहकर उसके एक देश में रहता है। वैसे ही परमात्मा से उत्पन्न अविद्या परमात्मा के एक देश में है। उसी भाग में तादात्म्य को प्राप्त करके अन्तःकरण में रहती है। इस सिद्धान्त में विद्या स्वाभाविक, अनादि तथा अन्तःकरण का धर्म कहा है। इसी के वश में होकर जीव जन्म-मरण संसार को प्राप्त करके दुःखी होता है। अन्तःकरण से अविद्या के दूर होते ही जीव अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है। वास्तव में वह पहले ही शुद्ध स्वरूप था। परन्तु अज्ञान से अस्थित के समान प्रतीत होता है। इस शुद्ध स्वरूप के आविर्भाव का नाम मुक्ति है।

हम देखते हैं कि शांकर वेदान्त के समान भर्तृहरि के शब्दाद्वैत में भी अन्तःकरण में स्थित अज्ञान या अविद्या ही बन्धन का कारण है। अज्ञान की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। इन दोनों आचार्यों के सिद्धान्तों में केवल परिणाम तथा विवर्त को लेकर ही मतभेद है। अधिकांश शब्दाद्वैत सिद्धान्त केवलाद्वैत से मिलता है। भर्तृहरि जी का शंकर के सिद्धान्त से समन्वित सिद्धान्त ग्राह्य है अन्य त्याज्य है।

॥ इति श्री गुरु. पु. कलि. ख. प्रथम परि. सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथाष्टविंशोऽध्यायः

शब्दाद्वैत तथा उसका मूल

वेदों में तीन प्रकार का अद्वैत सिद्धान्त माना गया है । पहला शंकराचार्य जी का केवलाद्वैत, सत्ताद्वैत, ज्ञानाद्वैत, दूसरा बुद्ध का विज्ञानाद्वैत या क्षणिक विज्ञान, तीसरा भर्तृहरि का वाक्यपदीय आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित शब्दाद्वैत है । परन्तु उपर्युक्त दो अद्वैत वादियों के समान शब्दाद्वैत विशेष रूप से नहीं अपनाया गया । यह लुप्त सा हो गया था । इसे स्फोटवाद या प्राणवाद भी कहते हैं । इस सिद्धान्त का बीज ऋगादि संहिताओं में पाया जाता है । प्रत्येक वेद की मंत्र संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषदों में ॐ कार की महिमा का गान किया गया है । छान्दोग्योपनिषद् में प्रणव विद्या या उद्गीथोपासना प्रसिद्ध है । प्रणव ही सबका मूल अद्वैत ब्रह्म है । वही शब्दाद्वैत है । **"ओमेवेदम् सर्वम्, ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत, ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्"** ॐ का उच्चारण करते समय प्राणों की ऊर्ध्व गति होती हैं । अतः इसे उद्गीथ कहते हैं । माण्डूक्योपनिषद् में भी इसे अक्षर ब्रह्म कहा है । इसी का व्याख्यान वर्त्तमान, भूत, भविष्य है । सब ॐ कार ही है । त्रिकालातीत शशशृंग आदि भी ॐ कार ही है अर्थात् काल्पनिक जगत् भी ॐ कार ही है । योग दर्शन में भी **"तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थ भावनम्"** कहा है । ईश्वर का वाचक प्रणव है । उसके अर्थ की भावना करते हुये जप करे । प्रणव संजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित होने के कारण अद्वैत है । वह अकार, उकार, मकार, तीन मात्रा, तथा ह्रस्व दीर्घ लुप्त भेद से तीन प्रकार का है । शब्द व्यवहार अनादि तथा सनातन है । व्याडि नामक आचार्य ने अपने 'संग्रह' नामक ग्रन्थ में जो वर्णन किया है, जो आजकल उपलब्ध नहीं है । यह आचार्य पतंजलि कात्यायन आदि से पूर्व हुये हैं । इस ग्रन्थ से इन्होंने बहुत कुछ सामग्री ली है । **सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे,** शब्दार्थ का सम्बन्ध सिद्ध होने पर, इस वार्तिक की पूर्ण व्याख्या महाभाष्य में हुई है । स्फोट शब्द महाभाष्य में आया है, **स्फोटमात्रमादरश्रुतेर्ल श्रुतिर्भवति ध्वनिः स्फोटस्य शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते** । स्फोट मात्र का आदर श्रुति में हुआ है, परस्पर भिन्न शब्दों के स्फोट की ध्वनि निश्चय ही लक्षित होती है । इसकी परिभाषा नीचे वाक्य में की गई हैं । **"येनोच्चारितेन, सास्ना लांगूल, ककुद, खुर विषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स**

शब्दः" जैसे गो शब्द के उच्चारण करने से गल कम्बल, पूंछ, कोहान, खुर तथा सींगों की विशेषताओं से युक्त गो शब्द का ज्ञान होता है। इसे शब्द कहते हैं।

भर्तृहरि सर्वप्रथम दार्शनिक थे, जिन्होंने इस सिद्धान्त को 'वाक्यपदीय' के ब्रह्मकाण्ड में शास्त्रीय रूप दिया। भर्तृहरि के बाद भर्तृमित्र हुये जिनका स्फोट पर 'स्फोट सिद्धि' नामक ग्रन्थ आजकल मिलता है। इनके वाद इस सिद्धान्त की पूर्ण व्याख्या पुण्य राज तथा कैय्यट, नागेश के उद्योत में मिलती है। नागेश भट्ट शब्दाद्वैत के कट्टर प्रतिपादक थे। स्फोट का वे पूर्ण रूपेण अपनी 'मंजूषा' में वर्णन करते हैं।

अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों में तथा अन्य दर्शनों में दृक् तथा दृश्य दो पदार्थ कहे हैं। इनमें दृक् अविनाशी आत्मा है। दृश्य नश्वर जगत् है। सरल शब्दों में विचारों का प्रतिबिम्ब दृश्य है। जगत् मिथ्या है। वेदान्त में भी कहा है—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

अस्ति (सत्), भाति-ज्ञान या चित्, प्रिय = परमानन्द स्वरूप, नाम तथा रूप यह पांच अंश हैं। इनमें पहले तीन, अस्ति, भाति, प्रिय ब्रह्म स्वरूप हैं तथा अन्तिम दो नाम तथा रूप माया के अंश हैं। इसी का अनुवाद वृत्ति-प्रभाकर भाषा के ग्रन्थ में मंगलाचरण में सन्त निश्चल दास जी ने किया है। **अस्ति भाति प्रिय सिन्धु में नाम रूप जंजाल। लखतहि आत्म स्वरूप निज ह्वै तत्काल निहाल॥**

शब्द शास्त्रानुसार भाषा तथा विचार दो वस्तुएं अनादि तथा एक-दूसरे के आश्रित हैं। भाषा के बिना विचार तथा विचार के बिना भाषा हो नहीं सकती। इसी सिद्धान्त को शब्दाद्वैत के समर्थक वैय्याकरण प्रकारान्तर से स्वीकार करते हैं। भाषा तथा विचार को एक कहा है। परन्तु कुछ प्राचीन तथा आधुनिक (भर्तृहरि से पूर्व) विद्वान् दोनों को पृथक् कहते हैं। इस समस्या का समाधान भर्तृहरि जी ने नीचे किया है। **एकस्यैवात्मना भेदौ शब्दार्थावपृथक्-स्थितौ।** एक ही आत्म रूप से शब्द और अर्थ अपृथक् रूप से स्थित हैं। यद्यपि स्थूल दृष्टि से पृथक् मालूम पड़ते हैं किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से एक हैं। बिना शब्द के अर्थ बोध नहीं हो सकता है। अतः शब्द अनादि है। शब्द तथा अर्थ अविभाज्य अंग हैं। इतना ही नहीं शब्द के अभाव में ज्ञान का स्वयं प्रकाशत्व लुप्त हो जाता है। **वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वतीः।**

न प्रकाशः प्रकाश्येत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ।। अर्थ ज्ञान से पूर्व यदि अनादि वाणी प्रकाशित न हो तो बिना वाणी के स्वयं प्रकाश शब्द का ज्ञान ही लुप्त हो जाएगा । इसके अभाव में सम्पूर्ण क्रियाएं बन्द हो जाती हैं तथा जीव पाषाणवत् हो जाता है । इसी बात पर दण्डी कहते हैं—**तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयं दृश्यते कुड्य काष्ठवत् । इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवन त्रयम् ।। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ।**

यदि शब्द नामक ज्योति संसार को प्रकाशित न करे तो संसार संज्ञा हीन होकर दीवार काष्ठवत् जड़ हो जाए तथा सारे संसार में अज्ञान रूपी अन्धकार छा जाए । भर्तृहरि का कथन है कि किसी भी योनि में जन्मा हुआ बच्चा, जन्मते ही अपने भाव को व्यक्त करने के लिये शब्द की शरण लेता है । अतः वेद में भी शब्द को ब्रह्म कहा है । शब्द अनादि होने पर भी भाषा विज्ञानी कहते हैं, कि शब्द की उत्पत्ति परस्पर वार्तालाप करने से होती है । व्यष्टि, समष्टि भेद से शब्द दो प्रकार का है । समष्टि शब्द अनादि है परन्तु व्यष्टि की उत्पत्ति होती है । शब्द नाभि से उत्पन्न होता है । नाभि में स्थित अग्नि तथा वायु के वेग से हृदय कंठ से होते हुये वायु जब कंठ तालु दान्त आदि से टकराती है । तब स्वर व्यंजनात्मक शब्द उत्पन्न होता है । **जैसे अकुह विसर्जनीयानां कण्ठः, इचु यशानां तालु, ऋटुरषाणां मूर्धा आदि ।** अ कवर्ग ह तथा विसर्गों का कण्ठ स्थान है । इ चवर्ग य श का तालु, ऋ, टवर्ग र ष का मूर्धा स्थान है । इसका विस्तार 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' आदि व्याकरण ग्रन्थों से देखें । परन्तु भर्तृहरि आचार्य आन्तरिकभाव को जानकर कहते हैं कि हमारी वागिन्द्रिय का प्रथम संयोग हमारे श्वास-प्रश्वास के आने जाने से तथा बच्चे के अंग प्रत्यंग के संचालन से तभी होता है जब पूर्व जन्म का संस्कार तथा स्मृति होती है । अतः शब्द व्यवहार नित्य तथा अनादि है । यदि ऐसा न हो तो बच्चा जन्मते ही शब्द की शरण ग्रहण न करे । कुछ विद्वान् इससे भी आगे बढ़ गये हैं । वे कहते हैं कि प्रत्येक वर्तमान वस्तु शब्द द्वारा व्यक्त की जा सकती है । इसके विपरीत जो वस्तु शब्द द्वारा व्यक्त नहीं होती वह नहीं है । शब्द की शक्ति अनिर्वचनीय है । जैसे शशशृंग तथा आकाश पुष्प का भी क्षण मात्र के लिये ज्ञान होता है ।

परन्तु यह सिद्धान्त अद्वैत वेदान्त के विरुद्ध है । एक मात्र ब्रह्म की ही सत्ता है । ब्रह्म, माया, जीव, ईश्वर, जगत् यह ऋतम्भरा प्रज्ञा की अनुभूति के विषय हैं । अतः अनिर्वचनीय अव्यवहार्य तथा मन वाणी से परे हैं । अतः शब्दाद्वैत तथा व्याकरण का यह सिद्धान्त अग्राह्य है ।

शब्द से ही हमें ज्ञान होता है किन्तु गो शब्द से उसी को ज्ञान होगा जिसने गाय देखी होगी। जिसने गाय नहीं देखी उसको समझाया जाता है कि जिस चौपाये के चार पैर, दो सींग, पूंछ, चार स्तन, गले में झालर सी लटकती हो वह गाय है। खुरकटे हों। भाव यह है कि गो शब्द मुख में है। उसका अर्थ बाहर है। अर्थ दो प्रकार का होता है। वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ। वाच्यार्थ वाणी में है। उसका लक्ष्यार्थ गो पशु विशेष बाहर है। गो पद में ग् और ओ दो अक्षरों के मेल से गो शब्द बना। इस प्रकार दोनों अक्षरों के मेल से ज्ञान होता है, अथवा अलग-अलग से या ध्वनि से या दोनों अक्षरों के स्फोट या ध्वनि से होता है। भिन्न-भिन्न अक्षरों से ज्ञान नहीं होता है। यदि कहो कि अक्षरों के मेल से ज्ञान होता है। तो ध्वनि के मेल से होता है या अक्षरों के मेल से। यदि कहो ध्वनि से होता है तो पहले ध्वनि से ज्ञान होने पर अन्य ध्वनि व्यर्थ हो जाएगी। यदि कहो कि तीनों के मेल से गो शब्द का ज्ञान होता है। तो इसमें नैयायिकों को आपत्ति है। वे कहते हैं कि अक्षर या ध्वनि दो क्षण से अधिक नहीं रुकते। अतः प्रथम ध्वनि के बाद दूसरी ध्वनि के उत्पन्न होते ही प्रथम ध्वनि नष्ट हो जाएगी। पहली का दूसरे, दूसरे का तीसरे के साथ मेल नहीं होगा। अतः ध्वनियों के मेल से ज्ञान असम्भव है। इसलिये नैय्यायिक कहते हैं। अन्तिम ध्वनि की अनुभूति कराने वाले दो अक्षरों के नष्ट हो जाने पर भी उनके संस्कारों से ज्ञान होता है। दो अक्षरों के मेल से ज्ञान कैसे होता है, इसका समाधान हो गया। नैय्यायिकों का यह मत मानने पर एक दूसरी कठिनाई उपस्थित होती है। वैयाकरणों तक आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों का कथन है कि वाक्य से भाषा का ज्ञान होता है। दूसरे शब्दों में वाचकता के अधिष्ठान में अवश्य एकता होनी चाहिये। जो अक्षर प्रथम वर्ण तथा अन्तिम वर्ण संस्कार रहित है तो इन दोनों के मेल से वाक्यों का अर्थ ज्ञान कैसे हो सकता है? अतः नैयायिकों का सिद्धान्त दोष युक्त है। इस विषय में पूर्व मीमांसकों ने कहा है उनके मत में वर्ण नित्य है तथा ध्वनि से प्रगट होते हैं। अर्थ ज्ञान के सम्बन्ध में इनकी प्रक्रिया नैयायिकों जैसी है। किन्तु वर्णों की ऐक्य अनुभूति में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। सभी वर्ण नित्य हैं। फिर भी मीमांसक आपत्ति करते हैं कि वर्णनित्य होने पर भी उनकी अनुभूति क्षणिक है। अतः उन सब में एकता नहीं हो सकती। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिये वैयाकरणों ने स्फोट को वाचकता का अधिष्ठान माना है। स्फोट अनेक शब्दों तथा अर्थों में प्रकट होता है।

सारांश

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि संसार अर्थों से बना है। वह शब्द जो हमें अर्थ ज्ञान देते हैं, हम नहीं कह सकते कि जो ध्वनि हमारे मुख से निकलती है, वह वाचकता का अधिष्ठान है। मीमांसक तथा नैयायिक दोनों ही वाचकता के अधिष्ठान की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं कर पाये। अतः वैयाकरणों के अनुसार इन सभी शब्दों तथा अर्थों का एक नित्य आधार है, वह है प्रणव। यह सारे जगत् का अधिष्ठान, उत्पादक, पालक तथा संहारक है।

इसकी एकता शांकर अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म से हुई है। भर्तृहरि प्रपंच केवल शुद्ध ब्रह्म के स्थान पर शब्द ब्रह्म का प्रयोग करते हैं। कोई भी शब्द को अप्रमाणिक नहीं कह सकता। क्योंकि वेद भी इसी तत्त्व का प्रतिपादन करता है। वाणी से ही अर्थ को देखता है, वाणी से बोलता है। शब्द अर्थ के समीप होने पर ही वाणी विस्तार को प्राप्त होती है। वह वाणी अनेकों रूपों से युक्त है। अमृत तथा मृत्यु वाणी का ही रूप है। शब्द का अर्थ के साथ भिन्नाभिन्न अनिर्वचनीय सम्बन्ध है। जैसे गो शब्द, वाणी में है। उस का लक्ष्यार्थ गौः पशु विशेष बाहर है तथा गो शब्द का उच्चारण करते ही उसके रूप का ज्ञान अन्तःकरण में होता है। अतः तीनों अनिर्वचनीय सिद्ध हुये।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं हि निश्चितम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य, ब्रह्मत्वं च सुनिश्चितम्॥

जैसे सुवर्ण से उत्पन्न हुये आभूषण में सुवर्णत्व निश्चित है। वैसे ही ब्रह्म से उत्पन्न जगत् का ब्रह्मत्व निश्चित है। थोड़े हेर-फेर के साथ सभी ऋषियों तथा आचार्यों ने शब्दाद्वैत को स्वीकार किया है।

किसी देवता या ऋषि से वेद या शब्द शास्त्र की उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु समाधि द्वारा ऋषियों ने प्राप्त किया है। लोक और वेद में शब्दों का सम्बन्ध कर्त्ता कोई नहीं है। शब्दों का शब्दों के साथ स्वाभाविक ही सम्बन्ध है।

चत्वारि वाक्यपरिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणाः ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहताः नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति॥

वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण चार वाणियां कहते हैं। इनमें तीन अत्यन्त गुह्य हैं जिनको अन्य जीव नहीं जानते इनमें चौथी वाणी मनुष्य बोलते हैं।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी चार वाणियां है । इनमें परा मूलाधार में, नाभि में पश्यन्ति, हृदय में मध्यमा तथा जो हम बोलते या सुनते हैं वह बैखरी है । इनमें से तीन का ज्ञान योगियों को होता है । नागेशभट्ट जी ने भी मंजूषा नामक ग्रन्थ में विशद व्याख्या की है । विस्तारभय से नहीं दिया जा रहा है ।

सारांश यह है कि वेदों की उद्गीथ प्रणवोपासना विद्या ही शब्दाद्वैत का मूल है । प्रणव ब्रह्म के साथ किसी भी ऋषि या आचार्य तथा संप्रदाय का विरोध नहीं हैं । यही शब्दाद्वैत का मूल है । **(कल्याण वेदांतांक से)**

।। इति श्री गुरु. पुराणे कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, अष्टविंशोऽध्यायः ।।२८ ।।

अथ ऊनत्रिंशोऽध्यायः

जगद् गुरु श्री रामानन्दाचार्य का ब्रह्मसूत्र भाष्य

आचार्य श्री रामानन्द जी महाराज ने प्रस्थानत्रयी पर भाष्य किये हैं । इनमें से वेदान्त दर्शन पर आनन्दभाष्य सर्वोत्तम है ।

आनन्द भाष्य का अर्थ—जिस पदार्थ का जो गुण होता है । उस नाम से ही उसका उपदेश होता है । क्योंकि ब्रह्म आनन्द स्वरूप है अतः इस भाष्य का नाम आनन्द हुआ । **आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रति सम्विशन्ति** । परमानन्द के आनन्द से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं । उत्पन्न होकर उसी में जीवन धारण करते हैं और आनन्द में ही लीन हो जाते हैं ।

आनन्द भाष्य का मत

इस भाष्य में श्री रामानन्द स्वामी जी ने श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है । विशिष्टाद्वैत का शब्दार्थ है—**विशिष्टं विशिष्टं च विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्** । इसमें पहले विशिष्टं शब्द से सूक्ष्म चैतन्य लिया, यह विशिष्ट शब्द जड़ विशिष्ट कारण ब्रह्म के अर्थ में आया है और दूसरा विशिष्ट पद स्थूल चेतन जड़ कार्य ब्रह्म के अर्थ में है । अतः विशिष्टाद्वैत का अर्थ जीवात्मा परमात्मा की एकता है ।

ब्रह्म शब्द का वाच्यार्थ कौन है ?

इन्होंने ब्रह्म शब्द का वाच्यार्थ श्री राम किया है । ब्रह्म शब्द महापुरुष आदि पदों से कहे जाने योग्य समस्त दोषों से रहित, असंख्य कल्याण गुणों से युक्त भगवान् राम हैं । विशेष में स्थित होने से जगत् के कारण, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्गुण, सगुण आदि पद के वाच्य श्री राम तत्त्व ही जगत् का मूल कारण है । आगे चलकर चौथे समन्वय सूत्र से तथा दूसरे सूत्र से समस्त श्रुतियों का सगुण-निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों का समन्वय करने से एक अक्षर, सत्-असत् आदि पदों के बोधक एकमात्र श्री राम ही हैं । इन्होंने ब्रह्म शब्द से निर्विशेष, निरुपाधिक ब्रह्म को नहीं माना । रामानन्द एक ही ब्रह्म को सगुण-निर्गुण रूप में मानते हैं । यद्यपि इसमें विरोध प्रतीत होता है । किन्तु विचार करने से विरोधाभास मात्र ही है । निर्गुण शब्द का अर्थ करते हुये लिखा है—**निर्गताः निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृताः गुणाः यस्मात् स निर्गुणः तस्मात्तत् निर्गुणमिति। व्युत्पत्यन्तरा निकृष्ट-गुण-राहित्यमेव निर्गुणत्वम्।** जिससे सत्वादि निकृष्ट गुण निकले हैं वह निर्गुण है । इस व्युत्पत्ति से निकृष्ट गुणों से रहित ब्रह्म ही निर्गुण है । विष्णु, पद्म पुराणादि में भी ऐसा ही कहा है । यदि निर्गुण शब्द का अर्थ गुणों का अत्यन्ताभाव किया जाए तो ठीक नहीं । क्योंकि—**परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बला क्रिया च।** परमात्मा की शक्ति स्वाभाविकी, ज्ञान बल तथा क्रिया से युक्त अनेक प्रकार की सुनी जाती है । इस वचन से विरोध होता है । सगुण पद की व्याख्या करते हुये कहा है—**'दिव्य गुणों से युक्त ब्रह्म सगुण है ।' ब्रह्म शब्द का तात्पर्य दोनों से है ।**

आनन्द भाष्य में सद्यो मुक्ति का अभाव

वेदों तथा उपनिषदों में क्रम मुक्ति तथा सद्यो मुक्ति दो प्रकार की मुक्ति कही गयी है । क्रम मुक्ति देवयान मार्ग से क्रमानुसार ब्रह्म लोक में जाने पर मुक्ति होती है और सद्यो मुक्ति ज्ञानी का शरीर छूटते ही संचित प्रारब्ध क्रियमाण तीनों प्रकार के कर्मों का नाश हो जाने पर ज्ञानी तत्काल ही स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म कारण शरीर को त्याग कर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है । यह शांकर सिद्धान्त है । परन्तु रामानन्द जी ने इसको स्वीकार नहीं किया । सूत्र में जो विद्या की सामर्थ्य अर्थात् ब्रह्मविद्या आत्म विद्या की सामर्थ्य यह अर्थ शंकर ने किया है, किन्तु इन्होंने विद्या की सामर्थ्य का अर्थ उपासना रूपी विद्या की सामर्थ्य से परमात्मा के शेषत्व के अनुसन्धान से जीवात्मा ईश्वर की कृपा प्राप्त करता है अर्थात् राम का ध्यान करने से योगी

का प्राण सुषुम्णा नाड़ी से निकल कर अर्चि आदि मार्ग से ब्रह्म लोक को प्राप्त हुये ज्ञानी भक्त की मुक्ति कही है। विद्या की सामर्थ्य का अर्थ यहां विद्यापद से मरने के पूर्व आकृति कही गयी है। उसी ब्रह्म के निदिध्यासन रूप परमात्म चिन्तन पद विद्या का अर्थ ग्रहण किया है। यह व्यास जी का मत है। यहां स्पष्ट कहा है कि ज्ञानी की तत्काल मुक्ति नहीं होती। परन्तु यह अर्थ श्रुति के विरुद्ध है।

"शंका = अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते।" शरीर त्याग के अनन्तर ही मरने वाला ज्ञानी तत्काल उसी देश, उसी काल में ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। जैसे मैदान में फूटे घड़े का घटाकाश महाकाश के साथ एकता प्राप्त करता है। वैसे ही ज्ञानी अज्ञान से उत्पन्न कर्म बन्धन तथा शरीरों को तत्काल त्याग कर ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करता है। ऐसे ज्ञानी उत्तरायण मार्ग से नहीं जाते, तत्काल मुक्त हो जाते हैं?

समाधान—सम्पूर्ण कामनाओं से रहित आप्त काम ब्रह्म वेत्ता के प्राण उत्क्रमण नहीं करते, शरीर छूटते ही ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्त करते हैं। जिस यति की सभी कामनायें छूट गयी हैं। वह शरीर त्यागते ही तुरन्त मुक्त हो जाता है। परन्तु स्वयमेव स्वतन्त्र अपने पुरुषार्थ से कोई लीन नहीं हो सकता और न सद्यो मुक्ति हो सकती है। इन्होंने अभेद भाव से शरणागति को मुक्ति का कारण कहा है अर्थात् बिना राम कृपा के उसके प्राण लीन नहीं हो सकते। कर्म भक्ति का अंग है। जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म कहा है। जीवों का परस्पर भेद तथा अनेकत्व है। जीव स्वरूप से अणु, कर्त्ता, भोक्ता, ज्ञाता तथा नित्य है। जीवों का ब्रह्म से भेद है। इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था तथा नारद पंचरात्र आदि ग्रन्थों को स्वीकार किया है। निर्विशेष ब्रह्म का खण्डन तथा सविशेष ब्रह्म का मण्डन किया है। शांकर वेदान्त के जगत् के मिथ्यात्व, अनिर्वचनीय ख्याति तथा अविद्या का खण्डन करके सत् ख्याति मानी है। वेदों का प्रामाण्य तथा अपौरुषेयत्व स्वीकार किया है।

आनन्द भाष्य की टीकायें

इनके भाष्य पर लीलाचार्य जी ने सुरद्रुम व्याख्या तथा इस व्याख्या पर श्री मंगलदास जी ने सुरद्रुम मंजरी नाम की टीका की है।

जगद् गुरु रामानन्दाचार्य जी का सिद्धान्त पूर्ण हुआ।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

'त्रैतवाद'

सांख्य दर्शन तथा उनके अनुयायी ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों को अनादि तथा परमार्थ सत्य मानते हैं। अतः इनकी सत् ख्याति है।

प्रक्रिया—इनके मत में ईश्वर तथा प्रकृति दोनों स्वतन्त्र हैं। जीव प्रकृति के अधीन है प्रकृति तथा पुरुष में, पुरुष चैतन्य है और प्रकृति जड़ है। प्रकृति आठ प्रकार की है। इनमें पहली मूल प्रकृति या प्रधान कही जाती है। वाद की सात अपने से पूर्ववर्त्ती की विकृति तथा परवर्ती की प्रकृति है। १. महत्तत्त्व या महान्, २. अहंकार, ३. आकाश, ४. वायु, ५. अग्नि, ६. जल, ७. पृथ्वी। यह क्रमानुसार अपने कार्यों की प्रकृति तथा कारणों की विकृतियां हैं। अतः प्रकृति विकृति कही जाती हैं। इनसे उत्पन्न हुई पंच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां पंच प्राण तथा अन्तःकरण यह सोलह विकार विकृतियां हैं। सोलह और आठ मिलाकर २४ तत्त्व हुये। २५वां तत्त्व पुरुष जीव है। जो न किसी की प्रकृति है न विकृति है। इन पच्चीस तत्त्वों से जगत बना है। प्रधान के तीन गुणों, सत्व, रज, तम से जगत् बना है। तीनों गुणों की साम्यावस्था में जगत् का प्रलय होता है। जब तीनों विषम होते हैं। तब जगत् उत्पन्न होता है। जब तक विषमता है तब तक जगत् रहता है। इन तीन गुणों से ही जीव को सुख-दुःख प्राप्त होता है। प्रकृति पुरुष के विवेक से जीव मुक्त होता है। प्रकृति किसी के अधीन नहीं है। स्वतन्त्र होकर जगत् की उत्पत्ति स्थिति और विनाश करती है। यह संक्षेप में सांख्य दर्शन की प्रक्रिया है।

आक्षेप

आप प्रकृति को जड़ मानते हैं। उसके जड़ होने पर तीन गुण भी जड़ हुये। अतः स्वयं तथा पर बोध से रहित वह प्रकृति तीन गुणों के द्वारा जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय नहीं कर सकती। क्योंकि कोई भी जड़ वस्तु चेतन के बिना कार्य नहीं कर सकती। जैसे जड़ बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी चेतन बैल या घोड़े के बिना कार्य नहीं कर सकती। मशीनरी से चालित होने वाला कोई भी वाहन बिना चेतन चालक के चल नहीं सकता। अतः प्रकृति के सम्बन्ध में नवम अध्याय में गीता में कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय ! जगद्विपरिवर्तते ॥

हे कुन्ती पुत्र ! मेरी अध्यक्षता में प्रकृति चराचर जगत् को उत्पन्न करती है। भाव यह है कि जब मैं जड़ प्रकृति में प्रवेश करके चैतन्य करता हूं। तब मेरी चैतन्यता से चैतन्य हुई प्रकृति चलने न चलने वाले प्राणियों को जन्म देती है और इस प्रकार से जगत् प्रवर्तित होता है।

इसके उत्तर में प्रधानवादी कहते हैं चेतन के बिना जड़ से काम नहीं होता ऐसा नहीं है, जैसे गाय के स्तनों में विद्यमान जड़ दूध गाय के स्तनों से उतर कर बछड़े के मुंह में स्वयमेव चला जाता है। वैसे ही जड़ प्रकृति स्वयमेव जगत् की उत्पत्ति आदि में कारण है।

इस युक्ति का उत्तर देते हुये वेदान्ती कहते हैं—गाय बछड़े को देखते ही स्तनों में दूध उतारती है तथा चैतन्य बछड़ा स्तनों में उतरे हुये दूध को चूस कर अपने मुख में और पेट में ले जाता है। अतः आप की प्रधान स्वतन्त्रा चैतन्य ईश्वर के बिना कोई क्रिया नहीं कर सकती। अतः आप की प्रकृति ईश्वराधीन है। स्वतन्त्र नहीं। यह सिद्ध हुआ।

इस सांख्य दर्शन के सिद्धान्त त्रैतवाद को श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज तथा उनके अनुयायियों ने ग्रहण किया है। वे ईश्वर, जीव तथा प्रकृति तीनों को अनादि कहते हैं। इनमें ईश्वर सत् चित् आनन्द स्वरूप है। जीव ईश्वर के अधीन है। सत् चित् दुःख रूप है। प्रकृति जड़ होने के कारण सत् अचित् (जड़) तथा दुःख रूप है। एक मात्र ब्रह्म जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं है। किन्तु ईश्वर जगत् का कर्त्ता होने के कारण निमित्त कारण है। जिस तत्त्व से जगत् बना वह उपादान कारण प्रकृति है। जगत् ईश्वर तथा प्रकृति दोनों का कार्य है। यथा कुम्हार मिट्टी के बिना पात्र नहीं बना सकता। स्वर्णकार सोने के बिना आभूषण नहीं बना सकता तथा ईश्वर भी बिना प्रकृति के जगत् नहीं बना सकता। अतः जगत् का उपादान कारण प्रकृति है तथा कुम्हार के समान बनाने वाला ईश्वर है। निमित्त कारण का कार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बर्तन बनाकर कुम्हार के मर जाने पर पात्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु मृत्तिका के पात्र में मृत्तिका के न रहने से पात्र नहीं रह सकता। बिना सूत के वस्त्र नहीं रह सकता। इस प्रकार पूर्व पक्षीय अनेक प्रकार का प्रलाप करते हैं जो वेद विरुद्ध है।

त्रैतवाद का खण्डन

अद्वैत मत का सिद्धान्त छान्दोग्योपनिषद् में आया है। **"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।"** हे सौम्य ! गुरु शिष्य को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि

भेदत्रय रहित तथा पंच भ्रान्ति रहित सृष्टि से पूर्व अद्वितीय ब्रह्म ही था। उसके अतिरिक्त ईश्वर, जीव, माया तथा जगत् नहीं था। सृष्टि के अन्त में भी तीनों नहीं रहेंगे। अतः जो आदि अन्त में नहीं है उसकी सत्ता वर्तमान में भी नहीं है। परन्तु भ्रान्ति से सीपी में चांदी के समान मिथ्या प्रतीति होती है। इस वचन से सिद्ध होता है कि जब ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा है ही नहीं, तो दूसरा उपादान कारण कहां से आया। अतः भ्रान्ति से ब्रह्म में जीव जगत् का आभास होता है। यदि पूर्वपक्षी यह तर्क देता है कि कुम्हार, मृत्तिका तथा वर्त्तन तीनों वस्तुएं भिन्न हैं, एक नहीं। उसी प्रकार ईश्वर प्रकृति तथा जगत् भिन्न हैं।

उत्तर—कुम्भकार का दृष्टान्त विषम है। ईश्वर के समान कुम्भकार सर्व शक्तिमान सर्वव्यापी नहीं है। पूर्व पक्षी भी इस बात को मानता है। अतः ईश्वर तथा कुम्भकार की तुलना नहीं हो सकती। जैसे स्वप्न द्रष्टा जीव स्वप्न दृश्य से भिन्न होने पर भी स्वप्नाभिमानी तैजस ही द्रष्टा, दृश्य तथा दर्शन हो जाता है। वैसे ही ब्रह्म ही ईश्वर तथा जगत् एवं जीव के रूप में परिणत होता है। भाव यह है कि विवर्तोपादान कारण तथा परिणामी कारण भेद से कारण दो प्रकार का है। विवर्तोपादान कारण = विवर्त = भ्रम से प्रतीत होने वाला कारण। परिणामी कारण = रूपान्तर को प्राप्त होने वाला कारण परिणामी कारण है। जैसे दूध का रूपान्तर दही मृत्तिका का परिणाम पात्रादि।

अद्वैत वेदान्ती जगत् को ब्रह्म का विवर्त कहते हैं—उनका कथन है कि जीव जगत् ब्रह्म का रूपान्तर है। भ्रम से मिथ्या प्रतीत होता है। जैसे रज्जु में प्रतीत होने वाला सर्प, इन दोनों में रज्जु सर्प का विवर्तोपादान है तथा उस रज्जु में भ्रम से प्रतीत होने वाला सर्प परिणामी उपादान है। रज्जु में प्रतीत होने वाला सर्प अज्ञान का रूपान्तर है। अतः ब्रह्म विश्व का विवर्तोपादान कारण है तथा माया परिणामोपादान कारण है।

जैसे मकड़ी जाले का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वैसे ही ब्रह्म जगत् का निमित्तोपादान कारण है। जीव के अज्ञान से उसमें ज्ञान, अज्ञान, बन्ध, मोक्ष की प्रतीति होती है। ब्रह्म में नहीं। अतः बुद्धि में अज्ञान दूर होते ही जीव ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। श्रुति कहती है—

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम्।
तथैवोपाधि विलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित् स्वयम्।

जैसे घटोपाधि के नाश होते ही घटाकाश महाकाश हो जाता है। वैसे ही जीव की अविद्या उपाधि के नष्ट होने पर ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

त्रैत वादियों ने जो कहा था कि जीव सत चित् तथा दुःख रूप है क्योंकि वह जन्म-मरण तथा त्रितापों से निरन्तर दुःख भोगता है। प्रकृति सत्य है। जड़ तथा दुःख रूप है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है।

उनका यह सिद्धान्त जीव तथा प्रकृति के सम्बन्ध में तर्क तथा वेद प्रमाण से रहित है। क्योंकि जीव घटाकाश के समान ईश्वर का सोपाधिक अंश है। अंशी के गुण अंश में पाये जाते हैं। जब पूर्व पक्षी जीव को ईश्वर का अंश मानते हैं, जब ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह श्रुति स्मृति के प्रमाणों से सिद्ध होता है, जो उसका अंश होने से जीव भी सच्चिदानन्द सिद्ध हुआ। क्योंकि कारण के गुण कार्य में पाये जाते हैं। जैसे लाल पीले हरे नीले धागे से बनी हई दरी उन्हीं रंगों की होगी। वैसे ही ईश्वर सच्चिदानन्द होने से जीव भी वैसा ही हुआ। भेद केवल इतना है कि जीव के सच्चिदानन्द रूप पर अज्ञान का आवरण है तथा ईश्वर का सच्चिदानन्द स्वरूप आवरण रहित है। इन दोनों के बीच में विद्यमान प्रकृति जड़ तथा दुःख रूप छः प्रमाणों से सिद्ध होती है।

सारांश

माया उपाधि के अधीन ब्रह्म जगत् का कारण कहा है। प्रकृति को माया समझना चाहिये। मायापति महेश्वर है। जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही है। जैसे—मकड़ी जाले का निमित्तोपादान कारण है। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, स्वतन्त्र, सर्व शक्तिमान तथा सर्वेश्वर माण्डूक्य कारिकाओं द्वारा सिद्ध है। जीव लोक में जीव मेरा सनातन अंश ही है। यह गीता वचन भी जीव को परमात्मा का प्रतिबिम्ब मानता है। ज्ञान, अज्ञान, बन्ध, मोक्ष, जीव को निश्चय ही स्पर्श नहीं करते। यह बुद्धि के धर्म जीव में उपाधि से हैं। अविद्या तथा माया यह जीव तथा ईश्वर की दो उपाधियां हैं। भाग त्याग लक्षणा से जीव ईश्वर के सोपाधिक विरोधी अंशों को त्यागने पर जीव परमेश्वर ही है। बिम्ब की सत्ता के बिना प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने से ब्रह्म ही है। बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य को कूटस्थ कहते हैं उसे ब्रह्म

जानो। बुद्धि आदि मिथ्या होने से जीव ब्रह्म ही है। जैसे रस्सी रूपी अधिष्ठान के बिना सर्प नहीं रह सकता। वैसे ही सत्य स्वरूप अधिष्ठान ब्रह्म के बिना जगत् नहीं हो सकता।

अतः ब्रह्म के अतिरिक्त प्रकृति जीव तथा जगत् तीनों की सत्ता नहीं है। ब्रह्म ही जीव के अज्ञान से जीव जगत् तथा प्रकृति के रूप में प्रतीत होता है। यह सिद्ध हुआ।

३९३ पारस्कर—इन्होंने धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र लिखे हैं।

३९४ आश्वलायन, एवं ३९५ गोभिल—इन दोनों ऋषियों ने भी धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र लिखे हैं।

इति त्रैत वाद सिद्धान्त तथा उसका निराकरण समाप्त हुआ।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, प्रथम परिच्छेदे, त्रिंशोऽध्यायः ॥३० ॥

अथ एक त्रिंशति तमोऽध्यायः

प्रत्यभिज्ञावाद या स्पन्द वाद तथा आचार्य

प्रत्यभिज्ञावाद या स्पन्दवाद तान्त्रिक जैसा है। इसका जन्म काश्मीर में हुआ था। इस सिद्धान्त के अधिक आचार्य काश्मीर में हुये। यह शैवमत के हैं। इसके सोमानन्द[३७२], नाथपाद[३७३], उदयकरसूनु[३७४], वसुगुप्ताचार्य[३७५], भट्टकल्लटेन्दु[३७६], उत्पलाचार्य[३७७], अभिनव गुप्ताचार्य[३७८] आदि आचार्य हुये हैं। वसुगुप्ताचार्य, भट्टकल्लटेन्दु के गुरु थे। इनकी "स्पन्दकारिका" नाम की पुस्तक है। जिसमें उन्होंने अपने गुरु का नाम लिखा है। इस कारिका पर उत्पलाचार्य जी ने 'स्पन्द प्रदीपिका' नामक टीका लिखी है। उत्पलाचार्य जी ने भी भट्टकल्लटेन्दु को वसुगुप्ताचार्य का शिष्य लिखा है। अभिनवगुप्ताचार्य जी ने भट्ट कल्लट का नाम गुरु के रूप में लिखा है। इन्होंने गीता के शांकर, आनन्दगिरि, नीलकण्ठी, श्रीधरी, आदि भाष्य टीकाओं की संग्रह टीका लिखी है। "सर्व दर्शन संग्रह" नामक ग्रन्थ में भट्टकल्लट का नाम नहीं है किन्तु वसुगुप्त और अभिनवगुप्त का नाम है। भट्टकल्लट जी ने कारिकाओं में योगीनाथ, सिद्धनाथ आदि कई आचार्यों का उल्लेख किया है। सिद्धनाथ जी की अभेदार्थ कारिका का उद्धरण है। शिव सूत्र 'स्पन्द दीपिका' तथा 'सर्वदर्शन संग्रह' में भी इनका उल्लेख हुआ है। इस मत का अभ्युदय पांचवीं, छठी शताब्दी में हुआ। परन्तु अभिनव गुप्त पादाचार्य जी ने इसका विशेष प्रचार किया है।

अभिनवगुप्त पादाचार्य

इनका जन्म कश्मीर में हुआ था। इन्होंने गीता की टीका में वंश परिचय देते हुये कात्यायन ऋषि को अपना पूर्वज कहा है। वररुचि के वंश में स्थिर बुद्धि तथा महाविद्वान् सौचुक[३७९] का जन्म हुआ। उनके पुत्र महात्मा श्री भूतिराज[३८२] हुये। भूतिराज की प्रतिभा से संसार आलोकित हुआ। उन्हीं के शिष्य अभिनव गुप्ताचार्य हुये। गीता के अन्त में अपने नाम के साथ शिव पार्वती का अभेद प्रकट करते हुये लिखा है—

अभिनव रूपाशक्तिस्तद् गुप्तो यो महेश्वरोदेवः।
तदुभयथामलरूपमभिनवगुप्तं शिवं वन्दे॥

जो महेश्वर देव शिव तथा उनकी अभिनव रूपा शक्ति (पार्वती) जो दोनों आत्म रूप से अभिन्न हैं ऐसी गुप्त शक्ति वाले शिव जी की मैं वन्दना करता हूं।

सिद्धान्त

अभिनव गुप्ताचार्य जी प्रत्यभिज्ञावाद के प्रतिपादक थे। ये प्रतिभा अभिमुख ज्ञान को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक वस्तु का ज्ञान सम्मुख आने पर होता है। शास्त्रों की सहायता से ईश्वर की शक्ति का पूर्ण ज्ञान होता है। वह परमेश्वर शक्ति पूर्ण शक्ति है। जब वह आत्मा में प्रकट होती है, तब ज्ञानोदय होता है। उस ज्ञान से जीवेश्वर के स्वरूप का बोध होता है।

स्पन्दवाद—इसमें स्पन्द का अर्थ है गति। निर्विकल्प परमात्मा की सर्वतोमुखी वृत्ति स्पन्द है। परमात्मा ज्ञान स्वरूप होने पर भी सक्रिय है। ईश्वर निर्विकल्प, निर्विकार होते हुये भी शक्ति के द्वारा उसमें क्रिया होती है। जब ईश्वर ज्ञान तथा क्रिया युक्त होता है। तब उसके द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है। वह परम निर्मल, पारमार्थिक ज्ञान तथा क्रिया स्वरूप हैं। ज्ञान का अर्थ है प्रकाश रूपता। क्रिया का अर्थ है दूसरे की सहायता के बिना जगत् का निर्माण करना। भगवान् की इच्छा मात्र से जगत् की सृष्टि होती है। यह ज्ञान क्रिया स्वाभाविक है तथा यह पारमार्थिक ज्ञान क्रिया ही 'स्पन्द' है। स्पन्द तत्त्व में दुःख, सुख, ग्राह्य, ग्राहक तथा मूढ भावादि कुछ नहीं है। परमार्थ ज्ञान स्वरूपता ही स्पन्द तत्त्व है। स्पन्द तत्त्व ही परमेश्वर है। जीव का परमेश्वर के साथ अभेद अनुभव करना ही प्रत्यभिज्ञावाद है।

अनुबन्ध चतुष्टय

१. अधिकारी—प्रत्यभिज्ञावाद के सभी अधिकारी हैं। अधिकार की प्राप्ति के लिये विशेष नियम नहीं है। जिस व्यक्ति को परमार्थानुभूति होती है। उसे ही महान् फल मिलता है। विशेष साधक को परमार्थ फल मिलता है।

२. सम्बन्ध—स्पन्द रूप महेश्वर तथा शास्त्र में वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध है। अर्थ वाच्य है शास्त्र वाचक है। स्पन्द रूप महेश्वर है।

३. विषय—महेश्वर निरावरण, चैतन्य स्वरूप है। देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित अद्वितीय, अनुभूति रूप प्रमाण से ही जाने जाते हैं। वह शक्ति तथा सृष्टि चक्र के स्वामी, आत्म चिन्तामणि तथा उपेय हैं।

४. प्रयोजन—इस शास्त्र का एक मात्र सर्व महेश्वर के गुणों का प्राप्त करना ही उद्देश्य है। उनकी प्राप्ति होने पर अन्य कुछ प्राप्तव्य नहीं रहता अथवा सम्पूर्ण जगत् के कारण भूत ब्रह्म की प्राप्ति ही प्रत्यभिज्ञा का प्रयोजन है।

महेश्वर तथा आत्मा

आत्मा चैतन्य स्वरूप, ज्ञानानन्द स्वरूप अखण्ड है। ईश्वर सर्व शक्तिमान है। ज्ञान तथा क्रिया उनमें स्वाभाविक है। महेश्वर की स्वाभाविक शक्ति ही प्रकृति है। महेश्वर तथा प्रकृति में कभी व्यभिचार नहीं होता। शिव आनन्द स्वरूप है। उनके संकल्प मात्र से ही सारे जगत् की सृष्टि होती है। वे सर्व कर्त्ता, ज्ञात, आत्मा, अनादि सिद्ध हैं।

ईश्वर और जगत्

ईश्वर की इच्छा से जगत् उत्पन्न होता है। उनकी इच्छानुसार कार्य करने वाली क्रिया शक्ति है। महेश्वर ही जगत् के निमित्त तथा उपादान कारण हैं।

जीव

जीव चेतन तथा पराधीन है। प्रत्यज्ञात्मा ईश्वर से अभिन्न है। प्रमाता जीव ही माया के वश में होकर कर्म में बंधा हुआ जन्म-मरण को प्राप्त करता है। वह विद्या की सहायता से ऐश्वर्य ज्ञान को प्राप्त करके ईश्वर में लीन हो जाता है। मनुष्य शिव स्वरूप है। वह सर्वदा सब विषयों को जानता है। महेश्वर के साथ एकत्व हुये बिना समस्त विषयों को ग्रहण करने की

शक्ति जीव में नहीं होती। जीव महेश्वर का दास है। यहां दास शब्द का अर्थ भृत्य नहीं। ईश्वर स्वामी प्रसन्न होकर जिसे सम्पूर्ण वस्तुएं दे दे वही दास है।

मुक्ति

सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्व, महेश्वरत्व के भाव की प्राप्ति ही मुक्ति है।

ज्ञान तथा कर्म—ज्ञान स्वतः सिद्ध है क्रिया (कर्म) उसके आश्रित है। ज्ञान स्वयं प्रकाश, अखण्ड तथा एक है। एक होने पर भी विषयों के राग तथा भेद से भिन्न-भिन्न मालूम होता है। वह तीनों परिच्छेदों से रहित है।

साधन—इस मत के अनुसार प्राणायाम आदि कठिन साधनों की आवश्यकता नहीं है। केवल प्रत्यभिज्ञा द्वारा ही मुक्ति है। मैं ईश्वर हूं। इसका अनुसन्धान करने से ईश्वर के साथ एकत्व होता है। प्रकाश या ज्ञान के साथ एकत्व होने पर ईश्वर के साथ एकत्व हो जाता है। **(कल्याण वेदान्त अंक से)**

इति प्रत्यभिज्ञावाद सम्पूर्ण।

विज्ञान भिक्षु का समन्वयवाद

सांख्य दर्शनानुसार समन्वयवाद को वेदान्तवाद कहा है। इसे द्वैतवाद या भेदाभेदवाद कहते हैं। इन्होंने वेदान्त सूत्र की सांख्य मतानुसार व्याख्या करते हुये सभी शास्त्रों का समन्वय किया है। इन्होंने योगदर्शन पर वार्त्तिक, उपनिषदों तथा गीता पर तथा सांख्य प्रवचन, सांख्यसार नाम ग्रन्थ लिखे हैं। यह संन्यासी थे। इनका जन्म उत्तर भारत में हुआ था। यह विष्णु भक्त थे। इनमें आत्म निवेदन तथा निष्काम कर्म भाव था। अपने गुरु देव की प्रसन्नता के लिये गुरु दक्षिणा के रूप में भाष्य रचे।

सिद्धान्त—इनके मतानुसार आत्मा एक है। उसी को ईश्वर कहते हैं। माया ईश्वर की शक्ति है। उसके कारण वह सर्वेश्वर है। माया शक्ति से ही ईश्वर सगुण तथा सविशेष है। परन्तु ईश्वर शक्ति सहित होने पर निर्गुण है। वह अपने में स्थित प्रकृति पुरुष आदि शक्ति की सहायता से तथा एक-दूसरे के संयोग बल से महदादि की रचना करता है। पुनः समस्त जीव जगत् को अपने में लीन करके एक रूप में स्थित है। उससे भिन्न कुछ नहीं है। जीव सूर्य की किरण के समान ब्रह्म का अंश है। प्रकृति और उसके गुण एवं जीव आदि की सत्ता तथा क्रिया

कलाप ईश्वर के अधीन है। गुणों सहित प्रकृति तथा जीव स्वप्नवत् हैं। उनमें स्वतन्त्र पारमार्थिक सत्ता नहीं है। जीव चैतन्य अंश में ब्रह्म के समान ही है। ईश्वर २५ तत्त्वों का आत्मा है। जीव प्राणादिवत् जड़ अनात्मा है। वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म का आत्म रूप से अनुभव करके जीव अविद्या काम आदि का नाश करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है। विज्ञान भिक्षु जी ने जीवन्मुक्ति स्वीकार की है। वे जीव तथा ब्रह्म में अंशाशीभाव मानते हैं। उनके मत में जीव ईश्वर पिता पुत्रवत् अभिन्न हैं। इन्होंने ब्रह्म को जगत् का अधिष्ठान कारण माना है। प्रकृति ब्रह्म से अभिन्न है। ब्रह्म अभिन्न प्रकृति आदि के साक्षी रूप में रहता है। अतः जगत् का कारण होने पर भी निर्विकार है। इन्होंने ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय माना है। अतः कर्मयुक्त ज्ञान से मुक्ति मानी है। इन्होंने ईश्वर के साथ एक होने को मुक्ति नहीं माना तथा मुक्त पुरुष ईश्वर के समान नहीं हो सकता। इनका कथन है मुक्त पुरुष को ईश्वर के समान भोग मिलता है, शक्ति नहीं। ईश्वर सायुज्य का अर्थ ईश्वर के समान भोग किया। ईश्वर भी मुक्त पुरुष का भोग्य है। इन्होंने शूद्र को ब्रह्मविद्या का अधिकार नहीं दिया।

इति समन्वयवाद सम्पूर्ण।

॥ इति श्री गु. पु. कलियुग खण्डे प्रथम परिच्छेदे एकत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३१

प्रथम परिच्छेदः समाप्तः



अथ कलियुग खण्डे द्वितीयः परिच्छेदः प्रारम्भते

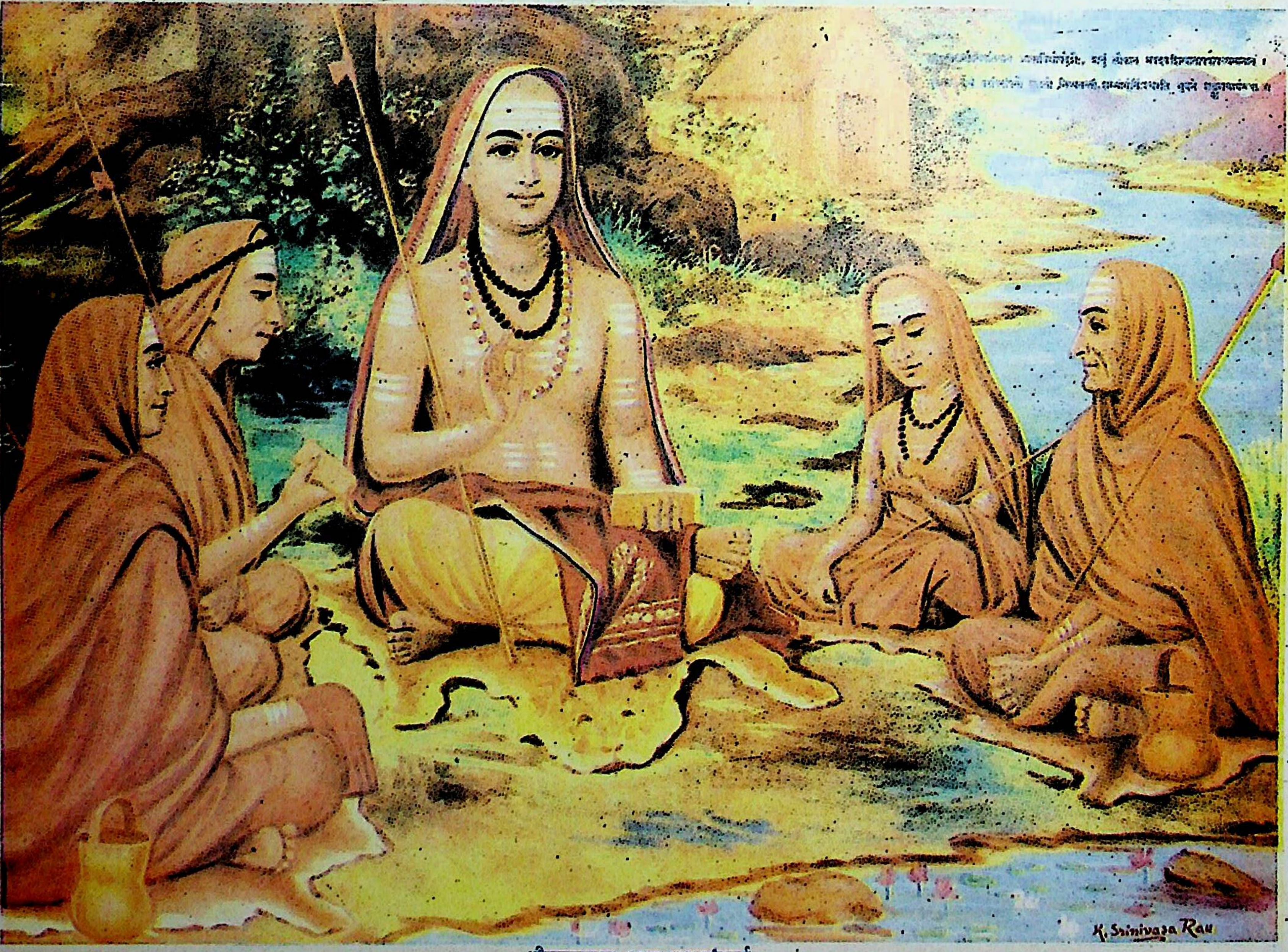
अथ प्रथमो अध्यायः

श्री मद्भगवत्पाद श्री शंकरचरितम् (३९६)

॥ गुर्वष्टकम् ॥

शरीरं सुरूपं तथा वा कलत्रं, यशश्चारु चित्रं धनम्मेरु तुल्यं।
गुरोरंघ्रि पद्मे मनश्चेन्न लग्नं, ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥१।
कलत्रं धनं पुत्र पौत्रादि सर्वं, गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम्।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥२॥
षडंगादि वेदो मुखे शास्त्र विद्या, कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥३॥
विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः, सदाचार वृत्तेषु भक्तो न चान्यः।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥४॥
क्षमा मण्डले भूप भूपाल वृन्दैः, सदासेवितं यस्य पादारविन्दम्।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥५॥
यशो मे गतं दिक्षु दान प्रतापाज् जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात्।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥६॥
न भोगे न योगे नवा बाजि राजौ, न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम्।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥७॥
अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये, न देहे मनो वर्त्तते मेत्वनर्घ्ये।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥८॥
अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यग् समालिंगिता कामिनी यामिनीषु।
गुरो रंघ्रि पद्मे .... ॥९॥
गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही, यति भूपति ब्रह्मचारी च गेही।
लभेद्वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्म संज्ञं, गुरोरुक्त वाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥१०॥

॥ इति शंकराचार्य विरचितं गुर्वष्टकम् ॥



श्रीमज्जगद्गुरवः आद्य शङ्कराचार्याः

१ पद्मपादाचार्याः २ तोटकाचार्याः 3 हस्तामलकाचार्याः 4 सुरेश्वराचार्याः

॥ पुमर्थाग्चन्याः किमुत निगमा ऋग्प्रभृतयः प्रभेदावा मुक्तेर्विमलतर मालोक्य मुखराः। मुखान्याहो धातुश्चिरमिति विमृश्याथ विबुधाः विदुः शिष्यान्हस्तामलक मुखरान्शङ्करगुरोः ॥

अर्थ—यदि किसी का शरीर सुन्दर है, स्त्री सुन्दर है, धन सुमेरु के समान अपार है। परन्तु यदि गुरुओं के चरणों में मन न लगा तो उससे क्या लाभ, सब निरर्थक है। ततः किम् शब्द चार वार प्रयोग किया है यह चार पुरुषार्थों का द्योतक है। गुरु कृपा के बिना चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥१॥

स्त्री, धन, पुत्र, पौत्रादि, घर, भाई बन्धु यह सब अंगों सहित चारों वेद कण्ठ होने पर भी, गद्य-पद्य रचना की सामर्थ्य होने पर, देश-विदेश में ख्याति, सदाचार, अनन्य भक्ति, पृथ्वी मण्डल के राजाओं महाराजाओं द्वारा चरण सेवित होने पर भी, दान के प्रताप से दसों दिशाओं में जिसका प्रताप फैला है, जिसके प्रसाद से सब को सब कुछ प्राप्त है। जिसके तुल्य योग में, भोग में, वाहन में, साज समाज में, स्त्री सुख में, धन में जिस के तुल्य किसी के न होने पर भी, वन में, घर में, कार्य में शरीर में तथा बहुमूल्य पदार्थों में जिसका मन आसक्त न होता हो। जिसने महा मूल्य रत्नों का उपभोग किया हो, रात्रि में कामिनी सुख प्राप्त होने पर भी जिसका मन गुरु के चरणों में नहीं लगा उसके लिये सब व्यर्थ है ॥९॥ जो भाग्यशाली संन्यासी, राजा, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से जिसका मन गुरु चरणों में लगा है तथा गुरु आज्ञा का पालन करता है और गुरु अष्टक का नित्य पाठ करता है, वह मनो वांछित फल प्राप्त करके ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है ॥१०॥

उपर्युक्त अष्टक से सिद्ध होता है कि गुरु सेवा तथा आज्ञा पालन करने वाले शिष्य के अन्तःकरण में ही सम्पूर्ण गुप्त रहस्यों का, गुरु द्वारा उपदिष्ट वाक्यों का बोध होता है। क्योंकि गुरु चरण कमल रूपी नौका के बिना संसार सागर से पार नहीं हो सकता। ऐसे गुरुओं के ज्ञान, वैराग्य, भक्ति प्रधान आदर्श जीवन चरित्रों से ही संसार का कल्याण होता है। कलियुग के लगभग २४०० वर्ष बीत जाने पर जिस समय वैदिक सनातन धर्म की परम्परा लुप्त हो रही थी, तथा नास्तिक, चार्वाक्, चारों बौद्ध, जैन तथा तामसी उपासक भैरव के प्रभाव में बह कर प्रायः सभी मनुष्य वैदिक सनातन धर्म के विरुद्ध हो गये थे। वेद, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र, धर्म शास्त्र, इतिहास तथा पुराणों पर कुठाराघात हो रहा था। सच्चे सनातनियों का जीना कठिन था। तब देवताओं तथा ऋषियों ने मिलकर आशुतोष भगवान् शंकर की आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भूत भावन भगवान् शंकर ने द्रविड बालक के रूप में प्रकट होकर वैदिक सनातन धर्म की रक्षा का वचन दिया तथा भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, सरस्वती, बृहस्पति,

कुमार, गणेश एवं इन्द्र को भी धरा धाम पर अवतरित होने की आज्ञा दी। ऐसे ही यतीन्द्रों मुनीन्द्रों द्वारा पाद सेवित भगवत्पाद भगवान् शंकराचार्य जी का त्रैलोक्य पावन जीवन चरित्र, उपदेश तथा सिद्धान्त संस्कृत के अनेक दिग्विजयों के आधार पर लिखने का दुःसाहस करता हूं।

यह सभी लोग जानते हैं कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में से प्रथम तीन की प्राप्ति प्रारब्ध पर निर्भर है। इनमें भी विशेष करके धर्म और मोक्ष की प्राप्ति पुरुषार्थ पर निर्भर है। मोक्ष की प्राप्ति दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान के बिना नहीं हो सकती। यह दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्म बोध चारों वेदों के महावाक्यों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन के बिना नहीं हो सकता। इनके उपदेश के अधिकारी एक मात्र श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म प्रतिष्ठित गुरुदेव ही हैं। ऐसे गुरुओं की मनसा वाचा कर्मणा सेवा किये बिना लक्ष्यार्थ का बोध नहीं हो सकता। अतः शिष्य को ऐसे गुरुओं की सेवा श्रद्धा भक्तिपूर्वक, प्रमाद रहित होकर करनी चाहिये। वेद के मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक तीन भागों के अध्ययन का अधिकार ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ को है। उपनिषद् में केवल संन्यासी का ही अधिकार है। क्योंकि शास्त्र में कहा है—

त्वं पदार्थ विवेकाय, संन्यासं सर्वकर्मणाम्। श्रुत्या विधीयते तस्मात् तत्त्यागी पतितो भवेत्। शिखा सूत्र परित्यागी वेदान्त श्रवणं बिना। विद्यमानेऽपि संन्यासे पतत्येव न संशयः॥

तत् तथात्वं पदार्थ के विवेक अर्थात् जीवात्मा परमात्मा की एकता का ज्ञान करने के लिये, वेद, कर्मों के त्याग का विधान करता है। विवेक का त्यागी संन्यासी पतित है, वेदान्त के श्रवण, मनन, निदिध्यासन के बिना शिखा सूत्र का त्याग करने वाला संन्यासी, संन्यास के चिह्न काषाय वस्त्र, दण्ड, कमण्डलु के धारण करने पर भी निस्सन्देह पतित ही है। श्रुति ने भी कहा है। **संन्यस्तः श्रवणं कुर्यात्**—संन्यास लेकर वेदान्त का श्रवण, मनन निदिध्यासन करे। क्योंकि संसार के चिन्तन के त्यागे बिना ब्रह्म चिन्तन हो नहीं सकता। इन सब बातों पर विस्तार से विचार पीछे सत्य युग खण्ड में, संन्यास तत्त्व पर विचार शंकरानन्दी तथा मधुसूदनी गीता को लेकर किया जा चुका है। उपनिषदों की जटिल गुत्थियों का समाधान करने के लिये तथा जीव मात्र को मुक्ति मार्ग पर अग्रसर करने के लिये, भगवान् विष्णु ने द्वापर तथा कलियुग की सन्धि में वेद व्यास के रूप में अवतरित होकर उपनिषद् विरोधी शंकाओं का समाधान करने के लिये

'ब्रह्मसूत्र' की रचना की। परन्तु उन जटिल ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या सर्वज्ञ शिव अथवा विष्णु के अतिरिक्त कोई कर नहीं सकता था। अतः यह कार्य करने के लिये भगवान् वेद व्यास जी तथा उनके शिष्य जैमिनि इन दोनों ऋषियों द्वारा रचित पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा दोनों के विरोधी वचनों का निराकरण करने के लिये शंकराचार्य के रूप में स्वयं शंकर जी ने अवतार लेकर शारीरिक भाष्य की रचना की। 'कूर्म पुराण' की ब्राह्मी संहिता के २९वें अध्याय में शंकराचार्य के अवतार की बात आई है।

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।
तदेव साधयेन्नृणां देवतानां च दैवतम्॥
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।
श्रौत-स्मार्त प्रतिष्ठार्थं भक्तानां हित काम्यया॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्म संज्ञितम्।
सर्ववेदान्त सारं हि धर्मान् वेदनिदर्शनान्॥
ये तं प्रीत्या निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥
आनायासेन सुमहत् पुण्यं ते यान्ति मानवाः।
अनेक दोष दुष्टस्य कलेरेष महान् गुणः॥

लोकों के स्वामी भगवान् रुद्र महादेव जो देवताओं के देवता हैं, लोगों का कार्य सिद्ध करने के लिये नील लोहित शंकर, श्रुति स्मृति की प्रतिष्ठा तथा भक्तों के हित की कामना से अवतार लेंगे तथा ब्रह्म संज्ञा को प्राप्त शिष्यों को सर्व वेदान्त सार धर्म तथा वेद के ज्ञान का उपदेश करेंगे। जो कलियुग के दोषों को जीत कर, जिस किसी प्रकार से श्रद्धा से उसका सेवन करते हैं। वे कलियुग के दोषों को जीतकर परमपद को प्राप्त करते हैं। अनेक दोषों से दूषित कलि का यही महान् गुण है कि सरलता से मनुष्य महापुण्यों को प्राप्त करता है।

शंका—भगवद् गीता में तो भगवान् ने "यदा यदा हि धर्मस्य" इत्यादि श्लोक से विष्णु के ही अवतारों का वर्णन किया है शिव का नहीं। शिव तथा विष्णु एक कैसे हो सकते हैं। कलि काल में भगवान् कलि के १५०० वर्ष बीतने पर बुद्धावतार हुआ। तब से लेकर जब तक कल्कि अवतार नहीं होता तब तक द्विजाति लोग नित्य नैमित्तिक शुभ कर्मों के संकल्पों

में कलियुगे प्रथम चरणे "बौद्धावतारे" ही कहते हैं। शंकराचार्य अवतारे कोई नहीं कहता। यद्यपि वैदिक सनातन धर्म का उद्धार करने के लिये शंकराचार्य अवतरित हुये हैं। अतः शंकराचार्य भगवान् शंकर के अवतार सिद्ध नहीं होते।

समाधान—गीता में ही भगवान् ने "रुद्राणां शंकरश्चास्मि" से भगवान् शंकर को अपनी विभूति कहा है। इस वचन से दोनों का अभेद सिद्ध होता है। संकल्प में काल की शुद्धि के कारण बुद्धावतार पढ़ा जाता है। धर्म की शुद्धि के निमित्त नहीं। ऊपर के कूर्म पुराण के अतिरिक्त शिव पुराण में भी कहा है। रुद्र खंड ७ पहला अध्याय—

व्याकुर्वन् व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्।
श्रुतेर्न्यायः स एवार्थः शंकरः सवितानन:॥

व्यास जी के सूत्रों का श्रुति सम्मत तथा श्रुतिन्याय से अर्थ करने के लिये भगवान् शंकर रूपी सूर्य उदित होंगे। दोनों पुराणों से भगवान् शंकर अवतार सिद्ध होते हैं।

शंका—आपकी यह सब बातें कपोल कल्पित अमाननीय हैं। क्योंकि पद्म पुराण के उत्तर खण्ड ४२वें अध्याय में शिव पार्वती सम्बाद में शंकराचार्य के ग्रन्थों को तामस कहा है। इसका पठन पाठन करने वाले निश्चय ही नरकगामी होते हैं।

शृणुदेवि ! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्वं ज्ञानिनामपि।

यहां से आरम्भ करके **माया वादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मुच्यते॥ मय्येव कथितं देवि ! कलौ ब्राह्मण रूपिणे।**

हे देवि ! जिन तामस ग्रन्थों का अध्ययन करने से जीव दुर्गति को प्राप्त करता है। उनको मैं यथाक्रम कहूंगा। जिनके श्रवण करने से ज्ञानियों का भी पतन होता है। मेरे द्वारा कहा हुआ शैव, पाशुपत शास्त्र तथा इसके अतिरिक्त मेरी शक्ति ने जिन ब्राह्मणों में प्रवेश करके ग्रन्थ रचना करवाई है। उनमें कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल जी का सांख्य, जैमिनि द्वारा रचित वेद का अनर्थ करने वाला पूर्व मीमांसा दर्शन निरीश्वरवादी तथा नास्तिकों द्वारा रचित महान् शास्त्र जिनमें चार्वाक्, चारों प्रकार के बौद्ध दर्शन तथा जैन दर्शन अति निन्दनीय ग्रन्थ हैं।

हे देवि ! दैत्यों के नाश के निमित्त, बुद्ध रूपधारी विष्णु के द्वारा कहा हुआ नग्न नील पटादिक असत् शास्त्र हैं। हे देवि ! मैंने ही कलिकाल में ब्राह्मण रूप से कहे हुये महावाद से युक्त असत् शास्त्रों की रचना की है। अतः शंकराचार्य रूप से मैं प्रच्छन्न बौद्ध हूं। मैंने लोक द्वारा निन्दनीय श्रुतियों का मनमाना अर्थ करते हुये कर्म का स्वरूप से त्याग करने की आज्ञा दी है। कलियुग में सम्पूर्ण जगत् का नाश करने के लिये जीव ब्रह्म स्वरूप ही है। यह निर्गुण मत मैंने दर्शाया है। हे देवि ! मैंने जगत् का नाश करने के लिये वेद के अर्थ के समान इस वेदान्त का भी अवैदिक मायावाद का प्रचार किया है। कलियुग को बढ़ाने के लिये अवैदिक मायावाद का कथन मैंने जगत् के नाश के लिये किया है। उपरोक्त श्लोकों द्वारा अद्वैत वेदान्त दर्शन को असत् तथा तामस शास्त्र कहा गया है। अद्वैत वेदान्त का पठन पाठन करने वाले ज्ञानी पतित हो जाते हैं। इन बातों को भगवान् शंकर ने पार्वती के प्रति मुक्त कण्ठ से कहा है। अद्वैत वेदान्त से तत्त्वबोध नहीं होता। अवैदिक होने के कारण इन ग्रन्थों को त्याग देना चाहिये, यह सिद्ध हुआ।

समाधान—ऊपर कहे हुये पद्म पुराण के श्लोक व्यास रचित नहीं हैं। किन्तु किसी अद्वैत वेदान्त के महाद्वेषी द्वैतवादी द्वारा प्रक्षिप्त किये गये हैं अर्थात् वाद में मिलाये गये हैं। शंकर जी ने पार्वती जी के प्रति नहीं कहा है। —शंकराचार्य चरितम् से

इसी शंका का समाधान 'विमर्श' नाम के ग्रन्थ में जगद् गुरु ब्रह्मी भूत द्वारका पीठाधीश्वर स्वामी राज राजेश्वर शंकराश्रम जी महाराज लिखते हैं—

भगवान् शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित अद्वैत वेदान्त का मायावाद अत्यन्त प्राचीनतम विष्णु, ब्रह्मा, कपिल, इन्द्र, मनु, वशिष्ट, व्यास आदि महर्षियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है। उनके वचन में लेश मात्र भी मोह मात्सर्य नहीं है। शेषावतार पतंजलि ने ही उनके गुरुदेव गोविन्द भगवत् पादाचार्य के रूप में अवतरित होकर अपने शिष्य शंकराचार्य को इस सिद्धान्त का प्रचार प्रसार करने की आज्ञा दी थी। जो द्वैतवादी मायावाद शास्त्र को असत शास्त्र तथा प्रच्छन्न बौद्ध कहते हैं। जो तुम मायावाद को दोष देते हो इस माया को तुम मानते हो कि नहीं। यह वेद सम्मत है कि असम्मत है। यदि असम्मत कहते हो तो ठीक नहीं। वेद कहता है—

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्ति स्वरूपाम्। मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।

गीतायामपि—दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। देवात्म शक्ति स्वगुणै र्निगूढाम्। परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते।

प्रकृति रूपी एक अजा लाल, सफेद, काली प्रजा की सृष्टि करती है। माया को प्रकृति समझना चाहिये। उसके स्वामी महेश्वर हैं। इन्द्र का अर्थ है विष्णु। वह अपनी माया से अनेक रूप धारण करते हैं। तीन गुणों से युक्त मेरी दैवी माया जिसको पार करना कठिन है। मेरा आश्रय लेने वाले माया को तर जाते हैं। परमात्मा की माया शक्ति तीन गुणों से ढकी हुई अनेक प्रकार की सुनी जाती है। ऊपर के श्रुति स्मृति के प्रमाणों से माया की सिद्धि होती है। जो तुम लोग मायावाद का खण्डन करते हो, माया पति से उसका भेद है या अभेद है। यदि भेद मानते हो तो भेद का कारण कौन है ? यदि अभेद मानते हो तो माया पति से उसकी पृथकता कहां रहीं। परमात्मा की माया शक्ति परमेश्वर के एकदेश में है या सर्वदेश में है। यदि एक देश में है तो दूसरे देश में उसकी स्फूर्ति नहीं होनी चाहिये। तब व्याप्य व्यापक में भेद नहीं रहता। मायापति में माया शक्ति किसी काल विशेष में रहती है या सर्वकाल में। माया का उपचय या अपचय होता है या नहीं इत्यादि। रामानुजीय, निम्बार्कीय, बल्लभाचार्य, मध्वाचार्य चारों प्रकार के वैष्णव माया को स्वीकार करते हैं या नहीं ? लक्ष्मी पति विष्णु राधापति कृष्ण आदि के उपासक हैं। वैष्णव तिलकों में श्री का चिन्ह धारण करते हैं। इन तर्कों से यह सब मायावादी सिद्ध हुये। यदि मायावादी अद्वैत वेदान्ती छिपे बौद्ध हैं तो यह लोग भी प्रच्छन्न बौद्ध हैं।

शंकर से पूर्व का भारत

भगवान् शंकर के धरातल पर अवतरित होने से पूर्व परम्परा प्राप्त वर्णाश्रम धर्म लुप्त हो चुका था। उस काल के ब्राह्मण तेजहीन, अल्पायु तथा अल्प पराक्रमी थे। तब सनातन धर्म की रक्षा के लिये भगवान धरातल पर अवतरित हुये। कैलाश पर्वत पर जाकर ऋषियों तथा देवताओं ने शंकर जी से अवतरित होने की प्रार्थना की। उन्होंने धरती पर अवतार लेने का वचन दिया। चूर्णा (पूर्णा) नदी के तट पर छच्छल नामक अग्रहार में 'कालटी' नाम का समृद्धि सम्पन्न ग्राम है। वहां पर सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में निपुण विद्वान् रहा करते थे। **जन्तोर्यदाश्रितान् कालः टीकते भय विह्वलः। इति हेतोर्वदन्त्येवं कालटीति विचक्षणः।** अपने आश्रित रहने वाले काल से भयभीत जन्तुओं की रक्षा करने हेतु विद्वानों ने इसे 'कालटी' कहा है। इसी ग्राम में वेद वेत्ता श्री विद्याधिराज नाम के ब्राह्मण रहते थे। इनके एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह ज्ञान में शिव के समान तथा शब्दार्थ में देवगुरु बृहस्पति के समान था।

अतः उनका नाम शिवगुरु रखा। उपनयन के अनन्तर वह ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करने के लिये गुरु कुल में गये। गुरु सेवा करते हुये त्रिकाल संध्या, द्विकाल अग्नि होत्र करते थे। वेदों का अध्ययन पूर्ण हो जाने के अनन्तर शिष्य अनुरागी गुरु ने कहा, हे वत्स ! तुम अंगों सहित वेदों का अध्ययन अर्थ रहस्य सहित जान चुके हो। अब तुम समावर्तन संस्कार करके विवाह करो। शिष्य ने कहा—गुरु जी ! मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये आपकी सेवा करूंगा। गुरु जी के अनेक प्रकार समझाने पर भी वे नहीं माने। तब उनके पिता विद्याधिराज शिवगुरु को अपने घर ले आये। उनके विवाह के लिये अनेकों ब्राह्मण अपनी कन्याओं के विवाह का प्रस्ताव लेकर आये। परन्तु विद्याधिराज ने मना कर दिया। बहुत धन का लोभ देने लगे। तब विशिष्ट गोत्रिय मख नाम के पण्डित ने विशेष आग्रह किया। "मेल पाल्लूर" नामक स्थान के रहने वाले थे। जो 'एर्नाकुलम्' नगर से पच्चीस मील की दूरी पर है। विद्याधिराज जी ने उसके पिता की परीक्षा के बाद स्वीकृति दे दी। विवाह के साठ वर्ष बीतने पर भी सन्तान नहीं हुई, तब अति सन्तप्त होकर शिव गुरु जी ने पत्नी से कहा। सब भक्तों की कामना पूर्ण करने वाले कल्प वृक्ष के समान उमापति हैं। वे शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी आराधना करनी चाहिये। उनकी आराधना से ही उपमन्यु की दरिद्रता दूर हुई थी। पत्नी ने पति का वचन सुनकर पति के साथ वृषाचलेश्वर में शंकर की आराधना करने लगे। तब शिवगुरु जी को स्वप्न में भगवान् ने दर्शन दिया और कहा, हे विप्रवर ! किस कामना से तप करते हो। शिवगुरु ने पुत्र की प्राप्ति के लिए कहा। हे वत्स ! दो में से कोई एक वर मुझ से मांग लो। एक वर से मूर्ख चिरायु बहुत पुत्र होंगे। दूसरे वर से सर्वज्ञ अल्पायु एक पुत्र होगा। वे सोचने लगे। बहुत पुत्रों से मेरे बहुत सी पुत्र वधुओं से मेरा घर भर जाएगा। तब मैं पितृ ऋण से उऋण हो जाऊँगा किन्तु यह सब सन्तान दुःखदायी होगी। अल्पायु एक सर्वज्ञ पुत्र के वर से मेरा वंश नहीं चलेगा। रात्रि के अन्धकार को बहुत से तारागण दूर नहीं कर पाते। एक मात्र चन्द्र ही समर्थ है। अतः मैं एक पुत्र का ही वर मांगू। ऐसा निश्चय करके एक पुत्र का वर मांगा। शिव जी ने कहा कि मैं ही तुम्हारा पुत्र हूंगा। ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

वर प्राप्ति के अनन्तर शिवगुरु के मन बुद्धि में शैव तेज स्थित हुआ। कालान्तर में वही तेज आर्याम्बा को प्राप्त हुआ। तब गर्भ स्तुति करने के लिये देवता ऋषि आये, एक दिन माता ने स्वप्न में वट वृक्ष के नीचे शुद्ध स्फटिक मणि के समान सुन्दर त्रिनेत्र चन्द्रशेखर का दर्शन किया। जो युवावस्था से युक्त सुन्दरता में काम को भी मात करने वाले. ज्ञान मुद्रा से युक्त

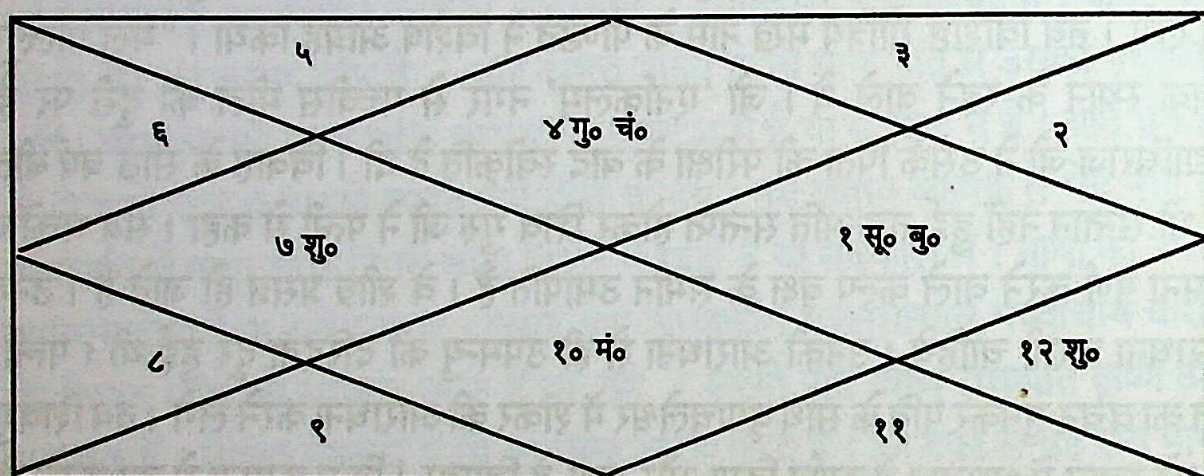
शिष्यों से घिरे हुये मोतियों तथा अक्षमाला से युक्त देखा। जगने के बाद माता ने उसी रूप का ध्यान करते हुये प्रणाम किया और तन्मय हो गयी।

॥ इति श्री गु. वं. पु. कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्री शंकराचार्य जी का प्राकट्य

(बृहच्छंकर दिग्विजय गोविन्दनाथीय से)



माता आर्याम्बा शंकर जी के ध्यान में रहा करती थीं। जैसे पूर्ण चन्द्र को देख कर सागर उछलता है। वैसे ही भावी पुत्र के ध्यान में माता का हृदय उछलने लगता था। भगवान् के प्रकट होने का समय आया। दसों दिशायें प्रकाशित हो रही थीं। ब्राह्मणों की अग्नियां अपने आप जल उठीं। अप्सराएं नृत्य करने लगीं। भगवान् के प्रकट होने के समय देवता पुष्प वर्षा करने लगे, गाना गा रहे थे। दशम मास पूर्ण होने पर —

षडविंशे शतके श्रीमद्यौधिष्ठिर शकस्य वै।
एकत्रिंशेऽथ वर्षे तु हायने नन्दने शुभे॥१०॥
मेष राशिं गते सूर्ये, वैशाखे मासि शोभने।
शुक्ल पक्षे च पंचम्यां तिथ्यां भास्कर वासरे॥११॥
पुनर्वसु गते चन्द्रे लग्ने कर्कटकाह्वये।
मध्याह्ने चाभिजिन्नाम मुहूर्ते शुभ वीक्षिते॥१२॥

स्वोच्चस्थे केन्द्र संस्थे च गुरौ मन्दे, कुजे रवौ।
निजतुंग गते शुक्रे रविना संगते बुधे ॥१३॥
प्रासूत तनयं साध्वी गिरिजेव षडाननम्।
उदयाचलवेलेव भानुमन्तं महौजसम् ॥१४॥

श्री मद् युधिष्ठिर सम्वत् २६३१ नन्दन नाम सम्वत्सर में जब सूर्य मेष राशि में स्थित थे, मांगलिक वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि रविवार में पुनर्वसुनक्षत्र में चन्द्रमा तथा कर्क लग्न, मध्यान्ह काल अभिजित् नामक मुहूर्त में शुभ ग्रहों से दृष्ट, उच्च स्थान में केन्द्र में गुरु शनि मंगल रवि तथा शुक्र थे। सूर्य और बुध एक स्थान पर थे। ऐसे शुभ समय पर साध्वी आर्याम्बा ने, पार्वती ने जैसे स्वामी कार्तिक को जन्म दिया था, उसी प्रकार पूर्व दिशा में उदित तेजस्वी सूर्य के समान पुत्र को जन्म दिया। वे अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। जन्मते ही विशाल नेत्र, चौड़ी छाती, आजानु बाहु, कमल सदृश नेत्र, इनके चरणों में शंख, चक्र, ध्वजा तथा कमल के चिन्ह थे। सामुद्रिक शास्त्र में कहे बत्तीस लक्षणों से युक्त, बिजली के समान आभा वाला शरीर देखने मात्र से ही परमानन्द देने वाले, पुत्र को देखकर जैसे देवकी श्री कृष्ण को, चकोरी चन्द्रमा को देखकर तृप्त होती है वैसे ही माता आर्याम्बा अत्यन्त विस्मित हुई। बालक दोनों पैरों को पटकते हुये मधुर स्वर में रुदन करने लगा। इनका जन्म होते ही सिंह तथा हाथी, सांप चूहा आदि नैसर्गिक विरोधी जीव परस्पर वैरभाव त्याग कर सद्भाव से रहने लगे। पुष्प रहित पौधों में पुष्प आ गये। नदियां निर्मल जल वाहिनी हुईं। भय के मारे द्वैत वादियों के हाथों से पुस्तकें गिर गयीं। अद्वैत वादी सनकादि, वशिष्ट, व्यास, शुकदेव, गौडपादाचार्य तथा गोविन्द भगवत्पादाचार्य के चित्त प्रसन्न हो गये। पिता पुत्र का जन्म सुनकर जैसे दरिद्री कुबेर का धन पाये वैसे ही प्रसन्न हो गये। शिवगुरु ने स्नान करके ब्राह्मणों से जातकर्म आदि संस्कार करवाये। उस समय स्वर्ग में तथा कालटी में महान् उत्सव मनाया गया। पिता ने ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में वस्त्राभूषणों का दान किया। दान प्राप्त कर ब्राह्मण प्रशंसा करते हुये चले गये। शिवगुरु शंकर जी से अल्पायु पुत्र को जानते हुये भी गम्भीर रहे। स्त्रियां बालक को गोद में लेकर आनन्दित होती थीं। बारहवें दिन पिता ने बालक को गोद में बिठाकर शंकर के आशीर्वाद से होने के कारण शंकर नाम रखा। इन्होंने जन्म लेते ही संसार के दुःखों का शमन कर दिया था इसलिये भी वे शंकर नाम से प्रसिद्ध हुये। जन्म

से ही इनके मस्तक पर चन्द्रमा का निशान, मध्य में तीसरे नेत्र का सा आकार, मस्तक में त्रिशूल का चिह्न था। दोनों कन्धों और वक्ष स्थल पर भी त्रिशूल का चिह्न था। शंकर शब्द में "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार गणना करने पर नाम के अक्षरों से मास पक्ष तथा तिथि आदि ज्ञान हो जाता है जैसे शंकर में र अक्षर, द्वितीय वैशाख मास, क अक्षर प्रथम शुक्ल पक्ष शं अक्षर य से पांचवां होने से पंचमी तिथि को प्रकट करता है। इस प्रकार कामकोटि के पीठाधीश्वर चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी महाराज ने 'श्री शंकर विजय उपन्यास' नामक ग्रन्थ में लिखा है। आचार्य पाद अपने पिता का हाथ पकड़ कर चलने लगे। एवं तोतली बोली में तात अम्बा कहने लगे। अपने समवयस्कों के साथ माता-पिता के मना करने पर भी बार-बार भाग जाते थे। एक वर्ष में इन्होंने मलयालम भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। दूसरे वर्ष में अक्षर मिलाकर ग्रन्थों के अक्षर बाचने लगे। काव्य पुराण इतिहास की कथा पढ़ने लगे। एक बार किसी शब्द को सुनकर भूलते नहीं थे। बिना गुरु के ही पढ़कर साथियों को पढ़ाने लगे। दूसरा वर्ष लगने पर चूड़ा कर्म (मुण्डन) हुआ।

काल निर्णय

भगवान् शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य के काल के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मत भेद पाया जाता है। परन्तु अनेकों अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आज सन् १९९९ से २४७० वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ था। इस विषय में बाद में लिखेंगे। पहले पूर्वी पश्चिमी विद्वानों की मान्यता को लिख रहे हैं। भगवान् भाष्यकार के सम्बन्ध में "इन्डियन आण्टिक्वैरी" नामक पुस्तक के २५२, ५३ पृष्ठ में "दक्षिणी भारतीय इतिहास" नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत, वैष्णव उत्पत्ति नामक प्रकरण में विचार किया गया है। इसमें लिखा है कि श्री शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य का जन्म बारहवीं शताब्दी में हुआ था। परन्तु यह विचार "माधवीय", "आनन्द गिरीय", "बृहच्छंकर" विजय के विपरीत है। क्योंकि भामती टीकाकार वाचस्पति मिश्रकृत 'तात्पर्यविशुद्धि' नामक ग्रन्थ से तथा अन्य किसी अद्वैतवादी पुस्तक से मेल नहीं खाता। कुछ विद्वान् श्री शंकर तथा रामानुज को एक काल में मानते हैं। किन्तु यह भी अत्यन्त विपरीत है। २. कुछ विद्वान् कलि संवत ३९०१ ईसवी सन् ८०३ में मानते हैं। यह "गुरु स्तोत्र" के कर्त्ता शंकराचार्य के 'समय' नामक ग्रन्थ में मिलता है। ३. कुछ लोगों ने कलि सं. ३९०१ में आर्द्रानक्षत्र कालटी के समीप टेली नामक ग्राम में रमान "पेरुमल्ल" के महायुद्ध के समय

हुआ। इसका स्पष्टीकरण, 'केरलोत्पत्ति' नामक मलयालम ग्रन्थ में किया है। इसमें लिखा है चेरूमान, चेरूमल्ल के राजा कुन्दी कृष्णराज केरल के सिंहासन पर बैठने पर हिन्दूमत छोड़कर मुसलमान हो गया। उसने मक्का की यात्रा की। उसका राज्य ट्रावन्कोर कोचीन से मक्का तक था। मक्का से लौट आने पर वह गद्दी पर बैठा। उसने समुद्र तट पर एक नगर वसाया ई. सन् ८२५ में इसी समय के बीच शंकराचार्य का जन्म हुआ। ४. तमिल के एक ग्रन्थ से प्रमाण मिलता है कि वे सन् ७८८ में जन्म लेकर ८२० में ब्रह्मीभूत हुये। ५. श्री काशीनाथ महाशय ने जो तैलंग के विद्वान् थे लिखा है कि सातवीं शती के अन्त तथा आठवीं शती के प्रारम्भ में जन्म हुआ। ६. किन्तु यह मत भी कृष्ण राज के मत से विरुद्ध है। इन्होंने ईसा ४२७ में इनका जन्म स्वीकार किया है। ७. "गोविन्द भट्ट" के लिखे तीन पत्रों में लिखा है कि

दुष्टाचार विनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले।
स एव शंकराचार्यः साक्षात् कैवल्य नामकः॥
निधि नागेश बह्न्यव्दे विभवे शंकरोदयः॥
अष्ट वर्षे चतुर्वेदान् द्वादशे सर्वशास्त्र कृत्॥
षोडशे कृतवान्भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।

कैवल्य मुक्ति देने वाले साक्षात् भगवान् शंकर दुष्टों का विनाश करने के लिये शंकराचार्य के रूप में कलि सं. ३८८९ विभव नाम के सम्वत्सर में उत्पन्न हुये। उन्होंने ८ वर्ष में चारों वेदों का ज्ञान, १२. वर्ष में शास्त्रों का अध्ययन, सोलहवें वर्ष में भाष्य करके दिग्विजय की, ३२वें वर्ष में ब्रह्मीभूत हुये। कलि सं. ३९२१ में दत्तात्रेय की गुफा में वैशाख पूर्णिमा के दिन शिव भाव की प्राप्ति की। ८. वेणुग्राम में "हरे लेकर" उपनाम गोविन्द भट्ट के देव नागरी में लिखे हुये तीन पत्रों में कलि सं. ३८८९ विभव नाम सम्बत् में जन्म होना लिखा है। इनके मत से आज से १३०६ वर्ष पूर्व जन्म हुआ। अर्थात् ईसवी सन् ७८८ में जन्म हुआ। यह निर्णय सन् १८८२ जून के माह में प्रकाशित 'इन्डियन आण्टिक्वैरी' भारतवर्ष के इतिहास के ११वें भाग में "प्रो. विष्णु महादेव फाटक" महोदय ने लिखा है। ९. पं. सदानन्द जी महाराज ने शंकर का जन्म कलि ३८८९ या ९०. ई. सन् ७८८ विभव वैशाख शुक्ल दशमी[१] में हुआ

टिप्पणी—यहां पं. सदानन्द स्वामी से भिन्न हैं। सदानन्द स्वामी जी ने शंकर दिग्गिवजय लिखा है।

माना है। यही मत चार विद्वानों का है। किसी ने दूसरी, किसी ने पांचवीं, किसी ने चौदहवीं शताब्दी में जन्म माना है। यह "दविस्तान" नामक ग्रन्थ कर्त्ता का मत है। इसका स्पष्टीकरण भारत धर्म नामक ग्रन्थ में पंडित वार्थ ने किया है।

१०. भगवान् भाष्यकार ने ब्रह्मसूत्र के दूसरे अध्याय के प्रथम पाद के १८वें सूत्र के भाष्य में लिखा है। "स्रुघ्न" देश में रहने वाले देवदत्त जिस दिन स्रुघ्न देश में थे उसी दिन पाटलिपुत्र नहीं पहुंच सकते। एक व्यक्ति एक ही काल में दो स्थानों पर नहीं रह सकता। किन्तु देवदत्त यज्ञदत्त के समान स्रुघ्न तथा पाटलिपुत्र के निवासी एक ही काल में विभिन्न देशों में हो सकते हैं" तथा ब्रह्मसूत्र के ४।२।५ में भी कहा है **"जो व्यक्ति स्रुघ्न से मथुरा जाकर मथुरा से पाटलिपुत्र जाता है। वह स्रुघ्न से पाटलिपुत्र जाने में भी समर्थ हो सकता है।"** भाष्य के इन दोनों प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उनके काल में स्रुघ्न नगर विद्यमान था। ई. सन् ७५६ में नदी की बाढ़ में बह गया ऐसा इतिहासकारों ने निश्चित किया है। श्री शंकर के समय पाटलिपुत्र (पटना) तथा स्रुघ्न नामक दो नगर थे। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शंकराचार्य का जन्म सन् ७५६ से पहले का है। इस प्रमाण से सन् ७८८ ई. में शंकराचार्य का जन्म कहने वाले परास्त हुये। ११. "श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति मिश्र बी.ए." अपने द्वारा लिखे ऐतिहासिक ग्रन्थ में लिखते हैं कि सन् ७०० से ७५० के बीच में कुमारिल भट्ट से पहले श्री शंकराचार्य जी थे।

१२. तथा कुमारिल भट्ट और भगवत् पाद शंकर का समागम, सम्पूर्ण चरित्र तथा समय एक ही है। कुमारिल का समय सन् ६५० से ७०० के बीच में है। "साम विधान ब्राह्मण" के उपोद्घात में डॉ. बर्नल ने यह कहा है। १३. नेपाल के सूर्य वंशीय राजा वृष देव के राज गद्दी पर बैठने के पन्द्रह वर्ष पश्चात् कालटी में श्री शंकराचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ तथा उन्होंने २० वर्ष की आयु में यु. सं. २६५१ में नेपाल की यात्रा की। शंकराचार्य जी के आगमन से पूर्व महाराज वृषदेव जैन तथा बौद्ध धर्म से प्रभावित हुये। इन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। भगवान् पशुपति नाथ के मन्दिर को भी बौद्ध विहार के रूप में परिणत कर दिया था। परन्तु शंकराचार्य जी से प्रभावित होकर वे शैव धर्म में ही दीक्षित हुये। महाराज ने अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया। उनके कोई सन्तान नहीं थी। भगवत्पाद के आशीर्वाद से उन्हें पुत्र रत्न

की प्राप्ति हुई। श्री शंकराचार्य जी के आशीर्वाद से पुत्र होने के कारण उस बालक का नाम "शंकरदेव" रखा। आचार्य पाद ने एक वर्ष के काल में भगवान् दत्तात्रेय, भगवान् परशुराम तथा माता पार्वती का प्रत्यक्ष दर्शन किया। एक दिन वे प्यास से बड़े व्याकुल थे। खोजने पर भी कहीं जल नहीं मिला। तब जगज्जननी पार्वती प्रकट हुईं, इन्होंने मट्ठा पिलाया। इसके पान करने से इन्हें अश्रुत ग्रन्थों का बोध हुआ। आचार्य ने नेपाल यात्रा से पूर्व भारत में ही ज्योतिर्मठ में "दण्डैश्वर्य विधानम्" नामक ग्रन्थ आरम्भ किया था। जिसकी पूर्ति नेपाल में हुई। इसकी पुष्टि नेपाल राजवंश के इतिहास से तथा इस ग्रन्थ के खोज कर्त्ता परम पूज्य पाद "श्री विद्यारण्य स्वामी जी" महाराज जो अपने को मूर्खानन्द नाम से कहते थे, होती है। नेपाल नरेश के राज्य काल में अथवा उनकी मृत्यु के अनन्तर कुछ ही मासों के बीच आचार्य ने नेपाल यात्रा की थी। आचार्य के नेपाल प्रवास में ही उनके पुत्र का जन्म हुआ था। इसलिये राजा ने उसका नाम शंकर देव रखा। वृष देव का समय सन् ६३० ई. से लेकर ६५५ के भीतर था। इस प्रमाण से ७०० सन् में आचार्य का जन्म मानने वालों का मत भी ठीक नहीं है। यह तैलंग महा पण्डित ने काल निश्चित किया है।

१४. ब्रह्मसूत्र के २।१।१८ के भाष्य में तथा छान्दोग्योपनिषद् ३।१९।१ में पूर्णवर्मा तथा राज वर्मा राजा के नाम आये हैं। इससे पूर्ण वर्मा तथा राज वर्मा दो राजा इनसे पूर्व सिद्ध होते हैं। पूर्णवर्मा नाम से अनेकों राजा हुये। वनवासी कदम्बों में बैंगि, पुरु पल्लवों, महोवचन्देलो, मगध, मौखरियों तथा काश्मीर में उत्पन्न वंशों के राजाओं में पूर्णवर्मा दो हुये। इनमें जावा ताम्र पट्ट में एक पूर्णवर्मा का नाम आया है। चीन के यात्री हुएनस्यांग जो ६०० से ६३५ ई. तक रहे। उस समय पूर्ण वर्मा पश्चिम मगध देश में शासन करते थे। यह अशोक वंश के अन्तिम राजा थे। इस यात्री ने मगध में ६३७—६३८ तक यात्रा की। इस यात्री ने राजा का दर्शन किया था।

सूत्र भाष्य में लिखित दूसरे "पूर्णवर्मा" पूर्वोत्तर देश के थे। आचार्य के लेखन काल में यह वाराणसी में वास करते थे। कुछ दिग्विजयों में बद्रिकाश्रम में भाष्यों की रचना कही है। इस राजा के राजगद्दी पर बैठने के पहले ही छान्दोग्योपनिषद् तथा सूत्र भाष्य आचार्य लिख चुके थे। इस राजा का समय सन् ६०५ था।

१५. पं. वेवर तथा बुलर नें छठी शताब्दी में हुये दण्डी कवि, त्र्यम्बक सूनु, तैलंग काशीनाथ शर्मा आदिकों ने इनका काल ७वीं शताब्दी का प्रथम भाग माना है।

१६. सन् ५५७ ई. से लेकर ५८३ तक एक चीनी यात्री 'ह्वील' ने एक राजा का उल्लेख किया है। उसी के राज्य काल में सन् ५७० में ईश्वर कृष्ण विरचित सांख्य कारिकाओं पर गौडपादाचार्य द्वारा रचित भाष्य का चीनी भाषा में अनुवाद किया है। जो आजकल प्राप्त होता है। शंकराचार्य के गुरु तथा परम गुरु श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य तथा गौडपादाचार्य जी का काल इससे पहले का सिद्ध होता है।

१७. भास्कराचार्य जी ने अपने दिग्विजय में तथा सौभाग्य चन्द्रोदय दीक्षा मीमांसा "दीक्षा पद्धति" आदि ग्रन्थों में कलियुग सं. ६०१ में शंकराचार्य का अवतार कहा है—

वर्षेष्वतीतेषु शतेषु षट्सु तिष्येऽवतीर्णं भुवि शंकरार्यम्।
शिष्यै चतुर्भिः सहितं शिवादि, पारंपरीकावधिमानमामः॥

भगवान् शंकरार्य पृथ्वी पर कलि के ६०० वर्ष बीतने के बाद, चार शिष्यों सहित अवतीर्ण हुये उन्हें मैं नमस्कार करता हूं।

१८. कलि सं. २५४८ ई. सन् ५५३ में शंकराचार्य जी ने नेपाल की यात्रा की। सूर्य वंशीय अठारहवें राजा रुद्र वर्मा के पुत्र ने बिहार में बुद्ध की मूर्ति स्थापित की। उस समय उनका अवतार हुआ। यह मत "पं. लाला इन्द्रजीत" ने अपने रचित "नेपाल देश के इतिहास" में "इण्डियन एण्टीक्वैरी" की पन्द्रहवीं पुस्तक के ४१वें पृष्ठ में लिखा है, तथा विदेशी पं. मैक्समूलर (मोक्षमूलर भट्टाचार्य) ने कहा है।

१९. आचार्य का अवतार शालिवाहन शाके ४२१ में प्रमाथी वर्ष माघ शुक्ला चतुर्दशी को शिवगुरु तथा गिरजा माता के गर्भ से केरल देश में विद्या शंकर भारती के नाम से हुआ तथा शक सं. ४९१ विरोधी वर्ष में कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को सायंकाल के समय कीकट नाम के देश में निर्मल नामक स्थान पर सिद्धि को प्राप्त हुये। इनको दूसरा शंकर कहते हैं। ऐसा 'जिनविजय' ग्रन्थकर्त्ता का मत है। यह १५ वर्ष की आयु में शृंगेरी पहुंचे। वहां पर ९ वर्ष तक विद्याभ्यास किया। "विद्यानृसिंह भारती' के मठ में दीक्षित होकर उनके द्वारा "विद्या शंकर भारती के नाम से आचार्य पद पर अभिषिक्त हुये।

२०. श्री शंकराचार्य दो हजार वर्ष से पूर्व हुये—कदली ब्राह्मणों के मत से।

२१. ई. सन् प्रथम शतक में हुये—कुछ विद्वानों के अनुसार।

२२. चक्रवर्त्ती विक्रमादित्य राजा के सं. १७८वें वर्ष में हुये।

२३. शंकराचार्य का अवतार १६०० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से १६८२ वर्ष पूर्व हुआ। शृंगेरी पर्वत के विद्वानों के मतानुसार।

२४. इनका अवतार आज से १२८२ वर्ष पूर्व हुआ। यह सम्प्रदायविदों का मत है।

इस प्रकार भगवत्पाद् के काल के विषय में और भी अनेकों मतभेद पाये जाते हैं। विस्तारभय से नहीं लिखा। २४ से ३९ वर्ष में इन्होंने दिग्विजय यात्रा की। फिर लौट कर मठ में आये। पश्चात् सूर्य ग्रहण स्नान के लिये निकले। निर्मल नामक स्थान पर शालि. सं. ४९१ में कार्तिक शुक्ल पक्ष त्रयोदशी शुक्रवार सायंकाल के समय विद्या शंकर भारती ने समाधि ली। इन्हें द्वितीय शंकर कहा जाता है। कुछ विद्वानों के मत में प्रथम शंकर कैलाश पर्वत पर स्थित शिव रूप में है। दूसरे शंकर आदि शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुये। शिव शंकर के समान ही इनका कार्य कलाप होने से द्वितीय शंकर कहा। परन्तु इन विद्वानों का मत आदि शंकराचार्य के मत से अत्यन्त विपरीत सिद्ध होता है। उसी के सम्बन्ध में आगे लिख रहे हैं।

(श्री वैंकटाचल सूरि ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य रत्नावली, न्याय निर्णय से)

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

कुम्भकोणम्

(मठ की परम्परा से)

इस मठ की परम्परानुसार भगवान् शंकर ने पांच बार अवतार धारण किया। गुरु परम्परा कांची मठ के अनुसार—

१. प्रथम वार शंकर जी ईसा से ५०९-८ या ४८२ या ४७६ वर्ष पूर्व कालटी में अवतरित हुये। यह आद्य भाष्यकार शंकर या कालटी शंकर कहलाये। इन्होंने प्रस्थानत्रयी, विष्णु सहस्र नाम आदि पर भाष्य किया।

२. इनका नाम कृपा शंकर था। यह ईसवी सन् २६ से ६९ तक रहे। यह काम कोटि के ७वें या ९वें मठाधीश हुये। इन्हें षणमत स्थापनाचार्य के नाम से कहा गया। इन्होंने गाणपत्य, सुब्रह्मण्य, शाक्त, शैव, वैष्णव तथा सौर छःवैदिक उपासनाओं का प्रचार किया। इन्होंने विश्व रूप को शृंगेरी में स्थापित किया। यह ४३ वर्ष तक रहे।

३. उज्ज्वल शंकर—इनका समय ई. ३२९ से ३६७ तक ३८ वर्ष रहे। यह काम कोटि के १६वें शंकराचार्य थे। केरल के राजा कुलशेखर इनके शिष्य थे।

४. मूक शंकर या मूकेशेन्द्र शंकर के नाम से विख्यात हुये। यह कामकोटि के १८वें या २०वें आचार्य हुये। यह ई. सन् ३९८ से ४३७ या ४३९ वर्ष तक रहे।

५. अभिनव विद्या शंकर तीर्थ, या धीर शंकर या चिदम्बर शंकर के नामों से विख्यात हुये। इनके सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है। इनका जन्म सन् ७८८ में हुआ था। कुछ लोगों ने इन्हीं को भ्रान्ति से आद्य शंकर मान लिया। आनन्द गिरि विजय में इनका जीवन वृत्तान्त मिलता है। यह भगवान् शंकर से पांच चन्द्र मौलीश्वर लिंग लाये थे। इनके सम्बन्ध में शिव रहस्य के १६वें अध्याय में ६० श्लोक मिलते हैं। "गुरुरत्न माला" की सुषमा टीका, "पुण्य श्लोक मंजरी" तथा "परमिला" आदि शंकराचार्य अभ्युदय "पतंजलि चरितम्' आदि ग्रन्थों में इनका वर्णन हुआ है। अनेकों दिग्विजयों में जिनमें 'माधवीय दिग्विजय', 'व्यासाचलीय' आदि आते हैं। इन्होंने कैलाश में जाकर (शंकराचार्य जी ने) पंच चन्द्र मौलीश्वर तथा "सौन्दर्य लहरी" ग्रन्थ प्राप्त किये। इस प्रकार इनके सम्बन्ध में मत पाया जाता है। कालटी शंकर तथा धीर शंकर के जीवन के सम्बन्ध में समता तथा विषमता का दिग्दर्शन कराया जाएगा।

श्री आद्य शंकर (कालटी शंकर)	श्री धीर शंकर (विद्या शंकर)
१. जन्म भूमि—कालटी	१. चिदम्बरम्
२. माता-पिता—आर्याम्बा, शिवगुरु	२. विशिष्टा देवी, विश्वनाथ
३. माता-पिता ने वृषाचलेश्वर शिव आराधना करके पुत्र प्राप्त किया।	३. इनके माता-पिता ने चिदम्बरम् शिव की आराधना करके प्राप्त किया।
४. ५ वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु ८ वर्ष में गृह त्याग किया।	४. ३ वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हुई।

५. जन्म—युधिष्ठिर सं. २६३१	५. जन्म सन् ७८८ ई. शक सम्वत् ४२१
६. ब्रह्मीभूत यु. सं. २६६३ आयु ३२ वर्ष	६. ब्रह्मीभूत—शक सं. ४९१ आयु ७० वर्ष
७. दिग्विजय की तथा कांचीमठ में सर्वज्ञ सिंहासन पर आसीन हुये—आनन्द गिरि विजय शिव रहस्यानुसार शारदा देवी मन्दिर काश्मीर में सर्वज्ञ सिंहासन पर बैठे माधवीय दिग्विजय, गुरुवंश काव्यम् आदि के अनुसार	७. व्यासाचलीय, आनन्दगिरि, शिव रहस्य के अनुसार धीर शंकर काश्मीर सर्वज्ञ सिंहासन पर बैठे ।

२०. कदली ब्राह्मणों के मतानुसार श्री शंकराचार्य २०८० वर्ष पूर्व हुये । कुछ लोग ईसा की प्रथम शताब्दी में कहते हैं ।

२१. दक्षिण में स्कन्दपुर में हस्त लिखित ग्रन्थ के अनुसार आचार्य का जन्म सन् १७८ लिखा है ।

२२. श्रृंगेरी के विद्वानों के अनुसार श्री शंकराचार्य को १६०० वर्ष हो चुके हैं । कुछ सम्प्रदाय के लोग १२०० वर्ष मानते हैं ।

२३. भोज प्रबन्ध के अनुसार ८०० या ९०० वर्ष पूर्व शंकराचार्य का जन्म हुआ ।

२४. शिव रहस्य के ९वें अंशानुसार आचार्य को २०८० वर्ष हो चुके हैं । शंकर जी कहते हैं, हे देवि ! सारस्वत, गौड, मिश्र कर्नाटकी ब्राह्मण, विन्ध्याचल के उत्तर के वासी ब्राह्मण, शास्त्रार्थ करने में दक्ष होंगे । कलि में जैन, बौद्ध, चार्बाक, मीमांसक, वेद के अर्थ का अनर्थ करेंगे । पूर्वमीमांसक कर्म को ही मुक्ति का साधन बतायेंगे । हे महादेवि ! इनको उखाड़ने के लिये केरल शशल ग्राम में मेरा अंश ब्राह्मण पत्नी के गर्भ से शंकर के रूप में अवतरित होगा ।

२५. 'श्रृंगेरी गुरु परम्परा' ग्रन्थ में लिखा है कि वि. सं. १५ पार्थिव वैशाख शुक्ल तृतीया को जन्म हुआ तथा वि. सं. २२ में संन्यास ग्रहण किया । श्रृंगेरी मठ के पं. कृष्ण लाल, गोविन्द राम का कथन है कि वि. सं. ७५ में शंकराचार्य का जन्म हुआ ।

२६. शारदामठ की परम्परा अनुसार भगवान् भाष्यकार का जन्म यु. सं. २६३१ वैशाख शुक्ल पंचमी को हुआ । यही मत युक्ति संगत माननीय है ।

कुछ विद्वानों ने कलि का आरम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व माना है। युधिष्ठिर सम्बत् इससे भी ३६ या ३७ वर्ष पूर्व का है। अतः युधिष्ठिर संवत् ईसा से ३१३८ या ३१३९ वर्ष पूर्व सिद्ध हुआ। महाभारत तथा भागवत् के अनुसार जिस दिन से भगवान् श्री कृष्ण धराधाम का परित्याग करके परम धाम को गये। उसी दिन से कलि आरम्भ हुआ। महाभारत के स्त्री पर्व में कथा आती है, कि जब गान्धारी तथा धृतराष्ट्र को पता चला कि श्री कृष्ण ने ही कूटनीति से भीमसेन के द्वारा मेरे सौ पुत्र मरवा दिये हैं, तब पुत्र शोक से सन्तप्ता गान्धारी ने भगवान् को शाप दिया। जैसे मेरे वंश का विनाश हुआ है आज से ३६ वर्ष बाद वैसे ही तुम्हारे भी वंश का नाश होगा। इस कथा से सिद्ध होता है कि महाभारत युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे। उसी दिन से उनका सम्वत् आरम्भ हुआ। इस शापानुसार ३६ या ३७ वर्ष बाद कलि युग आरम्भ होता है। युधिष्ठिर सम्वत् २६३१ से लेकर २६६३ तक शंकराचार्य का कार्यकाल रहा। यह सुषमा टीका तथा प्राचीन दिग्विजय से सिद्ध होता है।

"विमर्श"—पुस्तक के अनुसार निर्णय

शारदा पीठ द्वारका के जगद् गुरु शंकराचार्य "श्री स्वामी राजराजेश्वर शंकराश्रम जी" ने 'विमर्श' नामक पुस्तक में जो कि वि. सं. १९५३ में लिखी गयी तथा १९५५ वि. सं. में राजराजेश्वर यंत्रालय वाराणसी से प्रकाशित हुई। उसमें आप लिखते हैं कि शारदा मठ के २८ वें जगद् गुरु श्री नरसिंहाश्रम जी महाराज वि. सम्वत् ९६० ज्येष्ठ वदी १४ तक रहे। उन्हें गुजरात मण्डल के राजा सर्वजित वर्मा ने सं. ९४१ शुद्ध वैशाख चतुर्दशी को एक ताम्र पत्र भेंट किया उसका अवलोकन करने से भ्रान्ति की निवृत्ति हो जाती है। उसके कुछ वर्ष पश्चात् अपनी विजय यात्रा में निकले। द्रविड के अग्रहारों में भ्रमण करते हुये ''काल हस्ती मण्डल', 'उर्दूर-अग्रहार' 'सप्तगोदावरी मण्डल' से होते हुये 'कोण सीमनि' तथा 'चन्नुपुर' प्रान्त में पहुंचे। वहां पर उनका 'उदुरु द्राविड', 'कोन सीमद्राविड', 'आराम द्राविड' वर्ग के द्राविड शिष्ट ब्राह्मणों ने स्वागत किया। श्री नरसिंह स्वामी जी महाराज के ताम्र पत्र की परम्परा को देख कर शंकराचार्य के काल के सम्बन्ध में विचार हुआ। उसमें स्वामी "नृसिंह आश्रम जी महाराज" से पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा तथा शंकराचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र सहित यु. तथा विक्रम सम्बतों में लिखा हुआ था। आचार्य चरणों को उन लोगों ने प्राचीन वंशावली समर्पित की। श्री स्वामी नृसिंह आश्रम जी को आज से अर्थात् वि. सं० १९५३ तक

१०१३ वर्ष हो चुके हैं। उनसे पहले भगवान् भाष्यकार के पश्चात् २८ शंकराचार्य हो चुके हैं। इस प्रकार शंकराचार्य जी के जन्म से लेकर आज वि. सं. २०५० तक २४६४ वर्ष हो चुके हैं, ६५वां चल रहा है। भगवान् शंकर के जन्म से लेकर कैलाशगमन पर्यन्त उस पुस्तक में संक्षिप्त जीवन चरित्र इस प्रकार से दिया है। इसमें तिथि आदि का वर्णन इस पुस्तिका तथा 'श्री शंकराचार्य का समय' नामक पुस्तक के आधार पर लिख रहे हैं।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्री चिन्तामणि गणपतये नमः ॥ श्री तिलक स्वामिने नमः ॥ श्री महा विष्णवे नमः ॥

अस्य मातृकायाः अतिजीर्णतया गलिताक्षर प्रायत्वात् विश्वरूपाश्रम पर्यन्तानामपि आचार्यानर्वाचीन अन्तरभाव्य पत्रिकेयम् प्रकाशिताभिनवा। इस पुस्तक की मात्रायें तथा अक्षर अधिकतर अति जीर्ण थे। इसमें विश्वरूपाश्रम पर्यन्त प्राचीन आचार्यों की परम्परा के अन्तर्गत इस पत्रिका को नवीन रूप देकर प्रकाशित किया गया है।

युधिष्ठिर शक	श्री शंकराचार्य जी का जन्मादि चरित्र विवरण
जन्म २६३१ वै. शु. ५	श्री शंकराचार्य जी का अवतार
२६३६ चै. शु. ९	उपनयन
२६३९ का. शु. ११	संन्यास
२६४० फा शु. २ से	श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी द्वारा उपदेश। वद्रिकाश्रम में
२६४६ ज्येष्ठ कृ. ३० तक	ब्रह्मसूत्र गीता तथा ईशावास्योपनिषद् से लेकर छान्दोग्योपनिषद्, वृहदारणेकोपनिषद् सनत्सुजातीय, विष्णु सहस्त्रनाम, ललिता त्रिशती आदि पर भाष्य रचना की। वहीं पर व्यास जी का दर्शन तथा उनसे शास्त्रार्थ। भरत खण्ड की यात्रा तथा पद्मपाद जी की प्राप्ति, वद्री नारायण की प्रतिष्ठा तथा ज्योतिर्मठ का निर्माण।

२६४७ मार्ग कृ. २	मण्डन मिश्र के साथ सरस्वती की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ।
२६४७ का शु. ८ **(विमर्श के अनुसार)**	भगवान् वेद व्यास के साथ वाराणसी में शास्त्रार्थ तथा सनन्दन की शरणागति।
२६४८ चै. शु. ४	मण्डन की पराजय ३ मास १७ दिन शास्त्रार्थ चला।
२६४८ चै. शु. ६	सरस्वती (उभय भारती) का काम कला सम्बन्धी प्रश्न।
२६४८ चै. शु. ८	आचार्य का परकाय प्रवेश ६ माह २० दिन परकाया में रहे।
२६४८ का शु. १३	आचार्य का पुनः अपने शरीर में प्रवेश।
२६४८ का कृ. १	आकाश मार्ग से ब्रह्म लोक को जाती हुई सरस्वती को आचार्य ने चिन्तामणि मंत्र से द्वारिका पुरी में आकर्षित किया।
२६४८ का कृ. ५	शारदा मन्दिर में शारदा की स्थापना।
२६४८ का कृ. १३ से २६४८ माघ शु. १० तक	द्वारका में शारदामठ का निर्माण, बौद्धादिकों का पराजय तथा रुद्र मालाकार द्वारा भगवान् श्री कृष्ण की यादवेन्द्र मूर्ति की चांदी के मन्दिर में प्रतिष्ठा, शंकर के सिद्धेश्वर मन्दिर का निर्माण, भद्रकाली यन्त्र का उद्धार। **(विमर्श के अनुसार)**
२६४८ का शु. ९	शृंगेरी मठ का निर्माण आरम्भ
२६४९ चै. शु. ९	मण्डन का संन्यास तथा सुरेश्वराचार्य योगपट्ट दिया। **(विमर्श से)**
२६४८ का शु. ९	ब्रह्म लोक जाती हुई सरस्वती का शृंगेरी में आकर्षण तथा स्थापना। **(समय के अनुसार)**
२६४९ चै. शु. ९.	श्री सुरेश्वराचार्य जी का संन्यास।
२६४९ मार्ग. शु. १०	सुधन्वा की दीक्षा।
२६४९ मा. शु. ७	श्री सुरेश्वराचार्य का द्वारका शारदापीठ पर अभिषेक **(विमर्श के अनुसार)**
२६४९ मा. कृ. ७	श्री सुरेश्वराचार्य का द्वारका शारदापीठ पर अभिषेक **समय के अनुसार**
२६५० वै. शु. ३	दिग्विजय यात्रा महोत्सव **(विमर्श)**
२६५० वै.शु. १३	दिग्विजय यात्रा महोत्सव आरम्भ **(समय)**

२६५३-५४ श्रा. शु. ७ २६५३-५४ आ. शु. ११	त्रोटकाचार्य तथा हस्तामलक का संन्यास
२६५४ वै. शु. १०	हस्तामलकाचार्य का शृंगेरी में अभिषेक तथा त्रोटकाचार्य का ज्योतिर्मठ में अभिषेक।
२६५५ वै. शु. १०	दिग्विजय यात्रा में ही पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ पुरी में गमन जगन्नाथ भगवान् की काष्ठ मूर्ति की स्थापना, गोवर्द्धन मठ का निर्माण तथा पद्मपादाचार्य का अभिषेक।
२६५५ भाद्र पद १५ से २६६२ पौ. कृ. ३० तक	अविच्छिन्न गति से दिग्विजय यात्रा में बौद्ध आदि ११३२ मत मतान्तरों के आचार्यों पर विजय तथा सुधन्वा आदि धार्मिक राजाओं द्वारा अनादि कालीन वर्णाश्रम धर्म व्यवस्थानुसार राज्य करना। भूलोक का उद्धार करते हुये, काश्मीर मण्डल में शारदा भगवती के सर्वज्ञासन पर आसीन होकर शास्त्रार्थ करना।
२६६३ का शु. १५	देवताओं के प्रार्थना करने पर उसी शरीर से विमान पर बैठकर कैलाश गमन।

इन्हीं सभी प्रमाणों के घण्टा घोष से आज तक चली आ रही जगद्गुरुओं की आचार्य परम्परा से आचार्य का समय, सं. २०५६ वि. तक शंकराचार्य सं. २४७० हो चुके हैं। यह सिद्ध हुआ।

शारदामठ के प्रथम आचार्य यु. सं. २६९१ चैत्र कृ. अष्टमी पर्यन्त रहे। इस मठ के ९वें आचार्य श्री ब्रह्मज्योत्स्नाचार्य यु. सं०३०४० चै. कृ. ४ तक रहे। दशम श्री आनन्द आविर्भावाचार्य वि. सं. ९ फा. शु. ९ पर्यन्त रहे। जो लोग सन् ७८८ में आचार्य का जन्म मानते हैं। उस समय शारदा मठ के १६वें आचार्य श्री वैकुण्ठाश्रम जी महाराज वि. सं. ८८५ आषाढ कृ. ६ पर्यन्त सन् ८२८ ई. में २६ आचार्य हो चुके थे। तब आचार्य का जन्म ७८८ ई. को कैसे माना जा सकता है? इतना ही नहीं श्री सुरेश्वराचार्य जी से लेकर अभिनव श्री सच्चिदानन्द जी तीर्थ पर्यन्त शारदामठ के सभी जगद्गुरुओं की संगमरमर की मूर्तियां हैं। उनके नीचे उनके नाम यु. सं. तथा वि. सं. सहित खुदे हुये हैं। यदि शंकराचार्य जी का उस

समय जन्म हुआ होता तो आचार्य पाद ने अपने प्रस्थानत्रयी के भाष्यों में वेद विरोधी अनेकों नास्तिक सम्प्रदाय चार्वाक जैन, बौद्ध आदि के सिद्धान्तों का खण्डन किया है। तो ईसाई तथा मुसलमानों का खण्डन नहीं कर सकते थे। सुना जाता है कि केरल में कालटी में ही सन् १०१ में पूर्वी भारत का पहला गिरजा घर बना। किसी भी दिग्विजय में उसका उल्लेख नहीं मिलता है।

धर्म सम्राट् पूज्य पाद श्री कर पात्री जी महाराज तथा श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने 'भागवत दर्शन' नामका एक ग्रन्थ दो खण्डों में कलकत्ता से प्रकाशित किया है। उसके प्रथम खण्ड के आरम्भ में श्री शंकराचार्य जी का काल निर्णय यही किया है। गोवर्द्धन, पुरी की परम्परा में १४६वें शंकराचार्य हैं।

टिप्पणी—शारदा आदि मठों के समान जगन्नाथ गोवर्द्धन मठ की प्राचीन गुरु परम्परा भी इस मठ के १४३वें शंकराचार्य ब्रह्मीभूत स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी के प्राचीन ग्रन्थागार में वर्तमान पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री स्वामी निश्चलानन्द जी सरस्वती को प्राप्त हुई। उसमें भी कलि विक्रम तथा ईसा से पूर्ववर्त्ती तथा परवर्त्ती आचार्यों का काल दिया है, जो कि इस मठ की परम्परा में लिखा जाएगा। काम कोटि की परम्परा भी सं० व तिथि सहित दी हुई है।

कुछ लोग ज्योतिर्मठ में आचार्य कम होने के कारण काल कम कहते हैं। इस पीठ पर २० चिरंजीवी आचार्य हुये हैं जो आज भी जीवित हैं।

त्रोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुडध्वजः।
विन्ध्यो, विशालो वकुलो वामनः सुन्दरोऽरुणः॥
श्री निवासः, सुखानन्दो, विद्यानन्दः शिवो गिरिः।
विद्याधरो गुणानन्दो, नारायण उमापतिः॥
एते ज्योतिर्मठाधीशा आचार्याश्चिरजीविनः।
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योग सिद्धि स विन्दति॥

इन चिरंजीवी ज्योतिर्पीठ के आचार्यों का नित्य स्मरण करने वाले को योग सिद्धि प्राप्त होती है। इस पीठ के ४०० वर्ष बीच के आचार्यों का पता नहीं चलता है। इसमें श्री राम कृष्ण स्वामी के बाद रावल ब्राह्मणों की परम्परा चली है। बीच में १२ रावल ब्राह्मण हुये।

इसके आगे भी बीच में १६५ वर्ष तक गद्दी रिक्त रही। उसके बाद १९९८ वि. में श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज आचार्य पद पर अभिषिक्त हुये।

शृंगेरी की परम्परा विभिन्न प्रकार की है। कुछ विद्वान् १६७० वर्ष, कुछ बारह सौ वर्ष मानते हैं। जबकि इसी की शाखा कुडली मठ में वि. सं० १९७० से पूर्व ६३वें आचार्य शंकर भारती जी हुये। अतः शृंगेरी की परम्परा संदिग्ध प्रतीत होती है। उपर्युक्त काल की पुष्टि चक्रवर्त्ती सम्राट् सुधन्वा के ताम्रलेख पत्र से होती है।

आदिमं शङ्कराचार्यं जयन्त्यां संस्मराम्यहम्॥

भारते याम्य प्रान्तीये, रम्ये धर्मपरायणे।
'कालडी' नामके ग्रामे, शिवगुरोर्निकेतने॥१॥
श्री ब्रह्मशङ्करस्यैव कलाभिः संयुतोऽद्भुतः।
आर्यधर्म सुरक्षायै ह्यवतीर्णः कलौ युगे॥२॥
अभवत् पञ्चमे वर्षे उपवीती विधानतः।
अष्टमाब्दे चतुर्वेदानधीत्य वैदिकोऽभवत्॥३॥
प्राप्ते द्वादशे वर्षे सर्वशास्त्रपरायणः।
अकरोत् षोडशे भाष्यं विश्वनाथ प्रसादतः॥४॥
गोविन्दपादाचार्यं प्राप्याद्वैतमधीतवान्।
गुरोराज्ञां समादृत्य सुप्रसन्नमनः स्वयम्॥५॥
बौद्धधर्म निरासाय वाराणसीं प्रपेदिवान्।
तत्र वैदिक धर्मस्य प्रचारार्थं समुद्यतः॥६॥
इत्थं सर्वगुणोपेतं विश्वैकत्व प्रदायकम्।
दिग्विजयिनमाचार्यं प्रणमाम्यादिशङ्करम्॥७॥
धेनुसेवा प्रभावेण तत्त्वज्ञानी भवेद् ध्रुवम्।
इत्युद्घोषो प्रकर्तारं प्रणमाम्यादिशङ्करम्॥८॥
वेदवेदाङ्ग निष्णातं विश्वकल्याण कारकम्।
श्री आद्यशङ्कराचार्यं नौमि शङ्कररूपिणम्॥९॥
विप्रो नम्बूदरीपादः पुजारि बदरीवने।
रामेश्वरार्चको धीमान् उत्तरकाशिकोऽभवत्॥१०॥

विश्वनाथस्य पुजारी महाराष्ट्र द्विजस्मृतः।
तुरीये तु मठे विद्वान् शास्त्रचिन्तापरोऽभवत्॥११॥
विश्वैकत्व विधातारं व्यवस्थापकमीदृशम्।
आदिमं शङ्कराचार्यं जयन्त्यां प्रणमाम्यहम्॥१२॥

रचयिता

ब्र. दुर्गेशस्वरूपः (द्वारकाप्रसाद शास्त्री)

श्री सुधन्वा का ताम्रपत्रलेख

श्री महाकाल नाथायनमः

श्री महाकाल्यै नमः

श्री सदाशिवा परावतार मूर्त्तिचतुःषष्टि कला विलास विहार मूर्त्ति, बौद्धादि सर्ववादि दानव नरसिंह मूर्त्ति, वर्णाश्रम वैदिक सिद्धान्तोद्धारक मूर्त्ति मामकीन साम्राज्य व्यवस्थापन मूर्त्ति विश्वेश्वर विश्व गुरु पद जगज्जेगीय मान मूर्त्ति निखिल योगि चक्रवर्ति श्रीमच्छंकर भगवतः पाद पद्मयोः भ्रमरायमाण सुधन्वनोः मम सोमवंश चूड़ामणि युधिष्ठिर पारम्परीय परिप्राप्त भारतवर्षस्य अञ्जलिबन्ध पूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः। भगवद्भिः दिग्विजयोऽकारि। सर्वे वादिनः पराकृताः। सर्वे वर्णाश्रमाश्च कृतयुगवत् पूर्ण वैदिकाध्वनि नियोजिताः सन्तो यथा शास्त्राचरन्ति हि धर्मम्। ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर, महेश्वरी स्थानान्यशेष देश-वर्तीन्युद्धृतानि। सर्वंब्रह्मकुलमुद्धारितम्। विशिष्यास्मद्राज्यकुलमान्वीक्षि-क्याद्यशेष राजतन्त्र परिशीलने नोन्नीतं भवति। ब्रह्मक्षत्राद्यस्मत् प्रमुख निखिल विनेय लोक सम्प्रार्थनया चतस्रो धर्म राजधान्यो जगन्नाथ, वदरी, द्वारका, श्रृंगर्षि क्षेत्रेषु भोगवर्द्धन, ज्योतिष, शारदा श्रृंगेरी मठापर संज्ञकाः संस्थापिताः। तत्रोत्तरा दिशो योगिजन प्राधान्येन धर्म मर्यादारक्षणं सुकरमेवेति ज्योतिर्मठे श्री तोटकापर नाम्नः प्रतर्दनाचार्यानथ श्रृंगर्षिराश्रमे श्रृंगर्षि सम स्वभावान् पृथ्वीधराभिधेय, हस्तामलकाचार्यान्, भोगवर्द्धने स्वत एवाभिमतत्वेनात्यन्तोग्रस्वभावानपि सर्वज्ञ कल्प, पद्मपादापर नाम सनन्दनाचार्यानथ बौद्ध कापालिकादि सकल वादि भूयिष्ठ

पश्चिमस्यां दिशि वादि दैत्यांकुरः पुनर्भावत्विति शारदा पीठे किल द्वारकायां जैनैरुत्सादित वज्रनाभ निर्मित भगवदालयादि दुर्दशां दूरीकृत्य भगवद्भिस्त्रिलोक सुन्दर नाम्ना पुनस्संनिबद्धः भगवदालयः श्री कृष्णादि सकल मर्यादा सुसंस्कृतायामधिगताशेष लौकिक वैदिक तन्त्र विश्वविख्यात कीर्ति, सर्वज्ञान-मयान् विश्वरूपापरनाम सुरेश्वरचार्यांश्चास्मत् सर्वलोकाभिमत पूर्वकमभिषिच्यैवम् चतुर्भ्यः, आचार्येभ्यश्चतस्रो दिश आदिष्टाः भारतवर्षस्य। त एते तत्तत्पीठ प्रणाड्या निज निजमेव मण्डलं गोपायन्तो वैदिक मार्ग मुद्भासयन्तु। सर्वे वयम् तत्तन्मण्डलस्था ब्रह्मक्षत्रादय एतत्तन्मण्डलस्यैवाचार्याधिकाराधिकृता वर्तिष्यामहे च। महद्विनिर्णय प्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्या एवोक्तलक्षणतःसर्वत्रैव व्यवस्थापकाः भवन्तु- भवतामनुशासनाच्च। अस्मद्राजसत्तेव निरंकुशगुरुसत्ताप्युक्तमर्यादया जगत्य- विचलं विचलतु। परिव्राजको हि महा कुलीनत्त्व वैदुष्यादि विशिष्टाचार्य लक्षणैरन्वित एव श्री भगवत्पाद पीठानामधिकारमर्हति नतु विनिमये नेत्येवमादि नियमबन्धो भगवदाज्ञा समबुद्धस्समस्तैरथास्मदादि ब्रह्मक्षत्रादि वंशोद्भवैः परमप्रेम्णोत्तमांऽगनाद्रियत इत्येतां विज्ञप्तिमंगीकुर्वन्तु भगवन्त इति॥ स्वस्त्यस्तु लोकेभ्यः।

युधिष्ठिरशके २६६३ आश्विन शुक्ल १५॥

सुधन्वा सार्वभौमः

श्री सदा शिव अपरावतार शंकर की चौसंठ कला विलास विहार मूर्ति बौद्ध आदि दानवों के लिये नृसिंह मूर्ति वैदिक वर्णाश्रम सिद्धान्त की उद्धारक मूर्ति, मेरे साम्राज्य की व्यवस्थापक मूर्ति, विश्वेश्वर विश्व गुरु के पद पर गायी जाने वाली मूर्ति, सम्पूर्ण योगियों के चक्रवर्ती, श्री शंकराचार्य के चरण कमलों में (प्रणाम करके) भ्रमर के समान मैं सुधन्वाराजा चन्द्रवंश चूड़ामणि महाराज युधिष्ठिर की परम्परा से प्राप्त भारतवर्ष का राजा हाथ जोड़ कर विनम्र निवेदन करता हूं। भगवत्पाद ने दिग्विजय करके सभी वादियों को पराजित किया। सत्ययुग के समान चारों वर्ण—आश्रमों को स्थापित करके पूर्ण रूप से वैदिक मार्ग पर शास्त्रानुसार (वैदिक धर्म) में

नियुक्त किया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा शक्ति आदि देवताओं के स्थानों को, जो कि सम्पूर्ण देश में स्थित हैं, का उद्धार किया। समस्त ब्राह्मण कुलों का उद्धार किया। सम्पूर्ण देश में हमारे जैसे राजकुलों द्वारा ब्रह्म विद्या का प्रचार प्रसार करके, अध्ययन अध्यापन द्वारा उन्नत किया। हम जैसे प्रमुख ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि की प्रार्थना से सम्पूर्ण देश की चारों दिशाओं में चार राजधानियों, पूर्व में जगन्नाथ, उत्तर में वदरी नारायण, पश्चिम में द्वारका तथा दक्षिण में शृंगी ऋषि के क्षेत्र शृंगेरी में क्रमानुसार भोगवर्द्धन, ज्योति, शारदा तथा शृंगेरी नामक मठ स्थापित किये। उत्तर दिशा में योगिजनों की प्रधानता वाले धर्म की मर्यादा की रक्षा सरलता से करने वाले ज्योतिर्मठ में श्री तोटकाचार्य जिनका दूसरा नाम प्रतर्दनाचार्य को, शृंगी ऋषि के आश्रम शृंगेरी मठ में उन्हीं के समान प्रभाव वाले पृथ्वीधराचार्य जिन का दूसरा नाम हस्तामलकाचार्य है को, भोगवर्धन जगन्नाथपुरी में अत्यन्त अभीष्ट, उग्र स्वभाव वाले, सब कुछ जानने में समर्थ, पद्मपादाचार्य जिनका दूसरा नाम सनन्दनाचार्य है को, तथा बौद्ध कापालिक आदि सम्पूर्ण वादियों की प्रधानता वाली पश्चिमी दिशा में वादी रूपी दैत्यों को परास्त करके द्वारका शारदामठ में भगवान श्री कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ द्वारा निर्मित भगवान श्री कृष्ण के मन्दिर को जैनियों द्वारा ध्वस्त देखकर उसकी दुर्दशा को दूर किया तथा त्रैलोक्य सुन्दर नाम का भगवान श्रीकृष्ण का मन्दिर निर्माण करके शास्त्र मर्यादा से प्रतिष्ठित किया। सम्पूर्ण वैदिक, लौकिक तथा तान्त्रिक मर्यादा के पालक विश्व विख्यात कीर्तिमान्, सर्वज्ञान स्वरूप विश्वरूपाचार्य जिनका अपर नाम सुरेश्वराचार्य है को हम सब लोगों की लोक सम्मति से अभिषिक्त किया। भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चारों आचार्यों को नियुक्त करके आज्ञा दी, यह चारों आचार्य अपने अपने पीठ की मर्यादानुसार मण्डल की रक्षा करते हुये वैदिक मार्ग को प्रकाशित करें। हम सभी मण्डलस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मण्डलों के अधिकारी आचार्यों की आज्ञा का पालन करते हुये व्यवहार करें। भगवान शंकराचार्य जी की आज्ञानुसार वेद, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदिकों का महत् निर्णय करने में परम समर्थ श्री सुरेश्वराचार्य जो कि उक्त लक्षणों से युक्त हैं, सब के व्यवस्थापक हों। हमारी राजसत्ता के समान निरंकुश गुरु सत्ता भी ऊपर कही हुई शास्त्र मर्यादा के अनुसार अविचल रूप से कार्य करे। मेरे इस पीठ पर महाकुलीन ब्राह्मण, संन्यासी, सम्पूर्ण वेदादिशास्त्रों के ज्ञाता आचार्य की विशेषताओं से युक्त ही भगवत्पाद शंकराचार्य की पीठ पर बैठने के

अधिकारी हों, इसके विपरीत नहीं, इस प्रकार भगवत्पाद की आज्ञानुसार नियमों में बंधे हुये हम ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वंश में उत्पन्न हुये लोगों को इन आदेशों का परम प्रेमपूर्वक पालन करना चाहिये। यही आप लोगों से मेरी भी प्रार्थना है। विश्व का कल्याण हो।

युधिष्ठिर सम्वत् २६६३ आश्विन शुक्ल १५

सुधन्वा सार्वभौमः

इन तीनों प्रमाणों १. सर्वजित वर्मा का पूज्यपाद श्री नरसिंहाश्रम जी को भेंट किया हुआ ताम्रपत्र २. इन्हीं को द्राविड़ ब्राह्मणों द्वारा ताड़पत्रों पर लिखित पुस्तक ३. महाराज सुधन्वा का ताम्रपत्र से बढ़कर और भी कोई प्रमाण हो सकता है यह मैं नहीं कह सकता। इसी ताम्रपत्र का अनुवाद रैवत राजधानी के मंत्री ने "वृहद् राजतरंगिणी" में किया है। उसमें लिखा है कि महाराज सुधन्वा की नवम पीढ़ी में हुये वंशज के अवन्तिकापुरी के नरेश विक्रमादित्य के दौहित्र थे। इससे सिद्ध होता है कि भगवान भाष्यकार के जन्म से चार सौ चौदह वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य का सम्वत् आरम्भ होता है। अतः इस प्रमाण से भी शंकराचार्य जी को सं० २०५६ में २४७० वर्ष बीत चुके हैं। ७१वां लगा है।

'अद्वैतामोद' नामक ग्रन्थ में वासुदेव अभयंकर शास्त्री जी ने भी श्री शंकराचार्य जी का जन्म २६३१ यु. सं. दिया है तथा २६६३ तिरोधान लिखा है। **शश्यग्निरसयुग्म परिमिते युधिष्ठिरे शके। वैशाख शुक्ल पंचम्यां श्री शंकराचार्याणां जन्माभूत्। तथाग्नि रस रस युग्म (२६६३) परिमिते युधिष्ठिर शके कार्तिक शुक्ल पौर्णमास्यायामाचार्याः ज्योति रूपतांययु रिति कथयन्ति।** १. वैशाख शुक्ला पंचमी, से कार्तिकी पूर्णिमा तक ॥

सम्पूर्ण दिग्विजयों में से परम प्रामाणिक तथा अत्यन्त प्राचीन आचार्य पाद के ही सहपाठी, जिन्होंने कालटी में एक ही गुरु से वेदाध्ययन किया था, तथा बाद में इनसे संन्यास लिया था, चित्सुखाचार्य जी ने भी अपने दिग्विजय में युधिष्ठिर सम्वत् २६३१ लिखा है।

अथवा इन सब दिग्विजयों का जन्म काल सम्बन्धी समन्वय हम पौराणिक शैली से भी कर सकते हैं। पुराणों में राम, कृष्ण, सूर्य, दुर्गा, शिव, विष्णु का चरित्र एक जैसा नहीं पाया जाता। वहां पर कल्पभेदानुसार कहकर समाधान किया है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे द्वितीय परिच्छेदे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

श्री शंकराचार्य के काल के सम्बन्ध में विविध ज्ञान विस्तार नामक मराठी लेख

भगवत्पाद भाष्यकार के प्रादुर्भाव की समस्या अति जटिल पहेली सी बन गई है। यद्यपि केवल शृंगेरी को छोड़कर अन्य सभी शंकर मठों की परम्परा से आचार्य का जन्म दो सहस्र वर्ष पूर्व का सिद्ध होता है। तदपि प्रत्येक मठ का सम्वत् एक दूसरे से नहीं मिलता है। कामकोटि मतानुसार ईसा से ५०८ वर्ष या ५०९ या ४४२ या ४७६ वर्ष सिद्ध होता है।

द्वारका शारदा मठानुसार ईसा से ४७१ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। गोवर्द्धन मठ की परम्परानुसार ईसा से ४८१ वर्ष पूर्व आद्यशंकर ने इस मठ की स्थापना करके श्री पद्मपादाचार्य जी का अभिषेक किया। अतः काल के सम्बन्ध में चारों मठों का मतैक्य नहीं है। इसका कारण बताते हुये काशी से प्रकाशित होने वाली "पाक्षिक सिद्धान्त" पत्रिका के १४वें वर्ष के अक्तूबर मास में 'श्री महादेव राजाराम वोडस" एम. ए, एल. एल. बी. ने सन् १९२३ में "विविध ज्ञान विस्तार" नामक मराठी लेख का अनुवाद करते हुये "भगवान आद्यशंकराचार्य और उनका समय" लेख में लिखते हैं कि "श्री शङ्कराचार्य" के मठों में संगृहीत किये हुये ग्रन्थों एवं कागज़ातों में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री मिली होती—[तो ऐसा मतभेद न पाया जाता] परन्तु दुर्भाग्य से वह नष्ट हो गई। थोड़ी बहुत जो कुछ बची भी तो वह मठाधीशों से प्राप्त नहीं होती। इस विनाश का कारण विशेषकर पेशवाओं के ब्राह्मण सरदार हुये। यह बड़े दुःख की बात है, पर उसका उल्लेख करना अनिवार्य है। शंकराचार्य के मठों का विध्वंस पेशवाओं के सरदारों ने किया। इस विषय का ऐतिहासिक प्रमाण अब "वासुदेव शास्त्री खरे" द्वारा मुद्रित "ऐतिहासिक लेख संग्रह" में प्रकाशित हुआ है। हरिपन्त फड़के की सेना ने द्वारिका मठ सन् १७७५ में लूटा। कोन्हरे राव पटवर्द्धन ने करवीर मठ सन् १७७६ में भस्म कर दिया। 'परशुराम भाऊ' ने सन् १७९१ में टीपू के आक्रमण में मैसूर का कुडली मठ का नाश किया और उसी समय "रघुनाथ राव पटवर्द्धन" के लमाड़ों ने शृंगेरी मठ को विध्वस्त किया। जिस शृंगेरी मठ को टीपू सुल्तान ने भी जागीर और वर्षासन प्रदान किये, उस मठ का सर्वस्वापहरण ब्राह्मण सरदारों के हाथों होना उद्वेगजनक है। मठ के देवी देवताओं की प्रतिमायें भी लूट लीं;

इससे श्रृंगेरी के स्वामी उपवास करने लगे। "इस पाप के कारण अपने राज्य पर संकट आयेगा" ऐसा पूना के दरबार में नाना फड़नवीस को भय उत्पन्न हुआ। स्वामी के नुक्सान की भरपाई करने के विषय में "नाना फड़नवीस" ने बहुत आग्रह किया; पर पटवर्द्धन ने ध्यान नहीं दिया। पेशवाई के अन्त में सब सरदारों की नैतिक अवनति स्वार्थ-परायणता तथा स्वयं पेशवाओं की दुर्बलता के कारण ऐसे पापाचरण बढ़कर मराठेशाही का अन्त हुआ होगा। गांव के धनी साहूकार मठों का आश्रय करते थे; इसलिये कहा जाता है कि मठ लूटे जाते थे। कुछ भी हो ; इस आगज़नी लूटपाट के कारण मठों के कागज़ातों का जो विध्वंस हुआ, उस हानि की पूर्ति तो अब हो सकने योग्य नहीं है। श्रृंगेरी, कूडली, करवीर और द्वारका में अब कोई कागज़ात नहीं हैं। ज्योतिर्मठ लुप्तप्राय है। जगन्नाथ मठ नाम शेष रह गया है। हम्पी, शिवगङ्ग आदि मठ अर्वाचीन हैं। काञ्ची या कुम्भ कोणम् मठ के पीठाधीश अपने को प्राचीन समझते हैं और अपने पास आधार होना बतलाते हैं। परन्तु वह अभी बाहर प्रकट नहीं हो रहा है। इसके सिवा इन मठों का अनेक बार स्थलान्तर होते रहने के कारण असली कागज़ात सुरक्षित बचे रह गये होंगे या नहीं, इसमें सन्देह ही है।

आचार्य श्री के जन्म स्थान 'कालटी' ग्राम का हाल में पता लगा है यह बड़ा अन्वेषण का कार्य हुआ ऐसा कहना चाहिये। वह सर्वांश में नष्ट होकर उसके आस-पास की सर्वभूमि ईसाई लोगों के स्वामित्व में चली गई थी। जैसा पहले बताया जा चुका है। सन् १९१० में श्रृंगेरी पीठाधीश्वर ने सत्ताईस हज़ार रूपयों से वह तीस एकड़ ज़मीन खरीदकर वहां (जन्म भूमि में) इधर मन्दिर, मठ और घाट का निर्माण कराया है। ईसवी सन् की दूसरी शती से सीरियन ईसाईयों का निवास मालाबार में हुआ था; वहीं भारतवर्षीय धर्म क्रान्ति कर्ता जगद् गुरुओं का अवतार हुआ, यह विचित्र योगायोग की बात है। श्रीमदाचार्य जी की जन्म भूमि सैंकड़ों वर्षों तक ईसाईयों के अधिकार में रहने के उपरान्त बीसवीं शताब्दी में महाप्रयास से उसका पता लगा है, यह दैव गति विचित्र है। इसका जीर्णोद्धार का श्रेय श्रृंगेरी पीठस्थ श्री स्वामी सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृंसिंह भारती, त्रावन्कोर के तत्कालीन दीवान 'बी. पी. माधव राव' और मैसूर के प्रधान उच्च न्यायाधीश 'श्री रामचन्द्र अय्यर' इन तीन पुरुषों को है। निर्जन अरण्य का अब सुन्दर क्षेत्र हो गया है वहां जंगली सिंह जानवरों की भयप्रद आवाज़ के स्थान पर अब हर समय वेद शास्त्राध्ययन की पवित्र एवं शान्त ध्वनि सुनाई पड़ती है। आचार्य

चरण का जन्म स्थान जैसे निश्चित रूप से सिद्ध हुआ है, वैसे ही जन्म काल का भी अन्तिम निर्णय हो जाये ; तो भारतवर्ष के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास की विभाजक मध्य रेखा निश्चित हो जायेगी।"

उपर्युक्त लेख से यह सिद्ध होता है कि मठों का वास्तविक इतिहास लुप्त प्रायः हो गया है। हो सकता है कि मठाधीशों के संयुक्त प्रयास से काल सम्बन्धी यथार्थ निर्णय हो सके।

कुछ विद्वानों के मतानुसार अन्य मठों के समान शृंगेरी मठ भी कहीं अन्यत्र था। शृंगेरी को छोड़कर और मठों की परम्परा से दो सहस्र वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। शृंगेरी मठ की ही शाखा कुडली तथा करवीर मठ हैं। कूडली मठ की परम्परानुसार वि. सं. १९७० तक ६३ आचार्य हुये हैं। परन्तु शारदा शृंगेरी मठ में प्राचीन परम्परानुसार इस परम्परा में आज से ८२ वर्ष पूर्व ४४ आचार्य हुये तो फिर इसके ८८ वर्ष पश्चात् आठ आचार्यों का कम होना परमाश्चर्य का विषय है। इसका सविस्तार उल्लेख शृंगेरी मठ के इतिहास में किया जायेगा।

कुछ लोगों का कथन है कि शृंगेरी के अतिरिक्त अन्य मठों की परम्परा इतिहास विरुद्ध होने के कारण अमान्य है। परन्तु वर्तमान अंग्रेज़ों द्वारा लिखा हुआ इतिहास भारतीय प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा पौराणिक इतिहास के विरुद्ध है। अर्वाचीन इतिहास ईसाईयों द्वारा बाईबल के आधार पर है। इसके अनुसार पूरा सृष्टि चक्र किसी के मत से तीन हज़ार वर्ष किसी के चार हज़ार तथा किसी के मत से पांच हज़ार वर्ष से अधिक नहीं है। इनके मत में हां मिलाने वाले पूर्वी विद्वान भी इसी को मानते हैं। यह लोग तो रामावतार को छः हज़ार वर्ष से पूर्व का नहीं मानते। अतः इन लोगों ने सभी के समय को कम करते हुये श्री शंकराचार्य के काल को भी कम किया है। अतः वर्तमान इतिहास व्यास, बाल्मीकि के विरुद्ध होने से माननीय नहीं है। अन्य पुरुषों का काल भी इसी प्रकार समझना चाहिये। शारदा शृंगेरी मठ के जगद् गुरु श्री शंकराचार्य सच्चिदानन्द भारती जी महाराज की आज्ञा से श्री काशी लक्ष्मण शास्त्री जी ने 'गुरुवंश काव्यम्' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसके आठवें सर्ग के ३८वें श्लोक से लेकर ४२वें श्लोक तक, इस मठ के १५वें शङ्कराचार्य श्री नृसिंह भारतीन्द्र जी के विषय में कहा है कि—

नृसिंह भारतीन्द्रश्च गोकर्णेश दिदृक्षया।
गतोज्येष्ठाभ्यनुज्ञातो हालाडि ग्राममाययौ ॥३८॥

मन्त्रविन्मन्त्र राजन्तं सम्प्रतिष्ठाप्य तत्र सः।
चिरमध्यास्य चागत्य ज्यायसोऽनन्तरं वभौ ॥३९ ॥
योगिराजे मुदा यस्मिन् योगराजं प्रशासति।
भक्तिमान् विक्रमाख्योभूच्चक्रवर्ति धुरन्धरः ॥४० ॥
समागत्य समीपेऽस्य योगभाजो महामुनेः।
योगार्थं नामनि स्वीये विक्रमी प्रत्यपद्यत ॥४१ ॥
विमृशन् वेदभाष्यार्थान् वेदान्तासक्त मानसः।
ख्यातो नृसिंह योगीन्द्रः सन्मार्गे समपीपलत् ॥४२ ॥

नृसिंह भारतीन्द्र नामके जगद् गुरु जी ज्येष्ठ गुरुओं की आज्ञा प्राप्त करके गोकर्णेश के दर्शन की इच्छा से हालाडि ग्राम में गये। ३८ ॥ जगद् गुरु जी ने वहां पर मन्त्रराज की प्रतिष्ठा करके चिरकाल तक आराधना करके महानता प्राप्त की। ३९ ॥ योगिराज के प्रसन्नतापूर्वक योग प्रशासन करते हुये विक्रम नाम के परम भक्तिमान् चक्रवर्तियों में धुरन्धर हुये। महाराज विक्रम ने महामुनि के समीप आकर योग की प्रसिद्धि के लिये अपने विक्रमी नामक सम्वत् को चलाया। वेदान्त में आसक्त चित्त वाले महाराज ने वेद के भाष्यों पर विचार करते हुये महाराज नृसिंह योगीन्द्र जी के सन्मार्ग का अनुसरण किया ॥४०-४२ ॥

उपर्युक्त "गुरुवंश काव्यम्" के प्रमाण से उज्जैन के महाराज प्रथम विक्रमादित्य ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि इनके नाम में "चक्रवर्ती, धुरन्धरः" विशेषण आया है। वह केवल प्रथम विक्रमादित्य का ही सिद्ध होता है। चालुक्यवंशी विक्रम का नहीं। क्योंकि इस मठ की परम्परा से आद्य शंकर का जन्म चालुक्य वंशी विक्रम के पन्द्रहवें वर्ष में माना जाता है। श्री नृसिंह भारती जी महाराज आद्य शंकर से शृंगेरी परम्परानुसार ६३६ वर्ष बाद हुये। उस समय उज्जैन के महाराज का आना सिद्ध होता है।

(उपर्युक्त शारदा, गोवर्द्धन, कामकोटि, ज्योतिर्मठ आदि की परम्परा से)

महाराज सर्वजित् का ताम्रशासनम्

आचार्यपाद आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व ही सिद्ध होते हैं। 'जिन विजय' ग्रन्थ से भी यही बात सिद्ध होती है।

पूर्वोक्त प्रमाणों के अतिरिक्त संक्षेप में 'श्री शंकराचार्य चरित्र वर्णनम्',

॥ इति श्री गुरु. पु. कलियुग खण्डे द्वितीय परिच्छेदे पंचमोऽध्यायः ॥५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

(शंकराचार्यनो समय नामके पुस्तक में भी भगवत्पाद के जन्म से लेकर कैलाश गमन पर्यन्त तिथि पत्र है।)

युधिष्ठिर शक	विवरण
२६३१	वैशाख शुक्ला पंचमी श्री शंकराचार्य का अवतार
२६३६	चैत्र शुक्ला नवमी उपनयन
२६३८	कार्तिक शुक्ला एकादशी संन्यास
२६४०	फाल्गुन शुक्ला २ से पांच से कुछ अधिक वर्षों में श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी से संन्यास तथा उपदेश प्राप्त करके, बद्रिकाश्रम में ब्रह्मसूत्र, ईश केन, कठ, प्रश्न मुण्डक:; माण्डूक्य तैत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य, वृहदारण्यक, नृसिंहतापनीय उपनिषदों, भगवद्गीता, सनत्सुजातीय, विष्णु सहस्र नाम ललिता त्रिशती आदि ग्रन्थों के भाष्य किये। वहीं पर व्यास दर्शन, उनसे शास्त्रार्थ आशीर्वाद प्राप्त करके सम्पूर्ण भारत में प्रस्थान त्रयी के माध्यम से अद्वैत तत्त्व का प्रचार किया (२६४६ ज्येष्ठ कृ. ३० तक) तथा पद्म पादाचार्य जी को शिष्य बनाया।
२६४६ मार्ग. कृ. २ से	मण्डन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ
२६४८ चैत्र शु. ८ को	मण्डन मिश्र की पराजय
२६४८ चैत्र शु. ६	मण्डन की पत्नी के साथ शास्त्रार्थ आरम्भ
२६४८ चैत्र कृ. ८	परकाय प्रवेश

२६४८ कार्तिक शु. १३	निज शरीर में प्रवेश।
२६४८ का. कृ. १	ब्रह्मलोक जाती हुई सरस्वती को चिन्तामणि गणपति मंत्र से द्वारका में रोका।
२६४८ का. कृ. ५	द्वारका में शारदा मठ की प्रतिष्ठा। दो मास के
२६४८ का. कृ. १३ से माघ शु. १०मीं तक	भीतर शारदा मठ का निर्माण, बौद्ध जैन आदि की पराजय, चांदी के द्वारकाधीश तथा सिद्धेश्वर मन्दिर का निर्माण तथा भद्रकालीयन्त्र का उद्धार।
२६४८ माघ शु. ९	ब्रह्मलोक जाती हुई सरस्वती को मैसूर राज्यान्तर्गत चिन्तामणि गणपति मन्त्र से ही रोक कर शारदा की प्रतिष्ठा की।
२६४९ चैत्र शु. ९	मण्डन मिश्र जी का संन्यास, श्री सुरेश्वराचार्य योगपट्ट।
२६४९ मार्ग शीर्ष शु. १०	महाराज सुधन्वा का शिष्यत्व।
२६४९ माघ कृ. ७	आचार्य द्वारा द्वारका शारदा पीठ में सुरेश्वराचार्य का अभिषेक।
२६५० वैशाख शु. १३	शंकराचार्य की दिग्विजय यात्रा आरम्भ।
२६५३ श्रावण शु. ७	श्री त्रोटकाचार्य जी का आगमन।
२६५४ आषाढ़ शु. ११	श्री हस्तामलकाचार्य जी का आगमन।
२६५४ पौष १५	श्री हस्तामलकाचार्य का शृंगेरी में अभिषेक तथा ज्योतिर्मठ में श्री त्रोटकाचार्य की अधिकार प्राप्ति।
२६५५ वैशाख शु. १०	पुरुषोत्तम जगन्नाथपुरी में भगवान की काष्ठ मूर्तियों की प्रतिष्ठा, वहां की मर्यादा व्यवस्था तथा गोवर्द्धन मठ में श्री पद्म पादाचार्य जी को पीठ का अधिकार दान।

२६५५ भाद्रपद १५ से २६६२ पौष कृ. ३० तक	**बौद्ध कापालिक आदि ८९ मतों का निराकरण।**
२६६३ कार्तिक १५	**कैलाश गमन ॥ मतभेद से कुछ चरित्र ग्रन्थों में वैशाख शु. १२ में श्री शंकर भगवत्पादाचार्यों का कैलाश गमन कहा है।**

शङ्कराचार्य जयन्ती महोत्सव 'काल विचार'

आचार्य पाद शंकर का जन्म महोत्सव भी शिवावतार होने के कारण राम कृष्ण आदि के महोत्सववत् मनाना चाहिये।

श्री शङ्कराचार्य जी शिवावतार होने के कारण इस जयन्ती का आरम्भ वैशाख शुक्ला पंचमी से लेकर दशमी पर्यन्त करना चाहिये। इसमें रुद्राष्टाध्यायी, सभाष्य प्रस्थानत्रयी का पाठ, शंकर दिग्विजयों का पाठ करना चाहिये। आचार्य के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार व्याख्यानों के माध्यम से हो। कुछ विद्वान कहते हैं कि शङ्कराचार्य जयन्ती उत्सव नहीं मनाना चाहिये। तत्कालीन स्थित शकराचार्यों की पूजा आराधना करनी चाहिये। किन्तु यह उचित नहीं है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि आचार्यों का जन्म वैशाख शु. पंचमी को हुआ था। १६ वर्ष की आयु में वैशाख पूर्णिमा के दिन व्यास दर्शन हुआ। कार्तिक शुक्ला १२ को कैलाश गमन हुआ था। इसलिये इनके यति, ब्रह्मचारी, गृहस्थ अनुयायियों को वैशाख शुक्ला ५ से लेकर पूर्णिमा तक शङ्कराचार्य जी की जयन्ती मनानी चाहिये। भारत में अधिकतर सर्वत्र मनाई भी जाती है।

१. ऊपर के तिथि पत्र से भी आचार्य पाद का जन्म २४७० वर्ष पूर्व का सिद्ध होता है।

कल्प भेद की बात करने पर इसी शैली को गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनाते हुए लिखा है कि **कल्प भेद हरि चरित सुहाये। भांति अनेक मुनीसन गाये।** यहां कल्प भेद से तात्पर्य कहीं कल्प भेद, कहीं मन्वन्तर भेद, कहीं युग भेद पाया जाता है। इसी प्रकार यह इस मन्वन्तर का अट्ठाईसवां कलियुग है। इस कलियुग से पूर्ववर्ती सत्ताईस कलियुगों में भी इसी प्रकार का वैदिक धर्म का लोप तथा अवैदिक मत मतान्तरों का प्रचार हुआ होगा। देवों तथा ऋषियों द्वारा शंकर से अवतार के लिये प्रार्थना हुई होगी। अन्य २७ कलियुगों के

लीला चरित्र को देखकर विभिन्न दिग्विजय कारों ने विभिन्न प्रकार का चरित्र लिखा होगा। अतः हम भगवान् शंकर के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं कि **कलिभेद गुरु चरित सुहाये भांति अनेक मुनीसन गाये**।। आशा है कि इससे विद्वानों तथा पाठकों को सन्तोष होगा।

।।इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे षष्ठोऽध्यायः।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

बाल-लीला जीवन वृत्त सम्बन्धी ग्रन्थों का परिचय

(श्री शंकर विजय मकरन्द से)

भगवान भाष्यकार का जीवन वृत्त शिवरहस्यम्, कूर्मपुराणम्, भविष्योत्तरपुराणं मार्कण्डेयसंहिता, लिंगपुराणम्, वायुपुराणम्, शिवपुराणम् आदि पुराणों से वृहच्छंकर विजय, चित्सुखाचार्य जी द्वारा रचित (अप्रकाशित) प्राचीन शंकर विजय, (इसका भी कुछ अंश मिलता है) ३. ब्रह्मानन्दीय शंकर विजय, जगद्गुरु सर्वज्ञात्ममुनि के गाणपत्य शिष्य ब्रह्मानन्द द्वारा रचित, १०,००० श्लोकों में है। इसकी हस्त-लिखित पुस्तक कुम्भ कोणम् में श्री महादेव शास्त्री से प्राप्त हुई। ४. व्यासाचलीय शंकर विजय इसके रचयिता कांची काम कोटि के पीठाधीश्वर श्री महादेवेन्द्र सरस्वती जी हैं, यह मद्रास से प्रकाशित है। ५. आनन्दगिरीय शंकर विजय इसके लेखक श्री स्वामी अनन्तान्द गिरि जी हैं, यह ग्रन्थ काशी, कुम्भ कोणम् तथा तेलगु लिपि में छपा था, किसी ने ६० अध्याय तथा किसी ने ७५ माने हैं। ६. माधवीय शंकर विजय, यह आनन्द गिरि विजय का ही संक्षिप्त संस्करण है। इसकी रचना सायण के बड़े भाई माधव ने संन्यास से पूर्व की थी। इन्हीं का संन्यास का नाम श्री विद्यारण्य स्वामी जी था। इस पर धनपति सूरि जी की "डिण्डिम" तथा "अद्वैतराजलक्ष्मी" नामक दो व्याख्यायें आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित हुई हैं। ७. "चिद्विलासीय शंकर विजय विलास" इसकी रचना स्वामी चिद्विलास यति जी ने की है। ८. 'शंकर दिग्विजय सार' यह ग्रन्थ सारस्वत श्री सदानन्द जी द्वारा रचित दुन्दुभि व्याख्या सहित है। ९. गोविन्द नाथीय "श्रीमच्छंकराचार्य चरितम्" यह ग्रन्थ श्री गोविन्द नाथ जी ने लिखा है तथा "तिरुपुण्णि चुरत दिवाकर द्विजेन्द्र" द्वारा प्रकाशित है। १०. "केरलीयशंकर विजयम्" सुषमाटीका सहित आंशिक रूप में मिलता है। ११. "पतञ्जलिचरितम्" इसकी रचना श्री रामभद्र दीक्षित जी ने की है, इसमें मुख्य रूप से श्री

पतंजलि, गौडपादाचार्य, चन्द्र शर्मा तथा गोविन्द भगवत् पादाचार्य का चरित्र है यह काव्य ग्रन्थ है।

१२. 'शंकराभ्युदयम' यह श्री राज चूड़ामणि दीक्षित द्वारा रचित है। इसमें छः अध्याय तक की व्याख्या उपलब्ध है। १३. 'गुरुवंश काव्यम्' इसकी रचना श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी भारती की आज्ञा प्राप्त करके विद्वत बालक काशी लक्ष्मण शास्त्री ने की है तथा सप्तमसर्ग पर्यन्त स्वयं व्याख्या की है। यह मूल मात्र सम्पूर्ण ग्रन्थ "श्री वाणी विलास प्रेस" श्रीरंगम् से प्रकाशित है। इसकी रचना सं. १७७२ वि. में हुई। इसके प्रारम्भ के तीन सर्गों में भगवत्पाद का चरित्र है।

१४. 'शंकर मन्दार सौरभ' यह नीलकण्ठ जी की रचना है, इसी नाम की व्याख्या सहित अप्रकाशित है। यह सुब्रह्मण्य शास्त्री को हस्तलिखित प्राप्त हुई है।

१५. 'जगद् गुरु रत्न माला स्तवः' कामकोटि के आचार्य श्री सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वती जी ने लिखा है और आत्मबोधेन्द्र सरस्वती ने टीका की है। इसमें ३३ श्लोकों में शंकराचार्य जी का चरित्र है। इस पर आत्मवोधेन्द्र जी ने सुषमा टीका की है। १६. 'पुण्य श्लोक मञ्जरी' इसकी रचना व्यासाचलीय श्री स्वामी महादेवेन्द्र सरस्वती जी के प्रशिष्य श्री सर्वज्ञ सदाशिव बोधेन्द्र महाराज जी ने की है। जिन्होंने काम कोटि के ५५ आचार्यों की जन्म-भूमि दीक्षानाम, पितानाम तथा सिद्ध स्थली का स्मरण किया है। १७. 'भगवत्पाद सप्ततिः' श्री जगन्नाथ कवि द्वारा रचित ६० श्लोकों द्वारा शंकर जयन्ती में उपहार प्रस्तुत किया है।

१८. 'यति सार्वभौमोपहार' यह ग्रन्थ शंकर किंकर श्री ब्रह्मानन्द करमन्दीनर कण्ठीरव कवि प्रणीत ८० श्लोकों में शंकर जयन्ती पर उपहार है।

१९. 'जगद्गुरु पारंपर्यस्तुतिः' इसमें कूडली शृंगेरी मठ की गुरु परम्परा है।

२०. 'गोवर्द्धन पीठ जगद्गुरु नाम मालास्तोत्रम्।'

२१. "श्री शंकर भगवत्पाद द्विसहस्र नाम स्तोत्रम्", जिनमें से एक हिन्दू मत कलाचारप्रचार संघ द्वारा प्रकाशित है तथा भाष्य स्वामी द्वारा रचित है।

बाल-लीला—वह बालक हाथों तथा घुटनों के बल चलने लगा। पहली वर्षगांठ में पिता जी ने वृषाचलेश भगवान की पूजा अर्चा विशेष द्रव्यों से, बालक को ले जाकर करके, देखा, कि शिवलिंग पर चढ़ाई हुई सभी वस्तुयें अपने पुत्र के शरीर पर हैं, देखकर अत्यन्त

विस्मित हुये। इसके बाद पत्नी सहित रथ यात्रा देखने लगे। जिसमें पार्वती सहित शंकर विराजमान थे। दोनों ने अपने पुत्र को पार्वती की गोद में बैठे देखा। जहां माता बालक को बिठा कर गई थी उनको वहां भी देखा। दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

मुण्डन संस्कार

तीसरा वर्ष लगने पर ज्योतिष शास्त्र में विशारद पण्डितों द्वारा मुहूर्त निश्चित करके शुभ मुहूर्त लग्न में द्राविड़ परम्परानुसार मुण्डन हुआ।

विद्याभ्यास

बिना किसी के सिखाये ही पिता द्वारा अक्षरों के अभ्यास मात्र से शास्त्रों को पढ़ते देखकर आश्चर्य युक्त हुये।

भगवती का अनुग्रह

इनके पिता शिव गुरु ग्राम में ही विद्यमान कात्यायनी देवी का नित्य पूजन करते थे। स्वादिष्ट गोदुग्ध का भोग लगाने के अनन्तर अवशिष्ट दूध पुत्र को देते थे। देवी का प्रसाद समझ कर बालक ग्रहण करता था। एक दिन पिता को कुछ दिनों के लिये बाहर जाना पड़ा। इन्होंने पत्नी को पूजन तथा दुग्ध भोग लगाने की आज्ञा दी। माता जी अवशिष्ट प्रसाद बालक को देती थी। बीच में वह मासिक धर्म से युक्त हुईं। तब बालक को बुलाकर भगवती का पूजन करने के लिये दुग्ध दिया। बालक ने देवी के मन्दिर में जाकर भक्तिपूर्वक देवी को स्नान करवा कर माता द्वारा दिया हुआ दूध जगदम्बा के आगे रखकर पीने की प्रार्थना की। दुग्ध ज्यों का त्यों देखकर, अम्बा कुपित हो गयी हैं इसलिये ग्रहण नहीं करती, यह सोच कर बाल भाव से रुदन करने लगे। इनके आगे पार्वती जी प्रकट हुईं। स्वर्ण पात्रस्थ दुग्ध लेकर पीने लगीं। पात्र को पूरा खाली होता देखकर उन्होंने कहा। हे अम्ब ! क्या सब पी जाओगी, हमें नहीं दोगी, हठ करते हुये रुदन करने लगे। तब भाव वत्सला जगदम्बा ने बालक को गोद में लेकर दुलार करती हुई दूध पिलाने लगी। उस दुग्ध में ज्ञान, वैराग्य तथा काव्य धारा भरी थी। यह आचार्य की कुल देवी थीं। जगदम्बा के दाहिने स्तन से ज्ञान तथा वैराग्य धारा तथा बायें स्तन से काव्य धारा प्रवाहित हुई। इसी भाव को व्यक्त करते हुये आचार्य पाद ने 'सौंदर्य लहरी' के ९७वें श्लोक में कहा है। इस ग्रन्थ पर सौभाग्यवर्द्धिनी, अरुणामोदिनी, आनन्द गिरीय तथा भास्कर राय की व्याख्यायें हैं। हे जगदम्ब ! आपका यह द्रविड़ शिशु आपके

स्तन पान के प्रभाव से ही ज्ञान वैराग्य को प्राप्त करके काव्य रचना करने में सक्षम हुआ है। भगवती के प्रकट होने पर भक्तिपूर्वक स्तुति करके पूजा समाप्त की। देव मन्दिर से निकल कर माता के साथ घर पहुंचे। कुछ दिनों के बाद पिता जब लौट कर आये तब बालक का तेज़ देखकर अति विस्मय को प्राप्त हुये। भगवती ने आकाशवाणी द्वारा कहा—आपका यह पुत्र साधारण बालक नहीं है, बल्कि स्वामी कार्तिक ही तुम्हारे पुत्र के रूप हैं, इसमें सन्देह नहीं, अथवा विष्णु ने ही बालक रूप धारण किया है या सत्यवती नन्दन भगवान व्यास ही इस बालक के रूप में विद्यमान हैं। इस प्रकार देवी ने प्रशंसा की।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, सप्तमोऽध्यायः॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

उपनयन संस्कार

उपनयन के बाद पिता के स्वर्ग चले जाने पर इनका वेदारम्भ संस्कार हुआ। पिता की मृत्यु के सम्बन्ध में दिग्विजयों में दो प्रकार की कथाएं पाई जाती हैं। 'चित्सुखीय प्राचीन शंकर विजय', 'चिद्विलासीय जगद् गुरु रत्नमाला' आदि के ग्रन्थकार शंकर विजय का अनुसरण करते हैं।

दूसरे ग्रन्थकार "आनन्द गिरीय", "व्यासाचलीय", माधवीय, 'गोविन्द नाथीय' 'एवं गुरुवंश काव्यम्' दूसरे प्रकार से कहते हैं। पिता की मृत्यु उपनयन से पहले हुई या बाद में, इसके सम्बन्ध में सुषमा टीकाकार ने लिखा है कि "शिव गुरु जी ने अपने हाथ से उपनयन किया, बाद में उनकी मृत्यु हुई।" उनका वेदारम्भ संस्कार बाद में हुआ। शिव रहस्य में भी यही बात आई है। धर्म शास्त्रों में उपनयन दो प्रकार का कहा है। प्रथम ब्रह्म रूप गायत्री के उपदेश से ब्रह्म के समीप ले जाने वाला। दूसरा वेदाध्ययन की योग्यता प्राप्त करके गुरु के सामने ले जाना। इसमें प्रथम उपनयन पिता द्वारा हुआ। गुरुकुल की प्राप्ति, माता या बन्धु वर्ग द्वारा हुई। इसी कथा प्रसंग को लेकर प्राचीन शंकर विजय, चिद् विलास तथा गोविन्द नाथ लिखते हैं कि, उपनयन के अनन्तर पिता के स्वर्ग जाने के बाद माता की आज्ञा प्राप्त कर शंकर दण्ड कमण्डल धारण करके गुरुकुल में वेदाध्ययन करने लगे। धर्मशास्त्रों में आया

है। ब्रह्मतेज की इच्छा वाला ब्राह्मण पिता अपने पुत्र का पांच वर्ष में, क्षात्र तेज की इच्छा वाला क्षत्रिय ६ वर्ष में, कुबेर के समान धनपति बनाने की इच्छा वाला वैश्य ७ वर्ष में उपनयन करे। गुरु सेवा करते हुये शंकर वेदाध्ययन करने लगे।

दरिद्रा ब्राह्मणी पर कृपा

गुरुकुल में वास करते हुये शंकर अपने सहपाठियों सहित एक दिन निर्धन ब्राह्मण के घर में गये। ब्रह्मचारी जी का ब्राह्मण ने सत्कार किया तथा पत्नी से भिक्षा देने को कहा। पत्नी बोली, दुर्भाग्य से मेरे घर में देने के लिये कुछ नहीं है। उस दीना के पास एक सूखा आंवला था वही ब्रह्मचारी की झोली में डाल दिया। ब्रह्मचारी जी ने दया से द्रवीभूत होकर "कनकधारा स्तोत्र" से लक्ष्मी जी की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न हुई जगन्माता ने स्वर्ण के आंवलों की वर्षा की। लक्ष्मी ने प्रकट होकर कहा कि तुम्हारे हृदय की भावना को मैं जानती हूं। वह स्वर्ण आंवला वृक्ष स्थान कालटी से नैर्ऋत्य कोण में १५ मील की दूरी पर 'पलमतोहम्' नाम से प्रसिद्ध ग्राम है। आठ वर्ष में ही आचार्य ने वेद, इतिहास, पुराण, महाभारत, धर्मशास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। गुरु जी को दक्षिणा देकर माता जी के पास लौट आये। आकर माता की सेवा करने लगे। उनका सातवां वर्ष समाप्त होकर आठवां लगने ही वाला था। उसी समय वशिष्ठ, बाल्मीकि, पराशर, भरद्वाज, दुर्वासा, अत्रि आदि ऋषि बाल शंकर के दर्शन के लिये पहुंचे। माता ने ऋषियों का यथोचित सत्कार किया। बाल शंकर की स्तुति के अनन्तर ऋषियों ने कहा—आप साक्षात् शिव है। आठ वर्ष के लिये धरा धाम पर आये थे। आप का कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ। अतः हम आपको आठ वर्ष और देते हैं। ऐसा कहकर चले गये। पुत्र को सभी प्रकार से योग्य देखकर तथा अपने को वृद्ध जानकर माता ने विवाह का विचार किया। दक्षिण में बाल विवाह आज भी प्रसिद्ध है किन्तु पुत्र ने स्वीकार नहीं किया। कालटी में रहकर शंकर मातृ सेवा करते हुये विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे। बालक की अद्वितीय प्रखर बुद्धि का समाचार पूरे केरल प्रदेश में छा गया। ऐसे दिव्य बालक के दर्शन करने के लिये राज शेखर नामक केरल के राजा बहुत सा धन लेकर कालटी पहुंचे तथा अपने लिखे हुये तीन नाटक सुनाये। प्रणाम करके बहुत सा द्रव्य आगे रखा। किन्तु उन्होंने द्रव्य का स्पर्श नहीं किया। वापस करके कहा, इस धन से निर्धनों की सेवा करो।

माता नित्य प्रति पूर्णा नदी में स्नान के लिये जाया करती थीं। उन दिनों नदी उनके गांव से तीन मील की दूरी पर थी। एक दिन ज्येष्ठ मास की प्रचण्ड धूप में छाता धारण करने पर भी माता स्नान करके लौटते समय मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। इनको सूचना मिलते ही भागते हुये पहुंचे। माता को गोद में लेकर पंखा की हवा करके शुश्रूषा की। जननी की इस व्यथा को दूर करने के लिये आचार्य ने वरुण सूक्त से वरुण की आराधना की। तब नदी की धारा इनके घर के समीप से बहने लगी।

आतुर-संन्यास

इनके आठ वर्ष पूरे होने वाले थे। एक दिन माता के साथ नदी में स्नान कर रहे थे। उसी समय एक भयंकर तीक्ष्ण दाढ़ों वाले एक ग्राह ने इनका पैर पकड़ लिया। चिल्लाते हुये माता को पुकारा कि बली ग्राह मुझे जबरदस्ती नदी में लिये जा रहा है। अब मैं क्या करूं। मैं अष्ट मूर्ति शिव हूं मेरा आठ वर्ष का जीवन था। अब मैं क्या करूं। मां भी क्या कर सकती थी। दोनों रुदन करने लगे। माता जी मुझे संन्यास की आज्ञा दो। ब्राह्मण को संन्यास के बिना शरीर त्याग नहीं करना चाहिये। मुझे आतुर संन्यास की आज्ञा दो। इससे पूर्व भी आचार्य ने माता से कई बार संन्यास के लिये प्रार्थना की थी। किन्तु माता ने अनुमति नहीं दी। तब इन्होंने ही अपनी माया से ग्राह का रूप धारण किया ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। हे मातः ! संन्यासी होने पर शायद मैं जीवन प्राप्त कर सकूं। पुत्र का वचन सुनकर उसके जीवन की आशा से माता ने आज्ञा दे दी। शंकर ने तुरन्त ही तीन बार अपनी सभी इन्द्रियों तथा मन को रोककर संन्यास मंत्र पढ़कर 'संन्यस्तोऽहं' कहा। ऐसा संकल्प करते ही ग्राह छोड़कर चला गया। जल से बाहर निकलकर माता को प्रणाम करके बालक ने कहा। अब मैं संन्यासी हो चुका हूं, मुझको अब जाने की आज्ञा दो। मेरा पैतृक धन जो तुम्हारी सेवा करे और लेने की इच्छा करे उसे दे दो। हे माता जी ! धर्मशास्त्रों में लिखा है रोग से पीड़ित, भयभीत, ग्राम, घर में आपत्ति प्राप्त होने पर, शत्रुओं से घिरा हुआ, हिंसक जीवों से घिरा हुआ आतुर संन्यास ले सकता है। माता आर्याम्बा अति धनाढ्य तथा विद्वान पिता की पुत्री तथा महाधनी और विद्वान ससुर की वधू तथा स्वयं विदुषी थीं। पुत्र से बोली—तुम ग्राम से बाहर रहकर यति धर्म का पालन करते हुये संन्यासी जीवन व्यतीत करो। परन्तु मेरी आंखों से दूर न हो। मैं असहाय पतिविहीना पहले ही हूं। तुम भी छोड़ कर चले जावोगे तो मैं अनाथ क्या करूंगी। पुत्र ने कहा मैं जो

साधन भजन करूंगा उसका फल आपको अर्पण करूंगा। वह शतगुना फलीभूत होगा। माता पुत्र का सम्वाद सुनकर सभी ग्रामवासी एकत्रित होकर रुदन करने लगे। शंकर केवल माता तथा ग्रामवासियों के ही प्रिय नहीं थे, प्रत्युत पूरे क्षेत्र को प्रिय थे। अपने पुत्र के समान उन सबका शंकर के प्रति वात्सल्य भाव था। सभी रुदन करते हुये बोले हम को छोड़कर कहां जावोगे। उन्होंने कहा कोई किसी का पिता पुत्र नहीं है इस प्रकार ज्ञानोपदेश तथा सान्त्वना देकर जाने लगे। इनका अत्रिकुल नम्बूदरीपाद ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ था। अति सेवा परायण निर्धन अपने सगोत्री दम्पति को माता की सेवा में नियुक्त किया तथा माता की मृत्यु के अनन्तर सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति उनके नाम कर दी। माता ने जाते समय कहा, वर्षा ऋतु में पूर्णा नदी की बाढ़ में हमारा घर डूब जाता है तुम्हारे चले जाने के बाद बाढ़ से मेरी रक्षा कौन करेगा। तब आचार्यपाद ने अपने कुल इष्ट देवता भगवान श्री कृष्ण की चिरकाल से अप्रतिष्ठित मूर्ति प्रतिष्ठित की और माता से कहा यह पूर्ण ब्रह्म है इनकी आराधना से आपके घर में जल आना तो दूर रहा आज से लेकर इस नदी का जल गर्मी तथा वर्षा में न घटेगा न बढ़ेगा। ज्यों का त्यों पूर्ण रहेगा। इस नदी का प्राचीन नाम चूर्णी था। वर्षा की बाढ़ में सभी गांवों को चकनाचूर कर देती थीं। आचार्य के वचनों से तब से यह पूर्णा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इधर वह ग्राह भी जो किसी ऋषि के शाप से इस योनि को प्राप्त हुआ था। आचार्य का पाद स्पर्श करते ही दिव्य वस्त्राभूषणों से युक्त देव रूप में स्वर्ग को चला गया। यह सारी व्यवस्था करने के अनन्तर जब माता को प्रणाम करके आचार्य जाने लगे। तब माता ने कहा—"जब मैं तुम्हारा स्मरण करूं तब तुम्हें आना पड़ेगा। मेरा अन्तिम संस्कार तुम अपने हाथ से स्वयं करना।" माता को वचन देकर प्रणाम करके चले गये। उनके चले जाने पर राम के वन गमन के समय माता-पिता और अयोध्यावासियों की जो दशा थी वही दशा माता तथा कालिटी वालों की हुई।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, अष्टमोऽध्यायः ॥



अथ नवमोऽध्यायः

विविदिशा संन्यास

कालटी में जिन गुरुओं से शंकर वेदाध्ययन करते थे, उनसे ही सुन रखा था कि शेषावतार पतंजलि ही वर्तमान काल में गौड पादाचार्य जी से संन्यास लेकर गोविन्द भगवत्पादाचार्य के नाम से नर्मदातट पर निर्विकल्प समाधि में सदैव स्थित रहते हैं। तब से उनके दर्शन शास्त्राध्ययन, योगाभ्यास तथा संन्यास की इच्छा से उनके पास जाने लगे। अनेकों ग्रामों, नदियों को पार करते हुये वे तपोवन में प्रविष्ट हुये। वहीं पर एक मुनि को प्रणाम करके उनसे गोविन्द भगवत्पाद का पता पूछा। उन्होंने हाथ के इशारे से दिखा दिया। इनकी गुफा के चारों ओर अनेकों घने पेड़ थे। वहीं पर समीप की गुफा में रहते थे। दूर से ही गुफा को देखकर दण्डवत् प्रणाम किया। कुछ ग्रन्थों में गुरुदेव का निवास काशी तथा बदरी में बताया गया है। किन्तु माधवीय दिग्विजय में कहे हुये लक्षण उक्त स्थानों में नहीं पाये जाते। अतः वह नहीं हो सकते। गुफा के पास पहुंचते ही इन्होंने गुफा की तीन परिक्रमा करके प्रणाम किया एवं अपने गुरु की शेष तथा पतंजलि के रूप में अवतारों का वर्णन करते हुये स्तुति की। कुछ ग्रन्थों में मिलता है कि जिस समय शंकर वहां पहुंचे इससे पहले ही छः और ब्राह्मण युवावस्था में संन्यास के लिये आये, समाधि खुलने की प्रतीक्षा करते हुये वृद्ध हो चुके थे। छः दिन तक शंकर को प्रतीक्षा करनी पड़ी। सातवें दिन उनकी समाधि खुली। गुरु देव ने पूछा—तुम कौन हो ? तब इन्होंने अपना पारमार्थिक परिचय देते हुए कहा—**न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु** इत्यादि दस श्लोकों द्वारा अपना परिचय दिया जो "आत्म दशकम्" स्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पहले श्लोक में ही वासुदेव शास्त्री जी ने ६८ पृष्ठों में मधुसूदनी टीका सहित व्याख्या की है। इसका दूसरा नाम 'सिद्धान्त बिन्दु' भी है। प्रसन्न हुये आचार्य पाद ने अति तेजस्वी बालक को देखकर प्रसन्न होकर कहा तुम धन्य हो, तुमने अपने कुल को पवित्र कर दिया है। जो अविद्या कामादि बन्धन से छूटकर मुक्ति की इच्छा करते हो। मुक्ति की प्राप्ति योग, सांख्य, कर्म या विद्या से करोड़ों कल्पों में भी नहीं हो सकती। मुक्ति का एक मात्र उपाय ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान ही है। तुम वेद विधि से तत्त्व ज्ञान के लिये संन्यास ग्रहण करो। ऐसा कहकर उन्हें संन्यास दिया। संन्यास लेकर प्रथम चातुर्मास्य गुरु चरणों में ही किया।

श्री शंकराचार्य जी के संन्यास से पूर्व भगवान वेद व्यास जी तथा श्री गौड पादाचार्य जी श्री गोविन्दाचार्य के पास पहुंचे थे। दोनों ने शंकर का अवतार होने की सूचना दी थी। व्यास जी ने कहा था कि यद्यपि उपनिषदों में बालक के लिये संन्यास निषेध है परन्तु शंकर द्राविड़ बालक के रूप में संन्यास के लिये आयेंगे। वे शंकर के ही अवतार हैं। इसकी परीक्षा के लिये विष्णु सहस्र नाम पर भाष्य लिखवाना तथा जो बालक नर्मदा की बाढ़ का जल अपने कमण्डल में भर ले। एक बूंद भी जल आपकी गुफा में न जाने दें। उसे संन्यास अवश्य देना। उन्होंने दोनों परीक्षा लेकर संन्यास दिया।

गोविन्द गुफा तथा गौड पादाचार्य की गुफा

भगवत्पाद गोविन्दाचार्य की गुफा के सम्बन्ध में अनेकों विचार हैं। अधिक लोगों का कथन है कि ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग में गुफा में रहते थे। चिद्विलासीय दिग्विजय तथा आनन्दगिरीय में उनकी संन्यास दीक्षा बद्रीनारायण तथा चिदम्बरम् में लिखी गई है। किन्तु वहां पर नर्मदा न होने से मान्य नहीं है। नर्मदा तट पर चार स्थानों का उल्लेख मिलता है—१. माण्डला जिले में ढिढोरी के समीप कोकड़ मठ जिसे कुकर्रा मठ भी कहते हैं २. अमरकण्टक ३. मांधाता द्वारा स्थापित ओंकारेश्वर ४. नृसिंह पुर ज़िले में सांकल के समीप। कुछ विद्वानों के मत में अमर कण्टक और ओंकारेश्वर को एक माना।

कुकडमठ के सम्बन्ध में कामकोटि के विद्वान अपनी अंग्रेज़ी की पुस्तक "श्री भगवत् पाद शंकराचार्य' में जो प्रयाग से प्रकाशित हुई है। 'नर्मदा परिक्रमा' नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है "कोंकड मठ वोन्दर ग्राम से छः मील नर्मदा के दक्षिणी तट पर मचरार (गोमती) नदी के किनारे 'डिंडोरी' की सड़क के पास कोंकड़ मठ है।" यहीं पर शंकराचार्य जी के द्वारा निर्मित रण मुक्तेश्वर नाथ का प्राचीन मंदिर है। जो जीर्ण शीर्ण है। लोग कहते हैं कि प्रतिदिन रात्रि में एक लाल आंखों वाला सर्प शिव मूर्ति से लिपट जाता है तथा प्रातःकाल चला जाता है।

इस कथा के आधार पर यह सिद्ध किया गया है कि यहीं पर शंकर का संन्यास हुआ। यहीं पर उनके गुरुदेव रहते थे। शंकराचार्य ने गुरु गुफा के समीप ही मठ बनाया। कुप्पू स्वामी जी ने लिखा है, शेषावतार गोविन्दाचार्य थे। वहां की लोक मान्यतानुसार यही स्थान निश्चित किया।

श्री शंकराचार्य जी की 'दीक्षा स्थली' नामक ग्रन्थ में जिसके लेखक श्री. के. सी. दुबे हैं, लिखते हैं कि श्री कुप्पू स्वामी जी को वहां की भौगोलिक स्थिति की जानकारी नहीं है। आदिशंकर द्वारा कमण्डल में नर्मदा के जल भरने की कथा प्रसिद्ध है। नर्मदा नदी कोंकड मठ से ६ मील दूर है। इतनी दूर नदी का पानी जाना असम्भव है। इस मठ के सम्बन्ध में लोक कथा प्रसिद्ध है कि यहां कुत्ते की समाधि है। उसके मालिक ने उसे बनवाया था। ऐसा स्थान कदापि शंकराचार्य की दीक्षास्थली नहीं हो सकती। इस समय वहां न तो कोई मन्दिर न मूर्ति ही है। ऐसे स्थान को मान्यता नहीं दी जा सकती है।

दो स्थान शेष रहे पहला ओंकारेश्वर २. नृसिंहपुर ज़िले में सांकल के समीप नर्मदा के उत्तरी तट पर 'नर्मदाहरिणी संगम' के समीप एक पर्वतीय गुफा है। इस गुफा को श्रीजगद्‌गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज ने गोविन्दपाद की गुफा कहा है। दूसरी ओर कामकोटि मठ के आचार्य जयेन्द्र सरस्वती जी ने ओंकारेश्वर स्थान को गोविन्द गुफा कहा है। वे वहां पर शंकर स्मारक बना रहे हैं। 'माधवीय शंकर दिग्विजय' में गुफा के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है—जिस प्रकार सूर्यास्त होने के पूर्व आकाश लाल हो जाता है उसी रंग के वस्त्र धारण किये हुये शंकर ने नर्मदा नदी के तट पर स्थित गोविन्द वन में प्रवेश किया। जैसे सूर्य अस्ताचल के अन्तिम शिखर में प्रवेश करते हैं वैसे ही शंकर ने नर्मदा किनारे वृक्षों से बहकर आती हुई वायु के स्पर्श से अपनी थकावट दूर करते हुये गोविन्द वन के मध्य भाग में प्रवेश किया। वहां पर वृक्षों की शाखाओं पर लटकते हुये मृगचर्म वल्कल आदि द्वारा, जो वहां पर मुनियों के रहने की सूचना दे रहे थे। वहां के उपस्थित मुनियों से पूछ कर, गुफा के समीप पहुंचे। जिसका द्वार प्रादेश मात्र था अर्थात् छिद्र ही द्वारपाल का काम करता था। शंकर ने ऐसी गोविन्दाचार्य की गुफा को कौतुक पूर्ण दृष्टि से देखा।

इन उपर्युक्त श्लोकों से सिद्ध होता है कि उनकी गुफा पेड़ों से घिरी हुई थी द्वार अत्यन्त सूक्ष्म था। आदि शंकर ने प्रवेश करने के पहले उसकी तीन परिक्रमा करके गुरु की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर गुरु जी ने उन्हें बुलाया। अतः गोविन्दाचार्य का स्थान गुफा संकीर्ण द्वार परिक्रमा के योग्य होना चाहिये। ओंकारेश्वर में कोई गुफा नहीं है। खुला मैदान है। इसके विपरीत सांकल के समीप संगम की गुफा में माधवीय दिग्विजय में कही तीनों विशेषतायें पाई जाती हैं। यह गुफा चूने की चट्टानों के बीच में है। ओंकारेश्वर की गुफा का द्वार बहुत ऊंचा

है। उस गुफा में आज भी प्रवेश करना सरल नहीं है। अतः "सांकल की गुफा" ही गोविन्द पाद की गुफा सिद्ध होती है। सांकल, शंकर का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। जैसे लखनऊ शब्द लखन का बिगड़ा रूप है। ग्वालियापुरी से ग्वालियर, आम्रकूट से अमर कंटक, जावालिपट्टम से जबलपुर हुआ। इसी प्रकार शंकर से सांकल बना।

श्री शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज जी ने वहां पर तपस्या की थी तथा इस स्थान का जीर्णोद्धार किया। इसी गुफा के समीप लगभग छः सात मील की दूरी पर नर्मदा तट पर ही श्री गौडपादाचार्य की गुफा है। वहां पर एक प्राचीन शिव मन्दिर पाया गया। इसके सम्बन्ध में खोज अभी जारी है। इस समय वहां पर जैनियों का अधिकार है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, नवमोऽध्यायः ॥

अथदशमोऽध्यायः

प्रथम चातुर्मास्य व्रत तथा गुरु सेवा, प्रस्थानत्रयी का श्रवण मनन तथा निदिध्यासन—इस चातुर्मास्य में आदि शंकर ने गुरु सेवा करते हुये गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तीनोंकी विस्तृत व्याख्या सहित अद्वैतपरक अर्थ हृदयंगम करते हुये श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने लगे।

निदिध्यासन करते हुये विचार करने लगे। मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच महाभूत नहीं हूं। परन्तु निर्विकल्प, निराकार, सर्वव्यापी, असंग, ज्ञान स्वरूप शिव हूं। जैसे आंख के रोगी को एक चन्द्रमा दो दिखाई देते हैं। आंख रोग रहित होने पर एक दीखता है। वैसे ही ब्रह्म एक होने पर भी माया दोष से अविवेकियों को अनेक रूप में दीखता है। माया दोष से रहित होने पर एक अनुभव में आता है। इस प्रकार स्वरूप चिन्तन करते हुये वे कई कई सप्ताह निर्विकल्प समाधि में स्थित हो जाते थे।

नर्मदा का जल कमण्डलु में भरना

एक बार कई दिनों तक निरन्तर वर्षा होती रही। सर्वत्र जल ही जल दिखाई दे रहा था। गुरु जी कई महीनों से समाधि में बैठे थे। तब इन्होंने नर्मदा अष्टक स्तोत्र द्वारा नर्मदा की स्तुति करके प्रसन्न किया और कमण्डलु में जल भर लिया। एक बूंद जल गुफा में नहीं पहुंची। एक

दिन गुरु जी ने उपदेश देते हुये कहा मैंने गुरु परम्परा से बद्रिकाश्रम में अपने गुरु गौडपादाचार्य जी से ब्रह्मविद्या प्राप्त की है। वह तुम को दे दी है। गुरुदेव जी ने उपनिषदों के सिरमौर "माण्डूक्योपनिषद्" पर कारिका लिखी है। उन पर तुम भाष्य लिखो, तब मैं तुम पर प्रसन्न होऊंगा। हे भद्र ! वाराणसी जाओ। प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर अधिकारी शिष्यों को उपदेश करो। जैसे तुमने नर्मदा की अपार बाढ़ का जल कमण्डलु में भरा है। वैसे ही वेदान्त सिद्धान्त जो नर्मदा जल के समान बिखरा है उसे हृदय रूपी कमण्डलु में धारण करो और जगत् का उद्धार करो। शिष्य शंकर को आज्ञा देकर गोविन्द भगवत्पाद गुरु सेवा तथा दर्शनार्थ गौडपादाचार्य जी के पास बद्रीनारायण चले गये। आचार्य शंकर भी गुरु को प्रणाम करके काशी चले गये। काशी में जाकर उन्होंने काशी की गंगा, शिव, गणेश आदि देवताओं की स्तुति की। विश्वेश्वर भगवान् को प्रणाम किया।

सनन्दन की संन्यास दीक्षा

द्रविड़ देश के कावेरी तटवर्ती चोल देशीय ब्राह्मण सनन्दन नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। श्रीरंगम में तीर्थ यात्रा करते हुये मामा के घर पहुंचे। विष्णु के अंशावतार, कुछ दिग्विजयों में अरुण का अंशावतार कहा है। माधवीय दिग्विजय में पिता का नाम अरुण, माता का विमला देवी कहा है। कहीं-कहीं जैसे वायु तथा रुद्र के मिश्रित अंश से हनुमान जी को कहा है वैसे ही इनको भी विष्णु और अरुण के अंश से बताया गया है। सदानन्दीय दिग्विजय में इन्हें चन्द्रमा का अंश, चिद्विलासीय में इनका जन्म अहोविल क्षेत्र में पिता माधव तथा माता लक्ष्मी के गर्भ से हुआ था। दोनों ने नरसिंह की आराधना करके स्वप्न में नृसिंह भगवान के दर्शन किए। उन्होंने वरदान दिया कि मेरे अंश से तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। गोविन्द नाथीय दिग्विजय में श्री कुण्ड ग्राम में सोम शर्मा ही नरसिंह की कृपा से सनन्दन के रूप मे अवतरित हुये थे। विष्णु शर्मा भी इनका नाम था। यह तीर्थ यात्रा करते हुये काशी पहुंचे। शंकर को देखते ही चरणों में गिर पड़े। गुरु जी ने उठाकर पूछा तुम कौन हो, घर कहां है, कहां से आये हो। बालक होने पर भी बुद्धिमान दीखते हो। इन्होंने कहा, मैं चोल देश से आया हूं, मुझ पर कृपा करो। मेरे गुण, दोषों पर विचार न करके मुझे अपनाओ।

वैदिक सनातन धर्म का प्रचार करने के लिये शिव आज्ञा प्राप्त करके अन्य देवता भी इनके शिष्य रूप में अवतरित हुये। ब्रह्मा मण्डन के रूप में, दुर्वासा के शाप से सरस्वती उनकी

पत्नी उभय भारती के रूप में, स्वामी कार्तिक कुमारिल भट्ट, देवगुरु वृहस्पति, हस्तामलकाचार्य, त्रोटकाचार्य अग्नि का अवतार, इन्द्र महाराज सुधन्वा के रूप में, इन चार शिष्यों के अतिरिक्त समित्पाणि, चिद्विलास, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्ण दर्शन, बुद्धिवृद्धि, विरंचिपाद, शुद्धानन्द आदि शिष्य थे। बालक ने कहा मैं सनन्दन हूं। इनको गंगा तट पर आचार्य पाद ने संन्यास दीक्षा दी।

विश्वनाथ की कृपा

एक दिन आचार्य शंकर प्रातःकाल शिष्यों सहित गंगा स्नान करके नित्य कर्म के अनन्तर लौट रहे थे। मार्ग में ही इन्होंने मैले-कुचैले वस्त्र धारण किये हुये मदिरा सिर पर रखे हुये, हाथ में चार कुत्तों की डोरी पकड़े हुये, दो पत्नियों सहित एक अन्त्यज को देखा। उसको देखते ही स्वामी जी ने "गच्छ, गच्छ" कहा। इसको सुनकर अन्त्यज बोला—"आप किसको जाने को कहते हो। एक अद्वितीय निर्दोष, असंग, सत्य ज्ञान स्वरूप, अखण्ड आनन्द ब्रह्म को दूर करते हो या अन्नमय कोष को" अर्थात् हे द्विजवर ! अन्नमय कोश से अन्नमय कोश को या चैतन्य से चैतन्य को दूर करते हो। "हे विद्वन् ! गंगा में प्रतिबिम्बित होने वाला सूर्य तथा चाण्डाल की वापी में प्रतिबिम्बित होने वाले सूर्य के प्रतिबिम्ब में क्या अन्तर है। सोने के घड़े के भीतर आकाश में तथा मिट्टी के घटाकाश में क्या कोई अन्तर है। आत्मा में कोई भेद नहीं है, फिर यह ब्राह्मण है, यह चाण्डाल है, यह भेद भ्रम मात्र है। यदि आप व्यवहार को लेकर कहते हो तो यह बनता नहीं, क्योंकि मैं पवित्र ब्राह्मण हूं। तुम अपवित्र श्वपच हो। इसलिए दूर हट जावो। हे मुनिवर ! आपका यह भेद भ्रम मिथ्या है क्योंकि अनेकों शरीरों में एक ही आत्मा है" इत्यादि उस चाण्डाल के वचन सुनकर आचार्यपाद ने 'मनीषापंचक' नामक स्तोत्र की रचना की। उन्होंने कहा, "जाग्रतादि" तीन अवस्थाओं में जो एक चैतन्य है, जगत् साक्षी ब्रह्म, ब्रह्म से लेकर चींटी पर्यन्त सभी शरीरों में मणि में सूत्र के समान जो सब में ओत-प्रोत हैं। "दृश्य मिथ्या है। द्रष्टा चैतन्य सत्य है" ऐसी जिसकी दृढ़ बुद्धि हो चुकी है वह चाण्डाल हो या ब्राह्मण वह मेरा गुरु है। इस स्तुति के पूर्ण होते ही वह चाण्डाल दोनों पत्नियों तथा कुत्तों सहित लुप्त हो गया तथा आचार्य पाद ने, विशालाक्षी पार्वती सहित शिव को देखा। देवता तथा महर्षि स्तुति कर रहे थे। वह कैलाश के समान श्वेत बैल पर सवार थे। उनका वस्त्र हाथी चर्म, तथा कुत्ते चार वेदों के रूप में, मस्तक पर विद्यमान मदिरा गंगा के रूप, दो

अनुचर स्वामि कार्तिक और गणेश के रूप में, परिणत हो गये। विश्वनाथ भगवान् ही उनकी परीक्षा के लिये अन्त्यज के रूप में आये थे। शिव रूप में उन्होंने दण्ड सहित प्रणाम करके स्तुति की। चाण्डाल के रूप में प्रणाम नहीं किया। टी. वी. में चाण्डाल के रूप में दण्ड सहित प्रणाम करते दिखाया। जोकि धर्मशास्त्र तथा दिग्विजयों के विरुद्ध है।

परम गुरु की कृपा

कुछ काल काशी वास के अनन्तर भगवान् विश्वनाथ से आज्ञा प्राप्त कर उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा करते हुये मुनियों के साथ बद्रिकाश्रम पहुंचे। वहां पर बारह वर्ष की समाधि में बैठे हुये परम गुरुओं को ऋषियों से सुना। गुरु गोविन्द पाद भी ऋषियों सहित वहां प्रतीक्षा में थे। गुरु चरणों में शंकर ने प्रणाम किया। कुछ दिन बाद परम गुरु की समाधि खुली। गुरु दर्शन तथा प्रणाम करने के लिये गोविन्द भगवत्पाद पहले पहुंचे। उनके प्रणाम स्तुति के अनन्तर प्रशिष्य ने प्रणाम किया। परमाचार्य ने आशीर्वाद दिया। परमाचार्य की आज्ञा प्राप्त करके इन्होंने बद्रिकाश्रम में ही दस बारह उपनिषदों पर गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर अति गम्भीर तथा विस्तृत भाष्य लिखकर परम गुरु को दिखाया। अपनी कारिकाओं सहित सभी भाष्यों को देखकर परमाचार्य बहुत प्रसन्न हुये एवं आज्ञा की, जिस परम तत्त्व का प्रतिपादन तुमने अपने भाष्यों में किया है उसका साक्षात्कार करो। तुम्हें सफलता प्राप्त होगी। गुरु आज्ञा प्राप्त कर वह इसी कार्य में लग गये। कुछ दिग्विजयों में वद्रिकाश्रम में तथा कुछ में वाराणसी का वर्णन आया है। भाष्य देखकर प्रसन्न हुये परमाचार्य ने कहा—कहां तो १६ वर्ष की अत्यन्त कम आयु और कहां अद्वैतभाव को व्यक्त करने वाला सर्वोत्तम भाष्य, निश्चय ही सदाशिव सर्वज्ञ शंकर के अतिरिक्त मुमुक्षुओं को यह परम धन दूसरा कोई नहीं दे सकता। आज जीवन पर्यन्त की मेरी, मेरे गुरुदेव शुकदेव जी की, परम गुरुदेव वेद व्यास जी की तथा शिष्य गोविन्दाचार्य की योग साधना सफल हो गयी है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे दशमोऽध्यायः।



अथ एकादशोऽध्यायः

श्री सनन्दन की गुरु भक्ति तथा पद्मपाद नाम से प्रसिद्धि

आचार्य पाद ने सनन्दन को संन्यास देने के अनन्तर शारीरिक भाष्य पढ़ाना आरम्भ किया। अनेकों शिष्यों के साथ सनन्दन अध्ययन करने लगे। एक दिन काशी में गंगा के उस पार सनन्दन खड़े थे। आचार्य ने उन्हें भाष्य पढ़ने के लिये पुकारा। गंगा जी के उस पार आने के लिये नौका या पुल नहीं था। गुरु आज्ञा प्राप्त होते ही वे गंगा की गंभीरता पर बिना विचार किये शीघ्रता से गंगा पार करने लगे। भगवती गंगा ने उनकी गुरु भक्ति देखकर जहां वे चरण रखते थे वहां पर कमल पैदा हो जाते। कमलों पर पैर रखते हुये गंगा पार करके गुरु जी को प्रणाम किया। उनकी गुरु भक्ति से प्रसन्न होकर गुरु जी ने उनका नाम पद्मपादाचार्य रख दिया।

व्यास जी से शास्त्रार्थ तथा व्यास जी की कृपा

यह कथा प्रसंग दो प्रकार से मिलता है आनन्दगिरीय, माधवीय, चिद्विलासीय, सदानन्दीय तथा भगवत्पादाभ्युदय ग्रन्थों में शंकर के द्वारा अपने सूत्रों का भाष्य सुनने के लिये, तथा व्यासाचलीय, गुरुवंश काव्यम् आदि ग्रन्थों में यु. सं. २६४७ कार्तिक शुक्ला ८ से ब्रह्म विषयक विचार व्यास जी से हुआ। जिस समय आचार्य पाद शिष्यों सहित भाष्य पाठ करने से पूर्व शान्ति पाठ कर चुके थे, व्याख्या करने ही वाले थे। इतने में ही एक वृद्ध ब्राह्मण वहां पर आ गये। ब्राह्मण ने पूछा—तुम कौन हो ? क्या पढ़ाते हो ? शिष्यों ने कहा—ये हमारे गुरुजी हैं। स्वतन्त्र रूप से उपनिषदों की शंका का समाधान करते हुये शारीरिक सूत्र भाष्य पढ़ा रहे हैं। तब वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—कि "क्या यह सभी सूत्रों का यथार्थ तत्त्व समझते हैं, तो यह किसी एक सूत्र की व्याख्या सुनायें।" तब भाष्यकार ने कहा—सूत्र के भाष्यकर्त्ताओं गुरुओं को प्रणाम करता हूं। सूत्र के तात्पर्य जानने का अहंकार मुझ में नहीं है फिर भी आप जो पूछेंगे, यथा सम्भव उत्तर दूंगा। तब ब्राह्मण ने तीसरे अध्याय के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र की व्याख्या पूछी। वृद्ध ने फिर कहा **"तदनन्तर प्रतिपत्तौरंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्न निरूपणाभ्यां" इति सूत्रस्य को वा भवताधिगतः"** तदनन्तर शरीर त्यागने के बाद सूक्ष्म कारण शरीर सहित जीव अकेला ही परलोक में जाता है, अथवा अनेकों के साथ जाता है।

इस प्रश्न के उत्तर का निरूपण करने से, अर्थात् प्रश्न का उत्तर देते हुये पञ्चाल नरेश ने कहा—इस सूत्र का आपने क्या अर्थ समझा है।

परम गुरु बोले—जीव का मुख्य सचिव प्राण है, जीव प्राण तथा दसों इन्द्रियां मन सहित अविद्या, कर्म, पूर्व-प्रज्ञा इन सबको साथ लेकर पूर्व देह को छोड़कर नवीन देह प्राप्त करता है। अब प्रश्न होता है कि जीव देह के बीज भूत सूक्ष्म पंच महाभूतों के सहित जाता है या अकेले। इस पर विचार करते हैं।

वृद्ध ने कहा—पंचतन्मात्राओं सहित पंच सूक्ष्म महाभूत तो सर्वत्र सुलभ हैं, जहां शरीर का प्रारब्ध है जन्म से मृत्यु पर्यन्त सर्वत्र हैं। उन को ले जाना प्रयोजन रहित है। उनके सहित जाना निष्प्रयोजन है अतः अकेले ही जाता है।

वृद्ध की इस शंका का उत्तर देते हुये शंकर ने कहा—शरीर त्यागने के बाद इन सबके सहित जाता है। **तदनन्तर प्रतिपत्तौ**—शरीर त्यागने के अनन्तर दूसरे शरीर में शरीर के बीज भूत सूक्ष्मभूतों सहित **रंहति** गच्छति जाता है। ऐसा समझना चाहिये। कहां इस बात का निर्णय हुआ?

वो उत्तर देते हैं **प्रश्न निरूपणाभ्यां** छान्दोग्योपनिषद् में प्रश्न का उत्तर देते समय निर्णय किया। **वेत्थ यथा पञ्चम्याहुतावापः पुरुष वचसो भवन्ति (छा. ५/३३)** गौतम ने पांचाल नरेश से पूछा यज्ञ में छोड़ी हुई आहुति पांचवें स्थान पर जल रूप होकर पुरुष रूप प्राप्त करती है। इसका निरूपण करते हुये कहा—

द्युपर्जन्य, पृथिवी, पुरुष योषित्सु पंचस्वग्निषु श्रद्धा, सोम, वृष्ट्यन्न, रेतोरूपाः पंचाहुतीः दर्शयित्वा। इति पञ्चम्याहुतावापः पुरुष वचसोभवन्ति (छ ५/९/१) तस्मादद्भि परिवेष्टितो जीवो रंहति व्रजतीति गम्यते। अग्नि में श्रद्धापूर्वक छोड़ी हुयी आहुति आकाश में पुहंचती है। वहां से वादल, फिर पृथ्वी (अन्न) फिर पुरुष, स्त्री इन पांच अग्नियों में क्रमानुसार श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न तथा वीर्य रूप से प्राप्त पांच आहुतियों को दिखाकर पांचवीं आहुति पुरुष के वीर्य रूपी जल से स्त्री के गर्भाशय में पहुंच कर पुरुष रूप प्राप्त करती है। इसलिये अकेला जीव नहीं जाता किन्तु जलादि से घिरा हुआ जाता है। वृद्ध—हे यते ! आपका व्याख्यान दूसरे वेद की श्रुति से विरुद्ध है। अन्य श्रुति कहती है,

"जलूकावत् पूर्व देहं न मुञ्चति यावत् न देहान्तरमाक्रमति।" जोंक के समान जीव जब तक दूसरी देह में नहीं प्रवेश करता तब तक पूर्व देह का परित्याग नहीं करता।

(आपः—रत्नप्रभाव्याख्या—आप शब्द से)

इसी सूत्र के शांकर भाष्य की व्याख्या करते हुये रत्नप्रभा टीका के कर्त्ता श्री स्वामी गोविन्दानन्द सरस्वती जी महाराज लिखते हैं कि **आपः** आगामी प्राप्त होने वाले स्थूल शरीर का बीज पंचसूक्ष्म भूत **पंचस्वग्निषु** पांच अग्नियों में दी हुई आहुति **पंचम्यामाहुतौ** पांचवीं आहुति पुरुष शब्द के नाम से कही जाती है। अर्थात् पुरुष रूप में परिणत होती है किन्तु पंचम आहुति पुरुष रूप को कैसे प्राप्त करती है ? यह प्रश्न छान्दोग्योपनिषद् में पांचाल नरेश प्रवाहण ने श्वेतकेतु से किया था। वे उसका उत्तर नहीं दे सके, तब पिता गौतम से पूछा। पिता भी इसका उत्तर नहीं जानते थे। अतः सुकेशा सत्यवान् आदि महाशालीन नैष्ठिक ब्रह्मचारियों ने महाश्रोत्रियों के साथ समित्पाणि होकर राजा से पूछा—एक वर्ष के अनन्तर अग्नि विद्या के अधिकारी जानकर राजा ने कहा, हे गौतम ! लौकिकाग्नि में विधि विधानपूर्वक दी गई आहुति बादल और अग्नि सोमरूपा होकर श्रद्धा सहित दिधि आदि रूपी जल की यजमान जब आहुति देता है तो वह स्वर्ग लोक को प्राप्त करके सोम नाम वाले दिव्य देह में स्थित होती है। पुण्य कर्म का फल क्षीण होने पर शीघ्र ही बादलों को प्राप्त करती है। यजमान के इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं द्वारा बादल से वर्षा रूप से पृथ्वी को प्राप्त होती है। पृथ्वी पर पानी बरसने से अन्न रूप से पड़ती है। पुरुष के अन्तिम धातु के रूप में परिणत होकर स्त्री रूपी अग्नि को प्राप्त करके पुरुष रूप को प्राप्त करती है। पंचम आहुति का यह स्वरूप निरूपण किया।

वृद्ध के पूर्व प्रश्न का उत्तर देते हुये आचार्य पाद ने कहा—एक शरीर को छोड़ने और दूसरे को ग्रहण करने पर भी जीव अपने कर्म, वासना, पूर्व प्रज्ञा आदि जिस शरीर के सम्बन्ध में आपको शंका है, वह भावी देह भावना मय है। भावना से वह पिछले शरीर को बिना छोड़े भावी शरीर को प्राप्त करता है। यह जोंक के दृष्टान्त से कहा। सत्रह तत्त्वों सहित जीव बाद में आगामी शरीर को प्राप्त करता है। अतः विरोध नहीं।

वृद्ध—व्यापक आत्मा का तथा व्यापीकरणों का दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए कर्मों के अधीन होकर इसे वृत्ति लाभ होता है। अथवा केवल आत्मा से वृत्ति लाभ होता है। अथवा

नये शरीर के समान वही इन्द्रियां नये शरीर को प्राप्त होती हैं। अथवा नयी इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। अथवा केवल मन ही भोग स्थान में जाकर प्रतिष्ठित होता है। अथवा मेंढक या पक्षी के समान उछलकर या उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है। क्या वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जीव जाता है।

शंकर—आपकी पुरुष के प्रति यह अति प्रभावशाली कल्पना मात्र है। आपके चारों विकल्प तथा तर्क श्रुति विरोधी होने से आदर के योग्य नहीं।

वृद्ध—प्रश्नोत्तर में ऊपर कहे गये वचनों से केवल जल से मिलकर जीव जाता है। श्रुति के 'अप' शब्द की सामर्थ्य से। सर्व साधारण मनुष्यों को कैसे ज्ञान हो कि सूक्ष्म भूतों सहित जीव जाता है।

शंकर—इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया है **त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात्**—जीव का शरीर तीन तत्त्वों का होने से, अग्नि, पृथ्वी, जल इनमें से जल की प्रधानता होने से। सूत्र में तु शब्द से ऊपर की हुई शंका का समाधान किया जाता है। त्र्यात्मक आप जल का त्रिवृत्करण (अग्नि, जल, पृथ्वी) श्रुति में पाया जाता है। इन तीनों से इनके आरम्भक आकाश तथा वायु इन दो को ग्रहण कर लेना चाहिये। तीन तत्त्वों का कार्य यह स्थूल शरीर है, यह तीन तत्त्व त्रिधातु रस, वात, पित्त, कफ रूप हैं। केवल जल से ही इनका आरम्भ होता है। अन्य तत्त्वों की अपेक्षा जल अधिक है इसलिये 'आपः पुरुषवचसा' कहा। प्रश्नोत्तर वाक्य में अप् शब्द सभी प्राणियों के शरीरों में रस तथा रक्त रूप में द्रवीभूत तत्त्व की प्रधानता से कहा।

वृद्ध—तुम्हारा यह वचन श्रुति युक्ति, तर्क तथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है अतः माननीय नहीं। पुरुष शरीर में पार्थिव तत्त्व की अधिकता से पार्थिव शरीर कहते हैं। आपो कोई नहीं कहता।

शंकर—इसमें दोष नहीं है। अन्य तत्त्वों की अपेक्षा शरीर में जल अधिक है। सफेद, काले, शुक्र तथा शोणित से शरीर के बीजभूत दोनों में जल की अधिकता है। शरीरारम्भ के निमित्त कारण कर्म हैं। अग्निहोत्रादि कर्म जिनके सोमरस वल्ली विशेष का निकला हुआ रस। घी, दूध आदि पदार्थ द्रव्यमय हैं। ठीक-ठीक कर्म सहित विधि विधान श्रद्धापूर्वक दी हुई आहुति को जल रूप कहा। वह किये हुये कर्म द्वारा जीव स्वर्ग में जाता है। भाव यह है कि हवन सामग्री वर्षा का जल तथा मनुष्य की उत्पत्ति का कारण शुक्र शोणित जल रूप है। इसलिये अप् कहा। अतः यह व्याख्या दोष रहित है।

प्राण गतेश्च यह अगला सूत्र है । प्राणों की ही एक शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में ले जाने की शक्ति है । उसके मुख्य प्राण के निकलने पर अन्य अपानादि निकलते हैं । न निकलने पर नहीं निकलते हैं । वह प्राण आदिकों की गति का दूसरा आश्रयन होने से प्राण को गति का आश्रय कहा है । प्राणों के आश्रित सूक्ष्म पंच महाभूत भी निकलते हैं । आश्रय रहित प्राण न कहीं स्थित हैं न जाते हैं । जीवित प्राणियों के देखने से यह सिद्ध होता है ।

इस प्रकार जैसे-जैसे आचार्य शंकर समाधान करते जाते थे, वैसे-वैसे सैंकड़ों तर्क देकर व्यास जी खण्डन करते थे । यहां पण्डित लोग इस शास्त्रार्थ को देखकर विस्मय को प्राप्त हुये । इनका आठ दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहा । तब अति बुद्धिमान पद्मपादाचार्य विचार करने लगे । यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं हैं । निश्चय ही सूत्रकार भगवान वेद व्यास जी ही हैं । उनके बिना मेरे गुरु जी से इतना लम्बा शास्त्रार्थ कोई नहीं कर सकता है । ऐसा मन में सोचकर पद्मपादाचार्य ने दोनों गुरुओं के चरणों में प्रणाम करके कहा ।

शंकरः शंकरः साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम् ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किंकरः किंकरोम्यहम् ॥

श्री शंकराचार्य जी साक्षात् शंकर हैं । वृद्ध ब्राह्मण रूप धारी व्यास जी साक्षात् नारायण हैं । इन दोनों के विवाद में मुझ सेवक को क्या सेवा करनी चाहिये । पद्मपाद जी का यह वचन सुनते ही भाष्यकार तुरन्त उठे, दण्ड को संभाल कर इन मन्त्रों से प्रणाम करने लगे । **ऊं नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं, शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च । व्यासं शुकं गौणपदं महान्तं गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।** अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों का स्मरण करते हुये परात्पर गुरुदेव व्यास जी के पाद पद्मों में बारह बार नमन करते हुये सदण्ड प्रणाम किया । यहां शंका होती है कि दण्डी स्वामी अपने पिता, बाबा, परबाबा, गृहस्थ को प्रणाम नहीं कर सकते । इन्होंने यति धर्म के विरुद्ध ऐसा क्यों किया । इसका समाधान करते हुये माधवीय दिग्विजय के कर्त्ता धनपति सूरि जी अपनी टीका में लिखते हैं कि—ब्रह्म विद्या के आचार्यों की परम्परा में व्यास जी शंकराचार्य के परम गुरु के परम गुरु हैं । इसलिए प्रणाम किया ।

नमो भगवते सूत्रकारायेति ननाम तम् । अपने चरणों पर गिरे हुये आचार्यपाद को हृदय से लगाकर व्यास जी ने कहा—तुम मुझे पुत्र शुकदेव से भी अधिक प्रिय हो । हे महामते ! तुमने मेरे ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखा है । इसको सुनकर तुम्हारे पास आया था । तुम्हें देखने

की मुझे बड़ी इच्छा थी । मुनीन्द्र का वचन सुनकर हर्षित तथा रोमांचित होकर आचार्य व्यास ने कहा—तुम्हें सोलह वर्ष की ही आयु प्राप्त हुई थी । वह आज पूर्ण हो रही है । किन्तु अभी आपको प्रस्थानत्रयी के भाष्यों का प्रचार, प्रसार सम्पूर्ण भारत के गेहे गेहे जने जने में करना है तथा वेद विरुद्ध आस्तिक नास्तिक मत मतान्तरों का खण्डन करके विशुद्ध वैदिक सनातन धर्म का झंडा लहराना है । अतः मैं ब्रह्मा जी का आवाहन करके आपको आयु देना चाहता हूं ।

ऐसा कहकर व्यास जी ने आवाहन तथा आकर्षणमन्त्र से ब्रह्मा जी को बुलाया । ब्रह्मा जी ने व्यास जी से कहा—यह तो काल के महाकाल साक्षात् शिवरूप हैं । चाहे तों अरबों खरबों वर्ष रह सकते हैं । इन पर मेरा अधिकार नहीं है । तब ब्रह्मा जी की अनुमति समझकर व्यास जी ने १६ वर्ष की आयु और प्रदान की । व्यास जी ने प्रस्थानत्रयी का भाष्य देखकर मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की । विशेष करके ब्रह्मसूत्र के भाष्य को देखकर । भगवान भाष्यकार ने कहा—हे महर्षि मान्य ! आपका ब्रह्म सूत्र तो सूर्य के समान है । सूर्य सबको प्रकाश देता है । सूर्य को कौन प्रकाश दे सकता है । मैंने तो अपने भाष्य रूपी दीपक से सूर्य रूपी आपके ब्रह्म-सूत्र का नीराजन किया है । ऐसी धृष्टता करते हुये मुझे लज्जा नहीं आती । आपके सूत्र की व्याख्या करते हुये मैंने आपके पदों का आश्रय लेकर ही पूर्व पक्ष का खण्डन किया है तथा सिद्धान्त का प्रतिपादन युक्तियों से किया है । गुरुओं से जो अर्थ मुझे प्राप्त हुआ उसे भाष्य में वर्णन किया है । आचार्यपाद ने ऐसा कहकर ब्रह्मा तथा व्यास जी को प्रणाम किया । दोनों गुरु आयु की वृद्धि का आशीर्वाद देकर अन्तर्ध्यान हो गये ।

विष्णवे व्यासरूपाय ब्रह्मसूत्र कृते नमः ।
महेशाय च तद्भाष्य कृते शंकर रूपिणे ॥

॥ इति श्रीगुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे एकादशोऽध्यायः ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

शिष्य संग्रह तथा बदरी नारायण प्रतिष्ठा

आचार्य पाद पद्मपादादि शिष्यों सहित बद्रीवन में निवास करते हुये शिष्यों को पढ़ाने लगे । कालटी के ब्रह्मचारी ब्राह्मण ब्रह्मचारी विष्णु शर्मा जो कालटी में शंकर के सहपाठी थे,

अनुजवत् सेवा करते थे। भोगों से विरक्त होकर गुरु जी को ढूंढते हुये उस समय वद्रिकाश्रम में पहुंचे, जब वे शिष्यों को पढ़ा रहे थे। पहुंचते ही गुरु चरण पकड़कर स्तुति की तथा संन्यास के लिये प्रार्थना की। उन्होंने संन्यास देकर चित्सुखाचार्य नाम रखा तथा चारों महावाक्यों का उपदेश दिया। यह कथा प्रसंग 'वृहत् शंकर विजय' में आया है।

'माधवीय दिग्विजय' में सुरेश्वराचार्य के वार्तिक के प्रसंग में इनका नाम आया है। श्लोकाष्टकम् तथा गुर्वष्टकम् इनकी रचना है। दक्षिण गर्म देश के रहने वाले शिष्य बद्रीवन की शीत सहन न कर सके। तब आचार्यपाद से तप्त कुण्ड की प्रार्थना की। तब आचार्यपाद ने पाद प्रहार से तप्त कुण्ड निर्मित किया। कुछ ग्रन्थों में इसे नारद कुण्ड भी कहा है। बौद्धों ने भगवान बद्रीनारायण की मूर्ति तप्त कुण्ड में डाल दी थी। उसे निकालकर स्थापित किया। 'गुरुवंश काव्यम्' में कथा आई है कि आचार्य शिष्यों सहित सो रहे थे। आचार्यपाद को स्वप्न में बद्री नारायण ने दर्शन देकर कहा, "मेरी मूर्ति जल में डूबी है उसको निकालकर उद्धार करो। तथा पूजा प्रचलित करो।" तब उन्होंने तदनुसार किया। भगवान के मन्दिर को बनाने का विचार आचार्य कर रहे थे। मन्दिर के लिये धन कहां से प्राप्त हो। इतने में ही कालटी से माता के द्वारा भेजे हुये अग्नि शर्मा ब्राह्मण आये। आर्याम्बा ने अन्तिम समय दर्शन की इच्छा से बुला भेजा था। बहुत सा धन दिया था। ब्राह्मण ने प्रणाम किया तथा कहा—आपकी माता बहुत जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है आपको देखना चाहती हैं। आपके लिये बहुत-सा धन दिया है। आचार्य ने उस धन से मन्दिर का निर्माण कराया। पद्मपादाचार्य को इस कार्य में नियुक्त किया तथा अग्नि शर्मा को पूजा में नियुक्त किया।

एक ग्रन्थ में कथा आती है जिस समय बद्रीवन में आचार्य जी शिष्यों को शारीरिक भाष्य पढ़ा रहे थे। उसी समय उनकी रसना को माता के दूध जैसा स्वाद मिला। उन्होंने भाष्य पढ़ाना छोड़कर एक मुहूर्त तक ध्यान किया। ध्यान में देखा माता स्मरण कर रही हैं। उनका अन्तिम समय है। वहीं पढ़ाई बन्द करके तुरन्त ही आकाश मार्ग से कालटी पहुंचे।

माता की परलोक यात्रा

व्यासाचलीय दिग्विजय में यह क्रम दिया है। परन्तु माधवीय में कुमारिल भट्ट से मिलने प्रयाग में जाते समय उन्हें माता जी की बीमारी की सूचना मिली और वे कालटी गये। घर में

जाकर रोग से पीड़ित माता के चरणों में प्रणाम किया। संन्यासी को माता पिता में से किसको प्रणाम करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मनु जी कहते हैं—

संन्यस्ताखिल कर्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी।
सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः॥

सम्पूर्ण कर्मों का त्याग किये हुये संन्यासी को पिता प्रणाम करे तथा सर्ववन्दनीय यति माता को यत्नपूर्वक प्रणाम करे। पुत्र को देखते ही माता का शारीरिक ताप उसी प्रकार से दूर हो गया, जैसे धूप से पीड़ित को शीतल जल मिलने से गर्मी का ताप दूर हो जाता है। माता ने कहा—हे पुत्र ! बुढ़ापे से जीर्ण शरीर का बोझ अब मैं बहुत नहीं ढो सकती। तुम मुझे पुण्य लोक की प्राप्ति का मार्गदर्शन कराओ। माता की बात सुनकर पुत्र ने कहा—हे मातः ! जो माया से रहित निर्विशेष अप्रमेय ब्रह्म है। देह तथा देह के अंगों से रहित जन्म-मृत्यु से रहित आकाशवत्, बाहर-भीतर व्याप्त है। उसका ध्यान करो। माता ने कहा—ऐसा परमात्मा मेरी बुद्धि में नहीं बैठ पाता है। मैं उसका ध्यान नहीं कर पाऊंगी। तब आचार्य बोले—जिनके वर से आपने मुझे पाया है। ऐसे शिव का ध्यान करो। ऐसा कहकर शिव दर्शन करने की इच्छा से उन्होंने शिव स्तुति की। माता के दर्शनार्थ स्तुति करके जब मौन हुये, तब भगवान शंकर गणों सहित प्रकट हुये। गणों को देखकर माता भयभीत हो गयी। तब माता ने कहा—बाल्यावस्था में जो गोविन्दाष्टक तुमने सुनाया था। भगवान ने माटी खाई थी, यशोदा उनको धमकाने लगी थीं, मुख खोलने पर चौदह लोकों का दर्शन कराया था। ऐसे परमानन्द स्वरूप गोविन्द में मेरा मन विशेष रूप से लगता है। तब आचार्य पाद ने गोविन्दाष्टक तथा श्रीकृष्णाष्टक सुनाया। इसके पूर्ण होते ही यति वर के आगे भगवान लक्ष्मी सहित प्रकट हो गये। माता ने शरीर छोड़कर योगिगम्य परम पद प्राप्त किया। माता के संस्कार के लिये अपने बन्धु बान्धवों से अग्नि मांगी। वे उनकी निन्दा करने लगे। अग्नि नहीं दी। दो तीन ब्राह्मणों को छोड़कर सभी ने तिरस्कार किया। तब आचार्य ने शाप देते हुये कहा—इन तीन ब्राह्मण परिवारों को छोड़कर तुम लोगों में विप्रत्व बन्धुत्व नहीं रहेगा। तुम लोग वेद तथा यतिभिक्षा के अधिकारी नहीं होंगे। तुम्हारे घर के आगे ही श्मशान होंगे। ऐसा कहकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ मन्थन करके अग्नि प्रकट की एवं माता का अग्नि संस्कार किया।

आज से ७७ वर्ष पूर्व श्रृंगेरी शारदापीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नरसिंह जी भारती महाराज ने आदि शंकर की जन्म-भूमि की खोज की, जो पूर्णा नदी के तट पर विद्यमान है। वहां पर उन्होंने भगवती शारदा देवी तथा गणेश, अष्टमातृकाओं का मन्दिर निर्माण किया तथा भगवत्पाद शंकर का भी मन्दिर बनवाया। उसी के प्रांगण में माता आर्याम्बा की समाधि है। समाधि स्थल पर तुलसी का वृक्ष है। वहां पर शिलालेख तथा दीपक जलता है। सन् १९१० माघ शुक्ला द्वादशी को मन्दिर का निर्माण हुआ। शारदा भगवती के मन्दिर में श्लोक अंकित हैं। "आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व सदाशिव ने अधर्म के द्वारा धर्म का ह्रास देखकर पृथ्वी पर केरल कालटी में धर्म रक्षा की प्रतिज्ञा पालनार्थ शंकराचार्य के रूप में अवतार लिया।"

अवतार लेकर सनातन धर्म की रक्षा की। उनके चरित्र का वर्णन करने वाले ग्रन्थों को देखकर यहीं उनकी जन्मभूमि सिद्ध होती है। हम अकृतज्ञ न हों अतः जगद्गुरु की स्मृति, सर्व जगत् हितैषी "अभिनव शिव सच्चिदानन्द नरसिंह भारती महास्वामी" ने जो दक्षिण श्रृंगेरी के आचार्य हैं। उन्होंने जनता के कल्याण तथा कृतघ्नता की निवृत्ति के लिये पवित्र कालटी जन्म भूमि में पुत्र सहित माता की स्मृति में दोनों के मन्दिर का निर्माण किया। गुरुओं की जन्म-भूमि में सरस्वती की स्थापना वेदोक्त मंत्रों से विधिपूर्वक की। योगिराज भारती जी ने ब्राह्मणों से कुम्भाभिषेक करवाया। यह मन्दिर का लेख है।

आर्याम्बा की समाधि स्थल पर

आज से कई वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य गुरुवर की लीला भूमि जो पूर्णा नदी के तट पर आज भी जनता को बोध कराती है। ऐसी महा-महिमा वाली भूमि के दर्शन मात्र से ही पाप नष्ट होते हैं। इस स्थान पर जगद्गुरु अभिनव सच्चिदानन्द नरसिंह भारती जी ने व्याख्यान पीठ का निर्माण करके श्री शंकराचार्य की माता की स्मृति में इस शिलालेख की स्थापना की है ऐसे जगद्गुरु हमें धर्म ज्ञान की दिशा निर्देश करते हुये चिरकाल तक जीवित रहें।

माता की अन्त्येष्टि क्रिया के अनन्तर मोह ममता से रहित गुरुओं की चरण सेवा करने के लिये बदरी वन में चले गये। कालटी वास काल में ही केरल नरेश राजशेखर जिसने बाल्यावस्था में शंकर को तीन नाटक दिखाये थे वे नाटक जल गये थे। उन्होंने आकर गुरु

जी को प्रणाम किया। नाटकों के जल जाने की बात बताई। बाल्यावस्था में एक बार सुने हुये नाटकों को ज्यों का त्यों लिख दिया।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्री गोविन्द भगवत्पाद का तिरोधान

शंकराचार्य के कालटी चले जाने पर गुरु गोबिन्द जी अपने शिष्यों सहित नर्मदा से अमर कण्टक (आम्रकूट) में चले गये। माता की अन्त्येष्टि के अनन्तर पता पूछकर आदि शंकर भी गुरु सेवा के लिये उनके पास पहुंचे। वृद्ध संयमी गुरु जी ने सभी शिष्यों को यति धर्मोपदेश किया एवं प्रणव जप करते हुये ब्रह्म चिन्तन करने के लिये कहा। वृहच्छंकर विजय में गोविन्द भगवत्पादाचार्य के ब्रह्मीभूत का सम्वत् इस प्रकार है।

शास्त्र श्रुत्यंगनेत्राब्दे युधिष्ठिर शकस्य वै।
प्लवंगे कार्त्तिके मासि पूर्णिमायां गुरौ दिने॥
श्रीमद्गौडपादाचार्य शिष्यो योगविदांवरः।
गोविन्दभगवत्पादः सिद्धि प्राप स संयमी॥

योगियों में उत्तम श्री मद् गौडपादाचार्य के संयमी शिष्य (धारणा, ध्यान, समाधि सम्पन्न) गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी ने यु. सं. २६४६ प्लवंग नामक सम्वत्सर में गुरुवार कार्तिक पूर्णिमा को सिद्धि प्राप्त किया। गोविन्द भगवत् पादाचार्य की परम गति को सुनकर वररुचि, कात्यायन आदि चार गुरु भाइयों ने यति उचित सम्पूर्ण क्रियायें सम्पन्न करवायीं।

कुमारिल भट्ट पाद से भेंट

अपने शिष्यों सहित भगवान भाष्यकार स्वेच्छानुसार विचरण करते हुये तीर्थ राज प्रयाग में पहुंचे। वहां पर वटपत्र पर शयन किये हुये बाल मुकुन्द भगवान् की स्तुति करने के अनन्तर त्रिवेणी में स्नान करते हुये गंगा यमुना की स्तुति की। वहीं पर इन्द्र के अवतार सौराष्ट्र के विद्वान् महाराज धर्म सहित प्रजा का पालन करने वाले सुधन्वा द्वारका को राजधानी बनाकर पृथ्वी का शासन करते थे। बाल्यावस्था में इन्होंने जैनियों का आश्रय ग्रहण किया था। उनके यहां वेदों तथा देवताओं का निरादर देखकर जैन धर्म से घृणा हो गयी। वहीं पर भट्टपाद भी

विराजमान थे। जिन्होंने जैमिनि के सूत्रों का प्रतिपादन करते हुये सभी नास्तिकों से टक्कर लेकर परास्त किया था। वे अपनी ज्ञान गरिमा से प्रतिवादी रूपी अन्धकार को दूर करने में ज्ञान रूपी सूर्य थे। महाराज सुधन्वा भी दिग्विजय करते हुये कुमारिल के पास प्रयाग पहुंचे। महाराज ने विधिवत् प्रणाम करके उनका पूजन किया। उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया। कोयल के व्याज से राजा को सम्वोधित करते हुये कहा—जैसे कोयल नीच कौवों के साथ मिलकर मलिन हो जाती है। वैसे आप भी श्रुतियों को दूषित करने वालों के साथ पड़कर वैसे ही हो गये हो। तात्पर्य के विशेषज्ञ राजा ने सारगर्भित वचन सुनकर पाद प्रहार से कुपित हुये सर्प के समान कुपित हुये तथा वैदिक धर्म पर अनेकों आक्षेप किये। तब कुमारिल ने जैन सिद्धान्त रूपी पेड़ युक्ति रूपी कुठार से काट दिया। तब जैन पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। उन्हें भी परास्त कर दिया और वेद वचनों की प्रशंसा करने लगे। सुधन्वा राजा की सभा में जैनाचार्यों का प्रभुत्व था। तब राजा ने एक बड़े घड़े में विषैले सांप बन्द किये। जैनियों तथा ब्राह्मणों से पूछा—इसमें क्या है दूसरे दिन उत्तर देने के लिये उन्होंने कहा। रात्रि भर जगकर जैनी तीर्थंकरों की आराधना करने लगे। दूसरे दिन जैनियों ने कहा—इसमें सर्प है। कुमारिल ने तुरन्त उत्तर दे दिया था। राजा ने फिर पूछा—सर्प के किसी विशेष अंग की पहचान बताओ। जैनियों ने फिर समय मांगा। कुमारिल ने तुरन्त कहा कि सर्प के मस्तक पर तो चरण चिन्ह बने हुये हैं। घड़ा खोलने पर कुमारिल की बात सत्य निकली। राजा ने तुरन्त वेद विरोधी जैनियों को निकाल दिया। वैदिक मार्ग की प्रतिष्ठा की। भट्ट पाद के साथ किसी की शास्त्रार्थ करने की हिम्मत नहीं पड़ी।

कुमारिल चरित्र

भारतीय वैदिक इतिहास में कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य जी दोनों ही वेदों के परमोद्धारक हुये। कुमारिल ने कर्मकाण्ड पर किये जाने वाले आक्षेपों का मुंह तोड़ उत्तर तथा भगवान शंकर ने ज्ञान काण्ड के आक्षेपों का अच्छा समाधान किया।

कुमारिल की जन्म भूमि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। तिब्बतीय विद्वान तारानाथ जी ने इन्हें बौद्ध पण्डित धर्म कीर्ति का चाचा बताया है। इनका जन्म दक्षिण भारत में 'त्रिमलयक' नामक स्थान में हुआ। परन्तु इस मत में सन्देह पाया जाता है। आनन्द गिरि जी ने अपने दिग्विजय में इनका जन्म उत्तर भारत का बताया है। उद्‌देश कशमीर या पंजाब

हो सकता है। पूर्व मीमांसक सालिक नाथ ने इनको वार्तिककार भिक्षु कहा है। यह उपाधि उत्तर भारतीय ब्राह्मणों में ही पायी जाती है। सालिक नाथ कुमारिल से ३०० वर्ष बाद पैदा हुये। मिथिला के लोग इन्हें मैथिल ब्राह्मण कहते हैं।

कुमारिल धनाढ्यतम गृहस्थ थे। पांच सौ दास तथा दासियां थीं। चूड़ामणि देश के राजा के कुलगुरु थे। बौद्ध दर्शन के विद्वान धर्म कीर्ति के साथ शास्त्रार्थ तथा उनके हारने की बात आती है। धर्म कीर्ति त्रिमलय के निवासी थे। यह कुमारिल के पास वेदाध्ययन करने गये किन्तु बौद्ध समझ कर इनको नहीं पढ़ाया। तब यह दास के रूप में उनके घर रहने लगे। वे इनकी परम श्रद्धा से इतनी सेवा करने लगे कि पचास आदमी मिलकर भी इतनी सेवा नहीं कर सकते थे। कुमारिल इनकी सेवा से इतने प्रभावित हुये कि इनको ब्राह्मण विद्यार्थियों के साथ दर्शन शास्त्र सुनने की आज्ञा मिली। इन्होंने वैदिक दर्शनों के रहस्यों को अति शीघ्र जान लिया। तब वे अपने वास्तव रूप में आये तथा ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। इन्होंने अनेकों दार्शनिकों को परास्त किया।

तब कुमारिल के साथ शास्त्रार्थ किया। कुमारिल गुरु भी परास्त हो गये। कुमारिल ने बौद्धों को परास्त करने के उद्देश्य से बौद्ध भिक्षु का रूप धारण किया। इन्होंने बौद्ध सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिये बौद्ध बनकर उनके शास्त्रों का अध्ययन किया। शंकराचार्य जी से कुमारिल ने कहा—मैं बौद्ध धर्म की धज्जियां उड़ाना चाहता हूं इसलिये मैं बौद्ध भिक्षु हुआ। उस समय धर्मपाल बौद्धाचार्य की कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी। वे बौद्ध धर्म के नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्यक्ष थे। क्षणिक विज्ञानवादी होने पर भी उन्होंने योगाचार्य तथा शून्यवाद के मौलिक ग्रन्थों पर पाण्डित्य पूर्ण टीकायें लिखी हैं। अतः कुमारिल ने धर्मपाल से ही बौद्ध दर्शनों का अध्ययन किया।

एक दिन धर्मपाल ने शिष्यों के प्रति बौद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये वेदों की घोर निन्दा की। इस निन्दा को सुनकर बौद्ध भिक्षु के रूप में बैठे हुये कट्टर वैदिक धर्मावलम्बी कुमारिल के नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। निकट बैठे हुये एक भिक्षु ने देखा और धर्मपाल से कहा। धर्मपाल एक बौद्ध भिक्षु के वेदों की निन्दा सुनकर आंसू बहाते देख कर आश्चर्य में पड़ गये, तथा पूछा तुम क्यों रोते हो। क्या वेद निन्दा सुनकर रोते हो। कुमारिल ने कहा—हां यही कारण है। आप वेदों के रहस्यों को बिना जाने ही मनमानी निन्दा करते हो। कुमारिल का इस घटना से सच्चा रूप प्रगट हुआ। धर्मपाल रुष्ट हुये, इनको हटाने के लिये कहा। परन्तु

दुष्ट विद्यार्थियों ने इन्हें वैदिक ब्राह्मण समझ कर बिहार के ऊंचे शिखर से नीचे गिरा दिया। वेद विश्वासी कुमारिल जी ने अपने को असहाय जानकर वेदों की शरण ग्रहण की।

पतन् पतन् सौधतलान्यरोरुहम्, यदि प्रमाणो श्रुतयो भवन्ति।
जीवेम यस्मिन् पतितोऽसम स्थले मज्जीवने तत् श्रुतिमानता गतिः॥
यदीह सन्देहपदप्रयोगाद् व्याजेन शास्त्र श्रवणाच्च हेतोः।
ममोच्चदेशात् पतताव्यनंक्षीत् तदेकचक्षुर्विधिकल्पना सा॥

राज भवन से नीचे गिरते हुये फिर चढ़ने की इच्छा से कहा—यदि श्रुतियां प्रमाण हैं तो इस विषम स्थल पर गिरने से भी मैं जीवित रहूंगा। अर्थात् श्रुतियों का प्रमाण ही मेरे जीवन की एक मात्र गति है। यदि श्रुतियां ही प्रमाण हैं तो मेरे जीवन की रक्षा होगी यदि प्रमाण नहीं है तो जीवन की रक्षा नहीं होगी। इसमें सन्देह सूचक यदि शब्द का प्रयोग करने के कारण वेदशास्त्र का श्रवण करने के कारण मेरे उच्च देश से गिरते हुये, इस विकल्प के कारण मेरा एक नेत्र नष्ट हो गया। कुमारिल तथा शंकराचार्य का चार्वाक, जैन, बौद्ध दर्शनों का गम्भीर अध्ययन था। इतना अन्य दार्शनिकों का नहीं था। इन दोनों की सामर्थ्य केवल संस्कृत ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं थीं किन्तु इन्होंने पाली के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। इन बातों की पुष्टि माधव कृत दिग्विजय के सातवें सर्ग से होती है।

भगवान शंकराचार्य के समान इन्होंने भी दिग्विजय की थी। उत्तर भारतीय पण्डितों को पराजित करने के अनन्तर दक्षिण भारत गये वहां पर कुछ के मतानुसार सुधन्वा राजा राज्य करते थे। इनकी राजधानी उज्जैनी थी। जिसका आजकल पता नहीं चलता। वे वैदिक धर्मानुयायी होने पर भी जैनियों के पंजे में पड़े थे। कुमारिल दिग्विजय करते हुये उनके राज-दरबार में गये। ज्ञान के भण्डार वेद कूड़े में पड़े थे। वैदिक ब्राह्मणों की निन्दा हो रही थी। सुधन्वा की भी वेद में अनास्था हो गयी थी। परन्तु रानी की अभी भी वेद में निष्ठा थी। खिड़की में बैठी रानी चिन्ता कर रही थी।

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति।

मैं क्या करूं, कहां जाऊं, वेदों का उद्धार कौन करेगा। कुमारिल मार्ग से जा रहे थे। उनकी हीनता भरी पुकार सुनकर खड़े हो गये तथा उच्च स्वर में कहा—**मा विषीद वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले।**

हे रानी ! खेद मत करो मैं भट्टाचार्य पृथ्वी पर विद्यमान हूं। मैं वेदों का उद्धार करूंगा। यह कार्य उन्होंने करके दिखाया।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे त्रयोदशोऽध्यायः।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कुमारिल के ग्रन्थ

इन्होंने "जैमिनीय पूर्व मीमांसा" के सूत्रों पर लिखे गये 'शवरस्वामी" के सुप्रसिद्ध भाष्य पर वार्तिक लिखा है। यह तीन भागों में है। १ श्लोक वार्तिक। इसमें तीन हज़ार निन्यानवे अनुष्टुप् श्लोक हैं। यह ग्रन्थ चौखम्बा संस्कृत सीरीज काशी से पार्थ सारथी मिश्र की न्यायरत्नाकार टीका सहित प्रकाशित हुआ है। डा. गंगानाथ झा ने इसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया है। यह अंग्रेज़ी अनुवाद "एशियाटिक सोसाइटी बंगाल" से प्रकाशित है। २. तन्त्र वार्तिक—इसके प्रथम अध्याय के दूसरे पाद से लेकर तीसरे अध्याय के अन्त तक गद्य व्याख्या है। इसमें भट्टपाद की तार्किकता प्रकट होती है। यह ग्रन्थ "आनन्दाश्रम पूना" से पांच भागों में प्रकाशित हुआ है। ३. यह बहुत छोटा ग्रन्थ है इसका नाम 'टुप टीका' है। इसमें चौथे अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक के शवर भाष्य पर गद्यात्मक संक्षिप्त टिप्पणियां हैं। कृष्ण देव ने "तन्त्र चूड़ामणि" में इनकी दो अन्य टीकाओं का भी उल्लेख किया है। १. वृहत् टीका २. मध्यम टीका। 'मानव कल्प सूत्र' पर भी इनकी टीका है। "शिवमहिम्नः स्तोत्र" पर टीका किया है।

कुमारिल के शिष्य

इनके अनेकों विद्वान मीमांसक शिष्य थे। जिनके प्रचार प्रसार से भारत में धार्मिक क्रान्ति हुई। जिसमें तीन प्रधान थे १. प्रभाकर २. मण्डन मिश्र ३. उम्बेक (भवभूति)।

१. प्रभाकर—इन्होंने मीमांसा में नवीन मत को जन्म दिया। इनका मत 'गुरुमत' कहा जाता है। कुमारिल के यह प्रथम शिष्य थे। गुरु जी ने प्रसन्न होकर इन्हें गुरु की उपाधि दी थी। तब से इनका मत 'गुरु मत' प्रचलित हुआ। परन्तु आजकल के संशोधकों को इसमें सन्देह है। वे प्रभाकर को कुमारिल से प्राचीन मानते हैं। इन्होंने अपने स्वतन्त्र मत का प्रचार

करने के लिये शावर भाष्य पर 'वृहती' तथा 'लघ्वी' नाम की टीकायें की हैं। जो अप्रकाशित हैं।

२. मण्डन मिश्र—इनका चरित्र आगे लिखा जायेगा।

३. उम्बेक (भवभूति) —यह बात सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है कि भवभूति कुमारिल के शिष्य थे। श्री शंकर पाण्डुरंग पण्डित को 'मालती माधव' नाम की एक प्राचीन हस्त लिखित पुस्तक मिली। जिसके तीसरे अंक के अन्त में कुमारिल शिष्य द्वारा विरचित लिखा है। तथा छठे अंक के अन्त में कुमारिल के प्रसाद से वाग्वैभव को प्राप्त करने वाले उम्बेकाचार्य की कृति कही है। इससे सिद्ध होता है कि भवभूति का एक नाम उम्बेक भी था।

(श्री शंकराचार्य ग्रन्थ —हिन्दी पुस्तक से)

श्री शंकराचार्य जी की कुमारिल भट्ट से भेंट

श्री शंकराचार्य जी के प्रयाग पहुंचने पर कुमारिल की चर्चा सब लोग कर रहे थे। भट्ट पाद कुमारिल को बौद्ध गुरु का अपमान करने के कारण मानसिक खेद था। क्योंकि धर्मशास्त्र में कहा है कि एक अक्षर का ज्ञान देने वाले को जो गुरु नहीं मानता और उसका अपमान करता है वह नरकगामी होता है। ऐसा विचार कर कुमारिल पुराने सूखे पीपल की खोहड़ में सुलगती हुई तुषानल में आमरण व्रत लेकर बैठ गये। उनका आधा शरीर जल चुका था। प्रभाकर आदि शिष्य उनको घेरे हुये रो रहे थे। किन्तु ऐसे घोर कष्ट में भी उनका मुखकमल खिला हुआ था। यह क्यों न हो। जिन्होंने दृश्य जड़ शरीर को द्रष्टा चैतन्य आत्मा से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया है। उनके लिये कोई कठिन कार्य नहीं। आचार्य शंकर ऐसे अदृष्ट पूर्व दृश्य को देखने तथा आचार्य के अन्तिम दर्शन के लिये पहुंचे। साक्षात् शंकर को शिष्यों सहित अपने सामने देखकर भट्टपाद प्रसन्न हुये। उनकी दशा देखकर आचार्य पाद रोने लगी। कुमारिल भट्ट ने उनकी स्तुति की तथा आने का कारण पूछा। भगवान भाष्यकार ने कहा कि मैं तो आपसे ब्रह्मसूत्र के भाष्य पर वार्तिक लिखवाने के उद्देश्य से आया था। यह कहकर उन्हें आपने शारीरिक भाष्य दिखाया। निर्दोष भाष्य को देखकर निर्मत्सरी महामति भट्टाचार्य जी ने प्रसन्नचित्त से कहा—हे यतीश्वर ! आप जैसे महात्मा का दर्शन अन्तिम समय विशेष दुर्लभ है। हे भगवन् ! मेरे पुरातन पुण्य के प्रभाव से जन्म मरण से मुक्ति दिलाने वाली आप

जैसों की संगति प्राप्त होती है। हे महामते ! आपकी ख्याति मैं बहुत पहले सुन चुका था। आपके दर्शन की इच्छा थी। गोविन्दनाथीय विजय में लिखा है—

अस्मिन्नष्टौ सहस्राणि वार्तिकानां यतीश्वर।
विभान्ति प्रथमे भाष्ये तत्कृत्यै नालमस्म्यहम्॥
नाहमद्य मुमूर्षुश्चेत्करिष्याम्यस्य वार्तिकम्।
ईदृश्या मे मुमूर्षायाः हेतुं शृणु यतीश्वर॥

हे यतीश्वर ! यदि मरने का संकल्प मैंने न लिया होता तो मैं आपके प्रथम अध्याय के भाष्य पर ८००० वार्तिक लिख सकता था। किन्तु इस समय मैं असमर्थ हूं। मरने की इच्छा का कारण कहता हूं, सुनो—यह कहकर भट्ट पाद ने ऊपर कही हुई गुरु अपमान की कथा सुनाई। वार्तिक का अर्थ—

उक्तानुक्त दुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञाः मनीषिणः॥

जिस टीका में मूल ग्रन्थ में कहे हुये, न कहे हुये तथा कठिन कहे हुये शब्दों की चिन्ता होती है। अर्थात् तीन बातों की चिन्ता करते हुये जो टीका की जाती है वार्तिक के जानने वालों ने उसे वार्तिक कहा है।

भट्ट पाद का वचन सुनकर शंकराचार्य जी ने कहा—हे भट्ट ! मैं जानता हूं कर्म से विमुख सुगतों का विनाश करने के लिये साक्षात् स्वामिकार्तिक ही पृथ्वी पर अवतरित हुये हो। निस्संदेह आप सज्जनों को शिक्षा देने के लिये सत्यव्रत का आचरण करते हो। मैं आपको कमण्डलु का जल छोड़कर क्षण भर में ही ज्यों का त्यों कर दूंगा। आप मेरे भाष्य पर वार्तिक लिखिये। यतिराज का वचन सुनकर भट्ट गुरु बोले। आपकी महामहिमा के आगे यह कुछ नहीं है। मैं यह जानता हूं कि यह कुटिल हैं। परन्तु जैसे धनुष से छूटा हुआ वाण फिर लौट कर नहीं आता वैसे ही मैं अपने वचन से पीछे नहीं हटता। हे शंकर ! मुझ जीवित को जीवित करना कोई कठिन कार्य नहीं है। आप तो चिरकाल से मृतक प्राणी को भी कृपा कटाक्ष मात्र से पुनर्जीवित कर सकते हो। मैंने जो आगमोक्त प्रायश्चित्त व्रत आरम्भ किया है उससे निवृत्त नहीं हो सकता। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि देव गुरु बृहस्पति जी ने जब देवताओं को जिताने के लिये चार्वाक् दर्शन का उपदेश असुरों को देकर वैदिक धर्म से पतित किया था उस समय कुपित होकर ब्रह्मा जी ने बृहस्पति को शाप दिया था। वही आजकल मगध की महिष्मती

नगरी में विश्वरूप या मण्डन के नाम से सागरवत् सकल शास्त्रों के पारदर्शी विद्वान हैं तथा उनकी पत्नी भी दुर्वासा जी के शाप से सरस्वती देवी उभय भारती के नाम से उत्पन्न हुई हैं। एक बार ब्रह्मलोक में दुर्वासा ऋषि सस्वर सामवेद के मंत्रों से ब्रह्मा जी की स्तुति कर रहे थे। उनका स्वर भंग होने के कारण सरस्वती हंसने लगीं। दुर्वासा ने कुपित होकर उन्हें कलियुग में मानवी होकर पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया। वही उभय भारती के नाम से पृथ्वी पर हैं। वह विश्व रूप मेरे प्रियतम शिष्य मुझसे अधिक शास्त्रों में पारंगत हैं। उनकी पत्नी को मध्यस्थ बनाकर शास्त्रार्थ में जीतकर अपने वश में करो। वह आपके भाष्य पर वार्तिक लिखेंगे। विलम्ब न करो।

ग्रन्थों में दो मण्डनों की कथा आती है। एक 'ब्रह्मसिद्धि' ग्रन्थ के कर्त्ता मण्डन, विश्वरूप मण्डन से भिन्न थे। ऊपर का कथा प्रसंग 'व्यासाचलीय' तथा 'गुरुवंश काव्यम्' में भिन्न प्रकार से पाया जाता है। "न्यायरत्न दीपावली" नाम की टीका में लिखा है कि विश्वरूप से अन्य प्रसिद्ध प्रभावशाली विश्वरूप, प्रभाकर, वाचस्पति मिश्र आदिकों के चरित्र शिष्ट पुरुषों में अग्रणी रूप से ग्रहण किये गये हैं।

ऐसा कहकर कुमारिल मौन हो गये। तब भाष्यकार ने उनको मोह की निवृत्ति के लिये ब्रह्मज्ञानोपदेश दिया और भाष्यकार के देखते-देखते ही उन्होंने शरीर छोड़ दिया। वहां से शंकर मण्डन के घर जाने लगे। कुएं पर जल भरने वाली महिलाओं से मण्डन का घर पूछा। महिलाओं ने कहा सूर्य को देखने के लिये भी किसी से पूछा जाता है—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धः जानीहि तन्मण्डन पण्डितौकः ॥८।६।
फलप्रदं कर्म फलप्रदो यः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धः जानीहि तन्मण्डन पण्डितौकः ॥८।७।
जगद् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्, कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थ नीडान्तर .... माधवीय दिग्विजय ॥८।८।

हे यतिवर ! वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, कर्म फल देता है या ईश्वर, जगत् सत्य है (नित्य है) या अनित्य, द्वार पर स्थित पिंजरों में बन्द तोता मैना आदि जहां पर शास्त्रार्थ करती हों वहीं मण्डन पण्डित का घर समझो ?

दासियों का वचन सुनकर आचार्यपाद वहीं पहुंचे। उस समय मण्डन मिश्र पिता का श्राद्ध कर रहे थे। पितृ कर्म में संन्यासी की उपस्थिति तथा दृष्टि नहीं पड़नी चाहिये। क्योंकि श्राद्ध में नित्य, अनित्य दोनों प्रकार के पितरों का आवाहन किया जाता है। यति को देखकर पितर लज्जित होकर भागने की चेष्टा करते हैं। वे विचार करते हैं कि हम सकाम कर्म उपासना में पड़े रहने के कारण पितृ लोक में पड़े हैं और इन यतियों ने कर्मों को ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध करके ब्रह्मत्व की प्राप्ति की है। अतः घर के सब किवाड़ बन्द किये पितृ कर्म में लगे हुये थे। भगवान् वेदव्यास जी तथा महर्षि जैमिनि भी उपस्थित थे। सब द्वार बन्द देखकर आचार्यपाद उड़कर आंगन में पहुंच गये। एक यति को ऐसे समय में उपस्थित देखकर कुपित होकर बोले—हे दुर्बुद्धे ! तुम कन्था का इतना भार ढोते हो क्या यज्ञोपवीत नहीं धारण कर सकते ? क्या तुमने भांग पी रखी है ?

पहले उन्होंने कहा किस मार्ग से आये हो ? कुतः मुण्डी ? **आ गलान्तमुण्डी। पन्थानं पृच्छते मया ?**

शं.—तर्हि पन्थानं प्रति प्रच्छ ? मं.—किं सुरा पीतम् ? शं. न पीतम् श्वेतम्। मं —किं वर्णं जानासि ? शं. = अहं वर्णं जानामि भवान् स्वादम्।

मण्डन ने पूछा—मुण्डी कहां से ? शंकर ने कहा— गले तक मुण्डी हूं। मं.—मैं रास्ता पूछता हूं किस रास्ते से आये हो ? शं.—तो रास्ते से पूछो मुझसे क्या पूछते हो। मं.—क्या सुरा पी है। शंकर ने पीतं का अर्थ पीला करके कहा—पीत नहीं श्वेत। मं.—क्या रंग जानते हो ? शं.—मैं रंग जानता हूं आप स्वाद जानते हैं। इत्यादि।

तब व्यास जी तथा जैमिनि जी ने मण्डन को शान्त करते हुये कहा। बड़े सौभाग्य से ब्रह्मवेत्ता साक्षात् शिव स्वरूप तुम्हारे शुभ कर्म में यति शिरोमणि पधारे हैं। तुम्हें सपत्नीक, पाद्य अर्घ्य आदि से इनका पूजन करके आतिथ्य करना चाहिये। दोनों की आज्ञा प्राप्त करके मण्डन ने शंकराचार्य जी का यथोचित सत्कार किया।

इति श्री गु. पु. क. ख. द्वि. प. चतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥



अथ पंचदशोऽध्यायः

मण्डन तथा उभय भारती का पूर्व चरित्र

दुर्वासा के शाप से भारती शोणितपुर में शोण नदी के तट पर विष्णु मित्र की सर्वाङ्ग सुन्दरी पुत्री थीं। बाल्यावस्था में माता पिता द्वारा लालित पालित हुईं। समय आने पर हिममित्र के पुत्र विश्वरूप के साथ इनका विवाह हुआ। मण्डन का जन्म कान्यकुब्ज गौडीय देश में हुआ था। इनके पिता हिममित्र काश्मीर महाराज के राजगुरु थे। इनका जन्म काश्मीर में ही हुआ था। कुछ विद्वान इन्हें कुमारिल के बहनोई कहते हैं। इनके पिता मगध में माहिष्मती नगरी में कुलपति थे। माहिष्मती नगरी नैपाल के पर्वत श्रेणी में धर्ममूला नदी के तट पर वसी थी। यहां पर उग्र तारा का पीठ है। यह स्थान विहार राज्य में सहरस नामक स्थान से आठ कोस दूर है। इसे आजकल महिसी कहते हैं। धर्ममूला नदी को घेमुण्डा कहते हैं। नर्मदा तट पर हैहय राजाओं की पुरानी राजधानी कही गयी है। ब्रह्मानन्दीय तथा चिद्विलासीय में इनके पिता को काश्मीर का राजगुरु कहा है। मण्डन अपने निजी विद्यालय में पढ़ाया करते थे। यह विद्यालय ताल वृक्ष के बराबर ऊंचा था। सैंकड़ों इस विद्यालय में पत्थर के खम्भे लगे थे। इनका व्याख्यान सिंहासन दस हाथ ऊंचा था। विश्वरूप बलि वैश्व देव करने के अनन्तर अतिथि की प्रतीक्षा में बैठे थे उसी समय आचार्यपाद पहुंचे।

यहां पर दो प्रकार की कथा मिलती है। 'व्यासाचलीय', गोविन्द नाथीय तथा 'गुरुवंश-काव्यम्' में अतिथि की प्रतीक्षा की बात आई है। मण्डन के भिक्षा की प्रार्थना करने पर उन्होंने शास्त्रार्थ की भिक्षा मांगी। परन्तु 'आनन्दगिरीय', 'माधवीय' तथा 'चिद्विलासीय' में व्यास और जैमिनि जी की उपस्थिति में जब पितृ कर्म में लगे थे तब आकाश मार्ग से पहुंचे। फिर कर्म के अनन्तर श्राद्ध के निमित्त बने भोजन से भिन्न स्वामी जी के लिये भिक्षा तैयार करवायी। क्योंकि पितरों के निमित्त दी हुई कोई भी वस्तु एक दण्डी संन्यासी को नहीं देनी चाहिये। देने से दाता तथा गृहीता पितरों सहित नरक गामी होते हैं। श्राद्ध का अन्न यति के पेट में जब तक रहता है, तब तक वह अस्पृश्य होता है। यदि भूल से संन्यासी के पेट में चला जाये तो वमन कर दे और प्रायश्चित्त करे। अतः अलग भिक्षा तैयार होने पर मण्डन ने पाद्यादि से उनका पूजन किया। मण्डन ने भिक्षा परसी। उभय भारती ने हाथ में जल दिया। किन्तु आचार्य हाथ में ही लिये रहे। न आचमन किया न धरती पर ही छोड़ा। शंकित होकर विश्व रूप ने कारण

पूछा—तब आचार्य ने कहा—यदि शास्त्रार्थ की भिक्षा दोगे तब करूंगा। मण्डन ने कहा—आप भिक्षा करें निश्चय ही बाद में शास्त्रार्थ होगा।

यति भिक्षा विधि—ब्रह्मचारी गृहस्थ या वानप्रस्थी यदि एक दण्डधारी यति को भिक्षा कराना चाहे। तो 'ॐ तत्सत्' मंत्र से मण्डल बनाने के बाद हाथ में जल दे। फिर भिक्षा दे। बाद में फिर जल दे। तो वह जल सागर के समान भिक्षा सुमेरु के समान हो जाती है। यति के आगे "ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वशिष्टाद्याः महर्षयः। मण्डले उपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वन्ति मण्डलम्।" इस मंत्र से मण्डल बनाये। फिर भिक्षा देवे।

भिक्षा के अनन्तर शास्त्रार्थ आरम्भ होने लगा। दोनों ने आपस में प्रतिज्ञा की यदि शास्त्रार्थ में मण्डन हार जाये तो वे गृहस्थी छोड़कर शंकराचार्य के संन्यासी शिष्य हो जायें। यदि शंकर हार जायें तो वे संन्यास के चिह्न दण्ड कमण्डलु त्याग कर गृहस्थ हो जायें। दोनों के शास्त्रार्थ में निर्णायक मध्यस्थ कौन हो ? यह प्रश्न उठा। अनेकों ऋषियों, मुनियों, विद्वानों के बीच में किसी ने जैमिनि जी को, किसी ने व्यास जी का समर्थन किया। जैमिनि जी ने कहा—गुरुओं के होते हुये मेरी मध्यस्थता गुरु जी के अपमान की सूचक है। दूसरा कारण है कि यदि मैं मण्डन का पक्ष लेता हूं जो मेरा प्रशिष्य है तो लोग मुझे पक्षपाती कहेंगे। यदि शंकर का पक्ष लेता हूं तो मण्डन द्वेष करेंगे। व्यास जी ने भी यही बात कही मण्डन और शंकर के पक्ष की। अतः दोनों ने अस्वीकार कर दिया। दोनों महर्षियों की तथा अन्य विद्वानों की सम्मति से उभय भारती ने मध्यस्थता की। उन्होंने दोनों के गले में कमलों की माला पहना दी तथा कहा जिसके गले की माला कुम्हला जाएगी वह हारा माना जाएगा। उभय भारती निरन्तर शास्त्रार्थ सुन नहीं सकती थीं। क्योंकि उन्हें पति तथा अतिथियों का भोजन बनाना था तथा स्वामी जी के लिये भिक्षा सिद्ध करनी थी।

दोनों की सैद्धान्तिक प्रतिज्ञा

आचार्यपाद भगवान् शंकर ने "वेद वेदान्त का ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त ही परमार्थ सत्य है। अन्य सब मिथ्या है। इसी अनुभूति-जन्य एकता से ही मुक्ति हो सकती है। अन्य उपाय से नहीं।" इस भाव को व्यक्त करते हुये कहा—

ब्रह्मैक्यं परमार्थ सच्चिदमलं विश्वप्रपंचात्मना।
शुक्तिरूप्यपरमात्मनैव बहुला ज्ञानावृतं भासते॥

तज्ज्ञानान्निखिल प्रपंच विलयात्स्वात्मन्यवस्था परं।
निर्वाणं जनि मुक्तिमभ्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकम्॥

श्रुतिमस्तक रूप उपनिषद् (वेदान्त) का सिद्धान्त है कि ब्रह्म एक है परमार्थ सत्ता में, वह निर्मल है वह ब्रह्म, अज्ञान से आवृत होने से उसमें जगत् का विस्तार सीपी में चांदी के समान भासित होता है। कार्य सहित अज्ञान की आत्यन्तिक निवृत्ति होने पर अज्ञान से भासित होने वाले जगत् का लय हो जाता है। आत्म स्वरूप में पूर्ण स्थिति हो जाने पर जीव को निर्वाण पद की प्राप्ति होती है। अनेकों श्रुतियों में कहा है—कि तीनों भेदों से रहित एक ब्रह्म ही है।' 'ब्रह्म सत्य ज्ञान अनन्त है' तथा देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है।" तथा "ब्रह्म विज्ञान आनन्द स्वरूप है।" "निश्चय ही सर्व ब्रह्म ही है।" "आत्मवेत्ता शोक मोह से तर जाता है।" "आत्मदर्शी को शोक मोह नहीं होता।" "ब्रह्मवित् ब्रह्म स्वरूप है।" "वह पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता।" भगवान् शंकर की प्रतिज्ञा सुनकर गृहस्थ वर्य विश्वरूप ने प्रतिज्ञा की।

वेदान्ता न प्रमाणं चिति वपुषि पदे तत्र संगत्ययोगात्।
पूर्वोभागः प्रमाणं पदचयगमिते कार्यवस्तून्यशेषे॥
शब्दानां कार्यमात्रं प्रतिसमधिगताः शक्तिरभ्युन्नतानां।
कर्मभ्यो मुक्तिरिष्टा तदिह तनुभृतामायुषः स्यात् समाप्तेः॥

चैतन्य स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति में वेदान्त उपनिषद् प्रमाण नहीं है। चैतन्य स्वरूप वस्तु रूपी परमात्मा की सिद्धि में पदों से प्राप्त होने वाली अर्थ की शक्ति ही प्रमाण है। वेदों का पूर्व भाग पदों के समूह से प्राप्त होने वाली अर्थ शक्ति को ही प्रमाण मानता है। वेद ने कर्मों से मुक्ति कही है। अतः मनुष्य को आयु पर्यन्त कर्म ही करना चाहिये। वेद ने कहा भी है—

यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्॥ इस प्रकार से दोनों ने प्रतिज्ञा की। नित्य प्रति दोनों अपने नित्य कर्मों से निवृत्त होकर शास्त्रार्थ में डट जाते थे। मध्याह्न में भोजन के समय उभय भारती पति से 'भोजन का समय हो चुका है' यह कहती थी। तथा स्वामी जी के लिये भिक्षा करने को कहती थी। इन दोनों का शास्त्रार्थ, मार्गशीर्ष कृष्ण २ से आरम्भ होकर दक्षिण पंचांगानुसार चैत्र शु. ४ तक ३ मास १७ दिन तक चला। दोपहर में भिक्षा के बाद थोड़ा विश्राम होता था। दोनों विद्वान् मुस्कराते मुखकमल से उसी क्षण बिना रुके एक दूसरे के सिद्धान्त का खण्डन करते थे। प्रश्नोत्तर देने में किसी को न पसीना आता था, न आवाज़ कांपती

थी, न चिन्ता थी, न घबराहट। अन्तिम दिन यति पति के आक्षेप का उत्तर न देने के कारण मण्डन की वाणी रुक गई। घबराहट हुई, पसीना आया उनके गले की माला कुम्हला गयी। उस दिन प्रसन्न चित्त से उभय भारती ने 'आप दोनों के भिक्षा का समय हो गया है भिक्षा कीजिये।'

आद्यशंकर की स्तुति करते हुये कहा—हे यतिपते ! आप तो साक्षात् सदाशिव हैं सभी देहधारियों तथा विद्याओं के स्वामी हैं तथा दुर्वासा की शाप की कथा सुनाई। पति की हार के अनन्तर उभय भारती ने कहा, "अभी आपने मेरे आधे पति को जीता है अभी मैं शेष हूं।" तब उसने यु. सं. १६४८ चैत्र शु. ६ को शास्त्रार्थ आरम्भ किया। इसके बाद १७ दिन तक शास्त्रार्थ करती रहीं। जब उसने सभी शास्त्रों में उन्हें अजेय समझा तब उसने विचार किया। ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं इनको "वात्स्यायन प्रणीत" स्त्री पुरुषों की काम कलाओं का अनुभव नहीं है। अतः काम कला सम्बन्धी प्रश्न करके परास्त करूंगी। अतः उन्होंने शुक्ल पक्ष कृष्ण पक्ष में स्त्री तथा पुरुष के मन बुद्धि पर काम की किन-किन कलाओं का कैसा प्रभाव पड़ता है काम की कितनी कलायें हैं। उनके नाम तथा कार्य क्या हैं। यद्यपि सर्वज्ञ शंकर ने इस शास्त्र का भी गम्भीर अध्ययन किया था। सुना जाता है कि काम शास्त्र के रचयिता वात्स्यायन ऋषि ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्त्री पुरुष के ज्ञान से रहित थे। आचार्यपाद ने संन्यासी शरीर से इनका उत्तर देना उचित नहीं समझा। स्त्री के सामने ऐसी चर्चा करने से संन्यास से पतित हो जाता है। अतः गृहस्थ शरीर से लिखित पुस्तक रूप में उत्तर देने का विचार किया। तब उन्होंने इसी सम्वत् चैत्र कृ ८ को "कामरूक राजा" जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। उनके शरीर में प्रवेश किया। उस शरीर में ५ महीने के लगभग रहे। उनके संन्यासी शरीर की रक्षा पद्मपादादि शिष्य गुप्त रूप से करते रहे।

इति श्री गु. पु. क. ख. द्वि. प. पंचदशोऽध्यायः॥

अथ षोडशोऽध्यायः

परकाय प्रवेश की यौगिक प्रक्रिया

योग शास्त्रों में दो प्रकार के योगी कहे हैं। १. साधक योगी (युञ्जानयोगी) २. सिद्ध योगी (युक्त योगी) अष्टांग योग द्वारा समाधि लगने से जिनको अपने तथा अन्य के पूर्व जन्म का

ज्ञान होता है उन्हें युञ्जान योगी कहते हैं तथा बिना समाधि के ही जिनको त्रिकाल ज्ञान हो तथा योग की सिद्धियां स्वतः प्राप्त हो उन्हें युक्त योगी कहते हैं । आचार्यपाद ने अपने स्थूल शरीर से प्राण इन्द्रिय आदि सहित जीव को निकालने से पूर्व शरीर में विद्यमान अन्तःकरण के बन्धन के कारण अज्ञान सहित बन्धन के कारणों को धारणा, ध्यान समाधि रूपी संयम से शिथिल किया । उन्हें शरीर में संचारित होने वाली नस नाड़ियों के रक्त को केवलीकुम्भक प्राणायाम द्वारा स्तम्भित करके प्राणों को ऊपर खींचा । खींचकर राजा के मृतक शरीर में प्रवेश करने की इच्छा से प्राणों के साथ चित्त को भी खींचकर उनके शरीर में प्रवेश करने की इच्छा की । तब बन्धन के कारणों के शिथिल हो जाने पर अर्थात् पैर के तलवों से लेकर मस्तक पर्यन्त चलने वाली व्यान वायु को धीरे-धीरे ऊपर उठाया । जैसे-जैसे व्यान वायु ऊपर चढ़ती गई वैसे-वैसे प्राणों तथा रक्त की गति रुक जाने से पैर एड़ी पिंडली आदि नीचे के अंग प्रत्यंग ठण्डे होने लगे । इस प्रक्रिया से ब्रह्मरन्ध्र तक प्राणों को पहुंचाकर प्राणों को सूक्ष्म शरीर के अवयवों सहित मुखमण्डल से निकालकर राजा के मुख द्वार से सूक्ष्म शरीर के सम्पूर्ण अवयवों को राजा के शरीर में प्रविष्ट कराया । शव राजा के शरीर की इन्द्रियां और प्राण काम करने लगे शरीर चैतन्य हो गया । आचार्य के शरीर से पहले प्राण निकले बाद में इन्द्रियों और अन्तःकरण ने ऐसे प्रवेश किया जैसे सेनापति के पीछे-पीछे सेना चलती है अथवा बच्चा अपनी माता के पीछे चलता है । पातंजल योगदर्शन के तीसरे पाद के १८वें सूत्र में व्यास जी ने भाष्य में लिखा है—**"बन्धकारण शैथिल्यात् प्रचार सम्वेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।"** बन्धनों के कारण शिथिल होने से तथा प्रचार के सम्वेदन से चित्त एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है ।

बन्धन कारण शैथिल्यात्—शरीर के भीतरी चित्त के बांधने के जो कारण हैं अर्थात् शरीर के भीतर चित्त की प्रतिष्ठा इसका तथा चित्त की गति के प्रतिबन्ध ज्ञान के कारण सम्बन्ध विशेष माने हैं । उसके पुण्य पाप दो कारण हैं । चित्त के द्वारा आरम्भ किया हुआ पुण्य अथवा पाप इन दोनों की शिथिलता का कारण संयम है अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि के अभ्यास से चित्त के बन्धन का कारण नहीं रहता ।

प्रचार सम्वेदनात् च—जिन कारणों से अन्तःकरण चञ्चल होता है उन्हें चित्त का प्रचार कहा है । चित्त की दौड़ लगाने वाली नाड़ियों में जो चित्त आता जाता है वह चित्त का प्रचार

है। **सम्वेदनात्-सम्**—सम = संयम धारणा, ध्यान, समाधि के एकत्र का नाम संयम है। इन तीनों के एक साथ अभ्यास से चित्त की चञ्चलता शान्त होती है। वेदनम् = साक्षात् कार करना। चित्तस्य = योगी का चित्त, अपने पूर्व शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

ऐसे युक्त योगी अपनी संकल्प शक्ति के प्रभाव से एक शरीर में ही नहीं प्रवेश करते। किन्तु जितने शरीरों में चाहें प्रवेश कर सकते हैं। श्रुति कहती है—**शतधाभवति, पंचधा, सप्तधा, नवधा योगी भवति**। योगी जितने चाहे उतने रूप बना सकता है। जैसे जगद् गुरु रेणुकाचार्य जी ने विभीषण की प्रार्थना से तीन करोड़ रूप धारण करके, तीन करोड़ शिवलिंगों की एक साथ प्रतिष्ठा की। इसका विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ के सत्ययुगखण्ड प्रथम परिच्छेद रेणुकाचार्य जी के जीवन चरित्र में किया है। विष्णु आदि पुराणों में कथा आती है कि सौभरि ऋषि ने ५० रूप धारण करके मान्धाता की ५० कन्याओं से विवाह करके गृहस्थ सुख भोगा था। ब्रह्मसूत्र के ४/४/१५/१६ सूत्रों में भी आया है कि युक्त योगी अपनी संकल्प शक्ति के प्रभाव से अनेक शरीरों की रचना करके उनमें प्रवेश करता है। ऐसे योगियों के लिये आवश्यक नहीं है, कि पूर्व शरीर को मृतक करके जाता हो, बल्कि उस शरीर में रहते हुये भी, योगेश्वर के प्रभाव से अनेक रूप धारण करता है। यह बात ब्रह्मसूत्र के ३/३/३२ से भी सिद्ध होती है। इतना ही नहीं योगी जीवित शरीर में प्रवेश कर सकता है। इस सूत्र की व्याख्या में आया है कि सुलभा नामकी ब्रह्मवादिनी ने जनक जी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा से अपने शरीर को बिना त्यागे ही जनक के शरीर में प्रवेश किया। बाद में उनके शरीर को त्याग कर अपने में आ गई। भगवान् भाष्यकार ने योग दर्शन, वेद, उपनिषद् में कही गई प्रक्रिया के अनुसार ही परकाय प्रवेश किया था। परन्तु आधुनिक पश्चिमी विद्वान् नवीन प्रक्रिया से परकाय प्रवेश करते हैं।

परकाय प्रवेश की नवीन प्रक्रिया

एक अंग्रेज़ ने आधा घण्टे पहले मृतक शरीर में प्रवेश करने से पूर्व पहले स्वयं पेट को साफ करने वाली औषधियों द्वारा पेट साफ किया। बाद में मृतक के पेट को खूब दबाया। दबाकर उसके मल मूत्र को निकाल दिया। फिर उसके ऊपर लेट कर उसके मुख से अपना मुख लगाकर अपने प्राणों को ज़ोर से निकाल कर उसके भीतर प्राणों का संचार किया।

हठपूर्वक उसने अपने शरीर को प्राण रहित कर दिया तथा मृतक का शरीर सजीव हो गया। परन्तु यह शैली अत्यन्त निन्दनीय तथा योग के शौचाचार से विपरीत है। इस शैली को नहीं अपनाना चाहिये। अपनी ऋषि पद्धति ही ठीक है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, षोडशोऽध्यायः ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

काम कलाओं का अध्ययन, पुनः निज शरीर की प्राप्ति लिखित उत्तर तथा उभय भारती का ब्रह्मलोक गमन

जब आचार्य ने राजा के शरीर में प्रवेश किया तब रानी, मंत्री तथा प्रजा ने आनन्द के बाजे बजाते हुये नगर में प्रवेश किया। कुछ दिनों बाद रानियों तथा मंत्रियों ने देखा कि महाराज की पूर्ववत् चेष्टा नहीं है। यह जीवन्मुक्त महात्माओं के समान उदासीन हैं। तब उनको शंका हुई। अवश्य ही किसी योगी ने इस शरीर में प्रवेश किया है। ऐसा विचार कर योगियों के मृतक शरीरों को ढूंढ-ढूंढ कर जलाने लगे। उस शरीर में रहकर उन्होंने पुस्तक रूप में उत्तर लिखा। जब गुरु जी को गये बहुत दिन हो गये तथा राजरंग में आसक्त होने लगे। तब पद्मपादादि शिष्यों ने इनके पिछले शरीर को अन्य शिष्यों को सौंप कर भाट का रूप धारण करके राजा को राग सुनाने लगे। उस संगीत में आप वही ब्रह्म हो, इसका संकेत था। इस संकेत को प्राप्त करके उन्होंने शरीर को त्याग करके अपने शरीर में प्रवेश किया तथा 'अमरुक शतक' के रूप में लिखित उत्तर दिया। उत्तर को प्राप्त करके उभय भारती प्रसन्न हुईं तथा दुर्वासा के शाप से मुक्त होकर अपने लोक को जाने लगी। तब आचार्यपाद ने चिन्तामणि गणपति मंत्र या बनदुर्गा मंत्र से आकाश में रोका। कालान्तर में वे ब्रह्मलोक को प्राप्त हुईं। इसके बाद मण्डन ने कुछ काल ब्रह्मचारी रहकर गुरु सेवा करके संन्यास ले लिया। शंकराचार्य जी ने इनका नाम विश्वरूपाचार्य या सुरेश्वराचार्य रखा। संन्यास के अनन्तर आचार्यपाद ने इन्हें 'तत्त्वमसि' महावाक्य का उपदेश देकर दोनों पदों के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ का असि पद द्वारा एकता का प्रतिपादन करते हुये उपदेश किया। उन्होंने कहा—तुम मन, प्राण, इन्द्रियां, अन्नमय आदि पांच कोश नहीं हो। यह सब जड़ नाशवान, एकदेशीय तथा अनित्य हैं। इसके विपरीत तुम अखण्ड, अविनाशी, द्रष्टा, ज्ञान स्वरूप तथा परमानन्द स्वरूप हो।

पद्मपाद द्वारा बद्रीनाथ मन्दिर का निर्माण

माता की मृत्यु से पूर्व कथा प्रसंग आया था कि आचार्य ने बद्री विशाल की मूर्ति निकालकर श्री पद्मपादाचार्य जी को माता तथा राजा द्वारा प्राप्त धन से मन्दिर के निर्माण की आज्ञा दी थी। उन्होंने गुरु आज्ञा शिरोधार्य करके विशाल मन्दिर का निर्माण कराया। इसके बाद भी पद्मपाद जी विचरण करते हुये एक राज दरबार में पहुंचे। भूख बहुत लगी थी। भिक्षा की याचना की। मंहाराज की पटरानी ने कहा—पहले स्नान करके आवो तब भिक्षा मिलेगी। वे क्षुधा से पीड़ित थे नदी बहुत दूर थी। ऐसा विचार करके दण्ड का प्रहार किया। उसी समय जल की दो धारायें निकलीं। उसमें स्नान तथा दण्डतर्पण आदि किया।

एक बार आचार्य दुराचारियों के ग्राम में पहुंचे। उन्होंने इन्हें बहुत कष्ट दिया। उनका संहार करने के लिये दण्ड की परशुमुद्रा को ग्राम की ओर कर दिया। ग्राम तत्काल भस्म हो गया।

श्री शंकराचार्य की अनेकों वादियों से शास्त्रार्थ करते हुये एक क्रकच नाम वाले उग्र भैरव से भेंट हुयी। वह महाविद्वान्, षड्दर्शनाचार्य, व्याकरण का महापण्डित तथा परम हिंसक था। सदैव मांस, मदिरा का सेवन करता था। उसने शास्त्रार्थ में कइयों को जीता था। उनके साथ शंकराचार्य जी का जमकर शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में वह परास्त हुआ। भीतर से महाक्रूर तथा द्वेषपूर्ण होने पर भी आचार्य से दीक्षा लेकर जप करने लगा। परन्तु उसके भीतर बदला लेने की भावना थी। एक दिन गुरु जी को एकान्त में देख कर गुरु चरणों में प्रणाम करके कहा—हे गुरु देव ! मैं भैरव का उपासक हूं। स्वप्न में मेरे ईष्ट देव ने दर्शन दे करके कहा—मुझे प्रसन्न करने के लिये तुम किसी राजा की अथवा ब्रह्मवेत्ता की बलि दो। राजा की बलि देने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है। हे गुरुजी ! आप से बढ़ कर संसार में इस समय दूसरा ब्रह्मवेत्ता नहीं है। उदारचित्त शंकराचार्य ने विचार किया कि दिग्विजय का कार्य पूर्ण हो चुका है। परोपकार के लिये यह शरीर लग जाये तो क्या हानि है। ऐसा विचार कर उससे कहा—कि तुम ऐसे समय पर या स्थान पर मेरी बलि देना जहां पर मेरा कोई शिष्य न हो। वह धूर्त अर्द्धरात्रि में उनको जंगल में ले गया। पूजन करने के अनन्तर जब तलवार लेकर शिर काटने लगा। इधर आचार्य के परम हितैषी शिष्य पद्मपादाचार्य उसी समय नृसिंह मन्दिर में बैठे हुये गुरु का ध्यान कर

रहे थे। योग दृष्टि से गुरु को वहां देखकर तुरन्त वहीं पहुंचे। नरसिंह भगवान् ने उनके शरीर में प्रवेश किया। नृसिंह के रूप में प्रकट होकर उससे तलवार छीन कर उससे उसका सिर काटकर नृत्य करने लगे। कोलाहल सुनकर गुरु जी की समाधि भंग हुई तथा लक्ष्मी नृसिंह स्तोत्र से नृसिंह भगवान् की स्तुति करने लगे।

परमगुरु जी का दर्शन तथा आशीर्वाद

एक दिन भगवान् शंकर गंगातट पर ध्यान लगाये बैठे थे। इतने में परमगुरु जी को देखा। उन्होंने परम गुरु जी के चरणों में प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर पूछा—गोविन्द से प्राप्त हुई विद्या क्या आपने हृदयंगम की है। तत्त्व साक्षात्कार के अनन्तर परमानन्द प्राप्त किया कि नहीं। भीतर के शत्रुओं को जीता या नहीं। उनके पूछने पर भक्त्युद्रेक से प्रेमाश्रु प्रवाहित करते हुये, मस्तक झुका कर हाथ जोड़कर कहा, हे आचार्यपाद ! आपने जो पूछा है आपकी कृपा से वह अवश्यपूर्ण होगा। तब गौडपादाचार्य जी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हें देखने की चिरकाल से इच्छा थी। तुम मुझसे वर मांग लो। शंकरपाद ने कहा—आपके दर्शन से बढ़कर और क्या चाहिये। परमाचार्य ने आज्ञा दी, मलयाचल पर्वत पर जाकर साधना करो। अपने भाष्यों में जिस परमतत्त्व का प्रतिपादन किया है, वह प्रत्यक्ष होगा।

परम गुरु जी की आज्ञा प्राप्त कर जब वे ध्यान में बैठे थे, उसी समय आकाशवाणी हुई। "यदि मेरा प्रत्यक्ष दर्शन चाहते हो तो मेरे ही सद्योजात मुखावतार वीर शैव धर्म के प्रवर्तक शक्ति विशिष्टाद्वैतवादी रम्भापीठाधीश्वर जगद् गुरु भगवान् रेणुकाचार्य के पास जाकर मेरा चन्द्र मौलीश्वर लिंग प्राप्त करो।" यह आज्ञा प्राप्त होते ही वे तुरन्त उनके पास पहुंचे तथा उनकी स्तुति करने लगे।

भद्रांकुराय भजतामभयंकराय, मोहान्धकार रवये कवये मनूनाम्।
कैवल्य कल्प तरवे गुरवे, गुरूणां, श्री रेणुकाय गणपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥

इस प्रकार छन्दों से स्तुति की। उन्होंने प्रसन्न होकर चन्द्रमौलीश्वर शिवलिंग प्रदान किया। यह कथा प्रसंग 'रेणुक दिग्विजय' में, 'गुरुवंश काव्यम्' स्वयम्भू आगम के पंचाचार्योत्पत्ति प्रकरण में आया है। वीरलैंगोपनिषद् में भी यह प्रकरण आया है। इसका विस्तार सत्ययुग खण्ड पंचाचार्योत्पत्ति प्रकरण में दिया है। परन्तु कुछ विद्वान इनको बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी

में मानते हैं जो कि प्रमाण विरुद्ध हैं। शंकराचार्य के मठों के विद्वान् इन्हें द्वैतवादी कहकर तिरस्कार करते हैं। 'गुरुवंश काव्यम्' में भी आया है कि—

श्रीचंद्रमौलीश्वर लिंगमस्मै, सद्रत्नगर्भं गणनायकं च।
स विश्वरूपाय सुसिद्ध दत्तं, दत्वान्यगादी च्चिरमर्चयेति।

श्री शंकराचार्य जी ने श्री चन्द्रमौलीश्वर लिंग जो रेणुकाचार्य जी से प्राप्त किया था रत्नगर्भ गणेश जी के सहित श्री विश्वरूप को देकर कहा कि इसकी चिरकाल तक आराधना करो। 'गुरुवंश काव्यम्' के रचयिता श्री काशी लक्ष्मण शास्त्री जी ने स्वयं इसकी टीका भी की है। वे लिखते हैं कि **सु सिद्धेन रेवण सिद्ध महायोगिना दत्तं श्री चन्द्र मौलीश्वर लिंगं प्राचां सम्मतं चैव लिख्यते अत्र न चाधिकम्।**

सुसिद्ध रेवण महायोगी द्वारा चन्द्रमौलीश्वर लिंग श्री शंकराचार्य को दिया। मैं प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार लिखता हूं अधिक नहीं। रेवण सुसिद्ध महायोगी रेणुकाचार्य के लिये कहा गया है। गोविन्द भगवत् पादाचार्य के लिये नहीं। परन्तु वर्तमान् 'गुरुवंश काव्यम्' के दूसरे संस्करण की विशेष सूचना में लिखा है कि **सुसिद्धः श्री गोविन्द भवत्पादाचार्य एव नतु द्वादश शताब्दी भवः वीर शैवाचार्य रेवण सिद्धः। रेवण—रेवा नदी तीर वासात् गोविन्द भगवत् पादस्यापि रेवण नाम्ना व्याख्याने निर्दोषोऽपि संगच्छते। नर्मदा नदी पर्यायभूत रेवाशव्दात् एवं च रेवणशब्दः गोविन्द भगवत् पाद वाचकः। वीर शैवाचार्य रेणुकाचार्यापर नामकः रेवण सिद्धस्तु न श्री शंकर भगवत् पाद समकालिकः। आराध्यैवीर शैवैश्च पूज्यमानः सः रेवण सिद्धः अस्मिन् काव्ये पंचम-षष्ठ सर्गे निर्दिश्यते।** इस श्लोक में निर्दिष्ट श्री गोविन्दभगवत्पादाचार्य सुसिद्ध शब्द से कहे गये हैं। बारहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुये रेवण सिद्ध वीर शैवाचार्य नहीं हैं। नर्मदा नदी के तट पर वास करने से गोविन्द भगवत् पाद का भी रेवण नाम व्याख्यान में निर्दिष्ट है। अतः रेवण शब्द गोविन्द भगवत् पाद का वाचक है। वीर शैवाचार्य रेणुकाचार्य जिनका दूसरा नाम है। वे श्री शंकर भगवत् पाद के समकालिक नहीं हैं। वीर शैवों द्वारा पूजनीय रेवण सिद्ध योगी का उल्लेख इस काव्य के पांचवें छठे सर्ग में किया है।

शंका—रेणुक दिग्विजय, सिद्धान्त शिखामणि, वीरलैंगोपनिषद्, श्रीकरभाष्य, स्वयंभुवागम, पंचाचार्योत्पत्ति प्रकरणम्" । आदि ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि श्री

रेणुकाचार्य जी सत्युग में शिवलिंग से प्रकट हुये, चारों युगों में रहे तथा जिस सोमेश्वर लिंग से प्रकट हुये थे, छत्र दण्ड कमण्डलु सिंहासन सहित उसी में लीन हो गये।

मत्पंच वदनोद्भूताः सर्व एव गुरूत्तमाः।
तत्सृष्टानां च सर्वेषां तत्सामर्थ्यं कथं भवेद्॥
तस्मात् पंच विधाचार्याः पंच पीठाधि देवताः।
पंच सिंहासनाधीशाः जगद्गुरुत्तमाश्च ते॥

सुप्रबोधागम (पंचाचार्योत्पत्ति प्रकरण)

श्रीमद्रेवण सिद्धस्य कोलीपाक पुरोत्तमे।
सोमेशर्लिगाज्जन्ममावास कदलीपुरे॥
अथ त्रिलिंग विषये कोलीपाकाभिधे पुरे।
सोमेश्वर महालिंगात् प्रादुरासीत् स रेणुकः॥

(सिद्धान्त शिखामणि)

शंकराचार्य सन्नाम योगीन्द्राय महोज्वलम्।
चन्द्रमौलीश्वरं लिंगं दत्तवानिति विश्रुतम्॥
श्री रेणुका गणेशाख्यं रेवणं सिद्ध देशिकम्।
वीर-शैव मताचार्यं वन्देऽहं तं जगदुरुम्॥

(निरंजनाचार्य कृत वेदान्त सार) (वीर शैव चिन्तामणि—पूर्व खण्ड)

अगस्त्यजी ने ब्रह्मसूत्र की शैव वृत्ति लिखी थी। 'वीर शैव चिन्तामणि' आदि ग्रन्थों में लिखा है कि अगस्त्य जी ने रेणुकाचार्य जी से वेदान्त का अध्ययन किया था। इन्हीं की वृत्ति के आधार पर श्रीपति ने अपने भाष्य में स्वयं लिखा था।

अगस्त्य मुनि चन्द्रेण कृतं वैय्यासिकां शुभाम्।
सूत्र वृत्ति समालोक्य कृतं भाष्यं शिवांकुरम्।

भगवान् शंकर पार्वतीजी से कहते हैं कि हे पार्वती ! यह पांचों (रेणुक, दारुक, चंकुकर्णक, धेनुकर्णक तथा विश्व कर्णकाचार्य) आचार्य जो गुरुओं के भी गुरु हैं। मेरे पांच मुखों से उत्पन्न हुये हैं। वे सब के उत्पादक हैं। उनको उत्पन्न करने की सामर्थ्य किस में है। अतः ये पांचों आचार्य पांच पीठों के अधि देवता हैं तथा पांच सिंहासनों के स्वामी हैं। वे सब के सब जगद् गुरु हैं।

श्री मद् रेवण सिद्ध योगी ने कोली पाकपुर में सोमेश्वर लिंग से प्रकट होकर रम्भा पुरी में निवास किया। तीन लिंगों के सम्बन्ध में कोलीपाक नामक नगर में सोमेश लिंग से रेणुकाचार्य प्रकट हुये।

श्री रेणुकाचार्य जी ने शंकराचार्य नामक योगीन्द्र को प्रकाशमान चन्द्र मौलीश्वर लिंग दिया था। यह मैंने सुना है। श्री रेणुक नामक सिद्ध योगी गुरु वीरशैव मत के आचार्य जगद् गुरु को मैं प्रणाम करता हूं।

अगस्त्य मुनि चन्द्र ने व्यास जी के ब्रह्मसूत्र पर वृत्ति लिखी थी। उस वृत्ति को देखकर मैं कल्याणकारी भाष्य लिखता हूं।

ऊपर दिये प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह पांचों ही आचार्य सत्य युग में प्रकट होकर कलियुग पर्यन्त रहे। सत्ययुग में इनके अगस्त्य ऋषि शिष्य थे। त्रेता में विभीषण, कलियुग में विक्रमादित्य तथा शंकराचार्य के गुरु न होने पर भी परम गुरुवत् इन पर श्रद्धा थी। अतः ऊपर दिये प्रमाणों से यह बारहवीं शताब्दी में सिद्ध नहीं होते।

श्री शंकराचार्य के चन्द्रमौलीश्वर लिंग के लाने के सम्बन्ध में शृंगेरी तथा काम कोटि की मान्यताओं में भेद पाया जाता है। 'शंकर विजय मकरन्द', 'मार्कण्डेय संहिता', 'गुरुवंश काव्यम्', 'चिद्विलासीय', 'ब्रह्मानन्दीय दिग्विजयों' में लिखा है कि अनेकों तीर्थों की यात्रा करते हुये आचार्य कैलाश पर्वत पर पहुंचे। वहां पर अखिल जगद् गुरु शंकर का पार्वती सहित दर्शन किया। वहां पर पार्वती से प्राप्त 'सौन्दर्य लहरी' स्तोत्र से उनकी स्तुति की। चरणों पर गिरे हुये आचार्य को शंकर जी ने हृदय से लगाया। शिव ने प्रसन्न होकर अद्वैतसिद्धि के लिये पांच चन्द्रमौलीश्वर लिंग प्रदान किये और कहा कि भस्म, रुद्राक्ष धारण करके पंचाक्षर मंत्र का जप करते हुये मेरा ध्यान करो। शतरुद्रिय की तीन आवृत्तियां तीनों काल में करो तथा विल्वपत्रों, नैवेद्य आदि द्वारा मेरी आराधना करो। फिर दिग्विजय करो। तुम्हें सफलता मिलेगी। शंकर ने कहा—नन्दीश्वर द्वारा रची हुई 'सौन्दर्य लहरी' जो ग्रन्थ के रूप में है मैं देता हूं। पूर्व काल में मैंने गौतम आदि ऋषियों तथा देवताओं को उपदेश दिया था। कालान्तर में वह लुप्त हो गयी। नन्दीश्वर ने दुबारा रचना की है इसको ग्रहण करो। आचार्य ने उसे सादर ग्रहण किया। पुस्तक लेकर जब बाहर निकले तब नन्दीश्वर ने अपनी पुस्तक उनके हाथ में देखकर, यतिराज पर क्रोधित होकर कहा। मेरी लिखी पुस्तक तुम कैसे लिये जा रहे हो। मैं तुमको नहीं दूंगा। यह कह कर हाथ से जबरदस्ती छीनने लगे। आचार्य ने कहा शंकर जी की दी है मैं नहीं दूंगा।

छीना-झपटी में आधी पुस्तक शंकराचार्य के पास आधी नन्दीश्वर के पास आयी । निराश होकर आचार्य ने शंकर जी के पास जाकर सब हाल बताया । शिवजी ने कहा—हे यति श्रेष्ठ ! मेरी कृपा से यह आधी भी तुमको प्राप्त हो जायेगी । शिवजी से वरदान प्राप्त कर दत्तात्रेय के साथ बद्रीवन में दिग्विजय के लिये वापस आये ।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, सप्तदशोऽध्यायः॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

दिग्विजय तथा तीर्थ यात्रा

आचार्य पाद बद्रिकाश्रम से केदारनाथ पहुंचे । वहां से गन्धमादन फिर बीच के अनेकों तीर्थों से होते हुये उज्जैन में महाकालेश्वर का दर्शन किया । वहां से प्रभास में सोमेश्वर फिर अमर कण्टक से ओंकारेश्वर, विंध्याचल से एकल पर्वत के शिखर पर अमर कण्टक है यहीं से नर्मदा प्रकट हुई है । इस पर्वत के ऋक्षपाल नामक शिखर से रेवा निकलीं जिसका आगे चलकर कावेरी नाम है । दोनों नदियां यहीं मिण्डमा नामक स्थान पर मिलती हैं । वहां से सह्याद्रि पर्वत के पास गोदावरी के उद्‌गम स्थान से त्र्यम्बकेश्वर पहुंचे । यह नासिक नगर से बीस कोस की दूरी पर है । ब्रह्मगिरि पर्वत के शिखर से गोदावरी निकल कर इस क्षेत्र में फैली है । वहां से ऐलापुर, देवगिरि पर्वत के समीप घुश्मेश्वर पहुंचे । वहां से नागेश्वर गये । नागेश्वर तीन हैं—१. द्वारिका के समीप, २. औंध से दारुक वन क्षेत्र से चौदह कोस उत्तर में है ३. अलमोडा जनपद में स्थान है । फिर परली में वैद्यनाथ, हैदराबाद के समीप वैद्यनाथ विहार में चिताभूमि में है । फिर भीमानदी के समीप भीम शंकर, वहां से श्री शैल पर्वत पर मल्लिकार्जुन गये । वहां से गोकर्ण क्षेत्र समुद्र तट पर पहुंचे । तीन रात्रि वहां पर निवास किया । वहां पर अद्वैत के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ किया । हरी शंकर तथा मूकाम्बिका की आराधाना की । वहीं पर एक ब्राह्मण दम्पति रोते हुए आया उनके पुत्र की मृत्यु हो गई थी । तब आचार्यपाद ने मूकाम्बिका की स्तुति करके बालक को जीवित किया । वह सोये हुये के समान उठ बैठा । वहां से शिष्यों सहित तौलव ग्राम पहुंचे । वहां पर एक ब्राह्मण प्रभाकर नामक अपने एक बालक को लेकर पत्नी सहित पहुंचे । वह बालक गूंगा तथा बहरा था । अनेकों दान पुण्य अनुष्ठान आदि करने पर भी वह ठीक नहीं हुआ । उसका मुख चन्द्रमा के समान, क्षमा में पृथ्वी के समान, एकदम जड़ था ।

श्री हस्तामलकाचार्य चरित्र

माधवीय दिग्विजय में इन्हें पवन का अंश बताया है। पिता का नाम दिवाकर प्रयाग क्षेत्र के किसी ग्राम में रहते थे। चिद्विलासीय में व्यास दर्शन से पूर्व यह कथा आई है। गोविन्द नाथीय में इनके पिता का नाम शिव था। "गुरुवंश काव्यम्" तथा "माधवीय गोवर्द्धन जगद्गुरु रत्न माला" तथा "सुधन्वा" के लेख में इनका नाम पृथ्वीधर आचार्य आया है। इस बालक के माता पिता फलादिपूजन सामग्री लेकर आचार्य के चरणों पर गिर पड़े। बालक को भी दण्डवत् प्रणाम करवाया। आचार्य ने राख से ढकी अग्नि के समान उसके तेज को देखा। पिता ने कहा—हे गुरो ! इसको १२ वर्ष बीत गये हैं १३वां चल रहा है। बच्चों के खेलने के लिये पुकारने पर यह नहीं जाता। दुष्ट बच्चों द्वारा मार खाकर भी क्रोध नहीं करता। न कुछ खाता है। इच्छा होने पर कुछ खा लेता है। आचार्य ने पूछा—कस्त्वम् ? जड़ के समान प्रवृत्त क्यों हो ? तब बालक ने कहा—

नाहं जडः किन्तु जड़ प्रवर्तते, मत्सन्निधानेन न संदिहे गुरो।
षडूर्मिषडभाव विकार वर्जितं, सुखैकतानं परमस्मि तत् पदम्॥
ममैव भूयादनुभूतिरेषा मुमुक्षुवर्गस्य निरूप्य विद्वन्।
पद्यैः परैर्द्वादशभिर्बभाषे चिदात्मतत्त्वं विधुत प्रपंचम्॥
निमित्तं मनश्चक्षुरादि प्रवृत्तो निरस्ताखिलोपाधिराकाश कल्पः।
रविर्लोक चेष्टा निमित्तं यथा यः सनित्योपलब्धि स्वरूपोऽहमात्मा॥

माधवीय दिग्विजय ॥५५॥५६॥

हे गुरो ! मैं जड़ नहीं हूं किन्तु जड़ को प्रवृत्त करने वाला चैतन्य हूं। मेरे ही सान्निध्य से जड़ में प्रवृत्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये मैं शोक, मोह, भूख, प्यास, बुढ़ापा तथा मृत्यु इन छः ऊर्मियों तथा शरीर के अस्ति, जायते, वर्द्धते, परिणमते, क्षय, विनाश इन छः विकारों से रहित सर्वोत्तम परमात्मा हूं। अर्थात् शरीर इन्द्रिय आदिकों से रहित शोधित तत्पदार्थ से अभिन्न हूं। हे विद्वन् ! मुमुक्षुओं के कल्याण के लिये चिदात्म तत्त्व को प्रकाशित करने वाली बारह पदों में कही गई मेरी अनुभूति है उसको कहता हूं। मैं आकाश के समान निर्विकल्प मन चक्षु आदि को कार्य में लगाने वाला निरुपाधिक ब्रह्म हूं। जैसे सूर्य का प्रकाश जगत की चेष्टा का निमित्त है। वैसे ही मैं नित्य उपलब्धि स्वरूप आत्मा हूं।

इनके हृदय में हाथ पर रखे आमले के समान श्लोकों द्वारा आत्मस्वरूप का प्रकाश किया था। अतः आचार्य ने इनका नाम "हस्तमलकाचार्य" रखा। उस बालक को बिना उपदेश के ही आत्मबोध हुआ था। यह देखकर गुरु जी ने अपना हस्तकमल बालक के मस्तक पर रखा। फिर पिता से कहा—यह बालक आपके योग्य नहीं है। हे विप्रवर ! इसमें देह, गेह की अहंता ममता नहीं है। विकार रहित परब्रह्म का प्रकाश इनमें हुआ है। अतः इनको मुझे दे दो। वे पुत्र को आचार्य को सौंप कर घर वापस आये। बालक भी उनके साथ ही तीर्थ यात्रा करने लगा।

लोगों ने आचार्यपाद से इस बालक के सम्बन्ध में पूछा—किस साधन के प्रभाव से इसकी यह गति हुई है। तब आचार्य ने पूर्व जन्म की कथा सुनाते हुये कहा यह बालक पूर्व जन्म में योगाभ्यासी सिद्ध महात्मा था। एक बार एक ब्राह्मणी अपने दो वर्ष के बच्चे को इनके पास छोड़कर सखियों के साथ स्नान करने चली गयी। संयोग से वह बालक भी धीरे-धीरे जाते हुये नदी में बह गया। तब रोती हुई माता बालक को लाकर महर्षि के पास रुदन करने लगी। मुनि ने माता के शोक से खिन्न हुये परकाय प्रवेश की रीति से अपना शरीर त्याग कर उस बालक के शरीर में प्रवेश किया। वही हस्तामलक तपस्वी हुये। इसलिये यह बिना उपदेश किये ही अनेक वेदशास्त्र स्मृतियों को जानता है। हस्तामलक के द्वारा कहे गये बारह श्लोकों पर आचार्यपाद ने कृपा करके विस्तृत गम्भीर तथा विचित्र भाष्य किया है।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुगे खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, अष्टादशोऽध्यायः॥

अथ ऊनविंशोऽध्यायः

श्री त्रोटकाचार्य चरित्रम्॥ भगन्दर व्याधि की निवृत्ति। पद्मपादाचार्य द्वारा पंच पादिका प्रणयन। शृंगेरी वास तथा शारदा प्रतिष्ठा।

समुद्र तट पर विचरण करते हुये अभिचारक अभिनव गुप्ताचार्य द्वारा श्री शंकराचार्य जी को भगन्दर रोग हो गया। अत्यन्त विनम्र एक शिष्य छायावत् उनके साथ रहकर सेवा करने लगा। वे गुरु जी के खड़े होने पर खड़े होते, चलने पर चलते, सोने पर सोते तथा जागने पर जाग जाते। गुरु जी की कौपीन खून से सन जाती तो उसे धोते थे। गुरु जी के चरण दवाते।

महाराज सुधन्वा के लेख में इस शिष्य का नाम प्रतर्दनाचार्य आया है। माधवीय दिग्विजय में इन्हें गिरि शर्मा या आनन्द गिरि कहा है। इन्हें पवन, नंदीश्वर या वृहस्पति के अंश से

माधवीय तथा सतानन्दीय में कहा है। काशी के विश्वनाथ अध्वरि के पुत्र कलानाथ के नाम से कहा जाता था। चिद्विलासीय में मण्डन से पूर्व इनका संन्यास कहा है।

एक दिन आचार्य नदी तट पर बैठे थे। प्रतर्दन उस समय आचार्य के वस्त्र साफ करने के लिये सरोवर पर गये थे। इधर भाष्य पढ़ाने का समय हो चुका था। आचार्यपाद उनकी प्रतीक्षा में थे। गुरु शिष्य मिलकर शान्ति पाठ कर चुके थे। आचार्य ने व्याख्यान आरम्भ नहीं किया। शिष्यों के पूछने पर कहा थोड़ी देर रुको गिरि को आने दो। उनकी बात सुनकर विद्याभिमानी शिष्यों ने कहा। वह पर्वत के समान जड़, अति मन्द बुद्धि शास्त्र के तत्त्व को क्या समझे। वह तो दीवार की तरह जड़ है। अभिमान सहित शिष्यों ने कहा। उनके गर्व को दूर करने के लिये आचार्य ने परम कृपा से शक्तिपात् द्वारा चौदह विद्याओं का प्रवेश कराया। वस्त्र छांटकर फैलाकर जब पहुंचे तो परम भक्ति से युक्त गुरु चरणों की धूलि को मस्तक पर लगाकर प्रणाम किया। चिच्छक्ति की प्रेरणा से त्रोटक छन्दों द्वारा गुरु की स्तुति करने लगे।

विदिताखिल शास्त्र सुधा जलधे, महितोपनिषत् कथितार्थनिधे।
हृदये कलये (कमले) विमलं चरणं, भव शंकर देशिक मे शरणम्॥१॥
करुणा वरुणालय पालय मां, भवसागर दुःख विदूनहृदम्।
रचयाखिलदर्शन तत्त्वविदं, भवशङ्कर...................॥२॥
भवता जनता सुहिता भविता, निज बोध विचारण चारु मते।
कलयेश्वर जीव विवेकविदं, भवशंकर देशिक मे शरणम्॥३॥
भव एव भवानिति मे नितरां, समजायत चेतसि कौतुकिता।
मम वारय मोह महाजलधिं, भवशङ्कर...................॥४॥
सुकृतेऽधिकृते बहुधा भवतो, भविता सम दर्शन लालसता।
अतिदीनमिमं परिपालय मां, भवशङ्कर...................॥५॥
जगतीभवितुं कलिका कृतयो, विचरन्ति महामहसच्छलतः।
अहिमांशु रिवात्र विभासि गुरो भवशंकर...................॥६॥
गुरु पुंगव पुंगव केतनते, समता मयतां नहि कोऽपि सुधीः।
शरणागत वत्सल तत्त्वनिधे भवशंकर...................॥७॥
विदितान मया विशदैक कला, नच किंचन कांचनमस्ति गुरो।
द्रुतमेव विधेहि कृपां सहजां, भवशंकर देशिक मे शरणम्॥८॥

इस स्तोत्र का पाठ करते हुये चले आये । इसे सुनकर सभी शिष्य विस्मित हो गये । इन्होंने चार वेदों में विद्यमान अद्वैत सिद्धान्त को "श्रुतिसार समुद्धरणम्" नामक ग्रन्थ में लिखा है । इस ग्रन्थ की पूज्यपाद अनन्त श्रीदण्डी स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम महाराज ने भाषा टीका की है । आप भूमानिकेतन में वास करते हैं । अत्यन्त निस्पृह वीत राग सन्त हैं । पूज्य पाद दण्डी स्वामी भूमानन्द जी महाराज ने उसका प्रकाशन किया है ।

आचार्यपाद बोले—त्रोटक छन्दों में तुमने ग्रन्थ लिखा है अतः तुम्हारा नाम 'त्रोटकाचार्य' हुआ । शिष्यों ने गुरुजी को भगन्दर से पीड़ित देखकर प्रार्थना की कि इस महारोग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । अवश्य उपचार होना चाहिये । गुरु जी ने आज्ञा दी, जावो किसी योग्य वैद्य को ढूंढ लावो । बहुत से शिष्य योग्य वैद्य को खोजने निकले । देश भर से अनेकों योग्यतम वैद्य पहुंचे तथा उपचार करने लगे । किन्तु किसी के उपचार से रोग ठीक नहीं हुआ । वैद्य लोग भी बड़े खिन्न हुये । यहां तक कि अश्विनी कुमारों से भी ठीक नहीं हुये । अश्विनी कुमारों ने कहा यह रोग शारीरिक विकार से सम्बन्धित नहीं है । किसी ने आभिचारिक प्रयोग किया है । पद्मपाद ने समाधि में देखकर गुरुओं से कहा । इस प्रकार से यह ठीक नहीं होगा । मुझे आज्ञा दो मैं मंत्र से इसका प्रतीकार करूंगा । उन्होंने आज्ञा नहीं दी । विशेष विनय करने पर आज्ञा प्राप्त करके मारण प्रयोग किया । इससे अभिनव अस्वस्थ होने लगे । जैसे-जैसे अभिनव का रोग बढ़ता था आचार्यपाद स्वस्थ होते थे । अन्त में अभिनव की मृत्यु हो गई और आचार्यपाद स्वस्थ हो गये ।

सुरेश्वर द्वारा वार्तिक रचना एवं पद्मपाद की पंच पादिका

एक दिन सुरेश्वराचार्य ने भक्ति सहित आचार्य को प्रणाम करके शारीरिक भाष्य की गम्भीरता को सरल करने की इच्छा की तथा गुरुजी से कहा, हे गुरुवर ! मुझे आज्ञा दो मैं क्या करूं । मनुष्य जन्म की सफलता इसी में है कि अपने जीवन को गुरुंओं को समर्पित कर दे । शिष्य के भक्ति भाव से सन्तुष्ट हुये आचार्य ने भाष्य पर वार्तिक लिखने की आज्ञा दी । सुरेश्वर ने कहा—मैंने आपका भाष्य भली प्रकार से समझा है अति गम्भीर वाक्यों से युक्त है । आपकी कृपा कटाक्ष के बिना मुझमें इस भाष्य पर युक्ति, तर्क, प्रमाण सहित वार्तिक लिखने की क्षमता नहीं है । आचार्य ने तथास्तु कहकर आज्ञा दी । प्रणाम करके सुरेश्वर जाने लगे । इतने में और शिष्य पहुंच गये । उन्होंने भी प्रणाम किया । वे आचार्य पद्मपाद के पक्ष के थे । उन्होंने

कहा—हे गुरो ! जीवन पर्यन्त कर्मनिष्ठ सुरेश्वर अद्वैत वेदान्त को लेकर वार्तिक कैसे लिख सकते हैं। अर्थात् इनमें कर्म निष्ठा है ज्ञान निष्ठा कम है। यह वार्तिक लिखने के लिये अयोग्य हैं। योगियों में उत्तम पद्मपाद ही एकान्त वास करके आपके भाष्य पर टीका कर सकते हैं। आचार्य ने कहा मैं अपना कार्य बहुतों को लगाकर नहीं करवाऊंगा। अतः सुरेश्वर तथा पद्मपाद मेरे भाष्य पर वार्तिक या टीका लिखने के पूर्व कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर दिखायें।

तब गुरु की आज्ञा प्राप्त करके सुरेश्वराचार्य जी ने 'नैष्कर्मसिद्धि' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें पहले अनेक युक्ति, तर्कों तथा प्रमाणों से ज्ञान को पूर्व पक्ष तथा कर्म को उत्तर पक्ष देकर कर्म का समर्थन, ज्ञान का खण्डन किया गया। उसके बाद कर्म का खण्डन ज्ञान का समर्थन युक्ति, तर्क प्रमाणों से किया। आचार्यपाद इस ग्रन्थ को देखकर अति प्रसन्न हुये। अन्य विरोधी शिष्यों को भी दिखाया। सभी लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिर आचार्य ने कहा। मेरी यजुर्वेद की शाखा है उस पर मैंने वृहदारण्यक उपनिषद् पर भाष्य लिखा है। उस पर तुम वार्तिक लिखो। तथा तुम्हारी काण्व शाखा है। अतः तैत्तिरीय उपनिषद् पर वार्तिक लिखो। उन्होंने इन पर भी वार्तिक लिखकर दिखाया। सनन्दन ने भी आज्ञा प्राप्त करके ब्रह्मसूत्र के पूर्व भाग प्रथम तथा द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद तक 'पंचपादिका' नामक प्रसिद्ध वृत्ति लिखी। इसके बाद इन्होंने गुरु जी से तीर्थ यात्रा की आज्ञा मांगी। उन्होंने तीर्थ यात्रा के दोष बताते हुये अधम से अधम कहकर मना किया। एक स्थान पर बैठकर श्रवण, मनन निदिध्यासन करने के लिये कहा। किन्तु इनकी रामेश्वरम् यात्रा की प्रबल इच्छा थी। शिष्य का हठ देखकर गुरु जी ने आज्ञा दे दी। उन्होंने पहले ही कह दिया था कि इस यात्रा से तुम्हें महान् पश्चात्ताप होगा।

वे अनेकों तीर्थों से होते हुये 'कालहस्तिन्' पहुंचे। वहां से 'कांचीपुरम्' वहां से 'पुण्डरीक पुरम्' वहां से 'रामेश्वरम्' का विचार किया। मार्ग में कुबेर पुत्री कावेरी नदी में स्नान करके श्री रंगनाथ का दर्शन किया। वहां से जम्बुकेश्वर में दर्शन के अनन्तर मार्ग में इनका ननिहाल पड़ता था। इनके मामा कट्टर मीमांसक कर्मकाण्डी द्वैतवादी शास्त्रवेद के पण्डित थे। अपने भांजे को संन्यासी देखकर बहुत प्रसन्न हुये। नारायण बुद्धि से मामा ने अति श्रद्धापूर्वक पूजन के अनन्तर भिक्षा करवायी। भिक्षा के अनन्तर इनके हाथ में पुस्तक देखकर पूछा—हे विद्वन्! यह कौन सी पुस्तक है। इन्होंने कहा—मैंने गुरु जी के शारीरिक भाष्य पर टीका की है। मामा

ने देखने के लिये मांगी इन्होंने दिया। युक्ति, तर्क, प्रमाण से युक्त पुस्तक को देखकर मामा बहुत प्रसन्न हुये। परन्तु आगे बहुत सी युक्तियों से मतान्तरों का खण्डन और पूर्व मीमांसा का खण्डन देखकर बहुत दुःखी हुये। उसमें गुरु तथा अपने मत का खण्डन देखकर भीतर से जलन पैदा हुई। इसको उत्तर देने की क्षमता उनमें तथा उनके गुरु दोनों में नहीं थी। भीतर जलन होने पर बाहर से उस ग्रन्थ की प्रशंसा की तथा कहा—हे स्वामिन् ! आप पुस्तक का भार लेकर कहां जाओगे इसको यही छोड़ दो मैं पूरी पुस्तक देखना चाहता हूं। जैसे हम गृहस्थों की आसक्ति स्त्री, पुत्र, धन, पशु आदि में है, वैसे ही पुस्तकों में भी है। लौट कर आने पर मिल जायेगी। उन पर विश्वास करके पद्मपाद छोड़कर चले गये।

इनके चले जाने के बाद मामा ने विचार किया। इस ग्रन्थ के रहते मेरे गुरु पक्ष की बड़ी हानि है। इसका निराकरण करने की शक्ति मुझ में नहीं है। इस पुस्तक का महापवाद यही है कि इसको जला दिया जाये। पक्ष के नाश के स्थान पर घर का नाश उत्तम है। अतः पुस्तकों सहित घर जला दूंगा। ऐसा विचार करके घर में आग लगा दी, तथा चिल्लाने लगे। बचाओ मेरा घर जला जा रहा है। इधर पद्मपादाचार्य जी भी रामेश्वर यात्रा के अनन्तर अनेकों तीर्थों से होते हुये जब मामा के घर पहुंचे तब मामा ने घड़ियाली आंसू बहाते हुये पुस्तकों तथा घर के जलने की बात बतायी। तथा कहा मुझे घर जलने का इतना दुःख नहीं है जितना कि आपकी पुस्तक के जलने का। इन्होंने सान्त्वना देते हुये कहा। आप चिन्ता क्यों करते हो पुस्तक ही तो नष्ट हुयी है बुद्धि तो नष्ट नहीं हुई। मैं फिर से रचना कर लूंगा। वे फिर से उससे भी उत्तम ग्रन्थ लिखने लगे। तब मामा ने भोजन में बुद्धि मन्द करने वाली उडद की दाल भैंस का दूध, दही कुन्दरु की सब्जी आदि खिलाई। उनकी बुद्धि कुण्ठित हुई तब वे अति खिन्न हुये और सोचा मैंने गुरु जी की आज्ञा का उल्लंघन किया उसका फल पाया। इसके बाद वहां से चलकर अति दीन भाव से रोते हुये गुरु जी के पास पहुंच कर बहुत दुःखीं हुये तथा सब हाल कह सुनाया। गुरु जी ने कहा—तुमने जो मुझे पंचपादिका सुनाई थी मुझे 'अक्षरशः' याद है। फिर से लिखा दिया।

श्रृंगेरी में वास, शारदा प्रतिष्ठा तथा शिष्यों का अध्यापन

योगिराज शंकर गोकर्ण के बाद सह्याद्रि पर्वत पर पहुंचे। वहां से भगवान् वराह की दाढ़ों से उत्पन्न तुङ्गभद्रा के उत्पत्ति स्थान में आकर आह्निक क्रिया की। इसी स्थान पर

विभाण्डक तथा शृंगी ऋषि ने तप किया था। वहां पर एक सर्प को मेंढ़क पर फणों से छाया किये हुए देखा। यह निर्वैर स्थान निवास योग्य है। ऐसा विचार कर तुंगभद्रा नदी तट पर भगवती शारदा देवी का मन्दिर ब्रह्म विद्या के प्रतीक श्री चक्र पर बनाना आरम्भ किया। मन्दिर बनवा कर शारदा देवी की स्थापना की तथा वहां पर सुरेश्वराचार्य को नियुक्त किया। अनेकों स्तोत्रों से वाग्देवी की स्तुति की। वहां पर चारों शिष्यों सहित चिरकाल तक निवास किया। कुछ लेखकों के अनुसार हस्तामलकाचार्य को वहां नियुक्त किया। कामकोटि की मान्यतानुसार कुछ काल वहां निवास करने के अनन्तर सुरेश्वर को नियुक्त किया। लगभग १२ वर्ष वहां रहे। बाद में अपना उत्तराधिकारी 'नित्यबोध-घनाचार्य' को नियुक्त करके सुरेश्वर काम कोटि में आ गये।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, ऊनविंशोऽध्यायः॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

वहां से आचार्यपाद कन्याकुमारी गये। वहां पर कुमारी रूप से पार्वती ने तप किया था। आनन्द रामायण की कथा के अनुसार एक ब्राह्मण कन्या ने भगवान् राम को पति रूप में प्राप्त करने के लिये तप किया। राम ने दर्शन देकर उससे कहा, इस जन्म में तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं होगी। द्वापर में जब मैं कृष्णावतार लूंगा तब तुम जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती के रूप में मुझे प्राप्त करोगी।

वहां से चलकर आचार्यपाद ने मदुरै में मीनाक्षी का दर्शन पूजन किया तथा श्रीचक्र की स्थापना की। भगवती को ताटंक समर्पित किये। वहां से फिर रामेश्वरम् पहुंचे। फिर वहां से मातृभूतेश्वरम् पहुंच कर अखिलाण्डेश्वरी के दर्शन किये। वहीं पर गुरु की आज्ञा प्राप्त कर भगवती की उग्र कला को शान्त करने के लिये महाराज सुधन्वा के शिल्पी लोगों से गणेश की भव्य मूर्ति उनके आगे स्थापित की। अपने पुत्र को सम्मुख देखकर देवी की उग्रता शान्त हुई।

चार्वाकों के गुरु पर विजय

दिग्विजय में शंकराचार्य जी ने ११०० मत मतान्तरों के आचार्यों को जीता। उनमें चार्वाक को जीतने में विशेष प्रयास करना पड़ा। जगद्गुरु जी से उसने पूछा—आप कितने प्रमाण मानते

हो। उन्होंने कहा—हम छः प्रमाण मानते हैं। १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. अनुपलब्धि ४. अर्थापत्ति ५. शब्द ६. उपमान। चार्वाक ने कहा—मैं केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानता हूं। फिर आचार्य से पूछा—"आज कौन तिथि है।" आचार्य ने गणना करके बताया आज पूरे ६० घटी अमावस्या है। चार्वाक ने कहा—आप १६ आने गलत कहते हो। आज पूरे ६० घटी पूर्णिमा है। आप को विश्वास न हो तो सूर्यास्त होते ही आकाश में पूर्ण चन्द्रमा देख लो। उसने अपनी योग माया या वैज्ञानिक ढंग से नकली चन्द्रमा बनाया था। उसका प्रकाश ९, १० मील से अधिक नहीं था। सूर्यास्त होते ही सभी ने पूर्व में चन्द्रमा उदय होते देखा। यह देखकर चार्वाक के चेले अपने गुरु की जय जयकार करने लगे। आचार्य पाद के सभी शिष्यों के चेहरे उतर गये। परन्तु शंकर जीव कोटि में तो थे नहीं। वे निरपेक्ष सर्वज्ञ शंकर के पूर्णावतार थे। उन्होंने शिष्यों को सान्त्वना देते हुये कहा कि यह नकली चन्द्रमा है इसका प्रकाश दो योजन से अधिक नहीं है और यह अर्ध रात्रि से पूर्व ही अस्त हो जायेगा। यदि विश्वास न हो तो मेरे साथ चल कर देखो। दोनों गुरु अपने शिष्यों सहित चल पड़े। थोड़ी ही दूरी पर थोड़े ही काल में चन्द्रमा अस्त हो गया। इस प्रकार उन्होंने चार्वाकों के गुरु पर विजय प्राप्त की।

काश्मीर यात्रा तथा सर्वज्ञ सिंहासनारूढ़ होना

भारत की तीनों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर आचार्यपाद शारदा मन्दिर काश्मीर में पहुंचे जो श्रीनगर के समीप बताया जाता है। श्रीनगर में पर्वत के नीचे दुर्गानाग का मन्दिर है। उसके ऊपरी पर्वत पर श्री शंकराचार्य का मठ है। श्रीनगर शहर में ही एक शारका मन्दिर है। कुछ लोग उसी को शारदा देवी का मन्दिर कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि क्षीर भवानी के निकट शारदा देवी का मन्दिर था। उस मन्दिर में चार दरवाज़े थे। तीन दिशाओं के द्वार खुले थे, पूर्व, उत्तर, पश्चिम। दक्षिणी द्वार से कोई सर्वज्ञ विद्वान् ही प्रवेश कर सकता था। 'माधवीय दिग्विजय' तथा 'गुरुवंश काव्यम्' के अनुसार आचार्यपाद उड़कर पहुंचे। वहां पर शारदा भगवती के सर्वज्ञ सिंहासन पर आसीन हुये। विद्वानों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। आचार्यपाद ने सबका समाधान कर दिया। तब विद्वानों ने कहा केवल शास्त्र विद्या से ही कुछ नहीं होता। आप चरित्र भ्रष्ट हो अतः आप आसन पर नहीं बैठ सकते। आपने संन्यासी होते हुये भी राजा के शरीर में प्रवेश कर स्त्रियों के गुप्त रहस्यों का अध्ययन किया है। अतः अयोग्य हो। उत्तर में इन्होंने कहा—"मैंने यति शरीर से ऐसी कोई चेष्टा नहीं की। दूसरे स्थूल शरीर से किया है।"

इस पर विद्वानों ने कहा—आपके सूक्ष्म शरीर के मन बुद्धि तो वही थे। अतः आप अनधिकारी हैं। तब इन्होंने उत्तर दिया सूक्ष्म शरीर तो अनादि है। उसके अवयव मन बुद्धि आदि भी अनादि हैं। अतः स्थूल शरीर से यह भिन्न है। फिर विद्वानों ने कहा—आपने जगदम्बा को प्रणाम नहीं किया। दण्ड का स्पर्श कराया। आचार्य ने उत्तर दिया। शरीर से प्रणाम करने पर भगवती मेरे ब्रह्म तेज को सहन न कर पायेंगी। भवन सहित मूर्ति खण्डित हो जायेगी। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो छोटा मन्दिर बनाकर मूर्ति स्थापित करो। मेरे प्रणाम करते ही दोनों छिन्न-भिन्न हो जायेंगे। उन्होंने नवीन मन्दिर बनाकर मूर्ति स्थापित की। आचार्यपाद के प्रणाम करते ही भवन सहित मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये। तब सब लोग प्रणाम करके इनके शिष्य होकर अद्वैत मत में दीक्षित हुये। **(पूर्वाचार्यों द्वारा श्रुत)**

१. शारदी पीठ कहां है ?

कालटी से प्रकाशित "आद्य श्री शंकराचार्य का आविर्भाव काल"" नामक ग्रन्थ में "श्री पं. वाराणसी राजगोपाल शर्मा जी" ने लिखा है कि "राजतरंगिणी" में लिखा है कि "गंगोत्पत्ति स्थान जो भेद गिरि है, उसके एक शिखर पर एक रम्य सरोवर है। जिसमें हंस क्रीड़ा करते हैं। यही शारदा देवी हैं।" इस तीर्थ को 'बुद्वार' कहते हैं। मधुमती नदी, सरस्वती नदी में मिलती है और आगे यही मधुमती कृष्ण गंगा नदी में मिलती है। इस नदी संगम के समीप शारदा पीठ है। श्रीनगर से दूर उत्तर, पश्चिम पहाड़ सीमा में बोलोर घाटी को पार कर 'गोषपुरी' ग्राम है। वहां पर शारदा मन्दिर के पुजारी रहते हैं।यहां से आगे हयग्रीव आश्रम है। जिसे होम शहर कहते हैं। इस आश्रम के समीप श्री गणेश रूप में छोटा पहाड़ है। इसी के समीप 'शांडिल्य ऋषि' का तपोवन है। इसी तपोवन को 'शारदा वन' कहते हैं और यह घना जंगल है। इस शारदा वन में एक ग्राम है, जिसे 'शारदी' कहते हैं। मधुमती नदी के किनारे पहाड़ और यहां शिवलिंग मूर्तियों का मन्दिर भी है। इसके समीप "अमर-कुण्ड" एक तालाब है। इस तालाब के समीप 'शारदा देवी' मन्दिर है। इसी मन्दिर के मूल स्थान में माता शारदा ने शाण्डिल्य मुनि को दर्शन दिया था। यह मन्दिर समुद्र तल से ११००० फीट ऊंचा है। इस मन्दिर के चारों तरफ चार प्रवेश द्वार हैं। यहां श्री चक्र एवं सर्वज्ञ पीठ में माता का पूजन होता है। अलबेरुनी (१०३० ई०) कहते हैं कि "यहां माता शारदा की काठ मूर्ति थी। कश्मीर महाराजा ललितादित्य मुक्त पीड के समय में भी शास्त्रार्थ के लिये भारत देश के विद्वानों के

यहां आने का विवरण इतिहासकार बताता है। .... विनायक भट्ट रचित सांख्यान भाष्य में भी यहां के शास्त्रार्थ की चर्चा हुई है। श्री शंकराचार्य जी ने 'प्रपंच सार' ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में शारदा की स्तुति की है।

चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमणों से यह मन्दिर जीर्ण हो गया। १९वीं शताब्दी में जब डोगरा वंश राज्य करने लगा, तब इसका जीर्णोद्धार हुआ। वर्तमान काल में यह मन्दिर आज़ाद काश्मीर पाकिस्तान के अधिकार में है।

वहां से शिष्यों सहित भ्रमण करते हुये मद्यार्जुन में पहुंचे। वहां भी इनका शास्त्रार्थ हुआ। उस क्षेत्र के निवासी प्रातः स्नान त्रिकाल सन्ध्या, पंच महायज्ञ आदि करते थे। उनको इन्होंने निष्काम भाव से करने की आज्ञा दी तथा भेद बुद्धि का परित्याग करके वेदान्त मत में निष्ठित किया। वहां से पद्म पादादि शिष्यों सहित मृत्युञ्जय उमापति के यहां पहुंचे। वहां से फिर पुण्डरीकपुर गये। वहां से वैंकटेश्वर में गये। वहां गोविन्द राज को प्रणाम किया। वहां से पुष्करिणी तीर्थ में गये। वहां पर वैराग्यादि सद्गुणों से युक्त एक श्वेत कुष्टी ब्राह्मण मिला जिसका सारा शरीर पके हुये सीता फल के समान चितकबरा था। वह रोता हुआ प्रणाम करके अपना दुःख सुनाने लगा। हे करुणानिधे ! मैं संसार सागर में डूब रहा हूं। मेरा उद्धार करो। उससे इन्होंने कहा—तुम शरीर इन्द्रिय प्राण आदि नहीं हो। इनके प्रकाशक स्वयं प्रकाश ज्योति स्वरूप आत्मा हो। ब्राह्मण ने पूछा मैं ज्योति स्वरूप सबका प्रकाशक कैसे हूं। तब आचार्य पाद ने एक श्लोक में ज्योति ब्राह्मण का उपदेश दिया।

किं ज्योतिस्तव भानुमानहनि, मे रात्रौ प्रदीपादिकम्।
स्यादेवं रविदीप दर्शन विधौ किं ज्योतिराख्याहि मे॥
चक्षुस्तस्य निमीलनादि समये किंधीर्धियो दर्शने।
किं तत्राह मतोभवान्, परमकं ज्योतिस्वदस्मै प्रभो॥

उस ब्राह्मण ने पूछा कि ज्योति क्या है ? मुझसे कहिये। दिन में कौन ज्योति है ? सूर्य का। तथा रात्रि में चन्द्रतारादि, तथा दीपक। नेत्रबन्द कर लेने पर किसका प्रकाश होता है ? बुद्धि का। हे प्रभो ! मैं कौन हूं। तुम परम ज्योति हो और जो सबका प्रकाशक है।

कामकोटि के जगद्गुरु "श्री स्वामी गोपाल गोविन्द" के शिष्य "स्वयं प्रकाश योगीन्द्र जी" ने इस पद्य को तत्त्व दीपन नामक व्याख्या में अवतरणिका सहित व्याख्या करते हुये लिखा है

कि सर्वज्ञ भगवान् चन्द्रचूड़ शंकर के अवतार शंकराचार्य जी जिन्होंने ८ वर्ष में चारों वेदों का अध्ययन किया। बारहवें वर्ष में सर्व शास्त्र वित् हुये। १६ वर्ष में भाष्य लिखा। ३२ वर्ष में शिवलोक प्राप्त किया। ऐसे तीर्थवत् पवित्र, तीनों लोकों को पवित्र करते हुये विचरण करते हुये किसी ग्राम में पहुंचे। वहां पर चितकबरे, नेत्रहीन ब्राह्मण ने मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो कहते हुये बार-बार प्रणाम किया। उसी कुष्टी को साधन चतुष्टय सम्पन्न देखकर परम दया से युक्त, संसार से मुक्त करने के लिये उपदेश किया। वृहदारण्यक उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य जी से 'ज्योति-ब्राह्मण' में ऋषि ने पूछा—अस्तमित आदित्ये, याज्ञवल्क्य, चन्द्रमस्यस्तमिते, शान्तेऽग्नौ, शान्तायां वाचि किं ज्योति रेवायं पुरुष इति आत्मैवास्य ज्योतिर्भवतीति, आत्मनैवायं ज्योतिषाऽऽस्ते; पल्यते कर्म कुरुते, विपल्येतीति, कतम आत्मेति, यो यं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदयान्त ज्योंतिः पुरुषः।

सूर्यास्त होने पर किसका प्रकाश होता है ? उत्तर दिया, चन्द्रमा का। चन्द्रास्त होने पर किसका प्रकाश होता है ? अग्नि का। अग्नि शान्त होने पर ? वाणी का। वाणी के शान्त होने पर ? आत्मा का। इस प्रकार आत्मा के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं। वह आत्मा कैसा है ? जो विज्ञानमय तथा प्राणमय आदि कोशों में हृदय के अन्दर स्थित पुरुष है। इसी वृहदारण्यक उपनिषद् के चौथे अध्याय में कहे हुये जनक याज्ञवल्क्य सम्वाद रूप, ज्योति ब्राह्मण में वाक्य के अर्थ को मन में विचार कर आचार्य ने प्रश्नोत्तर रूप में श्लोक में लिखा।

दक्षिण दिशा से आचार्य बहुत से देशों में भ्रमण करते हुये फिर काल हस्तिन क्षेत्र में पहुंचे। वहां तीर्थ में स्नान करके देव दर्शन किया। वहां पर कुछ काल ठहरकर शंकर की पूजा की। वहां से सप्त मुक्तिदायक पुरियों में से कांचीपुरी में पहुंचे। जो तीन शक्तियों से सुरक्षित है। यह स्थान गंगा जी से दक्षिण में २०० योजन, तथा सागर से ७$\frac{१}{४}$ योजन नैर्ऋत्य कोण में है। इसके दक्षिण में पिनाकिनी नदी है। प्राचीन काल में शुक्राचार्य जी ने शंकर को प्रसन्न करके जल के लिये प्रार्थना की तब भगवान् शंकर ने बाण छोड़कर नदी प्रकट की। कांची के उत्तर में सात योजन की दूरी पर शिलाहृदं नामका अमृतमय जल से परिपूर्ण सरोवर है। हनुमान जी ने इसी जल से धोकर सुधा संजीवनी बूटी लक्ष्मण जी को दी थी। इसके ईशान कोण में आठ योजन की दूरी पर स्वामि पुष्करिणी है। यह क्षेत्र 'तैजस क्षेत्र' कहा गया है। इसमें शिव शक्ति तथा हरि की प्रधानता है। इस स्थान पर महाशक्ति तीन रूपों में रहती

हैं। यहां पर एकाम्रेश्वर मन्दिर में एक आम का पेड़ है जो विष्णु के तेज से प्रकट हुआ। यहीं पर भगवान् विष्णु ब्रह्मा जी के यज्ञ में प्रकट हुये थे। यह स्थान ३३ कोटि देवताओं द्वारा सेवित सभी की कामना की पूर्ति करता है अतः इसे 'काम कोटि' कहते हैं। यह काञ्चीपुरी शिव काञ्ची तथा विष्णु काञ्ची के रूप में दो भागों में स्थित है।

शिव कांची में एक आम का पेड़ ३३०० वर्ष पुराना है। उसमें जितने फल लगते हैं उतने ही प्रकार का स्वाद है। इस मन्दिर में शंकर का बालू का शिवलिंग है। मार्कण्डेय ऋषि ने इनकी आराधना की थी। यहां पर कामाक्षी शक्ति पीठ है। यह पीठ चारों पुरुषार्थों को देता है। यहां पर थोड़ी मात्रा में किया हुआ धर्म भी करोड़ों गुना फल देता है। अतः इसे कामकोटि कहते हैं। शंकर के तीसरे नेत्र से भस्म हुआ काम रति के प्रार्थना करने पर दोनों नेत्रों से करोड़ों की संख्या में उत्पन्न हुआ इसलिये भी इसे 'काम कोटि' कहते हैं।

अथ कामस्तृतीयोऽर्थः पुरुषार्थेषु विश्रुतः।
तत्परा तत्श्रुतो मोक्षः कोटि शब्देन शब्दितः॥
काम कोटि श्रुतो मोक्षः पुरुषार्थश्चतुर्थकः।
अर्थोऽथवा स्मृतः कामः कामेशो धनदः स्मृतः॥
तत्कोटिदा पीठशक्तिः काम कोटीति विश्रुता।
एषा भूमिः ब्रह्मपुत्री गो रूपेणाखिलं जगत्।
धृत्वा वसति चाद्यापि तस्य भूमेः गवाकृतेः॥
वक्त्रं तु गोमुख क्षेत्रं श्रीपुरं शीर्षतां गतम्।
हिमालयः कण्ठदेशः, केदारं कुक्षि देशकम्॥
वाराणसी पृष्ठदेशे, मूलं तत् कमलालयम्।
काञ्ची देश पुरी काञ्ची, तन्मध्यं कामकोष्ठकम्॥
तस्य मध्यमिदं द्वारं विलमेतत् सुविस्तृतम्।
अथ तत्र सुविख्याते काम कोष्ठधरातले॥

(कामाक्षी विलास से)

चार पुरुषार्थों में काम तीसरा पुरुषार्थ सुना जाता है। उससे अगले चौथे पुरुषार्थ मोक्ष को कोटि शब्द से कहा है। चौथे पुरुषार्थ को मोक्ष काम कोटि के नाम से कहा है। अथवा

इस काम का अर्थ काम के स्वामी कुबेर कहे गये हैं। काम-कोटि शक्ति पीठ करोड़ों गुणा फल देता है इसलिए काम कोटि सुना जाता है। ब्रह्मा की पुत्री पृथ्वी गो रूप से सम्पूर्ण जगत् को धारण करके आज भी गो रूप में स्थित है। गोरूप धारिणी पृथ्वी का गोमुख क्षेत्र मुख है। श्रीनगर मस्तक है, हिमालय कण्ठ है, केदारनाथ पेट है। काशी पीठ है। महालक्ष्मीपुर मूल है। कांची देश के मध्य में कामकोटि है। उसके मध्य में विस्तृत बिल द्वार है (गुफा है) वह काम कोष्ठ धरातल पर विख्यात है। काञ्ची पुरी में कामाक्षी देवी विश्व के कारण रूप कमलासन पर विराजमान हैं। श्री चक्र नगर की स्वामिनी श्री विद्या की अधिष्ठात्री है। यहां पर तीन पीठ हैं १. कामराज पीठ यहां पर हयग्रीव ने वाणी बीज का जप करके पूजा की थी। २. जालन्धर नाम का पीठ मध्य में है जो भृगु द्वारा पूजित है इसे ज्वालामुखी भी कहते हैं। ३. ओड्याण नामक पीठ व्यास द्वारा उपासित है। **(श्री शंकर विजय मकरन्द से)**

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, विंशोऽध्यायः ॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

शिवकाञ्ची तथा विष्णु काञ्ची का निर्माण तथा एकाम्रेश्वर, वरदराज तथा कामाक्षी मन्दिर का निर्माण

आचार्यपाद शंकर सर्वज्ञात्म मुनि शिष्य सहित पृथ्वी की परिक्रमा करके कांचीपुर पहुंचे। उन्होंने शिव कांची में एकाम्रेश्वर के समीप कामाक्षी देवी का भव्य मन्दिर बनवाया। तथा विष्णु कांची में एक राजा से वरदराज विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया। समृद्धि युक्त उस नगर को देखकर आचार्य परम प्रसन्न हुये। दुर्वासा जी द्वारा स्थापित तथा पूजित कामाक्षी भगवती के आगे आराधना करते हुए जप ध्यान करने लगे। उन्होंने गुफा के ऊपरी भाग पर देवी की आज्ञा से श्री चक्र की स्थापना की।

देवी पूजन में तत्पर मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा जी ने शंकर भगवत् पाद से प्रेमपूर्वक कहा। हे यते ! मैंने इस क्षेत्र में गुफा में वास करने वाली कामाक्षी देवी की १५ वर्ष तक आराधना करते हुये निवास किया है। मैंने इस गुफा पर प्राचीन काल में देवी की मूर्ति स्थापित की थी। हे निष्पाप शंकर ! तुम कामाक्षी देवी की प्रसन्नता के लिये श्री चक्र की स्थापना करो। यह स्थान

पृथ्वीपर काम कोटि के नाम से प्रसिद्ध होगा। ऐसा कहकर यति श्रेष्ठ का आलिंगन करके दुर्वासा जी अन्तर्ध्यान हो गये। आचार्य पाद ने ऐसा ही किया। महाराज राजसेन ने गुरु आज्ञा प्राप्त कर इस स्थान पर लक्ष्मी तथा सरस्वती सहित कामाक्षी देवी की सोने की मूर्तियां स्थापित कीं।

सर्वज्ञ पीठारोहणम्

इसी मन्दिर के आगे भगवती शारदा का सर्वज्ञ पीठ विद्यमान था। उस पर सर्वज्ञ विद्वान ही बैठ सकता था। तब आकाशवाणी हुई। सभी वादियों को जीत कर ही आप इस आसन पर बैठ सकते हैं। तब ताम्रपर्णीतीर निवासी षड्दर्शनाचार्य विद्वान भेदवादी थे। उन्होंने आचार्य को प्रणाम करके कहा कि आप द्वैत का खण्डन करते हैं। जीवं जीव में, जीव जगत् में, जीव ईश्वर में प्रत्यक्ष भेद सिद्ध है। देव भेद, मूर्ति भेद, स्वर्गादि फलों का भेद सभी शास्त्रों से प्रमाणित है। हे यते ! यह मिथ्या कैसे? आचार्यपाद ने उत्तर देते हुये कहा—शरीर तथा अन्तःकरण की उपाधियों से भेद है। चैतन्य में भेद नहीं है। व्यवहार में तथा भ्रान्ति में भेद है। परमार्थ सत्ता में भेद नहीं। युक्ति, तर्क, प्रमाणों से उनकी शंका का समाधान किया तथा अद्वैत में निष्ठित किया। सबने आचार्यपाद का शिष्यत्व स्वीकार किया।

उन वादियों के परास्त होने के अनन्तर ताम्रपर्णी के विद्वानों के साथ 'एकवर्द्धन' नाम ब्राह्मण आये थे। उन वादियों को परास्त करने के अनन्तर जब आचार्य सर्वज्ञ सिंहासन पर बैठने लगे तब उन्होंने रोका। आचार्य ने शास्त्रार्थ करके उन्हें पराजित किया। उनके साथ उनका महादेव नामक ७ वर्ष का पुत्र आया था। आचार्य से उसने तीन दिन तक शास्त्रार्थ किया। चौथे दिन आचार्य के समाधान करने पर वह शान्त हो गया। भीतर से आचार्यपाद उसकी विद्वत्ता से बहुत प्रसन्न हुये। पिता से उस बालक को लेकर संन्यास दिया। तथा अपने स्थान पर कामकोटि पीठ पर उसे नियुक्त किया। उस बालक का योगपट्ट 'सर्वज्ञात्म मुनि' दिया।

आचार्य पाद की सर्वज्ञासन पर आरोहण की कथा का क्रम दो प्रकार से मिलता है। शिव रहस्य में, वृहच्छंकर विजय, प्राचीन शंकर विजय, आनन्द गिरीय, जगद् गुरु रत्न माला स्तव में कांचीपुरी में सर्वज्ञासन पर आरोहण की बात कांचीपुरी में कही है। परन्तु माधवीय सदानन्दनीय तथा 'गुरुवंश काव्य' में काश्मीर में कही है।

काश्मीरमिति काञ्ची प्रसिद्धः। भूयः काञ्चीपुरम् गतः।
जम्बूद्वीपस्य कुर्वाणे शोभां भारत मण्डले।
शस्तं काश्मीर नामानं देशं विद्योतयद् भृशम्॥
कामाक्ष्या नाम वाग्देव्याः स्थानं तत्पुरमाप्तवान्।
॥इति गोविन्द नाथीय॥

व्यासाचलीयेऽपि—जम्बू द्वीपे शस्यतेऽस्यां पृथिव्यां, तत्राप्येतन् मण्डलं भारताख्यं काश्मीराख्यं मण्डलं तत्र शस्तं, यत्रास्ते सा शारदा वागधीशा।

इति सर्वज्ञ पीठारोहण कथामुपक्रम्य,
एवं निरुत्तरपदां स विधाय देवी, सर्वज्ञपीठमधिरुह्य मठे स्वक्लृप्ते।
मायागिरामपि तथोपगतैश्च मिश्रे, संभावितः कमपि कालमुवास काञ्च्यां।

काञ्ची काश्मीर के नाम से भी प्रसिद्ध है। फिर काञ्चीपुर गये। प्रशंसनीय काश्मीर नाम का देश विद्या के प्रकाश से युक्त है जो कि भारतवर्ष के जम्बूद्वीप की शोभा बढ़ाता है। वहां पर कामाक्षी नाम की वाणी की अधिष्ठात्री देवी के स्थान को प्राप्त किया। अर्थात् गये। पृथ्वी पर प्रशंसनीय जम्बू द्वीप में भारत नाम का मण्डल है। भारत में भी काश्मीर नाम से प्रसिद्ध एक मण्डल है। जहां पर शारदा नाम की देवी वाग्देवी विराजमान है। इस प्रकार सर्वज्ञ पीठारोहण की कथा आरम्भ करके अपने द्वारा निर्मित मठ में वादियों को निरुत्तर करके देवी के सर्वज्ञ पीठ पर बैठे। भगवती माता सरस्वती की कृपा से वादियों पर विजय प्राप्त करके चतुर्वेदी ब्राह्मणों द्वारा सम्भावित होकर कुछ काल काञ्ची में वास किया। इस श्लोक से उपसंहार किया। यहां पर काश्मीर शब्द काञ्ची के अर्थ में प्रतीत होता मालूम होता है।

परन्तु माधवीय दिग्विजय में उत्तर भारतीय देश को काश्मीर कहा वहां पर शंकराचार्य पर्वत श्री नगर में है तथा शारदा देवी मन्दिर के आंगन में शंकराचार्य जी का स्मृति मण्डप स्मारक के रूप में आज भी विद्यमान है। काश्मीर में सर्वज्ञ पीठ की रक्षा शास्त्रार्थ में जीतकर की। उस शारदा देवी को सन्तुष्ट करके भगवत् पाद शृंगेरी में शृंगगिरी पर्वत पर लाकर प्रतिष्ठा की। (गुरुवंश काव्य)

'माधवीय दिग्विजय' में मण्डन के साथ शास्त्रार्थ में जीत कर उनकी पत्नी को भी जीता। शाप के अन्त में जब वे जाने लगीं तो आचार्य पाद के प्रार्थना करने पर शृंगेरी में स्थित हुईं।

काम कोटि पीठ तथा शारदा मठ प्रतिष्ठा

आचार्य ने वादियों को जीत कर सर्वज्ञ पीठ पर बैठने के अनन्तर काञ्ची में मठ निर्माण कर शारदा की प्रतिष्ठा की। इस मठ का नाम 'काम कोटि शारदा मठ' रखा। वहां पर कुछ काल तक रहे।

भारत की चारों दिशाओं में पूर्व में गोवर्द्धन मठ, दक्षिण में शारदा-शृंगेरी मठ (मैसूर क्षेत्र में) पश्चिम में द्वारका जी में शारदा मठ, तथा उत्तर में ज्योतिर्मठ (वद्रीनाथ में) की स्थापना करके हस्तामलकाचार्य, पद्मपादाचार्य, पृथ्वीधराचार्य तथा आनन्द गिरि नामक चार आचार्यों को चारों पीठों पर नियुक्त करके प्रसन्न हुये। किस आचार्य का किस मठ से सम्बन्ध है। इस विषय को 'मठ व्यवस्था' नाम के प्रकरण में लिखा जायेगा।

आचार्य ने अन्तःकरण की शुद्धि के लिये शिव, विष्णु, दुर्गा, सूर्य, गणेश, स्वामिकार्तिक छः देवताओं की मूर्तियों को मन्दिरों में स्थापित करके निष्काम भावना से उपासना करने पर बल दिया। इससे अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होगी। सकाम भाव से उपासना करने वालों की कामनायें पूरी होंगी। छः देवताओं की स्थापना के कारण षण्मतस्थापनाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनका पूजन श्रुति, स्मृति, पुराणों तथा दोष रहित तन्त्रों से उपासना करने की आज्ञा दी।

'गुरुवंश काव्यम्' में छः यमिनाचार्यों के सम्बन्ध में जिनके नाम १. परमत कालानलाचार्य २. त्रिपुरा कुमाराचार्य ३. गिरिजा कुमाराचार्य ४. लक्ष्मणाचार्य ५. दिवाकराचार्य ६. वटुकनाथाचार्य यह नाम आये हैं। विद्या सम्बन्धी मठों का निर्माण लकड़ी के मठ बनाकर किया। अहोविल नरसिंह क्षेत्र में भी श्री शंकर गुरु ने 'नरसिंह यन्त्र' का उद्धार किया। भीमारथ्या नदी तट पर "पाण्डुरंग महायोग पीठ" की स्थापना की। फिर आचार्यपाद वृन्दावन में पहुंचे, वहां पर एक वृद्ध वैय्याकरणी ब्राह्मण को जो व्याकरण का अभ्यास करने के लिये डुकृञ्-धातु के रूप रट रहा था। उनको बोधित करने के लिये 'भज गोविन्दम्' नामक स्तोत्र की रचना करके ज्ञान दिया। वृन्दावन से आचार्यपाद भाष्य निर्माण भूमि बद्रिकाश्रम पहुंचे। तपस्या में लगे हुये नर नारायण की स्तुति करके श्री मठ का निर्माण किया तथा त्रोटकाचार्य को नियुक्त किया।

मठ के आंगन के समीप ही शंकराचार्य की गुफा है। शीतकाल में इसी गुफा के आगे शहतूत पेड़ की छाया में बैठकर भाष्यों की रचना की थी। वद्रिकाश्रम में नरसिंह मन्दिर, पूर्णागिरि देवी मन्दिर, त्रोटकाचार्य गुफा, शंकर तपोवन, तप्त कुण्ड इत्यादि शंकराचार्य के चरित्र से सम्बन्धित दर्शनीय स्थान हैं। कालिदासीय शंकर विजय के अनुसार (यह कालिदास प्रसिद्ध कवि कालिदास से भिन्न थे) इस स्थान पर जगद् गुरु जी ने ११ से १३ वर्ष की आयु पर्यन्त पांच वर्ष रह कर सोलह ग्रन्थों पर भाष्य लिखे। इन्होंने केदारनाथ में मुक्ति लिंग की स्थापना की। जगन्नाथ जी में भगवान्, वैकुण्ठ का परित्याग करके प्रतिष्ठित हुये। वहां पर भगवान् कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा की काष्ठ की मूर्तियां युधिष्ठिर सम्वत् २६५५ वैशाख शुक्ल दशमी को स्थापित की गईं यह बात "गोवर्द्धन जगद् गुरु परम्परा" नामक स्तोत्र में कही गई है।

चारों मठों की व्यवस्था के अनन्तर पृथ्वी की परिक्रमा के बाद आचार्य पुनः काञ्चीपुर पहुंचे। वहां काम कोटि मठ में सुरेश्वराचार्य के लिये योगलिंग की प्रतिष्ठा करके उन्हें पूजन में लगाया।

महाराज सुधन्वा ने उत्सुकतापूर्वक छत्र सिंहासन आदि का निर्माण करके आचार्यों की देवराजोपचारों से पूजन की व्यवस्था की। आचार्यपाद ने १४ वर्ष की अवस्था में सर्वज्ञात्म-मुनि को अपने उत्तराधिकार पद पर नियुक्त किया। इन्होंने ११२ वर्ष तक पीठ को सुशोभित किया। सुरेश्वराचार्य को संरक्षक के रूप में नियुक्त किया। इनका पहला नाम महादेव था। 'संक्षेप शारीरिक भाष्य' तथा 'सर्वज्ञ विलास' दो ग्रन्थों की रचना की।

आचार्यपाद का कैलाश गमन

भगवान् भाष्यकार काञ्चीपुर में निवास करते हुये, आयु की समाप्ति देखकर प्रसन्नचित्त, शिष्यों सहित कम्पा सरोवर में विधिवत् स्नान करके एकाम्रेश्वर महादेव का पूजन कर कामाक्षी देवी की परिक्रमा की। सौंदर्य लहरी आदि स्तोत्रों से स्तुति की। आचार्यपाद के परलोक गमन के सम्बन्ध में आनन्दगिरि दिग्विजय में कहा है कि—

ततः परं सर्वलोक गुरुः स्वलोकं गन्तुमिच्छुः काञ्ची नगरे मुक्ति स्थले कदाचिदुपविश्य स्थूल शरीरं सूक्ष्मेऽन्तर्धाय, सद्रूपो भूत्वा, सूक्ष्मं कारणे विलीनं कृत्वा, चिन्मात्रोभूत्वा, अंगुष्ठ मात्रा पुरुषः तदुपरि पूर्णमखण्ड मण्डलाकारमानन्दं प्राप्य,

सर्वजगद् व्यापकः चैतन्यमभवत्। सर्वव्यापक चैतन्य रूपेणाद्यापि तिष्ठति। स एव शंकराचार्यो गुरुर्मुक्ति प्रदः सताम्॥

सत्पुरुषों को मुक्ति देने वाले शंकराचार्य जो सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं उन्होंने अपने लोक में जाने की इच्छा से मुक्ति पुरी काञ्ची नगर में स्थित होकर स्थूल शरीर को सूक्ष्म में, सूक्ष्म को कारण में लीन करके सत् चित्त स्वरूप होकर अंगुष्ठ मात्र पुरुष रूप से पूर्ण अखण्ड मण्डलाकार परमानन्द को प्राप्त करके सर्व जगद्व्यापक चैतन्य रूप हो गये। वे सर्वव्यापक चैतन्य रूप से आज भी विद्यमान हैं।

"शंकराभ्युदय दिग्विजय" के अनुसार—

'कम्पातीर निवासिनीमनुदिनं कामेश्वरीमर्चयन्।
ब्रह्मानन्दमविन्दत त्रिजगतां क्षेमंकरः शंकरः॥'

तीनों लोकों की रक्षा करने वाले शंकर ने प्रतिदिन कम्पा तीर निवासिनी कामेश्वरी का अर्चन करते हुये ब्रह्मानन्द को प्राप्त किया।

ब्रह्मानन्दीय यथा— **"पूर्णेऽब्देऽथ त्रयस्त्रिंशे जन्म मासि च तद्दिने।**
समाधौ संस्थितो भूत्वा भगवत्पाददेशिकः।
त्यक्त्वा च पार्थिवं देहं स्वयं ज्योतिः स्वरूपवान्।
भित्वा च ब्रह्मरन्ध्रं तु सर्वव्यापकचेतने।
शिवे शुद्धे परे भूम्नि लयमाप तथैव च।"

भगवत् पाद जगद् गुरु शंकर ने जन्म मास तथा जन्म दिन को तैंतीस वर्ष पूर्ण होने पर समाधि में स्थित होकर ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके पार्थिव शरीर त्याग कर स्वयं प्रकाश स्वरूप वाले सर्वव्यापक चैतन्य परमशुद्ध कल्याणकारी परब्रह्म परमात्मा भूमा में लीन हो गये।

माधवीये तु—पारिकांक्षीश्वर...........प्रापकेदारकम्
इन्द्रोपेन्द्र प्रधानैस्त्रिदश परिवृढैः स्तूयमानः प्रसूनैः।
दिव्यैरभ्यर्च्यमानः सरसिरुहभुवा दत्तहस्तावलम्बः॥
आरुह्योक्षाणमग्र्यं प्रकटितसुजटाजूट चन्द्रावतंसः।
शृण्वन्नालोक शब्दं समुदितमृषिभिर्धाम नैजं प्रतस्थे॥

उपर्युक्त दिग्विजयों से सिद्ध होता है कि आचार्यपाद ने काञ्चीपुरम् कामाक्षी देवी के समक्ष समाधि ली। परन्तु गुरुवंश काव्यम् तथा माधवीय दिग्विजय में केदारनाथ में समाधि का वर्णन हुआ है। मन्दिर के पीछे भगवान् शंकराचार्य की समाधि बनी है। पर्वत के साथ लगी हुई तीन चार मंजिल ऊंची दीवार है। दीवार में उतना ही बड़ा संगमरमर का दण्ड परशुमुद्रा सहित बना हुआ है। अतः माधव लिखते हैं—शंकर केदारनाथ में पहुंचे—इन्द्र उपेन्द्र आदि प्रधान देवताओं से घिरे हुये, दिव्य पुष्पों द्वारा स्तुति को प्राप्त, ब्रह्मा ने अपने हाथ का आश्रय देकर श्रेष्ठ नन्दीश्वर पर बैठाकर जटाओं तथा चन्द्रमा से सुशोभित ऋषियों तथा नन्दीगणों द्वारा स्तुति को सुनते हुये अपने लोक को प्रस्थान किया।

सदानन्दीय—वरिष्ठ शिष्यों से घिरे हुये शंकराचार्य जी सहर्ष बद्रीवन पहुंचे। वहां से निज धाम में प्रवेश किया।

शिवरहस्ये नवम अंश १६ अध्यायः—पार्वती जी ने स्वामिकार्तिक के पूछने पर कहा यहां से आरम्भ करके—**तान् वै विजित्य तरसाक्षत शास्त्र वादैर्मिश्रान् सकाञ्च्यामथ सिद्धिमाप।** चतुर्वेदी ब्राह्मणों को जीत कर काञ्ची से निजधाम को गये। इन कथाओं का विस्तार 'बृहच्छंकर विजय' तथा 'आनन्दगिरि ज्ञान विजय' में विस्तार से देखना चाहिये।

चिद्विलासीय में लिखा है—

इत्युक्त्वा शंकराचार्य करपल्लवमादरात्।
अवलम्ब्य कराग्रेण दत्तात्रेयः सतापसः॥
प्रविवेश गुहा द्वारं दत्त्वाज्ञां जनसन्ततेः।
क्रमाज्जगाम कैलाशं प्रमथैः परिवेष्टितम्॥

गरुवंश काव्ये तु— दत्तात्रेयं भुवनविनुतं वीक्ष्य नत्वान्यगादीत्।
वृत्तंस्वीयं सकलमपि तान् प्रेषितान् दिक्षुशिष्यान्॥
सोऽपि श्रुत्वा मुनिपतिरदादाशिषो विश्वरूपा
चार्यादिभ्यः सुखमवसतां तत्र तौ भाषमाणौ॥
इति श्लोकेन शंकरकथापरिसमाप्यते।

चिद्विलासीय में—ऐसा कहकर तपस्वी दत्तात्रेय जी ने शंकराचार्य जी का हस्तपल्लव सादर पकड़कर गुफा के द्वार में प्रवेश किया। तथा प्रमथों से घिरे हुये क्रमशः कैलाश कों चले

गये तथा गुरुवंश काव्य में—त्रैलोक्य वन्दनीय दत्तात्रेय को देखकर प्रणाम करके, अपना सारा वृत्त सुनाकर, शिष्यों को दिशाओं में भेजकर, तथा दत्तात्रेय का आशीर्वाद प्राप्त कर विश्व रूपादि आचार्यों से बातचीत करते हुये सुखपूर्वक स्वधाम को प्राप्त हुये। 'गुरुवंश काव्यम्' इस श्लोक से शंकर चरित्र पूर्ण होता है।

पूर्वोक्त ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि आद्य शंकर ने हिमालय में ब्रह्मभाव को प्राप्त किया। जैसे राम अयोध्या में अवतरित होकर सरयू में परमधाम सिधारे। श्रीकृष्ण ने प्रभास में शरीर लीन किया। वैसे ही शंकर कैलाश से अवतरित हुये। वृष शैल में प्रकट हुये—कालटी में जन्म हुआ तथा केदार में दत्तात्रेय जी के आश्रम अथवा कुछ लोगों के मत से अन्यत्र ब्रह्मेन्द्र आदि देवताओं सहित कैलाशगमन किया। कामकोटि की मान्यतानुसार प्राचीन दिग्विजय के प्रमाण से—

कल्यब्देश्च शरेक्षणाध्वनयनैः सत्कामकोटि प्रथे।
पीठे न्यस्य सुरेश्वरं समवितुं सर्वज्ञ संज्ञं मुनिम्।
कामाक्ष्याः सविधे सजातु निविशन्नुन्मुक्तलोक स्पृहो।
देहं स्वं व्यपहाय देह्य सुगमं धाम प्रपेदे परम्।

आचार्य शंकर ने अपने प्रसिद्ध कामकोटि पीठ पर कलि सं. २६२५ में सुरेश्वर को संरक्षक बनाकर सर्वज्ञ मुनि को पीठ पर बैठा कर सम्पूर्ण लोकैषणाओं से मुक्त होकर कामाक्षी देवी के सम्मुख अपने शरीर को त्याग कर परमधाम में प्रवेश किया।

एक बार आचार्य पाद के ब्रह्मीभूत होने के पूर्व सुरेश्वराचार्य जी के सिर में फोड़ा हुआ। अनेक उपचार करने पर भी ठीक नहीं हुआ। बहुत कष्ट देता था। जब पृथ्वी मण्डल के वैद्यों से ठीक नहीं हुआ तो अश्विनी कुमारों को बुलाया। उन्होंने सुरेश्वर जी को रोग रहित कर दिया। इन्द्र की अनुमति के बिना दोनों अश्विनी कुमार आये थे। इन्द्र को जब पता चला कि बिना मेरी आज्ञा के मनुष्य का उपचार किया है तो क्रोध में आकर अश्विनी कुमारों पर वज्र प्रहार किया। आचार्य ने अश्विनी कुमारों की रक्षा के लिये अपने तेज से वज्र को चूर्ण कर दिया तब इन्द्र भयभीत होकर गुरुओं की शरण में गया। इन्द्र ने अपनी पदवी मुद्रा तथा नाम आचार्य को समर्पित किया। तब से आचार्य सुरेश्वरेन्द्र सरस्वती कहे जाने लगे।

॥इति श्रीगुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, एकविंशोऽध्यायः॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

प्रकारान्तर से शंकर चरितम्

(कूष्माण्ड दिग्विजय से)

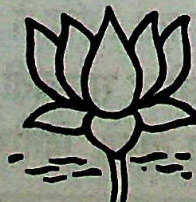
कुछ लोग श्री शंकराचार्य जी का जन्म आन्ध्र तथा द्रविड़ की सीमा पर वायुलिंग क्षेत्र (काल हस्ती क्षेत्र) में किसी ब्राह्मण के द्वारा काल हस्ती महेश्वर के मन्दिर में फूटे हुये कूष्माण्ड से शिशु के रूप में प्राप्त हुये। शंकरालय में प्राप्त होने से इन्हें शंकर कहा जाने लगा—

शंकरं कुंकुमाभासं मुनिं कूष्माण्ड सम्भवम्।
भाष्यकारं स्तुमो नित्यमुद्यत् भास्कर सन्निभम्।

(कूष्मांडशंकर दिग्विजय से)

कुंकुम के समान कान्ति वाले कूष्माण्ड से उत्पन्न हुये, उदित सूर्य के समान भासमान मुनि शंकर की मैं नित्य स्तुति करता हूं। यह शुकदेव जी के समान अयोनिज होने के कारण, पिता भगवान् शंकर तथा माता अम्बिका हैं। ऐसे अद्भुत शंकर के विषय में कोई शंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि पुराणों में स्वामिकार्तिक की उत्पत्ति सरकण्डे से, सीता जी की पृथ्वी से, द्रोपदी तथा धृष्टद्युम्न की अग्निवेदी से, अगस्त्य जी की कुम्भ से उत्पत्ति कही है। वैसे शंकराचार्य जी का आविर्भाव कूष्माण्ड से हुआ। नारद पुराण, वायु तथा लिंग पुराण में शंकर जी की स्तुति में किसी एक अवतार में **परिगृह्यतनुं भगवद् विमुखांस्तत् पद सम्मुख करणोद्युक्तः। शंकर यतिराड्वाताधीनो नौरिव यायाज्जडजात् भयात्।** यतिराज शंकर ने जड़ वस्तु से जन्म लेकर भगवद् विमुखों को उनके चरण कमलों के सम्मुख करने के लिये वायु के अधीन नौका के समान संसार का उद्धार किया। इस उपर्युक्त श्लोक के अनुसार किसी कलिकाल में इस प्रकार अवतार लिया होगा।

॥इति श्रीगुरुवंश पुराणे कलियुगे खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवत्पाद के संन्यासी शिष्य मठ तथा उप मठ

आचार्य श्री कुमारिल भट्ट (३९६) श्री प्रभाकर गुरु (३९७) उम्बेक (भवभूति) (३९८)

श्री पद्मपादाचार्य (३९९) श्री सुरेश्वराचार्य जी (४००) श्री हस्तामलकाचार्य (४०१) श्री त्रोटकाचार्य जी (४०२) श्री चित्सुखाचार्य जी (४०३) श्री विष्णु गुप्ताचार्य जी (४०४) श्री शुद्धकीर्त्याचार्य जी (४०५) श्री भानुमरीच्याचार्य (४०६) श्रीकृष्णदर्शनाचार्य (४०७) श्री बुद्धिवृद्ध्याचार्य (४०८) श्री विरञ्चि-पादाचार्य (४०९) श्री शुद्धानन्दगिर्याचार्य (४१०) श्री मुनीश्वराचार्य (४११) श्री धीमदाचार्य (४१२) श्री परमत कालानलाचार्य (४१३) श्री लक्ष्मणाचार्य (४१४) श्री दिवाकराचार्य (४१५) श्री त्रिपुर कुमाराचार्य (४१६) श्री गिरिजा कुमाराचार्य (४१७) श्री वटुकनाथाचार्य (४१८) श्री आनन्दगिर्याचार्य (४१९) श्री समित्पाण्याचार्य (४२०) ।

श्री आनन्दगिरि जी महाराज

श्री स्वामी आनन्द गिरि जी के सम्बन्ध में माधवीय दिग्विजय में त्रोटकाचार्य का ही नाम आनन्दगिरि कहा है। इनके जड़वत् रहने के कारण गिरि शर्मा कहा है। भाष्य टीकाकार आनन्द गिरि महाराज इन्होंने गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषदों के शांकर भाष्यों पर टीकायें की हैं। इन्होंने प्रत्येक अध्याय के अन्त में—**श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य विशुद्धानन्द पूज्यपाद शिष्य भगवदानन्द गिरि (ज्ञान) कृते..........इत्यादि** पुष्पिकायें लिखीं हैं। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि श्री आनन्द गिरि जी महाराज भाष्यकार के साक्षात् शिष्य नहीं थे। प्रत्युत् स्वामी विशुद्धानन्द जी के शिष्य थे तथा भाष्यकार जी के प्रशिष्य थे। सुना जाता है कि 'शांकर विजय' इनकी रचना है। परन्तु उसमें "अनन्तानन्द गिर्याचार्य" लिखा है "आनन्द गिरि" नहीं। अतः इसके रचयिता वहीं हैं या कोई दूसरे पता नहीं चलता।

श्री स्वामी चित्सुखाचार्य

इनके सम्बन्ध में पीछे कथा आ चुकी है कि इनकी भी जन्म भूमि कालटी थी और भाष्यकार के साथ पढ़े थे। "वृहच्छङ्कर दिग्विजय" के कर्त्ता हैं। वेदान्त का 'चित्सुखी' ग्रन्थ इन्हीं द्वारा रचित बताया जाता है। इनसे भिन्न एक दूसरे चित्सुखाचार्य जी द्वारका शारदा मठ के शंकराचार्य श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य के उत्तराधिकारी यु. सं. २७१५ में हुये थे।

शंकर मठ तथा उपमठ (ब्रह्म सूत्र की भूमिका शंकराचार्य चरितम् से)

१. शारदा मठ २. गोवर्द्धन मठ ३. ज्योतिर्मठ ४. शृंगेरी मठ ५. सुमेरु मठ ६. परमात्म मठ ७. कूडली मठ ८. शंकेश्वर मठ ९. सुमेरु मठ (काशी) १०. कुम्भकोणं मठ ११. पुष्पगिरि मठ १२. विरूपाक्ष मठ १३. हव्यक मठ १४. शिव गंगा मठ १५. कोप्पाल मठ १६. श्री शैल मठ १७. श्री रामेश्वर मठ १८. श्री राम चन्द्रापुर मठ १९. आमनी मठ (अवन्तिका) २०. घनगिरि मठ २१. होन्न मठ (ह्वान) २२. भण्डागरी मठ २३. कैवल्यपुर मठ २४. मूल वागल मठ २५. शिराली मठ २६. खिद्रापुर मठ संकेश्वर में २७. नृसिंह वाडी मठ २८. मोल वण मठ २९. पैठण मठ ३०. भण्डीगरी मठ ३१. काशी मठ ३२. तीर्थराज पुर मठ ३३. गंगोत्री मठ ३४. तीर्थहल्ली मठ ३५. हरिहरपुर मठ।

इन मठों में से कुछ मठ आजकल नष्ट हो चुके हैं। कुछ वर्तमान काल में हैं। यह सभी मठ चारों मठों की शाखायें हैं।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

मठों का विस्तृत विवरण

मठाम्नाय

मठाम्नाय क्रमानुसार १. पूर्व आम्नाय, २. दक्षिण आम्नाय, ३. पश्चिमी आम्नाय ४. उत्तर आम्नाय, ५. ऊर्ध्व आम्नाय, ६. मध्यम आम्नाय, ७. प्रत्यगाम्नाय, ८. निष्कलाम्नाय।

मठ—जिस स्थान पर नित्य वेद पाठ होता है, वेदों की व्याख्या, अनुसन्धान तथा श्रवण मनन, निदिध्यासन हो। उसे मठ कहते हैं। **आम्नाय**—आम्नाय शब्द गुरु परम्परा वाची है।

आप्रच्छन्न मथाम्नायस्सम्प्रदायः इति त्रिकाण्ड स्मरणात्। आम्नाय शब्द त्रिकाण्ड में यास्काचार्य के निरुक्त में वेद वाची नहीं है। वेद वाचक मानने में प्रकरण में असंगत है। अतः मठ सम्बन्धी सम्प्रदाय का प्रतिपादक ग्रन्थ महाम्नाय पद से कहा जाता है। सम्प्रदाय श्रीमत् भगवत् पाद शंकराचार्यों के मठ निर्माण के अनन्तर शिष्य परम्परा में प्रचलित है। शंकराचार्य के अनन्तर ही मठाम्नाय शब्द प्रचलित हुआ ऐसा किन्हीं विद्वानों का मत है।

परन्तु "दण्डैश्वर्य विधानम्" में अनेक तन्त्रों में इसका नाम आया है। अतः प्रसिद्ध मठाधीशों से परामर्शपूर्वक प्रकाशित शंकर ग्रन्थावली में पञ्चीकरण के समान प्राप्त नहीं होता। 'आम्नाय' शब्द को वेद का पर्यायवाची मानना मठों को वेद संख्या युक्त मानना युक्ति रहित है। इसलिये कुछ केरल के मठ तथा काशी का सुमेरु मठ शंकराचार्य द्वारा परम्परा से प्रसिद्ध है। आम्नाय शब्द को वेदपरक अंगीकार करके तदनुसार नियमन करना अव्यवहारिक है। मुण्डकोपनिषत् तथा केनोपनिषत् के प्रमाण से **"यया तदक्षरमधिगम्यते" 'साब्रह्मेति होवाच' 'उमा हैमवतीम्'** जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह ब्रह्म है, इस प्रकार से इन्द्र के प्रति यक्ष रूपी ब्रह्म का परिचय देते हुये ब्रह्म विद्या स्वरूपा पार्वती ने कहा। अतः आम्नाय शब्द का अर्थ ब्रह्म विद्या है, वेद नहीं।

परन्तु आम्नाय शब्द के अर्थ का विरोध चारों पीठाधीश्वरों तथा विद्वानों ने करते हुये, वेद किया है। **मठाश्चत्वारः आचार्यश्चत्वारः धुरंधराः, सम्प्रदायश्च चत्वारः, एषा धर्म व्यवस्थितिः।** धुरन्धर विद्वान चार आचार्य चार मठ चार सम्प्रदाय यह धर्म की व्यवस्था है।

प्रत्येक मठ के सम्बन्ध में १३ विशेषतायें हैं—१. संज्ञा २. मठ का नाम ३. क्षेत्र ४. पीठ ५. तीर्थ ६. देव ७. शक्ति ८. वेद ९. सम्प्रदाय १०. योगपट्ट ११. ब्रह्मचारी १२. महावाक्य १३. प्रथमाचार्य १४ गोत्र। मठों के विषय में बहुत अधिक विवाद पाया जाता है। सुषमा टीका के अनुसार १३ बातों का निरूपण करते हैं।

शारदा मठ द्वारका

१. संज्ञा-पश्चिम आम्नाय २. मठ—द्वारका मठ (शारदा मठ, शारदा मठाम्नाय) ३. पीठ कालिका ४. क्षेत्र द्वारका ५. तीर्थ-गोमती ६. देव सिद्धेश्वर ७. शक्ति भद्रकाली ८. वेद सामवेद ९. सम्प्रदाय कीटवार १०. योगपट्ट आश्रम तथा तीर्थ ११. ब्रह्मचारी-स्वरूप १२. महावाक्य-

तत्त्वमसि १३. प्रथम आचार्य १४. गो त्र—अविगत, विमर्श के अनुसार सुरेश्वराचार्य, सुषमा के अनुसार पद्मपाद। मठाम्नाय के अनुसार हस्तामलकाचार्य।

टिप्पणी—द्वारका शारदा मठ की परम्परानुसार सुरेश्वराचार्य ही यहां के प्रथम आचार्य हैं।

तीर्थ लक्षण— त्रिवेणी संगमे तीर्थे तत्त्वमस्यादि लक्षणैः।
स्नायात् तत्त्वार्थ भावेन तीर्थ नामा स उच्यते॥

आश्रम— आश्रम ग्रहणे प्रौढ़ आशापाश विवर्जितः।
यातायात विनिर्मुक्तः एष आश्रम उच्यते॥

कीटवार— कीटादयो विशेषेण वार्यन्ते जीव जन्तवः।
भूतानुकम्पया नित्यं कीटवारः स उच्यते॥

स्वरूप— स्व स्वरूपं विजानाति स्वधर्म परिपालकः।
स्वानन्दे क्रीड़तो नित्यं स्वरूपो बटुरुच्यते॥

मठ का क्षेत्र— सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्रास्तथान्तरा।
देशाः पश्चिम दिक्स्थाः ये शारदामठ भागिनः॥

तत्त्वमसि आदि लक्षणों वाले त्रिवेणी संगम रूपी तीर्थ में जो स्नान करते हैं भाव यह है कि जैसे प्रयाग त्रिवेणी संगम में गंगा, यमुना, सरस्वती तीन नदियों का संगम है वैसे ही 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के तत् त्वम् असि इन ईश्वर जीव तथा दोनों की एकता के बोधक रूपी त्रिवेणी में जो स्नान करते हैं उन्हें तीर्थ नामक संन्यासी कहते हैं। जो आशा पाश से रहित, आश्रम धर्म पालन में निपुण, तथा जीवन्मुक्त हैं उन्हें आश्रम संन्यासी कहते हैं। जो प्राणियों पर नित्य कृपा से कीट आदि जीव जन्तुओं की रक्षा करते हैं उन्हें कीटवार कहते हैं। जो अपने स्वरूप को जानता है, नित्य स्वधर्म का पालन करके अपने स्वरूप में स्थित रहता है। उसे स्वरूप कहते हैं।

गोवर्द्धन मठ जगन्नाथपुरी

दूसरा पूर्व आम्नाय जगन्नाथपुरी में गोवर्द्धन मठ कहा है। भोगवार सम्प्रदाय, वन, अरण्य, योगपट्ट, पुरुषोत्तम क्षेत्र, जगन्नाथ देवता, विमला शक्ति, पद्मपाद आचार्य, तीर्थ-सागर, प्रकाश

ब्रह्मचारी महावाक्य-"प्रज्ञानं ब्रह्म", वेद-ऋग्वेद, कश्यप-गोत्र तथा अंग, बंग (बंगाल), कलिंग, मगध (बिहार), उत्कल (उड़ीसा) बर्बर पूर्व के यह देश गोवर्द्धन मठ के अधीन हैं।

वन—आशाबन्धन से मुक्त, नित्य आनन्दरूपी नन्दन वन में रहने वाले को वन कहते हैं। **अरण्य**—संसार से आसक्ति का परित्याग करके, अथवा विश्व को अरण्य कहा है। इसमें आसक्ति का त्याग करने वाले को अरण्य कहा है।

भोगवार—विषयों को भोग कहा है विषय भोग से रहित को भोगवार कहा है।

प्रकाश—जो योग युक्ति में विशारद है भीतर की ज्योति को जानता है तत्त्व ज्ञान रूपी प्रकाश से युक्त ब्रह्मचारी प्रकाश है।

ज्योतिर्मठ—बद्रीनाथ

इस तीसरे को उत्तर आम्नाय कहते हैं। इसका दूसरा नाम श्री मठ भी है। इसका सिद्धि देने वाला आनन्दवार नाम का सम्प्रदाय है। गिरि, पर्वत, सागर नाम के तीन संन्यासी हैं। क्षेत्र, वद्रिकाश्रम, देवता नारायण, देवी पूर्णागिरि—प्रथम आचार्य-त्रोटकाचार्य-तीर्थ अलकनन्दा। ब्रह्मचारी-आनन्द, महावाक्य, "अयमात्मा ब्रह्म", अथर्ववेद, भृगु गोत्र। इस मठ के अधीन उत्तर दिशा के कुरु, काश्मीर, काम्बोज (काबुल) पाञ्चाल आदि देश हैं। **गिरि**—जो नित्य प्रस्थानत्रयी का अध्ययन करते हुये पर्वतों वनों में वास करते हैं। गम्भीर अचल बुद्धि से युक्त यति को गिरि कहते हैं। **पर्वत**—जो प्रौढ़ ज्ञान से युक्त, पर्वतों के मूल में वास करते हुये सारासार को जानते हैं उन्हें पर्वत कहा है।

सागर—जो तत्त्व ज्ञान रूपी सागर में गोता लगाकर ज्ञान रूपी रत्नों को निकालते हैं तथा सागर के समान मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते उन्हें सागर कहा है। **आनन्दवार** विषय विलास का परित्याग करके जो स्वरूप में स्थित रहते हैं। वह यतियों का सम्प्रदाय आनन्दवार कहा गया है।

आनन्द—जो ब्रह्मचारी (तत्त्ववित्) अपने नित्य, सत्य, ज्ञान तथा अनन्त स्वरूप का नित्य ध्यान करता है। अपने आनन्द में नित्य मग्न रहता है। उसे आनन्द कहा है।

शृंगेरी मठ

चौथे शृंगेरी मठ को दक्षिण आम्नाय कहते हैं। इनका भूरिवार सम्प्रदाय, भूर्भुवः गोत्र, अरण्य तीर्थ, आश्रम सभी नाम संन्यासी की उपाधि में हैं। यह शृंगेरी का मत है। सरस्वती,

भारती, पुरी संन्यासी की उपाधि, यह सर्व सम्मत मत है। रामेश्वर क्षेत्र, आदि बाराह देवता, सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली शारदा कामाक्षी देवी, आचार्य-पृथ्वीधर (हस्तामलकाचार्य), तुंगभद्रा-तीर्थ, चैतन्य ब्रह्मचारी यजुर्वेद, "अहंब्रह्मास्मि" महावाक्य है, दक्षिण के प्रदेश, आन्ध्र, द्राविड़, कर्नाटक आदि इसके अधीन हैं।

सरस्वती—स्वर ज्ञान में निपुण, त्रिकालदर्शी, ज्ञान में स्थित, संसार के सारासार को समझ कर ब्रह्म का प्रत्यक्ष कर लिया है उसे सरस्वती कहते हैं।

भारती—जो ब्रह्म विद्या रूपी भार से युक्त है। जिसने पाप रूपी भार को त्याग कर दिया है, दुःख भार को नहीं जानता उसे भारती कहते हैं।

पुरी—जो पूर्ण तत्त्व में स्थित होकर, ज्ञान तत्त्व में परिपूर्ण है, तथा नित्य परब्रह्म तत्त्व में रमण करता है वह पुरी नामक संन्यासी है।

भूरिवार—भूरि शब्द से वर्ण को ग्रहण किया, जो अपने अपने वर्णों में स्थित रहने की शिक्षा देता है। वह यतियों का सम्प्रदाय भूरिवार कहा जाता है।

चैतन्य—जो विद्वान ज्ञान स्वरूप अनन्त, अजर, शिव तत्त्व को जानता है। चित्त की जड़ता से रहित है। उस ब्रह्मचारी को चैतन्य कहते हैं।

यह चारों मठों की मर्यादा कही गयी है जो कि आद्य शंकराचार्य द्वारा निर्धारित की गई है।

यह चारों मठ भौतिक हैं। इनके अतिरिक्त तीन आध्यात्मिक मठ हैं। जो ज्ञान द्वारा सिद्धि देते हैं। **(मठाम्नाय से)**

ऊर्ध्व आम्नाय काशी

पांचवां ऊर्ध्व आम्नाय काशी में है। सुमेरु मठ है। उत्तम सम्प्रदाय है। कैलाश क्षेत्र है, निरंजन-देवता, देवी-माया, प्रथमाचार्य ईश्वर, महेश्वर। शुद्ध मन तीर्थ, त्रैलोक्य शरणम्, संहार मार्ग से महत् पद प्राप्त करने के लिये संन्यास का आश्रय ग्रहण करे (लय चिन्तन द्वारा)।

आत्म आम्नाय

छठा, परमात्मा मठ, सत् सन्तोष सम्प्रदाय, योग द्वारा परम पद की प्राप्ति के लिये परमात्मा का स्मरण, यह सरोवर है। परमहंस देवता, मानसी देवी, चैतन्य अद्वय परमात्मा आचार्य हैं।

सप्तम निष्कल आम्नाय

शुद्ध वेदादि शास्त्रों से प्राप्त लक्ष्यार्थ रूपी अविनाशी ब्रह्म मठ है, सम्प्रदाय ॐ तत्सत्त्वम्, पद श्री गुरुओं की चरण पादुका, आत्मानुभूति-क्षेत्र, विश्वरूप देवता, चैतन्य शक्ति-देवी, सद्गुरु आचार्य, जन्म मृत्यु आदि रोग की निवृत्ति के लिये वेदान्तादि शास्त्रों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन तीर्थ है। पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये क्रमानुसार संन्यास का आश्रय ग्रहण करें। **(यतिधर्म निर्णय उत्तर भाग से)**

आश्रम, तीर्थ, सरस्वती के भेद

इन तीन नाम वाले सन्यासियों के गुण, कर्म, स्वभावानुसार, चिदम्बर तथा जगन्नाथी दो भेद हैं। सर्व तीर्थ सम्प्रदाय, महातीर्थ सम्प्रदाय कहलाता है।

मठी तथा कर्वटी दो प्रकार के आश्रम हैं। भारती के दो भेद हैं—१. प्रभाव २. प्रताप सरस्वती के पहले दो भेद, आनन्द सरस्वती, इन्द्र सरस्वती। आनन्द सरस्वती के चार भेद १. माधवी २. कोलूर ३. कुम्भकोणीय ४. पुरी। इन्द्र सरस्वती एक ही प्रकार है।

(यति धर्म निर्णय, उत्तर भाग से)

कामकोटि की परम्परानुसार

यहां का मौल्य आम्नाय है, मठ श्री शारदा, पीठ-काम कोटि, क्षेत्र-सत्यव्रत, काञ्ची, तीर्थ कम्पासर, देवता-एकाम्रनाथ, देवी-कामकोटि। वेद ऋग्वेद, सम्प्रदाय-मिथ्यावार-योगपट्ट-सरस्वती, सत्य-ब्रह्मचारी, "मठाम्नाय सेतु ग्रन्थ में", प्रज्ञान ब्रह्मचारी, महावाक्य ॐ तत्सत् अथवा चारों वेदों के चारों महावाक्य, प्रथम आचार्य-भगवत् पाद शंकर, इसमें **'इन्द्रो मायावी पुरु रूप ईयते'** इस श्रुति वचन से इन्द्र शब्द परमात्मा का वाचक है। यह आद्य शंकर सद्गुरुओं का सर्वोपरि तीर्थ है। यहां के दूसरे आचार्य श्री 'सुरेश्वराचार्य सरस्वती' हैं। गुरुओं का साक्षात् नाम नहीं लेना चाहिये अतः 'इन्द्र सरस्वती' नाम पड़ा।

विभिन्न मठाम्नाय तथा विभिन्न परम्परा

शिव रहस्य, मार्कण्डेय संहिता, कूर्म पुराण, महाम्नाय सेतु, शारदा मठाम्नाय, शृंगेरी मठाम्नाय, यति धर्म निर्णय आदि ग्रन्थों में आचार्यों तथा मठों के सम्बन्ध में अनेक विचारधारायें हैं जो कि आगे लिखी गई हैं।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥

अथ पंचविंशतितमोऽध्याय:

From : Kam Koti Shat Koti ग्रन्थ से

प्रथम आचार्यों में विभिन्न ग्रन्थों का

१. यतिधर्म निर्णय, २. जगन्नाथ मठाम्नाय, ३. शृंगेरी पीठ मठाम्नाय, ४. विरूपाक्ष गुरु परम्परा, ५. पुष्प गिरि गुरु परम्परा, ६. पुष्प गिरि एडमिनिस्ट्रेशन रेकार्डस, ७. द्वारका पीठ गुरु परम्परा, ८. माधवीय शंकर विजय की डिण्डिम व्याख्या, ९. चिद्विलासीय शंकर विजय विलास, १०. गुरुवंश काव्यम्, ११. मणि मंजरी भेदिनी, १२. इन्ट्रोडेक्शन टू सूत्र भाष्य विद् थ्री कमेन्ट्रीज़, १३. गुरु नाथीय शंकर मठेतिवृत्तम्, १४. (काशी) श्री जगद् गुरु शंकर मठ विमर्श, १५. सुरेश्वराचार्य-ले. रामा लिंगेश्वर राय, १६. कुम्भ कोणम् मठीय मार्कण्डेय संहिता, १७. देव नागरी आनन्दगिरि शंकर विजय, १८. तेलगू लिपि में—आनन्दगिरि शंकर विजय, १९. कुम्भ कोणम् मठ सिद्धान्त पत्रिका, २०. कुम्भ कोणम् मठाम्नाय, २१. कुम्भ कोणम् मठाम्नाय सेतु, २२. रायलू वैंकट रामा शर्मा—मठाम्नाय सेतु, २३. आम्नायाष्टक अनुक्रमणिका सुषमा टीका, २४. श्रीमत् भगवत् शंकर पाद चरित्र ले. रायलू वैंकट राय शर्मा, २५. श्री जगद् गुरु शंकराचार्य ले. व. रामास्वामी उपाध्याय पृ. सं० ३३ काशी श्री शंकर मठ विमर्श, २६. श्री जगद् गुरु शंकराचार्य भगवत्पाद चरित्र ले. कृष्णास्वामी अय्यर, २७. श्री शंकर गुरु परम्परा आत्रेय कृष्णास्वामी, २८. नव शंकर विजय आर्या सहस्र। द्वारा—पैल्यू उमा महेश्वरी शास्त्री।

नाम आचार्य	पुस्तक सं.	
जगन्नाथ पीठाधिपति		
१. श्री हस्तामलकाचार्य पक्ष में	१, ३, ४, ६, १२, १३, १९, २०, २२, २३, २४, २६, २८	= १३
२. श्री पद्मपादाचार्य पक्ष में	२, ५, ७, ९, १०, १३, २१	= ७
शृंगेरी पीठाधीश्वर		
३. श्री सुरेश्वराचार्य जी पक्ष में	२, ३, ४, ५, ६, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, १७, २६	= १४
४. श्री विश्वरूपाचार्य पक्ष में	१, २०	= २
५. श्री पद्मपादाचार्य पक्ष में	१६, १८, १९	= ३

६. श्री हस्तामलकाचार्य पक्ष में	७	= १
७. श्री पृथ्वीधराचार्य पक्ष में	१२, १३, २१	= ३
८. श्री पृथ्वीधराचार्य पक्ष में द्वारका पीठाधीश्वर	२२, २३, २४, २८	= ४
९. श्री पद्मपादाचार्य जी पक्ष में	१, ३, ४, ६, १२, १३, २०, २२, २३, २६, २८	= १२
१०. श्री सुरेश्वराचार्य जी पक्ष में	७, २१	= २
११. श्री विश्वरूपाचार्य जी पक्ष में	१२, १३	= २
१२. श्री हस्तामलकाचार्य जी पक्ष में	२, ५, ९, १	= ४
१३. श्री त्रोटकाचार्य जी पक्ष में ज्योतिष् पीठाधीश्वर	१९	= १
१४. श्री त्रोटकाचार्य जी पक्ष में	१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १५, २०, २१, २२, २३, २४, २६, २८	= १९
१५. श्री कुमारिल भट्ट जी पक्ष में काञ्ची पीठाधिपति	१९	= १
१६. श्री सुरेश्वराचार्य जी पक्ष में	१६, १८, १९	= ३
१७. श्री आद्यशंकर पक्ष में	२०, २१, २२, २३, २४, २८	= ६
१८. श्री सर्वज्ञात्मुनि पक्ष में	२६	= १

पाठकों ने देखा होगा कि मठों तथा आचार्यों के सम्बन्ध में बड़ा भारी मतभेद पाया जाता है। चारों पांचों मठों की अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न मान्यतायें हैं। इन सभी मठों के कागज़ पत्रों को देखने से यह निष्कर्ष निकलता है कि द्वारका शारदा पीठ की परम्परानुसार श्री सुरेश्वराचार्य जी प्रथम आचार्य हुये। गोवर्द्धन की परम्परानुसार श्री पद्मपादाचार्य जी प्रथम आचार्य हुये। शृंगेरी की मान्यतानुसार श्री सुरेश्वराचार्य जी प्रथम आचार्य हुये। ज्योतिर्मठ की परम्परानुसार श्री त्रोटकाचार्य जी प्रथम आचार्य हुये। कामकोटिकी मान्यतानुसार श्री सुरेश्वराचार्य जी दूसरे, आदि शंकर प्रथम तथा सर्वज्ञात्म मुनि तृतीय आचार्य हुये।

श्री सुरेश्वराचार्य

यह आचार्य बड़े प्रभावशाली थे। अनेकों लेखों के अनुसार यह एक स्थान पर अधिक काल तक कहीं नहीं बैठे। सम्भवतः तीनों ही मठों द्वारका, शारदा, शृंगेरी शारदा तथा काञ्ची शारदा मठों में इनका आधिपत्य रहा।

श्री कुमारिल भट्ट पाद

इतिहास तथा संस्कृत, हिन्दी, तामिल, तेलगू, मलयालम, अंग्रेज़ी आदि अनेकों भाषाओं में श्री शंकराचार्य जी का चरित्र पाया जाता है। किसी भी जीवन वृत्त में कुमारिल के सम्बन्ध में ज्योतर्मठ में बैठने का इतिहास नहीं मिलता है। वे तो तीर्थ राज प्रयाग में जब आचार्यपाद पहुंचे, उस समय आधे जल चुके थे। आचार्य के मना करने पर भी उन्होंने अपने संकल्प का त्याग नहीं किया। उनका दर्शन, स्तुति करते-करते ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। अतः उनका कहीं का पीठाधीश्वर होना किसी भी इतिहास या दिग्विजय से सिद्ध नहीं होता है। अतः ज्योतिर्मठ के प्रथम आचार्य श्री त्रोटकाचार्य निर्विवाद सिद्ध होते हैं।

इन मठों तथा आचार्यों के सम्बन्ध में काशी वासी पं. राजगोपाल शर्मा जी की अंग्रेज़ी में लिखी हुई पुस्तक, 'काञ्ची कामकोटि मठ ए मित्थ्य' जो कि 'गंगा तुंगा प्रकाशन हनुमान घाट वाराणसी' से प्रकाशित हुई है। उसमें तथा वैंकट राम शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक 'कामकोटि शत कोटि' (अंग्रेज़ी में) जिसका प्रकाशन बंगलौर से हुआ है, में विस्तारपूर्वक देखा जा सकता है।

यद्यपि ऊपर दिये गये ग्रन्थों के विवरणानुसार श्री पद्मपाद तथा सुरेश्वराचार्य के सम्बन्ध में द्वारका तथा जगन्नाथपुरी को लेकर अधिक मत पाये जाते हैं। परन्तु निर्वाचन की तरह शास्त्र सम्बन्धी निर्णय में बहुमत काम नहीं करता। अतः अपनी-अपनी परम्परानुसार ही आचार्य मानना चाहिये। इन सभी ग्रन्थों की अपेक्षा 'श्री स्वामी राजराजेश्वर शंकराश्रम जी महाराज' द्वारा लिखित "विमर्श" में काल निर्णय तथा महाराज सुधन्वा का लेख, एवं महाराज सर्वजित् के द्वारा पूज्यपाद स्वामी नरसिंहाश्रम को दिया ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक है। अतः उपर्युक्त प्रमाणानुसार पद्मपादाचार्य जी गोवर्द्धन मठ के, सुरेश्वराचार्य जी द्वारका शारदा मठ के, श्री हस्तामलकाचार्य जी शृंगेरी के, तथा श्री त्रोटकाचार्य जी ज्योतिर्मठ के प्रथम आचार्य सिद्ध होते हैं।

भले ही आचार्यपाद की जन्म-भूमि, जन्म तिथि, मठों तथा आचार्यों का सम्बन्ध उनकी ब्रह्मीभूत भूमि, तिथि में मतभेद हो। परन्तु आचार्य चरण ने जो उपदेश शिक्षायें दी हैं जिस अद्वैत वेदान्त का प्रचार प्रसार किया है, उसका श्रवण, मनन, निदिध्यासन करते हुये आद्य जगद् गुरु जी में पूर्ण श्रद्धा विश्वास करने से ही हम विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

कौन कब पहले हुआ कौन बाद में, सृष्टि का आदि कर्त्ता कौन है, आदि प्रश्नों को लेकर पुराणों, उपनिषदों तथा दर्शनों में मतैक्य नहीं है। कोई पंच महाभूतों से, कोई तीन महाभूतों से, कोई प्रकृति के तीन गुणों से, कोई कर्मों से, कोई विष्णु भगवान, ब्रह्मा, शिव शक्ति, गणेश आदि से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय कहता है। परन्तु आचार्यपाद भगवान् शंकर 'ब्रह्म सूत्र' के भाष्य के आरम्भ में 'अध्यास भाष्य' में सभी शंकाओं का निराकरण करते हुये कहते हैं यदि जगत् परमार्थतः सत्य होता तो सभी वेदों, दर्शनों, पुराणों में जगत् की उत्पत्ति एक जैसी होती। अतः जगत् तीनों कालों में मिथ्या है। जब जगत् का कारण तीन गुण, प्रकृति ही मिथ्या है उसका कार्य जगत् सत्य कैसे हो सकता है। न होने पर भी अज्ञान से प्रतीत होता है। परमार्थ सत्ता में जब जगत् ही नहीं तो कालटी, माता-पिता, पूर्णा नदी आदि सत्य कहां से हुये। अतः स्वरूप चिन्तन का अभ्यास यतियों को विशेष रूप से करना चाहिये।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, पंचविंशतितमोऽध्यायः॥

अथ षड् विंशतितमोऽध्यायः

महानुशासनम्

यह ग्रन्थ भगवान् भाष्यकार द्वारा लिखित है। इसकी हस्त लिखित प्राचीन प्रतियां पुरी, कामरूप, काशी तथा पूना में प्राप्त हुई हैं। इसमें जगद् गुरु शंकराचार्य की योग्यता का वर्णन किया गया है। शंकराचार्य पद पर जन्मना ब्राह्मण दण्डधारी एक दण्डी संन्यासी ही बैठ सकता है।

आम्नायाः कथिता ह्येते यतीनां च पृथक्-पृथक्।
ते सर्वे चतुराचार्याः नियोगेन यथा क्रमम्॥१॥

संन्यासी आचार्यों के गुरु परम्परानुसार पृथक्-पृथक् उपदेश बताये गये हैं। यह सब चारों आचार्य अपने-अपने धर्मों में लगें॥१॥

प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनायास्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्तु एव सततमटनं धरणी तले ॥२ ॥

यदि इस महानुशासन के विपरीत धर्म का पालन न करें तो विद्वानों द्वारा उन पर शासन किया जा सकता है तथा यह आचार्य निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण करते रहें ॥२ ॥

विरुद्धाचरण प्राप्तावाचार्याणां समाज्ञया।
लोकान् संशीलयन्त्येव स्वधर्माप्रतिरोधतः ॥३ ॥

जब देश में विरुद्ध आचरण वाले होने लगे तब आचार्यों की आज्ञा से जनता को धर्म की मर्यादा के अनुसार शिक्षा दें ॥३ ॥

स्व स्व राष्ट्र प्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतो वास आचार्यस्य न युज्यते ॥४ ॥

अपने-अपने क्षेत्र की प्रतिष्ठा के लिये आचार्य विचरण करते रहें। उनका मठ में नियत रूप से निवास उचित नहीं है ॥४ ॥

वर्णाश्रम सदाचारा अस्माभिर्ये प्रसाधिताः।
रक्षणीयास्तु एवैते स्वे स्वे भागे यथाविधिः ॥५ ॥

आचार्यपाद कहते हैं कि हमने वर्णाश्रम सदाचार की जो मर्यादा स्थापित की है उसकी वे अपने-अपने क्षेत्र में विधिपूर्वक रक्षा करें ॥५ ॥

यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यात्र प्रजायते।
मांद्यं संत्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् ॥६ ॥

इस युग में धर्म की जब महान् हानि हो रही है। ऐसे में प्रमाद का त्याग कर आचार्य गण चतुराई से काम लें ॥६ ॥

परस्पर विभागे तु प्रवेशो न कदाचन।
परस्परेण कर्त्तव्या आचार्येण व्यवस्थितिः ॥७ ॥

एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश न करें। आचार्य आपस में मिलकर इसकी व्यवस्था करें ॥७ ॥ अर्थात् तीर्थ यात्रा के उद्देश्य से सर्वत्र जा सकते हैं। परन्तु वहां की जनता से कर न लें।

मर्यादायाः विनाशेन लुप्तेरन्नियमाः शुभाः।
कलहाङ्गार सम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ॥८ ॥

मर्यादा के नष्ट हो जाने पर अच्छे नियम लुप्त हो जाते हैं । कलह रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है । अतः इसे रोकना चाहिये ॥८ ॥

परिव्राडाचार्य मर्यादां मामकीनां यथाविधिः ।
चतुः पीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च पृथक् पृथक् ॥९ ॥

मेरे द्वारा बतायी हुई श्रेष्ठ मर्यादा को चारों पीठों की सत्ता का विधिपूर्वक सदुपयोग करें ॥९ ॥

शुचिर्जितेन्द्रियो वेद वेदाङ्गादि विशारदः ।
योगज्ञः सर्व शास्त्राणां समदा स्थानमाप्नुयात् ॥१० ॥

शुद्धान्तःकरण, जितेन्द्रिय, वेद वेदांग का ज्ञाता, समस्त शास्त्रों में कुशल योगाभ्यासी ऐसा आचार्य ही मेरे पीठ को प्राप्त करे ॥१० ॥

उक्त लक्षण सम्पन्नः स्याच्चेन्मत् पीठभाग् भवेत् ।
अन्यथा रूढ़ पीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ॥११ ॥

ऊपर कहे गये लक्षणों से युक्त यति ही मेरे आसन पर बैठ सकता है । इसके विपरीत लक्षणों वाला संन्यासी यदि पीठ पर बैठा हो तो विद्वान उसे हटा दें ॥११ ॥

न जातु मठमुच्छिन्द्यादधिकारिण्युपस्थिते ।
विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्मः सनातनः ॥१२ ॥

विघ्नों की अधिकता होने पर भी अधिकारी आचार्य के रहते मठ को किसी प्रकार की हानि न पहुंचाई जाये । यह सनातन धर्म है ॥१२ ॥

अस्मत् पीठ समारूढ परिव्राडुक्तलक्षणः ।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः ॥१३ ॥

उक्त लक्षणों से युक्त यती जो मेरी पीठ पर बैठा हो **"यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ"** जैसे ईष्ट देव के प्रति भक्ति है वैसे ही गुरुओं में भी भक्ति है" इस श्रुति के अनुसार वह मेरा ही स्वरूप है ऐसा जाने ॥१३ ॥

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणसम्मतः ।
तत्तत् पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित् ॥१४ ॥

पूर्ववर्त्ती संन्यासी के अभाव में ऊपर कहे हुये लक्षणों से युक्त उन पीठों पर एक ही शंकराचार्य का अभिषेक किया जाये अधिक का नहीं ॥१४ ॥

सुधन्वनः समौत्सुक्य निवृत्यै धर्महेतवे ।
देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत् ॥१५ ॥

सुधन्वा राजा की उत्सुकता की निवृत्ति तथा धर्म के लिये, देवताओं तथा राजाओं के व्यवहारों का यथोचित पालन करना चाहिये ॥१५ ॥

केवलं धर्ममुद्दिश्य विभवो ब्रह्मचेतसाम् ।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्र नयं व्रजेत् ॥१६ ॥

ब्रह्म ज्ञानी शंकराचार्य का वैभव (छत्र, चामर, सिंहासनादि) केवल धर्म के उद्देश्य तथा लोकोपकार के लिये हैं । इस सम्बन्ध में आचार्य कमल पत्रवत् (जैसे कमल पत्र जल में रहते हुये भी जल का प्रभाव उस पर नहीं होता) निर्लेप रहे ॥१६ ॥

सुधन्वा हि महाराजस्तदन्ये च नरेश्वराः ।
धर्मं पारम्परीमेतां पालयन्तु निरन्तरम् ॥१७ ॥

महाराज सुधन्वा तथा अन्य राजा धर्म की इस परम्परा का निरन्तर पालन करें ॥१७ ॥

चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं वाङ्मनः काय कर्मभिः ।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै ॥१८ ॥

मनसा, वाचा, कर्मणा चारों वर्ण योग्यता के विभागानुसार गुरु पीठ का पूजन करें ॥१८ ॥

धरामालम्ब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः ।
कृताधिकाराः आचार्याः धर्मतस्तद्वदेव हि ॥१९ ॥

जैसे राजा लोग प्रजा के कर के भागी हैं । वैसे ही आचार्य भी धर्मानुसार प्रजा से कर लेने के अधिकारी हैं ॥१९ ॥

धर्मो मूलं मनुष्याणां सचाचार्यावलम्बनः ।
तस्मादाचार्य सुमणेः शासनं सर्वतोऽधिकम् ॥२० ॥

मनुष्य के मूल धर्म हैं और वह धर्म आचार्य के आश्रित हैं । इसलिये आचार्य रूपी सुमणि का शासन सबसे अधिक है ॥२० ॥

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम्।
आचार्यस्य विशेषेण ह्यौदार्य भरभागिनः ॥२१ ॥

अतः विशेष रूप से आचार्य का शासन सर्व सम्मत, उदारतापूर्ण तथा भारवहन समर्थ विशेष रूप से होना चाहिये ॥२१ ॥

आचार्याक्षिप्त दण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मला स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥२२ ॥

पाप करने वाला मनुष्य आचार्य द्वारा दण्डित होने पर निर्मल सुकृती सन्तों के समान स्वर्ग का भागी होता है ॥२२ ॥

इत्येवं मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः।
विशिष्ट शिष्टाचारोऽपि मूलादेव प्रसिद्ध्यति ॥२३ ॥

इस प्रकार मनु तथा गौतम ने विशेष रूप से कहा है। विशिष्ट पुरुषों का शिष्टाचार मूल से ही प्रसिद्ध है ॥२३ ॥

तानाचार्योपदेशांश्च राजदण्डांश्च पालयेत्।
तस्मादाचार्य राजानावनवद्यौ न निन्दयेत् ॥२४ ॥

आचार्यों के उपदेश तथा राजदण्ड का सर्वथा पालन करे। अतः निर्दोष आचार्य तथा राजा की निन्दा न करे ॥२४ ॥

धर्मस्य पद्धति र्ह्येषा जगतः स्थिति हेतवे।
सर्व वर्णाश्रमाणां हि यथा शास्त्रं विधीयते ॥२५ ॥

संसार की रक्षा के लिये धर्म की यही पद्धति है कि शास्त्रानुसार सभी वर्णाश्रमों के लिये विधान करती है ॥२५ ॥

कृते विश्व गुरु ब्रह्मा त्रेतायामृषि सत्तमाः।
द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम् ॥२६ ॥

सत्य युग में जगत् गुरु ब्रह्मा, त्रेता में ऋषि श्रेष्ठ दत्तात्रेय, द्वापर में व्यास जी तथा कलियुग में मैं शंकराचार्य गुरु हूं ॥२६ ॥

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः

उप मठ

(श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से)

पीछे ३५ मठों के नाम लिखे जा चुके हैं। इन उप पीठों में कूडली मठ, संकेश्वर मठ, पुष्पगिरि विरूपाक्ष, रामचन्द्र पुर, शिव गंगा मठ, कोप्पाल, श्री शैल तथा रामेश्वर मठ प्रधान हैं। यह शृंगेरी मठ की शाखायें हैं। शृंगेरी मठ ने एक बार कूडली मठ पर केस किया था। यह शृंगेरी का उपपीठ है। कूडली के पीठाधीश छत्र, चामर, सिंहासनादि का प्रयोग नहीं कर सकते। सन् १८४७ में मैसूर न्यायालय ने फैसला किया कि कूडली शृंगेरी का उपपीठ नहीं है। इतना ही नहीं जब दोनों मठ भिन्न हुये उस समय शृंगेरी मठ के नये पीठाधीश ने एक पत्र कूडली पीठाधीश को लिखा। उसमें शृंगेरी के आचार्य ने यह शर्तें स्त्रीकार कीं। वे शृंगेरी में रहकर शारदा की पूजा करेंगे। उन्हें कूडली मठ को हिसाब देना पड़ेगा। बाहरी यात्रा का अधिकार कूडली को है।

संकेश्वर मठ—एक बार शृंगेरी के शंकराचार्य तीर्थाटन के लिये बद्री नारायण गये। अपने स्थान पर दूसरे संन्यासी को नियुक्त किया तथा कहा कि मैं तीन वर्ष में लौट आऊंगा। इसी बीच में किसी ने आचार्य के ब्रह्मीभूत होने की सूचना दी। स्थानापन्न यति पूर्ण अध्यक्ष हो गये। आचार्य लौट कर जब कोल्हापुर पहुंचे तब समाचार सुना वे वहीं रुक गये। तब उन्होंने संकेश्वर मठ की स्थापना की। इसी प्रकार गुजरात का वागड मठ शारदा मठ से पृथक् हुआ किन्तु स्वतन्त्र नहीं है, उसी के अधीन है। कूडली मठ मैसूर राज्य में शृंगेरी से ७० मील दक्षिण में तुंगभद्रा के तटपर है।

विरूपाक्ष मठ—यह आन्ध्र प्रदेश में हम्पी (वीजानगरम्) में है। **पुष्पगिरि**—यह भी आन्ध्र प्रदेश में कडप्पे और करनूल के बीच में हैं। यह कडप्पे से २० मील पर है। आन्ध्र प्रदेश के उत्तरी भाग के लोगों ने विरूपाक्ष तथा पुष्पगिरि के आचार्यों को गुरु मानकर दक्षिणा आदि देने लगे। आन्ध्र प्रदेश के दक्षिणी भाग तथा तामिलनाडु के लोग कामकोटि पीठ को भेंट पूजा, अग्र पूजा देने लगे। यहां के पांच सौ से अधिक गांव वाले ज़मीन का कुछ भाग कामकोटि के आचार्य को देने लगे। कर्नाटक में हव्य नाम का ८०० मनुष्यों का एक समुदाय है। शुभ अवसरों पर श्री रामचन्द्रपुरम मठ को भेंट देते हैं।

कर्नाटक के कुछ भाग एवं तामिलनाडु के कुछ भाग शुभावसर पर शृंगेरी को अग्र पूजा भेंट करते हैं । इन मठों की अपनी विशेष मुद्रायें तथा विरुदावली है जो कि भाषण से पूर्व या पूजा के समय ब्रह्मचारी लोग सुनाते हैं ।

गुरु परम्परा विषयक विचार

पीछे लिखा जा चुका है कि गौड़, महागौड़, गोविन्द, महागोविन्द नाम के विभिन्न गुरु हो चुके हैं । सुरेश्वराचार्य जी शृंगेरी की मान्यतानुसार ७२५ वर्ष तक रहे । आधुनिक विद्वान् कहते हैं कि इस नाम के बहुत से आचार्य हो चुके हैं । किन्तु हमारे विचार में यह बात ठीक नहीं उतरती । युक्त योगी स्वेच्छा से जब तक चाहे जीवित रह सकते हैं । ब्रह्मा के अवतार होने के कारण उनके लिये असम्भव नहीं ।

द्वारका पीठ के आचार्य सम्बन्धी विचार

इस मठ के आश्रम तीर्थ नाम के संन्यासी हैं । इसी मठ की शाखा बागल गुजरात में है । यहां के आचार्य भी आश्रम या तीर्थ नाम से जाने जाते हैं ।

द्वारका मठ में वि. सं. १९२९ से १९३५ के बीच में मुसलमानों के उपद्रव के कारण मठ नष्ट हो गया था । तब वहां के आचार्य वहां से निकल कर योग्य स्थान की खोज करते हुये वागल नाम के स्थान पर पहुंचे । वहां पर द्वैतवादी मध्वाचार्य के अनुयायी से मिलकर रहने लगे । मध्व तथा स्मार्त सम्प्रदाय मिलकर भागवत नाम का नवीन समुदाय चला । वहीं मठ बनाकर विद्या धर्म का प्रचार करने लगे । इसलिये पूज्यपाद जगद् गुरु माधव तीर्थ के अनुवर्त्ती आचार्य जगद् गुरु सदानन्द तीर्थ जी महाराज द्वारका से आकर बागल में दूसरा नया मठ बनाकर रहने लगे । इनका शारदा मठ से सम्बन्ध होने के कारण तीर्थ नाम था ।

शंका—श्री स्वामी सदानन्द तीर्थ जी की विरुदावली में वागल पीठ न कहकर "धनगिरि प्रतिष्ठापनाचार्य" कहा जाता है ।

समाधान—'धनगिरि' नामक पर्वत द्वारका के निकट होने के कारण 'धनगिरि' का नाम लिया जाता है । यह स्थान भी शारदा के अधीन है । इन आचार्यों की मुद्रा में श्रीकृष्ण तथा चन्द्रमौलीश्वर के चित्र अंकित हैं । इससे वे अद्वैताचार्य सिद्ध नहीं होते ।

शंका—इनकी विरुदावली में द्वारका पीठ के स्थान पर दुर्वासा पीठाधीश लिखा जाता है । इसलिये यह द्वारका के सिद्ध नहीं होते ।

समाधान—यह शंका भी नहीं करनी चाहिये क्योंकि स्कन्द पुराण में द्वारका माहात्म्य के तीसरे अध्याय में कथा आती है कि द्वारका की रक्षा दुर्वासा ने की थी इसलिये द्वारका को दुर्वासा पुरी कहते हैं।

शंका—इस मठ की परम्परा में शृंगेरी मठ के समान ब्रह्मचर्य से ही संन्यास की परम्परा है।

समाधान—यह शंका भी ठीक नहीं क्योंकि, शृंगेरी में सुरेश्वराचार्य तथा विद्यारण्य गृहस्थ से संन्यासी हुये। इन दोनों के अतिरिक्त शृंगेरी के अन्य सभी आचार्य ब्रह्मचारी से संन्यासी हुये। अतः वागल मठ, मुगवागल मठ शारदा की ही शाखायें हैं।

शंका—श्री स्वामी सदानन्द तीर्थ जी के वागल में आने के पूर्व ही द्वारका शारदा मठ को यवनों ने नष्ट कर दिया था। पूर्ववर्ती आचार्य श्री केशवाश्रम जी महाराज ने किसी दूसरे शिष्य को मठ का अधिकार भी नहीं दिया। अतः उनके उत्तराधिकारी जगद् गुरु स्वामी 'श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम जी' महाराज इस मठ के अधिकारी कैसे हुये।

समाधान—दक्षिण के एक ब्राह्मण थोड़ी सी अंग्रेज़ी तथा संस्कृत पढ़ने के बाद यवनों के आक्रमण के बाद द्वारका में आये। वहां के पीठ को अधिकारी रहित देखकर उस पर आसीन होने की इच्छा से एक गौड़ ब्राह्मण ने श्री स्वामी आनन्दाश्रम से संन्यास लेकर वार्त्ता में आकर वहां की अधिकारिणी स्त्री 'जीजीबाई' को अपने शील स्वभाव से सन्तुष्ट करके आसन पर बैठ गये। फिर थोड़े समय में स्वतन्त्र हो गये। जीजी बाई तथा मठ के अधिकारियों के साथ कलह हुआ। इन सबको हटा दिया। बाई ने कोर्ट में अपील की। यही "स्वामी राजराजेश्वराश्रम जी महाराज" थे। सिविल कोर्ट में न्याय नहीं मिला। तब उच्च न्यायालय में अपील की वहां से भी हार गये। फिर हाई कोर्ट बम्बई में की गई अपील का न्याय होने के पूर्व ही जीजी बाई की मृत्यु हो गयी। तब कोर्ट में मुकद्दमा शान्त हो गया और यह निष्कटंक वहां के पीठाधीश्वर हुये।

यदि किसी मठ में योग्य संन्यासी न हो तो दूसरे मठ का योग्य संन्यासी क्यों नहीं बैठ सकता। क्योंकि सभी मठों के संन्यासियों की अष्टक श्राद्ध, विराजाहोम, प्रेषमंत्र तथा महावाक्य एक प्रकार का है। अपने स्वरूप में रमण करने वाला संन्यासी, जगत् में धर्म ज्ञान का प्रचार करने के लिये. शिष्यों को ज्ञान मार्ग में लगाने के लिये, सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करने पर भी

स्वधर्म का अनुष्ठान करने करवाने में प्रवृत्त होते हैं। यदि पूर्व स्थित धर्माचार्य धर्म विरुद्ध कार्य करे तो पद से हटाया जा सकता है तो उसके स्थान पर दूसरे मठ के सद्गुण सम्पन्न संन्यासी के बैठने में दोष नहीं होना चाहिये। चारों मठों की गुरु परम्परा में भी यह आवश्यक नहीं कि आश्रम के बाद आश्रम, तीर्थ के बाद तीर्थ, सरस्वती के बाद सरस्वती संन्यासी हो। चारों मठों में सब प्रकार के संन्यासी बैठते हैं। जिन आचार्यों की कथनी करनी एक हो उनके द्वारा किये हुये शिष्यों के उपदेश का प्रभाव पड़ता है। उनके अन्तःकरण में स्थित विषय वासना की जड़ उखड़ जाती है तथा ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है।

यति सर्वस्व त्यागी होने पर भी लोक संग्रह तथा धर्म प्रचार के लिये निर्लिप्त भाव से जगद् गुरु के आसन पर आसीन होकर सिंहासन, छत्र आदि का उपयोग करते हैं। अथवा पंचदशी के अनुसार, सब में ज्ञान एक जैसा होने पर भी सभी ज्ञानियों की प्रारब्ध एक जैसी नहीं होती।

शुको योगी कृष्ण भोगी, राजानौ जनक राघवौ।
वशिष्ठ कर्म कर्ता च पञ्चैते ज्ञानिनः समाः।

शुकदेव जी योगी, कृष्ण भोगी, महाराज जनक तथा राम जी राजा, वशिष्ठ जी कर्म काण्डी यह सभी समान ज्ञानी होने पर भी प्रारब्ध भिन्न-भिन्न रहा। आत्म वेत्ता होने पर भी जैसे जड़ भरत जी को राजा रहूगण की पालकी ढोनी पड़ी। वैसे ही जगद् गुरु भी धनियों तथा महाराजाओं की इच्छानुसार छत्र सिंहासनादि धारण करते हैं। इनका वर्णन विस्तार से परमहंस वाह्य अर्चन विधि में किया है।

ऊपर के प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि विवेक वैराग्य आदि से सम्पन्न शुद्ध कुल प्रसूत ब्राह्मण योग्यतम गुरु से संन्यास ग्रहण पद्धति के अनुसार संन्यास लेकर उपदेशात्मक संन्यास का अधिकारी है। यदि उनमें महानुशासनम् में कहीं योग्यतायें हैं तो धर्माचार्य पद पर आसीन हो सकता है। इससे यह शंका दूर हो गयी कि एक दक्षिणी द्राविड़ ब्राह्मण ने गौड़ ब्राह्मण आनन्दाश्रम जी से संन्यास लिया। जिनका नाम "स्वामीराजराजेश्वर शंकराश्रम" जी हुआ। क्योंकि संन्यास से पूर्व ही शिखा यज्ञोपवीत के साथ ही पिछला नाम गोत्र आदि सब समाप्त हो जाते हैं। संन्यास में द्राविड गौड आदि का भेद नहीं रहता। अतः जो शंका की गयी थी कि गौड ब्राह्मण से संन्यास लेने के कारण "श्री राजराजेश्वर आश्रम जी' आचार्य पीठ पर नहीं

बैठ सकते। वह निर्मूल हो गयी, यदि संन्यास में भी यह भेद बुद्धि होती तो द्राविड आचार्य शंकर गौडपादाचार्य जी के शिष्य से संन्यास न लेते। मण्डन मिश्र, मिश्र देशीय गौड ब्राह्मण होने पर भी द्राविड ब्राह्मण से संन्यास न लेते। किन्तु ऐसा नहीं हुआ वरन् वह पीठाधीश्वर भी हुये। यति धर्म निर्णय, यति धर्म संग्रह, यति धर्म प्रकाश आदि में संन्यास ग्रहण के बाद सब की निवृत्ति कही गयी है।

अतः पूज्य पाद जगद् गुरु श्री राज राजेश्वर शंकर आश्रम जी महाराज परम विरक्त, पदलोलुपता रहित, महाविद्वान्, यति धर्म का पूर्ण पालन करने वाले जीवन्मुक्त संन्यासी थे। गुजराती विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा विशेष आग्रह करने पर अपनी एकान्त गुफा का परित्याग करके, अनासक्त भाव से उन्होंने सुचारू रूप से पीठ को सुशोभित किया। इनसे पूर्ववर्त्ती जगद्गुरु अनन्त श्री "स्वामी केशवाश्रम जी" के करकमल-संजात धर्माचार्य थे। आगे उनके जीवन-चरित्र में इन बातों का स्पष्टीकरण होगा।

॥इति श्री गु० वं० पु०, कलि० खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७ ॥

अथ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

करवीर मठ की उत्पत्ति

श्रृंगेरी के आचार्य शंकर भारती जी महाराज विद्या पीठ की स्थापना के अनन्तर फिर काशी गये। मार्ग में संकेश्वर नामक ग्राम के उत्तर दिशा में बल्लभगढ़ नाम के किले में स्थित हरिद्रा देवी के दर्शन किये। वहीं पर संकेश्वर भी है। उनको रात्रि में स्वप्न हुआ कि आपको मठ स्थापित करके यहां पूजा करनी चाहिये। तब आचार्य ने पापहारिणी नदी में स्नान किया तथा शंकर जी का पूजन किया। कुछ समय के पश्चात् विजयपुर के महाराज तथा उनके मंत्री इब्राहीम कयादल ने स्वामी जी को देखकर प्रणाम किया तथा कुछ ग्रामों का दान किया। उन्होंने मठ की स्थापना की। तब से यह करवीर के नाम से विख्यात हुआ। वहां एक वेद विद्यालय की भी स्थापना की। बाद में एक गृहस्थ को उपदेश देकर वहां का अधिपति बनाया। वहां पर आज भी गृहस्थ ब्राह्मण उपदेश करते तथा अधिपति रहते हैं। शंकर भारती के नाम से ही श्रृंगेरी के संन्यासियों की भी भारती उपाधि है।

ग्रन्थ भेद से चिदम्बर शंकर की कथा—चिदम्बर क्षेत्र में सर्वज्ञ नाम के ब्राह्मण अपनी कामाक्षी नाम की पत्नी के साथ सन्तान की इच्छा से चिदम्बर आकाश लिंग की आराधना की। शंकर जी की कृपा से उनके विशिष्टा नाम की कन्या हुई। जब वह विवाह के योग्य हुयी तो उसके पिता ने विश्वजीत नाम के द्राविड ब्राह्मण से विवाह किया। तब वह ब्राह्मण विरक्त होकर आत्म साक्षात्कार करने के लिये तपस्या करने लगे। पति के वन में चले जाने के बाद उनकी पत्नी फिर चिदम्बरेश्वर की आराधना करने लगी। कुछ काल बीत जाने पर अनेकों श्रोत्रिय ब्राह्मणों की उपस्थिति में शंकर तेज पुंज के रूप में शिवलिंग से निकलकर उसके मुख रूपी बिल से उदर में प्रविष्ट हुये। वह गर्भवती हुई। तब दसवें मास में शंकराचार्य के रूप में शंकर यु. सं. १७२३ में सर्वधारी नाम के सम्वत् में प्रकट हुये।

आचार्य ने बुद्ध आदि नास्तिकों के मत का खण्डन किया। मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ किया, तब उन्हें जीतकर संन्यास दिया और उनका नाम विश्वरूप भारती रखा। शृंगेरी में सरस्वती की स्थापना की। इसी शृंगेरी में श्री विद्या नृसिंह भारती आचार्य अपने शिष्य विद्याशंकर भारती को अभिषिक्त करके तीर्थ यात्रा के लिये काशी चले गये। व्यास जी द्वारा दिये गये चन्द्रमौलीश्वर लिंग की पूजा करने का आदेश दिया। शिष्यों ने गुरु जी के आने की प्रतीक्षा की। उनके न आने पर उनकी आज्ञानुसार एक को पीठ का स्वामी बना दिया। तुङ्ग तथा भद्रा नदी के संगम में हरिहर क्षेत्र से १५ कोस की दूरी पर कूडली ग्राम है वहीं पर नियुक्त किया। फिर पूर्वाचार्य ने शृंगेरी जाने की इच्छा की। उसी समय शृंगेरी के अधिकारी ने झूठा प्रचार कर दिया कि आचार्य गुफाओं में ब्रह्मीभूत हो गये। तब बीच में शिष्यों ने नवीन आचार्य को निश्चित कर दिया। श्री विद्या नृसिंह भारती कुछ समय काशी में तपस्या, स्नानादि करके शृंगेरी मठ में वापस आये। वहां पर महायात्रा (काशी यात्रा) के समय स्थापित किये हुये शिष्य श्री विद्याशंकर भारती ने गुरु को आया देखकर स्वयं लोभ से युक्त होकर गुरु जी से कहा कि आपने इस पीठ पर मुझे स्थापित किया है अब आप लोभ न कीजिए। यह मेरा शिष्य है ऐसा सोचकर गुरु स्वामी (विद्या नृसिंह भारती) कूडली चले आये। तब किसी समय गुरु स्वामी के शिष्य करवीराधिपति राजा ने प्रार्थना की कि आप कूडली क्षेत्र से दक्षिण की काशी करवीर में आ जाइये। उनकी प्रार्थना को सुनकर वृद्ध गुरु स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य को राजा के साथ करवीर भेज दिया। करवीर को भेजे हुये शिष्य स्वामी ने गुरु स्वामी से कहा कि धर्म कार्य

के लिये मैं आपको धन भेजूंगा। ऐसा कहकर गुरु को प्रणाम करके राजा के साथ करवीर पहुंचे वहां पर धर्म कार्य करते हुये नये मठ का निर्माण किया।

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर कूडली के गुरु स्वामी ने करवीरस्थ शिष्य स्वामी को एक पत्र लिखा कि मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ है। आप पत्र देखते हुये तुरन्त चले आवो। यदि आने में देर हो तो किसी ब्राह्मण को संन्यास देकर धर्म रक्षार्थ भेज देना। तब करवीर स्वामी ने कूडली स्वामी के लेख को पढ़कर उनकी आज्ञानुसार किसी ब्राह्मण को संन्यास देकर कूडली भेज दिया। करवीर क्षेत्र के स्वामी द्वारा भेजा हुआ नया स्वामी करवीर से हरिहर क्षेत्र स्थित कूडली ग्राम में पहुंचा। वहां पुहंचने से पूर्व ही गुरु स्वामी ब्रह्मीभूत हो गये। तब नये स्वामी ने कूडली के स्वामी को संदेश भेजा कि गुरु स्वामी ब्रह्मीभूत हो गये हैं और यहां पर जो एजेन्ट था उसने अपने सम्बन्धी को पुस्तक संन्यास देकर, राजा को तथा अन्य लोगों को अपने अनुकूल करके मठ का आचार्य नियुक्त कर दिया है।

इस प्रकार बिना गुरु के केवल पुस्तक मात्र से संन्यास अशास्त्रीय है। इस संशय से युक्त नये स्वामी कूडली आये और वहां के कार्यकारी ब्राह्मणों से कहा—श्री गुरु स्वामी आचार्य ने मुझे संन्यास देकर मठ की रक्षा के लिये स्थापित किया है। इस प्रकार विनयपूर्वक कहा। तब करवीर क्षेत्र से आये आचार्य ने कहा। लोक में दो प्रकार का वंश शास्त्र में कहा गया है। १. ब्रह्मविद्या के उपदेश से वंश २. जन्म से। इन दोनों प्रकार के अतिरिक्त कोई तीसरा वंश नहीं है। संन्यासी ब्रह्म विद्या से उपदिष्ट वंश में है। अतः गुरु परम्परा प्राप्त ज्ञानोपदेश से ही गुरु की गद्दी पर बैठ सकता है। इसके विपरीत केवल पुस्तक के आधार पर आश्रित संन्यास श्री शंकराचार्य जी के मत के विरुद्ध है। वह इस गद्दी पर कैसे बैठ सकता है। उस स्वामी का वचन सुनकर सभी ब्राह्मण तथा एजेण्ट यद्यपि स्तब्ध हो गये फिर भी राजकीय मठाधिकारी ने स्वामी जी के शास्त्र संगत वचनों की अवहेलना कर दी। तब वह भेजा हुआ शिष्य कूडली से करवीर पहुंचा तथा करवीर में स्थित गुरु स्वामी से कूडली का सारा वृत्तान्त जो एजेण्ट ने दिया था कह सुनाया और वहीं गुरु के समीप रहने लगा।

तदनन्तर यह समस्या क्षत्रपति महाराज साहू के न्यायालय में पहुंची। दोनों पक्षों की बात को सुनकर महाराज ने क्षेत्रीय ब्राह्मणों विद्वानों से शास्त्रीय न्याय के सम्बन्ध में पूछा—अन्त में पुस्तकीय संन्यास अशास्त्रीय संन्यास है इसके सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता। ऐसा

ब्राह्मणों के वचनों को सुनकर नवीन स्वामी ने प्रार्थना की कि ब्राह्मण और महाराज जो आज्ञा देंगे उसका पालन करूंगा। उसके दीन वचनों को सुनकर करवीर पीठाधिपति ने कहा—कूडली मठ में देव पूजन ब्राह्मण भोजन तथा उत्सव आदि कूडली मठ के आचार्य करते रहें। तुंगा और भद्रा नदी के बीच स्थान की व्यवस्था कूडली के आचार्य करेंगे। तुंगा और भद्रा नदी के बीच में स्थित भूमि से जो आमदनी होगी उसी से कूडली मठ का व्यय वहां के आचार्य चलायें। इस बात को करवीर पीठाधिपति ने भी मान लिया। तुंगा नदी के उत्तर तथा पूर्व पश्चिम समुद्र के बीच के सम्पूर्ण देश में धार्मिक आचार व्यवहार वहां स्थित भूमि, खेत, बाग आदि की आय से करवीर पीठाधिपति करें। तब से शृंगेरी की ही शाखा कूडली, करवीर, संकेश्वर आदि हैं।

ब्रह्मसूत्र भाष्य तीन टीकाओं सहित शंकराचार्य चरित्र (भूमिका) से
(प्रो. राजबाडे कृत मराठ्यांच्या इतिहासाचीं सा धर्म से)

इति श्री गु०वं० पु० कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

अथ ऊनत्रिंशत् तमोऽध्यायः

दशनामी सम्प्रदाय

शारदा पीठाधीश्वर जगद् गुरु स्वामी राज राजेश्वर शंकराश्रम जी महाराज हमारे गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज तथा स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज ने ऋषि केश आदि में अनेकों महात्माओं के मुखारविन्द से कथा सुनी है कि आचार्यपाद शंकर अपने शिष्यों के प्रति उपदेश करने लगे कि जो गुरु शास्त्रानुसार उपदेश करे वह करो। जो करें वह यदि शास्त्रानुसार हो तो करो इसके विपरीत न करो। अर्थात् उनके तपोमय त्यागमय जीवन का अनुसरण करो। उनके विलासमय जीवन का अनुकरण न करो। यह उपदेश देने के बाद तीर्थ, आश्रम, सरस्वती भारती, वन, अरण्य, पर्वत, सागर, पुरी, गिरि इन दश नामी संन्यासियों की परीक्षा लेनी चाही। आचार्य शंकर ने अपनी माया से एक नगर रचा उसमें प्रचुर मात्रा में भोग सामग्री थी। आचार्यपाद ने अनुचित घर से अभक्ष्य भिक्षा ली। अपेय वस्तु ग्रहण की तथा वेश्यालय में भी गये। यद्यपि इन कर्मों को किया नहीं। इनमें आश्रम, तीर्थ, सरस्वती तथा भारती चारों ने विचार किया कि हमारे परम गुरु सर्व समर्थ हैं। अभी उन्होंने अनुसरणीय

चरित्र के अनुसरण की आज्ञा दी है। अतः इन चारों ने उन कर्मों को नहीं किया। परन्तु शेष छः ने सोचा कि जब परम गुरु जी कर रहें हैं तो हमें क्या दोष है। उन्होंने भी वैसा ही किया और संन्यास से पतित हो गये। गृहस्थ हो गये। इसलिये आज भी गिरि पुरी आदि में गृहस्थ और संन्यासी दोनों पाये जाते हैं, जिन्हें गोसाईं कहते हैं।

सुना जाता है कि गिरि आदि गृहस्थों के जब बच्चा पैदा होता है तो जन्म से ही उसकी चोटी काट देते हैं। आचार्यपाद ने पतित संन्यासियों को शाप दिया तथा कहा, जावो, हिमालय में अपना शरीर बर्फ में गला दो। इन्होंने अनुनय विनय की कि हमारा उद्धार कैसे होगा। तब उन्होंने कहा—हिमालय की यात्रा में भगवान् दत्तात्रेय तुम्हें मार्ग में मिलेंगे। उनसे पुनः संन्यास लेने पर तुम्हारी सद्गति होगी। श्री शंकराचार्य जी ने इन छहों से दण्ड छीन लिया।

आश्रम, तीर्थ, सरस्वती, भारती इन चारों की आचार्य ने और कड़ी परीक्षा ली। कहीं कांच या तांबा गलाया जा रहा था वे उसे जल की तरह पीने लगे। परमाचार्य को पीता देख कर कुछ के मत से आश्रम, तीर्थ, सरस्वती विचार करने लगे परम गुरु जी के इस कठोर तप का हमें अनुसरण करना चाहिये। इनका शरीर नहीं रहेगा तो हम शरीर रख कर क्या करें। ऐसा सोचकर आश्रम तीर्थ सरस्वती तीनों पीने लगे। इनमें स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी के मतानुसार भारती खड़े-खड़े देखते रहे। वह आचार्य की एक परीक्षा में उत्तीर्ण और दूसरी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुये अतः परमाचार्य ने भारती से कहा कि तुम अर्ध-दण्डी हो। दण्ड रख सकते हो एक जगह स्थित रहेगा। लेकर नहीं चल सकते। आश्रम तीर्थ सरस्वती को पूर्ण दण्डी घोषित किया। अतः ऋषि केश वाले गुरु जी के मत से साढ़े तीन दण्डी तथा साढ़े छः अदण्डी हुये। परन्तु जालन्धर वाले गुरु श्री स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज तथा नैनों बाल वाले श्री स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी महाराज कहा करते थे कि इनमें से आश्रम, तीर्थ, सरस्वती तीन ही दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुये सात नहीं। अतः दस नामियों में तीन दण्डी सात अदण्डी संन्यासी हुये।

गोसाईयों का इतिहास

इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई निश्चित बात नहीं मिलती। किन्तु इस सम्प्रदाय का कोई महान् उद्देश्य प्रतीत होता है। इस संस्था ने वैदिक धर्म की रक्षा की। विरोधी यवनों का मुकाबला किया। आपत्ति काल में इन्होंने देश धर्म की रक्षा के लिये युद्ध भी किये। विशेष

कर के राजस्थान तथा मध्य प्रदेश में देश धर्म के लिये लड़े। इनकी निजी सेना होती थी। गुप्त काल में यह परिव्राजक राजा के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके अनेकों शिलालेख भी मिलते हैं। मध्य काल में इनकी विशेष प्रभुसत्ता थी। एक 'हिम्मत बहादुर गिरि' ऐसे ही लड़ाकू सरदार थे। इनके युद्ध का वर्णन महाकवि पद्माकर ने, हिम्मत बहादुर विरुदावली में ओजस्वी छन्दों में किया है। इनकी सेना शत्रुओं के विरुद्ध देश धर्म की रक्षा के लिये अस्त्र-शस्त्र भी देती थी। मारवाड तथा जयपुर में इनका विशेष प्रभुत्व रहा। शस्त्रधारी नागा सम्प्रदाय इसी वर्ग का है।

दशनामी अखाड़े

दशनामी अखाड़ों में वावन मढ़ियां बतायी जाती हैं। इनके मुख्य छः अखाड़े हैं। १. पंचायती अखाड़ा (महानिर्वाणी) प्रयाग, यह कपिल देव की उपासना करते हैं। २. पंचायती अखाड़ा निरंजनी सदर मुकाम प्रयाग उपास्य देव स्वामी कार्तिकेय। ३. अखाड़ा अटल—उपास्यदेव श्री गणेश जी। ४. भैरव (जूना) अखाड़ा—उपास्य देव भैरव। ५. आनन्द अखाडा—उपास्य देव—दत्तात्रेय। ६. अग्नि अखाड़ा—उपास्य देव अग्नि। ७. अखाड़ा अमान—इस अखाडे में बड़े शूरवीर हुये हैं लखनऊ के नवाबों से सम्मानित हुये। अनूपगिरि, उमराव गिरि, हिम्मत बहादुर गिरि आदि। इन सभी अखाड़ों में अटल अखाड़ा सबसे प्राचीन है। मुसलमानों के समय इनके साथ तीन लाख मूर्ति रहती थीं, यह बाण विद्या में निपुण थे। जोधपुर क्षेत्र में इनका विशेष प्रभाव था। जब मुसलमान शासकों ने जोधपुर पर आक्रमण किया तब इस अखाड़े ने इनकी सेना छिन्न-भिन्न कर दी। वर्तमान समय में निर्वाणी तथा निरंजनी अखाड़े प्रसिद्ध हैं। इनके बड़े कठोर नियम हैं यह लोग सुलफा गांजा पीते हैं विभूति लगाते हैं दिगम्बर रहते हैं।

अखाड़ों के पास बड़ी भारी सम्पत्ति है। इनके महन्त योग्यतम विद्वान् होते हैं। प्रयाग में महाकुम्भों में इनकी बड़ी भीड़ रहती है। दशनामियों में दिग्गज विद्वान् व्याकरण, षड्दर्शन आदि के विषय में इनके महन्त विद्वान् होते हैं। यह वैदिक मत का प्रचार करते हैं। श्री शंकराचार्य हिन्दी ग्रन्थ से। गो. सा. वि. त्यांचा सम्प्रदाय भाग २ पृ. ३०४ से ३२७ तक विस्तृत विवेचन है।

॥इति श्री गु०वं० पु० कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, ऊनत्रिंशत् तमोऽध्यायः॥२९॥

अथ त्रिंशत् तमोऽध्यायः

भगवान् भाष्यकार के भाष्य ग्रन्थ

जगद् गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज ने गीता, ब्रह्मसूत्र, दस उपनिषदों, सनत्सुजातीय, विष्णु सहस्रनाम, ललिता त्रिंशती, माण्डूक्य कारिका, कौषीतकि उपनिषद् भाष्य, आपस्तम्ब सूत्रों पर "अध्यात्म पटल भाष्य", गायत्री भाष्य, सन्ध्या भाष्य किया है।

१. **ब्रह्मसूत्र**—के भाष्य तथा टीकाओं के सम्बन्ध में पीछे विचार किया जा चुका है।

२. **गीता भाष्य**—इस भाष्य के आरम्भ में आचार्यपाद ने सर्वप्रथम भगवान् के अवतार का हेतु बताया है। यह भाष्य दूसरे अध्याय के ११ वें श्लोक से आरम्भ होता है। इस भाष्य पर श्रीस्वामी आनन्द गिरि जी, नीलकण्ठी भारत भावाख्य व्याख्या, श्रीधर जी की सुबोधिनी, मधुसूदन स्वामी जी की गूढ़ार्थ दीपिका, धनपति सूरि जी की भाष्योत्कर्ष दीपिका, श्री अभिनव गुप्ताचार्य जी की गीतार्थ संग्रह, श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी की तात्पर्य बोधिनी तथा मधुसूदन स्वामी जी की गूढ़ार्थ दीपिका पर बच्चा शर्मा जी का गूढ़ार्थ तत्वालोक विस्तृत सार गर्भित व्याख्यायें हैं। गीता भाष्य में श्लोक के शब्दों का क्रमानुसार भाष्य करके आदि अन्त में उसका तात्पर्य समझाया है।

३. **उपनिषद् भाष्य**—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक इन दस उपनिषदों पर भाष्य हैं। इनमें से केनोपनिषद् को छोड़कर शेष उपनिषदों का पद भाष्य है। परन्तु केनोपनिषद् पर पद भाष्य तथा वाक्य भाष्य दोनों ही हैं। इन सभी उपनिषदों के भाष्यों पर श्री स्वामी आनन्दगिरि जी की टीका है। वाक्य भाष्य की टीका के आरम्भ में लिखते हैं कि इस उपनिषद् पर भाष्यकार को केवल पद भाष्य करने पर सन्तोष नहीं हुआ। तब उन्होंने प्रत्येक मंत्र का वाक्यार्थ समझाने के लिये वाक्य भाष्य की रचना की। इन उपनिषदों में से छान्दोग्य, वृहदारण्यक उपनिषद् पर अति गम्भीर तथा विस्तृत और रोचक भाष्य है। कुछ विद्वानों का कथन है कि आचार्यपाद ने सभी उपनिषदों पर पदभाष्य लिखा है। वाक्य भाष्य नहीं, वाक्य भाष्य की रचना शारदा शृंगेरी के जगद् गुरु श्री विद्याशंकर जी तीर्थ ने की है। परन्तु यह बात उचित नहीं जंचती। क्योंकि श्री शंकराचार्य जी के प्रत्येक

भाष्य पर आनन्दगिरि जी की व्याख्या है जो कि श्री विद्याशंकर जी से बहुत पहले हो चुके हैं। अतः वाक्य भाष्य भी आद्यशंकर जी की ही रचना है।

४. संदिग्ध उपनिषद् भाष्य—कुछ आचार्यों की सम्मति में माण्डूक्योपनिषद् पर शंकराचार्य का भाष्य नहीं है। कारिकाओं के भाष्य के आरम्भ में परम गुरु जी के लिये "शुक शिष्यो गौडपादाचार्य" लिखा है। किन्तु अन्यत्र जहां-जहां अपने गुरु तथा परम गुरु के सम्बन्ध में गौड पाद, भगवत् पाद, या सम्प्रदाय वित् आदि आदरणीय शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु इस भाष्य में "शुक शिष्य" कह कर निरादर किया है। इसमें निरादर नहीं है बल्कि ज्ञान की छठी पदार्थाभाविनी भूमिका में पहुंचे हुये शुकदेव जी के परम कृपापात्र शिष्य होना आदर सूचक ही है। अतः आदि शंकर ही इस भाष्य के कर्त्ता सिद्ध होते हैं। जो लोग इस उपनिषद् के मंगलाचरण के दूसरे श्लोक के चतुर्थ चरण में शंका करते हैं कि पहले तीन चरण मन्दाक्रान्ता के तथा अन्तिम चरण स्रग्धरा छन्द का है। इस प्रकार का मिश्रण छन्द शास्त्र के विरुद्ध है। इस लिये यह आदि शंकर की व्याख्या नहीं है।

इस शंका का समाधान श्री आनन्दगिरि जी ने अपने भाष्य में किया है कि **"न च द्वितीय श्लोके चतुर्थ पादे वृत्त लक्षणाभावाद सांगत्यमाशंकनीयम्। गाथा लक्षणस्य तत्र सुसम्पादत्वादिति द्रष्टव्यम्। अन्ये तु आद्य श्लोकं मूल श्लोकान्तर्भूत-मभ्युपगच्छन्तो द्वितीय श्लोकं भाष्यकार प्रणीतं नाभ्युपयन्ति तद सत् उत्तर श्लोकेष्विवाद्येऽपि श्लोके भाष्य कृतो व्याख्यान प्रणयन प्रसंगात्"** दूसरे श्लोक के चतुर्थ चरण में वृत्त लक्षण का अभाव होने से यह असंगत है, ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। गाथा लक्षण वाला छन्द सुसम्पादित होने से कुछ लोग प्रथम श्लोक को मूल श्लोक के अन्तर्भूत मानते हैं। परन्तु दूसरे श्लोक को भाष्यकार की रचना नहीं मानते यह शंका उचित नहीं है। क्योंकि उत्तर (दूसरे) श्लोक के समान प्रथम श्लोक में भी भाष्यकार के व्याख्यान की रचना का प्रसंग होने से। छन्द मिश्रण की शंका भी उचित नहीं है। यदि माण्डूक्य उपनिषद् का भाष्य आचार्य कृत न होता तो आनन्द गिरि जी इस पर व्याख्या न लिखते।

श्वेताश्वतरोपनिषद् तथा नृसिंह तापनीयोपनिषद्—इन दोनों उपनिषदों के भाष्यों को आद्य शंकर की रचना नहीं माना, क्योंकि श्वेताश्वतरोपनिषद् में पुराणों के योगवाशिष्ठ, शिव धर्मोत्तर, विष्णु धर्मोत्तर के प्रमाणों की प्रचुरता है जो कि शंकराचार्य जी की शैली नहीं है। इस

उपनिषद् पर आनन्द गिरि टीका नहीं है। अतः इस उपनिषद् का भाष्य शंकराचार्य जी कृत नहीं है। नृसिंह तापनीयोपनिषद् में ही तन्त्रों तथा प्रपंच सार के प्रमाण मिलते हैं। इस भाष्य में व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियां भी विशेष रूप से पायी गयी हैं। अतः यह भी शंकराचार्य जी कृत नहीं हैं।

प्रस्थानत्रयी के भाष्यों के अतिरिक्त विष्णु सहस्रनाम, सनत्सुजजातीय, ललिता त्रिशती आदि पर शांकर भाष्य हैं।

योग दर्शन व्यास भाष्य पर विवरण भाष्य—कुछ विद्वान् विवरण को शंकर की रचना नहीं मानते। परन्तु मद्रास ओरियाण्टियल पुस्तकालय से प्रकाशित योग दर्शन व्यास भाष्य तथा विवरण की अंग्रेज़ी तथा संस्कृत भूमिका में अति विस्तार से युक्ति, तर्क प्रमाण से सिद्ध किया है कि ब्रह्मसूत्र के कर्त्ता व्यास जी तथा शारीरिक भाष्य कर्त्ता आद्य शंकर इस दर्शन के भाष्यकर्त्ता तथा विवरणकार हैं। पाठक विस्तृत जानकारी के लिये भूमिका देखें। इन रचनाओं के अतिरिक्त कौषीतकि उपनिषद्, मैत्रायणीय, कैवल्य, महानारायण तथा हस्तामलक स्तोत्र भाष्य संदिग्ध भाष्य हैं।

वेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ (श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से)

आचार्यपाद ने उत्तम तथा तीव्र बुद्धि वाले मुमुक्षुओं के लिये अति कठिन ग्रन्थों की रचना की है। वहीं पर मध्यम तथा मन्द बुद्धि वालों के लिये अत्यन्त सरल, रोचक तथा संक्षिप्त ग्रन्थों की भी रचना की है।

१. अपरोक्षानुभूति २. अद्वैत पंचरत्न ३. अद्वैतानुभूति ४. अनात्म श्री विगर्हण प्रकरण ५. आत्मबोध ६. तत्त्व बोध ७. लघु वाक्य वृत्ति ८. महावाक्य वृत्ति ९. उपदेश पंचक १०. शत श्लोकी ११. कौपीन पञ्चक १२. उपदेश साहस्री १३. एक श्लोकी १४. जीवन्मुक्तानन्द लहरी १५. धन्याष्टक १६. निर्गुण मानस पूजा १७. प्रश्नोत्तरी १८. निर्वाण मंजरी १९. निर्वाण षट्क २०. सिद्धान्तविन्दु २१. पंचीकरण प्रकरण २२. परापूजा २३. प्रबोध सुधाकर २४. विवेक चूड़ामणि २५. प्रौढानुभूति २६. ब्रह्म ज्ञानावली माला २७. ब्रह्मानुचिन्तनम् २८. मायापञ्चक २९. मुमुक्षुपंचक ३०. योग तारावली ३१. विज्ञान नौका ३२. वाक्य सुधा ३३. वैराग्य पंचक ३४. सर्व वेदान्त सिद्धान्त सार संग्रह ३५. स्वात्मनिरूपण ३६. आत्मानात्म विवेकः।

भक्ति स्तोत्र ग्रन्थ

१. गणेश पंचरत्न २. गणेश भुजंग प्रयात ३. गणेशाष्टक ४. वरद गणेश स्तोत्र ।

शिवस्तोत्राणि

५. शिव भुजंगप्रयात ६. शिवानन्दलहरी ७. शिवपादादिकेशान्तस्तोत्रम् ८. शिवकेशादिपादान्त स्तोत्रम् ९. वेदसार शिव स्तोत्रम् १०. शिवापराध क्षमापनस्तोत्रम् ११. सुवर्णमाला १२. दक्षिणामूर्ति १३. दक्षिणामूर्ति अष्टक १४. मृत्युञ्जय मानसिक पूजा १५. शिवनामावल्यष्टक १६. शिव पंचाक्षर स्तोत्रम् १७. उमा महेश्वर स्तोत्रम् १८. दक्षिणामूर्ति स्तोत्रम् १९. काल भैरवाष्टक २०. शिव पंचाक्षर नक्षत्र माला २१. द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्रम्

देवी स्तोत्राणि

२२. सौन्दर्य लहरी २३. देवी भुजंग प्रयात २४. आनन्द लहरी २५. त्रिपुर सुन्दरी वेदसार स्तोत्रम् २६. त्रिपुर सुन्दरी मानस पूजा २७. देवी त्रिपुर सुन्दरी अष्टक २८. ललिता पंचरत्न २९. कल्याणवृष्टि स्तव ३०. नवरत्न मालिका ३१. मंत्र मातृका पुष्पमाला ३२. गौरी दशक ३३. भवानी भुजंग प्रयात ३४. कनक धारा ३५. अन्नपूर्णा ३६. मीनाक्षी पंचरत्न ३७. मीनाक्षी स्तोत्र ३८. भ्रमराम्वाष्टकम् ३९. शारदा भुजंग प्रयाताष्टकम् ।

विष्णु स्तोत्राणि

४०. काम भुजंग प्रयात ४१. विष्णु भुजंग प्रयात ४२. विष्णु पादादि केशान्त ४३. पाण्डुरंगाष्टकम् ४४, ४५. अच्युताष्टकम् (दो) ४६, ४७. कृष्णाष्टकम् (दो) ४८. हरिमीडे स्तोत्रम् ४९. गोविन्दाष्टकम् ५०. भगवन्मानस पूजा ५१. जगन्नाथाष्टकम्

युगलदेव स्तोत्राणि

५२. अर्द्धनारीश्वर ५३. उमा महेश्वर ५४. लक्ष्मी नृसिंह पंचरत्न ५५. लक्ष्मी नृसिंह करुणा स्तोत्रम् ।

नदी स्तोत्राणि

५६. नर्मदाष्टकम् ५७.-६०. गंगाष्टकम् (४), ६१.-६२ यमुनाष्टकम् (दो) ६३. मणिकर्णिकाष्टकम् ६४. काशी पंचकम् ।

प्रकीर्ण स्तोत्राणि

६५. हनुमत् पंचरत्नम् ६६. सुब्रह्मण्य भुजंग प्रयात ६७. प्रातः स्मरण स्तोत्र ६८. गुर्वष्टकम् ६९. चर्पट पंजरिका ७०. षट्पदी।

इन ७० स्तोत्रों के अतिरिक्त शृंगेरी के आचार्य जी की अध्यक्षता में श्रीरंगम् श्रीवाणीविलास प्रेस से शंकर ग्रन्थावली में छपे हैं। परन्तु आद्य शंकर के नाम से हस्तलिखित रूप में २४० स्तोत्र हैं।

तन्त्र ग्रन्थ

१. सौन्दर्य लहरी—इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है। इस पुस्तक में काव्य, पाण्डित्य, उपासना तथा वेदान्त विषयों का रहस्यात्मक विवेचन है। इस पर संस्कृत में ३५ टीकायें हैं। जिनमें लक्ष्मीधरी, कैवल्याश्रम, भास्कर राय, कामेश्वर सूरि तथा अच्युतानन्द की व्याख्यायें प्रधान हैं। यह १०० शिखरिणी छन्दों में हैं। इसके ४१ पद्य तान्त्रिक हैं। अन्तिम ५९ छन्दों में भगवती के अंग प्रत्यंगों का चमत्कारपूर्ण वर्णन है।

२. प्रपञ्च सार—इस पर श्री पद्मपादाचार्य जी ने विवरण टीका की है। इससे सिद्ध होता है कि यह आद्य शंकर की रचना है। आचार्य पाद ने "प्रपंचागम नामक" प्राचीन तन्त्र का सार इसमें दिया है। इसकी विवरण टीका पर "प्रयोग क्रम दीपिका टीका" लिखी गयी है। इसका प्रथम श्लोक शारदा की स्तुति का है। दीपिका टीकाकार ने लिखा है कि आचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना काश्मीर में रहते हुये की। ब्रह्मसूत्र के शारीरिक भाष्य पर भामती टीका के व्याख्याता श्री स्वामी अमलानन्द जी महाराज ने वेदान्त कल्पतरु को आचार्य कृत माना है।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, त्रिशंत् तमोऽध्यायः॥३०॥

अथ एकत्रिंशत् तमोऽध्यायः

भगवत्-पादाचार्य जी के उपदेश साधन पंचकम्

सम्पूर्ण दिग्विजय करने के अनन्तर अन्तिम समय में शिष्यों को उपदेश करते हुये आचार्यपाद ने कहा। ॥साधन पंचकम्॥

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्।
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्॥
पापौघः परिधूयतां, भव सुखे दोषो ऽनुसंधीयता—
मात्मेच्छा व्यवसीयतां, निज गृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्॥१॥
संगः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयताम्।
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम्॥
सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यताम्।
ब्रह्मैकाक्षर मर्थ्यतां श्रुति शिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्॥२॥
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुति शिरः पक्षः समाश्रीयताम्।
दुस्तर्कात् सु विरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसंधीयताम्॥
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यताम्।
देहेऽहंमति रुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम्॥३॥
क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यताम्।
स्वाद्वन्नं न च याच्यतां विधि वशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्॥
शीतोष्णादि विषह्यतां नतु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता—
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥४॥
एकान्ते सुसमास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम्।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्॥
प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चितवलान्नाप्युत्तरैः शिलष्यताम्।
प्रारब्धंत्विह भुज्यतामथपरब्रह्मात्मनास्थीयताम्॥५॥
यः श्लोक पंचकमिदं पठते मनुष्यः।
संचिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य॥
तस्याशु संसृतिदवानल तीव्र घोरः।
तापः प्रशान्तिमुपयाति चिति प्रसादात्॥६॥

नित्य वेदों का अध्ययन करो, उसमें कहे हुये कर्मों का अनुष्ठान करो। निष्काम भाव से ईश्वर की आराधना करो। पाप समूहों को त्याग दो, सांसारिक सुखों में दोष दर्शन करो। आत्म

कल्याण की इच्छा से घर से शीघ्र निकल जाओ । सत्पुरुषों का संग करो तथा भगवान् में दृढ़ भक्ति करो । शांत्यादि का दृढ़तापूर्वक सेवन करो । कर्मों का शीघ्र त्याग करके श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विद्वानों के चरणों का सेवन करो । उनके दिये हुये प्रणव का मन्थन करो । श्रुति के महावाक्यों का श्रवण करो । वाक्य के वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ पर विचार करो । दुस्तर्कों से विरत होकर उपनिषद् पक्ष का आश्रय लो । श्रुति के अनुसार तर्कों का अनुसन्धान करो (मनन करो) । मैं ही ब्रह्म हूं । ऐसी भावना करो । शरीर में अहं बुद्धि का परित्याग करो । विद्वानों के साथ विवाद मत करो । संन्यास लेकर भूख रूपी रोग की चिकित्सा करो । प्रतिदिन भिक्षा रूपी औषधि का सेवन करो, अर्थात् यदि किसी के फोड़ा हो जाता है तो उस रोग को दूर करने के लिये आटे का हलवा बांधा जाता है, उसी प्रकार औषधि लेप के समान थोड़ी मात्रा में भिक्षा करो । स्वादिष्ट अन्न की याचना मत करो । प्रारब्ध से जो मिल जाये उसी में सन्तोष करो । शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को सहन करो । व्यर्थ के वाक्यों का उच्चारण मत करो । मनुष्यों पर कृपा तथा निष्ठुरता का परित्याग कर उदासीन रहो । एकान्त में बैठकर परब्रह्म परमात्मा को चित्त में समाहित करो । भली प्रकार से पूर्ण सर्वत्र आत्मानुभूति करके दृश्य जगत् का बाध करो । ज्ञान होने से पूर्व कर्मों को ज्ञानाग्नि में लयकर दो । ज्ञानोत्तर कर्मों में आसक्त न हो । प्रारब्ध कर्मों को यहां भोगो । जीवात्मा परमात्मा के ज्ञान में चित्त को स्थिर करो ॥५ ॥

जो मनुष्य नित्य प्रति स्थिर चित्त से पांचों श्लोकों का पाठ करता है, उसकी आत्म कृपा से जन्म-मरण की प्राप्ति कराने वाला आध्यात्मिक आधि दैविक, आधि भौतिक तीनों प्रकार के ताप शान्त हो जाते हैं तथा वह विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है ।

॥इति साधन पञ्चक स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥अथ कौपीन पंचकम् ॥

वेदान्त वाक्येषु सदा रमन्तो, भिक्षान्न मात्रेण च तुष्टिमन्तः ॥
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः, कौपीन वन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥१ ॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः, पाणि द्वये भोक्तुममंत्रयन्तः ॥
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्त.......... ॥२ ॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूराद् आत्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ॥
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः .... कौपीनवन्तः....... ॥३ ॥

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्त सर्वेन्द्रिय वृत्तिमन्तः ॥
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीन वन्तः......... ॥४ ॥
पंचाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः ॥
भिक्षाशनाः दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः .... ॥५ ॥

॥इति कौपीन पञ्चकम् ॥

जो यति वेदान्त के महावाक्यों में सदा रमण करते हैं। केवल भिक्षा मात्र से सन्तुष्ट हैं। शोक रहित तथा करुणा से युक्त हैं। केवल कोपीन को छोड़कर अन्य वस्त्र न धारण करने वाले निश्चय ही बड़े भाग्यशाली हैं ॥१ ॥ जो केवल वृक्ष का ही आश्रय लेते हैं, अथवा ब्रह्मरूपी वृक्ष के ही एक मात्र आश्रित हैं। दोनों हाथों में लेकर भिक्षा करते हैं। शीत दूर करने वाली गुदड़ी को भी स्त्री के समान त्याग देते हैं। ऐसे कौपीनधारी ही भाग्यवान है ॥२ ॥ जो दूर से ही देहाध्यास को त्याग कर अपने हृदय में आत्मदर्शन करते हुये निरन्तर केवल ब्रह्म में ही रमण करते हैं वे यति भाग्यशाली हैं ॥३ ॥ जो अपने आत्मानन्द में ही सन्तुष्ट हैं। जिन्होंने इन्द्रियों की वृत्ति को शान्त कर दिया है। उत्पत्ति, स्थिति, नाश से रहित ब्रह्म का चिन्तन करने वाले यति भाग्यशाली हैं ॥४ ॥ परम पवित्र पंचाक्षर मंत्र का उच्चारण करते हुये जो जीव रूपी पशुओं के स्वामी शिव की हृदय में भावना करते हुये, भिक्षा का सेवन करते हुये दिशाओं में भ्रमण करते हैं। वे कौपीनधारी यति निश्चय ही भाग्यशाली हैं ॥५ ॥

इति कौपीन पंचकम् ॥

॥विज्ञान नौका ॥

आजकल विज्ञान का युग है। वर्तमान विज्ञान भौतिक विज्ञान है। पंच महाभूतों से बने शरीर में तथा पंच महाभूतों तक ही सीमित है। इस विज्ञान से मुक्ति नहीं हो सकती। अतः वेद प्रतिपादित आध्यात्मिक विज्ञान की अनुभूति बिना मुक्ति नहीं हो सकती। अतः आचार्यपाद जी ने जन्म-मरण रूपी संसार सागर से पार उतरने के लिये वैज्ञानिक नौका बनाई है।

तपोयज्ञ दानादिभिः शुद्ध बुद्धि—र्विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छ बुद्ध्या।
परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्त्वं, परं ब्रह्म नित्यं तमेवाहमस्मि ॥१ ॥
दयालुं गुरुं ब्रह्म निष्ठं प्रशान्तं, समाराध्य मर्त्यो विचार्य स्वरूपम्।
यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्, परं ब्रह्म नित्यं......... ॥२ ॥

यदानन्द रूपं प्रकाश स्वरूपं, निरस्त-प्रपंचं परिच्छेद-शून्यम्।
अहं ब्रह्मवृत्यैकगम्यं तुरीयं परब्रह्म.................. ॥३॥
यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं, विनष्टं च सद्यो यदात्म प्रबोधे।
मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं, परंब्रह्म नित्यं.................. ॥४॥
निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैःसमाधि स्थितानां यदाभाति पूर्णम्।
अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं, परं ब्रह्म.................. ॥५॥
यदानन्द लेशैः समानन्ति विश्वं, यदा भाति सत्वे तदाभाति सर्वम्।
यदालोचने रूपमन्यत् समस्तं परं ब्रह्म .... ॥६॥
अनन्तं विभुं सर्व योनिर्निरीहं, शिवं संगहीनं यदोंकार गम्यम्।
निराकारमत्यूज्वलं मृत्युहीनं, परं ब्रह्म .... ॥७॥
यदानन्द सिन्धौ निमग्नः पुमान्स्यादविद्याविलासः समस्त प्रपंचः।
यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं । परं ब्रह्म .... ॥८॥
स्वरूपानुसन्धान रूपां स्मृतिं यः, पठेदादराद् भक्तिभावो मनुष्यः।
श्रृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो, भवेद्विष्णुरत्रैव वेद प्रमाणात्॥९॥
विज्ञान नावं परिगृह्य कश्चित्तरेद्यदज्ञानमयं भवाब्धिम्।
ज्ञानासिना यो हि विच्छिद्य तृष्णां, विष्णोः पदं याति स एव धन्यः॥१०॥

॥इति विज्ञान नौका सम्पूर्णा॥

जिसने तप यज्ञ दान आदि से चंचल बुद्धि को शुद्ध (निश्चल) कर दिया है। राजादि के पद से विरक्त होने से तुच्छ बुद्धि रखता है। सबका परित्याग करके जिस ब्रह्माकार वृत्ति से परमतत्त्व प्राप्त होता है वह नित्य ब्रह्म मैं ही हूं॥१॥ जिसने नश्वर संसार का विचार करके, परम दयालु, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, शान्त गुरु की आराधना करके ब्रह्म तत्त्व का निदिध्यासन (अर्थात् विषयाकार वृत्ति से मन को हटाकर ब्रह्माकार वृत्ति का अभ्यास निदिध्यासन है) करके जो परम तत्त्व प्राप्त होता है वह नित्य ब्रह्म परमात्मा मैं ही हूं॥२॥ जब परमानन्द स्वयं प्रकाश स्वरूप, देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित, निष्प्रपंच, मैं ब्रह्म हूं इस ब्रह्मात्मैक्य वृत्ति के द्वारा चौथे अमात्र अर्थात् निष्कल, शिव, शान्त अद्वैत अविनाशी परमात्मा मैं ही हूं।।३॥ जिसके अज्ञान से समस्त जगत् प्रतीत होता है। जिसका स्वरूप बोध होने पर तत्काल जगत् का बाध

हो जाता है। वह मन वाणी से परे विशुद्ध नित्य मुक्त परब्रह्म मैं ही हूं ॥४॥ शरीर, मन, बुद्धि, प्राण, तीनों गुण, तीनों अवस्था, अन्तःकरण चतुष्टय आदि यह भी आत्मा नहीं है, यह भी आत्मा नहीं है। वेद वाक्यों द्वारा निषेध करने पर निर्विकल्प समाधि में स्थित जब पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश होता है तब तीनों अवस्थाओं से परे तीनों भेदों से रहित एक नित्य तुरीय स्वरूप परमात्मा मैं ही हूं ॥५॥ जिसके लेश मात्र आनन्द से सारा विश्व प्रकाशित होता है। अर्थात् सूर्य चन्द्रमा अग्नि आदि उससे ही प्रकाशित होते हैं। जिसका विचार करने पर नाम रूपात्मक प्रतीत होने वाला सारा जगत् नित्य परमात्मा मैं ही हूं ऐसा अनुभव होता है ॥६॥ अनन्त, सर्वव्यापी, सबका कारण निष्काम, कल्याण स्वरूप, आकाश के समान संग दोष से रहित, ओंकार के द्वारा प्राप्त होने योग्य, निराकार, जन्म-मरण आदि भावों को प्रकाशित करने वाला अविनाशी परमात्मा मैं ही हूं ॥७॥ जब आनन्द रूपी सागर में मनुष्य मग्न हो जाता है तब अविद्या का कार्य सम्पूर्ण अद्भुत जगत प्रतीत नहीं होता। तब वही ब्रह्म अविनाशी परमात्मा मैं ही हूं यह अनुभव होता है ॥८॥ जो मनुष्य आदर भक्ति भाव से युक्त स्वरूपानुसन्धान रूपी स्मृति का पाठ करता है अथवा एकाग्रचित्त से श्रवण करता है। वह वेद के प्रमाण इसी शरीर से इसी लोक में विष्णुत्व को प्राप्त करता है ॥९॥ जो य़ति ज्ञानरूपी तलवार से तृष्णा को काटकर विज्ञान रूपी नौका लेकर अज्ञान रूपी सागर को पार करता है वह विष्णु पद को प्राप्त करने वाला यति धन्य हैं ।१०॥

इति विज्ञान नौका भाषा टीका सम्पूर्ण ॥

॥इति श्री गु०वं० पुराणे कलि० खण्डे, द्वितीय परिच्छेदे, एकत्रिंशत् तमोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशत् तमोऽध्यायः

आत्मानात्म विवेकः

जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रों का सिद्धान्त भगवद् गीता में भर दिया है तथा सम्पूर्ण गीता का सार सप्त श्लोकी गीता में आ गया है। वैसे ही भगवान् शंकराचार्य जी ने सम्पूर्ण वेदान्तों का सार विवेक चूड़ामणि तथा इसका निचोड़ आत्मानात्म विवेक नामक ग्रन्थ में दिया है। यह ग्रन्थ पद्य तथा गद्य को मिलाकर ४३ श्लोकों में है। इसमें वेदान्त की सम्पूर्ण प्रक्रिया आ गयी है।

दृश्यं सर्वमनात्मा स्याद्दृगेवात्मा विवेकिनः।
आत्मानात्म विवेकोऽयं कथितो ग्रन्थ कोटिभिः ॥१ ॥

सारा दृश्य जगत् अनात्मा है तथा इसका द्रष्टा आत्मा है। विवेकियों ने आत्मा अनात्मा का विवेक करोड़ों ग्रन्थों से किया है। संसार में द्रष्टा तथा दृश्य दो पदार्थ हैं। द्रष्टा आत्मा है आत्मा शब्द 'आप्लृ व्याप्तौ' धातु से बना है। अर्थात् जो व्याप्त, अखण्ड, मण्डलाकार, सच्चिदानन्द स्वरूप, देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित, सबका निरपेक्ष द्रष्टा, साक्षी, चैतन्य, केवल निर्गुण है।

दृश्य—दृश्य नाशवान्, जड़, दुःख रूप, तीनों परिच्छेदों से युक्त, सापेक्ष है। दृश्य पदार्थों में शरीर, इन्द्रियां, प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय, समष्टि, व्यष्टि, तीनों शरीर, तीन अवस्था, तीन गुण, अष्टधा प्रकृति, सोलह विकार यह सब दृश्य अनात्मा हैं। जैसे शरीर दृश्य है इन्द्रियां सापेक्ष द्रष्टा यादृग् हैं। दृश्य आंखों से दिखाई देने वाली वस्तु का ही नाम नहीं है। वरन् जिस वस्तु को हम आंख से देखते हैं, कान से सुनते हैं, नाक से सूंघते हैं, रसना से चखते, हाथ से छूते, पैर से चलते, मन से संकल्प करते, बुद्धि से विचार, चित्त से चिन्तन, अहंकार से अभिमान, प्राणों से प्राणन क्रिया आदि करते हैं यह सब दृश्य हैं। अतः शरीर आदि का नेत्र द्रष्टा हुआ। इसी प्रकार अन्य इन्द्रिय आदिकों को समझना चाहिये। परन्तु पांचों ज्ञानेन्द्रियां निरपेक्ष द्रष्टा नहीं हैं। इन इन्द्रियों का द्रष्टा मन है, मन का द्रष्टा बुद्धि है, बुद्धि का द्रष्टा आत्मा है। जो जो दृश्य है वह अनात्मा है **"यद्दृष्टंतन्नष्टं"** जो कुछ दृष्ट है वह सब नाशवान् है। बुद्धि मन आदि स्वभाव से जड़ हैं। आत्मा की चैतन्यता से चैतन्य होते हैं। अतः मन बुद्धि आदि सब दृश्य या अनात्मा सिद्ध हुये। पंच प्राण भी जड़ होने के कारण दृश्य हैं। अतः जितने दृश्य हैं सब जड़, दुख रूप तथा नाशवान् हैं। अतः इनका चिन्तन नहीं करना चाहिये। निरपेक्ष, एकमात्र, द्रष्टा आत्मा का ही चिन्तन करना चाहिये।

सापेक्ष, निरपेक्ष भेद से दृग् दो प्रकार का सिद्ध हुआ। इन्द्रिय मन आदि सापेक्ष द्रष्टा है। आत्मा निरपेक्ष द्रष्टा है। आत्मा-अकर्त्ता, अभोक्ता, अदीर्घ, अह्रस्व, अच्छेद्य, अक्लेद्य, अदाह्य, अशोष्य, अव्यवहार्य, निष्प्रपंच, शिव, प्रशान्त, सच्चिदानन्द स्वरूप है। सापेक्ष द्रष्टा मिथ्या होने के कारण त्याज्य है। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप होने के कारण ग्राह्य है। आत्मानात्मा का विवेक ऋषियों के द्वारा करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है। उन्हीं का सार संग्रह इस ग्रन्थ में करूंगा। यह आचार्यपाद प्रतिज्ञा करते हैं।

आत्मानात्म विवेकः कत्थ्यते ॥२ ॥

आत्मा और अनात्मा का विवेक कहते हैं ।

आत्मा चिन्मय अनात्मा मृण्मय है । मृण्मय का अर्थ केवल मृत्तिका मात्र नहीं किन्तु स्थूल शरीर से लेकर जड़ प्रकृति पर्यन्त सभी का ग्रहण हुआ है, जो इनका चिन्तन करता है वह जीव भाव को प्राप्त होता है । जो चिन्मय अविनाशी आत्म तत्त्व में स्थित होता है । वह सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त करता है । अतः आचार्यपाद आत्मा अनात्मा की पहचान करा के परमात्मा में चित्त लगाने के लिये दोनों का वर्णन करते हैं ।

आत्मनः किं निमित्तं दुःखं ? शरीर परिग्रह निमित्तम् "नेह वै स शरीरस्य सतः प्रिया प्रियोरपहतिरस्ती ति" श्रुतेः ॥३ ॥

जीवात्मा को किस कारण से दुःख प्राप्त होता है ? शरीर ग्रहण के कारण । श्रुति कहती है—शरीर धारियों को शरीर सहित प्रिय अप्रिय का विनाश संसार में कहीं सुना जाता है ।

विचार—प्रश्न होता है कि जब आत्मा अविनाशी आनन्द स्वरूप है तब इसे दुःख क्यों होता है । प्रत्येक प्राणी बिना शरीर के सुख दुःख का अनुभव नहीं कर सकता । अतः शरीर की प्राप्ति ही सुख दुःख का कारण है ।

शरीर परिग्रहः केन भवति ? कर्मणा ॥४ ।

जीव को बार-बार शरीर की प्राप्ति किस कारण से होती है ? कर्मों से ।

विचार—प्राणी शरीर धारण करने के बाद ही शुभ अशुभ तथा मिश्रित तीन प्रकार के कर्म करता है । यह कर्म ही शरीर की प्राप्ति में कारण है । यहां पर कर्मणा शब्द से संचित कर्म कहे गये हैं ।

कर्म केन भवतीति ? रागादिभ्यः ॥५ ॥

जीव तीन प्रकार (शुभाशुभ मिश्रित) के कर्म किस से प्रेरित होकर करता है ? रागादि राग, द्वेष, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि से ।

रागादयः कस्माद् भवन्तीति चेत् ? अभिमानात् ॥६ ॥

जीव में रागादि दोष किससे उत्पन्न होते हैं । अर्थात् जब जीव शरीर आदिकों को आत्म बुद्धि यह मैं हूं यह मेरा है, करता है । तब उनसे अभिमान पैदा होता है । अतः उत्तर देते हैं । अभिमान से ।

अभिमानोऽपि कस्माद् भवति ? अविवेकात् ।।७ ।।

अभिमान भी किससे होता है ? अविवेक, अविचार से ।

अविवेकः कस्माद् भवति ? अज्ञानात् ।। अज्ञानं केन भवतीति चेत् ? न केनापि। अज्ञानं नाम अनादि, सदसद्भ्यामनिर्वचनीयम् त्रिगुणात्मकम् ; ज्ञान विरोधि भावरूपम् यत् किंचिदिति वदन्ति, अहमज्ञ इत्याद्यनुभवात्। "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निरूढामित्यादि" श्रुतेः ।। तस्माद् ज्ञानाद् विवेको जायते। अविवेकादभिमानो जायते। अभिमानाद्रागादयो जायन्ते। रागादिभ्यः कर्माणि जायन्ते। कर्मेभ्यः शरीर परिग्रहो जायते। शरीर परिग्रहाद् दुःखं जायते ।।८ ।।

अविवेक किससे होता है ? अज्ञान से । अज्ञान किससे होता है ? किसी से नहीं । अज्ञान नाम अनादि, सत्, असत, कार्यकारण अथवा स्थूल सूक्ष्म, मूर्तामूर्त, व्यक्ताव्यक्त, अकथनीय सत् रज तम त्रिगुणात्मक, ज्ञान विरोधी भाव रूप अज्ञान है । 'मैं नहीं जानता' इस अनुभव से स्वयं प्रकाश परमात्मा की शक्ति, सत्, रज, तम तीन गुणों से चालित है" यह श्रुति कहती है । अतः अज्ञान से अविवेक उत्पन्न होता है । अविवेक से अभिमान उत्पन्न होता है । अभिमान से राग द्वेषादि उत्पन्न होते हैं । रागादि से कर्म उत्पन्न होते हैं । कर्मों से ही जीव शरीर ग्रहण करता है । शरीर ग्रहण से जीव को दुःख होता है ।

'ज्ञान विरोधि भाव रूपं यत्किंचिदिति'—यहां पर अज्ञान को ज्ञान विरोधी भाव रूप कहा है । अभाव रूप नहीं । क्योंकि अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती । यह वेद उपनिषद् गीता आदि का सिद्धान्त है । जैसे शशशृंग से धनुष नहीं बन सकता । गगन सरोवर में उत्पन्न फूलों की माला को कोई धारण नहीं कर सकता । वैसे ही अभाव से भाव नहीं उत्पन्न हो सकता । अर्थात् जो अत्यन्त असत् है उससे सत् कैसे उत्पन्न हो सकता है ।

तार्किक लोग अभाव (अनुपलब्धि) को प्रभाव रूप से स्वीकार करते हैं तथा कहते हैं कि जैसे अभाव रूपी आकाश में सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि भाव रूप उत्पन्न होते हैं । वैसे असत् से सत् उत्पन्न हो सकते हैं । परन्तु गीता के दूसरे अध्याय में इनके इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुये भगवान् ने कहा—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयो स्तत्व दर्शिभिः । असत् की कभी उत्पत्ति नहीं होती और सत् का कभी अभाव नहीं होता है । इस

प्रकार सत् असत् का निर्णय किसने किया, क्या तार्किकों ने ? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं नहीं। जीवात्मा परमात्मा की एकता का अनुभव करने वाले तत्वदर्शियों ने निर्णय किया है।

भाव यह है कि जो बीच में दिखाई दे उत्पत्ति से पूर्व या नाश के बाद न रहें वह असत् है, मध्य में भी नहीं है। किन्तु रज्जु में सर्प के समान प्रतीत होता है। जिस का तीनों कालों में, किसी भी देश काल में बाध न हो वह सत् है। अतः आचार्यपाद "ज्ञान विरोधी भाव रूपं यत्किंचित्" कहते हैं।

दुःखस्य कदा निवृत्तिः ? सर्वात्मना शरीर परिग्रह नाशे सति दुःखस्य निवृत्तिर्भवति। सर्वात्मपदं किमर्थम् ? सुषुप्त्यवस्थायां दुःखे निवृत्तेऽपि पुनरुत्थान समये उत्पद्यमानत्वात् वासनात्मना स्थितं भवति ॥९ ॥

दुःख की निवृत्ति कब होती है ? सर्वतोभावेन शरीर के परिग्रह का नाश होने पर दुःख की निवृत्ति होती है। यहां पर 'सर्वात्मना' पद क्यों कहा ? सुषुप्ति अवस्था (सुषुप्ति, समाधि मूर्च्छा तथा जगत् का प्रलय होने पर जब तक पुनः सृष्टि नहीं होती तब तक) में दुःखों के निवृत्त होने पर भी पुनः जगने के समय (मूर्च्छा के टूटने पर समाधि से उठने पर, जगत् सृष्टि के आरम्भ में) दुःखों के उत्पन्न होने से वासना रूप से दुःखों की स्थिति होती है। (अतः सर्वात्मना शब्द का प्रयोग किया गया)

अतस्तन्निवृत्यर्थं सर्वात्मपदम्। शरीर परिग्रह निवृत्तिः कदा भवति ? सर्वात्मना कर्मणि निवृत्ते सति। कर्म निवृत्तिः कदा भवति ? सर्वात्मना रागादौ निवृत्ते सति। रागादि निवृत्तिः कदा भवति ? सर्वात्मना अभिमाने निवृत्ते सति। कदा अभिमान निवृत्तिः ? सर्वात्मना अविवेके निवृत्ते सति। कदा अविवेक निवृत्तिः ? सर्वात्मना अज्ञाने निवृत्ते सति। कदा अज्ञान निवृत्तिः ? ब्रह्मात्मैकत्वे जाते सति। अविद्या निवृत्ति सर्वात्मना भवति ॥१० ॥

अतः दुःख की निवृत्ति के लिये सर्वात्मपद कहा है। शरीर परिग्रह की निवृत्ति कब होती है ? सर्वतो भाव से जब कर्मों की निवृत्ति होती है। कर्मों की निवृत्ति कब होती है ? सर्वथा रागादि की निवृत्ति होने पर। रागादि दूर कब होते हैं ? जब अभिमान सर्वथा निवृत्त होता है। अभिमान कब निवृत्त होता है ? पूर्ण रूप से अविवेक निवृत्त होने पर। पूर्णतया अविवेक कब

दूर होता है ? पूर्णतया अज्ञान निवृत्त होने पर। अज्ञान दूर कब होगा ? जीवात्मा परमात्मा की एकता का बोध होने पर। पूर्णतया अज्ञान या अविद्या की निवृत्ति होती है ॥१०॥

शंका—वेद प्रतिपादित नित्य कर्मों के अनुष्ठान से अविद्या दूर हो जाती है। फिर ज्ञान की क्या आवश्यकता है ? ऐसी शंका होने पर उत्तर देते हैं।

समाधान—नित्य नैमित्तिक कर्मों से अविद्या निवृत्त नहीं होती। क्यों नहीं होती ? कर्म ज्ञान का विरोध होने से जैसे अन्धकार से अन्धकार दूर नहीं होता। कर्म भी अज्ञान का कार्य है। अतः अज्ञान को दूर नहीं कर सकते।

अतः ज्ञान से ही अज्ञान की निवृत्ति होती है। वह ज्ञान कैसे प्राप्त होगा ? विचार से ज्ञान प्राप्त होता है। किसके विचार से ज्ञान प्राप्त होगा ? आत्मा अनात्मा के विचार विवेक से ज्ञान प्राप्त होता है। इसके विचार में कौन-कौन अधिकारी हैं ? साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारी है। चार साधनों के नाम—

१. नित्यानित्य वस्तु विवेक २. इस लोक और परलोक के भोगों में विराग ३. शमादिषट् सम्पत्ति। ४. मुमुक्षुता।

१. नित्य अनित्य वस्तु विवेक—नित्य = ब्रह्म अविनाशी सत्य है। अनित्य = माया तथा उसके तीन गुणों से उत्पन्न जगत् मिथ्या है इसका नाम विवेक है।

२. इहामुत्र फल भोग विरागः—इह = इस लोक, **अमुत्र** = स्वर्गादि लोक। इनसे प्राप्त होने वाला इस लोक और परलोक से प्राप्त होने वाला फल, उसको प्राप्त की इच्छा न होना विराग है। विगतः राग इति विराग इति। अर्थात् इस लोक के भोग, शरीर की रक्षा करने वाले पदार्थ भोजन, जल, वस्त्र, निवास आदि के अतिरिक्त पांच विषयों शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध में पुष्पमाला, चन्दन, इत्र फुलेल, साबुन क्रीम विलास भोग सामग्री, स्त्री पुरुष आदि भोग देने वाली वस्तुओं में वमन अथवा मूत्र पुरीष की भांति त्याज्य बुद्धि होती है उसी प्रकार इन वस्तुओं से इच्छा रहित होना इस लोक का वैराग्य है। **अमुत्र**—इन्द्र के स्वर्ग लोक से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त रम्भा उर्वशी आदि अप्सराओं तथा इन लोकों में प्राप्त होने वाले भोगादि विषयों में भी वमन किये हुये पदार्थ के समान अनिच्छा का नाम विराग है।

३. षट् सम्पत्ति—लोक तथा शास्त्र में सम्पत्ति धन को कहते हैं। चल अचल सम्पत्ति रूप धन, किन्तु यह सम्पत्ति जीव के साथ नहीं जाती। अतः जो सम्पत्ति मरने के बाद जीव के

साथ जाती है। उसे आध्यात्मिक सम्पत्ति कहते हैं। इसलिये इस लोक की सम्पत्ति को त्यागे हुये संन्यासियों को जिनको आध्यात्मिक षट् सम्पत्ति प्राप्त होती है उन्हें 'स्वामी" कहते हैं। यह छः प्रकार की है। १. शम २. दम ३. उपरति ४. तितिक्षा ५. समाधान ६. श्रद्धा।

१. शम—अन्तरिन्द्रिय के निग्रह का नाम शम है। मन को अन्तरिन्द्रिय कहा है। उसका निग्रह श्रवण, मनन, निदिध्यासन के सहित पांचों विषयों से अत्यन्त निवृत्ति का नाम निग्रह है। अथवा श्रवण आदि में लगे हुये मन को शम कहा है।

२. श्रवण—श्रवण नाम है छः प्रकार के लिंगों द्वारा सम्पूर्ण वेदान्तों का अद्वितीय सजातीय, विजातीय-स्वगत भेद से रहित आत्मा में सम्पूर्ण वेदान्त का अन्तिम तात्पर्य है ॥१२॥

षड् विधलिंगानि—१. उप क्रमोपसंहार २. अभ्यास ३. फल ४. अपूर्वता ५. अर्थवाद ६. उपपत्ति।

१. उपक्रम उपसंहार—ग्रन्थकार द्वारा प्रकरण में प्रतिपाद्य विषय का आरम्भ तथा अन्त में संक्षिप्त प्रतिपादन का नाम उपक्रम उपसंहार है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में उद्दालक ऋषि ने श्वेत-केतु के प्रति अद्वितीय आत्मा का आरम्भ करते हुये **"एकमेवाद्वितीयम्"** आत्मा एक तथा तीनों भेदों से रहित है। यहां से उपक्रम करके, 'एतदात्म्यम्' यह आत्मा एक ही है कहकर उपसंहार किया गया है।

२. अभ्यास—प्रकरण का प्रतिपाद्य विषय आरम्भ करके बीच में बार-बार कहना यह अभ्यास है। जैसे इसी उपनिषद् में अद्वितीय वस्तु आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुये, उद्दालक ऋषि ने श्वेत केतु के प्रति नौ बार **तत्त्वमसि** तुम वही ब्रह्म हो इस विषय को सरल उक्ति तथा दृष्टान्तों से समझाया।

'जीव ब्रह्म ही है' जीव तथा ईश्वर के बीच में अज्ञान अथवा उपाधियों की निवृत्ति होने पर निदिध्यासन के द्वारा जीव को ब्रह्म स्वरूप की अनुभूति होती है। किन्तु यह गुह्य विषय अन्तःकरण शुद्ध हुये बिना बुद्धि में बैठ नहीं सकता। निष्काम उपासना के बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए उद्दालक ऋषि ने श्वेत-केतु के प्रति अन्न ब्रह्म है इसकी ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। फिर प्राण, मन आदि का उपदेश किया। जब साधन

से उनकी बुद्धि मल विक्षेप से रहित हो गयी तो आवरण दोष को दूर करने के लिये उन्होंने ९ बार 'तुम वही ब्रह्म हो' इसका उपदेश किया। यही अभ्यास है।

३. फलम्—प्रकरण द्वारा प्रतिपाद्य आत्म ज्ञान के अनुष्ठान का, अथवा सुने हुये का प्रयोजन फल है। इसी उपनिषद् में **"आचार्यवान् पुरुषोवेद' तस्य तावदेव चिरम्, यावन्न विमोक्ष्यै अथ सम्पत्स्ये।"** आचार्य सेवा करके वेदान्त को विधिपूर्वक पढ़ने वाला ही ब्रह्म तत्त्व को जान सकता है। ब्रह्म साक्षात्कार किये हुये ज्ञानी जीवन्मुक्त को विदेह मुक्ति प्राप्ति में तभी तक देर है, जब तक प्रारब्ध के अधीन उनका स्थूल शरीर है। प्रारब्ध क्षीण होने पर स्थूल शरीर नहीं रहता। वासनात्मक सूक्ष्म, कारण, शरीर ज्ञान रूपी अग्नि में संचित कर्मों के जल जाने से दोनों शरीर नष्ट हो जाते हैं। अतः जब तक प्रारब्ध शेष है तभी तक ज्ञानी की मुक्ति में विलम्ब है। उसके बाद ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। इन प्रमाणों से अद्वितीय वस्तु के ज्ञान तथा उसकी प्राप्ति का प्रयोजन अथवा फल सुना जाता है।

४. अपूर्वता—प्रकरण प्रतिपाद्य आत्मा की विचित्रता का वर्णन करना अपूर्वता है ॥१३॥

५. अर्थवाद—अद्वितीय वस्तु के प्रमाण के बीच में विषयीकरण है। प्रकरण में कहे हुये तत्त्व का वर्णन करते हुये प्रशंसा करना अर्थवाद है। **जैसे—येन अश्रुतं श्रुतं भवति, अमतं मतं भवति, अविज्ञातं विज्ञातमिति अद्वितीय वस्तु प्रशंसनम्**—जिसके द्वारा न सुनी हुई सुनी जाती है, न विचारी हुई विचारी जाती है, न जानी हुई जानी जाती है, यह अद्वितीय वस्तु की प्रशंसा है ॥१४॥

६. उपपत्ति—प्रकरण प्रतिपाद्य के अर्थ साधन में सुने हुये तर्क को उपपत्ति कहते हैं। जैसे—"हे सौम्य श्वेत केतो ! एक मृत् पिण्ड के ज्ञान से मृत्तिका के बने हुये घड़े सकोरे आदि का ज्ञान हो जाता है। घड़ा, सकोरा आदि वाणी का विकार है। मृत्तिका ही सत्य है इत्यादि। अद्वितीय वस्तु को सिद्ध करने में विकार वाचारम्भण मात्र है। सरल युक्ति द्वारा श्रवण उपपत्ति है ॥१५॥

२. मनन—षड् लिंगों द्वारा श्रवण की हुई अद्वितीय वस्तु, आत्मा वेदान्त के अर्थानुसार युक्तियों के द्वारा निरन्तर चिन्तन का नाम मनन है।

३. निदिध्यासनम्—विजातीय प्रतीति से रहित, अर्थात् शरीर आदिकों में आत्मबुद्धि से रहित अथवा विषयाकार वृत्ति का तिरस्कारपूर्वक सजातीय वृत्ति (ब्रह्माकार वृत्ति का विश्वासपूर्वक प्रवाह जारी रखना निदिध्यासन है।) अथवा दूसरे आचार्य के मत में श्रवण, मनन, निदिध्यासन का लक्षण इस प्रकार दिया है।

श्रवणम्—श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं से श्रुति के अनुभूतिजन्य ज्ञान के सुनने का नाम श्रवण है।

मननम्—ऐसे गुरुओं के द्वारा सिद्धान्त के साधक बाधक प्रमाणों द्वारा स्वरूप ज्ञान कराने वाली युक्तियों से सुनाये हुये का निरन्तर चिन्तन मनन है।

निदिध्यासनम्—श्रवण, मनन किये हुये परमात्मतत्त्व का निरन्तर दीर्घ काल पर्यन्त स्वरूपानुसन्धान करना निदिध्यासन है। अथवा सुने हुये पर विचार करने का नाम मनन है तथा उसी पर विचार किये हुये परम तत्त्व का साक्षात्कार करना निदिध्यासन है। आचार्यपाद निदिध्यासन का अर्थ करते हुये लिखते हैं कि विजातीय प्रतीति शरीर से लेकर बुद्धि पर्यन्त जड़ पदार्थों से मन को हटाकर सजातीय प्रतीति अर्थात् अद्वितीय आत्मविषयक प्रतीति का प्रवाह जारी रखना ही निदिध्यासन है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे द्वितीय प. द्वात्रिंशत् तमोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रवण-मनन निदिध्यासन तीनों का फल

श्रवण करने से प्रमाण गत असम्भावना दूर होती है। अर्थात् वेदों से लेकर अष्टादश पुराण, रामायण, महाभारत में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। श्रवण के बाद मनन करने से प्रमेयगत असम्भावना दूर होती है। प्रमेय-परमात्मा के निराकार निर्गुण स्वरूप में तथा निराकार सगुण स्वरूप में या सगुण साकार अवतार आदि के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रहता। निदिध्यासन करने से विपरीत भावना दूर होती है। वेदादि शास्त्र, गुरु तथा शिष्य का निजी अनुभव है कि "ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं" परन्तु अज्ञान अथवा अविद्या के कारण जीव जगत् को सत्य ईश्वर को मिथ्या तथा जीव ईश्वर को दो मानता है। यह वेदादिशास्त्र से विपरीत भावना है। इसकी निवृत्ति स्वरूप चिन्तन (निदिध्यासन) से होती है ॥१६॥

१. शम—इस प्रकार आत्म स्वरूप विचार द्वारा तीनों का अभ्यास करने से मन अन्तर्मुख हो जाता है यही शम है ।

२. दम—बाहर की पांचों कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों के निग्रह करने का नाम दम है । निग्रह-श्रवण आदि के अतिरिक्त विषयों की ओर जाने वाली इन्द्रियों को रोकने का नाम दम है । **३. उपरति**—वेद विहित नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों को शास्त्र में कही हुई संन्यास ग्रहण पद्धति के अनुसार कर्मों के त्यागने का नाम उपरति है । अथवा मन तथा दसों इन्द्रियों सहित विषयों से उपराम होना उपरति है । अथवा उप = सर्वोपरि परमात्मा में रति अनुराग ही उपरति है । अथवा उप = समीप, रति = प्रेमाभक्ति भगवान् का सामीप्य प्राप्त करने के लिये प्रेमाभक्ति का नाम उपरति है । अथवा = श्रोत्रादि इन्द्रियों में लगे मन का, अथवा श्रवणादि में वर्तमान मन के त्याग का नाम उपरति है ।

४. तितिक्षा—शरीर वियोग के अतिरिक्त यथाशक्ति शीतोष्ण, भूख प्यास आदि द्वन्द्वों के सहन का नाम तितिक्षा है । अथवा अपराधी को दण्ड देने की शक्ति होने पर भी दूसरे के अपराध को सहन करने का नाम तितिक्षा है ।

५. समाधान—श्रवण मनन निदिध्यासन में लगा हुआ मन जब-जब विषय वासना की ओर जाता है वहां से उन विषयों में दोष दृष्टि द्वारा, जाने से रोकने का नाम समाधि या समाधान है । अथवा—चित्त की पूर्णरूपेण एकाग्रता का नाम समाधान है ॥१७ ॥

६. श्रद्धा—श्रद्धा नाम गुरु वेदान्त वाक्येषु अतीव विश्वासः ॥१८ ॥

गुरु तथा वेदान्त के वाक्यों में अत्यन्त विश्वास का नाम श्रद्धा है ॥१९ ॥

इन चार साधनों में तीसरा साधन षट् सम्पत्ति कही है ।

४. मुमुक्षुता—मुक्ति प्राप्त करने में तीव्र इच्छा का नाम मुमुक्षुता है । जैसे—कोई अति वृद्ध पुरुष सर्दी में कहीं आग ताप रहा हो । संयोग से यदि उसके कपड़ों में आग लग जाती है तो वह उस अग्नि को शान्त करने के लिये छटपटाता है । वैसे ही जन्म-मरण रूपी तीन तापों से व्याकुल जीव की इस महाताप से छूटने की इच्छा ही मुमुक्षुता है ।

इन चार साधन-सम्पत्ति से युक्त पुरुष को साधन चतुष्टय सम्पन्न कहा है । उन चार साधन सम्पन्न का ही आत्मानात्म विचार में अधिकार है । जैसे ब्रह्मचारी को गुरु सेवा, वेदाध्ययन,

अग्नि सेवा, नित्य कर्मों के अतिरिक्त और कर्म नहीं है। वैसे ही साधन चतुष्टय सम्पन्न मुमुक्षु के लिये आत्मानात्म चिन्तन के अतिरिक्त कोई अन्य कर्त्तव्य नहीं है ॥१९॥

गृहस्थों के लिये चार साधन सम्पत्ति के भाव होने पर ही आत्मविचार करने में कोई दोष नहीं है बल्कि अति श्रेय है।

दिने दिने च वेदान्त विचाराद् भक्ति संयुतात्।
गुरु शुश्रूषया लब्धात् कृच्छ्राशीति फलं भवेत् ॥२०॥

प्रतिदिन भक्ति सहित गुरु सेवा करते हुये ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ को वेदान्त विचार करने से अस्सी कृच्छ्र व्रतों का फल प्राप्त होता है ॥२०॥

अतः आत्मा अनात्मा का विचार करना चाहिये।

आत्मा

आत्मा नाम स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों से रहित तथा अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष से रहित जागृत, स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है। सच्चिदानन्द में सत्, चित्, आनन्द तीन पद हैं। सत् = अविनाशी, चित् = ज्ञान स्वरूप, आनन्द = परमानन्द स्वरूप आत्मा है ॥२१॥

अनात्मा

अनात्मा मिथ्या, जड़ अपने तथा दूसरे को न जानने वाला, दुःख स्वरूप है। समष्टि, व्यष्टि भेद से तीनों शरीर, स्थूल, सूक्ष्म, कारण यह तीन शरीर हैं। स्थूल शरीर के सम्बन्ध में कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पंचीकृत पंच महाभूतों का कार्य तथा शुभाशुभ मिश्रित तीन कर्मों से उत्पन्न जन्म से मृत्यु पर्यन्त छः भाव विकारों से युक्त स्थूल शरीर है। इन सबको अनात्मा कहते हैं ॥२२॥

स्थूल शरीर के विषय में कहा है—**पञ्चीकृत महाभूत सम्भवं कर्मसंचितम्। शरीरं सुख दुःखानां भोगायतनमुच्यते"** पंचीकृत पंच महाभूतों तथा संचित कर्मों से उत्पन्न सुख दुःख आदि के भोगों का स्थान स्थूल शरीर कहा गया है।

पञ्चीकरण

द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः। स स्व-स्वेतर द्वितीयांशैर्योजनात् पंच पंच ते। प्रत्येक तत्त्व के दो-दो भाग हुये। प्रथम भाग को चार भागों में बांट कर, अपने भाग

के अतिरिक्त शेष तत्त्वों में जोड़ने पर पांच-पांच अर्थात् २५ भाग हो जाते हैं। यही पंचीकरण है।

पञ्चीकरण का विस्तार—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पंच महाभूतों में से पहले आकाश के दो भाग हुये, आकाश का आधा मुख्य भाग उसी के पास रहा। दूसरे आधे भाग के चार भाग हुये उनमें एक वायु में, दूसरा अग्नि में, तीसरा जल में, चौथा पृथ्वी में मिला। इसी प्रकार वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी के दो-दो भाग हुये। इनमें से आधा मुख्य भाग उन्हीं में रहा, आधे के चार-चार भाग करके अपने अतिरिक्त अन्य तत्त्वों में मिले। इस प्रकार माता-पिता द्वारा खाये अन्न से, पंचीकृत पंच महाभूतों से पच्चीस तत्त्वों से स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। इन २५ तत्त्वों से शरीर की कौन सी वस्तु उत्पन्न हुयी इसका स्पष्टीकरण आगे करते हैं।

२५ तत्त्वों का संक्षिप्त विवरण

मुख्य तत्त्व	पृथ्वी	जल	तेज	वायु	आकाश
पृथ्वी	हड्डी	मांस	नाड़ी	त्वचा	लोम, नाखून
जल	खून	शुक्र	मूत्र	स्वेद	लार
तेज	आलस्य	कान्ति	भूख	पिपासा	निद्रा
वायु	संग्रह करना	गमन	स्थिति	धावन	प्रसारण
आकाश	भय कटि	मोह (उदर)	क्रोध	काम	शोक (सिर)

आकाश के पंच अंश
(विचार चन्द्रोदय तृतीय कला से)

शरीर में पृथ्वी के अंश से अस्थि पृथ्वी का मुख्य भाग है। पृथ्वी में जल के सम्बन्ध से मांस, पृथ्वी में अग्नि के सम्बन्ध में नाड़ियां, पृथ्वी में वायु के सम्बन्ध से त्वचा तथा पृथ्वी में आकाश के सम्बन्ध से लोम तथा नाखून होते हैं। यह पृथ्वी के पांच अंश हैं। अब इन पच्चीस तत्त्वों का पांच भूतों में लक्षण कहा जाता है। आकाश से उत्पन्न भय के समय पृथ्वी के समान जड़ता आती है अतः यह पृथ्वी का मिला हुआ भाग है। मोह जल के समान फैलता है। स्त्री पुत्र आदि के प्रति मोह फैलता है अतः मोह आकाश में जल का अंश है। क्रोध अग्नि के समान जलाता है अतः क्रोध आकाश में अग्नि का अंश है। काम वायु के समान चंचल होने के कारण

आकाश में वायु का मिला भाग है। शोक के समय आकाश के समान शरीर शून्यता को प्राप्त होता है अतः शोक आकाश का मुख्य भाग है।

वायु के पांच अंश

पृथ्वी के समान वायु के द्वारा अंग सिकुड़ जाते या इकट्ठे हो जाते हैं अतः सिकुड़ना वायु में पृथ्वी का अंश है। **चलना-गमन**—जैसे जल चलता है जल के समान गमनशील होने से चलना वायु में जल का अंश है। **स्थिति ठहरना**—तेज के समान सुखाने तथा प्रकाश करने से ठहरना वायु में अग्नि का अंश है। जैसे वायु दौड़ती है उसी प्रकार वायु के समान शरीर की **धावन** क्रिया वायु का मुख्य भाग है। **फैलना**—आकाश के समान वायु फैलती है अतः फैलना वायु में आकाश का भाग है।

अग्नि के पांच अंश

आलस्य—आलस्य के समय शरीर में पृथ्वी के समान जड़ता आती है। यह अग्नि में पृथ्वी का अंश है। **कान्ति तेज**—जल के समान श्वेत होने के कारण कान्ति अग्नि में जल का अंश है। भूख अग्नि के समान अन्न जल को भस्म कर देती है। अतः यह अग्नि का मुख्य अंश है। **प्यास**—जैसे वायु जल को सुखा देती है वैसे ही प्यास गले को सुखाती है अतः प्यास अग्नि में वायु का अंश है। **निद्रा**—निद्रा के समय शरीर आकाश के समान शून्य हो जाता है अतः यह अग्नि में आकाश का अंश है।

जल के पांच अंश

रक्त—रक्त पुष्प के समान लाल होने के कारण जल में पृथ्वी का अंश है। पृथ्वी भी कहीं-कहीं लाल होती है। **शुक्र**—जल के समान द्रवीभूत तथा गर्भ का हेतु होने के कारण शुक्र जल का मुख्य अंश है। **मूत्र**—अग्नि के समान गर्म होने से मूत्र जल में अग्नि का अंश है। **पसीना**—वर्षा के समान वायु के अधीन होने के कारण तथा परिश्रम से उत्पन्न होने के कारण जल में वायु का अंश है। **लार**—आकाश के समान ऊंचा नीचा दीखता है। अतः जल में आकाश का मिला भाग है।

पृथ्वी के पांच अंश

अस्थि—पृथ्वी के समान कठोर होने के कारण पृथ्वी का मुख्य भाग है। **मांस**—जल के समान गीला होने से पृथ्वी में जल का अंश है। **नाड़ी**—नाड़ी से शरीर के ताप का पता

चलता है अतः नाड़ी पृथ्वी में तेज का अंश है। **त्वचा**—स्पर्श का अनुभव वायु के समान शीतोष्ण, कोमल कठोर चार प्रकार के स्पर्श का ज्ञान होता है अतः त्वचा पृथ्वी में वायु का अंश है। **केश, लोम नाखून**—इन दोनों के काटने पर पीड़ा नहीं होती, आकाश के समान जड़ हैं। अतः पृथ्वी में यह आकाश का अंश है।

यद्यपि भय, मोह, क्रोध, काम तथा शोक यह सूक्ष्म शरीर में मन के धर्म हैं। फिर भी जैसे किसी पात्र में शीतल जल या अग्नि रखी हो उस अग्नि या जल की गर्मी या शीतलता बाहर आ जाती है। वैसे ही सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के आश्रित होने के कारण सूक्ष्म शरीर के धर्मों का स्थूल शरीर में उपचार से वर्णन किया गया है। अतः इन पांच सूक्ष्म तत्त्वों की भी गणना स्थूल शरीर में की गई है। इन पच्चीस तत्त्वों के समुदाय का नाम स्थूल शरीर है।

शरीर—'शीर्यते इति शरीरम्' फूटे पात्र में डाले हुये जल के समान यह प्रति क्षण शीर्ण होता है। अतः इसे शरीर कहते हैं। शरीर बाल्य, कौमार्य, युवा, वृद्ध अवस्थाओं को पाकर उत्तरोत्तर शिथिल होता है। अतः शरीर कहते हैं।

शंका—यह बात ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी का शरीर पहले बढ़ता है और युवावस्था के बाद शिथिल होता है। अतः इसे शरीर नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—इसका बड़ा सुन्दर समाधान तैत्तिरीय आरण्यक में किया गया है। प्रत्येक जीव को चाहे वह जन्म के दूसरे क्षण नष्ट हो जाये, उसे छत्तीस हज़ार प्रकार की प्राणाग्नि प्राप्त होती है। जो सामान्य रूप से एक दिन में एक प्राणाग्नि का क्षय होता है। इन ३६ हज़ार प्रकार की प्राणाग्नियों के तीन मुख्य भेद हैं १. जन्म से लेंकर ३३ वर्ष की आयु तक प्रथम १२ हज़ार प्रकार की प्राणाग्नि ऐसी है कि इसमें खाये, पिये भोजन आदि से शरीर में शक्ति अधिक संचित होती है तथा परिश्रम करने से क्षीण कम होती है।

२. बीच की १२ से २४ तक ऐसी प्राणाग्नि है कि इसमें आय व्यय बराबर रहता है। अर्थात् भोजन से जो शक्ति संचित होती है उतनी ही मात्रा में क्षीण होती है। यह अग्नि मनुष्य शरीर में ३३ से ६६ वर्ष तक रहती है। ३. अन्तिम तीसरे प्रकार की २४ से ३६ तक ऐसी प्राणाग्नि है इसमें कितनी ही पौष्टिक खुराक क्यों न ली जाये, पर शक्ति क्षीण अधिक होती है। संचित बहुत कम मात्रा में होती है, यह अवस्था ६६ से मृत्युपर्यन्त रहती है। मनुष्य शरीर में ही मुक्ति आदि का अधिकार है। अतः मनुष्य की प्राणाग्नि का ही उल्लेख किया गया।

वास्तव में स्थूल शरीर, दीपक में डाली गई तेल वत्ती के समान जलते-जलते क्षीण होता रहता है। उसी प्रकार उत्पत्ति के बाद यह शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होता है। अतः इसे शरीर कहा गया। शरीर को देह भी कहते हैं। देह शब्द 'दह् भस्मीकरणे' धातु से बना है। अन्त में यह शरीर जलाया जाता है अतः देह कहते हैं।

शंका—सभी प्राणियों के शरीर नहीं जलाये जाते। मनुष्यों में भी सभी के शरीर नहीं जलाये जाते हैं। बिना दान्त के बच्चों के शरीर, ईसाईयों, मुसलमानों के शरीरें तथा संन्यासियों के शरीर नहीं जलाये जाते, पशु-पक्षियों के शरीर भी ज़मीन पर पड़े रहते हैं। फिर आपने कैसे कहा, सभी प्राणियों के स्थूल शरीर भस्म होते हैं अतः क्यों देह कहा। **समाधान**—आपका कथन आंशिक रूप में ठीक है। फिर भी कैसी अग्नि में प्राणियों के शरीर जलते हैं इसका आपको पता नहीं है। चींटी से लेकर ब्रह्मापर्यन्त सभी प्राणियों के शरीर जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक तीन प्रकार के दुःख रूपी अग्नि में निरन्तर जलते हैं अतः इसे देह कहा है। **आध्यात्मिकम्**—आध्यात्मिक नाम है—**'आत्मानं देहं अधिकृत्य वर्त्तते इत्याध्यात्मिकम्।'** शरीर को अपने अधीन करके जो अधिष्ठान चैतन्य रहता है उसे अध्यात्म कहते हैं अथवा आत्मा और शरीर के सम्बन्ध में जो कुछ है वह आध्यात्मिक है। अध्यात्म और उसके दुःख को आध्यात्मिक ताप कहते हैं। बात, पित्त, कफ से उत्पन्न होने वाले सिर दर्द, ज्वर आदि रोग आध्यात्मिक ताप हैं। यह आध्यात्मिक ताप भी दो प्रकार के हैं। १. आधि २. व्याधि। आधि = मानसिक ताप है। व्याधि = शारीरिक ताप है।

आधिभौतिक—पंच महाभूतों के विकार से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक ताप है। अथवा भूत-प्राणियों सिंह, व्याघ्र, तस्कर आदिकों से होने वाला दुःख आधिभौतिक है। **आधि दैविक**—देवताओं द्वारा मिलने वाला कष्ट आधि दैविक कष्ट है। जैसे सर्दी, गर्मी, आंधी, पानी, बिजली, भूकम्प आदि से कष्ट आधि दैविक है।

सूक्ष्म शरीर

अंपचीकृत सूक्ष्म पंचमहाभूतों से सूक्ष्म शरीर बना है। इसे लिंग शरीर भी कहते हैं। इसमें १७ तत्त्व हैं—पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, पंच प्राण, बुद्धि तथा मन। ज्ञानेन्द्रियां—कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं।

कर्णेन्द्रिय नाम है बाहर के दिखाई देने वाले कानों से भिन्न कान की शष्कुली से अवच्छिन्न आकाश देश के आश्रित आकाश के शब्द गुण को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय कर्णेन्द्रिय हैं। भाव यह है कि स्थूल शरीर में दिखाई देने वाली कान, नाक, त्वचा, जिह्वा आदि इन्द्रियां स्थूल शरीर में नहीं हैं। परन्तु सूक्ष्म शरीर में रहने वाली इन्द्रियों के घर हैं। यदि स्थूल शरीर में इन्द्रियां होतीं तो मृतक के शरीर में उक्त सभी इन्द्रियां रहने पर भी देख सुन नहीं पाता। अतः स्थूल शरीर के इन्द्रिय गोलकों में रहने वाली इन्द्रियां सूक्ष्म शरीर की हैं।

त्वगिन्द्रिय—त्वगिन्द्रिय नाम है दिखाई देने वाली त्वचा के अतिरिक्त इसके आश्रित पैर के तलवों से मस्तक पर्यन्त व्यापी शीतोष्ण, कोमल, कठोर स्पर्श को ग्रहण करने वाली शक्ति युक्त इन्द्रिय त्वगिन्द्रिय है।

नेत्रेन्द्रिय—चक्षु इन्द्रिय नाम है आंख के गोलक के अतिरिक्त गोलक के आश्रय आंख के भीतर काले तारे के अग्रवर्ती रूप आदि को ग्रहण करने वाली शक्ति से युक्त इन्द्रिय चक्षु इन्द्रिय है।

रसना इन्द्रिय—बाहर दिखाई देने वाली जिह्वा से भिन्न इसके अग्रवर्ती जीभ के आश्रित मधुर तीक्ष्ण आदि स्वाद को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय का नाम रसना इन्द्रिय है। जीभ की गणना कर्म तथा ज्ञान दोनों इन्द्रियों में है। इसका अगला भाग, खट्टे मीठे आदि रस को जानता है अतः इसे रसना कहते हैं। इसका पिछला भागशब्दों के उच्चारण में प्रयुक्त होता है अतः यह वाक्कर्मेन्द्रिय है। इसका वर्णन कर्मेन्द्रिय प्रसंग में होगा।

नाक इन्द्रिय—बाहर के नाक इन्द्रिय से भिन्न इसके आश्रित रहने वाली नासिका अग्रवर्ती सुगन्धि, दुर्गन्धि तथा पूतिगन्ध को ग्रहण करने की शक्ति वाली घ्राणेन्द्रिय (नाक) है। नासिका से सुगन्धि दुर्गन्धि तथा मृतक शरीर से आने वाली गन्ध को पूति गन्ध कहते हैं। यह पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं।

पंच कर्मेन्द्रियां—वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ यह पांच कर्मेन्द्रियां हैं।

१. वाक् इन्द्रिय—वाणी से भिन्न वाणी के आश्रित रहने वाली अष्ट स्थानवर्ती कण्ठ तालु मूर्द्धा आदि शब्द के उच्चारण की शक्ति वाली इन्द्रिय वाक् इन्द्रिय है।

२. पाणि इन्द्रिय (हाथ) —बाहरी हाथ से भिन्न करतल के आश्रित रहने वाली ग्रहण त्याग की शक्ति वाली इन्द्रिय पाणि इन्द्रिय है।

३. पाद इन्द्रिय—पैर के अतिरिक्त पैर के आश्रित पैर के तलवे में रहने वाली आने जाने की शक्ति वाली इन्द्रिय पाद इन्द्रिय है।

४. पायु इन्द्रिय (गुदा) —पायु इन्द्रिय गुदा से भिन्न गुदा के आश्रित मल का त्याग करने की शक्ति वाली इन्द्रिय पायु इन्द्रिय है।

५. उपस्थ इन्द्रिय (मूत्र) —उपस्थ इन्द्रिय बाह्य उपस्थ से भिन्न इसके आश्रित मूत्र शुक्र को निकालने वाली इन्द्रिय उपस्थ इन्द्रिय है।

यह पांच कर्मेन्द्रियां हैं।

अन्तःकरण

करण दो प्रकार के होते हैं—वहिःकरण तथा अन्तःकरण। वहिःकरणों में पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां आती हैं। उनसे बाहर का ज्ञान तथा कर्म करते हैं। उन्हें बहिःकरण कहते हैं। जिन इन्द्रियों से भीतर का ज्ञान होता है उन्हें अन्तःकरण कहते हैं। यह एक होने पर भी चार स्थानों में रहकर चार प्रकार की क्रिया करता है। अतः यह चार हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन चारों के स्थूल शरीर में स्थान बताते हैं। मन का स्थान गले के अन्त में हिता नामक नाड़ी में है। बुद्धि का स्थान, मुख में अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में। चित्त का नाभि में। अहंकार का स्थान हृदय में है। इन चारों के विषय मन का कार्य, संकल्प विकल्प तथा संशय। बुद्धि का निश्चय या विचार-चित्त का स्मरण करना या धारण करना। अहंकार का कार्य अभिमान है। कुल मिलाकर १९ होते हैं। क्योंकि चित्त की अनुसन्धानात्मक (खोज करना) वृत्ति है। अहंकार की अभिमानात्मक वृत्ति है। अतः चित्त का बुद्धि में अन्तर्भाव है। अहंकार का मन में अन्तर्भाव है अहंकार भी संकल्प विकल्पात्मक होने अथवा बुद्धि का विषय अपूर्व है। चित्त का विषय पूर्वानुभव है। इस प्रकार चित्त का बुद्धि में तथा मन का अहंकार में लय कर देने पर १७ तत्त्व होते हैं।

पञ्च प्राण

प्राण एक होने पर भी पांच स्थानों में रहकर पांच प्रकार की क्रिया करता है अतःपंच प्राण कहे गये हैं। १. प्राण २. अपान ३. समान ४. उदान तथा ५. व्यान। इन पांचों के विशेष स्थान हैं।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि देशतः ।
उदानः कण्ठ देशस्थो व्यानः सर्व शरीरगः ॥

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान तथा व्यान वायु पैरों से लेकर चोटी तक सारे शरीर में व्याप्त है ।

इन पाचों के विषय—हृदय से नासिका पर्यन्त आने जाने की क्रिया प्राण करता है । मूत्र मल के द्वार से निकलने वाली वायु अपान है । समान वायु खाये पिये अन्न को पकाती है । इसके अशुद्ध अंश को मल प्रवाहिणी नाड़ियों में तथा शुद्ध अंश को रक्त मांसादि बनाकर शरीर को पुष्ट करती है । उदान गले में स्थित डकार के रूप में वायु को ऊपर ले जाती है । व्यान सारे शरीर में रहती है ॥२४ ॥

पांच उप प्राण

इन पाचों के सहायक नाग, कूर्म, कृकल (कृकर), देवदत्त, धनञ्जय ।

इन पाचों के कार्य—**नागादुद्गीर्णञ्चापि, कूर्मादुन्मीलने तथा । धनंजयात् पोषणं च, देवदत्ताच्च जृम्भणम् । कृकराच्च क्षुतं जातमिति योग विदो विदुः ।** योग के जानने वाले विद्वानों ने नाग वायु का कार्य वमन करना, कूर्म से नेत्रों को बन्द करना और खोलना, धनंजय से पोषण, देवदत्त से जम्भाई । कृकल से छींक । कुछ ग्रन्थों में मृतक के शरीर में ब्रह्मरन्ध्र में धनंजय रहती है । कपाल क्रिया से निकलती है ।

ज्ञानेन्द्रियों आदि के देवता

दिक् वातार्क प्रचेतोऽश्वि बह्नीन्द्रोपेन्द्र मित्रकाः । तथा चन्द्रश्चतुर्वक्त्रो रुद्रः क्षेत्रज्ञ ईश्वरः । विशिष्टो विश्व सृष्टा च विश्वयोनिरयोनिजः । क्रमेण देवताः प्रोक्ताः श्रोत्रादीनां यथा क्रमात् ।

क्रमानुसार श्रोत्र के दिग्पाल, त्वचा के वायु, नेत्र के सूर्य, रसना के वरुण, नासिका के अश्विनी कुमार, वाणी के अग्नि, हाथ के इन्द्र, पैरों के उपेन्द्र, पायु के मित्र तथा उपस्थ के प्रजापति । मन के चन्द्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के क्षेत्र, ईश्वर, अहंकार के रुद्र । ऊपर कहे देवता विश्व के स्रष्टा, कारण अयोनिज कहे गये हैं ।

सूक्ष्म शरीर के तीन कोश

पहला क्रिया शक्ति प्रधान प्राणमय कोश २. इच्छा शक्ति प्रधान, मनोमय करण रूप, मनोमय कोश ३. ज्ञान शक्ति प्रधान, विज्ञान मय कर्तृ रूप विज्ञानमय कोश यह तीनों कोश मिलकर लिंग शरीर या सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं ॥२५ ॥

पंच प्राणाः मनोबुद्धिः दशेन्द्रिय समन्वितम् ।
अपञ्चीकृत भूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥

पंच प्राण, मन, बुद्धि, दश इन्द्रियों से युक्त, अपंची कृत पंच महाभूतों से उत्पन्न सुख-दुःख रूपी भोग का साधन सूक्ष्म शरीर है ॥२५ ॥

लिंग शरीर—लीन होता है, अर्थात् एक स्थूल शरीर को त्याग कर दूसरे स्थूल शरीर में जाता है । इस कारण इसे लिंग शरीर कहते हैं । कैसे लीन होता है ? श्रवण मनन आदि से जाना जाता है । अतः यह लीन है । अर्थात् योगीजन लय चिन्तन द्वारा मन से प्राणमय कोश को मनोमय कोश में, मनोमय को विज्ञानमय कोश में लीन करते हैं अतः इसे लिंग शरीर कहते हैं । शीर्यते इति शरीरं इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसे शरीर कहा है । यह कैसे शीर्ण होता है ? उत्तर देते हैं कि मैं ब्रह्म हूं, इस ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से इसका ज्ञानाग्नि में नाश होता है ॥२७ ॥

'दह भस्मीकरणे' इति व्युत्पत्ति से पृथ्वी सहित इसका नाश कहा है ॥२८ ॥

इति श्री गु. वं. पु. कलि. खण्डे, द्वितीय परि. त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

कारण शरीर

दोनों शरीरों के कारण को कारण शरीर कहा है ।

अनादि, अनिर्वचनीय, साभास = अन्तःकरण में पड़ने वाला चेतन का प्रतिबिम्ब जीव है । इसके जीवत्व की निवृत्ति ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से होती है । कारण शरीर अज्ञान रूपी एक तत्त्व से बना है। अथवा अज्ञान ही कारण शरीर है। कहा भी है—**अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते। उपाधि त्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥** अनादि, अकथनीय, अविद्या और माया के रूप को कारण उपाधि कहते हैं । तीनों उपाधि—कारण उपाधि (माया)

कार्य उपाधि (अविद्या) अन्तःकरण से रहित आत्मा को जानना चाहिये। भाव यह है कि ईश्वर की कारण या (माया) उपाधि है। जीव की कार्य उपाधि (अविद्या) है।

माया तथा अविद्या में वेदान्त में थोड़ा भेद है—माया का अर्थ है मा = नहीं या = प्रतीत होना। जो न होने पर भी प्रतीत हो उसे माया कहते हैं। **न सद्रूपा नासद् रूपा नैव मायोभयात्मिका। सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्याभूता सनातनी॥** माया न कारण रूप है न कार्य रूप अथवा न स्थूल है न सूक्ष्म है। न कार्य कारण दोनों से युक्त है। किन्तु वाणी से जो मिथ्या होने पर भी सनातनी (अजन्मा) है। अथवा सतो गुण प्रधान माया, रजोगुण प्रधान प्रकृति, तमो गुण प्रधान अविद्या। जीव अविद्या के अधीन है। ईश्वर सतोगुण प्रधान माया को अपने अधीन किये है। इसलिये जीव अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान, एकदेशीय, अपरोक्ष तथा जन्म मरण को प्राप्त करता है। ईश्वर-सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वदेशीय, परोक्ष तथा अजन्मा है। चेतन का प्रतिबिम्ब जब सतोगुण प्रधान माया में पड़कर ईश्वर के समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरों को प्रकाशित करता है उसी अधिष्ठान चैतन्य का प्रतिबिम्ब ज़ब अविद्या या जीव के अन्तःकरण में पड़कर जीव के तीनों शरीरों को प्रकाशित करता है, तब उसे जीव या चिदाभास कहते हैं।

इसके सम्बन्ध में वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है—**कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः। कार्य कारणतां हित्वा पूर्णबोधो ऽवशिष्यते।** कार्योपाधि, अविद्या उपाधि वाला जीव है, कारणोपाधि या माया उपाधि वाला ईश्वर है। कार्य तथा कारण दोनों उपाधियों को त्याग करके शुद्ध पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है। जैसे स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरों का बाध करने पर ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से बाधित होता है। बाध तथा नाश में बहुत भेद है। नाश = किसी वस्तु का टुकड़े-टुकड़े कर देने से, पीस देने से, रूप बिगाड़ने से नाश होता है। वाध = वस्तु के रहते हुये भी वस्तु का वाध होता है जैसे घट में घटत्व जाति रहने पर भी घट के मुख पेट आदि में घटत्व नहीं प्राप्त होता है उसमें घट मिथ्या है, मृत्तिका सत्य है। जैसे गो के शरीर का कोई भी अंग सींग, मस्तक, पीठ, पैर, पूंछ आदि में गोत्व नहीं मिलता है। किन्तु गो पशु के सम्पूर्ण अंगों से मिले हुये शरीर को व्यवहार चलाने के लिये गो कहते हैं। वैसे ही जीव के अज्ञान से प्रतीत होने वाला जीवेश्वर का भेद दोनों की उपाधियां मिथ्या समझकर हटा देने पर जीवत्व तथा ईश्वरत्व का बाध हो जाता है। वैसे ही कारण शरीर का भी ब्रह्मात्मैक्य

ज्ञान से बाध होता है। अर्थात् ज्ञान रूपी अग्नि से संचित कर्मों के जल जाने से फिर पुनर्जन्म रूपी अंकुर नहीं होता। जैसे जला या भुना हुआ बीज अंकुरित नहीं होता। ज्ञान के अनन्तर ज्ञानी के द्वारा होने वाले कर्मों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। क्योंकि कर्त्तापने का अभिमान ही नष्ट हो जाता है। स्थूल शरीर के साथ ही ज्ञानी के सूक्ष्मकारण शरीर भी ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाते हैं। यहीं इन शरीरों का क्षय है। अतः तीनों ही शरीर अनृत (मिथ्या) जड़ तथा दुःख रूप कहे हैं। तीनों कालों में अविद्यमान को अनृत कहते हैं। जड़ = अपने तथा दूसरे के ज्ञान से रहित वस्तु को जड़ कहते हैं। दुःख = अप्रिय वस्तु को दुःख कहा है। यह तीनों ही शरीर अनात्मा हैं। यह तीनों शरीर समष्टि, व्यष्टि भेद से दो प्रकार के हैं।

१. समष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर २. व्यष्टि स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीर। समष्टि तथा व्यष्टि क्या हैं ? जैसे एक वन समष्टि है। एक पेड़ व्यष्टि है। जलाशय समष्टि है ? जल की एक बूंद व्यष्टि है। एक विद्यार्थी व्यष्टि है। कक्षा समष्टि है। वैसे ही एक स्थूल सूक्ष्म, कारणशरीर व्यष्टि है तथा सम्पूर्ण जगत् के स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर समष्टि है।

तीन अवस्थायें—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थायें हैं।

जागृत अवस्था—दस इन्द्रियों अन्तःकरण चतुष्टय तथा इनके देवताओं के विषयों सहित सुख दुःख रूपी भोगों का स्पष्ट रूप से, चौदह त्रिपुटियों द्वारा, भोगों का नाम 'जाग्रत्' है।

२. स्वप्नावस्था—विषयों सहित जाग्रत अवस्था के संस्कारों से अस्पष्ट रूप में सुख दुःख रूपी भोगों का नाम 'स्वप्न' है।

३. सुषुप्ति—समस्त विषयों के ज्ञानाभाव का नाम 'सुषुप्ति' है।

तीनों के अभिमानी

जाग्रत अवस्था का स्थूल शरीर है इसका अभिमानी 'विश्व' है। स्वप्नावस्था का सूक्ष्म शरीर है और अभिमानी 'तैजस' है।

सुषुप्ति का कारण शरीर है और अभिमानी 'प्राज्ञ' है। इन तीन शरीरों में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय नाम के पांच कोश हैं। यद्यपि मयट् प्रत्यय का प्रयोग अधिक, स्वरूप तथा विकार अर्थ में होता है। यहां पर मय शब्द विकार के अर्थ में आया है।

अन्नमय कोश आत्मा नहीं, अनात्मा है।

पितृभुक्तान्नजाद् वीर्याज्जातोऽन्नेनैव वर्द्धते।
देहः सोऽन्नमयो नात्मा प्राक्चोर्ध्वं तदभावतः ॥३१ ॥

अन्न की प्रधानता वाला स्थूल शरीर, पिता के खाये हुये अन्न द्वारा उत्पन्न वीर्य से उत्पन्न होता है। अन्न खाने से बढ़ता है। वह अन्नमय कोश वाला स्थूल शरीर आत्मा नहीं है। क्योंकि उत्पत्ति के पहले और बाद में इसका अभाव है जो आदि अन्त में न हो बीच में दिखाई दे वह अनात्मा है ॥३१ ॥

प्राणमय कोश आत्मा नहीं—पूर्णोदिहे बलं यच्छन्नक्षाणां यः प्रवर्त्तकः।
वायु प्राणमयो नासावात्मा चैतन्य वर्जनात् ॥३२ ॥

प्राण की प्रधानता वाला प्राणमय कोश शरीर में पूर्ण बल देकर इन्द्रियों को प्रवृत्त करता है। वह प्राण वायु अपने दूसरों को न जान सकने के कारण जड़ है। अतः आत्मा नहीं ॥३२ ॥

मनोमय कोश आत्मा नहीं—अहंता ममता देहे गेहादौ च करोति यः।
कामाद्यवस्थया भ्रान्तो नासावात्मा मनोमयः ॥३३ ॥

जो मन से मिलकर शरीर में अहंता, स्त्री पुत्र घर आदि में ममता करता है। काम संकल्प आदि अवस्था से भ्रान्त मनोमय कोश आत्मा नहीं हो सकता ॥३३ ॥

विज्ञानमय कोश आत्मा नहीं—लीनासुप्तो वपुर्बोधे व्याप्नुयादानखाग्रगा।
चिच्छायोपेत धीर्नात्मा विज्ञानमय शब्द भाक् ॥३४ ॥

बोध में सुषुप्ति अवस्था में लीन पैर के नाखून से चोटी तक व्याप्त, चेतन की छाया से युक्त, दृष्टि भ्रम से प्राप्त बुद्धि विज्ञानमय कोश है भ्रान्ति से युक्त होने के कारण विज्ञानमय कोश आत्मा नहीं है ॥34 ॥

आनन्दमय कोश आत्मा नहीं—काचिदन्तर्मुखा वृत्तिरानन्द प्रतिबिम्ब भाक्।
पुण्य भोगे भोग शान्तौ निद्रारूपेण लीयते ॥३५ ॥

पुण्य भोग में शान्त हुई अन्तर्मुख कोई वृत्ति आनन्द की प्रधानता वाली आनन्दमय कोश है। भोग शान्त होने के बाद वही निद्रा रूप में लीन हुई अपने या दूसरों को नहीं जानती। इस कोश में अज्ञानता या जड़ता की प्रधानता होने के कारण 'आनन्दमय कोश' भी आत्मा नहीं ॥३५ ॥

देहादभ्यन्तरं प्राणः प्राणादभ्यन्तरं मनः।
ततः कर्त्ता ततो भोक्ता गुहासेयं परम्परा ॥३६ ॥

शरीर के भीतर प्राण हैं। प्राण के अन्दर मन बुद्धि आदि हैं, वही बुद्धि से युक्त ज्ञानेन्द्रियों की प्रधानता वाला विज्ञानमय कोश, शुभाशुभ मिश्रित तीन प्रकार के कर्मों का कर्त्ता तथा सुख दुःख और मिश्रित फलों को भोगता है। वही ब्रह्म का निवास स्थान गुहा है। उसी में पुरुष रहता है। यह पांचों कोशों की परम्परा है।

ग्रन्थकार द्वारा पंच कोशों का विशद वर्णन

१. अन्नमय कोश—स्थूल शरीर अन्न से उत्पन्न होता है, अन्न की प्रधानता वाला अन्नमय कोश माता-पिता के द्वारा खाये अन्न का परिपाक होने पर दोनों की अन्तिम धातु शुक्रशोणित के रूप में परिणत होता है। इन दोनों के संयोग से शरीर के रूप में परिणत होता है। तलवार की म्यान के समान आत्मा के स्वरूप को ढकता है। इसलिये कोश कहा गया। अन्न का विकार होने से आत्मा को आच्छादित करता है।

प्रश्न—आत्मा तो ब्रह्म का पर्यायवाची है। आकाश महत्तत्त्व आदि से भी बड़ा है। सर्वव्यापी, परिपूर्ण, आत्मा को कोश कैसे ढकते हैं।

उत्तर—जैसे बादलों का छोटा सा खण्ड बादलों से अनन्त गुणा बड़े सूर्य को ढक नहीं सकता। फिर भी उपचार से बादलों ने सूर्य को ढक लिया, ऐसा कहा जाता है। छोटा सा मेघ खण्ड, किसी भी काल में सूर्य को ढक नहीं सकता। परन्तु वह टुकड़ा सूर्य तथा आंख के आगे आंख को ढकता है। इसी प्रकार जीव के अन्तःकरण पर अज्ञान का आवरण छा जाता है आत्मा पर नहीं। अतः भाष्यकार ने साक्षात् ढकना नहीं कहा।

जन्मादिषड्भाव विकार रहितमात्मानं जन्मादि षड् भाववन्तमिव तापत्रयादिरहितमात्मानं ताप त्रयवन्तमिवाच्छादयति, यथा कोशः खड्ग-माच्छादयति। यथा तुषस्तण्डुलमाच्छादयति। यथा वा गर्भं जरायुरावरयति। तथा प्राणमय कोशो नाम कर्मेन्द्रियाणि पंच, प्राणादि वायवः पंच, एतत् सर्वमिलितं सत् प्राणमय कोश इत्युच्यते।

जन्मादि षड् भाव विकार से रहित आत्मा को, जन्म आदि षड्भाव के विकार के समान तीन ताप से रहित आत्मा को, तीन ताप से युक्त के समान ढकता है। कैसे ढकता है इसे दृष्टान्त

से बताते हैं—जैसे तलवार को म्यान ढकती है। धान का छिलका चावल को ढकता है। जैसे गर्भस्थ बालक को ज़ेर ढकती है। वैसे ही प्राणमय कोश आत्मा को ढकता है। पांच कर्मेन्द्रियों, पांच प्राणों के मिलने को प्राणमय कोश कहते हैं। अर्थात् वक्तृत्व से रहित आत्मा को वक्ता के समान, दान रहित आत्मा को दाता के समान, पैरों से गमन रहित पैरों को चलने के समान, भूख प्यास से रहित आत्मा को जो प्राणों का धर्म है भूखे प्यासे के समान दिखाता है।

मनोमय कोष पांच ज्ञानेन्द्रियां छठा मन इनके मेल का नाम 'मनोमय कोश' है। यह मनोमय कोश कैसे है ? उत्तर देते हैं। संशय से रहित आत्मा को संशय युक्त के समान शोक मोह रहित आत्मा को शोक मोह युक्त के समान, दर्शनादि से रहित आत्मा को द्रष्टा के समान ढकता है। **विज्ञानमय कोश**—पांच ज्ञानेन्द्रियां छठी बुद्धि के मेल को विज्ञानमय कोश कहते हैं। यही शुभाशुभ कर्म कर्त्ता है। कर्त्ता भोक्ता के अभिमान से युक्त अपने कर्म वासना संस्कार के अनुसार इस लोक तथा परलोक में आने जाने वाला व्यावहारिक जीव कहा जाता है। विज्ञान विकार से रहित अकर्त्ता आंत्मा को कर्त्ता के समान, अविज्ञाता आत्मा को विज्ञाता के समान, निश्चय रहित आत्मा को निश्चयवान् के समान, जड़ता रहित आत्मा को जड़ के समान आत्मा के रूप को आच्छादित करता है। **आनन्दमय कोश**—आनन्द तीन प्रकार का है। १. प्रिय २. मोद ३. प्रमोद। **१. प्रिय**—शरीर इन्द्रिय तथा मन को सुख देने वाली वस्तु जिसको सुना है, देखा नहीं, उसके गुण सुनने से उसको लेने की लालसा का नाम प्रिय है। **२. मोद**—वही सुनी हुई वस्तु को जब हम देखते हैं और उससे प्रसन्नता प्राप्त होती है उसे मोद कहते हैं। **३. प्रमोद**—वही वस्तु जब हमें प्राप्त होती है उसके उपभोग से जो विशेष आनन्द प्राप्त होता है उसे प्रमोद कहते हैं। आनन्दमय कोश में, प्रिय, मोद, प्रमोद तथा अज्ञान की प्रधानता वाले अन्तःकरण को आनन्दमय कोश कहते हैं। प्रिय मोद, प्रमोद से रहित आत्मा को, प्रिय मोद प्रमोद वाले के समान, अभोक्ता आत्मा को भोक्ता के समान, परिच्छिन्नता से रहित आत्मा को परिच्छिन्न सुखी के समान आत्मां को ढकने वाला आनन्दमय कोश कहते हैं।

इन कोशों में विज्ञानमय कोश, ज्ञान शक्ति प्रधान कर्त्ता रूप है। मनोमय कोश—इच्छा शक्ति वाला करण रूप है। प्राणमय कोश—क्रिया शक्ति वाला कार्य रूप है। इन तीन कोशों के मेल को सूक्ष्म शरीर कहते हैं ॥३८॥

सत्य स्वरूप आत्मा असत्य स्वरूप नहीं होता है। असत्य स्वरूप सत्य स्वरूप नहीं हो सकता, ज्ञान स्वरूप जड़ स्वरूप नहीं होता, जड़ स्वरूप ज्ञान स्वरूप नहीं होता। इसी प्रकार सुःख स्वरूप दुःख स्वरूप तथा दुःख स्वरूप सुख स्वरूप नहीं होता। अतः आत्मा तीनों शरीरों से विलक्षण तीनों अवस्थाओं का साक्षी कहा है। इसमें तीनों शरीर, पांचों कोश, तीन अवस्थायें अज्ञान कल्पित मिथ्या हैं। भ्रान्ति से सत्य प्रतीत होती हैं ॥३९ ॥

तीनों अवस्थायें अज्ञान कल्पित कैसे हैं ? उत्तर देते हैं—अवस्थाओं के सम्बन्ध में मनुष्य कहता है। मैं जगा था, मैं जागता हूं, मैं जागूंगा, मैंने स्वप्न देखा, स्वप्न है, स्वप्नावस्था होगी, मैं सुषुप्ति में था, होऊंगा, हूं। अतः इन अनुभवों से तीनों अवस्थाओं के विकार को अविकारी आत्मा जानता है। मैं आत्मा पांच कोशों से परे हूं।

इसको दृष्टान्त से कहते हैं। यह मेरी गाय हैं। यह मेरा बछड़ा है। यह मेरा पुत्र है। यह मेरी पुत्री है। यह मेरी स्त्री है, इन दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि आत्मा पदार्थों से रहित है। इसके विपरीत कोई यह नहीं कहता कि मैं गाय, बछड़ा, पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि पदार्थ हूं। अतः इनसे मैं भिन्न हूं। उसी प्रकार सभी यह कहते हैं मेरा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोश है। मैं अन्नमय, प्राणमय आदि कोई नहीं कहता। अतः आत्मा पंच कोश नहीं है। इनसे विलक्षण साक्षी हैं। भगवती श्रुति भी कहते हैं— **"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्। तथा रसं नित्यमगन्धबच्च यत्॥ अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं। निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते॥४०॥** आत्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से रहित, अव्यय, अविनाशी, उत्पत्ति, विनाश से रहित, ईश्वर जीव से परे है। ऐसा निश्चय करने वाला यति अज्ञान रूपी मृत्यु से छूट जाता है ॥४० ॥

सत्—अब आत्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप को कहते हैं, जिसका किसी प्रकार से बाध तथा नाश न हो। तीनों काल में एक रूप से रहे, उसे सत् कहते हैं।

चित्—आत्मा स्वयं निरपेक्ष ज्ञान स्वरूप है। स्वयं प्रकाश है। अपने में आरोपित सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाश एक होने से चित् अर्थात् ज्ञान स्वरूप कहते हैं।

आनन्द—आत्मा परम प्रेमास्पद, अपेक्षा रहित, परमानन्द स्वरूप होने से आनन्द स्वरूप कहते हैं। श्रुति ने भी कहा है— **"नित्य विज्ञानमानन्दं ब्रह्मराति दातुः पारायणमिति"** ब्रह्म नित्य विज्ञान आनन्द स्वरूप है। विशेष प्रभावशाली, प्रसन्नता प्रदान करने में निरत है।

इन विशेषताओं से युक्त आत्मा को नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, 'वह ब्रह्म मैं ही हूं' जो मुमुक्षु संशय, असम्भावना विपरीत भावना से रहित अनुभव करता है वह जीवन मुक्त होता है ॥४१ ॥

इति श्रीमत् परमहंस परिब्राज़काचार्य श्रीमद गोविन्द भगवत् पूज्य शिष्य श्रीमदाद्य शंकराचार्य विरचितः आत्मानात्म विवेकः सम्पूर्णम्।

पूज्य पाद भगवत् पादाचार्य का जीवन चरित्र उनका अद्वैत सिद्धान्त एवं उपदेश, अनन्त, अपार, परम गम्भीर, महासागर वत है। बड़े-बड़े मनीषी साधन चतुष्टय सम्पन्न जीवन्मुक्त यति भी उसका पार नहीं पा सकते। फिर मुझ जैसा अविवेकी कहां पार पा सकता है। अतः अनेक दिग्विजयों के आधार पर श्री शंकर विजय मकरन्दः, माधवीय दिग्विजय, गुरुवंश काव्यम् आदि ग्रन्थों का अध्ययन करके जो कुछ मुझ अल्पमति की बुद्धि में आया है उसके अनुसार अन्तःकरण की शुद्धि के उद्देश्य से वर्णन किया है। विद्वान् इसका अध्ययन करके इसमें जो त्रुटियां हों उनको बताने का कष्ट करें।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जानास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

प्रमादपूर्वक चलते हुये मनुष्य कहीं भी फिसल सकता है। दुर्जन उसे देखकर हंसते हैं और सज्जन सावधान करते हैं।

सर्वतन्त्र स्वतन्त्राय, सदात्माद्वैत रूपिणे।
श्रीमते शंकरार्याय, वेदान्त गुरवे नमः॥

इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, द्वितीये परिच्छेदे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४ ॥

अथ पंचत्रिंशततमोऽध्यायः

श्रीमद् भगवत्पाद श्री शंकराचार्य विरचितम्

("यतिदण्डैश्वर्य विधानम्" से)

वैदिक सनातन धर्म में वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों तथा पुराण आदि ग्रन्थों में दण्ड, इसका स्वरूप, महिमा, धारण विधि, पूजा तथा आध्यात्मिक रहस्य यत्र-तत्र विशेषतः तन्त्र ग्रन्थों में

बिखरा पड़ा था। आचार्य पाद ने अपनी २०, २१ वर्ष की आयु में इसका संकलन पूर्वोक्त ग्रन्थ के रूप में किया है।

वे लिखते हैं कि ब्रह्म दण्ड प्रणव की साक्षात् मूर्ति तथा अद्वैत ब्रह्म का बोधक है। इस की पांच मात्राएं शंकर जी के पांच मुख हैं। दण्ड, ब्रह्माण्ड तथा श्री चक्र का भी प्रतीक है। इसके स्मरण, न्यास, भावना तथा पूजन आदि करने से सिद्धि प्राप्त होती है। दण्ड का स्वरूप, इसके पांच भेद, लक्षण तथा परिमाण सत्य युग खण्ड, प्रथम परिच्छेद में दिये हैं। वहीं देखना चाहिये। यहां पर केवल पांचों दण्डों के देवी, देवता तथा कौन सा दण्ड किस योग में सहायक है, यह दिया जाएगा।

१. ब्रह्म दण्ड छः ग्रन्थि वाला सुदर्शन कहलाता है। इसकी भुवनेश्वरी देवी, ब्रह्मा देवता तथा मन्त्र योग है।

२. आठ ग्रन्थि वाला दण्ड 'नारायण', देवी-महालक्ष्मी नारायण देवता तथा मन्त्र भक्ति की एकता योग हैं।

३. दश ग्रन्थि वाला दण्ड 'गोपाल', दक्षिण कालिका-देवी, विष्णु देवता तथा भक्ति योग है।

४. बारह ग्रन्थि वाला दण्ड 'वासुदेव' देवी-कुब्जिका रुद्र देवता तथा कर्म योग है।

५. चौदह ग्रन्थि वाला दण्ड 'अनन्त' देवी-गुह्यकाली ईश्वर, देवता तथा ज्ञान योग है।

इन पांचों दण्डों में से अपने शरीर के नाप से कोई भी दण्ड धारण करने पर तथा दण्डों से सम्बन्धित विभिन्न मन्त्रों के जप करने से विशेष रूप से नाड़ियां विकसित होती हैं। परन्तु यह साधन गुरु कृपा तथा आत्म कृपा पर निर्भर है।

१. सुदर्शन दण्ड के धारण करने पर स्वाधिष्ठान चक्र के छः पत्र तथा दण्ड की छः ग्रन्थियों में एकता होती है। इसमें पूर्व आम्नाय की प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

२. दूसरा नारायण दण्ड का मणिपूरक (अधोमुख) चक्र पूर्व आम्नाय एवं दक्षिण आम्नाय मिलकर आग्नेयाम्नाय आत्मक, अष्टदल पद्म होता है। अर्थात् स्वाधिष्ठान के छः मणिपूरक के दस मिलकर सोलह दल होते हैं। इसका आधा अष्ट दल, दण्ड की अष्ट ग्रन्थियों का प्रतीक है। मन्त्र योग की साधना से यति साक्षात् नारायण स्वरूप हो जाता है।

३. गोपाल दण्ड—इसका ऊर्ध्व मणिपूरक से सम्बन्ध है। इसके देवता विष्णु तथा शक्ति दक्षिण कालिका दोनों मिलकर 'गोपाल' कहलाती हैं। गोपाल दण्ड की दस ग्रन्थियां मणिपूरक के दस दल हैं। यह अग्नि की दस कलाएं हैं। इन सबका ऐक्य गोपाल है।

४. वासुदेव दण्ड—इसका अनाहत चक्र है। इसके १२ दल दण्ड की बारह ग्रन्थियां हैं।

५. अनन्त दण्ड—यह अधोमुख विशुद्ध चक्र का स्वरूप है। इस चक्र में चौदह दल हैं। जो अनन्त दण्ड की चौदह ग्रन्थियों के प्रतीक हैं। श्री यन्त्र से इसकी एकता होती है।

इन पांचों दण्डों में ब्रह्म मुद्रा, परशु मुद्रा, धेनु मुद्रा, नाग मुद्रा, शंख मुद्रा आदि बनाकर देव मूर्तिवत् प्राण प्रतिष्ठा करने से विशेष शक्ति प्राप्त होती है।

श्री दण्ड प्रणाम रहस्यम्

दण्ड धारण करने के अनन्तर यति गुरुओं को प्रणाम करे। दण्ड की ब्रह्म मुद्रा में बायें हाथ के अंगूठे को कपड़े से ढक कर दाहिने हाथ से कपड़ा फैलाकर प्रणव की साढे तीन मात्राओं का सा दण्ड का स्वरूप बनाकर स्वरूप साक्षात् कार के लिये गुरु चरणों में प्रथम प्रणाम करें, दूसरी बार स्वच्छ प्रकाश हेतु, तीसरी बार आत्मा में लीन होने तथा तेज की प्राप्ति के लिये, अर्ध मात्रा बनाकर यति साढ़े तीन बार शिव स्वरूप गुरुओं को शास्त्र विधि से प्रणाम करें।

जो यति भक्ति भाव सहित पूर्व आम्नाय की ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करता है। उस साधक की निश्चय ही पुण्य में बुद्धि होती है। दक्षिण आम्नाय ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करने वाले की क्रूरता नहीं रहती। नैर्ऋत्य आम्नाय वाली ग्रन्थि को भी यही फल प्राप्त होता है। पश्चिम आम्नाय वाली ग्रन्थि को स्पर्श कर प्रणाम करने वाले की सकाम कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती। वायव्य आम्नाय की ग्रन्थि को छूकर प्रणाम करने वाले यति की व्यर्थ भ्रमण की इच्छा नहीं होती है। इसी क्रम से उत्तर ग्रन्थि का स्पर्श सहित प्रणाम करने वाले को आत्म रति, आत्म प्रीति शीघ्र प्राप्त होती है। ईशान ग्रन्थि को स्पर्श कर प्रणाम करने वाला दान देने में समर्थ होता है। अधर आम्नाय ग्रन्थि से वैराग्य, विज्ञान तत्क्षण प्राप्त होता है। सर्वैश्वर्य तथा लाभ के लिये मध्यम ग्रन्थि स्पर्श करके प्रणाम करे। प्रणाम के इन सभी रहस्यों को जानने वाला साम्राज्य की प्राप्ति सर्व शक्ति सम्पन्न, त्रैलोक की रक्षा में समर्थ तथा समस्त सिद्धियां प्राप्त करता है। ईशान ग्रन्थि से देवताओं के आकर्षण की शक्ति प्राप्त होती है।

प्रणव—महिमा

अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्च दैवतम्।
ॐ कार प्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥१॥
त्रिस्थानं च त्रिमात्रं च त्रिब्रह्म च त्रयाक्षरम्।
त्रिमात्रमर्द्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित्॥२॥
सर्व तत्त्वमयः सर्वमन्त्र दैवतविग्रहः।
सर्वाम्नायात्मकश्चायं प्रणवः परिपठ्यते॥३॥

आठ अंग, चार पाद, तीन स्थान, पांच देवता रूपी ॐ से चराचरात्मक त्रिलोकी उत्पन्न हुई॥१॥ जो तीन स्थान, तीन मात्रा, त्रय ब्रह्म, त्रि अक्षर, त्रिमात्रा अथवा अर्द्धमात्रा को जानता है, वह वेदज्ञ है॥२॥ ॐ कार सर्व तत्त्वमय, सर्वमन्त्र, सर्वदेवमय तथा सर्व आम्नाय मय (वेदों में) पढ़ा गया है॥३॥ अतः दण्डधारी संन्यासियों को इसके तत्त्व को जानना चाहिये। प्रणव की मात्रायें आदि का विस्तार से वर्णन संन्यास प्रकरण में हो चुका है।

मात्राओं के वर्ण तथा गुण

अकार का पीत वर्ण तथा रजोगुण, उकार का श्वेत वर्ण, सात्विक गुण, मकार का काला रंग तथा तमोगुण कहा गया है।

साधना—पाद—योग की महिमा

नहि योगं बिना मन्त्रो योगो मंत्रं बिना नहि।
कदापि सिद्धि प्राप्नोति तस्मादुभयमाचरेत्॥३॥
द्वयोरभ्यास योगो हि ब्रह्म संसिद्धि कारणम्॥४॥
कर्म योगं बिना देवि! ज्ञान योगो न सिद्ध्यति।
ज्ञानेन कर्मणा वापि सिद्धिर्भवति नान्यथा॥५॥

हे देवि! कर्म योग के बिना ज्ञान योग में सफलता नहीं मिलती। ज्ञान कर्म से ही सफलता मिलती है अन्य प्रकार से नहीं। भाव यह है कि योग के बिना अन्तःकरण के दोष दूर नहीं होते। अतः योग रहित ज्ञान मुक्ति नहीं देता। इसलिये मुमुक्षु को दोनों का ही अभ्यास करना चाहिये।

प्राणायाम किये बिना योग सिद्ध नहीं हो सकता। अतः पांचों प्राणों के वर्णों को बताते हैं। प्राण वायु रक्त वर्ण, मणि के समान प्रकाशमान ! अपान वायु नीले लाल दोनों रंगों से युक्त, इन्द्र धनुष के समान प्रकाशमान। इन दोनों के बीच में समान वायु गोदुग्ध के समान सफेद प्रकाशमान है। उदान वायु न सफेद है न पीला है। व्यान अग्नि की लौ के समान है। योगी को पंच प्राणों का चिन्तन इस रूप में करना चाहिये।

प्राणादि वायु का स्थान

प्राण वायु मुख नासिका के बीच हृदय नाभि तथा पैर के अंगूठे तक है। हे ब्रह्मन्, अपान गुदा, पेडू, ऊरु तथा घुटनों में है। समान वायु सर्वव्यापी, सभी अंगों में है।

उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि।
व्यानः श्रोत्रोरुकटिषु गुल्फ स्कन्धः गलेषु च ॥२३॥
नागादि वायवः पंच त्वगस्थ्यादिषु संस्थितः।
तस्मात् स्थानानि तान्येव ज्ञातव्यानि क्रमात् सदा ॥२४॥

उदान वायु सभी जोड़ों में तथा दोनों हाथों पैरों में भी है। व्यान कान, ऊरु, कमर, टखने, कन्धे तथा गले में रहती हैं। नागादि पंच प्राण त्वचा, हड्डी आदि धातुओं में क्रमानुसार इनके स्थान जानने चाहियें।

प्राणादिकों के कार्य

प्राण वायु पेट में स्थित जल अन्न आदि के रसों को पृथक् करता है। अपान मूत्र आदि को तथा गर्भस्थ शिशु को बाहर निकालता है। प्राणादि की चेष्टा व्यान वायु से होती है। उदान भोजन को पचाता है। समान शरीर का पोषण करता है। नाग से वमन, कूर्म से नेत्रों का खोलना बन्द करना, कृकल से छींक देवदत्त से जम्भाई आती है। धनञ्जय वायु मृतक की भी शोभा बढ़ाता है।

वायोर्वशाद् मनोवश्यं तत इन्द्रियसंयमः।
तस्माद् वायोर्वशीकारमुत्तमं योग साधनम् ॥३२॥
इति विज्ञाय वायूनां सर्वा ध्यानादिकाः क्रियाः।
गुरूपदेशतो ज्ञेया योग सिद्ध्यै महात्मभिः ॥३३॥

प्राणों के वश में हो जाने से मन वश में हो जाता है। तब इन्द्रिय संयम होता है। अतः प्राणों को रोकना उत्तम साधन है। योग में सफलता की प्राप्ति के लिये महात्माओं को (अनुभवी) गुरुओं के द्वारा ध्यानादि क्रियायें जाननी चाहिये।

नाड़ी वर्णन

मनुष्य शरीर में अनन्त नाड़ियों का जाल फैला हुआ है। योग के ग्रन्थों में साढ़े तीन लाख नाड़ियां कही हुई हैं। इनमें बहत्तर हजार प्रधान हैं। इनमें भी चित्रा आदि सोलह मुख्य हैं। जिनमें से एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। इन नाड़ियों में कुछ में रक्त का प्रवाह तथा कुछ में प्राणों का संचार है। इनमें प्राण वाहिनी दस नाड़ियां है। वहां भी ब्रह्मा, चित्रा, वज्रा, तीन मिलकर सुषुम्ना के रूप को प्राप्त करती हैं। लघु मस्तिष्क के नीचे सुषुम्ना है। इनमें तीन नाड़ियां अग्नि स्वरूपिणी हैं। इसके बायीं तथा दाहिनी ओर ३१, ३१ सूक्ष्म नाड़ियां हैं। इनमें से गर्दन में आठ नाड़ियां उत्तम योगियों ने कही हैं, पीठ में बारह, कमर में पांच, नाड़ियां हैं। सिर में तीन नाड़ियां हैं। इस प्रकार बायें-दायें दोनों को मिलाकर बासठ नाड़ियां है।

स्वाधिष्ठान में चित्रा सीवनी नाड़ी वीर्य का त्याग करती हैं। निरुद्धा सीवनी नाड़ी शुक्र को रोकती है।

मनः संयमिनी नाड़ी तदा सक्रियतां गता ॥१२७॥
आकर्षति मनः सा तु समाधिं प्रतिसाधिका।
यावन्मनः संयमिनी सक्रियत्वं न गच्छति ॥१२८॥
तावन्निरुद्धा कर्त्तव्यं पालनं कुरुते नहि ॥१२९॥

वीर्य को रोकने वाली नाड़ी के रोकने पर मनका संयम करने वाली नाड़ी सक्रिय होती है। इस नाड़ी का संयम करने पर वह मन को खींचती है और समाधि में सहायक होती है। जब तक मन की संयमिनी नाड़ी सिद्ध न हो तब तक मन सक्रिय बना रहता है। अतः मन का निरोध करना चाहिये।

सुषुम्ना के वाम भाग में मेधा, प्राण धारिणी, सर्वज्ञान प्रदा, मन संयमिनी, विशुद्धा, निरुद्धा, चित्रा, वज्रा, ब्रह्मा नाम नाड़ियां हैं। दाहिने भाग में वायु संचारिणी, तेज शुष्करी, जल पुष्टि करी, बुद्धि संचारिणी, ज्ञान जृम्भण कारिणी, सर्व प्राण हरा, पुनर्जीवन कारिणी इन नाड़ियों के यथा

नाम तथा गुण हैं। सर्व प्राण हरा तथा पुनर्जीवन कारिणी नाड़ियां जिनमें सभी प्राणों के नाश तथा पुनर्जीवन की शक्ति है यह दोनों नाड़ियां दोनों हाथों तथा पैरों के अंगूठों में रहती हैं। बुद्धि संचारिणी तथा ज्ञान विस्तारिणी नाड़ियां तर्जनी तथा मध्यमा में हैं। मन संयमिनी तथा सर्वज्ञान प्रदायिनी नाड़ियां अनामिका कनिष्ठिकाओं में हैं। ब्रह्म प्राणधारिणी मन संयमिनी, वायु संचारिणी, चित्रा, निरुद्धा, कुहू, बज्रा यह आठों नाड़ियां क्रम से जिह्वा से लेकर उपस्थ तक हैं।

जप तथा ध्यान

इन सब की सिद्धि के लिये दाहिने हाथ में शिव का मानसिक चिन्तन, मूर्धा में गुरुओं का ध्यान करें। कण्ठ में पीत वर्ण मन्त्र का ध्यान, हृदय में महामाया का, आज्ञाचक्र में गुरु मंत्र का, इन सबका ऐक्य भाव से ध्यान करें। सभी चक्रों में प्रयत्न सहित महामाया का ध्यान करें। ध्यान के अनन्तर देवी का जप करें। जप में न शीघ्रता करे न ही विलम्ब करें। शीघ्र जप से रोग, दीर्घ जप से धन हानि होती है। अतः अक्षर से अक्षर मिलाकर मोती की पंक्तिवत जप करे। तन्निष्ठ, तद्गत प्राण, तत्चित् परायण होकर अर्थ का अनुसन्धान करते हुये धीरे-धीरे जप करे। जप में मन न लगे तो ध्यान करे। ध्यान में मन न लगे तो जप करे। यह क्रम निरन्तर चलना चाहिये। जप के अनन्तर देवता के दाहिने हाथ में कुशा, पुष्प सहित अर्घ्य का जल समर्पित करे। देवी के बायें हाथ में गन्ध, अक्षत, कुशाजल सहित समर्पित करे।

जप-फल

पृथ्वी की इच्छा वाला मूलाधार में चतुर्दल कमल का चिन्तन करते हुये जप करे। स्वाधिष्ठान में जप से शीघ्र इन्द्र पद, मणिपूरक में स्वर्ग की प्राप्ति, अनाहत में ब्रह्म प्राप्ति, विशुद्ध में विष्णु लोक, आज्ञा चक्र में मणिद्वीप, सहस्र दल में १०८ बार जप से करोड़ों गुना फल प्राप्त होता है।

मानव मस्तिष्क की नाड़ियों का विवरण

मनुष्य के शरीर में पांच स्थानों में सदा चिन्तन करने से सभी अंगों के रोगों की चिकित्सा हो जाती है। पहला स्थान शरीर में पैरों से लेकर मेरु दण्ड तक नाड़ी चक्र है। इसमें नीचे की धारा (अधोमुखी) ऊपर की ऊर्ध्वमुखी है। चरणों से लेकर मस्तक तक दूसरा स्थान है। दोनों हाथ, कान तथा नेत्र तीसरा स्थान कहा है। मस्तिष्क चौथा, अनाहत चक्र पाँचवाँ स्थान कहा

है। शरीर में प्रहार होने पर नाड़ियां सिकुड़ जाती हैं। प्रसन्नता में फैलती हैं। शरीर में पुनर्जीवन कारिणी नाड़ी है। यदि वह प्रहार करने पर न सिकुड़े, तो निश्चय ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। मानव मस्तिष्क में ज्ञान-विज्ञान रहता है। सारे शरीर का यह प्रचालक है। यह सात भागों में बंटा हुआ है तथा अनेक शक्तियों से युक्त है। दक्षिण वाम भेद से इसके मुख्य दो भेद हैं सात भागों में से प्रथम भाग के सात भाग हैं। उनके आगे उनचास भाग हो जाते हैं। दो भागों के चालीस भाग सभी कार्यों को सिद्ध करते हैं।

इसका दूसरा भाग ६४ भागों में बंटा है। इसमें कला दीक्षा तथा मात्रा दीक्षा प्रतिष्ठित है। तीसरे भाग में सात भाग हैं। इनमें सात शक्तियां रहती हैं। चौथे के छः भाग हैं। पांचवें के शक्तियों सहित सात भाग हैं। छठे के पांच भाग हैं। ज्ञान तथा योग की क्रिया से साक्षात्कार होता है। सातवां भाग दो भागों में बंटा है। इन दोनों के बीच में बिजली के समान प्रकाशित लिंग प्रतिष्ठित है। इसी से चराचर जगत् प्रकाशित होता है। इसमें माधुर्य तथा ऐश्वर्य दो शक्तियां हैं। ऐश्वर्य शक्ति से अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। माधुर्य शक्ति से समस्त कार्य होते हैं। इसी से भ्रम उत्पन्न होता है। भूत वाधा दूर होती है। मस्तक से निकलकर नाड़ियां पैर के अंगूठे तक फैली हैं। मेरुदण्ड के आश्रित कार्य करने में समर्थ होती हैं। सभी नाड़ियों का शक्ति केन्द्र मेरुदण्ड है। मानव शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियां हैं। इनमें वहत्तर हजार मुख्य हैं। इनमें भी वहत्तर रक्तशोधन, रक्त संचार तथा प्राणों का संचार करती हैं। नाड़ियों पर नियन्त्रण हो जाने पर कामधेनु के समान फल देती हैं। सोई हुई नाड़ियां जब जागती हैं, तब आश्चर्य जनक चमत्कार होते हैं। इनमें पचास हजार नाड़ियां मनोवृत्ति को खींचती हैं। इनकी सहायक नाड़ियां सहस्त्रों हैं। इन नाड़ियों पर नियन्त्रण होने पर ज्ञान, सिद्धियां, तेज अपने तथा औरों के जन्मों का ज्ञान होता है। इस विद्या का उपदेश व्यास जी ने युधिष्ठिर को, युधिष्ठिर ने अर्जुन को दिया। इसी विद्या के प्रभाव से अर्जुन सशरीर स्वर्ग को गये थे।

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, अश्विनी मुद्रा, विपरीत मुद्रा शक्ति चालन, मन्त्र क्रिया आदि से सिद्ध होती हैं। सद्‌गुरुओं की देख-रेख में जो साधक इनका अभ्यास आदि दिन में चार वार करता है, तो छः महीने में मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। इसकी महिमा को सिद्ध ही जानते हैं। इन सबका विस्तार साधक "दण्डैश्वर्य विधानम्" में देखें।

इन नाड़ियों में सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान कराने वाली तत्त्व ज्ञान प्रवोधिनी, दस सहस्त्र वर्ष तक निद्रापहारिणी, द्वन्द्व क्षय करी, सूक्ष्माति सूक्ष्म तत्त्व ग्राहिणी सर्वानन्द करी, श्रमिका, मनोबुद्धि प्रवर्तिका, आदि अनेक नाड़ियां कही हैं। ये नाड़ियां सहस्त्र दल कमल में रहती हैं। जो सात भागों में विभक्त हैं।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे द्वितीय परिच्छेदे पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५ ॥

अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मचर्य में सहायक औषधियां

कामदेवस्य मथनं सुखदं मोक्षदं परम्।
यावद्बिन्दु स्थिरो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः ॥३ ॥
बिन्दु पाताद् भवेन्नाशस्ततो हि विन्दुरक्षणम्।
तत्तदौषधमावक्ष्ये येन बिन्दु स्थिरो भवेत् ॥४ ॥

शंकर जी भैरव के प्रति कहते हैं कि हे भैरव ! कामदेव को वश में करना इस लोक में सुखद तथा परम मुक्ति देता है। शरीर में जब तक बिन्दु स्थिर है, तब तक मृत्यु का भय नहीं है। वीर्यपात से नाश तथा वीर्यरक्षण से रक्षा होती है। इसलिये मैं ऐसी औषधि बताऊंगा जिससे वीर्य स्थिर हो। इसका नित्य सेवन करना चाहिये।

सफेद अपराजिता की जड़, सिद्धि मूल, शतपर्णी, सेविती, गुलाब की जड़, कदम्ब की जड़, सफेद कुन्द की जड़, सफेद कनेर की जड़, काले धतूरे की जड़, चित्रक की जड़, शम्भू की जड़ तथा आक की जड़। इनको सम भाग में रविवार को लाकर अलग-अलग पीसकर शुक्रवार को पूर्वाह्न में मिलाकर तीन दिन तक छः बार शोधन करे। फिर कामदेव की मुद्रा तथा वामदेव मंत्र का जप करे फिर मध्यमा अंगुली से एक तोला लेकर दाहिनी मुट्ठी में रखकर आरम्भ में शोधन करें। फिर साधक विजय का चूर्ण $१\frac{१}{२}$ (डेढ तोला) अथवा २ तोला विधान से मिलाकर मंगल के दिन भक्षण करने से काम वशीभूत हो जाता है।

यदा मनसि आयाति पुष्प धन्वा महाबली।
तदा तं भक्षयित्वा च कामदेवं निवारयेत् ॥१३ ॥

इति कामस्य मथनं स्थितिर्देहे यथा शृणु।
अंगुष्ठ, गुल्फ, जानूरुसिमिनी लिंग नाभिषु ॥१४॥
हृद्ग्रीवा कण्ठ देशेषु लम्बिकायां तथा नसि।
भ्रूमध्ये, मस्तके, मूर्ध्नि, वाय्वाकाश प्रियालये ॥१५॥

जब महावली काम मन में प्रवेश करे। तब इसको भक्षण करके कामदेव का निवारण करे। इस से कामदेव का मन्थन (निग्रह) बताया। अब शरीर में काम की स्थिति कहता हूं, सुनो! अंगूठा, टखना, घुटने, कमर, मूर्द्धा, लिंग, नाभि, हृदय, कण्ठ, लम्बिका, नाक, भृकुटी का बीच तथा मूर्द्धा में रहता है ॥१३॥ **अब साधन बताते हैं।** देवी के मन्दिर में बैठकर अपने शरीर में वायु रूप की भावना करके स्थिर चित्त से मंत्र का जप करें। पहले कुम्भक प्राणायम करे। हे भैरव ! जो कण्ठ में विशुद्ध चक्र में जो मन को स्थिर करता है उसे योग में सफलता मिलती है। साधक स्त्री संग से दूर रहे। स्थिर चित्त वाले धर्मात्मा साधक का चित्त निरुद्ध हो जाता है। कुण्डलिनी जागृत होती है। इसके स्पर्श मात्र से तन्मयता प्राप्त करता है।

सम्पूर्ण साधनों का मूल ब्रह्मचर्य है। अतः साधक को इसका अवश्य पालन करना चाहिये।

॥ इति दण्डैश्वर्य विधानम् सम्पूर्णम् ॥

इति भगवत् पाद आद्य शंकराचार्य चरितं, उपदेश एवं
अद्वैत सिद्धान्त निरूपणं सम्पूर्णम्। शुभमस्तु

॥ समाप्तोऽयं शांकर परिच्छेदः ॥

॥ इति श्री गु०वं० पु०, कलियुग खण्डे द्वितीय परिच्छेदे, षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥



तृतीय परिच्छेदः

प्रथम अध्याय प्रारम्भ

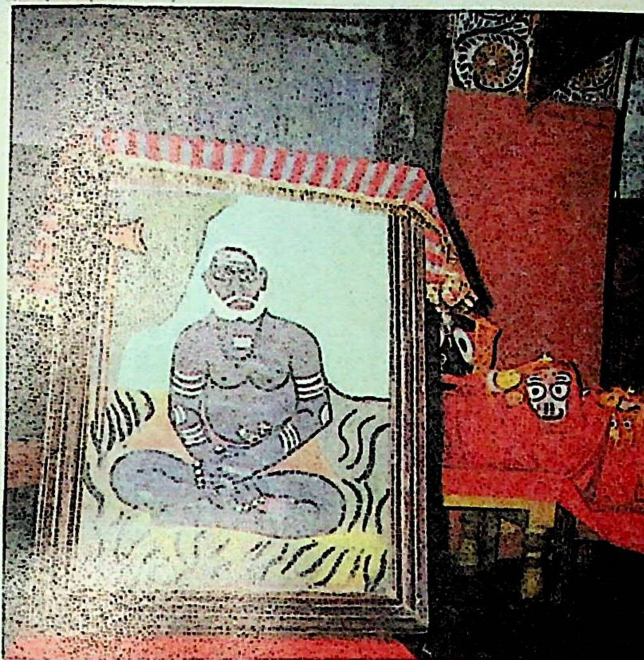
॥ श्री गुरु पद्म पादाचार्य जी महाराज ॥

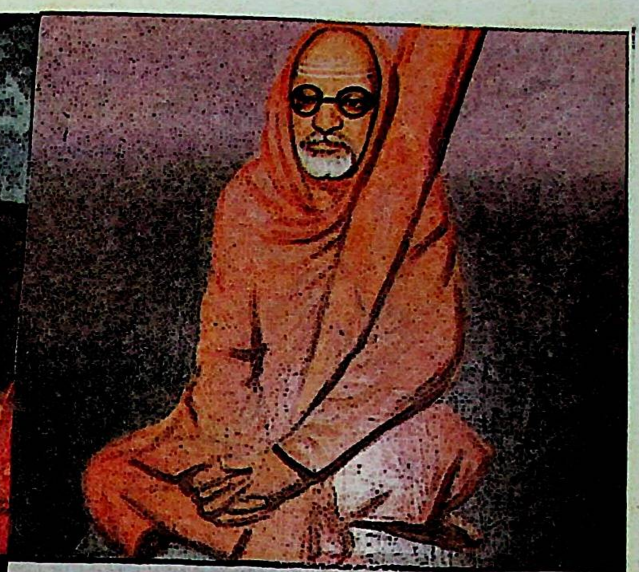
श्री गोवर्द्धन मठ (पुरी) के शंकराचार्यों की परम्परा

भगवान् भाष्यकार जी के प्रथम शिष्य माधव के पुत्र सनन्दन हुये, जिनका योग पट्ट श्री पद्मपादाचार्य हुआ। आप श्री विष्णु के अवतार कहे गये हैं। आपका जीवन चरित्र शंकर चरित्र में विस्तार से आ चुका है। भारत की पूर्व दिशा में जगन्नाथ पुरी क्षेत्र है। वहां पर महा समुद्र तट पर भगवान् श्री कृष्ण श्री बलराम तथा सुभद्रा सहित विराजमान हैं। यज्ञ यागादि में ऋग्वेद की पूर्व दिशा कही गयी है। श्री मद्‌भागवत् तृतीय स्कन्ध के अनुसार शब्द ब्रह्मात्मक श्री ब्रह्मा जी के पूर्व मुख से ऋग्वेद की अभिव्यक्ति हुई। अतः वहां पर आचार्यपाद ने ऋग्वेद की स्थापना करके अपने प्रथम शिष्य पद्म पादाचार्य जी को गोवर्द्धन मठ की स्थापना करके आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। इसका नाम भोगवर्द्धन तथा उड्डियान मठ भी है। गोवर्द्धन पर्वत पर लीला करने वाले भगवान् यहां विराजमान हैं। इसलिये इस मठ का नाम गोवर्द्धन रखा अथवा ब्रज में रहकर भगवान् ने गौओं का वर्द्धन (पोषण) किया। इसलिये गोवर्द्धन नाम पड़ा अथवा गो पद ब्रह्म विद्या या वेद वाणी के लिये प्रयुक्त होता है। इसका उपदेश करके आचार्य पाद ने ब्रह्म विद्या का वर्द्धन किया अतः गोवर्द्धन नाम पड़ा। भगवत्पाद आद्य शंकर द्वारा प्रतिष्ठित गोवर्द्धन नाथ तथा अर्द्धनारीश्वर विराजमान हैं।

यद्यपि कुछ लोग तर्क करते हैं कि जिस समय शंकराचार्य राजा के शरीर में प्रविष्ट हुये, दीर्घ काल बीत जाने पर भी अपने शरीर में नहीं आये तब पद्मपादाचार्य जी ने भट्ट का रूप धारण करके सामवेद के महावाक्य 'तत्त्वमसि' के द्वारा उद्‌बोधन किया। अतः यह सामवेदी ब्राह्मण थे तथा हस्तामलकाचार्य ऋग्वेदी थे। इनको पुरी में तथा पद्म पादाचार्य को द्वारका मठ में नियुक्त किया गया था।

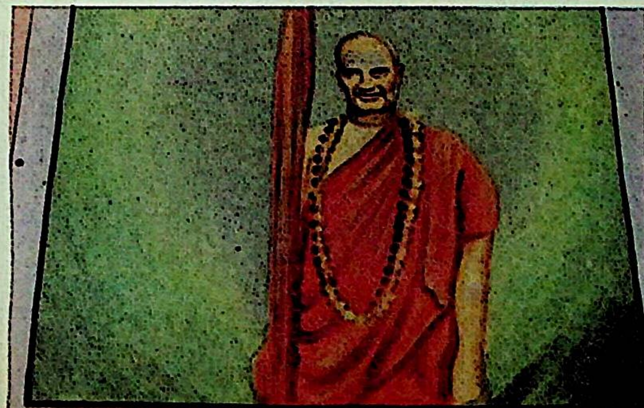
परन्तु यह मत महाराज सुधन्वा के ताम्रपत्र लेख के विरुद्ध होने से अमान्य है। गोवर्द्धन मठ की परम्परा से भी यहां के प्रथम आचार्य पद्मपाद सिद्ध होते हैं। इस मठ में श्री पद्मपादाचार्य



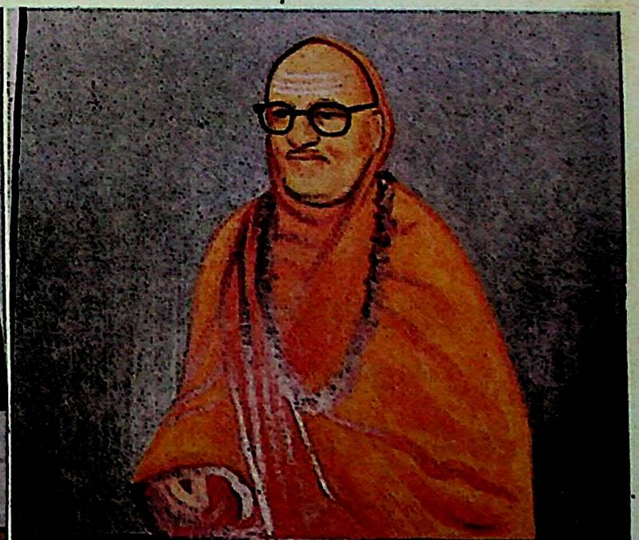


जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारतीकृष्णतीर्थ
गोवर्धनमठ पुरी

पुरी पीठाधीश्वर
स्वामी मधुसूदन तीर्थ जी महाराजः-



श्री स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी महाराज
गोवर्धनपुरी पीठाधीश्वर



ब्र. लो. श्रीमदभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी
द्वारका शारदा पीठाधीश्वर



जी से लेकर वर्तमान आचार्य अनन्त श्री स्वामी निश्चलानन्द पर्यन्त १४५ आचार्य हो चुके हैं। यहां की परम्परा श्लोक बद्ध पायी जाती है। जो इस प्रकार है—

माधवस्य सुतः श्रीमान् सनन्दन इति श्रुतः।
प्रकाशः ब्रह्मचारी च ऋग्वेदः सर्वशास्त्रवित् ॥१॥
श्री पद्मपादः प्रथमाचार्यत्वेनाभिषिच्यतः।
श्रीमत् परमहंसादि विरुदैरखिलैः सह ॥२॥
अंग वंग कलिंगाश्च मगधोत्कल बर्वरा।
गोवर्द्धन मठाधीनाः कृताः प्राची व्यवस्थिताः ॥३॥
तस्मिन् गोवर्द्धन मठे शंकराचार्य पीठगान्।
जगद् गुरून् क्रमाद् वक्ष्ये जन्म मृत्युनिवृत्तये ॥४॥

श्री माधव ब्राह्मण के पुत्र श्रीमान् सनन्दन ऋग्वेद तथा सर्वशास्त्र वित् सुने जाते हैं। यहां के ब्रह्मचारी की उपाधि प्रकाश है। भगवान् शंकराचार्य जी ने श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य पदवाक्य प्रमाणज्ञ आदि सम्पूर्ण विरुदावली सहित श्री पद्मपादाचार्य को प्रथम आचार्य के रूप में अभिषिक्त किया। इस मठ के अधीन पूर्व के अंग, वंग (बंगाल) कलिंग, मगध (बिहार) उत्कल (उड़ीसा) बर्बर आदि देश हैं। गोवर्द्धन मठ पर अभिषिक्त हुये जगद् गुरु शंकराचार्य का मैं वर्णन जन्म-मृत्यु की निवृत्ति के लिये करूंगा।

पद्मपादः[१] शूलपाणिस्ततो[२] नारायणाभिधः[३]।
विद्यारण्यो[४] नामदेवः[५] पद्मनाभाभिधस्ततः[६] ॥५॥
जगन्नाथः[७] सप्तमः स्यादष्टमो मधुरेश्वरः[८]।
गोविन्दः[९] श्रीधर[१०] स्वामी माधवानन्द[११] एव च ॥६॥
कृष्ण[१२] ब्रह्मानन्द नामा[१३] रामानन्दाभिधस्ततः।
वागीश्वरः[१४] श्रीपरमेश्वरो[१५] गोपाल[१६] नामकः ॥७॥
जनार्दन[१७] स्तथा ज्ञानानंदश्चाष्टादशः[१८] स्मृतः।
मध्य काले स्थितानेतान्नाचार्याख्यान्नमाम्यहम् ॥८॥
अथ तीर्थाभिधान् श्रीमद् गोवर्द्धन मठे स्थितान्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तान् गुरून् नाम्ना स्मराम्यहम् ॥९॥

इस गुरु परम्परा की रचना गोवर्द्धन मठाधीश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज के शिष्य ने की है। वे लिखते हैं कि श्री पद्मपादाचार्य से लेकर श्री ज्ञानानन्द पर्यन्त मध्य काल में होने वाले आचार्यों को मैं प्रणाम करता हूं। इन १८ आचार्यों की उपाधि आश्रम, तीर्थ, सरस्वती, आरण्यक आदि हो सकती है। १८ से लेकर १४४ पर्यन्त पूज्यपाद स्वामी निरंजन देव तीर्थ पर्यन्त १२६ शंकराचार्य तीर्थ नाम के हुये। जिनमें से श्री निरंजन देव तीर्थ जी अब ब्रह्मीभूत हो गये हैं। १४५वें पूज्य पाद जी निश्चलानन्द सरस्वती श्री महाराज उनके द्वारा उत्तराधिकारी नियुक्त हो चुके हैं। परन्तु श्लोकों के रचयिता सन् १९२५ ई. में ब्रह्मीभूत हुये। पूज्य पा. महाराज श्री गोवर्द्धन पीठ के श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज के शिष्य हैं। वे लिखते हैं कि अब मैं गोवर्द्धन पीठ में स्थित वृहदारण्य तीर्थ जी से लेकर अपने गुरु पर्यन्त तीर्थ नामा आचार्यों का स्मरण करता हूं।

एकोनविंश आचार्यो वृहदारण्य[१९] तीर्थकः।
महादेवोऽथ[२०] परम ब्रह्मानन्दस्ततः[२१] स्मृतः ॥१०॥
रामनन्दस्ततो[२२] ज्ञेय स्त्रयोविंशः सदाशिवः[२३]।
हरीश्वरानन्द[२४] तीर्थो बोधानन्द[२५] स्ततः परम् ॥११॥
श्री रामकृष्ण[२६] तीर्थोऽथ चिद्बोधात्माभिधस्ततः[२७]।
तत्त्वाक्षर[२८] मुनिः पश्चादून त्रिंशत्तु शंकरः[२९] ॥१२॥
श्री वासुदेव[३०] तीर्थश्च हय[३१] ग्रीव श्रुतीश्वरः[३२]।
विद्यानन्दस्त्रयस्त्रिंशो[३३] मुकुन्दानन्द[३४] एव च ॥१३॥
हिरण्य[३५] गर्भस्तीर्थश्च नित्यानन्दस्ततः[३६] परम्।
सप्त त्रिंशत् शिवानन्दो[३७] श्री योगीश्वर[३८] सुदर्शनो[३९] ॥१४॥
अथ श्री व्योमकेशाख्यो[४०] गेयो दामोदरस्ततः[४१]।
योगानन्दाभिधस्तीर्थो[४२] गोलकेशस्ततः[४३] परम् ॥१५॥
श्री कृष्णानन्दतीर्थश्च[४४] देवानन्दोऽभिधस्तथा[४५]।
चन्द्र चूडाभिधःषट्चत्वारिंशोऽथ[४६] हलायुधः[४७] ॥१६॥
सिद्ध सेव्य[४८] स्तारकात्मा[४९] ततो बोधाजनाभिधः[५०]।
श्रीधरो[५१] नारायणश्च[५२] ज्ञेयश्चान्यः सदाशिवः[५३] ॥१७॥

जय[५४] कृष्णो विरूपाक्षो[५५] विद्यारण्यस्तथा[५६] परः।
विश्वेश्वराभिधस्तीर्थो[५७] विवुधेश्वर[५८] एवच ॥१८॥
महेश्वरस्तून[५९] षष्टितमोऽथ मधुसूदनः[६०]।
रघूत्तमो[६१] रामचन्द्रो[६२] योगीन्द्रश्च[६३] महेश्वरः[६४] ॥१९॥
ओंकाराख्यः[६५] पंचषष्टितमो नारायणोऽपरः[६६]।
जगन्नाथः[६७] श्रीधरश्च[६८] रामचन्द्रस्तथा[६९] परः ॥२०॥
अथ ताम्रक[७०] तीर्थस्स्यात्तत उग्रेश्वरस्स्मृतः[७१]।
उद्दण्ड[७२] तीर्थस्तत श्शंकवेणु[७३] जनार्दनौ[७४] ॥२१॥
अखण्डात्माभिधस्तीर्थः[७५] पंच सप्ततिसंख्यकः।
दामोदरः[७६] शिवानन्द[७७] स्ततः श्रीमद् गदाधरः[७८] ॥२२॥
विधाधरो[७९] वामनश्च[८०] ततः श्री शंकरोऽपरः[८१]।
नील[८२] कण्ठो राम कृष्ण[८३] स्तथा श्रीमद्रघूत्तमः[८४] ॥२३॥
दामोदरोऽन्यो[८५] गोपालः[८६] षड्शीतितमोगुरुः।
मृत्युञ्जयोऽथ[८७] गोविन्दो[८८] वासुदेवस्तथापरः[८९] ॥२४॥
गंगाधराभिधस्तीर्थ[९०] स्ततः श्रीमत् सदाशिवः[९१]।
वामदेव[९२] श्चोपमन्यु[९३] हयग्रीवो[९४] हरिस्तथा[९५] ॥२५॥
रघूत्तमाभिधस्त्वन्यः[९६] पुण्डरीकाक्ष[९७] एव च।
परश्शंकर[९८] तीर्थश्च शतादूनः प्रकथ्यते ॥२६॥
वेद[९९] गर्भाभिधस्तीर्थस्ततो वेदान्त[१००] भास्करः।
विज्ञानात्मा[१०१] शिवानन्दतीर्थः[१०२] भोलेश्वरस्ततः[१०३] ॥२७॥
राम कृष्णाभिधस्त्वन्यत्[१०४] चतुश्शततमो मतः।
वृषध्वजः[१०५] शुद्धबोध[१०६] स्ततः सोमेश्वराभिधः[१०७] ॥२८॥
अष्टोत्तर शततमो वोपदेव[१०८] प्रकीर्त्तितः।
शम्भुतीर्थो[१०९] भृगुश्चाथ[११०] केशवानन्द[१११] तीर्थकः ॥२९॥
विद्यानन्दा[११२] भिधस्तीर्थो वेदानन्दाभिधस्ततः[११३]।
श्रीयोगानन्द[११४] तीर्थश्च सुतपानन्द[११५] एव च ॥३०॥

ततः श्रीधर[११६] तीर्थोऽन्यस्तथाचान्यो जनार्दनः[११७] ।
कामनाशानन्द[११८] तीर्थश्शतमष्टादशाधिकम् ॥३१॥
ततो हरिहरानन्दो[११९] गोपालाख्योऽपर[१२०]स्ततः ।
कृष्णानन्दा[१२१]भिधस्त्वन्यो माधवानन्द[१२२] एव च ॥३२॥
मधुसूदन[१२३] तीर्थोऽन्यो गोविन्दोऽथ[१२४] रघूत्तमः[१२५] ।
वामदेवो[१२६] हृषीकेश[१२७]स्ततो दामोदरोऽपरः[१२८] ॥३३॥
गोपालानन्द[१२९]तीर्थश्च गोविन्दाख्योऽपरस्ततः[१३०] ।
तथारघूत्तमश्चान्यो[१३१] रामचन्द्रस्ततः[१३२] परः ॥३४॥
गोविन्दो[१३३] रघुनाथश्च[१३४] रामकृष्ण[१३५] स्ततोऽपरः ।
मधुसूदन[१३६]तीर्थश्च तथा दामोदरोऽपरः[१३७] ॥३५॥
रघूत्तम[१३८] शिवो[१३९] लोकनाथो[१४०] दामोदरस्ततः[१४१] ।
मधुसूदन[१४२]तीर्थाख्य स्तत आचार्य उच्यते ॥३६॥
आजन्म ब्रह्मचारीयो भाति गोवर्द्धने मठे ।
द्विचत्वरिंशाधिकशत-संख्यः सनन्दनात् ॥३७॥
श्रीमत्परम-हंसादि नाना-विरुदशोभितान् ।
तीर्थाभिधानिमान् सर्वान् गुरून्नित्यं नमाम्यहम् ॥३८॥

अन्तिम आचार्य श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज जो कि इस समय (सन् १९२५ ई. २६ ई. से पूर्व) गोवर्द्धन पीठ पर विराजमान थे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। सनन्दन से लेकर श्री मधुसूदन तीर्थ जी पर्यन्त १४२ श्रीमत् परमहंस आदि विशेषताओं से युक्त तीर्थोपाधि वाले गुरुओं को मैं नित्य नमस्कार करता हूं।

ब्रह्मीभूत पुरी पीठाधीश्वर श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज

पद वाक्य प्रमाणज्ञ अनन्त श्री महाराज जी का जन्म जिला बुलन्द शहर के बैलोन नामक नगर में हुआ था। यह स्थान राजघाट के समीप गंगा के निकट है। वहां पर भगवती भवानी का मन्दिर है। इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण पालन किया। युवावस्था में काशी में जाकर दशाश्वमेध घाट पर स्थित कामरू मठ के आचार्य अ. श्री स्वामी प्रवोधानन्द तीर्थ जी से संन्यास लिया। आप गोवर्धन पीठ पर वि. सं. १९५५ से १९८३ तक सन् १८९८ से १९२६ या

१९२५ ई. तक रहे। आपके शरीर में श्वेतकुष्ठ था। सारे शरीर में भस्म लगाने से यह रोग दूर हो गया। आप पुरी से एकान्त सेवन के लिये नरवर आया करते थे। महीनों रहकर ज्ञानामृत पान कराते थे। साङ्ग महाविद्यालय के कुलपति श्री ब्रह्मचारी जीवन दत्त जी की आपके प्रति हार्दिक स्नेह तथा श्रद्धा थी। जगद् गुरु जी के सहपाठी अ. श्री शुद्ध बोध तीर्थ जी महाराज घनिष्ठ मित्र थे। अतिवृद्ध होने पर उनसे अपना पद ग्रहण करने का आग्रह किया किन्तु उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। तब आपने कहा—भैया ! एक बार पुरी आओ तो सही। मठ समुद्र के रमणीय तट पर विद्यमान है। नारियल के बागीचे में वास करो, किन्तु इन्होंने साफ इन्कार कर दिया, तब गुरु जी ने एक विद्वान् महापण्डित संन्यासी को शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया। किन्तु मतभेद होने के कारण वे पद छोड़कर चले गये। तब आपने द्वारका शारदा मठ के उपमठ प्रभास क्षेत्र के शंकराचार्य अनन्त श्री भारती कृष्ण तीर्थ को नियुक्त किया। दोनों ही गुरु शिष्य पुरी से नरवर आकर उपदेश करते थे। सन् १९२१ मे हमारे गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज आपके सान्निध्य में पुरी में एक वर्ष तक रहे।

१४३ अनन्त श्री पूज्य पाद स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज।

१४४ अनन्त श्री ब्रह्मीभूत स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज।

१४५ अनन्त श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज। (वर्तमान)

भगवान् भाष्यकार के साक्षात् शिष्यों को मिलाकर ४२० शिष्य हुये। गोवर्द्धन पीठ १४५ कुल मिलाकर ५६५ वर्तमान काल तक आचार्य हुये।

अनन्त श्री मधुसूदन तीर्थ जी के १९२५ ई. में ब्रह्मीभूत होने के बाद श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज आसीन हुये। श्री स्वामी मधुसूदन तीर्थ जी महाराज के परम प्रिय शिष्य "उड़िया बाबा वृन्दावन" में हुये।

टिप्पणी—पूज्य पाद अनन्त श्री ब्रह्मीभूत स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी के प्राचीन लेखों में शंकराचार्यों की सूची प्राप्त हुई थी। यह सूची मुझे पूज्य पाद अ. श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज से प्राप्त हुई थी। इसको ज्यों का त्यों नीचे दे रहा हूं। इस सूची से श्री शंकराचार्य का समय अढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व सिद्ध होता है।

इनमें श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज का सिंहासनासीन तथा इन पूर्ववर्त्ती आचार्य अनन्त श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज के ब्रह्मीभूत सन् में एक वर्ष का अन्तर पड़ता है। मञ्जुला

त्रिवेदी द्वारा लिखित "मेरे गुरुदेव" नामक पुस्तक में तथा "स्तोत्र भारती कण्ठाहार" ग्रन्थ की भूमिका में श्री मधुसूदन तीर्थ जी महाराज का सन् १९२५ ई. में ब्रह्मीभूत होना लिखा है। परन्तु इस सूची पत्र में सन् १९२६ दिया है। सम्भवतः सन् १९२५ के अन्त तथा १९२६ के आदि में ब्रह्मीभूत हुये हों।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्ड, तृतीय परिच्छेदे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्री स्वामी पूर्णानन्द (उडिया बाबा)

आप का जन्म उड़ीसा प्रदेश में श्री कृष्ण जन्माष्टमी सं. १९३२ में हुआ। आप में अवतार के सब लक्षण पाये जाते थे। आपका जन्म नाम "आर्तत्राण" तथा पिता का नाम पं. श्री वैद्यनाथ मिश्र था। जन्म से ही माता की मृत्यु हो गई। इनका पालन ताई ने किया। इनके पूर्वज राज गुरु के वंशज थे। साहित्य व्याकरण में विशेष रुचि थी। एक वैष्णव सन्त से व्याकरण काव्य शास्त्र का अध्ययन करके "काव्य तीर्थ" की उपाधि प्राप्त की। स्वामी जी परम शान्त, सेवा, क्षमा, दया, वैराग्य की मूर्ति थे। उड़ीसा के दुर्भिक्ष में जनता जनार्दन की सेवा करके अपने आर्तत्राण नाम को सार्थक किया। साधन सम्पन्न होने पर भी पैदल यात्रा करते थे। जनपद बुलन्दशहर में गंगातट, राम घाट, कर्णवास आदि तीर्थों में घोर तप करके सिद्धि प्राप्त की। ब्रह्मचारी जीवन दत्त की इन पर विशेष श्रद्धा थी। वे नरवर के प्रत्येक उत्सव में आपको बुलाते थे। वि. सं. १९९४ में षड्दर्शनाचार्य पूज्य पाद द. स्वा. विश्वेश्वराश्रम जी महाराज ब्रह्मीभूत हुये तो ब्रह्मचारी जी ने इन्हें बुलाकर स्वामी जी की अन्तिम क्रिया आपके निर्देशन में विधि पूर्वक की।

वाल्यावस्था से ही विरक्त रहे थे। अनन्त श्री पूज्यपाद पुरी पीठाधीश्वर श्री स्वामी मधुसूदन तीर्थ जी महाराज से दण्ड संन्यास ग्रहण किया। जिस दिन दण्ड ग्रहण किया, उसी दिन सागर में विसर्जित कर दिया। पैदल यात्रा करने लगे। वहां शूल टंकेश्वर महादेव को पकड़ कर ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से रोने लगे। भगवान् ने नेति नेति की प्रक्रिया से तीनों का प्रतिषेध करके दो श्लोकों में उपदेश किया। दोनों श्लोक योग वाशिष्ठ में हैं।

भ्रमण करते हुये काशी प्रयाग होते हुये नैमिषारण्य में पहुंचे। कुछ समय वहां पर ध्यान समाधि का अभ्यास किया। फिर वृन्दावन पहुंचे। बड़े-बड़े सेठों ने आश्रम निर्माण कर दिया। वेदादि शास्त्रों के तथा अद्वैत वेदान्त के अनुभूति सहित मर्मज्ञ थे। इनके पास भगवान् कृष्ण के रसिक भक्त एवं अद्वैत वेदान्ती दोनों आते थे। अधिकार के अनुसार भक्तों को भक्ति का वेदान्तियों को वेदान्त का उपदेश करते थे। भक्त इनसे कहते थे ज्ञानी भक्ति रस का आनन्द क्यों नहीं लेते, वे उत्तर देते थे इनमें हार्दिक प्रेम नहीं है। वेदान्ती शिकायत करते कि यह रात-दिन तो हल्ला मचाते हैं कीर्तन करते हैं। इनको आप ज्ञान वैराग्य का उपदेश क्यों नहीं करते। विवेक वैराग्य सम्पन्न होकर शान्त चित्त से ध्यान करें। स्वामी जी उत्तर देते—इनमें विवेक वैराग्य नहीं। अतः ज्ञानोपदेश व्यर्थ है। भाव यह कि जैसा अधिकारी होता, वैसा ही उपदेश करते थे।

स्वामी जी के सान्निध्य में पूज्य पाद अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज, श्री हरिबाबा, आनन्द मयी माता, सिन्धी परम भक्त कोकिल साईं यह सब जिज्ञासु परम भक्त रहते थे। इन्होंने पारमार्थिक लाभ स्वामी जी से बहुत उठाया। श्री स्वामी अखण्डानन्द जी जब गृहस्थ थे तभी उड़िया बाबा के कल्याण में प्रकाशित लेखों को श्रद्धा पूर्वक पढ़ते थे। स्वामी अखण्डानन्द जी ने प्रयाग झूंसी के प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के एक वर्षीय अखण्ड कीर्तन में उड़िया बाबा का प्रथम वार दर्शन किया था। स्वामी अखण्डानन्द जी पर उड़िया बाबा का बहुत प्रभाव पड़ा। वे अखण्डानन्द जी को उपनिषदें, श्री गौडपादाचार्य जी की कारिकायें गीता तथा भागवत् सुनाते थे। स्वामी अखण्डानन्द जी ने उन्हीं के कहने से दण्ड संन्यास ग्रहण किया था। वे कहा करते थे कि निष्काम भाव से कर्म करने पर भी कर्मों में आसक्ति हो जाती है। साथ ही निष्काम कर्म करने वाले भक्तों के प्रति मोह ममता रहती है। इसकी पुष्टि स्वामी जी ने एक सन्त का उदाहरण देकर की।

एक सन्त जब भिक्षा को जाते, तो यही कहते कि "कहीं कबर है, कबर।" एक ज्ञानी गृहस्थ ने कहा, "कहीं मुर्दा है मुर्दा।" सन्त तुरन्त काष्ठ के समान मौन हो गये उस गृहस्थ के यहां रहने लगे। एक दिन घर में चोरों ने चोरी की। सन्त की उस गृहस्थ के परिवार में ममता हो गयी थी। उन्होंने चोरों को पकड़वा दिया। मुर्दा सन्त झूठा निकला। पर सेठ की कुटिया (कबर) सच्ची निकली। अतः गृहस्थों के सम्पर्क में अधिक नहीं रहना चाहिये।

श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने उनकी आज्ञा से ज्योतिष् पीठाधीश्वर जगद् गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से दण्ड ग्रहण किया। उन्होंने जब गुरु जी से दण्ड के नियम पूछे तो जगद् गुरु जी ने कहा—नित्य त्रिकाल यति संध्या, दण्ड तर्पण करो। दण्डी स्वामी को ब्राह्मणेतर संन्यासी को प्रणाम नहीं करना चाहिये। संन्यास के बाद यति माता, इष्ट देव, गुरुओं तथा संन्यास में बड़े दण्डी महात्माओं को प्रणाम कर सकता है। अपने से छोटे को नहीं। यह सुनकर स्वामी अखण्डानन्द जी बड़े असंमजस्य में पड़े। स्वामी शास्त्रानन्द जी, उड़िया बाबा, हरी बाबा, आनन्दमयी मां इन सबको पहले प्रणाम करते थे। वे उड़िया बाबा के पास पहुंचे तथा एकान्त में यह प्रश्न रखा। उन्होंने कहा, ब्राह्मण को गुरु मंत्र तथा संन्यास दण्डी से ही लेना चाहिये। भगवद् बुद्धि से सबको प्रणाम कर सकते हो। परन्तु धर्म शास्त्र की दृष्टि से नहीं। यह सुनकर उन्होंने दण्ड त्याग दिया। फिर जिनको हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे उन्हें यथावत् प्रणाम करते रहे। बाबा की यह आज्ञा भक्ति भाव को लेकर ठीक थी। पर धर्मशास्त्र की दृष्टि से गलत थी।

यो भवेत् पूर्व संन्यासी तुल्यतो धर्मतो यदि।
तस्मै प्रणामं कर्तव्यं नेतराय कदाचन॥ —याज्ञवल्क्योपनिषद्

उड़िया बाबा जी का हरी बाबा से बड़ा प्रेम था। हरी बाबा की उनके प्रति गुरु से भी अधिक श्रद्धा थी। दोनों सन्तों में जितना प्रेम था, उतना ही दोनों सेवक शिष्यों में परस्पर द्वेष भाव था। उड़िया बाबा के शिष्य इतने द्वेषी नहीं थे जितने हरी बाबा के। उड़िया बाबा के शिष्य अपने गुरु के चित्र के साथ हरी बाबा के चित्र की भी पूजा और प्रणाम करते थे। किन्तु सुना जाता है हरी बाबा के शिष्य उड़िया बाबा का चित्र नहीं रखते थे। एक बार स्वामी जी वेदान्त की कथा सुना रहे थे। ज्येष्ठ का महीना था। हरी बाबा का एक शिष्य उन्हें पंखा कर रहा था जो विक्षिप्त था। वे जीवन्मुक्त महात्माओं का लक्षण बताते हुये कह रहे थे कि जीवन्मुक्त यति का कोई भक्त उसके शरीर में यदि चन्दन का लेप कर रहा हो, दूसरा द्वेषी किसी तलवार आदि शस्त्र से कोई अंग काट रहा हो तो जीवन्मुक्त का दोनों क्रियाओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। स्वामी जी का ध्यान पुस्तक की ओर था। सभी भक्त कथा का रसास्वादन कर रहे थे। पंखा वाले ने पंखा छोड़कर गड़ासा लेकर उनकी गर्दन काट दी। भयंकर हाहाकार मच गया। सभी भक्तों ने दौड़ कर उसे पकड़ लिया और उसी गड़ासे से उसे मार डाला। यह कथा अनेकों सन्तों के मुंह से सुनी गयी है इसमें सच्चाई कितनी है नहीं कहा जा सकता।

यद्यपि उसने गडासा मार कर उनके शरीर की हत्या की। परन्तु उनकी आत्मा का हनन करने की शक्ति किसी में नहीं थी। स्थूल शरीर के साथ ही उन्होंने, सूक्ष्म, कारण शरीरों को भी ज्ञानाग्नि में दग्ध करके विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त की। वे अनन्त में लीन हो गये।

इनके शिष्यों में खुर्जा निवासी मुनि लाल गुप्त जिन्होंने "विवेक चूड़ामणि", "अध्यात्म रामायण", "विष्णु पुराण" तथा भागवत् महापुराण" की दो खण्डों की प्रथम संस्करण की टीका की है। अन्त में इन्होंने उड़िया बाबा से संन्यास देने की प्रार्थना की। बाबा ने कहा—बेटा संन्यास में ब्राह्मण ही अधिकृत है। तुम्हें संन्यास नहीं लेना चाहिये। गुप्त जी ने कहा—बाबा जी मुझे प्रेष मंत्र की जानकारी है, केवल आपकी स्वीकृति अपेक्षित है। मैं आपको ही गुरु मानूंगा। संन्यास अवश्य लूंगा। श्री बाबा ने कहा—तो बेटा इतनी बात मेरी मान लो। सरस्वती तीर्थ आदि दश नामों में कोई भी नाम अपना न रखना। ऋषभ देव की तरह अपने नाम के आगे 'देव' लगाना। यही कारण था कि श्री मुनि लाल ने अपना नाम सनातन देव रखा। वाराणसी से प्रकाशित श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती जी की "गूढार्थ दीपिका" के आरम्भ में उन्होंने उड़िया बाबा का चित्र भी दिया है। इस ग्रन्थ को मुनि लाल जी ने अपने गुरु उड़िया बाबा को समर्पित किया। स्वामी जी के जीवन में कथनी करनी एक थी। वे जो कहते थे उसे पूरा करते थे। **इति जीवन वृत्तम्** ॥

श्री उड़िया बाबा उपदेश (कल्याण, वेदान्त अंक से)

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

इस लेख में अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने अनेकों प्रश्न किये उनका उत्तर इसमें दिया गया है।

प्रश्न १. वेदादि शास्त्रों में भगवान् को सर्वव्यापी कहा है। इसके विपरीत व्रजवासी कहते हैं कि भगवान् वृन्दावन का त्याग कर एक पग भी कही नहीं जाते। इन विरोधी वचनों की संगति कैसे लगायें?

उत्तर—भगवान् भक्त के अधीन हैं। भक्त की यदि इच्छा न हो तो वे वृन्दावन से हटकर कहीं नहीं जाते। परन्तु ज्ञानी भक्त जिनकी दृष्टि में ब्रह्म आकाश वत्-सर्वत्र परिपूर्ण है। उनकी

दृष्टि में वे देशकाल वस्तु के परिच्छेद से रहित हैं। भगवान् भाव ग्राही हैं। भक्तों की भावना के अनुसार व्यवहार करते हैं।

प्रश्न २. उपासना तथा ज्ञान की एकता कैसे सम्भव है ? क्या ज्ञानी उपासना कर सकता है या नहीं ?

उत्तर—यदि ऐसा माना जाए कि ज्ञानी की दृष्टि में उपासक अन्य है तो वह वास्तव में ज्ञानी ही नहीं है। चूंकि उसमें द्वैत बना हुआ है। यदि वह उपासना करता है तो यह नहीं माना जा सकता कि उसकी दृष्टि में जगत् का अत्यन्ताभाव है। जगत् त्रिकाल में नहीं है। यह परमार्थ दृष्टि से कहा है, इसे सिद्धान्त नहीं कह सकते अर्थात् ज्ञानी की परमार्थ दृष्टि में जगत नहीं है। किन्तु व्यावहारिक तथा प्रतिभासिक सत्ता में है। यह विचारना चाहिये कि सिद्धान्त क्या है। पुराणों में तीन प्रकार के ज्ञानी कहे हैं।

१. वामदेव आदि जो सदैव निर्विकल्प समाधि में रहते हैं। २. नारदादि जो भक्ति में रहकर भ्रमण करते हुये भक्ति ज्ञान का प्रचार करते हैं। ३. वशिष्ठ आदि जो ज्ञानी होते हुये भी कर्मकाण्डी हैं। आज कल दो प्रकार के विचारक हैं। कुछ विचारक कहते हैं कि तत्त्व बोध होने पर भी लोक संग्रहार्थ अपने वर्णाश्रमानुसार कर्म करते तथा करवाते हैं। कुछ विचारक कहते हैं कि, ज्ञानी को कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है। यदि कोई कहे कि स्वरूप दृष्टि में ब्रह्म अकर्त्ता है परन्तु व्यवहार में कर्त्ता है। यह सिद्धान्त सब में घटित होता है। छठी भूमिका में पहुंचे हुये ज्ञानी की दृष्टि में जो पदार्थाभाविनी है, में अज्ञानी कोई है ही नहीं उनके लिये जगत् स्वप्न वत् है।

परमार्थ तत्त्व के विषय में तीन पक्ष हैं। १. मुझ से भिन्न कुछ नहीं। २. सब मैं ही हूं। ३. सब कुछ वासुदेव ही है। प्रथम पक्ष में—व्यतिरेक ज्ञान है। दूसरे में समन्वय ज्ञान है। तीसरा भक्ति पक्ष है। गहन विचार करने पर तीनों एक हैं। मेरा कथन है कि जितना व्यवहार है वह सब परमार्थ है। जब तक अज्ञान है तब तक व्यवहार हैं। वास्तव में परमार्थ ही सत्य है। वहां माया, जीव, जगत्, ईश्वर कुछ नहीं। **"नेह नानास्ति किंचन"** बोध होने पर वस्तु में कोई अन्तर नहीं आता वह ज्यों की त्यों बनी रहती है। जैसे रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के निवृत्त होते ही रस्सी का बोध हो जाने पर रज्जु ज्यों की त्यों रहती है।

प्रश्न ३. जो ज्ञानी बोध हो जाने पर वर्णाश्रम धर्म का त्याग कर देते हैं। उनके विषय में आपका क्या विचार है ?

उत्तर—यद्यपि ज्ञानी पर शास्त्र का विधि निषेध लागू नहीं होता। परन्तु ज्ञान बिना अन्तःकरण शुद्ध हुये, नहीं हो सकता। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये वर्णाश्रम धर्म का पालन आवश्यक है। एक बार बिजनोर में श्री स्वामी माधवानन्द सरस्वती जी तथा अन्य विद्वानों ने इस विषय पर विचार किया था। सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि दैवी सम्पत्ति महात्मा लोगों में स्वभाव से रहती है। यह जन्म से वास्तविक महात्माओं के सम्बन्ध में है। वेशधारी ढोंगियों के सम्बन्ध में नहीं। बिना निष्काम कर्म के अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। निष्काम कर्म दैवी सम्पत्ति वाला ही कर सकता है। अतः वर्णाश्रम धर्म का पालन करना, करवाना उनका स्वभाव हो जाता है। ज्ञानी चारों आश्रमों में होते हैं। चारों में से जो जिस आश्रम में रहकर उसका पालन नहीं करता वह ज्ञानी नहीं है। तात्पर्य यह है कि आचार्य कोटि के सन्त वर्णाश्रम धर्म का पालन करते तथा करवाते हैं। परन्तु आश्रमातीत देहाध्यास से रहित अवधूत कोटि के सन्त शास्त्र तथा लोक बन्धन से रहित होते हैं। श्रुति ने उनके सम्बन्ध में कहा है। **"निर्गुणे पथि विचरतां का विधिः को निषेधः"** परन्तु जिसे शरीर, लोक का ज्ञान है वह यदि वर्णाश्रम धर्म का पालन नहीं करता तो वह तमोगुणी है।

प्रश्न ४. किन्तु दुर्वासा आदि यतियों में भी क्रोध देखा जाता था। इसके प्रतिकूल प्रह्लाद बलि आदि असुरों में शान्ति तितिक्षा आदि गुण पाये जाते हैं।

उत्तर—दुर्वासा आदि सन्त भगवदवतार कारक पुरुष थे उनका क्रोध भी जनता के कल्याण के लिये लीला मात्र था। जो असुरों में ज्ञानी हुये वे जन्म से असुर होने पर भी स्वभाव से ज्ञानी थे। यह अपवाद मात्र थे। आदर्श ज्ञानियों में ऋभु-निदाघ, वशिष्ठ शुकदेव, वामदेव आदि हैं।

प्रश्न ५. ब्रह्म ज्ञान क्या है तथा उसका अभ्यास किसे कहते हैं ?

उत्तर—अद्वैत ब्रह्म में पूर्ण स्थिति ही ब्रह्म ज्ञान है। निरन्तर २४ घण्टे अद्वैत भावना का अभ्यास ज्ञानाभ्यास है। अर्थात् उसी तत्त्व का चिन्तन, कथन तथा प्रबोधन ज्ञानाभ्यास है।

प्रश्न ६. कुछ लोग कहते हैं कि अज्ञान आत्मा को होता है ?

उत्तर—इस बात को कौन कहते है। आत्मा में तीन काल में अज्ञान नहीं। अज्ञान किसने देखा, यदि किसी ने देखा कि अमुक को अज्ञान हुआ या मुझ को अज्ञान हुआ।

प्रश्न ७. जड़ संसार का चेतन ब्रह्म से होना कैसे सिद्ध होता है ?

उत्तर—जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है। वेदान्त सिद्धान्त में सृष्टि पारमार्थिक नहीं है। ब्रह्म में संसार तीनों कालों में नहीं है। रज्जु में सर्प अध्यस्त है। जैसे रज्जु स्वरूप से रज्जु है, सर्प नहीं वैसे जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है। ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति व्यावहारिक या प्रातिभासिक सत्ता में है। पारमार्थिक नहीं। व्यवहार में उत्पत्ति मानने में विरोध नहीं।

प्रश्न ८. क्या ईश्वर तर्क से सिद्ध हो सकता है ?

उत्तर—षडैश्वर्य सम्पन्न ईश्वर तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता। वह भाव ग्राह्य है। उसका अनुभव प्रेमाभक्ति से होता है। यद्यपि हम वेदान्ती ईश्वर को तर्क से सिद्ध नहीं कर सकते, परन्तु उसकी सत्ता को सिद्ध कर सकते हैं। अतः नास्तिक शून्य वादियों के मत को सिद्ध नहीं होने देंगे। हमारा सिद्धान्त शून्यवाद नहीं, ब्रह्मवाद है।

प्रश्न ९. क्या गृहस्थ भी भगवान् को पा सकता है ?

उत्तर—हां भगवानं को चारों आश्रम प्राप्त कर सकते हैं। साधन चतुष्टय सम्पन्न अधिकारियों, चारों आश्रमियों को बोध हो सकता है। परन्तु यदि गृहस्थ शब्द का अर्थ गृहासक्त किया जाए तो वह भगवान् को नहीं पा सकता। जो गृहस्थ होने पर भी रागद्वेष आदि से दूर तथा शान्तिपूर्वक भगवद् भजन करते हैं, वे भगवान् को पा सकते हैं।

प्रश्न १०. जीव ब्रह्म है इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर—जीव ब्रह्म नहीं है, किन्तु जीव का साक्षी ब्रह्म है। इसमें शास्त्र युक्ति तथा अनुभव प्रमाण है। इसकी सिद्धि में सदसत् का विवेक चाहिये।

प्रश्न ११. अधिक कार्य करने से देहात्म बुद्धि होती है। अतः आप ऐसा उपाय बतायें। जिससे कि किसी देशकाल में स्वरूप विस्मृति न हो ?

उत्तर—इसके लिये दृढ़ ब्रह्माभ्यास की आवश्यकता है। ऐसा अभ्यासी प्रह्लाद आदि के समान महासंकट पड़ने पर भी स्वरूप से विचलित नहीं होता।

प्रश्न १२. अन्त काल में पीड़ा अधिक होती है। अथवा बेहोशी आ जाती है। उस समय स्वरूप की विस्मृति होने पर मुक्ति कैसे होगी ?

उत्तर—जिन्हें यथार्थ बोध हो चुका है। वे जीवन्मुक्त हैं। ऐसे यतियों की मृत्यु किसी भी अवस्था में क्यों न हो। निश्चय ही मुक्त हो जायेंगे।

प्रश्न १३. हठ योग समाधि तथा ज्ञान समाधि में क्या अन्तर है ?

उत्तर—हठ योग की समाधि में प्राणों का व्यायाम मात्र होता है। उसमें निर्विकल्प स्थिति नहीं होती। न उससे शान्ति, दान्ति आदि गुण ही आते हैं। समाधि से जगने पर उनमें तथा साधारण पुरुषों में कोई भेद नहीं रहता अर्थात् उसमें राग, द्वेष, क्रोध आदि जाते नहीं है। परन्तु ज्ञान समाधि में चित्त संकल्प—आदि से रहित होता है। उस समाधि से जगने पर योगी में दिव्यता आती है। हठ योग की दीर्घ समाधि की अपेक्षा ज्ञान ध्यान से युक्त समाधि सहस्र गुना उत्तम है।

प्रश्न १४. योगी तथा ज्ञानी की निर्विकल्प अवस्था में क्या भेद है ?

उत्तर—योगी सृष्टि दृष्टिवादी है। समाधि में भी सृष्टि बनी रहती है। वह केवल सृष्टि से चित्त हटा लेता है। परन्तु ज्ञानी दृष्टि सृष्टि वादी है अर्थात् उनकी दृष्टि ही सृष्टि है। उनकी वृत्ति की निवृत्ति जगत् की निवृत्ति है। योगी की दृष्टि आत्म प्रकृति तथा ईश्वर में भेद देखती है। परन्तु ज्ञानी सर्व रूप है। समाधि में दोनों को जगत् की अप्रतीति होती है। परन्तु यह अप्रतीति कल्याण कारिणी नहीं है। यदि जगत् की अप्रतीति से कल्याण होता तो सुषुप्ति में सबको ज्ञान हो जाना चाहिये। अतः मुक्ति एक मात्र ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से होती है।

॥ इति श्री गु. वं. पु. कलियुग ख. तृतीय परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रश्न १५. भाव समाधि तथा ध्यान समाधि में क्या भेद है ?

उत्तर—भाव समाधि साधन साध्य नहीं है, वह भगवत् कृपा साध्य है। इसमें उद्दीपन विभाव की सन्निधि स्वतः प्राप्त है। किन्तु इससे लौकिक इच्छा की पूर्ति नहीं होती। न पूर्ण निर्विकल्पता ही आती है। परन्तु ध्यान समाधि अभ्यास साध्य है। इसकी प्राप्ति रजोगुण तमोगुण से रहित, निरन्तर अभ्यास शील साधकों को होती है।

प्रश्न १६. अज्ञान की निवृत्ति होते ही द्वैत की निवृत्ति हो जाती है। तब द्वैत में गुरु शिष्य का सम्बन्ध कैसा होता है?

उत्तर—बोधवान् गुरु-शिष्य का व्यवहार भी अद्वैत में होता है। द्वैत में नहीं। जैसे मरुस्थल में तरंग तथा फेन आदि की प्रतीति, ज्ञानी, अज्ञानी दोनों को होती है। बोधवान् के लिये वह मरुस्थल है। किन्तु अबोधवान् के लिये जल रूप ही है। वैसे ही ज्ञानी सर्व व्यवहार करते हुये भी सबको ब्रह्म रूप समझता है।

प्रश्न १७. पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि? ब्रह्म के एक पाद में सभी प्राणी है तीन पाद स्वर्ग में अमृत रूप हैं। इस मंत्र के त्रिपाद शब्द का क्या अभिप्राय है?

उत्तर—सत्, चित्, आनन्द त्रिपाद हैं। सत् की प्रतीति सब को होती है। चित् की बोधवान् तथा आनन्द की प्रतीति पूर्णबोध वान को होती है। जिसे सत् चित् आनन्द तीनों का बोध होता है। वह पूर्ण बोधवान है। उसी के तीनों दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।

प्रश्न १८. बोध दृष्टि क्या है?

उत्तर—लोक में चार प्रकार की दृष्टियां है। १ भगवान् सब में है। यह भेद दृष्टि है। २. भगवान् सर्वत्र है। यह विराट् रूप से भगवान् की उपासना करने वालों की दृष्टि है। ३. भगवान् सबसे भिन्न हैं। यह निर्गुण उपासकों की दृष्टि है। ४. सब ही भगवान् है। यह सगुणोपासकों की दृष्टि है। वे भगवान् के सिवा किसी वस्तु की ओर दृष्टि नहीं करते। जिसे यह चारों दृष्टियां हैं और जो इन चारों दृष्टियों से अपने को अलग समझता है। वह बोधवान् है।

प्रश्न १८. यदि वृत्ति का कार्य आवरण भंग करना है तो वृत्ति व्याप्ति का क्या अर्थ है?

उत्तर—वृत्ति का स्वतः कोई स्वरूप नहीं है। वह जिस विषय में जाती है। तद्रूप हो जाती है। उसी के अनुसार उसका स्वरूप, देश, कालादि अवच्छिन्न हो जाता है। फिर उस वस्तु की स्फूर्ति चिदाभास में होती है। उसका नाम फल व्याप्ति है। यह नियम इदं रूप से स्फुरित होने वाले, पदार्थों के विषय में है। आत्मा कोई परिच्छिन्न या पर प्रकाश्य नहीं है।

अतः वह समस्त अनात्म वस्तुओं का बाध करके जब वृत्ति अहं अर्थ में पहुंचती है । तब उसका कोई खण्ड न होने के कारण उसमें किसी प्रकार का आकार विशेष नहीं होता ।

नेति नेति के द्वारा अनात्म पदार्थों का निषेध करते-करते जब अभावाकार वृत्ति होती है उसे श्रुति सूक्ष्म बुद्धि कहती है । उस का जब गुरु "तत्त्वमसि" महावाक्य का उपदेश करते हैं । तब शिष्य को तत्त्व बोध होता है । अनात्म वस्तु तत्त्व बोधानन्तर बाधित हो जाती है । भाव यह है कि जैसे सूर्य चन्द्र, दीपक, टयूब को दिन या रात्रि में देखने के लिये दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं रहती । टयूब आदि पर लिखे अक्षरों को पढ़ने के लिये दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं । परन्तु यदि उसके ऊपर कपड़े का गज, धूल आदि का आवरण हो तो उस आवरण को हटाने की आवश्यकता होती है । वैसे ही अन्तःकरण की ब्रह्माकार वृत्ति जीव के अन्तःकरण में विद्यमान अज्ञान आवरण को हटाती है । ब्रह्म को प्रकाशित करने में समर्थ नहीं ।

प्रश्न २०. सूक्ष्म बुद्धि तो गुणमयी है । उस गुणमय बुद्धि से गुणातीत ब्रह्म का दर्शन कैसे हो सकता है ?

उत्तर—सूक्ष्म बुद्धि से भी ब्रह्म का 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार दर्शन नहीं होता । बल्कि वह उससे लक्षित है । उसे प्रकाशित करने के लिये बुद्धि की आवश्यकता नहीं है । इसीलिये महावाक्य के तत् और त्वं पद की एकता भी अभिधा वृत्ति से नहीं होती । वहां भी लक्षणा करनी पड़ती है । क्योंकि ब्रह्म तत्त्व शब्द से परे है । ब्रह्म तत्त्व शब्द का वाच्यार्थ नहीं लक्ष्यार्थ हैं ।

प्रश्न २१. त्याग और वैराग्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर—विषयों को सामने न रहने देने का नाम त्याग है तथा सामने रहने पर भी भोगने की इच्छा न होना वैराग्य है ।

प्रश्न २२. ज्ञान तथा ज्ञान निष्ठा में क्या भेद है ?

उत्तर—यह परमार्थ वस्तु है । इसके जानने को ज्ञान कहते हैं । जैसे किसी का पिता मरते समय यह कहकर मर गया कि मेरे पास एक लाख रुपये हैं । पुत्र को विश्वास भी हो गया । कि मेरे घर में किसी स्थान पर १ लाख रु. गड़े हैं । परन्तु उसने कभी खोद कर न देखा ही, न

उनका उपयोग ही किया। ऐसी स्थिति में उसे लखपति का अभिमान होने पर भी वह निर्धन ही है। भूखों मरता है। वैसे ही जब तक ज्ञान होने पर भी अभ्यास द्वारा बोध वृत्ति की स्थिरता नहीं होती तब तक लक्षित होने पर भी उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होती। इस बोध वृत्ति की स्थिरता का नाम ज्ञान निष्ठा है।

प्रश्न २३. अवतार लेने से ईश्वर की व्यापकता नष्ट हो जाती है या नहीं?

उत्तर—पृथ्वी सर्वत्र व्यापक है। उस पृथ्वी की मिट्टी से यदि ईंट या मिट्टी के पात्र बना लिये जाते हैं अथवा पृथ्वी खोदकर उससे सोना चांदी आदि धातुएं निकाल ली जाती हैं। जैसे पृथ्वी की सर्व व्यापकता नष्ट नहीं होती। वैसे ही भगवान् के अवतार लेने पर भी ईश्वर की सर्व व्यापकता में अन्तर नहीं आता।

प्रश्न २४. ईश्वर निराकार है, वह साकार कैसे होता है?

उत्तर—जब अल्प शक्तिमान् जीव भी योगाभ्यास की संकल्प शक्ति के प्रभाव से साकार हो जाता है तो सर्व शक्तिमान ईश्वर कैसे नहीं हो सकता अर्थात् अवश्य होता है।

प्रश्न २५. ब्रह्म में अध्यास कैसे हुआ?

उत्तर—आप अध्यास का कारण ज्ञान की दशा में खोजते हो या अज्ञान दशा में। अज्ञान दशा में कोई कारण नहीं मिलेगा। क्योंकि वह स्वयं अध्यस्त है। मिथ्या प्रतीति का नाम अध्यास है। ज्ञान दशा में अध्यास रहता नहीं। अतः उसका कारण खोजना नहीं बनता। अध्यास अनिर्वचनीय है। अतः जिज्ञासु को अध्यास का कारण न खोजकर अधिष्ठान ब्रह्म को खोजना चाहिये। ब्रह्म का ज्ञान होने से यह निश्चय हो जाएगा कि अध्यास तीनों कालों में नहीं है। लोग सूर्य को तिमिरारि कहते हैं अर्थात् अन्धकार का शत्रु, कोई अपने शत्रु को बिना सामने आये नहीं मार सकता। तिमिरारि सूर्य से पूछा जाए कि आपने क्या अन्धकार को देखा है। उत्तर मिलेगा नहीं। भाव यह है कि अध्यास न होने पर भी अज्ञान से प्रतीत होता है।

प्रश्न २६. ज्ञानी और भक्त के सिद्धान्त में क्या अन्तर है?

उत्तर—ज्ञानी की दृष्टि में जगत् के साथ ब्रह्म का तीनों कालों में सम्बन्ध नहीं है। भक्त की दृष्टि में सम्पूर्ण जगत् भगवत् स्वरूप है। सुवर्ण में कुण्डल आदि का अत्यन्ताभाव देखना ज्ञानी की दृष्टि है तथा सुवर्ण को कुण्डल सहित देखना भक्त का सिद्धान्त है।

प्रश्न २७. जीवन्मुक्ति तथा विदेह मुक्ति किसे प्राप्त होती है ?

उत्तर—वास्तव में यह दोनों मुक्तियां स्वप्नवत् कल्पित हैं । एक ही द्रष्टा में दोनों असम्भव हैं । परमार्थ में बद्ध ही नहीं है तो मुक्त कैसे । वह नित्य मुक्त है । यह भी केवल व्यवहार कल्पित है ।

एकोद्रष्टा हि सर्वस्य, मुक्त प्रायोऽसि सर्वदा ।
अयमेव हि ते वन्धः द्रष्टारं पश्यसीतरम् ॥

तुम ही एक मात्र सबके द्रष्टा तथा नित्य मुक्त हो । अपने से अतिरिक्त (भिन्न) को जो तुम द्रष्टा मानते हो, यही तुम्हारा बन्धन है । अतः जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनों व्यावहारिक हैं । यह अनेक द्रष्टा मानने पर ही सम्भव है । एक सर्वसाक्षी अखण्ड चेतन में इनका होना सम्भव नहीं । इनका सम्बन्ध स्वप्न पुरुष से है । समाधि स्वप्न पुरुष को होती है । स्वप्न द्रष्टा का समाधि से कोई सम्बन्ध नहीं है । स्वामी विद्यारण्य जी ने कहा है—

विक्षेपो नास्ति मे यस्मान्न समाधिस्ततो मम ।
विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसस्स्याद्विकारिणः ॥

मुझ में विक्षेप (चंचलता) तीनों कालों में नहीं है । अतः मुझे समाधि नहीं होती । विक्षेप या समाधि मन के विकार हैं । अन्यत्र आचार्यों ने जीवन्मुक्त तथा विदेह मुक्त का लक्षण करते हुये कहा है कि—तीनों शरीरों के रहते हुये जिसे अक्षय परमानन्द प्राप्त होता है वह जीवन्मुक्त है । उसी का प्रारब्ध क्षीण होने पर तीनों शरीरों के त्याग के अनुसार जो मुक्ति होती है वह विदेह मुक्ति है ।

प्रश्न २८. यो वुद्धे परतस्तु सः—जो बुद्धि से परे है वही ब्रह्म है । वह बुद्धि ग्राह्य तथा अतीन्द्रिय है । इन वाक्यों में आये हुये बुद्धि शब्द के अर्थों में क्या अन्तर है ?

उत्तर—'यो वुद्धेः परतस्तु सः' यह आत्म तत्त्व का निर्णायक वाक्य है । इसमें केवल यह बताया गया है कि आत्म तत्त्व ऐसा है । यहां बुद्धि शब्द से व्यावहारिक बुद्धि समझनी चाहिये । इसे ही गीता में व्यवसायात्मिका बुद्धि कहा है । किन्तु "बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम्" यह साक्षात् कार है । यहां बुद्धि शब्द से शुद्ध बुद्धि ग्रहण की गयी है । इसी को भगवान् ने बुद्धि योग कहा है । यह केवल वृत्ति व्याप्ति है तथा व्यवसायात्मिक बुद्धि में वृत्ति व्याप्ति,

फल-व्याप्ति दोनों हैं । ऐसी शुद्ध बुद्धि केवल भगवत्कृपा से ही प्राप्त होती है । "ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते" यह भगवत् कृपा से प्राप्त होने वाली बुद्धि में प्रमाण है । किसी स्वयम्बर में जाने वाले राजा लोग वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर जाते हैं । वे इतना ही कर सकते हैं । परन्तु वरमाला पहनाना राज-कन्या की इच्छा पर निर्भर है । वैसे ही साधक केवल साधन कर सकता है । भगवद्दर्शन भगवदिच्छा पर निर्भर है ।

प्रश्न २९. भक्ति ज्ञान का हेतु है या ज्ञान भक्ति का हेतु है ?

उत्तर—अविद्या से मुक्ति होने का नाम ज्ञान है । इस ज्ञान में भक्ति ही कारण है । भक्त जो कहता है कि मेरा प्रियतम पूर्ण है यह भक्त की भावना है । ब्रह्म ज्ञानी के जितने लक्षण कहे हैं उन सब की भावना भक्त अपने इष्ट देव में करता है । भक्ति ज्ञान का स्वतन्त्र साधन है । जिज्ञासा युक्त भक्ति ज्ञान को उत्पन्न करती है । वह भक्ति दो प्रकार की है । साधनरूपा तथा प्रेमलक्षणा । जिज्ञासा सहित भक्ति साधनरूपा ज्ञान की जननी है । प्रेमरूपा भक्ति स्वयं ज्ञान स्वरूपा है । ऐसा प्रेमी ज्ञान की इच्छा नहीं करता । प्रेम में कभी पूर्णता नहीं होती । प्रेमी प्रेमास्पद से मिलने के लिये सदैव छट-पटाता है वह ठंडी आहें भरता है । उसका रंग-पीला, नेत्रों में आंसू, दर्शन की प्रतीक्षा में बेचैनी, मितभाषण, मिताहार, अनिद्रता, यह प्रेमियों के ९ लक्षण हैं । किन्तु ज्ञान में पूर्णता, कृतार्थता, निश्चलता तथा शान्ति सदैव रहती है ।

प्रश्न ३०. हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिये ?

उत्तर—आत्म कल्याण कामी को सर्वदा गुण ही देखने चाहियें । दोष कभी किसी का न देखे । महापुरुषों का यह स्वभाव होता है । वे अपने विरोधी के गुण ही देखते हैं । दुष्ट लोग दोष देखते हैं । ज्ञानी की दृष्टि में सारा जगत् ज्ञान स्वरूप ही है । अज्ञान कहीं है ही नहीं । इसमें सब प्रकार के पुण्य-पाप, राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, दैवी-आसुरी प्रकृतियों की मिथ्या प्रतीति हो रही है । इसी से क्या उनकी सत्त. ्वीकार कर लेता है ? अर्थात् नहीं है । सारा जगत् माया का कार्य समझने के कारण उन्हें किसी घटना में आश्चर्य नहीं होता ।

अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णे चेन्दुमण्डले ।
अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी ॥

यदि सूर्य की किरणें शीतल हो जाएं तथा चन्द्रमा में तपन तथा अग्नि का प्रसार नीचे को होने लगे किन्तु जीवन्मुक्त विस्मय को नहीं प्राप्त होता । प्रलय के महा भयानक दृश्य को देखकर भी वे विस्मित नहीं होते ।

यस्य चित्तं निर्विषयं हृदयं यस्य शीतलम्।
तस्य मित्रं जगत् सर्वं तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥

जिसका चित्त विषय वासना से रहित है, जिसका हृदय शीतल है। सारा जगत् उसका मित्र है। मुक्ति उनके हाथ में है।

प्रलयस्यापि हुंकारैश्चलाचल विचालकैः।
विक्षोभं नैति यस्यात्मा स महात्मेति कथ्यते ॥

समस्त चर अचर को विचलित करने वाले, महा प्रलय का विस्फोट होने पर भी जिसका चित्त क्षुब्ध नहीं होता। वह महात्मा कहा जाता है।

पूज्यपाद श्री पूर्णानन्द तीर्थ जी महाराज (उड़िया बाबा) प्रत्येक जीव का हित करते हुये लोक परलोक सुधारने की शिक्षा दिया करते थे। उनके उपदेश तथा जीवन में कर्म, भक्ति, ज्ञान वैराग्य, विद्यमान थे।

इति जीवनवृत्त तथा उपदेश सम्पूर्ण हुये।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

(५६३) अनन्त श्री विभूषित पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज का जीवन वृत्त

भारती कृष्ण तीर्थं तु ब्रह्मास्मीति प्रबोधकम्।
गोवर्द्धन मठाधीशं नौमि जगद्गुरुं मुदा ॥१॥
तीर्थान् तीर्थी प्रकुर्वन्तं जीव ब्रह्म विवेचकम्।
भारते भारती कृष्णं नित्यमेव नमाम्यहम् ॥२॥

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, पदवाक्य प्रमाणज्ञ, धर्म धुरीण, अष्टांग योग तथा साधन चतुष्टय सम्पन्न, पूज्य पाद पुरी पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज गोवर्द्धन मठ के १४३वें शंकराचार्य थे। इनका जन्म १४ मार्च सन् १८८४ ई. में तिनोवेली जनपद के तहसीलदार वेदम् श्री नरसिंह शास्त्री जी के यहां हुआ था। जन्म का नाम 'व्यंकट रमण' था।

इनके माता-पिता परम धार्मिक थे । यह स्थान मद्रास प्रान्त में था । इनके पिता डिप्टी कलैक्टर थे । आपके पितृव्य श्री चन्द्रशेखर शास्त्री महाराज कॉलेज विजया नगरम् के प्रधानाचार्य थे तथा प्रपितामह मद्रास हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीश थे । दस मास की आयु में माता की मृत्यु हो गई । अतः इनका भरण-पोषण पितामह ने किया था । पांच वर्ष की आयु में पिता के पास आ गये । सन् १८९० से लेकर १९०४ तक विद्याभ्यास किया । आप सभी कक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे । सोलह वर्ष की आयु में ही आपने पूरे प्रान्त में संस्कृत में प्रथम स्थिति प्राप्त कर "सरस्वती" की उपाधि प्राप्त की । जो उस समय दिग्गज विद्वानों को प्राप्त होती थी ।

सन् १९०३-०४ में बीस वर्ष की आयु में अमेरिकन कॉलेज आफ साइन्स, रोशियेटर 'ROCHESTER' (न्यूयार्क) के बम्बई केन्द्र से एक ही वर्ष में संस्कृत, दर्शन, अंग्रेज़ी, गणित, इतिहास, विज्ञान तथा भूगोल इन सात विषयों को लेकर एम.ए. परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था । सत्रह विषयों में यह एम.ए. थे । विद्यार्थी जीवन में इनकी ज्ञान पिपासा शान्त नहीं होती थी । स्वामी जी का विश्व भर में शिक्षा इतिहास में अद्वितीय उदाहरण था । शिक्षकों से असंख्य ऐसे प्रश्न करते थे कि वे भी हार मान लेते थे । दस वर्ष की आयु में पिता का देहान्त हो गया । इसके बाद आप धर्मशास्त्र, दर्शन, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, राजनीतिक आदि विषयों पर प्रौढ़ लेख लिखने लगे । कॉलेज छोड़ने के बाद ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध गोखले के साथ राजनीति में आये । २५ वर्ष की आयु में आप विरक्त होकर १९०८ ई. में शृंगेरी मठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द शिव नरसिंह भारती जी के चरणों में पहुंच कर आपने ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदों का शारीरिक भाष्य सहित अध्ययन किया। वहां रहकर योगाभ्यास करने लगे । श्री महाराज जी का इनके प्रति अगाध स्नेह था । इनकी घर की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी । खर्चा घर से आता था ।

तपश्चर्या

शृंगेरी में अन्न त्याग कर सब्जी, फल, दूध लेकर ही शीतोष्ण वर्षा सहन करते हुये कठोर तप करते थे । किसी भी ऋतु में छाता तथा जूता का उपयोग नहीं करते थे । पूछने पर 'आप ऐसा क्यों करते हो' तो कहते थे 'भोजन का संयम होने पर मन संयमित हो जाता है ।' मठ वाले कहते थे । आप में क्रोध कभी नहीं आया ।

विद्यार्थी जीवन की झांकियां

स्वामी जी ने १९५५ ई. में अपने एक भाषण में बताया कि वे जब कॉलेज में पढ़ते थे। कॉलेज के प्रिंसिपल अंग्रेज़ थे। प्रधानाचार्य एक दिन कक्षा में देर से पहुंचे, स्वामी जी पान खा रहे थे। कोई विद्यार्थी कक्षा में थूक नहीं सकता था। आचार्य ने पूछा कि क्या 'ममस' की बीमारी है। इन्होंने कहा मैंने पान खाया है। प्रिंसिपल ने कहा कि पान बाहर थूक आवो। प्रिंसिपल ने पान खाने की निन्दा की और गलत आदत बताया। इन्होंने पूछा—इसमें क्या दोष है। प्रिंसिपल ने दूसरे दिन बताने के लिए कहा। कालान्तर में जब वे इंग्लैंड जाने लगे। तब इन्होंने एक पान की टोकरी भेंट की। उन्होंने चार वर्ष तक पान खाने के गुण दोषों पर अध्ययन करके पत्र लिखा।

पान खाने की विधि

पत्र में लिखा कि हमारे देश के लोग पूरा पान नहीं खाते। पान की नसें निकाल कर खाते हैं। पान में चार भाग होते हैं। पान के ऊपर का नुकीला भाग, नीचे की डंडी तथा नसें निकाल कर पान खाना चाहिये। ऊपर नीचे का भाग तथा नसें निकाले बिना पान खाने से काम वासना बढ़ती है। पान का अग्रभाग शरीर में विष पहुंचाता है। इसकी नसें बुद्धि को दूषित करती हैं। अतः समूचा पान नहीं खाना चाहिये।

हमारे धर्म शास्त्रों में लिखा है कि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी संन्यासी तथा विधवा को पान नहीं खाना चाहिये। इनको पान देने वाला भी नरक गामी होता है। पत्ते के अतिरिक्त, सुपारी, चूना कत्थे में भी काम वासना बढ़ाने की शक्ति है। अतः ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को पान निषिद्ध है। गृहस्थ सादा पान खा सकते है। लोगों ने पूछा वह बालक कौन था तब जगद् गुरु ने कहा— मैं ही था।

जगद् गुरु जी ईसाइयों के कॉलेज में पढ़ते थे। वहां बाइबल पढ़ाई जाती थी। प्रोफैसर ने ईसा का चरित्र पढ़ाते हुये कहा। ईसा दस वर्ष तक अपने देश में रहे। उनके चार प्रधान शिष्य थे। ईसा को अपने देश के धर्म गुरुओं से आध्यात्मिक, धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान नहीं हुआ। तब उन्होंने पूर्व की यात्रा आरम्भ की। विदेश यात्रा में मैथ्यूज तथा जॉन उनके साथ गये। मार्क तथा ल्यूक साथ नहीं गये। ईसा के २० वर्ष से लेकर ३० वर्ष तक आयु का चरित्र नहीं मिलता। प्रोफैसर ने बीच का चरित्र नहीं सुनाया। किसी छात्र ने कोई शंका

नहीं की। परन्तु स्वामी जी ने पूछा—ईसा के २० वर्ष के बीच की आयु का हाल नहीं बताया। प्रोफैसर को ज्ञात नहीं था इसलिये उत्तर नहीं दिया। फिर पूछा कि २० वर्ष में उन्होंने क्या किया ? प्रवक्ता ने उत्तर दिया—लेखक ३० वर्ष से ही उनका चरित्र जानते होंगे। इन्होंने शंका की कि आरम्भ से १० वर्ष तक का हाल कैसे लिखा ? तब प्रोफैसर ने कहा, इसका वर्णन बाइबल में नहीं है।

इन्होंने दूसरे प्रोफैसर से पूछा उन्होंने उत्तर दिया, बाइबल में अपनी इच्छा से लिखी हुई बातें नहीं पायी जाती। भगवान् की प्रेरणा से लिखी हुई बातें हैं। तब छात्र ने पूछा, भगवान् ने बीच के २० वर्ष का हाल क्यों नहीं लिखवाया। प्रोफैसर कुपित हो गये। शंका ज्यों की त्यों बनी रही।

चौथे वर्ष बी.ए. फाइनल में तीसरे प्रोफैसर आये। वे शान्त और पिछले प्रोफैसरों से विद्वान् थे। इन्होंने उन से पूछा—प्रवक्ता ने इनको अपने पास बुलाया। तब बालक सोचने लगा कि पिछले प्राध्यापक ने तो क्रोध ही किया था किन्तु यह पीटेंगे। वे प्रोफैसर के पास गये। उन्होंने पीठ पर हाथ फेरकर स्नेह से कहा—"बाइबल में जान बूझ कर बीस वर्ष का वर्णन छोड़ दिया है। इन बीस वर्षों में भारत में आकर इन्होंने धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया। हिन्दू धर्म ईसाई धर्म के विपरीत होने के कारण नहीं लिखा।

ईसा का भारत आगमन

ईसा के इस गुप्त चरित्र को १५० वर्ष तक छिपाया गया। ईसा की मृत्यु के १५० वर्ष पश्चात् सभा हुई। प्रोफैसर ने कहा, ईसा परम तीव्र बुद्धि के बालक थे। वे आठ नौ वर्ष की अवस्था में ही गूढ़ तत्त्वों सम्बन्धी प्रश्न करते थे। वहां के विद्वान् इसका उत्तर नहीं दे सके। तब ईसा ने पूर्व की यात्रा की चीन, जापान गये। वहां के बौद्ध भिक्षुकों द्वारा उन्हें उनके सामान्य प्रश्नों का उत्तर प्राप्त हुआ। गूढ़ प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला। बौद्ध गुरुओं ने कहा कि हमारे धर्म के संस्थापक बुद्ध की जन्म भूमि भारत है। अतः आप भारत जाएं। वे भारत आये सन्तों से सम्पर्क किया। यहां पर आकर उन्हें सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त हुआ। उन्होंने वैष्णव सन्तों को गुरु बनाकर दीक्षा ली। फिर अपने देश में जाकर ईसा ने वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् ईसाई सोचने लगे। यदि हम भारत से उधार लिये धर्म का प्रचार करेंगे तो हमारा महत्त्व कम होगा। हमारे धर्म का प्रचार नहीं होगा। उस समय एक धर्म सभा बुलाई

गयी। इस सभा में यह समस्या रखी गयी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि बाइबल से ईसा का २० वर्ष का चरित्र निकाल दिया जाए। उस सभा में एक व्यक्ति ने विरोध किया और सभी ने समर्थन किया। दूसरे लोगों ने यही प्रचार किया कि ईसा कभी भारत नहीं आये। वे पश्चिम देश के थे वहीं पर प्रचार किया। तब हमारा विशेष आदर होगा।

उस सभा में जो सच्चा व्यक्ति था उसका नाम 'एथेनिसिस' था। वे ईसा के विशेष शिष्यों में थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में ईसा के ज्ञान, भक्ति की शिक्षा की कथा लिखी है। परन्तु उस सभा में झूठों का बहुमत होने के कारण उनकी सच्ची बात नहीं मानी गयी। तब एक व्यक्ति ने कहा—"यह मनुष्य सत्य के बल पर अवश्य जीतेगा।"

ईसा ने भारत में भक्त प्रह्लाद की कथा सुनी थी। वे उसके प्रशंसक थे। पूर्ण सत्य निष्ठ तथा गीता के परम भक्त थे। इन्हीं कारणों से कई लोग इससे द्वेष करने लगे। उन्होंने कहा कि मैं और मेरे पिता एक हैं। यह अपने को ईश्वर का पुत्र मानता है। इस बात से चिढ़ कर उन्हें सूली पर चढ़ा दिया। रोम में ईसा तथा उनके शिष्यों की मूर्तियां है। उन सबके मस्तकों पर वैष्णव तिलक है। यह बात महाराज जी को तीसरे डिग्री कॉलेज के प्रवक्ता ने बतायी। पहले तीन प्रवक्ताओं ने अपने देश में जाकर इनकी शिकायत की। उस प्रवक्ता ने कहा। सत्य का विरोध मैं सहन नहीं कर सकता। अतः उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। इस प्रमाण से ईसाई धर्म वैष्णव धर्म की एक शाखा ही है। इस बात को श्री स्वामी राम तीर्थ जी ने भी "कम्प्लीट वर्क्स" के "इण्डिया दि मदरलैंड" नामक पुस्तक के सातवें भाग के पंचम संस्करण जो १९३२ ई. में प्रकाशित हुआ था। उसके पृ. ८६ से लेकर ११८ तक श्री स्वामी राम तीर्थ जी के अमरीका में दिये हुये २९ जुलाई, १९०४ ई. के भाषण से उद्धृत की है।

इसमें स्वामी राम तीर्थ जी ने रूसी लेखक "निकोलस नोटोविच" की फ्रांसीसी भाषा में लिखी पुस्तक की चर्चा की है। जिसका अंग्रेज़ी में अनुवाद "दि अन नोअन लाइफ आफ जीसस" में हुआ है।

यही बात कल्याण के गीता तत्त्वांक अगस्त १९३९ में मुद्रित महात्मा श्री बालकराम जी विनायक ने भी लिखी है।

जगद् गुरु जी ने ३० वर्ष की आयु में वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने योग साधना करते हुये अथर्ववेद में से समाधि भाषा से प्राप्त होने वाली गणित विद्या का

अनुसन्धान किया था। इस पर महाराज जी ने निजी सूत्रों की रचना की थी, जो कि "माडर्न वेस्टर्न मैथेड" को मात करने वाली अति सुगम रीति है। इसका अध्ययन आज कल लन्दन के स्कूल कॉलेजों, वाशिंगटन, न्यूयार्क आदि में कराया जाता है। भारत में भी काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में इसका प्रचलन है। किन्तु आजकल के संकीर्ण नेताओं ने निकाल दिया है। सुना जाता है कि संसार में कम्प्यूटर सिस्टम भी श्री महाराज की देन है। स्वामी जी को अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग "मैंथेमीटिशियन शंकराचार्य" कहते थे।

एक बार महाराज जी ने गणित विषय पर हिन्दू विश्व विद्यालय में चार दिन भाषण किया। एक पांचवी कक्षा के विद्यार्थी को श्याम पट पर खड़ा करके ऊपर सूत्र लिखा। फिर उसी बालक से गणित का अति कठिन प्रश्न हल करवा दिया। जिसको देखकर काशी के बड़े-बड़े गणितज्ञ प्रोफैसर चकित हो गये।

वर्तमान पुरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज ने लखनऊ में श्री गीता सत्संग भवन की गीता जयन्ती में महाराज श्री की प्रशंसा करते हुये कहा था कि "वे देशी विदेशी अठारह भाषाओं के महा पण्डित थे, ज्योतिष के गणित तथा फलित में सिद्ध हस्त थे। जिसकी जन्म कुण्डली न हो, ताम्बे का डबल पैसा सुपारी के एक नीचे तथा एक ऊपर रखकर जन्म कुण्डली बना देते थे तथा किसी का चित्र देखकर जन्म कुण्डली बना लेना तथा जन्म कुण्डली के आधार पर चित्र बना देना उनके बायें हाथ का खेल था। वे जीवन पर्यन्त अपने को विद्यार्थी मानते रहे।

॥ इति श्री गुरु. वं. पु. कलि. ख. तृतीय परि. पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

धर्म तथा विज्ञान

स्वामी जी कहा करते थे, कि सिक्के के दो पहलुओं के समान धर्म तथा विज्ञान को अलग नहीं किया जा सकता। विज्ञान के बिना धर्म लंगड़ा है और धर्म के बिना विज्ञान घातक है। इंजन का दृष्टान्त देते हुये कहते थे कि जैसे इंजन बिना ब्रेक व भाप के नहीं चल सकता। यदि ब्रेक ठीक नहीं भाप न हो तो गाडी नहीं चलेगी। भाप है, ब्रेक नहीं, तो गाड़ी टकरा जाएगी। ऐसे ही मनुष्य में हृदय भाप है बुद्धि ब्रेक है। दोनों ठीक होनी चाहिये।

प्रारब्ध के सम्बन्ध में घोड़े का दृष्टान्त देते थे। कहते थे यदि कोई घोड़ा पेड़ से बंधा है तो जितनी लम्बी रस्सी है उतनी ही हलचल करेगा। दूसरा घोड़ा छोटी रस्सी से बंधा है। वह उतना स्वतन्त्र नहीं। यदि दोनों घोड़ों में से कोई घोड़ा ताकत लगातर रस्सी या पेड़ तोड़ दे तो भाग सकता है। इसी प्रकार मनुष्य भी संचित कर्म रूपी रस्सी से बंधा है। वह ज्ञान रूपी अग्नि में उसे जलाकर मुक्त हो सकता है।

संन्यासी जीवन

सन् १९१९ में जब महाराज श्री शृंगेरी मठ में रहते थे। उस समय शारदा द्वारका पीठ प्रभास क्षेत्र के शंकराचार्य श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज शृंगेरी आये। शृंगेरी मठ के जगद् गुरु तथा द्वारका के जगद् गुरु दोनों में नवीन साधक के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ। इनका स्वभाव, विद्या तथा ज्ञान देखकर संन्यास के लिये कहा। किन्तु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। उत्तर में कहा कि मैं संन्यास वृत्ति में रहना चाहता हूं। वस्त्र बदलने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु दोनों जगद् गुरुओं के विशेष आग्रह से इन्होंने संन्यास लिया। महाराज जी का पूर्वाश्रम का नाम 'व्यंकटरमन' था। इनको सरस्वती की उपाधि प्राप्त हो चुकी थी। अतः लोग प्रो. सरस्वती रमन कहा करते थे। १४ जुलाई, १९१९ . में काशी जी में द्वारका पीठाधीश्वर त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज ने विधिवत् संन्यास दिया। इनका योग पट्ट "भारती कृष्ण तीर्थ" रखा। स्वामी जी सम्पूर्ण शास्त्रों के विशेषज्ञ थे। संन्यास से पूर्व भी धर्मशास्त्रों, दर्शनों तथा वेदान्त पर उपदेश किया करते थे। संन्यास के बाद विशेष प्रचार किया। सन् १९२१ में शारदा पीठाधीश्वर का स्वास्थ्य अधिक खराब होने लगा। तब इन्होंने शंकराचार्य बनाना चाहा। इन्होंने अस्वीकार कर दिया। क्योंकि उस समय शारदा मठ में श्री स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी से पहले ही इनसे पूर्ववर्त्ती आचार्य श्री माधव तीर्थ जी के समय से ही बड़ौदा के महाराज 'सर सयाजी राव गायकवाड़" के साथ धार्मिक मत भेद के कारण कोर्ट में केस चलता था। बड़े महाराज जी का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। वे सब भाषाओं में कुशल थे। उस झगड़े को शान्त करने के लिये सिंहासन पर बिठाया। चूंकि उस समय ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो वेदादि शास्त्रों के अतिरिक्त वर्तमान काल का भी विशेषज्ञ हो। स्वामी जी में दोनों विशेषतायें थीं। इनको गद्दी पर बैठने से पहले इस बात का ज्ञान नहीं था। पता चलने पर अति दुःखी हुये।

इन्होंने शृंगेरी जाकर यहां के जगद् गुरु जी से कहा मैंने संसार के सभी भोगों का त्याग किया तथा पिता की अतुलित सम्पत्ति का त्याग करके संन्यास लिया है। अब मैं संन्यास लेकर कोर्ट में केस करूं। यह संन्यास के विरुद्ध है। तब गुरु जी ने समझाया कि "यह झगड़ा भौतिक सुख के लिये नहीं है। परन्तु आद्य शंकराचार्य के 'महानुशासनम्' तथा 'मठाम्नाय' के अनुसार है। शंकराचार्य के चुनने का अधिकार सनातनी भक्तों को है। परन्तु सरकार सनातनियों का अधिकार छीन रही है। अतः सनातन धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिये यह काम तुम्हें करना चाहिये। ज्ञानियों की प्रारब्ध तीन प्रकार की होती है। १. स्वेच्छा प्रारब्ध, २. अनिच्छा प्रारब्ध, ३. परेच्छा प्रारब्ध। अतः आपको अनिच्छा या परेच्छा प्रारब्ध समझ कर कार्य करना चाहिये।"

इन्होंने गुरु जी की आज्ञा शिरोधार्य करके ३६ वर्ष तक केस लड़ा। अनेकों विघ्न बाधायें आईं। अन्त में स्वामी जी की विजय हुई। सरकार को मानना पड़ा कि कोई भी आचार्य धार्मिक जनता की इच्छानुसार ही धर्माचार्य पद पर बैठ सकता है। आप सन् १९२१ से १९२५ तक इस पद पर रहे। स्वामी जी अधिक समय प्रभास क्षेत्र के शारदा मठ में रहे। इसी बीच पुरी पीठाधीश्वर परम विरक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मधुसूदन तीर्थ जी महाराज अति अस्वस्थ हुये। उनकी दृष्टि में इनको छोड़कर दूसरा कोई संन्यासी नहीं बचा। उन्होंने कई बार अनुरोध किया परन्तु आपने कहा कि मैं कहां-कहां रहूंगा। जब उनकी अत्यन्त दयनीय असहाय दशा देखी तब आपने स्वीकार किया। परम वीतराग सम्पूर्ण दैवी सम्पदा के गुणों से सम्पन्न केरल में दुर्वासा पुरम् के स्वामी जी के शिष्य अनन्त श्री पूज्य पाद "स्वरूपानन्द तीर्थ" जी महाराज को प्रभास में आचार्य पद पर नियुक्त किया। आप गोवर्द्धन मठ में विराजमान हुये। ८—१० वर्ष के भीतर ही श्री स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ जी ब्रह्मीभूत हो गये। तब दुर्वासा पुरम् वाले स्वामी जी के दूसरे शिष्य "अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ" जी महाराज को शारदा मठ पर अभिषिक्त किया। कालान्तर में इन्हीं से ब्रह्मीभूत वर्तमान पुरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने संन्यास लिया। सच्चिदानन्द तीर्थ जी ने ही वहां पर इनको नियुक्त किया। श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ जी से व्याकरण का अध्ययन किया। श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी पुरी में सन् १९२५ से १९६० तक ३५ वर्ष आचार्य पद पर रहे। शंकराचार्य होते हुये भी केवल दो ब्रह्मचारी रखते थे। एक सामान लाता था

दूसरा भिक्षा बनाता था। शंकराचार्यों को प्रवास काल में सिंहासन छत्र आदि रखने पड़ते हैं। स्वामी जी को यह पसन्द नहीं था। इन्होंने अपने गुरु जी से कहा—उन्होंने कहा कि पीठाधीश्वर के लिये परमावश्यक है। जब तक गुरु जी रहे तब तक रखा। उनके ब्रह्मीभूत होने पर छोड दिया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे, षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

खिलाफत आन्दोलन में स्वामी जी का सहयोग

सन् १९२१ ई. में रावलपिंडी तथा सिन्ध में आन्दोलन हुआ। आपने उसमें भाग लिया। लाहौर, कराची, रावलपिंडी में राज धर्म, प्रजा धर्म, हिन्दू, मुस्लिम एकता पर प्रवचन करते थे। वे अपने भाषणों में कहते थे। शंकराचार्य जगद् गुरु हैं। जगत् में केवल हिन्दू ही नहीं रहते। मुस्लिम सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैन, बौद्ध इन सबके यह गुरु हैं। जिसको संसार का प्रत्येक व्यक्ति माने, वह 'जगद् गुरु' है। अतः स्वामी जी के प्रति सिक्खों में भी 'गुरु नानक देव' जैसी श्रद्धा थी। मुसलमानों में मोहम्मद साहब जैसी इत्यादि। प्रत्येक मतावलम्बी इनसे शंका करता था। उसी के धर्मशास्त्र के अनुसार उत्तर देते थे। संन्यासियों तथा दशनामियों, निर्मल, उदासी, नाथ, हिन्दू, मुस्लिम, सनातन, आर्य समाज आदि के शास्त्रार्थों का जब समाधान नहीं होता था। तो इनको निर्णायक बनाते थे। इनका निर्णय दोनों पक्षों को मान्य होता था। बड़े-बड़े सम्मेलनों में अनेकों धर्माचार्य आते थे। जगद् गुरु शंकराचार्य तथा विद्या के नाते इनका आसन ऊंचा लगाया जाता था। वे आकर बराबर बैठने का ही प्रयास करते थे। आचार्यों के अधिक अनुनय विनय करने पर ही उच्च आसन स्वीकार करते थे। दो पक्षों के विवाद में इनके समझाने पर भी यदि कोई नहीं मानता। दुराग्रह वशात् लड़ाई झगड़ा करते तो आप एकदम मौन हो जाते थे। वे कहा करते थे स्व धर्म की रक्षा करते हुये पर धर्म की भी रक्षा करनी चाहिये। हिन्दू वेदों, मुसलमान, कुरान तथा सिख गुरु ग्रन्थ साहब के अनुसार आचरण करें। सरकार ने एक वर्ष जेल में रखा। इनके भाषण पर प्रतिबन्ध लगाया। परन्तु इन्होंने कोई चिन्ता नहीं की। जेल में ही आपने वैदिक गणित लिखा। जेल में भी यह गीता पर प्रवचन करते थे। सुपरिण्टेन्डेन्ट जेलर रोज कथा सुनने आता था। खाली समय में स्तोत्रों की रचना

तथा भागवत का पाठ करते थे। जेल से छूटते समय लोगों की अपार भीड़ थी। पत्रकार चित्र पर चित्र ले रहे थे। आप सीधे माधव बाग बम्बई में पहुंचे। वहां इनका स्वागत किया गया। उस समारोह में स्वामी जी के शृंगेरी के गुरु शिवा अभिनव नृसिंह सच्चिदानन्द भारती जी तथा परमगुरु भी उपस्थित थे। दोनों गुरुओं ने आशीर्वाद दिया।

जगद् गुरु जी की दिनचर्या

यह ब्राह्म मुहूर्त में तीन बजे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर ध्यान, पूजा में बैठ जाते थे। छः बजे तक पूजा होती थी। ७ बजे भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद लेते थे। भगवान् को अर्पण किये बिना जल तक नहीं लेते थे। ७ से ९ बजे तक विश्राम। ९ से ११ तक दर्शनार्थियों से वार्तालप ११.३० बजे मध्याह्न स्नान सन्ध्या पूजन। १२.३० बजे भिक्षा में बिना नमक के उबली हुई सब्जियां। फिर २ से ४ बजे तक लेखन कार्य। इस समय मौन रहते थे। ४ बजे के बाद पठन-पाठन। फिर उपदेश होता था। फिर सायं संध्या पूजा। रात्रि में दूध, फल, मेवा आदि लेते थे। तीन घण्टे रात्रि में सोते थे। भक्तों के पत्रों का उत्तर स्वयं देते थे।

जगद् गुरु जी सन् १९५२ में नागपुर आये थे। वहीं पर उनकी परम प्रिय शिष्या मंजुला त्रिवेदी ने अपने पतिदेव चिम्मन लाल त्रिवेदी के साथ प्रथम भाषण सुना। दम्पति नित्य प्रति उनके भाषण में जाते थे। उत्तरोत्तर दोनों की उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती गयी। दोनों ने महाराज से दीक्षा ली। दोनों ने अपना जीवन स्वामी जी को समर्पित कर दिया। मंजुला गुजरात की रहने वाली थी। इन्होंने 'मेरे गुरुदेव' नामक पुस्तक में अपने गुरुदेव का चरित्र लिखा है। उसी के आधार पर यह जीवन वृत्त लिखा जा रहा है। स्वामी जी ने १९५२ ई. से १९५४ ई. तक नागपुर में चातुर्मास्य किया। नागपुर में उस समय के जस्टिस सिन्हा बाबू की कोठी में किया। सन् १९५५ से ५९ तक के चतुर्मास्य जमीन लेकर 'विश्व निर्माण संघ भवन नागपुर' में किये। यह स्थान स्वामी जी की स्वास्थ्य की दृष्टि से एकान्त था। इसके एक ओर हनुमान जी का मन्दिर सामने महादेव जी का मन्दिर तथा "तैलंग वाड़ी" नाम का एक बड़ा भारी बगीचा है। वे कहा करते थे कि वक्ता कहने के पहले उसे अपने जीवन में लाये। अपने पास काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को न फटकने दे। जीवन में सुख-दुःख तो आगमापायी हैं। बाहर की वस्तुओं में सुख नहीं है। हमारा लक्ष्य सच्चिदानन्द स्वरूप है। ब्रह्म वेत्ता यति को कर्मठ होना चाहिये।

जगद् गुरु जी को पढ़ाने वाले 'वेदम् वेंकट शास्त्री' जी को जब यह पता चला कि मेरा शिष्य जगद् गुरु शंकराचार्य हो गया है। ब्रिटिश सरकार के आगे नहीं झुका। बल्कि उसे झुका दिया है। वे बड़े प्रसन्न हुये। २७-१-२२ ई. को उन्होंने एक पत्र लिखा जो निम्न प्रकार है—

प्रिय जगद् गुरु भारतीय कृष्ण तीर्थ स्वामिन् ॐ नमो नारायणाय।

भगवत् कृपा से आपका पत्र प्राप्त हुआ। पढ़कर मैं आनन्द से भरपूर हो गया। इन दिनों के समाचार पत्रों में मैंने ऐसी पंक्तियां पढ़ीं, जिससे मेरा मन गर्व से भर गया। संसार को पता हो गया कि मेरे बच्चे ने संसार की सबसे बड़ी शक्ति के प्रति अंग्रेज़ी शासन के मजिस्ट्रेट के प्रति खड़े होने में इन्कार करके यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य शक्ति की अपेक्षा परमात्म शक्ति में कितना बल है। ऐसा करके आपने जगद् गुरु के गौरव की रक्षा की है। आपके प्रति आगे कोई कार्यवाही न करके अपना बचाव किया है।

हे स्वामिन् ! आपकी वाणी में साहस, निर्भयता, लोक हित की कामना, अंग्रेज़ी तथा संस्कृत आदि भाषाओं पर पूर्ण अधिकार है। इन विशेष गुणों से मैं अपने प्रतिभाशाली पुत्र को पहचान गया। जब आपका पत्र डाक से मिला। तो मेरे नेत्र आनन्द से भर गये। अपने अनुमान का समर्थन पाकर, अपने आप को धन्य माना।

आप जिस पद पर हैं। अपनी प्रतिभा तथा नैतिक क्षमता के कारण उस पद के योग्य बहुत पहले से ही थे। मैं अति प्रसन्न हूं कि आप साधारण जगद् गुरुओं के समान न होकर शृंगेरी मठ के १३वें शंकराचार्य पंचदशी के रचयिता स्वामी विद्यारण्य मुनि के समान अपने धार्मिक कर्त्तव्यों के साथ-साथ राजनैतिक कर्त्तव्यों को भी पूरा किया। आप मानव मात्र के गुरु हैं। अतः मनुष्यों को अनिवार्य रूप से समस्त कर्त्तव्यों के विषय में आप से ही मार्ग दर्शन प्राप्त करना है। धर्मार्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति आप से ही होगी। आप चिर काल तक संसार के निखिल कल्याण में सदैव लगे रहें।

सहस्नेह, आपका, वेदम् वेंकट राम शास्त्री, द्वारा, पेन्टाचलैय।

G.A.V.L. हाई कोर्ट वकील, नेल्लूर।

महाराज श्री केवल धर्मोपदेशक तथा दार्शनिक ही नहीं थे। वरन् संगीत, खेल, कूद, क्रिकेट आदि में भी रस लेते थे।

सुप्रीम कोर्ट की पेशी के सम्बन्ध में कानपुर के एक शास्त्री जी ने बताया था कि उनका नम्बर आने पर चपरासी ने पुकारा। महाराज जी का कोर्ट खुलने से दो घंटे पहले ही मैदान में सिंहासन वगैरह लग गया था। उस समय के बड़े-बड़े देश के नेता, अधिकारी, वैज्ञानिक, प्रोफैसर प्रणाम करके बैठते जाते थे। जगद् गुरु जी का शंका समाधान आरम्भ हुआ। चपरासी ने कई बार पुकारा। किन्तु वे उपस्थित नहीं हुये। हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट के जज भी वहां बैठे थे। हजारों की भीड़ थी। चपरासी ने बाहर निकल कर देखा। न्यायाधीश को सूचना दी। न्यायाधीश चलकर वहां पहुंचा। दण्डवत् प्रणाम करके नीचे बैठ गया। वहीं पर बैठे-बैठे उनसे सारी कार्यवाही की तथा क्षमा मांगी। प्रार्थना की कि आप भविष्य में कोर्ट न आवे। आवश्यकता पड़ने पर न्यायाधीश स्वयं जाएगा। इस प्रकार का वर्चस्व महाराज जी का था। सम्पूर्ण जगत् की आद्य शंकराचार्य के प्रति जो श्रद्धा थी वैसी ही उनमें थी। शंकराचार्य के सिंहासन पर बैठकर उनकी शोभा नहीं हुई। वरन् उन्होंने सिंहासन की शोभा बढ़ाई। वे मानापमान, क्षुधा पिपासा तथा शारीरिक कष्ट को मुसकराते हुये सहन करते थे। निकटवर्त्ती व्यक्ति भी उनके कष्ट को नहीं जान पाता था। पुरी का केस भी कई वर्ष लड़कर उन्होंने विजय प्राप्त की।

महाराज जी जब गोवर्द्धन पीठ पर अभिषिक्त हुये तब उत्तराधिकार के लिये इन पर केश चलाया। विपक्षियों ने पांच आक्षेप किये थे।

१. यह सनातनियों के शंकराचार्य होते हुये भी इन्होंने आन्दोलन में मुसलमानों को सहयोग दिया।

२. वेदान्त के सिद्धान्तों का उत्तर देते समय आचार्य परम्परा का त्याग करके आधुनिक ढंग से लोगों को समझाते हैं। यह ठीक नहीं।

३. इन्होंने मुसलमानों की मस्जिद के पास जाकर भाषण दिया। बिना भेद भाव के मुसलमानों के साथ घूमते हैं तथा उनसे भेटें स्वीकार करते हैं।

४. आर्य समाज के सिद्धान्तों का विरोध नहीं करते।

५. कई बार जेल यात्रा की है अतः गद्दी से उतार देना चाहिये। इन्होंने कोर्ट में सभी प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दिया। (जैसे महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर को अपार कष्ट भोगना पड़ा। अन्त में विजय धर्मराज की ही हुई। उसी प्रकार इनकी भी कष्ट प्रद विजय हुई।)

आप में राग द्वेष लेश मात्र भी नहीं था। शंकराचार्य होने का अपार दुःख था। उनकी धारणा थी कि अगर मैं शंकराचार्य न होता तो अधिक कार्य कर सकता था। किसी ने पूछा कि आप शंकराचार्य क्यों बने? तब उत्तर में कहा मैं बना नहीं, बनाया गया। मंजुला ने पूछा—आपको कष्ट कौन देता है? सभी सम्मान पूजा करते हैं। आप जहां भी जाते हैं राजसी स्वागत होता है। तब जगद् गुरु जी ने उत्तर दिया—"तू इस बात को अभी समझती नहीं। जब मेरा शरीर नहीं रहेगा। मेरे बक्सों के कागज देखकर तू रोयेगी। जब सारे रेकार्ड पढ़ेगी तब पता चलेगा।" ऐसा ही हुआ।

॥ इति श्री गुरु वंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे, सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

एक बार महात्मा गांधी इनसे मिलने आये। गोहत्या बन्दी आन्दोलन में इनकी सहायता चाही। स्वामी जी ने सहर्ष स्वीकार किया। कुछ समय बाद महात्मा गान्धी ने कहा, मेरे विचार में पहले भारत स्वतन्त्र होना चाहिये। देश स्वतन्त्र होने पर अपना राज्य होगा। गो हत्या स्वयं बन्द हो जाएगी। स्वामी जी इस बात से सहमत नहीं हुये। उनसे अलग हो गये।

वाणी का संयम

जगद् गुरु जी की वाणी सिद्ध थी। उनका एक-एक शब्द कल्याणकारक था। वे कहा करते थे कि बोलने से पूर्व विचार करना चाहिये। जिससे अनुचित शब्द न निकले। ऐसा शब्द नहीं कहना चाहिये जिससे चोट पहुंचे। विचार में विकार शिथिलता का द्योतक है। किसी की निन्दा, चुगली न करें। आज तक मेरे मुख से ऐसा कोई शब्द नहीं निकला, जिसके कारण मुझे पश्चात्ताप करना पड़ा हो।

जगद् गुरु जी वर्णाश्रम व्यवस्था के कट्टर उपासक थे। वे कहा करते थे कि सनातन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन करने का हमें अधिकार नहीं है। वे किसी स्त्री पुरुष को चरण छूने नहीं देते थे। चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र विराट् भगवान् के मुख भुजा, पेट तथा चरण हैं। जैसे किसी अंग को कष्ट होने पर सारे शरीर को पीड़ा होती है। वैसे ही विराट् भगवान् के किसी अंग को पीड़ा देने पर विराट् भगवान् को पीड़ा होती है। परन्तु अंगों का अपना-अपना विशेष स्थान है। शरीर में पैर आदि ऐसे अनेकों अंग हैं। जिनको छूकर हाथ

धोने पड़ते हैं। उत्तम अंग निम्न अंगों के समान नहीं हो सकते। ऐसे ही उत्तम वर्ण और निम्न वर्ण का समान व्यवहार नहीं हो सकता। जैसे झाडू घर की सफाई करता है। न करे तो घर गन्दा रहता है। उसके रखने का निश्चित स्थान है। सोफा आदि पर नहीं रखा जा सकता। वैसे ही प्रकृति माता ने ब्राह्मण का शरीर तपस्या, त्याग, नियम, संयम के लिये बनाया है। वह भयंकर शीत, कठोर परिश्रम तथा मजदूरी नहीं कर पाता, बौद्धिक कार्य करता है। यह कार्य निम्न वर्ग का है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में अपने-अपने वर्ण के माता-पिता के छः तत्त्व, चर्म, खून तथा मांस माता के तथा हड्डी, मेद, मज्जा पिता के अंश है। वंश परम्परा से आये हुये गुण दोष शारीरिक तथा मानसिक रोग परम्परा से पाये जाते हैं। अतः चारों वर्ण जन्म से हैं। कर्म से नहीं। यदि कर्म से होते तो हम दिन रात में पांचों वर्णों का कार्य करते हैं। प्रातः शौच जाते समय मल साफ करते हैं। घर में झाडू लगाते हैं। यह पंचम वर्ण का काम है। कपड़ा धोते हैं तब धोबी का काम करते हैं। जब कुछ लेन देन करते हैं तो वैश्य का। जब अंगों की रक्षा करते हैं तो क्षत्रिय का। पूजा पाठ करते हैं तो ब्राह्मण का कर्म करते हैं। कर्म से वर्ण व्यवस्था मानने पर दिन में कई बार जाति बदलती है। अतः वर्ण व्यवस्था जन्म से है कर्म से नहीं। एक ही वर्ण के माता-पिता की सन्तान उसी वर्ण की कही जाती है। यदि ब्राह्मण में ब्राह्मणोचित तप, ज्ञान आदि है तो वह पूजनीय है। जिस ब्राह्मण में उपरोक्त गुण नहीं है वह नाम मात्र का ब्राह्मण है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती। यदि इसके विपरीत शूद्र सात्विक है तो समाज में उसका सम्मान होता है। स्वभाव से ही मूर्ख ब्राह्मण बालक भी मंत्रों को सरलता से पढ़ लेता है। शुद्ध क्षत्रिय बालक जन्म से ही निर्भीक प्रकृति का होता है। वणिक् पुत्र गणित में चतुर तथा शूद्र बालक शरीर से हृष्ट-पुष्ट, परिश्रमी तथा मशीनरी कार्य में निपुण होता है। शूद्र महा परिश्रम करके भी वेद मंत्र ठीक से नहीं पढ़ सकता। अतः वर्ण व्यवस्था जन्म से ही मानना ठीक है।

छुआ-छूत पर विचार

जिस प्रकार शारीरिक रोगों के कीटाणु रोगी के पास बैठने, छूने, वार्तालाप करने, सूंघने, चखने, खांसने आदि से अथवा रोगी के वस्त्रों का उपयोग करने से मलेरिया, हैजे आदि रोग के परमाणु निरोगी के शरीर में संक्रमित होते हैं। इसलिये डॉक्टर लोग रोगी को छूने के बाद साबुन से हाथ साफ करते हैं। सर्जन लोग भी किसी रोगी का आपरेशन करने के पहले रोगी

के तथा अपने कपड़े बदलते हैं। जिससे संक्रामक रोगों के कीटाणुओं का संक्रमण न होने पावे। वैसे ही मानसिक रोगों के परमाणु काम, क्रोध आदि एक मन से दूसरे मन में प्रवेश करते हैं। इसी सिद्धान्त को लेकर सनातन धर्म के वेदों, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में छुआ-छूत का विस्तार से वर्णन किया है। भौतिक रोगों का स्थूल शरीर से, मानसिक रोगों का मन से सम्बन्ध है।

मानसिक रोगों का रहस्य

शारीरिक रोगों के समान मानसिक रोगों के भी सत, रज और तम के परमाणु होते हैं। सात्विक परमाणुओं में शम, दम, तितक्षा, श्रद्धा, तप, त्याग, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि होते हैं जो सात्विक महापुरुषों से निकल कर साधारण पुरुषों में प्रविष्ट होकर उनके मन, बुद्धि आदि में प्रकाश, सत्ता, स्फूर्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति कर पाते हैं। इनकी प्राप्ति तपस्थली, तीर्थ-स्थानों, गुफा आदि में भजन करने से होती है। अथवा वीतराग तपस्वी, ज्ञानी भक्त महात्माओं के दर्शन तथा सेवा से प्राप्त होती है। विष्णु पुराण में कहा है कि तीन वर्ष तक निरन्तर यदि ऐसे महात्मा के सम्पर्क में रहता है तो उन्हीं के समान हो जाता है।

रज और तम के परमाणु

इसके विपरीत यदि मनुष्य कुसंग में आकर कामी, क्रोधी, लोभी, मोही रजोगुणी तमोगुणी पुरुष का तीन वर्ष तक सम्पर्क रखता है तो उनसे वार्तालाप, स्पर्श तथा पात्रों का उपयोग करने से वैसा ही हो जाता है। तमो गुण के परमाणु हमें आलसी, प्रमादी, निद्रालु तथा मूढ़ बनाते हैं।

इन सब बातों का विचार करके ऋषियों ने चाण्डाल, अन्त्यज आदि के सम्पर्क से दूर रहने को कहा है। यह छुआ-छूत घृणा मूलक नहीं है प्रत्युत वैज्ञानिक है। अपनी ही परमपूजनीय माता यदि रजोधर्म से युक्त हो जाती है, तो पुत्र आदि के लिए उनका स्पर्श, भोजन तथा वार्तालाप वर्जित है। शारीरिक रोगों के कीटाणुओं की अपेक्षा मानसिक रोगों के कीटाणुओं की गति तीव्र तथा सूक्ष्मतम है। हम इसे किसी वैज्ञानिक यन्त्र से नहीं देख सकते। परन्तु ऋषियों ने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा रूपी दूरवीक्षण यन्त्र के द्वारा समाधि में प्रत्यक्ष अनुभव किया है। उनके भयंकर परिणामों के देखकर धर्मशास्त्रों में लिखा है। इन आज्ञाओं का पालन करने में ही हमारा हित है। हिन्दुओं की छुआ-छूत समाज का कुष्ठ नहीं है। जैसा सरकार जनता में प्रचार

करती है । यह वैदिक विज्ञान मूलक है । स्थूल बुद्धि में यह बात नहीं बैठ पाती । समाज तथा सरकार को यह बातें माननी चाहिएं ।

भाषा विज्ञान

हमारे समस्त वेदादि शास्त्रों की भाषा देव भाषा (संस्कृत) है । देवताओं को अमर कहते हैं । अतः संस्कृत अमर भाषा है । परन्तु आज का सिर फिरा मूढ़ मानव इस अमर भाषा को मृत कहता है । वास्तव में जो लोग इसको मृत भाषा कहते हैं, वे लोग अपने धर्म, आध्यात्मिकता, संस्कृति तथा चरित्र बल से हीन मृत्यु की ओर भाग रहे हैं । इसीलिए वे अमर भाषा को मृत भाषा कहते हैं । जैसे गाड़ी के भागने पर गाड़ी को भागता देखकर उसमें बैठे हुए लोग अपने को नहीं वरन् पेड़-पौधों को भागता समझते हैं । परन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि पेड़-पौधे नहीं भागते, स्वयं भागते हैं । वैसे ही आत्मज्ञान विहीन आज का मनुष्य इस ज्ञानामृत से विमुख होकर अज्ञान रूपी मृत्यु की ओर बड़ी तेज़ी से भाग रहा है । तमोगुण से आच्छादित बुद्धि अज्ञान रूपी मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ अमर भाषा को मृत कहता है । अतः अमर होने के लिए सब को अमर भाषा का अध्ययन करना चाहिए ।

जगत् गुरु जी कहते थे संस्कृत संसार की सभी भाषाओं से सरलतम तथा कठिनतम दोनों ही है । यदि इसको व्याकरण के बन्धनों से मुक्त करके सन्धियों तथा समास विग्रह आदि को समझ लें तो सरल हो जाती है । इनको मिला देने से कठिन हो जाती है । हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं की विशेषता यह है कि इनमें जो अक्षर लिखेंगे उसी का उच्चारण होगा । परन्तु उर्दू, अरबी, फारसी, इंग्लिश, तमिल आदि भाषाओं में लिखा कुछ जाता है, पढ़ा कुछ जाता है । अंग्रेज़ी में कुछ अक्षरों का पूर्ण उच्चारण होता है, कुछ साइलेंट रहते हैं । किसी-किसी अक्षर के लिए दो-तीन अक्षरों का प्रयोग करना पड़ता है । महाराज जी कहते थे कि जैसे शरीर में वात, पित्त, कफ तीन दोष हैं, ऐसे अंग्रेज़ी भी त्रिदोष युक्त है । जिसमें तीन दोष आ जाते हैं उसे सन्निपात रोग हो जाता है । ऐसे ही अंग्रेज़ी भी सन्निपात ज्वर से पीड़ित है । अंग्रेज़ी में राम शब्द RAMA लिखा जाता है । इसका उच्चारण हम रामा, रमा, रेमे, राम, चार प्रकार से कर सकते हैं । अतः अंग्रेज़ी के पढ़ने में आरम्भ में कठिनाई है किन्तु संस्कृत में कोई कठिनाई नहीं है । यदि हमें भाषा साहित्य पर प्रभुत्व प्राप्त करना है तो संस्कृत पढ़नी चाहिए । हमारे समस्त ग्रंथ संस्कृत में हैं ।

सन् १९५५ के चातुर्मास में दो दिन संघ भवन नागपुर में 'विश्व निर्माण संघ' का सम्मेलन हुआ। स्वामी जी की संरक्षता में इसकी अध्यक्षता सी० डी० देशमुख ने की। ७ जनवरी को तात्कालिक उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन तथा महाराष्ट्र के राज्यपाल श्री सीता रमैया दोनों ही नेता स्वामी जी को विद्यार्थी काल से जानते थे।

उसी वर्ष गोवर्धन पीठ के मैनेजर की हृदय गति रुक जाने से मृत्यु हो गयी। स्वामी जी को तुरन्त विमान से पुरी जाना पड़ा। वहां की व्यवस्था करके फिर नागपुर आ गए। एक ब्रह्मचारी को मैनेजर के पद पर नियुक्त किया। उस पर गुरु जी को पूर्ण विश्वास था। किन्तु इसी बीच में उसने हज़ारों लाखों का घपला किया। बाद में भक्तों ने उसकी पूर्ति की। अतः वे कहा करते थे कि हम व्यवहार में बिलकुल शून्य हैं। जो महाराज जी का वैदिक गणित का लेख था वह भी डाकौर में एक भक्त के घर में रखा था। पिता की मृत्यु के बाद उनके लड़के ने गायब कर दिया। तब इन्होंने दोबारा चार-पांच महीने में उसको लिखा। निरन्तर आँखों के परिश्रम से एक आँख में मोतिया बिन्दु हो गया। तब आप्रेशन के लिए अस्पताल में भर्ती हुए।

नेत्रों की चिकित्सा

पहले गुरु जी आप्रेशन नहीं करवाना चाहते थे। बहुत समझाने पर कठिनाई से तैयार हुए। उन्हीं दिनों राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद नागपुर में उद्घाटन के लिए आये थे। वे स्वामी जी के दीक्षित शिष्य थे। गुरु दर्शन के लिए आश्रम में पहुंचे। जब आप्रेशन का पता चला तब प्रार्थना की कि आप दिल्ली चलिए। मेरी आँखों का आप्रेशन करने के लिए पटना के प्रसिद्ध डॉक्टर डॉ० दुखन लाल आयेंगे। आप की आँखों का आप्रेशन वहीं हो जाएगा। स्वामी जी नहीं माने और नागपुर में ही आप्रेशन के लिए भर्ती हो गए। साधारण महात्मा समझ कर डॉक्टरों ने अवहेलना की। सात दीन बीत गए। तब चिम्मन लाल त्रिवेदी जी ने कहा कि यह स्वामी शंकराचार्य हैं। इनका मूल्यवान् समय क्यों नष्ट कर रहे हो। डॉक्टर ने कहा भर्ती करते समय आपने पहले क्यों नहीं बताया। टैस्टों के बाद २ मार्च को डॉक्टर केशवाचारी ने दाहिनी आँख का आप्रेशन किया। डॉ० चारी स्वामी जी के बड़े भक्त हो गए। डॉक्टर प्रति दिन दर्शन के लिए रूम में आते थे। दूसरी आँख का आप्रेशन भी इसी डॉक्टर ने किया। उस समय स्वामी जी की सेवा में दो विद्यार्थी थे। संयोग से सोये-सोये धोखे से आँख में इनका हाथ लग गया। बैन्डेज खुल गया। डॉक्टर ने खोल कर देखा तो आँख के पर्दे के टांके खुले

थे। तीनों ही चेम्बर ऊपर-नीचे फैल गए थे। डॉक्टर चारी के दिल को बड़ा धक्का लगा। स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस समय कोई बालक पास नहीं था। डॉक्टर ने कहा, अब तो आँख ठीक होना बड़ा कठिन है। उन्होंने परिश्रम करके अध्ययन किया। तब गुरु जी की आँख ठीक हुई। डॉक्टर लड़कों पर बहुत चिल्लाया। स्वामी जी ने कहा, जिसकी आँख खराब है वह शान्त पड़ा है, तू क्यों चिल्लाता है। पांच सप्ताह के भगीरथ प्रयत्न से आँख ठीक हुई।

इति श्री/गुरु वंश महापुराणे, कलियुग खण्डे तृतीय परिच्छेदे, अष्टमो अध्यायः ॥८॥

अथ नवमो अध्यायः

अमरीका यात्रा

नागपुर में अमरीका से एक दल जगद् गुरु जी के दर्शन के लिए पहुंचा। वे लोग उनके दर्शनशास्त्र अध्यात्म तथा गणित से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गुरु जी को अमरीका यात्रा का निमंत्रण दिया। सन् १९५७ से जाने की तैयारी हो रही थी। त्रिवेदी जी ने भारत सरकार के माध्यम से पत्र-व्यवहार द्वारा वहां की वेदान्त सम्बन्धी संस्थाओं का पता लगा लिया था। आँखों के आप्रेशन के पहले ही पासपोर्ट बन चुका था। वृद्धावस्था तक आँखों के आप्रेशन के कारण उनका स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। श्वास का रोग था। अतः सब भक्तों ने निर्णय किया कि सपत्नीक त्रिवेदी जी उनकी सेवा के लिए साथ जाएं। तीन मास का खर्चा तथा तीनों के टिकट की व्यवस्था करनी थी। अमरीका में रहने वाले 'लॉस एन्जिलस वेदान्त सोसाइटी' S.R.F. की प्रेज़ीडेन्ट श्रीमती दया माता ने बड़े उत्साह से प्रबन्ध किया। अमरीका में इनके प्रचार के लिए आद्य शंकराचार्य से सम्बन्धित साहित्य मांगा गया। वह भेजा गया और पूरे अमरीका में इसका प्रचार हुआ। भक्तों द्वारा प्रवास का प्रबन्ध हो गया किन्तु खर्चे का प्रबन्ध नहीं हुआ। भारत सरकार से पत्र-व्यवहार हुआ। सरकार ने उत्तर दिया कि डालर की स्थिति ठीक नहीं है। अतः कुछ काल के लिए यात्रा स्थगित की जाए। उस समय डॉक्टर सी०डी० देखमुख केन्द्रीय मंत्री थे। स्वामी जी ने जगद् गुरु शंकराचार्य के नाते राष्ट्रपति को पत्र दिया। भारत सरकार जब संस्कृति तथा नाटक के नाम पर डालर दे सकती थी तो 'वेदान्त फिलासफी' की यात्रा के लिए डालर क्यों नहीं देती। राष्ट्रपति ने उत्तर दिया कि आपको कितने डालर चाहिए।

उत्तर दिया ७५० । उनकी स्वीकृति आ गई । देशमुख ने कहा—उधर ठण्ड बहुत होती है । भारत में धोती आदि से काम चल जाता है । वहां के लिए गर्म कपड़े चाहिए । सारी तैयारी हो गई । २४ जनवरी सन् १९५८ ई० को अमरीका पहुंचे । न्यूयार्क में इनका विशेष स्वागत हुआ । दया माता ने उतरते ही स्वागत किया, पूजा की । इनके भाषण में किसी भक्त ने टिकट की बात चलाई । दया माता ने कहा—यहां पर जो पोप का स्थान है, वही भारत में शंकराचार्य का है । इनके भाषण पर टिकट लगाना घोर अपमान है ।

स्वामी जी ने पासपोर्ट पर ३५ वर्ष की आयु लिखाई थी । पिता के स्थान पर जगद् गुरु त्रिविक्रम तीर्थ जी का नाम लिखा था । जन्म भूमि काशी । चेकर ने पूछा, क्या आप किसी नवयुवक का पासपोर्ट चुरा कर लाए हो । तब इन्होंने उत्तर दिया, संन्यासी की आयु संन्यास से आरम्भ होती है । मुझे संन्यास लिए इतना समय हो चुका है । पत्रकारों ने इनसे कई प्रश्न किए । कुछ प्रश्न दार्शनिक थे । इनके उत्तर से उन्हें सन्तोष हुआ । पत्रकारों ने फिर पूछा—शंकराचार्य का अर्थ क्या है ? यह कोई उपाधि है या कुछ और ! ! आपके अमरीका आने का प्रयोजन क्या है ? शान्ति का सन्देश देने के लिए आप अमरीका ही क्यों आए, एशिया में क्यों नहीं गए ? इन सभी बातों का उन्होंने सन्तोषजनक यथोचित उत्तर दिया । इनके जीवन चरित्र के सम्बन्ध में भी प्रश्न किये । उत्तर में आप ने कहा कि धर्मशास्त्र संन्यासी को अपने पिछले आश्रम की बात बताने को मना करता है । राजनैतिक प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया । दया माता ने कहा—आप को बताना चाहिए, नहीं तो यहां के सम्वाददाता उल्टा-सीधा छाप देंगे । उन्होंने ने यति के सब नियम बता दिए । तब किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया । इनका सारा व्यय इसी संस्था ने वहन किया ।

दो माह बाद लन्दन गए । जाते समय दया माता ने एक बन्द लिफाफा दिया तथा लन्दन जाकर खोलने को कहा । वहां पर खोलने पर १०० डालर का एक नोट था । अमरीका के वाशिंगटन नगर में लेक्सीगटन यूनिवर्सिटी में विश्व शान्ति पर भाषण दिया । अनेकों विद्वानों से प्रश्न-उत्तर होते रहे । इनके भाषण में प्रत्येक धर्म के लोग आते थे । कैलेफोर्नियां तथा न्यूयार्क में रेडियो-टेलीविज़न में कार्यक्रम आए । न्यूयार्क में 'वेदान्त सोसाइटी', 'विवेकानन्द सेण्टर', 'रामकृष्ण सेण्टर', 'बुद्धिस्ट एकेडेमी' में प्रवचन हुए । वहां से लन्दन लौटने पर तीन-चार जगह जनता में भाषण हुए । बीच-बीच में कभी त्रिवेदी और कभी स्वामी जी का

स्वास्थ्य बिगड़ जाता था। ७ मई, १९५८ ई० में हम लोग बम्बई से कलकत्ता आ गए। वहां पर प्रेस वालों तथा भक्तों की भीड़ होने लगी। चटर्जी की कोठी में रुके।

जीवन सन्ध्या

स्वामी जी सन् १९५० से ही हृदय के रोगी थे। जितना चाहिए उतना विश्राम नहीं मिलता था। औषधि भी कम लेते थे। दर्द होने पर प्लुत प्रणव का उच्चारण करते थे। इस प्रयोग से दर्द शान्त हो जाता था। कभी-कभी प्रवचन में भी दर्द होने लगती थी, पर इस कष्ट को किसी को बताते नहीं थे।

उत्तराधिकारी की खोज

जुलाई १९५८ में चातुर्मास्य के लिए नागपुर आये। चश्मा नया होने के कारण लिखा-पढ़ी कम करते थे। उत्तराधिकारी के लिए पत्र-व्यवहार किया। उनकी इच्छा थी कि मैं अपने हाथ से उत्तराधिकारी का अभिषेक करके निश्चिन्त हो जाऊँ। पर जैसा चाहते थे, वैसा नहीं मिला। एक दण्डी स्वामी इन्हीं के सहपाठी वृद्ध हो चुके थे। उनका नाम श्री सच्चिदानन्द सरस्वती था। उनको इन्होंने योग्य समझा। काशी में रहते थे। जगद् गुरु जी स्वयं वाराणसी गए। उन्हें समझाया। वे उन्हीं के समान शान्त, अनेकों भाषाओं के ज्ञाता थे। संन्यास से पूर्व वे मैसूर विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफैसर थे। उन्होंने हाथ जोड़कर बड़े नम्रता पूर्वक कहा—आप मुझे ऐसी आज्ञा न दें। मुझे मठों का व्यवहार पसन्द नहीं है। वे पूर्ण वैराग्यवान् कर्मठ संन्यासी थे। मंजुला लिखती हैं कि गुरु जी के ब्रह्मलीन होने के बाद मैं ने भी काशी जा कर उनसे प्रार्थना की। किन्तु वे नहीं माने। परन्तु पूज्य पाद अनन्त श्री स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज ने हमें बताया था कि मैं जगद् गुरु जी तथा स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती जी को अच्छी तरह जानता था। बाद में काशी वाले स्वामी जी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और महात्माओं ने भी उनको फटकारा। इतने बड़े शंकराचार्य आपके पास स्वयं आए। आपने उन्हें निराश कर दिया। यह ठीक नहीं था। जगद् गुरु जी के जीवन काल में ही दुर्घटना से उनका शरीर शान्त हो गया। जगद् गुरु जी चाहते थे कि मेरा उत्तराधिकारी वेद वेदान्तादि शास्त्रों का पारंगत विद्वान् होना चाहिए। साथ ही अंग्रेज़ी पर भी पूरा अधिकार हो। क्योंकि वर्तमान काल में अंग्रेज़ी के बिना काम नहीं चल सकता। नयी पीढ़ी को समझाने के लिए नवीन तथा प्राचीन सभ्यता का समन्वय हो जिसमें ऐसा उनको कोई नहीं मिला। कोई विद्वान् है तो किसी का स्वभाव ठीक नहीं। किसी में वैराग्य का अभाव, किसी में यति के लक्षण नहीं पाए जाते।

एक दिन उनके तकिए के नीचे मंजुला को उत्तराधिकारी का कागज़ मिला। सुना है कि उसमें इक्कीस-बाईस लोगों के नाम थे। उनमें सर्वप्रथम नाम राजस्थान के पंडित राज गिरधर-शर्मा चतुर्वेदी का था। और भी कइयों के नाम थे। ऐसा भी सुना है कि उन्होंने तार देकर शारदा पीठाधीश्वर अभिनवसच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज को बुलाया। उन्हीं को मठ सौंप दिया था। वे जिसको चाहें उत्तराधिकारी नियुक्त करें। इसी लिस्ट में सातवां नाम पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री जी का था जो कि जयपुर संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य थे। लगभग चार-पांच वर्ष गद्दी खाली रही, बाद में सन् १९६४ ई० में सेवा निवृत्त होते ही जुलाई मास में शारदा पीठाधीश्वरजी से संन्यास लेकर धर्म सम्राट् पूज्य पाद स्वामी करपात्री जी की प्रेरणा से श्री पं० चन्द्रशेखर शास्त्री जिनका योग पट्ट जगद् गुरु शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ जी था, नियुक्त हुए।

अनन्त श्री स्वामी पुरुषोत्तम तीर्थ जी महाराज

अन्य मुख्य मठों के समान गोवर्द्धन मठ के भी अनेक उप-मठ हैं। उनमें से एक उप-मठ पर श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी ने संन्यास देकर श्री स्वामी पुरुषोत्तम तीर्थ जो को वहां के आचार्य पद पर नियुक्त किया। आप अनेकार्ष ग्रन्थों के विद्वान् तथा कुण्डली जागरण में निपुण थे। अनेक साधक शिष्यों का कल्याण किया।

इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे तृतीय प० नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

स्तोत्र काव्यों का संकलन

महाराज श्री जी ने कुछ स्तोत्रों की रचना शृंगेरी में की। कुछ की सन् १९२३ में जेल में की। इन सब के पुनः लेखन का विचार किया। उनके वैदिक ग्रन्थों के शोध पर कलकत्ता से पुस्तक प्रकाशित हुई थी। सन् १९८३ में उसका दूसरा संस्करण, मोतीलाल बनारसी दास काशी से प्रकाशित हुआ। ८ नवम्बर को त्रिवेदी बुरी तरह अस्वस्थ हुए। इसलिए काम में ढील पड़ गई। कालान्तर में उनकी मृत्यु हो गई। तीन घंटे के नित्य लेखन कार्य में नयी कापी तैयार की गई। हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत प्रवक्ता पं० रतीनाथ झा ने हिन्दी अनुवाद सहित स्तोत्रों को दो भागों में 'भारती कण्ठ हार' हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करवाया।

यह 'भारती विद्या भवन' बम्बई से प्राप्य है। स्तोत्र लेखन के समय वे बड़े प्रसन्न थे। कहते थे कि मुझे पिछले दिनों की स्मृति आ जाती है। जब मैं शृंगेरी में परम गुरु जी के चरणों में बैठ कर स्तोत्र लिख कर सुनाता था। परम गुरु जी प्रसन्न होकर कहते थे, तू सरस्वती का अवतार है। वे भावा-वेश में ऐसा अनुभव करते थे कि मैं शृंगेरी में 'परम गुरुदेव के चरणों' में बैठा लिख रहा हूं। जब दोनों गुरुओं ने शरीर छोड़ दिया तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। अब मैं हाथ में दण्ड लेकर किसको प्रणाम करूं। स्वामी जी के स्तोत्र नवधा भक्ति से भरपूर गुरुओं, तीर्थों तथा सभी देवी-देवताओं की स्तुति से भरे हैं।

हृदय शूल

त्रिवेदी जी की मृत्यु के बाद स्वामी जी का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता था। अतः डॉक्टरों ने उनके पास आने की किसी को अनुमति नहीं दी, क्योंकि प्रणाम करने पर नारायण कहने पर भी कष्ट होता था। १३ अक्तूबर, १९५९ को अर्धरात्रि में भयंकर जकड़न तथा मूर्च्छा आ गई। डॉक्टर को फोन किया गया। दूसरे दिन अपराह्न काल में होश आया। मूर्च्छा दूर होने के बाद पांच बजे मंजुला ने देखा। बैठे स्तोत्र लिख रहे थे। उसने बुरी तरह डांटा। उन्होंने धीरे से कहा कि आज का दिन खाली नहीं जाना चाहिए। मैं केवल चार श्लोक लिख कर लेट जाऊंगा। दूसरे दिन रात्रि में फिर श्वास की तकलीफ बढ़ गई। वैद्यक उपचार से कुछ ठीक हुए। रोग दिनों दिन बढ़ता गया। फेफड़ों में पानी भर गया। छः दिन बाद अस्पताल में होश आया। सर्जन ने पांच दिन परिश्रम करके फेफड़ों का पानी निकाला। बम्बई के शिष्य दौलत राम उन्हें देखने आए। उस समय स्वामी जी किसी-किसी को पहचानते थे। डॉक्टरों ने कहा था कि नागपुर में ठण्डक अधिक है। इन्हें गर्म देश में ले जाना चाहिए। वहां रखा जाए। दौलत राम ने बम्बई ले जाने का प्रयास किया। स्वामी जी ने इन्कार कर दिया। उत्तर में कहा कि जीवन भर मैं भीड़-भाड़ में रहा, अब एकान्त में शरीर छोड़ना चाहता हूं। तब दौलत राम ने कहा कि बम्बई में मैं आपको एकान्त स्थान में रखूंगा। वहां कोई नहीं जा सकेगा। बम्बई चले गए।

बम्बई प्रवास

बम्बई में नागपुर के ज़मींदार श्री बाबा साहिब घटाटे का सनशाइन में मकान था। सामने मैदान था। उस स्थान का बम्बई वालों को पता नहीं था। वहां रहने की व्यवस्था हो गई।

वहां उपचार आरम्भ हुआ। डॉ० तिवारी चिकित्सा करने लगे। धीरे-धीरे स्वास्थ्य ठीक होने लगा। उन्होंने भविष्यवाणी कर दी थी कि अब शरीर नहीं रहेगा। ब्रह्मी भूत होने से पहले अनेकों प्रकार के उपदेश किये।

स्वामी जी का एक अनन्य भक्त सेवक जो कि आन्ध्र प्रदेश का क्षत्रिय है, नागपुर के सभी भक्तों से प्राचीन है। शंकर नाम का यह भक्त जगद् गुरु जी की अनुपस्थिति में भी गुरु जी को मूर्तिमान मान कर आज भी सेवा पूजा करता है। दण्डी स्वामी तो उनके प्राण ही हैं। लगभग ७० साल के वृद्ध होने पर भी आश्रम की सफाई, फुलवाड़ी की सिंचाई आदि वही करते हैं। जब स्वामी जी अमरीका गए थे तब वह बम्बई तक अपने खर्च से उन्हें छोड़ने गये थे।

महा समाधि

अन्तिम सप्ताह में उनका स्वास्थ्य बिल्कुल गिर गया। हृदय की धड़कन बढ़ गई। ॐ का उच्चारण करते-करते मूर्च्छित हो गए। डॉक्टर बुलाए गए। उन्होंने नींद के इन्जैक्शन लगाए। दो दिन तक हिचकी आती रही। औषधि सेवन की तो धड़कन बन्द हो गई, पर १०५° बुखार हो गया। दो दिन निरन्तर प्रयास करने पर भी बुखार नहीं उतरा। डॉक्टर ने औषधि बन्द कर दी। डॉक्टर को बड़ा दुःख हुआ कि मैं स्वामी जी को बचा न सकूंगा। जगद् गुरु जी का अन्तिम संस्कार कैसे होगा, यह कोई नहीं जानता था। शारदा मठ के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज विमान द्वारा बम्बई पहुंचे। उनके आने पर दौलत राम को फोन किया गया। स्वामी जी ने ही उनको १९३५ ई० में अभिषिक्त किया था। द्वारका के जगद् गुरु जी ने अपने हाथ से उनके मुख में जल छोड़ा। श्वास की गति बढ़ गयी थी। वसन्त पंचमी के दिन २ फरवरी सन् १९६० को डेढ़ बजे दिन में ब्रह्मीभूत हुए। तीन दिन से आँखें बन्द किये थे। अन्तिम समय आँख खोलकर फिर सदैव के लिए आँखें बन्द कर लीं। समाधि के लिए तैयारी होने लगी। शंकराचार्य जी, तथा दौलत राम जी ने सब को सूचना दे दी। तुरन्त पद्मासन पर बिठाकर दण्ड उनके हाथ में दिया। उस समय उनकी मुख मुद्रा प्रसन्न मालूम होती थी। ऐसा लगता था मानो प्रवचन कर रहे हों। माघ शुक्ला षष्ठी को वाण-गंगा समुद्र तट पर भू-समाधि दी गई। शारदा पीठाधीश्वर जी ने १४ दिन तक शिव पुराण, लिंग पुराण, आत्म पुराण, यति-धर्म निर्णय आदि ग्रन्थों के आधार पर विधि विधान से सभी क्रियाएं सम्पन्न कीं। यह सब खर्च श्री दौलतराम जी ने वहन किया।

उपसंहार

महाराज श्री उपदेशों में कहते थे कि सभी जीव प्रारब्ध रूपी टिकट लेकर संसार की रंगभूमि पर नाटक देखने व खेलने आते हैं। खेल समाप्त होने पर जीव फिर चला जाता है। जब तक जीवात्मा परमात्मा में लीन नहीं होता, तब तक जन्म-मरण के त्रितापों से नहीं छूटता। स्वामी जी का लक्ष्य धर्म की पुनः प्रतिष्ठा, भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्मिक भाव का उद्धार कर मनुष्य मात्र दुःखों से रहित होकर सुखी जीवन बिताए, यह था। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'विश्व पुनः निर्माण संघ' की स्थापना की थी। उनके शब्दकोष में असम्भव शब्द तथा निराशा नहीं थी। वे कहा करते थे कि समय प्रतिकूल है तो अनुकूल समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। भगवान् में अटल श्रद्धा रखो। गुरु कृपा से ही अज्ञान दूर होता है। गुरु शिष्य का कल्याण जैसे-जैसे शरीर से करते हैं, वैसे ही बिना शरीर भी करते हैं। उनमें वैदिक ऋषियों के सभी गुण पाये जाते थे। वे कहते थे कि भारतीय संस्कृति में ही अखण्ड सत्य छिपा है। मन लगाकर स्वाध्याय करने से बुद्धि स्वयमेव सूक्ष्म हो जाती है। **(मेरे गुरुदेव से)**

भारती कृष्ण तीर्थ की व्याख्या

अनन्त श्री विभूषित पूज्य पाद जगद् गुरु भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने वास्तव में अपने नाम को कृतार्थ किया था। वे सच्चे अर्थों में भारती कृष्ण तीर्थ यथा नाम तथा गुण सम्पन्न थे। यहां पर तीनों शब्दों की व्याख्या की जाती है—

भारती—इसमें भा तथा रति दो शब्द हैं। भा—आत्म ज्ञान। रति—अनुरक्ति (निष्ठा) अथवा पूर्ण-विश्वास। अर्थात् समस्त वैभव भोग आदि से विवेक वैराग्य सहित विरक्ति तथा शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में रति है जिसकी वह भारती है। अथवा भारत के जन-जन व कण-कण में आत्म ज्ञान की मति करने का नाम भारती है। अथवा ब्रह्म विद्या का भार वहन करने वाले भारती।

कृष्ण—उपर्युक्त ज्ञान से परिपूर्ण करके जो अपनी तपस्या, त्याग, विद्या एवं चरित्र वल से जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचती है, वैसे ही अपने चित्त को अपनी ओर खिंचने वाले का नाम कृष्ण है। अथवा ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के अनुसार **कृषिर्भू वाचको शब्दः णश्च निर्वृत्ति वाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्णमित्यभिधीयते**। कृष्ण पद में 'कृषि' तथा 'ण' दो शब्द हैं। कृषि शब्द भू उत्पन्न होने के अर्थ में आया है। तथा णकार तीन प्रकार के

पापों तथा तापों से रहित करके जीव को परमानन्द की प्राप्ति कराने वाला है । अर्थात् जीवात्मा परमात्मा की एकता जन्य वह ज्ञान जो जीव को समस्त पापों से रहित करके परमानन्द की प्राप्ति कराये, उसे कृष्ण कहते हैं । महाराज जी का जीवन इसी प्रकार का था । वे विश्व के गेहे-गेहे जने-जने में भगवान् आद्य शंकराचार्य जी के अद्वैत वेदान्त का ज्ञानोपदेश करते थे । अपने तपः त्यागमय जीवन के द्वारा क्रियात्मक रूप से तथा उपदेश के द्वारा सभी व्यक्तियों को अपनी ओर खींचकर जीवात्मा परमात्मा की एकता का बोध करा के जीव को त्रिताप से रहित कर परमात्मा के साथ मिलाने में सक्षम थे । अतः आप का नाम कृष्ण है ।

तीर्थ—संस्कृत की उक्ति के अनुसार **"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वयं तरति परान् तारयति (अन्यान् तारयति) इति तीर्थम्" यदा स्वयं तीर्त्वा अन्यान् तारयति स तीर्थः** । जो स्वयं संसार सागर से तरता हो और दूसरों को तारने में समर्थ हो, उसे तीर्थ कहते हैं । संसार का अर्थ है संसार सागर । इस संसार सागर से शिष्यों को तारने वाले गुरुओं को तीर्थ कहते हैं । शास्त्रों में दो प्रकार के तीर्थ कहे गये हैं । स्थावर तीर्थ तथा जंगम तीर्थ । एक स्थान पर स्थिर रहने वाले काशी, प्रयाग आदि तीर्थ स्थावर हैं । यह भी दो प्रकार का है— १. जलमय, २. प्रतिमामय । इन दोनों की सेवा करने से देर में फल मिलता है । दूसरे जंगम तीर्थ साधु, सन्त, महात्मा इनकी सेवा सदा फलदायिनी है । महाराज जी चलते फिरते जंगम तीर्थ थे । पवित्र तीर्थ तथा नदी का जल उनके लिये नहीं होता वरन् परोपकार के लिए होता है । वैसे ही स्वामी जी का ज्ञान रूपी जल भी परोपकार के लिए था । वे अपनी तपःपूत वाणी तथा ज्ञान रूपी तप से सब को पवित्र करते थे । अमलात्मा, परमहंस, परिव्राजकाचार्य अपनी पाप निवृत्ति के लिए तीर्थ यात्रा या स्नान नहीं करते परन्तु पापी लोग स्नान करके जो पाप छोड़ जाते हैं उन तीर्थों को पवित्र करने के लिए जगद् गुरु जैसे पवित्र सन्त स्नान आदि करते हैं । अर्थात् महाराज श्री मनसा, वाचा, कर्मणा से परम पवित्र थे । अतः उनके नाम के आगे तीर्थ शब्द वास्तविक ही था । उन्होंने अपने गुरुदेव के दिए हुए परम पवित्र योगपट्ट भारती कृष्ण तीर्थ को चरितार्थ किया । ऐसे परम पावन गुरुओं के पाद पद्मों में मनसा, वाचा, कर्मणा अनन्त कोटिशः **ॐ नमो वो हरि स्वामिने,** इस मंत्र से प्रणाम करते हुए उनके जीवन चरित्र को पूर्ण करता हूं । ॐ शान्तिः ।३ ! ! ! !

इति अनन्त श्री विभूषित स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी का जीवनवृत्तम् ।

।।इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुगखण्डे, तृतीय परिच्छेदे दशमोऽध्यायः । ।१० ।।

अथ एकादशोऽध्यायः

ईश्वर, जीव और संसार के सम्बन्ध में पुरी पीठाधीश्वर ब्रह्मी भूत

(अनन्त श्री शंकराचार्य भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज के 'वेदान्ताङ्क' लेख से)

होत्राग्नि होत्राग्नि हविष्य होतृ, होमादि सर्वाकृति भासमानम्।
यद् ब्रह्म तद्बोध वितारिणीभ्यां, नमो नमः श्री गुरु पादुकाभ्याम्॥

इस विशाल विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक ऐसा कोई भी सचेतन, मननशील व्यक्ति न हुआ, न है और न होगा; जिसके मन में कठोपनिषद् के **'अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके'** 'परमात्मा है' यह आस्तिकों का मत है। 'परमात्मा नहीं है' यह नास्तिकों का मत है। यह प्रश्न न उठता हो तथा इसका उत्तर पाने के लिए व्याकुल न हो। जन्म से पूर्व मैं था कि नहीं। यदि था तो क्या, कहां, कैसे था। मैं कहां से आया हूं। इस समय मैं क्या हूं। मैं कब मरूंगा। मरने के बाद मेरा अस्तित्व रहेगा या नहीं? यदि रहेगा तो मैं क्या, कहां, किस प्रकार रहूंगा। मेरा अन्तिम लक्ष्य क्या है? उसकी प्राप्ति का साधन क्या है? बुद्धिमान और मूर्ख में इतना ही अन्तर है कि बुद्धिमान इस समस्या पर निरन्तर अध्ययन, ध्यान तथा विचार विमर्श करता है। जब तक उसके सामने इसका रहस्य प्रकट नहीं होता, तब तक इसी में लगा रहता है। किन्तु मूर्ख ऐसी समस्याओं को हल करने के लिए आवश्यक मानसिक और बौद्धिक योग्यता से रहित होने के कारण इससे शीघ्र तंग आकर इनको छोड़ देता है। परन्तु इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि चिन्तनशील और मूर्ख दोनों ही अपने हृदय में उठने वाले इस प्रश्न का अनुभव समान रूप से करते आए हैं और सदा अनुभव करते रहेंगे। अन्तर केवल परिणाम में है।

आवश्यकता

किन्तु यह एक ऐसा विषय है, जिस पर सभी विचारशील पुरुषों को गम्भीरतापूर्वक विचार, सावधानी से जांच और यथावत् निर्णय करना चाहिए। क्योंकि यह स्वयंसिद्ध है कि जब तक हमें अपने गन्तव्य स्थान का पता नहीं होगा तब तक सम्भवतः हम उस लक्ष्य तक पहुंचने वाले मार्ग और साधन का विचार भी नहीं करेंगे। और कुछ नहीं तो अपनी साधारण मानसिक

शान्ति के लिए भी इन समस्याओं का हल करना परम आवश्यक है कि हम क्या थे, क्या हैं और क्या होना चाहते हैं और किस प्रकार अपनी वर्तमान स्थिति से उस स्थिति तक पहुंच सकते हैं, जहां हमें पहुंचना चाहिए अथवा जहां हम पहुंचना चाहते हैं। इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए हमें सर्वप्रथम यह जान लेना चाहिए कि आत्मा की उपाधि, गुण और स्वरूप अथवा वैज्ञानिक भाषा में, इसके क्या लक्षण हैं, इत्यादि, इत्यादि। इसलिए हम संक्षेप में उन पहलुओं पर विचार करेंगे जिन पहलुओं से इस प्रश्न की मीमांसा की जा सकती है, और यह निश्चय करेंगे कि इस प्रश्न पर गम्भीर विचार करने से उसका निश्चित और अन्तिम उत्तर क्या हो सकता है।

पद्धति

इस प्रयत्न में हम श्रवण एवं मनन की भारतीय पद्धति का अनुसरण करेंगे अर्थात् शास्त्रों के अवलोकन से आरम्भ करके इन प्रश्नों पर विभिन्न तार्किक दृष्टियों से समालोचनात्मक और विश्लेषणात्मक विचार करते हुए यह निश्चय करेंगे कि शास्त्र और तर्क दोनों इस विषय पर कहां तक अविरोधी हैं।

सनातन धर्म के ग्रन्थ

अत एव हमें चाहिए कि हम इस पद्धति का आश्रय लेकर सत्य के सच्चे और उद्योगी अन्वेषकों की भांति अपनी बुद्धि को राग, द्वेष और पक्षपात से मुक्त कर लें (चाहे वे कितने ही स्वाभाविक हों अथवा उन्हें हम न जानते हों) और ईश्वर, जीव तथा संसार के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार करना प्रारम्भ कर दें। श्रवण अर्थात् एतद्विषयक शास्त्रीय सिद्धान्त के सम्बन्ध में सबसे आवश्यक ध्यान देने की बात यह है कि कुछ क्षण के लिए हम इसके अतिरिक्त अन्य विषयों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों को अलग कर दें और केवल इसी विषय का विचार करने वाले वेदादि शास्त्रों को लें हमें उनके अन्तर इस बात में आश्चर्यजनक समानता मिलेगी कि वे ईश्वर, जीव तथा जगत् की भिन्नता का प्रतिपादन नहीं करते, केवल इतनी ही बात नहीं है अपितु इस प्रकार के विचारों का विरोध भी करते हैं। दूसरे शब्दों में वे शुद्ध अद्वैतवाद का उपदेश करते हैं। इस प्रकार के हज़ारों वचन उद्धृत किये जा सकते हैं, किन्तु स्थान का विचार करके कुछ थोड़े से चुने वचन ही नीचे दिये जाते हैं—

१. 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' (एक ही ईश्वर सब भूतों में छिपा हुआ है, वह सर्वत्र व्याप्त और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है।)

२. **'नेह नानास्ति किञ्चन।'** (सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न पदार्थों में परामार्थतः कुछ भी अन्तर नहीं है।)

३. **'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।'** (जो विश्व में नानात्व देखता है वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र में पड़ता है।)

४. **'द्वितीयाद्वै भयं भवति'**। (द्वैत की कल्पना से ही भय, सन्देह, चिन्ता, संघर्ष, घृणा और संसार के अन्य दुःख उत्पन्न होते हैं।)

५. **'यः उदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति'**। (जो कुछ भी द्वैत की भावना मनुष्य में होती है तो उसे भय होना आरम्भ हो जाता है।)

६. **'स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये, स एकः।'** (इस पुरुष के भीतर का आत्मा और सूर्य के भीतर का आत्मा एक ही है।)

७. **'सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।'** (सच्चे ज्ञानी को सब पदार्थ आत्मरूप दिखाई देते हैं।)

८. **'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'** (जो सब पदार्थों में अभेद देखता है, उसको न अज्ञान है और न शोक।)

९. **'यस्मिन्नेकस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।'** (जिस एक के जान लेने से संसार के सारे पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।)

१०. **'ईशावास्यमिदं सर्वम्।'** (सारा संसार एकमात्र ईश्वर से व्याप्त है, ऐसा समझना चाहिए।)

११. **'एतदात्म्यमिदं सर्वम्।'** (यह सारा विश्व ईश्वर रूप है।)

१२. **'स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो।'** (हे श्वेतकेतो ! आत्मा ऐसा है और तुम वही हो।)

इन विस्तृत विभिन्न वचनों के अतिरिक्त यह सारगर्भित बात ध्यान देने को है कि मुक्तिकोपनिषद में भगवान श्री रामचन्द्र श्री हनुमान से १०८ उपनिषदों की विस्तृत नामावली और विवरण देते हुए कहते हैं कि इन सबका सार माण्डूक्योपनिषद् में मिलता है। (**'माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये।'** अर्थात् भव बंधन से मोक्ष चाहने वाले के लिये केवल माण्डूक्य ही पर्याप्त है) माण्डूक्योपनिषद् का प्रारम्भ इन मंत्रों से होता है—

१३-१४ **'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव। सर्वं ह्येतद् ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म।'**

(अर्थात् पवित्र ॐ (ईश्वर) का प्रतीक है, सब कुछ उसी की अभिव्यक्ति है, जो कुछ था, है या होगा सब ॐ है, और जो कुछ त्रिकालातीत है वह भी ॐ ही है, यह सारा विश्व ब्रह्म है; यह (व्यष्टि) आत्मा भी ब्रह्म है ।) इसके पश्चात् माण्डूक्योपनिषद् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं में जीवात्मा की (भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति) सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा तथा ॐ कार के साथ (जो दोनों मिलकर भगवान् के स्वरूप को व्यक्त करते हैं) एकता दिखलाता है ।

यह माण्डूक्योपनिषद्, जिसमें केवल बारह छोटे-छोटे मन्त्र हैं और जो इसीलिए अन्य सब उपनिषदों से छोटा है, किन्तु भगवान् रामचन्द्र जी ने जिसे योग्यता में सबसे बड़ा बताया है । भगवान् आदि जगद् गुरु श्री शंकराचार्य के अद्वैत-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है । वास्तव में माण्डूक्योपनिषद् और अद्वैत पर्यायवाची शब्द हैं । माण्डूक्योपनिषद् का मानना और अद्वैत सिद्धान्त को न मानना स्पष्ट ही परस्पर विरुद्ध है ।

जो श्रुतियां ईश्वर द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करती हैं, वे भी इस विषय का स्पष्ट निर्देश करती हैं—

१५. **'सच् च यच्चाभवत'** (वह स्वयं स्थूल और जगत् बन गया ।)

१६. **'बहु स्यां प्रजायेय'** (उसने इच्छा की—'मैं अनेक बनूंगा, बहुत रूपों में व्यक्त होऊंगा, और इस प्रकार विश्व की उत्पत्ति हुई । उसने यह नहीं कहा, 'मैं बहुत से पदार्थों को रचूंगा' किन्तु केवल 'मैं केवल बहुत से पदार्थ बनूंगा ।' उसने यह नहीं कहा—'मैं बहुत से पदार्थों को व्यक्त करूंगा', किन्तु केवल 'मैं बहुत से पदार्थों में व्यक्त होऊंगा ।' यदि हम ये मानते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है और वह उस अदक्ष-प्रमादी व्यक्ति की तरह नहीं है जो विचार कुछ करता है और कार्य उसके बिल्कुल भिन्न करता है, तब तो यह साधारण से साधारण बुद्धि वाले मनुष्य के लिए भी स्पष्ट है कि जब ईश्वर ने बहुत हो जाने की इच्छा की और इससे सारा विश्व उत्पन्न हुआ, इस दशा में या तो चुपचाप इस बात को स्वीकार करना चाहिए

कि विश्व अनेक रूपों में उसी की अभिव्यक्ति है अथवा उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर उसको अदक्ष मानना चाहिए। तार्किक दृष्टि से तीसरा कोई विकल्प नहीं है।

उन नवीन विचार वालों के सन्तोष के लिये भी जो केवल संहिता भाग को ही प्रमाण मानते है (किन्तु उपनिषदों को नहीं), हम यह कह सकते हैं कि पुरुषसूक्त (कृष्ण और शुक्ल युजर्वेद-संहिता में) स्पष्ट घोषणा करता है—

१७. 'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।'

(सृष्टिकर्ता ईश्वर ही गर्भ में चलता है। वह अजन्मा ईश्वर ही अनेक रूपों में उत्पन्न होता है) यहां हम यह भी कह सकते हैं कि आर्य समाज के संस्थापक तथा संहिता प्रमाणवाद के प्रवर्त्तक स्वामी 'दयानन्द सरस्वती' भी अपने 'शुक्लयजुर्वेद संहिता-भाष्य' में इस मंत्र की व्याख्या ठीक वैसे ही करते हैं जैसे हमने की है।

जिसको प्रामाण्य हम सब लोग मानते हैं और जिसको पाश्चात्य दार्शनिक संसार (जैसे कार्लाइल, इमर्सन, प्रभृति) भी स्वीकार करता है तथा जिसके प्रति मौखिक श्रद्धा प्रदर्शित करना आधुनिक युग में विद्याप्रेम का प्रतीक हो रहा है, वह गीता भी अद्वैत का ही उपदेश करती है। हम संक्षेप में इसका निर्देश करेंगे। इसको स्पष्ट करने के लिये दो उद्धरण पर्याप्त होंगे—

१८. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

(यज्ञ की सामग्री ईश्वर है, उसका अर्पण करता ईश्वर है, यज्ञाग्नि ईश्वर है, होता ईश्वर है, यज्ञकर्म के पीछे रहने वाला केन्द्रीभूत ध्यान ईश्वर है और इससे प्राप्त होने वाला फल भी ईश्वर ही है।)

१९. इदं शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥

(यह शरीर क्षेत्र कहलाता है; जो इसका अनुभव करता है वह क्षेत्रज्ञ वा आत्मा कहलाता है; सब शरीरों में मुझी को आत्मा समझो, मेरे विचार में शरीर और आत्मा का ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है।)

यहां हम फिर यह संकेत कर देना चाहते हैं कि आर्य समाजी भाष्यकार हरिप्रसाद 'वैदिक मुनि ने' अपनी 'स्वास्थ्य संहिता' में उपर्युक्त मन्त्रों की व्याख्या हमारी ही तरह की है।

॥ इति श्री गु. पु. कलि. ख. तृतीय परिच्छेदे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

अन्य धर्म

अब सनातन धर्मीय शास्त्रों के श्रवण (अध्ययन) का संक्षिप्त विवरण दे चुकने के बाद हमें मनन का विवेचन करना चाहिये। सबसे पहले वेदों और अन्य शास्त्रों से प्रतिपादित इस अद्वैत सिद्धान्त की तुलना दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों से करेंगे और फिर स्वतन्त्र (तार्किक) रीति से इस समस्या का विचार इसके निजी स्वरूप को लेकर करेंगे।

प्रारम्भ में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि बाइबल में इस प्रश्न पर काफी विचार नहीं किया गया है, और वह अनुमानतः इसलिए कि बाइबल का उपदेश जिनको दिया गया था, वे आध्यात्मिक उपदेश के अधिकारी नहीं थे, अपितु प्रारम्भिक नैतिक उपदेशों के ही पात्र थे, और इसलिए उनको यही उपदेश दिये गये। किन्तु जिन वाक्यों में बाइबल ने आध्यात्मिक तत्त्वों की आलोचना की है, उसमें वास्तव में अद्वैत सिद्धान्त का ही प्रतिपादन पाया जाता है। उदाहरणार्थ, महात्मा ईसा स्वयं कहते हैं—

२०. 'ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है।'

२१. 'स्वयं तुम देवता हो।'

विशेष कर सन्त जॉन के 'दिव्य सन्देश' में, उनके 'पत्रों' में और 'अनुभवों' में कई ऐसे वचन हैं जो प्रकट करते हैं, और बहुत से ग्रीक और रोमन ऐतिहासिक लेख भी सिद्ध करते हैं, कि महात्मा ईसा ने भारतीय अद्वैत वेदान्त को फिलस्तीन में ले जाकर उसका प्रचार किया, किन्तु कट्टर द्वैतवादी (अर्थात् कहने को एकेश्वरवादी और भीतर से बहु सत्तावादी) यहूदी लोग इन 'धर्मविरुद्ध' शिक्षाओं को सहन नहीं कर सके और उनके कट्टर शत्रु हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि जब रोमन अदालतों में उनका चालान पहले षड्यन्त्र और फिर धर्मनिन्दा के अपराध में हुआ, तो उनको कांटों का ताज पहनना और लज्जाजनक क्रास सहन करना पड़ा। यह ध्यान देने की बात है कि केवल उनके प्रिय शिष्य संत जॉन ही दार्शनिक विचारों

का समावेश अपने उपदेशों में कर सके और इस समय भी थोड़े से अपवादों को छोड़कर सारी ईसाई जनता संत जॉन के 'दिव्य संदेश' तथा अन्य पुस्तकों से संकोच और उनको 'अत्यन्त रहस्यमय' समझ कर परित्याग करके अपने को संत मैथ्यू, मार्क तथा लूक के 'दिव्य सन्देशों' तक ही सीमित रहती है। इन तीनों का स्वभाव अदार्शनिक था। कोई भी दुराग्रह रहित निष्पक्ष व्यक्ति, जो महात्मा ईसा को अपना 'प्रभु, स्वामी तथा त्राता' मानता है, न्यायतः द्वैत को (जिसके विरुद्ध वे लड़ते रहे) स्वीकार नहीं कर सकता और न अद्वैत को (जिसके प्रचार में उन्होंने अपना बलिदान कर दिया) अस्वीकार कर सकता है।

इस्लाम के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहने की आवश्यकता है कि मुसलमानों में केवल सूफियों ने इन आध्यात्मिक प्रश्नों पर विचार किया है और वे पूर्णतः अद्वैतवादी हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक

अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता न समझ कर, हम 'मनन' के इस तुलनात्मक विचार को, दार्शनिक इतिहास के एक प्रसिद्ध तथ्य का उल्लेख करते हुए, यहीं समाप्त करते हैं। प्राचीन यूनान के प्लेटो से लेकर आधुनिक दार्शनिकों में 'सेवेडेनबर्ग', 'बर्ड्सवर्थ', 'ब्राउनिंग', 'कार्लाइल', 'इमर्सन, विशप', 'वर्कले', 'हेगल', 'फिष्टे', इमैन्युअलुकाण्ट', 'राल्फ वाल्डो ट्राइन', 'टॉमस हिल ग्रीन', 'विलियम वॉकर ऐटकिन्सन', 'एला व्हीलर, विलकॉक्स', 'प्रोफैसर डायसन तक पश्चात्य संसार के समस्त मनोविज्ञानी तथा अध्यात्मज्ञानी भी जड़वादियों के द्वैतवाद के विरुद्ध भगवान् श्री शंकर के आदर्शवाद का ही समर्थन करते आये हैं। उनमें वास्तविक तथा ध्यान देने योग्य अन्तर केवल यही है कि जहां पाश्चात्य आदर्शवादी ने (शोक की बात है कि उन सबके शिरोमणि कांट ने भी अपने 'विशुद्ध बुद्धि का विवेचन' नामक ग्रन्थ में यही बात दरसायी है) अपने विचार एवं निष्पक्ष तर्क के अनिवार्य परिणाम से भयभीत हो गये, संसार के विद्वानों और तार्किकों में श्रेष्ठ भगवान् शंकर ने ही अपने निर्दोष युक्तिवाद और गम्भीर मनन के स्वाभाविक परिणाम अर्थात् विशुद्ध अद्वैतवाद रूप परम सिद्धान्त को अदम्य साहस के साथ स्वीकार किया।

इस सम्बन्ध में हमें याद रखना चाहिए कि यदि भारतवर्ष और सब बातों में अधोगति को प्राप्त होकर भी, प्रतिभाशाली पाश्चात्य दार्शनिकों को अब भी मुग्ध कर सकता है तो केवल शंकर के अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त के द्वारा ही, जिसके सामने संसार के बड़े-बड़े विद्वान् विवश

होकर श्रद्धा के साथ सिर झुकाते हैं, और भारतवर्ष को इस अत्यन्त आश्चर्यकारी अथवा अतर्क्य ऐतिहासिक घटना के लिए इस अद्वैत सिद्धान्त को ही धन्यवाद देना चाहिए।

युक्तिवाद

इस प्रकार हम मनन के दूसरे अंश अर्थात् इस समस्या के वास्तविक स्वरूप के आधार पर उसके स्वतन्त्र दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विचार पर पहुंचते हैं। क्योंकि हमारे तुलनात्मक विचार के परिणामस्वरूप, मनोवैज्ञानिक क्रम से, यह दूसरा प्रश्न सामने आता है कि हम इस विचित्र अनुभव की व्याख्या कैसे करें कि पश्चिम के इन सभी बड़े-बड़े विचारकों ने, जिसमें से अधिकांश का वेदों में विश्वास नहीं है और कुछ को तो वेदों के नाम एवं अस्तित्व का भी पता नहीं है, अस्पष्ट और यथार्थ रीति से किन्तु अपने भिन्न और स्वतन्त्र युक्तिवाद की पद्धति से भगवान् शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद सिद्धान्त को स्वीकार किया है और इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर, जिसे कोई भी यथार्थ विचार करने वाला, न्यायप्रिय और पक्षपात रहित व्यक्ति दे सकता है, यह है कि केवल अद्वैत वेदान्त ही यथार्थ विचार की कसौटी पर ठीक उतर सकता है, और इसलिए पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी, प्राच्य अद्वैतवाद के विरुद्ध अपने स्वभावगत आग्रह के होते हुए भी, सच्चे विचारक की हैसियत से विवश होकर अद्वैतवेदान्त को स्वीकार किया है। दूसरे शब्दों में अद्वैत और वेदान्त का अद्वैत ही, एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका युक्तिवाद भी समर्थन करता है।

विधि

इस दृष्टिकोण से मननपूर्वक तथा यथावत् इस समस्या का विचार करने और उसे हल करने के लिये, अब हम लौटकर उन प्रश्नों पर आते हैं जिनसे हमने यह विचार प्रारम्भ किया था अर्थात् हम कहां से आये हैं, हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है, इस समय हम क्या हैं, हम कहां जाना चाहते हैं ? इत्यादि। अध्यात्म शास्त्र में इन सब प्रश्नों का एक प्रश्न है जिसका यथार्थ उत्तर सबके लिये सच्चा आनन्द प्राप्त कराने में बहुत सहायक होगा। किन्तु अभाग्यवश इन्हीं परमावश्यक विषयों को यान्त्रिक अध्यात्मवादियों ने अपनी भ्रान्त पद्धति से साधारण जिज्ञासु के लिए एक हौआ बना दिया है। इस सम्बन्ध में एक विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र के अध्यापक की बात याद आ गई। उनसे उनके छोटे बालक ने पूछा कि 'अध्यात्मचर्चा' किसे कहते हैं ? उन्होंने गम्भीरता से कहा, 'यदि राम और श्याम बातचीत करें और उनमें से

कोई किसी की बात न समझे, तो तुम ऐसी बातचीत को 'दार्शनिक चर्चा' कह सकते हो। इस प्रकार के नामधारी दार्शनिकों की इस प्रवृत्ति के कारण ही साधारण मनुष्य अध्यात्मशास्त्र के नाम से भय खाने लगे हैं। हम इस निबन्ध के शेष भाग में यह सिद्ध करना चाहते हैं कि एक अपठित मनुष्य के लिए भी मनन की पद्धति विशेष का ग्रहण करना वास्तव में कितना सरल है, जिसके द्वारा दर्शन शास्त्र के सूक्ष्म विषयों पर गहन ग्रन्थों के पारिभाषिक चक्कर में बिना पड़े ही, वह भी अपने लिए वेदान्त में उपदिष्ट ईश्वर, जीवात्मा और विश्व के ऐक्य का अनुभव कर सकता है। इसी के लिए हम अब आगे बढ़ते हैं।

आत्मा

अब हम पीछे लौट चलें और इस बात को स्पष्ट करते हुए कि 'आत्मा' जैसी कोई वस्तु वास्तव में है या नहीं और इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या है इत्यादि, प्रारम्भ से ही अपने विषय को शुरु करें। क्योंकि जब तक हम नास्तिक द्वारा किये गये आत्मसत्ता के निषेध और मध्यस्थानीय सन्देहवादी की शंका का अतिक्रमण कर युक्तियुक्त अन्तरालोकन से, आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में बिल्कुल निश्चय नहीं कर लेते तब तक प्रस्तुत विषय के आलोचन में आगे नहीं बढ़ सकते।

आत्मा का अस्तित्व और लक्षण

यदि हम आत्मा के वेदान्तोक्त लक्षण 'अहंपदलक्ष्य' (वह जो 'मैं' शब्द से व्यंजित होता है) को याद रखें तो इसका अस्तित्व बड़ी सुगमता से समझ में आ जाता है—नहीं, नहीं, स्वयंसिद्ध हो जाता है। क्योंकि जब हम अपने शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि के सम्बन्ध में बातें करते हैं तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट रहती है कि इन पदार्थों का सम्बन्ध किसी ऐसी सत्ता या वस्तु से है जो इन सबके पीछे परे और ऊपर है; और वह सम्बन्ध स्वामिभाव का है, जो षष्ठी विभक्ति (सम्बन्ध कारक) से प्रकट है। अपोह क्रिया के द्वारा हम सरलतापूर्वक देख सकते हैं कि शरीर, इन्द्रिय, मन आदि आत्मा नहीं किन्तु इसके साथ सम्बद्ध हैं।

इसका स्वरूप

इस प्रक्रिया से आत्मा के अस्तित्व का निर्णय करके और उसे शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से परे इन सबका स्वामी निश्चितकर अब इस बात का निश्चय करना चाहिए कि इसके स्वरूप और लक्षण क्या हैं। यदि हम इन्हें ढूंढ निकालें तो बड़ी आसानी से उन प्रश्नों का उत्तर दे

सकते हैं जिन्हें हम प्रायः अपने से पूछते हैं, अर्थात् हम कहां से आये हैं, कहां जाएंगे इत्यादि। इस समस्या को सुलझाने के कई मार्ग हैं, किन्तु हम इस निबन्ध में मोटे तौर पर उन ध्यान की प्रक्रियाओं को बताएंगे जो स्वयं हमें लाभकारी सिद्ध हुई हैं और सम्भव है कि वे इस मार्ग पर उतना ही प्रकाश डालेंगी और उतनी ही सहायता उनसे दूसरों को मिलेगी जो इस मार्ग पर चलने की सदाकांक्षा रखते हैं।

उपाधि और उपलक्षण

जिज्ञासु के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह होती है कि हमारे निकटवर्त्ती सब पदार्थों में बहुत से गौण लक्षण होते हैं, जो प्रधान लक्षण से प्रतीत होते हैं; किन्तु बहुधा बिल्कुल मायिक और भ्रामक होते हैं और उन्हीं में से कुछ ऐसे लक्षण भी होते हैं जिनको हम क्षणिक संयोग के कारण वास्तविक गुण समझ लेते हैं। संस्कृत में इनको उपाधि और उपलक्षण कहते हैं और इनसे सदा हमें सावधान रहना चाहिए।

आत्मा के सम्बन्ध में सब कुछ कैसे जाना जाए?

आत्मा के वास्तविक लक्षण मालूम करने के कई मार्ग हैं; किन्तु इनमें से सबसे सरल दो मार्ग हैं जिन्हें हम विश्लेषणात्मक और समन्वयात्मक पद्धति कह सकते हैं। हम इन दोनों पद्धतियों का उपयोग करके अपनी समस्या को हल करेंगे।

विश्लेषणात्मक पद्धति

उपाधि और उपलक्षणों को अलग करके वास्तविक लक्षण समझ लेने का सुगम मार्ग ही विश्लेषणात्मक पद्धति है। उदाहरणार्थ, शीत और उष्ण दोनों प्रकार के जल का हम सबको अनुभव है, किन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि जल का स्वाभाविक धर्म शीतलता ही है, उष्णता नहीं। क्योंकि जब हम किसी भी मात्रा में उष्ण जल को देखते हैं तब हमें मालूम होता है कि उष्णता जल का प्राकृतिक अथवा सहज गुण नहीं है, परन्तु अग्नि या सूर्य रश्मियों द्वारा तपाये जाने से अर्थात् किसी बाह्य आकस्मिक अथवा आगन्तुक कारण से उत्पन्न हुई है और जब हम गुजरात के वीरमगांव नामक स्थान में जाते हैं और वहां प्राकृतिक अत्यन्त उष्ण जल से भरे हुए कुण्ड को देखते हैं तो हम तुरन्त पूछ बैठते हैं, यह जल उष्ण क्यों है? यह 'क्यों' शब्द ही इस बात का निश्चित और पर्याप्त प्रमाण है कि जल का उष्ण होना स्वाभाविक नहीं है।

इसका उत्तर यह दिया जाता है कि प्राकृतिक गन्धक के सोते इस उष्णता के कारण हैं। किन्तु उत्तर की आवश्यकता ही इस बात को प्रकट करती है कि शीतलता जल का प्राकृतिक धर्म है और इसमें उष्णता बाह्य कारणों से आती है। जल के सम्बन्ध में एक खास विशेषता यह भी है कि उष्णता और उसकी अतिमात्रा का जो कुछ भी कारण हो, उष्ण जल यदि थोड़े समय के लिए अलग रख दिया जाए तो वह उत्तरोत्तर कम गर्म और अन्त में बिल्कुल ठंडा हो जाता है; इस तरह उष्णता आने के लिए बाह्य कारण की आवश्यकता है; किन्तु बाहर निकालने के लिए नहीं। इसलिए जल में उष्णता केवल उपलक्षण है। इसी प्रकार यदि आप तांबे के बर्तन को किसी खटाई या तेजाब अथवा अन्य किसी पदार्थ से साफ करके अच्छी तरह चमका दें और धूल और गंदगी के सम्पर्क में आने की सब सम्भावनाओं से इसको सावधानी के साथ सुरक्षित रखें, तब भी कालक्रम से यह धीरे-धीरे किन्तु स्वतः अपने मैले हरे रंग को प्राप्त हो जायेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि इसका प्राकृतिक लक्षण चमक नहीं मैलापन है। ये सब दृष्टान्त प्रकट करते हैं कि किसी पदार्थ के स्वाभाविक लक्षण को लेकर 'क्यों' का प्रश्न नहीं उठता और न इसके लिए किसी समाधान की आवश्यकता होती है। यदि यह स्वाभाविक धर्म कुछ समय के लिए कृत्रिम अथवा प्राकृतिक कारणों से दब भी जाए, तब भी यह फूट निकलेगा और प्रकट हो जाएगा। सावधानी के साथ छंटाई करने से हम इस प्रकार देख सकते हैं और देखेंगे कि आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है और इस प्रकार वेदान्त के भव्य और पवित्र सिद्धान्तों की पुनः प्रतिष्ठा करेंगे।

समन्वयात्मक पद्धति

यह पद्धति पहली की अपेक्षा अधिक सरल और सुगम है; अतएव साधारण लोगों के लिए भी अधिक उपयुक्त है। यह वह पद्धति है जिसके द्वारा हम आत्मा का स्वरूप ही नहीं, किन्तु यह भी जान सकते हैं कि यह कहां से आया है और कहां जाएगा। 'तैत्तरीयोपनिषद्' में इस पद्धति को समझाया गया है। वहां भृगु (जो पीछे बड़े महर्षि हो गये किन्तु उस समय बालक थे) अपने पिता के पास जाकर वही प्रश्न पूछते हैं जिसका हम विचार कर रहे हैं। वरुण देव ने इसका उत्तर स्वयं निकाल लेने के लिए भृगु को एक साधारण संकेत बतलाया। यह संकेत यों था। जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिससे उनका धारण होता है और जिसमें वे

अन्त में समा जाते हैं—ये तीनों अलग-अलग नहीं किन्तु एक ही हैं और वह ईश्वर है । बरुण के इस उपदेश के भीतर रहने वाले तत्त्व की व्यापकता को सिद्ध करने के लिए बहुत से उदाहरण अपने आस-पास के भौतिक संसार से दिये जा सकते हैं । दृष्टान्त के लिए, वृक्ष पृथ्वी से उत्पन्न होता है, इसी के आधार पर खड़ा रहता है, और गिरकर इसी में फिर मिल जाता है ।

इससे कुछ मोटा किन्तु अधिक प्रचलित उदाहरण मछलियों का है । साधारणतः सब लोग जानते हैं कि मछलियों की प्रकृति के अनुकूल तत्त्व जल है । परन्तु हम ऐसे मनुष्य की कल्पना करें जो इस तथ्य को नहीं जानता । दैवात् उसे किसी तालाब या नदी के किनारे बड़ी बेचैन और छटपटाती हुई एक मछली मिल जाती है । वह सोचता है कि जिस प्रकार का आराम वह स्वयं भोगता है उससे मछली की भी व्यथा दूर हो जाएगी । वह उसे उठाकर ठंडी हवा में रख देता है, किन्तु देखता है कि फिर भी वह बेचैन है । तब वह उसे घर ले जाता है, अपनी कोमल शय्यापर उसको लेटा देता है, किन्तु तब भी देखता है कि उसको बड़ी पीड़ा और बेचैनी हो रही है । इस प्रकार मछली को आराम पहुंचाने के उसके सारे प्रयत्न विफल हो जाते हैं, और वह आदमी मछली को तालाब या नदी में वापस ले जाता है । वह उसे लाभ पहुंचाने की चेष्टा में पानी में छोड़ देता है और देखता है कि उसकी सारी छटपटाहट बंद हो जाती है और वह प्रसन्नता से तैरने लगती है । इससे मनुष्य का स्वाभाविक निर्णय क्या होगा और क्या होना चाहिए ? निश्चित ही वह यही परिणाम निकालेगा और यही निकालना चाहिए कि मछली की प्रकृति के अनुकूल तत्त्व पानी है, और उसी में जाने के लिए वह बारबार कूदती और छटपटाती रही, जिसके बाहर वह निकल आयी थी और जिससे उसका पालन होता था ।

इससे यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि जिस को हम सदा खोजते रहते हैं और जिसके बिना हम कभी वस्तुतः सुखी नहीं हो सकते वही हमारा वास्तविक स्वरूप अथवा प्राकृतिक तत्त्व है । संक्षेप में, समन्वयात्मक पद्धति का स्वरूप यही है । इस पद्धति के द्वारा भी सम्पूर्ण अद्वैत-सिद्धान्त की पुनः प्रतिष्ठा की जा सकती है । इन दोनों तथा अन्य सहायक पद्धतियों का उपयोग करते हुए, हम दोनों तथा अन्य सहायक पद्धतियों का उपयोग करते हुए, हम आत्मा के वास्तविक स्वरूप और लक्षणों का विचार प्रारम्भ करते हैं ।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे तृतीय परिच्छेदे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सनातन अस्तित्व

हमारे शास्त्रों के अनुसार आत्मा का प्रथम लक्षण सत अथवा त्रिकालाबाध अस्तित्व (सनातन अस्तित्व) है। हम निम्नलिखित कई दृष्टियों से इसका मनन कर सकते हैं—

१. **मनोवैज्ञानिक दृष्टि**—हम सभी मृत्यु की चर्चा करते और कहते हैं, 'अमुक व्यक्ति मर गया है।' किन्तु वास्तव में हम मृत्यु का अर्थ क्या समझते हैं? आत्मा का लक्षण, जो हम पहले कर चुके हैं, याद कर लेना चाहिए आत्मा वह पदार्थ है जिसका संकेत हम सब लोग 'अहं' पद से करते हैं। अब देखना चाहिए कि क्या 'अहं' पद और 'मर गया' क्रिया में वास्तविक उद्देश्य और विधेय के रूप में सम्बद्ध होने की किञ्चिन्मात्र भी सम्भावना है? कभी नहीं। डॉक्टर अथवा सम्बन्धी रोगी की नाड़ी देखकर कहते हैं कि वह मर गया, अथवा रोगी स्वयं शंका करता या डरता है कि मैं मर जाऊंगा, किन्तु मरने का वास्तविक मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक अनुभव कभी होता ही नहीं, यह बिल्कुल असम्भव है। 'अहं' और 'मरना' दोनों शब्द साथ-साथ प्रयुक्त नहीं हो सकते। उस अवस्था में भी जब मनुष्य कहता है कि 'मैं मर रहा हूं' और अपूर्ण वर्तमान काल का प्रयोग करता हुआ मालूम पड़ता है, उसका मतलब भविष्यत् काल से होता है और वह भविष्य काल के बारे में ही संकेत अथवा जिक्र करता है, भूत अथवा वर्तमान के विषय में नहीं।

इस सम्बन्ध में हम निद्रा का उल्लेख करेंगे जिसे स्वल्प मृत्यु कह सकते हैं। वास्तव में मृत्यु को बहुधा लम्बी निद्रा कहा गया है। उदाहरणार्थ कविवर कालिदास (रघुवंश काव्य सर्ग १२) भगवान् रामचन्द्र के द्वारा निद्राप्रिय कुम्भकर्ण के वध का वर्णन करते हुए कहते हैं—

अकाले बोधितो भ्रात्रा प्रियस्वप्नो वृथा भवान्।
रामेषुभिरितीवासौ दीर्घनिद्रां प्रवेशितः॥

(अर्थात् ऐसा मालूम होता था, मानो श्री राम के बाणों में यह कहते हुए कि 'हे निद्राप्रिय, तुम्हारे भाई ने तुमको असमय ही बिना प्रयोजन जगा दिया है' कुम्भकर्ण को लम्बी निद्रा में भेज दिया।) निद्रा के बारे में मज़े की बात यह है कि आप कह सकते हैं—'मैं सो रहा था', 'मैं सोने जा रहा हूं', 'मुझे बड़ी नींद लग रही है' इत्यादि; किन्तु आप यह कदापि नहीं कह सकते

कि 'मैं सो रहा हूं'। यदि आप ऐसा कहते हैं तो यही इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि आप सो नहीं रहे हैं। इस प्रकार 'निद्रा' शब्द भी 'मैं' (अहं) के साथ प्रयुक्त नहीं हो सकता; यह स्वभाव से ही असम्भव है। ऐसी दशा में 'मैं' के साथ 'मरने' शब्द का प्रयोग तो और भी असम्भव है। इससे स्वाभाविक परिणाम यही निकलता है कि आत्मा के सम्बन्ध में मृत्यु का कथन नहीं हो सकता।

कभी-कभी ऐसा होता है कि मन के अद्‌भुत व्यापार से आप स्वप्न देखते हैं कि आप मर गये हैं और लोग आप के लिये रो रहे हैं, इत्यादि। इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक बात यह है कि इस कल्पित मरणावस्था में भी आप लोगों को रोते हुए देखते हैं और सुनते हैं इत्यादि। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि काल्पनिक मृत्यु के अनन्तर भी जीवन बना रहता है। इन दृष्टान्तों से यही सिद्ध होता है कि अमरत्व आत्मा का स्वाभाविक गुण है।

२. वस्तुतत्त्वात्मक दृष्टिकोण—आइये, हम लोग अब उस बात को याद करें जो कुछ मिनट पहले मछली और उसके स्वभावानुकूल तत्त्व (जल) के सम्बन्ध में कही गयी है और उस गुरु का प्रयोग भी यहां करें। यदि जीवन और मरण दोनों ही हमारे स्वाभाविक धर्म होते, अर्थात् यदि मृत्यु भी हमारे लिए स्वाभाविक होती, तो हम उसका निवारण करने और उससे बचने का प्रयत्न क्यों करते। जो हमारे लिए सहज और स्वाभाविक है, उससे बचने का प्रयत्न न हम करते हैं और न कर ही सकते हैं। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि आफिस जाने के लिए आपको खास तरह के कपड़े पहनने पड़ते हैं और उन्हें आप पहनते हैं; आप बहुत जल्दी उनसे तंग आ जाते हैं और बेचैनी का अनुभव करते हैं। आप सचमुच घबड़ा जाते हैं और सोचने लगते हैं कि कब घर पहुंचें और इन कपड़ों को उतारकर अलग रख दें। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि यह आपके लिए स्वाभाविक नहीं है, किन्तु यह बलात् आपके ऊपर लाद दिये गये हैं और इसलिए शीघ्र ही आप इनसे घबड़ा जाते हैं। अर्थात् आप उस वस्तु से तंग आ जाते हैं जो आपके लिए स्वाभाविक नहीं होती, किन्तु बराबर जीने से कोई नहीं घबराता। यहां तक जब शरीर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, इन्द्रियां अपना काम ठीक तरह से नहीं कर सकतीं और बुढ़ापा और रोग सताने लगते हैं; तब भी जीने की इच्छा बनी रहती है। इसका कारण यह है कि जीना हमारे लिए स्वाभाविक और मरना अस्वाभाविक है। यदि मृत्यु सचमुच हमारा धर्म होता, तो फिर एक बार कहते हैं कि हम मृत्यु से बचने का प्रयत्न

कभी नहीं करते। हम जीने की इच्छा करते हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि जीवन हमारा स्वभाव है। जीवन और मृत्यु की बात जाने दीजिए। हम लोग स्वास्थ्य और रोग का ही विचार करें। हम स्वास्थ्य क्यों चाहते हैं और रोग से द्वेष क्यों करते हैं? क्या इसलिये नहीं कि स्वास्थ्य ही हमारे लिए स्वाभाविक और रोग अस्वाभाविक है? नहीं तो हम रोग के निवारण की चेष्टा क्यों करते? इसके अतिरिक्त यहां भी हम 'क्यों'? इस प्रश्न के द्वारा जांच कर सकते हैं। जब कोई मनुष्य बीमार पड़ता है अथवा उसे पीड़ा होती है तो उससे हरेक आदमी 'क्यों' (कारण) पूछता है। यह प्रश्न और उसके उत्तर की आवश्यकता ही इस बात को सिद्ध करती है कि रोग, पीड़ा और दुःख स्वाभाविक नहीं है, इसलिए इनका कारण ढूंढने की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु जब मनुष्य पूर्ण स्वस्थ रहता है तो उससे कोई नहीं पूछता कि तुम स्वस्थ क्यों हो। यह दूसरा स्पष्ट प्रमाण है कि स्वास्थ्य हमारे लिए स्वाभाविक है और उसका कारण जानने की आवश्यकता नहीं। जब स्वास्थ्य और रोग की बात है, तो जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में तो यह बात और अधिक सत्य है, अर्थात् जीवन स्वाभाविक और मृत्यु अस्वाभाविक है। इसलिए इस दृष्टिकोण से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा सनातन है।

३. यन्त्रशास्त्रीय प्रमाण—प्रोफैसर रॉस्को द्वारा रचित 'रसायन शास्त्र' की प्रारम्भिक पुस्तक के पहले अध्याय में ही यह कहा गया है कि 'मोमबत्ती के जलने से कुछ भी नष्ट नहीं होगा।' यह पढ़कर आपको उत्तर देने की इच्छा होगी कि अपना पैसा और मोमबत्ती खोकर हम उक्त विद्वान् प्रोफैसर से सहमत नहीं हो सकते। किन्तु वे आपका इस प्रकार समाधान करेंगे कि जब मोमबत्ती जलती है तो उसके उपादान भूत हाइड्रोजन और कार्बन नामक द्रव्य बाहर निकल कर वायु मण्डल में मिल जाते हैं और उसके ऑक्सीजन के साथ मिलकर क्रमशः जलीय वाष्प और कार्बन डाइआक्साइड के रूप में बदल जाते हैं। दूसरे शब्दों में द्रव्यों का विनाश नहीं होता। केवल उनके स्थान रूप एवं नाम में परिवर्तन होता है। इसी प्रकार जब बढ़ई कुर्सी या बेंच बनाता है, तो वह कोई नया पदार्थ नहीं उत्पन्न करता, किन्तु बाजार अथवा जंगल से ईश्वर निर्मित काष्ठ को लाता है, उपर्युक्त टुकड़ों में उसको काटता है, उचित रूप से उनको रखता है और उनको वांछित आकार देता है; इस प्रकार यहां भी कोई नई चीज़ नहीं प्राप्त होती, किन्तु केवल स्थान और आकार तथा फलतः नाम का परिवर्तन होता है। जगत् में

किसी भी पदार्थ की नवीन सृष्टि अथवा नाश नहीं होता। इस सिद्धान्त को आधुनिक पदार्थ विज्ञान में 'पदार्थ की अनश्वरता', 'पदार्थ का अनुत्पादत्व', 'शक्ति का नित्यत्व' इत्यादि बड़े लम्बे-लम्बे और गम्भीर शब्दों में व्यक्त किया गया है और यह आधुनिक सिद्धान्त, जिसे विज्ञान के नाम पर पदार्थ विज्ञान में सिखाया जाता है, प्राचीन भगवद् गीता के एक सुन्दर श्लोकार्द्ध में आ गया है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं—

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।"

'जो कभी नहीं था वह उत्पन्न नहीं होता और जो है उसका अभाव नहीं हो सकता।'

अब हम लोग पदार्थ विद्या और रसायन शास्त्र के इस यान्त्रिक सिद्धान्त का प्रयोग उस समस्या पर करें; जिसका विचार हम कर रहे हैं। जब कोई हमसे प्रश्न करता है—'जन्म लेने के पूर्व मैं था अथवा नहीं? और मृत्यु के बाद मैं रहूंगा या नहीं?' तो हम सदा उससे यही कहते हैं कि आपके इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व हम आप से एक प्रारम्भिक प्रश्न करना चाहते हैं—'आप इस समय विद्यमान हैं या नहीं?—आपके प्रश्नों का उत्तर हमारे इस प्रश्न के उत्तर पर अवलंबित है।' कोई भी यह नहीं कहेगा कि 'मैं इस समय विद्यमान नहीं हूं।' अतएव हमारा उत्तर है—यदि आप इस समय विद्यमान हैं, तो आप अवश्य ही पहले भी विद्यमान रहें होंगे; क्योंकि जो पहले नहीं था उसकी अब नवीन सृष्टि नहीं हो सकती। इसी प्रकार यदि आप इस समय वर्तमान हैं, तो आप निःसन्देह सदा वर्तमान रहेंगे; क्योंकि जो इस समय वर्तमान है उसका अभाव नहीं हो सकता। अवश्य ही जैसे मोमबत्ती के कार्बन एवं हाइड्रोजन में और कुर्सी तथा मेज की लकड़ी में स्थान, आकार तथा नाम का परिवर्तन होता है, वैसे ही आपके अन्दर भी परिवर्तन होता रहेगा, किन्तु आपका अभाव कभी नहीं हो सकता। इस विवेचन से प्रायः समस्या हल हो जाती है और सच्चे जिज्ञासुओं का मनन की इस प्रक्रिया से प्रायः समाधान हो जाता है कि आत्मा सनातन है और होना ही चाहिए। इसके लिए किसी को दर्शन (अथवा भौतिक विज्ञान) पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

४. भाषा सम्बन्धी प्रमाण—इस निर्णय पर पहुंचने के लिए केवल संस्कृत भाषा के शब्दों का यौगिक अर्थ समझ लेना पर्याप्त है। संस्कृत भाषा को 'संस्कृत' इसलिये कहते हैं कि हमारी दृष्टि में यही एक पूर्ण भाषा है। इसको हम देवभाषा भी मानते हैं, क्योंकि इसका कोई भी शब्द यदृच्छाप्रयुक्त अथवा अनावश्यक नहीं है, किन्तु इसका प्रत्येक शब्द बहुत से

दिव्य दार्शनिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों को हमारे मन और हृदयपटल पर अंकित कर देता है। जिनकी सत्यता के सम्बन्ध में अध्यात्म शास्त्र और विज्ञान का जीवन भर अध्ययन करने पर भी हमारा विश्वास नहीं हो सकता। यही कारण है कि हम बहुधा कहा करते हैं कि यदि संस्कृत वास्तव में देवताओं की भाषा है (जैसा कि हम विश्वास करते हैं) तो देवताओं के लिए उचित है कि वे इसे अपना लें, इसको छोड़कर किसी दूसरी भाषा को अपनाना उनके लिए लज्जा की बात होती है। अब देखना है कि बिना दर्शन, विज्ञान अथवा इस विशाल विश्व की किसी अन्य वस्तु की सहायता के केवल संस्कृत भाषा आत्मा के बारे में हमें क्या बतला सकती है।

सब प्रश्नों का उत्तर यह है कि जब हम जन्म और मृत्यु की बात करते हैं तो हमारा इन शब्दों से क्या तात्पर्य होता है? जन्म क्या है और मृत्यु क्या है? अंग्रेज़ी में इनके पर्यायवाचक 'birth' और 'death' शब्दों का प्रयोग उन दो विशिष्ट घटनाओं को निर्दिष्ट करने के लिए यन्त्रवत् हुआ करता है, जो प्रायः घटित होती है और जिनको समझाने के लिए विस्तृत परिभाषा एवं व्याख्या की आवश्यकता होती है। परन्तु अंग्रेज़ी अथवा, देववाणी संस्कृत को छोड़कर, संसार की किसी अन्य भाषा का कोई शब्द जन्म-मरण की घटना के भीतर छिपे हुए दार्शनिक या वैज्ञानिक तत्त्व का रहस्य नहीं बतलाता।

किन्तु संस्कृत के 'जन्म' शब्द को लीजिए। यह 'जनिप्रादुर्भावे' धातु से बना है और इसका अर्थ 'आगे आना अथवा व्यक्त होना है। अर्थात् जो अब तक हमसे छिपा हुआ था। वह अब सामने आकर प्रत्यक्ष हो गया है। जन्म के लिये दूसरा शब्द 'उत्पत्ति' है, जो अंग्रेज़ी के 'Origin' शब्द का समानार्थी है; यह उत्पूर्वक 'पद' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'ऊपर आकर प्रकट होना' है। दूसरे शब्दों में, जो अब तक आवृत था वह अनावृत होकर ऊपर आ गया है। तीसरा संस्कृत शब्द 'सृष्टि' है, जो अंग्रेज़ी के 'Creation' शब्द का समानार्थी है; यह 'सृ विसर्गे' धातु से बना है और इसका अर्थ अव्यक्त को व्यक्त कर देना है। अर्थात् जो भीतर छिपा हुआ था वह अब बाहर आ गया है। इन तीनों संस्कृत शब्दों का भीतरी भाव यह है—हमारी इन्द्रियों की रचना इस प्रकार हुई है कि वे स्वभावतः अन्तर की ओर से बाहर की ओर जाती है; उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी नहीं है। इसको कठोपनिषद् ने इस प्रकार कहा है—

'पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूः।'

'स्वयं विधाता ने ही इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है।'

इस प्रवृत्ति के अनुसार हम उन्हीं पदार्थों को देख सकते हैं जो हमारे बाहर हैं, हम अपनी आंखों को नहीं देख सकते, और जब हम उन्हें दर्पण के अन्दर देखते हुए प्रतीत भी होते हैं, उस समय हम वास्तव में अपनी आंखों को नहीं देखते बल्कि उनके प्रतिबिम्ब को ही देखते हैं। अतः जब हमारी आंखें स्वयं अपने को ही नहीं देख सकतीं, तब उनके लिये अपने पीछे, नीचे और भीतर देखना तो और भी असम्भव है। अतएव हमारे लिये, यह कठिनाई है कि हम अपने पीछे, नीचे और अन्दर के पदार्थों को नहीं देख सकते और जब ये चीजें हमारे नेत्रों के सामने आती हैं, आवरण को हटाकर ऊपर आती हैं अथवा हमारे बाहर आ जाती हैं और इस तरह हमारे दृष्टिगोचर होती हैं, तब हम इस घटना को व्यक्त करने के लिए संस्कृत के 'जन्म', 'उत्पत्ति' और 'सृष्टि' शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिनका अर्थ यह होता है कि कोई वस्तु ऐसी नहीं उत्पन्न हुई जो पहले नहीं थी, किन्तु पहले जो अव्यक्त था वही अब व्यक्त हो गया और इन तीनों के अतिरिक्त संस्कृत में कोई चौथा शब्द नहीं है जो इसके विपरीत संकेत करता हो।

अब हम इसी के दूसरे पहलू मरण के सम्बन्ध में विचार करें। इसके लिए संस्कृत शब्द है 'नाश', जो 'नश् अदर्शने' धातु से बना है और जिसका अर्थ 'अव्यक्त अथवा अदृश्य हो जाना' है। अतः इसका प्रयोग तीनों अवस्थाओं में हो सकता है—जहां कोई व्यक्ति मर गया हो, विदेश चला गया हो अथवा कुछ क्षणों के लिये वह (पीछे, नीचे अथवा भीतर जाकर) छिप गया हो। ये चारों शब्द यही सिद्ध करते हैं कि 'जन्म' और 'मृत्यु' जीवन के आदि और अन्त नहीं, किन्तु इसके अनादि और अनन्त पथ की मंजिले हैं। दूसरे शब्दों में, संस्कृत का शब्दकोष भी हमें आत्मा के अमरत्व की ही शिक्षा देता है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ज्ञान

आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में दूसरी बात जिसका हमारे शास्त्रों ने विचार किया है, वह है चित् अथवा ज्ञान अर्थात् अनन्त और पूर्ण ज्ञान। हमें अपने दैनिक जीवन में, अपने अज्ञान और अपनी भूलों का तथा उनसे अपने और दूसरों के लिये होने वाले दुःखद परिणामों का जो

बार-बार और निरन्तर अनुभव होता है उसके कारण हमें इस बात पर विश्वास करने में बड़ी कठिनाई मालूम होती है। किन्तु थोड़ा मनन करने से यह सिद्ध हो जायेगा कि यह बात सोलहों आने सही है। किन्तु छूटते ही अनन्त ज्ञान के झमेले में न पड़कर हम धीरे-धीरे आगे बढ़ें और देखें कि आत्मा को हम सब प्रकार के ज्ञान से सर्वथा अलग कर सकते हैं अथवा नहीं और हमें अनुभव होगा कि किसी न किसी रूप में, किसी न किसी परिमाण में और किसी न किसी अंश में थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य रहता ही है। इस समय हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है कि ज्ञान पूर्ण है या अपूर्ण है, यथार्थ है अथवा अयथार्थ, इत्यादि। इस पर हम आगे विचार करेंगे। किन्तु प्रारम्भ में ही हम यह देखते हैं कि कुछ न कुछ ज्ञान हमें सदा रहता है। इस सम्बन्ध में हमें वह विनोदपूर्ण कथा बहुत याद आती है जिसमें एक स्त्री ने अपने पति से इस बात की शिकायत की कि संसार में कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर हम दोनों की राय एक हो। इस पर पति ने उत्तर दिया कि तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं, किन्तु एक बात ऐसी है जिस पर हम दोनों की राय एक है और वह यह है कि संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर हमारी तुम्हारी राय मिलती हो। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस अवस्था में मनुष्य इस बात का अनुभव करता है और कहता है कि मैं अमुक विषय में कुछ भी नहीं जानता, वहां भी वह कम से कम इतना अवश्य जानता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता और यह भी एक प्रकार का ज्ञान ही है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा का दूसरा लक्षण ज्ञान है, जिससे हम उसे कदापि पृथक् नहीं कर सकते।

केवल जाग्रत अथवा केवल स्वप्नावस्था में ही ऐसा होता हो सो बात नहीं है, सुषुप्ति के सम्बन्ध में भी यही बात है। क्योंकि वहां भी चेतना रहती ही है, अवश्य ही वह इतनी दबी रहती है कि ऊपर नहीं दिखलायी देती। किन्तु इसका निर्णय कैसे किया जाए? एक साधारण से अनुभव से यह बात सिद्ध हो जाएगी। मान लीजिए कि आप गहरी निद्रा में सोये हुए हैं और एक मच्छर आकर आपके तलवे में काटता है। आप उस समय भी गाढ़ निद्रा में सोये रहते हैं, किन्तु आपके ज्ञानतन्तु किसी समय भी नहीं सोते। शरीर विज्ञान हमें बतलाता है कि ज्ञानतन्तु दो प्रकार के होते हैं—(१) संवेदक तन्तु, जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाहरी ज्ञान को मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं, और (२) क्रियाशील तन्तु, जो मस्तिष्क के आदेश को हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों तक पहुंचाते हैं। ये सब तन्तु सदा काम करते रहते हैं, और स्वयं आपको भी पता नहीं रहता

कि ये सर्वदा जागरूक रहकर अपना-अपना काम ठीक-ठिकाने से करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि यद्यपि आपके तलवे में मच्छर के काटने से आपकी निद्रा भंग नहीं होती, तथापि उससे पैर में जो पीड़ा होती है उसकी खबर तुरन्त आपके मस्तिष्क को पहुंचा दी जाती है और मस्तिष्क आपके एक हाथ को आज्ञा देता है कि तुम काटे गये अंग को मलकर उसकी पीड़ा दूर कर दो और हाथ उसी क्षण आज्ञा पालन में लग जाता है। उस समय आपको नींद से नहीं जगाया जाता, न उसके लिए कौंसिल अथवा कार्यकारिणी समिति की बैठक ही होती है और न आपको इस बात का रंचमात्र इशारा ही किया जाता है कि आपके लिए एक विचारणीय समस्या उत्पन्न हो गयी और उसका बड़े व्यवहारिक ढंग से निपटारा भी कर दिया गया है। जब आप जागते हैं और अंग विशेष पर रक्त जमा हुआ देखते हैं, तब आप यह अनुमान करते हैं कि आपको वहां पर मच्छर ने काटा होगा और आपने उस जगह पर अपने नख का प्रयोग किया होगा। शरीर विज्ञान-वेत्ता इसे 'अबोधपूर्वक क्रिया' (Reflex Action) कहकर टालने की चेष्टा करते हैं। किन्तु इस प्रक्रिया का नाम जो कुछ भी रखें, इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि सुषुप्ति में भी पीड़ा की खबर मस्तिष्क तक पहुंचायी जाती है और मस्तिष्क उस पीड़ा को दूर करने की यथासाध्य चेष्टा करता है। इससे सिद्ध होता है कि सुषुप्ति में भी, किसी न किसी रूप में, न्यूनाधिक मात्रा में ज्ञान निरन्तर बना रहता है। दूसरे शब्दों में ज्ञान का दूसरा लक्षण है जो स्वरूपभूत, सहज, नैसर्गिक और अयुतसिद्ध गुण के रूप में आत्मा के साथ अनुविद्ध है।

अब और भी गहरे पैठकर हमें निश्चय करना चाहिए कि आत्मा का लक्षण भूत ज्ञान खण्ड है अथवा अखण्ड, परिच्छिन्न है या अपरिच्छिन्न। हम कहते हैं कि हमने अमुक गलती की, अमुक भयानक भूल की इत्यादि, किन्तु वेदान्त शास्त्र कहता है कि आत्मा सदा चित्‌रूप अर्थात् पूर्ण प्रकाश स्वरूप है और यदि हम इस प्रसंग पर उचित विचार करें तो हम आसानी से समझ सकेंगे कि हमारे भीतर का ज्ञान सीमित नहीं, किन्तु निरपेक्ष, निःसीम, व्यापक और पूर्ण है। उदाहरणार्थ यदि आप कमरे के सब दरवाजों और खिड़कियों को बन्द कर दें और सूर्य की एक क्षुद्र किरण को बड़ी कठिनाई से किसी छोटे छिद्र में से भीतर घुसने दें, तो क्या आपका यह कहना उचित होगा कि सारे संसार में सूर्य का प्रकाश इतना ही है? बात यह है कि यहां सूर्य का प्रकाश उस छिद्र रूपी उपाधि में से होकर आता है, इसलिए इतने प्रकाश से आप सूर्य

की समस्त किरणों के वास्तविक विस्तार का अनुभव नहीं कर सकते। इसी प्रकार यदि किसी घर के भीतर बहुत बड़ा प्रकाश हो, और उसकी थोड़ी सी छोटी-छोटी किरणें किसी प्रकार कठिनता से बाहर निकल पाती हों, तो जो लोग बाहर से इसे देखेंगे उन्हें भीतर के सम्पूर्ण प्रकाश का अन्दाजा नहीं हो सकता, किन्तु बाहर के थोड़े से प्रकाश का ही ज्ञान होगा जिसे वे देख पाते हैं। यही कारण है कि भगवान् आदि जगद् गुरु शंकराचार्य कहते हैं—

नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरम्।

(बहुत से छिद्रवाले बर्तन के भीतर रखे हुए विशाल दीपक के प्रकाश के समान देदीप्यमान।)

अथवा अपनी साधारण बिजली की बत्तियों का उदाहरण लीजिए। जबकि बिजली घर अधिक से अधिक बिजली पैदा कर रहा हो, तब भी हम उतना ही प्रकाश पायेंगे जितनी तेज़ हमारी बत्ती होगी, और तो क्या, रंगीन बत्ती लगाकर प्रकाश का रंग तक बदला जा सकता है। यद्यपि बिजली स्वयं न तो हरी है न नीली है, न लाल है और न सफेद ही है। वेदान्त का कथन है कि इसी प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान जिसे हम बाहर खोजते हैं हमारे भीतर है, वह न केवल अज्ञान के आवरण से ढका हुआ है, और हमें सिर्फ उस आवरण को हटाना है। भगवद् गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

'ज्ञान अज्ञान से ढका हुआ है, इसी से सब जीव मोहित हो रहे हैं।' अग्नि, बिजली, लक्षण, शिक्षा, आदि के सम्बन्ध में जो हमारे अनुभव हैं उन पर गम्भीर विचार करने से हमें इस उपदेश की सत्यता का बोध हो सकता है। हम अग्नि कैसे जलाते हैं? हम अग्नि को कहीं से लाते नहीं, वह पहले से ही अव्यक्त अथवा अप्रकट रूप में विद्यमान रहती है। हम उस अव्यक्त अग्नि का दो अरणियों के मन्थन से, चकमक पत्थर के दो टुकड़ों के परस्पर आघात से, दियासलाई को उसके बक्स पर लगे हुए मसाले पर रगड़कर अथवा और किसी प्रक्रिया से व्यक्त भर कर देते हैं। यही बात बिजली के सम्बन्ध में भी है। बिजली को भी हम लोग उत्पन्न नहीं करते, वह पहले से ही ईश्वर के द्वारा सृष्ट होकर सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हुई रहती है। हम केवल उस अव्यक्त बिजली को व्यक्त करने के लिए आवश्यक साधन मात्र करते हैं। इसी प्रकार, मूर्ति बनाने वाला जब संगमरमर की मूर्ति बनाता है तो वह क्या करता है? वह बाहर

से श्री राम, श्री कृष्ण, श्री शिव अथवा और किसी देवता की मूर्ति लेकर उस पत्थर में नहीं डाल देता। जगद् में जितने आकारों की कल्पना की जा सकती है वे सब-के-सब संगमरमर के अन्दर पहले से ही रहते हैं, किन्तु मूर्ति बनाने वाले को उन सब रूपों की आवश्यकता नहीं होती, उसे तो केवल एक विशिष्ट आकार की आवश्यकता होती है। वह केवल उस मूर्ति विशेष पर अपने मन को एकाग्र करके उन सब बाह्य आवरणों को रुखानी से छीलकर अलग कर देता है जो उस मूर्ति को हमारी दृष्टि से छिपाये हुए हैं। इस प्रकार जिस आकार की मूर्ति हम बनाना चाहते हैं उस आकार को हम कहीं बाहर से नहीं लाते, किन्तु वह भीतर से ही बाहर आता है। वास्तव में बाहर से भीतर न लाकर भीतर से बाहर ले आना यही एक प्रक्रिया है जिसका उपयोग हम कर सकते हैं।

इसी दृष्टिकोण से शिक्षा पर विचार करने से हम देखेंगे कि अंग्रेज़ी के 'Education' शब्द का, जो शिक्षा का पर्याय है अर्थ ही बाहर खींचना है और इस दृष्टि से वही पद्धति शिक्षा कहलाने के योग्य है जिससे हमारी सारी सहज, नैसर्गिक किन्तु गुप्त शक्तियां और योग्यता अधिक से अधिक व्यक्त हो सकें। दूसरी कोई भी पद्धति जिसमें बाहर से ज्ञान ठूंसा जाता है अथवा ज़िसमें रटाई पर जोर दिया जाता है, शिक्षा नहीं कहला सकती, उसे हम Education न कहकर Injection (वह डाक्टरी क्रिया जिसमें सुई के द्वारा दवा शरीर की नाड़ियों के भीतर प्रवेश कराई जाती है) कह सकते हैं (और वह Injection भी बारीक सुई की नोक से नहीं; किन्तु वेत्र प्रहार अथवा अन्य प्रकार के शारीरिक दण्ड तथा परीक्षा में असफलता से होने वाले आर्थिक एवं मानसिक दण्ड के भयरूप दो भोंड़े और मोटे शस्त्रों से दिया जाता है)।

इसके अतिरिक्त यदि थोड़ी देर के लिए 'तुष्यतु दुर्जनः' इस न्याय से यह मान भी लिया जाए कि ज्ञान को बलपूर्वक बुद्धि के अन्दर ठूंसा जा सकता है; तो क्या ऐसा करना हमारे लिए वांछनीय होगा? हम ऊपर कह आये हैं कि गरम पानी अपनी आगन्तुक उष्णता का इसीलिए परित्याग कर देता है कि उष्णता उसका भीतरी लक्षण नहीं है किन्तु बाहर से आया हुआ उपलक्षण है। इसी सिद्धान्त के अनुसार हम सहज ही में इस बात को समझ सकते हैं कि यदि ज्ञान वास्तव में हमारा आन्तरिक लक्षण नहीं है किन्तु बाहर से हमारे भीतर लाया तो ऐसे ज्ञान से हमें स्थायी लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि यह सारी शिक्षा हमारे लिये तभी उपयोगी होगी जब हमको दिया जाने वाला ज्ञान पहले से ही हमारे भीतर छिपा हुआ हो और उसे केवल

उद्बुद्ध करके क्रियाशील कर दिया गया हो। जो ज्ञान हमें प्रदान किया गया है वह यदि हमारे स्वरूप अथवा स्वभाव का सहज और अभिन्न अंश नहीं है, तो वह सारा ज्ञान जो हमने बाहर से ग्रहण किया है, थोड़े ही समय में नष्ट हो जाएगा, ठीक जिस प्रकार जल अपनी गर्मी को छोड़ देता है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि सारा ज्ञान पहले से ही हमारे अन्दर है, और सच्चा गुरु अथवा आचार्य वही है जो हमारे उस छिपे हुए ज्ञान को प्रकट करने तथा उसे व्यक्त करने के लिए उत्तम-उत्तम साधनों का प्रयोग करता है, शिक्षकनामधारी तथा शिक्षक के बाने को धारण करने वाले दूसरे लोग तो वास्तव में अपने छात्रों की वंचना ही करते हैं। यही कारण है कि भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं—

'तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।'

'सूर्य को छिपा देने वाले बादल को जब हवा उड़ा ले जाती है, तब हम पवन के द्वारा उत्पन्न हुए किसी नये सूर्य को नहीं देखते, किन्तु उसी पुराने सूर्य को बादल रूपी आवरण हटाकर पवन देवता फिर हमारे सामने ले जाते हैं। दूसरे शब्दों में शिक्षा एवं संस्कार के द्वारा किसी नये ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती, अपितु वे हमारे भीतर के सहज ज्ञान को प्रस्फुटित कर उसे देखने, अनुभव करने, प्रयोग में लाने, उसका आनन्द लूटने और उससे लाभ उठाने में हमारी सहायता करते हैं। इसी को ब्रह्मसूत्र के माध्यम से इस प्रकार कह सकते हैं कि शिक्षा और संस्कार से हमारी प्रकृति नहीं बदलती और न बदल ही सकती है, वे केवल उसे अभिव्यक्त कर विकास के लिये पूरा मौका और स्वतन्त्रता देते हैं। इसका सारांश यह निकला कि आत्मा अखंड ज्ञान स्वरूप है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

एक फ्रांसीसी लड़की की कथा

इस सम्बन्ध में हम एक विचित्र घटना का उल्लेख करेंगे जो इस लेख लिखने के तीन वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी। एक फ्रांसीसी लड़की, जो केवल अपनी मातृभाषा ही जानती थी, एक भयानक रोग से पीड़ित हुई। वह कई सप्ताह तक बेहोश रही और उसके जीवन की आशा छोड़ दी गयी थी। किन्तु देखा कि इस बीच में वह फ्रांसीसी भाषा को बिल्कुल

भूल गयी और लगभग दस बारह भाषाओं का, जिनका नाम भी उसने पहले कभी नहीं सुना था, आश्चर्यजनक ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस विस्मयजनक समाचार को सुनकर मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिकगण स्वाभाविक ही बड़े चकित हुए और इस घटना की पूरी तौर से जांच करने के लिये दौड़ पड़े। उन्हें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि इसमें कोई फरेब नहीं है और पूरा समाचार ऐतिहासिक दृष्टि से सोलहों आने सत्य था। उन्हें विवश होकर यह वक्तव्य प्रकाशित करना पड़ा कि इस घटना का एक ही अर्थ हो सकता है कि स्पष्ट ही सारे पदार्थों का पूर्ण ज्ञान (जिसमें भाषाओं का ज्ञान भी सम्मिलित है) हमारे मस्तिष्क में सचमुच संचित रहता है, किन्तु वह खास खास कोठरियों में बन्द रहता है जिन्हें विशेष प्रकार की कुंजियां ही खोल सकती हैं। संग, वातावरण और शिक्षा के प्रभाव से हमारी इनमें से कुछ कोठरियां खुल जाती हैं, किन्तु (असली कुंजी का अज्ञानवश प्रयोग न कर सकने के कारण) हम दूसरी कोठरियों को खोलने में असमर्थ रहते हैं। उस फ्रांसीसी लड़की के साथ तो कोई ऐसी बात हुई होगी। जिसका वैज्ञानिक लोग अंदाजा नहीं लगा सके—जिसके कारण फ्रांसीसी भाषा की कोठरी का द्वार अपने आप बन्द हो गया और लगभग एक दर्जन सर्वथा अपरिचित भाषाओं की कोठरियों के द्वार एक साथ ही खुल गये। आत्मा में अनन्त एवं पूर्ण ज्ञान है। इस वेदान्त सिद्धान्त का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हेतु विद्या और सत्य विद्या की दृष्टि से भी, जिस प्रकार हमारी सदा जीवित रहने की इच्छा इस बात को सिद्ध करती है कि अमरत्व हमारा स्वरूप ही है, उसी प्रकार पदार्थों के सम्बन्ध में हमारी जिज्ञासा भी इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ज्ञान (अज्ञान नहीं) आत्मा का असली स्वरूप है।

अनन्त आनन्द

अमरत्व और अनन्त ज्ञान, आत्मा के इन दो लक्षणों का निश्चय करके अब हमें अगले लक्षण का विचार करना चाहिए। उपनिषद् हमें बतलाते हैं कि सत् और चित् के बाद आनन्द (नित्य, शुद्ध और पूर्ण आनन्द) भी आत्मा का एक लक्षण है। शोक और दुःख का निरन्तर अनुभव करते रहने के कारण इसमें भी हमारा विश्वास होना स्वाभाविक ही कठिन मालूम होता है। किन्तु ऊपर बताये हुए, और उदाहरणों द्वारा समझाये हुए ढंग से इस विषय पर थोड़ा मनन करने से यह सिद्ध हो जाएगा कि यहां भी वेदान्त का सिद्धान्त ही वास्तव में ठीक है। वास्तव में यह सिद्धान्त इतना सहज और सुगम है कि हमें इस बात को जानकर आश्चर्य होता

है कि माया हमारी बुद्धि पर ऐसा पर्दा किस प्रकार डाल देती है कि जिससे हम इतने स्पष्ट एवं स्वतः सिद्ध सत्य को भी नहीं देख पाते।

यदि कोई मनुष्य रोता दिखायी पड़ता है तो लोग उसके पास जाते और पूछते हैं कि तुम क्यों रोते हो। इसका कारण जानने की आवश्यकता होती है। किन्तु दूसरों के पास जाकर कोई नहीं पूछता कि तुम क्यों नहीं रोते। इससे सिद्ध होता है कि दुःख हमारे लिए स्वाभाविक नहीं है किन्तु किसी तात्कालिक बाह्य कारण से उत्पन्न होता है, अर्थात् वास्तव में वह हमारा लक्षण नहीं केवल उपलक्षण मात्र है और जब मनुष्य अपने दुःख का कारण बतला देता है (जैसे स्त्री-पुत्रादि का वियोग इत्यादि) और उस समय वह समझता है कि मेरे लिए सदा के लिये अंधेरा छा गया, नहीं, नहीं, प्रलय हो गया, उस हालत में भी उसका शोक दिनों दिन कम होता जाता है और कभी-कभी हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि वही आदमी अपनी उस स्त्री अथवा सम्बन्धी को बिल्कुल भूल गया है जिसके वियोग में वह इतना दुःखी था। तो क्या दुःख इस दृष्टि से जल की उष्णता के समान नहीं है कि इसकी प्राप्ति के लिए किसी बाहरी कारण की अपेक्षा होती है, किन्तु इसके जाने में काल के स्वाभाविक अतिक्रमण के अतिरिक्त और किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। यदि ऐसा ही है तो क्या शोक उसी तरह से हमारा उपलक्षण नहीं है जिस प्रकार उष्णता जल का, मुंडेर पर बैठा हुआ कौआ घर का, सड़क पर खड़ी हुई गाड़ी सड़क का और रास्ते में एकत्रित हुए स्त्री पुरुष उस रास्ते के उपलक्षण हैं? इससे यह सिद्ध होता है कि दुःख हमारे लिए स्वाभाविक नहीं, आनन्द ही हमारा वास्तविक स्वरूप है। क्योंकि जब हम किसी बाह्य कारण से बलात् दुःखी भी होते हैं उस समय भी वह आनन्द कहीं जाता नहीं किन्तु दबा हुआ पड़ा रहता है, जिससे वह क्रमशः अपना प्रभुत्व प्राप्त कर बाहर से आकर अधिकार जमाने वाले दुःख को निकाल बाहर करता है और फिर पहले की भांति व्यक्त रूप को धारण कर लेता है।

हेतुविद्या और सत्य ज्ञान की दृष्टि से भी हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार हमारी जीवित रहने और पदार्थों को जानने की इच्छा यह सिद्ध करती है कि अनन्त जीवन और निःसीम ज्ञान हमारा स्वरूप है, उसी प्रकार यह बात है कि हम सभी आनन्द की खोज में रहते हैं, इसका निश्चित और पर्याप्त प्रमाण है कि आनन्द हमारे अन्तरात्मा का स्वभाव है और जितना ही हम उससे दूर होते जाते हैं उतना ही हमारा दुःख बढ़ता जाता है। जिस प्रकार मछली जल के बाहर आकर फिर जल में जाने के लिए निरन्तर चेष्टा करती है, क्योंकि जल ही उसका

स्वाभाविक स्थान है, उसी प्रकार हम भी आनन्द से दूर जाकर फिर उसी को प्राप्त करने के लिए सतत उद्योग करते रहते हैं क्योंकि आनन्द ही (दुःख नही) हमारा प्राकृत तत्त्व नहीं। ना ही हमारा स्वरूप है और जो कुछ हम करते हैं, आनन्द प्राप्ति के लक्ष्य से करते हैं। (यद्यपि हम आनन्द का ठीक-ठीक निरूपण और उसकी प्राप्ति के लिए उचित साधनों का उपयोग करते हैं या नहीं यह दूसरा प्रश्न है।) इस दिशा में एक पग और आगे बढ़ाकर और इसी तर्क को थोड़ा और आगे बढ़ाकर हम देख सकते हैं कि जिस आनन्द की हम खोज करते हैं वह देश काल अथवा परिमाण से बद्ध नहीं, किन्तु स्वतन्त्र, विशुद्ध (शोक रहित) और अनन्त है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उपर्युक्त लक्षणों से युक्त आनन्द ही हमारा स्वरूप है।

स्वतन्त्रता

अब कल्पना कीजिए कि हमें अमर जीवन, सर्वविषयक ज्ञान और अनन्त आनन्द, यह सब कुछ प्राप्त है। किन्तु क्या हम इतने से सन्तुष्ट हैं? नहीं। क्योंकि चाहे हम सदा जीवित रहें, सब पदार्थों को जान लें और मनोवांछित आनन्द का उपभोग करें; किन्तु यदि इन सब आनन्दों को हम अपने जन्मसिद्ध अधिकार की भांति अपनी इच्छा के अनुसार नहीं भोगें, दूसरे की दया से भोगें, तो यह परावलम्बन ही हमारे लिए भार रूप और असह्य हो जायेगा; और चाहे हम अपनी अक्षमता के कारण अपने बन्धनों को तोड़ न सकें और उन्हें स्वीकार कर लें; किन्तु ऐसा हम स्वेच्छा से नहीं, विवशता से करते हैं और यदि ऐसा सम्भव हो तो विश्व के प्रत्येक प्राणी और पदार्थ से हम स्वतन्त्र होना चाहेंगे। अपने विवेक का अभिमान करने वाले मनुष्य में ही नहीं, संसार के प्रत्येक चेतन प्राणी में स्वतन्त्रता की उत्कट इच्छा अथवा (वेदान्त की भाषा में) मुमुक्षा रहती है। फिर हम मानवों के लिए तो इसका दिन में विचार करना और रात्रि में स्वप्न देखना और जाने में अथवा अनजाने में हर समय उसकी इच्छा करना और भी स्वाभाविक है। अस्तु, इस प्रकार हमारा स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर लालायित रहना इस बात का प्रमाण है कि बन्धनों से मुक्त होना हमारा स्वभाव है। अतएव मोक्ष (अर्थात् सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा) आत्मा का चौथा लक्षण है।

ऐश्वर्य

किन्तु इस चौथी आकांक्षा से भी हमारी आकांक्षाओं की समाप्ति नहीं हो जाती। यदि हम ठीक-ढीक और ईमानदारी से अपने भावों, इच्छाओं और क्रियाओं का विश्लेषण करें तो

पता चलेगा कि सत्, चित्, आनन्द और मोक्ष (अर्थात् शाश्वत जीवन, अनन्त ज्ञान, असीम आनन्द और सब प्रकार की स्वतन्त्रता) ही हमारे लिए पर्याप्त नहीं हैं, इनके अतिरिक्त एक और पदार्थ है जिसे हम सब लोग चाहते हैं।

यह पांचवीं वस्तु बड़ी विचित्र है; इसमें से प्रत्येक व्यक्ति इसे हृदय से चाहता है और यह हमारी चौथी आकांक्षा के विरुद्ध भी है। किन्तु ऐसा होने पर भी यह रहती सदा है और इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। यह हमारी पांचवीं विचित्र आकांक्षा क्या है? वह यह है कि एक ओर तो हम स्वतन्त्रता चाहते हैं अर्थात् दूसरों की इच्छा से संचालित होना नहीं चाहते, किन्तु साथ ही साथ दूसरी ओर हम यह चाहते हैं कि दूसरे हमारी इच्छा से संचालित हों और हमारी इच्छा का अनुसरण करें। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि अबोध और अनुभवहीन बालक भी यही चाहते हैं कि उनके माता-पिता, जो उनकी अपेक्षा अधिक अनुभवी और बुद्धिमान् हैं, उनकी इच्छा और बुद्धि के अनुसार चलें और यह नियम सर्वथा अपवादरहित है कि प्रत्येक मनुष्य अपने हृदय से वास्तव में केवल जीना, ज्ञान प्राप्त करना, सुखी होना और स्वतन्त्र होना ही नहीं चाहता, किन्तु दूसरों पर शासन करने की भी इच्छा करता है। सच तो यह है कि हम केवल शासन अथवा राज्य ही नहीं चाहते, किन्तु यदि सम्भव हो तो अखिल ब्रह्माण्ड का स्वामित्व चाहते हैं। हेतुविद्या और सत्यज्ञान की दृष्टि से यह सिद्ध होता है कि ऐश्वर्य भी हमारे लिए स्वाभाविक अर्थात् आत्मा का पंचम लक्षण है।

सारांश

बाह्य संसार और आन्तरिक भावों के इस प्रकार के विस्तार से विश्लेषण करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सत्, चित्, आनन्द, मोक्ष और ईशत्व इन पांच वस्तुओं को हम सब केवल चाहते ही नहीं, ये हमारे स्वाभाविक, नहीं-नहीं, सहज गुण हैं, जो गरम किये हुए जल को स्वाभाविक शीतलता की भांति कुछ समय के लिए दब भले ही जाएं, किन्तु सदा के लिए अभिभूत एवं निर्मूल नहीं किये जा सकते। इस प्रश्न पर गम्भीर एवं सूक्ष्म विचार करने से ये सब बातें जो हमें मालूम हुई हैं, उनका वास्तविक अर्थ, असली अभिप्राय, व्यावहारिक महत्त्व तथा अन्तिम सारांश क्या है? कहां से प्रारम्भ करके कहां पहुंचे हैं? अच्छा हमने ईश्वर अथवा किसी अलौकिक पुरुष के नहीं, किन्तु अपने ही तथ्यों एवं मानसिक भावों के विवेचन

और विश्लेषण से प्रारम्भ किया था। वास्तव में हमने अब तक ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में कोई बात सिद्धान्त रूप से नहीं कही, केवल जीव की ही चर्चा करते रहे। हमारे सामने जो प्रमाण आये उनके आधार पर हम इस अप्रत्याशित किन्तु अनिवार्य परिणाम पर पहुंचे हैं कि हम लोग ईश्वर को जाने अथवा न जानें, उसकी सत्ता में विश्वास करें अथवा न करें, तथा उसके बारे में हमने कुछ सुना अथवा विचार किया हो अथवा न किया हो, इतनी बात अवश्य सत्य है कि सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप, मुक्तस्वरूप और ईश्वरस्वरूप, जिन्हें संसार के सभी धर्मग्रन्थ ईश्वर के विशेषण बतलाते हैं, हमारे भी वास्तविक, स्वाभाविक, आन्तरिक, सहज एवं नैसर्गिक गुण हैं, और हम लोग जाने में अथवा अनजाने में, हृदय से तथा अपनी पूरी शक्ति लगाकर उन्हीं गुणों को प्राप्त करने का अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं, जिनका सम्बन्ध सर्वशक्तिमान ईश्वर से है।

इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे तृतीय पररिच्छेदे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

जीव और ईश्वर

इस प्रकार जब यह निश्चय हो गया कि जीव में भी ईश्वर के समान ही गुण हैं, तो अब यह देखना चाहिए कि दोनों में सम्बन्ध क्या है? यदि इसको हम ठीक तरह से जान लें तो हमारे आत्मा के विकास का प्रश्न बड़ी सुगमता से, नहीं-नहीं, अपने आप हल हो जायेगा क्योंकि गन्तव्य स्थान का पता चल जाने पर वहां तक पहुंचने का सच्चा मार्ग आसानी से निश्चित किया जा सकता है। ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि हम भगवद्रूप हैं अर्थात् नर और नारायण में कोई अन्तर नहीं है, और उस नारायण पद से च्युत अथवा स्खलित होने के कारण ही हम शोकातुर और दुःखित हो रहे हैं, और ज्यों-ज्यों हम उस पद से नीचे गिरते जाएंगे त्यों ही त्यों हमारे सन्ताप और क्लेश बढ़ते जाएंगे और इनसे छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय है शीघ्र से शीघ्र ईश्वर तत्त्वरूप अपने स्वरूपभूत लक्षण को पुनः प्राप्त कर लेना क्योंकि नारायण से ही हम उत्पन्न हुए हैं, नारायण ही हमारा धारण-पोषण करते हैं और नारायण ही में हम लीन हो जाएंगे।

एक या अनेक

'यह सब ठीक है, किन्तु इससे तो इतना ही सिद्ध होता है कि मनुष्य ईश्वर के समान है और इसमें उसकी ईश्वर के समान अथवा ईश्वर बनने की अभिलाषा ही कारण है। इससे बाइबिल के उस सिद्धान्त की सत्यता भी प्रमाणित होती है जिस सिद्धान्त को लक्ष्य में रखकर उसमें यह कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपने ही अनुरूप बनाया। किन्तु इससे ईश्वर के साथ हमारी अभिन्नता कैसे सिद्ध होती है? क्योंकि उपर्युक्त पांच लक्षणों के आधार पर हम यहां तक तो न्यायतः कल्पना कर सकते हैं कि हमारी ईश्वर के साथ मानसिक समता है, किन्तु उन लक्षणों से हम हमारी और ईश्वर की रासायनिक एकता का अनुमान कैसे कर सकते हैं? यह दूसरा प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। इस विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं कि विश्व के अनन्त नाम रूपों के पीछे वास्तविक एकता है, और परमात्मा, जीवात्मा और जगत् में केवल रासायनिक एकता ही नहीं, किन्तु गणितशास्त्रीय एकता है। आइये, अपनी मनन वाली पूर्व निश्चित पद्धति से इसको भी समझने का प्रयत्न करें। इस प्रश्न पर भी हम कई तरह से विचार कर सकते हैं।

सृष्टि की कथा

सर्वप्रथम हम अपने से ही यह प्रश्न करें कि सृष्टि क्या है? इस विषय पर उपनिषदों और बाइबिल के मत में थोड़ा सा ही अन्तर है, विरोध नहीं है। बाइबिल के उत्पत्ति प्रकरण (Genesis) नामक प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय का पहला वाक्य इस आशय का है—

'आरम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और मर्त्यलोक को रचा।' और सृष्टि की प्रक्रिया का वर्णन करते हुये वहां यह दिखलाया गया है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सत्यसंकल्प है क्योंकि वहीं यह लिखा है कि ईश्वर ने कहा—'प्रकाश हो जाए' और प्रकाश हो गया। किन्तु वहां पर सृष्टिकर्ता ईश्वर और उसकी प्रकाशरूप सृष्टि में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। किन्तु उपनिषद और भी आगे बढ़कर हमें उस संकल्प को बतलाते हैं जिसके द्वारा ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की, और उससे दोनों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। संकल्प यह था—

'बहु स्यां प्राजायेय' (मैं अनेक बन जाऊं, मैं अपने को अनेक रूपों में व्यक्त करूं।

ईश्वर ने यह नहीं कहा कि 'मैं उत्पन्न करूं' किन्तु यही कहा कि 'मैं बन जाऊं' और इस प्रकार उन्होंने इस विषय पर शंका के लिए स्थान नहीं रखा। यदि आप यह मान लेते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सत्य संकल्प है तो आपको साथ ही साथ यह भी मानना पड़ेगा कि सारा दृश्यप्रपंच शरीर, इन्द्रिय, मन आदि विभिन्न उपाधियों से उपहित उसी परमात्मा की अभिव्यक्ति हैं। किन्तु यदि आप इस बात का आग्रह करते हैं कि ये सारे पदार्थ ईश्वर से भिन्न हैं, तो आप अपने को ईश्वरवादी कहते हुए भी वास्तव में ईश्वर की सर्वसमर्थता और उसके सत्यसंकल्प को नहीं मानते।

उपनिषद में स्पष्ट कहा है—**'सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्'**—पहले केवल सत् (अर्थात् ईश्वर) ही था। और यद्यपि इस बात को स्पष्ट करने के लिए 'एव' शब्द ही पर्याप्त था, किन्तु पढ़ने वालों के मन में किसी प्रकार का सन्देह अथवा भ्रम न रह जाए, इसलिए श्रुति भगवती उसी के आगे कहती है—**'नान्यत्किंचन मिषत्'** (दूसरा कुछ भी नहीं था)। तब सृष्टि प्रारम्भ हुई और उसके द्वारा वह अनेक बन गया। इस विषय में शास्त्रों का यह निश्चित मत है और इसका अर्थ यह है कि उसके द्वारा रचित सभी पदार्थ वास्तव में उसी के रूप हैं। ईश्वर जीव और जगत की एकता का निश्चय करने का एक प्रकार यह है।

और फिर ईश्वर की सृष्टि संकल्प के आधार पर किये जाने वाले इस अनुमान के अतिरिक्त, एक श्रुति और है जो किसी प्रकार के अनुमान और तर्क के लिए गुंजाइश ही नहीं रखती, किन्तु स्पष्ट कहती है—**'सच्च त्यच्चाभवत्'** (वह स्वयं व्यक्त और अव्यक्त जगत् बन गया)। इसके बाद कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि अद्वैत ही वेदान्त का वास्तविक सिद्धान्त है।

दूसरे, संस्कृत का 'सृष्टि' शब्द ही (जिसका विवेचन आत्मा के अनन्त जीवन के सम्बन्ध में ऊपर किया जा चुका है) सृष्टि की ईश्वर के साथ अभिन्नता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। सृष्टि का अर्थ है—'विसर्ग' अर्थात् भीतरी वस्तु को प्रकट करना। और वेदान्त के 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' (जिस प्रकार मकड़ी अपना जाल फैलाकर फिर उसे समेट लेती है, उसी प्रकार परमात्मा भी सृष्टि के समय जगत् को व्यक्त करते हैं और सर्ग के अन्त में उसे फिर अपने अन्दर लीन कर लेते हैं)। इस दृष्टांत से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सृष्टि का अर्थ किसी नये पदार्थ का उत्पन्न होना नहीं, किन्तु अव्यक्त का व्यक्त होना ही है।

बाइबल की कथा

हम लोग फिर बाइबल के सृष्टि प्रकरण पर चल कर उसके पहले वाक्य का विचार करें, जो इस प्रकार है—'आरम्भ में ईश्वर ने स्वर्ग और मर्त्यलोक रचा।' इस वाक्य का सूक्ष्म विवेचन करने से हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं जिस पर श्रुतियों के मनन से पहुंचे थे। 'ईश्वर ने स्वर्ग और मर्त्यलोक रचा' इस कथन का अर्थ यह है कि इनको रचने से पूर्व केवल ईश्वर ही था, और कुछ नहीं था। यदि ऐसी बात है तो जब उसने सृष्टि को रचा तो किस उपादान से रचा? उदाहरणार्थ जब कोई बर्तन बनाया जाता है तो केवल बनाने वाले कुम्हार की ही आवश्यकता नहीं होती, अपितु मिट्टी की भी आवश्यकता होती है जिससे बर्तन बनाया जाएगा। इसी प्रकार जब कोई सोने का आभूषण बनाया जाता है तो केवल बनाने वाले सुनार की ही ज़रूरत नहीं पड़ती, किन्तु सोने की भी ज़रूरत पड़ती है जिससे यह आभूषण बनाया जाएगा। वास्तव में तो कुम्हार और सुनार से पहले ही मिट्टी और सोने की आवश्यकता होती है। इसी तर्क के आधार पर हम आसानी से समझ सकते हैं कि विश्व निर्माण के पूर्व उसे बनाने वाला ईश्वर ही नहीं, अपितु बनाने की सामग्री भी अवश्य रही होगी। बर्तन और आभूषण बनाने के समय मिट्टी और सोना पहले से ही तैयार करते हैं। कुम्हार और सुनार आते हैं और इसके पश्चात् सब काम सरलता से हो जाता है। परन्तु यदि सृष्टि के समय—जैसा कि वेद और बाइबल दोनों कहते है—केवल ईश्वर ही था, ईश्वर के अतिरिक्त कुछ नहीं था, तो उसने यह सारी सृष्टि किस उपादान से रची? मान लीजिए संसार में सोना ही सोना हो, कोई दूसरी धातु अथवा खनिज पदार्थ अथवा कोई द्रव्य हो ही नहीं, तो आपको इस विषय में रंचमात्र भी सन्देह नहीं होगा कि सुनार जो आभूषण बनावेगा वह विशुद्ध सोने का ही होगा। जो आभूषण या पात्र अथवा और कोई वस्तु वह बनावेगा, उसका आकार या माप कैसा ही हो, उसका उपादान सोना ही होगा। इसी प्रकार जब अकेला ईश्वर ही था, और कुछ नहीं था, और उसी ने संसार को रचा, तो क्या यह स्पष्ट नहीं कि उस समय जो चीज़ मौजूद रही होगी उसी से उसने संसार को रचा होगा और वह चीज़ उसके सिवा कोई और नहीं थी, क्योंकि उसको छोड़कर उस समय और कोई चीज़ वास्तव में थी ही नहीं? दूसरे शब्दों में, सभी पुरुषों और पदार्थों के भीतर रहने वाला तत्त्व ईश्वर ही है और बाह्य पदार्थों में जो कुछ भी अन्तर देखते हैं वह केवल आकार प्रकार में ही है, वास्तविक पदार्थ में नहीं है। वेदान्त का वचन है—

'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।' घड़ा करवा इत्यादि नाममात्र हैं जो केवल बाह्य रूप का अतिरेक बतलाते हैं, किन्तु उन सबके भीतर उपादान मिट्टी ही है । इसी प्रकार मनुष्य, घोड़े, पत्थर, जल आदि नाम-मात्र हैं जो केवल बाहरी रूप का अन्तर प्रकट करते हैं, किन्तु सबके भीतर रहने वाला उपादान ईश्वर ही है ।

भगवान वेदव्यास ने अपने ब्रह्मसूत्र में इसी बात को इस प्रकार व्यक्त किया है—

'तदनन्यत्वमारम्भण शब्दादिभ्यः ।'

(अर्थात् आरम्भण आदि श्रुतियों में ईश्वर और जगत् की एकता का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है ।) और बाइबल की कथा भी, जैसा कि हमने अभी बताया है, इसी निष्कर्ष पर पहुंचाती है । भगवान श्री शंकराचार्य ने भी अपने निम्नलिखित श्लोक में यही मत प्रकट किया है—

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं हि निश्चितम् ।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च विनिश्चितम् ॥

(जिस प्रकार सोने से बना हुआ आभूषण निःसन्देह सोना ही होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जगत् निश्चय ही ब्रह्म है ।) यह बिलकुल युक्तियुक्त है कि जो वस्तु ईश्वर से आविर्भूत हुई है, वह ईश्वर की है और इसी से यह अनोखी बात भी भली-भांति समझ में आ जाती है (जिसके सम्बन्ध में हम ऊपर विचार कर चुके हैं) कि हमारा आत्मा भी निरन्तर सत्, चित्, आनन्द, मोक्ष और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए छटपटाता रहता है, जो ईश्वर के गुण हैं और ईश्वर स्वरूप होने के कारण , हमारे लिए यह स्वाभाविक ही है कि हम तब तक पूर्ण सन्तुष्ट और शान्त नहीं हो सकते जब तक कि हम अपने ईश्वरत्व का पूर्णतया और सब प्रकार से अनुभव न कर लें, और उस ज्ञान के निविड़ अन्धकार में भी जो हमारे भीतर रहने वाली दिव्य ईश्वरीय ज्योति को आच्छादित किये हुए है । हम अन्धों की तरह अपने उन पांच लक्षणों को ही ढूंढते रहते हैं । यहां यह ध्यान देने की बात है कि हम केवल ईश्वर के साथ समानता अथवा दिव्यत्व ही नहीं चाहते किन्तु उसके साथ सर्वथा अभिन्न होना चाहते हैं । जब कि हमारे धर्म वाले इस बात को स्पष्ट रीति से इन शब्दों में कहते हैं—

१. 'ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है,'

२. 'तुम देवता हो',इत्यादि ।

केवल वेदान्त को ही यह अनुपम गौरव प्राप्त है कि वह इस सिद्धान्त को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करता है, इसी लक्ष्य को हमारे सामने रखता है और उसके लिए मार्ग बतलाता है। यह उपनिषद् वाक्य कितना सुन्दर है—

"प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥

(आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है; जिस प्रकार एक कुशल वेधक के द्वारा छोड़ा गया बाण सीधा निशाने को बेधकर उसमें समा जाता है, उसी प्रकार आत्मा को भी सीधे ब्रह्म में जाकर लीन हो जाना चाहिए।

इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अद्वैतवाद और नास्तिकवाद

सभी आस्तिक दर्शन केवल ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानते, किन्तु उसे सृष्टिकर्ता भी मानते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ईश्वरवादी होने पर हमें न्यायतः वेदान्त के अद्वैतवाद को जिसे लार्ड टेनिसन नामक अंग्रेज़ कवि उच्च सर्वेश्वरवाद (Higher Pantheism) कहते हैं, मानना ही पड़ेगा। किन्तु प्राचीन धर्मों में जैन धर्म और आधुनिक समाज में आर्य समाज ईश्वर को सृष्टिकर्ता न मान कर ही (ईश्वर ने सृष्टि को किस उपादान से रचा) इस कठिनाई को दूर करने की चेष्टा करते हैं, यद्यपि दोनों का ढंग निराला है। इसलिए इनके सिद्धान्तों पर भी हम संक्षेप में विचार करेंगे। जहां तक इस प्रश्न के बौद्धिक और नैतिक स्वरूप का सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि जैन धर्म का दृष्टिकोण आर्यसमाज के मत से कहीं अच्छा है।

जैनाचार्यों का कहना है कि सर्वज्ञ और दयालु ईश्वर के द्वारा ऐसे पापपूर्ण और दुःखमय संसार की सृष्टि नहीं हो सकती जैसा कि हम इसे पाते हैं और इसीलिए वे ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानते। इससे केवल यही प्रकट होता है कि उनकी बुद्धि पाप के महान प्रश्न को हल नहीं कर सकी, जो सभी अध्यात्मवादियों के लिए हौआ बना हुआ है, किन्तु ईश्वर को सृष्टिकर्ता न मानने में उनका हेतु बुरा नहीं है, यद्यपि उनकी युक्ति हमें ठीक नहीं जंचती। और फिर भौतिक

दृष्टि से भी उनकी यह मान्यता अनुचित नहीं है क्योंकि आर्यसमाजियों की भांति वे अपने को वेदवादी विख्यात नहीं करते, बल्कि खुल्लम-खुल्ला अपने को अवैदिक स्वीकार करते हैं। इसलिए उनके विषय में हम यह नहीं कह सकते कि वे मानते कुछ और हैं और कहते कुछ और हैं। अथवा उनके सिद्धान्तों में परस्पर विरोध आता है सो भी बात नहीं है। हां, उनकी बुद्धि की भूल अवश्य मालूम होती है। किन्तु आर्यसमाजियों में ये दोनों बातें ही देखने में आती हैं। क्योंकि केवल उपनिषद् ही नहीं किन्तु मन्त्र-संहिता भी, जिस पर वे विश्वास करने का दम भरते हैं, कहती है—'**अजायमानो बहुधा विजायते**' (अर्थात् वह अजन्मा अनेक रूपों में जन्म लेता है) और इस तरह विशुद्ध अद्वैत का प्रतिपादन करती है। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती भी इस मन्त्र का अर्थ वही करते हैं जो हमने किया है।

इस प्रकार जिस ग्रन्थ पर वे विश्वास करने का दावा करते हैं उसी के साथ उनका सिद्धान्ततः विरोध आता है। अब हम केवल तार्किक दृष्टि से उनकी युक्ति की आलोचना करें और देखें कि उसमें कितना दम है। आर्यसमाजी ईश्वर में विश्वास करने का दावा करते हैं और उसे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान इत्यादि विशेषणों से विभूषित करते हैं, किन्तु साथ ही उसे सृष्टिकर्ता न मानकर यह भी घोषित करते हैं कि प्रकृति भी (सारे विश्व को अपने गर्भ में लेकर) ईश्वर के साथ अनादि काल से विद्यमान थी, और इसलिए वह ईश्वर की सृष्टि नहीं है और सृष्टिकर्ता को गौरवयुक्त उपाधि प्राप्त करने का यदि उन्हें कोई अधिकार है तो वह केवल इस बात को लेकर कि वे प्रकृति के उन पदार्थों को जो उनके अन्दर पहले से ही मौजूद रहते हैं फिर से केवल सजा भर देते हैं और उन्हें आधुनिक स्थान, रूप, आकार और नाम प्रदान करते हैं। इसके उत्तर में हम इससे भी अधिक कुछ नहीं कहना चाहते कि यदि ईश्वर और प्रकृति दोनों ही अनादि होते और उनके अलग-अलग स्वतन्त्र गुण होते तो ईश्वर के कार्यों में प्रकृति के स्वतन्त्र गुणों को लेकर परतन्त्रता आ जाती और फिर वे सर्वशक्तिमान आदि कुछ भी नहीं रह जाते। और यदि वास्तव में ऐसे ही सृष्टिकर्ता हैं जैसा कि आर्यसमाजी लोग उन्हें समझते हैं, तो उनका कर्तापन उसी कोटि का होगा जैसा कि कुम्हार का बर्तन के प्रति होता है, बल्कि एक दृष्टि से उससे भी कम दर्जे का होगा। क्योंकि ईश्वर ने जिस अर्थ में वन को उत्पन्न किया है, उसी अर्थ में मनुष्यों ने नगरों का निर्माण किया है। यहां पर मुझे एक दृष्टांत याद आ गया। किसी स्कूल की एक छोटी बालिका से इन्सपेक्टर ने पूछा कि तुमको किसने बनाया। उसने

अपनी हथेलियों को सटाकर एक छोटे शिशु का संकेत करते हुए उत्तर दिया—'महाशय, ईश्वर ने मुझे इतना सा बनाया, और इसके बाद मैं स्वयं बड़ी हो गई।' उसी अबोध बालिका की भांति हम भी यह कह सकते हैं कि दुनिया भर की रद्दी चीज़ें ईश्वर ने बनाईं और नगर, प्रासाद, रेलगाड़ी, बिजली की बत्तियां, वैज्ञानिक आविष्कार तथा सभ्यता के अन्य सुन्दर एवं आश्चर्यजनक वस्तुएं हमने बनाईं। इसलिए हम उनसे भी श्रेष्ठ कर्ता हैं। जो लोग ईश्वर और उनकी प्रकृति को अलग-अलग एवं स्वतन्त्र मानते हैं, उनके लिए हमें इतना ही कहना है। वास्तव में ऐसा कोई भी दार्शनिक मत नहीं है, जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता हो, किन्तु उन्हें सृष्टिकर्ता नहीं मानता। कारण, यदि वह ईश्वर है तो सृष्टिकर्ता भी अवश्य होगा। और यदि उन्हें सृष्टिकर्ता मानते हैं तो जिन युक्तियों पर हमने विचार किया है वे हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बाध्य करती हैं कि ईश्वर ने सम्पूर्ण विश्व को अपने ही संकल्प से रचा; क्योंकि सृष्टि के पूर्व केवल वही थे और इसलिए उनके पास उनके अतिरिक्त कोई ऐसी सामग्री नहीं थी जिससे वे विश्व की रचना करते।

इसके उत्तर में कोई कह सकता है, जैसा कि द्वैतवादी प्रायः कहा करते हैं—'हां, आपका कहना तो ठीक है, परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है, इसलिए वे शून्य से भी इस संसार की रचना कर सकते हैं। बहुत ठीक, परन्तु हमारा प्रश्न उनके ज्ञान अथवा सामर्थ्य के सम्बन्ध में नहीं है, किन्तु उस सामग्री के सम्बन्ध में है जिससे वे संसार को रचते हैं। यद्यपि कुम्हार में ज्ञान, दक्षता, कौशल और योग्यता सब कुछ है किन्तु वह केवल इनसे बर्तन नहीं बना सकता। इसी प्रकार अगर प्रश्न ईश्वर की योग्यता के सम्बन्ध में नहीं है, किन्तु सामग्री के सम्बन्ध में है तो हमारा कहना यह है कि उस के पास उस समय अपने सिवा और कोई सामग्री नहीं थी, इसीलिए उसने संसार को उसी सामग्री से जो उस समय उपलब्ध थी, अर्थात् अपने ही स्वरूप से रचा होगा। भगवद्गीता के 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' इत्यादि श्लोक को, जिसे हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं, पढ़ने से इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता।

किन्तु यदि कोई फिर भी दुराग्रह करे कि ईश्वर ने विश्व को 'यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च' इत्यादि श्रुति के अनुसार अपने स्वरूप से नहीं, किन्तु शून्य से रचा, तब भी इससे हमारे वेदान्त के सिद्धान्त में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि ऐसा मानने पर भी, जैसे मिट्टी का बना हुआ पात्र मिट्टी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, वैसे ही शून्य से बना हुआ विश्व भी शून्य अथवा

असद्रूप ही हो सकता है ! और यह वेदान्त के मायावाद नामक सिद्धान्त का ही रूपान्तरमात्र है (जिसका हम संक्षेप में दिग्दर्शन करा चुके हैं और जिसका विस्तार से विवेचन आगे किया जाएगा) और इस प्रकारान्तर से अद्वैत की ही सिद्धि हो जाती है, क्योंकि इसका अर्थ यही हुआ कि 'एक मात्र ईश्वर ही सत् है, अन्य कुछ भी नहीं है ।' अतः द्वैती की इस युक्ति से तो अद्वैत सिद्धान्त की ही पुष्टि होती है और वेदान्ती इसके सिवा और क्या चाहेगा ?

इसके सिवा, जब आप एक बार यह मान लेते हैं कि किसी समय ईश्वर ही था, और कुछ नहीं था, तब गीता का यह अकाट्य सिद्धान्त—'नासतोविद्यते भावः' (जिसका तात्पर्य वही है जो पदार्थशास्त्रियों के 'पदार्थों की अनुत्पाद्यता और अनश्वरता' के सिद्धान्त का है) एक दुर्भेद्य दीवार के रूप में आपके सामने आ जाएगा । असत् कभी सत् नहीं हो सकता । अतः यदि केवल ईश्वर ही था, और कुछ नहीं था, तो यह स्पष्ट है कि एकमात्र ईश्वर ही सत् है और वही हो सकता है । दूसरे शब्दों में, चाहे वह यह कहें कि 'ईश्वर और जगत एक हैं' अथवा इसी बात को निषेधमुखेन इस प्रकार कहें कि 'केवल ईश्वर ही है, और कुछ भी नहीं है, बात एक ही है ।

पञ्च महाभूत

इस को और भी स्पष्ट करना हो तो हम आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन पंच महाभूतों का उदाहरण दे सकते हैं, जिनसे सृष्टि का आरम्भ हुआ । क्योंकि स्वयं ईश्वर ने इन सब को ही बनाया है, इसलिए हमें विवश हो कर यह अनुमान करना पड़ता है कि उसने उन्हें अपने में से बनाया होगा । 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (सच तो यह है कि मृत्तिका ही वास्तविक उपादान है) । इस उपनिषद् सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई है या जल का ही विकार है, अतः जलरूप ही है । इसी प्रकार जल अग्नि से उत्पन्न हुआ है अथवा जल का ही रूपान्तर है, अतः जलरूप ही है । अग्नि भी वायु से उत्पन्न हुई अथवा प्रकट हुई है, इसलिए वायुरूप ही है । वायु आकाश से प्रादुर्भूत अथवा अभिव्यक्त हुआ है, अतः आकाशरूप है; और अन्त में आकाश ईश्वर से उत्पन्न हुआ अथवा ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है, अतः ईश्वर से अभिन्न है । इस प्रकार सब पदार्थों की ईश्वर से उत्पत्ति और ईश्वर के साथ एकता सिद्ध की जा सकती है ।

अब हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्राओं पर इसी शैली से विचार करेंगे। आकाश में एक ही गुण शब्द है; वायु में शब्द और स्पर्श दो हैं; अग्नि में शब्द, स्पर्श और रूप तीन हैं; जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार हैं तथा पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचों गुण हैं। इनकी उत्पत्ति आदि को जानने के लिए हमें गुणों का विश्लेषण करना होगा। पृथ्वी से प्रारम्भ करके हम देखेंगे कि इसका पांचवां गुण गन्ध इसके पूर्ववर्ती भूत जल में नहीं था और बिल्कुल नया है। किन्तु गीता कहती है—'नासतो विद्यते भावः' और पदार्थविज्ञान भी यही कहता है कि 'जो पदार्थ पहले नहीं था वह नये सिरे से उत्पन्न नहीं हो सकता।' इसलिए हमें या तो गन्ध को मिथ्या मानकर निकाल बाहर करना होगा, अथवा उसकी जल में भी सत्ता माननी पड़ेगी। पहले पक्ष में पृथ्वी स्वयं मिथ्या हो जाएगी, क्योंकि गन्ध ही उसका अनन्य साधारण लक्षण है (गन्धवती पृथिवी), और उसका अस्तित्व जल में भी मान लेने पर पृथ्वी और जल (समान गुण होने के कारण) एकरूप हो जाएंगे। इसी प्रकार यदि हम चौथे गुण रस को लें, जो सर्वप्रथम जल में दिखाई देता है, तो हमें उसी प्रक्रिया का अनुसरण करके या तो इसे मिथ्या समझकर निकाल देना पड़ेगा अथवा अग्नि में पहले से विद्यमान मानना पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि पृथ्वी और जल या तो मिथ्या माने जाकर बहिष्कृत कर दिये जाएंगे अथवा उन्हें अग्नि रूप मानना होगा। अब तीसरे गुण रूप को लीजिए। या तो इसे मिथ्या कह कर निकाल दीजिए अथवा इसका अस्तित्व वायु में भी मानिए। इसी पद्धति से दूसरे गुण स्पर्श को या तो मिथ्या कह कर निकाल बाहर कीजिए अथवा आकाश में इसकी अव्यक्त रूप से सत्ता स्वीकार कीजिए। इस तरह या तो पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को मिथ्या मानना पड़ेगा अथवा आकाशरूप और अन्त में इसी तर्क का प्रयोग करके हमें प्रथम गुण शब्द को या तो मिथ्या मानकर निकाल बाहर करना होगा अथवा उसकी ईश्वर में पहले से ही अव्यक्त रूप में स्थिति माननी पड़ेगी। इस प्रकार पंच भूतों को या तो मिथ्या मानकर हटायें अथवा उन्हें ईश्वर का रूप मानिए। इस सारी प्रक्रिया को जिसे हमने ऊपर समझाया है, रेखागणित के ढंग से इस प्रकार संक्षेप में रख सकते हैं—

पृथ्वी = जल; जल = अग्नि; अग्नि = वायु; वायु = आकाश = आकाश = ईश्वर।

तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वनियमः (यूक्लिड के प्रथम स्वयं सिद्ध नियम को 'जो वस्तुएं किसी एक वस्तु के बराबर होती हैं, वे आपस में बराबर होती हैं' के अनुसार ईश्वर = विश्व, अर्थात् दोनों समान ही नहीं है किन्तु दोनों सब प्रकार से एक हैं।

ईश्वर की सर्वव्यापकता

सृष्टिकथा और उस पर उपनिषदों और बाइबल के बचनों के आधार पर किये गए अनुमान के अतिरिक्त ईश्वर की सर्वव्यापकता भी जिसे सभी आस्तिक (जिनमें आर्यसमाजी भी सम्मिलित हैं) मानते हैं, अद्वैत सिद्धान्त की सत्यता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं (और यह सत्यता दो प्रकार से सिद्ध की जा सकती है)। हम इस अद्वैत सिद्धान्त को सिद्धान्त न कह कर रेखागणित की भाषा में साध्य (Theorem) भी कह सकते हैं, क्योंकि यह गणित के किसी साध्य की तरह सिद्ध किया जा सकता है, जैसे २+२=४।

जब हम यह कहते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी और विश्व में ओतप्रोत है तो पहले हमें यह समझना चाहिए कि इसका अर्थ क्या है? यदि हम इन साधारण शब्दों में अर्थ और पूर्ण आशय को भली-भांति समझ जाएं, जिन्हें हम बिना विचार किए प्रतिदिन और प्रतिक्षण मुंह से निकालते रहते हैं, तो हम सम्पूर्ण वेदान्त-सिद्धान्त को आसानी से समझ सकते हैं। हम लोग बर्तन, कपड़े और सुनहले आभूषण का उदाहरण लेकर यह देखें कि उनमें कौन सी वस्तु ओतप्रोत है। निश्चय ही इस में कुम्हार, जुलाहा और सुनार ओतप्रोत नहीं हैं, किन्तु मिट्टी, सूत और सोना क्रमशः तीन पदार्थों के ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर सर्वत्र समस्त पिण्ड में ओतप्रोत हैं। दूसरे शब्दों में, किसी पदार्थ का बनाने वाला नहीं किन्तु जिस सामग्री से वह पदार्थ बना है, वही उसमें ओतप्रोत रहता है। इसलिए विश्व में ईश्वर की सर्वव्यापकता इस बात को निर्विवादरूप से सिद्ध करती है कि ईश्वर ही इस संसार का उपादान कारण है और यही बात हमें सिद्ध करनी थी। यह बात बिल्कुल सत्य है कि जगत् का रचयिता भी ईश्वर ही है, क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई दूसरा है ही नहीं जो उसे रच सकता हो। यही कारण है कि वेदान्त उसे जगत् का 'अभिन्ननिमित्तोपादान' कारण बतलाता है। इस प्रकार यद्यपि ईश्वर का सृष्टिकर्ता होना बिल्कुल सत्य है तथापि वे कर्ता होने के कारण नहीं, किन्तु उपादान कारण होने के नाते संसार में ओतप्रोत है।

इस तरह ईश्वर की सर्वव्यापकता का पूर्ण आशय समझ लेने के बाद वह स्वयं संसार का उपादान कारण है, हमारे सामने दूसरा प्रश्न यह आता है कि वह सर्वव्यापक कैसे हो सकता है? भगवान् स्वयं भगवद्गीता में कहते हैं—

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

(अर्थात् सब शरीरों के भीतर रहने वाला आत्मा मैं हूं), और सभी आस्तिकों का इस विषय पर एक मत है कि ईश्वर सर्वव्यापक है । किन्तु क्या एक ही स्थान पर दो भिन्न पदार्थ रह सकते हैं ? क्या यह भौतिक दृष्टि से असंभव नहीं है ? क्योंकि पदार्थ विज्ञान के 'विचार' 'भेद्यत्व' आदि के नियमों के अनुसार एक ही कमरे के भिन्न-भिन्न भागों में दो व्यक्ति अथवा पदार्थ रह सकते हैं, किन्तु उसी कमरे के एक अंश में रहने वाले आकाश के उसी थोड़े से भाग में नहीं । और यदि आप से यह कहा जाए कि दो व्यक्ति एक साथ उसी छोटे से स्थान में रहते हैं तो आपको विवश होकर यह अनुमान करना पड़ेगा कि वे दो विभिन्न व्यक्ति नहीं किन्तु एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं । यदि किसी ग्रन्थ के एक वाक्य में यह लिखा हो कि राम ने रावण को मारा और उसी ग्रन्थ के दूसरे प्रसंग में यह बात आती हो कि सीता पति ने रावण को मारा, तो क्या आप, चाहे आप ने पहले इस बात को कभी न सुना हो—तुरन्त यही अनुमान लगा लेंगे कि राम ही सीता के पति रहे होंगे ? इसी प्रकार प्रत्येक छोटे से पदार्थ के साथ भी ईश्वर का एक ही स्थान में युगपत रहना पदार्थ विज्ञान के अनुसार, ईश्वर की उस पदार्थ के साथ—और फलतः सारे विश्व के साथ अभिन्नता सिद्ध करता है । और यही बात हमें सिद्ध करनी थी ।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे तृतीय परिच्छेदे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

सगुण ब्रह्म तथा त्रिशक्ति तत्त्व मीमांसा

(अनन्त श्री ब्रह्मीभूत पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज के शक्ति अंक में प्रकाशित लेख से)

वैदिक सनातन धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, शिव जगत् की उत्पत्ति पालन संहार करने वाले देवता तथा उनकी तीन शक्तियां क्रमशः महासरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली हैं । महासरस्वती के साथ ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु महालक्ष्मी सहित पालन तथा महाकाली सहित शिव संहारकर्त्ता हैं । इनका आपस में सम्बन्ध क्या है शास्त्रों का विचार करने पर बड़े चमत्कार की बात सामने आती है । इन त्रिमूर्तियों में एक मूर्ति को लेकर विचार करने पर शेष दोनों में से एक साला तथा दूसरा बहनोई होता है । शक्तियों का विचार करने पर भी एक शक्ति को लेकर विचार करें तो शेष दोनों में से एक ननद दूसरी भौजाई होती है । क्योंकि संहारकारी रुद्र की शक्ति

महाकाली के भाई पालनकर्त्ता विष्णु हैं। उनकी शक्ति महालक्ष्मी के भाई सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं। उनकी शक्ति महासरस्वती के भाई संहारकर्त्ता रुद्र हैं। यह बात प्राधानिक रहस्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। "सर्वस्याद्या महालक्ष्मी" सन्तरा, गदा आदि अनेक वस्तुओं को धारण करके, तपाये हुये सोने के आभूषणों को धारण किये हुये प्रकट हुईं। फिर विशाल लोचन वाली अंजन के समान काले रंग वाली खड्गादि को धारण किये चतुर्भुज रूप से मुण्डमाला धारण किये, तामसी शक्ति महाकाली प्रकट हुई और उन्होंने महालक्ष्मी से कहा कि मेरा नाम और कर्म बताओ तब महालक्ष्मी ने कहा कि तुम महामाया महाकाली, कालरात्रि आदि नामों से विख्यात होंगी। नाम के अनुसार ही तुम्हारे कर्म होंगे। ऐसा कहकर महालक्ष्मी ने दूसरा रूप धारण किया वह शुद्ध सत्व गुण से युक्त चन्द्रमा के समान प्रकाशवाली, अक्षमाला, अंकुश, वीणा, पुस्तक को धारण किये प्रकट हुईं। उनके नाम देते हुये महालक्ष्मी ने कहा, महाविद्या, महावाणी, भारती आदि तुम्हारे नाम होंगे। फिर महालक्ष्मी ने महाकाली महासरस्वती से कहा कि तुम अपने अनुरूप जोड़ों को उत्पन्न करो। ऐसा कहकर महालक्ष्मी ने स्वयं स्त्री पुरुष का जोड़ा रचा। कमलासन पर बैठे हुये ब्रह्मा, धातादिनाम वाले तथा श्री पद्मा आदि नामों वाली कन्या उत्पन्न की। फिर महाकाली तथा भारती ने भी एक एक जोड़ा उत्पन्न किया। महाकाली ने नील कण्ठ, रक्तबाहु, श्वेत रंग, चन्द्रशेखर, शिव तथा त्रयी विद्या, कामधेनु, सरस्वती को उत्पन्न किया। सरस्वती ने स्त्री पुरुष के जोड़े को उत्पन्न किया जिसमें पुरुष, कृष्ण, विष्णु हृषीकेश आदि नाम वाले तथा कन्या उमा, गौरी, सती, चण्डी आदि नाम वाली को उत्पन्न किया। फिर लक्ष्मी ने ब्रह्मा जी को सरस्वती रुद्र को गौरी और विष्णु को लक्ष्मी दी। इत्यादि वर्णन किया गया है।

"आध्यात्मिक रहस्य"

इन तीनों शक्तियों और मूर्तियों के रूप, अवयव, आयुध, रंग आदि पदार्थों के सम्बन्ध में उपासना काण्ड के ग्रन्थों में अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन मिलते हैं। यह कोई लौकिक कथा नहीं है। इसमें अति गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। इन छोटी-छोटी बातों में भी अनेक उपयोगी तत्त्व भरे हुये हैं जो जिज्ञासुओं तथा साधकों को अति उत्तम आध्यात्मिक शिक्षा देते हैं। सबका छोटे से लेख में आना असम्भव है। किन्तु संक्षेप में केवल तीन शक्तियों तथा रंगों के सम्बन्ध में उल्लेख करेंगे। **तीन प्रकार के रंग**—इन रंगों के सम्बन्ध में चमत्कार इस बात का है कि संहार करने वाले रुद्र तथा उनकी बहिन महासरस्वती श्वेत है। पालन करने

वाले विष्णु तथा उनकी बहन महाकाली नीले रंग की है। सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा और उनकी बहिन महालक्ष्मी स्वर्ण वर्ण की हैं। यह स्वाभाविक है कि कोई शक्ति अपने पति के रंग की नहीं होती भाई के रंग की होती है। जैसे राधा कृष्ण, सीताराम, गौरी शंकर, सरस्वती ब्रह्मा भिन्न-भिन्न रंग के हैं। परन्तु इस बात पर ध्यान देना है कि इन तीन रंगों का जो इनमें विभाग हुआ है उसका आध्यात्मिक तत्त्व क्या है। शास्त्रों में कहा गया है कि इन तीनों देवताओं का कार्यों में कोई विरोध नहीं है वरन् परस्पर सहायक हैं। अत: तीनों का आपस में ऐसा ही सम्बन्ध है।

पारस्परिक सम्बन्ध

सामान्य दृष्टि से देखने से लगता है कि रक्षा और संहार परस्पर विरुद्ध कर्म हैं जैसे किसान खेत में जहां खेती की रक्षा करता है वहां खेती को हानि पहुंचाने वाले जीवों का विनाश भी करता है। अत: हरि और हर का आपस में विरोध सा प्रतीत होता है। इसमें केवल विरोधाभास है। पालन और संहार के अर्थ पर सूक्ष्म विचार करने पर कोई विरोध नहीं, हरि-हर का विरोध तो तब होता जब एक ही वस्तु के दोनों पालक और संहारक होते। विष्णु को जिन की रक्षा करनी होती है उसके शत्रु का संहार शिव करते हैं। तब विरोध नहीं। जैसे रोगी के प्राणों की रक्षा के लिये वैद्य जब आप्रेशन करके व्याधि का संहार और रोगी की रक्षा करता है। अत: वैद्य हरि हर दोनों का कार्य करता है। यही सम्बन्ध विष्णु और रुद्र का है।

महाकाली और रुद्र का काम

तीनों शक्तियों के रंगों तथा कार्यों का यह चमत्कारी सम्बन्ध है कि रुद्र को जो संहार रूपी काम करना है महाकाली रूपी रुद्र शक्ति अपने भयंकर कार्य के अनुरूप काले रंग की है। किन्तु वह संहार करने के लिये नहीं है। सारे संसार के रक्षण और कल्याण के लिये है। जैसे वैद्य रोगी के खराब अंगों को आप्रेशन से निकाल कर शेष शरीर की रक्षा करता है। वैसे ही काली अपने पति रुद्र से दुष्टों का संहार कराके पालक भाई विष्णु से कहती है हे भाई जी, मैंने अपने पति शिव से समाज के दुष्टों का संहार कर दिया है। अब आप संसार का पालन करें।

महालक्ष्मी तथा विष्णु का काम

महालक्ष्मी अपने पति विष्णु से पालन करा के वर्द्धन कराती हैं। वे विष्णु के कर्म पालन के अनुरूप स्वर्ण वर्ण की है जब पति का काम पूरा हो जाता है तब विष्णु द्वारा रक्षित जगत्

को अपने भ्राता के हाथ सौंप कर कहती हैं। हे भैया, मैंने अपने पति महाविष्णु की शक्ति से पालन किया है। हम दोनों का कार्य पूरा हो गया। अब आप हमसे लेकर नवीन सृष्टि करके जगत् का पोषण वर्द्धन करो।

महासरस्वती तथा ब्रह्मा का कार्य

महासरस्वती अपने पति देव ब्रह्मा जी से सृष्टि की उत्पत्ति तथा नवीन आविष्कार के अनन्तर, अपने कार्य के अनुरूप रंग से युक्त होकर कार्य सम्पादन करने के अनन्तर इन कार्यों के करते समय जो बुराईयां आई थीं, उनको दूर हटा कर, कार्य पूरा करती हैं। बढ़े हुये जगत् को भाई रुद्र के हाथ में देकर कहती हैं कि भैया जी मैंने अपने पति देव ब्रह्मा जी की शक्ति की हैसियत से इस वस्तु का पोषण तथा वर्द्धन किया, अब हम दम्पति का कार्य पूरा हो गया। इस पोषण वर्द्धन में जो त्रुटियां आई हों उनका आप संहार करें। जो लोग विश्व की उन्नति में विघ्न डालें उन्हें मार-मार कर ठीक करो।

निष्कर्ष

इस प्रकार से एक ही परमात्मा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार तीनों कर्मों के चक्कर को निरंतर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के रूप में चलाते हैं। इन देवों के कार्यों को कराने वाली एक ही महाशक्ति, सृष्टि शक्ति, पालन शक्ति और संहार शक्ति महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली यह त्रिदेव की शक्तियों का रहस्य है।

श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज का संक्षिप्त उपदेश सम्पूर्ण।

॥इति श्री गु. व. पु. कलि. ख. तृतीय परि. अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ ऊनविंशतितमोऽध्यायः

अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद जगद् गुरु शंकराचार्य पुरी पीठाधीश्वर स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज का जीवन वृत्तम्

वंश परिचय तथा जन्म भूमि

जयपुर के दक्षिण पूर्व भाग में "टोडा" नामक नगर में एक तपस्वी, वेदज्ञ ब्राह्मण का निवास था। कुछ काल पश्चात् आप सिद्धपुर में आ गये। महाराज जयसिंह के राज्य काल में

हज़ारों उदीच्य ब्राह्मण सिद्धपुर में रहने लगे। उन्हीं ब्राह्मणों में से एक त्रिकालदर्शी श्रौत, स्मार्त कर्मों में निपुण इसी ग्राम के अन्त में एक सरोवर तट पर बस गये थे। उनका नाम पं. श्री गोपीनाथ जी द्विवेदी था। उनके पुत्र श्री हरेकृष्ण उनके श्री लक्ष्मीकृष्ण थे। जो वैदिक कर्म तथा गारुड़ी विद्या में दक्ष थे। उनके पुत्र ज्योतिष् शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् श्री मगनीराम थे। वे किसी भी व्यक्ति का चित्र देखकर जन्म पत्र बना लेते थे तथा जन्म पत्र देखकर चित्र निर्माण करके तीन जन्मों का हाल बता देते थे।

इनके पुत्र श्री फतेह शंकर, जगन्नाथ तथा केदारनाथ हुये। इनमें केदारनाथ जी की बाल्यावस्था में मृत्यु हो गई।

श्री पं. जगन्नाथ जी अपने घर में ब्राह्मण बालकों को वेदादि पढ़ाते थे। जिस विद्यार्थी को कोई अध्यापक बीस वर्ष में वर्णमाला का भी ज्ञान नहीं करा सकता था, ऐसे महामूर्ख बालक को भी वे दो वर्ष के भीतर ज्योतिष् तथा कर्मकाण्ड में दक्ष कर देते थे। इनके पढ़ाने की शैली अद्वितीय थी। इनके अग्रज श्री फतेह शंकर जी भी कर्मकाण्ड, ज्योतिष तथा मंत्र शास्त्र के ज्ञाता थे। इनके चार पुत्र हुये।

१. श्री शिव चन्द्र शर्मा कर्मकाण्डी, गणितज्ञ, मल्ल युद्ध में निपुण थे। यह सन्तान हीन थे। बाइस वर्ष की अवस्था में दिवंगत हुये।

२. श्री मथुरानाथ शर्मा जी भी सन्तान हीन, एकान्त सेवी, हरिभक्ति में लीन रहते थे।

३. श्री मोती लाल शर्मा जी ज्योतिष, कर्मकाण्ड, न्याय शास्त्र के ज्ञाता, पुत्र हीन थे।

४. श्री गणेश लाल शर्मा जी इन्होंने अपने भ्राता मोती लाल जी से वेदान्त पढ़ा था। यह जगद् गुरु जी के पिता थे।

पितृवंश—यह फतेह शंकर जी के चौथे पुत्र थे। आप कर्मकाण्ड ज्योतिष के परम विद्वान् थे। इनको वेद की बहुत सी संहितायें कण्ठस्थ थीं। कई यज्ञों में आप आचार्य रहे। जयपुर आदर्श नगर श्री रामलीला मैदान के समीप श्री राम मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी।

व्यावर में आगमन तथा जन्म

कालान्तर में श्री फतेह शंकर जी चारों भाइयों सहित व्यावर में आ गये।

पूज्यपाद महाराज श्री का जन्म विक्रमी सं. १९६७ आश्विन कृष्ण चतुर्दशी रविवार के दिन वृश्चिक लग्न में हुआ था। इनकी जन्म पत्री में ग्यारहवें स्थान में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध,

बृहस्पति, शुक्र छः ग्रह पड़े हैं जो कि संन्यास की सूचना देते हैं। स्वामी जी अपने भाइयों में ज्येष्ठ हैं। इनके अन्य भाई श्री दामोदर, गिरधर, शिववल्लभ तथा श्री विश्वनाथ थे।

शिक्षा

इन्होंने घर में रहते हुये अपने ताऊ मोती लाल जी से सिद्धान्त कौमुदी, सम्पूर्ण अष्टाध्यायी तथा अमर कोष का अध्ययन किया। फिर व्यावर के ही सनातन धर्म विद्यालय, श्री गोविन्द नारायण त्रिवेदी, मेरठ वासी श्री रामेश्वर त्रिवेदी से व्याकरण पढ़ा। बाल्यावस्था से ही भाषण प्रतियोगिता में भाग लेते थे। वाराणसी में 'गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज' जिसका अब नाम 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' है से व्याकरणाचार्य, पोष्टाचार्य की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने महामहोपाध्याय हरिशरण चन्द्र भट्टाचार्य से तथा महामहोपाध्याय हरिहर कृपालु द्विवेदी जी से वेदान्त का अध्ययन किया। श्री गणपति शास्त्री, परमतपस्वी श्री राम यश शास्त्री त्रिपाठी, शारदा पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ जी महाराज से विशेष रूप से व्याकरण, न्याय का अध्ययन किया। महामहोपाध्याय कविराज श्री गोपीनाथ शर्मा से पोष्टाचार्य के अनन्तर तीन वर्ष में वेदान्त, न्याय, सांख्य तीर्थ की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

आपका विवाह विक्रमी सं. १९७८ में हुआ। आपके ४ पुत्रियां तथा ३ पुत्र हुये। बड़े पुत्र श्री चन्द्रकान्त योग, व्याकरणाचार्य, एम. ए. पदों से विभूषित हैं। स्वामी जी के संन्यास के बाद सांख्य दर्शन के आचार्य शारदा पीठाधीश्वर द्वारा स्थापित कालेज में हुये। दूसरे पुत्र श्री हरि शर्मा तथा तीसरे रश्मि कान्त हैं।

अध्यापन कार्य

काशी में अध्ययन के अनन्तर सन् १९३७ में सांग ब्रह्म विद्यालय काशी में श्री रघुनाथ द्विवेदी के स्थान पर वेदान्त शास्त्र के आचार्य नियुक्त हुये। पुनः गुजरात में पटेल लाद्पुर में स्थित महाविद्यालय के प्रधानाचार्य रहे। बाद में परीक्षा के संचालक रहे। इसी काल में आपने पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी के साथ चातुर्मास्य करके अनेकों शास्त्रों का अध्ययन किया। तदनन्तर आपकी भेंट धर्म सम्राट् श्री करपात्री जी महाराज से हुई। उनके पादपद्मों में आपने अपना जीवन समर्पित करके वेदान्त के 'खण्डन खण्ड खाद्यम्', 'अद्वैत सिद्धि' तथा 'योग दर्शन' पर व्यास भाष्य का अध्ययन किया। पन्द्रह वर्ष तक आपने सुचारू रूप से अध्यापन कार्य किया। कुछ काल तक काशी से प्रकाशित 'सन्मार्ग पत्र' के प्रकाशक रहे। आपके इस कार्य की प्रशंसा पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी ने की।

श्री स्वामी करपात्री जी की आज्ञा से दो वर्ष तक हरिद्वार में स्थित 'ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम' की अध्यक्षता की। फिर उन्होंने धर्म सम्राट् द्वारा अनुष्ठित शतकोटि होमात्मक, पंचलक्ष चण्डी होम का विधि विधानपूर्वक सम्पादन किया। फिर जाम नगर में आयुर्वेद का अनुसन्धान किया। तदनन्तर जयपुर में स्थित महाराज संस्कृत कालेज के १९६४ ई. तक प्रधानाचार्य रहे।

गोवर्द्धन पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत जगद् गुरु स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज योग्य उत्तराधिकारी की खोज में थे। उन्होंने अपने जीवन में ही महाराष्ट्र के डा. खरे के भाई श्री मधुसूदन तीर्थ जी वकील को संन्यास देकर अपने स्थान पर नियुक्त किया। परन्तु वह विशेष विद्वान् नहीं थे। वेद मर्यादा के विरुद्ध आचरण करने लगे। महाराज जी ने उनको गद्दी से उतार दिया। सन् १९६० वसन्त पंचमी के दिन शरीर छोड़ने से पूर्व तार देकर द्वारका पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी को बुलाकर मठ सौंप दिया। वे योग्य उत्तराधिकारी की खोज में थे। एक दिन **इनको (श्री चन्द्र शेखर शास्त्री)** को पास बुलाकर सांख्य, न्याय, पूर्व मीमांसा, वेदान्त, व्याकरण आदि के धुरन्धर विद्वानों को इनकी परीक्षा के लिये नियुक्त किया। इन सभी ने अनेकों प्रश्न किये। पांच, पांच दिन तक कई-कई घंटे शास्त्रार्थ करते रहे। जब सबको सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त हुआ। तब शंकराचार्य जी ने संकेत से मना कर दिया। तब आचार्य ने पूछा—क्या आप संन्यास लेकर शंकराचार्य होना चाहते हैं ? इन्होंने कहा—कोई गृहस्थी संभालने वाला नहीं है। तब उन्होंने बड़े पुत्र को अपने कालेज में नियुक्त किया। सन् १९६४ में जब सूर्य कर्क राशि में थे तब जगन्नाथपुरी में श्री स्वामी करपात्री जी महाराज तथा ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्णाबोधाश्रम जी की उपस्थिति में आपका विधिवत् संन्यास हुआ। आषाढ़ कृष्णा सं. २०२१, ३ जुलाई १९६४ ई. आदिल वाहिनी पत्रिका १९९६ ई. के अनुसार १ जुलाई १९६४ से ९ फरवरी १९९२ ई. तक पीठ पर रहे। संन्यास के दूसरे दिन आपका शंकराचार्य पद पर अभिषेक हुआ। उसी दिन विमान से श्री कृष्ण बोध 'दण्डी आश्रम' मेरठ में पधारे।

इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे तृतीय परिच्छेदे ऊनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥



अथ विंशतितमोऽध्यायः

प्रथम चातुर्मास्य तथा सर्व वेद शाखा सम्मेलन, अमृतसर

जगद् गुरु जी ने प्रथम चातुर्मास्य चार महीने का अमृतसर दुर्ग्याना मन्दिर में किया। इसी के अन्त में कार्तिक शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा पर्यन्त सर्व वेद शाखा सम्मेलन द्वारका शारदापीठाधीश्वर ज० शं० श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज की अध्यक्षता में सं. २०२१ कार्त्तिक शुक्ल नवमी बुधवार ११ नवम्बर १९६४ से कार्त्तिक पूर्णिमा १९ नवम्बर १९६४ तक इनकी अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। जिसमें अनन्त श्री विभूषित पूज्य पाद शारदापीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज, अनन्त श्री ज्योतिष पीठाधीश्वर तपोनिष्ठ, वीतराग, श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज तथा धर्म सम्राट् पूज्यपाद श्री करपात्री जी महाराज पधारे थे। इनके अतिरिक्त एक जगद् गुरु श्री रामानुजाचार्य जी भी आये थे। इस महा सम्मेलन में अखिल भारतीय धर्म संघ का महाधिवेशन भी हुआ। इसमें सम्पूर्ण भारत के कर्मकाण्ड, ज्योतिष, न्याय, सांख्य, पूर्व मीमांसा, वेदान्त आदि अनेकों विषयों के विद्वान् आमन्त्रित किये गये। आरम्भ से ही चातुर्मास याग तथा सम्मेलन के समय चण्डी याग भी हुआ था। इस कार्यक्रम में प्रातः ९ बजे से दिन के १२, १ बजे तक वेदों की सम्पूर्ण शाखाओं को लेकर तथा ब्राह्मण भाग वेद है या नहीं ? इस विषय को लेकर एवं वेद के विशेष मन्त्रों को लेकर शास्त्रार्थ होता था। दो विद्वान् खड़े होकर परस्पर शास्त्रार्थ करते थे। इसका निर्णय श्री स्वामी करपात्री जी महाराज, अथवा उनकी अनुपस्थिति में पुरी पीठाधीश्वर स्वामी जी करते थे। प्रत्येक व्यक्ति को सनातन धर्म के वेद से लेकर हनुमान चालीसा तक किसी प्रकार की शंका का निराकरण करने का अधिकार था। इसमें आर्य समाज, ब्रह्मकुमारी, राधा स्वामी, देव समाज, ब्रह्म समाज अथवा किसी भी सम्प्रदाय का कोई भी व्यक्ति प्रश्न कर सकता था। इस सभा में संस्कृत के अतिरिक्त और किसी भाषा में शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं था। दो घण्टे दोपहर में विश्राम के पश्चात् ३ से साढ़े पांच बजे तक यही कार्यक्रम चलता था। रात्रि में ८ बजे से लेकर ११, १२ बजे तक। दिन भर के शास्त्रार्थ का सारांश हिन्दी में सुनाया जाता था तथा भक्ति, वेदान्त, राष्ट्र रक्षा, गोरक्षा, धर्म रक्षा एवं प्रयाग महाकुम्भ पर्व निर्णय को लेकर ज्योतिष सम्मेलन भी हुये थे। उस वर्ष ग्यारह वर्ष बाद यह कुम्भ महापर्व, शंकराचार्यों तथा दण्डी स्वामियों ने मनाया था और इसके दूसरे वर्ष १९६६ ई. में परम हंसों तथा अन्य सम्प्रदायों

ने मनाया था। इसी महापर्व में गोरक्षा के प्रश्न को लेकर सनातन धर्म के सभी सम्प्रदायों, सिक्ख, जैन, बौद्ध तथा धार्मिक, राजनीतिक संस्थाओं ने एक होकर गोरक्षा बन्दी आन्दोलन चलाने का निर्णय किया। अन्ततोगत्वा दिल्ली में २ नवम्बर १९६६ ई. कार्तिक गोपाष्टमी से आन्दोलन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण भारत का हिन्दू एक हो गया। उसी तिथि से पुरी पीठाधीश्वर जी ने तथा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने अनशन किया। उस समय भारत में इन्दिरा सरकार थी। अन्त में आंशिक प्रतिबन्ध की घोषणा हुई। तिहत्तर दिन बाद पुरी पीठाधीश्वर तथा ब्रह्मचारी जी ने करपात्री जी से फलों का रस लेकर व्रत पूर्ण किया।

आप भारतीय संस्कृति, वेशभूषा तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के परम निर्भीक, कट्टर अनुयायी थे। धर्मशास्त्र के विरुद्ध तथा धर्मशास्त्रों में परिवर्तन सहन नहीं कर सकते थे। एक बार सरकार ने धर्मशास्त्रों में परिवर्तन का विचार किया। इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। उसमें ज्योतिष् पीठाधीश्वर स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी भी विराजमान थें। उनकी आज्ञा प्राप्त कर तथा प्रणाम करके घण्टों परम जोशीला भाषण दिया। महाराज जी के अनेकों बार मना करने पर बन्द किया।

एक बार हमारे प्रार्थना करने पर आपने १९९२ में श्री दुर्गा मन्दिर ओयल (लखीमपुर) उत्तर प्रदेश में दो दिन के लिये स्वीकृति दी। दोनों दिन प्रातः ९ बजे से १२ बजे तक, मध्यान्ह २ से ५ बजे तक, रात्रि ८ से १० बजे तक, दो दिन में १६ घण्टे तक अमृत वर्षा करते रहे। इस शरीर पर महाराज श्री जी की विशेष कृपा रही। सम्भवतः स्वामी जी ने जीवन काल में इतना समय भाषण के लिये कहीं भी नहीं दिया होगा।

आप निरन्तर लगभग २६ वर्ष तक सनातन धर्म की रक्षा तथा प्रचार दिन रात एक करके, स्वास्थ्य का भी ध्यान न रखते हुये निरन्तर करते रहे। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली से काशी जाते समय प्रयाग से आगे मिर्ज़ापुर के पास सन् १९८८ में कार दुर्घटनाग्रस्त हुई। उसमें आपके परम कृपा पात्र श्री करपात्री जी महाराज के परम प्रिय शिष्य जो कि आपके भावी उत्तराधिकारी श्री स्वामी जगन्नाथ जी सरस्वती थे, भगवान् को प्रिय हुए। आप भी कई दिन तक बेहोश रहे। हाथ में तथा अन्य अंगों में काफी चोट पहुंची। मूर्च्छा टूटने पर आपके मन में विशेष कष्ट हुआ। ऐसी दशा में अनन्त श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज ने मनसा-वाचा-कर्मणा, तन, मन, धन से देहली तथा पुरी में अपनी कार या वायुयान से जाकर पुत्रों तथा शिष्यों से भी

अधिक सेवा की। (अतः आप इनको उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे। किन्तु कई कारणों से नहीं कर पाये।)

ब्रह्मीभूत स्वामी श्री जगन्नाथ सरस्वती जी महाराज

सुना जाता है कि इनका जन्म उत्तर प्रदेश में मथुराजनपद में हुआ था। आप परम सौम्य स्वभाव के, अति विनम्र, भक्ति ज्ञान, वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थे। एक बार श्री गीता जयन्ती लखनऊ श्री गीता सत्संग में जगद् गुरु जी के साथ आये थे। भक्ति पर बोलते हुये आप इतने विभोर हो गये कि अपने शरीर तथा संसार को भूल गये। समस्त श्रोता देहाध्यास से रहित हो गये। उस समय आप जगद् गुरु जी से व्याकरण, न्याय पूर्व मीमांसा तथा वेदान्त का अध्ययन करते थे। धर्म शास्त्र पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। इनका रूप भी साक्षात् भगवान् भाष्यकार जैसा था।

उत्तराधिकारी

उस चोट के कारण आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता था। उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में धर्म संघ दिल्ली पहुंचे। वहां पर इसके सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। कई ब्रह्मचारी तथा संन्यासी इस पद के इच्छुक थे। इन्होंने किसी को उपयुक्त नहीं समझा। दिल्ली से आप पुरी आ गये। वहां पर श्री करपात्री जी महाराज के शिष्य जो वृन्दावन में श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी तथा निश्चलानन्द जी महाराज एक साथ रहते थे। दर्शनशास्त्री भागवती पण्डित हैं। अनन्त श्री स्वामी निश्चलानन्द जी को बुलाकर वसन्त पंचमी ८ (९) फरवरी १९९२ ई. में अपने पद पर अभिषिक्त किया। आप दर्शनों के महान् विद्वान् हैं। श्री मद् भगवद् गीता पर आक्षेप करते हुये एक आर्य समाजी विद्वान् ने गीता के आधे से अधिक श्लोकों को प्रक्षिप्त सिद्ध किया। जिस समय स्वामी जी मेरठ आये "श्री कृष्ण बोध दण्डी आश्रम" के प्रधान कार्यकर्त्ता पं. श्री श्याम सुन्दर जी बाजपेयी तथा पं. श्री कृष्ण प्रसाद शर्मा ने आर्य समाजी की वह पुस्तक दिखाई। तब आपने "श्री गीता सप्तशती" नामक पुस्तक के माध्यम से सभी श्लोकों को सत्य सिद्ध किया। महाराज जी भाद्रपद अमावस्या वि. सं. २०५३ को १२ सितम्बर १९९६ ई. को काशी वृन्दावन विहारी भवन लक्सा में ब्रह्मीभूत हुये।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे, तृतीय परिच्छेदे विंशतितमोऽध्यायः॥॥२०॥

अथ एकविंशतितमोऽध्यायः

जगद् गुरु जी द्वारा किये गये शास्त्रार्थ

वर्तमान काल में पौराणिक सात समुद्र (क्षीर, दधि—आदि) कहां हैं ?

अष्टादश पुराणों में व्यास जी ने खारे जल के समुद्र के अतिरिक्त दुग्ध आदि के सागरों का वर्णन किया है। परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर इनमें कोई भी समुद्र दिखाई नहीं देता। अतः आस्तिकों की भी इन बातों को पढ़कर पुराणों में अश्रद्धा हो जाती है।

इस शंका का समाधान करते हुये लखनऊ के श्री रामचरित मानस सम्मेलन के भाषण में आपने कहा था कि जैसे घरों में लगी टोंटियों में जल आने से जल का भण्डार नगर में कहीं है इसका निश्चय होता है; जैसे घरों में बिजली पंखा चलने से बिजली के पावर हाऊस (अर्थात् बिजली भण्डार) का अनुमान किया जाता है। वैसे ही जेर से उत्पन्न होने वाले प्रत्येक प्राणी के बच्चे के जन्म के पूर्व से ही उसकी माता के स्तनों में दूध आ जाता है। आज एक नगर की महापालिका को पूरे नगर के बच्चों को दूध वितरण करने के लिये बड़े दुग्ध भण्डार की व्यवस्था करनी पड़ती है। किसी जनपद, प्रान्त, देश तथा सारे संसार में जरायु योनि में उत्पन्न हुये बच्चों के जन्म से पूर्व माताओं के स्तनों में सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु क्षीर सागर में रहकर ऐसा दुग्ध वितरण करते हैं। जिसको गर्म करने की, मीठा मिलाने की आवश्यकता नहीं है। उनके स्तन रूपी बोतलों में ऐसा ढक्कन लगा रखा है कि २४ घण्टे औंधा रहने पर भी एक बूंद नहीं गिरती। इन प्रत्यक्ष प्रमाणों से अनुमान किया जाता है कि संसार में निश्चित ही एक क्षीर सागर है। उस दुग्ध की आपूर्ति करने वाले भगवान् विष्णु हैं, जो क्षीर सागर में रहकर दुग्ध की आपूर्ति करते हैं। यह क्षीर सागर कहां है ? इसका तथा इक्षु रस सागर आदि तथा प्लक्ष, क्रौंच आदि द्वीपों का वर्णन व्यास जी ने अष्टादश पुराणों में करते हुये लिखा है कि जम्बू द्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। इसके चारों ओर एक लक्षयोजन का खारा सागर है। इस सागर के चारों ओर इसके दुगुने परिमाण का प्लक्षद्वीप (२,००,००० लाख योजन) है। इसके चारों ओर इतने ही विस्तार का गन्ने के रस का समुद्र है। इसके आगे चार लाख योजन का शाल्मली द्वीप है और इसके चारों ओर उतने परिमाण का मदिरा का सागर है।

उसके चारों ओर आठ लाख योजन का कुश द्वीप है और उसके चारों ओर इतने ही विस्तार का घृत सागर है। इसके चारों ओर १६ लाख योजन विस्तार वाला क्रौंच द्वीप है और इसके चारों ओर इतने ही परिमाण वाला क्षीर सागर है। इसके आगे ३२ लाख योजन का शाक द्वीप है, और इतने ही विस्तार वाला मट्ठे का सागर है। इसके आगे ६४ लाख योजन का पुष्कर द्वीप है, इतने ही विस्तार वाले मीठे सागर से चारों ओर से घिरा है।

भावार्थ

जिस युक्ति से स्वामी जी ने क्षीर सागर को सिद्ध किया है। उसी युक्ति से अन्य सागर भी सिद्ध होते हैं। यद्यपि दूध से ही दहीं, मट्ठा तथा घृत प्राप्त होता है। तदपि बहुत सी गायें, भैंसे ऐसी हैं कि उनमें दूध अधिक मात्रा में होने पर भी घी कम मात्रा में निकलता है। कुछ ऐसी गायें हैं जो दूध कम देती हैं किन्तु घी अधिक देती हैं। उनके दूध में घी की मात्रा घृत सागर से आती है। उसी प्रकार जिस धरती में गन्ना अधिक मात्रा में होता है उसका सम्बन्ध इक्षुरस सागर से है।

शास्त्रार्थ

"मन्त्र ब्राह्मणात्मको वेदः" इस उक्ति के अनुसार ब्राह्मण भाग भी वेद है। तथा स्वामी दयानन्द जी द्वारा मान्य चार मन्त्र संहिताओं के अतिरिक्त महाभाष्यकार के मतानुसार अन्य ११२७ संहितायें भी वेद हैं। इसको व्यास जैमिनि वैशम्पायन, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज आदि लाखों प्राचीन ऋषियों ने स्वीकार किया है। इतना ही नहीं बल्कि आरण्यक, उपनिषद्, धर्मसूत्र, श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्रों का भी इतना ही विस्तार माना गया है। परन्तु स्वामी दयानन्द जी तथा आर्य समाज इस बात को नहीं मानता है। इससे सम्बन्धित आर्य समाजी, विद्वान् बुद्ध देव जी विद्यालंकार के साथ स्वामी जी का शास्त्रार्थ नीचे दिया जाता है।

ब्राह्मण भाग निश्चय ही वेद है इसका समर्थन स्वामी जी ने किया। ब्राह्मण भाग वेद नहीं हो सकता बुद्ध देव जी ने कहा—उत्तर में गुरु जी ने कहा—यदि आप ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते तो आप अथर्ववेद संहिता में देखिये। **"ऋचः सामानि, छन्दांसि, पुराणं, याजुषा सह।"** इस मन्त्र का भाष्य विद्वान् दयानन्द जी ने पुराण शब्द का अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थ कहा है क्योंकि आपके गुरु महर्षि दयानन्द जी ने ब्राह्मण को वेद माना है। इसलिये उनके अनुयायी तुमको भी मानना चाहिये। अतः मन्त्र भाग के समान ही ब्राह्मण भाग की भी उत्पत्ति

ईश्वर से हुई। वाजसनेयी ब्राह्मणोपनिषद् में भी आया है कि—**अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद्यद् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः पुराणम्॥ "इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्" (छान्दोग्योपनिषद्)** उस परमात्मा के महोच्छ्वास से यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण निकले वेदों में पांचवां वेद इतिहास पुराण है।

ऊपर के **'ऋचः सामानि सह'** इस मन्त्र में **"सहयुक्तेऽप्रधानके"** इस पाणिनि सूत्र के अनुसार गौण अर्थ में सह के योग में तृतीया का विधान किया गया है। अतः आप के मत में भी विपरीत से पुराण की प्रधानता तथा यजुष् की गौणता सिद्ध होती है। ऐसा कहकर स्वामी जी ने तुरन्त ही पुस्तक दिखा दी। तब बुद्ध देव जी ने यह कहा—कि ब्राह्मण भाग में इतिहास होने से वेद नहीं हो सकता; किन्तु यह केवल वेदों का भाष्य है। तब स्वामी जी ने कहा कि हे महामते बुद्धदेव ! मेरे मत का खण्डन करके सप्रमाण अपने मत को सिद्ध कीजिये। कि ब्राह्मण भाग वेद नहीं हो सकता। तब बुद्ध देव ने पुनः अपना वही वचन दुहराते हुये कहा कि शास्त्रार्थ यहीं रुक जाये, विद्वान् मध्यस्थ के बीच में शास्त्रार्थ होना चाहिये।

यह शास्त्रार्थ सन् १९६० ई. में अखिल भारतीय सर्व वेद शाखा सम्मेलन देहली में हुआ था।

२. मूर्ति पूजा

एक बार जनपद अलीगढ़ के कचोर नामक ग्राम में आर्य समाजियों के विद्वान् श्री रामस्वरूप मिश्र आदि ने साभिमान मूर्ति पूजा के विषय में पंडितों की सभा में शास्त्रार्थ का आह्वान किया। उस समय सभा में अनन्त श्री शंकराचार्य स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज तथा स्वामी करपात्री जी महाराज उच्चासनों पर विराजमान थे। इनकी ओर देखकर मिश्र महोदय ने कहा कि मुझे भी इनके ही समान ऊंचा आसन मिले तो मैं शास्त्रार्थ करूं। उस समय स्वामी जी का संन्यास नहीं हुआ था। वे बीच में ही बोल पड़े कि आप आचार्य चरणों से शास्त्रार्थ न करें किन्तु इन दोनों के क्षुद्र शिष्य जो मैं भूमि पर स्थित हूं शास्त्रार्थ करें। इनका यह ओजस्वी वचन सुनकर सभी विपक्षी अपना स्थान छोड़कर चले गये। तब द्विवेदी जी ने कहा कि मैं आपसे शास्त्रार्थ करने के लिये आपके घर ही आता हूं। रास्ते में ही जाकर रोका

और वहीं शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। द्विवेदी जी ने कहा—महर्षि दयानन्द जी ने 'आर्याभिनय' नामक ग्रन्थ में मूर्ति पूजा का समर्थन किया है देखें—

"घृतेन सीता मधुना समज्यताम्" अर्थात् घी तथा मधु लगाकर काष्ठ के पटरे 'पटेला' को मले अर्थात् पूजा करें। इस मन्त्र के भाष्य में महर्षि दयानन्द जी ने—"भू समीकरणे क्षेत्रे काष्ठ पट्टेऽस्ति वर्णितः। घृतादिर्मधुनस्त्यागोऽप्यस्त्येतत्तस्य पूजनम्" खेत की भूमि को बराबर करने वाले पटरे को घी तथा मधु लगाकर पूजन करें। यदि आप कहते हैं कि पटेले को चिकना करने के लिये घी मधु का प्रयोग किया जाता है तो चिकनाई तो तेल आदि से भी हो सकती है। घी लगाने का क्या प्रयोजन। अतः इस मन्त्र के भाष्य में दयानन्द जी ने मूर्ति पूजा सिद्ध की है। आपके माननीय स्वामी दयानन्द जी ने वेद मंत्र से लकड़ी के पाटे का पूजन सिद्ध किया। अतः तुम्हारी तरह हम भी मूर्ति का पूजन करते हैं। स्वामी जी ने और भी अनेकों मंत्र मूर्ति पूजन के समर्थन में कहे। मिश्र महोदय ने कोई समाधान नहीं किया। केवल इतना ही कहा कि मूर्ति पूजा केवल ब्राह्मणों द्वारा कल्पित है। तब द्विवेदी जी ने कहा—कि काष्ठ खण्ड पर घी आदि लगाने से क्या प्रयोजन सिद्ध नहीं होता? उत्तर में मिश्र जी ने कहा—इससे मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती। केवल चिर स्थायित्व के लिये ऐसा है। तब द्विवेदी जी ने कहा कि तब वेद मंत्रों की क्या आवश्यकता। तब विपक्षी को कोई उत्तर नहीं सूझा और सभा विसर्जित हो गयी।

संन्यास के पूर्व तथा पश्चात् स्वामी जी ने अखिल भारतीय 'सर्व वेद शाखा सम्मेलनों' में शास्त्रार्थ में विशेष भाग लिया। उनमें दिल्ली, प्रयाग, काशी, कानपुर, हरिद्वार, उज्जैन, अमृतसर, लुधियाना, कोलानगर आदि स्थानों में महामहोपाध्याय अनन्त कृष्ण शास्त्री, पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री करपात्री जी आदि सनातनी विद्वानों तथा श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, युधिष्ठिर मीमांसक तथा जनमेजय आदिक विद्वानों के बीच में अनेकों शास्त्रार्थ किये। जिनसे विद्वान् तथा श्रोतागण विशेष रूप से प्रभावित होते रहे।

एक बार किसी स्थान पर जगद् गुरु जी ने मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट, भारद्वाज आदि स्मृतियों तथा धर्म सिन्धु, निर्णय सिन्धु आदि महानिबन्धों के आधार पर जन्मना वर्णाश्रम व्यवस्था तथा छुआछूत को लेकर भाषण किया। इसको लेकर सरकार ने मुकद्दमा चलाया। मुकद्दमा हाई कोर्ट, सुप्रीम कोर्ट तक चला। भारतीय संविधान के अनुसार इनकी पराजय निश्चित थी। सुप्रीम

कोर्ट के वकीलों तथा भक्तों ने विशेष आग्रह किया कि आप अपना वक्तव्य बदल दें अन्यथा कठोर दण्ड मिलेगा। इन्होंने सबको डांटते हुये कहा कि मैं जगद् गुरु सबको पढ़ाने वाला, तुम मुझको पढ़ाते हो। मैं एक अक्षर मात्र का भी परिवर्तन नहीं करूंगा। सुप्रीम कोर्ट का प्रधान न्यायाधीश सनातनी भक्त था। सोचने लगा कैसे सफलता मिले। इन्होंने सात आठ माह की लम्बी तारीख लगा दी। इसी बीच में उन्होंने मनुस्मृति आदि धर्म शास्त्रों तथा धर्म सिन्धु आदि महानिबन्धों का गम्भीर अध्ययन किया। इन्होंने पूर्ववत्, जब अपना वक्तव्य दिया तब जज ने पूछा—आप किस शास्त्र के अध्याय श्लोक के आधार पर बोलते हैं। इन्होंने उन्हें उन-उन ग्रन्थों के उद्धरण दिये। प्रधान न्यायाधीश ने अपना निर्णय लगभग १५०, २०० पृष्ठों में लिखा तथा अन्त में लिखा जैसे ईसाईयों के गुरु पोप, मुसलमानों के गुरु मौलाना तथा अन्यान्य धर्मावलम्बी गुरु भारतीय सम्बिधान के अनुसार अपने धर्म शास्त्रों के अनुसार अपने धर्म का प्रचार करने के लिये स्वतन्त्र हैं। वैसे ही हिन्दुओं के जगद् गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ भी अपने वैदिक सनातन धर्म के ग्रन्थों के अनुसार अपने धर्म का प्रचार करने में स्वतन्त्र हैं। इस प्रकार वे अपराधी नहीं हैं। इस प्रकार के इन पर ३५ से अधिक केस चले। आप सनातन धर्म के परम रक्षक थे।

वेदान्त पारिजात भाष्य वार्तिकम् की रचना

धर्म सम्राट् श्री करपात्री जी महाराज ने "वेदार्थ पारिजात" नामक भाष्य भूमिका सहित ऋक् तथा यजुर्वेद पर भाष्य करते हुये आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध तथा प्राचीन भाष्यकार महीधर, यास्क, सायण, दुर्गाचार्य, उव्वटाचार्य आदि अनेकों भाष्यकारों के विरुद्ध श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने यत्र-तत्र खण्डन किया है। इनका मण्डन करते हुये स्वामी जी ने सप्रमाण युक्ति, तर्क संगत स्वामी दयानन्द जी के भाष्य का खण्डन किया है। स्वामी करपात्री जी के जीवन काल में किसी भी आर्य समाजी विद्वान् का साहस इसका खण्डन करने का नहीं हुआ। परन्तु उनके ब्रह्मीभूत होते ही पं. विशुद्धानन्द जी मिश्र तथा उनकी पत्नी ने "वेदार्थ कल्पद्रुम" नामक ग्रन्थ में स्वामी जी के प्रति अभद्र शब्दों का प्रयोग करते हुये गालियां तक दी हैं। इसके उत्तर में महाराज श्री जी ने "वेदार्थ पारिजात भाष्य वार्तिकम्" में 'वेदार्थ कल्पद्रुम' ग्रन्थ की मुख्य त्रुटियों का विश्लेषण करते हुये स्वामी जी के भाष्य का समर्थन किया है। विस्तार देखने वाले पाठक इन दोनों ग्रन्थों का अवलोकन करें।

आलोचक ने सर्वप्रथम छापे की भूल से 'श्री गणेशाय नमः' तथा 'श्री सरस्वत्यै नमः' के स्थान पर श्री गणेशायः नमः और श्री सरस्वत्यैः नमः छप गया है। इस पर आक्षेप किया। उत्तर में इन्होंने लिखा कि छापे की भूल है। अपनी विद्या के प्रभाव से यह विसर्ग नहीं, प्रत्युत दो शून्य हैं—यथा—

"अथवा न विसर्गास्ते किन्तु शून्यद्वयं कृतम्।
ज्ञात्वैव मन्दबुद्धीनां पदभेद प्रदर्शकम्॥२८०॥
गणेशो ब्रह्म इत्युक्तः प्रकृतिश्च सरस्वती।
तदभिन्नं शून्यमेवास्ति जगत्सर्वं न किंचन॥२८१॥
प्रदर्शनार्थमेतस्य कृतं शून्य चतुष्टयम्।
साक्ष्यत्वादिति यच्चोक्तं तत्र त्वल् प्रत्ययोस्तु न॥२८२॥
स्वामिभिः लिखितः कुत्र त्वया दृष्टो वदाधुना।
महर्षावङ्गिरसि च षष्ठी शुद्धा पदद्वये॥२८३॥

पृ. सं. ८२ वे. पा. भा.

अथवा श्री गणेशाय तथा सरस्वत्यै के आगे विसर्ग नहीं हैं। परन्तु मन्द बुद्धि वालों को ज्ञान कराने के लिये भेद के प्रदर्शक दो शून्य हैं। स्वामी जी ने गणेश को ब्रह्म तथा सरस्वती को उनकी प्रकृति सिद्ध किया है। इन दोनों से भिन्न जगत् कुछ नहीं अर्थात् "नेह नानास्ति किंचन" इस मंत्र की व्याख्या की है। (वास्तव में अद्वैत सिद्धान्त में ब्रह्म के अतिरिक्त प्रकृति, जीव तथा जगत तीनों को ही अनेक अद्वैत् उपनिषदों के प्रमाण देकर भाष्यकार ने मिथ्या सिद्ध किया है। यहां पर जगद् गुरु जी का अभिप्राय अचेतन अष्टधा प्रकृति से नहीं है किन्तु सर्वथा ब्रह्म भिन्न चेतन प्रकृति को कहा है।)इस सिद्धान्त को दिखाने के लिये स्वामी जी ने चार शून्यों का प्रयोग किया है। साक्ष्य रूप से जो कहा है।

जगद् गुरु जी के शिष्य

संन्यास से पूर्व स्वामी जी के शिष्यों में प्रधान रूप से निम्नलिखित शिष्य हैं—

१. पं. शशिधर शर्मा, न्याय, साहित्य, वेदान्त, दर्शन, व्याकरणाचार्य, तीर्थादि उपाधि।

२. श्री रामानन्द स्वामी वेदान्ताचार्य।

३. श्री सच्चिदानन्द जी ब्रह्मचारी।

४. श्री रामनाथ जी शास्त्री जाम नगर।

५. श्री भाई शंकर पुरोहित, परीक्षाधिकारी भारतीय विद्या भवनम् मोहमई।

६. श्री गौरी शंकर मोती राम शास्त्री संस्कृत शिक्षक गवर्नमिंट हाई स्कूल, मेरठ।

७. श्री मुक्ता शंकर-मणिशंकर शर्मा।

८. श्री नरेन्द्र कुमार कथावाचक गुजरात।

९. श्री वेणीमाधव धर्माधिकारी मीमांसाचार्य जयपुर।

१०. श्री मधुकर शास्त्री मीमांसाचार्य।

११. श्री चन्द्रधर शर्मा यजुर्वेदाचार्य जयपुर।

१२. श्री महीधर शर्मा ऋग्वेदाचार्य।

१३. श्री प्रभु लाल शर्मा यजुर्वेद, अथर्ववेदाचार्य जयपुर।

१४. श्री नानगराम शर्मा यजुर्वेदाचार्य जयपुर।

१५. श्री दीनानाथ त्रिवेदी 'मधुप' दर्शन शास्त्री, न्याय साहित्याचार्य, संस्कृत में स्वामी जी के चरित्र के रचनाकार; इत्यादि।

संन्यासी शिष्यों में दण्डी स्वामी श्री प्रकाशानन्द तीर्थ आदि अनेकों शिष्य हैं।

उपसंहार

जगद् गुरु जी ने अनन्त श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज को उत्तराधिकारी नियुक्त करके उन्हें चल-अचल सम्पत्ति का पूर्ण अधिकार देकर विरक्त होकर आजकल लक्सारोड पर स्थित श्री वृन्दावन विहारी भवन वाराणसी में काशी वास कर रहे हैं। इन्होंने गोवर्द्धन मठ को सुशोभित करते हुये मठ के नाम को सार्थक किया है। गो बध बन्दी के लिये लगभग ७३ दिन का अनशन किया, तथा उसी दिन से छत्र सिंहासन का परित्याग करके प्रतिज्ञा की कि जब तक भारत से गोबध का कलंक पूर्ण रूप से दूर नहीं होगा तब तक मैं छत्र सिंहासन का प्रयोग नहीं करूंगा। लगभग ७, ८ वर्ष से अन्न ग्रहण न करने की भी प्रतिज्ञा की है। आजकल आप का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। अधिक देर बैठ भी नहीं सकते। चलने तथा खड़े होने में पैर लड़खड़ाते हैं। दोनों आंखों में मोतियाबिन्द है। आंख का आपरेशन कराने के लिये अमृतसर जा रहे थे। मार्ग में पता चला कि आपरेशन से पूर्व अशुद्ध औषधि तथा

इन्जेक्शन का प्रयोग किया जाता हैं। आप मार्ग से ही लौट आये, कहा कि मुझे अन्धा होना स्वीकार है परन्तु अशुद्ध औषधि का प्रयोग नहीं करूंगा। स्वामी जी की सेवा में आजकल एक माता तथा ब्रह्मचारी मनसा-वाचा-कर्मणा सेवा में लगे हैं। इतनी शिथिलता होने पर भी आपके साहस तथा वाणी में कोई अन्तर नहीं आया है। बुद्धि पूर्ववत् प्रखर है। लेटे-लेटे शंकाओं का समाधान करते हैं। आजकल 'वेदान्त-परिभाषा', ग्रन्थ पढ़ने के लिये इनके पास सायंकाल चार पांच आचार्य आते हैं। इनका 'वेदार्थ पारिजात भाष्य वार्तिकम्' तीन भागों में छपा है। इतने पर भी आपको सन्तोष नहीं हुआ। मुझसे बातचीत करते हुये कहा कि, "आज भी कोई विद्वान् यदि लिखने के लिये मिल जाये तो मैं आर्य समाज की सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान वार्तिक रूप में कर सकता हूं। अधिक बोलने में थकावट मालूम होती है।

भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे कट्टर धर्माचार्य का वरद हस्त हम लोगों के शिर पर सदैव बना रहे।

यदुक्तं तु परम् ब्रह्म निर्विकारं निरंजनम्।
तीर्थं निरंजनं देवं नमामि तं जगद् गुरुम्॥१॥
जगन्मिथ्येति ज्ञानाय जीव ब्रह्मैक्य बोधकम्।
राधिका कृष्ण तत्त्वज्ञं नमामि तं निरंजनम्॥२॥

इति श्री गुरुवंश महापुराणे कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे एकविंशतितमोऽध्यायः॥

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

पुरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद श्री स्वामी निश्चलानन्द जी सरस्वती महाराज का जीवन वृत्त

आचार्य चरण का जन्म सन् १९३९ ई. में मिथिलापुरी बिहार में उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. श्री लाल वंशी झा था। आपका नाम नीलाम्बर झा था। इनके अग्रज श्री देव झा थे। पिता जी ज्योतिषाचार्य थे। उन्होंने ही इनकी जन्म कुण्डली बनाई थी। प्रारम्भिक शिक्षा बिहार तथा दिल्ली में हुई। दशमी कक्षा तक आप विज्ञान के छात्र रहे। बाल्यावस्था में फुटबाल, कुश्ती, कबड्डी में विशेष रुचि लेते थे। बिहार सरकार से छात्रवृत्ति प्राप्त की।

शैशवावस्था में अनेक भयंकर रोगों से ग्रस्त रहे। दो बार संग्रहणी रोग से ग्रस्त हुये। दूसरी बार तो मृत्यु के अत्यन्त निकट पहुंच गये। सब लोग रोने लगे। आपने अनुभव किया कि मैं मरने वाला नहीं हूं। मृत्यु का द्रष्टा हूं। पुनर्जीवित हो गये।

साढ़े सत्रह वर्ष की अवस्था में जन्म भूमि त्याग कर दिल्ली में काल भैरव, सूर्य तथा शिव की आराधना करने लगे। फिर दिल्ली छोड़कर काशी में पूज्यपाद धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी की शरण में आये। उनसे कुछ शास्त्रों का अध्ययन करके वृन्दावन के लिये चल पड़े। मार्ग में नैमिषारण्य में कुछ वर्षों तक पूज्यपाद दण्डी स्वामी नारदानन्द जी के आश्रम में उनके सम्पर्क में १० वर्ष रहे। वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण का विशेष अनुग्रह हुआ। वहीं से ऋषिकेश सात महीने रहने के बाद उत्तराखण्ड की यात्रा में चले गये। मार्ग में शुकदेव जी का तथा वद्रिकाश्रम में नरनारायण का अनुग्रह हुआ। फिर नैमिषारण्य, अयोध्या, चित्रकूट, पुरी, तिरुपति, बाला श्री रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, पांडेचेरी आदि तीर्थों की यात्रा पैदल करते हुये श्रृंगेरी पहुंचे। सन् १९७१ ई. में ब्रह्मीभूत अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज के सम्पर्क में रहे। इस यात्रा में आपके साथ पं. श्री अमरनाथ मिश्र (वर्तमान काशी पीठाधीश्वर श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी सरस्वती महाराज) थे। श्रृंगेरी से पुरी पहुंचे। एक दिन भगवान् भाष्यकार की विशेष कृपा हुई। उसके प्रभाव से आपने चौदह सौ पृष्ठों में भगवद् गीता की व्याख्या लिखी जो कि श्रृंगेरी में पूर्ण हुई।

सन् १९७२ में वृन्दावन में ब्रह्मलीन अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती महाराज का विशेष स्नेह तथा सत्संग प्राप्त हुआ। सन् १९७४ में हरिद्वार में श्री स्वामी करपात्री जी के कर-कमलों से विधिवत् संन्यास हुआ। प्रथम चातुर्मास्य चार महीने का गुरु चरणों में करते हुये, वेदान्त, न्याय आदि का अध्ययन किया। महाराज श्री जी से श्री विद्या की भी दीक्षा प्राप्त की।

सन् १९८१ से ८५ तक पांच चातुर्मास्य गोवर्द्धन पीठ पुरी में पूर्वाचार्य पूज्य स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ के सान्निध्य में किये। सन् १९७६ से ८० तक पांच चातुर्मास्य काशी में पूज्य गुरुदेव श्री करपात्री जी महाराज की छत्र छाया में किये। उनसे प्रस्थानत्रयी भाष्य सहित, "खण्डन खण्ड खाद्य" पञ्चदशी, न्याय, मीमांसा, तन्त्रालोक, अद्वैतसिद्धि आदि का अध्ययन किया।

एक चातुर्मास्य आपने दण्डी आश्रम मेरठ में किया। मेरठ में एक आर्य समाजी ने गीता के श्लोकों की काट छांट करके आधे श्लोक उड़ा दिये। भगवत्ता को सिद्ध करने वाले सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त लिखा। उसका नाम "सच्ची गीता" रखा। वह पुस्तक श्री वाजपेयी जी तथा अन्य भक्तों ने आपको भेंट की, तथा उसका खण्डन करने की प्रार्थना की। आपने लेखक को शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दिया। बहुत प्रयास करने पर वह नहीं आया। उसने कहला भेजा। मैंने लिखित खण्डन किया है। अतः आप भी पुस्तक रूप में खण्डन करें। तब आपने 'सप्तशती गीता' नामक पुस्तक में विद्वत्तापूर्ण खण्डन किया। इस पुस्तक के लिये पुरी पीठाधीश्वर वरिष्ठ ज. गु. शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने आशीर्वाद लिखा है। उसमें लिखा था कि समझ में न आने वाले ग्रन्थों को प्रक्षिप्त कहकर उनके परमोपयोगी अंशों को निकाल देना आर्य समाजियों की पुरानी श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के समय से चली हुई परम्परा है। उन्होंने महाभाष्यकार तथा वेद भाष्यकार, सायण, महीधर, उव्वटाचार्य आदि द्वारा मान्य चार वेदों की ११३१ संहिताओं में से ४ को मानकर ११२७ को प्रक्षिप्त कहकर वेदों से बहिष्कृत कर दिया है। अतः इन लोगों के लिये यह कोई नयी बात नहीं है। इत्यादि उस पुस्तक के अन्त में तथा बीच में अनेक स्थानों पर लेखक ने लिखा है कि भगवान् श्री शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य तथा इनके भाष्यों के टीकाकारों ने सात सौ श्लोकों को प्रमाण माना है। इतना ही नहीं, प्रत्युत श्री स्वामी दयानन्द जी ने भी गीता के सात सौ श्लोकों को स्वीकार किया है। उन्होंने इनका अर्थ खींचातानी से भले ही किया है। परन्तु "सच्ची गीता" के लेखक महोदय ने तो पहले अध्याय को पूरा लिया है। दूसरे अध्याय के ७२ श्लोक कई अध्यायों में बांट दिये हैं। उन्होंने परम्परानुसार गीता में १८ अध्याय ही माने हैं। इत्यादि।

इसके पश्चात् आपने पुरी में पूज्य पाद जगद गुरु शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज की सेवा में पांच वर्ष रहकर यजुर्वेद तथा वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया। उन्होंने आपको अपना उपयुक्त उत्तराधिकारी समझकर ८ फरवरी सन् १९९२ ई. में बसन्त पंचमी के दिन अपने कर कमलों से अपने पद पर अभिषिक्त किया। सन् १९६६ में बावन दिन तक गोरक्षा आन्दोलन में तिहार जेल में रहे। ब्रह्मलीन दण्डी स्वामी श्री सुख बोधाश्रम जी महाराज तथा परम विरक्त सन्त वामदेव जी से भी ब्रह्म सूत्र का अध्ययन किया। व्याकरण का अध्ययन अनूप शहर वाले दण्डी स्वामी श्री सुख बोधाश्रम जी महाराज से किया। आपके घनिष्ठ मित्रों

में श्री स्वामी विपिन चन्द्रानन्द सरस्वती, अनन्त श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज हैं। आपने सभी शंकराचार्यों को गुप्त तथा प्रकट रूप से एक मंच पर लाने का भरसक प्रयास किया है। आपके दिये हुये नये नारे भारत की अखण्डता आदि श्रोताओं में नवजीवन का संचार करते हैं।

आजकल आप श्रीमद् भागवत् महापुराण के प्रथम दो अध्यायों की तथा तैत्तिरीय आदि उपनिषदों की मार्मिक व्याख्या में संलग्न हैं। आपने ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त, भागवत् के प्रथम स्कन्ध में स्थित "कुन्ती स्तुति" की मार्मिक विशद व्याख्या की है। श्वेताश्वतरोपनिषद् की भी २ भागों में व्याख्या लिखी है। पूज्यपाद ब्रह्मीभूत स्वामी करपात्री जी महाराज ने श्री विद्या की दीक्षा मध्य प्रदेश पीताम्बरा पीठ दतिया से प्राप्त की थी। गुरु जी ने स्वामी जी का नाम "षोडशानन्द नाथ" रखा। कालान्तर में उन्होंने स्वामी निश्चलानन्द जी को इस विद्या में दीक्षित करके "पद्म पादानन्द नाथ" नाम रखा। चातुर्मास्यों में श्रीमद् भागवत, भगवद् गीता, शांकर भाष्य, आनन्दगिरि टीका आदि का प्रवचन, अध्ययन, अध्यापन आदि चलता है। आपकी भाषण शैली पाण्डित्य पूर्ण, परिमार्जित तथा सरल है। मठ के जीर्णोद्धार में भी आप भागीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। भगवान् से प्रार्थना है कि आचार्य चरण शतायु होकर सनातन धर्म की निरन्तर इसी प्रकार से सेवा करते रहें। मठ में गोपालन का कार्य भी विशेष रूप से होता है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुगे खण्डे तृतीय परिच्छेदे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

(गोवर्द्धन मठ की परम्परा)

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

वर्तमान पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु अ. श्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी का उपदेश

मेरी जानकारी में गोवर्द्धन पीठ पर तीन जगद् गुरु शंकराचार्य अद्वितीय धुरन्धर विद्वान् हुये। तीनों प्रकाण्ड पण्डित रहे हैं। ब्रह्मीभूत अ. श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, ब्रह्मीभूत अ० श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज एवं स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज। इनमें से भारती कृष्ण तीर्थ जी गणित, विज्ञान आदि अनेक विषयों के तथा विश्व की १८ भाषाओं के



अनन्त श्री विभूषित पुरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु
श्री शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्द जी सरस्वती जगनाथ पुरी।

महापण्डित थे। स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने भी वाचिक तथा लिखित रूप से सनातन धर्म की महती सेवा की। दोनों के साहित्य का रसास्वादन पाठकों को पीछे करवा दिया है। स्वामी निश्चलानन्द जी ने भागवत के प्रथम स्कन्ध के आरम्भ के दो अध्यायों की रस रहस्यपूर्ण व्याख्या "शुकसुधा" में की है। इसी स्कन्ध के अष्टम अध्याय की "कुन्ती स्तुति", श्वेताश्वतरोपनिषद् की व्याख्या दो भागों में, ऋग्वेदान्तर्गत "नासदीय सूक्त" की व्याख्या की है। इन सभी टीकाओं का नाम अपने गुरुदेव स्वामी करपात्री जी के नाम पर "हरिहर प्रकाशिका" रखा। आचार्य पद पर आसीन होने से पूर्व मेरठ के एक आर्य समाजी की "सच्ची गीता" के खण्डन के रूप में "गीता सप्तशती" नामक पुस्तक के रूप में खण्डन किया। उक्त महाशय ने श्रीकृष्ण की भगवत्ता के प्रतिपादक आधे से अधिक श्लोक प्रक्षिप्त कह कर गीता में से निकाल दिये थे। यहां पर स्वामी जी के "श्वेताश्वतरोपनिषद्" के दूसरे अध्याय के नवमें मन्त्र की व्याख्या पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

संगति—प्रधान रूप से आसन का प्रतिपादन करने के अनन्तर अब प्राणायाम का प्रतिपादन करते हैं।

मंत्र— प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्त चेष्टः, क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्‌वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं, विद्वान् मनोधारयेताप्रमत्तः॥

मन्त्रार्थ—इह संयुक्त चेष्ट—इस मानव जीवन में संयत आहार विहार और समस्त व्यवहार सम्पन्न करता हुआ, **प्राणान् प्रपीड्य**—प्राणायाम के द्वारा प्राणों को साधकर **क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्‌वसीत** प्राण धारण सामर्थ्य के क्षीण हो जाने पर नासिकारन्ध्र द्वारा अर्थात् कुम्भक के अनन्तर उसे धीरे-धीरे बाहर निकालने के अनन्तर, **विद्वान्** धीर वीर विवेकी साधक, **दुष्टाश्व युक्तं इव वाहम्**, दुर्दान्त घोड़े से युक्त रथ को कुशल सारथी के समान, **अप्रमत्तः** सावधान होकर, **एनं मनोधारयेत्** इस मन को नियन्त्रित करे।

इस मन्त्र की विशद व्याख्या में न जाकर केवल अनेक उपनिषदों के प्रमाण से प्रमुख नाड़ियों का वर्णन तथा नाड़ी शोधन का प्रकार लिखा जाता है।

यम, नियम, आसन से युक्त हो जाने पर नाड़ी शोधन के अनन्तर प्राणायाम का अधिकारी होता है। "त्रिशिखी ब्राह्मणोपनिषद्" के ५३वें मन्त्र में लिखा है कि—"**यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयतः। नाडी शुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत्॥** इसी में आगे

कहा है कि साधक योग साधना में मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्राणों को जीते। अर्थात् नाड़ी भेद, स्थान भेद, चेष्टा भेद, अधिदैव भेद, वायु भेद को जानकार नाड़ी शोधन करे। कन्द से उत्पन्न प्रमुख दश नाड़ियां—

सुषुम्णा, इडा, पिंगला, गान्धारी, हस्ती जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, शुभा, कौशिकी हैं।

१. **सुषुम्णा**—गुदा के पृष्ठ भाग में कन्द मध्यस्थ से निकल कर मूर्धा पर्यन्त कमल सूत्र के समान वीणा दण्ड तुल्य ऋजु विद्युत वर्ण की हैं।

२. **इडा**—सुषुम्णा के बाम भाग में बाम नासिका पर्यन्त है।

३. **पिंगला**—सुषुम्णा के दक्षिण भाग से निकल कर दक्षिणनासापुट पर्यन्त है। इन दोनों को सूर्य चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। यह दोनों देवता काल के धारक हैं। सुषुम्णा काल भोक्त्री है।

४. **गान्धारी**—इडा के पृष्ठ भाग से निकलकर बायें नेत्र तक गई है।

५. **हस्ति जिह्वा**—बायें पैर के अंगूठे तक है।

६. **पूषा**—पिंगला के पिछले भाग में स्थित दक्षिण श्रोत्र तथा नेत्र पर्यन्त गई है।

७. **यशस्विनी**—गान्धारी तथा सरस्वती के मध्य से होती हुई पैर के अंगूठे से होकर दाहिने कान तक गई है।

८. **अलम्बुषा**—गुदा के मूल से नीचे श्रोत्र पर्यन्त गई है।

९. **कौशिकी**—कन्द से पैर के अंगूठे तक है।

अन्यत्र नाड़ियों के १४ भेद आये हैं। उपर्युक्त नाड़ियों के अतिरिक्त वरुणा, सरस्वती, शंखिनी, पयस्विनी (तपस्विनी) विश्वोदरी, कुहू।

१०. **सरस्वती**—सुषुम्णा के पृष्ठ भाग से लेकर जिह्वा तक है।

११. **वरुणा**—यशस्विनी और कुहू के मध्य कुण्डली के अधोभाग तथा ऊर्ध्व भाग में स्थित सर्वगामिनी नाड़ी है। मूत्र त्याग में प्रयुक्त होती है।

१२. **कुहू**—सुषुम्णा के पूर्व भाग में नासिका के अधो भाग में मेढ्रान्त कुहू नाम की नाड़ी है। इससे मल त्याग होता है।

१३. शंखिनी—कण्ठ कूप स्थित अधोमुखी नाड़ी है। यह अन्न के सार को मूर्द्धा में संचित करती है।

१४. पयस्विनी—पूषा और सरस्वती के बीच में है।

१५. विश्वोदरी—यह कंद मध्य स्थित चतुर्विध अन्न को पचाती है।

नाड़ियों के देवता

सुषुम्णा के शिव, इडा के विष्णु, पिंगला के ब्रह्मा, सरस्वती के विराट्, पूषा के पूषा, वरुणा के वायु, हस्ति जिह्वा के वरुण, यशस्विनी के सूर्य, अलम्बुषा के वरुण, कुहू के क्षुत्, गान्धारी तथा शंखिनी के चन्द्रमा, पयस्विनी के प्रजापति, विश्वोदरी के अग्नि देवता हैं। **(दर्शनोपनिषद्)**

इन नाड़ियों के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थों में विलम्बिनी, शूरा, राका, चित्रा (सीविनी) नाड़ियां कहीं हैं।

विलम्बिनी—नाभि मण्डल में मुर्गी के अण्डे के तुल्य प्रतिष्ठित है।

शूरा—भ्रूमध्य में स्थित है।

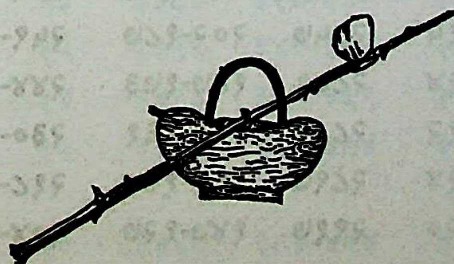
राका—कन्द से घ्राण पर्यन्त फैली है। यह जलपान करने वाली प्यास लगाती है तथा नासिका में श्लेष्मा का संचार करती है।

चित्रा—वारुणी के समान सर्व शरीर व्यापिनी है। शुक्र त्याग में प्रयुक्त है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अध्ययन करने से स्वामी जी के विस्तृत अध्ययन का पता चलता है।

अ. श्री स्वामी निश्चलानन्द जी के उपदेश सम्पूर्ण हुये।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगे खण्डे, तृतीय परिच्छेदे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥



अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

क्रम सं०	नाम	अवधि	गतकलि	विक्रम संवत	ईसा पूर्व	सन् विशेष विवरण
१.	अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमद् जगद् गुरु शंकराचार्य श्रीपद्मपादाचार्य	२२	२६४२	पूर्व विक्रम संवत् ४२३-२४	४८१-४५९ बी० सी०	श्री गोवर्धन मठ की स्थापना गतकलि २६१५ कार्तिक शुक्ला पंचमी तदनुसार पूर्व विक्रमी संवत् ४२८-४२९ बी०सी० ४८६ में हुई पांच वर्ष भ्रमण में रह कर मठ को संभाला (नंद संवत् ६१५)
२.	अनन्त श्री शूल पाणि	२०	२६६२	४०२-३८२	४५९-४३९	
३.	श्री नारायण	१७	२६७९	३८२-३६५	४३९-४२२	
४.	श्री विद्यारण्य	१८	२६९७	३६५-३४७	४२२-४०४	
५.	श्री वामदेवाचार्य	१६	२७१३	३४७-३३१	४०४-३८८	
६.	श्री पद्मनाभ	१५	२७२८	३३१-३१६	३८८-३७३	
७.	श्री जगन्नाथ	१४	२७४२	३१६-३०२	३७३-३५९	
८.	श्री मधुरेश्वर	१०	२७५२	३०२-२९२	३५९-३४९	
९.	श्री गोविन्द	२१	२७७३	२९२-२७१	३४९-३२८	
१०.	श्री श्रीधर	१८	२७९१	२७१-२५३	३२८-३१०	
११.	श्री माधवानन्द	१७	२८०८	२५३-२३६	३१०-२९३	
१२.	श्री कृष्ण ब्रह्मानन्द	१८	२८२६	२३६-२१८	२९३-२७५	
१३.	श्री रामानन्द	१६	२८४२	२१८-२०२	२७५-२५९	
१४.	श्री वागीश्वर	१५	२८५७	२०२-१८७	२५९-२४४	
१५.	श्री परमेश्वर	१४	२८७१	१८७-१७३	२४४-२३०	
१६.	श्री गोपालेश्वर	१२	२८८३	१७३-१६१	२३०-२१८	
१७.	श्री जनार्दन	१४	२८९७	१६१-१४७	२१८-२०४	
१८.	श्री जननानन्द	२०	२९१७	१४७-१२७	२०४-१८४	
१९.	श्री बृहदारण्य तीर्थ	१९	२९३६	१२७-१०८	१८४-१६५	

२०.	श्री महादेव तीर्थ	१८	२९५४	१०८-९०	१६५-१४७
२१.	श्री परम ब्रह्मानन्द	१६	२९७०	९०-७४	१४७-१३१
२२.	श्री रामानन्द (रामचन्द्र तीर्थ)	१५	२९८५	७४-५९	१३१-११६
२३.	श्री सदाशिव	१४	२९९९	५९-४५	११६-१०२
२४.	श्री हरिश्वरानन्द	१२	३०११	४५-३३	१०२-९०
२५.	श्री बोधानन्द	१४	३०२५	३३-१९	९०-७६
२६.	श्री रामकृष्ण	२०	३०४५	वि. सं. १	७६-५६
२७.	श्री चित्त बोधाश्रम	१०	३०५५	१-११	५६-४६
२८.	श्री तत्त्वकेश्वर मुनि	१८	३०७३	११-२९	४६-२८
२९.	अनन्त श्री शंकर तीर्थ	१६	३०८९	२९-४५	२८-१२
३०.	अनन्त श्री वासुदेव	२०	३१०९	४५-६५	१२-८ बी.सी. एडी.
३१.	अनन्त श्री हयग्रीव	१७	३१२६	६५-८२	८-२५ एडी.
३२.	अनन्त श्री स्मृतिश्वर	१४	३१४०	८२-९६	२५-३९
३३.	अनन्त श्री विद्यानन्द	२०	३१६०	९६-११६	३९-५९
३४.	अनन्त श्री मुकुन्दानन्द	१८	३१७८	११६-१३४	५९-७७
३५.	अनन्त श्री हिरण्यगर्भ	१९	३१९७	१३४-१५३	७७-९६
३६.	अनन्त श्री नित्यानन्द	१८	३२१५	१५३-१७१	९६-११४
३७.	अनन्त श्री शिवानन्द	१६	३२३१	१७१-१८७	११४-१३०
३८.	अनन्त श्री योगीश्वर	१८	३२४९	१८७-२०५	१३०-१४८
३९.	अनन्त श्री सुदर्शन	१५	३२६४	२०५-२२०	१४८-१६३
४०.	अनन्त श्री व्योमकेश	१७	३२८१	२२०-२३७	१६३-१८०
४१.	अनन्त श्री दामोदर	२१	३३०२	२३७-२५८	१८०-२०१
४२.	अनन्त श्री योगानन्द	२०	३३२२	२५८-२७८	२०१-२२१
४३.	अनन्त श्री गोलकेश	२१	३३४३	२७८-२९९	२२१-२४२
४४.	अनन्त श्री कृष्णानन्द	१८	३३६१	२९९-३१७	२४२-२६०
४५.	अनन्त श्री देवानन्द	२३	३३८४	३१७-३४०	२६०-२८३
४६.	अनन्त श्री चन्द्रचूड़	१५	३३९९	३४०-३५५	२८३-२९८
४७.	अनन्त श्री हलायुध	१४	३४१३	३५५-३६९	२९८-३१२
४८.	अनन्त श्री सिद्ध सेव्य (श्रीधर तीर्थ)	१५	३४२८	३६९-३८४	३१२-३२७
४९.	अनन्त श्री तारकात्मा	२०	३४४८	३८४-४०४	३२७-३४७
५०.	अनन्त श्री बोधायन	२१	३४६९	४०४-४२५	३४७-३६८

५१. अनन्त श्रीधर	१९	३४८८	४२५-४४४	३६८-३८७
५२. अनन्त श्री नारायण	१८	३५०६	४४४-४६२	३८७-४०५
५३. अनन्त श्री सदाशिव	१५	३५२१	४६२-४७७	४०५-४२०
५४. अनन्त श्री जयकृष्ण	१३	३५३४	४७७-४९०	४२०-४३३
५५. अनन्त श्री विरूपाक्ष	११	३५४५	४९०-५०१	४३३-४४४
५६. अनन्त श्री विद्यारण्य	७	३५५२	५०१-५०८	४४४-४५१
५७. अनन्त श्री विश्वेश्वर	२०	३५७२	५०८-५२८	४५१-४७१
५८. अनन्त श्री विबोधेश्वर	२३	३५९५	५२८-५५१	४७१-४९४
५९. अनन्त श्री महेश्वर	२१	३६१६	५५१-५७२	४९४-५१५
६०. अनन्त श्री मधुसूदन	१९	३६३५	५७२-५९२	५१५-५३५
६१. अनन्त श्री रघुत्तम	१५	३६५०	५९२-६०६	५३५-५४९
६२. अनन्त श्री रामचन्द्र	१३	३६६३	६०६-६१५	५४९-५६२
६३. अनन्त श्री योगीन्द्र	११	३६७४	६१५-६३०	५६२-५७३
६४. अनन्त श्री महेश्वर	७	३६८१	६३०-६३७	५७३-५८०
६५. अनन्त श्री ओंकार	२७	३७०८	६३७-६६४	५८०-६०७
६६. अनन्त श्री नारायण	२२	३७३०	६६४-६८६	६०७-६२९
६७. अनन्त श्री जगन्नाथ	२१	३७५१	६८६-७०७	६२९-६५०
६८. अनन्त श्री श्रीधर	१९	३७७०	७०७-७२६	६५०-६६९
६९. अनन्त श्री रामचन्द्र	१३	३७८३	७२६-७३९	६६९-६८२
७०. अनन्त श्री ताम्रक तीर्थ	१२	३७९५	७३९-७५१	६८२-६९४
७१. अनन्त श्री ऊग्रेश्वर	१५	३८१०	७५१-७६६	६९४-७०९
७२. अनन्त श्री उद्दण्ड	१८	३८२८	७६६-७८४	७०९-७२७
७३. अनन्त श्री संकर्षण	२२	३८५०	७८४-८०६	७२७-७४९
७४. अनन्त श्री जनार्दन	२१	३८७१	८०६-८२७	७४९-७७०
७५. अनन्त श्री अखण्डात्मा	१३	३८८४	८२७-८४०	७७०-७८३
७६. अनन्त श्री दामोदर	१२	३८९६	८४०-८५२	७८३-७९५
७७. अनन्त श्री शिवानन्द	१५	३९११	८५२-८६७	७९५-८१०
७८. अनन्त श्री गदाधर	१८	३९२९	८६७-८८५	८१०-८२८
७९. अनन्त श्री विद्याधर	२२	३९५१	८८५-९०७	८२८-८५०
८०. अनन्त श्री वामन	२१	३९७२	९०७-९२८	८५०-८७१
८१ अनन्त श्री शंकर	१४	३९८६	९२८-९४२	८७१-८८५
८२. अनन्त श्री नीलकंठ	११	३९९७	९४२-९५३	८८५-८९६
८३. अनन्त श्री रामकृष्ण	२०	४०१७	९५३-९७३	८९६-९१६

८४.	अनन्त श्री रघुत्तम	२०	४०३७	९७३-९९३	९१६-९३६
८५.	अनन्त श्री दामोदर	१०	४०४७	९९३-१००३	९३६-९४६
८६.	अनन्त श्री गोपाल	१३	४०६०	१००३-१०१६	९४६-९५९
८७.	अनन्त श्री मृत्युञ्जय	२१	४०८१	१०१६-१०३७	९५९-९८०
८८.	अनन्त श्री गोविन्द	२२	४१०३	१०३७-१०५९	९८०-१००२
८९.	अनन्त श्री वासुदेव	१२	४११५	१०५९-१०७१	१००२-१०१४
९०.	अनन्त श्री गंगाधर	१२	४१२७	१०७१-१०८३	१०१४-१०२६
९१.	अनन्त श्री सदाशिव	२१	४१४५	१०८३-११०४	१०२६-१०४७
९२.	अनन्त श्री वामदेव	२२	४१७०	११०४-११२६	१०४७-१०६९
९३.	अनन्त श्री उपमन्यु	१५	४१८५	११२६-११४१	१०६९-१०८४
९४.	अनन्त श्री हयग्रीव	१६	४२०१	११४१-११५७	१०८४-११००
९५.	अनन्त श्री हरि	१८	४२१९	११५७-११७५	११००-१११८
९६.	अनन्त श्री रघुत्तम	१९	४२३८	११७५-११९४	१११८-११३७
९७.	अनन्त श्री पुण्डरीकाक्ष	७	४२४५	११९४-१२०१	११३७-११४४
९८.	अनन्त श्री पराशंकर तीर्थ	१६	४२६१	१२०१-१२१७	११४४-११६०
९९.	अनन्त श्री वेदगर्भ	१८	४२७९	१२१७-१२३५	११६०-११७८
१००.	अनन्त श्री वेदान्त भास्कर	२०	४२९९	१२३५-१२५५	११७८-११९८
१०१.	अनन्त श्री विज्ञानात्मा	२०	४३१९	१२५५-१२७५	११९८-१२१८
१०२.	अनन्त श्री शिवानन्द	२१	४३४०	१२७५-१२९६	१२१८-१२३९
१०३.	अनन्त श्री महेश्वर	२०	४३६०	१२९६-१३१६	१२३९-१२५९
१०४.	अनन्त श्री रामकृष्ण	१९	४३७९	१३१६-१३३५	१२५९-१२७८
१०५.	अनन्त श्री वृषध्वज	१४	४३९३	१३३५-१३४९	१२७८-१२९२
१०६.	अनन्त श्री सुधाबोध	१३	४४०६	१३४९-१३६२	१२९२-१३०५
१०७.	अनन्त श्री सोमेश्वर	२०	४४२६	१३६२-१३८२	१३०५-१३२५
१०८.	अनन्त श्री गोपदेव	२१	४४४७	१३८२-१४०३	१३२५-१३४६
१०९.	अनन्त श्री शम्भू तीर्थ	२०	४४६७	१४०३-१४२३	१३४६-१३६६
११०.	अनन्त श्री वृग (भृगु)	१३	४४८०	१४२३-१४३६	१३६६-१३७९
१११.	अनन्त श्री केशवानन्द	१२	४४९२	१४३६-१४४८	१३७९-१३९१
११२.	अनन्त श्री विद्यानन्द	१४	४५०६	१४४८-१४६२	१३९१-१४०५
११३.	अनन्त श्री वेदानन्द	१६	४५२२	१४६२-१४७९	१४०५-१४२१
११४.	अनन्त श्री बोधानन्द	१५	४५३७	१४७९-१४९३	१४२१-१४३६
११५.	अनन्त श्री सुतपानन्द	२४	४५६१	१४९३-१५१७	१४३६-१४६०
११६.	अनन्त श्री श्रीधर	११	४५७२	१५१७-१५२८	१४६०-१४७१

११७. अनन्त श्री जनार्दन	२१	४५९३	१५२८-१५४९	१४७१-१४९२
११८. अनन्त श्री कामनाशानन्द	१२	४६०५	१५४९-१५६१	१४९२-१५०४
११९. अनन्त श्री हरिहरानन्द	१६	४६२१	१५६१-१५७७	१५०४-१५२०
१२०. अनन्त श्री गोपाल	१५	४६३६	१५७७-१५९२	१५२०-१५३५
१२१. अनन्त श्री कृष्णानन्द	१६	४६५२	१५९२-१६०८	१५३५-१५५१
१२२ श्री माधवानन्द	२१	४६७३	१६०८-१६२९	१५५१-१५७२
१२३ श्री मधुसूदन	१३	४६८६	१६२९-१६४२	१५७२-१५८५
१२४ श्री गोविन्द	१६	४७०२	१६४२-१६५८	१५८५-१६०१
१२५ श्री रघुत्तम	२०	४७२२	१६५८-१६७८	१६०१-१६२१
१२६ श्री वामदेव	१५	४७२७	१६७८-१६९३	१६२१-१६३६
१२७ श्री हृषिकेश	१३	४७५०	१६९३-१७०६	१६३६-१६४९
१२८ श्री दामोदर	२५	४७७५	१७०६-१७३१	१६४९-१६७४
१२९ श्री गोपालानन्द	१२	४७८७	१७३१-१७४३	१६७४-१६८६
१३० श्री गोविन्द	१४	४८०१	१७४३-१७५७	१६८६-१७००
१३१ श्री रघुत्तम	१९	४८२०	१७५७-१७७६	१७००-१७१९
१३२ श्री रामचन्द्र	२१	४८४१	१७७६-१७९७	१७१९-१७४०
१३३ श्री गोविन्द	१५	४१५६	१७९७-१८१२	१७४०-१७५५
१३४ श्री रघुनाथ	१५	४८७१	१८१२-१८२७	१७५५-१७७०
१३५ श्री रामकृष्ण	२१	४८९२	१८२७-१८४८	१७७०-१७९१
१३६ श्री मधुसूदन	१३	४९०५	१८४८-१८६१	१७९१-१८०४
१३७ श्री दामोदर	२३	४९२८	१८६१-१८८४	१८०४-१८२७
१३८ श्री रघुत्तम	२२	४९५०	१८८४-१९०६	१८२७-१८४९
१३९ श्री शिव	२१	४९७१	१९०६-१९२७	१८४९-१९७०
१४० श्री लोकनाथ	१३	४९४८	१९२७-१९४०	१८७०-१८८३
१४१ श्री दामोदर	१५	४९९९	१९४०-१९५५	१८८३-१८९८
१४२ श्री मधूसुदन	२८	५०२७	१९५५-१९८३	१८८७-१९१६
१४३ श्री भारती कृष्ण	३४	५०६१	१९८३-२०१७	१९२६-१९६०
१४४ श्री निरञ्जनदेव तीर्थ	ब्रह्मीभूत		२०२१	१९६४-१९९२
१४५ श्री निश्चलानन्द सरस्वती	वर्तमान		२०४९ वसन्तपंचमी	१९९२-

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, तृतीय परिच्छेदे चतुर्विंशाति तमोऽध्यायः ॥

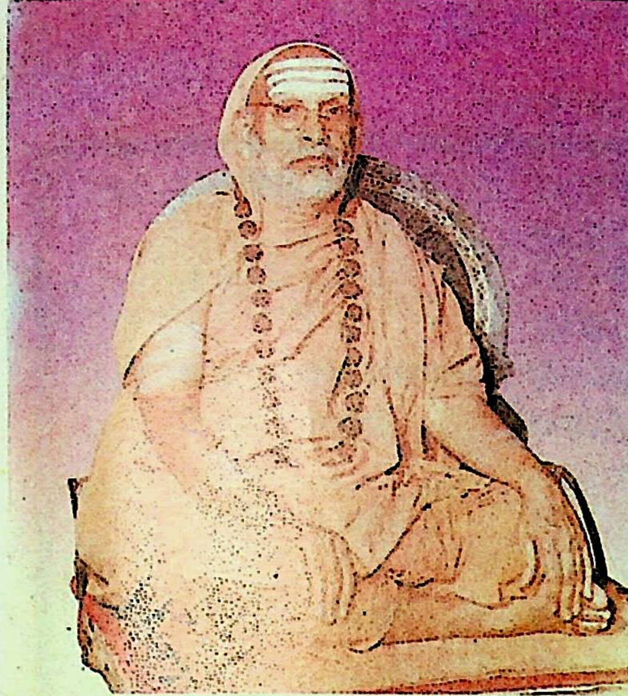
तृतीय परिच्छेदे सम्पूर्ण

श्री गुरुवंश पुराण, कलियुग खण्ड का चतुर्थपरिच्छेद प्रारम्भ ॥

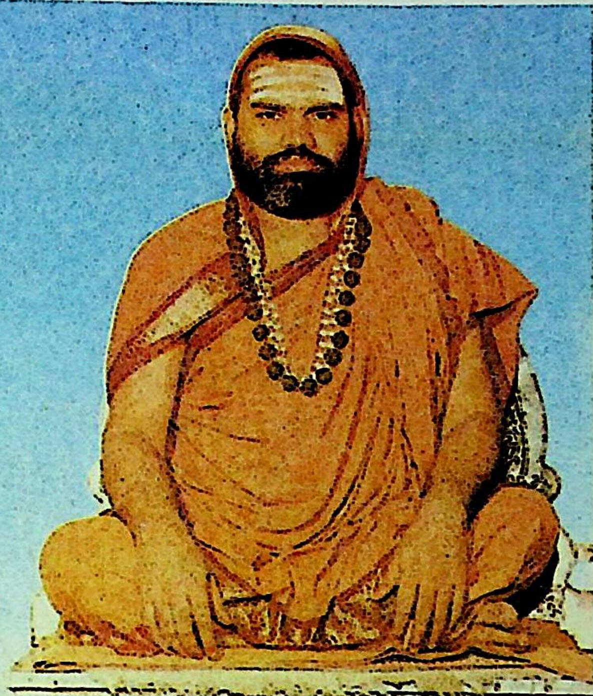
शृंगेरी मठ के आचार्य

क्र० सं०	नाम	संन्यास ग्रहण काल	सिद्धि काल	समय
१	श्री आदि शंकराचार्य जी	वैशाख २२ विक्रमी सम्वत् शु० ३	४५ विक्रमी सम्वत् सौम्य	जन्मादि २४ + ८ = ३२
२	श्री सुरेश्वराचार्य जी	चैत्र १५, ३० विक्रमी सम्वत् विजय जन्मादित	६९५ मतभेद से ७२५ प्रमाथी	
३	श्री बोधघनाचार्य जी	६८० विलम्बी आषाढ़ शु० १२	८८० भाद्र शु० १३ विभव	२००
४	श्री ज्ञान घनाचार्य जी	७६८ कार्तिक शु० १२ अक्षय	८३२ वि० आषाढ़ कृ० ५ प्रमोद	६४
५	श्री ज्ञान उत्तमशिवाचार्य	८२७ क्रोधन बैशाख शु० ७	८७५ फा० शु० ८ प्रमादी	४८
६	श्री ज्ञान गिर्याचार्य	८७१ सौम्य षौष शु० ११	९६० श्रावण कृ १० बहुधान्य	८९
७	श्री सिंह गिर्याचार्य	९५८ धाता आषाढ़ कृ० ३	१०२० वैशाख कृ० ८, बहुधान्य	६२
८	श्री ईश्वर तीर्थ	१०५९ ईश्वर चैत्र कृ० ११	१०६८ चैत्र शु० १ अक्षय	४९
९	नृसिंह तीर्थ	१०६७ क्रोधन माघ शु० ११	११५० फाल्गुन शु० ६ सर्वधारी	८३
१०	श्री विद्यातीर्थ विद्याशंकर	१०५० सर्वधारी कार्तिक शु० ११	१२५५ कार्तिक शु ७ श्रीमुख	१०५
११	श्री भारती कृष्ण तीर्थ	१२५० विभव चैत्र शु० ७	१३०२ भाद्र शु० १२ रौद्र	५२
१२.	श्री विद्यारण्य	१२५३ प्रजापति कार्तिक शु० ७	१३०८ चैत्र शु० १३ अक्षय	५५
१३.	श्री चन्द्रशेखर भारती (१)	१२९० कीलक आषाढ़ शु० ५	१३११ वैशाख कृ० ५ शुक्ल	२१
१४.	नृसिंह भारती (१)	१३०९ प्रभव माघ शु० २	१३३० पौ० शु० ८ सर्वधारी	२१

१५. श्री पुरुषोत्तम भारती (१)	१३६८ व्यय वै- शु० १५	१३७० श्रा० शु० ११ विभव	४२
१६. श्री शंकरानन्द जी	१३५० कीलक माघ शु० ११	१३७६ माघ शु० ८ भाव	२६
१७. श्री चन्द्रशेखर भारती (२)	१३७१ शुक्ल फा- शु० १३	१३८६ मार्ग० कृ० ५ तारण	१५
१८. नृसिंह भारती (२)	१३८६ तारण वै० कृ० १०	१४०१ आषाढ़ कृ० ५ विकारी	१५
१९. श्री पुरुषोत्तम भारती (२)	१३९४ नन्दन फा० शु० १३	१४३९ ज्ये० कृ० १३ ईश्वर	४५
२०. श्री रामचन्द्र भारती	१४३० विभव वै० कृ० १०	१४८२ पौ० कृ० ८ रौद्र	५२
२१. नृसिंह भारती (३)	१४७१ पिंगल ज्ये० शु० २	१४९५ आषाढ़ कृ० ४ श्रीमुख	१६
२२. नरसिंह भारती (४)	१४७५ रुधिरोद्गारी श्रा० शु० १२	१४९८ चैत्र शु० ११ धाता	१३
२३. इम्माडि नरसिंह भारती (५)	१४९८ धाता चैत्र शु० ११	१५२१ भा० प० कृ० २ विकारी	२३
२४. श्री अभिनव नरसिंह भारती (१)	१५२१ विकारी आषाढ़ कृ० ७	१५४४ फा० कृ० ७ दुन्दुभी	२३
२५. श्री सच्चिदानन्द भारती (१)	१५४४ दुन्दुभी भा० क० ३	१५८५ आषाढ़ कृ० ५ शुभकृत	४१
२६. श्री नरसिंह भारती (६)	१५८६ शुभकृत ज्ये० शु० १०	१६२७ का० कृ० ६ पार्थिव	४२
२७. श्री सच्चिदानन्द भारती (२)	१६२७ पार्थिव फा० शु० १५	१६६३ ज्ये० शु० १० दुर्मति	३६
२८. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (१)	१६६३ दुर्मति ज्ये० शु० ३	१६८९ मार्ग शु० ६ सर्वजित	२५
२९. श्री नृसिंह भारती (७)	१६८९ सर्वजित माघ शु० ६	१६९२ फा० कृ० ५ विकृति भा० शु० ११	३
३०. श्री सच्चिदानन्द भारती (३)	१६९२ विकृति भाद्र शु० १२	१७३५ भा० शु० १ भाव	४३

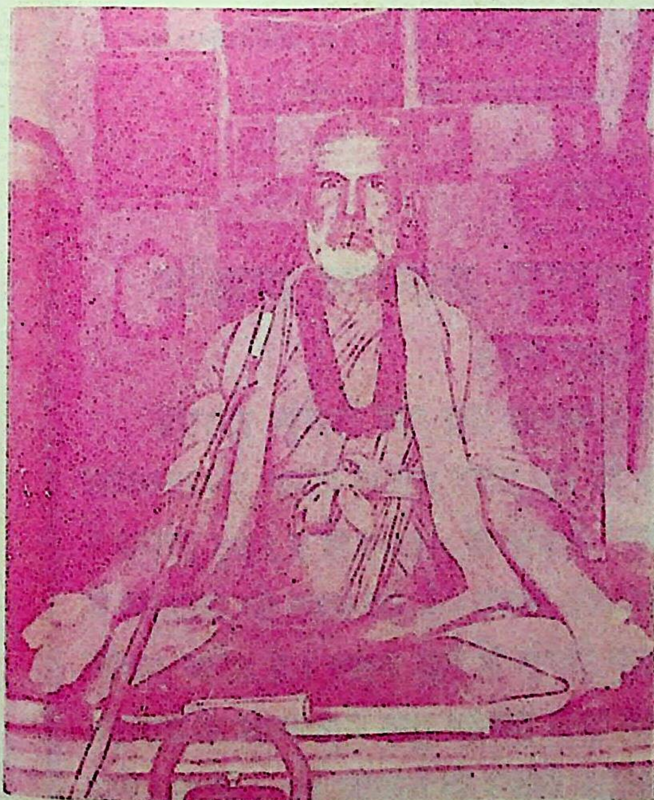


H.H. SRI ABHINAVA VIDHYATHEERTHA MAHASWAMIGAL



H.H. SRI BHARATHI THEERTHA MAHASWAMIGAL

JAGADGURU MAHA SAMSTHANAM SARADHA PEETHAM.
SRINGERI.



श्री श्री १०८ परिब्राजकाचार्य परम हंस दण्डी
स्वामी श्री पुरुषोत्तमआश्रम जी महाराज



श्री १००८ श्री मत्परम हँस परि ब्राजका चार्य
जगद् गुरू दण्डि स्वामी शिवाक्षम जी महाराज



३१.	श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (२)	१७३५ भाव भा० शु० १३	१७३९ भा० कृ० ६ ईश्वर	४
३२.	श्री नरसिंह भारती (८)	१७३९ ईश्वर फा० कृ० १	१८०४ ज्ये० शु० २ प्रमाथी	४२
३३.	श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्या नरसिंह भारती	१७८८ अक्षय्र आषाढ़ कृ० ६ १८६६ ई० सन् से	१८३४ आषाढ़ कृ० ६ १९१२ तक	४६
३४.	श्री चन्द्रशेखर भारती (३)	सन् १९१२ से १९५४	१९५४, सितम्बर २४ ब्रह्मीभूत	४२
३५.	श्री अभिनव विद्यातीर्थ	सन् १९३१ से १९५४	अक्तूबर १६ अभिषिक्त, १९८९ तक	३५
३६.	श्री भारती तीर्थ जी	सन् १२ नवम्बर, १९७४ में जगद् गुरु जी ने शृंगेरी में उत्तराधिकारी के रूप में निश्चित किया।	१९८९ में गद्दी पर बैठे।	

नोट—क्रमांक ३३ से ३४ तक "तुङ्गातीर के तपस्वी" ग्रन्थ से ईसवी सन् में। क्रमांक ३५-३६ का The greatness of Sringeri से लिया गया।

प्रथमः अध्यायः

दक्षिण आम्नाय, शारदा शृंगेरी मठ की गुरु परम्परा
(सन् १७०६ से ४१ तक)

शारदा शृंगेरी मठ का क्रमबद्ध इतिहास—इस मठ के महास्वामी श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती द्वितीय जगद् गुरु जी की आज्ञा से द्राविड़ श्री काशी लक्ष्मण शास्त्री जी ने सम्वत् १६९२ से १७३५ के बीच में "गुरुवंश काव्यम्" की रचना की तथा इसकी संस्कृत में व्याख्या भी स्वयं की है। इसके आरम्भ के तीन सर्गों में भगवान् आद्य शंकराचार्य का जीवन चरित्र है। चतुर्थ सर्ग से शृंगेरी मठ की परम्परा आरम्भ होती है। शृंगेरी के प्रथम आचार्य के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद पाया जाता है। द्वारका शारदा मठ की परम्परानुसार तथा इसी मठ के २८वें आचार्य श्री स्वामी नरसिंह आश्रम जी महाराज की खोज के अनुसार लिखे हुये श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम जी की पुस्तिका 'विमर्श' से तथा सर्वजित् राजा को प्राप्त हुई

'श्री शंकराचार्य समय' नामक ताम्रशासन तथा पुस्तक में आचार्य के जन्म से लेकर तिरोधान पर्यन्त पूरा तिथि पत्र दिया है। उनके अनुसार एवं विमर्श में दिये हुये सुधन्वा के ताम्र शासनानुसार श्री शंकराचार्य जी ने पूर्व में पुरी गोवर्द्धन मठ में पद्मपादाचार्य जी को। दक्षिण में (शारदा शृंगेरी में) महर्षि शृंगी ऋषि के समान ही तपस्वी त्यागी बीतराग सिद्ध हस्तामलकाचार्य को नियुक्त किया। पश्चिम शारदा द्वारका मठ में श्री सुरेश्वराचार्य जी को तथा उत्तर ज्योतिर्मठ में त्रोटकाचार्य जी को नियुक्त किया। अथवा धुरन्धर विद्वान् होने के कारण क्रमानुसार शृंगेरी, शारदा, द्वारका शारदा तथा काम कोटि शारदा तीनों मठों में कुछ काल रहने के बाद अपने उत्तराधिकारियों को बिठा दिया हो।

परन्तु शृंगेरी की परम्परा "गुरुवंश काव्यानुसार" आचार्य ने तुंगभद्रा नदी तट पर शारदा देवी की स्थापना कर सुरेश्वराचार्य जी का अभिषेक किया। कुछ विद्वान् मण्डन मिश्र, सुरेश्वराचार्य तथा विश्वरूपाचार्य तथा वार्तिककार इनको भिन्न-भिन्न मानते हैं। परन्तु "गुरुवंश काव्यम्" 'माधवीय दिग्विजय' तथा अन्य अनेकों दिग्विजयों के अनुसार 'ब्रह्म सिद्धि' नामक ग्रन्थकर्त्ता मण्डन से अभिन्न कुमारिल शिष्य मण्डन को मानते हैं। परन्तु यह दोनों सर्वथा भिन्न हैं। मण्डन मिश्र का संन्यास का नाम 'सुरेश्वराचार्य' तथा 'विश्वरूपाचार्य' हुआ। इन्होंने आचार्य पाद के वृहदारण्यक उपनिषद् तथा तैत्तिरीयोपनिषद् के भाष्यों पर वार्तिक लिखा। इसलिये इन्हें वार्तिककार भी कहते हैं। दोनों नामों की व्याख्या करते हुये इसी ग्रन्थ के चतुर्थ सर्ग के दूसरे, तीसरे, चौथे श्लोकों में लिखा है।

सुमानसोल्लास कृते विनिर्ममे, समानसोल्लास-मुखाबहूः कृतीः।
सुरेश्वराचार्यसमानतां ततः, सुरेश्वराचार्य यतीश्वरो दधे॥२॥
परात्मनः शास्त्रग विश्वरूपतामबोधयद्बोध्य निबोधको मुहुः।
मनीषिलोकान् सुमनीषितां ततो, नाम्नापि सम्प्राप स विश्वरूपताम्॥३॥
वभौ सदानन्दनवान् शतक्रतुर्महीसुरेशः सुरभिश्रिया युतः।
मनोहर श्रीकरकल्प भूरुहः सहस्रदृष्टिः सुचिरं सुरेन्द्रवत्॥४॥

देवगुरु बृहस्पति ने जिस प्रकार अनेकों कल्याणकारी शास्त्रों की रचना करके देवताओं के मुख को प्रफुल्लित किया था। वैसे ही यतीश्वर सुरेश्वराचार्य जी ने अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों की रचना करके जीव को परमानन्द की प्राप्ति कराकर अपने "सुरेश्वराचार्य" नाम को सार्थक किया।

विश्वरूप—अद्वैत वेदान्त में वर्णित जगत् की विश्वरूपता का पुनः पुनः बोध कराने वाले मननशील मनीषियों को श्रवण, मनन, निदिध्यासन सहित ब्रह्म साक्षात्कार कराने के कारण 'विश्वरूप' नाम को प्राप्त हुये।

जैसे देवराज इन्द्र स्वर्ग के देवताओं को कामधेनु तथा कल्प वृक्ष द्वारा सदैव आनन्दित करते हैं। वैसे ही पृथ्वी पर सुरेश्वराचार्य मन को हरण करने वाली कामधेनु तथा मोक्ष रूपी परम पुरुषार्थ देने वाले कल्प वृक्ष के समान जीव ब्रह्मात्म विज्ञान द्वारा परमानन्द की प्राप्ति कराते हैं।

उनके शिष्य **श्री बोधघनाचार्य**[५६७] हुये। इन्होंने शृंगेरी क्षेत्र में विद्यमान प्राचीन विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया। श्री प्रकाशात्म यतीन्द्र द्वारा प्रणीत विवरण प्रमेय के अनुसार 'तत्वशुद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना इन्होंने की है। इनका दूसरा नाम ज्ञानघनाचार्य भी है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार इनका नाम "सर्वज्ञात्ममुनि" भी था। इन्होंने भगवत् पाद शंकर के ब्रह्मसूत्र भाष्य का 'संक्षेप शारीरिक भाष्यम्' लिखा है। द्वारका शारदा मठ की परम्परानुसार यह इस मठ के शंकराचार्य रहे। कामकोटि की परम्परानुसार आप वहां के प्रथम आचार्य हुये। इनके शिष्य **ज्ञानघनाचार्य**[५६८], ज्ञान उत्तमाचार्य,[५६९] गिर्याचार्य हुये। गिर्याचार्य वादी रूपी हाथियों के लिये मृगराज के समान थे। आपका जीवन तीर्थ के समान पवित्र होने के कारण "तीर्थ" कहा गया। इनके शिष्य **सिंह गिर्याचार्य**[५७०] हुये। इन्होंने दिग्विजय की। उनके शिष्य **ईश्वर**[५७१] तीर्थ हुये। इनके शिष्य **नृसिंह**[५७२] तीर्थ हुये। इनके शिष्य स्वामी **विद्यातीर्थ**[५७३] जी हुये।

अभिनव स्वामी विद्याशंकर तीर्थ जी महाराज
(कुम्भकोणम् की परम्परानुसार)

इनका जन्म चिदम्बरम् में हुआ था। तीन वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो गयी। कामकोटि की परम्परानुसार इनका जन्म सन् ७८८ तथा ब्रह्मीभाव ८४० ई. में हुआ। इन्होंने कश्मीर के सर्वज्ञ सिंहासन पर आरोहण किया। इनकी जीवनी आद्य शंकर से बहुत अंशों में मिलती है। कामकोटि के संन्यासी इनको अपनी पीठ का आचार्य मानते हैं।

'गुरुवंश काव्यम्' में इनका जीवन वृत्त इस प्रकार से है। आद्य शंकर के समान दिग्विजय में इनके साथ हज़ारों ब्राह्मण चलते थे। इनके दोनों चरणों में अवतार सूचक छत्र, वज्र, ध्वज

आदि के चिह्न विद्यमान थे। इन्द्र के समान प्रतापी राजा इनके शिष्य हुये। इन्होंने शारदा भगवती का भव्य मन्दिर मठ में निर्माण कराया। **सिंहगिरि**[५७४] नाम के मुनीश्वर जो यतियों से सेवित थे, इनकी गुरुवत् सेवा करते थे। इनकी दो ब्राह्मण बालक उसी प्रकार सेवा करते थे जिस प्रकार कृष्ण बलराम ने गुरु संदीपनि की सेवा की। आप ब्रह्म का चिन्तन करते हुये समाधि में तल्लीन हो जाते थे। प्रजा को वर्णाश्रम धर्म का उपदेश करते थे। बालक शिष्यों की सेवा तथा स्तुति से प्रसन्न होकर इन्होंने कहा, कि तुम क्या चाहते हो। तब इनमें से एक बालक ने कहा कि हे महात्मन् ! मुझे संन्यास की दीक्षा दीजिए। तब संन्यास दिया और उसके सद्गुणों से प्रसन्न होकर अपनी विद्या से प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित करने के कारण भारती कृष्ण[६७५] तीर्थ नाम रखा और आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। भारती कृष्ण तीर्थ जी ने भगवान् वेद व्यास जी के 'ब्रह्मसूत्र' के शांकर भाष्य के माध्यम से गद्य तथा पद्यों में "वैय्यासिक न्यायमाला" नामक ग्रन्थ की रचना की तथा व्यास जी के शिष्य महर्षि जैमिनि जी के बारह अध्याय वाले 'कर्म मीमांसा' का निर्णय करने के उद्देश्य से 'जैमिनि न्यायमाला' ग्रन्थ लिखा। यह दोनों ग्रन्थ आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित हैं।

कालान्तर में इनकी शरण में **मायण के पुत्र तथा सायण के भाई 'माधव'** नाम से विख्यात विरक्त ब्राह्मण आये। इन्होंने उनका योग पट्ट **'विद्यारण्य स्वामी'** रखा। इनका विस्तृत जीवन चरित्र माधवीय शंकर दिग्विजय के आधार पर लिखा जायेगा।

(शांकर दिग्विजय की द्वितीयावृत्ति की प्रस्तावना के लेखक "रानाडे उपनाम गोविन्द तनूजन्मा पुरुषोत्तम शर्मा" आनन्दाश्रम पूना से।)

अनुसन्धानात्मक श्री विद्यारण्य स्वामी जी का जीवन वृत्त

पं. प्रवर श्री माधवाचार्य जी का जन्म तुंगभद्रा नदी के तट पर किष्किन्धा के समीप 'हम्पी' क्षेत्र में 'अनागोन्दी' ग्राम वासी पिता मायण तथा माता श्रीमती के गर्भ से हुआ। पराशर स्मृति की व्याख्या में माधव ने अपना परिचय इस प्रकार से लिखा है—

श्रीमती जननी यस्य सुकीर्तिर्मायणः पिता।
सायणो, भोगनाथश्च मनोबुद्धिः सहोदरौ॥
यस्य बौधायनं सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी।
भारद्वाजं कुलं यस्य सर्वज्ञं स हि माधवः॥

जिनकी माता श्रीमती तथा पिता परम कीर्तिमान मायण थे। मन बुद्धि के समान सायण और भोगनाथ दो भाई थे। बौधायन सूत्र, यजुर्वेदीय शाखा तथा भारद्वाज गोत्र वाले सर्वज्ञ माधव थे। इनका बचपन निर्धनता में बीता। तीनों भाई स्वाभिमानी थे। अत्यन्त अल्प आयु में ही इन्होंने व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदि सभी दर्शनों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। तीनों के कुछ वर्ष अत्यन्त दरिद्रता में बीते। जन श्रुति के अनुसार इन्होंने दरिद्रता से दुःखी होकर अपनी कुल देवी भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर में जाकर चिरकाल तक आराधना की। इनकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर इनकी दरिद्रता दूर की। कुछ विद्वानों के मतानुसार इन्होंने गायत्री के चार पुरश्चरण किये, किन्तु गायत्री का प्रत्यक्ष नहीं हुआ। अन्त में संन्यास लेने पर गायत्री प्रकट हुईं और वर मांगने के लिये कहा। इन्होंने कहा, मैंने धन प्राप्ति के लिये आपका स्मरण किया था। संन्यास में धन की इच्छा नहीं रही। देवी ने प्रसन्न होकर कहा, तुम्हें मैं ब्रह्म विद्या रूपी धन देती हूं। ऐसा कहकर अपना वरदहस्त इनके ऊपर रखा। ये विद्या में अरण्यवत् पारंगत थे। अतः इनका नाम "स्वामी विद्यारण्य" हुआ।

परन्तु माधवीय दिग्विजय की प्रस्ताविकानुसार भगवती ने कहा इस जन्म में तुम्हें भौतिक धन नहीं प्राप्त होगा। ब्रह्म विद्या रूपी धन प्राप्त करोगे। भगवती का वचन सुनकर माधव खिन्न होकर बोले, यदि मैं धनवान न हो पाऊं तो—"**मदीयसाहाय्येनापरे धनवन्तो भवेयुः**" मेरी सहायता से दूसरे लोग धनवान् हों। इस प्रकार वरदान प्राप्त कर जम्बुकेश्वरम् में जाकर नष्ट हुये जम्बुकेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार करने के लिये माधव, प्रथम हरिहर के पास पहुंचे तथा अपने भगीरथ प्रयास से इन्होंने उन्हें विजयपुर के राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। केवल प्रतिष्ठित ही नहीं किया, अपितु शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान समृद्धि युक्त किया। हरिहर का सगा भाई बुक्क तथा बुक्क का पुत्र द्वितीय हरिहर हुआ। पुनः द्वितीय हरिहर का पुत्र द्वितीय बुक्क हुआ। इन चारों को समृद्ध किया तथा स्वयं अमात्य पद पर आसीन हुये।

इन्द्रस्याङ्गिरसो, नलस्य सुमतिः शैव्यस्य मेधातिथिः।
धौम्यो धर्मसुतस्य वैन्य नृपते स्वौजा, निमे गौतमिः॥
प्रत्यग्दृष्टिररुन्धती सहचरो रामस्य पुण्यात्मनः।
यद्वत्तस्य विभोरभूत, कुल गुरु मंत्री तथा माधवः[५७३] **॥**

जैसे इन्द्र के गुरु एवं मन्त्री वृहस्पति, नल के सुमति, शैव्य के मेधातिथि युधिष्ठिर के धौम्य ऋषि, पृथु के स्वौजा, निमि के शतानन्द, पुण्यात्मा राम के ब्रह्मात्म दृष्टि अरुन्धति पति वशिष्ठ थे। वैसे ही चारों के गुरु एवं मन्त्री माधव हुये।

बुक्क नरेश के सम्बन्ध में आया है कि वे सत्यवादी, गुणवान् चारों वेदों के ज्ञाता, दृढ़ निश्चयी, सेना कोषादि राज्य के सातों अंगों से युक्त, नव निधियों से युक्त महाराज बुक्क थे। श्री माधवाचार्य जी के श्री विद्या तीर्थ (अभिनव श्री विद्याशंकर तीर्थ) श्री भारती[५७९] तीर्थ तथा श्री कण्ठ[५८०] यह तीन गुरु थे। **इन तीनों के अतिरिक्त स्वामी शंकरानन्द जी महाराज जिन्होंने आत्म पुराण, भगवद् गीता की तात्पर्य बोधिनी टीका, उपनिषदों तथा ब्रह्म सूत्र पर दीपिका टीका की, इनके गुरु थे। पंचदशी के मंगलाचरण में इन्होंने "नमः श्री शंकरानन्द गुरुपादाम्बुजन्मने"। इत्यादि श्लोक से श्री शंकरानन्द की वन्दना की है। इससे श्री शंकरानन्द जी इनके गुरु सिद्ध होते हैं।** इसका भी संकेत माधवाचार्य जी ने पराशर स्मृति की व्याख्या के दूसरे श्लोक में किया है। माधवाचार्य जी के अनुज सायणाचार्य भी इन्हीं के समान दर्शन शास्त्र रूपी महासागर के मन्थानी के समान मन्थन करने में महापण्डित थे।

सायणाचार्य जी ने माधवाचार्य की व्याकरण की धातु वृत्ति पर भी व्याख्या की।

इनके अनुज श्री भोगनाथ भी महाविद्वान् थे। इन दोनों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये इन्होंने सायण तथा भोगनाथ को मन और बुद्धि कहा है—**सायणो भोगनाथश्च मनो बुद्धि सहोदरौ।**

इनमें मायण के तीसरे पुत्र भोगनाथ थे उन्होंने बाल्यकाल में ही पूर्व जन्म के संस्कारों की विशेषता से स्वामी 'अभिनव विद्यातीर्थ' जी महाराज से संन्यास लिया। इनका योगपट्ट भारती तीर्थ हुआ। श्री माधवाचार्य तथा सायणाचार्य ने अनेकों निबन्धों की रचना की तथा अनेकों भाष्य लिखे। इन ग्रन्थों में सायणाचार्य तथा माधवाचार्य का कौन सा ग्रन्थ है। यह कहना कठिन हो जाता है। जैसे दूध में मिले हुये जल को हंस के अतिरिक्त कोई अलग-अलग नहीं कर सकता इसी प्रकार दोनों के ग्रन्थों का निर्णय करना कठिन है। फिर भी माधवीय 'धातु

वृत्ति' की रचना माधवाचार्य की ही है। ऐसा प्रसिद्ध है। इनके ग्रन्थ के अन्त में लिखा है 'इति पू. सायण विरचितायां माधवीयायां धातु वृत्तौ शव्विकरणाभ्वादयः इति।।' अर्थात् पूर्व सायण द्वारा रचित माधवीय व्याख्या है। अथवा अगले प्रसंग से स्पष्ट होता है कि अपने बड़े भाई माधव की आज्ञा से इन्होंने मौलिक ग्रन्थों तथा वेदादि के भाष्यों की रचना की। तथा संशोधन भी इन्होंने ही किया।

इनमें से (तीन में से) कितने माधवाचार्य हैं। इनके भतीजे तथा मन्त्री कौन हैं। इनके सम्बन्ध में नीचे श्लोक दिया जाता है।

तेन मायण-पुत्रेण सायणेन मनीषिणा।
आख्यया माधवीयेयं धातु वृत्ति र्विरच्यते॥

उन्हीं मायण के पुत्र विद्वान् सायण द्वारा माधवीय धातु की रचना की गई है। इस संदिग्ध श्लोक से भी दोनों में इस धातु वृत्ति का रचयिता कौन है, यह स्पष्ट नहीं होता। इसी रीति का अनुसरण वेदभाष्यकार सायणाचार्य जी ने ऋग्वेद संहिता की तैत्तिरीय संहिता, ऐतरेय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण भाग के भाष्य के उपोद्धात में किया है।

कृपालुर्माधवाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः। कृपालु माधवाचार्य वेद का भाष्य करने को उद्यत हुये। इस श्लोक से उपर्युक्त ग्रन्थों के भाष्यकार माधवाचार्य सिद्ध होते हैं। इन्हीं ग्रन्थों की समाप्ति पर—**इति सायणाचार्य विरचिते माधवीये इत्यादि।** ऊपर के आधे श्लोक में सायण का नाम नहीं है तथा पुष्पिका के आरम्भ में सायण का नाम आया है। ऐतरेय, तैत्तिरीय, आरण्यक के दोनों भाष्यों में **कृपालुर्माधवाचार्य, इस स्थान पर "कृपालुः सायणाचार्यः" यह विशेषता है।** दोनों के अन्त में पुष्पिकाओं में—**इति सायणाचार्य विरचिते माधवीये** पूर्ववत् ही है। इसके आरम्भ में माधव का नाम नहीं है। अथर्ववेद संहिता के भाष्य के उपोद्धात में **कृपालु सायणाचार्य** इतना ही है। तथा इसके अन्त में केवल **सायणाचार्य ही** का नाम है माधव का नहीं। इन विसंगतियों (विरोधी वचनों) से तैत्तिरीय आदि भाष्यों के कर्त्ता के सम्बन्ध में संदेह होता है। इस संदेह की निवृत्ति निम्नलिखित श्लोक से हो जाती है।

ततः कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्क महीपतिः।
अन्वशान्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥

स प्राह नृपतिं राजन् ! सायणार्यो ममानुजः ।
सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम् ॥
इत्युक्तो माधवार्येण वीरबुक्क महीपतिः ।
अन्वशात् सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥

तब संकेत द्वारा वुक्क नरेश ने वेदों पर भाष्य करने के लिये माधवाचार्य जी से प्रार्थना की । माधवाचार्य जी ने राजा से कहा—हे राजन् ! मेरा छोटा भाई आर्य सायण सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान रखता है । इनको ही इस कार्य में नियुक्त कीजिए । माधवाचार्य के इन वचनों को सुनकर वीर वुक्क नरेश ने सायणाचार्य जी को वेदार्थ प्रकाशन में लगाया ।

ऊपर के वचनों से सिद्ध होता है कि सायणाचार्य ने ही वेदों का भाष्य किया है । तब शंका होती है कि यदि चारों वेदों के भाष्यकार सायणाचार्य ही हैं, तो ऋग्वेद के उपोद्धात में "कृपालुर्माधवाचार्यो" 'वेदार्थं वक्तुमुद्यतः' इस श्लोक से सायण भाष्यकार सिद्ध नहीं होते । कुछ पंक्तियों से सिद्ध भी होते हैं । अतः समाधान सन्तोषजनक नहीं है । अन्तिम पंक्ति में भी माधवीये वेदार्थ प्रकाशन से सिद्ध नहीं होता ।

समाधान—ठीक है, सायणाचार्य द्वारा रचित चारों वेदों के भाष्यों के सूक्ष्म प्रेक्षक संशोधन आदि करके माधव ने इनकी सहायता की थी । तथा महाराज वुक्क ने भी वेद भाष्य करने की प्रार्थना माधवाचार्य जी से ही की थी । तब माधव ने सायण की प्रशंसा की और वुक्क ने सायण को भाष्य करने में नियुक्त किया । सायण के प्रेरक तथा सहायक होने के कारण भी सायण जी ने अपने द्वारा रचित भाष्य में कृतज्ञता ज्ञापन के लिये सम्पूर्ण वेदों के भाष्यों में 'कृपालुर्माधवाचार्यो' इत्यादि लिखा है ।

श्री भोगनाथ

श्री भोगनाथ जी ने संन्यास के अनन्तर पूर्वोत्तर मीमांसा की शंकाओं का समाधान करते हुये जैमिनि जी के 'पूर्व मीमांसा' के भाष्यकार शबरस्वामी के भाष्य का विश्लेषण करते हुये "जैमिनीय न्याय माला" नामक ग्रन्थ लिखा । तथा उत्तर मीमांसा में "ब्रह्मसूत्र" पर रचे हुये भी शंकराचार्य जी के शारीरिक भाष्य के अनुसार "वैय्यासिक न्यायमाला" नामक ग्रन्थ भारती तीर्थ नाम से लिखा ।

श्री माधवाचार्य जी ने संन्यास से पूर्व 'सर्व दर्शन संग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा। यह धारणा भ्रम मूलक है। इस ग्रन्थ की रचना माधव (मायण पुत्र) ने नहीं की। इसके रचयिता सायण पुत्र **माधव**, अर्थात् पूर्व माधव के भतीजे हैं। 'सर्व दर्शन' के आरम्भ में श्लोक आता है—

श्रीमत् सायण दुग्धाब्धि कौस्तुभेन महौजसा।
क्रियते माधवार्येण सर्वदर्शन-संग्रहः॥

जैसे क्षीर सागर के मन्थन से कौस्तुभ मणि उत्पन्न हुई वैसे ही सायण रूप दुग्ध सागर से उत्पन्न हुये महातेजस्वी कौस्तुभ मणि के समान आर्य माधव के द्वारा 'सर्व दर्शन संग्रह' की रचना की जाती है।

इस श्लोक से भी मायण पुत्र माधव से सायणपुत्र माधव भिन्न सिद्ध होते हैं।

दूसरे माधव के गुरु

इसी ग्रन्थ के उपोद्घात में आधे श्लोक में अपने गुरुदेव की स्तुति की है। **श्री शार्ङ्गपाणितनयं निखिलागमज्ञं सर्वज्ञ विष्णु गुरुमन्वहमाश्रयेऽहम्॥**

श्री शार्ङ्ग पाणि के पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रज्ञ, सर्वज्ञ **विष्णु** गुरु का प्रतिदिन मैं आश्रय ग्रहण करता हूं। मायण पुत्र माधवाचार्य जी ने किसी भी निबन्ध ग्रन्थ की प्रस्तावना में श्री शार्ङ्ग पाणि के पुत्र विष्णु को अपना गुरु नहीं लिखा। इस प्रमाण से भी यह दूसरे माधव सिद्ध होते हैं।

यह बात भी विचारणीय है कि माधवाचार्य (प्रथम) ने वुक्क राज के वर्णन के आरम्भ में अपने गुरु विद्यातीर्थ जी को प्रणाम किया है। इस से 'सर्वदर्शन संग्रह' कर्त्ता माधव से यह भिन्न सिद्ध होते हैं।

तृतीय माधव

स्कन्ध पुराण में स्थित 'सूत संहिता' ग्रन्थ की 'तात्पर्य दीपिका' नाम्नी व्याख्या के रचयिता भी श्री माधवाचार्य हैं। यह टीका दोनों माधवाचार्यों से भिन्न तृतीय माधव (मन्त्री) की है। क्योंकि इस टीका के आरम्भ में लिखा है कि—

वेद शास्त्र प्रतिष्ठात्रा श्री मन्माधव मन्त्रिणा।
तात्पर्य दीपिका सूतसंहितायाः विधीयते॥

इस माधव मंत्री का वर्णन ताम्र शासन आदि से भी सिद्ध होता है। इस ताम्र शासन में लिखा है कि, **"अयं माधव मन्त्री द्वितीय हरिहरस्य सेनानी पितास्य चावण्ड भट्टः, माता माचाम्बिका, गोत्रमांगिरसं, गुरुश्च क्रिया शक्तिरित्यादि।"** यह माधव मंत्री द्वितीय हरिहर के सेनापति, पिता अवण्डभट्ट, माता माचाम्बिका, गोत्र आंगिरस तथा गुरु क्रिया शक्ति थे। इन प्रमाणों से यह तीसरे माधव सिद्ध होते हैं।

सारांश

विजय नगर की राजधानी में उपर्युक्त प्रमाणों से एक ही समय के तीन माधव सिद्ध हुये। प्रथम माधव का ही संन्यास के बाद का नाम विद्यारण्य स्वामी हुआ। दूसरे सायण पुत्र माधव तथा तीसरे मंत्री माधव थे। तीनों ही विद्वान् तथा ग्रन्थकर्त्ता हुये। इन तीनों में से प्रथम माधवाचार्य की गुण गरिमा विख्यात है। नाम की सदृशता से विद्वानों ने तीनों को ही एक मान लिया। परन्तु इतिहास संशोधनकर्त्ताओं ने इस गुप्त इतिहास को अति परिश्रम करके प्राप्त किया।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मसूत्र सभाष्य आनन्दगिरि, भामती, रत्नप्रभा की प्रथम खण्ड की भूमिका से (—बैंकटेश्वर प्रैस)

श्री विद्यारण्य स्वामी जी का जीवन वृत्त

शृंगेरी की परम्परानुसार श्री स्वामी जी का जन्म वि. सं. १२१७ में हुआ था तथा ३६ वर्ष की आयु में शृंगेरी मठ के आचार्य हुये (वि. सं. १२५३ में) प्रजापति सम्वत् कार्तिक शुक्ल सप्तमी को आसीन हुये) तथा वि. सं. १३०८ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को ब्रह्मीभूत हुये। ५५ वर्ष तक सिंहासनारूढ़ रहे। इस प्रकार ९१ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा। 'देव्यपराधक्षमापन' स्तोत्र की रचना विद्यारण्य स्वामी जी की है। यद्यपि यह स्तोत्र आद्य शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध है। फिर भी **"परित्यक्ता देवाः विविधविधसेवाकुलतया। मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि"** विविध देवताओं की विधिपूर्वक की गई सेवा से

व्याकुल होकर, देवताओं की सेवा का त्याग करके मैंने इस समय पचासी वर्ष की आयु बिता दी है चूंकि आद्य शंकर ३२ वर्ष की आयु में ही ब्रह्मीभूत हो गये थे। अतः यह उनकी रचना नहीं हो सकती। विद्यारण्य स्वामी जी ने ९१ वर्ष में शरीर छोड़ा। इसलिये यह उनकी ही रचना है। संन्यास के पूर्व के ग्रन्थों में श्री माधवाचार्य जी का नाम आता है। उनमें से 'श्री मच्छंकर दिग्विजय' नामक ग्रन्थ भी है। इस पर दत्तवंशावतंस पंजाब प्रान्त वासी ने रावलपिंडी में 'श्री मद्दण्डी स्वामी गोपाल तीर्थ जी' की आज्ञा से धनपति ने 'डिम् डिम्' नामकी व्याख्या की। इनके विषय में इनके जीवन चरित्र के प्रसंग में लिखा जाएगा। इसी पर दूसरी टीका 'लक्ष्मी अधिराज' की "अद्वैत राज लक्ष्मी" व्याख्या भी है। यह ग्रन्थ आनन्दाश्रम पूना से सन् १९३२ ई. में प्रकाशित हुआ है। जिन ग्रन्थों के अन्त में विद्यारण्य स्वामी आया है। वे संन्यास के बाद के लिखे हुये हैं।

इन्हीं ग्रन्थों में से 'पंचदशी' नाम का सुप्रसिद्ध वेदान्त का ग्रन्थ है। परन्तु शोध से पता लगा कि आरम्भ के छः प्रकरण विद्यारण्य स्वामी की रचना है और अन्तिम नौ प्रकरणों की रचना श्री भारती तीर्थ जी ने की है। इस ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध संस्कृत टीकाकार श्री रामकृष्ण अच्युत राय हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में टीकाकार रामकृष्ण प्रत्येक प्रकरण की पुष्पिका में **इति श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री भारती तीर्थ, विद्यारण्यमुनिवर्य किंकरेण श्री राम कृष्णाख्येन विदुषा विरचिता"** उल्लेख मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि श्री राम-कृष्ण दोनों के शिष्य थे। पंचदशी दोनों की रचना सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ में टीकाकार ने पहले प्रकरण से छठे तक के मंगलाचरण में **"नत्वा श्री भारतीतीर्थ-विद्यारण्य मुनीश्वरौ क्रियते"** के आगे प्रकरण का नाम लिख कर व्याख्यानं इत्यादि का प्रयोग करते हैं। इन छःहों प्रकरणों में टीकाकार का एक ही श्लोक में मंगल है। परन्तु सातवें में **"अखण्डानन्द रूपाय"** आदि दो श्लोकों के बाद **"नत्वा श्री भारती तीर्थ"** इत्यादि तीन श्लोकों में मंगलाचरण करते हैं। आठवें, नवें, दशवें तथा ग्यारहवें प्रकरणों में एक ही श्लोक में है। फिर बारहवें से लेकर पन्द्रहवें तक टीकाकार का मंगलाचरण नहीं है। इन बातों से भी सिद्ध होता है कि अन्य ग्रन्थों के समान पंचदशी में भी दोनों के नाम होने से दोनों की ही रचना सिद्ध होती है।

पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि इन्होंने अति वृद्धावस्था में 'पंचदशी' लिखनी आरम्भ की। आरम्भ के छः प्रकरण इन्होंने लिखे। बाद में इनके नेत्र आदि इन्द्रियां शिथिल हो गईं। तब इन्होंने अपने अनुज श्री स्वामी भारती तीर्थ जी महाराज को लिखने की आज्ञा दी। इन्होंने सातवें प्रकरण से पन्द्रहवें तक की रचना की। ग्रन्थ सम्पूर्ण होने पर संशोधन विद्यारण्य स्वामी जी ने किया। इन प्रमाणों से 'पंचदशी' दोनों की रचना सिद्ध होती है।

शृंगेरी की गुरु परम्परा में श्री सुरेश्वराचार्य तथा विद्यारण्य स्वामी जी दोनों गृहस्थ से संन्यासी हुये। यह उल्लेख मिलता है। परन्तु 'वाणी विलास' प्रेस 'श्री रंगम्' से प्रकाशित १९६७ ई. की टिप्पणी में पृ. सं. ४२ में 'गुरुवंश काव्यम्' में लिखा है कि माधवाचार्य तथा इनके भाई भोगनाथ दोनों ने महावाक्य सहित श्री महास्वामी विद्यातीर्थ जी से बाल ब्रह्मचर्य से ही संन्यास लिया। यह दोनों ब्रह्मचारी थे, गृहस्थ नहीं।

एक बार, महाराज हरिहर जी को रेवणसिद्धि नामक योगी ने दर्शन देकर कहा—हे राजन्! श्री विद्यारण्य स्वामी जी की कृपा से आप राजसिंहासन पर बैठोगे। शृंगेरी के श्रीमठ में विद्यमान चन्द्रमौलीश्वर लिंग का दर्शन करो। अर्थात् शृंगेरी मठ के शिष्य हो जावो। हरिहर से लेकर तैंतीस पीढ़ी तक के राजा पृथ्वी का पालन करेंगे। चौंतीसवी पीढ़ी में वीर वसन्त नामक राजा होगा।

सन् १३३६ ई. के 'धातृ' नाम के वर्ष वैशाख शुक्ल सप्तमी रविवार मघा नक्षत्र में विजय नगरी का निर्माण हुआ। महाराज हरिहर ने अपनी पूरी सम्पत्ति विद्यारण्य स्वामी जी को समर्पित की। इसलिये विद्यारण्य के समय से लेकर शृंगेरी मठ के समस्त जगद् गुरु शंकराचार्य "कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठापनाचार्य" कहे जाते हैं। हरिहर महाराज का अभिषेक करके तथा उपदेश देकर विद्यारण्य स्वामी तीर्थ यात्रा करने के लिये वाराणसी, केदार आदि क्षेत्रों में चले गये। इस प्रमाण से विद्यारण्य अथवा माधव इस राजा के मंत्री हुये, यह बात सिद्ध नहीं होती। वाराणसी में विद्यारण्य स्वामी जी ने दो मठों का निर्माण किया। आज भी काशी में विराजमान शृंगेरी शाखा के आचार्यों से सिद्ध होता है। महाराज बुक्क के माधव नाम के मंत्री पश्चिम मण्डल के राजा के गुरु आंगिरस गोत्रोत्पन्न थे तथा चावुण्ड और माच्चाम्बिका के पुत्र थे।

श्री भारती कृष्ण तीर्थ स्वामी सन् १३८० ई. भाद्रपद शुक्ल द्वादशी, अगस्त १३ को ब्रह्मीभूत हुये। इनके ब्रह्मीभूत होने के पश्चात् मन्दिर का निर्माण किया। १३८० ई. में विद्यारण्य स्वामी जी ने हरिहर महाराज का पट्टाभिषेक करवाया। भारती कृष्ण तीर्थ जी ने शिल्पकारों

से अपने गुरु जी के मन्दिर का निर्माण कराया। इस मन्दिर के चारों ओर ऋषियों, देवताओं, हाथियों तथा सिंहादिकों के चित्र अंकित हैं। बीच के ऊपरी भाग में गणेश, वाणी, शिव तथा लक्ष्मी की मूर्तियां विराजमान हैं। दीवारों पर चारों ओर सूर्यादि नव ग्रह, चित्रगुप्त, लक्ष्मी, नृसिंह तथा दक्षिणा मूर्ति, शिव मन्दिर में परिवार सहित शंकर जी विराजमान हैं।

जिस समय विद्यारण्य स्वामी जी शृंगेरी के सिंहासन पर विराजमान हुये। तब इन पर छत्र चामर डुलने वाला था। हाथी पर इनकी शोभा यात्रा निकलने वाली थी। किन्तु धर्मशास्त्रानुसार इन्होंने मना कर दिया। यति के लिये याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है **"यानारूढं यतिं दृष्ट्वा सचैल स्नानमाचरेत्।"** **अर्थात् यति को घोड़े या किसी जानदार सवारी पर चढ़ा देखकर ब्रह्मचारी अथवा गृहस्थ को दर्शन करना भी निषिद्ध है। उस दोष की निवृत्ति के लिये वस्त्र सहित स्नान करें।** इसका परिहार रेणुका तन्त्र के (पृ. सं. ९/९९/१०४) तक इस प्रकार लिखा है। तब लक्ष्मी तथा सरस्वती ने आकाशवाणी रूप से कहा—

"छत्र-चामरमुख्यानि विरुदादीनि धारय।
देविरूपेण चात्मानं सदा भावय नान्यथा॥१॥
त्वया धृतानि सर्वाणि देव्या एवेति भावय।
मण्डलाधिप चिह्नानि धारयास्मन्मतानुगः॥२॥
निषिद्धान्यपि सर्वाणि सामान्ययतिगान्यपि।
एवं त्वया प्रकर्त्तव्यं नात्रकार्या विचारणा॥३॥
गजेन्द्रारोहमात्रन्तु यतेः ! कुरु मदाज्ञया।
यानादीनामधिक्षेपो न कर्त्तव्यः कदाचन॥४॥
गजेन्द्रारोहणे हेतुः वर्त्तते वक्ष्यते शृणु।
मूर्द्धाभिषिक्तपुरुषः श्रेष्ठाय यतिशेखर॥५॥
सिंहासनवते ब्रह्मा सृष्ट्वान् दन्ति शेखरम्।
मूर्द्धाभिषिक्ता स्त्रिविधास्तथा सिंहासनं त्रिधा॥६॥
राज्यसिंहासनं चैव भाष्यसिंहासनं तथा।
मंत्रसिंहासनं चैव त्रिविधं निर्मितं पुरा॥७॥
अतो मूर्द्धाभिषिक्तस्त्वं गजारोहणमाचर।"

हे यते !आप अपने को देवी रूप की सदैव भावना करते हुये, छत्र चामर आदि राजोपचार चिह्नों को धारण करो। अन्यथा भावना न करो। तुम्हारे द्वारा धारण की गई उक्त वस्तुयें देवी के द्वारा धारण की गयी हैं, ऐसी भावना करो। अतः मेरी आज्ञा से उक्त चिह्नों को स्वीकार करो। सामान्य यतियों के लिये इनका निषेध है। अतः आपको बिना विचार किये धारण करना कर्त्तव्य है। हे यते ! मेरी आज्ञा से तुम हाथी पर सवार हो। यति को हाथी आदि पर नहीं चढ़ना चाहिये। ऐसा मत सोचो। हाथी पर चढ़ने के कारणों को हम कहेंगे, सुनो। हे यति शिरोमणे ! मूर्द्धाभिषिक्त पुरुष श्रेष्ठ सिंहासनासीन के लिये ब्रह्मा जी ने हाथी को बनाया है। मूर्द्धाभिषिक्त सिंहासन तीन प्रकार का है। १. राज्य सिंहासन २. भाष्य सिंहासन ३. मन्त्र सिंहासन। तीन प्रकार का सिंहासन ब्रह्मा जी ने सृष्टि के आदि में रचा है। क्योंकि तुम मूर्द्धाभिषिक्त हो इसलिये तुम हाथी पर सवार हो।"

इन सबका विस्तृत विवेचन पीठाधीशों के विशेष धर्म के अन्तर्गत सत्ययुग खण्ड में दिया जा चुका है। 'पीठाधीश विशेष धर्म दर्पणः' नामक ग्रन्थ से। रचयिता—ब्रह्म विद्यालंकार, ब्रह्म श्री मुदि गोण्ड वैंकटराम शास्त्री।

विद्यारण्य स्वामी के भानजे

स्वामी जी के भानजे का नाम अहोबल था। इन्होंने तेलगू भाषा में संस्कृत का व्याकरण ग्रन्थ विस्तारपूर्वक लिखा है। उसमें "माधवीये धातु वृत्तौ" नाम आया है। (श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से)

विद्यारण्य स्वामी जी के ग्रन्थ

१. पराशर स्मृति व्याख्या २. जैमिनि न्यायमाला ३. वैय्यासिकन्यायमाला ४. काल माधव ५. विवरण प्रमेय संग्रहः ६. ब्रह्मविदाशीर्वाद पद्धतिः ७. जीवन्मुक्ति विवेकः ८. अनुभूति प्रकाशः ९. वृहदारण्यक वार्तिक सार १०. दशोपनिषद् दीपिका ११. अपरोक्षानुभूति की टीका १२. देव्यपराधक्षमापन आदि स्तोत्र हैं। १३. पंचदशी १४. माधवीय शांकर दिग्विजय।

श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुगे खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे, द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्री चन्द्रशेखर भारती आदिकों का जीवन चरित्र

श्री विद्यारण्य स्वामी जी ने शृंगेरी पर्वत के चारों शिखरों पर पूर्व आदि के क्रम से भी भैरव, दुर्गा, हनुमान तथा कालिका की मठ की रक्षा के लिये स्थापना की। श्री विद्यारण्य स्वामी के चरणों में अध्यात्मविद्या पढ़ने के लिये **श्री चन्द्रशेखर भारती** आये। थोड़े ही काल में इन्होंने योग तथा वेदान्तादि विषयों पर पूर्णाधिकार कर लिया। इनको अपने स्थान पर अभिषिक्त कर पम्पापुरी में विद्यारण्य स्वामी ब्रह्मीभूत हुये। वहीं पर इनकी समाधि एवं मूर्ति विद्यमान है। परन्तु वह स्थान शृंगेरी से दूर पड़ता है। इसलिये शृंगेरी में इनका नवीन मन्दिर निर्मित किया गया। श्री चन्द्रशेखर जी के शिष्य **श्री स्वामी नृसिंह भारती** हुये। यह नित्य प्रति गुरु आज्ञा प्राप्त करके परम गुरु श्री विद्यारण्य स्वामी जी का पूजन करने जाते थे। इनके शिष्य **श्री चन्द्रशेखर भारती (द्वितीय)** हुये। इन्हीं के समकालीन चक्रवर्त्ती सम्राट् विक्रम हुये। इस प्रसंग के सम्बन्ध में "गुरुवंश काव्यम्" के द्वितीय संस्करण के अष्टम सर्ग पृ. सं. ८०-८१ के श्लोकों ३८-४२ में लिखा है—

"नृसिंह भारतीन्द्रश्च गोकर्णेश दिदृक्षया।
गतो ज्येष्ठाभ्यनुज्ञातो हालाडिग्राममाययौ॥३८॥
मन्त्रविन्मन्त्रराजं तं सम्प्रतिष्ठाप्य तत्र सः।
चिरमध्यास्य चागत्य ज्यायसोऽनन्तरं वभौ॥३९॥
योगिराजे मुदा यस्मिन् योगराज्यं प्रशासति।
भक्तिमान् विक्रमाख्योऽभूच्चक्रवर्ती धुरन्धरः॥४०॥
समागत्य समीपेऽस्य योगभाजो महामुनेः।
योगार्थं नामनि स्वीये विक्रमी प्रत्यपद्यत॥४१॥
विमृशन् वेद भाष्यार्थान् वेंदान्तासक्त मानसः।
ख्यातो नृसिंह योगीन्द्रः सन्मार्गं समपीपलत्॥४२॥"

"गुरु की आज्ञा प्राप्त करके नृसिंह भारती जी महाराज गोकर्णेश के दर्शन की इच्छा से हालाडि नाम के गांव में गये। (इस श्लोक से यह भी सिद्ध होता है

कि उत्तर भारत में यह भ्रान्ति है कि जिला लखीमपुर में गोला गोकर्ण नाथ ही असली रावण द्वारा स्थापित गोकर्णनाथ हैं। परन्तु शिव पुराणादि अनेकों पुराणों से समुद्र तट पर स्थित गोकर्णनाथ प्रसिद्ध हैं। गोला में भगवान् विष्णु द्वारा स्थापित शिव मूर्ति है, रावण द्वारा नहीं। गोला में श्री राम जानकी मन्दिर में स्थित एक हिन्दी की पुस्तक में गोला गोकर्णनाथ का माहात्म्य छपा था। मैंने पढ़ा था) । मन्त्रवेत्ता जगद् गुरु जी ने चिरकाल तक वहां रह कर मंत्रराज की स्थापना की। फिर अपने स्थान पर वापस आये। वहीं पर योगिराज के समय में ही अत्यन्त भक्त, धुरन्धर चक्रवर्ती 'विक्रम' नाम के राजा पहुंचे। महामुनि के समीप आकर उन्होंने (योगशास्त्र में दक्ष होकर) योग शक्ति के प्रभाव से अपने नाम से वह विक्रमी हुये। अर्थात् विक्रमी सम्वत् चलाया। वेदान्त में आसक्त चित्त वाले नृसिंह योगीन्द्र जी ने वेदों के भाष्यों पर विचार करते हुये स्वरूप में स्थिति प्राप्त की।"

इसके ४०वें तथा ४१वें श्लोक से अवन्तिका नरेश (उज्जैन) चक्रवर्ती विक्रमादित्य का आगमन सिद्ध होता है। श्री नृसिंह जी भारती महाराज शृंगेरी की परम्परा में भगवान् शंकराचार्य से लेकर चौदहवें जगद् गुरु हुये। आद्यशंकर से लेकर इन तक अवश्य ही कम से कम ४०० चार सौ वर्ष बीत गये होंगे। शारदा मठ के सुधन्वा के ताम्र शासन से भी भगवान् भाष्यकार के जन्म से ४१४ वर्ष पश्चात् उज्जैनी विक्रमादित्य का सम्वत् आरम्भ होता है। इस प्रमाण से शृंगेरी की प्राचीन मान्यतानुसार भी शंकराचार्य का जन्म उज्जैनी के विक्रम तथा चालुक्य वंशी विक्रम से बहुत पहले का सिद्ध होता है। बाद का नहीं। इन्होंने नृसिंह पुरा में नृसिंह के मन्दिर का निर्माण किया। महाराज हरिहर जी ने विरूपाक्ष मठ का निर्माण किया।

श्री नृसिंह भारती जी के शिष्य **श्री पुरुषोत्तम भारती**[५८८] जी हुये। श्री चन्द्रशेखर भारती तथा नृसिंह भारती जी का मन्दिर निर्माण श्री पुरुषोत्तम भारती जी ने कराया। इन्होंने पतंजलि जी के महाभाष्य पर संस्कृत व्याख्या की है। इनके शिष्य **श्री शंकरानन्द**[५८९] भारती हुये। स्वामी शंकरानन्द भारती कामधेनु के समान सब की इच्छाओं की पूर्ति करते थे। इनके भगवान् शंकर के दो पुत्रों के समान दो शिष्य हुये। **श्री नृसिंह**[५९०] भारती (२) शंकरानन्द भारती के शिष्य हुये। नृसिंह भारती जी की पादुकाओं का सेवन विजय नगर के राजा ने उसी प्रकार

किया, जैसे भरत ने किया था। श्री नृसिंह भारती के कर कमलों से अभिषिक्त योगिराज **पुरुषोत्तम**[५९१] **भारती (२)** हुये। इनके शिष्य **श्री राम**[५९२] **चन्द्र भारती** हुये। श्री रामचन्द्र भारती जी के शिष्य **श्री नृसिंह**[५९३] **भारती (३)** हुये। विरूपाक्ष तथा प्रौढ़ देव नामक राजा इनके शिष्य थे। नृसिंह भारती (३) के शिष्य **नृसिंह**[५९४] **भारती (४)** हुये। श्री रामदेव नाम के महाराज इनके शिष्य थे। श्री मल्लिकार्जुन शिवलिंग के समीप रहने वाले भी मल्लिकार्जुन नाम के राजा भी शिष्य थे। नृसिंह[४] भारती (५९६) के शिष्य बाल्यावस्था में ही सिंहासनासीन हुये थे। अतः इनको **अभिनव**[५९५] **नृसिंह भारती (१)** कहा गया। इन्होंने शिव गीता के भाष्य की रचना की है। आप मन्त्र शास्त्र के विशारद तथा शिला स्तम्भन करने में कुशल थे। इन्हें सभी सिद्धियां प्राप्त थीं। षड्दर्शन स्थापनाचार्य श्री विद्याशंकर जी का इन्होंने पर्वत पर मन्दिर निर्माण कराया। इनके शिष्य **सच्चिदानन्द**[५९७ ५९८] **भारती (१)** हुये।

श्री सच्चिदानन्द भारती के बैठने पर शृंगेरी की शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान वृद्धि हुई। श्री सच्चिदानन्द भारती जी ने अपने शिष्य **श्री नृसिंह भारती (५)** को मठ का भार सौंपकर परम तत्त्व का चिन्तन करते हुये मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त की। इनके शिष्य **सच्चिदानन्द भारती (२)** हुये। इन्होंने मूकाम्बिका देवी की कृपा से सिद्धि प्राप्त की। इनके लिये वीरभद्र नामक राजा ने नूतन मठ का निर्माण किया था। यह अत्यन्त गौर वर्ण थे। इनका द्वैतवादी मध्वानुयायियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। इसके मध्यस्थ नृसिंह आश्रम जी महाराज थे। शास्त्रार्थ में इनकी विजय हुई। विद्वानों ने मिलकर इनकी स्तुति की। तथा **"विशुद्ध वैदिकाद्वैत सिद्धान्त प्रतिष्ठापक"** उपाधि से विभूषित किया। इनके समय में महाराज वीरभद्र तथा वेंकटप्प नायक का युद्ध हुआ था। वेंकटप्प हार गया। इक्केरी सज्यन्तर्गत छः योजन भूमि पर अधिकार किया। शृंग पर्वत भी उसी में था। इस राज्य के इच्छुक वीरप्पनायक ने वेंकटप्प को बन्दी बनाया। कालान्तर में जेल से छूटकर इन्होंने बहुत से प्रदेशों को वश में किया। यह राजा इन्हीं के आशीर्वाद से विजयी हुये थे। इस राजा के शासन काल में शृंगेरी देवराज इन्द्र की अमरावती के समान थी। इस राजा ने मठ में बहुत से मन्दिर बनवाये और बहुत सी जागीर लगायी। इन्हीं की आज्ञा से **"काशी लक्ष्मण**[५९९] **शास्त्री जी"** ने 'गुरुवंश काव्यम्' की रचना की। आप एक बार किसी ग्राम में गये थे। ग्राम वासी बड़े श्रद्धालु थे।

बड़े उत्साह से पूजा की। कालान्तर में इनकी आज्ञा का उल्लंघन किया। वे शाप देकर मठ में चले आये। थोड़े ही समय में ग्राम में बड़े उत्पात हुये। ग्रामवासियों को शाप का आभास हुआ। जाकर क्षमा याचना की। बड़ी कठिनाई से प्रसन्न करके ग्राम में लाये। तब जाकर ग्राम में शान्ति हुई। इन्होंने मठ में गुरु मन्दिर का निर्माण करके सच्चिदानन्देश्वर शिव की स्थापना की। शृंगेरी के समीप ही सच्चिदानन्द नाम का अग्रहार है। जिसमें ब्राह्मण अधिक रहते हैं। वहीं पर सच्चिदानन्द नाम का शिव मन्दिर है। मठ में ही बड़े उत्साह के साथ स्वर्ण रत्नों के आभूषणों से विभूषित शारदाम्बा की मूर्ति स्थापित की। एक बार क्षय सम्वत्सर में दुर्भिक्ष पड़ा। लाखों की संख्या में भूख से सन्तप्त मानव इनकी शरण में गये। सबका भरण पोषण स्वामी जी ने किया। फिर तीर्थ यात्रा के लिये निकले। इनके पास एक बालक परम बीतराग ब्रह्म विद्या प्राप्ति के लिये शरण में आया। वह परम तपस्वी तथा वेदान्त के अनुसन्धान में तत्पर था। विद्याध्ययन के अनन्तर फाल्गुन कृष्ण तृतीया को उनका अभिषेक करके गद्दी पर बैठाया तथा **अभिनव सच्चिदानन्द**[६००] भारती (१) योगपट्ट दिया। स्वयं ब्रह्म चिन्तन करते हुये ब्रह्मलीन हो गये। इनके शिष्य सच्चिदानन्द[६०१] भारती (१) हुये। इनके शिष्य **नृसिंह**[६०२] भारती (६) हुये। २७. श्री सच्चिदानन्द भारती (२) २८. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (१) २९. श्री नृसिंह भारती (७) ३०. श्री सच्चिदानन्द भारती (३) ३१. श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (२) ३२. श्री नृसिंह भारती (८) ३३. श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती।

२७. श्री सच्चिदानन्द भारती (२) को पेशवा रघुनाथराव ने दस हज़ार रुपये दिये। श्री सच्चिदानन्द भारती (३) के टीपू सुल्तान अनन्य भक्त थे। इन्होंने सहस्र चण्डी याग आरम्भ किया। यह अनुष्ठान ४० दिन चला। इसमें हज़ारों ब्राह्मणों ने भाग लिया।

३२. श्री नृसिंह भारती (८) इनका जन्म सन् १७९८ ई. में हुआ था। आप महान् योगी थे। मठ त्याग कर ४० वर्ष तक विजय यात्रा की। इनके पास काशी से एक बालक शास्त्र पढ़ने आया था। पचास वर्ष की आयु के पश्चात् आप बहुत थोड़ा आहार लेते थे। इन्होंने परम्परागत चन्द्रमौलीश्वर शिव की आराधना की। आप तेलगू, कन्नड़, तमिल, मराठी, हिन्दी, संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। सन् १८३८ में आपने रामेश्वरम् की यात्रा की। वहां पर कोटि तीर्थ में मीठे कुयें का निर्माण किया। १८७२ ई. में दुबारा आपने मदुरा आदि तीर्थों की यात्रा

की। मदुरा में एक हंसमुख युवा बालक आपकी शरण में आया। आप शक्तिपात् में कुशल थे। आपने उसे सम्पूर्ण शक्ति प्रदान की। सन् १८२८ में मैसूर के महाराज कृष्ण राजा ने आपको आमंत्रित किया। बहुत सी अचल सम्पत्ति मठ के नाम लगाई।

जगद् गुरु जी की जब ६० वर्ष की अवस्था हो गई तब नासिक द्वारका कुरुक्षेत्र, काशी, जगन्नाथपुरी, वद्रिकाश्रम की यात्रा करके लौटकर आये तो मैसूर से शिवास्वामी नाम के एक बालक ने शरण ग्रहण की। उन्हें संन्यास देकर श्री स्वामी सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती नाम रखा। तीर्थ यात्रा में आपके साथ ८३ घुड़सवार सैनिक १० कटारें १०० ब्राह्मण १०० सेवक २ पालकियां २५ शस्त्रधारी २५ भाले २० तलवारें ...... ५० गायें ८ छत्र ६ चामर १० घोड़े चलते थे।

आपके वृद्ध होने के बाद युवक जगद्गुरु जी ने १२ वर्ष के लिये मैसूर, मद्रास आदि की धर्म प्रचार यात्रा की। आपकी अवस्था ७२ वर्ष की हो चुकी थी। तब शृंगेरी में सन् १८७६ ई. में आपने महा समाधि ली। वहां पर नृसिंह वन में तुंगा नदी के पार आपकी समाधि है।

३३. श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती

आपका जन्म मैसूर नरेश के दरबारी पण्डित आस्थान महाविद्वान कुणिंगल राम शास्त्री के घर में हुआ था। नौ वर्ष की अवस्था में इनके अग्रज श्री लक्ष्मी नृसिंह शास्त्री शिक्षा के लिये इनको अपने साथ ले आये थे। आचार्य के पास शिक्षा के लिये भेजा। उन्होंने पूछा, कि तुम जीवन में क्या चाहते हो। इन्होंने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की।

आपने शंकर की आराधना तथा उपनिषदों का अध्ययन आरम्भ किया। इन्होंने विचार किया कि गुरुओं से दीक्षित होकर आराधना करनी चाहिये। आप सद्गुरुदेव श्री स्वामी नृसिंह भारती जी महाराज की शरण में आये। उनसे महावाक्य लेकर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के अनन्तर संन्यास की दीक्षा ली। तब शिवा स्वामी से सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती योगपट्ट हुआ। युवा संन्यासी यति धर्म का पालन करते हुए प्रस्थानत्रयी का अध्ययन करने लगे। एकान्त में 'सर्वोऽहं, सर्वोऽहम्' की भावना करने लगे।

आपके गुरुदेव बयासी वर्ष के हो चुके थे। सन् १८७९ में वह ब्रह्मलीन हो गये। छः वर्ष तक आप निरंतर गुरु समाधि में आराधना करते रहे। उत्तर भारत से एक जागीरदार आये। उन्होंने सम्पत्ति भेंट की। उस धन से आपने स्वामी विद्याशंकर तीर्थ जी महाराज की समाधि

मन्दिर का कलश स्थापित कराया। आपने भक्ति सुधातरंगिणी, पुरुषार्थ निर्णय आदि ग्रन्थों की रचना की। बोधायन गृह्य सूत्र पर भी विस्तृत व्याख्या की। १८९१ से ९५ तक चार वर्ष दक्षिण भारत की यात्रा की। आपका बालवत् स्वभाव था। १८९५ ई. में शृंगेरी में आपने 'सद् विद्या संजीवनी' नामक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। इसमें भाष्यों सहित प्रस्थानत्रयी का अध्ययन कराया जाता है। शृंगेरी में लगभग दो हज़ार विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। वहां पर पांच वर्ष के ब्राह्मण बालक का उपनयन होने के अनन्तर वेदाध्ययन कराया जाता है। विद्यार्थियों को सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त हैं। १८९५ ई. से १९०७ ई., १२ वर्ष तक आप शृंगेरी में रहे। १९०७ ई. में बैंगलौर में मठ बनाकर भगवान् भाष्यकार की मूर्ति स्थापित की। वहीं पर "गीर्वाण प्रौढ़ विद्या अभिवर्द्धिनी" पाठशाला स्थापित की। जहां पर पूर्वोत्तर दोनों मीमांसा पढ़ाई जाती हैं। आपने शृंगेरी का नाम सारे संसार में किया। एक अत्यन्त बुद्धिमान बालक जिसके पिता के तेरह बच्चे थे। शृंगेरी में अध्ययन करने आया। बालक का नाम नृसिंह था। श्री स्वामी जी ने उन्हें मठ के कालेज बैंगलौर में पूर्व मीमांसा तथा वेदान्त पढ़ने भेजा। १९१२ ई. में मार्च में वह पढ़कर लौट कर मठ में आये। इसी वर्ष गुरु जी ब्रह्मीभूत हुये। गुरु जी के समीप ही इन्हें समाधि दी गई। वहीं पर (नृसिंह वन) समाधि मन्दिर का निर्माण हुआ। आपके उत्तराधिकारी वही बालक संन्यास के बाद श्री स्वामी चन्द्रशेखर भारती जी महाराज उत्तराधिकारी नियुक्त हुये।

३४. अनन्त श्री चन्द्रशेखर भारती महास्वामिन्

श्री स्वामी चन्द्रशेखर भारती जी महाराज शृंगेरी के आस्थान विद्वान् श्री पं. गोपाल शास्त्री जी के सुपुत्र थे। इनका नाम नृसिंह था। गोकर्ण क्षेत्र में आपका जन्म हुआ था। बाल्यावस्था से ही भक्ति तथा अध्ययन में अभिरुचि थी। 'मूक पंचशती' का पाठ तथा आत्मा का ध्यान करते थे। प्रदोष काल में शिव आराधना तथा व्रत करते थे। योग साधना द्वारा अपूर्व सिद्धि प्राप्त की थी। अल्पायु में ही आत्म साक्षात्कार कर चुके थे तथा जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते थे। बड़े महाराज जी ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा जानकर उत्तराधिकारी बनाया। शारदाम्बा का संकेत भी प्राप्त हो चुका था। संस्कृत के प्रत्येक वृत्त में श्लोक रचना करते थे। संन्यास से पूर्व गुरु जी ने बैंगलौर मठ के कालेज में भेजा। लौटने पर महावाक्य देकर संन्यास दीक्षा दी। श्री चन्द्रशेखर महास्वामिन् योगपट्ट दिया।

एक बार कूडली मठ के प्रधान श्री विरूपाक्ष शास्त्री जी आचार्य के पास आये। तीन वर्ष तक आचार्य की सेवा करते हुये उन्होंने वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। सन् १९१६ में आचार्य का कुम्भाभिषेकम् हुआ। उसमें महाराज मैसूर तथा बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ उपस्थित थे।

सन् १९२४ जनवरी में महाराज मैसूर ने निमंत्रित किया। वहां से दक्षिण भारत की यात्रा की। अनेक स्थानों पर वेद वेदान्त की पाठशालायें खोलीं। वहीं से भगवत्पाद की जन्म भूमि कालटी पहुंचे। वहां से गुरु की जन्म भूमि जाकर दर्शन किये। वहां से लौटकर शृंगेरी आये। शृंगेरी में श्री निवास ब्रह्मचारी जी को संन्यास देकर उत्तराधिकारी नियुक्त किया। श्री अभिनव विद्यातीर्थ महास्वामिन् की उपाधि दी। संन्यास की तिथि २२ मई सन् १९३१ थी। दिसम्बर सन् १९५० में नेपाल नरेश श्री त्रिभुवन दर्शन के लिये शृंगेरी पहुंचे। दोनों में बहुत समय तक अध्यात्म चर्चा होती रही। नेपाल नरेश ने नेपाल का इतिहास सुनाया।

अक्तूबर १९५२ ई. में इन्होंने अति रुद्र तथा सहस्र चण्डी यज्ञ आरम्भ किया। अप्रैल १९५३ में पूर्णाहुति हुई। लाखों की संख्या में भीड़ थी। २४ अगस्त १९५४ ई. में राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद दर्शन के लिये गये। दोनों आचार्यों के दर्शन तथा शास्त्र चर्चा से लाभ उठाया।

विदेह मुक्ति

कुछ समय पहले से ही आचार्य अस्वस्थ चल रहे थे। The Greatness of Srangeri के अनुसार २६ सितम्बर १९५४ ई. को प्रातः स्नान करने के लिये तुंगा नदी के तट पर पहुंचे। वहीं पर सीढ़ी से पैर फिसल गया, नदी में गिर गये। इससे पूर्व आप प्राणायाम कर रहे थे। कुछ काल बाद ब्रह्मीभूत हो गये। 'तुंगा तीर के तपस्वी' नामक पुस्तक के आधार पर इनकी ब्रह्मीभूत तिथि २४ सितम्बर १९५४ ई. है। १६ अक्तूबर, १९५४ को श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज महास्वामिन् का पट्टाभिषेक हुआ।

॥इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती हुये। इन्होंने सन् १९१० ई. में भगवान् आद्यशंकराचार्य की जन्म भूमि कालटी की खोज की। इन्हीं की सेवा में युवावस्था में गोवर्द्धन पीठाधीश्वर पूज्यपाद श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज उपस्थित हुये थे। इनकी सेवा करते हुये उन्होंने ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य, आनन्दगिरि की "न्याय निर्णय व्याख्या", "रत्न प्रभा", "भामती", "वेदान्त कल्पद्रुम", "वेदान्त कल्पद्रुम परिमल" आदि का अध्ययन किया था। गीता तथा उपनिषदों के भाष्य को भी लगाया था।

इन्होंने कालटी में अष्ट दल कमल पर माता शारदा का अष्ट शक्तियों सहित भव्य मन्दिर का निर्माण किया। इस मन्दिर के चारों ओर एक बरामदा है। इस मन्दिर के उत्तर में श्री विनायक मन्दिर तथा भगवान् आद्य शंकराचार्य जी का मन्दिर है। श्री भाष्यकार के मन्दिर के आगे बरामदे में चारों ओर दीवारों पर आचार्य पाद का चरित्र आद्योपान्त चित्रों में अंकित है। शक्ति मन्दिर के समीप पूर्व में चबूतरे पर आचार्य शंकर की माता आर्याम्बा की समाधि है। समाधि पर संस्कृत में एक शिलालेख है। यह जन्म स्थान शृंगेरी के अधीन है। सामने पूर्व में पूर्णा नदी प्रवाहित हो रही है। आश्रम के बगल में ही मकर घाट तथा शंकराचार्य जी के कुल इष्ट देव श्यामराय की मूर्ति है। मठ में सहस्रों विद्यार्थी वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। अनेकों अनुष्ठान चलते रहते हैं। श्री अभिनव सच्चिदानन्द शिव नृसिंह भारती बड़ी अलौकिक प्रतिभा के यतीश्वर थे। पूज्यपाद भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने अपने "स्तोत्र भारती कण्ठहार" में अनेक देवी देवताओं के स्तोत्रों के साथ गुरु जी की स्तुति में भी स्तोत्र लिखे हैं। इनकी स्तुति के श्लोकों द्वारा इनके चरित्र का उपसंहार किया जाता है—

अक्षपाद कणभुक् कपिलादि प्रोक्तशास्त्रनिकरप्रदपूज।
देशिकाव निगमान्त समुद्यज् ज्ञान भानु परि पीततमस्क ॥

न्याय, वैशेषिक, सांख्य आदि के रचयिता, गौतम, कणाद तथा कपिल आदि शास्त्रों के प्रवचन द्वारा वेदान्त के परम प्रकाशमय ज्ञान सूर्य के द्वारा शिष्य के अज्ञानान्धकार के नाशक गुरुदेव मेरी रक्षा करें।

पादाम्भोज द्वन्द्वानम्रा, शेषाभीष्ट स्पृक् संकल्पम्।
योगिव्रात ध्यानध्येयं, वन्दे सच्चिन्मोदाचार्यम्॥

अपने चरण कमलों के उपासक भक्तों की कामनाओं की पूर्ति करने वाले, योगी जनों के ध्यान के विषय सच्चिदानन्द स्वरूप आचार्य को मैं प्रणाम करता हूं।

वायु स्वान्त न्यक्कृत वेग स्पृष्टा नम्रेष्टर्द्धि व्रातम्।
मुक्ति स्त्री रत्ना शिलष्टाङ्गै र्वन्दे सच्चिन्मोदाचार्यम्॥

वायु तथा मन के वेग को जीतने वाले शरणागत भक्तों की इच्छित समृद्धि के दाता, मुक्ति रुपी स्त्री रत्न को आलिंगन करने वाले, सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित गुरुओं की मैं वन्दना करता हूं।

अत्रि महामुनि नेत्र समुत्त्थोत्तंस विजित्वर हास मनोज्ञम्।
आश्रित कांक्षित दापन तुष्टं नौमि नृसिंह गुरुं यतिनाथम्॥

अत्रि महामुनि के नेत्रों से उत्पन्न हुये चन्द्रमा के समान निर्मल हास्य युक्त तथा शरणागतों को इच्छित फल देकर सन्तुष्ट होने वाले नृसिंह गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूं।

श्री विद्यारण्य स्वामी जी का सिद्धान्त तथा उपदेश

दर्शन शास्त्रों के मूर्द्धन्य विद्वान् तथा अद्वैत वेदान्त के अद्वितीय प्रतिपादक विद्यारण्य स्वामी जी प्रतिबिम्बवादी थे। वार्तिककार सुरेश्वराचार्य जी, संक्षिप्त शारीरिक के कर्त्ता, सर्वज्ञात्म मुनि तथा वाचस्पति मिश्र इन तीनों ने श्री शंकराचार्य के अद्वैत मत के अनुयायी होने पर भी जीव ईश्वर के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से आभासवाद, अवच्छेदवाद तथा प्रतिबिम्बवाद स्वीकार किया है।

वाचस्पतेरवच्छेद, आभासो वार्तिकस्य च।
संक्षिप्त शारीरिकृतां प्रतिबिम्बमिहेष्यते।

अर्थात् वाचस्पति मिश्र के 'अवच्छेदवाद' में जीव को ईश्वर का अंश माना है। वार्तिककार सुरेश्वराचार्य ने 'आभास' कहा है। संक्षिप्त शारीरिक के कर्त्ता सर्वज्ञ मुनि ने जीव को ईश्वर का 'प्रतिबिम्ब' कहा है। सिद्धान्त बिन्दु में भी श्री शंकराचार्य द्वारा दस श्लोकों में आत्म ज्ञान का उपदेश है। सुरेश्वराचार्य जी जपा कुसुम के दृष्टान्त से आभासवाद का समर्थन करते हैं। जैसें स्फटिक मणि सफेद होने पर भी उसके समीप विद्यमान लाल पुष्प के कारण वह रक्त वर्ण की दिखाई पड़ती है। वैसे ही अन्तःकरण की उपाधि के कारण ईश्वर जीव भाव को प्राप्त हुआ

प्रतीत होता है। सुरेश्वराचार्य जी पूर्वाचार्यों के द्वारा दिये हुये दृष्टान्तों से अपने पक्ष आभासवाद का समर्थन करते हैं। यद्यपि जीव ब्रह्म ही है, परन्तु अपने स्वरूप को भूल गया है। इसके सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है। किसी वन में एक सिंह के बच्चे को भेड़िया उठा ले गया। वह बहुत काल तक भेड़ियों के साथ रहा। वह अपने को भेड़िया ही मानने लगा। एक दिन उसने सिंह को देखा। उसने कहा कि तुम सिंह हो भेड़िया नहीं। स्मरण कराने पर उसने स्वरूप को जाना। वैसे ही जीव भी परमात्मा स्वरूप ही है। अपने परमात्म स्वरूप को भूला हुआ है। स्मरण कराने पर अपने परमात्मभाव को प्राप्त करता है।

आधुनिक वेदान्ती प्रतिबिम्बवाद का समर्थन एक मत से करते हैं। "विवरण प्रमेय संग्रह" "तत्त्व विवेक" तथा "पंच पादिकाकार" विद्यारण्य स्वामी सर्वज्ञात्म मुनि इत्यादि का कथन है कि अविद्या के परिणाम अन्तःकरण में चेतन का प्रतिबिम्ब पड़कर जो तीनों शरीरों को प्रकाशित करता है। उसका नाम 'जीव' है। अज्ञान में प्रतिबिम्ब को जीव कहते हैं। यह मानने वाले आचार्यों का कथन है कि अविद्या एक है और अविद्या के परिणाम अन्तःकरण तथा संस्कार अनेक हैं। अतः अनेक जीव प्रतीत होते हैं। चूंकि अन्तःकरण तथा शरीर अनेक हैं, जीव एक है किन्तु अनेक रूपों में दीखता है। वह जीव भी समष्टि व्यष्टि भेद से दो प्रकार का है। समष्टि स्थूल, सूक्ष्म, कारण भेद से वह विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर कहलाता है। वही परमात्मा का प्रतिबिम्ब रूप मुख्य जीव है। वह लीला से क्रीड़ा करने के लिये आभास रूप से अनेक प्रकार भौतिक शरीरों की रचना करता है। जीव भाव की प्राप्ति का मुख्य कारण अविद्या है। जब अविद्या कार्य सहित नष्ट हो जाती है, तो जीव मुक्त हो जाता है। जिस जीव की अविद्योपाधि निवृत्त हो जाती है, उसी की मुक्ति होती है। यह विकल्प प्रथम है। मनोनाश तथा उसके संस्कारों का नाश होने से मोक्ष होता है। यह दूसरा विकल्प हुआ। मोक्ष काल में जीव का अविद्या के साथ सम्बन्ध नष्ट होता है। अविद्या के साथ सम्बन्ध का नाश होना तृतीय विकल्प हुआ। विद्यारण्य स्वामी जी ने पंचदशी में अनेकों प्रकार दिखाये हैं।

वाचस्पति मिश्र रस्सी सर्प के दृष्टान्त से समझाते हुये कहते हैं कि ईश्वर में विद्यमान चैतन्य भाग ही जगत् रूप में प्रतीत होता है। इन्होंने जगत् की उत्पत्ति में माया को कारण नहीं माना। किन्तु सहायक माना है। अर्थात् ईश्वर जगत् का परिणामी उपादान कारण नहीं है। किन्तु विवर्त्त उपादान कारण है। दूसरे व्याख्याकार ईश्वर के चैतन्य अंश को विवर्त्त उपादान कारण तथा

माया अंश को परिणामी उपादान कारण कहकर मायोपहित ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानते हैं। यह अद्वैतवादी शंकर मतानुयायियों का सिद्धान्त है।

भाव यह है कि शुद्ध ब्रह्म जगत् का उत्पादक, पालक, संहारक नहीं है। वरन् मायोपाधिक ईश्वर ही सृष्टि, स्थिति, संहार का कारण है। नृसिंह उत्तर तापनीयोपनिषद् में आभासवाद के सम्बन्ध में लिखा है कि **जीवेशाववभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति।** जीव तथा ईश्वर के आभास से माया तथा अविद्या होती है। परिच्छेदवाद को भामती टीका में वाचस्पति मिश्र ने भली प्रकार वर्णन किया है। इन्होंने महाकाश, मेघाकाश, घटाकाश के दृष्टान्तों से सिद्ध किया है। अर्थात् एक ही महाकाश, मेघ की उपाधि से मेघाकाश, मकान की उपाधि से मठाकाश तथा घड़े की उपाधि से घटाकाश होता है। इस प्रकार आकाश का खण्ड या टुकड़ा नहीं होता। परन्तु उपाधि कृत परिच्छेद (अंश) है। शुद्ध ब्रह्म के स्थान पर आकाश है। ईश्वर के स्थान पर मेघ है तथा जीव के स्थान पर घट, मठ आदि है।

विद्यारण्य स्वामी जी ने पंचदशी में सभी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। विद्यारण्य स्वामी जी के सिद्धान्त से पूर्व उपर्युक्त तीनों का सिद्धान्त विस्तार से लिखते हैं।

प्रतिबिम्बवाद

जीवात्मा परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। स्वच्छ जल अथवा दर्पण के समीप मुख का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। बिम्ब को प्रतिबिम्ब की अपेक्षा नहीं है। तथापि बिम्ब के बिना प्रतिबिम्ब का अस्तित्व नहीं है। प्रतिबिम्ब को कुछ आचार्यों ने मिथ्या कहा है। प्रतिबिम्ब मिथ्या होने पर भी बिम्ब की सहायता से सत्य प्रतीत होता है। लोक में बिम्बभूत मुख आदि की अपेक्षा दर्पण आदि में दीखने वाले प्रतिबिम्ब बिम्ब के समान ही हैं। अर्थात् गले में जैसी माला, जैसा चन्दन आदि लगाये हैं, वैसा ही प्रतिबिम्ब दीखता है। परन्तु प्रतिबिम्ब बिम्ब के अनुरूप होने पर भी सत् असत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है। मुख के सदृश होने के कारण सत् है। दर्पण को औंधा कर देने पर नहीं दीखता। अतः असत् है। सत् असत् दोनों के निर्वचन से रहित अकथनीय है। अतः प्रतिबिम्बवादी तथा आभासवादी के मत में प्रतिबिम्ब और आभास दोनों मिथ्या हैं। प्रतिबिम्ब को लेकर विवाद नहीं है।

इसी सिद्धान्त को मन में रखकर कहा है। प्रतिबिम्बवाद में जैसे मुख दर्पण का दृष्टान्त है। वैसे ही आभासवाद में अविद्या अथवा अन्तःकरण से चेतन का सम्बन्ध होने पर जीव ज्ञाता है। जैसे जल में प्रतिबिम्ब सूर्य के प्रकाश से दीखता है। वैसे ही मन में चेतन के सम्बन्ध

से ज्ञान होता है। अर्थात् मन जड़ है, आत्मा चैतन्य है। दोनों का सम्बन्ध होने पर जीव ज्ञाता है।

शंका—प्रतिबिम्ब अचेतन होने से ज्ञान स्वरूप कैसे है ? उसके सम्बन्ध से मन में ज्ञातृत्व की सिद्धि नहीं हो सकती ?

समाधान—श्रुति तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतिबिम्ब चैतन्य सिद्ध होता है।

'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु' यह विज्ञानमय प्राणों में है। इस श्रुति से चैतन्य सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष से भी चैतन्यता सिद्ध होती है।

शंका—आपके यह दोनों वचन वेद विरुद्ध हैं। यदि जीव प्रतिबिम्ब है, तो चैतन्य नहीं हो सकता और यदि चैतन्य है तो प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। यह दोनों नहीं हो सकते।

समाधान—प्रतिबिम्बवादी के मत में प्रतिबिम्ब स्वरूप जीव का ईश्वर से एकत्व तथा चैतन्यत्व है। अर्थात् दोनों ही चैतन्य हैं। आभासवादियों के मत में प्रतिबिम्ब की बिम्ब से एकता होने पर भी उपाधि कृत भेद है। अर्थात् अज्ञान से भेद प्रतीत होता है। परन्तु बिम्बगत चैतन्य तथा प्रतिबिम्ब गत चैतन्य में एकता है। जैसे चित्र में चित्रित सूर्य प्रकाशहीन स्थान पर रखा हो तो नहीं दीखता है। परन्तु जलस्थ सूर्य प्रकाशमान है। वैसे ही जीव जल में प्रतिबिम्बित सूर्य के समान चैतन्य है। आभासवादी के मत में वह चेतन, अचेतन से विलक्षण अनिर्वचनीय है। अतः जीव अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित अध्यास द्वारा प्रमाता सिद्ध हुआ। इसी का स्पष्टीकरण करते हुये मधु सूदन सरस्वती जी महाराज "सिद्धान्त बिन्दु" में लिखते हैं कि, **अज्ञानोपहित आत्मा, अज्ञानतादात्म्यापन्न स्व चिदाभासा विवेकादन्तर्यामी साक्षी, जगत्कारणमीश्वर इति च कथ्यते**। अज्ञान उपाधि वाला आत्मा, अज्ञान के तादात्म्य भाव को प्राप्त हुआ अविवेक से जगत् का कारण, अन्तर्यामी, साक्षी ईश्वर कहा जाता है। इसकी व्याख्या में महामहोपाध्याय वासुदेव अभयंकर लिखते हैं, अद्वैत मत में एकात्मा ही सत्य है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं। अतः वस्तुतः, वह न अन्तर्यामी है, न साक्षी है, न जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का कारण है। ब्रह्म से अतिरिक्त बाहर यदि कोई दूसरा हो तो वह अन्तर्यामी हो। वैसे ही उसके अतिरिक्त यदि कोई अन्य साक्ष्य हो तो वह साक्षी हो। जगत् यदि कोई वस्तु हो तो उसका कोई कारण हो। अतः तीनों ही अज्ञान मूलक उपाधि कल्पित हैं। जैसे स्फटिक में उसके समीप रखे हुये रक्त पुष्प के सान्निध्य से श्वेत स्फटिक लाल प्रतीत होता है। वैसे ही अज्ञान उपाधिगत चिदाभास उपाधि के अन्तर्गत अन्तर्यामी है। उपाधि के

दृश्य रूप से उसका साक्षी है। वही उपाधि से जगत् रूप में परिणत हुआ जगत् का कारण है। वास्तव में सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा, अन्तर्यामी साक्षी जगत् का कारण नहीं है। किन्तु अविवेक से प्रतीत होता है। प्रतीति का कारण अज्ञानोपाधि में स्थित चिदाभास का तादात्म्य भाव है। जैसे स्फटिक में स्थित रक्तिमा तादात्म्य भाव को प्राप्त होती है। वैसे ही अज्ञान, चैतन्य आत्मा में तादात्म्य भाव से प्रतीत होता है। अतः अन्तर्यामी, साक्षी तथा जगत् कारण का वाच्यार्थ चिदाभास ही है। अतः चिदाभास आदि नाम गौण अर्थ में प्रयुक्त हुये। **इति प्रति बिम्बवाद ॥**

अथ आभासवाद। आभासस्यापि जड़ाजड़ विलक्षणत्वेनानिर्वचनीयत्वात् आभास (जीव) भी जड़ चेतन से विलक्षण होने से अनिर्वचनीय है।

व्याख्या—यद्यपि चिदाभास न जड़ है न चैतन्य है। उपाधि से प्रतीत होता है। जड़ चेतन से विलक्षण ही है। चिदाभास मिथ्या है। उपाधि रहित शुद्ध ब्रह्म नित्य मुक्त है। अज्ञान से बद्ध प्रतीत होता है। उस शुद्ध ब्रह्म का कल्पित गौण जीव स्वरूप बद्ध है। चिदाभास से उपाधि सहित भ्रान्ति की निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष है। 'तत्त्वमसि' महावाक्य के तत्-ईश्वर, त्वं-जीव के विरोधी अंशों का परित्याग करके, दोनों के लक्ष्यार्थ असि पद से दोनों की एकता होने से जीव मुक्त होता है। एकता लक्षणावृत्ति से होती है। यह तीन प्रकार की, जहत्, अजहत्, भाग त्याग (जहदजहत्) लक्षणा है। इनमें **जहत् लक्षणा** में वाच्यार्थ का त्याग करके समीपवर्त्ती अर्थ ग्रहण किया जाता है। जैसे 'गंगायां घोषः' यहां गंगा में (पर) घोषों की वस्ती है। गंगा के प्रवाह में या ऊपर बस्ती संभव नहीं। अतः गंगायां का अर्थ गंगा तट पर गोशाला है। **अजहत् लक्षणा**—इसमें वाच्यार्थ का त्याग किये बिना अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसे अजहत् लक्षणा कहते हैं। यथा—"काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" किसी ने अपने पुत्र से कहा—कि कौवों से दही की रक्षा करो। इसके वाच्यार्थ में केवल कौओं से दही की रक्षा के लिये कहा जा रहा है। परन्तु वक्ता का तात्पर्य केवल कौओं से ही दही की रक्षा करने में नहीं है। वरन् दही को हानि पहुंचाने वाले कुत्ता बिल्ली आदि जीवों से भी है। **जहदजहत् (भाग त्याग) लक्षणा**—इस लक्षणा में वक्ता के वाच्यार्थ में कुछ अंश का त्याग और कुछ का ग्रहण किया जाता है। यथा **सोऽयं देवदत्तः**, यह वही देवदत्त है। अर्थात् किसी ने दो वर्ष की अवस्था में देवदत्त को हरिद्वार में देखा। उसी को तीस वर्ष पश्चात् काशी में देखा। पहले नहीं पहचाना। परिचय देने से पहचानने पर कहता है कि यह वही देवदत्त है

जिसको मैंने हरिद्वार में तीस वर्ष पूर्व देखा था। इसमें अतीत काल तथा वर्तमान काल, हरिद्वार तथा काशी देश का त्याग करके, देवदत्त के शरीर में एकता सिद्ध होती है। देश काल में एकता नहीं है। इन तीनों लक्षणाओं में से पहली दो लक्षणाओं से ईश्वर जीव में एकता नहीं हो सकती। क्योंकि 'तुम वही ब्रह्म हो' इसमें से त्वं = जीव, तत् = ईश्वर, असि = हो। इन तीनों पदों का अर्थ त्याग करने पर कुछ भी नहीं बचता। दूसरी अजहत् लक्षणा में दोनों का त्याग न करके अर्थात् दोनों के तीनों शरीर तथा चिदंश का त्याग न करने से जीव ईश्वर के विरोधी अंशों के रहते हुये दोनों में एकता नहीं हो सकती। अतः दोनों की एकता में तीसरी भाग त्याग लक्षणा ही उपयुक्त है। इस लक्षणा में जीव ईश्वर के विरोधी वाच्यार्थ का त्याग करके दोनों के अधिष्ठान चैतन्य में एकता सिद्ध होती है। अर्थात् ईश्वर की सर्वज्ञता, परोक्षता, सर्वशक्तिमत्ता, मायादि का त्याग करके तथा जीव की अल्पज्ञता एकदेशीयता, जन्म मरण की प्राप्ति, अविद्यादि विरोधी अंशों का त्याग करने पर जीव तथा ईश्वर में एकता होती है। इस महावाक्य का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने से तीन प्रकार की भ्रान्ति दूर होती है। इनमें से श्रवण से प्रमाण गत असम्भावना, (वेदादि शास्त्रों) के संदेह की निवृत्ति होती है। 'मनन' से, प्रमेयगत असम्भावना (परमात्मा के निराकार निर्गुण, निराकार सगुण, सगुण साकार) इन तीनों स्वरूपों के विषय में संदेह नहीं रहता है। 'निदिध्यासन' से विपरीत भावना दूर होती है। अर्थात् जगत् की सत्यता जीव ब्रह्म का भेद तथा ब्रह्म की परोक्षता की निवृत्ति होती है। तब आत्म साक्षात्कार द्वारा जीव मुक्त होकर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है। इसका विस्तार 'आत्मानात्मविवेक' में पिछले पृष्ठों में देखें।

जीव नित्य मुक्त होने पर भी आभास के कारण बद्ध है। इसी बात को श्री सुरेश्वराचार्य जी ने वार्तिक में कहा है। **अयमेवहि नोऽनर्थो यत्संसार्यात्मदर्शनम्।** यह जीव आभास के कारण ही जन्म मरण को प्राप्त है। गौण रूप से दर्शन ही संसारात्मदर्शन है। इस प्रकार का दर्शन अनर्थ (जन्म मरण) का हेतु है। वासुदेव जी दर्शन का अर्थ मूलभूत अज्ञान करते हैं। इस अज्ञान से सम्बन्धित जीव ही बद्ध है। अज्ञान की निवृत्ति मोक्ष है। यह आभासवाद है। सारांश यह है कि जैसे लाल पुष्प के सम्बन्ध से स्फटिक में दीखने वाली लालिमा 'रक्तिमाभास' है। इस आभास की ग्राहक उपाधि समीपस्थ वस्तु में स्थित केवल गुण को दिखाती है। प्रतिबिम्बित ग्राहक उपाधि के अभिमुख गुण विशिष्ट वस्तु अन्य प्रकार से दीखती है। आत्मा ज्ञान स्वरूप ही है। वह किसी के आश्रित नहीं है। वह बुद्धि रूपी उपाधि में दर्पण

या स्फटिक मणि के समान प्रतीत होता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब स्थान में विचार करने पर दर्पण के भीतर मुख आदि नहीं है। परन्तु आंखों से निकली हुई दृष्टि की किरणें दर्पण की दीवारों से टकरा कर बिम्ब रूपी मुख को दिखाती हैं। मुख बिम्ब रूप से सत्य है। प्रतिबिम्ब रूप से असत्य है। वैसे ही बिम्बभूत आत्मा बुद्धि रूपी दर्पण के सान्निध्य से असत् प्रतिबिम्ब रूप से दीखता है। यही प्रतिबिम्ब रूप से प्रतिबिम्बवादियों का जीव शब्द का वाच्यार्थ है। इस मत में तत्त्वमसि वाक्य में जहल्लक्षणा सिद्ध नहीं होती। परन्तु आभांसवाद में लाल पुष्प के सम्बन्ध से सम्बन्धित नेत्रों से निकली दृष्टि की किरणें लौट कर नहीं आतीं किन्तु श्वेत स्फटिक को लाल रूप में दिखाती हैं। वह आभास स्वरूप से असत्य है। बुद्धि उपाधि से युक्त जो स्वरूप से असत्य है वह चिदाभास ही जीव शब्द का वाच्य है। इस मत में जहल्लक्षणा घटित होती है।

अब संक्षेप शारीरिककार सर्वज्ञात्म मुनि तथा विवरणकार का सिद्धान्त लिखते हैं।

अज्ञानोपहितं बिम्बचैतन्यमीश्वरः। अन्तःकरण तत्संस्कारावच्छिन्नाज्ञान प्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीव, इति विवरणकारः। अज्ञान प्रतिबिम्बितं चैतन्यमीश्वरः। बुद्धि प्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीवः। अज्ञानानुपहितं तु बिम्बचैतन्यं शुद्धमिति। संक्षेप शारीरिककारः।

अनयोश्च पक्षयोर्बुद्धि भेदात् जीव नानात्वम्। प्रतिबिम्बस्य च पारमार्थिकत्वाज्जहदजहल्लक्षणैव तत्त्वस्यादि पदेषु। इममेव च प्रति बिम्बवादमाचक्षते।

अज्ञान उपाधि वाला बिम्ब चैतन्य ईश्वर है। अन्तःकरण तथा उसके संस्कार से अवच्छिन्न अज्ञान प्रतिबिम्बित जीव है। यह विवरणकार का मत है। संक्षेप शारीरिककार कहते हैं। अज्ञान प्रतिबिम्बित चैतन्य ईश्वर है। बुद्धि प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। अज्ञान उपाधि रहित बिम्ब चैतन्य शुद्ध ब्रह्म है।

व्याख्या—ईश्वर के बिम्ब चैतन्य रूपत्व होने पर भी जीव के प्रतिबिम्ब रूप होने से जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। इसे प्रतिबिम्बवाद कहते हैं।

अन्तः करणेति—अन्तःकरण तथा उससे अवच्छिन्न अज्ञान में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। अर्थात् सृष्टि कर्म में अज्ञान अन्तःकरणावच्छिन्न है। प्रलय में तत्संस्कारावच्छिन्न है। अन्तःकरण तथा उनके संस्कार अनेक होने से घटाकाश के समान प्रतिबिम्ब अनेक हैं। परन्तु

अविद्या एक है। यह नाना जीववाद है। **शुद्धमिति**—साक्षी रूप में जीव ईश्वर अनुस्यूत है। इस संक्षेप शारीरिककार के मत में जीव और ईश्वर दोनों प्रतिबिम्ब रूप होने से प्रतिबिम्बवाद है। समष्टि अज्ञान में प्रतिबिम्बित चैतन्य ईश्वर है। व्यष्टि अज्ञान के कार्य रूप अनेक बुद्धियों में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। **बुद्धिभेदात्**—बुद्धि = अन्तःकरण। विवरणकार के पक्ष में बुद्धि भेद से संस्कार भेद है। उसके भेद से तत्त्वाच्छिन्न अज्ञान भेद है। अज्ञान भेद से प्रतिबिम्ब चैतन्य भेद है। अतः इनके मत में जीव नानात्व है। परन्तु संक्षेप शारीरिककार के मत में बुद्धि भेद से उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्य भेद से जीव नानात्व है। **पारमार्थिकत्वादिति**—वास्तव में प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न न होने से परमार्थ में वह बिम्ब स्वरूप ही है। अतः शुद्ध ब्रह्म ही है।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे, चतुर्थोऽध्यायः॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्री वाचस्पति मिश्र जी का अवच्छेदवाद

अज्ञान विषयी भूतं चैतन्यमीश्वरः। अज्ञानाश्रयी भूतं च जीव इति वाचस्पति मिश्रः। अस्मिंश्च पक्षे अज्ञान नानात्वात् जीव नानात्वम्। प्रतिजीवं च प्रपञ्चभेदः। जीवस्य अज्ञानोपहित या जगदुपादानत्वात्। प्रत्यभिज्ञा चातिसादृश्यात्। ईश्वरस्य च प्रपंचजीवाविद्याधिष्ठानत्वेन कारणत्वोपचारादिति। अयमेवा- वच्छेदवादः।

अज्ञान का विषयी भूत चैतन्य ईश्वर है। अज्ञान का आश्रयीभूत जीव है। यह वाचस्पति मिश्र का मत है। इस पक्ष में अज्ञान अनेक होने से जीव अनेक हैं। प्रत्येक जीव में प्रपंच भेद है। अज्ञानोपाधि जीव ही जगत् का उपादान होने से प्रत्यभिज्ञा की अति समानता से अधिष्ठान भूत अविद्या से जगत् सहित ईश्वर उपचार से अविद्या का अधिष्ठान होने से जीव है। यह अवच्छेदवाद की प्रक्रिया है।

व्याख्या—अज्ञान विषयी भूतमिति—भाव रूपी अज्ञान के सम्बन्धं में जीव अपने स्वरूप को नहीं जानता है। जिसको नहीं जानता वही ईश्वर का रूप है। जो ईश्वर के स्वरूप को नहीं जानता है वह जीव है। न जानने का कारण अनादि अज्ञान अनेक हैं। जैसे—अविद्या

के कारण सीपी में चांदी का भ्रम होता है। सीपी चांदी को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। परन्तु मनुष्य भ्रान्ति से सीपी में चांदी समझ कर प्रसन्न होकर चांदी को उठाने दौड़ता है। वैसे ही ईश्वर मूल अज्ञान को विषय करके जगत् को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। परन्तु जीव ही अविद्या की सहायता से जगत् की कल्पना करता है।

चतुर्विध चैतन्य

व्यावहारिक सत्ता में व्यवहार चलाने के लिये एक ही चैतन्य शुद्ध ब्रह्म, जीव, ईश्वर तथा कूटस्थ चार प्रकार का चैतन्य है। शुद्ध ब्रह्म निरुपाधिक है। जगत् की रचना के लिये वह माया की कल्पना करके माया से जगत् रचने वाला ईश्वर है। अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है।

'एकं सद्विप्राःबहुधा वदन्ति' एक ही सद्ब्रह्म का विद्वान् अनेक रूप से वर्णन करते हैं। अब प्रश्न होता है कि वार्तिककार के आभासवाद, सर्वज्ञात्म मुनि के प्रतिबिम्बवाद, वाचस्पति मिश्र के अवच्छेदवाद इन तीनों में से किसका मत उत्तम है। माया अविद्या एक है या अनेक। इनमें भी किसी के मत में एक जीववाद, किसी के मत में अनेक जीववाद। एक जीववादी के मत में मुख्य अविद्या और मुख्य जीव एक हैं। परन्तु अन्तःकरण और संस्कार अनेक होने से अनेकत्व प्रतीत होता है। एक जीववाद तथा अनेक जीववाद में कौन सा उत्तम है। जगत् का कारण ईश्वर है या जीव। यदि जीव ने जगत् की सृष्टि की है तो दृष्टि सृष्टिवाद है। यदि ईश्वर आश्रित माया द्वारा जगत् रचा है तो यह साधारण सृष्टिवाद है। दृष्टि के अनुरोध से सृष्टि यह दृष्टि-सृष्टिवाद है। जैसे स्वप्नद्रष्टा जब तक सोता है तब तक स्वप्न का जगत् देखता है। इन सबमें कौन उत्तम सिद्धान्त है। इन सब संशयों का उत्तर देते हुये मधुसूदन स्वामी जी सर्वोत्तम सिद्धान्त को दिखाते हैं।

अज्ञानोपहितं बिम्बचैतन्यमीश्वरः। अज्ञान प्रतिबिम्बितं चैतन्यं जीव इति वा अज्ञानानुपहितं शुद्धं चैतन्यमीश्वरः। अज्ञानोपहितं च जीव इति वा मुख्यो वेदान्त सिद्धान्तः। एकजीववादाख्यः। इममेव च दृष्टि-सृष्टि वादमाचक्षते। अस्मिश्च पक्षे जीव एव स्व अज्ञान वशात् जगदुपादानं निमित्तं च दृश्यं च सर्वं प्रातीतिकम्। देह भेदाच्च जीवभेद भ्रान्तिः। एकस्यैव च स्वकल्पित गुरुशास्त्राद्युपवृंहित श्रवण, मननादि दार्ढ्यादात्मसाक्षात्कारे सति मोक्षः।

अज्ञान उपाधि वाला बिम्ब चैतन्य ईश्वर है। अज्ञान प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। अथवा अज्ञान अनुपहित शुद्ध चैतन्य ईश्वर है। अज्ञानोपहित चैतन्य जीव है। अथवा एक जीववाद वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है। इसे ही दृष्टि सृष्टिवाद कहते हैं। इस पक्ष में जीव ही अपने अज्ञान से जगत् का उपादान तथा निमित्त कारण है। सम्पूर्ण दृश्य प्रतीति मात्र है। शरीर भेद से जीव भेद की भ्रान्ति है। एक के द्वारा कल्पित गुरु शास्त्र आदि के (गीता उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र) श्रवण, मनन, निदिध्यासन से दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्म ज्ञान से आत्म साक्षात्कार होने से मोक्ष होता है।

व्याख्या—एक जीववाद के पक्ष में दो विकल्प हैं—१. एक जीव ही सभी शरीरों को अधिष्ठित करता है ? अथवा २. एक जीव एक शरीर का अधिष्ठान है ?

उत्तर—प्रथम विकल्प ठीक नहीं। एक शरीर के सुखादिकों का दूसरे में भान नहीं होता। यदि कहो कि शरीर का भेद नियामक है; तो कायव्यूह में दूसरों के शरीर के सुख-दुःखादि के अनुसन्धान का अभाव होने से। अतः दूसरा विकल्प ठीक है। यद्यपि इस विकल्प में एक शरीर एक ही जीव द्वारा अधिष्ठित है। विशेष रूप से निश्चित नहीं हो सकता। तथापि एक के द्वारा अधिष्ठित ही संसार में कहा जाता है। जो अधिष्ठित है वह एक ही जीव मुख्य है। दूसरे प्रतीत होने वाले जीव देवदत्त आदि मिथ्या भूत जीवाभास कल्पित हैं। जैसे अनेक जीववाद में भी यज्ञदत्त के स्वप्न में कल्पित देवदत्त आदिकों के शरीर मिथ्या हैं। वैसे ही एक जीववाद में भी गुरु शिष्य, वेद शास्त्र का श्रवण, मनन आदि एक मुख्य जीव में कल्पित है। वेदान्त के श्रवण मनन आदि से एक मुख्य जीव ही मुक्त होता है। दूसरे कल्पित होने से मिथ्या हैं। भाव यह है कि जैसे जागने पर स्वप्न के शरीर कल्पित प्रतीत होते हैं। वैसे ही परमार्थ में भी कल्पित सिद्ध होते हैं। यदि कोई प्रश्न करे—शुकदेव वामदेव आदि जीव मुक्त हुये हैं। तब तो अनेक हुये, एक कैसे ? यह सब जीवाभास हैं। परमार्थ में इनका अभाव होने से। जो शुकदेव के नाम से प्रसिद्ध है उनके मुक्त होने से। शुकदेव जी द्वारा कल्पित अनेकों जीवों का तथा जगत् का लय हो जाता है। जैसे स्वप्न में कल्पित जगने पर हाथी घोड़ों का लय होता है। अतः एक जीव ही सिद्ध हुआ। रास क्रीड़ा में जैसे एक ही मुख्य श्रीकृष्ण ने योग माया के प्रभाव से अनेक कृष्णों की रचना की। रास के अन्त में सबको अपने में लीन कर लिया। वैसे ही प्रातिभासिक जीव लीन होते हैं।

भाव यह है कि जैसे एक ही आकाश कल्पित अंशांशी भेद से मेघाकाश, मठाकाश, घटाकाश, आकाश के अंश के रूप में प्रतीत होता है। वैसे ही एक ब्रह्म अनेकों उपाधियों के कारण अनेकों अंशों में दीखता है। तीनों आचार्यों का प्रतिबिम्बवाद, आभासवाद तथा अवच्छेदवाद इन सबको मिथ्या मानता है। अर्थात् व्यावहारिक सत्ता तथा प्रातिभासिक सत्ता में मिथ्या, अनिर्वचनीय है। पारमार्थिक सत्ता में एक मात्र ब्रह्म ही शाश्वत सत्य है। अतः तीनों सिद्धान्तों में विरोध नहीं है।

॥इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे, पंचमोऽध्यायः॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्री विद्यारण्य स्वामी जी का ब्रह्म, जीवात्मा, ईश्वर एवं कूटस्थ ब्रह्म का विवेचन—श्री स्वामी जी पंचदशी के चित्र दीप छठे प्रकरण में लिखते हैं, कि—

यथा चित्रपटे दृष्टमवस्थानां चतुष्टयम्।
परमात्मनि विज्ञेयं तथावस्था चतुष्टयम्॥१॥
यथा धौतो घटितश्च लाञ्छितो रंजितःपटः।
चिदन्तर्यामी सूत्रात्मा विराट् चात्मातथेर्यते॥२॥
स्वतः शुभ्रोऽत्र धौतस्याद्घट्टितोऽन्न विलेपनात्।
मस्याकारै र्लाञ्छितः स्याद्रंजितो वर्णपूरणात्॥३॥
स्वतश्चिदन्तर्यामीतु मायावी सूक्ष्मसृष्टितः।
सूत्रात्मा स्थूल सृष्ट्यैव विराडित्युच्यते परः॥४॥
ब्रह्माद्यास्तम्बपर्यन्ताः प्राणिनोऽत्र जडा अपि।
उत्तमाधम भावेन वर्त्तन्ते पट चित्रवत्॥५॥
चित्रार्पित मनुष्याणां वस्त्राभासः पृथक्-पृथक्।
चित्राधारेण वस्त्रेण सदृशा इव कल्पिताः॥६॥

अर्थ—जैसे चित्रपट पर उसकी चार अवस्थायें दिखाई देती हैं। उसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म में माया से आरोपित परमात्मा की भी चार अवस्थायें जाननी चाहिये॥१॥

जैसे वस्त्र धुला हुआ, मांडी से युक्त, चित्रित तथा रंगा हुआ चार प्रकार का है। वैसे ही परमात्मा भी चित्, अन्तर्यामी, सूत्रात्मा तथा विराट् चार प्रकार का है॥२॥

१. मैल रहित धुला हुआ वस्त्र—टिप्पणी—जैसे मांडी (माया) लगा वस्त्र सूखने पर अकड़ जाता है। जब तक पानी से धुलकर मांडी नहीं निकलती। वैसे ही जीव में जब तक माया रूपी मांडी रहती है, तब तक इसमें अकड़ (अभिमान) रहती है। जब तक आत्म ज्ञान रूपी जल से नहीं धुलती, तब तक अकड़ बनी ही रहती है। **२. मांडी लगा हुआ घट्टित, ३. बेल बूटों से युक्त लांच्छित** तथा **४. रंजित** चार प्रकार हैं। वैसे ही परमात्मा माया तथा उसके तीन गुणों से रहित, **चिद्,** माया के योग से **अन्तर्यामी, समष्टि अपंचीकृत पंच महाभूत के कार्य, सूक्ष्म शरीर के योग से सूत्रात्मा** तथा पञ्चीकृत पंच महाभूतों के कार्य, समष्टि स्थूल शरीर की उपाधि के योग से **विराट्** कहा जाता है ॥३, ४ ॥ पट में विद्यमान चित्र के समान ब्रह्म से लेकर तिनके पर्यन्त प्राणी जड़ होने पर भी उत्तम, मध्यम, अधम भाव से वर्त्तते हैं ॥५ ॥ जैसे चित्र में लिखे हुये मनुष्य आदिकों के शरीर में अनेकों रंग के वस्त्र लिखे जाते हैं। वे देखने मात्र को हैं। शीत आदिकों का निवारण न करने के कारण वस्त्राभास हैं। वैसे ही परमात्मा में आरोपित (मिथ्या) देव आदिकों के शरीर भी चिदाभास में कल्पित हैं। (अर्थात् जीव भाव को प्राप्त हुये देव, मनुष्य, पशु पक्षी आदि का शरीर प्राप्त करके जीव जन्म-मरण रूपी संसार को प्राप्त होते हैं।) निर्विकार परमात्मा को नहीं ॥६ ॥

ईश्वर तथा जीव की सृष्टि

दोनों सृष्टियों के सम्बन्ध में ७वें "तृप्ति दीप" प्रकरण में चौथे श्लोक से आरम्भ करके लिखते हैं—

ईक्षणादि प्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता।
जागृदादि विमोक्षान्तः संसारो जीव कल्पितः ॥४ ॥

सृष्टि के रचने की इच्छा से लेकर प्रवेश पर्यन्त सृष्टि ईश्वर के द्वारा कल्पित है। भाव यह है कि सृष्टि रचने से पूर्व परमात्मा ने एक से अनेक होने का संकल्प किया। **"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय। तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्। अनेन जीवेनात्मनानु प्रविश्य"** जगत् को रचकर परमात्मा ने प्रवेश किया। बाद में उसने जीव रूप से प्रवेश किया। यह सृष्टि ईश्वर द्वारा रची है। जागृत् अवस्था से लेकर मोक्ष पर्यन्त संसार जीव द्वारा कल्पित है ॥४ ॥ कूटस्थ असंग परमात्मा होने पर भी अन्योन्याध्यास के कारण ब्रह्म जीव भाव को प्राप्त हुआ है।

अन्योन्याध्यास—जड़ का चेतन में अध्यास (मिथ्या प्रतीति) तथा चेतन में जड़ का अध्यास, तात्पर्य यह है कि अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) आदि जड़ हैं। इनको सुख, दुःख आदि द्वन्द्व व्यापते नहीं। शुद्धात्मा भी सुख-दुःख आदि से रहित है। तब प्रश्न होता है कि सुख दुःख किसे प्राप्त होते हैं ? इसका उत्तर बुद्धि में अधिष्ठान चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ने पर जड़ बुद्धि चैतन्य होती है। वह आत्मा से चैतन्यता लेकर मन को चैतन्य करती है। मन दसों इन्द्रियों को चैतन्य करता है। बुद्धि चैतन्य का संयोग होने पर बुद्धि की जड़ता अधिष्ठान चैतन्य में आती है। अधिष्ठान चैतन्य की चेतनता बुद्धि में आकर बुद्धि को चैतन्य करती है। इसी को चिज्जड ग्रन्थि कहते हैं। इसी को अन्योन्याध्यास भी कहते हैं। जैसे आग में तपाया हुआ लोहे का गोला लाल हो जाने पर वह अग्नि के समान लाल तथा जलाने वाला हो जाता है। लोहे के आकार को अग्नि प्राप्त करती है। यह दोनों के धर्मों का एक दूसरे में अध्यास (मिथ्या प्रतीति) है। इसी कारण जीव कर्त्ता, भोक्ता, सुखी दुःखी होता है। इससे यही सिद्ध होता है कि भ्रमवश जीव अध्यास के कारण संसारी होता है। भ्रम का तिरस्कार करने पर "असंगोऽहमस्मि" इस अनुभूतिजन्य ज्ञान से मुक्त होता है। अतः भ्रान्ति मूलक सृष्टि जीव की है तथा भ्रान्ति रहित सृष्टि ईश्वर की है।

कूटस्थ

पिछले प्रकरण में शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर तथा जीव तीनों का वर्णन किया गया। अब यहां कूटस्थ का वर्णन करेंगे। कूटस्थ दीप ८वें प्रकरण के आरम्भ में विद्यारण्य स्वामी जी लिखते हैं—

खादित्य दीपिते कुड्ये दर्पणादित्य दीप्तिवत्।
कूटस्थ भासितो देहो धीस्थ जीवेन भास्यते ॥१॥

आकाश में प्रकाशित सूर्य का प्रकाश दर्पण में पड़कर दीवार में पड़ने वाली चमक के समान, शरीर में स्थित कूटस्थ का प्रकाश भी बुद्धि तथा शरीर को प्रकाशित करने वाला प्रकाश कूटस्थ कहा जाता है।

व्याख्या—मुमुक्षुओं के लिये मुक्ति का साधन एक मात्र ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान है। यह ज्ञान तत् त्वं पदार्थ का शोधन किये बिना नहीं हो सकता। अतः विद्यारण्य स्वामी जी कूटस्थ दीप में त्वं पद के वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ, जीव तथा कूटस्थ दोनों के भेद का दृष्टान्त से निर्देश करते हैं। आकाश में चमकने वाले सूर्य से सम्बन्धित प्रकाश दीखता है। उससे प्रकाशित उसकी

किरणें दर्पण पर पड़कर लौट कर जब दीवार पर पड़ती हैं। तब उससे सम्बन्धित सूर्य के प्रकाश के समान, निर्विकार ब्रह्म से प्रकाशित शरीर तथा बुद्धि में स्थित चिदाभास से तीनों शरीर प्रकाशित होते हैं। इस दृष्टान्त से सूर्य का दीवार पर दो प्रकार का प्रकाश पड़ता है। पहला सूर्य का सीधा दीवार पर प्रकाश तथा दूसरा सूर्य का दर्पण पर पड़कर दीवार पर पड़ने वाला, प्रकाश के समान ही शरीर में भी दो प्रकार का प्रकाश पड़ता है। अनेक दर्पणों में स्थित सूर्य की मण्डलाकार विशेष प्रभा जो दिखाई देती है। इनकी संधि में सामान्य प्रकाश रूपी सूर्य की प्रभा अभिव्यक्त होती है। दर्पण को उल्टा कर देने पर दर्पण में विशेष प्रभा नहीं रहेगी। वास्तव में कूटस्थ शब्द के दो अर्थ हैं। **कूट = माया। स्थ = रहने वाला। माया में रहने वाला अधिष्ठान चैतन्य कूटस्थ है।** परन्तु वेदान्ताचार्यों को यह अभीष्ट नहीं है।

कूट = निर्विकार। स्थ = स्थित। अर्थात् **अपने शुद्ध निर्विकार सच्चिदानन्द घन स्वरूप में स्थित को कूटस्थ कहते हैं।** जैसे लोहार जिस लोहे के अहिरन के ऊपर अनेकों लोहे के टुकड़ों को काट पीट कर उस पर अनेक प्रकार के हंसिया, खुरपा, कुदाल आदि बनाता है। इन टुकड़ों में परिवर्तन होने पर भी अहिरन में विकार नहीं आता। वैसे ही कूटस्थ ब्रह्म में भी माया से जगत् की उत्पत्ति विनाश होने पर कोई विकार नहीं होता है। उसे कूटस्थ ब्रह्म कहा है। विद्यारण्य स्वामी जी लिखते हैं कि उसी प्रकार से चिदाभास से विशिष्टों का तथा चित्त में प्रतिबिम्बित अनेक प्रकार की बुद्धि की वृत्तियों का जागृत स्वप्न में बुद्धि की वृत्तियों का भाव रहता है। परन्तु सुषुप्ति, मूर्च्छा तथा समाधि में बुद्धि की वृत्तियों के अभाव को प्रकाशित करने वाले तत्त्व को कूटस्थ कहा है। अथवा—

संधयोऽखिलवृत्तीनामभावाश्चावभासिताः।
निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते॥२१॥

बुद्धि की अखिल वृत्तियों का प्रकाशक, अर्थात् एक वृत्ति के उत्पन्न होकर लय होने के बीच की सन्धियों का प्रकाशक निर्विकार चैतन्य कूटस्थ कहा जाता है। अब शरीर में स्थित कूटस्थ तथा चिदाभास का भेद प्रदर्शित करते हैं।

बुद्धि में स्थित ज्ञान शक्ति द्वारा घट-पट आदि के आकार के समान प्राप्त हुई बुद्धि की वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य जो घट पट आदि को प्रकाशित करता है, चैतन्य कहते हैं। **घट की ज्ञातता तथा अज्ञातता का साक्षी चैतन्य कूटस्थ है।**

अहंवृत्तौ चिदाभासः काम क्रोधादिकासु च।
संव्याप्य वर्त्तते तप्ते लोहे वह्निर्यथा तथा ॥१८ ॥

चिदाभास शरीर में कैसे व्याप्त है। इसे दृष्टान्त से बताते हैं। अग्नि से तप्त लौह में अग्नि जैसे भीतर बाहर व्याप्त है। वैसे ही चिदाभास की अहंकार वृत्ति में काम क्रोध आदि से युक्त शरीर में व्याप्त है।

शंका—शरीर में स्थित कूटस्थ तथा चिदाभास दोनों ही समान रूप में चैतन्य रूप से विद्यमान हैं। इसमें कूटस्थ और चिदाभास कैसे जाने जायें ?

उत्तर—शरीर में विद्यमान चैतन्य दो प्रकार के चैतन्य में से जो शुभाशुभ कर्म के वशीभूत होकर जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि को प्राप्त करता है। वह **चिदाभास** है। तथा सुख दुःख आदि से अतीत निर्विकार चैतन्य कूटस्थ है। अथवा अन्तःकरण की वृत्तियों के साक्षी को पूर्ववर्ती आचार्यों ने कूटस्थ निश्चित किया है। इसी को दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं।

आत्माभासाश्रयाश्चैवं मुखाभासाश्रया यथा।
गम्यन्ते शास्त्र युक्तिभ्यामित्याभासश्च वर्णितः ॥२६ ॥
बुद्ध्यावच्छिन्न कूटस्थो लोकान्तर गमागमौ।
कर्त्तुं शक्तो घटाकाश इवाभासेन किं वद ॥२७ ॥

जैसे मुखाभास (दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब तथा मुख) और उसका आश्रय दर्पण तीनों का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है। वैसे ही आत्माभासाश्रय आत्मा = अधिष्ठान चैतन्य, कूटस्थ। आभास = चिदाभास जीव। आश्रय = अन्तःकरण। शास्त्र तथा युक्ति से प्राप्त होते हैं। यहां आभास शब्द से कूटस्थ से भिन्न जीव कहा गया है। तथा मन बुद्धि का साक्षी कूटस्थ है। इसका प्रतिपादन उपनिषद् में **"रूपं-रूपं प्रतिरूपो बभूव"** अर्थात् प्रत्येक शरीर में प्रतिबिम्ब रूप से चिदाभास है, इसका प्रतिपादन किया गया है। भाव यह है कि शरीर में विकारी चैतन्य चिदाभास जीव है। तथा निर्विकार चैतन्य कूटस्थ है ॥२६ ॥ बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्य कूटस्थ, शरीर त्याग करके बुद्धि द्वारा लोकान्तर में आता जाता है। घटाकाश के समान है ॥२७ ॥

विद्यारण्य स्वामी जी आभासवाद का वर्णन करते हुये श्रुति प्रमाण उद्धृत करते हैं।

मायाभासेन जीवेशौ करोतीति श्रुतत्वतः।
मायिकावेव जीवेशौ स्वच्छौतौकाचकुम्भवत् ॥६० ॥

माया के आभास से काच तथा मृत्तिका के कुम्भ के समान उपाधि से श्रुति जीव और ईश्वर का भेद सिद्ध करती है। **जीवेशावभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति।** स्वयं ब्रह्म ही माया तथा अविद्या की उपाधि से अर्थात् अविद्या उपाधि से जीव तथा माया उपाधि से ईश्वर स्वयं होता है। यह श्रुति माया तथा अविद्या के अधीन चिदाभास तथा ईश्वर का प्रतिपादन करती है। जैसे पृथ्वी का विकार कांच तथा मृत्तिका कुम्भ होने पर भी स्वच्छ होने के कारण कांच, सूर्य प्रकाश को अधिक मात्रा में ग्रहण करता है। तथा मिट्टी का घड़ा थोड़ी मात्रा में। वैसे ही ईश्वर चैतन्य स्वच्छ होने के कारण अधिक मात्रा में, मलिन होने के कारण जीव कम मात्रा में चिदंश को ग्रहण करता है। नैष्कर्म्य सिद्धि में सुरेश्वराचार्य जी ने भी यही मत बताया है। इन्होंने अन्त में तीनों वादों का व्यावहारिक सत्ता में भेद होने पर भी वर्णन शैली में भेद होने पर भी अन्त में श्रुति प्रमाण से परमार्थ में अभेद सिद्ध किया है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुः न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥७१ ॥

परमार्थ में जगत् की न उत्पत्ति है न प्रलय, न कोई बद्ध है, न मुक्त होने के लिये साधक, न मुमुक्षु है न मुक्त है। इसे परमार्थता कहते हैं। अन्त में कूटस्थ ब्रह्म के अनुसन्धान करने वाले को कूटस्थ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

इमं कूटस्थदीपं योऽनुसन्धत्ते निरन्तरम्।
स्वयं कूटस्थ रूपेण दीप्यतेऽसौ निरन्तरम् ॥७६ ॥

जो मुमुक्षु निरन्तर इस कूटस्थ दीप का अनुसन्धान (श्रवण, मनन निदिध्यासन) करता है। वह सदैव कूटस्थ रूप से प्रकाशित होता है। अर्थात् विदेह कैवल्य मोक्ष प्राप्त करता है।

इस प्रकार पंचदशी ग्रन्थ में विद्यारण्य स्वामी जी ने सोपाधिक तीन, निरुपाधिक एक चैतन्य का वर्णन करते हुये प्रतिबिम्बवाद, आभासवाद तथा अवच्छेदवाद का प्रतिपादन करते हुये समन्वय किया है। इसमें प्रतिबिम्बवाद तथा आभासवाद का वर्णन किया। विस्तारभय के कारण अवच्छेदवाद नहीं लिखा। विद्वान् पाठक विद्यारण्य स्वामी के पंचदशी आदि ग्रन्थों से इसका समन्वय करें।

॥इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥

अथ सप्तमोऽध्याय:

श्री चन्द्रशेखर भारती महास्वामिन् (तृतीय) तथा ३५ आचार्य श्री अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज का जीवन वृत्त

उपर्युक्त लेखानुसार शृंगेरी मठ के आचार्यों में अभिनव नृसिंह भारती श्री सच्चिदानन्द भारती, (षष्ठ) श्री नृसिंह भारती, श्री सच्चिदानन्द भारती (२), श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती (सप्तम), श्री नृसिंह भारती (तृतीय), श्री सच्चिदानन्द भारती (द्वितीय), श्री अभिनव श्री सच्चिदानन्द भारती (अष्टम) श्री नृसिंह भारती जी के बाद श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव नृसिंह भारती जी हुये। इनके शिष्य तृतीय श्री चन्द्रशेखर भारती जी ने भी अपनी तपस्या विद्वत्ता तथा त्याग द्वारा अद्वैत सिद्धान्त का पूरे देश में प्रचार किया। देश में यत्र तत्र व्याख्यान सिंहासनों की स्थापना की। शृंगेरी की गुरु परम्परा में पांच वर्ष के ब्राह्मण बालक के उपनयन होने के अनन्तर मठ के ही गुरुकुलों में उनकी योग्यता, विषय ग्रहण शक्ति, संयमशीलता, धर्म शास्त्र दर्शनों का ज्ञान तथा कड़ी देख-रेख की जाती थी। इन बालकों में से जो खरे उतरते हैं। उन्हें उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती है। उन विद्यार्थियों में भी जिनमें पीठाचार्य होने की योग्यता होती है, उनकी कड़ी परीक्षा के अनन्तर संन्यास देते हैं। संन्यासी की और कठोरतम परीक्षा होती है। सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के अनन्तर पूर्ववर्त्ती आचार्य अपने उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त करते हैं। स्वामी चन्द्रशेखर भारती जी महाराज जी के गुरुवर्य अनन्त श्री अभिनव सच्चिदानन्द नृसिंह भारती जी थे। आप बाल्यावस्था से ही एकान्त सेवी, ध्याननिष्ठ थे। इसी आयु में आत्मानुभूति कर ली थी। गुरुवर ने शारदा देवी का संकेत प्राप्त करके इनको आचार्य बनाया। इन्होंने शंकराचार्य होकर पीठ का भार संभाला। इनके उत्तराधिकारी श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी हुये।

अनन्त श्री स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज

महाराज श्री का जन्म महाविद्वान्, अति श्रद्धालु, धार्मिक पं. राम शास्त्री जी के घर सन् १९१७ ई. १३ नवम्बर को हुआ। बालक का जात कर्म, नामकरण संस्कार हुआ। इनका नाम 'श्री निवास' रखा गया। आप बैंगलौर में जब माध्यमिक कक्षा में विद्याध्ययन कर रहे थे तभी

जगद् गुरु जी ने शृंगेरी बुला लिया। बाल्यावस्था में ही इनका खेल में मन न लगकर अध्ययन में ही लगता था। इस बुलावे को सुनकर माता-पिता को सन्तोष तथा चिन्ता दोनों हुईं। गुरुवर की कृपा से सन्तोष तथा वात्सल्य भाव के कारण चिन्ता हुई। अन्ततोगत्वा पुत्र को शृंगेरी विदा कर दिया।

संन्यास दीक्षा

श्री निवास जी का संन्यास २२ मई सन् १९३९ ई. में बाईस वर्ष की आयु में हुआ। जगद् गुरु जी ने श्री अभिनव विद्या तीर्थ महास्वामिन् यह योगपट्ट दिया। श्री गुरुदेव के चरणों में आपने भाष्य सहित प्रस्थानत्रयी का श्रवण आदि किया। शृंगेरी मठ को श्री शारदा शृंगेरी आम्नाय के नाम से भी कहते हैं। आम्नाय की व्युत्पत्ति में अनेकों विचार हैं। आम्नाय शब्द, संस्कृत की 'म्ना' धातु जो भ्वादिगणी है बना है। जिसका अर्थ म्नायते, अभ्यस्यते, आ उपसर्ग लगाने से आम्नाय शब्द बनता है। जिसका अर्थ **आम्नायते, आमनति धर्माधर्मो उपदिशति** होता है। आ समन्तात् अर्थ भली प्रकार से धर्माधर्म का लक्षण बताकर श्रवण के छः लिंगों सहित उपदेश करना आम्नाय है। अर्थात् जिस स्थान पर उपदेश होता है उस मठ को आम्नाय कहते हैं। आम्नाय वेद को भी कहते हैं। इस सनातन परम्परानुसार वेदादि शास्त्रों का प्रचार, प्रतिष्ठा आम्नाय पीठों पर निर्भर है। संन्यास के कुछ काल के अनन्तर अपने पीठ पर बालक को अभिषिक्त करके मठ का पूरा भार इनको सौंप दिया। बड़े महाराज जी ने जीवन पर्यन्त इनकी कड़ी परीक्षा करते हुये; ज्ञान में सागर के समान कर दिया। इन्होंने सन् १९३०-३१ के राष्ट्रव्यापी 'वारदोली' सत्याग्रह में भाग लिया। भारत स्वातन्त्र्य की इनकी विशेष इच्छा थी। अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज ने अपने हाथ के कते हुये मोटे खद्दर को काषाय रंग में रंग कर पहनना आरम्भ किया। इन्होंने भावात्मक एकता के विचार से भिन्न भाषाओं के होते हुये भी अनेक भाषाओं में ग्रन्थों के अनुवाद करवाकर भारत को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। सम्पर्क भाषाओं के रूप में हिन्दी को उपयुक्त समझा। आचार्य प्रवर हिन्दी, अंग्रेज़ी, संस्कृत, कन्नड़, तेलगू, मलयालम, तमिल आदि के विद्वान् थे। उत्तर भारतीयों के समान हिन्दी बोलते थे। आपात् दृष्टि से चांदी का सिंहासन सबको बड़ा अच्छा लगता है। वास्तव में वह चांदी या फूलों का सिंहासन न होकर शूलों का सिंहासन है।

इनकी दिनचर्या तीन भागों में विशेष रूप से बंटी थी। पहले त्रिकाल स्नान, सन्ध्या पूजन आदि। दूसरा आत्म चिन्तन, समय-समय पर स्थापित केन्द्रों में भ्रमण, तीसरा नैमित्तिक पर्वों

पर यज्ञादिकों का अनुष्ठान। समय-समय पर गुरु जी मार्ग दर्शन करते थे और करवाते थे। अपने शिष्य पर पूरा भार छोड़कर गुरु जी समाधिस्थ अधिक होने लगे। सन् १९५४ ई. २६ सितम्बर को महास्वामी ब्रह्मीभूत हुये। सन् १९१२ से १९५४ तक श्री चन्द्रशेखर भारती जी महाराज शारदा मठ के पीठ पर रहे।

पूर्ण अधिकार

१६ अक्तूबर सन् १९५४ ई. में श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज का विधिवत् अभिषेक हुआ। इसके अनन्तर पूरे क्षेत्र में भ्रमण करके प्रचार किया। इन्होंने धर्म तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वयात्मक प्रचार किया। साढ़े छः वर्ष तक सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। सन् १९६२ ई. में आप पंजाब का भ्रमण करते हुये जालन्धर पहुंचे। जून के महीने में श्री सनातन धर्म सभा माईं हीरा गेट, जालन्धर में आपका भाषण हुआ। भ्रमण काल में आपने नेपाल की भी यात्रा की।

एक बार आप तमिलनाडु में प्रचार कर रहे थे। कई वर्षों से वहां वर्षा नहीं हुई थी। स्वामी जी के पधारते ही वैसे ही वर्षा हुई जैसे महाराज रोमपाद के राज्य में शृंगी ऋषि के पहुंचने से वर्षा हुई थी। तब से तामिलनाडियों ने इनका नाम 'मलै स्वामी' (वर्षा का स्वामी) रखा। शृंगी ऋषि की तपःस्थली के धर्माचार्यों का ऐसा प्रभाव है। इनका प्रचार 'सर्वेषामविरोधेन' होता था। इन्होंने 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' इस शास्त्रीय वचन को अपने जीवन में उतारा था।

स्वभाव

वे अपने स्वभाव, व्यवहार तथा उपदेश से प्रत्येक व्यक्ति को चुम्बक जैसे लोहे को खींचती है, वैसे भी आकर्षित कर लेते थे। प्रत्येक के साथ घुल मिल कर ऐसे बातें करते थे मानों चिर परिचित हों। प्रेम की वह साक्षात् मूर्ति थे। सन् १९७४-७५ में आगरा में हमें दोनों मूर्तियों का दर्शन हुआ था। इनके प्रत्येक शब्द में आत्मीयता, सौहार्द तथा वात्सल्य भरा हुआ था। दर्शन करते ही भूख प्यास मिट जाती थी। आप वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों को अत्यन्त सरल तथा रोचक भाषा में समझाते थे। वे आने-जाने वाले भक्तों को प्रसाद बांटते थे। प्रसाद के लिये खेत में स्वयं कृषि कार्य करते थे। भक्तों के मना करने पर कहते थे। भक्तों को मुट्ठी भर प्रसाद देने के लिए स्वयं कृषि करना आवश्यक है। यह भी तपस्या का एक अंग है।

भगवान् की पूजा में आने वाले पत्र पुष्प अपनी देख-रेख में तैयार कराते थे। 'स्वयं दासाः तपस्विनः' यह आपका सिद्धान्त था।

शृंगेरी की गुरु परम्परानुसार वहां के पीठाधीश्वर वर्ष में केवल एक बार विजयदशमी के दिन सिंहासन पर विराजते थे। यह सिंहासन भगवती शारदा देवी के मन्दिर के समीप रहता है। उस समय का दृश्य बड़ा सुन्दर लगता है। उस दिन आचार्य अनेक रत्नों से विभूषित स्वर्ण मुकुट धारण करते हैं। चार ब्रह्मचारी चांदी के दो दण्ड और दो चामर धारण करते हैं। शृंगेरी के आचार्य तुंगा नदी का पुल पार करके नृसिंह वन में वास करते हैं। वहीं पर 'सच्चिदानन्द विलास' नामक भवन है। उसी में आचार्यपाद अनुष्ठान काल में रहते हैं। वहां पर परिकरों को छोड़कर दूसरा कोई नहीं जा सकता है। वहीं पर परम गुरु अभिनव सच्चिदानन्द, शिव नृसिंह भारती जी महाराज, श्री स्वामी चन्द्रशेखर भारती जी महाराज की समाधियां तथा मूर्तियां विराजमान हैं। स्वामी जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद वहीं पर इनकी भी समाधि तथा मन्दिर का निर्माण हो रहा है। वहीं पर समीप में भगवान् वेद व्यास जी की मूर्ति है। जहां पर व्यास पूजा का उत्सव सम्पन्न होता है। जगद् गुरु जी अपने गुरु चन्द्रशेखर भारती जी तथा परम गुरु नृसिंह भारती का पूजन करते थे।

सन् १९५४ ई. में भारत के राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद पधारे थे। उस समय श्री चन्द्रशेखर भारती तथा अभिनव विद्यातीर्थ दोनों थे। महा-तपस्वियों को देखकर बड़े प्रभावित हुये। दोनों की बातचीत का राष्ट्रपति पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनकी शंकाओं का समाधान किया।

"वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्" इस मन्त्र की व्याख्या करते हुये कहा करते थे कि चित्त शुद्धि तथा आत्म सिद्धि प्राप्त करने के लिये विकार रहित अन्तःकरण में चित्त रूपी घी की आहुति देने पर वाक् देवी की ज्ञान विज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। अतः इस ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये, ज्ञान विज्ञान रूपी अग्नि में चित्त रूपी आज्य की आहुति देनी होगी। यह ज्ञान रूपी यज्ञ का स्वरूप है। सद्गुरु देव इस यज्ञ के अध्वर्यु हैं। आचार्य की मौन तपस्या इस यज्ञ का मूल सूत्र है। धर्म सम्मेलन इस यज्ञ का बाह्य रूप है। प्रवचन मण्डप ज्ञान यज्ञ की यज्ञशाला है।

महाराज श्री योग्यतम विद्यार्थियों को सांख्य, न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, व्याकरण आदि स्वयं पढ़ाते थे। योग्यतम छात्र को आचार्य वर स्वयं पुरस्कृत करते थे। जगद् गुरु जी

धीरे-धीरे वृद्धावस्था को प्राप्त होने लगे। वे प्रायः अन्तर्मुख रहते थे। योग्य उत्तराधिकारी की खोज में थे। आद्य शंकर द्वारा स्थापित अद्वैत तत्त्व के प्रचार की उन्हें विशेष चिन्ता थी। अन्त में इन्होंने एक परम कृपापात्र शिष्य को इस के लिये चुना। उन्हें संन्यास देकर आचार्य ने भारती तीर्थ योगपट्ट किया। यह अत्यन्त तेजस्वी तथा महान् विद्वान् हैं। महाराज के ब्रह्मीभूत होने के बाद वर्तमान शृंगेरी के शंकराचार्य आप ही हैं। आप कार्य भार संभालने लगे हैं। यह पीठ आद्य शंकर से लेकर धार्मिक राजा, प्रजा तथा धनिकों की आर्थिक सहायता द्वारा चल रहा है।

तुंगा तीर के परम तपस्वी जगद् गुरु विद्यातीर्थ जी महाराज कर्म, भक्ति ज्ञान की त्रिवेणी हैं। सच्चिदानन्द विलास, ज्ञानानुसन्धान की कर्मशाला है। श्री विद्यातीर्थ जी महाराज इसके अधिष्ठाता हैं। जैसे नदी को बांधकर, मशीनें लगाकर पावर हाऊस में बिजली तैयार की जाती है। उस बिजली से अन्धकार दूर होता है। ऐसे ही इस आध्यात्मिक पावर हाऊस से उत्पन्न होने वाली ज्ञान रूपी विद्युत् अज्ञानान्धकार को दूर करके ज्ञान रूपी प्रकाश देकर विश्व को प्रकाशित करती है। ज्ञान वाहिनी तारों में विद्युत का संचार कराने के लिये एक मात्र स्विच दबाना पड़ता है। तब ज्ञानवाहिनी नाड़ियां जगमगा उठती हैं। इस प्रकाश में विश्व मानवता का दर्शन होगा। आपसी भेदभाव मिट जायेगा। मानव कल्याण भावना से प्रेरित चेतना विश्व का कल्याण करेगी।

इसके साथ ही शृंगेरी मठ के आचार्यों का अभिषेक सम्वत् एवं ब्रह्मीभूत सम्वत् संलग्न पृष्ठ में दिया जा रहा है। यह सम्वत् शृंगेरी मठ की मान्यतानुसार लिखा गया है। शृंगेरी को छोड़कर गोवर्द्धन, द्वारका शारदा, ज्योतिर्मठ तथा काम कोटि मठ की परम्परानुसार सभी मठ भगवान् भाष्यकार का काल उज्जयिनी विक्रम तथा ईसा से सैंकड़ों वर्ष पूर्व मानते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि आचार्यपाद का काल इन्होंने इतना पीछे क्यों कर दिया। शारदा मठ के अनन्त श्री स्वामी नृसिंह आश्रम जी महाराज के निर्णय तथा उन्हीं के अनुसार श्री शंकर राजराजेश्वराश्रम जी महाराज की परम्परा (विमर्श) के अनुसार जो निर्णय किया है। इसको नहीं मानते। यह लोग सर्वजित् राजा से प्राप्त हुई गुजराती की 'श्री शंकराचार्य समय' नामक पुस्तक, जिसमें उनके जीवन का पूरा तिथि पत्र दिया है, नहीं स्वीकार करते। महाराज सुधन्वा का ताम्र शासन, गुरु रत्न मालिका की सुषमा टीका को भी अप्रमाणित सिद्ध किया है। सुधन्वा के ताम्र

शासन के सम्बन्ध में लिखा है कि "इस ताम्र शासन की शैली प्राचीन ताम्र शासनों से नहीं मिलती। प्राचीन ताम्र शासन ब्राह्मी लिपि में लिखे गये थे। इस लिपि से देवनागरी में कब और किसने रूपान्तरित किया। इसमें कुछ शब्दों की गल्तियां भी बताई गयी हैं। इत्यादि, बहुत सी बातें ताम्र शासन के सम्बन्ध में आलोचनात्मक हैं। इन सबका उत्तर देने के लिये एक स्वतन्त्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। समय आने पर इसका उत्तर देंगे। हमने ब्राह्मी लिपि के सम्बन्ध में पुरी के वरिष्ठ शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी से पूछा था। उन्होंने कहा कि यह कल्पना मात्र है। देवनागरी लिपि अत्यन्त प्राचीन है। यदि आधुनिक मान भी ली जाये तो वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों, दर्शन शास्त्रों, पुराणों, रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थ तो अत्यन्त प्राचीन हैं। जिन विद्वानोंने ब्राह्मी से देवनागरी में रूपान्तर किया होगा। परम्परागत उन्हीं विद्वानों के शिष्य प्रशिष्यों ने ताम्र शासन का भी रूपान्तर किया होगा।

श्रृंगेरी में शांकर काल सम्बन्धी चतुष्पीठ सम्मेलन तथा निर्णय

श्रृंगेरी की ओर से प्रकाशित 'आद्य श्री शंकराचार्य का आविर्भाव काल समीक्षा व निर्णय" नामक पुस्तक में जो कि श्रृंगेरी शांकर मठ कालटी से प्रकाशित हुई है। इसके लेखक "वाराणसी राजगोपाल शर्मा" हैं। अपनी इस पुस्तक के अन्त में सन् १९७९ ई. १ मई में हुए सम्मेलन में दिये गये भाषणों में चारों शंकराचार्यों का संगृहीत मत देते हुये लिखते हैं। कि—"भगवत्पादाः द्वात्रिंशद्वर्षमात्र परिमिते स्वायुषि समस्त नास्तिक मतानि भारतादुत्सार्य सहस्राधिकासु समासु व्यतीतास्वपि अविकलस्य धर्ममार्गस्य स्थापका इत्यतस्ते परमशिवावतार भूता इत्युक्तिः नोत्प्रेक्षा नाप्यतिशयोक्तिः। अपितु स्वाभाविकोक्तिरेव।"

"भगवत्पाद श्री शंकर ने अपनी बत्तीस वर्ष की परिमित आयु में भारत से समस्त नास्तिक मतों को निकाला। उन्हें एक हजार वर्ष से अधिक व्यतीत हो चुके हैं। धर्म मार्ग के अविकल संस्थापक (निरन्तर) परम शिवातार भूत भगवान् शंकर के सम्बन्ध में। इस उक्ति में कोई उत्प्रेक्षा या अतिशयोक्ति नहीं है। वरन् स्वाभाविक विचार है।"

चारों आचार्यों के सम्मिलित भाषणों से चारों ने ही आचार्य जी का काल एक सहस्र वर्ष से अधिक स्वीकार किया है। इसी का निर्णय करवाने के लिये मैंने वाराणसी में पूज्यपाद महाराज श्री पुरी पीठाधीश्वर वरिष्ठ शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ के पास जाकर पूछा।

उन्होंने उत्तर में कहा कि मैंने तथा मेरे गुरुदेव ब्रह्मीभूत शारदा पीठाधीश्वर श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज ने भी दो सहस्त्र वर्ष से अधिक सिद्ध किया था। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले आचार्यों में महास्वामिन् जगद् गुरु शंकराचार्य अभिनवविद्यातीर्थ जी महाराज, अनन्त श्री जगद् गुरु शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज, गोवर्द्धन पीठाधीश्वर भी स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज तथा अनन्त श्री ज्योतिष पीठाधीश्वर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज विराजमान थे। स्वामी निरंजन देव जी ने कहा—मैंने तो "शिव रहस्य" के नवें अंश के सोलहवें अध्याय का प्रमाण देते हुए कहा था।

कलियुगे द्विसहस्त्रान्ते शंकरोऽवतरिष्यति।

कलियुग के दो हजार वर्ष बीतने पर भगवान् शंकर अवतरित होंगे। मैंने तो दो सहस्त्र वर्ष से अधिक कहा था। यही मत मेरे गुरुदेव श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज का था। केवल स्वामी अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज तथा शृंगेरी के विद्वानों का मत १२०० वर्ष का था। इनके कथनानुसार ऊपर जो सम्मिलित चारों शंकराचार्यों का **सहस्त्राधिकासु समासु व्यतीतासु** लिखा गया है। यह केवल शृंगेरी के जगद् गुरु ज्री तथा वहां के विद्वानों का मत है। शेष तीनों जगद् गुरुओं का नहीं है।

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, आनन्द गिरि, रत्न प्रभा तथा भामती यह चारों व्याख्याएं वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई से दो भागों में सम्बत् १९७० विक्रमी में छपी थीं। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग की भूमिका में श्री शंकराचार्य चरित्रम् के लेखक पंडित श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री के पुत्र श्री वेंकटाचल शर्मा जी ने शंकराचार्य के काल के सम्बन्ध में पृ० सं० ५४-५५ में कदली ब्राह्मणों का मत देते हुये लिखा है—"**वर्ष सहस्त्रद्वयात्प्राक् श्रीमच्छंकराचार्यः बभूव इति कदली ब्राह्मणाः आहुः।**" इतना ही नहीं प्रत्युत शृंगेरी की प्राचीन मान्यता भी दी गयी है। "**श्री शंकराचार्यावतारात्परं १६०० षोडश शतानि वर्षाणि व्यतीयुरिति शृंगगिरि निवासिनो विदुषो आहुः।** शृंगगिरि निवासी विद्वानों का कहना है कि श्री शंकराचार्य जी के अवतार को १६०० वर्ष बीत चुके हैं। इस ग्रन्थ को छपे ८१ वर्ष हो चुके हैं। अतः आज शृंगेरी की मान्यतानुसार १६८१ वर्ष हो चुके हैं। इनके यहां से प्रकाशित विभिन्न ग्रन्थों की विभिन्न तिथियों से सिद्ध होता है कि इनका मत स्थायी नहीं है।

'श्री पतञ्जलि चरितम्' के रचयिता आदित्य राजा के पिता श्री रामभद्र कवि ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि "गोविन्दभगवत्पादः श्री मच्छंकराचार्यस्य गुरुरित्यभ्युपगमे इदानीम् विक्रमार्क शकस्य सप्तत्युत्तर नवशत्यधिकैकसहस्रवर्षाणि (१९७० वर्षाणि गतानि। विक्रमार्क राज्य समयेऽस्य शकस्यारम्भात् प्रागेवाचार्याणां जन्मेति। किं च न्यूनाधिक्येन द्विसहस्र वर्षाणि गतान्याचार्यसमयादिति प्रतीयत इति केचिदाहुः। अत्र आदित्य नाम्नां चतुर्णां राज्ञां मध्ये प्रथमादित्यस्य (विक्रमादित्यस्य) विक्रमार्कस्य ग्रहणे तच्चरित्रादौ तच्छिष्यस्य श्रीमदाचार्यस्य च (तत्पितुः श्रीमदाचार्यरूप शिष्यसम्पत्ति सहितस्य वा) वर्णनमत्यावश्यकमपि तत्केनापि, तस्य विक्रमादित्यस्य सभायां स्थितैः प्रसिद्धैः पण्डितैर्वा न क्वापि कृतमिति।"

"इस समय विक्रमी सम्वत् का प्रारम्भ हुये १९७० वर्ष बीत चुके हैं। क्योंकि विक्रमी सम्वत् उनके राज्य गद्दी पर बैठने के समय से प्रारम्भ हुआ था। विक्रमादित्य नाम के चार राजा हुये। उनमें उज्जैन के विक्रमादित्य प्रथम का यह सम्वत् है। इनके सम्वत् से पूर्व ही श्री शंकराचार्य जी का जन्म तथा गोविन्द भगवत्पादाचार्य से संन्यास दीक्षा हो चुकी थी। विक्रमादित्य के चरित्र से पता चलता है कि विक्रम के पिता ने सारी सम्पत्ति आचार्य पाद के चरणों में अर्पित करके उनके शिष्य हो गयें थे।"

ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं। जिनसे श्री शंकराचार्य जी का जन्म विक्रम से सैंकड़ों वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। पीछे शंकराचार्य काल निर्णय में इस पर विस्तार से विचार हो चुका है। वहीं देखें।

शृंगेरी के समस्त आचार्यों की गुरु परम्परा सम्वत् सहित

पृ० सं० ४११ पर देखें।

१. शारदा शृंगेरी मठ में वीतराग जीवन्मुक्त सर्वशास्त्र निष्णात, ज्ञान की पंचम षष्ठ भूमिकाओं में पहुंचे हुये अनेक जगद् गुरु हो चुके हैं। जिनके नाम स्मरण करने मात्र से जीव सब दुःखों से मुक्त होकर परमगति प्राप्त करता है। यहां के प्रथम आचार्य से लेकर आज तक के सभी आचार्यों ने संस्कृत, कन्नड़, तमिल, तैलगू, अंग्रेज़ी, हिन्दी के प्रचुर साहित्य के माध्यम से वेद वेदान्त तथा दर्शनों आदि का लिखित तथा मौखिक प्रचार करके अनेक भ्रान्तियों को

दूर किया है । इस मठ की ओर से मुझे हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी का विपुल साहित्य प्राप्त हुआ है । मैं तथा सम्पूर्ण उत्तर भारत इस मठ का सदैव चिरऋणी रहेगा । मेरा शांकर सिद्धान्त तथा दर्शन सम्बन्धी कोई विरोध नहीं है । परन्तु आचार्य के काल तथा प्रथम आचार्य को लेकर द्वारका शारदा मठ तथा अन्य मठों की परम्परा में भेद के कारण मत भेद है ।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे सप्तमोऽध्यायः ॥७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

वर्तमान शृंगेरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री भारती तीर्थ महाराज

इस मठ के छत्तीसवें जगद् गुरु श्री भारती तीर्थ जी का जन्म पलाण्डू नामक ग्राम में गण्टूर जन पद में नगलरु नदी तट पर ११ अप्रैल, सन् १९५१ ई. को हुआ था । इनके पिता का नाम वेंकटेश्वर तथा माता का नाम अनन्था लक्ष्मा है । इनका नाम सीताराम अंजनेयू है । हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर इण्टर में प्रवेश किया । चार बहिनें थीं । इनके पिता प्रातः नदी में स्नान करके नदी तट पर ही शिव पार्वती का रुद्राभिषेक नित्य प्रति करते थे । साथ में बालक को भी ले जाते थे । बालक भी तत्परता से पूजन देखता था ।

जब इनकी पन्द्रह वर्ष की अवस्था थी । तब उज्जैन पहुंचे । वहां पर शृंगेरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज क्षिप्रा नदी में स्नान कर रहे थे । वहीं पर आचार्य का प्रथम दर्शन किया । इन्होंने तेलगू में उनसे वार्तालाप किया । उज्जैन से आप अपनी जन्म भूमि पहुचें । आचार्य जी ने ब्रह्मचारी से कुछ प्रश्न किये । वे उनके दर्शन तथा प्रवचन से प्रभावित थे । बचपन से ही आप अच्छी संस्कृत बोल लेते थे । विद्यालय में आपने विशेष पुरस्कार प्राप्त किया । ब्रह्मचारी की इच्छा आचार्य के चरण कमल छोड़ने की नहीं थी । वे घर से लौट कर आचार्य चरणों में पहुंचे । मन्त्र दीक्षा लेकर मठ में अध्ययन करने लगे । आठ वर्ष में आपने कृष्ण यजुर्वेद पूर्वोत्तर मीमांसा तथा न्याय का गम्भीर अध्ययन किया । इनका कौत्स गोत्र, कृष्ण यजुः शाखा तथा आपः स्तम्ब सूत्र है । विद्यार्थी काल में ही कवि सम्राट् श्री विश्वनाथ सत्य नारायण जी ने इनकी प्रशंसा करके पुरस्कृत किया था । आकाशवाणी केन्द्र

विजयवाडा के संस्कृत कार्यक्रमों में भाग लेते थे। आचार्य जी के पास आने से पूर्व इन्होंने अपने पिता जी से वेदों की संहितायें ब्राह्मण तथा आरण्यकों का अध्ययन किया था। गण्टूर जिले से "वेद प्रवर्धक विद्वत् परीक्षा" अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण की। आप अपनी मातृ भाषा तेलगू के समान संस्कृत, तमिल, कन्नड़, हिन्दी, अंग्रेज़ी आदि भाषायें बोल लेते हैं। संस्कृत में आपकी विशेष रुचि है। शृंगेरी में आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा केरल के शिष्य बहुत आते हैं।

संन्यास

सन् १९७४ ई. में आपका विधि विधान से संन्यास हुआ तथा भारती तीर्थ योग पट्ट दिया गया। इन्होंने अपने गुरुदेव के साथ सन् १९६५ में उत्तर भारत की यात्रा की। हिन्दी में उनके साथ भाषण भी देते थे। आप गुरु के अनन्य भक्त हैं। १९ अक्तूबर, सन् १९८९ को श्री विद्यातीर्थ जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर इस वैदिक सिंहासन पर शृंगेरी में आसीन हुये। यह स्थान मंठ के दक्षिण में तुंगा नदी के उस पार है।

भारत यात्रा

आपने वर्ष १९९४ ई. में सम्पूर्ण भारत की यात्रा आरम्भ की। लगभग तीन महीने आप नयी दिल्ली में अपने आश्रम में रहे। वहां से पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नगरों से होते हुये कुरुक्षेत्र, श्रीनगर, जम्मू, अमृतसर, जालन्धर, लुधियाना, लखनऊ, कानपुर, प्रयाग, हरिद्वार, वाराणसी आदि अनेक स्थानों में प्रचार किया। आपका भाषण अत्यन्त सरल, सारगर्भित, गागर में सागर वत् होता है। यत्र तत्र निष्काम भक्ति का ही उपदेश देते हैं। राम जन्म भूमि के विषय को लेकर आपने जगद् गुरु श्री स्वरूपानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी निश्चलानन्द जी महाराज पुरी पीठाधीश्वर के साथ भी सहयोग प्रदान किया। नये न्यास को लेकर विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल आदि ने विरोध भी किया। मैंने प्रत्यक्ष देखा कि आपके ऊपर मान अपमान का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निर्विकार भाव से प्रसन्न मुद्रा से सब सुनते तथा सहन करते रहे। आपने मेरी प्रार्थना से दण्डी आश्रम जालन्धर में पधार कर अपने प्रवचन, तथा दर्शनों से कृतार्थ किया। साथ ही शृंगेरी मठ की ओर से "अद्वैत वेदान्त विज्ञान शांकर भवन" के निर्माण में दस सहस्र मुद्रा प्रदान करके अनुगृहीत किया।

समय-समय पर देश के नेता भी आपके यहां दर्शन करके लाभ उठाते हैं। सभी शांकर मठों के आचार्यों की अपेक्षा आयु में कम होने पर भी विद्या ज्ञान तथा तपस्या में वरिष्ठ हैं।

भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे जगद् गुरु जी दीर्घ आयु प्राप्त कर वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत का प्रसार करते रहे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे चतुर्थ परिच्छेदे अष्टमोऽध्यायः ॥८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रृंगेरी मठ के उपपीठ

शारदा श्रृंगेरी मठ की अनेकों शाखायें हैं। उनमें रामेश्वरम्, संकेश्वर, पुष्पगिरि, कूडली तथा करवीर आदि हैं। इनमें से कुछ मठ नष्ट हो चुके हैं तथा कुछ वर्तमान हैं। इनमें से कूडली तथा करवीर प्रधान हैं। कूडली मठ की परम्परा नीचे दी जाती है।

नाम

१. श्री शंकराचार्य
२. श्री विश्वरूप भारती (सुरेश्वराचार्य)
३. श्री चिद्रूप भारती
४. श्री गंगाधर भारती
५. श्री चिद्घन भारती (चिद्रूप भारती)
६. श्री बोधघन भारती
७. श्री ज्ञानोत्तम भारती
८. श्री नृसिंह भारती
९. श्री ईश्वर भारती
१०. श्री नृसिंह भारती
११. श्री विद्या शंकर भारती
१२. श्री कृष्ण भारती
१३. श्री शंकर भारती

१४. श्री चन्द्रशेखर भारती	
१५. श्री सच्चिदानन्द भारती	
१६. श्री ब्रह्मानन्द भारती	
१७. श्री चिद्घन भारती	
१८. श्री पुरुषोत्तम भारती	
१९. श्री मधुसूदन भारती	
२०. श्री जगन्नाथ भारती	
२१. श्री विश्वानन्द भारती	
२२. श्री विमलानन्द भारती	
२३. श्री विद्यारण्य भारती	
२४. श्री विश्वरूप भारती (विद्यारूप भारती)	
२५. श्री बोधघन भारती	
२६. श्री ज्ञानोत्तम भारती	
२७. श्री ईश्वर भारती	
२८. श्री (विजय) शंकर भारती (भारती शंकर)	११५३ ई०
२९. श्री विद्यातीर्थ भारती	
३०. भारती तीर्थ	१३४६ ई०
३१. विद्यारण्य भारती	१३३६ से १३५० तक
३२. नृसिंह भारती	१३९३
३३. चन्द्रशेखर भारती	
३४. श्री रामचन्द्र भारती	
३५. श्री शंकर भारती	
३६. श्री नृसिंह भारती	१४०७ ई०
३७. श्री चन्द्रशेखर भारती	१४०९ से १४१५
३८. श्री पुरुषोत्तम भारती (रामचन्द्र भारती)	१४१८

३९. नृसिंह भारती (२)
४०. श्री मधुसूदन भारती
४१. श्री विष्णु भारती
४२. श्री गंगाधर भारती
४३. श्री नृसिंह भारती
४४. श्री शंकर भारती
४५. श्री पुरुषोत्तम भारती

विशेष—कूडली मठ के काल सहित परम्परा, कांची कामकोटि मठ से प्रकाशित "दि ट्रेडीशनीयल एज आफ शंकराचार्य एण्ड दि मठ" पुस्तक से ली है। यह पुस्तक 'एक नटराज अय्यर तथा एस० लक्ष्मी नृसिंह शास्त्री M.A.L.T. द्वारा लिखित है। इसमें ३०, ३१ में आचार्यों का काल ४९, ५० पर ६०, ६१, ६२, ६४ संख्या पर उल्लिखित आचार्यों का काल संदिग्ध है।

४६. श्री रामचन्द्र भारती — १५१३ से १५४७ तक
४७. श्री नृसिंह भारती — १५५७ से १६०९
४८. श्री विद्यारण्य भारती — १६०९ से १६५५ ई०
४९. श्री नृसिंह भारती — १६५५ से १६८२ ई०
५०. श्री शंकर भारती — १६८१ से १६९७ ई०
५१. श्री नृसिंह भारती — १६९७ से १७१३ ई०
५२. श्री शंकर भारती — १७१३ से १७२७ तक
५३. श्री नृसिंह भारती — १७२७ से १७५१ तक
५४. श्री शंकर भारती — १७५१ से १७६३ तक
५५. श्री नृसिंह भारती — १७६३ से १७६९ तक
५६. श्री शंकर भारती — १७६९ से १८०७ तक
५७. श्री नृसिंह भारती — १८०७ से १८२० तक
५८. श्री शंकर भारती — १८२० से १८५६ तक
५९. श्री नृसिंह भारती — १८५६ से १८५९ तक
६०. श्री शंकर भारती — १८५९ से १८७५ तक
६१. श्री नृसिंह भारती — १८७५ से १८९७ तक
६२. श्री नृसिंह भारती (शंकर भारती) — १८८४ से १८९१
६३. श्री विद्या शंकर भारती — १८९१ से १९०२ ई०
६४. श्री शंकर भारती — १९०१ से १९२४ तक

सत्य युग से लेकर अब तक कुल ६७५ आचार्य हुये। यह परम्परा विक्रमी सम्वत् १९७० तक की है।

६५.	श्री विद्या शंकर भारती	१९२४ से १९२५ तक
६६.	श्री वालुकेश्वर भारती	१९२५ से १९३३ तक
६७.	श्री विद्याभिनव भारती	१९३३ से १९३७ तक
६८.	श्री सच्चिदानन्द शंकर भारती	१९३७ से

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे चतु. परिच्छेदे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रृंगेरी मठ श्री गुरु परम्परा स्तोत्रम्

(गुरु वंश काव्यम् से)

शुद्धस्फटिक संकाशं शुद्ध विद्या प्रदायकम्।
शुद्ध पूर्णं चिदानन्दं सदाशिवमहं श्रये ॥१॥
सीमातीतमनाद्यन्तं नामोच्चारण भेषजम्।
कामिताशेष फलदं श्रीमद्विष्णुमहं श्रये ॥२॥
योगिहृत्पद्म निलयं नत जीव हितेरतम्।
श्रुतीनां जन्मभूमिं त्वां चतुर्मुखमहं श्रये ॥३॥
प्रसमाहितमत्यन्तं प्रथिमामित तेजसम्।
वशीकृत परानन्दं वशिष्ठं गुरुमाश्रये ॥४॥
शुक्तौरूप्यमिवाभाति यद्रूपं मयि कल्पितम्।
शक्त्या परिहृतं येन शक्तिं तं गुरुमाश्रये ॥५॥
करणातीतचिद्रूपं परिपूर्णं परायणम्।
परमानन्द सन्तुष्टं पराशरमहं श्रये ॥६॥
वेद व्यासं स्वात्म रूपं सत्यसन्धं परायणम्।
शान्तं जितेन्द्रियाक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम् ॥७॥

त्रिकालातीत चिन्मात्र प्रशान्त स्वान्त संयुतम्।
विकाराद्यैरसंस्पृष्टं शुकं गुरुमहं श्रये ॥८ ॥
गूढा माया यस्य वाक्यैर्व्रीडिता विलयं गता।
क्रीडन्तं विद्यया सार्द्धं गौडपादं तमाश्रये ॥९ ॥
जीवेश भेदरहितं नाविकं भववारिधेः।
भावाभाव-विदूरस्थं गोविन्दं गुरुमाश्रये ॥१० ॥

अर्थ—शुद्ध स्फटिक मणि के समान श्वेत, शुद्ध ब्रह्म विद्या के देने वाले, शुद्ध, पूर्ण, ज्ञानानन्द स्वरूप सदाशिव का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१ ॥ देशकाल वस्तु की सीमा से परे उत्पत्ति विनाश से रहित जिनका नाम कीर्तन औषधि है। सकाम भक्तों की सभी कामनाओं का फल देने वाले विष्णु का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२ ॥

योगियों के हृदय कमल में वास करने वाले, शरणागतों के हित में लगे हुये, श्रुतियों की जन्म भूमि चतुर्मुख ब्रह्मा .... ॥३ ॥

अत्यन्त निर्विकल्प समाधि में रहने वाले अर्थात् तीनों परिच्छेदों से रहित ब्रह्म में पूर्ण समाहित होने वाले, अति तेजस्वी, मन सहित इन्द्रियों को वश में कर परमानन्द में स्थित गुरु वशिष्ठ जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥४ ॥

माया में कल्पित, नाम, रूप, क्रिया मुझ में सीपी में चांदी के समान मिथ्या है। भाग त्याग लक्षणा से जिन्होंने माया में कल्पित तीनों का बाध कर दिया है। ऐसे शक्ति देव गुरु जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥५ ॥

दस इन्द्रिय (पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय) वहिः करण तथा मन, बुद्धि, चित्त अहंकार चार अन्तःकरणों से परे, ज्ञानस्वरूप, परिपूर्ण परा विद्या का आश्रय, परमानन्द में सन्तुष्ट पराशर जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥६ ॥

अपने स्वरूप में स्थित, सत्य प्रतिज्ञ, शान्त, जितेन्द्रिय होने के कारण क्रोध रहित, चारों शिष्यों सहित (पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु आदि) वेद व्यास जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥७ ॥

त्रिकालातीत, ज्ञान स्वरूप, प्रशान्त, संयत अन्तःकरण वाले, शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय के विकारों से रहित, शुकदेव गुरु जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥८ ॥

जिनके वचनों से गूढ़ा माया लज्जित होकर नष्ट हो जाती है। जो ब्रह्म विद्या के साथ खेल करते हैं। उन गौड़पादाचार्य जी का मैं आश्रय ग्रहण कहता हूं ॥९ ॥ जो संसार सागर के केवट, जीव ईश्वर के भेद रहित, भावाभाव से दूर गुरु श्री गोविन्द भगवत्पाद जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१० ॥

शंका रूपेण मच्चित्तं पंकीकृतमभूद्यया।
किंकरी यस्य सा माया शंकराचार्यमाश्रये ॥११ ॥
विश्वं माया मयत्वेन रूपितं यत्प्रबोधतः।
विश्वं च यत्स्वरूपं तं वार्तिकाचार्यमाश्रये ॥१२ ॥
अनाद्यविद्यामुत्सार्य प्रज्ञानघन रूपताम्।
यो बोधयति सच्छिष्यान् तं बोधघनमाश्रये ॥१३ ॥
सिता घनादि दृष्टान्तैर्यत्स्वरूपं श्रुतिर्जगौ।
प्रज्ञानाघन एवेति तं ज्ञानघनमाश्रये ॥१४ ॥
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं ज्ञानिनामुत्तमो यतः।
ज्ञानोत्तम इति ख्यातं गुरुं तमहमाश्रये ॥१५ ॥
ज्ञान विश्रेणिमालम्व्य ब्रह्माख्यं गिरिमुन्नतम्।
आरुह्य कृतकृत्यो यस्तं ज्ञानगिरिमाश्रये ॥१६ ॥
दुर्वादि दुष्ट मातंग विदारण पटीयसे।
नमः श्री सिंहगिरये गुरवे दिव्यचक्षुषे ॥१७ ॥
ईप्सितार्थप्रदो नित्यं प्रणतानां च देहिनाम्।
यतिरीश्वर तीर्थाख्यः तं नमामि गुरुं शिवम् ॥१८ ॥
श्रुतिमस्तक कूटस्थमज्ञान द्विपभेदिनम्।
श्रीमंत्र राजमूर्तिं तं नृसिंहं गुरुमाश्रये ॥१९ ॥
अविद्याछन्न भावानां नृणां विद्योपदेशतः।
प्रकाशयति यस्तत्त्वं तं विद्यातीर्थमाश्रये ॥२० ॥

जिसकी माया ने मेरे चित्त को शंका रूपी कीचड़ में डाल रखा है। वह माया जिसकी दासी है। उन शंकराचार्य का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥११ ॥ जिनके ज्ञानोपदेश से विश्व

मायारूप से भासित होता है। विश्व जिसका स्वरूप है, उन वार्तिक कार विश्वरूपाचार्य का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१२॥ जो अनादि अविद्या को दूर कर ब्रह्म के प्रकाश घन की ओर ले जाते हैं तथा जो सत् शिष्यों को ज्ञान देते हैं, उन बोध घन जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१३॥ जिसके स्वरूप को श्रुति ने मिश्री आदि के दृष्टान्तों से अर्थात् जैसे मिश्री बाहर भीतर से मधुर घन है (ठोस है) वैसे ही ब्रह्म प्रज्ञान घन है। ऐसा ज्ञानोपदेश करने वाले ज्ञान घनाचार्य जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१४॥ जिनका ज्ञानों में उत्तम ज्ञान तथा ज्ञानियों में उत्तम हैं। उन ज्ञानोत्तमाचार्य गुरु जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१५॥ जो ज्ञान भूमि का आश्रय लेकर ब्रह्मरूपी उत्तम पर्वत पर चढ़कर कृत कृत्य हो चुके हैं। उन ज्ञान गिरि जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१६॥ प्रतिपक्षी रूपी दुष्ट हाथियों को चीरने में जो सिंह के समान हैं। उन दिव्य चक्षु श्री नृसिंह गुरु को मैं प्रणाम करता हूं ॥१७॥ जो शरणागत भक्तों के इच्छित फलों को नित्य देते हैं। उन ईश्वर तीर्थ नामक यति गुरु को प्रणाम करता हूं ॥१८॥ जो वेद रूपी मस्तक पर स्थित होकर अज्ञान रूपी हाथियों को भेदन करने वाले श्री मंत्रराज मूर्ति नृसिंह नामक गुरु का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥१९॥ जो अविद्या से आच्छादित अर्थात् अज्ञानियों को विद्या का उपदेश देकर प्रकाशित करते हैं। उन विद्या तीर्थ जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२०॥

अज्ञानां जाह्नवी तीर्थं विद्यातीर्थं विवेकिनाम्।
सर्वेषां सुखदं तीर्थं भारती तीर्थमाश्रये ॥२१॥
अविद्यारण्य कान्तारे भ्रमतां प्राणिनां सदा।
विद्या मार्गोपदेष्टारं विद्यारण्यं गुरुं श्रये ॥२२॥
विद्याविद्याविवेकेन पारं संसार वारिधेः।
प्रापयत्यनिशं भक्तान् तं विद्यारण्यमाश्रये ॥२३॥
अविद्यारण्य संक्लेश कृशानु भृशतापितः।
संश्रये सततं भूत्यै चन्द्रशेखर चन्द्रिकाम् ॥२४॥
अविद्यारण्य द्विप द्वैधीभावे दक्षं समाश्रये।
नृसिंह भारतीशाख्य हरिं श्रुति गुहाश्रयम् ॥२५॥
पुरुषोत्तमतां यान्ति यमाश्रित्यजनाः श्रये।
क्षराक्षरमतीतं तं पुरुषोत्तम योगिनम् ॥२६॥

किंकरीकृत भूपालं पंकेरुह समाननम्।
तं कारुण्य पयोराशिं शंकराख्यं गुरुं श्रये ॥२७ ॥
चन्द्रिकाधवलोदारसान्द्र कीर्तिच्छटाधरम्।
इन्द्रियैर्दुर्जयं नौमि चन्द्रशेखर भारतिम् ॥२८ ॥
प्रसिद्ध विद्या निलयं लसमान गुणोत्कटम्।
विसजाक्षार्चकं भक्त्या नृसिंहतीर्थमाश्रये ॥२९ ॥
पुरुहूतादि देवौघ पौरुषेयगुणोत्कटम्।
पुरुषार्थप्रदं नौमि पुरुषोत्तम योगिनम् ॥३० ॥

अज्ञानियों का गंगा तीर्थ तथा विवेकियों का विद्या तीर्थ है। सभी को परमानन्द देने वाले तीर्थ रूप श्री भारती तीर्थ जी का आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२१ ॥ अविद्या रूपी वन में सदा घूमने वाले प्राणियों को ज्ञान मार्ग का उपदेश देने वाले विद्या अविद्या के विवेक से संसार रूपी सागर में पड़े हुये भक्तों को निरन्तर ज्ञान मार्ग का उपदेश करने वाले श्री विद्यारण्य गुरुओं का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२२ ॥२३ ॥ अविद्या रूपी बन में त्रिताप रूपी अग्नि में संतप्त कष्ट भोगने वाले, जो अपनी ज्ञान चन्द्रिका से निरन्तर शीतल करते हैं। उन श्री चन्द्रशेखर जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२४ ॥ अविद्या रूपी हाथी को खण्डित करने में दक्ष नृसिंह भारती रूपी हरि जो श्रुति रूपी गुफा में रहते हैं। उनका मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२५ ॥ क्षर अक्षर से परे जिस पुरुषोत्तम का आश्रय ग्रहण करके भक्त पुरुषोत्तमता को प्राप्त करते हैं उन पुरुषोत्तम योगी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२६ ॥ जिनका मुख कमल के समान है, तथा सभी राजाओं को अपना दास बना लिया है। उन करुणा सागर शंकर गुरु का मैं आश्रय लेता हूं ॥२७ ॥ पूर्णिमा की चांदनी के समान जिनकी कीर्ति रूपी प्रभा छिटकी हुई है तथा इन्द्रिय रूपी दुर्जय शत्रुओं को जिन्होंने जीत लिया है। उन चन्द्र शेखर भारती जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ब्रह्मविद्या जिनका घर है गुणों में सर्वश्रेष्ठ कमल नाभ विष्णु के अर्चक नृसिंह तीर्थ जी महाराज का मैं भक्ति से आश्रय ग्रहण करता हूं ॥२८ ॥२९ ॥ जिन्होंने अपने पौरुषेय उत्तम गुणों से दोषों को दूर कर दिया है, तथा भक्तों को मुक्ति रूपी पुरुषार्थ देने वाले हैं। पुरुषोत्तम नाम वाले उत्तम योगी को मैं प्रणाम करता हूं ॥३० ॥

कामद्विरद पंचास्य रामणीयक मन्दिरम्।
सोमोपमाननं श्रीमद् रामचन्द्र गुरुं भजे ॥३१ ॥

सुर सिन्धु लसत् कीर्ति स्मर सिंधु घटोद्भवम्।
नारसिंहार्चकं श्रीमन्नारसिंहयतिं भजे ॥३२॥
सारासार विवेकज्ञं मारकानन कुंजरम्।
शूरं दाने च निरतं नारसिंहयतिं भजे ॥३३॥
नृसिंहतां प्रयान्त्याशु यमाश्रित्य जनाः भुवि।
नृसिंह भारतिं वन्दे द्विगुणोपपदं सदा ॥३४॥
तं सर्वभूताभयदं विभवैरन्वितं परम्।
नारसिंह गुरुं चापि नवं ज्ञानार्णवं भजे ॥३५॥
सत्यस्वरूपं सद्ज्ञाननिष्ठं साक्षाच्छिवं परम्।
सदादान रतं दान्तं सच्चिदानन्दमाश्रये ॥३६॥
महामेरु समं धैर्ये माधुर्येऽप्यमृतोपमम्।
ऊहापोहार्थनिष्णातं नारसिंहं गुरुं भजे ॥३७॥
सच्चित्ताम्बुज मित्राय सच्चरित्रयुजे नमः।
सच्चिदानन्दभारत्यै सच्चिदानन्दमूर्तये ॥३८॥
सच्चिदानन्द भारत्यै नव्यायास्तु नमोऽनिशम्।
भव्यात्मज्ञान निर्धूता विद्याकार्योपलब्धये ॥३९॥
मारमातंगपंचास्यं मदसर्प द्विजर्षभम्।
नृसिंह भारतिं बन्दे जिताक्ष तुरगं सदा ॥४०॥
तत्त्वमस्यादि वेदान्त वाक्यार्थ ज्ञानवारिधेः।
पूर्णचन्द्र समं वन्दे सच्चिदानन्द योगिनम् ॥४१॥
अभिनव पद पूर्वान् सच्चिदानन्द संज्ञान्।
निगम शिखर वेद्यान् नित्य कल्याण रूपान् ॥
त्रिभुवन जन वन्द्यान् सर्वलोकैक हृद्यान्।
हृदयकमलमध्ये भावयाम्यम्बुजास्यान् ॥४२॥
प्रह्लाद वरदो देवो यो नृसिंहः परो हरिः।
नृसिंहोपासकं नित्यं, तं नृसिंहगुरुं भजे ॥४३॥

श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव्य।
नृसिंह भारत्यभिधान् यतीन्द्रान्॥
विद्यानिधीन् मन्त्र निधीन् सदात्म।
निष्ठान् भजे मानव शम्भु रूपान्॥४४॥
सदात्मध्याननिरतं विषयेभ्यः पराङ्मुखम्।
नौमि शास्त्रेषु निष्णातं चन्द्रशेखर भारतीम्॥४५॥
विद्यातीर्थाभिधाचार्यो, ह्यद्याभिनव पूर्वकः।
शृंगेरी शारदा पीठे विराजति जगद् गुरुः॥४६॥
विवेकिनं महा प्रज्ञां धैर्योदार्य क्षमानि धिम्।
सदाभिनव पूर्वं तं विद्यातीर्थं गुरुं भजे॥४७॥
जगद्गुरोरभिनव विद्यातीर्थ महागुरोः,
करानुग्रहसंजातः भारतीतीर्थ नामभाक्
अन्तर्भूनामा यतिराट् चाद्यभाति जगद्गुरुः॥४८॥
भारते भारती ह्येषा भारति रूपेण स्थिता।
तं देवं भारती तीर्थं नित्यमेव नमाम्यहम्॥४९॥
गुरु र्ब्रह्मा गुरु र्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

इति श्री गुरु परम्परा स्तोत्रम् सम्पूर्णम्॥

इस भारत में यह भारती (सरस्वती) ही भारती (भारती तीर्थ) रूप से स्थित हैं। उन श्री भारती तीर्थ जी को मैं नित्य प्रति प्रणाम करता हूं॥४८॥

जिनका हृदय रूपी मन्दिर, कामादि हाथियों के विनाश करने में सिंह की गुफा के समान है तथा जिनका मुख रमणीय चन्द्रमा के समान है। उन श्री राम चन्द्र गुरु का मैं भजन करता हूं॥३१॥ देवता रूपी कीर्ति में जो अगस्त्य मुनि के समान हैं, उन नृसिंह भगवान के पूजारी श्री नृसिंह यति को मैं भजता हूं॥३२॥

नित्य अनित्य के विवेकी, काम रूपी वन का विनाश करने में जो हाथी के समान, ऐसे शूर (कामादि शत्रुओं को नष्ट करने वाले) दानशील नृसिंह यती का मैं भजन करता हूं॥३३॥

पृथ्वी पर जिनका आश्रय लेकर मनुष्य शीघ्र नृसिंहता को प्राप्त करता है अर्थात् ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है। ऐसे अभिनव नृसिंह भारती जी की मैं सदैव वन्दना करता हूं ॥३४॥ सभी प्राणियों को अभय देने वाले परम वैभव से युक्त ज्ञान रूपी सागर अभिनव नृसिंह भारती जी का मैं भजन करता हूं ॥३५॥ सत्य स्वरूप, सद्ज्ञान निष्ठ, साक्षात् परमशिव रूप, सदा दानरत, दशों इन्द्रियों को वश में करने वाले श्री सच्चिदानन्द जी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥३६॥ जो धैर्य में महामेरु के समान मधुरता में अमृत के समान, शास्त्रीय तर्क वितर्क में कुशल नृसिंह गुरु जी का मैं भजन करता हूं ॥३७॥ जो सच्चित् रूपी कमल के लिए सूर्य के समान सच्चरित्रवान् सच्चिदानन्द स्वरूप श्री सच्चिदानन्द भारती जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥३८॥कार्य सहित अविद्या का नाश करके भव्य आत्म ज्ञान की प्राप्ति के लिये मैं निरन्तर अभिनव सच्चिदानन्द भारती जी को प्रणाम करता हूं ॥३९॥ कामरूपी हाथी के लिये सिंह के समान, तथा अभिमान रूपी सर्प के लये गरुड़ के समान, इन्द्रिय रूपी घोड़ों को जीतने वाले नृसिंह भारती जी को प्रणाम करता हूं ॥४०॥ वेदान्त के "तत्त्वमस्यादि" महावाक्यों के अर्थ ज्ञान रूपी सागर के लिये पूर्ण चन्द्र तुल्य सच्चिदान्द योगी की मैं वन्दना करता हूं ॥४१॥ वेद रूपी शिखर के द्वारा जानने योग्य, नित्य कल्याण स्वरूप, त्रैलोक्य वन्द्य, सर्वलोक सुहृद, श्री अभिनव सच्चिदानन्द भारती जी की हृदय रूपी कमल में भावना करता हूं ॥४२॥ भक्त प्रह्लाद को वर देने वाले देव नृसिंह हरि के उपासक नृसिंह भारती गुरु जी का मैं सेवन करता हूं ॥४३॥ विद्या निधि, मन्त्र निधि, सदात्मनिष्ठ, मानव रूप में अवतरित हुये यतिराज श्री सच्चिदानन्द शिवाभिनव भारती जी को भजता हूं ॥४४॥ जो विषयों से विमुख होकर सदा आत्म ध्यान में निरत हैं। सर्व शास्त्र निष्णात श्री चन्द्रशेखर भारती जी को मैं प्रणाम करता हूं ॥४५॥ शृंगेरी शारदा पीठ में विराजमान अभिनव श्री जगद् गुरु विद्या तीर्थ जी को प्रणाम करता हूं ॥४६॥

गुरु वंश काव्यम् का दूसरा संस्करण सन् १९६६ ई० वाणी विलास श्री रंगम् से प्रकाशित हुआ था। अतः इस ग्रन्थ में इन्हीं तक की वन्दना है। भारती तीर्थ की नहीं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, चतुर्थ परिच्छेदे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

॥चतुर्थ परिच्छेदं सम्पूर्णम्॥

शृङ्गगिरि (ङ्गेरी) मठाधिपानाम्-(वर्तुलांगुलद्वयसनक्षत्रमुद्रा)

॥श्री ॥

श्रीः
विद्याशंकर

"श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषड्दर्शनस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलनिगमागमसारहृदयसांख्यत्रयीप्रति-पादकवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रादिराजधानीकर्नाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्राजाधिराजगुरुभूमण्डलाचार्यऋष्यशृङ्गपुरवराधीश्वरतुङ्गभद्रातीरवासश्रीमद्विद्याशङ्करपादपद्माराधकश्रीमदभिनवसच्चिदानन्दभारतीस्वामिकरकमलसंजातश्रीशृंगेरीश्रीनृसिंहभारतीस्वामिभिः ॥"

कूडली (लगी) मठाधिपानाम्

(वर्तुलार्धांगुलद्वयसमुद्रा)

श्री
विद्याशङ्कर

"(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठागरिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषड्दर्शनस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलवेदार्थप्रकाशकसाङ्ख्यत्रयीप्रतिपालकसकलनिगमागमसारहृदयवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रादिराजधानीविद्यानगरमहाराजधानीकर्नाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्राजाधिराजगुरुभूमण्डलाचार्य तुङ्गभद्रातीरवास ऋष्यशृङ्गपुरवराधीश्वर) श्रीशृङ्गेरी (कूडली) श्रीविद्याशङ्करदेवदिव्यश्रीपादपद्माराधकशृङ्गेरीश्रीनृसिंहभारतीस्वामिकरकमलसञ्जातशृङ्गेरीश्रीशङ्करभारतीस्वामिभिः ।"

श्री शंकराचार्य चरित्रम्

आमनिष्ठाधिपानाम्

(अर्धांगुलद्वयसचतुरस्रमुद्रा) —श्री विद्याशंकर

श्री
विद्याशंकर

"(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टांगयोगानुष्ठाननिष्ठागरिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषड्दर्शनस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलवेदार्थप्रकाशकसाङ्ख्यत्रयीप्रतिपालकसकलनिगमागमसारहृदयवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रादिराजधानीविद्यानगरमहाराजधानीकर्नाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्राजाधिराजगुरुभूमण्डलाचार्यतुंगभद्रातीरवासऋष्यशृंगपुरवराधीश्वर) श्रीशृंगेरीश्रीविद्याशङ्करदेवदिव्यश्रीपादपद्माराधकश्रीशृंगेरीश्रीविद्यारण्यभारतीस्वामिनांकरकमलसंजातश्रीशृंगेरीश्रीमदाभिनवोद्दण्डविद्यारण्यभारतीस्वामिभिः।"

करवीरमठाधिपानाम्

अनेकशक्तिसंघट्ट प्रकाशलहरीघनः।
ध्वान्तध्वंसोविजयते विद्याशङ्करभारती॥

"स्वस्तिश्रीमत्समस्तसुरवृन्दपूजितपादारविन्दशिवप्रतिबिम्बवर्यश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारध्यानधारणासमध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्राप्तषड्दर्शनसंस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलनिगमागमसारहृदयसांख्यत्रयप्रतिपादकसकलनास्तिकमतोच्छेदपूर्वकसकलधर्मसंस्थापनैकधुरीणवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीमहाराजधानीऋष्यशृंगपुरवराधीशश्रीमद्राजाधिराजगुरुमण्डलाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यान्वयसंजाताभिनवपञ्चगङ्गातीरवासकमलानिकेतनकरवीरसिंहासनाधीश्वरश्री (सच्चिदानन्द) विद्यानृसिंहभारतीकरकमलकिञ्जल्कोद्भवश्रीमदभिनव (सच्चिदानन्द) विद्याशंकरभारतीस्वमिभिः।"

श्री शंकराचार्यचरित्रम्

पुष्पगिरिमठाधिपानाम्

(पादहीनांगुलद्वयद्वयसमचतुरस्रमुद्रा) —श्री विद्याशङ्कर

श्रीशृङ्गगिरिविरूपाक्षश्रीपुष्पगिरिश्रीआलम्पुरि श्रीविद्याशङ्कर-करकमलसञ्जातश्रीविद्यानृसिंहभारतीस्वामिनः

"(श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणयमनियमासनप्रा-णायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठागरिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्न-गुरुपरम्पराप्राप्तसाम्प्रदायकषड्दर्शनस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलवेदार्थप्र-काशकसांख्यत्रयीप्रतिपालकसकलनिगमागमसारहृदयवैदिकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वत-न्त्रादिराजधानीविद्यानगरमहाराजधानीकर्नाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्राजाधिराज-महाराजगुरुभूमण्डलाचार्यतुङ्गभद्रातीरवासऋष्यशृङ्गगिरिपुरवराधीश्वर) श्रीशृङ्गगिरिविरू-पाक्षश्रीपुष्पगिरिपिनाकिनीतीरवासश्रीशैलश्रीआलम्पुर्यादिसमस्तपीठाधीश्वरश्रीमदभिनवो-द्दण्डविद्यानृसिंहभारतीगुरुपादपद्माराधकश्रीमदभिनवोद्दण्डविद्याशङ्करभारतीकरकमलसं-जातश्रीमद्भिनवोद्दण्डविद्यानृसिंहभारतीस्वामिनः।"

विरूपाक्षमठाधिपानाम्

(सार्धांगुलद्वयसवर्तुलाकारपुष्पमुद्रा) —श्री विद्याशंकर।

श्री
विद्याशंकरमहीपाल
मुद्रा

'श्रीमत्परमहंसपविव्राजकाचार्यवर्यपदवाक्यप्रमाणपरावारपारीणयमनियमासनप्राणा-यामप्रत्याहारध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठावरिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरु-परम्पराप्राप्तषड्दर्शनस्थापनाचार्यव्याख्यानसिंहासनाधीश्वरसकलवेदार्थप्रकाशसांख्यत्रयीप्र-तिपालकसकलनिगमागमसारहृदयवैदीकमार्गप्रवर्तकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रादिराजधानीविद्यान-गरमहाराजधानीकर्नाटकसिंहासनप्रतिष्ठापनाचार्यश्रीमद्राजाधिराजमहाराजगुरुभूमण्डला-चार्यतुङ्गभद्रातीरवासऋष्यशृङ्गगिरिपुरवराधीश्वरश्रीशृङ्गगिरिविरूपाक्षश्रीविद्याशङ्करदेवदि-व्यश्रीपादपद्माराधकश्रीमदभिवनशङ्करभारतीस्वामिकरकमलसंजातश्रीमदभिनवाद्दण्डनृसिंह भारतीस्वामिभिः"

अथ श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पंचम परिच्छेद

अथ प्रथम अध्यायः

द्वारका शारदा मठ के आचार्यों की परम्परा

शृंगेरी मठ के आचार्यों की परम्परा के अनन्तर शारदा मठ की परम्परा लिखते हैं। केवल ज्योतिर्मठ को छोड़कर पुरी, शृंगेरी, शारदा तथा कामकोटि के आचार्यों में प्रथम आचार्य के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद पाया जाता है। इसका दिग्दर्शन पीछे शंकराचार्य के काल निर्णय के अन्तर्गत दिखाया जा चुका है। इस पीठ की परम्परा सुधन्वा के ताम्र शासन तथा 'श्री शंकराचार्य समयम्' नामक पुस्तकानुसार इस पीठ के प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वर हुये। वे चैत्र कृष्ण-अष्टमी यु. सं. २६९१ तक रहे। (२६४९ से २६९१ तक ४२ वर्ष)। विमर्श में श्री ब्रह्म स्वरूपाचार्य दूसरा नाम सुरेश्वराचार्य लिखा है। परन्तु कुछ ग्रन्थों के अनुसार श्री सुरेश्वराचार्य के अनन्तर **श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य** का नाम आता है। श्री ब्रह्मस्वरूपाचार्य के सम्बन्ध में 'श्री शंकर विजय मकरन्द' ग्रन्थ के ३२वें आस्वाद में लिखा है कि सर्वज्ञात्म मुनि कामकोटि के प्रथम आचार्य हुये। सुरेश्वराचार्य को इनका संरक्षक नियुक्त किया। इन्होंने ब्रह्म स्वरूपाचार्य को व्याकरणं, वेदान्त पढ़ाया तथा आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। 'श्री शंकराचार्य' नामक ग्रन्थ के २२२ पृष्ठ पर 'पं. वलदेव उपाध्याय' जी लिखते हैं कि सर्वज्ञात्म मुनि ने आद्य शंकराचार्य जी से संन्यास लिया। तथा श्री शंकराचार्य जी ने इस बालक को **कामकोटि शारदा** मठ का अधीश्वर बनाया और श्री सुरेश्वराचार्य को संरक्षक नियुक्त किया। वह बाल संन्यासी ही सर्वज्ञात्म मुनि के नाम से विख्यात हुये और ११२ वर्ष तक कांची पीठ पर अधीश्वर रहे। इनकी जन्म भूमि 'पाण्ड्य प्रदेश' में थी। यह द्राविड़ ब्राह्मण थे और इनका पहला नाम 'महादेव' था। "संक्षेप शारीरिक" एवं "सर्वज्ञ बिलास" इनकी दो कृतियां हैं। कुछ काल तक द्वारका में रहकर इन्होंने पद्मपाद के उत्तराधिकारी श्री ब्रह्मस्वरूप जी को पढ़ाया। कलि सम्वत् २७३७ में वैशाख कृष्ण चतुर्दशी को काञ्ची में शरीर त्याग दिया। पं. बलदेव उपाध्यायं जी का यह कथन कामकोटि की गुरु परम्परानुसार है। परन्तु शारदा मठ की गुरु परम्परा से भी सुरेश्वराचार्य ही प्रथम आचार्य सिद्ध होते हैं। पद्मपादाचार्य नहीं। श्री सुरेश्वराचार्य तथा

ब्रह्मस्वरूप यह दोनों भिन्न हैं या एक हैं। यह सन्दिग्ध है। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि इन्होंने 'संक्षेप शारीरिक भाष्य' तथा 'सर्वज्ञ बिलास' नामक दो रचनायें कीं।

१. श्री सुरेश्वराचार्य, शारदा पीठ के प्रथम आचार्य

श्री शारदा पीठस्थ मुख्य आचार्यों का जीवन चरित्र

२. श्री नारायणेन्द्र सरस्वती—श्री शंकराचार्य द्वारा रचित "पंचीकरणम्" नामक ग्रन्थ की छः संस्कृत टीकायें गुजराती प्रेस बम्बई से सन् १९३० ई. में प्रकाशित हुईं थीं। इसमें दूसरी व्याख्या के कर्त्ता **"श्रीमदाद्य शंकराचार्य स्थापितं द्वारका पीठमलंकुर्वद्भिस्तत्पथमनुसरद्भिः श्री नारायणेन्द्र सरस्वतीभिः विरचितं पंचीकरणवार्तिकाभरणम्"** इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि श्री नारायणेन्द्र सरस्वती जी द्वारका पीठ के आचार्य नहीं थे। किन्तु इस मठ को अलंकृत करने वाले किसी शंकराचार्य के शिष्य थे। क्योंकि द्वारका पीठ के आचार्यों की परम्परा में इनका नाम नहीं है। इन्होंने सुरेश्वराचार्य के वार्तिक पर 'पंचीकरण' नाम की टीका की है।

३. श्री आनन्द[६७८] **गिरि जी**—आचार्य पाद भगवत् शंकर के गीता उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र के टीकाकार श्री आनन्द गिरि महाराज की पंचीकरण पर विवरण व्याख्या है।

४. श्री श्रीरामतीर्थ[६७९] **जी**—इनका समय वि. सं. १६०० है। इस ग्रन्थ में इनको भी द्वारका पीठाधीश्वर कहा है। इन्होंने श्री आनन्द गिरि जी के कठिन शब्दों तथा वाक्यों की कठिनाई को दूर करने के लिये विवरण ग्रन्थ पर 'प्रत्यक्तत्त्वचन्द्रिका' नाम की टीका की थी।

५. श्री शान्त्यानन्द सरस्वती जी—इनका समय वि. सं. १९७२ से १९८२ तक का है। इन्होंने पंचीकरण पर "अद्वैतागम" नाम की टीका की है।

इस ग्रन्थ के अनुसार पांचों ही द्वारका शारदा पीठ के शंकराचार्य हुये। **श्री शान्त्यानन्द** जी महाराज के समय में ही द्वारका मठ के ज्ञान मन्दिर में, भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य सहित प्रारम्भ से शान्त्यानन्द पर्यन्त सभी जगद् गुरुओं की संगमरमर की मूर्तियों की स्थापना महाराज बड़ौदा नरेश **"सयाजी राव वर्मा"** ने अपने मन्त्री **"मनुभाई शर्मा जी"** की प्रेरणा से की थी

तथा मठ का जीर्णोद्धार, वि. सं. १९८२ फाल्गुन शुक्ल तृतीया को किया। उस समय श्री शंकराचार्य सम्वत् २३९१ था।

श्री शारदा द्वारका मठस्थ शिलालेखः

॥श्री शारदा विजयतेतराम्॥

श्रीमदाद्यशंकराचार्य भगवतः जगद् गुरोः स्थानमिदम् शारदामठाख्यः। त्रयोविंशति शतात्पूर्वं श्रीमत्सुधन्वा सम्राट् साम्राज्ये भगवता भाष्यकारेण संस्थापितम्। काल स्वभावतः मठस्यास्य संजीर्णता संजाता। अतोऽद्य श्रीमता महाराजेन संयाजी राव वर्मणा बड़ौदाधिपतिना मठस्यास्य जीर्णोद्धारं कृत्वा, भगवदाद्यशंकर प्रभृतीनां साम्प्रतिकं पंच सप्तितमः पीठाधीशः श्री शान्त्यानन्द सरस्वती शंकराचार्य-पर्यन्तानां जगद्गुरूणां प्रतिमाः प्रतिष्ठाप्य स्व-कर्त्तव्यमजस्रमनन्य शारदा पीठ भक्ति प्रदर्शनं चकार। फाल्गुन शुक्ल तृतीयायां सोमवारे १९८२ विक्रमाब्दे।

अस्य च प्रेरको मन्त्री महोदयो मनुभाई शर्मा। महाराज संयाजी राव वर्मा च चिरं समुल्लस्यताम्। कीर्त्या मत्या च। श्री शंकराब्दः २३९१॥

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, प्रथमोऽध्यायः॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शारदा मठ (द्वारका) के ७१ से लेकर अन्तिम आचार्यपर्यन्त आचार्यों की क्रमबद्ध चरितावली

इस मठ में विक्रमी सम्वत् १९२८ में ब्रह्मीभूत हुये अनन्त श्री स्वामी दामोदराश्रम जी पर्यन्त आचार्यों की निर्विवाद परम्परा चलती रही। इनके बाद बहत्तरवें (७२वें) आचार्य स्वामी केशवाश्रम जी महाराज आश्विन कृष्ण सप्तमी १९३५ वि. सं. तक ७ वर्ष रहे। इनके बाद श्री स्वामी राजराजेश्वर शंकराश्रम जी महाराज रहे। इनका संक्षिप्त जीवन चरित्र नीचे दिया जाता है।

अनन्त श्री स्वामी राजराजेश्वर शङ्कराश्रम जी महाराज—दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी जनपद के राज नरेन्द्रपुर मण्डल में 'पुलुगुर्त्त माचवरं' नामक महा अग्रहार

है। उसमें वेलनाटि श्रेणी के तैलंग ब्राह्मण रहते थे। इसकी ३२ पीढ़ी बीतने के अनन्तर वेद वेदांग पारंगत विद्या पारावार पारीण, वैदिक यागादि करने में परम कुशल, श्रोत्रिय, वन्दनीय, मीमांसकाचार्य, अद्वैत सिद्धान्त के धुरन्धर, बौद्ध मत के खण्डन कर्त्ता, विद्वान् रूपी नक्षत्र माला में चन्द्रमा के समान देदीप्यमान एक ब्राह्मण वंश था। इस परिवार में 'वेमूरिवारु' नाम के वंश में अध्वरि नागेश नामक ब्राह्मण थे। इनकी तैत्तिरीय शाखा थी। इनके पुत्र रामाध्वरि हुये। इनके चिबुकुल कृष्ण शास्त्री की पुत्री सीताम्बा माता के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। वह चन्द्रमा के समान तेजस्वी था। वेदादि विद्या के विद्वान्, श्रोत्र स्मार्त कर्म करने वाले ब्रह्म निष्ठ थे। इनके तीन पुत्र हुये। तीसरे पुत्र पं. जगन्नाथ शास्त्री हुये। इन्होंने पितृ चरणों में बैठकर वेद वेदांग का अध्ययन किया। बाल्यावस्था में ही विवेक सहित वैराग्य था। २१ वर्ष की आयु में घर से निकल कर तीर्थ यात्रा की। क्रम से कांची, रामेश्वरम्, पंचवटी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुये, वेद वेदांग का प्रचार करते हुये, अवैदिक मत मतान्तरों का खण्डन करते हुये द्वारिका पहुंचे। उस समय शारदा मठ के सिंहासन पर जगद् गुरु श्री स्वामी केशवाश्रम जी महाराज विराजमान थे। उनके पादपद्मों की सेवा करते हुये गम्भीर अध्ययन करने लगे। इस परम्परा में ब्रह्मचर्य से संन्यास लेने वाले ही सिंहासनासीन होते थे। अतः इन्होंने भी विधिवत् उनसे संन्यास ग्रहण किया तथा पं. जगन्नाथ से "श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम" यह योगपट्ट हुआ। श्री स्वामी केशवाश्रम जी के कर कमलों से संन्यास के २० वर्ष बाद अभिषिक्त हुये। उस समय महाराज श्री जी का बड़ौदा नरेश गायकवाड़ तथा सौराष्ट्र मण्डल के अन्य राजाओं ने स्वागत किया। सं. १९३५ वि. में सिंहासनासीन होने के पश्चात् दिग्विजय के लिये निकले। क्रमशः जामनगर, भाव नगर, राज नगर (अहमदाबाद) वट पत्तन, उदयपुर, उज्जैन, भोपाल, ग्वालियर, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) लाहौर, जम्मू-कश्मीर, हरिद्वार, बरेली, लक्ष्मणपुर, अयोध्या, पटना, नवद्वीप आदि नगरों में अद्वैत मत का प्रचार, सद् असद् का विवेचन करते हुये, सनातन धर्म का प्रचार किया। अनेकों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनके शिष्य हुये। अद्वैत मत के ग्रन्थों का फिर से प्रकाशन किया। पर्यटन करते हुये मीमांसकों तथा त्रिदण्डियों के मत का खण्डन किया। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थों का नाम—'अद्वैत साम्राज्यम्', पर्यटन मीमांसा, त्रिदण्डि मत विभेदिनी, पुरुषार्थ संजीवनी, ज्योतिश्चक्र आदि सत्ताईस हज़ार श्लोकों में दस वर्ष के भीतर समय निकालकर ग्रन्थों की रचना की। आचार्यपाद भगवान् शंकर ने दिग्विजय के अन्तर्गत

१०३२ अवैदिक मनमुखी आचार्यों को शास्त्रार्थ में पराजित करके मूलोच्छेद किया था। इन्होंने भी अवशिष्ट आचार्यों से शास्त्रार्थ करके पराजित किया तथा सभी मठों में वरिष्ठ द्वारका शारदा पीठ की शोभा को बढ़ाया। इन्होंने विशेष रूप से मायावाद का खण्डन किया।

इन्होंने 'विमर्श' नाम का अन्तिम ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में आपने प्रारब्ध पुरुषार्थ विचार, ब्रह्म का स्वरूप तथा तटस्थ लक्षण का विवेचन, पुरुषार्थ माहात्म्य, पुनर्जन्म, आंग्ल भाषा पढ़ने के दोष आदि बहुत से विषयों पर विचार करते हुये, आद्य शंकराचार्य जी के काल का निर्णय किया। यह ग्रन्थ वि. सं. १९५५ में राज राजेश्वरी प्रेस वाराणसी में छपा था। महाराज जी ने दिग्विजय काल में मुरादाबाद नगर में इसे लिखा था। वि. सं. १९५७ आषाढ़ सुदी पंचमी को आप ब्रह्मीभूत हुये।

लेखक—विष्णु शास्त्री जी

बौद्ध मत खण्डन तथा वेदमत निरूपण

विमर्श में बौद्ध मत खण्डन तथा अद्वैत वेदान्त का मण्डन करते हुये उपनिषदों का प्रमाण देकर लिखा है। **तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्। तं देवतानां परमं च दैवतम्।** इत्यादि **श्वेताश्वतरोपनिषद्** से तथा **परम हंसात्मना सत्यः परमात्मा महेश्वरः। करिष्यत्यवतारं हि जम्बूद्वीपे कलौयुगे। दुष्टानां निग्रहार्थायशिष्टानां रक्षणाय च। वेदराधान्त संस्थित्यै सत्य रूपेण भारत॥ चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शंकरोऽवतरिष्यति। शंकरः सविताननः इत्यादि मार्कण्डेय, पद्म, वाय्वादि पुराण वचनेभ्यश्च महेश्वरापरावतार भूतानां तावद् भगवत् पूज्यपादानां निरतिशय शास्तृत्वेन असदर्थ प्रवर्तयितु बुद्ध वपुधारिणो विष्णोरपि विश्वोद्धरणाय शास्तृत्वस्य न्याय परतत्वात्। इत्यादि।**

भाव यह है कि बौद्धों के तर्कों का उत्तर देते हुये आचार्यपाद भगवान् शंकर के परब्रह्म तत्त्व का प्रतिपादन करते हुये, श्वेताश्वतरोपनिषद् का प्रमाण देते हैं। शंकर ईश्वरों के परम महेश्वर तथा देवताओं के परम देवता हैं। आगे पुराणों का प्रमाण देते हैं—भगवान् शंकर पार्वती जी से कहते हैं कि 'शाश्वत सत्य परमात्मा महेश्वर कलियुग में जम्बू द्वीप में परम हंस रूप में, दुष्टों को दण्डित करने, सज्जनों की रक्षा, अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त की रक्षा के लिये कलियुग में चार शिष्यों सहित अवतरित होंगे। अन्य पुराण में भी कहा है, कि व्यास जी के ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या करने के लिये शंकर रूपी सूर्य उदय होगा। तात्पर्य है कि विद्यारण्य स्वामी जी ने

'अपरोक्षानुभूति' की टीका में व्यास जी के ब्रह्म सूत्रों की उपमा कमल पुष्पों से तथा शंकराचार्य जी का भाष्य सूर्यवत् कहा है। जैसे सूर्योदय होने पर कमल खिल उठते हैं। वैसे ही शांकर भाष्य रूपी सूर्य को देखकर ब्रह्म सूत्र रूपी कमल खिल उठते हैं। अतः "शंकरः सविताननः" इत्यादि। इन पुराणों के प्रमाणों से शंकराचार्य महेश्वर के अवतार सिद्ध होते हैं। वे सब पर शासन करने वाले शिव रूप हैं। अतः विष्णु तथा विष्णु के अवतारबुद्ध पर भी शासन करने वाले सिद्ध हुये।

इस पर बौद्ध तर्क करते हैं। विष्णु का अवतार होने के कारण बुद्ध का प्रामाण्य क्यों नहीं है ? उत्तर देते हुये कहते हैं, कि आप की बात अमान्य है। **निश्वास भूता मे विष्णोर्वेदाः जाताः सुविस्तरः। तिलेषु तैल वद्वेदे इति मुक्तिकोपनिषदि।** मुक्तिकोपनिषद् में कहा है कि मुझ विष्णु के श्वास से वेदों की उत्पत्ति तथा विस्तार हुआ तिलों में तैलवत् चारों वेदों के चारों भागों में वेदान्त सुप्रतिष्ठित है। इस प्रमाण से वेदानुसारि प्रस्थानत्रयी, मनु, वशिष्ठ, पराशर, व्यास आदि स्मृति तथा ऋषियों की परम्परा से प्राप्त ग्रन्थों में वेदान्त के तत्त्वों की ही व्याख्या की गयी है। किन्तु बुद्ध के आगम ग्रन्थों में वेद सिद्धान्त का खण्डन किया गया है। अतः बुद्ध भगवदवतार होने पर भी उनका सिद्धान्त मान्य नहीं।

शंका—आपका वचन माननीय नहीं। जैसे विष्णु ने बुद्धावतार लेकर वेद विरुद्ध प्रचार किया। ऐसे तुम्हारे ईश्वरों के महेश्वर शंकर ने भी शंकराचार्य के रूप में अवतार लेकर तामस मत का प्रचार किया है। आपके पद्म पुराण में लिखा है—**शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्। येषां श्रवण मात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि। प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।, मच्छक्त्यावेशितैः विप्रैः सम्प्रोक्तानि ततः परम्। कणादेन च सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्। गौतमेन तथा न्यायं साख्यं तु कपिलेन वै। द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थतः। निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्र-महत्तरम्। धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमति गर्हितम्। दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्ध रूपिणा। बौद्ध शास्त्रमथ प्रोक्तं नग्ननील पटादिकम्। मायावादमसत् शास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च। मयैव कथितं देवि। कलौ ब्राह्मणरूपिणे। अपार्थ श्रुति वाक्यानां, दर्शयंल्लोक गर्हितम्। कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते। ब्रह्मणोऽस्यपरं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया। सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं**

कलौयुगे। वेदार्थ विन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्। मयैव कथितं देवि ! जगतां नाश कारणात्। इति पाद्मे उत्तरखण्डे ४२तमोऽध्यायः।

'पद्म पुराण' में भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि हे देवि ! अब मैं क्रमशः तामस शास्त्रों का यथाक्रम वर्णन करूंगा। जिनके सुनने मात्र से ज्ञानी भी पतित हो जाते हैं। प्रथम मेरे द्वारा कहा हुआ पाशुपत्यादि शैव शास्त्र है। इसके बाद मेरी शक्ति का ब्राह्मणी में अंश रूप में प्रवेश होने पर उनके द्वारा रचित, महर्षि कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल जी का सांख्य तथा जैमिनी के वेद के पूर्व भाग का अर्थ निरीश्वरवादी पूर्व मीमांसा शास्त्र तथा अति निन्दनीय वृहस्पति द्वारा कहा हुआ चार्वाक दर्शन दैत्यों का नाश करने के लिये बुद्ध रूपधारी विष्णु द्वारा असत् बौद्ध शास्त्र नग्न नील पटादि है। हे देवि ! कलियुग में मेरे द्वारा ब्राह्मण रूप (शंकराचार्य) से कहा हुआ मायावाद (अद्वैत वेदान्त) असत् शास्त्र है। अतः शंकराचार्य छिपे हुये बौद्ध ही हैं। इन्होंने श्रुतियों का निन्दनीय शास्त्र विरुद्ध अर्थ करते हुये कर्म को स्वरूप से त्याग देना चाहिये, वेदान्त दर्शन में प्रतिपादन किया है। हे देवि ! कलियुग में मैंने सम्पूर्ण जगत् का नाश करने के लिये शंकर के रूप में ब्रह्म के निराकार निर्गुण रूप को दर्शाया है। हे देवि ! जगत् का नाश करने के लिये, जगत् माया का स्वरूप मिथ्या है, अवैदिक है, ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। बौद्ध तर्क करते हुये कहता है। जैसे हमारा बौद्ध दर्शन प्रामाणिक है। वैसे ही शंकर का शंकराचार्य रूप से कहा हुआ मायावाद असत् शास्त्र है। अन्य शास्त्रों की भांति अद्वैत वेदान्त के सुनने से भी ज्ञानियों का पतन हो जाता है। इन पदों से यह सिद्ध होता है कि शंकराचार्य के रूप में शंकर का अवतार लेकर जगत् का नाश करने के लिये अद्वैत ग्रन्थों की रचना की है। यह मुक्त कण्ठ से उद् घोष हुआ है। अतः व्यास जी के अनुसार तुम्हारा अद्वैत शास्त्र भी जगत् का नाश करने वाला है। अतः जैसे विष्णु के अवतार बुद्ध का वचन त्याज्य है। ऐसे ही शंकरावतार का भी वचन त्याज्य है। इस शंका का उत्तर देते हुये कहते हैं कि—ऐसी बात नहीं है।

कूर्म पुराण पूर्व खण्ड ३०वें अध्याय में पाठ भेद से ब्रह्म संहिता के २९वें अध्याय में कहा है—

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वर परः।
तदेव साधयेन्नृणां देवतानां च दैवतम्॥

करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।
श्रौत स्मार्त प्रतिष्ठार्थं भक्तानां हित काम्यया॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्म संज्ञितम्।
सर्व वेदान्त सारं हि धर्मान् वेद निदर्शनान्॥
ये तं प्रीत्या निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥
अनायासेन सुमहत्पुण्यं ते यान्ति मानवाः।
अनेक दुष्ट दुष्टस्य कलेरेव महान् गुणः॥

नील लोहित भगवान् शंकर, रुद्र, महादेव, कलियुग में मनुष्यों का कल्याण करने के लिये, जो देवताओं के भी देवता हैं, भक्तों के हित की इच्छा से श्रौत-स्मार्त मत की प्रतिष्ठा के लिये अवतार लेंगे। (वे अवतरित होकर) सम्पूर्ण वेदान्तों का सार धर्मशास्त्रों तथा वैदिक दर्शनों का वेद सम्मत शिष्यों को ज्ञानोपदेश करेंगे। जो साधक कलि के दोषों को जीतकर श्रद्धा भक्ति सहित जिस किसी भी प्रकार से इन ग्रन्थों का सेवन करेंगे। वे श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा अनेक दोषों से दूषित इस कलि काल में भी अनायास महत्पुण्य प्राप्त करके भगवान् के परम पद को प्राप्त करेंगे।

उपर्युक्त प्रमाण से सिद्ध होता है कि बुद्ध के समान श्री शंकराचार्य जी ने जगत् का विनाश करने के लिये अवतार नहीं लिया। प्रत्युत जीव को परम पद की प्राप्ति के लिये अवतार लिया था। यह व्यास जी का यथार्थ वचन है। तुम्हारे द्वारा पद्म पुराण के कहे हुये श्लोक व्यास रचित नहीं हैं। परन्तु अद्वैत मत विरोधी किसी बौद्ध या वैष्णवाचार्य द्वारा द्वेष बढ़ाने के लिये रच कर पुराण में मिला दिये गये हैं। क्योंकि इन वचनों का विष्णु, कपिल, ब्रह्मा, इन्द्र, मनु, वशिष्ठ आदि द्वारा रचे गये ग्रन्थों से विरोध है। अतः प्रक्रिया सहित भगवत्पाद भगवान् शंकर का एक मात्र अद्वैत वेदान्त ही निष्काम कर्म, उपासना द्वारा जीव के अन्तःकरण को शुद्ध करके असत्त्वापादक तथा आभानापादक दोनों आवरणों को दूर करके ब्रह्म के परोक्ष तथा अपरोक्ष दोनों ज्ञानों द्वारा जीव को ब्रह्म भाव की प्राप्ति कराने में सक्षम हैं। अन्य ग्रन्थ में कहा भी है—

कर्मशास्त्रे कुतो ज्ञानं, तर्के नैवास्ति निश्चयः।
सांख्य योगौ भिदापन्नौ शाब्दिकाः शब्द तत्पराः॥

अन्ये पाखाण्डिनः सर्वे ज्ञान वार्त्ता सुदुर्बलाः।
एको वेदान्त सिद्धान्तः स्वानुभूत्यानुराजते॥

पूर्व मीमांसा पढ़ने से ज्ञान नहीं होता। सांख्य तथा योग दोनों भेदवादी हैं। भेद बुद्धि वाले पुनर्जन्म को प्राप्त करते हैं। वैयाकरणी प्रकृति, प्रत्यय, लिंग वचन में ही तत्पर रहते हैं। दूसरे छः नास्तिक (चार्वाक, चार प्रकार के बौद्ध, जैन) वेद विरोधी होने के कारण पाखण्डी हैं। मनु जी ने पाखण्डी का लक्षण करते हुए कहा है कि—

पाशव्देन त्रयीधर्माः पारक्षण इति स्मृतः।
तं खण्डयन्ति ये तर्कैस्ते पाखण्डा इति स्मृताः॥

पाखण्ड शब्द में पा + खण्ड दो पद हैं। पा = तीनों वेदों में कहे हुये धर्म पा शब्द से कहे गये हैं। पा शब्द रक्षा करने के अर्थ में आता है। तर्क वितर्कों से जो उनका खण्डन करते हैं उन्हें पाखण्डी कहा गया है। और ज्ञान में कमज़ोर हैं। अतः एक मात्र वेदान्त सिद्धान्त ही स्वानुभूति करने में समर्थ है।

जगद् गुरु श्री राज राजेश्वर शंकराश्रम जी महाराज ने अनेकों ग्रन्थों के माध्यम से जगत् का महान् उपकार किया है। उनमें "विमर्श" नामक ग्रन्थ अद्वितीय तथा अति संक्षिप्त है।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, द्वितीयोऽध्यायः।।२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

जगद् गुरु श्री माधव तीर्थ जी, शान्त्यानन्द सरस्वती जी, चन्द्रशेखराश्रम जी महाराज, स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज के जीवन वृत्त

पूज्य पाद जगद् गुरु श्री माधव तीर्थ जी महाराज का जन्म आन्ध्र प्रदेश में हुआ था। विरोधी लोगों का कहना है कि स्वामी राजराजेश्वर शङ्कराश्रम महाराज ने इन्हें अभिषिक्त नहीं किया। यह स्वयं गद्दी पर बैठ गये। परन्तु गुजराती पुस्तक 'शारदा मठ तथा जगद् गुरु श्री माधव तीर्थ जी महाराज' नामक पुस्तक से सिद्ध होता है कि इनका वैदिक विधि विधान से अभिषेक हुआ। उसमें लिखा है कि वे बाल्यकाल से ही विरक्त थे। अति प्रतिभा सम्पन्न होने

के कारण स्वल्प काल में ही वेदादि शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। ब्रह्मचर्य से संन्यास लिया। महा विद्वान् होने पर भी परम विरक्त महात्मा के समान भारत में विचरण करने लगे। विचरण के बाद डाकौर पहुंचे। गुजरात में अनेकों राजा महाराजाओं ने आपका भव्य स्वागत किया। श्री स्वामी राजराजेश्वर शंकराश्रम जी के उत्तराधिकारी की खोज हो रही थी। कोई महात्मा उपयुक्त नहीं मिला। अन्ततोगत्वा द्वारका के समीप आपका पता चला। आपकी इच्छा न होने पर भी प्रारब्धवशात् आप सिंहासनासीन हुये। विद्यारण्य स्वामी जी ने ज्ञानियों की तीन प्रकार की प्रारब्ध, स्वेच्छा प्रारब्ध, परेच्छा प्रारब्ध तथा अनिच्छा प्रारब्ध कही है। मठ में रहते हुये भी आप निर्लिप्त भाव से रहे। एक बार भारत भ्रमण करते हुये आप लाहौर पहुंचे। वहां श्री सनातन धर्म संस्थान में आपका स्वागत तथा प्रवचन हुआ। सारी व्यवस्था परम विरक्त सन्त तीर्थ राम जी ने की थी। एक दिन उन्होंने एकान्त में आपको प्रणाम करके आत्म कल्याण सम्बन्धी प्रश्न किया। आपने योग तथा वेदान्त संयुक्त साधना का उपदेश किया तथा विधि विधान से संन्यास दीक्षा देकर प्रोफैसर तीर्थ राम का नाम बदलकर "स्वामी रामतीर्थ" रखा। आप वैदिक सनातन धर्म का शुद्ध प्रचार करते थे। आपकी उपस्थिति में जितने भी सम्मेलन होते थे उसमें व्यासों तथा महात्माओं को सनातन मर्यादानुसार ही बोलना पड़ता था। यदि कोई आज्ञा उल्लंघन करता तो वहीं पर डांट फटकार तथा पिटाई भी कर देते थे। इनका देहावसान् भाद्रपद कृष्ण द्वितीया वि. सं. १९७२ में हुआ।

इनके ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण मठ में विवाद चला। मुस्लिम समय से जब आचार्यों के धर्म पालन में मुसलमान राजा विघ्न डालने लगे। तब धर्म रक्षार्थ विवश होकर मठ का स्थान परिवर्तन करना पड़ा। न करते तो आचार्यों की परम्परा वहीं समाप्त हो जाती। अतः मठ द्वारका से वागला में स्थापित हुआ। यह स्थान द्वारका के समीप ही है। प्रधान रूप से केन्द्र द्वारका ही रहा। वागला की सूची में **श्री सदानन्द** का नाम वैकल्पिक है। इनकी परम्परा भी चलती है। कुछ लोगों के कथनानुसार श्री शान्त्यानन्द जी महाराज सं. १९७२ से वि. सं. १९८२ तक पीठासीन रहे।

श्री स्वामी माधव तीर्थ जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर एक साथ तीन शंकराचार्य हुये। सनातनी जनता तथा विद्वान् महानुशासनानुसार जिसको आचार्य पद पर बिठाना चाहते थे। ब्रिटिश तथा बड़ौदा सरकार उनका विरोध करती थी। अतः उस समय "श्री शंकराचार्य

संशोधनम्" नाम की एक संस्था बनी। उसने पूज्यपाद अनन्त श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज को आचार्य पद पर "सोमनाथ प्रभास क्षेत्र" में मठ बनाकर अभिषिक्त किया। परन्तु विपक्षियों ने श्री चन्द्रशेखराश्रम जी महाराज जी को बिठाया। कुछ के अनुसार श्री शान्त्यानन्द जी सरस्वती महाराज अभिषिक्त हुये। सन् १९२१ में प्रभास क्षेत्र में त्रिविक्रम तीर्थ जी के बाद अनन्त श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी १९२५ ई. तक रहे। इन्होंने अपने स्थान पर पूज्य श्री स्वरूपानन्द तीर्थ जी महाराज का अभिषेक किया। इनके ब्रह्मीभूत होने पर श्री भारती कृष्ण तीर्थ द्वारा ही श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज आसीन हुये। उस समय द्वारका में श्री स्वामी चन्द्रशेखराश्रम जी महाराज विराजमान थे। वे वृद्धावस्था में प्रभास क्षेत्र पहुंचे। युवक संन्यासी श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी ने इनका विशेष आदर सम्मान किया। इन्होंने शरीर छोड़ने से पहले उनकी सेवा से प्रभावित होकर अपने स्थान द्वारका शारदा मठ में उनको नियुक्त करने की आज्ञा दी। द्वारका शारदा मठ की परम्परा में उसी को शंकराचार्य माना जाता है, जिसका शारदा मठ के एक विशेष चबूतरे पर अभिषेक होता है। अतः श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी का वहां अभिषेक हुआ। श्री स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ, भारती कृष्ण तीर्थ, श्री स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ द्वारका शारदा मठ के उप शंकराचार्य हुये। इसलिये इस मठ की सूची में इन तीनों का नाम नहीं है। श्री स्वामी सच्चिदानन्द तीर्थ जी का भी नाम नहीं था। चबूतरे पर अभिषेक के अनन्तर इनका नाम आया। श्री स्वामी शान्त्यानन्द जी के प्रतिद्वन्द्वी स्वामी राजेश्वराश्रम जी महाराज भी अपने को शंकराचार्य कहते थे।

इनके बाद ७६वें आचार्य "श्री चन्द्रशेखराश्रम जी" महाराज वि. सं. १९८२ से वि. सं. २००० तक रहे। इनके बाद ७७वें आचार्य श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज सं. २००१ से वि. सं. २०३९ तक पीठ पर रहे। यह गुजराती ग्रन्थ श्री शारदापीठ तथा वर्तमान पीठाधीश्वर के अनुसार लिखा गया है। परन्तु "श्री शंकराचार्य" नामक ग्रन्थ में जो परम्परा दी है। उसमें शान्त्यानन्द जी सरस्वती के बाद अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी का नाम लिखा है। इसमें श्री स्वामी चन्द्रशेखराश्रम जी का नाम नहीं है। ७८वें शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज हैं। यह वि. सं० २०३८-ता. २७ मई १९८२ ई० ज्येष्ठ सुदी पंचमी गुरुवार को पीठासीन हुये।

परन्तु **'कर्मपद्धति' नामक ग्रन्थ के आरम्भ में पं. चतुर्थी लाल शर्मा** ने अनन्त श्री माधव तीर्थ जी महाराज के उत्तराधिकारी जगद् गुरु स्वामी **त्रिविक्रम तीर्थ जी** महाराज का शुभाशीर्वाद लिखा है। श्री गोवर्द्धन पीठाधीश्वर अनन्त श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज के "मेरे गुरुदेव" नामक पुस्तक में तथा "स्तोत्र भारती कण्ठहारः" नामक ग्रन्थ की भूमिका में मञ्जुला त्रिवेदी ने लिखा है कि सन् १९१९ में शारदापीठाधीश्वर श्री स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज ने **श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी** को माघ शुक्ल पंचमी को संन्यास दिया। सन् १९२१ में इच्छा न होने पर भी अपने पद पर बिठा कर शरीर छोड़ा। इससे सिद्ध होता है कि श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी के बाद भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज १९२१ से लेकर १९२५ तक इस पीठ पर रहे। मैंने द्वारका जाकर शारदा मठ के व्यवस्थापक ब्रह्मचारी श्री नारायण स्वरूप जी से इस विषय में चर्चा की थी। उन्होंने कहा—महाराज श्री द्वारका में नहीं बैठे थे। १९२१ से १९२५ तक सोमनाथ में प्रभास क्षेत्र में रहे। सन् १९२५ में उन्होंने अपना उत्तराधिकारी **स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ** जी महाराज को अपने पद पर अभिषिक्त किया। इन्होंने १९३६ के बाद अपना शरीर त्यागा। **कुछ लोगों का कहना है कि महाराज जी ने शारदा द्वारका पीठ में अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी को नियुक्त किया।** श्री काशी सुमेरु पीठाधीश्वर ब्र. भू. स्वामी शंकरानन्द जी के मतानुसार—

यह स्वामी राजराजेश्वराश्रम जी से भिन्न थे। मठ के भण्डारी थे। अनन्त श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने दोनों को श्री स्वरूपानन्द तीर्थ जी तथा श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी को अपने कर कमलों से अभिषिक्त किया। तथा प्रभास क्षेत्र में श्री स्वामी स्वरूपानन्द तीर्थ जी को बैठाया। स्वयं पुरी के शंकराचार्य १९२५ से १९६० ई. तक रहे। इनका पूरा जीवन चरित्र अन्यत्र दिया गया है। अनन्त श्री स्वरूपानन्द तीर्थ तथा श्री अभिनव सच्चिदानंन्द तीर्थ जी महाराज दोनों द्राविड़ ब्राह्मण थे। दोनों की जन्म भूमि दुर्वासापुरम् थी। दोनों ही एक ही गुरु से संन्यस्त हुये थे। दोनों की श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी के प्रति गुरुवत् श्रद्धा थी। इस परम्परानुसार श्री माधव तीर्थ जी के बाद ७५ वें त्रिविक्रम तीर्थ जी ७६वें श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ७७वें तथा ७८ में अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वरूपानन्द जी तीर्थ हुये। ७९वें वर्तमान अनन्त श्री स्वरूपानन्द जी सरस्वती हैं।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, तृतीयोऽध्यायः।।३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अनन्त श्री विभूषित ब्रह्मीभूत द्वारका पीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी का जीवन वृत्त

अनन्त श्री विभूषित पद वाक्य प्रमाणज्ञ शारदा पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री शंकराचार्य शारदा मठ के ७७वें आचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज का जन्म मैसूर राज्य के दुर्वासा पुरम् नामक स्थान में २५ सितम्बर १९१९ ई. में हुआ था। १५ वर्ष की अल्पायु में १२ दिसम्बर १९३४ ई. में आपकी संन्यास दीक्षा अत्यन्त विरक्त श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु द्वारा हुई। आपके माता पिता अतुलित सम्पत्तिशाली थे। आप २००१ वि. सं. में श्री भारती कृष्ण तीर्थ द्वारा शारदा मठ पर अभिषिक्त हुये। आप हिन्दी, संस्कृत, कन्नड़, तमिल, तेलगू, फ्रैंच, इंगलिश, गुजराती आदि भाषाओं का प्रयोग मातृ भाषा के समान करते थे। संन्यास के अनन्तर आपने सम्पूर्ण भारत की यात्रा करते हुये चारों धामों, द्वादश ज्योतिर्लिंगों, सप्तपुरियों पशुपतिनाथ, कैलास मान सरोवर आदि के दर्शन किये। भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार के लिये द्वारका पुरी में "शारदापीठ आर्ट्स कालेज", "संस्कृत अनुसन्धान केन्द्रम्" तथा योगाभ्यास केन्द्र की स्थापना की। मार्च सन् १९६१ ई. में गुजरात के नेता डा. जीव राज जी मेहता की अध्यक्षता में भारत के उप-राष्ट्रपति **डा. राधा कृष्णन्** जी द्वारा द्वारका जी में श्री द्वारकाधीश संस्कृत विद्यापीठ तथा भारतीय संशोधन मन्दिर का उद्घाटन करवाया। उसी समय "शारदा प्रदीप" नामक सामयिक पत्र का आरम्भ हुआ।

जगद् गुरु जी ने शारदा मठ के ज्ञान मन्दिर में सरस्वती जी की संगमरमर की प्रतिमा, १३३१ शिवलिंग तथा १२०० शालिग्राम आदि की स्थापना की। आप समय-समय पर भूकम्प, बाढ़ पीड़ित, अति वृष्टि आदि उपद्रवों के समय यथाशक्ति सहयोग देते रहे। इनकी विद्या, ज्ञान, तप आदि का महामूर्ख से लेकर बड़े-बड़े विद्वान् तथा देश के नेता डा. राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू, डा. राधा कृष्णन्, पं. गोविन्द वल्लभ पन्त, श्री प्रकाश आदि आपके परम भक्त आदर करते थे। इतना महान् सम्मान प्राप्त होने पर भी आप में अभिमान लेश मात्र भी नहीं रहा।

द्वारका पुरी

द्वारका पुरी भारत के चार धामों तथा सप्त पुरियों में एक पुरी है। गर्ग संहिता के अनुसार देवताओं के प्रार्थना करने पर बैकुण्ठ का एक भाग विशेष धरातल पर द्वारका के रूप में अवतरित हुआ था। महाराज रैवत की घोर तपस्या के परिणामस्वरूप इसका अवतरण हुआ था। यह सत्ययुग की घटना है। कालान्तर में यह पुरी जीर्ण शीर्ण हो गयी। द्वापर में भगवान् श्री कृष्ण ने जरासन्ध को १७ बार हराया और छोड़ते रहे। अठारहवीं बार उसने मथुरा पर एक ओर से कालयवन को सेना सहित आक्रमण करने का आदेश दिया। दूसरी ओर से स्वयं आक्रमण कर दिया। भगवान् ने बलराम सहित शूरवीर शिरोमणि होने पर भी रण छोड़ने का नाटक किया। भाग कर रैवतक पर्वत पर चढ़ गये। जरासन्ध ने उस पर चारों ओर से आग लगा दी। तब बलराम सहित भगवान् द्वारका में कूद गये। उन्होंने जीर्ण हुई द्वारिका पुरी का जीर्णोद्धार किया एवं अपने मातामह उग्रसेन जी का अभिषेक किया। जीवन पर्यन्त भगवान् वहीं रहे। ऋषियों से यदुवंशियों को शाप दिलवा कर पाप की निवृत्ति के लिये शंखोद्धार क्षेत्र सोमनाथ प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। वहीं पर यदुवंशी आपस में लड़कर मर गये। प्रभास क्षेत्र में बलराम सहित भगवान् श्री कृष्ण उद्धव को ज्ञानोपदेश करने के अनन्तर चतुर्भुज रूप से बैकुण्ठ को प्राप्त हुये।

द्वारका पुरी चारों ओर सागर से घिरी हुई है। वास्तविक द्वारका पुरी जिसे मूल द्वारका कहते हैं वह भगवान् के धराधाम से प्रयाण करने के साथ ही समुद्र में डूब गयी। केवल भगवान् का राज भवन बचा था। यहां पर भगवान् यादवेन्द्र का विशाल मन्दिर है जिसका निर्माण भगवान् के प्रपौत्र बज्रनाभ ने करवाया था। जैनियों द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। तब भगवान् आद्य शंकर की आज्ञा से महाराज सुधन्वा ने पत्थर का मन्दिर बनवाया। इसमें यादवेन्द्र की मूर्ति स्वयं प्रकट है। साथ ही नीचे सिद्धेश्वर शंकर तथा शारदाम्बा हैं। मन्दिर के समीप ही शारदा मठ है। सीढ़ियों के नीचे गोमती प्रवाहित हो रही है। श्री द्वारकाधीश के मन्दिर के साथ ही भगवान् दत्तात्रेय तथा भगवान् की आठों पटरानियों के मन्दिर तथा इसके साथ ही भगवान् के गुरु दुर्वासा जी का समाधि मन्दिर है। मठ में भगवान् शंकराचार्य का जीवन चरित्र चित्रों में विद्यमान है। श्री द्वारका जी के समीप ही नागेश्वर ज्योतिलिंग, गोपी तालाब, रुक्मिणी मन्दिर है। समुद्र पार करके टापू में भेंट द्वारका है। वहीं पर सुदामा तथा

कृष्ण की भेंट हुई थी। पूरी द्वारिका का पानी खारा है। अतः वर्षा का जल एकत्रित करके पीने और भोजन के काम में लिया जाता है। मठ से थोड़ी दूर पर गोशाला है। मठ में बहुत सी ज़मीन है। वर्तमान काल में पूज्यपाद अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के नेतृत्व में, इसके व्यवस्थापक ब्रह्मचारी श्री नारायण स्वरूप जी करते हैं। ब्रह्मचारी वयोवृद्ध, कर्मठ परम सदाचारी हैं। आपने ब्रह्मीभूत श्री शंकराचार्य कृष्ण बोधाश्रम महाराज से महावाक्य लिया था। इनकी व्यवस्था से जगद् गुरु जी निश्चिन्त हैं।

ब्रह्मीभूत जगद् गुरु अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ द्वारा मूर्ति स्थापना तथा उनकी मानसरोवर कैलाश यात्रा

अनन्त श्री विभूषित पूज्य पाद शारदा पीठाधीश्वर जी ने कई स्थानों पर मन्दिर निर्माण करवा कर मूर्ति स्थापना की है। डाकौर के शारदा मठ में श्री चक्र पर अष्टदल छः कमलाकार मन्दिर का निर्माण करके उसमें भगवान् दत्तात्रेय जी, भगवान् आद्य शंकराचार्य तथा भगवती शारदा की स्थापना की। इसकी स्थापना में भारत के राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन आये थे। इस मन्दिर में जाने के लिये ज्ञान की शुभेच्छा आदि सात भूमिकाओं के नाम पर सीढ़ियों के नाम हैं। मन्दिर में नीचे हाथी का आकार बना है। उसके दोनों कानों में प्रवेश तथा निर्गम द्वार हैं। गुफा के भीतर शक्तियों सहित भगवान् भाष्यकार का पूरा जीवन चरित्र दीवारों पर चित्रों में अंकित है। डाकौर से अहमदाबाद जाने के मार्ग में "श्री शंकराचार्य नगरम्" नाम का नगर है। उसमें श्री भगवत्पाद तथा अन्य देवताओं के भव्य मन्दिर हैं। जगद् गुरु जी ने श्री चक्र पर कमलाकार ऐसे छः सात मन्दिरों का निर्माण भारत में किया है।

सन् १९५९ में आपने इतिहास प्रसिद्ध हिमालय केदारनाथ में जहां पर पाण्डवों का पर्वतारोहण हुआ था। जहां पर भगवान् शंकराचार्य जी की समाधि है। वहीं पर आचार्य पाद जी ने मूर्ति स्थापना की है। इस कार्यक्रम में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री सम्पूर्णानन्द जी भी थे। स्वामी जी के शिष्यों में अहमदाबाद निवासी सेठ लक्ष्मीचन्द ने मूर्ति की स्थापना की। महाराज श्री जी की आज्ञा से श्रीनगर में दुर्गानाग के ऊपरी पर्वत पर जिसे श्री शंकराचार्य पर्वत कहते हैं, सन् १९६३ मई २७, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी सोमवार के दिन शंकराचार्य जी की मूर्ति की स्थापना की गई। वि. सं. २०१९ में हरिद्वार में हरकी पौड़ी पर भवन निर्माण करके श्री शंकराचार्य जी की मूर्ति की स्थापना की। उसमें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री विश्वनाथ दास

भी उपस्थित थे। वहां से आपने त्रियुगीनारायण आदि तीर्थों की यात्रा की। तीन दिन तक तप्त कुण्ड में रहे। बद्रिकाश्रम में व्यास गुफा में व्यास जी के दर्शन किये। वहीं सरस्वती जी का उद्गम स्थान है।

भगवान् शंकर हिन्दुओं के प्रधान देवता होने के कारण महादेव कहे जाते हैं। कैलाश उनका मुख्य स्थान है।

श्री शारदा सर्वज्ञ पीठम्

भगवान् आद्य शंकराचार्य सम्पूर्ण भारत की दिग्विजय करने के अनन्तर काश्मीर के शारदा सर्वज्ञ सिंहासन पर आरूढ़ हुये। वह स्थान कहां है, उसकी खोज कृष्ण नारायण गोस्वामी जी ने 'हिमालय दर्शनम्' नामक ग्रन्थ में की है। सुप्रसिद्ध गंगोत्री तीर निवासी एक तपस्वी महात्मा ने भी तपोवन नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया है। काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से ७५ मील की दूरी पर श्री शारदा क्षेत्र है। श्रीनगर से वहां के लिये बस जाती है। इसके बाद पैदल यात्रा है। बस स्टैण्ड से सात मील की दूरी पर झनीपोरा नामक ग्राम है। इसमें एक मन्दिर है उसमें मूर्ति नहीं है। समीप के अग्निकुण्ड में निरन्तर अग्नि जलती रहती है। वहां पर शीत अधिक है। वहां से राम पर्वत के घोर जंगलों से होते हुये पर्वत पर चढ़कर राम महाल नामक ग्राम से होकर लवनाग पहुंचते हैं। वहीं पर भगवान् राम के अश्वमेध घोड़े को पकड़कर लवकुश ने बांधा था। उस गांव में एक मन्दिर है। वहां से बाबर ग्राम होते हुये रुद्रवन, होते हुये आगे निर्जन वन के कठिन मार्ग से जाना पड़ता है। वहां चारों ओर २५ मील की दूरी तक कोई ग्राम नहीं है। हिमाच्छादित पर्वतीय मार्ग का अतिक्रमण करने में सिंह व्याघ्रादि का महान् भय रहता है। आगे बर्फीली नदी के रास्ते से चलना पड़ता है। मार्ग में जल के स्थान पर वर्फ से ही प्यास दूर करनी पड़ती है। बर्फीली नदी से सात मील की दूरी पर एक गांव है। वहां से कृष्ण-गंगा तैर कर खरी गांव पहुंचते हैं। वहां के वनों की शोभा देखने योग्य है। वहां से डेढ़ मील की दूरी पर शारदा ग्राम है। यह ग्राम कृष्ण गंगा नदी की बायीं ओर है। मार्ग में एक ओर बर्फीली नदी पड़ती है। नदी को पार करने के लिये लोहे के रस्से का पुल है। इसके बीच में त्रिकोण यंत्र है। उसमें गरारी है। यात्री रस्से को मज़बूती से पकड़ लेता है। नदी के दूसरी ओर चार व्यक्ति उस रस्से को खींचते हैं। तब यात्री नदी के उस पार पहुंचता है। इस लोहे की रस्सी के पुल पर से एक फर्लांग चलना पड़ता है। शारदा

देवी का मन्दिर कृष्ण गंगा, नारदा तथा शारदा नदी के संगम पर है । यह मन्दिर पांडवों के समय का है । यवनों के आक्रमण से पूर्व इसमें सोना, चांदी, रत्न, पुखराज आदि जड़े हुये थे । यह मन्दिर छः महीने तक बर्फ से ढका रहता है । इस समय मन्दिर में मूर्ति नहीं है, जीर्ण, शीर्ण है, एक शिला है । मन्दिर के समीप अमृत कुण्ड तथा शाण्डिल्य ऋषि की गुफा है । इसी शिला को "सर्वज्ञ पीठ" कहते हैं । आद्य शंकर इसी मन्दिर के दक्षिण द्वार से प्रविष्ट होकर, विद्वानों को शास्त्रार्थ में जीत कर सर्वज्ञ सिंहासन पर विराजमान हुये थे । इस पीठ को "शारदी पीठ" कहा जाता है । इस समय यह स्थान आज़ाद कश्मीर के अन्तर्गत है । इस प्रकार अनुमानतः श्रीनगर से यह स्थान १७५ मील होगा । इस गांव में ८ या १० घर होंगे । इस शारदी मठ में जगद् गुरु जी पहुंचे थे ।

सन् १९६४ ई. में महाराज श्री जी ने भारत के सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ श्री पं. चन्द्रशेखर जी द्विवेदी शास्त्री की शास्त्रार्थ में कई दिनों तक विद्वानों को लगाकर परीक्षा की । तदनन्तर उत्तीर्ण होने पर पुरी में संन्यास देकर गोवर्द्धन पीठ पर अनन्त श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज के उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर अभिषिक्त किया । उसी वर्ष अमृतसर के सर्ववेद शाखा सम्मेलन में आप पधारे भी थे ।

संक्षिप्त परिचय

जन्म—वि. सं. १९७५, जन्म स्थान—दुर्वासा पुरम् (कर्नाटक प्रदेश), उपनयन १९८० वि. सं., आश्रम वास—मुलुबागलू मठ में १९८३ वि., संन्यास—१९९१ वि. सन् १८ दिसम्बर १९३४ ई., शारदा मठ पर पट्टाभिषेक—सं. २००२ वि. २० जून १९४५ ई. । हिमालय विजय यात्रा—सं. २०१४ गंगोत्री, यमुनोत्तरी, बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाश, मानसरोवर आदि । मठ में १३३१ शिवलिंग तथा १२०० शालिग्रामों की स्थापना—सं. २०२५ वि. शारदा पीठ आर्ट्स कालेज की स्थापना—२०१६ वि. । शारदापीठ के मुख्य मण्डप के ऊपर शारदा तथा भगवान् शंकराचार्य जी की स्थापना—सं. २०१७ वि. । केदारनाथ में शंकराचार्य की स्थापना—२७ मई १९६३ ई. । श्री चन्द्रशेखर शास्त्री जी का संन्यास एवं गोवर्द्धन पीठ पर पट्टाभिषेक—१९६४ ई. १, २ जुलाई । द्वारका में चतुर्वेद भवन का शिलान्यास—१० दिसम्बर १९६९ ई. । इस भवन का उद्घाटन २०२७ वि. सं. । सरदारग्राम में २४ लाख गायत्री यज्ञ—२०२८ वि. । ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी का

अभिषेक ७ दिसम्बर, १९७३ ई.। सूरत में लक्ष चण्डी महायज्ञ—१९७६ ई.। प्रभास में शारदा मठ की स्थापना—२१ नवम्बर १९७८ ई.। शृंगेरी में चतुष्पीठ आम्नाय पीठाधीश सम्मेलन शंकराचार्य जयन्ती पर—१ मई १९७९ ई.।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

बम्बई १९६७ गोरक्षा सम्मेलन में दिये गये भाषण का सारांश

गोमाता का स्थान सनातन संस्कृति में माता के समान है। वह मनुष्य मात्र का कल्याण करती है। सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रों में गाय की अद्भुत महिमा कही गई है। इसकी चर्चा न करके गोरक्षा के विषय में मैं आप सबका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। भारत सरकार जैसे राष्ट्र रक्षा कोष में कोष की रक्षा करती है। वैसे ही गोरक्षा भी परमावश्यक है।

इस चकाचौंध के वैज्ञानिक युग में भी गाय एक महत्त्वपूर्ण पशु है। गाय का दुग्ध, दही, घी, मूत्र एवं गोबर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गाय के गोबर की खाद से अन्न तथा चारा आदि अच्छी उपज दे सकता है। परन्तु सरकार गाय की हत्या करके हिन्दू संस्कृति तथा देश को अति क्षति पहुंचा रही है।

पिछले वर्ष गोरक्षा के उद्देश्य से ही सर्व सम्मति से नवम्बर मास में देहली में विशाल आन्दोलन चलाया था। उसमें सम्पूर्ण गोवंश की रक्षा की मांग की गई थी। यह मांग जनता की थी। इसमें सभी धर्माचार्यों, मठाधीशों, धर्माचार्यों ने भाग लिया था।

गोरक्षाभियान समिति सर्वसम्मति से बनायी गई है। संसार में कोई व्यक्ति वह हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई या किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो। प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक विकास चाहता है। गो दुग्ध घृत आदि बुद्धिवर्द्धक है। गोरक्षा के लिये केवल आन्दोलनों से काम नहीं चलेगा। प्रत्येक घर में गोपालन होना चाहिये। प्रत्येक ग्राम नगर में गोपालन केन्द्रों की स्थापना हो। धनी लोग इसमें सहयोग दें। सभी आयु की गोवंश की रक्षा हो। स्वतन्त्रता के बाद भारत ने विज्ञान में प्रगति की है। उससे कई गुना अधिक गो हत्या बढ़ी है जो कि भारत पर कलंक है।

भारत धर्म प्रधान तथा कृषि प्रधान देश है। यहां के हिन्दू गाय के शरीर में ३३ देवताओं की भावना करते हैं। उस की हत्या महापाप है। हिन्दुओं के वेदादि शास्त्रों में कहीं भी गोवध तथा गोमांस भक्षण की आज्ञा नहीं है। मैं जगद् गुरु शंकराचार्य होने के कारण दावे के साथ कहता हूं कि हिन्दुओं के किसी भी शास्त्र में गोवध तथा गोमांस भक्षण की आज्ञा नहीं है। परन्तु कुछ पत्र-पत्रिकायें हिन्दू धर्मशास्त्रों से गोहत्या तथा गोमांस भक्षण का समर्थन करती हैं। वह सर्वथा असत्य तथा भ्रामक है। यह सर्व साधारण जनता को धोखा देने की चाल मात्र है।

आर्थिक दृष्टि से भी गाय का महत्त्व कम नहीं है। इसके बैल खेती करते हैं। प्रत्येक किसान ट्रैक्टर खरीद कर खेती नहीं कर सकता। पैट्रोल, डीज़ल की समस्या सामने आती है। बैलों से खेती करने पर उनका गोबर तथा गो मूत्र प्राप्त होता है जो खाद के काम आता है। गाय के गोबर तथा घृत के सम्बन्ध में सोवियत रूस के 'पंचग' में नयी खोज की गयी है। वैज्ञानिकों ने लिखा है कि जिस मकान में गाय के घृत से किये गये हवन का धुआं भरा होगा उसमें हाईड्रोज़्न, नाइट्रोजन तथा आइटमवम का प्रभाव नहीं पड़ता। गाय के गोबर से लिपी हुई छत्त तथा दीवारों वाले घरों पर भी इन बमों का प्रभाव नहीं होता। जब दूध न देने वाले तथा खेती न करने वाले गोवंश से हमें इतना बड़ा लाभ पहुंचता है जिससे हम आइटम आदि बमों से बच सकते हैं तो गोवंश अनुपयोगी कैसे हो सकता है। सरकार लोभ में आकर गोहत्या कर गोमांस, गोचर्म तथा हड्डियों का निर्यात करके गोवंश का विनाश करती है। इन वस्तुओं के बदले में विदेशी विलासिता के साधन क्रीम, पाऊडर स्नो, लवैंडर, इतर, तेल, फुलेल, सेन्ट आदि वस्तुयें आयात करती है। हमारे देश की निर्धन जनता का कार्य इनके बिना चल सकता है। सुना जाता है कि विदेशी मुद्रा जितनी मिलती है उतना धन भारत की जनता पर कर लगाकर वसूल किया जाता है।

अन्त में मैं एक धर्माचार्य जगद् गुरु होने के नाते यह कहने में संकोच नहीं करता कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त, ईसाई, मुस्लिम, यहूदी आदि किसी धर्म में गोहत्या आवश्यक नहीं है। **(पूज्य पाद जगद् गुरु सहजबोध पुस्तक से)**

सनातन धर्म—अनादि

सनातन पुरुषस्य शाश्वत पुरुषस्य धर्म इति सनातन धर्मः। यद्वा श्रुति स्मृतिः पुराण प्रतिपादितो धर्मः सनातन धर्म इति। हमारा वैदिक सनातन धर्म उतना ही पुराना है जितना भगवान् पुराना है। इसके मौलिक ग्रन्थ वेद संसार की प्राचीनतम भाषा संस्कृत में हैं। संस्कृत विश्व की सम्पूर्ण भाषाओं की जननी है। हमारे देश के जुलाहे तथा तोता मैना तक संस्कृत में शास्त्रार्थ करते थे। इस देश में भाषा के लिये कभी भी झगड़ा नहीं हुआ। संस्कृत हिन्दु मात्र की भाषा है। भारत का प्रत्येक हिन्दू कश्मीर से कन्याकुमारी तक अटक से कटक तथा किसी भी प्रान्त का वासी क्यों न हो। प्रत्येक हिन्दू के जन्म से मृत्यु पर्यन्त इसी भाषा में उसके सभी संस्कार होते हैं। सनातन धर्म की पूरी निधि वेदों से लेकर रामायण से गीता तक इसी में निहित हैं। आपने अन्त में कहा कि वर्तमान काल में सनातन धर्म पर खतरा है। भाषणों से काम नहीं चलेगा। समाज को संस्कृत के विद्वानों का आदर करना चाहिये। तभी सनातन धर्म की रक्षा हो सकेगी।

केन्द्रीय सरकार हिन्दुओं की भावनाओं की रक्षा करे

कुछ वर्ष पूर्व तामिलनाडु में सिरफिरे कुछ लोगों ने भगवान् राम का पुतला जलाया। उन्होंने राम लीला की जगह रावण लीला खेली। श्री हनुमान जी द्वारा मन्दोदरी हरण करवाया गया। इसकी चर्चा करते हुये शारदा पीठाधीश्वर महाराज जी ने कहा कि भगवान् राम दैवी शक्ति के प्रतीक हैं। रावण आसुरी शक्ति का प्रतीक था। श्री राम ने रावण द्वारा किये जा रहे अत्याचारों को समाप्त करने के लिये उसका वध किया था। उसके मारने का कारण द्रविड़ आर्यों के बीच दुर्भावना उत्पन्न करने के लिये नहीं। अतः हिन्दु श्री राम की पूजा के माध्यम से उनके सद्गुणों की पूजा करता है। इसीलिये मामा होने पर भी कृष्णावतार में कंस का वध किया। अतः हमारे देश में प्रान्तीयता तथा भाषावाद को बढ़ावा नहीं मिलना चाहिये। दक्षिण में राम विरोधी आन्दोलन में सरकार का हाथ है।

जमशेदपुर में अखिल भारतीय धर्म संघ के ३२वें महाधिवेशन में दिये गये जगद् गुरु के भाषण का सारांश—

ब्रह्मीभूत जगद् गुरु श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज ने अनेकों परोपकार के कार्य किये। वे जितने विद्वान् थे उतने ही शान्त, गम्भीर तथा निरभिमानी थे। कई वर्षों से

अस्वस्थ चल रहे थे। शरीर छोड़ने से पहले उन्होंने अपनी वसीयत में ज्योतिष् पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री स्वरूपानन्द जी महाराज का नाम लिखा था। ७ अप्रैल, सन् १९८२ को वह ब्रह्मीभूत हो गये। अर्थात् उन्होंने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप की प्राप्ति की। अतः उनके स्थान पर २७ मई, १९८२ ई. को शारदा पीठ पर भी अभिषिक्त किया गया। यह अभिषेक शृंगेरी के शंकराचार्य श्री अभिनव विद्या तीर्थ जी द्वारा हुआ।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

अनन्त श्री विभूषित पूज्यपाद वर्तमान जगद् गुरु शंकराचार्य शारदा पीठाधीश्वर श्री स्वरूपानन्द जी सरस्वती महाराज का संक्षिप्त जीवन वृत्त

जन्म—विक्रमी सं. १९८२ सन् १९२५ ई. भाद्रपद शुक्ल तृतीया।

पिता—पं. धनपति उपाध्याय। माता—श्रीमती गिरिजा देवी

जन्म स्थान—ग्राम—दिधोरी। जनपद—शिवनी (मध्य प्रदेश)

जन्म नाम—श्री पं. पोथी राम जी

विद्याध्ययन—२० वर्षों तक अध्ययन, पूजन, भजन, ध्यान, तीर्थयात्रा। वेद वेदांग का अध्ययन धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी के द्वारा। सन् १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन में दो बार जेल यात्रा। सन् १९३६ ई. में ११ वर्ष की अल्पायु में गृह त्याग। सन् १९६४ में परमहंसी गंगा में तप किया। नृसिंह जनपद में धर्म का प्रचार प्रसार किया। सम्पूर्ण मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, राजस्थान, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में धर्म प्रचार किया। काशी आदि क्षेत्रों में धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया।

धर्म रक्षा—गिरिनार, बिहार के चाइवासा क्षेत्रान्तर्गत, सिंह भूमि आदि में भ्रमण कर वहां के आदिवासी वनवासियों में धर्म प्रचार किया। हिन्दुओं को

ईसाई बनने से रोका। ईसाई मिशनरियों द्वारा हज़ारों आदिवासी हिन्दुओं को जो कि ईसाई हो गये थे। धर्मान्तरण द्वारा पुनः हिन्दु बनाया।

आश्रम की स्थापना—बिहार प्रान्त के राजनन्दन पुर क्षेत्र में काली तथा कोकिला नदियों के संगम पर विश्व कल्याण आश्रम की स्थापना की। वहां वनवासियों की निस्स्वार्थ सेवा होती है। महाशिवरात्रि पर्व पर निःशुल्क चिकित्सा, भोजन, वस्त्र आदि दिये जाते हैं।

ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में—वि. सं. २०३० में पूज्य पाद अनन्त श्री श्रीकृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने से पूर्व श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज काशी में धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज से "अद्वैत सिद्धि" पढ़ रहे थे। उसी समय श्री करपात्री जी को दिल्ली में जगद् गुरु जी के गंभीर रूप से अस्वस्थ होने की सूचना मिली। तब श्री स्वामी करपात्री जी महाराज श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी को साथ लेकर दिल्ली पहुंचे। वहां पर उस समय पुरी पीठाधीश्वर श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज, शारदा द्वारका पीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज, हरिद्वार से श्री स्वामी भूमानन्द तीर्थ, परम तपस्वी परमवीत-राग श्री स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज तथा सम्पूर्ण भारत से अनन्य महा विद्वान्, महामण्डलेश्वर आदि वहां पहुंचे। वि. सं. २०३० में भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को महाराज श्री ब्रह्मीभूत हुये। उनके श्री विग्रह का विसर्जन यति की अन्त्येष्टि क्रिया के अनुसार हरिद्वार में हुआ। इसके बाद देहली में बड़ी विशाल सभा का आयोजन हुआ। जगद् गुरु जी की अन्तिम इच्छानुसार तथा समुपस्थित शंकराचार्यों, महामण्डलेश्वरों तथा विद्वत् परिषद आदि की सम्मति तथा स्वामी करपात्री जी की सम्मति से पूज्यपाद महाराज श्री दण्डी स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज को वैदिक विधि विधान से ७ दिसम्बर सन् १९७३ ई. को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया।

पूज्य पाद जगद् गुरु श्री स्वरूपानन्द जी महाराज ने ज्योतिर्मठ के प्राचीन स्थानों की खोज करके त्रोटक गुफा, अमर शहतूत का वृक्ष, जिसके नीचे बैठ कर भगवान् भाष्यकार जी ने तप किया था। भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी मां की स्थापना करके स्वयं १६ जून १९७८ ई. को १०० कलशों से महाभिषेक

किया। पर्वतीय जनता के कल्याण के लिये 'आयुर्वेद अनुसन्धान केन्द्र' की स्थापना करके उसमें निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था की। यात्रियों के लिये धर्मशाला तथा विशाल सत्संग भवन का निर्माण कराया। इसका उद्घाटन पुरी पीठाधीश्वर परम तपस्वी जगद् गुरु श्री स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ के कर कमलों से हुआ।

चतुष्पीठ सम्मेलन—अप्रैल सन् १९७९ में मेरठ में 'जगद्गुरु गौरव' ग्रन्थ के विमोचन के अवसर पर चतुष्पीठ सम्मेलन हुआ। उसी वर्ष दूसरा सम्मेलन मई में शृंगेरी मठ में आद्य शंकराचार्य की जयन्ती के समय हुआ था।

मन्दिर निर्माण—परम हंसी गंगा क्षेत्र गोटे गांव नरसिंह पुर में २१५ फीट की ऊंचाई के शिखर से युक्त भगवती राजराजेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी के मन्दिर का निर्माण कराया। मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा २६ दिसम्बर सन् १९८२ में सम्पन्न हुई। यहां पर पर्वत को काट कर ज्ञान गुफा, सत्संग वट, विचार शिला, पांच प्राकृतिक झरनों से निर्मित परम हंसी गंगाकुण्ड तथा अन्य देवताओं की स्थापना हुई।

परम हंसी गंगा नर्मदा के समीप ही विद्यमान है। पुराणों में अनेक नदियों में से गंगा, यमुना, सरस्वती तथा नर्मदा की प्रधानता है। इनके माहात्म्य में 'आया है' ऋग्वेद मूर्ति गंगा स्याद् यमुना च यजुः ध्रुवम्।

नर्मदा साम मूर्तिस्तु स्यादथर्वा सरस्वती॥ क्रमशः गंगादि चारों नदियों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद स्वरूपा हैं। चारों की महिमा में कहा है—

सद्यः पापहरा गंगा, सप्ताहेन कलिंदजा।
त्र्याहात्सरस्वती तीरे, रेवे ! त्वं दर्शन मात्रतः॥

गंगा तत्काल पाप नष्ट करती है, यमुना एक सप्ताह में, सरस्वती तीन दिन में, हे रेवे ! तुम दर्शन मात्र से पवित्र करती हो।

परम हंसी गंगा में त्रिपुर सुन्दरी की प्राण प्रतिष्ठा श्री स्वामी करपात्री जी द्वारा सम्पन्न होनी थी। परन्तु उनके ब्रह्मीभूत हो जाने के कारण शारदा पीठम् शृंगेरी के जगद् गुरु महास्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जी के कर कमलों से हुई। उस समय सहस्र चण्डी याग भी काशी के

विद्वानों द्वारा सम्पन्न हुआ था। श्री यन्त्र का लक्षार्चन अनुष्ठान काशी के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री रामावतार कौशिक द्वारा सम्पन्न हुआ था। इन सभी आयोजनों में दस लाख भक्त, अनेक धर्माचार्य तथा सन्त महात्मा भारत के प्रत्येक प्रान्त से पधारे थे।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

शारदा पीठाधीश्वर
श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज का उपदेश

(वेदों, उपनिषदों, गीता, ब्रह्मसूत्र, अध्यात्म रामायण, विष्णु पुराण, श्रीमद् भागवत आदि ग्रन्थों में जीव के अन्तःकरण की शुद्धि तथा ब्रह्म की प्राप्ति के लिये कर्म, उपासना तथा ज्ञान साधन बताये हैं। इनका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः महाराज श्री अपने भाषणों में तीनों का समन्वय करते हैं। यहां पर उनके भाषणों का सार दिया जा रहा है।)

कर्म विज्ञान (परमहंसी त्रिपथगा से)

चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। यह सुन्दर होने के कारण नहीं, अपितु इसमें जन्म से लेकर मनुष्य नवीन कर्म कर सकता है। कर्म फल भोगने में परतन्त्र है। अन्य योनियों में स्वर्ग या ब्रह्म लोक के देवता ही क्यों न हों। वे अपने मनुष्य लोक के कर्मों का फल तो भोगते हैं, परन्तु नवीन कर्म नहीं कर सकते। वे पुण्य क्षीण होने पर नीचे आते हैं। इसलिये मनुष्य योनि का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य योनि में भी द्विजाति मात्र को वैदिक कर्मों में अधिकार है। ब्राह्मण का वाचस्पत्य याग में, क्षत्रिय का अश्वमेध, राजसूय में, वैश्य का वैश्य स्तोम याग में अधिकार है। यज्ञों का अनुष्ठान सपत्नीक होता है। संन्यासी को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। इस अधिकार के चिह्न शिखा यज्ञोपवीत को त्याग कर संन्यासी आत्मा में ही आहुति देता है। मनुष्य जन्म पाकर शास्त्रानुमोदित शुभ कर्म करने चाहिये।

मनुष्य शरीर में चार प्रकार के मनुष्य हैं। १. पामर २. विषयी ३. साधक ४. जीवन्मुक्त।

१. पामर—जो वेद शास्त्र को नहीं मानते। शरीर तक ही सीमित हैं। वेद विरुद्ध स्वेच्छानुसार कर्म करने वाले पामर हैं।

२. विषयी—जो शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक के भोगों का इच्छुक है वह विषयी है।

३. साधक—जो जन्म मरण से छूटना चाहता है। स्व धर्म का आचरण करते हुये साधना करने वाला साधक है।

४. जीवन्मुक्त—जिसने जीवन में ब्रह्मानुभूति कर ली है। उसे सिद्ध जीवन्मुक्त कहते हैं। शास्त्र का विधि निषेध जीवन्मुक्त के लिये नहीं है।

शास्त्र की आज्ञा पामर के लिये भी नहीं है क्योंकि वह धर्मशास्त्र को मानता ही नहीं है। शास्त्राज्ञा, वर्णाश्रम धर्मानुसार आचरण करने वाले तथा साधना करने वाले साधकों के लिये है। इसमें चारों वर्ण और चारों आश्रम आ जाते हैं। शास्त्र विरुद्ध कर्म करने वाले को उस का फल भोगना पड़ता है। तुलसी रामायण में कहा है कि भगवान् राम ने बालि को जब छिप कर मारा तो बालि ने तर्क करते हुये राम से प्रश्न किया—चूंकि उसके हृदय में भगवान् के प्रति प्रीति थी "**हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितइ राम की ओरा॥ धर्म हेतु अवतरेउ गोसांई। मारेहु मोहिं व्याध की नाई॥ मैं वैरी सुग्रीव पियारा। अब गुन कवन नाथ मोहिं मारा॥**

बालि का भाव है कि हे प्रभो ! आप तो सबके पिता हैं। जैसे सुग्रीव वैसे ही मैं भी आप का पुत्र हूं। आप के मन में विषमता कैसे, अन्तर कैसे, भेदभाव कैसे। बालि ने बड़ी गहरी बात कही। बालि ने कहा कि मेरा अवगुण बताइये। सुग्रीव का पक्ष लेकर आपने मुझे क्यों मारा? फिर यदि मुझे मारना ही था तो सामने ललकार कर युद्ध करते। परन्तु आपने धर्म मर्यादा का उल्लंघन करके मुझे छिपकर शिकारी की तरह मारा। आप धर्म की रक्षा के लिये अवतरित हुये हैं। ऐसा क्यों किया ? भगवान् ने कहा—तुन छोटे भाई की पत्नी के साथ अनुचित व्यवहार करते हो। अतः तुम्हें पाप लगा है। बालि ने कहा—हम तो वानर हैं। मनुष्य नहीं। मानव शास्त्र का नियम तिर्यक् योनि में उत्पन्न वानर पर लागू नहीं हो सकता। भगवान् ने उत्तर दिया—अपने को वानर कहते हो पर सब कुछ समझते हो। हमारे शास्त्रोक्त धर्म की विवेचना करते हो तो उसका पालन भी करो। तुमने धर्म का उल्लंघन किया है, इसलिये तुमको मारा। प्राणी को मैं कर्मानुसार दण्ड अथवा पुरस्कार देता हूं। जीव को पाप का फल भोगना पड़ता है। धर्म शास्त्रों में चारों वर्णाश्रमों, स्त्री आदि के धर्म कहे हैं।

आज संसार धर्म विरुद्ध आचरण करता है। जिसने मनुष्य शरीर प्राप्त करके, विशेष रूप से ब्राह्मण का शरीर प्राप्त करके ब्रह्म साक्षात्कार नहीं किया। उसका सर्वनाश हो जाता है।

परन्तु आज का ब्राह्मण ब्राह्मणोचित कर्म करना तो दूर रहा अपितु शिखा, सूत्र त्याग कर सन्ध्या, गायत्री आदि से कोसों दूर है। क्षत्रिय वैश्य तो पहले ही छोड़ चुके थे। कुछ लोग विवाह के बाद सन्तान प्राप्ति के अनन्तर उपदेश सुनकर यज्ञोपवीत गले में धारण कर लेते हैं। शास्त्र में तीनों वर्णों का विवाह से पूर्व क्रम से ८, ११, १२ वर्षों में उपनयन कहा है। आज हम अपने बच्चों को विदेशी शिक्षा देते हैं। किसी आश्रम विशेष में प्रवेश करके जो आश्रम धर्म का पालन नहीं करता। अहंता ममता में पड़ा रहता है। अपने घर की ममता त्याग कर दूसरे के बच्चों में आसक्त होता है। वह महाराज भरत के समान मृग का जन्म पाता है। भागवत के चौथे स्कन्ध में पुरञ्जनोपाख्यान है उसमें पुरञ्जनी में आसक्त होकर पुरञ्जन ने दूसरे जन्म में, विदर्भ राज की सुन्दर कन्या का जन्म पाया। परन्तु ब्रह्म कुमारियों का मत है कि "प्रत्येक जन्म पुरुष-पुरुष, स्त्री-स्त्री ही रहती है। यह सिद्धान्त ठीक नहीं।" काक भुशुण्डी जी शंकर जी के शाप से हज़ारों जन्म तक अजगर रहे।

अतः अन्तःकरण की शुद्धि के लिये निष्काम भाव से अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करें। गृहस्थ शुद्धतापूर्वक भोजन बना कर बलि वैश्व देव, गोग्रास आदि देकर भोजन करे। अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करे। नित्य सन्ध्योपासना, गायत्री जप करे। जप के पश्चात्—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणं पदे पदे।

इस मंत्र से सूर्य की प्रदक्षिणा करे। शंकर के मन्दिर में प्रदक्षिणा करने से एक एक पग में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। अपने इष्ट देव की नित्य उपासना पूजा उपचारों से या मानसिक करें। बाह्य पूजा से मानसिक पूजा उत्तम है। एक भक्त नित्य प्रति भगवान् का मानसिक पूजन करता था। उसने मानसिक खीर बनाकर शक्कर कम डाली। भगवान् को अर्पित कर दी। भगवान् ने उसे थप्पड़ मारा तथा कहा—मूर्ख मानसिक चीनी डालने में कंजूसी करता है। भक्त हाथ जोड़े खड़ा रहा। उसका कल्याण हो गया। कलि काल में मानसिक पुण्य का फल मिलता है। पाप का नहीं। मानस में कहा है—**कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुण्य हो हिं नहिं पापा।** यदि भक्त के पास कोई वस्तु न हो तो श्रद्धापूर्वक नेत्र बन्द करके भगवान् का जल आदि अनेक उपचारों से मानसिक पूजन करें।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

भक्ति (परमहंसी त्रिपथगा से)

मन को साधक यदि विषयों से मोड़ना चाहता है तो विषयों में जो वस्तु प्राप्त होती है। उससे उत्तम वस्तु मिलने पर मन अपने आप मुड़ जायेगा। परन्तु कहने मात्र से मन नहीं मुड़ता है। साधना करने से मुड़ता है। जैसे हाथी गर्मी के भयंकर ताप से सन्तप्त छोटे गड्ढों में भरे जल में अपनी सूंड डालकर प्यास बुझाना चाहता है। क्षण भर में पी लेता है। पानी नहीं रहता, प्यास भी नहीं बुझती। उसकी प्यास अगाध शीतल निर्मल जल से भरे सरोवर का पानी पीने से निवृत्त होती है। ऐसा जल मिलने पर उसका गड्ढों के जल में आकर्षण नहीं रहता है। वैसे ही यह मन रूपी हाथी विषय रूपी गड्ढों में भटकता है। इसकी विषय भोग रूपी तृष्णा तब तक शान्त नहीं होती, जब तक ब्रह्मानन्द रूपी सरोवर की प्राप्ति नहीं होती। जिसको यह आनन्द मिल जाता है, उसको इस लोक तथा ब्रह्म लोक तक के भोग फीके लगते हैं। गीता में भगवान् भी कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

जिसको प्राप्त करके उससे अधिक कुछ भी अन्य लाभ नहीं मानता है। जिसमें स्थित होने पर प्रह्लाद आदि के समान बड़े दुःख से भी विचलित नहीं होता है। अन्यत्र भी कहा है।

ब्रह्मानन्द रसं पीत्वा येऽप्युन्मत्त योगिनः।
इन्द्रोऽपि रंकवद्भाति नृप कीटस्य का कथा।
न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविनः॥

ब्रह्मानन्द रस का पान करने वाले उन्मत्त योगी को इन्द्र भी भिखारी के समान प्रतीत होता है। फिर राजा जैसे कीड़े के लिये तो कहना ही क्या है। दोनों लोकों से विरक्त, एकान्त जीव (एक ब्रह्म में रमण करने वाले) योगी को जो सुख मिलता है, वह सुख देवराज इन्द्र तथा चक्रवर्ती सम्राट् को भी नहीं प्राप्त होता है। भगवत्पाद शंकर ने कौपीन पंचक में भी **"कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः"** कहा है। विचार करने से भगवान् नित्य प्राप्त है। नित्य

प्राप्त होने पर भी मृग के समान उसको जीव भूल गया है। कस्तूरीमृग के नाभि में कस्तूरी होने पर भी वह उसे बाहर खोजता है। **कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूंढे बन मांहि।** अर्थात् अन्तर्मुख हुये बिना परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है। एक किसान जल के लिये नदी तट पर पहुंचा। उसे जल में लाल दिखाई दिया। उसने कपड़े उतार कर जल में गोता लगाया। जल में उसे पत्थर मिले। कई गोते लगाये। वह थक गया, तथा ठण्ड के मारे कांपने लगा। इतने में एक सन्त वहां पहुंचे। उसे परेशान देखकर पूछा—कि क्या बात है। उसने कहा—महाराज ! जल में लाल मणि है। मेरे हाथ नहीं आती। सन्त ने कहा—चिन्ता मत करो। कपड़े पहन लो। लाल अवश्य मिलेगा। देखो इस पेड़ पर चढ़ जावो और नदी के ऊपर जो शाखा है उस पर सावधानी से चढ़ो। उसने ऐसा ही किया। उसे पक्षी के घोंसले में लाल मिल गया। उस लाल का प्रतिबिम्ब जल में पड़ रहा था। यह दृष्टान्त है।

सिद्धान्त में किसान रूपी जीव है। वह लाल रूपी परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है। मायारूपी जल में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। जैसे किसान को प्रतिबिम्ब पकड़ने में नहीं आया। वैसे ही जीव रूपी प्रतिबिम्ब पकड़ में नहीं आता। परन्तु बिम्ब को पकड़ने पर प्रतिबिम्ब स्वयं अपने हाथ में आ जाता है। जैसे कोई शीशे के सामने अपना प्रतिबिम्ब देखता है। यदि वह प्रतिबिंम्ब का श्रृंगार करना चाहे तो नहीं कर सकता। उसके श्रृंगार की विधि है मुख का श्रृंगार करना। प्रतिबिम्ब का श्रृंगार स्वयमेव हो जाता है। जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है। सूखी हड्डी में स्वाद नहीं है। उसके मसूड़ों से रक्त निकलता है। उसका स्वाद मिलने पर वह हड्डी को ही स्वादिष्ट समझता है। वैसे ही जीव भी आत्मा में आनन्द न समझ कर अज्ञान से विषयों में आनन्द समझता है। आत्मा परमानन्द स्वरूप है। परमानन्द अपने भीतर है बाहर नहीं।

देहली से एक व्यापारी बम्बई का टिकट लेकर व्यापार करने के उद्देश्य से रेल में बैठा। वह हीरे जवाहरात का व्यापार करता था। एक चोर भी उसके साथ लगा। चोर ने पूछा—आप कहां जायेंगे। सेठ ने कहा—बम्बई। चोर बोला—मुझे भी वहीं जाना है। दोनों एक ही डिब्बे में बैठे। रात्रि में सोने से पहले सेठ जी ने उसके सामने हीरा निकाल कर पोंछा और रख दिया। सो गये। चोर को चिन्ता में निद्रा नहीं आई। रात भर सेठ के बिस्तर जेब आदि की तलाशी

ली किन्तु हीरा नहीं मिला। सेठ उसकी आंख बचाकर हीरे को उसके सिरहाने रख देते थे। सबेरे चुपके से उठा लेते थे। दूसरी रात्रि में भी उसने वैसे ही किया। उसने उसको बेहोशी की दवाई सुंघा दी। सब कुछ छान लिया। परन्तु हीरा नहीं मिला। चोर बड़ा दुःखी हुआ। तीसरे दिन चोर ने पूछा। आप हीरा कहां रखते थे ? सेठ ने कहा—तेरे तकिये के नीचे। चोर माथा पीटने लगा। मैं इनकी तलाशी लेता रहा, अपनी तलाशी नहीं ली। चोर के समान जीव भी बाहर ईश्वर को ढूंढता है। भीतर नहीं देखता।

ईश्वर प्राप्ति के ऋषियों ने दो उपाय बताये हैं। १. साधक हृदय को दर्पण के समान शुद्ध कर ले। तब उसे ब्रह्म का दर्शन होता है। २. भक्त भगवान् के श्री विग्रह का ध्यान करे भगवान् मूर्तिमान विराजमान है। उनका ध्यान, चिन्तन, नाम जप, लीला श्रवण तथा कीर्तन आदि से भगवत्प्राप्ति होती है। प्रेमी भक्त भगवान् से कहता है—मुझे आपके चरणों का ध्यान करने से तथा लीला कथामृत पान करने से जो आनन्द मिलता है। वह ब्रह्म में भी नहीं है। अतः श्री शंकराचार्य जी ने भी कहा है कि—हे चंचल चित्त तू, विचार रूपी तराजू के एक पलड़े में विषयों को तथा दूसरे में हरि को रखकर तोल। अर्थात् विचार कर कि तुझे वास्तविक आनन्द कहां मिलेगा। यह विषय तो तुम्हें क्षण भर आनन्द देकर अनन्तकालीन दुःख देंगे। भगवान् के चरणारविन्द ही एक मात्र शाश्वत शान्ति देने वाले हैं।

यदि इसके विपरीत दुष्टों का संग करोगे, तो कुविचार मन में उत्पन्न होकर अधोगति में ले जायेंगे। निर्मल मन रूपी आंगन में कुविचार रूपी कूड़ा कर्कट मत भरो। जब तक विषय वासना सहित रहेंगे, तब तक भगवान् में मन नहीं लगेगा। किन्तु जिसको एक बार भगवदानन्द प्राप्त हो गया उसको भगवान् से मन हटाने में समस्या खड़ी हो जाती है। गोपियों की यही दशा थी।

एक गोपी यमुना में जल भरने गई। कृष्ण की याद आ गई। बड़ी कठिनाई से जल भर कर जाने लगी। तभी उसको लगा, कृष्ण मुझे पुकार रहे हैं। उसने घड़ा रख दिया। पद्मासन लगाकर प्राणायाम करने लगी। इतने में नारद जी आ गये। पूछा तुम क्या कर रही हो। गोपी ने उत्तर दिया—योगाभ्यास प्राणायाम कर रही हूं। भक्त योगाभ्यास करके विषयों से मन को हटाकर भगवान् में लगाते हैं। मैं प्राणायाम करके श्रीकृष्ण से मन को हटाकर घर के काम धन्धे में मन को लगाना चाहती हूं। सब मुझे बुरा भला कहते हैं। ताने मारते हैं। अतः मैं

चाहती हूं कृष्ण मेरे मन से बाहर हो जायें। बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र क्षण मात्र के लिये जिसके स्वरूप को देखना चाहते हैं। उसी रूप को गोपियां अपने हृदय से निकालना चाहती हैं।

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनोदित्सति,
बालासौ विषयेषु धित्सति मनः प्रत्याहरन्ती ततः।
यस्य स्फूर्ति लवाय हन्त ! हृदये योगी समुत्कण्ठते,
मुग्धेयं किल परम तस्या हृदयान्निष्क्रान्तिमाकांक्षति ॥

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, अष्टमोऽध्यायः ॥८

अथ नवमोऽध्यायः

ज्ञान (परमहंसी त्रिपथगा से)

जगद् गुरु जी के भाषण का भावार्थ

वेदों में भगवान् के निराकार निर्गुण, निराकार सगुण तथा सगुण साकार तीन स्वरूप बताये हैं। तुलसी के मानस का उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता प्रशंसा, फल तथा उत्पत्ति आदि लिंगों का विचार करने से भगवान् के तीनों स्वरूपों की सिद्धि होती है। मानस के उपक्रम उपसंहार पर विचार करने से राम परब्रह्म सिद्ध होते हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में पार्वती जी का सन्देह है तथा शंकर जी उत्तर देते हुये भगवान् के दोनों स्वरूपों का वर्णन करते हैं। परमात्मा की महिमा का ज्ञान हुये बिना भक्त का मन विषयों से हटकर भगवान् में नहीं लग सकता। अतः तुलसीदास जी ने कहा है—

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना न हि भगति ढिठाई। जिमि खग पति जल कै चिकनाई॥

भुसुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं कि हे पक्षिराज ! भगवान् की महिमा जाने बिना अनुभूति नहीं होती। बिना प्रतीति के प्रीति नहीं हो सकती। प्रीति के बिना दृढ़ भक्ति नहीं हो सकती। जैसे जल की चिकनाई। जैसे कोई जल में नहाता है नहाने से शरीर चिकना हो जाता है और फिर हवा लगने से पूर्ववत् हो जाता है। सती के मन में भी ब्रह्म की सर्व-व्यापकता के सम्बन्ध में तथा वही ब्रह्म राम रूप से प्रकट है सन्देह होता है।

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल, अनीह, अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, निष्पाप, अजन्मा, अखण्ड, निस्पृह तथा तीनों भेदों से रहित है। जिसको वेद भी नहीं जानता है। क्या वही नर रूप में अवतरित हुआ है ?. यह पार्वती को संशय है। उभय कोटि ज्ञान को संशय तथा विपरीत ज्ञान को भ्रान्ति कहते हैं। अर्थात् वेद ने ब्रह्म को नेति-नेति कहकर वर्णन किया है। वह ब्रह्म आकाश वायु के समान न रूप रहित है (अमूर्त), न पृथ्वी जल आदि के समान मूर्तिमान है। सबका निषेध करने पर जो शेष रहता है, वह ब्रह्म है। जैसे नव विवाहिता कन्या को अचल सौभाग्य की प्राप्ति हेतु वशिष्ट पत्नी अरुन्धती का दर्शन कराते हैं। अरुन्धती दर्शन से कन्या का सौभाग्य अचल होता है। कन्या की मां संकेत करती है। पुत्री समझ नहीं पाती। तब माता ऊंगली से सप्तर्षि मण्डल दिखाती है। उसकी सीध में एक ध्रुव तारा है। सप्तर्षि मण्डल के चार तारे छोड़ कर नीचे के तीन तारे देख। वह देखती है। फिर मां ने कहा—अब तीन के बीच का तारा देख यह वशिष्ठ है। इसके बीच का छोटा तारा अरुन्धती है। कन्या जान जाती है। कन्या को और तारों का निषेध किये बिना ज्ञान नहीं हो सकता। वैसे ही वेद भी भूत, भौतिक, मूर्त, अमूर्त, सब का निषेध करके अवशिष्ट ब्रह्म का ज्ञान कराता है। गुरुओं की युक्ति के बिना निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सकता। पार्वती सन्देह करती हैं। भले ही निराकार निर्गुण ब्रह्म नर रूप न धारण करता हो। शंकर जी कहते हैं। सगुण साकार विष्णु तो अवतार ले सकते हैं। सती का सन्देह तब भी नहीं गया। वे कहती हैं—

विष्णु जो सुरहित नर तनु धारी। सोउ सर्वज्ञ यथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान धाम श्रीपति असुरारी॥

यदि असुर विनाशक लक्ष्मी पति, जो ज्ञान धाम हैं ऐसे विष्णु ने यदि नर तनु धारण किया हो तो वह भी आपके समान सर्वज्ञ हैं। फिर वे ज्ञान धाम होकर अज्ञानी के समान नारी की खोज क्यों कर रहे हैं। यहां से मानस में संशय का बीज उत्पन्न होता है। शंकर जी के युक्ति, तर्क, प्रमाण से समझाने पर भी सती की भ्रान्ति नहीं गई। परीक्षा के अनन्तर सन्देह पूर्ण रूप से निवृत्त नहीं हुआ। अतः दूसरे जन्म में पार्वती के रूप में भी वह संशय करती है। तब भगवान् के समझाने पर उनका भ्रम दूर होता है। प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व भगवान् शंकर निराकार निर्गुण परमात्मा के रूप का वर्णन करते हैं।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥
बन्दऊं बाल रूप सोइ रामू। सब बिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

इन चौपाइयों में शंकर जी निराकार तथा साकार का और सगुण साकार का समन्वय करते हुये कहते हैं कि जैसे मन्द अन्धकार में पड़ी हुई रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाता है। परन्तु रस्सी का ज्ञान होने पर सर्प का भ्रम निवृत्त हो जाता है। वैसे ही चराचर जगत् ब्रह्म में भ्रम से प्रतीत होता है। ब्रह्म का ज्ञान होते ही जगत् का भ्रम वैसे ही बाध हो जाता है। जैसे जगने पर स्वप्न का भ्रम नहीं रहता। वही ब्रह्म देवताओं की प्रार्थना करने पर दशरथ के घर में प्रकट हुआ है। उस बालक राम को मैं प्रणाम करता हूं। जिसका नाम जपने से सब प्रकार का कल्याण होता है।

एक ही निराकार ब्रह्म विषय, इन्द्रिय, देवता तथा अहंकार से जीव भाव को प्राप्त हो गया। पर यह विषय इन्द्रियां स्वयंप्रकाश नहीं, पर प्रकाश हैं। इन सबका परम प्रकाशक अनादि अवधपति राम है।

जगत् प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीश ज्ञान गुन धामू।
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

इन चौपाइयों से राम की स्वयं प्रकाशता सिद्ध होती है। जिस साधन से राम के तीनों स्वरूपों का बोध होता है। उसे ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान भी परोक्ष अपरोक्ष भेद से दो प्रकार का है। वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से तथा सद्गुरुओं से शास्त्र सुनने से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान होता है तथा वेदादि शास्त्रों तथा गुरुओं के बताये साधनानुसार साधना करने से ब्रह्म की प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान भी दृढ़ तथा अदृढ़ भेद से दो प्रकार का है। अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। अपितु दृढ़ ब्रह्म ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। कैवल्य मुक्ति प्राप्त करना ही जीव का चरम लक्ष्य है।

इति श्री गुरुवंश महापुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे, नवमोऽध्यायः॥९॥

इति द्वारका शारदा मठ की परम्परा सम्पूर्ण हुई।

श्री ब्रह्म स्वरूपाचार्य जी से लेकर अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती तक गुरु सं. ७६१ हुई।

अथ दशमोऽध्याय:

शारदापीठ

इस पीठ के आदि आचार्य सुरेश्वराचार्य थे। तब से लेकर आज तक यह पीठ कभी उच्छिन्न नहीं हुआ। सदा कोई न कोई आचार्य पीठ पर विराजमान रहा। इसलिये यहां का मठाम्नाय विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यहां के आचार्यों की नामावली यहां दी जा रही है। बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी उनके जीवन का विशेष परिचय प्राप्त न हुआ। द्वारिका पुरी में ही इस मठ का प्रधान स्थान रहा। समय-समय पर इधर उधर स्थान बदलता भी रहा। बड़ौदा राज्य के हस्तक्षेप करने के कारण यहां की स्थिति सुधरने की बजाये बिगड़ती ही गई है। मूल अधिपति कोई दूसरा है और बड़ौदा सरकार किसी दूसरे को ही शंकराचार्य उद्घोषित करती है। धार्मिक जगत् में इस तरह राजाओं का हस्तक्षेप अनुचित है।

शारदा पीठ में चित्सुखाचार्य दो हुये। १ आद्य शंकर के सहपाठी इन्होंने शंकराचार्य जी से संन्यास लिया था। इनका वृहच्छांकरदिग्विजय नाम का ग्रन्थ है। इस मठ के दूसरे आचार्य हैं।

क्रम	आचार्य नाम	पीठासीन काल	वर्ष तिथि	ब्रह्मीभूत
१.	श्री सुरेश्वराचार्य	५२	चैत्रकृष्ण ८	२६९१ यु. सं.
२.	श्री चित्सुखाचार्य	२४	पौष कृष्ण ३	२७१५ यु. सं.
३.	श्री सर्वज्ञानाचार्य	५९	श्रावण शु. ११	२७७४ यु. सं.
४.	श्री ब्रह्मानन्द तीर्थ	४९	श्रावण शु. १	२८२३ यु. सं.
५.	श्री स्वरूपाभिज्ञानाचार्य	६७	ज्येष्ठ कृ. १	२८९० यु. सं.
६.	श्री मङ्गल मूर्त्याचार्य	५२	पौष शुक्ल १४	२९४२ यु. सं.
७.	श्री भास्कराचार्य	२३	पौष शु. १२	२९६५ यु. सं. विमर्श में पौ. शु. १४ है
८.	श्री प्रज्ञानाचार्य	४३	आषाढ़ शु. ७	३००८ यु. सं.
९.	श्री ब्रह्मज्योत्स्नाचार्य	३२	चैत्र कृ. ४	३०४० यु. सं.
१०.	श्री आनन्दाविर्भावाचार्य	×	फाल्गुन शु. ९	९ वि. सं.
११.	श्री कलानिधि तीर्थ	७३	पौष शुक्ल ६	८२ वि. सं.
१२.	श्री चिद्विलासाचार्य	३७	मार्ग शीर्ष शु. १३	११९ (११४) वि. सं.
१३.	श्री विभूत्यानन्दाचार्य	३५	श्रावण शु. ११	१५४ वि. सं.

क्रम	आचार्य नाम	पीठासीन काल	वर्ष तिथि	ब्रह्मीभूत
१४.	श्री स्फूर्ति निलय पादाचार्य	४९	आषाढ़ शु. ६	२०३ वि. सं.
१५.	श्री वरतन्तुपाद	४६	आषाढ़ कृ. ३	२५९ वि. सं.
१६.	श्री योगारूढाचार्य	१११	मार्गशीर्ष कृ. ११	३६० वि. सं.
१७.	श्री विजय डिण्डिमाचार्य	३४	पौष कृ. ८	३९४ वि. सं.
१८.	श्री विद्यातीर्थ	४३	चैत्र शु. १	४३७ वि. सं. (४३८)
१९.	श्री चिच्छक्तिम दैशिक	४६	आषाढ़ शु. १२	४८३ वि. सं.
२०.	श्री विज्ञानेश्वर तीर्थ	२८	आश्विन कृ. १५	५११ वि. सं.
२१.	श्री ऋतम्भराचार्य	६१	माघ शु. १०	५७२ वि. सं.
२२.	श्री अमरेश्वर गुरु	३६	भाद्रपद ६	६०८ वि. सं.
२३.	सर्वतोमुख तीर्थ	६१	पौष शु. ४	६६९ वि. सं.
२४.	आनन्द देशिक	५२	वैशाख कृ. ५	७२१ वि. सं.
२५.	श्री समरसिकाचार्य (समाधि रसिक)	७८	फाल्गुन शु. १२	७९९ वि. सं.
२६.	श्री नारायणाश्रम	३७	चैत्र शुक्ल १४	८३६ वि. सं.
२७.	श्री बैकुण्ठाश्रम	४९	आषाढ़ कृ. ६	८८५ वि. सं.
२८.	श्री विक्रमाश्रम (शशि शेखराश्रम)	२६	आषाढ़ शु. ३	९११ वि. सं.
२९.	श्री नृसिंहाश्रम	४९	ज्येष्ठ कृ. १४	९६० (त्र्यम्बकाश्रम)
३०.	श्री अम्बाश्रम	५	वैशाख कृ. १५	९६५ (चिदम्बराश्रम)
३१.	श्री विष्णवाश्रम	३६	ज्येष्ठ शु. १	१००१
३२.	श्री केशवाश्रम	५१	माघ कृ. ५	१००६
३३.	श्री चिदम्बराश्रम	७७	मार्ग शीर्ष कृ. ९	१०८३
३४.	श्री पद्मनाभाश्रम	२६	ज्येष्ठ शु. १५	११०९
३५.	श्री महादेवाश्रम	७५	श्रावण कृ. ९	११८४
३६.	श्री सच्चिदानन्दाश्रम	२३	आश्विन कृ. ५	१२०७
३७.	श्री विद्याशङ्कराश्रम	५८	आश्विन कृ. ४	१२६५
३८.	श्री अभिनव सच्चिदानन्दाश्रम	२८	वैशाख शु. ६	१२९३
३९.	श्री शशि शेखराश्रम (नृसिंहाश्रम)	३३	वैशाख शु. १	१३२६
४०.	श्री वासुदेवाश्रम	३६	फाल्गुन कृ. १०	१३६२ (१३६१)
४१.	श्री पुरुषोत्तमाश्रम	३२	माघ कृ. ५	१३९४ वि. सं.
४२.	श्री जनार्दनाश्रम	१४	भाद्रपद शु. १५	१४०८ वि. सं.
४३.	श्री हरिहराश्रम	३	श्रावण शु. ११	१४११ वि. सं.
४४.	श्री भवाश्रम	१०	वैशाख कृ. ५	१४२१ वि. सं.
४५.	श्री ब्रह्माश्रम	१५	आषाढ शु. ९	१४३६ वि. सं.

क्रम	आचार्य नाम	पीठासीन काल	वर्ष तिथि	ब्रह्मीभूत
४६.	श्री वामनाश्रम	१७	चैत्र कृ. १२	१४५३ वि. सं.
४७.	श्री सर्वज्ञानाश्रम	३६	चैत्र कृ. ८	१४८९ वि. सं.
४८.	श्री प्रद्युम्नाश्रम	६	चैत्र. शु. ६	१४९५ वि. सं.
४९.	श्री गोविन्दाश्रम	२८	ज्येष्ठ कृ. ४	१५२३ वि. सं.
५०.	श्री चिदाश्रम	५३	फाल्गुन कृ. शु. २	१५७६ वि. सं.
५१.	श्री विश्वेश्वराश्रम	३३	माघ शु. १	१६०८ वि. सं.
५२.	श्री दामोदराश्रम	७	चैत्र कृ. ५	१६१५ वि. सं.
५३.	श्री महादेवाश्रम	१	चैत्र शु. १	१६१६ वि. सं.
५४.	श्री अनिरुद्धाश्रम	९	माघ कृ. ४	१६२५ वि. सं.
५५.	श्री अच्युताश्रम	४	श्रावण कृ. ६	१६२९ वि. सं.
५६.	श्री माधवाश्रम	३६	माघ कृ. ४	१६६५ वि. सं.
५७.	श्री अनन्ताश्रम	५१.	चैत्र शु. १२	१७१६ वि. सं.
५८.	श्री विश्वरूपाश्रम	५	श्रावण कृ. २	१७२१ वि. सं.
५९.	श्री चिद्घनाश्रम	५	माघ शु. ६	१७२६ वि. सं.
६०.	श्री नृसिंहाश्रम	९	वैशाख शु. ४	१७३५ वि. सं.
६१.	श्री मनोहराश्रम	२६	भाद्रपद शु. ९	१७६१ वि. सं.
६२.	श्री प्रकाशानन्द सरस्वती	३४	आश्विन कृ. ६	१७९५ वि. सं.
६३.	श्री विशुद्धाश्रम	४	वैशाख कृ. १५	१७९९ वि. सं.
६४.	श्री वामनेन्द्राश्रम	३२	श्रावण कृ. १५	१८३१ वि. सं.
६५.	श्री केशवाश्रम	७	कार्तिक कृ. ९	१८३८ वि. सं.
६६.	श्री मधुसूदनाश्रम	१०	माघ शु. ५	१८४८ वि. सं.
६७.	श्री हयग्रीवाश्रम	१४		१८६२ वि. सं.
६८.	श्री प्रकाशाश्रम	१		१८६३ वि. सं.
६९.	श्री हयग्रीवानन्द सरस्वती	११		१८७४ वि. सं.
७०.	श्री श्रीधराश्रम	४०		१९१४ वि. सं.
७१.	श्री दामोदराश्रम	१४		१९२८ वि. सं.
७२.	श्री केशवाश्रम	७	आश्विन कृ. ७ भृगुवार	१९३५ वि. सं.
७३.	श्री राजराजेश्वर शंकराश्रम	२३	आषाढ़ शु. ५	१९५७ वि. सं.
७४.	श्री माधवतीर्थ	१५	भाद्रपद अमावस्या	१९७२ वि. सं.
७५.	श्री शान्त्यानन्द सरस्वती	१०	कृष्णा द्वितीया	१९९२ वि. सं.

क्रम	आचार्य नाम	पीठासीन काल	वर्ष तिथि	ब्रह्मीभूत
७६.	श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ			
७७.	श्री चन्द्रशेखराश्रम			
७८.	श्री त्रिविक्रम तीर्थ, श्री भारती कृष्ण तीर्थ			
७९.	श्री स्वरूपानन्द तीर्थ			२००० वि. सं.

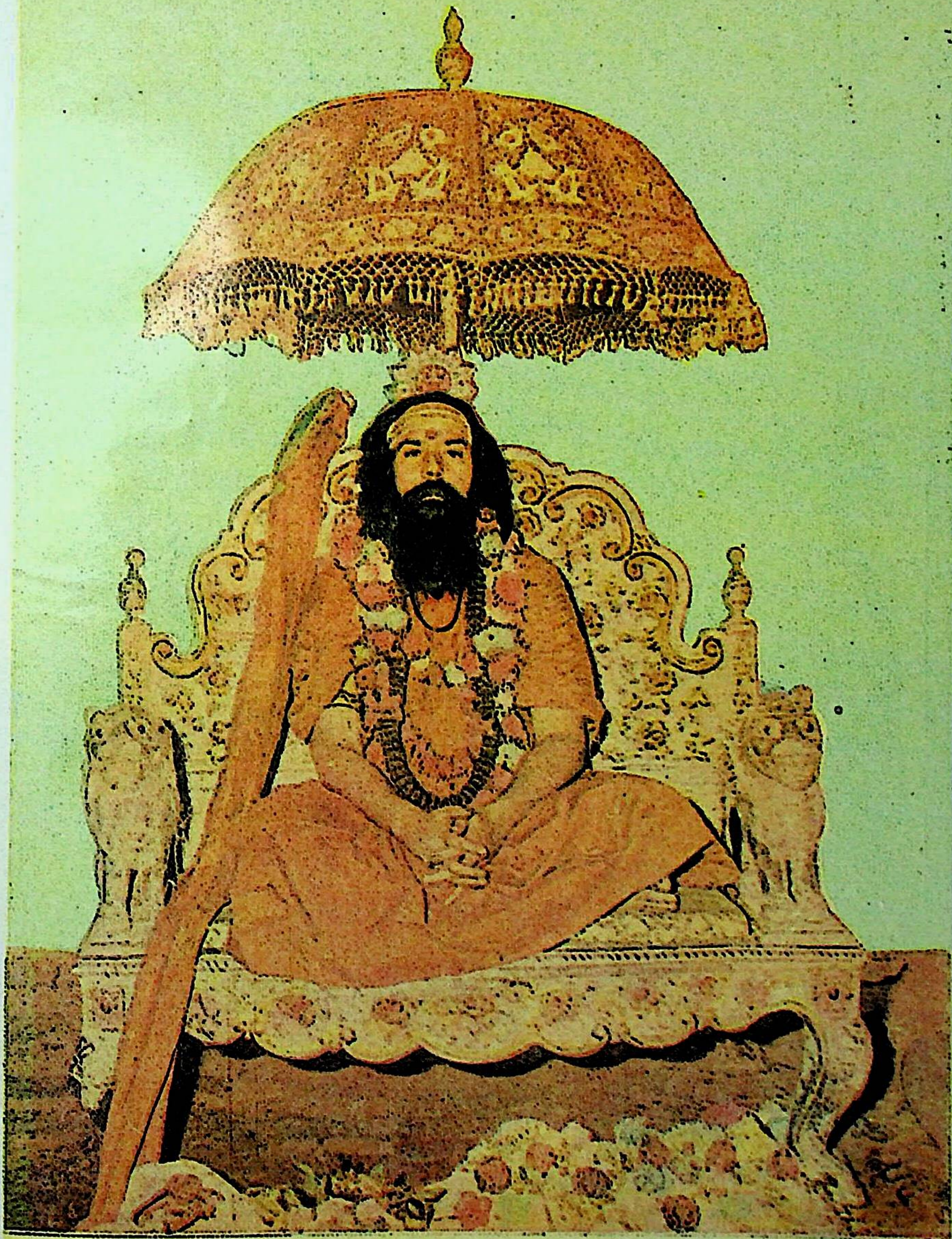
जगद् गुरु श्री माधवतीर्थ जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर मठ में विवाद खड़ा हुआ। स्वामी जी का उत्तराधिकारी कोई शिष्य नहीं था। अतः पं. चतुर्थी लाल शर्मा बीकानेर निवासी जी की "आह्निक कर्म पद्धति" ग्रन्थ के आरम्भ में जगद् गुरु शारदा पीठाधीश्वर, श्री माधव तीर्थ आचार्यपाद कर कमल संजात त्रिविक्रम तीर्थ। इससे सिद्ध होता है कि श्री माधव तीर्थ के अनन्तर श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी पीठासीन हुये। श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी महाराज ने सन् १९१९ में वाराणसी में वैंकटरमन शास्त्री जी को संन्यास देकर श्री भारती कृष्ण तीर्थ योगपट्ट दिया। सन् १९२१ में श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी आसीन हुये। १९२५ ई. में पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी मधुसूदन तीर्थ जी महाराज के विशेष आग्रह करने पर श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी पुरी के शंकराचार्य हुये। श्री स्वामी पुरी पीठ निरंजन देव तीर्थ के मतानुसार पुरी जाने से पूर्व अभिनव श्री सच्चिदानन्द तीर्थ जी को शारदा पीठ पर अभिषिक्त किया सं. २००० वि. में। परन्तु सुमेरू पीठाधीश्वर शंकरानन्द जी के मतानुसार भारती कृष्ण तीर्थ जी ने स्वरूपानन्द तीर्थ जी को अपने स्थान पर बैठाया। वे कुछ ही वर्षों में ब्रह्मीभूत हो गये। तब अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी को सं. २००० वि. में अभिषिक्त किया। परन्तु दूसरे पक्ष वालों में श्री चन्द्रशेखराश्रम जी को सं. २००० वि. में अभिषिक्त किया। श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी सनातनी जनता तथा परम्परा के अनुसार ब्रिटिश तथा बड़ौदा सरकार से ३५ वर्ष केस लड़ते रहे। अतः श्री स्वामी माधव तीर्थ से लेकर यह परम्परा विवादास्पद रही।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, पंचम परिच्छेदे दशमो ऽध्यायः ॥१०॥

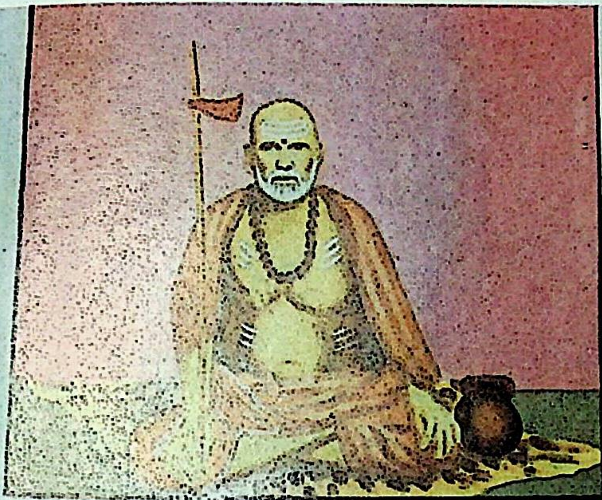




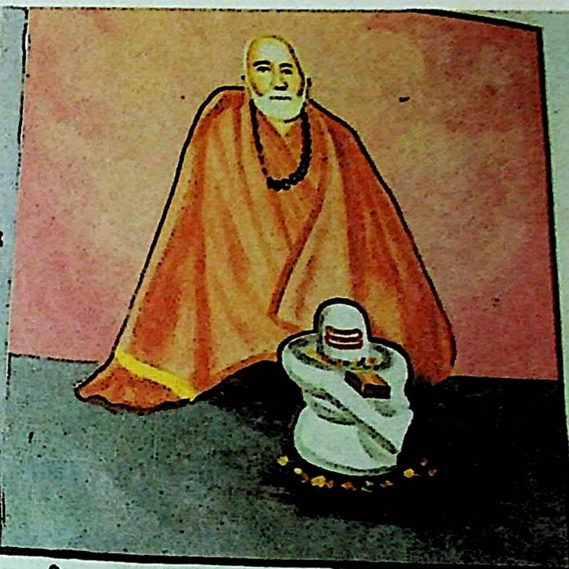
ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्त श्री स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज



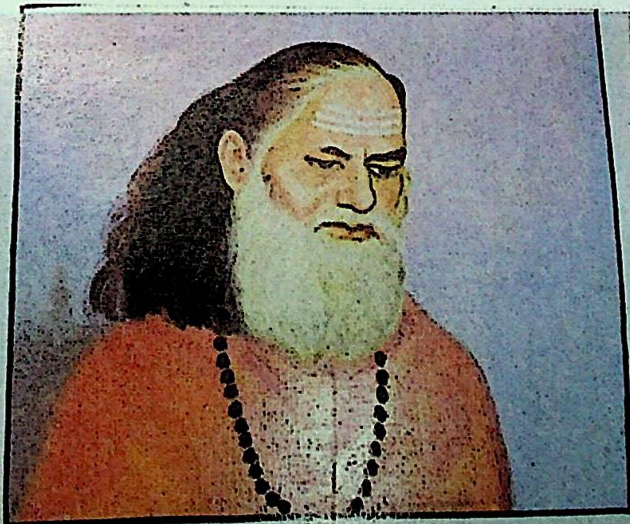
अनन्त श्री विभूषित श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर
श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज
ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम) हिमालय



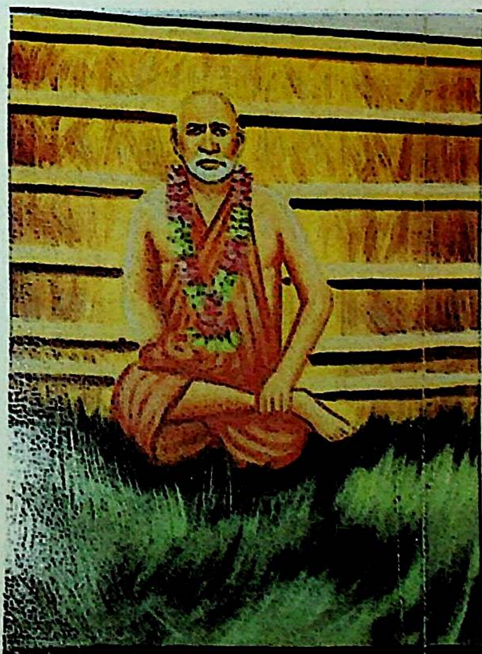
श्री 1008 श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु दण्डीस्वामी मधुसुदन आश्रम जी महाराज (चौसट्टी मठ) काशी (12 वर्ष की निर्विकल्प समाधि में रहे)



दण्डी स्वामी अनंत श्री वेणीमाधवाश्रम जी
कम्बियाँ, होशियार पुर



अनन्त श्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत
स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज



यतिचक्र चूड़ामणि श्री 1008
दण्डी स्वामी जी करपात्री जी महाराज



षष्ठः परिच्छेद

अथ प्रथमोऽध्यायः

ज्योतिर्मठ की परम्परा

श्री शंकराचार्य जी ने भारत की उत्तर दिशा में बौद्धों के द्वारा बद्री नारायण की मूर्ति, जो कि नारद कुण्ड में पड़ी थी, उसको निकाल कर माता के धन से मन्दिर निर्माण कर वहां बद्री नारायण, नर, नारायण, कुबेर, उद्धव तथा लक्ष्मी आदि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। वहीं पर अथवा वहां से २० मील नीचे जोशी मठ में अथर्ववेद की स्थापना करके परम सिद्ध योगी त्रोटकाचार्य जी को अभिषिक्त किया। वहीं पर अमर शहतूत के वृक्ष के नीचे प्रस्थानत्रयी के भाष्य लिखे। कुछ आचार्यों के मतानुसार वहीं पर व्यास दर्शन तथा शास्त्रार्थ हुआ था। यह मठ गढ़वाल ज़िले के पैनखण्डा परगना में पृथ्वी के अक्षांश ३०, ३३/४६ तथा देशान्तर ७९-३६/२४ पर स्थित है। समुद्र से इसकी ऊंचाई ६५०० फीट है। यह विष्णु गंगा (धौली) तथा अलकनन्दा के संगम स्थान, विष्णु प्रयाग तीर्थ से १६०० फुट की ऊंचाई पर है। हरिद्वार से १६४ मील की दूरी पर है। —ज्योतिष्पीठ परिचय

यहां अधिक शीत होने के कारण अक्तूबर से अप्रैल तक मन्दिर बन्द रहता है। चल मूर्तियां नीचे ले जाई जाती हैं। इस मठ में १९ आचार्य जीवन्मुक्त, चिरंजीवी अद्यावधि विद्यमान हैं। अधिकारी भक्तों को उनका दर्शन भी होता है। इनका नित्य नाम स्मरण करने से योग सिद्धि प्राप्त होती है।

तोटको[१], विजयः[२], कृष्णः[३], कुमारो[४], गरुड़ध्वजः[५]।
विन्ध्यो[६] विशालो[७] बकुलो[८] वामनः[९] सुन्दरो[१०] ऽरुणः[११] ॥१॥
श्री निवासः[१२] सुखानन्दो[१३] विद्यानन्दः[१४] शिवोगिरिः[१५]।
विद्याधरो[१६] गुणानन्दो[१७] नारायण[१८] उमापतिः[१९] ॥२॥
एते ज्योतिर्मठाधीशाः आचार्याश्चिरजीविनः।
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दति ॥३॥

पूर्वोक्त आचार्य कब से कब तक हुये, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। चिरञ्जीवी होने के कारण इनकी आयु निश्चित नहीं। परन्तु वर्तमान विद्वान् सर्व-साधारण मनुष्यों के समान प्रत्येक आचार्य का काल २० वर्ष की कल्पना करते हैं। भोगियों के मापदण्ड से योगियों की

आयु का अनुमान लगाना अनुचित प्रतीत होता है। वि. सं. ११०० से लेकर १५०० वर्ष तक की परम्परा लुप्त है। सं. १५०० से लेकर आचार्यों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं।

७६१ + १८ = ७७९ आचार्य

क्रम	नाम	अभिषेक वि. सम्वत् से	ब्रह्मीभूत सं.	काल
१.	श्री बाल कृष्ण स्वामी जी	१५००	१५५७	५७
२.	श्री हरि स्वामी जी	१५५७	१५५८	१
३.	श्री हरिस्मरण स्वामी जी	१५५८	१५६६	८
४.	श्री वृन्दावन स्वामी जी	१५६६	१५६८	२
५.	श्री अनन्त नारायण स्वामी जी	१५६८	१५६९	१
६.	श्री भवानन्द स्वामी जी	१५६९	१५८३	१४
७.	श्री कृष्णानन्द स्वामी जी	१५८३	१५९३	१०
८.	श्री हरि नारायण स्वामी जी	१५९३	१६०१	८
९.	श्री ब्रह्मानन्द स्वामी जी	१६०१	१६२१	२०
१०.	श्री देवानन्द स्वामी जी	१६२१	१६३६	१५
११.	श्री रघुनाथ स्वामी जी	१६३६	१६६१	२५
१२.	श्री पूर्ण देव स्वामी जी	१६६१	१६८७	२६
१३.	श्री कृष्ण देव स्वामी जी	१६८७	१६९६	९
१४.	श्री शिवानन्द स्वामी जी	१६९६	१७०३	७
१५.	श्री बालकृष्ण स्वामी जी	१७०३	१७१७	१४
१६.	श्री नारायण उपेन्द्र स्वामी जी	१७१७	१७५०	३३
१७.	श्री हरिश्चन्द्र स्वामी जी	१७५०	१७६३	१३
१८.	श्री सदानन्द स्वामी जी	१७६३	१७७३	१०
१९.	श्री केशव (केशवानन्द) स्वामी जी	१७७३	१७८१	८
२०.	श्री नारायण तीर्थ स्वामी जी	१७८१	१८२३	४२
२१.	श्री रामकृष्ण स्वामी जी	१८२३	१८३३	१०

सम्वत् १८३३ वि. में अन्तिम आचार्य श्री रामकृष्ण जी का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। उस समय गढ़वाल नरेश महाराज प्रदीप शाह यात्रा के लिये आये थे। पुजारी का अभाव देखकर अत्रि गोत्रीय नम्बूदरीपाद आद्य शंकर के वंशज गोपाल नामक ब्रह्मचारी को छत्र चामर आदि आवश्यक उपकरणों सहित श्री स्वामी रामकृष्ण के स्थान पर आसीन किया। तब से मन्दिर के पूजन

आदि का प्रबन्ध रावलों के हाथ में आया। रावलों की परम्परा इस प्रकार है—

१.	श्री गोपाल रावल	१८३३	१८४२	९
२.	श्री रामचन्द्र, रामब्रह्म, रघुनाथ रावल	१८४२	१८४३	१
३.	श्री नील दत्त	१८४३	१८४८	५
४.	श्री सीताराम	१८४८	१८५९	११
५.	श्री नारायण (प्रथम)	१८५९	१८७३	१४
६.	श्री नारायण (द्वितीय)	१८७३	१८९८	२५
७.	श्री कृष्ण	१८९८	१९०२	४
८.	श्री नारायण (तृतीय) रावल	१९०२	१९१६	१४
९.	श्री पुरुषोत्तम रावल	१९१६	१९५७	४१
१०.	श्री वासुदेव रावल	१९५७	१९५८	१
	वासुदेव रावल को कारण विशेष से त्याग पत्र देना पड़ा। तब उनके स्थान पर			
११.	श्री रामारावल	१९५८	१९६२	४
१२.	श्री वासुदेव रावल	१९६२	१९—	अनिश्चित काल

श्री रामा रावल के पश्चात् वासुदेव रावल फिर आसीन हुये। शंकराचार्यों की परम्परा सं. १८३३ से लेकर सं. १९९८ तक रिक्त रही। (१६५ वर्ष) इसी बीच में भूकम्प आने से मठ नष्ट हो गया था। प्राचीन मठ कहां था इसका पता नहीं चला। परन्तु गढ़वाल के सरकारी कागज़ों में पांच विश्वा जमीन मठ के नाम चली आ रही थी। उसी भूखण्ड के आधार पर "भारतधर्म महामण्डल" ने उस स्थान का पता कर पीठ का उद्धार करने तथा अध्यात्म विद्या के प्रचार हेतु 'काशी विद्वत् परिषद्' के विद्वानों, यतियों तथा तीनों शंकराचार्यों के समर्थन से परम एकान्त सेवी, महानिर्भीक, अद्वितीय तपस्वी, परम वीतराग श्रीमद्दण्डी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज का ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य के पद पर वाराणसी में वि. सं. १९९८ चैत्र शुक्ल चतुर्थी को विधिवत् अभिषेक हुआ। (श्री शंकराचार्य ग्रन्थ से)

ज्योतिर्मठ की प्राचीन परम्परा में विशेषतः ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य पर आनन्दगिरि, भामती, रत्नप्रभा तीन टीकाओं सहित वेंकटेश्वर प्रेस से दो भागों में प्रकाशित हुई हैं, इसके प्रथम भाग की भूमिका के ४४वें पृष्ठ पर उल्लिखित दो शंकराचार्यों की विरुदावली में से विराजित सद्गुरु गुरुवर्य श्री मद् अच्युतानन्द कर कमल संजाताभिषेक महाराजाधिराज श्री मच्छंकराचार्य श्री राजराजेश्वरानन्द गिरि स्वामिनाम्। (श्री शंकरो विजयते तराम्) ।

२. विष्णु प्रयाग तीर निवासी श्रीमदच्युतानन्द कर कमल संजाताभिषेक सिंहासनारूढ़ महाराजाधिराज श्री ज्योतिर्मठाधीश्वरः श्रीमच्छंकराचार्यः श्री राजराजेश्वरानन्द गिरि स्वामिनः। (श्री शंकरो विजयते तराम्)

इन दोनों विरुदावलियों से सिद्ध होता है कि ऊपर दी हुई परम्परा के अतिरिक्त इन दो शंकराचार्यों का नाम मिलता है। यह दोनों आचार्य कब से कब तक हुये। यह प्रधान मठ के आचार्य थे, अथवा जोशी मठ की किसी शाखा के इसका पता नहीं चलता है।

अनन्त श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज से पूर्व सत्ययुग से आरम्भ करके अब तक ८०६ गुरु हुये।

भूमिका

(१) ज्योतिर्म—(जोशीम) ठाधिपानाम्—

श्रीशङ्करो विजयतेतराम्।

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य पद वाक्य प्रमाण पारावार पारीणयमनियमासन प्राणायामप्रत्याहार ध्यान धारणा समाध्यष्टाङ्गयोगाचरणनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ चक्रवर्तित्वाद्यना-द्यनवच्छिन्न गुरु परम्परा प्राप्त वैभव सकल निगमागमाखिल वेदान्तानुभवाधिसञ्जात शुद्धान्तःकरण वैदिक मार्ग प्रवर्तक श्री कैलास क्षेत्र स्थित सुवर्ण श्री राममणिमाणिक्य रत्न विलसन्मण्डप सिंहासानाधिरूढ़ श्री विष्णुप्रयाग-तीरनिवास सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्री गुरु चरणारविन्दोपासनावास श्री मन्महाराजाधिराज श्री ज्योतिर्मठाधीश्वरपदषण्मत स्थापनाचार्या-खण्ड भूमण्डलाचार्य तोटकाचार्य परम्परा प्राप्त स्वस्थानवैभवश्रीमच्छङ्कराचार्य विभूतिवर्य श्री नगर महास्थान राजधानी विराजित सद्गुरु जगद् गुरुगुरुवर्य श्रीमदच्युतानन्द कर कमल सञ्जाताभिषेक महाराजाधिराज श्रीमच्छङ्कराचार्य श्री राजराजेश्वरानन्द गिरि स्वामिनाम्॥

(२) ज्योतिर्म—(जोशीम) ठाधिपानाम्—(प्रकारान्तरेण)

श्री शङ्करो विजयतेतराम्

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य त्रोटकाचार्य परम्पराप्राप्तवैभव षड्दर्शन स्थापनाचार्य भूखण्ड भूमण्डलाचार्य यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यानधारणासमाध्यष्टाङ्गयोगनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्री जगद् गुरु श्रीनगर महास्थान राजधानी विराजित विष्णुप्रयागतीर

निवास श्रीमदच्युतानन्दकरकमल सञ्जाताभिषेक सिंहासनारूढ़ महाराजाधिराज श्री ज्योतिर्मठाधीश्वर श्री मच्छङ्कराचार्य श्री राजराजेश्वरानन्द गिरिस्वामिनः ॥

द्वारकामठीयमुद्रायां श्री केशवानन्द सरस्वती स्वामिनः श्री दामोदरानन्द सरस्वतीस्वामिनश्च समये (विक्रमशके १७२९-१७३५) श्री रामेत्यक्षराणि तत्र विष्णु प्राधान्यमाश्रित्य कल्पितान्यासन्। तत्र मठे चन्द्रमौलीश्वर श्रीकृष्णयोः पूजोपासनासद्भावाच्छ्रीकृष्णेति नाम्ना श्रीचन्द्रमौलीश्वरेति नाम्नोभय साधारणनाम्ना वा विन्यासस्यावश्यकत्वेपि तत्सर्वं विहाय श्री रामेत्यक्षराणां तत्र विन्यसनं न युक्तमिति तन्मठस्थ विद्या धर्मपीठे स्वाधिपत्य समये उभयप्राधान्यमेव युक्तमिति च विचिन्त्य श्रीराजराजेश्वर स्वामिभिः 'द्वारकाधीशो विजयते' इत्यक्षराणि विन्यस्तान्यासन्।

अत्र विरुदावलिषु विशेषणैर्विशेष्यैश्च ज्ञायमानानि कर्माणि न मूलशङ्कराचार्यैस्तदुत्तराचार्येणै केनोभाभ्यां वा कृतानि कारितानि वा किं तु तदा-तदा तत्तन्मठेषु देशकालाद्यनुरोधेन प्रसङ्ग सहाय सम्पत्त्याद्यनुरोधेन च कानिचिदेकेन कानिचिदन्येन कानिचित्ततोऽन्येनान्याभ्यां, कानिचिद्बहुभिरसकृत्सकृद्वा कानिचित्क्वचिदेकेन प्रकारेण क्वचिदन्यथा क्वचित्ततोऽन्यथा च कृतानि स्वेच्छया प्रबलाधिकार्याद्यधीनतया (= अनिच्छया) वा कृतानीति प्रायस्तान्येतान्येकीकृत्य (= नि संगृह) सर्वत्र सर्वैर्मठीय विद्याधर्म पीठाधिपैः स्वस्वविरुदावलिषु प्रकाशितानीति मम प्रतिभाति। यथा—कर्नाटदेशान्तर्गते इदानीं हंपेति व्यवह्रियमाणे स्थाने सार्धत्रिकोशायामं सर्वसंपत्समृद्धमतिसुन्दरं नदीतटाकाराममक्षेत्रकेदारैः परिवृतं गोगजवाजिशालादेवमन्दिर विरूपाक्ष मठादिभिरलंकृतं बहुगोपुरस्वर्ण शिखर वृन्द शोभमान सौध बहुलं विद्यानगर राजधानीत्वेन विजयनगरनाम्ना) प्रसिद्धं नगरं निर्माय तत्र रत्नसिंहासनं प्रतिष्ठाप्य तत्र बुक्कराजाय स्वभ्रातुर्माधवाचार्यस्य चतुर्वेदादिभाष्योत्पत्तिहेतोस्तत्रैव मन्त्रित्वसमये श्रीशृंगेरीमठीय विद्याधर्मपीठाधिपाः श्रीविद्यारण्यस्वामिनः पट्टाभिषेकं चक्रुः। तत आरभ्य "आदिराजधानी विद्यानगर महाराजधानी कर्नाटक सिंहासन प्रतिष्ठापनाचार्य" इति तैः सम्पादितमिदं विरुदम्। शृंगेर्याः बहुक्रोशदूरवर्तिनि तुङ्गानद्या भद्रानद्याश्च सङ्गमे (कर्नाटकभाषया-कूडल्याख्ये) स्थाने मठं निर्माप्य तत्र विद्याधर्मपीठं च संस्थाप्य तत्पीठाधिकारो येन लब्धस्तेन तुङ्गभद्रातीरवासेति सम्पादितं विरुदम्। विजयनगरेऽमात्यपदमधिष्ठितो माधवाचार्यस्य भ्रातुरभ्यर्थनया सायणाचार्येण सर्वतन्त्र-

स्वतन्त्रेण संन्यासोत्तरं विद्यारण्यनाम्नाचार्येण कृतानामपि चतुर्वेदसंहिताब्राह्मणादीनां भाष्याणां सर्वतन्त्रस्वतन्त्रेण माधवाचार्येण कृते 'वेदार्थप्रकाशे' इति तत्कृतत्व प्रकाशनेन स्वीयकृतज्ञतायाः प्रकटनेऽपि स्वेनैव तेषां तत्सहायसंपत्त्या निर्मितत्वेन सम्पादितेयं विरुदावलिर्विद्यारण्यस्वामिभिर्वैदिक मार्ग प्रवर्तक सांख्यत्रयी प्रतिपालक वेदार्थ प्रकाशकेतीति व्यक्तमेवेति दिक् ।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पूज्यपाद श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के परम गुरु अ. श्री स्वामी अनिरुद्धानन्द सरस्वती जी तथा उनके गुरुदेव अ. श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

अनन्त श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती महाराज की जीवनी—अनन्त श्री पूज्यपाद श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी का जन्म भगवान् श्री राम की जन्म भूमि अयोध्या के समीप "गाना" नामक ग्राम में सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में सम्वत् १९२० (जगद् गुरु गौरव में) सं. १९२८ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष दशमी २१ दिसम्बर सन् १८७० ई. गुरुवार के दिन हुआ था। आपके माता-पिता ज़मींदार थे। राजसी ठाठ-बाठ में बाल्यावस्था बीती। भोग सामग्री रहते हुये भी आप उदासीन एकान्तप्रिय थे। चञ्चलता का नाम तक नहीं था। स्वादिष्ट वस्तु खाने, अच्छे वस्त्र पहिनने तथा खेल कूद में आपका मन कभी नहीं लगता था। पितामह बहुत दुलार करते थे। सौ वर्ष की आयु में वह संसार से चले गये। तब इनकी अवस्था सात वर्ष की थी। इन्हें अपने बाबा का शव देखने नहीं दिया गया। जब इनकी शव यात्रा चली तब नौकर ने बताया कि आपके बाबा नहीं रहे।

तब बच्चा विचार करने लगा बाबा के समान माता, पिता, चाचा, ताऊ तथा मैं भी संसार से चला जाऊंगा। यहां संसार में कोई नहीं रहेगा। तो संसार में अमर वस्तु क्या है ? 'राम नाम सत्य है' यह शब्द सुनकर राम नाम के प्रति श्रद्धा दृढ़ हुई। आठ वर्ष में उपनयन संस्कार हुआ और वेदाध्ययन के लिये काशी भेजे गये। उन दिनों बाल्यावस्था में ही बाल विवाह की

प्रथा थी। बालक के मन में कभी संसार के प्रति आकर्षण नहीं था तभी वैराग्य की लहरें उठने लगीं। अन्त में निवृत्ति मार्ग की विजय हुई। वे नौ वर्ष की आयु में ही काशी त्याग कर गंगा तट पर चल पड़े। ऊपर सूर्य की धूप नीचे चिलचिलाती गंगा की रेती, चलते-चलते जहां भूख प्यास लगती पेड़ की छाया में जल पीकर फिर चल पड़ते। उत्तराखण्ड में तपस्या करने का निश्चय किया।

थकावट, भूख तथा निद्रा का नाम तक नहीं था। आधी रात में घोर जंगल में पड़े रहते थे। तीन दिन तक गंगा जल पीकर ही रहे। तीसरे दिन सायंकाल एक ज़मींदार ने बालक को देखा। नौकर को भेजकर बुलाया। किन्तु आप नहीं गये। वह स्वयं आया, पूछा कि तुम कौन हो ? उत्तर में कहा—कि आप जानकर क्या करेंगे ? उसने प्रार्थना की, बीहड़ वन में आप क्यों घूम रहे हैं ? बाल तपस्वी ने कहा—समय कुसमय, कुमार्ग सन्मार्ग का आपको पता नहीं। मैं काशी से चलकर हिमालय पर तपस्या के लिये जाता हूं। आप अपना कार्य करें। धनी ने पूछा—आपकी भिक्षा हुई या नहीं ? उन्होंने कहा अभी तक गंगा जल ही मेरी भिक्षा रही। तब धनी बोला—आप गांव चलें, भिक्षा करें। रात्रि में विश्राम करें। उन्होंने कहा कि मैं किसी के दरवाज़े नहीं जाऊंगा।

वह वहीं गंगा तट पर दूध आदि ले आया। गंगा जी में उन्होंने जितना जल पिया था। उतना गंगा जी में डाल कर शेष पी लिया। गंगा मैया प्रसन्न हुईं। जो भी देखता, उन्हें ध्रुव, प्रह्लाद की छवि उनमें दिखाई देती। जब तक पैर तथा मन साथ देते रहे, चलते रहे। इन्होंने बाबा की गोद में प्रयाग की महिमा सुन रखी थी। प्रयाग पहुंचे।

इधर ग्राम में काशी से लापता होने के कारण घर वालों ने पुलिस में सूचना दे रखी थी। एक सिपाही ने कागज़ से हुलिया मिलाकर पूछा—तुम कौन हो ? इन्होंने कहा आपका मतलब, उसने कहा कि मैं पुलिस का दरोगा हूं। इन्होंने कहा, मुझसे क्या चाहते हो ? दरोगा—आप घर से भाग आये हैं घर ले जाऊंगा। बालक—क्या करोगे ? उसे सूचना दे दो जिसने हुलिया कटाई है वह आकर ले जायेगा। दारोगा ने कहा कि घर से क्यों भागे ? बालक ने कहा—कि आप घर में क्यों रहते हो ? दारोगा आश्चर्य में पड़ गया। इतना तर्क कहां पढ़ा ? दारोगा ने कहा—घर में सभी रहते हैं, घर में विश्राम मिलता है। तुम घर बार छोड़ कर मारे-मारे क्यों घूमते हो ? बालक ने कहा—आप घर का आनन्द लें, मुझे गंगा जी का आनन्द लेने दें।

दारोगा ने कहा बड़े घर के मालूम पड़ते हो। अनाथ की तरह क्यों घूमते हो ? बालक बोला आप अनाथ सनाथ नहीं समझते। सबके नाथ भगवान् हैं। उनकी शरण में जाने वाला अनाथ भी सनाथ हो जाता है। दारोगा जैसे तैसे समझाकर अपने घर ले आया और कहा आपकी साधना में मैं बाधक नहीं बनूंगा। हम आप को रेल से हरिद्वार पहुंचा देंगे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। टिकट लेकर गाड़ी में बैठा दिया। हरिद्वार में गंगा स्नान जा रहे थे। एक पुलिस इन्सपैकटर ने इन्हें देखा। पहचान लिया, पूछा घर से क्यों आये ? कहा भगवद् दर्शन के लिये। इन्सपैक्टर ने कहा, मैं आपके घर पहुंचाना चाहता हूं। मुझे पुरस्कार मिलेगा। इन्होंने कहा यदि पुरस्कार का विशेष लोभ हो तो घर पहुंचा दीजिए। उसने इन्हें घर पहुंचा दिया। घर लौट आये।

सद्गुरु की खोज

घर में आपका मन नहीं लगा। बड़े बूढ़ों से ज्ञान वैराग्य की चर्चा करते थे। किन्तु माता-पिता विवाह करना चाहते थे। कुल गुरु जी ने समझाया, किन्तु उनका प्रयास भी निष्फल रहा। तब पंडित जी ने कहा तुम माता-पिता की एक मात्र सन्तान हो। उन्हें निराश मत करो। वृद्धावस्था में उनकी सेवा करना, तुम्हारा धर्म है। समय आने पर संन्यास ले लेना। बालक ने कहा आपको अस्सी वर्ष में वैराग्य नहीं हुआ। यदि मुझे बालक होने के नाते घर पर रहना चाहिये, तो आपको वृद्धावस्था में जंगल में जाना चाहिये। आपने ही कहा था परिवार में यदि एक भी तत्त्ववेत्ता हो तो परिवार को तार देता है। इसकी पूर्ति के लिये मैं घर छोड़ रहा हूं। घर वालों से पंडित जी ने कहा कि आपके घर में ध्रुव का जन्म हुआ है। उनको प्रणाम किया। मां भी पर्दे में बैठी सब सुन रही थी। माता से आज्ञा मांगी। मां ने कहा—जिसको कुल गुरु भी प्रणाम करे, ऐसे पुत्र को मैं हाथी से उतार कर गधे पर बिठाना नहीं चाहती। अर्थात् संन्यासी से गृहस्थ नहीं बनाना चाहती। माता को प्रणाम करके आज्ञा मांगी। मां ने कहा, जाओ भजन करो। भिखमंगा साधू न बनना। गृहस्थी की इच्छा हो तो तुरन्त घर चले आना।

घर से प्रयाग पहुंचे। संगम स्नान करके ध्यान में बैठ गये। एक पुलिस कर्मचारी इनकी तपस्या देख रहा था। उसने पूछा—महाराज कहां से आना हुआ ? कहां जाओगे। उत्तर दिया, जहां से सारा जगत् आया है वहीं से मैं आया हूं। और जहां जायेगा, मैं भी जाऊंगा। उसने कहा कि बिना पैसे के आपका जीवन कैसे चलेगा ? तपस्वी ने कहा, मेरे पास शुभ कर्म

रूपी धन है । वहां से आप हरिद्वार आ गये, फिर वहां से ऋषिकेश पहुंचे । गुरु की खोज करने लगे । उपनिषद् में श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का लक्षण पढ़ा था । "क्रोध रहित ब्रह्मचारिणं" और जोड़ दिया । कई गुरु मिले पर कसौटी पर खरे नहीं उतरे । वहीं पर एक दण्डी स्वामी बाल ब्रह्मचारी के बारे में सुना वे समाधिनिष्ठ थे । आप जब उनके पास पहुंचे स्वामी जी समाधि में बैठे थे । प्रतीक्षा में बैठे रहे । प्राणायाम के कारण उनकी आंखें लाल थी । इन्होंने बड़ी श्रद्धा से "ॐ नमो नारायणाय' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया और कहा कि स्वामिन्, कुछ अग्नि की आवश्यकता है, मिल जाये तो बड़ी कृपा होगी । स्वामी जी की अग्नि भड़क उठी बोले जानता नहीं निरग्निक दण्डी के पास अग्नि कहां । इन्होंने कहा आपसे मुझे प्रत्यक्ष अग्नि मिल गई । आपके पास क्रोधाग्नि के होते हुये आप दण्डी कैसे ? उनका क्रोध शान्त हुआ और दौड़कर गले लगा लिया । बोले—अन्तःकरण कभी-कभी गड़बड़ करता है । इन्होंने कहा—स्वामी जी आपकी पहली ही अग्नि की लपट ने मुझे भयभीत कर दिया ? उन्होंने बच्चे की प्रशंसा की और आश्रम में रखा ।

गुरु की खोज में उत्तर काशी पहुंचे वहां पर शृंगेरी मठ के शंकराचार्य के प्रशिष्य तथा श्री स्वामी अनिरुद्धानन्द जी के शिष्य परम तपस्वी बाल ब्रह्मचारी, योगीराज स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती जी महाराज की शरण में गये । उन्होंने महावाक्य दिया—"ब्रह्म चैतन्य ब्रह्मचारी" नाम दिया । आप दर्शन शास्त्र के आचार्य थे । उनके आश्रम में अनेकों नवयुवक साधक सुख, मोह, ममता का त्याग करके साधना करते थे । स्वामी जी ऐसे शिष्य को पाकर कृतार्थ हो गये । गुरु जी के शिष्यों में आयु में आप सबसे छोटे थे । गुरु शिष्य में विशेष आकर्षण हुआ । उन्होंने अहं भाव को छोड़कर सम्पूर्ण वासनाओं को भस्म कर दिया था और अन्तःकरण में गुरु का स्थान बना लिया था । गुरु भी ऐसे शिष्य को अपने आध्यात्मिक सम्पत्ति दे देते हैं । छोटे ब्रह्मचारी मनसा, वाचा, कर्मणा गुरुओं को सब समर्पित करके कठोर साधना करने लगे ।

गुरु निष्ठा

एक बार उत्तर काशी में दार्शनिक प्रवक्ता आये, भारतीय दर्शन पर व्याख्यान था । सभी महात्माओं को आमंत्रित किया । इनके गुरु जी कहीं नहीं जाते थे । आश्रमवासियों की इच्छा व्याख्यान सुनने की हुई । गुरु जी से आज्ञा मांगी । गुरु जी ने कहा जाओ । बाहर का ताला बन्द कर लेना । लौट कर खोल लेना । ऐसा ही किया परन्तु बाल ब्रह्मचारी का हृदय धड़कने

लगा। सम्पूर्ण दर्शनों के मर्मज्ञ परम तपस्वी तत्त्वज्ञ गुरु जी को छोड़कर दूसरे का भाषण कैसे सुने ? उनके तो एक वचन से कल्याण हो सकता है। साधनहीन केवल पुस्तकों के आधार पर वक्ता के भाषण में क्या सार होगा ? यह तो गुरु जी का घोर अपमान है। उन्होंने लौटने का निश्चय किया। मार्ग से ही लौट आये। जब ब्रह्मचारियों ने पूछा—क्यों वापस जा रहे हो ? उत्तर दिया दर्शनों की क्लिष्ट भाषा मेरी समझ में नहीं आयेगी। ताला खोलकर चले गये। इतने में दो दण्डी भी आश्रम में पहुंचे। उनसे पूछा भिक्षा हुई या नहीं। उन्होंने कहा कि इसीलिये आये हैं। भिक्षा करके व्याख्यान सुनने जायेंगे। हलवा बनाकर भिक्षा कराई। सायंकाल व्याख्यान सुनकर ब्रह्मचारी लोग लौटे। दण्डी स्वामी भी साथ थे। गुरु जी ने पूछा तुम व्याख्यान सुनने नहीं गये। इन्होंने कहा कठिन व्याख्यान समझ में नहीं आयेगा ? दूसरे दिन गुरु जी ने रात्रि में पास बुलाकर कहा। जितना तुमने अध्ययन किया पर्याप्त है। अब साधना करो। जो मैं साधन तुम्हें बताऊंगा आश्रम में होना कठिन है। पच्चीस वर्ष के साधक पड़े हैं और अध्यात्मवाद में कोरे हैं। अनुभव में शून्य हैं। इस साधन के अधिकारी नहीं। अतः यहां से तीन मील की दूरी पर एक स्थान है वहीं पर जाकर अभ्यास करो। सप्ताह में एक बार आ जाया करो। साधन समझ कर चले जाया करो। किन्तु इन लोगों के सामने मैं साधन करने जा रहूं, मत बताना। सब लोगों के सामने मैं तुमको डांटूंगा। आश्रम से निकल जाने की आज्ञा दूंगा घबड़ाना नहीं। अपना सामान उठाकर चुपचाप चले जाना।

ऐसा ही गुरु जी ने किया। डांटते हुये गुरु जी ने कहा, कि यहां बच्चों का खेल नहीं है यहां से भाग जावो। कोठारी से कहा वह उनको वहां छोड़ आया। सात दिन का भोजन दे दिया। प्रत्येक गुरुवार को गुरु दर्शन करते थे। गुरु जी ने निष्ठा की परीक्षा लेनी चाही। एक सेवक को भेजकर पुछवाया। गुरु जी तुम्हारे पास रहना चाहते हैं कोई कमरा खाली है। उसने कहा बिल्कुल खाली नहीं है। मेरे यहां सुई धरने को भी जगह नहीं है। सेवक ने समझाया। गुरुओं से ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। मैं ऐसे ही कह दूंगा तो तेरी आफत आ जायेगी। कमरे खाली होते हुये भी तुम जवाब क्यों देते हो ? ब्रह्मचारी ने कहा आप आयु, विद्या, गुरु भक्ति सब में मुझसे बड़े हो। आप दूत बन के आये हो। इसलिये मेरी ओर से जाकर कह दो कि कोई कमरा खाली नहीं ? आपको जो कहना हो बाद में कहना। मेरा उत्तर मेरे ही शब्दों में देना। सेवक ने जाकर गुरु जी को वही उत्तर दिया। सभी लोगों में रोष फैला। इसने

गुरु जी का घोर अपमान किया। गुरुवार को ब्रह्मचारी शाम को पहुंचे। गुरु जी को प्रणाम किया। एक शिष्य ने गुरु से पूछा। गुरु की अवहेलना करने वाले शिष्य को क्या दण्ड मिलना चाहिये ? गुरु जी ने कहा—उदाहरण देकर स्पष्ट करो। इसने आप को अपनी गुफा में स्थान देने से इन्कार किया। गुरु जी ने ब्रह्मचारी से पूछा। ब्रह्मचारी ने कहा यह सत्य कहता है। मैंने यही कहा था कि मेरे यहां गुरु जी के लिये कोई स्थान खाली नहीं है। विपक्षियों ने कहा तुम झूठ क्यों बोलते हो ? कोने वाले दोनों कमरे खाली हैं। उत्तर दिया आपको इस सम्बन्ध में ज्ञान नहीं है। गुरु जी ने कहा इनको समझाते क्यों नहीं हो ?

ब्रह्मचारी ने कहा, गुरु चरणों का निवास मिट्टी पत्थर के कमरों में नहीं होता। उनके लिये भक्तों के हृदय में कमरा होता है। मेरी दीक्षा से पूर्व ही मेरे पंच कोशों रूपी कमरों में श्री चरणों का निवास हो चुका है। जिस दिन मैंने आपके पवित्रतम चरणोदक को ग्रहण किया। उसी समय मैंने हृदय के कमरों से काम, क्रोध आदि का कूड़ा निकाल कर आपका आसन लगा दिया है। आप पहले से ही मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो शेष स्थान कहां है ? यदि मुझे पहले पता होता कि भविष्य में आप स्थान की मांग करेंगे तो पंच कोशों में से किसी को खाली रखता।पहले से ही सब कमरे भरे हैं। यदि ईंट पत्थर के कमरों की बात करते हो तो यह प्रत्यक्ष सर्व विदित है कि आप कभी भी उसमें आ सकते हो। सभी लोग उत्तर सुनकर मूर्तिवत् खड़े रहे। जिसको कोयले की खान समझते थे। वह चमकते हुए हीरों की खान निकला। गुरु जी के नेत्रों में प्रेम के आंसू छलक आये। शिष्य ने गुरु जी के हृदय में पूर्ण स्थान प्राप्त किया। गुरु जी ने सब को जाने की आज्ञा दी। गुरु जी ने विशेष शक्ति का संचार किया।

चमत्कार पूर्ण घटनायें

श्री महाराज जी ने उत्तर काशी में पचीस वर्ष तपस्या, गुरु सेवा तथा शास्त्राभ्यास किया। फिर गुरु जी के साथ ऋषिकेश आये। दोनों एक स्थान पर रुके। आधा सेर दूध नित्य प्रति एक ब्राह्मण देता था। एक दिन ब्राह्मण की पत्नी ने कहा आज दूध कम है बच्चों के लिये नहीं बचेगा। किन्तु ब्राह्मण ले आया, ब्रह्मचारी ने गर्म करके आगे रखा। गुरु जी ने कहा—दूध नहीं पियेंगे, दूध वाले को दूध वापस कर दो दूध बन्द कर दो। पन्द्रह दिन के बाद ब्राह्मण का पुत्र मर गया। गांव में यह चर्चा होने लगी कि स्वामी जी के शाप से ऐसा हुआ है। स्वामी जी ने संदेश दिया कि श्मशान में ले जाकर संस्कार न करो मुझे बुला लें। गुरु जी ने अर्थी की

रस्सियां खुलवा दीं सिर पर लात मार कर कहा उठ क्यों सोता है ? बालक उठ बैठा । गुरु जी ने ब्रह्मचारी से कहा अब यहां नहीं रहेंगे । नहीं तो सभी मुर्दे जीवित करने पड़ेंगे ।

एक बार गंगा जी में भयंकर बाढ़ आई । सभी लोग स्थान छोड़कर ऊंचे स्थान पर जाने लगे । किन्तु दो सन्त जो गंगा तट पर कुटी बना कर रहते थे । उन्हें चिन्ता नहीं हुई । तनिक नहीं हटे । अपने तख्त को बबूल के पेड़ में बांधे बैठे रहे । ब्रह्मचारी बबूल पर चढ़कर देखते रहे । तीन दिन तक वहीं पर डटे रहे । चौथे दिन वह पेड़ उखड़ कर गंगा में तखत सहित बहने लगा । बहने पर भी महात्मा के अन्दर घबराहट नहीं थी । मुस्कुरा रहे थे । दूसरे महात्मा से कहा मैं जा रहा हूं । दोनों ने आपस में प्रणाम किया यह कोई विपत्ति नहीं है । भगवान का नाम स्मरण न होना ही महा विपत्ति है । तखत पर बैठे हुये महात्मा अन्त तक सुरक्षित रहे थोड़ी दूर चलकर किनारे लग गये ।

ऋषिकेश में ही कलकत्ते का एक मारवाड़ी सेठ संन्यासी ब्रह्मचारियों को शाल बांटता था । ब्रह्मचारी ध्यान में बैठे थे । सेठ शाल ओढ़ाकर सामने बैठ गये । उनकी समाधि खुली पूछा यह शाल आपने ओढ़ाई है । आपने मुझे गरीब समझकर शाल ओढ़ाया है । सन्त कोई निर्धन नहीं होता अथवा किसी अन्य उद्देश्य से । हाथ जोड़कर सेठ ने कहा—हमने शास्त्रों में सुन रखा है कि महात्माओं को दान देने से एक का हज़ार मिलता है । आपको एक शाल देकर हज़ार की इच्छा करता हूं । उन्होंने तुरन्त ही शाल की तह लगाकर सेठ को वापस करते हुये कहा कि एक तो अभी ले लो शेष नौ सौ निन्यानवे का मैं कोई प्रबन्ध करूंगा । सेठ घबरा गया । सन्त जी रुष्ट हो गये समझा । उन्होंने कहा—संसार की सारी सम्पत्ति मकान आदि आपको मिल जाये तो क्या आप साथ ले जाओगे ? आगे के लिये तुम्हें सोचना चाहिये ।

एक बार इनके साथ तीन ब्रह्मचारी बद्री नारायण की यात्रा में निकले । इन्होंने कहा कि मैं रुपया पैसा पास नहीं रखता तुम लोगों के पास हो तो छोड़ दो या मेरा साथ ही छोड़ दो । ब्रह्मचारियों को एक सा ही होना चाहिये । एक ब्रह्मचारी के पास तीन अशर्फियां थीं उसने कहा आप जो कहें वह करूंगा । आप का साथ नहीं छोडूंगा । वे अशर्फियां वहीं ज़मीन में गाड़ दीं उस ब्रह्मचारी को मार्ग में हैजा हो जाने से मृत्यु हो गई । अन्त्येष्टि क्रिया के बाद तीनों ब्रह्मचारी चले गये । लौटकर महाराज जी ने अशर्फियां निकाल कर दान दक्षिणा देने का विचार किया खोदने पर देखा कि मुद्राओं के चारों ओर सुनहले रंग का पतला सर्प लिपटा हुआ था । महाराज

जी ने कहा कि वेद शास्त्रों में कहा है कि मरते समय जो धन सम्पत्ति की चिन्ता करता है वह सर्प होता है। उन्होंने सर्प को गंगा जी की ओर कर दिया और अशर्फियां लेकर दान कर दीं। ऋषिकेश से आप प्रयाग आ गये।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

संन्यास-दीक्षा

वि. सं. १९६४ में प्रयाग का बड़ा कुम्भ पड़ा। गुरु जी से फिर भेंट हुई। वहीं पर विधिपूर्वक दण्ड ग्रहण कर संन्यास ले लिया। गुरु जी ने इनका नाम श्री स्वामी "ब्रह्मानन्द सरस्वती जी" रखा। आप एकान्त प्रिय थे। दर्शनार्थी दर्शन के लिये आते थे। समय निश्चित होता था। सांयकाल चार बजे से ११ बजे रात्रि तक दर्शनार्थियों का आना जाना होता था। कभी-कभी दर्शन नहीं देते थे। नोटिस लगवा देते थे।

महाराज श्री संन्यास के बाद प्रयाग राज के समीप में ही कुटेश्वर ग्राम में एक विशाल वट वृक्ष की छाया में एक मात्र कोपीन लगाये हुये ध्यान में बैठे थे। इतने में ही सं. १९८१ में एक नवयुवक ब्रह्मचारी "हर नारायण" नामक इनके चरणों में आया। इनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। दीक्षा के लिये प्रार्थना की स्वामी जी के घनिष्ठ मित्र भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् दण्डी स्वामी श्रीमान विश्वेश्वराश्रम जी महाराज जो पण्डित स्वामी के नाम से कहे जाते थे। नरवर में गंगा तट पर जीवन दत्त ब्रह्मचारी के साथ रहते थे। गुरु जी ने ब्रह्मचारी को आज्ञा दी कि वहीं जाकर अध्ययन करो तुम पर सरस्वती की विशेष कृपा होगी। स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज षड्दर्शनाचार्य थे। बाद में श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज ने महावाक्य की दीक्षा दी तथा 'हरिहर चैतन्य ब्रह्मचारी' नाम रखा।

श्री स्वामी जी की आज्ञा से स्वामी जी के चरणों में बैठकर उन्होंने ग्यारह महीने व्याकरण पढ़ा, तेरह महीने दर्शन शास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन काल में ही उन्हें वैराग्य हो गया। श्री स्वामी रामदेव जी के साथ अपने हाथ ही सूर्य नारायण को साक्षी बनाकर विद्वत् संन्यास ले लिया। दूसरी बार जब गुरु दर्शन के लिये पंडित स्वामी जी के पास पहुंचे, उन्होंने इनको शिखा सूत्र रहित देखकर पूछा किससे संन्यास दीक्षा ली है। उन्होंने कहा—मैंने स्वयं

विद्वत् संन्यास लिया है। गुरु जी ने कहा—यह संन्यास तो आत्म बोध के बाद होता है। यदि कलिकाल में ऐसा संन्यास विहित होता तो आद्य शंकराचार्य कालटी से चलकर नर्मदा में पूज्य पाद गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी से दण्ड संन्यास क्यों लेते। भाष्यकार की प्रस्थानत्रयी की प्रत्येक पंक्ति को लगाने में मुझे घण्टों सोचना पड़ता है क्या तुम आद्य शंकर से भी अधिक ब्रह्मवेत्ता हो गये हो ? तब इन्होंने पण्डित स्वामी से संन्यास की प्रार्थना की। उन्होंने कहा, जिससे महावाक्य लिया है, उसी से संन्यास लेना। उनकी आज्ञा प्राप्त कर इन्होंने विधि विधान से दण्ड ग्रहण किया। स्वामी जी ने इनका नाम हरिहर चेतन से बदल कर दण्डी स्वामी "श्री हरिहरानन्द सरस्वती" नाम रखा।

सन् १९३० ई. में प्रयाग का महाकुम्भ पड़ा। प्रयाग निवासी एक भक्त ने दारागंज में इनके लिये दस कमरे खाली करवा दिये। परन्तु इनकी इच्छा प्रयाग कुम्भ मेले में मैदान में रहने की थी। प्रयाग से बारह मील पश्चिम गंगा तट पर कौरवेश्वर महादेव के मन्दिर में एक छोटी कोठरी में रुके। फिर विचार किया कि भक्त ने जो दस कमरे खाली कराये हैं उनका भी उपयोग होना चाहिये जिससे भक्त को दुःख न हो। उसमें अपने दण्डी शिष्यों को ठहरा दिया। उस भक्त को जब पता चला कि गुरु जी यहां नहीं आयेंगे तो उसे कष्ट हुआ। किन्तु दण्डी स्वामियों के ठहरने को सुनकर सन्तोष हुआ। इतने में कलकत्ता के दूसरे सेठ जो उनके मित्र थे। वहां रुकने की इच्छा की। उसने भी विचार किया कि गुरु जी यहां नहीं रुके। महात्माओं से खाली कराकर सेठ को देने की इच्छा की। गुरु जी से खाली कराने की प्रार्थना की। उन्होंने मना कर दिया इसमें सन्तों का अपमान है। मेला भर मकान खाली नहीं होगा। सेठ के लिये आप दूसरी व्यवस्था करें। सेठ ने विचार किया सन्तों को जबरदस्ती भगा दें। स्वामी जी को जब पता चला तो वे भी अपनी बात पर अड़े रहे। इसके बाद हमेशा के लिये मकान खाली कर दिया। उनके गुरु स्वामी कृष्णानन्द जी आये थे। उन्हें आदरपूर्वक मेले में ले आये। गुरु जी मेले में थे। उन्होंने सन्देश भेजा मेला कोई वाघ है, जो तुम्हें खा जायेगा। जाकर गुरु जी को दण्ड प्रणाम किया। गुरु जी ने दण्ड ले लिया। समीप में आसन पर बिठाया। इन्होंने कहा प्रणाम की मर्यादा है। मुझे प्रणाम कर लेने दो। उन्होंने कहा मेरी इच्छा ही मर्यादा है। बैठ जावो। गुरु जी ने आज्ञा दी। वन, पर्वतों में तपस्या बहुत कर चुके हो अब नगरों में घूम कर प्रचार करो। प्रशंसा में गुरु जी कह दिया करते थे, कि यह तो हमसे भी अधिक योग्य विद्वान् है।

एक बार एक महात्मा स्थान पर गालियां देने लगा। लोगों ने मना किया, नहीं माना, मार कर भगाने लगे। स्वामी जी ने तुरन्त पास बुला लिया कहा कि सन्त को सहन करना चाहिये।

एक बार प्रयाग में राजा डिंगनिस की कोठी में रह रहे थे। एक भक्त वकील ने सुना। रात भर स्वामी जी जागकर भजन करते हैं। उसकी देखने की इच्छा हुई। रात भर वे समाधि में बैठे रहे। द्वेषियों से उनकी कीर्ति सहन नहीं हुई। एक वेश्या को धन देकर पतित करने के लिये तैयार किया। वह पुरुष के वेश में दस ग्यारह बजे रात्रि में पहुंची। सत्संग हो रहा था। समाप्ति पर सब लोग नीचे आ गये। वह बैठी रही। षड्यन्त्रकारी नीचे खड़े देखते थे। उसके पेट में भयंकर दर्द होने लगी। चीख मार कर भागी लोगों ने पूछा क्या हुआ ? उसने पेट में दर्द की बात बताई। उनकी आज्ञा थी कोई स्त्री या शूद्र दर्शन प्रणाम की चेष्टा न करे। वे लोग फाटक के बाहर से ही प्रणाम दर्शन करते थे। एक बार मालवीय जी के परिवार की विधवा स्त्री ने निवास स्थान पर दर्शन की आज्ञा मांगी। किन्तु मना कर दिया। वह महिला विदुषी तथा सत्संगिनी थी। उसने पत्र लिखा आपका जन्म भी तो किसी महिला के गर्भ से ही हुआ है। जिससे आप की उत्पत्ति हुई। उससे घृणा क्यों करते हो। आपने उत्तर दिया मैं नौ माह तक आप लोगों के संसर्ग में उल्टा टंगा हुआ बन्धनों में जकड़ा रहा महाकष्ट प्राप्त किया। मैं नौ महीने तक मल मूत्र से भरे उदर में रहा। वे दिन मुझे नहीं भूलते। इसी कारण आप लोगों के संसर्ग से दूर रहता हूं। शूद्र के सम्बन्ध में लिखा है कि, कुम्हार चौथे वर्ण का है। घड़ा बनाता है। जब घड़ा पक जाता है धोकर जल से भरा घड़ा यज्ञ मण्डप में पहुंचता है। पर उसके बनाने वाला यज्ञ मण्डप में प्रवेश नहीं पाता। वेद उसे आज्ञा नहीं देता। यह उत्तर पाकर कृतार्थ हो गई। जब वे गंगा स्नान के लिये प्रातः जाने लगे तब उसने दर्शन किया। कोई गुप्त रूप से भी धन देने की इच्छा करता, तो उसे वे दर्शन ही नहीं देते थे।

ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य

विक्रमी सं. १८३३ में ज्योतिष मठ के जगद् गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी रामकृष्णाश्रम जी महाराज के ब्रह्मीभूत हो जाने पर आद्य शंकराचार्य द्वारा महानुशासन में वर्णित योग्यतानुसार कोई महात्मा न मिलने के कारण एक सौ पैंसठ वर्ष तक यह स्थान रिक्त रहा। सन् १९०८ में "भारत धर्म मण्डल" के प्रयत्न से काश्मीर, उदयपुर, नेपाल आदि अनेक राजाओं का विराट् अधिवेशन हुआ। जिसमें पीठोद्धार विषयक प्रस्ताव रखा गया। इस मठ का ही पता नहीं

था। यह कहां है ? सन् १९१० में महामण्डल के संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्द जी के नेतृत्व में अन्वेषक दल ने इसकी खोज की। तब महानुशासनानुसार दण्डी महात्मा की खोज की गई। विद्वानों तथा महात्मा लोगों की दृष्टि अमर कण्टक के वनों में कौपीन तथा दण्ड कमण्डलु लिये हुये, दण्डी स्वामी को देखा, इनकी ओर सबका ध्यान गया। इनसे प्रार्थना की गई। इन्होंने मना कर दिया। वह एकान्त प्रिय थे नेपाल चले गये। सं. १९९८ वि. १ अप्रैल, सन् १९४१ में करपात्री जी आदि के विशेष आग्रह पर काशी में महासमारोह पूर्वक ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किये गये। सिंहासनासीन होने पर आपने अपने भाषण में कहा कि एक जंगल के सिंह को जो स्वच्छन्द विचरण कर रहा था कठघरे में बन्द करके सर्कस का सिंह बना दिया पर वह दहाड़ना नहीं छोड़ेगा। आपने पीठ का फिर से निर्माण किया। इन्होंने घोषणा कर दी कि इस धर्म सिंहासन पर कोई धन न चढ़ावे। मन तथा दोषों का चढ़ावा चाहिये। इसी में आपका कल्याण है। इनका सिंहासन, छत्र, चामर पालकी, पीकदान सब सोने के थे। ब्रह्मचारी तथा संन्यासियों को भी भेंट आदि लेने के लिये वर्जित कर दिया गया था। किन्तु इनके चमत्कार से ही इनका सर्व व्यय चलता था। अतः सर्वप्रथम इनके नाम के पूर्व "अनन्त श्री विभूषित" शब्द जोड़ा गया। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि प्रदेशों में धर्म प्रचार करने लगे।

स्वामी जी के संन्यासी शिष्य

इन के सभी शिष्यों में सर्वप्रथम सर्व माननीय ज्येष्ठ श्रेष्ठ ब्रह्मीभूत अनन्त श्री करपात्री जी महाराज थे। इन का योगपट्ट "श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती जी" था। दूसरे शिष्य शास्त्री स्वामी "महादेवानन्द सरस्वती" जो प्रयाग बांध पर रहा करते थे। बाद में काशी वास करते हुये धर्म संघ शिक्षा मण्डल दुर्गा कुण्ड में शरीर छोड़ा। तीसरे स्वामी परमानन्द जी सरस्वती महाराज। चौथे श्री शान्तानन्द जी सरस्वती महाराज, श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती, स्वामी श्री विष्णु देवानन्द जी, इत्यादि इनके अनेक शिष्य हुये।

एक दिन कलकत्ते के एक सेठ ने मुकद्दमा जीता। वह जानता था कि स्वामी जी कोई भेंट नहीं लेते। अतः एक बड़े दोने में पौण्ड रखकर ऊपर फूल रख लिये। चरणों में भेंट करके चला गया। दूसरे दिन जब ब्रह्मचारी कमरा साफ कर रहे थे। झाड़ू से दोना हटाने लगे। दोना नहीं हटा, फूल उठाकर देखा उसमें कई अशर्फियां पड़ीं थीं। जगद् गुरु जी के

आगे रख दीं। उन्होंने अनुमान लगाया। यह सेठ का ही काम है। आज्ञा दी जब सेठ आये फाटक पर ही रोक लेना। सायंकाल जब दर्शन के लिये आये ब्रह्मचारी ने फाटक पर रोक लिया। ढाई घंटे वहीं पर बैठे रहे। तब आने की आज्ञा दी। प्रणाम किया। उन्होंने कहा, अशर्फियां तुमने चढ़ाई हैं। जो धन चाहता है उसे देते नहीं हमारे पास क्यों लाये ? जाओ, ले जाओ जो इच्छुक है, उन्हें दो हमारे यहां धन नहीं, दुर्गुण चढ़ाओ, धन की आवश्यकता नहीं। आज के महात्मा लोगों को उनके त्याग से शिक्षा लेनी चाहिये। एक ऐसे जगद् गुरु जो करोड़ों को ठोकर मारते थे। आज कल दण्डी स्वामी दुकान-दुकान, घर-घर पैसा मांगते हैं। एक हरी मिर्च के लिये दण्ड कमण्डल टूट जाते हैं।

इति श्री गुरुवंशमहापुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

दिल्ली का शत कोटि चण्डी महायज्ञ

(२ फरवरी १९४४ से ९-२-४४ तक)

दिल्ली के इतिहास में अपूर्व यज्ञ था। महाराज श्री ने देखा कि दैवी शक्ति का ह्रास, आसुरी सम्पदा का विकास हो रहा है। इससे रक्षा के लिये आशुतोष भगवान् शंकर तथा पुत्र वत्सला माता जगदम्बा की आराधना का निश्चय किया। भारत की राजधानी दिल्ली में पुण्य सलिला यमुना तट पर गुरु जी की आज्ञा प्राप्त करके, महाराज स्वामी करपात्री जी तथा श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी ने व्यवस्था की। इस यज्ञ में चारों जगद् गुरु पधारे। पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज ने यज्ञ ध्वज का आरोहण किया। इसमें अखिल भारतीय धर्म संघ का तृतीय अधिवेशन, संस्कृत साहित्य सम्मेलन, सर्व वेद शाखा सम्मेलन इत्यादि अनेक सम्मेलन हुये। श्री स्वामी रामदेव जी, वृद्ध वैष्णव सम्राट् जगद् गुरु श्री देवनायकाचार्य भी पधारे। आप जब दिल्ली स्टेशन पर उतरे प्लेटफार्म पर तिल धरने को जगह नहीं थी। प्लेटफार्म से बाहर पहुंचने में डेढ़ घण्टा का समय लग गया। हज़ारों मन अन्न, चीनी, देशी घी हवन के लिये आने लगा। ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबन्ध लगाना चाहा किन्तु सफल नहीं हुई। ऐसे ही यज्ञ प्रयाग, कानपुर आदि अनेकों स्थानों पर हुये।

सन् १९५० ई. में कुछ भक्तों ने विचार किया कि प्रयाग में जगद् गुरु जी का कोई स्थान बनना चाहिये। राजा दिलीप पुर पशुपति सिंह ने प्रार्थना की कि अलोपीवाग की अपनी कोठी ज्योतिर्मठ को सौंप देना चाहता हूं। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। वे किसी से भी भेंट पूजा विदाई आदि नहीं लेते थे और न किसी ब्रह्मचारी आदि को लेने देते थे। शिविर में साइन बोर्ड टांग दिया जाता था। राजा ने बार-बार प्रार्थना की स्वामी जी ने कहा कि यदि कोठी का बैनामा मेरे नाम कर दो तो मैं ले लूंगा। फिर राजा के सेक्रेटरी को बुलाकर उसका मूल्य पूछा। एक साल पूर्व राजा ने इसका एक लाख रुपया मांगा था। ग्राहक पैंसठ हज़ार देना चाहता था। उन्होंने कहा कि मेरा जिस खज़ाने से पैंसठ हज़ार आयेगा। एक लाख भी आ सकता है। एक लाख रुपये में हम ले लेंगे। तुरन्त एक लाख रजिस्ट्री खर्च सहित देकर अपने नाम वयनामा करा लिया। प्रयाग में चर्चा चली सबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि किसी से एक पैसा लेते नहीं, न मनी आर्डर आता है, न बैंक बैलेंस है। रुपया कहां से आया। लोगों ने रजिस्ट्रार से पूछा इसका रुपया दिया गया कि नहीं। उसने कहा मेरे सामने गिन कर रुपया दिया गया। फिर कहा नोट कैसे थे, तो कहा, साधारण नोटों के समान। तो महीने बाद आप प्रयाग पहुंचे। उनसे भक्तों ने पूछा—"इतना पैसा आपके पास कहां से आया।" उत्तर में कहा—"इस रुपये में मनुष्य का हाथ नहीं है।" बहुत पूछने पर उन्होंने कहा। द्रौपदी के चीर हज़ारों गज जहां से आये थे। एक ही रंग की उनकी साड़ी थी। वहीं से यह रुपया आता है। जो भगवान् महाभारत के समय भक्त की रक्षा करता है वह आज भी करता है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। वह कोठी बड़ी जर्जर थी। उसका पुनर्निर्माण हुआ। वह कोठी 'ब्रह्म निवास' के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी साधक संन्यासी ब्रह्मचारी निवास करते हैं।

भारत के महान् दार्शनिक जिन्होंने बाद में उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद ग्रहण किया, सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन् अमेरिका तथा इंगलैंड के दो दार्शनिकों के साथ इनके आश्रम पर पहुंचे। द्वारपाल ने सूचना दी। उन्होंने कहा यह मिलने का समय नहीं है जाकर कह दो। सेवक ने कहा दो चार मिनट का ही समय दे दीजिए, आज्ञा प्राप्त हुई तीनों लोगों ने आकर प्रणाम किया। कालीन पर बैठ गये। डा. कांगर तथा डा. शिला दोनों के नाम थे। राष्ट्रपति ने कहा डा. कांगर वेदान्त के विषय में कुछ सुनना चाहते हैं। तत्त्व दर्शन के इच्छुक हैं आपसे सहायता चाहते हैं। उन्होंने कहा वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म स्वतः सिद्ध स्वयं प्रकाश है। जैसे स्वतः सिद्ध सूर्य को सिद्ध करने के लिये तथा दर्शन करने के लिये अन्य प्रकाश की आवश्यकता

नहीं। डा. कांगर ने कहा तब तो वेदादि शास्त्रों में तत्त्व प्राप्ति के जो साधन कहे हैं व्यर्थ हो जायेंगे। जगद् गुरु जी ने कहा—"साधन ब्रह्म को प्रकाशित नहीं कर सकते उनका प्रयोजन केवल अविद्या की निवृत्ति है। साधन से अविद्या निवृत्त होती है। ब्रह्म का प्रकाश नहीं वह स्वयं प्रकाश है। जैसे सूर्य उदय से पूर्व अरुणोदय होता है। अरुणोदय केवल रात्रि के अन्धकार को हटाता है। सूर्य को प्रकाशित नहीं करता। आत्मा स्वयं प्रकाश तथा सब का साक्षी है। तीनों बहुत सन्तुष्ट हुये। पैंतालिस मिनट तक चर्चा होती रही। असमय में आपको कष्ट दिया, क्षमा मांगी, प्रणाम करके चले गये।

अन्तिम यात्रा

आपका ६ मार्च १९५२ ई. को प्रयाग से लखनऊ जाना निश्चित हुआ। बड़ी धूमधाम से विदा किया। लखनऊ से सात मील दूर लोगों ने कार से आकर स्वागत किया। श्री शंकराचार्य सप्ताह मनाने की इच्छा व्यक्त की। २२ मार्च से २८ मार्च १९५२ तक उत्सव चला। लखनऊ के इतिहास में किसी के नाम पर मनाया जाने वाला यह पहला उत्सव था। लखनऊ का पुराना नाम लक्ष्मणपुर है। मार्ग में इतनी भीड़ थी की पैंतालिस मिनट के मार्ग को पार करने में पौने तीन घंटे लगे। सोने की पालकी से, सोने के सिंहासन पर विराजमान हुये। मैदान में अगल बगल में दण्डी स्वामियों के तखत पड़े थे। डेढ़ मास लखनऊ में रहे। विदाई के समय कार से उतरकर रेल के डिब्बे तक, पांच छः गज की दूरी में २० मिनट का समय लगा था।

परमप्रिय शिष्य

श्री स्वामी करपात्री जी के प्रति गुरु का भाव

दिल्ली के महायज्ञ में लाखों की भीड़ में आपने श्री करपात्री जी के प्रति भाव प्रकट करते हुये कहा था "यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि में स्वामी करपात्री जी महाराज मेरे शिष्य हैं मैं गुरु हूं। परन्तु इनकी प्रतिभा, बुद्धि कौशल तथा विद्या के आगे मैं इनको अपने गुरु के रूप में देखता हूं।" जब इनके सामने उत्तराधिकार का प्रश्न आया तो सुना जाता है कि सबसे पहले इन्हीं के नाम वसीयत लिखी गई। किन्तु मान प्रतिष्ठा लोक वासना से कोसों दूर इन्होंने स्वीकार नहीं किया। यदि वे स्वीकार न करें तो और अनेकों संन्यासियों के तथा अनेकों सद् गृहस्थ, महामहोपाध्याय के नाम लिखे गये। आप के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर अनेकों प्रकार का विवाद तथा मुकद्दमेबाज़ी हुई। पूज्यपाद धर्म सम्राट् श्री करपात्री जी महाराज ने "महानुशासनम्" में कहे हुये आद्य शंकराचार्य के लिखित नियम के अनुसार अत्यन्त वीतराग

सम्पूर्ण वेद वेदांग दर्शन शास्त्र, अष्टादश महापुराण, रामायण, महाभारत एवं धर्मशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे। जिनकी कथनी और करनी एक थी। ऐसे निस्पृह तपस्वी, अष्टांग योग से युक्त साधन चतुष्टय सम्पन्न तथा श्रवण मनन निदिध्यासन शील किसी दण्डी स्वामी को इस परम पुनीत धर्म सिंहासन पर बैठाने के इच्छुक थे। उपरोक्त सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न भारत में ऐसे दो ही महात्मा थे। एक हमारे गुरुदेव अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव आश्रम जी महाराज और दूसरे अनन्त श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज। गुरु जी के पास पहले पत्र आया। उन्होंने साफ जवाब दे दिया। तब इनकी दृष्टि स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी पर पड़ी। उन्होंने भी इनकार कर दिया। धोखे से दिल्ली के शास्त्रार्थ महारथी पं. माधवाचार्य जी तथा दिल्ली के लोग वाराणसी ला रहे थे। रास्ते में जब इनको पता चला कि मुझे शंकराचार्य बनायेंगे, तो भाग निकले। कई महीनों बाद फिर लाये गये। प्रस्ताव रखा गया। काशी विद्वत् परिषद्, सभी दण्डियों तथा तीन पीठाधीश्वरों ने समर्थन किया। तब श्री कृष्ण बोधाश्रम जी का विधि पूर्वक अभिषेक हुआ। उन्होंने श्री स्वामी करपात्री जी से कहा कि मेरी पन्द्रह शर्तें स्वीकार होने पर ही मैं इस पद को ग्रहण करूंगा। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं। १. पीठारोहण होने पर भी मैं खादी धारण करूंगा। रेशमी वस्त्र नहीं। २. मिट्टी का कमण्डलु तथा पात्र रहेंगे। ३. धन सम्पत्ति नहीं लूंगा। ४. मठ के आय व्यय के तथा और किसी झमेले में नहीं पड़ूंगा। ५. विरोधियों से केस मेरी ओर से न लड़ा जाये। ६. केस की पूरी जिम्मेदारी धर्म संघ की रहेगी। इत्यादि। जगद् गुरु शंकराचार्य जी की पीठ पर यह आवश्यक नहीं है कि उनका शिष्य ही उत्तराधिकारी हो। किसी भी मठ का दण्डी स्वामी आश्रम, तीर्थ, सरस्वती जो योग्यतम हो सनातनी जनता जिसका समर्थन करे। वही पीठाधीश्वर हो सकता है।

सुना है कि श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने वसीयत में स्वामी शान्तानन्द जी का नाम भी लिखा था। अभी तक विवाद चल रहा है। शंकराचार्य उसी को स्वीकार करना चाहिये जो चारों शंकराचार्यों के सम्मेलन में भाग ले। हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, उज्जैन आदि के महापर्वों पर श्री स्वामी शान्तानन्द जी का अलग ही शिविर लगता रहा। हमारे लिये भी पूजनीय हैं, महापुरुष हैं, परन्तु जैसी योग्यता जगद् गुरुओं में होनी चाहिये उसका अभाव है। इस समय श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम महाराज के ब्रह्मीभूत हो जाने के बाद, अनन्त श्री स्वामी स्वरूपानन्द ज़ी सरस्वती महाराज विराजमान हैं। उधर स्वामी शान्तानन्द जी महाराज ने अपने जीवन काल में ही स्वामी श्री विष्णुदेवानन्द जी सरस्वती को कार्य सौंप दिया था, परन्तु वे भी ब्रह्मीभूत हो गये। अब

उनके (शान्तानन्द जी) के शिष्य श्री वासुदेवानन्द जी सरस्वती वहां के वर्तमान शंकराचार्य जी हैं। श्री शान्तानन्द जी का मठ ज्योतिर्मठ में ही है। श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी ने बद्रिकाश्रम में अपना मठ बनाया है।

२८ नवम्बर १९५२ ई. को नयी दिल्ली पधारे। वहां दर्शकों की बहुत भीड़ होने लगी। एकान्त में रहने की इच्छा हुई। सात केनिंग नई दिल्ली में आ गये। सायंकाल की सभा स्थगित कर दी। प्रातः १० बजे से १२ बजे तक दर्शन होता था। ४ दिसम्बर १९५२ को दिन के १२ बजे राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद दर्शनार्थ पहुंचे। श्रद्धांजलि अर्पित करके चरणोदक लिया। उनसे बात करते हुये आपने कहा "प्राचीन राजा लोग तपस्वी महर्षियों से शासन चलाने में परामर्श लेते थे। योग तथा तपस्या के कारण उनकी बुद्धि निर्मल थी। उनमें लोभ तथा लोक वासना नहीं थी। राजा के रुष्ट होने का भी भय नहीं था। शास्त्रों के अनुसार जो नीति बताते थे। वह राजा प्रजा दोनों के हित में होती थी। जब से राजाओं ने ऋषियों का साथ छोड़ दिया तब से उनका पतन शुरू हुआ। मंत्री राजा का नौकर होता था। नौकर क्या सलाह देगा। अतः ऋषियों से ही सम्मति लेनी चाहिये। धर्म नीति राजनीति की विरोधिनी है। इस बात को आप मन से निकाल दें। हम लोग जनता को सदाचार का उपदेश करते हैं। जनता जितनी सदाचारिणी होगी शासन उतना ही ठीक चलेगा। उपासना के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—विद्यार्थी अपना पाठ्यक्रम स्वयं नहीं बना सकता। उसे शिक्षक की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शाश्वत सुख शान्ति का मार्ग समझने के लिये अनुभवी गुरुजनों की आवश्यकता है। इसी प्रसंग में अपने गुरुदेव के अनुभव बताये तथा संक्षेप में अपना जीवन चरित्र सुनाया। गुरु जी से जब प्रथम मिलन उत्तर काशी में हुआ, मैंने पहले उनसे प्रार्थना की, पहले आप मुझे ऐसी विद्या दें जिनसे किसी के आगे मुझे हाथ न फैलाना पड़े। फिर परमार्थ की शिक्षा दें। यह उनकी ही महती कृपा का फल है कि तब से लेकर आज तक मैंने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया।"

डेढ़ घण्टे तक वार्तालाप होता रहा। राष्ट्रपति बड़ी गम्भीरता से आनन्द मग्न, दत्त चित्त से सुन रहे थे। दिल्ली से फिर आगरा होते हुये काशी पहुंचे। ४ मई १९५३ को वहां से कलकत्ता गये। कलकत्ता में, ५६ बाली गंज में रुके। स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था। रात्रि में उठकर बैठ गये। रात्रि में २० मई १९५३ ई. को समाधि में शरीर छोड़ दिया।

कुछ लोगों का कहना है कि कलकत्ता से वाराणसी आ रहे थे रास्ते में शरीर छोड़ दिया। जिस गाड़ी में इनका शव था, वह तीन बजे मुगल सराय पहुंची। ४ बजे ब्रह्म निवास वाराणसी के प्रांगण में दर्शनार्थ रखी गई। ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे थे। षोडशोपचार पूजन हुआ। शव सजाकर एक ट्रक पर रखा गया। अनेकों प्रकार के बाजे बज रहे थे। संन्यासी, ब्राह्मण, दर्शक गण कीर्तन कर रहे थे। शोभा यात्रा दशाश्वमेध घाट पर पहुंची। एक बड़े बजरे (पत्थर की पेटी) जिसमें यति को बिठाकर गंगा में प्रवाहित किया जाता है, में शव रखा। वहीं पर सब संन्यासी विद्वान् लोग बैठे थे। केदार घाट पर जल प्रवाह की व्यवस्था की गई थी। पत्थर का बड़ा सन्दूक नाव पर लादा गया, उसी में शव रखा गया। वहीं पर महेश ब्रह्मचारी ने गंगा में कूदकर सन्दूक को गंगा जी में रखकर अन्तिम प्रणाम करके बाहर आये।

स्वामी जी के ब्रह्मचारियों में, कानपुर, नवाबगंज, दण्डी आश्रम कानपुर के पूज्य पाद महर्षि रामेश्वराश्रम जी महाराज इनके नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। इन पर चामर किया करते थे। धुरन्धर विद्वान्, परम तपस्वी सन्त हैं। महाराज के ब्रह्मीभूत होने के बाद इन्होंने अनन्त श्री ब्रह्मलीन जगद् गुरु स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज से संन्यास की दीक्षा ली। जगद् गुरु जी ने बारह वर्ष के भीतर ज्योतिर्मठ को पूर्ववत् चमका दिया। स्वामी जी की अन्त्येष्टि क्रिया आदि विधिवत् सम्पन्न होने के बाद श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की सम्मति से स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी को जगद् गुरु बनाया गया। इनके विरोधियों ने विपक्ष में समिति के सदस्यों, शिष्यों, पंडितों, दशनामी अखाड़ों तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगों ने बड़ी धूमधाम के साथ १२ जून १९५३ ई. को दिन के १० बजकर ५२ मिनट पर काशी के ब्रह्म निवास में अभिषेक पूजन आदि सम्पन्न करने के अनन्तर श्री स्वामी शान्तानन्द जी का अभिषेक किया। वे विधिवत् गुरु जी की पादुकाओं का पूजन करके सिंहासनासीन हुये। बाद में ब्रह्मीभूत जगद् गुरु जी को श्रद्धांजलियां अर्पित की गयीं। अपने भाषण में श्री शान्तानन्द जी ने कहा कि उनके बताये आदेशों उपदेशों पर चलकर अपने जीवन को उन जैसा ही सफल बनायें। यहीं हम लोगों की सच्ची श्रद्धांजलि है।

अनन्त श्री विभूषित ब्रह्मलीन जगद् गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र सम्पूर्ण। श्री ज्योतिष्पीठोद्धारक ग्रन्थ से उद्धृत।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

ब्रह्मीभूत ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद् गुरु अ. श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के उपदेश तथा संस्मरण

(कु. हीरा आर्य, सेवा निवृत्त प्रिंसिपल)

महाराज श्री भ्रमण करते हुये सन् १९४६ में चन्द्रमेढ़ा सरगुजा (म. प्र.) में पधारे। उनके स्वागत की तैयारी महीनों पहले से हो रही थी। महाराज जी निश्चित समय पर पधारे। साढ़े नौ बजे प्रातः आपका भाषण आरम्भ हुआ। वर्ण व्यवस्था पर बोलते हुये कहा—"वर्ण व्यवस्था मनुष्यों में ही नहीं, बल्कि देव, पशु, पक्षी तथा पेड़ पौधों में भी है। पक्षियों में हंस और सारस ब्राह्मण हैं। इनमें पतिव्रत धर्म तथा एक पत्नीव्रत पाया जाता है। नर मादा से किसी के बिछुड़ जाने पर दूसरे से सम्बन्ध नहीं करते। इसी कोटि में कबूतर तथा फाक्ता आते हैं।"

पेड़ों में चन्दन ब्राह्मण, शीशम तथा सागौन क्षत्रिय, खमार, करमी वैश्य, बांस शूद्र है। एक बार आपने 'मोती महल' के भाषण में कहा था अरे हिन्दुओ ! पद्मिनी की आत्मा तुम्हें क्या आशीर्वाद देगी, जबकि तुम अपने जाति तथा धर्म का परित्याग कर मुसलमानों से अपनी पुत्र पुत्री का विवाह करोगे। अतः अपने हिन्दुत्व की रक्षा करो। जब पक्षियों में पतिव्रत धर्म पाया जाता है तो तुम मनुष्य होते हुये इतना क्यों पतित हो रहे हो ? उनकी शोभायात्रा मोटर गाड़ी पर न निकलकर रथ पर निकली। वे यात्रा में अन्न जल नहीं ग्रहण करते थे। भिक्षा में केवल खिचड़ी लेते थे। महारानी प्रियवंदा के यहां ठहरे थे।

उस समय राजा, रानी तथा कर्मचारियों के साथ मुझे भी दीक्षा प्राप्त हुई। मुझे दीक्षा लेने में संकोच भय था। उनकी घबराहट देखकर महाराज ने धीरज बंधाया। पूछा—क्या कठिनाई है ? क्या काम करती हो ? उन्होंने कहा—जी पाठिका हूं। महाराज बोले—यह तो बड़ी अच्छी बात है। पाठिका के नाते हमारे संदेश को तुम स्त्रियों में सरलता से पहुंचा सकती हो।" दीक्षा प्राप्त होते ही मेरी मन बुद्धि में विशेष चेतनता का संचार हुआ।

जगद् गुरु जी शिष्यों से दक्षिणा में रुपया, वस्त्र या कोई भौतिक वस्तु न लेकर पाप चढ़ाने की आज्ञा देते थे। परन्तु शिष्य अधिक से अधिक भेंटे उपस्थित करते थे। दीक्षा दिलाने वाले आचार्य को पूजा की सब वस्तुयें दे देते थे।

अध्यापिका लिखती हैं, मन्त्र के अनन्तर एक आध मास तक मंत्र का जाप करने के बाद मैंने छोड़ दिया। जब सन् १९५३ में गुरु जी के ब्रह्मलीन होने की सूचना मिली तो मैं उनकी कृपा का स्मरण करके बहुत रोयी। परन्तु गुरु मंत्र का जप मैंने तब भी नहीं किया। तीन वर्ष बीतने पर अक्तूबर १९५६ में मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तब एक दिन मानस में मैंने पढ़ा।

राम प्रताप मम मोह नसाना। गुरु रहस्य अनूपम जाना। तथा सुधा सरिता में ब्रह्मानन्द चरणरज सद्गुरु वन्दनयोग। मन्त्रराज भेषज दियो मिटा गयो भवरोग॥

जिन गुरुओं के दर्शन मात्र से जीव कृतार्थ हो जाता है। फिर मैंने तो विधिवत् दीक्षा ली थी। उसका अमृत प्रभाव कैसे नहीं पड़ता ? दस वर्ष के अन्तराल में गुरु जी का मन्त्र रूपी बीज नवम्बर १९५६ में अंकुरित हुआ। मेरी बहन के पति की नौकरी छूट गयी। वे निराश होकर अपने घर "बैकुण्ठ पुर" चले गये। मैंने मंत्र का अनुष्ठान किया नौकरी फिर से प्राप्त हुई। भक्त जब भगवान् या गुरु को भूल जाता है तब गुरु या भगवान् विपत्ति का पहाड़ गिरा कर उसे मार्ग पर ले आते हैं।

महाराज श्री का सब के प्रति एक जैसा भाव था। कपर्दा (कवर्धा) में एक भक्त ने स्वामी जी से पूछा कि आप त्यागी महात्मा होते हुये भी राज महल में क्यों रहते हो ? उन्होंने बिना बोले ही मौन भाषा में समाधान कर दिया। उनका भाव था आपका राजा मुझे राज महल में ले आया। उसने इसमें रखा। मैं रहने लगा। आप झोंपड़ी दीजिये मैं वहां रहूंगा। सच्चे त्यागी महात्मा की दृष्टि में दोनों बराबर हैं। भक्त यह समझकर भाग गया। एक मुसलमान भक्त को स्वप्न में दर्शन दिया—कहा "हमारे लिये सब समान हैं। क्या तुम कुरान शरीफ का कलमा जानते हो।" उसने कहा—नहीं। गुरु जी ने स्वप्न में कलमा बताया। दूसरे दिन उसने मौलवी को बुलाकर पूछा—यह कलमा ठीक है। मौलवी बोले—"यह तो कुरान का बहुत बढ़िया कलमा है, तुम्हें किसने बताया ?" परन्तु भक्त ने रहस्य नहीं खोला। वह उनको गुरु मानने लगा। महाराज श्री भक्तों की श्रद्धा के अनुरूप चमत्कारपूर्ण सहायता करते थे।

शिष्य कुम्भ गुरु कुम्हार, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
भीतर भीतर हाथ सहार दें, बाहर मारे चोट॥

महाराज श्री गुप्त कक्ष में साधना के समय मानसिक संसार का चक्कर लगाकर सबके भीतर बाहर की बात को जान जाते थे। जब तक वे संसार में रहे सुख, शान्ति, समृद्धि रही।

जिन भक्तों ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया वे अनेक संकटों से ग्रसित हुये। तीस चालीस वर्षों से जो आग लगी है, उसमें दो महायोगियों का प्रस्थान कारण है। पहले स्वामी ब्रह्मानन्द जी और दूसरे स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज। सच्चे सद्गुरु भक्त का प्रारब्धवशात् प्राप्त दुःख अपने ऊपर लेकर भक्त को सुखी करते हैं। (ज्योतिष्पीठ परिचय से कु. हीराचार्य)

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे, पंचमोऽध्यायः ॥५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

हनुमान मन्त्र चमत्कारानुष्ठान पद्धति

सन् १९४९ में याज्ञिक सम्राट् वेणी राम शर्मा गौड़ उत्तराखण्ड की यात्रा में गये। वे ज्योतिर्मठ में ठहरे थे। उसमें तत्कालीन शंकराचार्य अ. श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज उपस्थित थे। वे रात्रि में उनके दर्शनार्थ गये। कुशल मंगल के अनन्तर उन्होंने कहा "तुम प्रतिष्ठित वेदज्ञ परिवार के वेदज्ञ विद्वान् हो, अतः हम तुमको आशीर्वाद रूप में अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित "हनुमन् मंत्र चमत्कारानुष्ठान पद्धति नाम की लघु पुस्तिका दे रहे हैं। इसे स्वीकार करो। उन्होंने सहर्ष पुस्तिका प्राप्त की। जगद् गुरु जी ने कहा हमने जो पुस्तिका तुमको दी है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धप्रदा है। इसमें बीस मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्र का ग्यारह, ग्यारह हज़ार बार रुद्राक्ष की माला पर हनुमान जी के किसी भी प्राचीन मन्दिर में ब्रह्मचर्य पूर्वक जप करने से सभी मंत्र सिद्ध हो जाते हैं। मंत्रों को सिद्ध कर लेने के पश्चात् मन्त्रों का प्रयोग करने पर कठिन से कठिन कार्य सुसाध्य हो जाते हैं।"

'हनुमन् मन्त्र चमत्कारानुष्ठान पद्धति' का अनुष्ठान करने वाला साधक ब्रह्म मुहूर्त में उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर प्रत्येक मंत्र की ग्यारह हज़ार बार आवृत्ति-करके मंत्र को सिद्ध कर ले। पश्चात् आवश्यकता पड़ने पर स्वयं अथवा दूसरे द्वारा अनुष्ठान कर या करवा सकता है। जप के अनन्तर ११०० मंत्रों से आहुति दें।

इस मन्त्र का मैंने कई बार अनुष्ठान करके चमत्कारपूर्ण लाभ उठाया है। सर्व कल्याणार्थ यह पद्धति प्रकाशित की जा रही है। अनुष्ठानकर्त्ता जिस कार्य के लिये जप तथा हवन करे। संकल्प में उसका नामोल्लेख अवश्य करें।

मंत्र

१. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय वायु सुताय अञ्जनी गर्भ संभूताय अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत पालन तत्पराय धवली कृत जगत् त्रितयाय ज्वलदग्नि सूर्य कोटि संप्रभाय प्रकट पराक्रमाय आक्रान्तदिङ् मण्डलाय यशो वितानाय यशोऽलंकृताय शोभिताननाय महासामर्थ्याय महातेजः पुञ्ज विराजमानाय श्री राम भक्ति तत्पराय श्री राम लक्ष्मणानन्द कारणाय कपि सैन्य प्राकाराय सुग्रीव सख्यकारणाय सुग्रीव साहाय्य कारणाय ब्रह्मास्त्र ब्रह्म शक्ति ग्रसनाय लक्ष्मण शक्ति भेद निवारणाय शल्य विशल्यौषधि समानयनाय वनरक्षाकर समूह विभञ्जनाय द्रोण पर्वतोत्पाटनाय स्वामि वचन सम्पादितार्जुन संयुग संग्रामाय गम्भीर शब्दोदयाय दक्षिणाशा मार्तण्डाय मेरु पर्वतपीठिकार्चनाय दावानल कालाग्नि रुद्राय, समुद्रलंघनाय सीताश्वासनाय सीतारक्षकाय राक्षसी संघ विदारणाय अशोक वन विदारणाय लङ्कापुरी दहनाय दशग्रीव शिरकृन्तकाय कुम्भकरणादिवध कारणाय वालि निवर्हण कारणाय मेघनाद होम विध्वंसनाय इन्द्रजिद् वध कारणाय सर्वशास्त्र पारंगताय सर्व ग्रह विनाशकाय सर्व ज्वर हराय सर्वभय निवारणाय सर्व कष्ट निवारणाय सर्वापत्ति निवारणाय सर्व दुष्टादि निवर्हणाय सर्व शत्रुच्छेदनाय भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी ध्वंसकाय सर्व कार्य साधकाय प्राणिमात्र रक्षकाय रामदूताय स्वाहा।

२. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय विश्व रूपाय अमित विक्रमाय प्रकट पराक्रमाय महाबलाय सूर्य कोटि सम प्रभाय रामदूताय स्वाहा।

३. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय राम सेवकाय राम भक्ति तत्पराय रामहृदयाय लक्ष्मण शक्ति भेदन निवारणाय लक्ष्मण रक्षकाय, दुष्ट निबर्हणाय रामदूताय स्वाहा।

४. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्व शत्रु संहरणाय सर्व रोग हराय सर्व वशी करणाय राम दूताय स्वाहा।

५. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिक ताप त्रय निवारणाय राम दूताय स्वाहा।

६. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देवदानवर्षि मुनि वरदाय रामदूताय स्वाहा।

७. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भक्त जन मनः कल्पना कल्पद्रुमाय, दुष्ट मनोरथ स्तम्भनाय प्रभञ्जन प्राण प्रियाय महाबल परिक्रमाय महाविपत्ति निवारणाय पुत्र पौत्र धनधान्यादि विविध सम्पत् प्रदाय रामदूताय स्वाहा।

८. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय बज्रदेहाय वज्रनखाय बज्र मुखाय बज्ररोम्णे वज्र नेत्राय वज्र दन्ताय वज्र कराय वज्र भक्ताय राम दूताय स्वाहा।

९. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परयन्त्र मन्त्र तन्त्र त्राटक नाशकाय सर्व ज्वरच्छेदकाय सर्वव्याधि निकृन्तकाय सर्वभय प्रशमनाय सर्वदुष्ट मुख स्तम्भनाय सर्व कार्य सिद्धि प्रदाय राम दूताय स्वाहा।

१०. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय देव दानव यक्ष राक्षस भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी दुष्ट ग्रह बन्धनाय राम दूताय स्वाहा।

११. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पंच वदनाय पूर्व मुखे सकल शत्रु संहारकाय राम दूताय स्वाहा।

१२. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पंच वदनाय दक्षिण मुखे कराल वदनाय नारसिंहाय सकल भूत प्रेत दमनाय रामदूताय स्वाहा।

१३. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पंच वदनाय पश्चिम मुखे गरुडाय सकल विघ्न निवारणाय राम दूताय स्वाहा।

१४. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पंच वदनाय उत्तर मुखे आदि वराहाय सकल सम्पत् कराय रामदूताय स्वाहा।

१५. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय पूर्व मुखे हयग्रीवाय सकल जन वशीकरण रामदूताय स्वाहा।

१६. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय सर्वग्रहान् भूत भविष्यद् वर्तमानान् समीपस्थान् सर्वकाल दुष्टबुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परवलान् क्षोभय-क्षोभय मम सर्व कार्याणि साधय साधय स्वाहा।

१७. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय परकृत यन्त्र मन्त्र पराहंकार भूत प्रेत पिशाच परदृष्टि परविघ्न तर्जन चेटक विद्या सर्वग्रहभयम् निवारय निवारय स्वाहा।

१८. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय डाकिनी शाकिनी ब्रह्मराक्षस कुल पिशाचोरुभयं निवारय निवारय स्वाहा।

१९. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय भूत ज्वर प्रेत ज्वर चातुर्थिक ज्वर विष्णु ज्वर महेशज्वरं निवारय निवारय स्वाहा।

२०. ॐ नमो हनुमते रुद्रावताराय अक्षि शूल, पक्ष शूल शिरोभयं करशूल पित्त शूल ब्रह्म राक्षस शूल पिशाच कुलच्छेदनम् निवारय निवारय स्वाहा।

पूज्यपाद जगद् गुरु जी का गुरु पूर्णिमा पर सदुपदेश

मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिये न जाने किस किस का पूजन करता है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त जितने भी कार्य हैं, वे सब सुख प्राप्ति के लिये हैं। कुछ कार्य सफल होते हैं, कुछ विफल। पर इन कार्यों की सफलता में भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त करता, जिसके बाद फिर कभी भी दुःख न प्राप्त हो। जीव एक सुख को दूसरे से बढ़कर समझकर जीवन पर्यन्त उसी में लगा रहता है। अविद्या कृत जन्म मरण के बन्धन से तब तक मुक्त नहीं हो सकता, जब तक अन्तःकरण शुद्ध होकर स्वरूप साक्षात्कार न हो। ब्रह्मानुभूति के लिये स्त्री, पुत्र, धनादि में बिखरी हुई वृत्तियों को समेट कर ब्रह्माकार वृत्ति नहीं करता। अतः दुर्वासनाओं पर प्रतिबन्ध लगाना परमावश्यक है। वर्णाश्रम धर्म के अधिकारानुसार शास्त्र तथा सत्पुरुषों की आज्ञा तथा साधन किये बिना जीव को यथार्थ शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। अथवा शुभाशुभ दोनों प्रकार की वासनाओं को भगवदर्पण करते हुये, सर्वत्र ब्रह्म दर्शन का अभ्यास करे। यही ज्ञान की सर्वोत्तम अवस्था है। जैसे प्रचण्ड अग्नि ईंधन को भस्म करतीं है, वैसे ही ज्ञानाग्नि भी सर्व कर्मों को भस्म करती है।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति। ज्ञान प्राप्त करके साधक शीघ्र ही पराशान्ति को प्राप्त करता है।

परन्तु आज के मनुष्य में परमार्थ, वेद शास्त्र तथा गुरु वचनों में श्रद्धा नहीं है। अतः इन आज्ञाओं का उल्लंघन करता है। सोलह संस्कार तो बिल्कुल लुप्त हो गये हैं। अन्य युगों में इन संस्कारों के कारण ही ब्राह्म, क्षात्र आदि तेज प्राप्त होता था। इस समय यजमानों को कौन कहे ? आचार्य ही संस्कारहीन हो गये हैं। आजकल पूजा पाठ में तो समय दिया जाता है। परन्तु उसका प्रत्यक्ष फल नहीं होता है। इसका अर्थ है कि हम पूर्ण श्रद्धा विश्वास तथा विधि से नहीं करते हैं। यदि श्रद्धा आदि से करें तो हो नहीं सकता कि इसका फल न मिले। जैसे कोई शीत निवृत्ति के लिये अग्नि के पास जाये, परन्तु उसकी शीत निवृत्त न हो। इसका भाव है कि वहां अग्नि नहीं बल्कि राख है। ८४ लक्ष योनियों का फाटक मनुष्य योनि है। इस फाटक पर आकर भी यदि आलस्य तथा अज्ञान निद्रा में सो गये, तो समय पूरा होने पर फाटक बन्द हो जाने पर फिर ८४ के चक्कर में घूमना पड़ेगा। अतः सावधान होना चाहिये। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ सं. २००२ वि. नन्दन भवन इटावा।

सुख शान्ति का अमोघ उपाय

समस्त संसार का अधिष्ठान एक परमात्मा है। वही परम तत्त्व है। उसी से त्रिगुणात्मिका माया और महत्त्व आदि की उत्पत्ति हुई है। इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण सर्वव्यापक परमात्मा है। वैसे ही है, जैसे जल में बर्फ का ढेला है। जैसे जल ही कारण विशेष से घनीभूत होकर बर्फ के रूप में दीखता है। पर वास्तव में उसके कण-कण में अधिष्ठान जल के सिवाय कुछ नहीं है। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है। वह अग्नि में दाहकत्व, वायु में शोषकत्व, जल में शैत्य रूप से व्याप्त है। उसकी सिद्धि में वेदादि शास्त्र प्रमाण हैं। वह प्रत्यक्ष प्रमाण से भी जाना जा सकता है। अग्नि सबको जलाती है। परन्तु प्रह्लाद को नहीं जला सकी। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिसका सम्बन्ध एक अविनाशी निखिल जगदाधार परम तत्त्व से हो जाता है। उस परम भागवत की इच्छानुसार ही भौतिक तत्त्व अग्नि वायु आदि क्रियाशील होते हैं। जिस अग्नि की लपटों ने होलिका को जला दिया उसी ने प्रह्लाद की रक्षा की। भौतिक विज्ञान इसका उत्तर नहीं दे सकता। इसका कारण है कि अग्नि में दाहकत्व रूप से स्थित परमात्मा से प्रह्लाद का अभेद सम्बन्ध हो गया था। अथवा परमात्मा ने भक्त के लिये अग्नि के दाहकत्व को शान्त कर दिया। दूसरे शब्दों में भक्त स्वयं अग्नि स्वरूप हो गये थे, फिर अग्नि को अग्नि कैसे जलाये।

इतिहास पुराणों में ऐसे अनेक प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। निष्कर्ष है कि सर्वाधिष्ठान चराचर में व्याप्त परमात्मा को देखते हुये, उससे शास्त्र विहित उपासना द्वारा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। भक्त का भगवान् से अभेद सम्बन्ध हो जाने पर भक्त पंच महाभूतों पर विजय प्राप्त करके तीन कालों की गति का स्वामी हो जाता है।

यह भारतीयों को ही अन्तरंग साधनों तथा निष्ठा द्वारा उच्चतम स्थिति प्राप्त होती है। वेद तथा धर्म शास्त्रोक्त कर्मानुष्ठान मनुष्य को केवल मृत्यु के बाद स्वर्गादि नहीं प्राप्त कराते ; प्रत्युत इसी जीवन में त्रैलोक्य का स्वामित्व प्रदान कराने का दावा करते हैं। आज भी तीनों युगों के समान अलौकिक शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु जिस शक्ति की प्राप्ति का जो मार्ग बताया है उस पर चलने से प्राप्त होगी। आज की वैज्ञानिक प्रगति इसके विपरीत है। यही कारण है कि तीनों युगों का जगद् गुरु भारत आज रोटियों के लिये दूसरों के आश्रित है।

भारतीयो ! जागो ! पाश्चात्य कूटनीतिज्ञों की कूट नीति का शिकार बने काफी समय हो गया है। सचेत होकर इस बात को समझो कि उनकी शिक्षा दीक्षा ने तुम्हारा दृष्टिकोण ही बदल दिया है। अपना वर्तमान पाश्चात्य दृष्टिकोण बदलो, अपने धर्म को समझो, केवल भौतिक अस्त्र शस्त्र तथा संगठन बल के सम्पादन में ही अपनी समस्त शक्ति नष्ट न करो। आज भी सब हो सकता है। जिन सनातन उपायों से पहले सर्व सामर्थ्य प्राप्त कर समस्त प्रकृति और भूतल पर आधिपत्य स्थापित किया जाता था। वे ही वेद शास्त्रीय सनातन उपाय तथा प्राचीन सिद्ध गुरु परम्परा भारत में आज भी उपलब्ध है। सावधान होकर सचेष्ट होने की आवश्यकता है। स्थायी सुख एवं शान्ति का पथ आज भी सदा की भांति उज्ज्वल है। केवल उस पथ के पथिक बनने की देर है।

प्रेषक—पं. फूल चन्द जी पाण्डेय शास्त्री, एम. ए, दिल्ली शाहदरा।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे षष्ठोऽध्यायः॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

अनन्त श्री विभूषित, पूज्य पाद, अष्टाङ्ग योग सम्पन्न, वीतराग, समाधिनिष्ठ ब्रह्मीभूत ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज का जीवन वृत्त

८१६ अ. श्री स्वामी—शिवाश्रम जी महाराज तथा

८१७ पू. पा. श्री चैतन्याश्रम जी महाराज सहित



८१८ पूज्य पाद, परम सिद्ध श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के वि. सं. २०१० वैशाख शुक्ल दशमी (२०-५-५३ ई.) को ९० वर्ष की आयु में ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर ज्योतिष्पीठ पर **श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी** महाराज आसीन हुये। इनका परम पावन जीवन चरित्र जगद् गुरु गौरव के आधार पर लिख रहा हूं।

अनन्त श्री पूज्य पाद जगद् गुरु कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज का जन्म सं. १९४९ वि. सन् १८९२ ई. भगवान् श्री कृष्ण की लीला भूमि भाण्डीर वन के समीप छांहरी ग्राम तहसील माठ, जनपद मथुरा में हुआ था। इनके पिता श्री पं. टीकाराम जी तथा माता गायत्री देवी थीं। जन्म का नाम श्री मदन मोहन था। यथा नाम तथा गुणानुसार इनमें मद और मोह का सर्वथा अभाव था। आपके पांच भाई और थे। ज्येष्ठ भ्राता पं. लक्ष्मी नारायण जी तिवारी, दूसरे स्वामी जी, तीसरे पं. भगवान सहाय, चौथे डा. पुरुषोत्तम, पांचवें पं. राम सहाय, छठे श्री पं. प्रभुदयाल जी थे। तीन बहनें १. अशर्फी देवी २. वेदवती ३. सुन्दरी देवी थीं। माता की मृत्यु इनकी १६ वर्ष की अवस्था में सन् १९०८ में हुई थी। पिता जी की मृत्यु १९५५ ई. में आगरा में हुई थी। उनका अन्तिम संस्कार यमुना तट पर वृन्दावन में हुआ था। पिता जी के जीवन में ही श्री शंकराचार्य का पद प्राप्त कर लिया था।

आपने प्रारम्भिक शिक्षा माठ में प्राप्त की। मथुरा में हाई स्कूल पास किया। बाद में "आगरा सेन्ट जान्स कालेज" में प्रवेश पाया। कालेज में भी पैंट या पायजामा नहीं पहनते

थे। ईसाइयों का कालेज था। प्रोफैसरों के आलोचना करने पर भी आपने अपना वेश नहीं त्यागा। आप दयालु स्वभाव के थे। घर से जो धन राशि खर्चा करने के लिये मिलती थी, वह निर्धनों में बांट देते थे। यहां तक कि जूते तक उतार कर दे देते थे। स्वयं नंगे पैर रहते थे। ठंड में किसी को देखकर अपने कपड़े तक उतार कर दे देते थे। अपने पास एक बालटी, कम्बल तथा गीता रखते थे। सनाढ्य आश्रम में रहते थे। त्रिकाल सन्ध्या, गायत्री जप, बलि वैश्व देव तथा रविवार को हवन करते थे। उनका हवन कुण्ड आज भी विद्यमान है। विद्यार्थी जीवन में एक प्राध्यापक से संन्यास की प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने पञ्चदशी पढ़ने को कहा। पंचदशी के एक कठिन श्लोक का अर्थ नहीं लगा। तब गुरु जी ने कहा, मानसिक गायत्री जप करो। अपने आप समझ में आ जायेगा। इसके जप के प्रभाव से कठिन शब्दों का अर्थ भी लग जाता है। आपने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। गुरुओं से आयुर्वेद भी पढ़ा। घर में जब ताऊ जी को पता चला। यह पढ़ने में मन नहीं लगाता। पैसा तथा सब वस्तुयें लुटा देता है। भजन पूजन में अधिक रहता है। तब दो महीने तक खर्च नहीं मिला। इनके सरल स्वभाव के कारण अध्यापकों ने खर्चा नहीं लिया।

एक रात्रि में ध्यान के बाद तकिया उठाया तो उसके नीचे साठ रुपये मिले। उससे खर्चा चलाया। इन पर ऋण बहुत हो गया था। बिना नाम के एक मनीआर्डर मिला। उससे ऋण मुक्त हुये।

उन्नीस वर्ष की आयु में मथुरा के पण्डित तुलसीदत्त शर्मा की पुत्री से इनका विवाह हुआ। तुरन्त ही पत्नी को ज्वर हो गया। साला भी साथ में आया था। बहन को साथ ले गये। पीहर में ही उनकी मृत्यु हो गई। दूसरे विवाह की चर्चा चली। आपने साफ इन्कार कर दिया। भावी श्वसुर ने पिता को राजी कर लिया। छः सौ रुपये दिये। जब आपको पता चला कि लड़की का पिता पढ़ा रहा है। तब इन्होंने अपने पितामह श्री करन सिंह से कहा—मैं कदापि विवाह नहीं करूंगा। अतः उनका पैसा वापस कर दिया जाये।

सन् १९१३ जुलाई मास में श्री मदन मोहन जी ने गृह त्यागा। गंगा यमुना सरयू के तटों पर विचरण करते हुये अयोध्या में पहुंच कर ६ अगस्त १९१३ ई. में आपने पिता तथा पितामह को एक पत्र लिखा। दूसरा पत्र २८ अगस्त को लिखा कि मैं संन्यास लेना चाहता हूं।

तदनन्तर काशी चौसट्ठी मठ के परम वीतराग, परम तपस्वी, श्री स्वामी चैतन्याश्रम जी महाराज के दर्शन किये। इनकी जन्म भूमि मेरठ थी। उनसे वेदान्त पढ़ने लगे। गुरु जी का पूर्व आश्रम का नाम पं. अयोध्याप्रसाद जी था। आपको भगवती सिद्ध थी। इनके गुरु श्री स्वामी शिवाश्रम जी महाराज चौसट्ठी मठ के प्रथम महन्त जो १२ वर्ष समाधि में रहे थे, श्री स्वामी मधुसूदन आश्रम जी महाराज के शिष्य थे। इन्होंने (जगद् गुरु के परम गुरु जी ने) श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज से मूर्ति पूजा तथा मृतक श्राद्ध को लेकर मौखिक तथा लिखित शास्त्रार्थ किया था। उसमें वे पराजित हुये थे। वि. सं. १९७३ में उनसे दण्ड संन्यास ग्रहण किया। उस समय आपकी आयु २४ वर्ष की थी। संन्यास के बाद गढ़ मुक्तेश्वर तथा बागपत में अधिक वास किया।

एक दिन आप गुरु जी के साथ पैदल भ्रमण करते हुये एक गांव में पहुंचे। वहां के मुखिया कर्मकाण्डी विद्वान् तथा सन्त सेवी ब्राह्मण थे। उन्होंने दोनों को भिक्षा करायी। भिक्षा के अनन्तर गुरु जी के चरण पकड़ कर प्रार्थना की कि मैं जीवन पर्यन्त सत्यभाषण करूंगा। आप नारायण स्वरूप हैं। आपको साक्षी करके मैं संकल्प लेना चाहता हूं। गुरु जी ब्राह्मण की सत्य निष्ठा को देखकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा तुम्हारा निश्चय तो ठीक है, परन्तु घोर कलिकाल है। जो प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह विशेष दोषी होता है। ब्राह्मण ने हठ किया। तब महाराज जी ने कहा। परीक्षण के लिये अभी छः महीने का संकल्प लो। तब उन्होंने छः महीने तक झूठ न बोलने तथा लिखने का संकल्प किया। वे पाठशाला में बालकों को वेदादि पढ़ाते थे। तीन महीने के भीतर ही वाक् सिद्धि प्राप्त हुई। धोखे में भी किसी बच्चे को मर-जा, कह देने पर उसकी मृत्यु हो जाती थी। तब पंडित जी ने वाणी पर विशेष संयम किया।

चार पांच महीने बीतने पर गांव का एक अपठित नवयुवक उनसे ससुराल में चिट्ठी लिखवाने के लिये आया। उसने कहा, मेरी पत्नी मायके गई है। अनेक पत्र देने पर भी नहीं आई। कृपया आप एक पत्र में लिख दें कि मैं सख्त बीमार हूं। पत्र देखते ही तुरन्त चली आवो। पंडित जी ने कहा, मैं झूठ नहीं लिखूंगा। उसने विशेष आग्रह किया। इन्होंने कहा, ऐसा पत्र लिखने पर निश्चय ही तुम बीमार होकर मर जाओगे। वह नहीं माना, पत्र लिखा। पत्रालय में डालते ही उसे ज्वर हो गया। पत्नी के आने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई।

जगद् गुरु जी ने सत्य पर भाषण करते हुये, यह घटना सुनायी थी।

वंश परिचय

श्री पुरुषोत्तम

प्रथम पुत्र का नाम ज्ञात नहीं मांट में ही रहे

श्री पं. छबीले तिवारी
('जिन्होंने छांहरी गांव की स्थापना की)

वीरु

नत्थू

हीरा

इनके नाम से गांव में एक तालाब है

जगदेव — लाल मन — बिरजू — श्यामल — तारन

लोका — छत्तर — प्रह्लाद — पीताम्बर — भोजराज

धनीराम — हाजीराम — तुलाराम — दयाराम

हरकिशन

देवकरन — श्री राम

लज्जाराम — राधे — इन्द्रा वृद्ध प्रपितामह — प्रताप

बालकिसन — हुलासी — परशुराम — मौजीराम — पोलाराम — हरगोबिन्द प्रपितामह — विजय राम उर्फ साधू राम

रोशन लाल पितामह — करन सिंह

सीताराम

कृपा कान्त — दयाकान्त

भारतेन्दु चन्द्रशेखर — शशी

युगुल किशोर — श्री पं. टीकाराम ('पिता) — पं. गुलाब सिंह — पं. उदय सिंह

श्री पुहुप सिंह-चोवा सिंह — श्री सालिगराम — श्री सत्य प्रकाश — श्री सत्यदेव

लक्ष्मी नारायण — श्री पं. मदन मोहन जी — श्री भगवान सहाय — श्री पुरुषोत्तम — श्री राम सहाय — श्री प्रभु दयाल

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

तपस्या

बागपत में वास करते हुये जब कोई कठिन ग्रन्थ नहीं लगता था, तो आप पुस्तक को भगवान् कृष्ण के आगे रख देते थे और प्रार्थना करते थे। तो वह ग्रन्थ सरल हो जाता था। इसी लिये गुरु जी ने संन्यास के बाद श्री कृष्ण बोधाश्रम नाम रखा। आप किसी स्त्री का दर्शन तथा चरण स्पर्श नहीं करवाते थे। यदि धोखे से कोई छू ले तो तीन दिन का व्रत करते थे। प्रातः तीन बजे से लेकर रात्रि के १० बजे तक आपका समय ध्यान, जप, अध्ययन, सत्संग तथा धर्म प्रचार में बीतता था। वागपत में चातुर्मास्य में यमुना जी में भयंकर बाढ़ आयी। जल बड़े वेग से बढ़ रहा था। आप समाधि में थे। लोगों के चिल्लाने पर भी समाधि नहीं खुली। शरीर पर सांप, बिच्छू आदि चढ़ने लगे। एक सांप गले से लिपट गया। सर के ऊपर फण उठा दिया। किन्तु ध्यान समाधि में कोई अन्तर नहीं आया। भयंकर गर्मी या मच्छर के काटने पर भी आप पंखा नहीं चलाते थे। यदि कोई भक्त पंखा या कूलर लगा देता तो उससे डांट कर कहते थे कि क्या तू मुझे पंखे कूलर की हवा देकर खरीदना चाहता है। शरीर पर मच्छर आदि के काटने पर भक्त कम्बल डाल देते थे। पर इनको पता नहीं चलता था। मेरठ में जब इनके नाम से दण्डी आश्रम का निर्माण हो रहा था, तब आपने कहा कि मेरा नाम क्यों रखते हो। क्या मैं इसे सर पर उठाकर ले जाऊंगा। जीवन में कभी भी किसी ने इनको लेटकर पैर पसार कर सोते नहीं देखा। भिक्षा में केवल पतली मूंग की दाल या पालक की संब्जी तथा गोदुग्ध लेते थे। इसके अतिरिक्त जल को छोड़कर तुलसी दल तक ग्रहण नहीं करते थे। जीवन में 'नींबू' आदि किसी खटाई को कभी नहीं चखा।

सन्त समागम

सं. १९८७ वि. में भारत के सुप्रसिद्ध सन्त उड़िया बाबा तथा धर्म सम्राट् श्री करपात्री जी से भेंट हुई। मेरठ के गांधी ग्राम में सत्संग हुआ। दोनों में अद्भुत स्नेह था। **इनका अद्भुत नेह, दो प्राण एक देह**। सन् १९४० में महाराज करपात्री जी ने धर्म संघ की स्थापना की थी। १९४८ में धर्म संघ का प्रथम अधिवेशन प्रयाग में हुआ।

शत कोटि महायज्ञ

श्री करपात्री जी महाराज जुलाई १९४३ ई. में उत्तर भारत की पैदल यात्रा कर रहे थे। उसी समय जगद् गुरु जी ने सोनीपत में महारुद्र यज्ञ आरम्भ किया। उसी में देहली में भी यज्ञ का निश्चय हुआ। इसमें महामहोपाध्याय पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी थे। यह यज्ञ दो फरवरी १९४४ से आरम्भ होकर ९ फरवरी तक चला। इसी के अन्तर्गत अनेक सम्मेलन हुये। बहुत विशाल आयोजन था। लाखों की संख्या में भक्त पहुंचे थे। इसमें ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद् गुरु श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज, पुरी के शंकराचार्य श्री स्वामी भारती कृष्ण तीर्थ जी महाराज, बौद्ध धर्म के आचार्य, वैष्णव सन्त, जगद् गुरु देवनायकाचार्य जी, परम वीतराग तपस्वी श्री स्वामी रामदेव जी महाराज तथा देश के वरिष्ठ सन्त विद्वान् पधारे थे। इसमें १६०० वैदिक ब्राह्मणों ने भाग लिया। अनेक अनधिकारी ब्राह्मण भी सम्मिलित होना चाहते थे। श्री करपात्री जी महाराज ने उनका वरण नहीं किया। तब उन्होंने कुपित होकर हो हुल्लड़ किया। यज्ञशाला जो गाय के गोबर से लिपी थी। उसको अशुद्ध कर दिया। श्री करपात्री जी उदास होकर माला लेकर बैठ गये। श्री महाराज वहां पहुंचे। उन्होंने कहा, तुम्हारे यहां इतना बड़ा ऐतिहासिक यज्ञ हो रहा है। तुम ब्राह्मण देवता होकर यज्ञ विध्वंस करते हो। अतः तुम्हीं बताओ कि तुम ब्राह्मण हो या राक्षस। वे जगद् गुरु जी से प्रभावित हुये। क्षमा मांगी। यमुना जी की रेती में सात पुरियां बसी थीं। उनके धर्मपुर, धर्म नगर आदि नाम थे। स्वामी जी मिट्टी का करवा रखते थे। अतः लोग करवा बाबा का यज्ञ कहते थे। अपने भाषण में आपने कहा था जैसे किसान थोड़ा अन्न बोकर अधिक पाता है। वैसे भी यज्ञ आदि सत्कर्मों का महाफल मिलता है। इससे वर्षा अन्न आदि होते हैं। यदि यज्ञ बन्द हो जाये तो देश में अति वृष्टि अनावृष्टि आदि होते हैं।

उस समय अंग्रेज़ सरकार थी। उसने देखा देश का लाखों मन अन्न घी शक्कर आदि अग्नि में भस्म कर देंगे। अतः सरकार ने चारों ओर से अन्न घी आदि दिल्ली में आना बन्द कर दिया। याज्ञिक ब्राह्मण दुःखी होकर इनके पास पहुंचे। इन्होंने दीपक जलवा कर कुछ ब्राह्मणों को अन्नपूर्णा मन्त्र तथा स्तोत्र का पाठ करने में लगाया। तब चारों ओर से असंख्य लोग आटा, चावल, दाल, तिल, शुद्ध घी लाने लगे।

बिजली

सरकार ने यज्ञ में बिजली नहीं दी। महाराज जी ने पं. नन्दलाल जी शास्त्री (श्री स्वामी नन्द नन्दनानन्द) को भेजा। अधिकारी ने फटकार कर भगा दिया। ऐसे दो तीन बार हुआ। तब आपने कुछ देर समाधि में रहने के बाद फिर भेजा। अधिकारी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने तुरन्त कनेक्शन दे दिया। यज्ञ शाला का ध्वजारोहण पुरी पीठाधीश्वर श्री भारती कृष्णतीर्थ जी के कर कमलों से हुआ। इस यज्ञ के बाद कानपुर आदि अनेकों स्थानों पर यज्ञ तथा सर्ववेद शाखा सम्मेलन हुये।

सर्व वेद शाखा सम्मेलन

भारत से अवैदिकता को दूर करने के लिये तथा आर्य समाज के संकुचित विचारों का उन्मूलन करने के लिये दोनों महापुरुषों ने निम्नलिखित सर्व वेद शाखा सम्मेलन कराये।

१.	१९५७-५८	कानपुर में, इसकी अध्यक्षता जगद् गुरु श्री कृष्ण बोधाश्रम जी ने की।
२.	१९५९	काशी में, इसकी अध्यक्षता जगद् गुरु शारदापीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी ने की।
३.	१९६० में	प्रयाग में
४.	१९६१	कलकत्ता
५.	१९६२	दिल्ली
६.	१९६३	अकोला
७.	१९६४	अमृतसर अध्यक्षता शारदापीठाधीश्वर श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी ने
८.	१९-११-१९६४	सिहोर (गुर्जरात)
९.	१९६४	अकोला
१०.	१९६४	गंगानगर राजस्थान
११.	१९७२ ई.	हैदराबाद

इन सभी सम्मेलनों में महाराज जी का पूर्ण सहयोग तथा आशीर्वाद रहा।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

पाकिस्तान

जब भारत का विभाजन हो रहा था। तब आपने भविष्यवाणी की थी, कि भारत हमारी मातृ पितृ भूमि है। इसे खण्डित करना महापाप है। खण्डित राष्ट्र में जनता को सुख शान्ति नहीं मिलेगी। देश में अनेक समस्यायें खड़ी होंगी। अतः पाकिस्तान का विरोध करना भारतीयों का प्रथम कर्त्तव्य है। पहले तो लोग अंधेरे में ठोकरे खाते थे किन्तु आज का मानव प्रकाश में ठोकरें खाता है। जितनी अधिक आजकल ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें मिलती हैं, उतनी पहले नहीं थीं। उन सब में कल्याण का मार्ग दिखाया है। परन्तु आश्चर्य है कि आज का मानव ज्ञान रूपी प्रकाश में ठोकरें खा रहा है। वह वाचिक ज्ञानी होने पर भी ब्रह्म मीमांसा या कर्म मीमांसा में न लगकर मांस मीमांसा में लगा हुआ है। अर्थात् शरीर रक्षा की चिन्ता में सदैव लगा है।

ज्योतिष्पीठ पर अभिषेक

इस मठ की स्थापना आचार्य शंकर ने ११ वर्ष की आयु में की। भूकम्प के कारण प्राचीन मठ ध्वस्त हो गया था। केवल नृसिंह मन्दिर आचार्य शंकर तथा त्रोटकाचार्य की गुफायें ही अवशिष्ट बची थीं। मठ की सारी सामग्री नृसिंह मन्दिर में आ गई थी। इस मन्दिर के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी मूर्ति का एक हाथ बहुत कृश है। जब उनका वह हाथ टूट कर गिर जायेगा तब नर नारायण पर्वत आपस में मिल जायेंगे। तब बद्री नारायण की यात्रा दुर्गम हो जायेगी।

यावद् विष्णोः कला तिष्ठेज्ज्योतिः संज्ञे निजालये।
गम्यं स्याद् बदरी क्षेत्रमगम्यं च ततः परम्॥ (कुमार संहिता)

इस मठ में विष्णु की ज्योति होने के कारण इसे ज्योतिर्मठ कहते हैं। इस मन्दिर में प्रतिदिन एक मन आठ सेर चावलों का भोग लगता है।

'गढ़वाल का इतिहास' में कथा आती है कि यहां के वासुदेव नामक एक प्राचीन राजा था। उनका वंशज राजा राज्य करता था। एक दिन यह शिकार खेलने के लिये गये। नृसिंह भगवान् मनुष्य रूप में उनके महल में पधारे। रानी ने पर्याप्त भोजन देकर स्वागत किया।

सन्तुष्ट होकर वे राजा की शय्या पर सो गये। महाराज आखेट से लौटे। अपनी सेज पर लेटा देखकर कुपित होकर तलवार का वार किया। परन्तु उस घाव से रक्त की जगह दूध बहने लगा। राजा चकित तथा चिन्तित हुये। नृसिंह रूप में प्रकट होकर कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूं। इसी लिये तुम्हारे दरबार में आया हूं। तुम्हारे अपराध का यही दण्ड है कि ज्योतिर्भवन छोड़कर कटियार में अपना स्थान बनाओ। मन्दिर की मूर्ति में भी यह चोट का चिन्ह बना रहेगा। जब वह भूमि तथा हार नष्ट हो जायेगा तो तुम्हारे वंश का नाश होगा। यहां की यात्रा का मार्ग बन्द हो जायेगा। कालान्तर में 'धौली घाटी' के तपोवन में भविष्य बद्री की उपासना होगी। **(श्री शंकराचार्य से)**

कालान्तर में पूज्य पाद श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने इस मन्दिर का पुनः निर्माण कराया। उनके ब्रह्मीभूत होने के बाद आचार्य का प्रश्न उठा। जगद् गुरु जी श्री करपात्री स्वामी जी के विद्या, तप, त्याग से विशेष प्रभावित थे। वसीयत में सर्वप्रथम उनका नाम था। उन्होंने कहा कि आप राजनैतिकता छोड़ दें। शंकराचार्य होकर जेल में जाना शोभा नहीं देता है। परन्तु श्री करपात्री जी ने स्वीकार नहीं किया। सुना जाता है कि उनके नाम की वसीयत जला दी गयी। सभी लोगों ने स्वामी करपात्री जी से प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

दूसरे दिन अखिल भारतीय विद्वत् परिषद्, काशी विद्वत् परिषद्, श्री शंकराचार्य शिष्ट मण्डल, भारत धर्म महामण्डल, अखिल भारतीय धर्म संघ, महात्माओं तथा विद्वानों की सभा हुई। करपात्री जी के स्वीकार न करने पर दूसरे के बारे में विचार हुआ। मुझे बांदा वाले वामदेव संस्कृत पाठशाला के सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य पं. दुर्गादत्त जी ने बताया कि श्री करपात्री जी महाराज ने हमारे गुरुदेव दण्डी स्वामी श्री महादेव आश्रम जी को जालन्धर पत्र दिया कि आप इस पद को स्वीकार करें। दोनों ने नरवर में पंडित स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज के पाद पद्मों में वेदान्त पढ़ा था। महाराज श्री ने इन्कार कर दिया। तब सर्वप्रथम श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज का नाम दिया। फिर १० जून १९५३ ई. को नगवा में विदिशा पीठाधीश्वर स्वामी आत्मदेव जी की अध्यक्षता में सभा हुई। उसमें यह निर्णय हुआ कि त्याग, वैराग्य की साक्षात् मूर्ति स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज का अभिषेक किया जाये। फिर सब में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। उस समय आप मेरठ में थे। उनको बिना सूचना दिये काशी बुलाया। परन्तु मार्ग में कानपुर में पता चला कि मुझे शंकराचार्य बनायेंगे, तब वहां

से ही नौ दो ग्यारह हो गये। काशी में बड़ी चिन्ता हुई। सुना जाता है कि शास्त्रार्थ महारथी श्री माधवाचार्य जी को कहीं इनका दर्शन हो गया। वे कई बहाने बनाकर ले आये। सब ने विशेष आग्रह किया। तब आपने १५ शर्तें रखीं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१. मैं मृत्तिका या काष्ठ पात्रों को छोड़कर अन्य सोना चांदी आदि पात्रों का उपयोग नहीं करूंगा।

२. रेशमी वस्त्र धारण नहीं करूंगा।

३. विपक्षियों ने मिलकर श्री स्वामी शान्त्यानन्द सरस्वती जी को इनके विरुद्ध आचार्य पद पर नियुक्त किया था के विरुद्ध केस नहीं लड़ूंगा। अतः धर्म संघ को इसकी चिन्ता करनी चाहिये।

४. मठ की व्यवस्था भी धर्म संघ ही करे। इत्यादि।

श्री स्वामी करपात्री जी तथा सभी ने सब शर्तें स्वीकार कीं। ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी सम्वत् २०१० वि. में प्रातः ६ बजे भगवान् विश्वनाथ जी के मुक्ति मण्डप में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा विधि विधान से अभिषेक हुआ। द्वारका शारदा पीठाधीश्वर जगद् गुरु अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज ने स्वयं उठकर आद्य शंकराचार्य की सोने की मूर्ति से सुशोभित रुद्राक्ष की माला पहनाकर वस्त्र ओढ़ाया तथा तिलक किया। इनके बाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने माल्यार्पण तथा तिलक किया। फिर अन्य महात्माओं ने मालायें तथा वस्त्र दिये। पचास ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों से सम्मान किया। फिर शारदा तथा ज्योतिर्मठों के शंकराचार्यों के चांदी के सिंहासनों पर शोभा यात्रा निकली। शारदा पीठाधीश्वर जी ने कहा—बद्री नारायण में जो मुझे पट मिला था, वहीं मैंने अर्पण किया है। बद्री भगवान् आप पर कृपा करें। बाद में नये जगद् गुरु जी ने कहा—मुझे गद्दी पर बिठाकर जो कार्य सौंपा है वह कैसे पूरा होगा। हम दोनों को सोचना चाहिये। धर्म के कठिन कार्य में मैं अपने मन बुद्धि को लगाऊंगा। आज का मानव पश्चिम की ओर भाग रहा है। उसे यह पता नहीं कि पश्चिम से अन्धकार आता है। पूर्व से प्रकाश आता है। अतः ज्ञान प्रकाश की प्राप्ति के लिये पूर्व की ओर देखना पड़ेगा। जो पूर्व के ज्ञान से कल्याण है, वह पश्चिम के ज्ञान से नहीं। अतः द्विजातियों का गायत्री माता का आश्रय लिये बिना सुधार नहीं हो सकता है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

शंकराचार्य त्रयी का दिव्य सन्देश

सन् १९६० वसन्त पंचमी को जब पुरी के शंकराचार्य ब्रह्मीभूत हो गये तब यह स्थान चार वर्ष तक रिक्त रहा। श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने श्री स्वामी शारदा पीठाधीश्वर अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज को पीठ सौंप दिया था। ब्रह्मीभूत जगद् गुरु जी ने अपने इच्छा पत्र में कई नामं लिखे थे। जिनमें सर्वप्रथम श्री पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी महामहोपाध्याय, २. पं. गोपीनाथ जी महामहोपाध्याय, तथा सातवां नाम पं. चन्द्रशेखर शास्त्री का था। इनका जगन्नाथपुरी में शारदा पीठाधीश्वर के द्वारा संन्यास हुआ। ३ जुलाई सन् १९६४ को दूसरे दिन पट्टाभिषेक हुआ। इसमें चारों मठों का महासम्मेलन था। ज्योतिः, शारदा तथा पुरी के नये जगद् गुरु जी थे। शृंगेरी के शंकराचार्य विशेष कार्यवश नहीं आ पाये। उस समय तीनों शंकराचार्यों के हस्ताक्षरों सहित संस्कृत में संदेश था। जिसका हिन्दी भावार्थ निम्नलिखित है—

"शास्त्रानुष्ठान सब प्रकार से कल्याण का मूल है। भगवत्पाद श्री आद्य शंकराचार्य जी ने जो कार्य किया तथा संक्षेप में बताया। आज के वैज्ञानिक युग में जब हम देखते हैं कि ईसाई लोग अपने धर्म गुरु पोप के सन्देश को बड़ी श्रद्धा के साथ सुनते हैं, तथा प्रचार करते हैं। परन्तु हमारे भारतीय अध्यात्म प्रेमी धर्म गुरुओं के संदेश ग्रहण करने में बहुत पीछे हैं। जगद् गुरुओं के उपदेश की आज बड़ी आवश्यकता है। तीनों आचार्यों ने सम्मिलित रूप से कहा। कि हे भारतीयो! यदि सब प्रकार से उन्नति चाहते हो तो तत्काल सभी संगठित हो जावो। वैदिक धर्म की स्थिति पर विचार करके उसे ऊंचा उठाने का उपाय करो। शास्त्रों का मर्म जानने के लिये संस्कृत का अध्ययन कीजिये। भारतीयता का गौरव सोचिये। सत् सम्प्रदायों का प्रचार कीजिये। सज्जनों को जगाइये। सब के बीच में समरसता दिखाइये। सन्मार्ग को अपने अधीन कीजिये पर मत से द्वेष दूर कीजिये। पाश्चात्यों की अनुकरणात्मक दासता की उपेक्षा कीजिये। धार्मिक स्वराज्य की कामना कीजिये। परमेश्वर को मनाइये। पुरुषार्थ का आश्रय ग्रहण

कीजिये। अपने भावी मंगलमय दिवसों की प्रतीक्षा कीजिये। अधिक कहने से क्या लाभ। साथ-साथ चलिये, साथ-साथ बोलिये। सबके मन को तथा एक दूसरे को जानने का प्रयास करें।"

गोरक्षा के विषय में चारों जगद् गुरुओं का विचार

७ नवम्बर १९६६ ई. गोपाष्टमी के दिन दिल्ली में गोरक्षा के निमित्त विशाल आन्दोलन हुआ था। इसमें भारतीय जनता, हिन्दू, सिक्ख, बौद्ध, आर्य समाज सब एक हो गये थे। पुरी के जगद् गुरु स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज तथा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने ७३ दिन का व्रत किया था। अनशन से पूर्व दिल्ली में यमुना तट पर एक गोष्ठी हुई थी। उसका विषय गोरक्षार्थ प्राणोत्सर्ग था। उसमें दोनों जगद् गुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर तथा गोवर्द्धन पीठाधीश्वर भी उपस्थित थे। दोनों में इस विषय को लेकर वाद-विवाद हुआ। इसकी निर्णायक सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति थी।

अपना पक्ष उपस्थित करते हुये ज्योतिष्पीठाधीश्वर जी ने कहा, कि हम आयु में आपसे बड़े हैं। अतः गोमाता के रक्षार्थ हम पहले अनशन करके प्राण त्यागेंगे।

तब पुरी पीठाधीश्वर जी ने कहा—महाराज ! आप वयोवृद्ध हैं। अतः हमारे रहते आपको बलिदान करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे पश्चात् ही आपका नम्बर आयेगा।

निर्णायक ने कहा—सर्वप्रथम श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज ही अनशन करेंगे।

तब उदास मन से श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी ने कहा—वह मुझसे बाजी जीतकर ले गया।

शिक्षा—जैसे श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी के दोनों पुत्रों में दीवार में चुने जाने की होड़ लगी थी। दोनों आपस में प्रथम चुनने के लिये आग्रह करते थे। वैसे ही इन धर्माचार्यों का उद्बोधक, प्रेरणादायक वार्तालाप सुनकर भारतीयों में भी गोसेवा की भावना होनी चाहिये।

१. उस समय चारों जगद् गुरुओं ने इस प्रकार सिंह गर्जना की थी। सर्वप्रथम पुरी के जगद् गुरु श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने कहा हिन्दुओं को अपनी कायरता का त्याग कर हिन्दू धर्म, सभ्यता, संस्कृति एवं गोमाता की रक्षा के लिये मैदान में आना चाहिये। गोहत्या के महापाप को सहन करने वाला हिन्दू शिव, राम, कृष्ण किसी का भक्त नहीं हो सकता। यदि

वास्तव में हम राम कृष्ण के सच्चे भक्त हैं तो हमें बड़े से बड़ा बलिदान देकर भी हिन्दू संस्कृति तथा गोमाता की रक्षा करनी चाहिये। मैं अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर गोहत्या का कलंक मिटा दूंगा। मेरे साथ यदि एक दो महापुरुषों ने बलिदान दिया तो निश्चय ही यह कलंक मिट कर ही रहेगा। यदि हमारे मरने के बाद भी सरकार के कानों पर जूं न रेंगी तो शासकों का नाम इतिहास में सदा कलंकित हो जायेगा।"

२. शृंगेरी पीठाधीश्वर अनन्त श्री अभिनव विद्या तीर्थ जी महाराज की घोषणा—"वेदों और शास्त्रों के आदेशानुसार आचरण करना यहां और परलोक में सुखों का कारण है। किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुंचाना ही इसका साधन है। अहिंसापूर्वक जीवन कल्याणकारी है। प्राणियों में गौ परोपकारी तथा पूजनीया है। उनकी रक्षा करना परमावश्यक है। आज कल गोबध निरोध के लिये बहु यत्न कर रहे हैं। वे प्रयत्न सफल हों। कानून द्वारा गोहत्या बन्द करनी चाहिये। सरकार तथा विधि विशेषज्ञों को मिलकर निर्णय करना चाहिये कि किस प्रकार कानून बनाया जाये। यदि इस प्रकार सरकार कोटि कोटि भारतीयों का आदर करे और गोवंश के वध पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर पुरी के शंकराचार्य तथा दूसरे महापुरुषों की रक्षा करे। यह उत्तम होगा।"

३. ज्योतिष्पीठाधीश्वर अ. श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज ने कहा "गोरक्षा के प्रश्न पर भारत सरकार की हृदय हीनता से हमें खेद है। पुरी के शंकराचार्य जी ने अपने जीवन की बाज़ी लगा दी है। उनके जीवन को किसी क्षण खतरा हो सकता है। परन्तु गोहत्या अभी तक भारत की भूमि पर जारी है। अतः ऐसी अवस्था में हम भी अपने जीवन की विशेष आवश्यकता अनुभव नहीं करते। अपने शास्त्रों के निर्देशानुसार किसी भी समय अनशन आरम्भ करने का संकल्प कर सकते हैं। सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, परम पिता परमेश्वर भारत सरकार को हमारी पवित्र मातृभूमि से गोहत्या के ज़घन्य पाप को समाप्त करने के लिये पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की सद्बुद्धि प्रदान करें।

४. अ. श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज द्वारिका पीठाधीश्वर का वक्तव्य—"हम स्वामी करपात्री जी के साथ गत २० वर्षों से गोहत्या के कलंक उन्मूलन के लिये प्रयास कर रहे हैं, किन्तु सरकार के कानों पर जूं नहीं रेंग रही है। और वह बराबर हिन्दुओं

की भावना की उपेक्षा कर रही है। प्रत्येक देश में वहां के धर्म गुरु का सम्मान किया जाता है। किन्तु भारत सरकार एक ओर तो पोप का भारी सम्मान करती है और उसके स्वागत के लिये सैंकड़ों गायों की हत्या की जाती है। दूसरी ओर अपने देश के शंकराचार्यों एवं श्री स्वामी करपात्री जी जैसे धर्म नेता के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। यह बड़ी लज्जा की बात है।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे दशमोऽध्यायः ॥१० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

जगद् गुरु जी की दिनचर्या

प्रातः ३ बजे शय्या त्याग, शौच स्नान आदि से निवृत्ति, ३.३५ तक। ३.३५ से ८ बजे तक ध्यान भजन एवं समाधि। सम्पूर्ण गीता, विष्णु सहस्रनाम अन्नपूर्णा आदि स्तोत्रों का पाठ।

८ से ८.३० बजे तक पुनः शौच स्नान आदि।

८.३० से ११ तक पुनः भजन, ध्यान, जप, समाधि आदि।

११ से १२ तक भेंट वार्त्ता, प्रश्नोत्तर आदि।

१२ से १२.३० तक भिक्षा।

१२.३० से २.३० तक विश्राम, ग्रन्थावलोकन आदि।

२.३० से ५ बजे तक कथापुराणादि।

५ से ६ बजे सायं तक शौच स्नान आदि।

६ बजे सायं से ८ बजे तक रात्रि तक ध्यान समाधि

८ बजे सायं से १० बजे तक सत्संग, शास्त्र चर्चा आदि।

१० बजे रात्रि के बाद तकिये के सहारे बैठे बैठे ही ध्यान समाधि में निद्रा लेना।

यह दिनचर्या ६० वर्षों से निरन्तर चलती रही। आपका जीवन वैदिक सनातन धर्म के प्रतीक शिखा सूत्र गो ब्राह्मण, वेद शास्त्र, गीता, गंगा गायत्री, पंच महायज्ञ, बलि वैश्व देव, श्राद्ध तर्पण आदि की रक्षा, प्रचार करते हुये भारतीयों को वास्तविक हिन्दू बनाने के उद्देश्य में ही व्यतीत हुआ।

महाराज श्री परम सिद्ध महात्मा थे। कोई भक्त किसी रोग से पीड़ित हो। उनके पास रोग निवृत्ति की प्रार्थना करने पर उसे मंत्र का अनुष्ठान, गो सेवा, या गंगा स्नान की आज्ञा देते थे। इससे वह स्वस्थ हो जाता था।

महाप्रयाण

जगद् गुरु जी की अवस्था ८१ वर्ष की हो गयी थी। इनकी जन्म कुण्डली के अनुसार ९१ वर्ष की आयु थी। किन्तु इन्होंने अध्यात्म बल पर १० वर्षों के संचित कर्मों को दस दिन में भोग लिया था। एक दिन एक भक्त किसी रोग से विशेष पीड़ित होकर आपके पास आया। रोग मुक्त होने की प्रार्थना की। परम कृपालु गुरु जी ने कहा, अच्छा। भक्त का रोग संकल्प सिद्धि के प्रभाव से स्वयं लेकर उसे रोग मुक्त कर दिया। दस वर्ष के दुःख भोग को १० दिन में भोगा। शरीर छोड़ने से दो तीन महीने पूर्व हर की पौड़ी हरिद्वार में शंकराचार्य भवन की प्रतिष्ठा की। महाराज जी के शिष्य दण्डी स्वामी माधवाश्रम जी महाराज ने अपनी कुटी कण्डाघाट (हिमाचल प्रदेश) ले जाने की प्रार्थना की। आपने उत्तर में कहा—अब हम कहीं नहीं जायेंगे। राम के पास जायेंगे। बहुत भ्रमण कर लिया है। वहीं पर जगद् गुरु गौरव के लेखक पं. कृष्ण प्रसाद शर्मा भी उपस्थित थे। उन्होंने कुटी में पधार कर पवित्र करने के लिये कहा। उत्तर में बोले, अरे जब तक रहेंगे, तभी तो जायेंगे। यह कथा तुम्हें फिर सुनने को नहीं मिलेगी। अन्तिम चातुर्मास्य आपका "पुरानी दिल्ली श्री कृष्ण बोधधाम कोठी नं. ७ में" हुआ था। २७ अगस्त सन् १९७३ को पं. हीरा लाल शास्त्री जी से यति धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ मंगवाये तथा पूछा, देखो चातुर्मास्य किन-किन अवस्थाओं में तोड़ा जा सकता है। देश, ग्राम, नगर, धर्म आदि पर विशेष विपत्ति पड़ने पर अथवा यति के श्रवण, मनन, निदिध्यासन में बाधा पहुंचने पर चातुर्मास्य भंग किया जा सकता है। जगद् गुरु जी के ऊपर इनमें से कोई ऐसी विपत्ति नहीं थी। अतः आपने सब बातों को सुनकर निर्णय किया कि यति गंगा, यमुना आदि किसी भी नदी पर शरीर त्याग सकता है। इसलिये मैं चातुर्मास्य में दिल्ली छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊंगा। उनकी निष्ठा गंगा जी में विशेष थी। वे चातुर्मास्य के बाद काशी जाना चाहते थे। त्रयोदशी के बाद जाने का संकल्प था। मेरठ से अनेक भक्तों के साथ अथवा अकेले श्री पं. श्याम सुन्दर जी वाजपेयी वैद्य नित्य प्रति देखने तथा औषधि देने जाते थे। उन्होंने पूछा—स्वास्थ्य कैसा है। उत्तर में कहा—पेट में भयंकर असहनीय वेदना है। उन्होंने कहा—आप संकल्प सिद्ध महात्मा हैं। आशीर्वाद दें कि मेरी औषधि सफल हो जाये। मुझे

भी यश मिलेगा तथा आपके जीवन की रक्षा हो जायेगी। तब उन्होंने रुष्ट होकर कहा—मृत्युं च नाभिनन्द्येत जीवितं वा कथंचन ॥६० ॥

कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते। नाभिनन्द्येत मरणं नाभिनन्द्येत जीवितम्। कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥६१ ॥

संन्यासी न मृत्यु का समर्थन करे न कभी जीवन का, जब तक आयु समाप्त न हो तब तक समय की प्रतीक्षा करे। जन्म मृत्यु का स्वागत न करे। जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही काल की प्रतीक्षा करे। (नारद परिव्राजकोपनिषद्, तीसरा उपदेश ६०/६१ ॥) वाजपेयी जी मौन हो गये।

उन्होंने कई दिन पूर्व ही औषधि त्याग दी थी। केवल गंगाजल लेते थे। लेटे-लेटे पालथी लगा कर नेत्र बन्द कर ध्यान के द्वारा पीड़ा कम की। सब भक्तों को निश्चय हुआ कि अब शरीर त्याग देंगे। अतः धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज को काशी में, काशी, पुरी, द्वारकापुरी, हरिद्वार आदि स्थानों पर धर्माचार्यों को टेलीफोन, तार द्वारा सूचना दी गयी। उस वर्ष करपात्री जी, पुरी पीठाधीश्वर, श्री स्वामी नन्द नन्दानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी, वाराणसी में श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज कानपुर से, महाराज के प्रथम शिष्य श्री रामाश्रम जी महाराज, श्री माधवाश्रम जी महाराज, श्री स्वामी शिवानन्द जी चूरू से भी लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी सभी बीच में चातुर्मास्य तोड़कर देहली दर्शन के लिये पहुंचे। हरिद्वार से श्री भूमानन्द जी महाराज तथा अनेक महामण्डलेश्वर तथा भक्तों का तांता लगा हुआ था। जिस समय काशी में स्वामी करपात्री जी को सूचना मिली, उस समय श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज धर्म सम्राट् जी से "अद्वैत सिद्धि" पढ़ रहे थे। सूचना पाते ही स्वामी स्वरूपानन्द जी की पीठ ढोककर कहा कि शंकराचार्य बनने के लिये तैयार हो जा। ऐसा हमने सुना है। अन्तिम समय वेद पाठी ब्राह्मण शतरुद्री, गीता तथा विष्णु अनुस्मृति का पाठ कर रहे थे। वह ग्रन्थ गोरखपुर से प्रकाशित था। उसमें ६५वें श्लोक के तीसरे पाद में गलती से 'अर्दयन्तु च मां दुःखान्' इसकी जगह अर्चयन्तु छपा था। महाराज जी ने वहीं टोक दिया। कहा 'अर्चयन्तु' गलत है। 'अर्दयन्तु' होना चाहिये, इसे ठीक कर लो। अन्तिम समय में भी आप को पूर्ण होश था। जब काशी से करपात्री आदि आचार्य पधारे, तब लेटे हुये ही सबका यथोचित सत्कार किया। श्री करपात्री जी ने पूछा—आपका उत्तराधिकारी कौन हो सकता है। लिखित वसीयत में पांच के नाम थे। उनमें पहला नाम प्रथम शिष्य पूज्यपाद श्री रामाश्रम जी महाराज

का था। दूसरा श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज, तीसरा एक ब्राह्मण का, चौथा वेदान्ती, सन्त शरण जी ब्रह्मचारी (वेदान्ती स्वामी) आदि थे। इन नामों पर विचार हुआ। अन्त में उन्होंने श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी का नाम लिया तथा अभिषेक करने की आज्ञा दी। वैदिक मंत्रों से पृथ्वी पर गोमय से लेपन करके कुशासन बिछाया गया। भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी १० सितम्बर १९७३ ई. को सायंकाल ७.३० बजे अपने पार्थिव शरीर को ८१ वर्ष की आयु में तृणवत् त्यागकर ब्रह्मीभूत हुये।

पुष्पाञ्जलि श्रद्धाञ्जलि तथा अन्तिम संस्कार

अन्तिम समय में अनेकों चित्र लिये गये। महाराज की जय जयकार होने लगी। दूसरे दिन ब्राह्म मुहूर्त में पं. श्याम लाल जी के आचार्यत्व में पूज्य पाद श्री रामाश्रम जी महाराज ने वैदिक मंत्रोच्चारण पूर्वक स्नान पूजन किया। श्रद्धाञ्जलि समारोह में सर्वप्रथम पुरी पीठाधीश्वर जी ने, फिर श्री शास्त्री स्वामी, श्री स्वामी भूमानन्द जी तीर्थ, श्री स्वामी शिवानन्द आदि ने पुष्पांजलियां अर्पित कीं। दोपहर के दो बजे दिल्ली में शोभा यात्रा निकाली गयी। सुगन्धित चन्दन पुष्पों की वर्षा हुयी। लाखों लोगों की उपस्थिति थी। पूरे दिल्ली में जुलूस घूम कर स्थान पर आया। हरिद्वार में जल समाधि देने का सबका निश्चय हुआ। मेरठ में दो लाख भक्तों की भीड़ थी। 'मानव कल्याण' के सन्त स्वामी कल्याण देव तथा दण्डी स्वामी भूमानन्द जी ने पहले ही ऋषिकेश में जाकर सभी महात्माओं को सूचित कर दिया था। यह यात्रा दिल्ली कृष्ण बोध धाम से आरम्भ होकर हरिद्वार सप्त सरोवर नील धारा गंगा तट पर पूर्ण हुई। वहां पार्थिव शरीर के स्नान पूजन के अनन्तर धर्माचार्यों तथा श्री रामाश्रम जी के द्वारा अन्तिम संस्कार हुआ। पुरी जगद् गुरु स्वयं मंत्र पढ़ते थे। परन्तु 'यति धर्म निर्णय' तथा यति धर्म से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों में गृहस्थ या ब्रह्मचारी ही यह कर्म कर सकते हैं। संन्यासी संन्यासी को छू नहीं सकता है। ब्राह्मण द्वारा ही संस्कार होना चाहिये।

१३ से २५ सितम्बर तक ब्रह्म लीन जगद् गुरु जी का 'निर्वाण महोत्सव' धूमधाम से मनाया गया। जिसमें पूज्य पाद दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज ने भागवत का सप्ताह किया। नारायण पूजन, बाल्मीकीय रामायण वेदों तथा उपनिषदों का पाठ, आराधना वैदिक ब्राह्मणों द्वारा हुई। २५ सितम्बर को ब्रह्म भोज हुआ। इसमें अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी, स्वामी स्वरूपानन्द जी, श्री विष्णु आश्रम जी, शास्त्री स्वामी, मन्त्री स्वामी(श्री नरोत्तम आश्रम

जी) श्री स्वामी भूमानन्द जी आदि महात्माओं तथा गृहस्थों ने भाग लिया। इससे पूर्व २३ ता. को नयी दिल्ली विज्ञान भवन में श्रद्धाञ्जलियां अर्पित की गयीं।

१. सर्वप्रथम ब्रह्मलीन श्री करपात्री जी महाराज ने श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुये कहा कि भारतीय शास्त्रों की दृष्टि से जगद् गुरु जी उच्च कोटि के त्यागी महात्मा थे। त्याग एवं वैराग्य की मूर्ति थे। उनके अभाव की पूर्ति असम्भव है।

२. सुमेरु पीठाधीश्वर जगद् गुरु स्वामी महेशानन्द सरस्वती जी ने कहा कि उनका जीवन तपोमय था। वे राग द्वेष से रहित जीवन्मुक्त थे। धर्म की साक्षात् मूर्ति थे।

३. पू. पा. जगद् गुरु काम कोटि पीठाधीश्वर श्री जयेन्द्र सरस्वती जी ने कहा जगद् गुरु जी पवित्रात्मा तथा भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे।

४. पू. पा. स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज ने कहा कि उनमें सन्तों के सभी लक्षण विद्यमान थे। सहिष्णुता, सज्जनता, क्षमा, दया आदि की जीती जागती मूर्ति थे। उनका संस्कृत के प्रति प्रेम, ब्राह्मणों के प्रति समादर, शास्त्रों में श्रद्धा, विद्वानों के प्रति स्नेह सद्भाव, शास्त्रीय व्यवस्था उन्हें सर्वमान्य थी। इसके विपरीत सहन नहीं करते थे। उनके अभाव की पूर्ति कठिन है। तपस्या साधना आदि सद्गुण उनमें थे। धर्म में ढील नहीं देते थे। शोक, मोह से मुक्त थे। उनके दिखाये मार्ग पर चलने से हमारा कल्याण होगा।

५. पू. पा. जगद् गुरु अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज ने कहा—ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री शंकराचार्य स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के निर्वाण से हम स्तब्ध रह गये। सनातनी जगत् को अत्यधिक हानि हुयी है।

६. पू. पा. ज. पुरी पीठाधीश्वर श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज ने कहा—पू. पा. जगद् गुरु जी के ब्रह्मलीन होने पर मन में ऐसी वेदना हुई कि चार मास तक हम अस्वस्थ रहे। चिकित्सकों ने परामर्श दिया कि जो मन में भाव दबा रखे हैं उनसे छुटकारा मिले तो स्वस्थ हों। एक अभाव, एक कसक, एक पीड़ा सी हृदय में अनुभव होती है। उनके चरणों में बैठकर, उनसे सम्भाषण करके, उनके दर्शन करके एक अद्भुत शक्ति मिलती थी। हम सत्य कहते हैं कि जब किन्हीं जटिल, गूढ़ प्रश्नों पर बात आकर अटकती थी तो हमारे सामने चलते फिरते पुस्तकालय एवं मूर्तिमान शास्त्र ब्रह्मलीन जगद् गुरु जी थे। उनकी स्मृति हो आती है। (उनको १८ महापुराणों, रामायण, महाभारत आदि में आये सभी स्तोत्र कण्ठस्थ थे) वे बड़े से

बड़े गूढ़ प्रश्नों पर बड़ी सरलता से निर्णय लेकर मार्ग दर्शन करते थे। उनकी सीधी सरल शास्त्र पूत वाणी सदा धर्म प्रेमियों को प्रेरणा देती रहेगी।

७. **श्री निम्बार्काचार्य राधा सर्वेश्वर शरण**[८२०] **देव नायकाचार्य जी महाराज**— निम्बार्क पीठ, सलेमाबाद (राजस्थान), ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के ब्रह्मलीन होने का सम्वाद सुनकर हृदय में समवेदना हुई।

८. अ. श्री नन्द नन्दनानन्द जी सरस्वती—"वे भारत वर्ष के सन्तों के प्रेरणा स्रोत, विद्वानों के मार्ग द्रष्टा एवं संन्यासियों के जीवन प्राण थे। उनकी उपस्थिति ही सब के लिये जीवनवर्द्धक थी। उनका सान्निध्य सफलता की सीढ़ी थी। उन जैसा महात्मा सारे भारत में दिखाई नहीं देता था।

९. अ. श्री स्वामी भूमानन्द तीर्थ जी महाराज—अनन्त श्री विभूषित श्री मज्जगद् गुरु शंकराचार्य जी महाराज के अचानक ब्रह्मलीन हो जाने से सनातन धर्म को अपार क्षति हुई है। मैंने महाराज श्री जी के रोगी होने का समाचार सुना। चातुर्मास्य व्रत चल रहा था। मैं चातुर्मास्य व्रत की मर्यादा को अधिक महत्त्व न देकर उन महापुरुष के पास दिल्ली पहुंचा। मुझ से पांच दिन तक सेवा कराई। मेरा महाराज श्री जी से बहुत पुराना सम्बन्ध था। उनका मुझ पर विशेष स्नेह व कृपा थी। मैं संन्यासी होते हुये भी उनके वियोग से सन्तप्त हूं। उनकी आत्म शान्ति के लिये प्रार्थना करना व्यर्थ है। वे स्वयं जीवन्मुक्त थे। भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे पहले साकार रूप में कृपा करते थे। अब निराकार रूप में हम पर कृपा करते रहें। वे अविस्मरणीय महापुरुष थे।

इन सन्तों के अतिरिक्त श्री स्वामी गुरु चरणदास जी, अनन्त श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज, जैन मुनि, स्वामी भास्करानन्द जी परमहंस, श्री स्वामी विद्यानन्द जी, कल्याण के सम्पादक **पं. श्री राम नारायण दत्त जी पाण्डेय** आदि ने भावभीनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कीं।

मदन मोहन का शब्दार्थ

महाराज जी के माता पिता ने मदन मोहन नाम रखा था। जिसमें मद और मोह दोनों का अभाव हो। वह मदन मोहन है। महाराज श्री वास्तव में मद मोह से रहित महापुरुष थे।

इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

जगद् गुरु जी के उपदेश

आप अपने उपदेशों में स्वधर्म का पालन करते हुये बड़ों को प्रणाम तथा आज्ञा पालन का उपदेश देते थे। प्रत्येक द्विजाति को सर्वप्रथम ब्राह्म मुहूर्त में उठकर जो स्वर चल रहा हो वह हाथ देखकर तीन बार नीचे लिखा मंत्र पढ़ना चाहिये।

कराग्रे बसते लक्ष्मीः कर मध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

फिर तीन बार यह मंत्र पढ़ते हुये पृथ्वी को तीन बार प्रणाम करें।

समुद्र वसने देवि पर्वत स्तन मण्डले।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

फिर स्नान आदि करके शिखाबन्धनपूर्वक यज्ञोपवीत को दाहिनी ओर करके सन्ध्योपासना, गायत्री जप, वलि वैश्वदेव आदि नित्य कर्म करें। बड़ों की आज्ञा के विषय में मनु जी ने मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के ७१, ७२वें श्लोक में कहते हैं।

अभिवादन शीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयु र्विद्या यशोवलम्॥७१॥
व्यत्यस्त पाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणम्॥७२॥

बड़ों को नित्य प्रणाम करने के स्वभाव वाला तथा बड़ों की सेवा करने वालों की आयु, विद्या, यश तथा बल चारों की वृद्धि होती है ॥७१॥ प्रणाम की विधि यह है कि उलटे हाथों से अर्थात् दोनों हाथों को दसों अंगुलियों को धरती पर रखकर हथेलियों को ऊपर करके बायें हाथ से बायां तथा दाहिने हाथ से दाहिना चरण छूना चाहिये।

अपूज्याः यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजा व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जहां पर अपूज्यों (म्लेच्छ आदि) का पूजन होता है तथा पूजनीयों (दण्डी, ब्राह्मण, माता, पिता, गुरुओं) की पूजा नहीं होती। वहां पर अकाल, मृत्यु तथा भय यह तीनों उपद्रव होते हैं।

हमारे देश में इस समय इन बातों का अतिक्रमण हो गया है । इस कारण लोग दुःख पा रहे हैं । ब्राह्मण जब तक संन्यास न ले तब तक माता, पिता, गुरु जन तीनों को प्रणाम करे । संन्यास के बाद यति विद्या गुरु तथा पिता को मानसिक प्रणाम कर सकता है । शरीर से नहीं । परन्तु जन्म देने वाली माता, वेदान्त ग्रन्थों, गुरु तथा ईश्वर तीनों को प्रणाम करें ।

यावदायुस्त्रयो वन्द्याः वेदान्तो, गुरुरीश्वरः ।
आदौ विद्या प्रसिद्ध्यर्थं कृतघ्नत्वापनुत्तये ॥
अद्वैतं त्रिषु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह ।

जीवन पर्यन्त प्रथम ब्रह्म विद्या की प्रसिद्धि अर्थात् मुक्ति के लिये, गुरु तथा ईश्वर की वन्दना कृतघ्नता की निवृत्ति के लिये करे । तीनों लोकों में अद्वैत भावना करे । परन्तु गुरुओं के साथ न करे । माता कैसी भी क्यों न हो वह प्रत्येक संन्यासी तथा जगद् गुरु शंकराचार्यों के लिये भी वन्दनीया है । आद्य शंकराचार्य जी ने कालटी में जाकर माता की वन्दना विधिवत् की थी । अतः कितना भी उच्च कोटि का सन्त क्यों न हो । गुरुओं के पास दास वत् गुरुओं की सेवा में सदैव तत्पर रहे । मनुष्य शरीर मुक्ति के लिये प्राप्त हुआ है । इसको प्राप्त करके श्रुति स्मृति की आज्ञानुसार चलने से स्वयं संसार सागर से तरकर, दूसरों को भी तार देता है । अतः ब्रह्मा मानव शरीर रचकर बहुत प्रसन्न हुये । गीता के १७वें अध्याय में भगवान् ने देवता गुरु, ब्राह्मणों तथा विद्वानों का पूजन शारीरिक तप कहा है । तप से अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान से मुक्ति होती है ।

कलियुग में दुर्व्यस्था

आनर्त्त देश गुजरात में धर्मवर्ण नाम का एक ब्राह्मण था । कलियुग में प्रजा को वर्ण आश्रम से रहित देखकर दुःखी हो चिन्ता करने लगा । इस युग के जीवों की सद्गति कैसे हो । इस चिन्ता से युक्त वे पुष्कर राज में पहुंचे । वहां वेदज्ञ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे । कलियुग की प्रशंसा करते हुये ब्राह्मणों ने कहा, जो जप तप आदि का फल सत्य युग के एक वर्ष में, त्रेता में १ मास में, द्वापर में एक पक्ष में मिलता है, वह कलियुग में एक दिन में प्राप्त होता है । इतने में देवर्षि नारद जी कलियुग का रूप धारण करके आ गये । वे एक हाथ में गुप्तेन्द्रिय तथा दूसरे से जीभ पकड़े थे । उन्मत्त होकर नाच रहे थे तथा उपदेश किया इस युग में जिसने दोनों इन्द्रियों को जीत लिया है । वह साक्षात् विष्णु स्वरूप है । धर्म वर्ण ब्राह्मण इस बात को सुनकर ब्रह्मचारी

के रूप में प्रचार करने लगे। चारों वर्ण वर्णधर्म का त्याग कर मन्मुखी हो गये। शूद्र सेवा त्याग कर संन्यासी हो रहे हैं इत्यादि, और युगों में ब्राह्मण की पहचान, शिखा, यज्ञोपवीत, तिलक, उत्तरीय, दोनों हाथों में पवित्री आदि थीं। किन्तु आज ब्राह्मण इन चिन्हों को छोड़ रहा है। शूद्र ने यह चिह्न धारण कर लिया। गायें बकरी जैसी हो गई हैं। हिन्दू मुसलमानों की कब्रें पूजेंगे। जूये का प्रचार होगा। शास्त्रज्ञ ब्राह्मण का अपमान होगा। वे दरिद्री होंगे। शूद्र जटाजूट होकर सारे शरीर में राख लगाकर उपदेश करेंगे।

तीर्थ यात्रा तथा स्नान विधि

आप कहते थे कि शास्त्र विधि से तीर्थ यात्रा, श्राद्ध, तर्पण आदि करने से नरक में गये पितर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। तीर्थ यात्रा में मांस, मैथुन, जानदार सवारी, छाता, जूता पहन कर यात्रा नहीं करनी चाहिये। एक समय भोजन करें। लड़ाई, परनिन्दा, द्वेष आदि छोड़ दे। घर के सुख का तथा बाल बच्चों का स्मरण न करे। पृथिवी पर सोये। गंगा आदि तीर्थों में स्नान से पूर्व प्रणाम करे। प्रार्थना करें। हे देवि गंगे ! आपके दर्शन से मेरा जीवन सफल हो गया। गंगा आदि नदियां पूजनीय हैं। किसी भी पूजनीय को चरणों से नहीं छूना चाहिये। परन्तु तीर्थों में स्नान करने पर पहले चरणों का स्पर्श होता है। बिना स्पर्श के स्नान हो नहीं सकता। अतः स्नान से पूर्व इन मंत्रों को पढ़ें।

गंगे देवि ! जगद् धात्रि ! पादाभ्यां सलिलं तव।
स्पृशामीत्यपराधं मे प्रसन्ना क्षन्तुमर्हसि॥
स्वर्गारोहण सोपानं त्वदीयमुदकं शुभे।
अतः स्पृशामि पादाभ्यां गंगे देवि नमाम्यहम्॥
त्वत्कर्दमैरतिस्निग्धैः सर्वपापप्रणाशनैः।
मया संलिप्यते गात्रं मातर्मे हर पातकम्॥
विष्णु-पादाब्ज सम्भूते गङ्गे त्रिपथ-गामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याता पापं मे हर जाह्नवि॥
विष्णु पाद प्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
श्रद्धया धर्म सम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते।
अमृतेन महादेवि ! भागीरथि पुनीहि माम्॥

हे देवि गंगे ! हे जगद् धात्री ! मैं आपके जल को चरणों से स्पर्श करता हूं। मेरे इस अपराध को प्रसन्न होकर क्षमा करें। हे शुभे, गंगे, देवि, आपका यह जल स्वर्ग की सीढ़ी है। अतः मैं चरणों से स्पर्श करता हूं। आपको बार-बार प्रणाम है। हे मातः ! आपके अत्यन्त चिकने, पाप नाशक, कीचड़ को मैंने अपने शरीर में लगाया है। मेरे पापों को हरण करें। हे विष्णु के चरण कमल से निकलने वाली त्रिपथगामिनी गंगे ! आपका जल धर्मद्रव के नाम से विख्यात है। हे जाह्नवि ! मेरे पापों का हरण करो। आप विष्णु के चरणों से निकली हैं। विष्णु की प्रिय तथा विष्णु द्वारा पूजित हैं। मेरे जन्म से मृत्यु तक के समस्त पापों से रक्षा कीजिये। हे महादेवि, भागी रथी ! मैंने श्रद्धापूर्वक आपकी अमृतस्वरूपा रज को धारण किया है हे धर्म सम्पूर्णे मुझे पवित्र करो।

उपर्युक्त तीनों श्लोकों को पढ़ते हुये जो गंगा जल में स्नान करता है। वह करोड़ों जन्मों के पापों से निःसन्देह छूट जाता है। जो गंगा जल से पितरों का तर्पण करता है। उसके पितर एक अरब वर्ष तक तृप्त रहते हैं। जो गंगा तट पर पितरों का श्राद्ध करता है, उसके पितर संतुष्ट होकर स्वर्ग में जाते हैं। किसी भी तीर्थ पर जाकर एक दिन निराहार व्रत करके दूसरे दिन भोजन करें। तीर्थों में दातून, कुल्ला, मल, मूत्र आदि का त्याग न करें। नदी गर्भ से बाहर सादे जल से शौचादि क्रिया करें। तीर्थ को अशुद्ध करने वाला पुण्य के बदले पाप का भागी होता है। उसमें शरीर और कपड़े का मैल नहीं छुटाना चाहिये। एक सौ पचास हाथ बरसाती जल से आगे तक गर्भ गृह कहा गया है।

एक बार आपने ब्रह्माण्ड पुराण के आधार पर कथा सुनाते हुये कहा कि "एक दिन शेष भगवान् की एक आंख में दर्द होने लगा। अनेक उपचार करने पर भी पीड़ा दूर नहीं हुई। यहां तक कि धन्वन्तरि तथा अश्विनी कुमारों का उपचार भी निष्फल हुआ। अन्त में भगवान् विष्णु के पास पहुंचे। उन्होंने उनकी सभी आखें बन्द करवा कर दुखती आंख में औषधि डाली। दवा छोड़ते ही तुरन्त व्यथा दूर हो गई। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। तीनों लोकों के चिकित्सक भगवान् के पास पहुंचे। औषधि का नाम पूछा—उन्होंने साधारण औषधि बताया। वैद्यों ने कहा—हमने तो इससे अति उत्तम औषधियों का प्रयोग किया। वे सब निष्फल क्यों हुईं तथा आपकी क्यों सफल हुई। भगवान् ने पूछा—औषधि डालते समय अन्य आंखें खुली थीं, या बन्द थीं। सबने कहा—खुली थीं। हरि मुसकरा कर बोले। यही

त्रुटि थी। औषधि छोड़ते समय रोगी आंख खुली होनी चाहिये और आंखे बन्द रहें, तभी लाभ होता है।

अध्यात्मभाव

महाराज जी ने इसका विश्लेषण करते हुये कहा, शेष भगवान् सम्पूर्ण जीवों के आचार्य हैं। जीव की अन्तःकरण की सहस्त्रों विषयाकार वृत्तियां हैं। वे अन्तर्मुख नहीं होतीं। जीव की यदि ब्रह्माकार वृत्ति (ब्रह्म दृष्टि) दूषित हो गयी है। तो इसको खोलने के लिये अन्य संसाराकार वृत्ति रूपी आंखें बन्द करने पर सद्गुरु रूपी वैद्य द्वारा विशेष साधन पद्धति बताने पर जीव रूपी शेष की ब्रह्म दृष्टि रूपी आंख ठीक हो जाती है। यह इस कथा का सिद्धान्त है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

संस्मरण

एक बार आपके दर्शन के लिये पूर्वाश्रम के पत्नी के भ्राता आये। आप बहुत देर तक उनसे स्नेहपूर्वक वार्त्तालाप करते रहे। उनके जाने के अनन्तर शास्त्रानुसार तीन दिन तक उपवास किया। विशेष आग्रह करने पर भी भिक्षा नहीं ली। कारण पूछने पर बताया कि उनसे मिलने पर पिछले आश्रमं के संस्कार जागृत हो गये थे। वे तपोऽग्नि से भस्म करने चाहिये। जगद् गुरु जी के इस आचरण से वर्तमान संन्यासियों को शिक्षा लेनी चाहिये। हमारे आचार्य ऐसे निर्लिप्त थे। हम संन्यास लेकर घर में रहते हैं। इस वेश में दुनियां को ठगकर घर भरते हैं।

श्री स्वामी करपात्री जी तथा जगद् गुरु का हार्दिक स्नेह था। एक दूसरे का विशेष सम्मान करते थे। धर्मसम्राट् जी कहते थे, भैया हमारे पास तो परचून का हल्का-फुल्का सौदा है, असली तथा मूल्यवान् वस्तु तो हीरे जवाहरात के जौहरी जगद् गुरु जी की दुकान में मिलेगी।

एक बार एक भक्त रोग से पीड़ित श्री महाराज जी के पास पहुंचा। निरोगी होने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा "क्यों रे ! ब्राह्मण होकर तेरे चोटी जनेऊ है। संन्ध्या गायत्री करता है या नहीं। जा भाग यहां से, गंगा स्नान कर आ, ब्राह्मणोचित कर्म करो। सब ठीक हो जाएगा।" उनकी आज्ञानुसार चलने से वह रोगमुक्त हो गया।

एक बार विन्ध्याचल अष्टभुजी देवी में चण्डीयाग तथा सन्त सम्मेलन था। मिर्जापुर से एक ब्राह्मण आया। वह महा निर्धन था। दीनता प्रकट की। उससे बोले, ब्राह्मण कभी दीन नहीं होता। सब ब्राह्मण का ही दिया खाते हैं। उसे ब्राह्मणोचित कर्म में लगाया। निर्धनता दूर हो गयी।

एक दूसरा ब्राह्मण वहीं से आया। उसमें अफीम, भांग, सुलफा; गांजा, तम्बाकू, मांस, मदिरा आदि तेरह व्यसन थे। परन्तु वह सत्यवादी था। उसको फटकार कर कहा—यहां से ही लौट जा। तू सन्त दर्शन का अधिकारी नहीं है। तेरी छाया लेना भी पाप है। वह सन्त प्रेमी तथा सेवी था। फूट-फूट कर रोने लगा। कहा मुझ पर कृपा दृष्टि कर दो। उसके तेरह व्यसन उसी समय छुटवा दिये। उनके आगे प्रतिज्ञा की और जन्म भर फिर उन वस्तुओं को छुवा भी नहीं। ऐसे न जाने कितने पतितों का उद्धार किया होगा।

किसी ने प्रश्न किया, हमारी बुद्धि ज्ञान की बातों को न सुनना, न समझना चाहती है। इस पर उन्होंने कहा, तुम लोग अन्न तो ऐसा खाते हो, जिससे महापतितों की बुद्धि भी विचलित हो जाती है। पानी नलों का पीते हो। घी के नाम पर "कोटोजम" खाते हो। जिसके पेट में यम चला जाए तथा यम उस पर अधिकार कर ले, उसके मन, बुद्धि भला शुद्ध कैसे हो सकती है।

एक बार उनसे किसी ने संसार के सुधार की चर्चा की। उत्तर में आपने कहा, संसार तो भगवान् विष्णु के तीन युगों में अवतार लेने पर भी नहीं सुधरा। इसको सुधारने के लिये—मत्स्य, कूर्म, राम, कृष्ण आदि अवतार लिये। जब तक अवतार रहे, तब तक संसार सीधा होकर सुधरा रहा। उनके तिरोहित होते ही यह कुत्ते की पूंछ की तरह टेढ़ा हो गया। अतः इसकी गति कुत्ते की पूंछ जैसी है।

महानिर्मोही तथा निःस्पृह सन्त (फक्कड़ जगद् गुरु)

श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज आद्य शंकराचार्य जी के समान निर्मोही तथा निःस्पृह थे। एक बार सन् १९६४-६५ में प्रयाग के महाकुम्भ पर्व से पूर्व काशी पहुंचे। वहां पर सुमेरु पीठ का उद्धार तथा शंकराचार्य की चर्चा चली। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री महादेव शास्त्री जी को संन्यास देकर अभिषेक करने का निश्चय हुआ। श्री धर्म सम्राट् जी ने संन्यास दिया। परन्तु नये शंकराचार्य के पास छत्र सिंहासन आदि तुरन्त कैसे प्राप्त हो। उधर कुम्भ अत्यन्त समीप आ चुका था। जब आपको इस बात का पता चला, तो तुरन्त ही बिना किसी को सूचित

किये वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर अपने सिंहासन पर बैठा कर अभिषेक कर दिया। उनका राजोपचारों के प्रति मोह नहीं था। जब दूसरे दिन श्री स्वामी करपात्री जी को पता चला, तो तुरन्त नये सिंहासन आदि की व्यवस्था हुई। उनके लिये धरती तथा सिंहासन सम था।

उनकी पादुकाओं पर जो चढ़ावा चढ़ता था। उसको जो चाहे, ले जाता। कुम्भ जैसे पर्वों में नित्य प्रति हजारों रुपये चढ़ते थे। उसे कई निर्धन ब्राह्मण ले जाते थे। एक बार उनके ड्राइवर ने कहा—सब चढ़ावा तो अनधिकारी ले जाते हैं। गाड़ी में तेल का खर्चा कैसे चलेगा। आपने कहा—जिसको गाड़ी की आवश्यकता हो, वह तेल की चिन्ता करे। मैं पैदल ही भ्रमण करूंगा। तुम अपनी गाड़ी अपने पास रखो। गाड़ी के तेल के खर्चे के लिये मैंने संन्यास नहीं लिया है। इसकी चिन्ता धर्मसंघ करे। अथवा न करें। ड्राइवर सुनकर हक्का-बक्का रह गया। कुछ उत्तर नहीं दे पाया। वास्तव में ऐसे धर्माचार्य अब मिलने अत्यन्त कठिन हैं।

जगद् गुरु जी के शिष्यों के नाम

१. अनन्त श्री भानुपुरापीठाधीश्वर श्री स्वामी रामाश्रम जी महाराज लुधियाना (पंजाब)
२. अनन्त श्री स्वामी जनार्दनाश्रम जी महाराज पूर्वाश्रम (श्री पं. सोमदत्त जी मेरठ)
३. अनन्त श्री स्वामी तत्त्वबोधाश्रम जी महाराज पूर्वनाम (पं. तिरखाराम जी मेरठ)
४. अनन्त श्री स्वामी ब्रह्माश्रम जी महाराज अनूपशहर (ब्रह्मचारी ब्रह्म स्वरूप जी)
५. अनन्त श्री स्वामी चिदानन्दाश्रम जी मध्य प्रदेश (पं. जिले सिंह शर्मा)
६. अनन्त श्री स्वामी रामदीनाश्रम जी वदायूं (पं. रामदीन जी)
७. अनन्त श्री स्वामी रामदीनाश्रम महाराज मेरठ (पं. सुखदेव सहाय)
८. अनन्त श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज वाराणसी वर्तमान, दण्डी आश्रम, नवावगंज—कानपुर) (पं. रामनाथ जी)
९. अनन्त श्री स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज
१०. अनन्त श्री स्वामी भगवदाश्रम जी महाराज बुलन्द शहर
११. अनन्त श्री स्वामी गोपालाश्रम जी महाराज गढ़ मुक्तेश्वर
१२. अनन्त श्री स्वामी गोपालाश्रम जी महाराज वृन्दावन
१३. अनन्त श्री स्वामी ऋषभदेवाश्रम जी महाराज गढ़ मुक्तेश्वर
१४. अनन्त श्री स्वामी मुक्तेश्वराश्रम जी महाराज मेरठ

१५. अनन्त श्री स्वामी शिववोधाश्रम जी महाराज कानपुर
१६. अनन्त श्री स्वामी रामचन्द्राश्रम जी महाराज मेरठ
१७. अनन्त श्री स्वामी गंगेश्वराश्रम जी महाराज मेरठ
१८. अनन्त श्री स्वामी चिन्मयाश्रम जी महाराज मेरठ
१९. अनन्त श्री स्वामी मधुराश्रम जी महाराज मेरठ (पं. मिट्ठन लाल जी)
२०. अनन्त श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज लुधियाना
२१. अनन्त श्री स्वामी गोविन्दाश्रम जी महाराज मेरठ
२२. श्री स्वामी हरिहराश्रम जी महाराज मेरठ
२३. श्री स्वामी देवदेवाश्रम जी महाराज मेरठ

१. ब्रह्मचारी श्री पं. शेर सिंह जी शर्मा ग्राम-बड़ावत, मेरठ
२. ब्रह्मचारी श्री पं. लखीराम शर्मा धनौरा मेरठ
३. ब्रह्मचारी श्री पं. धनीराम शर्मा सुन्धेड़ा मेरठ
४. ब्रह्मचारी श्री पं. शंकर लाल जी शर्मा महेश्वरी मन्दिर हापुड़
५. ब्रह्मचारी श्री पं. गोपाल दास जी, वाराणसी
६. ब्रह्मचारी श्री पं. हरवीर सिंह जी
७. ब्रह्मचारी श्री पं. नारायण जी (दतिया मध्य प्रदेश)
८. ब्रह्मचारी श्री पं. हरदत्त शर्मा बनारस
९. ब्रहमचारी श्री पं. पृथ्वीदेव जी मुजफ्फर नगर

मृत्यु ज्ञान लक्षण

जगद् गुरु जी योग वाशिष्ठ, शिवस्वरोदय तथा अनेक पुराणों के आधार पर मृत्यु का लक्षण बताते थे।

१. जिस मनुष्य को आकाश गंगा, ध्रुव, चन्द्रमा, अपनी छाया तथा अरुन्धती तारा न दिखाई दे। वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीता। जिसे सूर्य तथा अग्नि की किरणें न दिखाई दें। वह ११ मास से अधिक नहीं जीता। जो स्वप्न में वमन, मलमूत्र, सोना चान्दी, देखे वह १० मास जीता है। जिसको प्रेत, पिशाच, गन्धर्व नगर, वृक्ष सुनहरे रंग के दिखायी दें। वह ९ मास जीता

है। जो मोटे से पतला, पतले से अचानक मोटा हो जाए। जिसका स्वभाव बदल जाए। वह ८ मास जीता है। जिसको अपने पैर कोहनी, पंजा आदि के निशान कीचड़ या मिट्टी में बने हुये न दिखाय़ी पड़ें। वह ७ मास जीता है। जिसके सिर पर गीध, कबूतर, कौआ आदि पक्षी बैठ जाएं, या छू जाए वह ६ मास जीता है। जिसको कौआ आदि पक्षी मारने दौड़ें अथवा अपनी छाया में छिद्र दिखाई दें वह चार या पांच मास जीता है। जिसे बिना बादल के दक्षिण में बिजली दिखायी दे। रात्रि में इन्द्र धनुष दीखे वह दो-तीन माह तक जीता है। जिसे घी, तेल, जल, दर्पण आदि में छाया का सिर अलग दिखाई दे वह एक मास जीता है। जिसके शरीर में बकरे या शव के समान दुर्गन्धि आये, उसकी पन्द्रह दिन की आयु होती है। स्नान करते ही जिसके हृदय, पैर, तुरन्त सूख जाएं, वह १० दिन जीता है।

जिसको चलती हुयी हवा मर्म स्थानोंको काटती प्रतीत हो तथा जल ठंडा न लगे, उसकी मृत्यु अत्यन्त निकट है। जिसको लाल, काले कपड़े पहने हुये स्त्री दक्षिण की ओर ले जाती हुई प्रतीत हो, उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। जिसे नंगा संन्यासी हंसता दिखाई दे, उसकी मृत्यु समीप है। जो अपने को पैरों से लेकर सिर तक स्वप्न में कीचड़ तथा समुद्र में देखे, वह उसी दिन मर जाता है। जो स्वप्न में बाल, अग्नि, भस्म, सर्प, सूखी नदी देखे, वह उसी दिन मर जाता है। जिसको काले रंग का भयंकर पुरुष अस्त्र-शस्त्रों या पत्थरों से मारते हों वह तत्काल मरता है। जिसको सूर्योदय के समय गीदड़ी सामने आ जाए उसकी तत्काल मृत्यु है। जिसको भोजन के तुरन्त वाद भूख लग जाए तथा दांत कट कटाये वह शीघ्र मर जाता है। जिसे दीपक, घी, तेल आदि की सुगन्धि नहीं आती। दिन रात भयभीत रहे तथा दूसरों के नेत्रों में अपनी छाया न दिखाई दे वह तुरन्त मर जाता है। जिसे अर्द्धरात्रि में इन्द्र धनुष दिखाई दे। दिन में तारे दिखाई दें तथा सारा शरीर ढीला पड़ जाए। जिसके कान व नाक मुड़ जाए। बायें नेत्र से पानी आये उसकी उसी दिन मृत्यु होती है। जिसका मुख तथा जीभ काली या लाल हो जाए उसकी मृत्यु उपस्थित रहती है। जो ऊंट या गधे पर बैठकर दक्षिण की ओर जाए उसकी उसी दिन मृत्यु होती है।

जिसको दोनों कान बन्द करने पर भीतर का शब्द नहीं सुनाई पड़ता तथा आंखों की ज्योति मन्द पड़ जाती है, वह नहीं जीता है। जो स्वप्न में अपने को गड्ढे में गिरा दे तथा उठ न पाये उसके जीवन का शीघ्र अन्त होता है। जिसे ऊपर दृष्टि करने पर नहीं दीखता अथवा सभी वस्तुयें लाल दीखती हैं या जिसका मुख सूख जाता है। नाभि में गढा हो जाए, तो जानना

चाहिये, उसको दूसरा शरीर मिलेगा। जो स्वप्न में अग्नि या जल में प्रवेश करके फिर नहीं निकलता उसके जीवन का अन्त हो जाता है। जो रात्रि अथवा दिन में पुष्पों-द्वारा मारा जाता है, वह निश्चय ही सप्ताह के भीतर मर जाता है। जो अपने धुले सफेद वस्त्रों या लाल वस्त्रों को काले देखता है, उसे अपनी मृत्यु समीप समझनी चाहिये।

जिसकी जो सदैव प्रार्थना करता है वह यदि उसका निन्दक हो जाए, माता-पिता देवताओं का सत्कार न करे, योगी, ज्ञानी आदि महात्माओं की भक्ति त्याग दे, वह तुरन्त काल को प्राप्त करता है। भगवान् दत्तात्रेय जी काशी नरेश को उपदेश देते हुये कहते हैं कि हे राजन्! तुम्हारी मृत्यु अत्यन्त समीप है। अतः चिन्ता त्याग कर अपनी चल अचल सम्पत्ति को बांट कर निश्चित होकर भजन में मन लगाओ। इन अनिष्टों को देखकर योगी या भक्त को मृत्यु का भय त्याग कर योगवेत्ता गुरु के पास जाकर योगाभ्यास करना चाहिये। अपने मन को प्रातः, मध्याह्न, सायं, अर्द्धरात्रि समयों में साधन में लगाकर समय बिताये। तीनों गुणों से परे रूप चिन्तन करने वाला परमपद प्राप्त करता है। जगद् गुरु जी ने दत्तात्रेय के द्वारा महाराज अलर्क को उपदेश देते हुये कहा हे राजन्! मेरे द्वारा बताये साधन का अभ्यास करने से तुम निश्चय ही विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त करोगे। (जगद् गुरु गौरव से)

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

जगद् गुरु जी के अमोघ चमत्कारी शास्त्रीय अनुष्ठान

१. एक वर्ष पर्यन्त प्रति अमावस्या में तीर्थ में जाकर अमावस्या में पार्वण श्राद्ध करने से अवश्य पुत्र की प्राप्ति होती है।

२. जो निरन्तर "श्री मृत्यु लाङ्गूल स्तोत्रम्" का जप करता है। उसके रोग की निवृत्ति तथा आयु की प्राप्ति होती है। उसे छः महीने पूर्व मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। एक मन्त्र विशेष इस प्रकार से है। **ॐ ऋतं सत्यं परब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिंगलम्। ऊर्ध्व लिंगं विरूपाक्षं विश्व रूपाय नमो नमः।** व्याख्या—**ऋतं नष्टं यदा काले षण्मासेन मरिष्यति। सत्यं तु पंचमे मासे परं ब्रह्म चतुर्थके॥ पुरुषं तु तृतीये वै द्वितीये कृष्णपिंगलम्। ऊद्ध्र्व लिंगं तु मासेन, विरूपाक्षं तदर्द्धके॥ विश्वरूपं तृतीयेऽह्नि सद्यश्चैव नमो नमः॥**

यदि ऋतं शब्द का शुद्ध उच्चारण न हो तो छः मास में, सत्य में पांच मास में, पर ब्रह्म से चौथे में, पुरुष से तीसरे में, कृष्ण पिंगल से दूसरे, ऊर्ध्व लिंग में एक मास, विरूपाक्ष से पन्द्रह दिन, विश्वरूप से तीसरे दिन, नमो नमः शब्द का उच्चारण ठीक न हो तो उसी दिन मृत्यु होती है।

॥ अथ श्री मृत्यु लांगूल स्तोत्रम् ॥

ॐ अस्य श्री मृत्यु लांगूल मंत्रस्य अनुष्टुप् छन्दः, कालाग्नि रुद्राः देवता, वशिष्ट ऋषिर्यमो देवता, मृत्यूपस्थाने विनियोगः।

अथातो योग जिह्वा मधुमतिबाजिन्यामेवाहं काल पुरुषमूर्ध्व लिंगं विरूपाक्ष विश्वरूपाय नमो नमः। वर वृषभाय फेन कपिल रूपाय नमो नमः। पशुपतये नमो नमः। ॐ क्रां क्रीं स्वः। य इदं मृत्यु लांगूलं त्रिसन्ध्यं कीर्तयति स ब्रह्महत्यां व्यपोहति। स्वर्णस्तेयीऽस्तेयी भवति। गुरु दाराभिगम्योऽगमी भवति। सर्वेभ्यः पातकेभ्य, उपपातकेभ्यश्च सद्यो विमुक्तोभवति। सकृज्जपितेन मन्त्रेणानेन गायत्र्यात्वष्ट-सहस्राणि भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मरुद्र लोकमवाप्नोति। यः कश्चिन्न ददाति स श्वेत कुष्ठी कुनखी भवति। यः कश्चिद् दीयमानं न गृह्णति सोऽन्धो बधिरो भवति। मृत्यावुपस्थिते षण्मासादर्वाक् मन्त्रोऽयं विस्फुरति। अस्य मृत्यु लांगूलाख्य महा मंत्रस्य सकृज्जपेन भगवान् धर्मराजो मे प्रीयताम्।

॥ इति श्री मृत्युलांगूल स्तोत्रम् ॥

३. भयंकर कष्टों रोगों की निवृत्ति तथा दीर्घायु की प्राप्ति—इसके लिये ग्यारह हज़ार जप विधि विधान से निम्नलिखित मंत्र का करावे। श्री मृत्युञ्जय मंत्र सहित नीचे लिखा मंत्र का जप करें।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो र्मुक्षीय मामृतात् ॐ॥ ॐ मानस्तोके तनये मानऽ आयुषि मानो गोषु मानो ऽश्वेषुरीरिषः॥ मानो व्वीरान् रुद्र भामिनोव्वधी र्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥

४. माता अन्नपूर्णा स्तोत्रम्—इसका जप सभी प्रकार की दरिद्रता की निवृत्ति के लिये करें।

ध्यानम्— ॐ तप्त स्वर्ण निभः शशांक मुकुटा रत्न प्रभा भासुरा।
नाना रत्न विराजिता त्रिनयना भूमिरमाभ्यां युता॥
दर्वी हाटक भाजनं च दधती रम्योच्चपीनस्तनी।
नृत्यन्तं शिवमाकलय्य मुदिता ध्येयान्नपूर्णेश्वरी॥

पाठ से पूर्व इस मंत्र का जप करें—

मंत्र— ॐ ह्रीं नमो भगवती माहेश्वरी अन्नपूर्णायै स्वाहा।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवती माहेश्वरी अन्नपूर्णेऽस्तुभ्यम्॥

स्तोत्र— ज्ञानदे मोक्षदे मातः ऋद्धि सिद्धि प्रदायिनी।
विश्वेश्वरी महाभागे अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते॥१॥
सर्वदा करुणापाङ्गे अनंग मद हारिणी।
विश्वेश्वरी ....॥२॥
सर्व लोकैक जननी सर्वशोक विनाशिनी।
विश्वेश्वरी ....॥३॥
रोग शोक हरे देवि सर्वदुःख विनाशिनी।
विश्वेश्वरी ....॥४॥
तप्तकाञ्चन वर्णाभे दुकूल यमुनावृते॥
विश्वेश्वरी ....॥५॥
बालचन्द्रधरे देवि अमृतानु वरानने।
विश्वेश्वरी ....॥६॥
अनंग लतिके शान्ते सर्व शक्ति स्वरूपिणी।
विश्वेश्वरी ....॥७॥
शिव प्रिय करे सिद्धे महामोक्ष प्रदायिनी।
विश्वेश्वरी ....॥८॥

॥ इति अन्नपूर्णा स्तोत्रम् ॥

५. सन्तान गोपाल मन्त्र द्वारा पुत्र प्राप्ति के अनन्तर उसकी दीर्घायु के लिये निम्न लिखित श्री कृष्ण स्तुति का पाठ करें।

बालं नवीन शतपत्र विशाल नेत्रं।
बिम्बाधरं सघन मेघ रुचिं मनोज्ञम्॥
मन्दस्मितं मधुर सुन्दर मन्दयानम्।
श्री नन्दनन्दनमहं शिरसा नमामि॥१॥
मञ्जीर नूपुर रणन्नवरत्न काञ्ची।
श्री हारि केशरि नखः प्रतियन्त्र संघम्॥
दृष्ट्वार्तिहारि मुखविन्दु विराजमानं।
वन्दे कलिंद तनुजा तटबाल केलिम्॥२॥
पूर्णेन्दु सुन्दरमुखोपरि कुञ्चिताग्राः।
केशा नवीन घननील निभाः स्फुरन्तः॥
राजन्त आनन शिरः कुमुदस्य यस्य।
नन्दात्मजाय सबलाय नमो नमस्ते॥३॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥४॥
कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोप कुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥५॥

६. विरोधी पक्ष शमनार्थ, कन्या के शीघ्र विवाह के लिये तथा आजीविका की प्राप्ति के लिये—सर्व प्रथम गणपत्यथर्वशीर्ष का सहस्रार्चन कां पुरश्चरण करे तथा श्री दुर्गा सप्तशती का पाठ नीचे लिखा सम्पुट लगाकर करे—

सर्वाबाधा विनिर्मुक्तो धन धान्य सुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥

७. विद्वान् ब्राह्मण बालकों की आजीविका के लिये—हनुमान् जी के मन्दिरों में तीन दिन तक बिना दक्षिणा के सत्य नारायण की कथा सुनाकर दूसरे गांव में जाकर भी हनुमान जी को तीन दिन कथा सुनाने से एक महीने के भीतर ही निश्चित ही सुव्यवस्थित आजीविका प्राप्त हो जाती है। काम की निवृत्ति, वाधाओं तथा पारिवारिक शान्ति के लिये पद्म पुराण के क्रिया योग सार खण्ड में वर्णित पीपल की महिमा का पाठ जप विनियोग सहित करें।

ॐ अस्य श्री पाप शमन स्तोत्रस्य नारद ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्री महा विष्णु देवता कायिक वाचिक मानसिक पाप शमनाय जपे विनियोगः।

८. दुःख निवृत्ति, शान्ति तथा कार्य सिद्धि के लिये—नित्य कर्म के उपरान्त हनुमान जी के समक्ष बैठकर बड़ी वत्ती जलाकर अपने दाहिने हाथ से हनुमान जी के चरण स्पर्श करते हुये रामरक्षा स्तोत्र का पाठ करे। बाद में एक माला प्रतिदिन इस मंत्र का जप करें।

मन्त्र— आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्व सम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्री रामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

९. प्रेत बाधा की निवृत्ति के लिये—कुछ भूत प्रेत, ब्रह्म राक्षस, वेताल ऐसे होते हैं, जो पूर्व जन्म के कर्म काण्डी विद्वान् होते हैं। वे पूरे परिवार को पीड़ित करते हैं। उसकी निवृत्ति के लिये यदि कोई व्यक्ति गायत्रीमन्त्र, हनुमान चालीसा आदि का पाठ करता है तो प्रेत भी पढ़ने लग जाता है।

उसके ऊपर मंत्र आदि का प्रभाव नहीं होता है। उससे छूटने के लिये गीता के ११वें अध्याय क़ा छत्तीसवां श्लोक सिद्ध मंत्र है। इसके पाठ से कोई प्रेत नहीं रहता। **स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या, जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति, सर्वे नमस्यन्ति च सिद्ध संघाः।** नील कण्ठ स्वामी जी ने लिखा है कि—**अयं श्लोको रक्षोघ्नमन्त्रत्वेन मन्त्रशास्त्रे प्रसिद्धः स च नारायण अष्टाक्षर सुदर्शनास्त्र मन्त्राभ्यां सम्पुटितो ज्ञेय इति रहस्यम्।** मन्त्र शास्त्र में यह श्लोक राक्षसों के विनाश करने में प्रसिद्ध है। इसको नारायण अष्टाक्षर मंत्र तथा सुदर्शनास्त्र मंत्र से सम्पुटित करके जप करने से सिद्ध होता है। अतः अनुष्ठान कर्त्ता को दोनों मन्त्रों का सम्पुट लगाना चाहिये। इन मंत्रों में अष्टाक्षर मंत्र तो प्रसिद्ध ही है। सुन्दर्शन मंत्र यह है—

(१) ॐ नमो भगवते सुदर्शनाय सहस्त्राराय हुं फट् स्वाहा (२) ॐ सहस्त्रार हुं फट्—दीक्षा प्रकाश।

१०. सर्व चिन्ता मुक्ति के लिये—रात्रि में सोने से पूर्व हाथ पैर धोकर आसन पर बैठकर गीता के दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक का यथाशक्ति कम से कम १ माला जप अवंश्य करें। चिन्ता से रहित होकर मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

कार्पण्य दोषोपहत स्वभावः, पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

११. शीघ्र वर प्राप्ति का उपाय—अधोलिखित श्लोक का नित्यगौरी पूजन करके जप करने से शीघ्र वर की प्राप्ति होती है।

हे गौरि ! शंकरार्द्धांङ्गि यथा त्वं शंकर प्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्त कामां सुदुर्लभाम्॥

१२. गृहस्थाश्रम में सुख, शान्ति, स्नेह, सौहार्द्र भाव की प्राप्ति के लिये—घर में कलह, मुकद्दमा, दुःस्वप्न आदि उपद्रवों की तथा पुत्र प्राप्ति के लिये जगद् गुरु जी पार्वणश्राद्ध का अनुष्ठान बताते हैं। किसी सुयोग्य विद्वान् से अनुष्ठान कराने से तत्काल शत प्रतिशत फल प्राप्त होता है।

१३. नेत्र चिकित्सा—नेत्रो (चक्षुषो) पनिषत् को प्रकाशित करके १०८ ब्राह्मणों को दे। वे इनका पाठ करें। तो साधारण नेत्र रोग की तो बात ही क्या है। मोतिया बिन्दु तथा अन्धापन भी दूर हो जाता है।

१४. शोक मोह की निवृत्ति के लिये—निम्न श्लोकों का अर्थ सहित पाठ करें। इस पाठ से स्वरूप चिन्तन भी हो सकता है।

नाहं देहो जन्म मृत्युः कुतो मे, नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे।
नाहं चित्तं, शोकोमोहौ कुतो मे, नाहं बुद्धिः बन्धमोक्षौ कुतो मे॥ (कर्ता)
ब्रह्मैवाहं न संसारी नित्य मुक्तो न शोक भाक्।
सच्चिदानन्द रूपोऽहमात्मानमिति भावयेत्॥

अर्थ—मैं शरीर नहीं हूं, तो जन्म-मरण कहां है अर्थात् जन्म-मृत्यु शरीर की होती है। मैं शरीर से रहित हूं। अतः जन्म-मरण नहीं है। भूख प्यास प्राणों को लगती है, मैं प्राण नहीं हूं। अतः मुझ में भूख प्यास नहीं है। शोक मोह चित्त का धर्म है। चित्त मैं नहीं हूं। अतः मुझ में शोक मोह नहीं है। जीव में बन्ध मोक्ष, बुद्धि में अज्ञान द्वारा कल्पित है। मैं बुद्धि नहीं, अतः मुझ में बन्ध मोक्ष नहीं है। मैं नित्य मुक्त, ब्रह्म हूं। जन्मने मरने वाला संसारी नहीं। अतः शोकादिका भागी नहीं हूं। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप हूं। अपने मन में ऐसी भावना करें।

१५. वाल्मीकीय रामयणस्थ सुन्दर काण्ड का पाठ नियमपूर्वक हनुमान जी को सुनाने से मुकद्दमें में जीत, राज दरबार में सम्मान, भयानक कष्टों से रक्षा होती है। अतः जगद् गुरु जी परम्परा प्राप्त इसकी विधि बताते थे।

प्रथमे पंच पाठ्याः स्युर्दश पाठ्याः द्वितीयके।
तृतीये पंच, षट् तुर्ये सप्त सर्गास्तु पंचमे॥
षष्ठके चाष्ट सर्गाःस्युः सप्तमे द्वादशैव तु।
अष्टमे चाष्ट सर्गाःस्युः नवमेऽह्नि समापयेत्॥
निवेदयेच्छर्करान्नं घृताक्तं प्रथमे दिने।
अपूपान् पायसं चापि द्वितीये विनिवेदयेत्॥
तृतीये तु तिलान्नं स्याच्चतुर्थे शष्कुलीद्वयम्।
दध्यन्नं पंचमे दद्यात् षष्ठे दद्यात्तु मोदकान्॥
नानाविध फलान्येव दद्याद् घस्त्रे तु सप्तमे।
सूपान्नमष्टमे दद्यान्नवमे ससितं पयः॥
विधिरेष महान् प्रोक्तो नवभि र्दिवसैर्कृतः।
विभीषणाभय करौ द्वौ सर्गावन्तिमे पठेत्॥
रावणेः कुम्भकर्णस्य रावणस्य वधाश्रयम्।
ततः सर्ग त्रयं पाठ्यं ततो रामाभिषेचनम्॥

सुन्दर काण्ड के पाठ में नीचे लिखे सम्पुटों में यथेष्ट सम्पुट लगाकर पाठ करने से विशेष सिद्धि प्राप्त होती है।

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महावलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभि पालितः॥
दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
नरावण सहस्त्रं मे युद्धे प्रति बलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्त्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

अर्थ—वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में ६८ सर्ग हैं। नौ दिनों में नवाह पाठ करें। पहले दिन पांच सर्ग, दूसरे दिन १०, तीसरे दिन ५, चौथे दिन ६, पांचवें दिन ७, छठे दिन ८, सातवें दिन १२, आठवें दिन ८, शेष ७ सर्गों का पाठ नवें दिन करके काण्ड पूर्ण करें।

पहले दिन घी शक्कर मिश्रित अन्न निवेदित करें, दूसरे दिन खीर पुवा, तीसरे तीन तिल अन्न, निवेदित करे। अर्थात् चावल में लौकी, मट्ठा, नमक, हल्दी डालकर चतुर्थांश तिल मिलाकर तैयार करें। चौथे दिन पूर्ण पुवा, रोट या जलेवी आदि अर्पण करे। पांचवें दिन दही में मीठा चावल, नमक, हल्दी आदि से वघार कर तैयार करें। छठे दिन लड्डू, सातवें दिन अनेक प्रकार के फल, आठवें दिन दालभात, नवमें दिन-मिश्री मिला दूध अर्पण करें। नौ दिन की यह विधि कही गयी है। सुन्दर काण्ड के अन्तिम दिन अन्त में युद्ध काण्ड के विभीषण को भयरहित करने वाले दो सर्गों का (६७, ६८ सर्ग) मेघनाद, कुम्भकरण तथा रावण के वध से सम्बन्धित सर्गों (९०, १०८) का तथा रामाभिषेक (१२८ सर्ग) का पाठ करें।

अपनी गतिमति के अनुसार पूज्यपाद अनन्त श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी कृष्ण-बोधाश्रम जी महाराज का जीवन चरित्र 'जगद् गुरु गौरव', 'ज्योतिष्पीठ परिचय' श्री सनातन धर्मालोक तथा पूर्व आचार्यों से जैसा प्राप्त हुआ, लिखा है। इसका विस्तार पूर्वोक्त ग्रन्थों में देखें।

पद्भ्यां व्रजामि च भजामि च साधु दोर्भ्यां।
नित्यं स्मरामि मनसा वचसा स्तवीमि॥
श्रीभिः समृद्धमनिताभिरुपैमि कृष्ण।
बोधाश्रमं यति पतिं प्रणतेन मूर्द्ध्ना॥
पग बढ़ें उनके निकट नित कर करें उनकी चाकरी।
मन में उन्हीं की स्मृति रहे, रसना रहे स्तुति से भरी॥
भव भीति हन्त अनन्त महिमावन्त सन्त जगद् गुरु।
श्री कृष्ण बोध यतीन्द्र हरि के चरण निज मस्तक धरुं॥

महाराज श्री के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर उनकी अन्तिम इच्छानुसार तथा धर्म सम्राट् पूज्य करपात्री जी महाराज, शारदा पीठाधीश्वर, पुरी पीठाधीश्वर, काशी विद्वत्परिषद्, अखिल भारतीय धर्म महामण्डल, अखिल भारतीय धर्म संघ, सनातन धर्म सभा, धर्म संघ, शिक्षा मण्डल दुर्गा कुण्ड काशी आदि की सम्मति से दिल्ली में ७-१२-१९७३ ई. को पूज्यपाद

शारदापीठाधीश्वर श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी की आज्ञा से उनके एक मात्र शिष्य गोवर्द्धन पीठाधीश्वर श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी के कर कमलों से ज्योतिष्पीठ पर विधिवत् अनन्त श्री स्वामी स्वरुपानन्द जी सरस्वती महाराज का अभिषेक हुआ। इसमें शृंगेरी जगद् गुरु जी के प्रतिनिधि ने स्वयं पट्ट वस्त्र ओढ़ाया। उसमें तत्कालीन राष्ट्रपति बाराह वेंकटगिरि तथा उपराष्ट्रपति श्री पं. गोपाल स्वरूप पाठक जी ने भी अभिनन्दन किया। उस समय महाराज जी के दिल्ली निवास कोठी नं. ७ श्री कृष्णबोध धाम के मार्ग का जो पहले 'मेट काफ रोड' नाम था। यह नाम बदल कर 'श्री शंकराचार्य मार्ग' घोषित किया। आपका जीवन चरित्र द्वारकामठ की परम्परा में लिखा जा चुका है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे षष्ठपरिच्छेदे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

अ० श्री शान्तानन्द सरस्वती जी (विपक्षीय शंकराचार्य) श्री विष्णु देवानन्द जी, श्री वासुदेवानन्द श्री ओम प्रकाशानन्द (जगद् गुरु ज्योतिष्पीठ)

यद्यपि 'महानुशासनम्' तथा 'मठाम्नाय सेतु' के अनुसार महाराज श्री जी ही योग्य शंकराचार्य थे। परन्तु विपक्षियों ने पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत के अनुसार पूज्य अ. श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज को इस पद पर अभिषिक्त किया। आप स्वभाव से शान्त हैं। प्रयागराज श्री शंकराचार्य मठ अलोपी बाग में अधिक रहते थे। आपने प्रयाग तथा ज्योतिर्मठ की महती उन्नति की। इनका जीवन चरित्र प्रयास करने पर भी प्राप्त न होने के कारण लिखना असम्भव है। आगरा 'मनो कामेश्वर मन्दिर' के वेदान्त भवन में आपका प्रवचन उदासीन महात्मा प्रज्ञा चक्षु गंगेश्वरानन्द जी की जयन्ती में हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व आपने अपने को वृद्ध तथा अस्वस्थ देखकर अपने छोटे गुरु भाई अ. श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज का अभिषेक करके प्रयाग राज गंगा तट बाँध पर भजन साधन करते हुए निवास करने लगे। अभिषेक से पूर्व आप (विष्णुदेवानन्द जी) इस मठ की देख-रेख पूरी तत्परता तथा सच्ची लगन से करते रहे। इनका स्वास्थ्य भी दिन पर दिन गिरता जाता था। कुछ वर्ष पूर्व श्री विष्णुदेवानन्द भी ब्रह्मीभूत हो गये। तब उनके स्थान पर वरिष्ठ

शंकराचार्य जी ने अपने सुयोग्य शिष्य अनन्त श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी को बिठाया तथा आप इस समय काशी में स्वरूप चिन्तन करते हुये जन कल्याण करते हैं, दो वर्ष पूर्व ब्रह्मीभूत हो गये। इन्होंने एक ब्रह्मचारी को संन्यास देकर काशी में सुमेरु मठ में शंकराचार्य पद पर अभिषिक्त किया। इनका योगपट्ट अ. श्री स्वामी ओम् प्रकाशानन्द सरस्वती रखा। श्री स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के और भी अनेक शिष्य हैं। दुर्भाग्यवशात् एक ही मठ के दो शंकराचार्य तो पहले ही थे। २७-११-९३ को प्रातः ७ बजे श्री विश्वनाथ मन्दिर मीरघाट में अनन्त श्री पूज्य पाद वरिष्ठ पुरी शंकराचार्य स्वामी निरंजन देवं तीर्थ जी, अनन्त श्री स्वामी विमलानन्द तीर्थ जी, तथा अखिल भारतवर्षीय धर्म संघ के समर्थन से स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी के विद्वान्, त्यागी, तपस्वी शिष्य स्वामी माधवाश्रम जी महाराज को अभिषिक्त किया। अतः इस समय ज्योतिर्मठ पर तीन शंकराचार्य हैं। तीनों में रस्साकशी चल रही है। यह हमारे देश तथा धर्म का दुर्भाग्य है।

८२६ अनन्त श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज

इनका जन्म हिमाचल प्रदेश में कण्डाघाट के समीप एक ग्राम में हुआ था। आरम्भ में हिन्दी, अंग्रेज़ी, संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। कुछ काल गृहस्थ रहकर विरक्त हुये। पूज्य पाद जगद् गुरु श्री कृष्ण बोधाश्रम जी की शरण में आये। उन्होंने सन् १९६४ में संन्यास की दीक्षा दी। भागवत् पुराण की कथा अधिक सुनाने के कारण शुकदेव की उपाधि प्राप्त हुई। आपने संस्कृत, गौ तथा निर्धनों की विशेष सहायता की तथा कर रहे हैं। दिल्ली, हरिद्वार, लुधियाना, कण्डाघाट आदि अनेक स्थानों पर आपके द्वारा खोली हुई संस्कृत पाठशालायें तथा गोशालायें चल रही हैं। गुरु आज्ञानुसार आप वर्णाश्रम धर्म के पालक तथा उपदेशक हैं। जब पुरी के जगद् गुरु श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज के कार दुर्घटना से चोट आयी। तो निरंतर कार, हवाई जहाज़ या रेल द्वारा पुरी जाकर छोटी से छोटी सेवा भी पुत्र या दास वत् की। आप जैसा अथक सनातन धर्मका सेवक मिलना कठिन है। श्री स्वामी विमलानन्द जी महाराज के साथ आपकी घनिष्ठ मित्रता है। जैसा कृष्ण बोधाश्रम जी तथा करपात्री जी में स्नेह था। वैसा ही इन दोनों में है। अभी हाल में ही आपने 'कोटि चण्डी महायाग' विस्तार से दिल्ली में किया था। जिसमें ७०० ब्राह्मण सम्मिलित थे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मीभूत जगद् गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य

महाराज श्री जगद् गुरु ब्रह्मानन्द जी महाराज जी के अनेक संन्यासी शिष्य थे। जिनमें से प्रधान शिष्य निम्न प्रकार हैं—

१. ब्र. भू. पूज्य पाद धर्म सम्राट् अनन्त श्री हरिहरानन्द जी सरस्वती महाराज (श्री करपात्री स्वामी)

२. ब्र. भू. अ. श्री स्वामी महादेवानन्द सरस्वती जी महाराज (शास्त्री स्वामी)

३. ब्र. भू. अ. श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज वृन्दावन

४. ब्र. भू. अ. श्री स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज प्रयाग

५. ब्रह्मीभूत श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती जी महाराज प्रयाग

६. वर्तमान श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती जी महाराज शारदामठ द्वारका

७. ब्रह्मीभूत अनन्त श्री स्वामी परमानन्द जी सरस्वती महाराज दिल्ली

इनमें से श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज उनके नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। श्री स्वामी जी के निजी सचिव श्री महेशयोगी जी पर स्वामी जी की विशेष कृपा थी। इनके देश-विदेश में अनेक आश्रम हैं। संसार के धनियों में इनकी भी गणना होती है। क्रमानुसार इन शिष्यों का जीवन वृत्त दिया जाता है।

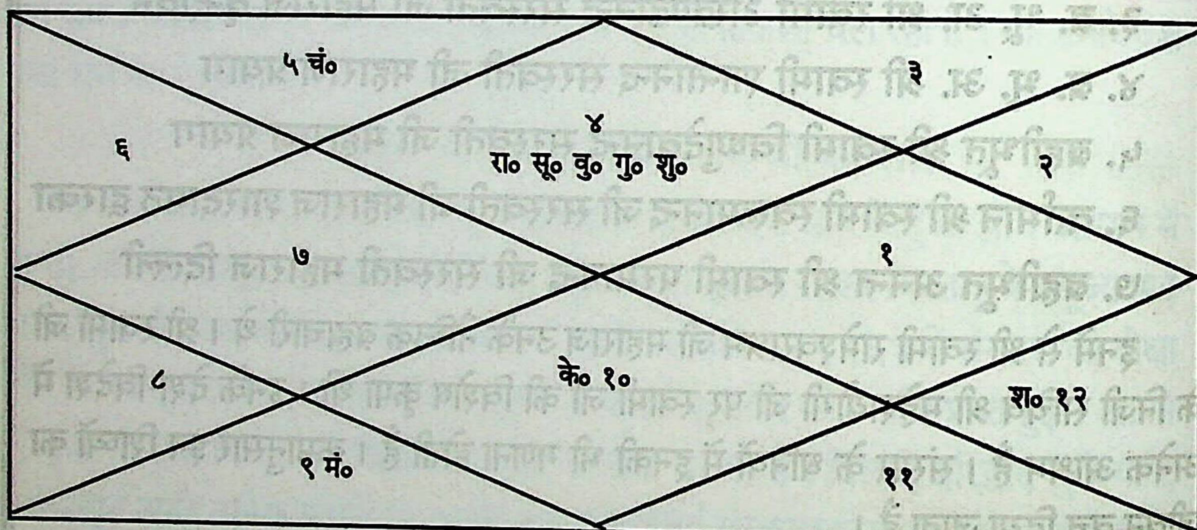
धर्म सम्राट् अनन्त श्री स्वामी करपात्री जी महाराज

नक्षत्रों में चन्द्रमा, नदियों में गंगा, वेदों में सामवेद, तीर्थों में पुष्कर राज के समान श्रीकरपात्री जी महाराज श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के देश-विदेश प्रख्यात शिष्य थे। इनके भाषण, लेखन तथा शास्त्रार्थ पद्धति अभूतपूर्व थी। अतः आपको "अभिनव शंकर" भी कहते थे। मेरे विचार से श्री मद् भागवत् पुराण के पंचम तथा एकादश स्कन्ध में भगवान् ऋषभ देव के नौ योगेश्वर पुत्रों में, जिन्होंने महाराज निमिको ज्ञानोपदेश किया था। यह नौ योगेश्वर वातरशना अर्थात् दिगम्बर हैं। इनमें से एक कर भाजन ऋषि थे। उन्होंने ही भगवत् प्रेरणा प्राप्त करके कलिकाल के जीवों को परम्पराप्राप्त वेदादि शास्त्रों का ज्ञानोपदेश तथा धर्म, भक्ति का प्रचार करने के लिये कलियुग में श्री स्वामी करपात्री जी के रूप में अवतरित हुये थे।

पूज्य पाद श्री करपात्री जी महाराज की जन्म पत्रिका

संवत् १९६४ वि. श्रावण शुक्ल द्वितीयायां ॥२० ॥०६ ॥ रविवारे पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रे ॥५८ ॥१२ ॥ परिघ योगे ॥२० ॥१२ ॥ गर करणे ॥ कर्क लग्ने इष्टम्५८ ॥०८ ॥ केषांचित् मते इष्टम् ॥५७ ॥०७ ॥ तुलांशे । पूर्वाफाल्गुनी चतुर्थ चरणे । भयातम् ६० ॥२९ भभोगः ६१ ॥४७ जन्म लग्नम् ॥०३ ॥११ ॥१५ ॥ तत्समये श्री पं. अमानराम शर्मात्मज श्री राम निधि ओझा गृहे श्रीमती शिवरानी देव्याः दक्षिण कुक्षौ पुत्रस्य श्री करपात्री जी महोदयस्य जनिरभूत ॥

॥ जनुस्तनुः ॥



॥ग्रह स्पष्टाः ॥

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
३	४	८	३	३	३	१	२	८
२५	२१	१४	०९	५	२३	२	२९	१९
३०	२०	२७	४५	२३	२०	१५	५६	५९

विक्रमी सं. १९६४ श्रावण शुक्ल द्वितीया रविवार सन् १९०७ ई. जिला प्रताप गढ़ (उ. प्र.) भटनी ग्राम में सरयू पारीण ब्राह्मण कुल में जन्म लिया । पिता का नाम श्री पं. रामनिधि ओझा तथा माता का नाम श्रीमती शिवरानी था । आप तीन भाई थे । ज्येष्ठ का नाम श्री हरिहर प्रसाद, मंझले श्री हरिशंकर, छोटे श्री हर नारायण थे । इनके पितामह श्री पं. चण्डी प्रसाद जी

के सुपुत्र पं. अमानराम जी ज़िला गोरखपुर के ओझोली ग्राम पो. बरहलगंज से यहां आये थे। काला कांकर के महाराज इनके पितामह को यहां लाये थे। माता-पिता विशुद्ध सनातनी शिव तथा राम भक्त थे। स्वामी जी के मध्यम भ्राता श्री हरिशंकर जी तथा उनके पुत्र श्री शिव हर्ष जी उसी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। ग्राम में श्री महाराज जी की जयन्ती धूमधाम से मनायी जाती है। बाल्यावस्था में आपने संस्कृत पढ़ने का निश्चय किया। पांच वर्ष की आयु में ही इन्हें गलबन्ध (हकलापन) का रोग था। पिता जी को चिन्ता हुई। जन्म पत्री लेकर एक सुयोग्य ज्योतिषी के पास पहुंचे तथा भविष्य पूछा। पंडित जी के उत्तर देने के पूर्व ही इन्होंने पंडित जी से कहा "बाबा हम तो बाबा बनेंगे।" तब किसी को क्या पता था, कि यह संसार का महाविरक्त बाबा होगा।

ग्राम में ही प्रारम्भिक पाठशाला थी। उसमें सीधे ४-९-१९१८ ई. को तीसरी कक्षा में प्रवेश लिया। इस पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था। वहां से आप संस्कृत पढ़ने के लिये निकट के कर्पूरी ग्राम की संस्कृत पाठशाला में श्री पं. नागेशमिश्र जी की सेवा करते हुये अध्ययन करने लगे। घर में रहते हुए इनका मन नहीं लगता था। बाल्यावस्था में ही वैराग्य के भाव जगे। सबसे छोटे होने के कारण पिता जी का विशेष मोह था। कई बार घर से भागे, वे पकड़कर लाते थे।

विवाह तथा गृह त्याग

नौ वर्ष की अवस्था में ही पिता ने इनको परम उदासीन देखकर विवाह करने का निश्चय किया। उन दिनों पांच सात वर्ष की आयु में ही कुलीन बालकों का विवाह हो जाता था। लड़की वालों का तांता लगा रहता था। अन्त में सन् १९१६ ई. में ज़िला प्रताप गढ़ के ग्राम ख़ण्डवा पो. ढिंगवस में श्री पं. राम सुचित जी की पुत्री महादेवी जी से विबाह हुआ। विवाहोपरान्त भी इनका चित्त उदास ही रहा। एक दिन रात्रि में लोटाडोर लेकर दबे पैर निकल गये। पिता जी ढूंढ कर ले आये। कहा—कम से कम तेरे एक सन्तान तो हो जाए। तब गृह त्याग करना ठीक होगा। वे घर में भी पूजन भजन सद्ग्रन्थों के अध्ययन में ही समय लगाते थे। इन्होंने गांव में दो भागवत् के सप्ताह किये। तीसरा सप्ताह ग्राम के समीप चारिहन पुरवा में शिव कुमारी के यहां किया। गंगातट पर एक पाकड़ के पेड़ के नीचे भजन करते थे। इनको आज-कल गौरी शंकर की छोइयां कहते हैं।

कुछ समय बाद एक कन्या का जन्म हुआ। इनको घर की दीवारें तथा सामग्री फाड़ खाने लगी। एक एक क्षण युग के समान बीतता था। आपका मन पिंजरे में बन्द पक्षी के समान फड़-फड़ाता था। पुत्री का जन्म होते ही १९ वर्ष की आयु में वे घर से जाने लगे। पिता पुत्र में वाद विवाद हुआ। इन्होंने कहा—सन्तान उत्पत्ति तक आपको वचन दिया था। वह पूरा हो गया। अब आज्ञा दें। प्रणाम करके माता से आज्ञा लेने लगे। माता रोने धोने लगी। उनसे कहा—कि तुम धर्म मार्ग में बाधक क्यों बनती हो। उन्हें भी सन्तुष्ट किया। परन्तु कोने में नवजात बालिका को गोद में लिये हुये गर्दन झुकाये अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त धर्म पत्नी मौन खड़ी थी। उसने मौन भाषा में सब कुछ कह दिया। किन्तु वह महा विरक्त योगी उस मोह बन्धन में नहीं बंधे। उनकी दृष्टि में माता तथा स्त्री एक रूप में प्रकाशित थीं। पत्नी ने भी विवश होकर मौन स्वीकृति दी। सं. १९८३ वि. सन् १९२६ ई. में १९ वर्ष की आयु में पूरे परिवार को रोता विलखता छोड़ कर माता-पिता को प्रणाम करके बालक हर नारायण सदा के लिये घर से चले गये। लौटकर फिर जीवन भर नहीं आये। इनके जाने के बाद धर्मपत्नी तथा उसके सास-ससुर ने उस बालिका का भरण-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा देकर बड़ा किया। बालिका का विवाह दौरा ग्राम के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में किया। पुत्री का नाम सुश्री भगवती देवी था तथा पति का नाम श्री महादेव जी तिवारी था। इनके पिता का नाम श्री रविरत्न तिवारी था। बाद में श्री महादेव तिवारी ननिहाल खण्डवा में चले गये। पुत्री सपरिवार वहीं रहती है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

संन्यास तथा दण्ड ग्रहण

गृह त्याग के अनन्तर श्री हरनारायण जी विन्ध्यवासिनी में पहुंचे। प्रयाग से आगे मध्य प्रदेश के वीर सिंह पुर ग्राम में एक विशाल बट वृक्ष के नीचे एक टांट की कोपीन लगाये समाधिस्थ सन्त को देखा। उनका दर्शन करते हुये युवक रुका। सश्रद्ध प्रणाम किया। नेत्र खोलकर स्वामी जी ने आशीर्वाद दिया। पूछा—कौन हो? यहां कैसे आये हो? क्या चाहते हो? युवक ने कहा। मैं संसार से विरक्त होकर संन्यास दीक्षा चाहता हूं। मुझे मार्ग दिखायें। गुरु जी ने सारे शरीर पर दृष्टि डालते हुये कहा। अभी तुम नरवर में जाकर मेरे अभिन्न मित्र

षड्दर्शनाचार्य अनन्त श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी के चरणों में बैठकर अध्ययन करो। तुम पर सरस्वती की विशेष कृपा होगी। वही स्वामी कालान्तर में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती हुये। श्री हर नारायण जी ने उनसे ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली। हरिहर चैतन्य गुरु जी ने योग पट्ट दिया। वहां से गुरु जी को प्रणाम कर एक लंगोटी, गांती लगाये हुये जनपद बुलन्द शहर में गंगातट पर साङ्गवेद विद्यालय नरवर में पहुंचे। वहां पर प्राचीन परम्परानुसार नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री पं. जीवन दत्त जी महाराज की अध्यक्षता में यह विद्यालय चलता था। वहां वटु समुदाय सस्वर वेद पाठ करते थे। कहीं व्याकरण के कठिन सूत्रों की व्याख्या होती थी, तो कहीं वैदिक मंत्रों से हवन की पवित्र गन्ध निकलती थी। ब्रह्मचारी जी को प्रणाम करके नवीन साधक ने अपना मनोभाव व्यक्त किया। सं. १९८३ वि. में श्री हरिहर चैतन्य जी ने अध्ययन आरम्भ किया। उस समय वहां के प्रधानाचार्य श्री रामाज्ञा चतुर्वेदी जी थे। चार वर्ष में होने वाले व्याकरण का अध्ययन इन्होंने ग्यारह मास में किया। उस समय सहायक अध्यापक श्री पाठक जी थे। फिर तेरह मास में वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन षड्दर्शनाचार्य दण्डी स्वामी श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज के चरणों में बैठकर किया। इनके सहपाठियों में हमारे गुरुदेव अ. श्री महादेवाश्रम जी महाराज, स्वामी सोमेश्वराश्रम जी महाराज श्री स्वामी आत्मदेव जी महाराज थे। इनके एक साथी श्री देवकी नन्दन जी थे। पं. स्वामी जी के नाम से श्री विश्वेश्वराश्रम जी प्रसिद्ध थे। हरिहर चैतन्य जी ने इन्हीं को वास्तव में गुरु जी के रूप में वरण किया। वे अहर्निश गुरु सेवा में तत्पर रहते थे। काशी के प्रसिद्ध सन्त श्री अच्युत मुनि जी गंगा में नाव में रहते थे। दोनों में भागवत तथा वेदान्त पर विचार होता था। एकान्त में हरिहर ब्रह्मचारी रामायण पाठ में रोने लग जाते थे। राम को पुकारते थे। अन्त में शान्त होकर हनुमान गढ़ी के पते से अयोध्या के लिये पत्र लिखते थे। उस पत्र को गंगा जी में या डाक द्वारा भेजते थे। जिसमें राम दर्शन के लिये प्रार्थना होती थी। आरम्भ में आपकी स्मरण शक्ति कमजोर थी। बाद में सरस्वती की विशेष आराधना करने पर भगवती की कृपा हुयी। एक बार किसी ग्रन्थ को देखकर जन्म पर्यन्त नहीं भूलते थे।

कुछ काल तक कक्षा में बिना पुस्तक ही कई महीनों तक पढ़ते रहे। एक दिन विद्यार्थियों ने अध्यापक से कहा। बिना पुस्तक के यह क्या पढ़ता होगा। गुरु जी के पूछने पर आद्योपान्त्य चार महीने का पाठ पूरा जवानी सुना दिया। पाठशाला के अनन्तर वहां से दूर गंगातट पर फूस की झोंपड़ी में रहते थे। भिक्षा नरौरा ग्राम से लाते थे।

तपस्या

आप अध्ययन काल में पाठशाला से छुट्टी होने के बाद गंगातट पर झोंपड़ी से अत्यन्त दूर निर्जन स्थान में चले जाते थे। दिन के १२ बजे बालू में एक लकड़ी गाड़कर उसकी परछाईं जहां पड़ती थी वहां पर निशान लगाकर एक पैर के सहारे खड़े होकर जप, तप ध्यान में तल्लीन हो जाते थे। दूसरे दिन जब वहीं परछाईं पड़ती थी तब पैर बदलते थे। ऐसी घोर तपस्या बहुत काल तक की। दुर्गा सप्तशती का पाठ शीर्षासन से कहते थे। कभी-कभी गुरुदेव पंडित स्वामी जी महाराज इन्हें एकान्त में देखने जाते थे। कठोर तप के कारण शरीर शिथिल होने लगा। परन्तु तेज की वृद्धि होने लगी। इनका तप देखकर महातपस्वी अनेक महात्मा कहते थे, हरिहर चैतन्य महापुरुष होगा। महाराज जी से इन्होंने षड्दर्शनों सहित सभाष्य प्रस्थानत्रयी का अध्ययन किया। इनके साथ हमारे गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम, प्रभास भिक्षुक श्री सोमेश्वराश्रम जी महाराज तथा श्री आत्मबोधाश्रम जी महाराज भी पढ़ते थे। सन् १९२७ ई. में वेदान्त की शिक्षा पूर्ण करने के अनन्तर आप गंगातट पर भ्रमण करते हुये उत्तराखण्ड की बर्फीली पहाड़ियों पर चले गये। शरीर पर एकमात्र कोपीन थी। शरीर में अहंता, ममता का लेशमात्र भी नहीं था। अतः कई दिनों तक बिना अन्न जल के तप करना इनका स्वभाव हो गया था। वहीं आत्मदर्शन हुआ। एक दिन साधना में रत थे। तब आकाश वाणी द्वारा आज्ञा प्राप्त हुई कि हे ब्रह्मचारिन्! इस समय देश धर्म पर परम आपत्ति है। संसार से मत भागो। प्रत्युत आत्म कल्याण के साथ संसार का कल्याण करो। वहां से काशी आ गये। काशी पहुंचने से पूर्व ही परम वीतराग स्वामी रामदेव जी के साथ रहे। सीखर ग्राम में सूर्य नारायण को गुरु मानकर शिखासूत्र का परित्याग कर विद्वत् संन्यास लिया। वहां से पैदल यात्राएं आरम्भ कीं।

सन् १९३१ ई. में उत्तराखण्ड से लौटकर गुरु दर्शन के लिये नरवर पहुंचे। श्री गुरु चरणों में प्रणाम किया। शिखासूत्र से रहित देखकर गुरु जी ने पूछा, हरिहर किससे संन्यास की दीक्षा ली। इन्होंने कहा, मैंने स्वयं विद्वत् संन्यास लिया है। स्वामी जी ने कहा, "यदि कलिकाल में शास्त्र की विद्वत् संन्यास की आज्ञा होती, तो श्री शंकराचार्य को कालटी से जाकर श्री गोविन्द भगवत् पादाचार्य जी से विधिवत् विविदिशा दण्ड संन्यास की क्या आवश्यकता थी। उपनिषदों में कहा है कि ब्रह्म तत्त्व को जानने की इच्छा वाला विवेक वैराग्य सम्पन्न ब्राह्मण संन्यास पद्धति के अनुसार गुरुओं से दण्ड लेकर शिखासूत्र का परित्याग करे। जिस

मुमुक्षु ब्राह्मण में ब्रह्म तत्त्व को जानने के अनन्तर संन्यास की इच्छा है, वह विद्वत संन्यास ले। क्या तुम भगवान् भाष्यकार से भी अधिक ब्रह्मज्ञ हो। यद्यपि मैं श्री शंकराचार्य के प्रस्थानत्रयी के भाष्यों को पढ़ाता हूं। परन्तु मुझे भाष्य पढ़ाने से पूर्व कहीं-कहीं पर एक-एक पंक्ति को लगाने में घण्टों सोचना पड़ता है। अतः कलिकाल में शंकर के अनुयायियों को उनका अनुसरण करना चाहिये।"

श्री गुरु वचन सुनकर शिष्य ने कहा—गुरु जी ! फिर आप ही दण्ड संन्यास की दीक्षा दे दें। महाराज जी ने कहा—जिनसे महावाक्य लिया है। उनसे ही संन्यास लो। उनकी आज्ञा प्राप्त कर श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के पास पहुंचे। उनसे काशी जी में दुर्गाकुण्ड में सन् १९३१-३२ के बीच में दण्ड ग्रहण किया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथ अथाष्टादशोऽध्यायः

धर्म संघ

दण्ड ग्रहण के पश्चात् श्री स्वामी जी यति धर्म के कठोर नियमों का पालन करते हुये काशी से ऋषिकेश तक पदाति यात्रा करने लगे। उस समय देश की संस्कृति तथा धर्म की दशा देखकर बड़ी वेदना होती थी। उन्होंने धर्म प्रचार के उद्देश्य से सम्वत् १९९४ वि. में सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार हरिद्वार के महाकुम्भ से प्रारम्भ किया। इनके साथ श्री स्वामी रामदेव जी, श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी, महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा चतुर्वेदी थे। सभी के वर्णाश्रम को लेकर भाषण हुये। सम्वत् १९९७ वि. सन् १९४० ई. विजया दशमी के दिन्न धर्म संघ की स्थापना हुई।

धर्म प्रचार

आपने हरिद्वार से गंगा सागर वहां से पुष्कर तक पैदल यात्रा की। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में वेदों का सन्देश तथा धर्म संघ की शाखायें स्थापित कीं। इनका नारा भागवत सप्तम स्कन्ध की प्रह्लाद स्तुति के आधार पर **धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो, प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो**। यह नारे देश व्यापी हो गये।

उपदेशों का सार

सब जीव एक मात्र परमात्मा की सन्तान हैं। सब कुछ परमात्मा का ही अंश है। तुम अपने को हीन मत समझो। अनुभव करो और समझो कि तुम अमृत पुत्र हो। **'अमृतस्य पुत्रः'** एक पिता की सन्तान के नाते विश्व बन्धुत्व एवं विश्व कल्याण की विशुद्ध परमोदार भावना का घर-घर प्रचार करो।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथ्वी शस्य शालिनी।
देशोऽयं क्षोभ रहितो, ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥
अपुत्रिणः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥

सभी सुखी, रोग रहित, मंगल देखें। किसी के भाग्य में दुःख न हो। बादल समय पर वर्षा करें। पृथ्वी अन्न से भरपूर हो। देश विक्षेप रहित हो ब्राह्मण भय रहित हों। पुत्रहीन पुत्रवान् हों। पुत्रवान् पौत्रों से युक्त हों। निर्धन धनी हो। सभी सौ वर्ष तक जीवित रहें।

इस सिद्धान्त को समझो। इसके अनुसार जीवन में आचरण करो। मार्ग शीर्ष वि. सं. १९९५ सन् १९३८ ई. में पूज्यपाद अ. श्री षड्दर्शनाचार्य श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज ब्रह्मीभूत हुये। उस समय श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी उडिया बाबा आदि अनेक सिद्ध महात्मा एकत्रित हुये। श्री स्वामी जी भी उपस्थित थे। कई दिनों तक सत्संग चला। उडिया बाबा जी प्रणव सहित सामूहिक कीर्तन करवाते थे। श्री करपात्री जी ने विरोध किया। शास्त्रार्थ हुआ। बाद में संकीर्तन मीमांसा और "वर्णाश्रम मर्यादा" नामक पुस्तक लिखी।

सन् १९३६ ई. में गीता प्रेस गोरखपुर से कल्याण का 'वेदान्तांक' नामक विशेषांक निकला। उसमें सम्पादक तथा मालिक श्री जयदयाल गोयन्दका जी तथा श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने चार लेख प्रकाशित किये। जिनमें से पंचदशी कार श्री विद्यारण्य स्वामी जी महाराज के विरोध में एक लेख था। दूसरा 'ईशा वास्योपनिषद्' के विद्या अविद्या, सम्भूति असम्भूति मंत्रों की भगवान् शंकराचार्य जी ने जो व्याख्या की है, उसका खण्डन करके श्री जय दयाल जी ने मनमानी व्याख्या की थी। स्वामी जी ने जब लेख पढ़ा। तो उन्हें विशेष वेदना हुई। वे

सीधे तुरन्त गीता प्रेस में शास्त्रार्थ करने पहुंचे। जम कर वार्तालाप हुआ। दोनों ने अपनी भूल स्वीकार की क्षमा मांगी। महाराज जी ने कहा—इसका संशोधन मासिक अंकों में प्रकाशित करके क्षमा मांगो। दोनों ने संकोच किया। कहा, हमारी पत्रिका देश-विदेश में लाखों की संख्या में जाती है। इसमें नाम बदनाम होगा। तब आपने **"शांकर सिद्धान्तों पर किये गये आक्षेपों का समाधान"** नामक अत्यन्त पाण्डित्य पूर्ण प्रामाणिक पुस्तक लिखी। तथा सर्वत्र प्रचार करने लगे। कोई कल्याण न खरीदे। ग्राहकों की संख्या कम हो गई। दोनों ने जाकर क्षमा मांगी। तब अपने भक्तों को कल्याण खरीदने की आज्ञा दी।

सं. १९९६ वि. में 'सन्मार्ग' मासिक तथा 'साप्ताहिक सिद्धान्त' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

दो महापुरुषों का मिलन

सन् १९३० ई. में मेरठ जनपद के गाधि नामक ग्राम में वीतराग, तपोनिष्ठ दण्डी स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम जी का मिलन हुआ। दोनों ने हिमालय से सेतुबन्ध तक पैदल यात्रा की।

यज्ञानुष्ठान

यज्ञों का आरम्भ पहिला सोनीपत में रुद्र महायाग, दूसरा गढ़ मुक्तेश्वर में दो सहस्र चण्डी यज्ञ, तीसरा दिल्ली में **'सार्द्ध द्व्यकोटि होमात्मक, एकविंशत्युत्तर शतमुखसर्ववैदिक रुद्रमहायज्ञ'** सम्पन्न हुये। फिर काशी, लखनऊ, उदयपुर, बम्बई, बीकानेर, अमृतसर आदि अनेक स्थानों पर यज्ञों की धूम मची।

इन यज्ञों का विस्तृत विवेचन ज. श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के जीवन चरित्र में 'जगद् गुरु गौरव' के आधार पर दिया है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथ ऊनविंशोऽध्यायः

धर्म विरोधी बिल

कांग्रेस सरकार ने धर्मशास्त्रों के विरुद्ध भारतीय संविधान बनाया। उसमें अन्त्यजों का मन्दिर प्रवेश, छुआ-छूत का विरोध, पुत्र के समान पुत्री को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार आदि राव कमेटी द्वारा बिल बनाकर पास किये गये। महाराज श्री ने डटकर विरोध किया। काशी में विश्वनाथ मन्दिर में पहले पुजारियों के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता था।

बाद में सब के लिये छूट हो गई । स्वामी जी ने सैकड़ों महात्मा तथा ब्राह्मणों द्वारा आन्दोलन किया । जब कोई उपाय नहीं सूझा तो मन्दिर के रास्ते में सब लेट गये । पुलिस कर्मचारी चमड़े के जूते सहित इन पर तथा महात्माओं पर पैर रखकर मन्दिर में प्रविष्ट हुये । दुष्टों ने मन्दिर की पवित्रता को नष्ट किया । लाखों के हस्ताक्षरों को भी सरकार ने नहीं माना ।

गोवध बन्दी आन्दोलन

गाय धर्म, देश, समाजोपयोगी पशु ही नहीं है, प्रत्युत वेदों ने इसे **गावो विश्वस्य मातरः तथा अघ्न्या** कहा है । जिस भूमि पर गो रक्त की एक बूंद भी गिरती है । वहां पर किया हुआ पुण्य फलित नहीं होता है । स्वामी जी की प्रेरणा से हजारों भक्तों ने कुत्ता पालन छोड़कर गो पालन किया । किन्तु जब तक सरकार की ओर से मशीनों द्वारा कई स्थानों पर गो हत्या बन्द नहीं होती तब तक सब व्यर्थ है । अतः स्थान-स्थान पर आन्दोलन हुये । दिल्ली का देश व्यापी गो हत्या बन्दी आन्दोलन हुआ । जिसमें अनेक महात्मा तथा ब्राह्मण मारे गये । पुरी पीठाधीश्वर श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज, श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आदि ने अनशन किया । इसमें आंशिक सफलता प्राप्त हुई । पाकिस्तान के विरोध में भी स्वामी जी का महात्मा गांधी पटेल, पं. जवाहर लाल नेहरु आदि के साथ पत्र व्यवहार हुआ । पाठक "श्री करपात्री जी एक अध्ययन" नामक पुस्तक में देखें ।

अन्य संस्थायें

महाराज जी ने धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा देने के उद्देश्य से देश में अनेक स्थानों पर शिक्षा मण्डलों की स्थापना करके अनेक संस्कृत महाविद्यालयों का निर्माण किया । काशी, दिल्ली, वृन्दावन, हिसार, विठूर (ब्रह्मावती) मुजफ्फरपुर, चूरु आदि नगरों में पाठशालाएं खोलीं । इनमें स्वतन्त्र पाठ्यक्रम तथा परीक्षाओं की व्यवस्था प्राचीन परम्परानुसार होती है । इनके अतिरिक्त धर्मवीर दल, सनातनी दल, आदि अनेक दलों की स्थापना की ।

महाराज जी ने प्राचीन तथा नवीन राजनीति शास्त्रों का अध्ययन करके "राम राज्य तथा मार्क्सवाद" नामक ग्रन्थ की रचना की । जिसको देखकर जवाहर लाल जैसे नेताओं का हृदय कांप उठा । इसके विरोध में नेहरु जी ने श्री राहुल जी से ग्रन्थ लिखवाया । तब उसका उत्तर "राहुल जी की भ्रान्ति" नामक पुस्तक में दिया ।

निर्भीक वक्ता

सन् १९४८ जनवरी, ३० को गांधी जी की मृत्यु हुई। इसे सुनकर स्वामी जी स्तब्ध रह गये। उस समय आप प्रयाग में थे। संवेदना प्रस्ताव के अनन्तर मौन होकर आत्म शान्ति के लिये प्रार्थना की। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के गुरु जी श्री माधवराव सदाशिव गोलबल्कर जी को बन्दी बनाया। हिन्दू महासभा को भी दोषी बनाकर समाप्त कर दिया। हिन्दू नेताओं पर सरकार की कड़ी दृष्टि थी। तब आपने निर्भीक होकर सत्य का पक्ष लेकर सरकार की आलोचना की। सदस्यों को मुक्त करने की मांग की। काशी में इन्हें भी बन्दी बना लिया। अपराध सिद्ध न होने पर छोड़ दिया।

देश में राम राज्य लाने के लिये आपने 'राम राज्य परिषद्' की स्थापना की तथा आशीर्वाद दिया। अनेकों स्थानों पर चुनावों में सफलता मिली।

गुरु गोलबल्कर जी से भेंट

दिल्ली निगम बोध घाट यमुनातट पर स्वामी जी वास कर रहे थे। २३ अगस्त, १९४९ को संघ के सर संघ चालक से स्वामी जी की भेंट हुई। दर्शन करते ही धर्म सम्राट् के चरणों में प्रणाम किया। महाराज जी ने अभिनव शिवा जी के सम्बोधन से सम्मानित किया। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—धर्म के सम्बन्ध में आप समर्थ गुरु रामदास हैं। मैं शिष्य शिवा जी के समान आप की आज्ञा का पालन करूंगा। मेरे सामने हिन्दू संस्कृति का बाक्स रखा है। उसके भीतर क्या है, मैं नहीं जानता। उसकी व्याख्या तो आप ही कर सकते हैं। मेरा कार्य तो गुण्डे, चोर, बदमाश आदि से रक्षा करना ही है।

तदनन्तर बन्द कुटिया में दोनों की २० मिनट तक वार्ता हुई। जाते समय महाराज जी ने प्रसाद दिया। उसे फेंट में बांधते हुये उन्होंने कहा—इसको मैं अकेला नहीं, सारे राष्ट्र को बांट कर खाऊंगा। दोनों बाहर निकले। दोनों का अभिनन्दन जय घोष से जनता ने किया।

परन्तु यह मिलन सफल नहीं हुआ। गुरु जी वर्णाश्रम धर्म को नहीं मानते थे। स्वामी जी कट्टर समर्थक ही नहीं प्रत्युत जीवन में उतारते भी रहे। इसका स्पष्टीकरण 'विचार पीयूष' में मिलता है।

ज्योतिष्पीठ

इस पीठ के १६५ वर्ष तक रिक्त रहने के बाद सन् १९४१ में बड़ी कठिनाई से अपने गुरु अ. श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती को बिठाया। बारह वर्ष के बाद फिर रिक्त हो गया। गुरु जी कहते थे कि करपात्री मेरा उत्तराधिकारी है। बारह संस्थाओं के प्रार्थना करने पर भी स्वीकार नहीं किया। तब सन् १९५३ में अ. श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज को अभिषिक्त किया। २० वर्ष बाद १० दिसम्बर, १९७३ ई. को सायं ७.३० बजे भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को आप ब्रह्मलीन हुये। सुयोग्य संन्यासी की खोज हुई। ब्रह्मलीन जगद् गुरु जी की अन्तिम इच्छा से तथा महाराज जी की प्रेरणा से अ. श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक गोवर्द्धन पीठाधीश्वर श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी द्वारा दिल्ली में शारदा पीठाधीश्वर श्री स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ की आज्ञा से हुआ।

शास्त्रार्थ

महाराज श्री अति सरल शान्त प्रकृति के महात्मा थे। परन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों का यदि कोई मौखिक या लिखित रूप में विरोध करता, तो उन्हें टूटना पसन्द था, झुकना नहीं। इस विषय को लेकर कभी भी समझौता नहीं किया।

सन् १९३२ ई. में हरिद्वार के अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर आये थे। हरिद्वार से सेठ श्री गौरी शंकर गोयनका जी के साथ ऋषीकेश कोयल घाटी में श्री पं. मदन मोहन मालवीय जी स्वामी जी के दर्शनार्थ गये थे। भागवत् सम्बन्धी विचार-विमर्श हुआ। मालवीय जी ने कहा—यहां भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की त्रिवेणी बह रही है। इसके स्नान से प्राणी के पाप ताप तथा दैन्य छूट जाते हैं। हमारे सौभाग्य से आज भी आप जैसे ज्ञानी महात्मा मिल जाते हैं। वेदों और शास्त्रों के गूढ़ तत्त्व जो पुराणों में बिखरे पड़े हैं। इन महात्माओं की कृपा से वे हम लोगों को प्राप्त होते हैं। फिर उन्होंने कहा—महाराज जी ! इन्हीं पुराणों के बल पर मैं अन्त्यजों को प्रणव युक्त मंत्र दीक्षा देता हूं। स्वामी जी ने कहा—यह शास्त्र विरुद्ध है। मालवीय जी ने कहा—शास्त्रार्थ हो जाए। उन्होंने स्वीकार किया। शास्त्रार्थ का प्रचार हुआ। हरिद्वार से इस शास्त्रार्थ को सुनने के लिये लोग आने लगे। सायं काल सभा हुई। श्री गौरी शंकर गोयनका, ब्रह्मचारी गंगा स्वरूप जी, श्री पं. बालकराम आहिताग्नि आदि विद्वान् उपस्थित थे। श्री मालवीय जी ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुये लम्बा व्याख्यान दिया। पूरा दिन उसी में लग

गया। अगले दिन भी उन्हीं का भाषण हुआ। परन्तु आंधी आ जाने से बाधा पहुंची। १५ मिनट बाद आंधी बन्द हो गयी। दोनों में विचार विनिमय चला। विद्वान् तथा जनता सुनती रही। अन्त में स्वामी जी ने पूछा। आपने दोनों पक्षों को सुनकर क्या समझा। क्योंकि बुद्धि स्वभाव से ही तत्त्व पक्षपातिनी होती है। गोयनका जी ने स्वामी जी का समर्थन किया। मालवीय जी से पूछने पर उन्होंने कहा—स्वामी जी के मुख से तो संस्कृत बाङ्मय पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा की गंगा सी प्रवाहित हो रही थी। मैं तो उस अलौकिक गंगा में अवगाहन कर आनन्दानुभव कर रहा हूं। मुझे कुछ कहना नहीं है। पत्रकारों के पूछने पर मालवीय जी ने कहा—तुम लोग पत्रों में शास्त्रार्थ की चर्चा ही न करो। परन्तु श्री गोयनका जी ने इस शास्त्रार्थ को 'मननीय प्रश्नोत्तर' के नाम से प्रकाशित किया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे ऊनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

सन् १९४० में श्री पं. हरिहर कृपालु महामहोपाध्याय जी ने कहा कि—**"एकोद्देश्य परायण समस्त जनान्तःकरणत्वापरनाम ध्येयस्वरूपः"** ही तो संगठन हैं। यह असम्भव है, हो ही नहीं सकता। इस पर स्वामी जी ने कहा—जो काशी के पण्डित **"एकोद्देश्य परायण इत्यादि** संगठन का लक्षण करके उसका खण्डन करते हैं, वे क्या संगठन का लक्षण करके उसका मण्डन नहीं कर सकते। पंडित जी निरुत्तर हो गये। एक बार फिर पंडित जी ने **अकामः सर्व कामो वै मोक्ष काम उदारधीः। तीव्रेण भक्ति योगेन यजेत पुरुषं परम्।** सकाम अथवा निष्काम मोक्ष की इच्छा करने वाले उदार पुरुष तीव्र भक्ति योग से परम पुरुष का पूजन करें। इस श्लोक को लेकर ज्ञानवापी काशी में शास्त्रार्थ निश्चय हुआ। परन्तु पण्डित जी सभा में नहीं आये। काशी का सारा विद्वत् समाज एकत्रित था। सभी के चले जाने के बाद पण्डित जी स्वामी जी के लिये नारियल पुष्प माला लेकर आये। दण्डवत् प्रणाम करके उनके भक्त हो गये।

सन् १९४४ ई. में दिल्ली के महायज्ञ में कुछ आर्य समाजी पण्डित आये। वाजसनेयी संहिता के उब्बट महीधर भाष्यों पर आक्षेप करते हुये कहा—"यह वेद विरुद्ध है। क्योंकि वेद अप्रतिपादित है।" स्वामी जी ने कहा कि—"वेद प्रतिपादित होने मात्र से वेद विरुद्ध नहीं हो सकता।" जैसे भोजन वेदाप्रतिपादित है। परन्तु वेद विरुद्ध नहीं। अतः वेदाप्रतिपाद्यत्व

हेतु विरुद्धत्व साध्य को सिद्ध करने में असमर्थ है । अतः उब्बट महीधर के भाष्य वेद विरुद्धत्व, वेदाप्रतिपाद्यत्वात् अनुमान दोष ग्रस्त हैं । अतः समीहित अर्थ का साधक नहीं बन सकते ।

समाजियों के पण्डित संस्कृत में अपना पक्ष ठीक प्रकार से उपस्थित न कर सके । थोड़े से प्रश्नोत्तर से ही शान्त हो गये । दूसरे दिन नहीं आये । केवल विज्ञापन छापे । इस पर स्वामी जी ने लाखों श्रोताओं के बीच में कहा, "है कोई माई का लाल, जिसकी छाती पर कारोबार हो सामने आकर शास्त्रार्थ करे ।"

एक बार 'साप्ताहिक सिद्धान्त' में पूज्य पाद श्री स्वामी रामदेव जी महाराज ने पक्ष रखा कि "संन्यासियों को मठ आदि का संग्रह नहीं करना चाहिये ।" इस पर श्री करपात्री जी ने कहा "संन्यास आश्रम त्याग प्रधान है, इसमें मतभेद नहीं । परन्तु साधारण संन्यासी तथा पीठाधीश्वर में महान् अन्तर है । भले ही किसी वेद में इसका मूल न मिलता हो, तथा कोई विरोधिनी श्रुति न हो तो स्मृतियों का प्रामाण्य माननीय है । अतः पीठाधीश्वरों को मठादिका संग्रह शास्त्रानुमोदित है ।

एक बार समुद्र यात्रा के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ महारथी पं. माधवाचार्य जी से स्वामी जी का कई वर्षों तक 'संस्कृत सिद्धान्त पत्रिका' में निरन्तर शास्त्रार्थ प्रकाशित हुआ । इस विषय को लेकर भले ही जन मत अधिक हो पर वैदिक सिद्धान्तों को लेकर श्री माधवाचार्य जी स्वामी जी को परास्त नहीं कर पाये ।

सन् १९६५ में हरिद्वार में गो घाट के समीप श्री मन्मध्व सम्प्रदाय के आचार्य भण्डार केरी मठाधीश्वर श्री विद्यामान्य तीर्थ स्वामी जी उडुपी (केरल) से पधारे थे । उन्होंने अद्वैत सिद्धान्त को आसुर मत बताकर शास्त्रार्थ के लिये हरिद्वार के समस्त महामण्डलेश्वरों को चैलेन्ज किया । हारने पर पांच हजार रुपये की घोषणा की । उन दिनों महाराज श्री हरिद्वार में ही थे । किसी भी महामण्डलेश्वर का साहस नहीं हुआ । स्वामी जी ने चुनौती स्वीकार की । मध्यस्थ, स्थान तथा शर्तनामा लिखित रूप में निश्चित हुआ । ४-५ जुलाई को शास्त्रार्थ चला । शर्त थी कि दोनों में से कोई अपने आचार्य के विरुद्ध दूसरे आचार्य का प्रमाण न दे । परन्तु प्रतिवादी मध्वाचार्य जी ने अपना पक्ष निर्बल जान कर शर्त नामा की धारा के विरुद्ध एक स्थान पर अपने आचार्य श्री मध्वाचार्य द्वारा कृत भगवद् गीता के लेश भाष्य के विरुद्ध भाषण देकर शंकराचार्य का प्रमाण दिया । वे पराजित हुये । इस शर्त नामे पर दोनों पक्षों के समर्थन तथा

निर्णायक के हस्ताक्षर थे। मध्यस्थ ने उन्हें पराजित घोषित किया। वे बीच में ही उठकर चले गये। महाराज श्री की विजय हुई। दूसरे दिन हरिद्वार ऋषीकेश के समस्त विद्वान् महामण्डलेश्वर चांदी के तार में पिरोया हुआ रुद्राक्ष का कण्ठा शुद्ध रेशमी चद्दर पुष्पहार लेकर पहुंचे। प्रणाम करते हुये कहा—महाराज जी ! श्री शंकराचार्य जी का अद्वैत सिद्धान्त का बेड़ा डूबा जा रहा था। आपने उसे पार लगाया। शोभायात्रा का प्रस्ताव रखा, इस पर स्वामी जी ने कहा—यह अनुचित है। शास्त्रार्थ केवल—**वादे वादे जायते तत्त्व बोधः** तत्त्व बोध के लिये होता है। किसी के अपमान के लिये नहीं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

धारा प्रवाह वक्तृत्व तथा निरभिमानिता

संन्यास के कुछ काल बाद श्री स्वामी जी नौका द्वारा ही काशी प्रयाग आदि गंगातट वर्ती तीर्थों की यात्रा करते हुये जनपद फतेहपुर अश्विनी में पहुंचे। वहां पर परम तपस्वी वीतराग सर्व शास्त्र निष्णात श्री मद्दण्डी स्वामी शंकराश्रम जी महाराज अपने शिष्य श्री दण्डी स्वामी अनंग बोधाश्रम जी सहित पर्णकुटी में रहते थे। उस दिन स्वामी जी के भक्तों का जम घट था। श्री करपात्री जी को सुनकर और भीड़ एकत्रित हो गई। बड़े महाराज जी ने कहा—कुछ बोलोगे। आपने प्रणाम करके कहा—जो आज्ञा। किस विषय पर बोलूं? उन्होंने प्रणव की व्याख्या करने को कहा। फिर क्या था। १७ घंटे निरन्तर धारा प्रवाह एक क्षण का भी विराम लिये बिना बोलते रहे। बड़े स्वामी जी की आज्ञा से बन्द किया। उस समय के वक्ता के अतिरिक्त श्रोता भी परम धन्य थे। जो निरन्तर बैठे हुये रूक्ष विषय को सुनते रहे।

एक बार मेरठ में श्री कृष्णबोध दण्डी आश्रम में बिना सूचना दिये पहुंच गये। संयोग से भण्डारी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। स्नान आदि के अनन्तर पूजा की। श्री श्याम सुन्दर वाजपेयी वैद्य जी को फोन द्वारा सूचना हुई। भिक्षा में खिचड़ी बनवाई। संयोग से पूरे आश्रम में तथा यत्र-तत्र घूमने पर भी पत्तल कुल्हड़ आदि नहीं प्राप्त हुये। महाराज जी ने भण्डारी से अंगोछे में खिचड़ी लेने का आग्रह किया। जब भिक्षा कर रहे थे। तभी वैद्य जी भी पहुंच गये। उनको अंगोछे पर खिचड़ी खाते देखकर लज्जा के मारे गड़े जा रहे थे। भिक्षा के बाद वाजपेयी जी ने कहा—आज तो आपने मेरठ तथा दण्डी आश्रम की नाक काट ली। लोग

क्या कहेंगे। विश्व विख्यात धर्म सम्राट् को आज आश्रम तथा मेरठ नगर में पत्तल तक प्राप्त नहीं हुये। ऐसे निर्मान मोहा जित संगदोषा यतिराज थे।

काशी के स्थान

काशी में आपने धर्म संघ शिक्षा मण्डल, दुर्गाकुंड के अलावा, मीरघाट नये विश्वनाथ में, वेद शास्त्रानुसंधान केदार घाट में तथा वृन्दावन बिहारी भवन मिश्र पोरवरा आदि अनेक स्थानों में धनिकों द्वारा भवन निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराये। आपने जब देखा कि पुराने विश्वनाथ में धर्मशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन किया गया है, तब विद्वद् गोष्ठी हुई। उसमें यह निश्चय हुआ कि भगवान् विश्वनाथ का नवीन मन्दिर बने। उसमें वैदिक परम्परानुसार पूजन हो। पुजारी के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति प्रवेश न करे। तब इस मीर घाट के व्यक्तिगत मन्दिर का निर्माण हुआ।

काया कल्प

अनन्ताः वै वेदाः उपनिषद् के इस बचनानुसार वेद संख्या रहित हैं। वर्तमान कल्प में महाभाष्य कार के मतानुसार ग्यारह सौ इकतीस शाखाएं, इतने ही ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदें हैं। इनमें से ऋग्वेद की २१ शाखाएं हैं। इनमें से दो प्राप्त हैं। यजुर्वेद की कृष्ण शुक्लभेद से मिलाकर १०१ हैं। इनमें से ६ प्राप्त हैं। सामवेद की १००० में से २ प्राप्त हैं। अथर्ववेद की नौ में से दो प्राप्त हैं। आपकी इच्छा लुप्त वेद संहिताओं का ज्ञान प्राप्त करने की थी। इसकी खोज में लगे। तब ज्योतिष्मती कल्प के विषय में "आनन्द कन्द" नामक दक्षिण भारतीय ग्रन्थ से जानकारी मिली। इसके करने से अश्रुत ग्रन्थों का बोध होता है। "ज्योतिष्मती" नामक एक जड़ी विशेष है। इसको लाने की आज्ञा वर्तमान शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज को दी। इसके लिये मीरघाट में लाखों की लागत में त्रिगर्भा कुटी विशेष का निर्माण हुआ। शुभ मुहूर्त में वैदिक ब्राह्मणों द्वारा पूजन के उपरान्त इस जड़ी को अन्न राशि पर रखा गया। वैद्यों का सम्मलेन बुलाकर विचार-विमर्श हुआ। जड़ी-बूटियों से कुटी का लेपन द्वारा संस्कार हुआ। श्यामा गाय के पूजन के अनन्तर निश्चित तृण शाक पत्रादि का भोजन दिया गया। सन् १९७२ के चातुर्मास्य में विरेचन क्रिया के अनन्तर प्रवेश किया। इस कुटी के निर्माण में पचासी हजार रुपया लगा। सेवा शुश्रूषा में केवल श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी तथा वैद्य के अतिरिक्त दूसरा कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। वे संस्कृत में

ही वार्त्तालाप करते थे। चालीस दिन का कल्प किया। औषधि सेवन से असहनीय व्यग्रता हुई। परन्तु इन महा तितिक्षु ने परम धैर्य से सहन किया। प्रकाश के लिये गाय के घी का दीपक जलता था। स्वामी जी अधिकतर ध्यान में रहते थे। परन्तु वर्षा की अधिकता, नमी आदि के कारण वैद्यों ने कल्प स्थगित करने की प्रार्थना की। परन्तु महाराज जी ने ४० दिन पूरे किये। पत्रकारों से प्रश्नोत्तर हुआ। पहले की अपेक्षा स्वास्थ्य अच्छा था। बाल काले हो गये थे। परन्तु जिस उद्देश्य से किया था, उसकी प्राप्ति नहीं हुई। यह पूरा कल्प १० मास का था। तब विचार किया कि भगवत् कृपा हुई तो मैं हिमालय पर निर्जन स्थान पर १० मास का अनुष्ठान करूंगा। इसके अनुष्ठान से भी आयु २५ साल कम प्रतीत होती थी। इस कल्प का लक्ष्य शारीरिक स्वास्थ्य लाभ न होकर केवल विश्व कल्याण तथा वेदोद्धार था।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे एकविंशोऽध्यायः ॥२१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

साहित्य

महाराज ने वेद, पुराण, इतिहास, दर्शन, साहित्य, वेदाङ्ग, धर्म शास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया था। उनका भाषण, लेखन तथा शास्त्रार्थ में समान अधिकार था। संस्कृत तथा हिन्दी में लगभग ४० ग्रन्थों की रचना की। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१. वेदार्थ पारिजात दो भागों में—इसमें वेदों के प्राचीन भाष्यकारों का सायण महीधर आदि के भाष्यों का समर्थन करते हुये, आधुनिक वेद भाष्यकारों का श्रुति स्मृति, शब्दार्थ मर्यादा के विरुद्ध भाष्य होने के कारण खण्डन किया है। इसमें उन्होंने जीवन भर के सम्पूर्ण आर्ष ग्रन्थों का सार सिद्धान्त संक्षेप में देकर गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ किया है।

२. रामायण मीमांसा—इसमें बाल्मीकीय महारामायण, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, ब्रह्मा, अध्यात्म, आनन्द आदि संस्कृत की १०७ रामायणें तथा हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, तमिल, तैलगू आदि भारतीय भाषाओं तथा वर्मी रूसी, फ्रैंच, अंग्रेज़ी आदि रामायणों के उद्धरण देकर रामायणों के ग्राह्य अंश का मण्डन करते हुये त्याज्य अंश का खण्डन किया है। विशेषतः वाल्मीकीय रामायण का डा. कामिल बुल्के ने वालकाण्ड तथा उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त सिद्ध किया है और काण्डों में भी बहुत से स्थलों को प्रक्षिप्त लिखा है उसका

खण्डन विशेष रूप से करके संस्कृत व्याख्याकार नागेश भट्ट, भूषण, तिलक आदि टीकाओं का प्रमाण देकर युक्ति संगत हृदय ग्राही समाधान किया। कई जैन तथा बौद्ध आचार्यों ने भी राम चरित्र को दूषित करते हुये लिखा कि, "दशरथ काशी के राजा थे उनके राम, लक्ष्मण आदि चार पुत्र तथा सीता पुत्री थी। सीता-राम को बहुत चाहती थी। अतः उनका राम के साथ विवाह हुआ। 'बौद्ध सूत्राबतार' में भी लिखा है कि रावण ने बौद्ध भिक्षुक से दीक्षा ली थी। लक्ष्मण का त्याग होने पर उन्होंने भी बौद्ध धर्म में दीक्षा ली थी। श्री सीता जी के विषय में भी अनर्गल प्रलाप किया गया है। इन सबका महाराज श्री जी ने मुंह तोड़ उत्तर दिया है। इस ग्रन्थ को प्रत्येक रामायण प्रेमी गृहस्थ तथा व्यासों को रखना चाहिये।

३. श्री भगवत्तत्व, ४. भक्ति रसार्णव, ५. श्रीविद्यारत्नाकर—इसमें श्री विद्या चक्र पूजन का विस्तृत विधान है।

६. वेद स्वरूप विमर्श, ७. चातुर्वर्ण्य संस्कृति विमर्श, ८. वेद का स्वरूप तथा प्रामाण्य, ९. संकीर्तन मीमांसा और वर्णाश्रम मर्यादा, १०. शांकर सिद्धान्तों पर किये आक्षेपों का समाधान, ११. मार्क्सवाद और रामराज्य, १२. भक्ति सुधा तीन भागों में, १३. विचार पीयूष, १४. रामायण काल मीमांसा, १५. महाभारत काल मीमांसा, १६. क्या संभोग से समाधि—आचार्य रजनीश ने "संभोग से समाधि की ओर" एक महाचरित्र भ्रष्ट करने वाली पुस्तक लिखी है। जो कि साक्षात् नरक का कुण्ड है। इसका जोर दार खण्डन इस ग्रन्थ में किया है। ऊपर स्वामी जी के मुख्य ग्रन्थों का उल्लेख किया गया।

जीवन सम्बन्धी ग्रन्थ

१. अभिनव शंकर—यह अति विशद ग्रन्थ परम सन्त भक्त श्री पं. कृष्ण प्रसाद जी शर्मा ने वर्तमान शताब्दी के दो युग पुरुषों का जीवन वृत्त, उपदेश, सिद्धान्त, गौरव तथा संस्मरण विस्तार से लिखा है। इनमें पहला जगद् गुरु गौरव—श्री शंकराचार्य कृष्णबोधाश्रम जी महाराज से सम्बन्धित तथा दूसरा "अभिनव शंकर" श्री करपात्री जी से सम्बन्धित है।

२. श्री करपात्री जी एक अध्ययन, ३. श्री स्वामी करपात्री जी संक्षिप्त परिचय, ४. पिवत भागवतं रसमालयम्।

महाराज श्री जी ने कानपुर में अन्तिम चार दिनों में श्रीमद् भागवत् पर भाषण किया था। वह टेप रिकार्ड किया गया। उसी को श्री कृष्ण प्रसाद जी ने पुस्तक का रूप दे दिया है। वे चौथे दिन भाषण करते-करते मूर्च्छित हो गये थे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

ब्रह्म निर्वाण

सन् १९६७ तिहाड़ जेल में दुष्टों ने आक्रमण किया था। उससे सिर पर चोट आई। आंखों की ज्योति चली गई थी। उपचार से कुछ प्रकाश आया। शिरोवेदना होती रही।

सन् १९८१ अप्रैल, ५ से नवरात्रों के आरम्भ में 'रास पंचाध्यायी' की कथा कर रहे थे। इसका आयोजन कानपुर के परेड मैदान में रामलीला कमेटी द्वारा हुआ था। वे पूर्ण स्वस्थ थे। परन्तु पांचवें दिन नित्य प्रति की भांति पूजा सम्पन्न कर सायं काल ५ बजे भिक्षा तथा विश्राम के उपरान्त ६ बजे से ८ बजे तक कथा होनी थी। साढ़े चार बजे पूजन आरम्भ किया। पट बन्द थे। ५ बजे के स्थान पर ५.३० बज गये। पूजनोपरान्त शंख ध्वनि नहीं हुई। ब्रह्मचारी के देखने पर उन्हें तकिये के सहारे भगवान् के पूजा के पात्र पोंछते देखा। ब्रह्मचारी को देखकर बोले। पुराने रोग ने आक्रमण किया है। सिर तथा गर्दन में पीड़ा है। सब कार्यक्रम रद्द करके काशी ले चलो। कार द्वारा काशी पहुंचे। वहां पहुंच कर ५ बजे प्रातः समाधि लगाई। २१ दिन तक इसी स्थिति में रहे। सारे देश में समाचार फैल गया। देश भर में प्रार्थनायें होने लगीं। वैद्यराज पं. ब्रजमोहन दीक्षित जी का उपचार चल रहा था। नेत्र खोलकर कहा—हमें भगवत् कथा सुनाओ। तब कीर्तन रामायण, विष्णु सहस्रनाम, दुर्गासप्तशती, भागवत् आदि का पाठ होने लगा। भक्ति का प्रसंग सुनकर आंखों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित होते थे। काशी के सुप्रिसद्ध विश्व-विख्यात रामायणी पं. श्याम नारायण जी शास्त्री जी से मानस कथा सुनने लगे। उनसे कहा, रामचरित मानस में दशरथ मरण प्रसंग सुनाओ। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, मैं पूरी रामायण का पाठ तथा कथा सुनाता हूं। परन्तु मुझ से रामबनवास, दशरथ मरण, लक्ष्मण मूर्च्छा आदि प्रसंग सुनाते नहीं बनते। तब मुसकराते हुये बोले, क्या यह रामायण में नहीं है। यह तो परम मंगलमय प्रसंग है। बिना ननु नच किये इसे ही सुनाओ। पंडित जी ने कहा,

अनिष्ट की शंका से नहीं सुनाता हूं। स्वामी जी ने कहा—नहीं, नहीं परम मंगल मय है, इसे ही सुनाओ। विवश होकर वे कथा सुनाने लगे।

बन्दउँ अवधभुवाल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परि हरेउ॥

इससे मंगलाचरण करके कथा प्रारम्भ हुई। श्रोता वक्ता दोनों ही अश्रुपात करने लगे।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद गद गिरा नयन बह नीरा॥

यह चौपाई प्रत्यक्ष चरितार्थ हुई। सुनाते बनता नहीं था।

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते।

यहां तक की कथा पचास मिनट में हुयी। आगे कथा कहने में नाक, आंख, कण्ठ ने साथ नहीं लिया। कथा बन्द करनी पड़ी।

महाराज जी ने आज्ञा दी। मेरा पार्थिव शरीर केदार घाट में ही विसर्जित किया जाए। शरीर छोड़ने से चार दिन पूर्व उनकी सेवा में श्रीमद्दण्डी स्वामी जगन्नाथानन्द सरस्वती, श्री सर्वेश्वर एवं अखिलानन्द ब्रह्मचारी आदि आये। महारुग्णावस्था में भी पूर्ववत् भजन पूजन करते थे। अपने परम प्रिय शिष्य मार्कण्डेय ब्रह्मचारी जी को बुलाकर कहा, हमारा अपूर्ण कार्य तुम पूर्ण करना। सं. २०३८ वि. ५ फरवरी, १९८२ को पुरी के जगद् गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी पहुंचे। उन्होंने उरई के कार्यक्रम के लिये आज्ञा मांगी। स्वीकृति मिल गई। फिर कहा, सोमवार ८ फरवरी तक अवश्य लौट आना। एकादशी के दिन ब्रह्म चैतन्य ब्रह्मचारी जी से कहा, मैं चतुर्दशी रविवार को प्रातः ८.२० बजे पुष्य नक्षत्र सर्व सिद्धि योग में प्रयाण करूंगा। त्रयोदशी तक स्वस्थ रहे, चतुर्दशी प्रातः स्नान करके लौट कर आये, पूजन किया। ब्रह्मचारी से किवाड़ बन्द करवा दिये। शरीर त्यागने से पूर्व अपने अनन्य सहयोगी ब्रह्मलीन जगद् गुरु कृष्णबोध जी का स्मरण किया। सब लोग चिन्तित थे। धीरज देते हुये ठेठ बनारसी भाषा में कहा, **ताना देल्ली, बाना देल्ली जन्तर देल्ली मन्तर देल्ली। हमारा शुभाशीर्वाद हइ हइ और तुम्हें क्या चाहिये, बोलो।** इसके बाद जोर से श्री सूक्त का पाठ करने लगे। ऊपर श्री विद्या यन्त्र के चित्र में दृष्टि केन्द्रित की। त्राटक लगाया। सर्वेश्वर ब्रह्मचारी जी तथा ब्रह्म चैतन्य को पुकारा। इन्होंने गंगाजल, तुलसी दल मुंह में डाला। पूरी

सावधानी से ग्रहण किया। फिर उनकी आज्ञा से ठाकुर जी तथा तुलसी वक्षस्थल पर पधराई। अन्तिम समय तक पूर्ण चेतना रही। पूर्वोक्त समय आ जाने पर तीन बार शिव-शिव का उच्चारण कर लीला संवरण की। धर्म, अध्यात्म का प्रचण्ड सूर्य अस्त हो गया। वहां पर उपस्थित श्री स्वामी भास्करानन्द जी ब्र. गंगा चैतन्य, सर्वेश्वर, सेठ गोयनका आदि उपस्थित थे। तुरन्त पद्मासन लगा दिया। दूरभाष द्वारा उरई तथा कानपुर में गोवर्द्धन पीठाधीश्वर तथा ज्योतिष्पीठाधीश्वर को सूचित किया गया। उस समय प्रयाग का अर्द्धकुम्भ का मेला चल रहा था। वहां पर पूज्य श्री शास्त्री स्वामी जी तथा वेदान्ती स्वामी जी को सूचना दी गयी तथा सर्वत्र सूचना भेजी गयी। सब लोग आने लगे।

जल समाधि

गंगा तट पर केदार खण्ड में उनका शरीर भक्तों के दर्शनार्थ रखा जाए। प्रातः ८ बजे से जनता दर्शनार्थ आने लगी। सफेद कार में दोनों जगद् गुरुओं के बीच में शरीर ले जाया जा रहा था। वेद मन्त्रों, कीर्तन तथा स्वामी जी के दिये गये नारे लगाये जा रहे थे। सभी लोग पुष्प मालाएं समर्पित कर रहे थे। सर्व प्रथम पुरीपीठाधीश्वर जी, फिर ज्योतिष्पीठाधीश्वर ने पुष्प मालायें समर्पित कीं, फिर शास्त्री स्वामी जी, संकट मोचन के महन्त, पं. वीरभद्र मिश्र आदि वरिष्ठ भक्तों ने पुष्पमालायें अर्पित कीं।

९ फरवरी, १९८२ ई. को दिन के ११ बजे शोभायात्रा टाउन हाल से आरम्भ हुई। उनका शरीर सजाये हुये ट्रक पर पालकी में पधराया गया। शरीर के पास दोनों शंकराचार्य थे। इस प्रकार तीन किलोमीटर का मार्ग ३ घण्टे में दशाश्वमेध घाट तक तय हुआ। वहां से सजे हुये बजड़े पर रखा गया। उसको मोटर बोट से बांध कर केदार घाट लाया गया। काशी में सभी बाजार सिनेमा, विद्यालय, मुसलमानों तक की दुकानें बन्द रहीं। काशी के डोमराज भी साथ में थे। महाराज हरिश्चन्द्र जिनके यहां बिके थे श्वेत वस्त्रधारी उन डोमराज ने आकर करकी याचना की। महाराज जी की दैनिक प्रयोग में आने वाली महत्त्वपूर्ण वस्तुयें वस्त्र सिंहासन, कालीन आदि वस्तुयें पुरी पीठाधीश्वर ने दिलवाया। विधि विधान से जल समाधि दी गई। पुरी पीठाधीश्वर जी ने घोषणा की कि मुझे सभी लोगों ने सर्व सम्मति से महाराज जी के अन्तिम संस्कार का अधिकारी घोषित किया है। उन्होंने स्नान किया, फिर पंचामृत से तथा शुद्ध जल से उनके शरीर को स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहिनाये। सब क्रिया करने के अनन्तर जगद् गुरु

जी ने कहा, मैं ऐसे महान् सन्त का कपाल छेदन नहीं कर सकता। ऐसा कहकर रुदन करने लगे। केवल शंख में गंगाजल भरकर मस्तक का स्पर्श किया। करपात्री जी की अन्तिम इच्छा थी कि मेरा शव काशी से बाहर न जाए। इसलिए लोहे की तारों से पत्थर की पेटी के साथ जकड़ कर बांध दिया गया। कुछ भक्त बेहोश हो गये। रविवार को ही जन्म हुआ था और रविवार हो की ब्रह्मलीन हुये। बाद में श्रद्धाञ्जलियां अर्पित होती रहीं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रद्धाञ्जलियां

"पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ब्रह्मविद् थे और ब्रह्मविद् ब्रह्म ही होता है। तात्पर्य यह है कि स्वामी जी नहीं रहे, यह हम कैसे कह सकते हैं? ५० वर्ष के पहले देश में इतने धर्मानुरागी नहीं थे, जितने आज उनकी तपस्या से हैं। उन्होंने उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक धार्मिक पुनर्जागरण का काम किया है। धर्म के तो पर्याय ही थे। ऐसे महात्मा यदि कुछ दिन और हम लोगों के बीच्च रहते, तो हम लोगों का काम आगे बढ़ जाता।" **श्री शृंगेरी पीठाधीश्वर जी शंकराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज।**

"मुझे पूर्वाश्रम के पिता जी ने महाराज श्री के सुपुर्द किया, जिसका निर्वाह पूज्य श्री ने अन्त तक किया। पूज्य श्री के अन्तिम सन्देश सनातन धर्म के विरोधियों से लोहा लेने, वर्णाश्रम मर्यादा की रक्षा करने एवं गोमाता की हत्या रोकने का प्रयास करने के लिये पूरी तरह डटे रहना, आग लगे, ओला पड़े, जरुरत पड़े तो फांसी के तख्ते पर झूल जाना। अतः इस कार्य में जीवन उत्सर्ग भी हो जाए, तो भी हमें खेद नहीं होगा। पूज्य श्री द्वारा स्थापित संस्थायें पूज्य श्री की यश मय शरीर हैं। यहां झाड़ू देने में भी अपने को गौरवान्वित समझूंगा। पूज्य श्री ने वेदों पर जो काम किया है, उसे पूरा कर प्रकाशित किया जाएगा। जिस प्रकार सूरदास को राह पर लाने के बाद श्री कृष्ण ने उन्हें छोड़ दिया, उसी प्रकार पूज्य श्री हमें राह पर लगाकर छोड़ गये हैं। उनके अन्तिम संदेश का पालन करना ही हमारा कर्त्तव्य है।" **गोवर्द्धन पीठाधीश्वर जगद्गुरु गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज।**

"वर्तमान शताब्दी में भगवान् आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज द्वारा प्रतिष्ठापित अद्वैत सिद्धान्त को आगे बढ़ाने के कार्य में श्री स्वामी करपात्री जी महाराज ने बड़ा कार्य किया है। जगद् गुरु भगवान् श्री शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित चारों पीठ देश की चारों दिशाओं में गत ढाई हजार वर्षों से वेदान्त मत के प्रचार-प्रसार में निरत हैं। वर्तमान समय में धर्म सम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी ने सनातन धर्म की इन धर्म पीठों को भारतवर्षीय धर्म संघ आदि के माध्यम से सुगठित रूप से आध्यात्मिक जगत् में प्रतिष्ठित किया है। अनेक यज्ञों के अनुष्ठान पूर्ण वैदिक विधि विधान से सम्पन्न कराये तथा सर्ववैदिक शाखा सम्मेलनों के आयोजन कराके सनातन धर्म की महती सेवा की। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन कराया तथा सुप्त सनातनी समाज को गोरक्षा, धर्म रक्षा की ओर प्रेरणा देकर जन आन्दोलनों का संचालन किया। वे बड़े कर्मनिष्ठ, सामर्थ्यवान्, वेदान्त निष्ठ महापुरुष थे।"

शारदापीठाधीश्वर जी गुरु शंकराचार्य श्रीमद् अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज।

अनन्त श्री करपात्री जी महाराज के ब्रह्मलीन हो जाने से देश की एक ऐसी अपूरणीय क्षति हुई है कि जिसे पूरा नहीं किया जा सकता। वे इस युग की महान् विभूति थे। उन्होंने धर्म तथा संस्कृति के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान दिया और अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म के प्रचार-प्रसार तथा लोक कल्याण के लिये अर्पित कर दिया। स्वामी जी ऐसे समय में पैदा हुये, जब भौतिक विज्ञान और आधुनिकता के कारण संसार में अन्याय, अत्याचार और अनैतिकता का बोल-बाला था। लोगों का धर्म तथा वेद शास्त्रों से विश्वास उठ गया था। लेकिन स्वामी जी ने अपनी लेखनी तथा उपदेशों के द्वारा लोगों को धर्म तथा सत्य मार्ग पर लगाया।

मैंने पूज्य श्री के साथ रहकर अध्ययन किया तथा श्री विद्या की दीक्षा ली। महाराज श्री एक श्लोक कहा करते थे।

मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।
शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति ते नराः॥

प्रत्यक्षानुमानादि मूलक बुद्धि जहां तक जाती है, वहां तक ही वानर आदि पशु होते हैं। पशु प्रत्यक्षानुमान एवं शास्त्र जहां तक चलते हैं, वहां तक चलने वाला प्राणी नर होता है। जीवन ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, योग, धर्म आदि का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें उनकी गहरी

पहुंच नहीं थी। महाराज श्री साक्षात् ब्रह्म स्वरूप थे। उन्होंने भीष्म की तरह उत्तरायण होने पर ही प्राणों का परित्याग किया। यह केवल संयोग नहीं माना जा सकता। हम केवल प्रार्थना करते हैं कि वे अपने पदचिह्नों पर चलने की हमें प्रेरणा करें। **ज्योतिष्पीठाधीश्वर ज० गुरु शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज।**

"पूज्य पाद द्वारा गोवध बन्धी आन्दोलन, अखण्डभारत शास्त्रीय शासन विधान, मन्दिरों की मर्यादा, सुरक्षित रहने, धर्म में हस्तक्षेप न किये जाने के लिये किये गये संकल्प आन्दोलन एवं विभिन्न प्रयास की उनके कीर्ति स्तम्भ हैं। जिस दिन सम्पूर्ण भारत में पूर्णतया गोवंशवध बन्दी हो जाएगी, उसी दिन पूज्यपाद के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।" **काशी सुमेरु पीठाधीश्वर ज० गुरु शंकराचार्य स्वामी शंकराचार्य सरस्वती जी महाराज।**

"श्री स्वामी करपात्री जी महाराज की प्रतिभा लौकिक नहीं, सर्वथा अलौकिक—दैवी थी। धर्म और ब्रह्म में उनकी अबाध गति थी। मेरी उनमें गुरु बुद्धि वर्षों से रही है और आज भी अडिग है। वे कारक कोटि के महापुरुष थे। उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे राजनीति में सक्रिय भाग लेकर कुछ अनुचित करते रहे। उन जैसा ब्रह्म और धर्म का मर्मज्ञ मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं था।" **सुप्रसिद्ध महाभागवत श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज, वृन्दावन।**

इनके अतिरिक्त श्री शास्त्री स्वामी, नन्दनन्दनानन्द सरस्वती जी महाराज, पू. पा. महाराज श्री विष्णु आश्रम जी महाराज, शुकताल, विहार घाट। पू. पा. श्री स्वामी व. भानुपुरा पीठाधीश्वर श्री स्वामी रामाश्रम जी महाराज जो कि जगद् गुरु शंकराचार्य कृष्णबोधाश्रम जी महाराज के प्रथम शिष्य हैं। पूज्य पाद श्री द. स्वा. दामोदरानन्द तीर्थ जी महाराज पक्का घाट (मेरठ)। पू. पा. श्री स्वामी भूमानन्द तीर्थ जी महाराज भूमा निकेतन हरिद्वार। पू. पा. दण्डी स्वामी श्री लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज भू. नि. हरिद्वार। जज स्वामी श्री विपिन चन्द्रानन्द सरस्वती जी महाराज। पू. पा. श्री स्वामी निश्चलानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती जी महाराज। इनके अतिरिक्त अनेकों यतियों ब्रह्मचारियों तथा विद्वानों ने भावभीनी श्रद्धाञ्जलियां समर्पित कीं। विस्तारभय से नहीं लिखा।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः

उपदेशामृत

क्या धर्म निष्फल है ?

आज कल लोगों की धर्म कर्म से आस्था उठ गई है । धर्मात्मा दुःखी और पापी सुखी देखे जाते हैं । अतः आज का मनुष्य धर्म को कार्यों का बाधक मानता है । यही शंका महाभारत बन पर्व में द्रोपदी ने धर्मराज से की थी । इसका मार्मिक व्याख्यान श्री स्वामी जी ने किया है ।

इस विषय में वन के दुःखों से सन्तप्त द्रोपदी ने धर्मराज से कहा । "हे देव ! आपको धर्म बहुत प्रिय है । धन राज्य, पत्नी, बन्धु तथा जीवन आपका धर्मार्थ ही है । मैंने सुना था कि राजा ही धर्म रक्षा करता है । किन्तु मैं यहां विपरीत देख रही हूं । जैसे छाया पुरुष का अनुगमन करती है, वैसी ही आपकी बुद्धि धर्म का अनुगमन करती है । आपने छोटे-बड़े किसी का अपमान नहीं किया । सम्पूर्ण भूमण्डल का साम्राज्य प्राप्त होने पर भी आपको अभिमान नहीं हुआ । आपके द्वारा देव, पितृ, मनुष्यों का विधिवत् पूजन सम्मान होता रहा । हे राजन् ! फिर आप पर विपत्ति क्यों आई । हे देव ! आप परम धर्मात्मा भी दुःखी कैसे ? आपकी विपत्ति तथा दुर्योधन की सम्पत्ति देखकर मेरे मन में विधाता के प्रति घृणा उत्पन्न होती है । निरन्तर अधर्म करने वाले दुर्योधन को वैभव क्यों प्राप्त हुआ ? यदि किया गया कर्म कर्त्ता को फल देता है । तो ईश्वर को भी फल मिलना चाहिये । यदि वह ईश्वरत्व के प्रभाव से बच जाता है, तो बल की प्रधानता रही । दुर्बल की देवता भी सहायता नहीं करता ।"

धर्मराज ने कहा—"हे देवि ! यद्यपि तुम्हारे वचन विचित्र हैं । तथापि नास्तिकता से भरे हैं । राजपुत्रि ! हम कर्म के फल की इच्छा से धर्म नहीं करते । कर्त्तव्य बुद्धि से यज्ञ, तप, दानादि करते हैं । मैं गृहस्थ धर्म का यथा शक्ति पालन करता हूं । शास्त्रों तथा सत्पुरुषों की आज्ञा से मेरा मन स्वभाव से धर्म में लगता है । जो फलेच्छा से धर्म करता है । वह वेदज्ञों द्वारा प्रशंसनीय नहीं है । जो धर्म में सन्देह करता है, वह नास्तिक तथा अपवित्र है । हे रानी ! मैं वेद के प्रमाण से कहता हूं, इस पर सन्देह मत करो । धर्म पर सन्देह करने वाला पशु, पक्षियों का जन्म पाता है । वेदज्ञ धर्मात्मा बालक भी वृद्धवत् आदरणीय है । धर्म शास्त्र का उल्लंघन या सन्देह करने

वाला डकैतों से भी गया गुजरा है। क्या तुम धर्म का प्रत्यक्ष फल नहीं देखती। इसके प्रभाव से मार्कण्डेय, व्यास, वशिष्ठ, मैत्रेय, नारद, लोमश आदि ऋषि चिरंजीवी तथा दिव्य ज्ञान सम्पन्न हो गये। अतः तुम्हें विधाता तथा धर्म पर आक्षेप नहीं करना चाहिये। अधर्मी काम लोभादि में आसक्त होकर नरक गामी होता है। शास्त्र आज्ञा न मानने वाला किसी जन्म में भी शान्ति नहीं प्राप्त करता है। धर्म रूपी नौका जीव को संसार सागर से तारती है। यदि धर्म का अनुष्ठान निष्फल हो तो संसार डूब जाए। क्या तुम प्रत्यक्ष नहीं देखती हो कि तुम्हारे पिता द्वारा धर्म का अनुष्ठान करने से ही तुम्हारी तथा धृष्टद्युम्न की अग्नि से उत्पत्ति हुई। **कर्मणां फलमस्तीह तथैतद्धर्म शाश्वतम्। ब्रह्मा प्रोवाच पुत्राणां यदृषिर्वेद कश्यपः।** जैसे कर्मों का फल इसी लोक में मिलता है। वैसे ही धर्म का फल भी अविनाशी है। ब्रह्मा जी ने अपने कश्यप आदि पुत्रों से कहा।

जैसे कार्तिक का बोया हुआ बीज तत्काल फल नहीं देता। चैत्र में फल देता है। चैत्र का बीज कालान्तर में फल देता है। वैसे ही धर्म का फल भी कालान्तर में मिलता है। जो मनुष्य धर्म का अनुष्ठान करते हुये भी दुःखी है। वह पिछले पाप कर्मों के फल को भोगता है। जो पापी पाप करता है तो भी सुखी है वह पिछले पुण्य कर्मों से सुखी है। उत्कट पुण्य और उत्कट पाप का फल शीघ्र मिलता है। मन्द पाप पुण्य का फल विलम्ब से मिलता है। जैसे जितनी भूमि लीपने के लिये जितना जल चाहिये उससे कम जल से यदि भूमि लीपना चाहें तो भूमि नहीं लीपी जा सकती। वैसे ही थोड़े सत्कर्मों से महापापों की निवृत्ति नहीं हो सकती। जैसे प्रबल मल्ल को हराने के लिये प्रबल मल्ल की आवश्यकता है। वैसे ही प्रबल दुष्कर्मों को क्षीण करने के लिये प्रबल सत्कर्मों की अपेक्षा है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे पंचविंशोऽध्यायः ॥२५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

पातिव्रत महत्त्व

वेदादि शास्त्रों में पतिव्रता स्त्रियों की बड़ी महिमा आई है। परन्तु वर्तमान काल में स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी हो गई हैं। महाराज श्री जी ने पौराणिक आख्यायिका देकर इसका वर्णन किया है।

प्रतिष्ठान नगर में कौशिक नाम के एक ब्राह्मण थे। उन्हें पूर्व जन्म के पाप से कुष्ठ हो गया। ऐसी स्थिति में भी उनकी पत्नी देववत् पूजा करती थीं। वह मालिश, स्नान, भोजन आदि करातीं, उनके रक्त मलमूत्र आदि साफ करती थीं। इतनी सेवा होने पर पति क्रोधी स्वभाववश क्षण-क्षण में फटकारता था। परन्तु देवी के मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह वेश्यागामी था। एक दिन उसने वेश्या के पास ले जाने के लिये पत्नी को आज्ञा दी। यदि तुम इस आज्ञा का पालन नहीं करोगी तो मैं प्राण त्याग दूंगा।

पति के कामार्त वचन सुनकर भी आज्ञा का पालन किया। रात्रि के गाढ़ अन्धकार में कन्धे पर चढ़ाकर धीरे-धीरे चली। आकाश में काली घटा थी। उसी मार्ग में एक शूली गड़ी थी। जिस पर महर्षि माण्डव्य को चढ़ाया था। ब्राह्मण के चरण का ऋषि को स्पर्श हुआ। उन्होंने कुपित होकर कहा जिसने मुझे कष्ट दिया है, वह पापी सूर्योदय होते ही मर जाए। उस पतिव्रता ने मुनि के वचन सुनकर कहा। मेरी आज्ञा से सूर्योदय ही नहीं होगा। निरन्तर रात्रि ही बनी रही। देव, ऋषि तथा पितरों को स्वाहा स्वधा, वषट् के द्वारा भोजन न मिलने के कारण व्याकुलता हुई। देवताओं के प्रसन्न न होने से वर्षा अन्न आदि का अभाव हो गया।

सब देवताओं ने मिलकर ब्रह्मा जी के पास जाकर अपना कष्ट सुनाया। ब्रह्मा जी ने कहा। तेज से ही तेज तथा तप से तप शान्त होता है। पतिव्रता के शाप से सूर्योदय नहीं हो रहा है। इससे देवताओं तथा मनुष्यों सब की हानि हो रही है। अतः परम पतिब्रता अनुसूया के पास जाओ। सब ने जाकर देवी की स्तुति की। उन्होंने आने का कारण पूछा। देवताओं ने सब बताया। अत्रि पत्नी ने कहा, ऐसा काम करो, जिससे पतिव्रता का माहात्म्य कम न हो। उसका सम्मान करके मैं सूर्य का आवाहन करूंगी। जिससे दिन रात्रि की व्यवस्था ठीक हो जाएगी।

यह कहकर वह उस पतिव्रता के मन्दिर में गईं। उसके पति तथा धर्म का कुशल पूछा। फिर कहा, "हे कल्याणि ! प्रसन्न हो। तुम समस्त देवताओं से अपने पति को श्रेष्ठ मानती हो। मनुष्य को पांच ऋण सदा देने चाहिये। १. अपने वर्ण धर्म के अनुसार धनोपार्जन करके सत् पात्र में दान, २. सत्य, ३. सरलता, ४. तप, ५. दया। इनका प्रतिदिन श्रद्धा सहित आचरण करना चाहिये। परन्तु पत्नी पति सेवा मात्र से पति के आधे पुण्य की भागिनी होती है। पत्नी के लिये पति से पृथक् यज्ञ, उपवास, श्राद्ध आदि की विधि नहीं है। ऐसी पत्नी पांचवें पतिलोक (जनलोक) को प्राप्त करती है।

अनुसूया के बचनों को सुनकर पतिव्रता ने बड़े आदर से अपने को सौभाग्य शालिनी समझा तथा कहा—हे देवि ! आपने वचनामृत से मेरी श्रद्धा बढ़ा दी है। पति प्रीति ही स्त्री के लिये दोनों लोकों का सुख देती है। हे देवि ! आप आज्ञा करें। मैं और मेरा पति क्या करे।

कपिल भगिनी ने कहा—हे महाभागे ! इन्द्र सहित समस्त देवता दुःखी होकर मेरी शरण में आये हैं। आपके वचन से सूर्य नहीं निकला अतः त्रिलोकी सन्तप्त है। इसी कार्य से मैं आई हूं। हे कल्याणि ! आप धैर्य धारण करें। सूर्य को उदय होने की आज्ञा दें।

ब्राह्मणी ने कहा—हे महाभागे ! माण्डव्य ऋषि जी ने मेरे पति को सूर्योदय होते ही मृत्यु का शाप दिया है। तब अनुसूया ने कहा—हे भद्रे ! यदि तुम चाहो तो मैं तुम्हारे पति को पूर्ववत् निरोग कर दूं। हे सुन्दरि ! मेरे लिये पतिव्रताओं का आदर करना परम कर्त्तव्य है। ब्राह्मणी ने सूर्यदेव का आवाहन किया। सूर्य उदित हुये। दस रात्रियां बीत चुकी थीं। सूर्य निकलते ही कौशिक की मृत्यु हो गई। मरते समय जैसे ही वह पृथ्वी पर गिरने लगा। पत्नी ने पकड़ लिया। वह रुदन करने लगी। अनुसूया ने कहा, हे भद्रे ! विषाद न करो। मेरी शक्ति को देखो, जिसे मैंने पति सेवा से प्राप्त किया है। ऐसा कहकर फिर दृढ़ता से कहा "यदि मैंने रूप, शील, बुद्धि, वाक्य और मधुरता आदि सद्गदुणों में अपने स्वामी के समान किसी को नहीं देखा। तो इस सत्य के प्रभाव से यह ब्राह्मण रोग रहित होकर जीवित हो जाए और अपनी पत्नी के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहे।"

ऐसा कहते ही ब्राह्मण जीवित हो गया। रोग रहित होकर युवावस्था प्राप्त की। उसके तेज से घर चमकने लगा। देववत् अजर हो गया। उस समय आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। दिव्य बाजे बजे। देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा—हे कल्याणि ! तुम्हारी आज्ञा से सूर्य उदय होने पर हमारा महान् उपकार हुआ है। वर मांगो। इसे सुनकर अनसूया बोली। "यदि ब्रह्मादि देवता मुझ पर प्रसन्न है। तो ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर मेरे पुत्र हों तथा मैं अपने पति के सहित क्लेश मुक्ति के लिये योग को प्राप्त करूं।" ब्रह्मादि देवता तथास्तु कह कर चले गये।

इस प्रकार उस पतिव्रता ब्राह्मणी ने पतिव्रत की महिमा दिखाते हुये अपने साथ पति का भी उद्धार किया। अनुसूया के गर्भ से विष्णु, रुद्र तथा ब्रह्मा के वरदान से क्रमशः दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्रमा अवतरित हुये। पतिव्रत धर्म से जगत् में कुछ भी असाध्य नहीं है।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

वेदार्थ पारिजात (प्रथम भाग से)

भारत वर्ष आर्यावर्त में अन्य तीन युगों के समान कलिकाल में वेदादि शास्त्रों का उद्धार करने के लिये पतञ्जलि, कात्यायन, पाणिनि, गौडपादाचार्य, श्री गोविन्द भगवत् पादाचार्य, श्री शंकराचार्य तथा उनके चारों शिष्यों की परम्परा में श्री शंकरानन्द, वाचस्पति मिश्र, नीलकण्ठ सरस्वती, श्री मधुसूदन सरस्वती आदि अनेक मनीषी हो चुके हैं। इसी परम्परा में इसी कोटि के देश-विदेश में विख्यात अनन्त श्री पदवाक्य प्रमाणज्ञ पारावारीण, लेखनी के परमधनी श्री हरिहरानन्द सरस्वती जी महाराज (श्री करपात्री जी महाराज) साक्षात् श्री शंकराचार्य नवावतारम् हुये। इनकी वक्तृत्व तथा लेखन शैली की मुक्त कण्ठ से जनता तथा विद्वानों ने ही प्रशंसा नहीं की, प्रत्युत इनके वेदान्त के गुरुदेव अनन्त श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज (पंडित स्वामी) षड्दर्शनाचार्य जी ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुये कहा था कि "तुसीतां वेदशास्त्र दी गल कर देऔं। पर ए वेद शास्त्र दी ऐसी गूडी (डूंगी) गल करदे आँ, जेडी तुसीं किते भी नहीं सुनी होयगी।" दिल्ली के महायज्ञ में चार-पांच लाख की भीड़ में श्री स्वामी जी के संन्यास दीक्षा गुरु जी गुरु शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने हृदयोद्गार प्रकट करते हुये कहा था कि **"यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से करपात्री जी मेरे शिष्य हैं तथा मैं इनका गुरु हूं। परन्तु विद्या की दृष्टि से जब मैं विचार करता हूं, तो मैं अपने को शिष्य रूप में तथा इनको गुरु रूप में देखता हूं।"**

जिसके शंकराचार्य गुरु के ऐसे विचार हों। उनके विषय में कुछ कहना या लिखना अनधिकार चेष्टा है। फिर भी आत्मतोष के लिये उनकी विद्वत्ता का नमूना आंशिक रूप में दिया जाता है।

यद्यपि उन्होंने अनेकों क्लिष्ट ग्रन्थों की रचना तथा भाष्य किये हैं, परन्तु उन सबमें सर्वोपरि पाण्डित्य पूर्ण "वेदार्थ पारिजात" नामक ग्रन्थ है। इसमें महाराज श्री जी ने वेदों से सम्बन्धित जीवन पर्यन्त के अध्ययन का सारांश दे दिया है। उनके जीवन काल में संसार में किसी भी विद्वान् का साहस उनके किसी भी सैद्धान्तिक ग्रन्थ के खण्डन का नहीं हुआ। परन्तु उनके ब्रह्मीभूत होने पर पं. विशुद्धानन्द जी मिश्र तथा उनकी पत्नी ने इस ग्रन्थ के खण्डन के उद्देश्य

से "वेदार्थ कल्पद्रुम" ग्रन्थ में खण्डन किया है। इसका खण्डन पुरी के वरिष्ठ शंकराचार्य पू. स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज ने **"वेदार्थ भाष्यवार्तिकम्"** नामक ग्रन्थ में इसका उत्तर गद्य-पद्य संस्कृत में किया है। श्री महाराज जी के मंगलाचरण का प्रथम श्लोक अत्यन्त रहस्य पूर्ण है।

अगजानन पद्मार्कं गजाननमहर्निशम्।
अनेकदंतं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥

सरलार्थ—अगजा = पार्वती के मुख रूपी कमल को प्रफुल्लित करने के लिये जो सूर्य के समान हैं। भक्तों की अनेक इच्छाओं की पूर्ति करने वाले एक दन्त गणेश जी की हम उपासना करते हैं।

विशेष भावार्थ—इस श्लोक में अगजानन तथा एकदन्त दोनों पद रहस्यात्मक हैं। **अगजानन**—यद्यपि यह शब्द 'जिसका हाथी का मुख नहीं है' इस भाव का भी द्योतक है। परन्तु इसमें अकार **अकारो वासुदेव : स्यात्** अकार वासुदेव स्वयं प्रकाश ब्रह्म का वाचक है अथवा अगजानन का अकार ॐ के प्रथम अक्षर का बोधक है अर्थात् अगजानन के अकार से ॐ के द्वारा मंगलाचरण किया जो कि संन्यासियों का सर्वस्व है। **एकदन्तं-एकं-एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म सजातीय, विजातीय, स्वगत तीनों भेदों से रहित होने के कारण एक है। दन्तं = शम दम तितिक्षा आदि चार साधनों का उपलक्षक दन्त पद है। भाव यह है कि अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों का निरोध करके हम **उपास्महे**—उपासना करते हैं अर्थात् उपास्य उपासक भाव को दूर कर ऐक्य रूप से चिन्तन करते हैं।

वेदों के अर्थ का निर्णय करने के लिये वेदाङ्ग, स्मृति, रामायण महाभारत आदि इतिहास, अष्टादश पुराण तथा दर्शनों की परमावश्यकता है। वेदों के प्राचीन भाष्यकारों तथा टीकाकारों ने इनका आश्रय लिया है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा पर उब्बट तथा महीधर ने भाष्य किया है। इन दोनों के भाष्यों का सारांश सन्देह रहित थोड़े शब्दों में सायणाचार्य जी ने किया है। सायण के परवर्ती आचार्यों ने इन तीनों की शैली का अनुसरण किया है। किन्तु जैन बौद्ध आचार्यों ने इसका खण्डन किया है। इनके परवर्ती आचार्यों ने दोनों में दोष बताते हुये पूर्ववर्ती आचार्यों का मण्डन किया है।

बहुत समय बीतने पर श्री दयानन्द नामक व्यक्ति ने सनातनी पद्धति को दूषित किया। वास्तव में लोकायत मार्ग में स्थित होने पर भी लोगों को ठगने, ख्याति, सम्मान तथा पूजा के लिए अपने को वैदिक सिद्ध किया है। कुछ विदेशी विद्वानों ने भी ऐसा ही दुःसाहस किया है। धर्म मार्ग में स्थित आस्तिक किसका आश्रय ग्रहण करें। उन्हें धैर्य किस प्रकार हो, यह देखकर तथा विद्वानों के प्रार्थना करने पर प्राचीन आचार्यों के समर्थन तथा विरुद्ध अर्थ करने वालों का खण्डन करने के उद्देश्य से वि० सं० २०२१ के 'प्रभव' नामक सम्वत्सर, वसन्त ऋतु, वैशाख मास शुक्ल पक्ष तृतीया गुरुवार को यह ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा हूं।

प्रमा, प्रमाण, लक्षणादिकम्

इदमिह विशेषतोऽवधारणीयम् यदैहिकामुष्मिकः सर्वोऽपि साध्य-साधन भावः प्रमाणमूलक एव प्रसिद्ध्यति। प्रमाणञ्च प्रमाकरणमेव। प्रमात्वञ्चानधिगतावाधित विषयज्ञानत्वमेव। वेदान्तरीत्या प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वेऽपि संसार दशायामबाधित्वस्याव्याहतत्वात्। प्रत्यक्ष प्रमा चात्र चैतन्यमेव, तस्यैव स्वतोऽपरोक्षत्वात्। यद्यपि तस्यानादित्वेन न तत्करणत्वं चक्षुरादेः संघटते, तथापि तदभिव्यञ्जिकाया अन्तःकरण वृत्तेश्चक्षुरादि जन्यत्वसंभवेन वृत्ति-विशिष्ट चैतन्यस्यसादित्वोपपत्त्या चक्षुरादीनां तत्करणत्वे बाधाभावात्। मनसः सावयवत्वेन मेध्यं परिमाणस्य चक्षुरादि सन्निकर्षद्वाराबरके तमस्यपनीते तडागोदकस्य कुल्यात्मना केदारान् प्रविश्य तत्तदाकारवच्च, चक्षुरादि प्रणालिकया घटादि विषये देशमुपगतस्य तत्तदाकारतापत्तिः। घट-मठयोरिव विभाजकयोरुपाधयोरेकदेशस्थत्वेन विभेदाजनकत्वादुपहितयोरभेद एव। तथा च वृत्यवच्छिन्न चैतन्यस्य विषयावच्छिन्न चैतन्याभिन्नत्वमेव घटांशे घटाज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वम्, विषयस्य तु प्रमातृचैतन्य सत्तातिरिक्त सत्ताकत्त्वाभावत्वमेव प्रत्यक्षत्वम्। घटादेः स्वावच्छिन्न चैतन्येऽध्यस्ततया विषयचैतन्य। सत्तैव घटादि सत्ता, अधिष्ठान सत्तारिक्ताया आरोपित सत्ताया अनंगीकारात्।

यथा प्रकाशः स्वतः प्रकाशते तदन्यत्तु तत्संसर्गेण, चैतन्यस्यासंगत्वेन तस्याध्यासिक संसर्गमन्तरा नान्य संसर्गः सम्भवतीति विषयस्य विषयावच्छिन्न चैतन्येनाध्यासिक सम्बन्ध सत्वेऽपि न प्रमातृचैतन्येन तत्सम्बन्ध इति तत् संसर्ग

साधनायैव चक्षुरादि व्यापारः। अन्तःकरणघटयोरेकदेशस्थत्वेनान्तः-करणावच्छिन्न चैतन्य रूप प्रमातृचैतन्येन विषयावच्छिन्न चैतन्य रूप प्रमेय चैतन्यस्यैक्यं भवति। तथा च विषयावच्छिन्न चैतन्य अध्यस्यमपि घटादिकं प्रमातृ चैतन्याध्यस्तं भवति। तावतैव विषयस्य प्रमातृ चैतन्येनाध्यासिक संसर्गत्वात् चैतन्येन घटादि विषय प्रकाशः सम्पद्यते।

अनुमित्यादि स्थले तु चक्षुराद्यसंसर्गेणान्तःकरणस्य बह्न्यादि देशं गमनाभावेन विषमान्तःकरणाभेदभावेन न प्रत्यक्षत्वम्, किन्तु व्याप्ति ज्ञानादिजन्या परोक्षवृत्तिरेव जायते सुखाद्यवच्छिन्न चैतन्यस्य तद्वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्यस्य च नियमेनैकत्र स्थितोपाधिद्वयावच्छिन्नत्वान्नियमेनाहं सुखीत्यादि ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमेव।

धर्माधर्मयोरन्तःकरण निष्ठत्वेऽप्ययोग्यत्वयोस्तु फलबलकल्प्य स्वभावस्यैव शरणत्वात्।

वर्तमान दशायां त्वं सुखीति वाक्यजन्यस्यापि ज्ञानस्य प्रत्यक्षतैव अतएव 'दशमस्त्वमसि' इतिवत् 'तत्त्वमसि' इति महावाक्य जन्यस्याप्यहं ब्रह्मेति ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमेव।

"रूपी घटः" इत्यत्र रूपाकार वृत्तिदशायां तत्र परिमाणसत्वेऽपि परिमाणाद्याकारवृत्यभावेन परिमाणाद्याकार वृत्युपहित प्रमातृ चैतन्याभेदाभावेन न तत् प्रत्यक्षता।

सांख्यादि दृष्ट्या प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणमिति व्युत्पत्त्या प्रमां प्रति करणत्वमेव प्रमाणलक्षणम्। असंदिग्धा विपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः प्रमाणम्। बोधश्च पौरुषेयः फलं प्रमा। एतेन संशय विपर्यय स्मृति साधनेषु नातिव्याप्तिः। चैतन्य प्रतिबिम्ब विशिष्ट बुद्धि वृत्तिः, वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्यं वा फल पदार्थः। स एव मुख्यप्रमापद वाच्यः। तत्करणत्वेन वृत्तेः प्रमाणत्वम्। वृत्तिकरण-त्वेनेन्द्रियादीन्यपि प्रमाणपदवाच्यानि भवन्ति।

अर्थ—विशेष रूप से यह समझने का विषय है कि सभी साध्य साधन भाव चाहे इह लौकिक या पारलौकिक हों, प्रमाण मूलक ही सिद्ध होते हैं। प्रमा का कारण प्रमाण है। प्रमा

वह ज्ञान है जो कि अज्ञान तथा बाध रहित विषय को ग्रहण करता है। (वस्तु के रहते हुये भी अवस्तु के निराकरण के अनन्तर अवस्तु की निवृत्ति बाध है। जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति में रस्सी का यथार्थ ज्ञान होने पर रस्सी में सर्प का बाध हो जाता है।) अद्वैत वेदान्त की रीति से जगत् वास्तव में मिथ्या होने पर भी व्यावहारिक दशा में बाधित नहीं हैं। इस मत में प्रत्यक्ष प्रमा चैतन्य ही है। उसी का अपरोक्ष ज्ञान होता है और वह अनादि है। अतः इसका कोई कारण नहीं है। यद्यपि प्रत्यक्ष में चक्षु आदि इन्द्रियां कारण हैं। तथापि वे करण नहीं हैं। चैतन्य की अभिव्यंजक अन्तःकरण की वृत्तियों का कारण होने से वृत्ति विशिष्ट चैतन्य ही करण कहलाता है। मन के सावयव होने से मध्यम परिमाण का चक्षु आदि के निकट होकर अन्धकार के दूर होने पर मन तथा नेत्र द्वारा रूप का ज्ञान होता है। जैसे तालाब का जल नाली के द्वारा खेत में प्रविष्ट होकर खेत के आकार को प्राप्त करता है। वैसे ही तालाब स्थानीय अन्तःकरण से इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न नालिका रूप वृत्तियां निकलकर विषय देश (जो खेतों के स्थानापन्न हैं) को प्राप्त कर विषयाकार बन जाती है। जैसे घट मठ रूपी विभिन्न उपाधियां एक अधिष्ठान आकाश में रहने से तदुपहित का अभेद सिद्ध है, वैसे ही चक्षु आदि इन्द्रियों से उत्पन्न अन्तःकरण की वृत्तियां और घट मठ आदि विषयों से उपहित वृत्ति में स्थित चैतन्य तथा विषय में विद्यमान चैतन्य अभिन्न हैं, इसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अतः वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य तथा विषयावच्छिन्न चैतन्य का अभेद घट ज्ञान का अभावात्मक है, क्योंकि अधिष्ठान सत्ता के अतिरिक्त आरोपित सत्ता नहीं है। जैसा कि प्रकाश स्वयं प्रकाश मान है, उससे भिन्न घट मठ आदि पदार्थ प्रकाश के सम्बन्ध से प्रकाशमान हैं, वैसे ही चैतन्य स्वयं प्रकाश है। उसके प्रकाश से सभी वस्तुयें प्रकाशित होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि सूर्य के प्रकाश का सम्बन्ध घटादि के साथ कल्पित है। परन्तु चैतन्य असंग है। (अर्थात् किसी भी दूसरे पदार्थ से संसर्ग नहीं रखता है।) अतः मिथ्या कल्पित सम्बन्ध होने के कारण आध्यासिक सम्बन्ध है। बिना कल्पना के संसर्ग नहीं बनता। घटादि का यह संसर्ग विषयावच्छिन्न चैतन्य के साथ सम्भव होते हुये भी प्रमातृ चैतन्य के साथ सम्भव नहीं है। इसकी सिद्धि में चक्षु आदि इन्द्रियों का व्यापार है। इससे अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य रूपी प्रमातृ चैतन्य एवं विषयावच्छिन्न चैतन्य रूपी प्रमेय चैतन्य का ऐक्य सिद्ध होता है। तो विषयावच्छिन्न चैतन्य में अध्यस्त घटादिक प्रमातृ चैतन्य में अध्यस्त हो जाता है। अतः घटादि विषय के साथ चैतन्य का सम्बन्ध और घटादि का प्रकाश सिद्ध हुआ।

अनुमिति इत्यादि स्थल में अग्नि का प्रत्यक्ष नहीं है। क्योंकि नेत्र का संयोग अग्नि के साथ नहीं है। इसलिये अन्तःकरण अग्नि देश तक नहीं जा सका। विषयान्तःकरण के अभेद के अभाव से प्रत्यक्ष नहीं है। किन्तु व्याप्ति ज्ञान परामर्श आदि से उत्पन्न परोक्ष वृत्ति ही है। क्योंकि सुखादि विषयावच्छिन्न चैतन्य तथा तद्वृत्यवच्छिन्न चैतन्य की स्थिति एक देश में है।

धर्म और अधर्म अन्तःकरण में रहने वाले हैं। अर्थात् इन्द्रियों के विषय नहीं हैं। अत एव शब्दादि के द्वारा अन्तःकरण की तदाकार वृत्ति होकर भी योग्यता न होने से वृत्ति विषयावच्छिन्न चैतन्य का भेद है। घट मठ आदि इन्द्रियों के विषय हैं। अतः योग्यता वाले हैं। धर्माधर्म अतीन्द्रिय होने से उनमें अयोग्य हैं। योग्यता भी विषय का विशेषण है। योग्यता तथा अयोग्यता फल बल से प्राप्त होती है। इस प्रकार का स्वभाव ही इसमें शरण है। 'तुम सुखी हो' इस वाक्य से वर्तमान काल में उत्पन्न ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। 'इसलिये दशम तुम हो' इसके समान तुम वही ब्रह्म हो इस गुरु के महावाक्य से उत्पन्न ज्ञान 'मैं ब्रह्म हूं' यह ज्ञान प्रत्यक्ष ही है।

'रूपी घटः' इति शब्द में अन्तःकरण वृत्ति रूपाकारा है। रूपाधिकरण घट में वहां परिमाण होने पर भी परिमाणाकार अन्तःकरण की वृत्ति न होने से अन्तःकरण की वृत्ति की उपाधि सहित प्रमातृ चैतन्य का अभेद सिद्ध नहीं है। अतः परिमाण प्रत्यक्ष नहीं है।

सांख्य मत की दृष्टि से **प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम्** इस व्युत्पत्ति से प्रमाकरण को प्रमाण कहते हैं। संदेह रहित यथार्थ तथा अनधिगत पदार्थ को विषय करने वाली चित्तवृत्ति प्रमाण है। इस लक्षण की संशय-विपर्यय-स्मृति आदि में अतिव्याप्ति दोष नहीं है। उभय कोटि ज्ञान का नाम संशय है। अर्थात् मन्द अन्धकार में रस्सी को देखकर यह रस्सी है या सर्प है इस संदेह को संशय कहते हैं। **विपर्यय**—विपरीत ज्ञान का नाम विपर्यय है। अर्थात् धर्म में अधर्म बुद्धि, सत्य में असत्य बुद्धि विपर्यय है। बोध पौरुषेय तथा प्रमा फल है। चैतन्य में प्रतिबिम्बित विशिष्टबुद्धिवृत्ति अथवा बुद्धि वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य फल पदार्थ है। वही मुख्य प्रमापद का अर्थ है, इसका कारण बुद्धि वृत्ति है। बुद्धि वृत्ति का कारण इन्द्रियां हैं, इसलिये बुद्धि वृत्ति और इन्द्रियां भी प्रमाण कहलाती हैं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथ अष्टविंशोऽध्यायः

वेद लक्षणम्

तन्त्रागम पुराणन्यायसांख्य योग मीमांसा धर्मशास्त्रांगोपवृंहित विविधानवद्य विद्योद्गमस्थान भूतानां वेदानां सर्वार्थ विद्योतित्वं निरुपचरितमेव। "वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" (म. १।२१) "शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्" वेदान्त दर्शन १।३।२८ "शास्त्रयोनित्वात्" १।१।३ वे. द.॥

ऊपर लिखे ग्रन्थों से युक्त अनेक निर्दोष विद्याओं के उद्गम स्थान वेदों की सर्वार्थ प्रकाशकता स्वतः सिद्ध है। अर्थात् ऊपर लिखे ग्रन्थ वेद प्रमाण से प्रामाणिक हैं। वेद स्वतः प्रमाण है। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने वेदों के शब्दों के आधार पर सबके भिन्न-भिन्न नाम कर्त्तव्य और कर्म तथा जीवनयापन की व्यवस्था की है। मनु के इस वचन से तथा व्यास जी के वेदान्त सूत्र के आधार पर 'शब्द इति' विश्व की सृष्टि करने और उसको प्रकाशित करने में प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से वेदों का असाधारण महत्त्व ज्ञात होता है। ब्रह्म तथा धर्म ज्ञान का कारण वेद रूपी शास्त्र है। विश्व की सृष्टि तथा उसके प्रकाशकत्व रूप से वेदों का असाधारण माहात्म्य ज्ञात होता है। आपस्तम्ब आदि ऋषियों ने भी **मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्** मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग दोनों की वेद संज्ञा दी गई है। परन्तु श्री स्वामी दयानन्द जी ने एक-एक वेद की एक-एक संहिता मानी है। अन्य संहिताओं को निरस्त कर दिया है। उन्होंने ब्राह्मण भाग को भी वेद नहीं माना है; जो महाभाष्यकार पतञ्जलि तथा सभी ऋषियों के मत के विरुद्ध है। श्री उदयनाचार्य जी ने भी कहा है कि "जिसका मूल कहीं उपलब्ध न हो वह वेद है।" प्राचीन आचार्यों ने इसका लक्षण किया है कि "शब्दातिरिक्त तथा शब्दोपजीवी जो प्रमाण है, वह वेद है।"

वेद की अपौरुषेयता

वेद की रचना किसी देवता, ऋषि, अवतार, सिद्ध पुरुष या ईश्वर इनमें से किसने की है, इस विषय में बड़ा मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वान् ईश्वर कृत, कुछ हिरण्य गर्भ कृत, कुछ प्रजापति, कुछ अग्नि आदि देवताओं को वेद का कर्त्ता मानते हैं। किन्तु जैसा मतभेद वेद के विषय में पाया जाता है, वैसे मनुस्मृति, बाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत के कर्त्ताओं के

विषय में नहीं। यदि वेद का कर्त्ता ऊपर कहे गये कर्त्ताओं में से कोई एक, दो या तीन होते, तो इसका कहीं प्रमाण मिलता। इसलिये वेद अपौरुषेय सिद्ध होते हैं।

कुछ विद्वान् निम्नलिखित प्रमाण देकर अपने-अपने पक्ष को सिद्ध करते हैं। **'ब्रह्म स्वयम्भु'** (तै. आ. २.९) **"वाचा विरूप नित्यया"** (ऋ. सं ८।७५।६) **"अनादि निधना नित्य वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा"** (महा. शान्ति पर्व २३२ अ. ३५ श्लोक) **"अतएव च नित्यत्वम्"** (ब्रह्मसूत्र १।३।२९) **"तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे"** (पु. सू.) **"अग्ने ऋग्वेदः"** इत्यादि वचनों से।

अर्थ—ब्रह्म (वेद) स्वयं प्रकट हैं। वेद की वाणी नित्य है, उत्पत्ति विनाश रहित नित्य वेद वाणी स्वयं प्रकट हुई है। इसलिये वेद का नित्यत्व है। अग्नि से ऋग्वेद हुआ। उस यज्ञ से ऋक् तथा साम की उत्पत्ति हुई। इन मंत्रों में वेद के कर्त्ता का निर्देश नहीं है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै—जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा की रचना करता है बाद में उनको वेदों का उपदेश देता है। इस श्रुति के अनुसार चतुर्मुख ब्रह्मा के विधाता ईश्वर वेदों की रचना नहीं करते। किन्तु अनादि सिद्ध वेदों का ब्रह्मा के हृदय में प्रवेश कराते हैं।

यदि आप इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते कि वेदों का कर्त्ता कौन है? कोई मनुष्य है, योगी है अथवा ईश्वर है। यदि आप किसी मनुष्य को वेदों का कर्त्ता मानते हो तो ठीक नहीं क्योंकि मनुष्य को ब्रह्म धर्म आदि का ज्ञान वेद से ही होता है। अतः मनुष्य वेद का कर्त्ता नहीं हो सकता। यदि किसी योगी को वेदों का कर्त्ता मानते हो, तो वह भी नहीं हो सकता। क्योंकि योगी को धर्माधर्म आदि का ज्ञान बाह्य इन्द्रियों से होता है या मन से? बाह्य इन्द्रियों से ज्ञान हो नहीं सकता, क्योंकि धर्माधर्मादि का ज्ञान बाह्य इन्द्रियों की शक्ति से परे है। मन से भी इनका ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा के योग्य गुणों के अतिरिक्त अन्य विषयों में ज्ञान उत्पन्न करने की सामर्थ्य मन में नहीं है। यद्यपि धर्माधर्म आत्मा के गुण हैं, तो भी अयोग्य होने से मन के विषय नहीं हो सकते। भाव यह है कि बाहर या अन्दर इन्द्रियों से प्रत्यक्ष के योग्य वस्तु का प्रत्यक्ष होता है। नेत्रों से रूप का, कान से शब्द का, त्वचा से शीतोष्ण, कोमल कठोर आदि का प्रत्यक्ष होता है। वैसे ही मन से सुख-दुःख का प्रत्यक्ष भले ही हो, किन्तु मन से पुण्य, पाप, आत्मा आदि का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, क्योंकि मन इस प्रत्यक्ष के योग्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि योगी में वेद रचने की सामर्थ्य अकारण है या सकारण है ? अकारण हो नहीं सकती, यदि अकारण मानते हैं तो बिना कारण भोगियों में भी वेद रचने की सामर्थ्य होनी चाहिये । यदि सकारण सामर्थ्य है, तो भी बनता नहीं, क्योंकि योगादि लक्षण धर्म के हेतु होने पर पहले उनका ज्ञान आवश्यक है । यह ज्ञान वेद के बिना हो नहीं सकता । अतः वेद का कर्त्ता योगी हो नहीं सकता ।

ईश्वर भी वेद का कर्त्ता नहीं हो सकता, क्योंकि वेद से ही ईश्वर की सिद्धि होती है । यदि ईश्वर को वेदों का कर्त्ता मानते हैं तो अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होता है । इसलिये ईश्वर भी वेद का कर्त्ता नहीं है । परन्तु कल्प के आरम्भ में स्मरण करता है । वेद भी ईश्वर के समान अनादि अपौरुषेय सिद्ध हुये । **(वेदार्थ पारिजात से)**

।। इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे अष्टविंशोऽध्यायः ।।२८ ।।

अथ ऊनत्रिंशोऽध्यायः

स्वामी जी का विशालतम अध्ययन

विद्वान् पाठकों ने महाराज श्री की वेदों में अबाध गति का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लिया होगा । इसका विस्तार "वेदार्थ परिजात" में देखें । वेदों के सूक्ष्म तत्त्वों की विस्तृत व्याख्या बाल्मीकि, व्यास आदि ऋषियों ने रामायणों में की है । महाराज श्री जी को हिन्दी, संस्कृत तथा संसार की अन्यान्य भाषाओं की लगभग २८८ रामायणों का ज्ञान था । उनमें से 'रामायण मीमांसा' के आधार पर कुछ रामायणों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

१. **महारामायणम्—इसमें साढ़े तीन लाख ३,५०,००० श्लोक हैं। इसमें शिव पार्वती सम्वाद है। अयोध्या के कनक भवन में सहजानन्दिनी रूपधारिणी श्री सीता जी के साथ भगवान् राम की भू मण्डल, सूर्य मण्डल, चन्द्र मण्डल, नक्षत्र तथा तारा मण्डलों में श्री राम की ९९ रास लीलाओं का वर्णन है।**

२. **मञ्जुलरामायणम्—इसमें १,२०,००० एक लाख बीस हजार श्लोक हैं। यह सुतीक्ष्ण कृत है। इसमें भानु प्रताप अरिमर्दन की कथा है। ब्राह्मणों के शाप से इनका रावण, कुम्भकरण के रूप में होना तथा शवरी के प्रति राम द्वारा नवधाभक्ति का उपदेश वर्णित है।**

३. देव रामायणम्—यह ग्रन्थ १, २५,००० एक लाख पच्चीस हजार श्लोकों में है। इसमें इन्द्र जयन्त सम्वाद है। जब इन्द्र पुत्र जयन्त सीता के चोंच प्रहार करके भागा। तीनों लोकों में कहीं शरण नहीं मिली। नारद जी की आज्ञा से वह भगवान् राम के पास पहुंचा। प्रणाम करके क्षमा याचना की। एक नेत्र लेकर भगवान् ने छोड़ दिया वह पिता के पास पहुंचा। उसने राम का माहात्म्य जानने के लिये पिता इन्द्र से जिज्ञासा की। इन्द्र ने विस्तार से राम चरित्र सुनाया।

४. भुशुण्डी रामायणम्—यह ४०,००० चालीस हजार श्लोकों में ब्रह्मा भुशुण्डी सम्वाद है। इसे 'ब्रह्म रामायणम्' भी कहते हैं, इसमें श्री राम पूजा का विस्तृत वर्णन हुआ है।

५. स्वयम्भुव रामायण—यह ग्रन्थ १८,००० अठारह हजार श्लोकों में ब्रह्म नारद सम्वाद के रूप में है। इसमें मन्दोदरी के गर्भ से सीता की उत्पत्ति बताई है।

६. योगवाशिष्ठ—यह अद्वैत वेदान्त के अजातवाद का प्राचीन ग्रन्थ वाल्मीकि द्वारा रचित ३२,००० बत्तीस हजार श्लोकों तथा छः प्रकरणों में है। जिस समय यज्ञ रक्षा के लिये विश्वामित्र अयोध्या पहुंचे। महाराज दशरथ जी से राम लक्ष्मण को मांगा। महाराज ने श्री राम की उदासीनता का वर्णन किया। इससे पूर्व चारों भाई वेदाध्ययन के अनन्तर छः महीने की तीर्थ यात्रा करके लौटे तो उन्हें उत्कट वैराग्य हुआ। उन्हें भोजन, खेल कूद, पूजा-पाठ, सन्ध्योपासनादि किसी में रुचि नहीं थी। माता-पिता आदि के विशेष आग्रह से शारीरिक क्रिया करते थे। इतने शिथिल हो गये थे कि उठना-बैठना भी कठिन था। अपने पहले प्रकरण में विस्तार से संसार के भोगों का वर्णन श्री राम जी ने किया। तब विश्वामित्रादि ऋषियों तथा महाराज की इच्छा से गुरु वशिष्ट जी ने आत्म ज्ञान का उपदेश किया। इसमें पहला वैराग्य प्रकरण, २. मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, ३. उत्पत्ति प्रकरण, ४. स्थिति प्रकरण, ५. उपशम प्रकरण, ६. निर्वाण प्रकरण हैं।

७. **वाल्मीकीय रामायण**—इस रामायण की महाराज जी ने आद्योपान्त विशेष समालोचना की है। वाल्मीकि के आश्रम में जब सीता के दोनों पुत्रों के उपनयन के अनन्तर वेदारम्भ हुआ। उनको गायत्री का उपदेश हुआ। इस मन्त्र की विशद व्याख्या के उद्देश्य से ऋषि ने बालकों को २४,००० हजार श्लोकों तथा सात काण्डों में रामायण सुनाई। इस रामायण पर संस्कृत में अनेक टीकायें हैं। जिनमें से, नागेशभट्ट, श्री नीलकण्ठ स्वामी, श्री पं. गोविन्द राज तथा श्री पं. वंशीधर शर्मा जी उपाध्याय की टीकायें विशेष हैं।

८. **आनन्द रामायणम्**—उपर्युक्त रामायणों में विभिन्न देव तथा ऋषियों के सम्वाद होने पर भी इनके कर्त्ता वाल्मीकि हैं। शतकोटि राम चरित के अन्तर्गत हैं। आनन्द रामायण इसके मध्य भाग में है। इसमें शिव पार्वती सम्वाद नौ काण्ड, १०९ सर्ग तथा बारह हजार दो सौ बावन श्लोक हैं। इन काण्डों के नाम अन्य रामायणों से सर्वथा विभिन्न हैं। पहला सारकाण्ड—इसमें सातों काण्डों का सार होने के कारण इसका नाम सारकाण्ड हैं। २. यात्रा काण्ड, ३. याग काण्ड, ४. विलास काण्ड, ५. जन्म काण्ड, ६. विवाह काण्ड, ७. राज्य काण्ड, ८. मनोहर काण्ड, ९. पूर्ण काण्ड है।

यात्रा काण्ड में भगवान् ने कुम्भोदर ऋषि की आज्ञा से तीर्थों की यात्रा की तथा याग काण्ड में दस यज्ञों का अनुष्ठान किया। इनके द्वारा रावण आदि की ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया। विलास काण्ड के तीसरे सर्ग में श्री राम जी ने सीता जी को पन्द्रह श्लोकों में देह रामायण सुनाई। उसकी व्याख्या सीता जी ने ६० श्लोकों में की। इस काण्ड में भगवान् की ऐश्वर्य प्रधान लीलायें हैं। जन्म तथा विवाह काण्ड में सीता वनवास, वाल्मीकि जी के आश्रम में दोनों बालकों का जन्म, श्री राम के अश्वमेधीय घोड़े का लव-कुश द्वारा पकड़ना, सीता जी का पति संयोग करने वाला अनुष्ठान वाल्मीकि जी से पूछना, लव के द्वारा सुनहरी कमल पुष्पों का अयोध्या में राम की वाटिका से लाना, रक्षकों के साथ युद्ध, लक्ष्मण भरत आदि के साथ युद्ध, श्री सीता जी का शपथ लेना, सिंहासन सहित पृथ्वी का प्रकट होकर सीता जी का पाताल में जाना, पृथ्वी की प्रार्थना करने पर भी श्री राम को सीता का न देना, राम के द्वारा पृथ्वी को मारने

के लिये उद्यत देखकर सिंहासन सहित श्री राम के प्रति सीता को समर्पित करना, यज्ञ की पूर्णाहुति के अनन्तर राजभवन में लौटना, तीनों भाइयों के पुत्रों का जन्म, जन्मकाण्ड में है तथा आठों के विवाह की कथा विवाह काण्ड में है। राज्य काण्ड में राज्य करते हुये श्री राम की आनन्दवर्द्धक कथायें विशद रूप में वर्णित हैं। मनोहर काण्ड में श्री राम पूजा का विस्तार, पार्षदों सहित है। इसमें रामतोभद्र, रमातोभद्र, सर्वतोभद्र, लिंगतोभद्र, १०८ तथा १००८ भद्रों का रचना प्रकार तथा देवों की स्थापना तथा इनका आध्यात्मिक भाव वर्णित है। वेदादि की फल श्रुति में वाल्मीकि द्वारा अनेक रामायणों के नाम, राम नवमी व्रत की विधि, चैत्र मास माहात्म्य एवं श्री राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, शत्रुघ्न, श्री हनुमान के कवच तथा अनेकों कीर्तन दिये हैं। अन्तिम पूर्ण काण्ड में भगवान् का चन्द्र वंशी राजाओं से युद्ध कुश का राज्याभिषेक तथा प्रजा सहित निज धाम जाने की कथा आती है। इसमें आद्योपान्त्य आनन्दप्रधान लीलाओं के कारण इसका आनन्द रामायण नाम है।

९. अध्यात्मरामायण—इसमें सात काण्ड, ६४ सर्ग तथा ४,२०० श्लोक हैं। शिव पार्वती सम्वाद से युक्त इसके प्रत्येक सर्ग में भक्ति ज्ञान वैराग्य भरा है। इसलिये इसका नाम अध्यात्मरामायण है। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री राम चरित मानस में इसके आधार पर कथा, भक्ति, ज्ञान तथा स्तोत्र लिखे हैं।

१०. अद्भुत रामायण—इसमें लगभग ३,००० श्लोक हैं। श्री सीता जी के हाथ से शतमुखी या कल्पभेद से सहस्त्रमुखी रावण की मृत्यु का वर्णन हुआ है। श्री राम जी ने सीता सहस्त्र नाम स्तोत्र से सीता जी की स्तुति की है। इसमें श्री राम जी का परशुराम जी के हाथ से वैष्णव धनुष लेते ही राम के विश्वरूप का वर्णन है।

११. लोमश रामायण—यह ३२,००० श्लोकों में लोमश ऋषि द्वारा वर्णित राम चरित्र है। इसमें राजा कुमुद तथा उनकी रानी वीरणवती की तपस्या से दूसरे जन्म में दशरथ कौशल्या के रूप में वर्णन हुआ है।

१२. अगस्त्य रामायण—यह १६,००० श्लोकों में है। इसमें भानु प्रताप तथा अरिमर्दन का रावण कुम्भ करण के रूप में जन्म तथा महाराज कुन्तल तथा पत्नी सिन्धुमती का दशरथ कौशल्या के रूप में जन्म वर्णित है।

१३. सौपद्य रामायणम्—अत्रि कृत ६२,००० श्लोकों में है। इसमें वाटिका प्रसंग विशेष रूप से है।

१४. रामायण महामाला—यह ५६,००० श्लोकों में शिव-पार्वती सम्वाद रूप में है। इसमें भुशुण्डी द्वारा गरुड़ का मोह निवारण वर्णित है।

१५. सौहार्द्र रामायण—शरभंग कृत ४०,००० श्लोकों में है। इसमें राम लक्ष्मण जी का वानरी भाषा समझने तथा बोलने का उल्लेख है।

१६. रामायण मणिरत्न—यह ३६,००० श्लोकों का ग्रन्थ वशिष्ठ अरुन्धती सम्वाद रूप में है। इसमें अयोध्या तथा मिथिला में वसन्तोत्सव मनाने का विशेष रूप से वर्णन है।

१७. सौर्य रामायणम्—इसमें सूर्य नारायण ने हनुमान जी को राम कथा सुनाई है। इसमें ६२,००० श्लोक हैं। इसमें शुक चरित्र विशेष रूप से वर्णित है। सीता जी के शाप से उसी का अयोध्या में धोबी के रूप में जन्म तथा सीता के त्याग का कारण वर्णित है।

१८. चान्द्र रामायण—७५,००० हजार श्लोकों में है। केवट के पूर्व जन्म की कथा इसकी विशेषता है।

१९. मैन्द रामायण—यह ५२,००० श्लोकों में मैन्द कौरव सम्वाद् रूप में हैं, इसमें वाटिका प्रसंग विस्तार से है।

२०. सुब्रह्मण्य रामायण—यह ३२,००० श्लोकों में है।

२१. सुवर्च रामायण—इसमें सुग्रीवतारा सम्वाद १,५०,००० श्लोकों में है। इसमें सुलोचना की कथा, धोवी धोविन संवाद, रावण के चित्र के कारण शान्ता की चुगुली, शान्ता के प्रति सीता जी का पक्षी योनि की प्राप्ति का शाप तथा सीता द्वारा महारावण के वध का वर्णन है।

२२. श्रवण रामायण—१,२५,००० श्लोकों में वर्णित यह इन्द्रजनक सम्वाद रूप में है। इसमें मन्थरा के जन्म की कथा, चित्रकूट में भरत की यात्रा तथा वहां जनक जी का आगमन वर्णित है।

२३. दुरन्त रामायण—६१,००० श्लोकों में वसिष्ठ जनक सम्वाद रूप में है। इसमें भरत की विशेष महिमा का वर्णन है।

२४. रामायण चम्पू—यह १,२५,००० श्लोकों में शिव नारद सम्वाद रूप में है। शीलनिधि राजा के स्वयंवर का इसमें विशेष रूप से उल्लेख है।

२५. अग्निवेश्म रामायण—

२६. तत्वसार संग्रह रामायण—

२७. वशिष्ठ सारायण—यह वशिष्ठ द्वारा कथित है। इसमें भगवान् श्री राम ने हनुमान जी को १८ अध्यायों में श्री राम गीता सुनाई है।

इनके अतिरिक्त महाभारत के बन पर्व का रामोपाख्यान, रघुवंश, पद्मपुराण, स्कन्द पुराण आदि का राम चरित इसके अतिरिक्त कुल संस्कृत की १०७ रामायणें तथा १८१ तामिल, तेलगू, बंगला मलयालम, कन्नड़, आसामी, बिहारी, गुजराती, मराठी, सिंघली आदि राम की कीर्ति, केन, काक्बन, गोविन्द, पंजाबी, कालिदास, बौद्धावतार सूत्रम्, पउयमचर्यम् आदि अनेकों के उद्धरण दिये हैं। इससे महाराज श्री जी की रामायण सम्बन्धी विद्वत्ता का भी परिचय मिलता है। ऐसे युग पुरुष भारत में अत्यन्त दुर्लभ हैं।

ऐसे महापुरुष के पाद पद्मों में **बन्दे महापुरुष ते चरणाविन्दम्।**

परमानन्द समुद्रोल्लास निवासैक पूर्णिमा ज्योत्स्ने।
श्रीमत्करपात्र चरण सरसीरुहपादुके वन्दे ॥३८॥
संसृति सागर निपतल्लोक समुद्धार कारणी भूते।
श्रीमत् करपात्र चरण सरसीरुह पादुके वन्दे ॥३९॥

श्री मत्कारपात्री जी के चरण कमलों की पादुकाओं को हम प्रणाम करते हैं। जो परमानन्द रूपी समुद्र में बाढ़ लाने वाली चन्द्रमा की चांदनी के समान है तथा जो संसार सागर में डूबते हुये प्राणियों का उद्धार करने वाली श्री करपात्री जी के चरण कमलों की पादुकाओं को हम प्रणाम करते हैं। **(अभिनव शंकर से)**

॥ इति श्री स्वामी करपात्री चरितम् ॥

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥



अथ त्रिंशोऽध्यायः

(८२८) अनन्त श्री पूज्य पाद श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

परम भागवत षड्दर्शनाचार्य श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी का जन्म जनपद वाराणसी गंगातट पर महराई नामक गांव में सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में सं. १९६८ वि. श्रावणी अमावस्या २५ जुलाई, सन् १९११ ई. को पुष्य नक्षत्र में शुक्रवार के दिन हुआ था। आपके पिता, पितामह सनातनी सदाचारी, वेदज्ञ उस क्षेत्र के गुरु थे। श्री स्वामी जी की सात वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो गई। पिता की मृत्यु के बाद माता तथा पितामह ने उनका भरण-पोषण किया। माता प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रों से श्री राम चरित का पाठ करती थीं। तब इनके नेत्रों से भी अश्रु प्रवाहित होते थे। इनके पूर्व आश्रम का नाम श्री शान्तनु बिहारी जी था। आपका अक्षरारम्भ मानस से हुआ। पितामह के पास विद्यार्थी पढ़ने आते थे। आठ नौ वर्ष की आयु में श्री सत्य नारायण की कथा, दुर्गासप्तशती, मुहूर्त चिन्तामणि आदि कण्ठ कर लिये थे। दस वर्ष की आयु में लघुकौमुदी, रघुवंश, तर्क संग्रह का स्वाध्याय किया। पितामह ने योग्य समझकर दस वर्ष की आयु में सिंहासन पर बिठा कर तिलक माला पहनाई तथा भागवत पढ़ाने लगे। तब से श्रीमद् भागवत् इनके गले का हार हो गया।

जब आप पाठशाला में पढ़ते थे। निरीक्षक आया। बालकों की परीक्षा हुई। इनको ८ +६ का योग श्याम पट पर लिखने को कहा। इन्होंने १४ के स्थान पर १३ लिखा। अध्यापक ने डांटा। तुम्हें यह किसने सिखाया। भूलकर १४ की जगह १३ लिख गया। भूल किसी के सिखाने से नहीं आती। स्वतः आती है। स्कूल तथा क्लास शब्द की व्याख्या करते थे कि संस्कृत के ऋषिकुल के ऋ का लोप होकर क में दीर्घ उकार स्कूल हो गया। कलांश का अपभ्रंश क्लास हुआ।

पाठशाला के शिक्षक इनके पिता-पितामह के शिष्य होने के कारण पहले मन में प्रणाम करते थे। इनके पिता को कोई भी रोग होने पर भगवान् का चरणामृत लेने से रोग निवृत्त हो जाता था। उनकी मृत्यु योगियों के समान सिर फटने पर हुई।

काशी में अध्ययन

ग्राम की पाठशाला के बाद काशी जी में इन्होंने पं. श्री रामभवन जी उपाध्याय महावैय्याकरणी, पं. श्री काशीनाथ जी वेदान्ती पं. श्री राम परीक्षण जी षड्दर्शनाचार्य, श्री स्वामी मनीषानन्द जी से क्रमशः व्याकरण, वेदान्त, दर्शनों का अध्ययन किया। बुद्धि तीव्र हुई। नित्यप्रति गंगा स्नान, माता अन्नपूर्णा तथा विश्वनाथ जी का दर्शन करते थे। श्री राम मन्दिर में पं. श्री भूपनारायण मिश्र जी से भागवत् पढ़ा। छः वर्ष पश्चात् पितामह की मृत्यु हो गई। तब अध्ययन छोड़कर ग्राम आना पड़ा। वहां कृषि तथा गुरु वृत्ति से निर्वाह होने लगा।

वैराग्य

पितामह ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी जन्म-कुण्डली में १९ वर्ष की आयु में मारकेश शनि की दशा का भोग था। पितामह की मृत्यु के अनन्तर उससे बचने के लिये घर से भागकर तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़े। उच्चकोटि के सन्तों से मृत्यु से बचने का उपाय पूछते थे। वे कहते कि मृत्यु से बचने का उपाय तो मेरे पास नहीं है। परन्तु बार-बार की मृत्यु के भय से हम छुड़ा सकते हैं।

साधना

श्री स्वामी जी के ग्राम से चार मील दूर गंगातट पर श्री स्वामी राम कृष्ण परमहंस जी के प्रशिष्य श्री स्वामी योगानन्द जी महाराज रहते थे। वे भागवत सुनाते थे। उनसे दीक्षा की इच्छा प्रकट की। उन्होंने वेदान्त के श्रवण मनन आदि की आज्ञा दी। तब इन्होंने मानस की चौपाई कही—**भरिलोचन विलोकि अवधेसा। तब सुनिहऊँ निर्गुण उपदेसा।** इसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुये। गायत्री का एक पुरश्चरण करवाने के अनन्तर श्री कृष्ण मन्त्र की दीक्षा दी। इसके अनुष्ठान से उनके जीवन में परिवर्तन हुआ। इसके प्रभाव से अति कठिन ग्रन्थ भी सरल हो गये। वे कहते थे कि शास्त्र ने मेरे सम्मुख अपने को निरावरण कर दिया है। शास्त्र की प्रत्येक पंक्ति और अक्षर साफ-साफ लगते हैं। यह श्री कृष्ण जी की कृपा का फल है। वहां से बिना घर में बताये कर्णवास चले गये। पक्के घाट में राधा-कृष्ण मन्दिर में ठहरे। उन दिनों उन्हें अनुभव हुआ कि घर के सब लोग मेरे सामने खड़े हैं। वे दुःखी होकर रुदन कर रहे थे। उन्होंने श्री योगानन्द जी से कहा, उन्होंने कहा कि यह मन का खेल है। आसक्ति छोड़कर भजन में मन लगाओ।

इनका विवाह बारह वर्ष की आयु में हो गया था। उन्नीस वर्ष से पूर्व सन्तान हो चुकी थी।

सिद्धों के सम्पर्क में

गंगातट मोलकपुर ग्राम में एक सिद्ध बाबा ५० वर्ष से अधिक समय से रहते थे। स्वयं गंगा जी ने प्रकट होकर उनके लिये स्थान छोड़ दिया था। वे त्रिकालदर्शी थे। वर्षा कराना, आंधी रोकना, रोग मिटाना उनके बायें हाथ का खेल था। उनके पास आप गये। उन्होंने उपदेश दिया। "घास से मांस, मांस से घास बनती हैं। इसी का नाम संसार है। यह गंगा रूपी महामाया की गोद में रहकर डूबता तैरता है। बॉगड (परमात्मा) इसमें रहकर इसको बिना छुये टुकुर-टुकुर देखता है। वह जानता है कि यह दीखने वाला पसारा सम्पूर्ण माया का खेल मेल मुझ से पृथक् नहीं है। गुड्डू ! करने धरने से संसार फटता नहीं, हटता नहीं, सटता नहीं। बिना किये धरे इतना जो हो गया है, इसको मिटाना हो तो इसके मूल मर्म को जानना पड़ता है। अधिष्ठान ज्ञान के बिना अविद्या एवं तन्मूलक संसार की आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती।"

मदईपुर के बाबा भी बड़े सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने कटनी से कुछ दूर एक पहाड़ी गुफा में ११ वर्ष की समाधि लगाई थी। कम खाते, मिलते तथा बोलते थे। श्री स्वामी जी ने कई बार उनका सत्संग किया। वे ध्यान योग की शिक्षा देते हुये कहते थे कि "यह मनुष्य का शरीर रेफमय है। जिस जोड़ से देखा र ही र मिलेगा। अपने को रेफ में चिन्तन करके व्यक्ति, जाति, भाषा और धर्म का भाव छोड़ दे। फिर भावात्मक रेफ का ध्यान छोड़कर अपने निराकार द्रष्टा स्वरूप का चिन्तन करे। छोटे-बड़े सभी नाम, रूप एवं कर्मों का अर्थात् दृश्य मात्र का निषेध कर देने पर जो अपना द्रष्टा स्वरूप बच रहता है, वह ब्रह्म ही है।"

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥



अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

सन्तों की प्रसिद्धि

जब चित्रकूट में एकान्त में रहते थे। तब आप प्रयाग झूंसी के प्रसिद्ध प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी से मिलने गये। स्वामी जी उन दिनों मौनी तथा फलाहारी थे। कई दिनों तक इनका परिचय नहीं हुआ। बाद में पता चलने पर उन्होंने इनका विष्णु पुराण तथा श्रीमद् भागवत् पर प्रवचन कराया। भाषण के अतिरिक्त बोलते नहीं थे। फिर उड़िया बाबा के दर्शन किये तथा उनसे वेदान्त सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हुये। वहां से नरवर गंगातट पर सुप्रसिद्ध सन्त षड्दर्शनाचार्य दण्डी स्वामी अ. श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज तथा श्री करपात्री जी महाराज आदि सन्तों के दर्शन हुये। श्री स्वामी उड़िया बाबा को गुरुवत् मानते थे। उनका श्री हरि बाबा जी तथा सिन्धी सन्त श्री कोकिल साईं जी से हार्दिक स्नेह था। उनकी (कोकिल साई) जीवनी आपने लिखी है। वहां से गोरखपुर गये। गोरखपुर में सम्पादक मण्डल में सात वर्ष तक रहे। सेठ श्री जयदयाल गोयन्दका तथा भाई हनुमान प्रसाद जी पोद्दार का विशेष स्नेह प्राप्त हुआ। वहां से आपने लेखन कार्य आरम्भ किया। श्रीमद् भागवत् की टीका तथा अनेक विशेषांकों में लेख लिखे। स्पेशल ट्रेन से सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा की। कल्याण की आपने निश्शुल्क सेवा की। शास्त्र के मार्मिक विषयों को लेकर कभी-कभी सेठ जी के साथ शास्त्रार्थ भी होता था। इसका उल्लेख उनके उपदेश में करेंगे।

संन्यासाश्रम

गोरखपुर के निवास काल में वाराणसी के सुप्रसिद्ध सन्त श्री मद्दण्डी स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की ख्याति आपने सुनी। वे एकान्त सेवी तथा ध्यान योगी थे। दर्शनार्थियों को कई बार निराश लौट जाना पड़ता था। बड़ी कठिनाई से दर्शन होते थे। वे उस समय ज्योतिष पीठ के जगद् गुरु नहीं हुये थे। पंडित जी ने अनेक बार उनके दर्शन तथा सत्संग किया। उनकी जीवनी उन्हीं के मुखारविन्द से सुनी। उनके प्रति आकर्षित हुये। इन्होंने उनसे संन्यास की इच्छा प्रकट की। इसके कई वर्ष पश्चात् प्रयाग में महाराज जी का दर्शन किया। उस समय वे शंकराचार्य हो चुके थे। सन् १९४१-४२ की माघ शुक्ला एकादशी को संन्यास हुआ। संन्यास,के बाद आप काशी आये। वहां मालवीय जी को भागवत सुनाई। उस वर्ष

श्री विष्णु दिगम्बर जी ने गीताज्ञान यज्ञ आरम्भ किया था। उसमें मालवीय जी ने अछूतोद्धार पर प्रवचन किया। उस सभा में आपके विद्या गुरु श्री राम भवन जी उपाध्याय भी उपस्थित थे। उन्होंने मालवीय जी के प्रस्ताव का विरोध किया। तब उन्होंने पांव पकड़ कर क्षमा मांगी। संन्यास के बाद आपका योगपट्ट स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वती हुआ। संन्यास वाले दिन ही इन्होंने स्वप्न में पिता-पितामह का दर्शन किया। सिंहासन पर बिठा कर आपका वेद मन्त्रों से अभिषेक किया।

आपने ऋषिकेश, कोल घाटी, वृन्दावन, बम्बई आदि में श्रीमद् भागवत की कथा कही। श्री करपात्री जी का इन पर विशेष स्नेह था। पाण्डित्य की प्रशंसा करते थे। कभी-कभी फटकार भी देंते थे। संन्यास के बाद गुरु जी ने आज्ञा दी कि दण्डी स्वामी को बड़े दण्डी के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नहीं करना चाहिये। वे द्विविधा में पड़ गये। श्री स्वामी उडिया बाबा जी से पूछा, मुझे क्या करना चाहिये। उन्होंने कहा, धर्मशास्त्रानुसार जगद् गुरु जी ठीक कहते हैं। तुम बिना दण्ड के प्रणाम कर सकते हो। श्री स्वामी जी का स्वभाव अत्यन्त सरल तथा शान्त था। छोटे-बड़े सभी से स्नेह करते थे। गुरु जी ने शंकराचार्य होने की आज्ञा दी। जबलपुर की सभाओं में स्पष्ट घोषणा की कि श्री स्वामी करपात्री जी तथा अखण्डानन्द जी दोनों मेरे हाथ हैं। काशी तथा जबलपुर में इन्हें बड़े स्नेह से रखा। आप चिन्तातुर हुये कि कहीं यह पीठाधीश्वर का बोझ मेरे सिर पर न पड़ जाए। अतः आपने दण्ड त्याग दिया। फिर वृन्दावन में आकर रहने लगे। दूसरी बार गुरु दर्शन होने पर विशेष आग्रह करके दण्ड बांधकर स्वयं हाथ में दे दिया और कहा, कि तुम्हें यह गद्दी संभालनी है। परन्तु वे दण्ड त्याग कर पुनः चले गये। उन्होंने उड़िया बाबा जी को कारिकाओं सहित माण्डूक्योपनिषद्, पंचदशी, गीता, भागवत आदि सुनाया। श्री स्वामी जी का श्री स्वामी शास्त्रानन्द जी महाराज, आनन्दमयी मां तथा हरी बाबा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था।

आपकी भागवत की कथा में पन्द्रह बीस हजार श्रोताओं की भीड़ हो जाती थी। भारत के सुप्रसिद्ध सन्त तथा विद्वानों में श्री स्वामी प्रबोधानन्द सरस्वती जी, सन्त निर्मल दास, श्री स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती, शिवानन्द ब्रह्मचारी, श्री गिरिजानन्द दुबे आदि यह लोग उपस्थित होते थे। वेदान्त की कथा में वेदान्तियों में ब्रह्मचारी श्री जीवन दत्त जी, महामहोपाध्याय श्री गिरधर शर्मा जयपुर, व्यावर के श्री पं. राम प्रताप जी शास्त्री, पं. अखिलानन्द जी सम्मिलित

होते थे। भागवत के प्रवचन में बारहवें स्कन्ध के छठे अध्याय में शुकदेव जी की विदाई के प्रसंग में बेहोश हो गये। कुछ भक्तों को दुःख हुआ। कुछ ने अनुभव किया कि इनकी गोद में बैठे श्री कृष्ण क्रीडा कर रहे है। आपने स्वयं कहा—मुझे उस समय स्पष्ट अनुभव हुआ कि वस्तुतः सप्ताह प्रवचन श्री शुकदेव जी महाराज ही कर रहे थे, मैं नहीं। उनके चले जाने पर शरीर की शक्ति क्षीण हो गयी। वाणी की गति एवं स्वर मन्द पड़ गये थे। आपने कलकत्ता में एक महीने तक आनन्दमयी माँ को भागवत सुनाया था। वह कलकत्ता से "भागवत दर्शन" के नाम से दो भागों में प्रकाशित है। इनमें सभी कथाओं का आध्यात्मिक भाव है। एक बार हरी बाबा को श्रीधरी टीका सहित सम्पूर्ण भागवत श्रवण कराया था।

अलौकिक घटना

एक बार बिहार के पचम्बा नामक कस्बे में एक मारवाड़ी बालक की १७ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। उसके माता-पिता दुःखी थे। श्री बद्रिकाश्रम में उन्होंने ब्रह्मकपाली में पिण्ड दान किया। तब वह बालक मां के शरीर में प्रवेश करके अपनी दुर्गति बताने लगा। उसने कहा—मरने के बाद मैं मूर्च्छित हो गया। ब्रह्म कपाली में पिण्डदान करने से मुझ में चेतना शक्ति का संचार हुआ। जिससे मैं बात कर सकता हूं। भागवत सुनने से मेरी मुक्ति होगी। इसके लिये उसने अपने पिता को महाराज जी के पास भेजा। उन दिनों वे गृहस्थी को सप्ताह नहीं सुनाते थे। मुख्य श्रोता महात्मा होता। परन्तु उस बालक की बात सुनकर स्वामी जी ने स्वीकार किया। बालक ने कर्मकाण्ड की विधियां बताईं। अपने लिये विशेष आसन बनवाया। कथा विश्राम के स्थल बताये। कथा के अन्त में उसने कहा, मैं मुक्त हो गया हूं। लौट कर इस लोक में फिर कभी नहीं आऊंगा। ऐसा स्वामी जी से कहकर चला गया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्री माता जी का परिचय तथा मृत्यु

श्री स्वामी जी की माता धानापुर के पं. दिनेश मिश्र जी की पुत्री थीं। इनके श्री पद्मनाभ, कमलनाभ तथा श्री कंजनाभ तीन भाई तथा दो बहनें थीं इन्होंने स्वामी जी के साथ पूर्वोक्त

सभी सन्तों का दर्शन तथा सत्संग किया था। वाराणसी में आनन्दमयी माँ के भागवत के बाद घर बार छोड़कर माता जी साथ चली आई थीं। काषाय वस्त्र धारण करती थीं।

एक बार स्वामी जी ने पूछा कि मर कर कहां जाओगी ? वे बोली—मुझे मरना ही नहीं है। इन्होंने उड़िया बाबा के निर्वाण दिवस पर जब सन्त, ब्राह्मण भोजन कर चुके थे, दिन के एक बजे दरबाजा बन्द करके ३ बजे ईश्वर चिन्तन करते हुये शरीर छोड़ दिया। श्री स्वामी जी के भक्तों में कोकिल साईं जी अनन्य भक्त थे। वे महाराज श्री जी की कथा बड़े प्रेम से सुनते थे।

कोकिल साईं जी का जन्म सिन्ध प्रदेश के जेकमाबाद जिले में मोरपुर ग्राम में हुआ था। इनसे पूर्व श्री शीतल दास, श्री खण्ड दास प्रसिद्ध सन्त हुये थे। बहुत ही दयालु थे। जंगल में जाते समय अपने पास गुड़ ले जाते थे। चींटे चींटियों के लिये पेड़ों में चिपका देते थे। पूछने पर कहते थे कि धरती पर डालने से बहुत से जीव इकट्ठे हो जाएंगे। पैरों के नीचे जीव हत्या होगी। आपका काम श्री राम की वियोगिनी सीता जी को श्री राम जी का सन्देश सुनाना तथा सीता जी का राम जी को सुनाना था। श्री कृष्ण वियोगिनी श्री जी को श्री कृष्ण जी का सन्देश तथा श्री जी का श्री कृष्ण जी को कोकिल वत् सन्देश सुनाते थे। इसलिये इनका नाम "कोकिल साईं" हुआ। आप श्री राम तथा श्री कृष्ण के बाल रूप के उपासक थे। भगवान् के शृंगार करने के अनन्तर किसी की नजर न लग जाए, इसलिए माथे पर काला टीका लगा देते थे। विभाजन के बाद आप वृन्दावन में आ गये। वे अपने भगवान् को किसी को प्रणाम नहीं करने देते थे। कहते थे हमारे बाल लला को आशीर्वाद दो। वृन्दावन में इनका मन्दिर कोकिल साईं के नाम से प्रसिद्ध है। श्री स्वामी जी इनके स्थान पर आया जाया करते थे। यह स्वामी जी के दोनों चरण गोद में लेकर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुये कहते थे—**"इनमें मुझे अपने गुरुदेव श्री आत्मराम जी का दर्शन होता है।"**

पैदल यात्रायें

महाराज श्री बाल्यावस्था से पैदल यात्रा के अभ्यस्त थे। २०, ३० मील नित्य यात्रा करते थे। एक बार गंगोत्री, बद्रीनाथ की पैदल यात्रा कर रहे थे। एक चट्टी पर विश्राम किया। रात्रि में शौच गये। प्रकाश नहीं था। अंधेरे में ऊपर से एक भारी पत्थर पैर पर गिरा। भयंकर चोट

आई। किन्तु अपने दुःख को किसी से नहीं बताया। प्रातः देखने पर लोगों को पता चला। अपूर्व तितिक्षा थी। उत्तराखण्ड में अति वृद्ध जीवन्मुक्त मुझे अनेक महात्माओं के दर्शन हुये। उनमें से गंगोत्री वाले अवधूत स्वामी अनन्त श्री कृष्णाश्रम जी महाराज के दर्शन किये। जो ७० वर्ष से अधिक समय से दिगम्बर तथा काष्ठमौन धारण किये थे। इन्होंने एक सौ सत्तावन् १५७ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा। इनका जीवन चरित्र आगे लिखा जाएगा। वहां से लौटते समय अपने गुरु ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री ब्रह्मानन्द जी के दर्शन किये। बद्रीनारायण से ऋषीकेश तक शारदापीठाधीश्वर श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी के साथ लौटे।

दक्षिण भारत की यात्रा गीता प्रेस की स्पेशल ट्रेन से की थी। पांडेचेरी में अरविन्दाश्रम, तिरुवण्णा मलय में श्री रमन महर्षि का सत्संग किया। वहां से कांचीपुरम् में कामकोटि के शंकराचार्य ज. गु. श्री स्वामी चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती का दर्शन तथा सत्संग किया।

इन यात्राओं से पूर्व श्री उड़िया बाबा के निर्वाण के अनन्तर श्री स्वामी जी का वह आश्रम आपके नाम हो गया था। आपने इस आश्रम का तथा अपने आश्रम का ट्रस्ट बना दिया। आप कुछ समय वृन्दावन, कुछ समय बम्बई मालावार हिल के "विपुल आश्रम" में रहते थे। कालान्तर में आपको भारत साधु समाज का अध्यक्ष चुना गया।

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

महाराज श्री में किशोरावस्था से ही अद्‌भुत लेखन शक्ति थी। १२ वर्ष की आयु में पहला लेख साप्ताहिक पत्रिका 'सूर्य' में, दूसरा मासिक पत्रिका "आर्य महिला" में प्रकाशित हुआ। 'कल्याण' में सहस्रों लेख निकले। "श्रेय", "संकीर्तन", "परमार्थ" आदि पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हुये। सन् १९६१ ई. में 'माण्डूक्य प्रवचन' प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष "सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट" रजिस्टर्ड हुआ। इस ट्रस्ट ने ६ वर्ष में ३० पुस्तकें तथा 'आनन्द वाणी' के १० भाग प्रकाशित किये। 'वाल्मीकीय रामायण' तथा 'विष्णु पुराण' आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुये। महाराज श्री विद्वान् होने पर भी खण्डन-मण्डन नहीं करते थे। परन्तु कोई जिज्ञासु प्रश्न करता, तो अत्यन्त सरल शैली से सन्तोषजनक उत्तर देते थे। उन्होंने व्यास जी के "वाद वादांस्त्यजेत् तर्कान् पक्षं कं च न संश्रयेत्। इस सिद्धान्त को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था।

बालू का ब्रह्म

एक बार श्री स्वामी जी उडिया बाबा जी के साथ गंगातट पर बैठे थे। उन्होंने बालू उठाकर कहा—हे शान्तनु ! जब तक बालू का साक्षात् ब्रह्म न मालूम पड़े तब तक ब्रह्म ज्ञान अधूरा ही है। ब्रह्म बोध हो जाने पर ब्रह्म से पृथक् कुछ नहीं है।

एक दिव्य घटना

सन् १९३० में स्वामी जी श्री सुदर्शन सिंह जी के साथ तपोवन राजगिरि से पैदल यात्रा करते हुये रात्रि के ११ बजे किसी स्टेशन पर पहुंचे। दोनों थके, मांदे, भूखे थे। जब दोनों विश्राम करने लगे, तो दो किशोर वहां उपस्थित हुये। उनके शरीर से प्रकाश निकलता था। पूछा कुछ खाओगे। दोनों ने कहा, यहां क्या मिलेगा। दोनों बालक चले गये। थोड़ी देर बाद दोनों, २ दोनों में खोया भर कर लाये। इन्होंने पूछा—कहां रहते हो ? बोले यहीं। यह कहकर चले गये। दूसरे दिन पता लगाया। वहां पर आस-पास कई मील तक न कोई गृहस्थ था, न बालक ही था।

भागवत की दक्षिणा

श्री स्वामी जी ने भागवत् सप्ताह में किसी से दक्षिणा नहीं ली। यद्यपि श्रोताओं में कई करोड़पति भी थे। देने का आग्रह करने पर भी नहीं लेते थे। एक बार श्री स्वामी प्रेम पुरी जी महाराज ने जब सत्संग भवन की योजना पूर्ण करने के लिये कहा, तो नियम तोड़ा। सप्ताह का आयोजन मुम्बा देवी के मैदान में हुआ। उसमें घोषणा की गई कि सप्ताह की भेंट से 'वेदान्त सत्संग भवन' का निर्माण होगा। कथा में ५०, ६० हजार रुपया प्राप्त हुआ। परन्तु भवन से पूर्व ही प्रेम पुरी जी ब्रह्मलीन हो गये। स्वामी जी दक्षिणा के रूप में पांच बातें बताते थे। १. कम से कम पांच मिनट का समय भगवान् के लिये निकालो। २. भगवन्नाम की एक-दो माला अवश्य फेरी जाएं। ३. घर में कम से कम एक स्थान ठाकुर जी के लिये हो। ४. कम से कम एक पैसा ठाकुर जी पर न्योछावर करके प्रतिदिन निर्धनों को दिया जाए। ५. ठाकुर जी की कुछ न कुछ सेवा जैसे फूल चढ़ाना, चन्दन लगाना, भोग लगाना, अपने हाथों से अवश्य हो। वे कहते थे कि मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। जो मुझे कुछ देना चाहता है, वह मुझे मेरी मांगी हुई यही दक्षिणा दे।

दूसरों के सुख का ध्यान

वे दूसरे का सुख-दुःख अपने समान समझते थे। रात्रि में इनके पास कोई सोया हो, तो बिना प्रकाश किये धीरे से अपनी शौचादि क्रिया में लग जाते थे। एक बार किसी ने इन्हें अपना दुःख सुनाया। उसके दुःख से चिन्तातुर होकर रात्रि भर सो नहीं सके। एक बार एक स्त्री कुछ चांदी के बर्तन लेकर आई, ले लिये, बाद में पता चला वह पागल थी। उसके घर वाले परेशान थे। बाद में उसका पति आया। बर्तन लौटा दिये। साथ ही कहा, बर्तन लौटाने की बात अपनी पत्नी से न कहना। अन्यथा वह दुःखी होगी।

नैमिषारण्य में आनन्दमयी मां के आश्रम में पुराण पुरुष की प्रतिष्ठा के अवसर पर भागवत का सप्ताह हुआ था। उसमें डेढ़, दो घण्टे आप का प्रवचन होता था। उसमें अनन्त श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज भी पधारे थे। श्री हनुमान जी के मन्दिर के समीप महाराज गोमती से लौट रहे थे। वहां आपकी नम्रता तथा प्रेम भाव ५ मिनट का होने पर भी जीवन पर्यन्त नहीं भूलेगा। आपके उत्तराधिकारी शिष्य अनन्त श्री स्वामी भागवतानन्द सरस्वती जी महाराज भी आपके ही समान सरल, विद्वान् तथा अत्यन्त विनयी हैं। मेरठ में श्री राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापना के उत्सव में आपका प्रवचन तथा दर्शन लाभ प्राप्त हुआ था। शरीर स्थूल होने के कारण भोजन बन्द था। केवल पालक आदि की उबली सब्जी तथा मूंग की दाल का पानी ही लेते थे। शरीर में अनेक रोग हो गये थे। अन्त में ७, ८ वर्ष पूर्व महाराज श्री ब्रह्मीभूत हुये। शास्त्र के अति गुह्यतम तथा गम्भीरतम रहस्यों का अति सरल एवं रोचक शैली से प्रतिपादन करने वाला तथा प्रेम भाव से चुम्बक के समान आकर्षित करने वाला, प्रत्येक मानव का हृदय-सम्राट् भगवती सरस्वती का वरद पुत्र अपनी अमिट कीर्ति को छोड़कर ब्रह्म में लीन हो गया।

॥ इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

उपदेश

कर्मयोग मुक्ति का साधन है अथवा ज्ञानयोग इस विषय को लेकर महाराज श्री जी का सेठ श्री जय दयाल गोयन्दका जी से विवाद हुआ था। सेठ जी कर्मयोग को मुक्ति का स्वतन्त्र साधन मानते थे। परन्तु गोयन्दका जी ने शरीर छोड़ने के पहले महावाक्य श्रवण किया था।

इससे सिद्ध होता है, कि ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। निष्काम कर्म तो अन्तःकरण को शुद्ध करता है।

प्रश्न—सेठ जी ! जब तक आत्मा में कर्त्ता भोक्तापने की भ्रान्ति रहेगी, तब तक कर्म पूर्णतः निष्काम कैसे हो सकते हैं?

उत्तर—मैं पूर्णतः निष्काम होने की बात कब कहता हूं। मैं तो यह कहता हूं कि लोग निष्काम भाव से, अर्थात् निस्स्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्य समझ कर अथवा ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करें। भोक्तापन की भ्रान्ति की निवृत्ति पूर्ण निष्कामता अथवा तत्त्व साक्षात्कार यह सब एक साथ होते हैं।

प्रश्न—सेठ जी ! किसी भी वस्तु की उपलब्धि प्रमाण से होती है, कर्म से नहीं। कर्म से वस्तु का निर्माण होता है। मोक्ष जो आत्मा का स्वतः सिद्ध स्वरूप है, नित्य प्राप्त होने पर भी भ्रान्ति से अप्राप्त सा प्रतीत होता है। वह अन्धे कर्म से अथवा कर्म फल के भोग से कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर—पंडित जी ! मैं कर्म या उपासना से मोक्ष नहीं मानता। कर्म और उपासना से ईश्वर प्रसन्न होता है तथा उनकी कृपा से ज्ञान होता है। कर्मोपासना ईश्वर कृपा के साधन हैं। साक्षात् मोक्ष के नहीं। साक्षात् साधन तो ज्ञान ही है। गीता में कहा है—**ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते। ज्ञान दीपेन भास्वता।** मैं उनको बुद्धि योग देता हूं जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं। वेद उपनिषद् आदि सभी शास्त्रों में ज्ञान से ही मुक्ति कही है। इस सिद्धान्त को मैं पूर्णतया मानता हूं। ज्ञान के साधक दो प्रकार के हैं। पहले पदार्थ प्रधान दूसरे तत् पदार्थ प्रधान। पहला शमादि साधन सम्पन्न होकर श्रवण, मनन आदि के द्वारा अपने पुरुषार्थ से ज्ञान प्राप्त करता है। दूसरा अपने कर्त्तव्य का पालन उपासना आदि के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करके उनकी कृपा की प्रधानता से ज्ञान द्वारा मुक्त होता है।

एक बार फिर सेठ जी से बात चीत हुई।

प्रश्न—सेठ जी ! क्या चित्त की कोई स्थिति नितान्त निर्वीज हो सकती है?

उत्तर—सर्वथा नहीं। समाधि में भी बीज रहता है। उत्थान, स्मृति देखने में आते हैं। बीज तो अविद्या ही है। उसके गये बिना बीज की निवृत्ति नहीं हो सकती। समाधि प्रारब्ध से

भी हो सकती है। परन्तु अज्ञान की निवृत्ति प्रारब्ध से नहीं हो सकती। (सेठ जी का यह उत्तर पातंजलि योग दर्शन के मूल सूत्रों तथा व्यासादि के भाष्य के विरुद्ध है। योग दर्शन में सबीज तथा निर्वीज दो प्रकार की समाधि कही है। इन्हें सविकल्प, निर्विकल्प, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात के नाम से भी कहा है। सबीज समाधि में उत्थान के संस्कार दबे रहते हैं। कालान्तर में उठ जाते हैं। परन्तु निर्वीज समाधि में योग रूपी अग्नि में दग्ध हो जाते हैं। केवल प्रारब्ध से समाधि नहीं प्राप्त होती, यदि प्रारब्ध से प्राप्त होती, तो समाधि से पूर्व के सप्तांग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि की आवश्यकता ही क्या थी। यह सभी पुरुषार्थ पर निर्भर है। अतः समाधि तथा अज्ञान की निवृत्ति दोनों में पुरुषार्थ प्रधान तथा प्रारब्ध गौण है।)

एक बार सेठ जी से महाराज जी ने पूछा—५ वैदिक आचार्यों में से (श्री आद्य शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री निम्बार्काचार्य) किसको अधिक मानते हो।

वे बोले—मैं सभी आचार्यों का आदर करता हूं। उनकी सभी अच्छी बातें मानता हूं। परन्तु रुपये में १५ आने शंकराचार्य जी की बात मानता हूं। उन्होंने पूछा—वह एक आना कौन सी बात है। सेठ जी ने कहा—पहला तो मेरा गीता के किसी २ श्लोक की व्याख्या में उनसे मतभेद है। दूसरा मुक्ति के लिये संन्यास को मैं आवश्यक नहीं मानता। (बिना ज्ञान के मुक्ति हो नहीं सकती। बिना त्याग के ज्ञान नहीं हो सकता। श्रुति ने भी **"त्यागेनैकेनामृतमानशुः"** एक मात्र त्याग से ही अमृत प्राप्त होता है। आसक्ति का पूर्ण रूपेण त्याग किये बिना तथा परमात्मा में मन बुद्धि समाहित किये बिना ज्ञान तथा मुक्ति नहीं हो सकती। **संन्यस्तः श्रवणं कुर्यात्** इत्यादि वेद वचन संन्यास को ज्ञान का अंग मानते हैं। पाठक इसका विस्तार सत्य युग खण्ड तृतीय परिच्छेद में "संन्यास तथा त्याग" आदि प्रकरण में देखें।)

स्वामी जी ने कहा, शांकर सम्प्रदाय में श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती, श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती आदि अद्वैत वेदान्त के अनेक आचार्यों ने गीता के शांकर भाष्य की व्याख्यायें की हैं। परन्तु कुछ श्लोकों को लेकर आचार्य पाद से इनका मतभेद रहा है। इसमें कोई हानि नहीं है। आप यह बतायें कि प्रस्थानत्रयी का परम तात्पर्य जो भगवत् पादाचार्य ने माना है

(ब्रह्मात्मैक्य सिद्धान्त) वह आपको मान्य है या नहीं। सेठ जी ने कहा, पूर्ण रूप से मान्य है। तब स्वामी जी ने कहा, तब तो आप आचार्य जी को पन्द्रह आने नहीं सोलह आने मानते हैं।

फिर स्वामी जी ने पूछा—लोकमान्य तिलक के कर्म योग में एवं आपके कर्म योग में क्या अन्तर है ?

सेठ जी ने कहा—तिलक जी ने ब्रह्म ज्ञान के अनन्तर कर्म योग को अनन्य कर्त्तव्य माना है। मैं ऐसा नहीं मानता। मेरे मत में कर्म योग ब्रह्म ज्ञान का साधन है। ज्ञान होने पर ज्ञानी कर्म करे या न करे स्वतन्त्र है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

वेदान्तियों और भक्तों में समानता

महाराज श्री जी की विशेषता थी कि वे निरुपाधिक ब्रह्म के निरूपण में शुद्ध अद्वैत वेदान्त तथा सगुण ब्रह्म के निरूपण में शुद्ध भक्ति का उपदेश करते थे। अतः उनके पास दोनों प्रकार के श्रोता आते थे। भागवत की कथा में वृन्दावन बिहारी आदि श्री कृष्ण के कई विशेषण देते थे। प्रेम के विषय में कहते थे कि प्रेम का सर्वोत्तम रूप समरसता है। एकांगी प्रेम की पूर्वावस्था है। क्योंकि उसमें व्याकुलता, अभाव तथा कोई आकर्षण नहीं है। इसके उदाहरण चातक, चकोर मछली, कुमुद तथा कमलिनी हैं। इनमें पूर्ण प्रेम का प्रकाश नहीं है। परिपूर्ण प्रेम, प्रेम की अभिव्यक्ति केवल राधा कृष्ण के प्रेम में ही है। देश, काल, उपाधि से युक्त प्रेम पूर्ण नहीं है। जो संयोग में बढ़े वियोग में घटे अथवा संयोग में घटे और वियोग में बढ़े, वह प्रेम नहीं है। प्रेम में दूरी तथा देरी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेमी प्रेमास्पद को अति निकटतम समझता है।

जल में बसे कुमोदिनी, चन्दा बसे आकास।
जो जाही को भावता सो ताही के पास॥

प्रेम अथवा अविद्या में भ्रान्ति दुःख का कारण है। पूर्ण प्रेम में कृष्ण-राधा, राधा-कृष्ण हो जाते हैं। इसका दूसरा नाम, प्रेमाद्वैत या रसाद्वैत है।

अद्वैत का प्रतिपादन करते हुये निराकार, निर्गुण, निरुपाधिक, निष्कल, निरंजन, निराभास आदि विशेषण लगाते हुये योग वाशिष्ठ के अजातवाद, गौडपादाचार्य जी की कारिकाओं तथा शांकर भाष्य से सिद्ध करते थे। अद्वैत के ग्रन्थों में गीता, ब्रह्मसूत्र, आरम्भ की ११ उपनिषदों तथा अद्वैत सिद्धि आदि ग्रन्थों से प्रतिपादन करते थे। वेदान्त हमें क्या सिखाता है ? वेदान्त का व्यावहारिक स्वरूप क्या है ? आदि विषयों पर सरल तथा रोचक प्रवचन होता था। एक बार आपसे किसी ने सत्संग तथा प्रवचन की परिभाषा पूछी। आपने कहा। गीतादि सद्ग्रन्थों के माध्यम से शास्त्र मर्यादानुसार भगवत्प्राप्ति के उपाय को समझने तथा समझाने का नाम सत्संग है। प्रवचन में थोड़ी शास्त्र की बात, थोड़ी श्रोता तथा समाज की थोड़ी इधर-उधर की बातें होती हैं। उपनिषद् ने प्रवचन से आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं बताई। परन्तु सत्संग के माध्यम से (सत्पुरुषों के माध्यम से) आत्म कृपा से आत्मा की प्राप्ति होती है।

शुद्धि और ज्ञान

स्वामी जी कहते थे, शरीर से सेवा, श्रम, इन्द्रियों का संयम, मन में सद्भावना, बुद्धि में विवेक तथा निरभिमानिता साधना की सर्वोपरि अवस्था है। सिद्ध वस्तु साधन साध्य नहीं है। साधन के द्वारा अन्तःकरण के मल और विक्षेप रूप दोषों के निवृत्त होने पर 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से साध्य स्वरूप का ज्ञान होता है। जो परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है, उसके अप्राप्ति का कारण अज्ञान है। उसकी एकमात्र निवृत्ति ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से होती है। अन्य सभी साधन ज्ञान के उदय में सहायक हैं। अतः ग्राह्य हैं। ऐक्य ज्ञान को ही ब्रह्म ज्ञान कहते हैं।

मन हटा लो

महाराज श्री भावुक भक्तों तथा जिज्ञासुओं से कहते थे कि भाई ! चाहे भाव से बिठाओ चाहे विचार से, परन्तु बैठावो अपने हृदय में परमात्मा को ही। कोई भी साधक ईश्वर प्राप्ति का उपाय पूछता, तो आप अति स्नेह से कहते थे कि भाई ! तुम को जो-जो ईश्वर न मालूम पड़े, उस ओर से अपने मन को हटा लो। इस प्रकार मन हटाते-हटाते जिसे छोड़ा न जा सके, उसी का नाम ईश्वर है। संसार तो वह है जिसको हम पकड़ कर रखना चाहते हैं। परन्तु प्रयत्न करने पर भी जो हमारी पकड़ में न आसके, अपने आप छूटता जाय वह संसार है। जो छोड़ने पर भी न छूटे वह ईश्वर है।

ठोस ईश्वर

स्वामी जी इस बात को युक्ति से समझाते थे कि प्राणी मात्र का इष्ट एकमात्र ईश्वर है। संसार का बड़े से बड़ा नास्तिक भी वास्तव में ईश्वर को चाहता है। किन्तु वह नहीं जानता कि मैं ईश्वर को चाहता हूं। ईश्वर केवल भावना या कल्पना नहीं, वह ठोस है। जो सदैव, सर्वत्र, सर्वरूप में हो, अविनाशी, ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप हो। शास्त्रों ने उसे ईश्वर कहा है। आज कल जो ईश्वर शब्द से चिढ़ते हैं। उनको ईश्वर शब्द का ठीक ज्ञान नहीं है। साधक को ईश्वर जिस स्थिति में हो उसी में अपना दर्शन करा देता है। आत्मा तथा ब्रह्म की व्याख्या में कहते थे, कि अज्ञात आत्मा का नाम ब्रह्म है और ज्ञात ब्रह्म ही आत्मा है। ब्रह्म सर्वाधिष्ठान, सर्वभासक, स्वयं प्रकाश, सच्चिदानन्द घन है। **(महाराज श्री एक परिचय)**

श्री स्वामी अखण्डानन्द जी का साहित्य

१. माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण), २. माण्डूक्य कारिका प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण), ३. माण्डूक्य कारिका प्रवचन (अलात शान्ति प्रकरण), ४. कठोपनिषद भाग—१, ५. कठोपनिषद भाग—२, ६. श्रीमद् भागवत रहस्य, ७. भक्ति सर्वस्व, ८. सांख्य योग, ९. ध्यान योग, १०. कर्म योग, ११. भक्ति योग, १२. विभूतियोग, १३. ज्ञान विज्ञान योग, १४. ब्रह्म ज्ञान और उसकी साधना, १५. अपरोक्षानुभूति, १६. साधना और ब्रह्मानुभूति, १७. नारद भक्ति दर्शन, १८. कपिलोपदेश, १९. मानव जीवन और भागवत् धर्म, २०. व्यवहार और परमार्थ, २१. भक्ति रसायनम्, २२. Ideal and Truth, २३. भागवत् दर्शन भाग—२ ॥

अ. श्री स्वामी भागवतानन्द सरस्वती जी महाराज

आप अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती के परम कृपापात्र उत्तराधिकारी शिष्य हैं। आपने व्याकरण, वेद, दर्शनों तथा पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया है। संसार में जिस पर श्री लक्ष्मीदेवी तथा सरस्वती जी की पूर्ण कृपा होने पर भी अभिमान न छुआ हो, ऐसे विरले ही महापुरुष पाये जाते हैं। उन महापुरुषों में आप भी एक हैं। पूर्वाश्रम में आपने त्रिकाल संन्ध्या, गायत्री का अनुष्ठान तथा मनसा, वाचा, कर्मणा गुरु सेवा की। आपकी वाणी स्त्री-पुरुष, विद्वान्-मूर्ख प्रत्येक को मोहित करने वाली है। भागवत पर आपका विशेषाधिकार है। मेरठ में औघड़ नाथ महादेव काली पलटन के प्रांगण में हुये श्री राधा-कृष्ण मूर्ति प्रतिष्ठा समारोह में आपने अध्यक्षता की थी। जो भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में कुछ क्षणों के लिये भी आये,

जीवन पर्यन्त वह आपके स्नेह को भूल नहीं सकते। इनके अतिरिक्त श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज के श्री स्वामी प्रेमानन्द जी आदि अनेक शिष्य हैं। जिनका परिचय न होने के कारण नहीं लिखा।

अ. श्री स्वामी शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्द जी महाराज की शिष्य मण्डली

आपके संन्यासी शिष्यों का मुझे पता नहीं है। ब्रह्मचारियों में श्री प्रबुद्धानन्द जी चैतन्य जो कि गुरु जी के परम कृपा-पात्र काया की छाया के समान साथ रहते हैं।

दूसरे श्री शम्भू चैतन्य जी महाराज जो कि वेद, उपनिषद, दर्शन, पुराण, स्मृति, व्याकरण, साहित्य आदि के सुलझे हुये विद्वान् हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्र का शांकर भाष्य, भामती, रत्नप्रभा, न्याय निर्णय, वेदान्त-कल्पतरु, वेदान्त कल्पतरु परिमल, अद्वैत मंजरी दीपिका आदि ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया है।

आपका जन्म बिहार प्रान्त में हुआ था। आपके पिता पुरी के वरिष्ठ शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी के सहपाठी थे। जगद् गुरु की इन पर विशेष कृपा रहती है।

तीसरे श्री राम-कृष्ण व्यासानन्द जी संगीत आदि में कुशल, रामायण भागवत आदि की कथा सुनाते हैं।

चौथे मेरठ में त्रिपुर सुन्दरी देवी के मन्दिर में पुजारी हैं। पांचवें उनके सहायक हैं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पंच त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(८२९) अनन्त श्री विभूषित दण्डी स्वामी श्री महादेवानन्द सरस्वती जी महाराज

(शास्त्री स्वामी जी)

पूज्य पाद महाराज श्री पूज्य पाद जगद् गुरु श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज के शिष्य थे। व्याकरण आदि शास्त्रों के ज्ञाता, धीर, गम्भीर थे। बहुत काल तक प्रयाग राज के बांध पर रहे। अपने पास सिद्धान्त कौमुदी रखते थे। अन्त में आपने धर्म संघ शिक्षा मण्डल, दुर्गाकुण्ड में काशी-वास करते हुये लीला पूर्ण की।

८३०-८३१ अ. श्री शान्तानन्द सरस्वती जी महाराज, अ. श्री विष्णु देवानन्द जी, अ. श्री स्वामी परमानन्द जी, अ. श्री स्वामी वासुदेवानन्द जी महाराज।

महाराज श्री स्वामी शान्तानन्द जी का जन्म सम्भवतः अयोध्या के समीप का हो। आप ब्रह्मीभूत जगद् गुरु श्री ब्रह्मानन्द जी महाराज के भानजे थे। युवावस्था में ही घर त्याग कर जगद् गुरु जी की सेवा में भोजन आदि की सेवा करते थे। कुछ लोगों का कहना है कि जगद् गुरु जी ने पहले धर्म सम्राट् पूज्य पाद श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के नाम वसीयत लिखी थी। उनके अस्वीकार करने पर और अनेक विद्वानों के नाम के बाद इनका भी नाम था। परन्तु काशी विद्वत् परिषद् तथा तीनों मठों के जगद् गुरुओं ने सोचा कि इनमें शंकराचार्य के 'महानुशासनम्' के अनुसार योग्यता नहीं है। अतः परम वीतराग, जीवन्मुक्त समाधि निष्ठ अ. श्री कृष्णबोधाश्रम जी महाराज को विवश करके आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। परन्तु इनके समर्थकों ने इनका अभिषेक किया। बहुत समय तक केस चला। इलाहाबाद हाई कोर्ट ने निर्णय देते हुये लिखा कि "शंकराचार्य का निर्णय करना विद्वानों का कार्य है। कोर्ट केवल श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज जी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी शान्तानन्द जी को निश्चित करता है। प्रयाग आदि कुम्भ के पर्वों पर अन्य शंकराचार्यों में सम्मिलित न होकर अपना पण्डाल अलग लगाते थे। आप सदैव शान्त, गम्भीर मुद्रा में रहते थे। अनेक विद्वानों को संन्यास दिया। जिनमें मुख्यतः अ. श्री स्वामी अनन्तानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती जी आदि हैं। आपके गुरु भाई श्री विष्णुदेवानन्द सरस्वती आपकी शिष्य वत् सेवा करते रहे। शरीर शिथिल देखकर आपने इनको अपने पद पर अभिषिक्त किया। थोड़े ही समय बाद श्री विष्णु देवानन्द जी के शरीर छोड़ने के पश्चात् अ. श्री वासुदेवानन्द जी को अभिषिक्त किया। इस समय आप काशी वास कर रहे हैं। एक ब्रह्मचारी को संन्यास देकर काशी सुमेरु पीठ का आचार्य नियुक्त किया। इनका योगपट्ट श्री स्वामी ओम प्रकाशानन्द सरस्वती जी है। आपकी जीवनी विशेष रूप से ज्ञात न होने का कारण नहीं लिखी जा सकी है। दो वर्ष पूर्व आप काशी में ब्रह्मीभूत हुये।

(८३१) अ. श्री ब्रह्मीभूत स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती

आप जगद् गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी के कर्मठ, शान्त, परोपकारी शिष्य थे। इस गद्दी पर आसीन होने पर आप केस लड़ना नहीं चाहते थे। आपकी जगद् गुरु श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम

जी के प्रति गुरुवत् श्रद्धा थी। अन्त तक आपने दोनों दलों में शान्ति स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया। आप चाहते थे कि मैं तथा श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज पद त्याग दें। दोनों दलों की सम्मति से तीसरा व्यक्ति ज्योतिष्मठ पर आसीन हो। परन्तु यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी। यह बात हमें श्री पं. चन्द्रभान शर्मा मेरठ वालों ने बताई। यह सन् १९९० में ब्रह्मीभूत हुये।

(८३२) अ. श्री ब्रह्मीभूत दण्डी स्वामी परमानन्द जी सरस्वती

आप बाल्यावस्था में ही गृह त्याग कर जगद् गुरु जी की सेवा में रहे। वेदादि शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया आपकी वाणी में ओज था। क्रियात्मक योगाभ्यास करवाते थे। देहली में दो मठों का निर्माण कराया। कुछ वर्ष पूर्व आप ब्रह्मीभूत हुये।

(८३३) अ. श्री दण्डी स्वामी वासुदेवानन्द जी सरस्वती महाराज

आप वर्तमान, भूतपूर्व वैकल्पिक जगद् गुरु श्री शान्तानन्द जी के परम कृपा पात्र शिष्य हैं। ज. गुरु स्वामी विष्णु देवानन्द जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर श्री स्वामी शान्तानन्द जी द्वारा आप इस शंकराचार्य जी के पद पर अभिषिक्त हुये।

भाव यह है कि वर्तमान काल में कुछ मठों में निर्विवाद तथा सविवाद दो प्रकार के शंकराचार्य हैं। ज्योतिष्पीठ पर श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी निर्विवाद शंकराचार्य रहे। उनके बाद श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी, स्वामी शान्तानन्द सरस्वती जी, श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी, श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती ज़ी तथा श्री स्वामी माधवाश्रम जी महाराज सविवाद शंकराचार्य हैं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(८३४) अ. श्री विभूषित दण्डी स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज (कानपुर)

विद्वद्वर वरिष्ठ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अ. श्री विभूषित श्री मद्दण्डी स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज का जन्म वि. सं. १९५९ में जालौन में हुआ था। उपनयन के अनन्तर हिन्दी, संस्कृत

अंग्रेज़ी आदि की शिक्षा प्राप्त की। बाद में वेदों का अंगों सहित अध्ययन किया। विवाह का प्रस्ताव ठुकराकर आपने जगद् गुरु श्री ब्रह्मानन्द जी की शरण ग्रहण की। उनसे महावाक्य प्राप्त किया। उनके ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर पूज्य पाद अ. श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज से सन् १९५४ ई. में संन्यास ग्रहण किया। श्री करपात्री जी महाराज ने आपको ज्योतिर्मठ का प्रबन्धक नियुक्त किया। छः वर्ष तक पूर्ण तत्परता से आपने कार्य किया। बाद में "अद्वैत दण्डी आश्रम नवाब गंज" कानपुर में नियुक्त हुये। आप अजात शत्रु तथा जनक के समान निर्लिप्त भाव से आश्रम की सेवा करते रहे। वेदान्त के ग्रन्थों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन में आप सदा लगे रहते हैं। भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा की छत्रछाया हम पर सदैव बनी रहे।

मैंने अपनी जानकारी के अनुसार जगद् गुरु दण्डी स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी सरस्वती के शिष्यों का वर्णन किया। अनन्त श्री जगद् गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरुपानन्द जी महाराज की जीवनी पीछे लिखी जा चुकी है। पाठक वहीं देखें।

॥ इति श्री गु० वं० पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, षट् त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६ ॥

अथ सप्त त्रिंशत्तमोऽध्यायः

धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी के शिष्य

श्री स्वामी जी के संन्यासी शिष्यों में सुमेरु पीठाधीश्वर श्री स्वामी अ. श्री महेश्वरानन्द जी सरस्वती, श्री शिवानन्द जी सरस्वती बावन वाले, श्री स्वामी नन्द नन्दनानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती काशी वाले, श्री स्वामी निश्चलानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी शंकरानन्द जी सरस्वती सुमेरु पीठाधीश्वर, स्वामी चिन्मयानन्द सरस्वती वर्तमान सुमेरु पीठाधीश्वर, श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी सदानन्द जी सरस्वती (वेदान्ती स्वामी), श्री स्वामी विपिन चन्द्रानन्द सरस्वती (जज स्वामी) आदि हैं।

ब्रह्मचारी शिष्यों में प्रधान व्याकरण महामहोपाध्याय (डी० लिट०) अनन्त श्री लक्ष्मण चैतन्य ब्रह्मचारी, श्री प्रबल ब्रह्मचारी तथा आशुतोष ब्रह्मचारी आदि हैं।

(८३५) अनन्त श्री सुमेरु पीठाधीश्वर स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती जी

आपका गृहस्थ का नाम श्री महादेव शास्त्री था। वेद, वेदान्त, वेदांग तथा सभाष्य प्रस्थानत्रयी के धुरन्धर विद्वान् थे। परम दयालु, परोपकारी शान्त तथा सरल प्रकृति के थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के प्राचार्य रहे। वृद्धावस्था में आपने धर्म सम्राट् पूज्यपाद स्वामी करपात्री जी महाराज से संन्यास लिया। संन्यास का नाम श्री स्वामी महेश्वरानन्द सरस्वती हुआ। सन् १९६५ के प्रयाग के महाकुम्भ पर्व में श्री रामचरित मानस पर प्रवचन करते हुये श्री राम नाम की मधुरता का वर्णन करते हुये कहा कि "उत्तर राम चरित कार श्री भवभूति जीने राम नाम की मधुरता का वर्णन करते हुये लिखा है कि "यदि कोई किसान खेत में खोये की खाद डाल कर दूध से सिंचाई करे, उसमें गन्ना बोये, गन्ने का पेड़ स्वभाव से ही मधुर होता है। उसमें ब्रह्मा जी की अहैतुकी अनुकम्पा से मधुर फल लगें। वह फल जितना मीठा होगा उससे अनन्त गुना मिठास श्री राम नाम में है।" आपकी वाणी में अति मधुरता थी।

(८३६) वावन (हरदोई) वाले श्री शिवानन्द सरस्वती जी महाराज

इनका जन्म जनपद हरदोई के बावन नामक ब्लाक में हुआ था। जन्म का नाम पं. शिव शर्मा था। वेदादि शास्त्रों के धुरन्धर विद्वान् थे। पहले यह श्री दयानन्द स्वामी के मतावलम्बी आर्य समाजी थे। श्री स्वामी करपात्री जी से शास्त्रार्थ किया। उसमें पराजित हुये। तब स्वामी जी से संन्यास लेकर दण्डी स्वामी शिवानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये। शास्त्रों का अनेक पक्षों में अर्थ करते थे। कुछ वर्ष पूर्व ब्रह्मीभूत हुये।

(८३७) अनन्त श्री दण्डी स्वामी नन्दनन्दनानन्द जी सरस्वती महाराज (शास्त्री स्वामी)

पूज्य पाद महाराज श्री जी का जन्म पश्चिमी पंजाब के लायलपुर जनपद में हुआ था। इनका नाम पं. नन्दलाल जी शास्त्री था। बाल्यावस्था से ही कट्टर सनातनी विचारधारा के थे। समय पर यज्ञोपवीत हुआ। वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया। आपकी पत्नी तथा सन्तान भी आपके अनुरूप थी। जब आपका बड़ा पुत्र कॉलेज में पढ़ता था। वह बड़ी चोटी रखता था। एक विद्यार्थी ने उनकी चोटी पकड़ कर खींची। बालक क्रोध से लाल हो गया। उसने

जोर से चांटा मारा। वह धरती पर गिर पड़ा। रोते हुये प्रिंसिपल के पास पहुंचा। प्रधानाचार्य ने इनको डांटा। उसने रोष में कहा कि "शिखा मेरा धार्मिक चिह्न है। कोई विद्यार्थी या आप मुझसे छेड़-छाड़ कर सकते हैं। मेरे धर्म से नहीं। विद्यार्थियों की तो बात ही क्या है। यदि आप भी मेरी चोटी खींचते, तो मैं आपको भी क्षमा न करता, मुझे धिक्कार है, कि जो मेरे चांटा मारने पर भी जीवित रहा।

जिसकी सन्तान इतनी कट्टर धार्मिक हो। वह स्वयं कितने धार्मिक होंगे। आपने संन्यास से पूर्व ही अपना पूर्ण जीवन धर्म सम्राट् करपात्री जी महाराज को तथा सनातन धर्म को समर्पित कर दिया। कई बार आपने "राम राज्य परिषद्" की ओर से लोक सभा का चुनाव लड़ा तथा सफलता प्राप्त की। दिल्ली के महायज्ञ में आपने अपने गुरु जी तथा जगद् गुरु कृष्णबोधाश्रम जी महाराज को पूर्ण सहयोग दिया।

कालान्तर में श्री करपात्री जी से संन्यास लेकर दण्डी स्वामी श्री नन्दनन्दनानन्द सरस्वती का योग पट्ट प्राप्त किया। आप गोहत्या बन्दी आन्दोलन में भाग लेकर कई बार जेल गये। आपका भाषण पाण्डित्य पूर्ण, सरल तथा रोचक होता था। विनोद प्रिय यति हैं। नित्य प्रति प्रातः ३ बजे उठकर स्नान आदि से निवृत्त होकर संन्ध्या पूजन ध्यान में लग जाते हैं। गुरु जी द्वारा लिखित 'श्री विद्यार्णव' ग्रन्थ के आधार पर श्री चक्र का पूजन करते हैं। अति वृद्ध तथा शिथिल होने पर भी सायं काल ४, ५ बजे से पूर्व जल, दूध आदि भी ग्रहण नहीं करते। एक समय भिक्षा लेते हैं। एक बार श्री गीता सत्संग भवन लखनऊ में आपका चातुर्मास्य हुआ। गीता के दूसरे अध्याय की व्याख्या की। समाप्ति पर धर्म संघ का अधिवेशन कराया। आप संस्कृत हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं के विद्वान् हैं। प्रवचन शैली मधुर गम्भीर, सरस तथा सारगर्भित होती थी। नीचे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

गो हत्या बन्दी आन्दोलन में जोशीला भाषण देते हुये आपने कहा कि "जब तक मेरे शरीर में रक्त की एक बूंद भी है, मैं गो रक्षा का मनसा, वाचा, कर्मणा समर्थन करते हुये पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु जी को पूर्ण सहयोग दूंगा। आप लोग भी गोरक्षा के लिये प्राण-पण से जुट जाएं।"

एक बार गीता जयन्ती में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये **कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति**। इसकी व्याख्या करते हुये कहा कि भगवान् भक्त की परीक्षा लेते हैं। नष्ट

होने नहीं देते। अंग्रेज़ों के समय एक अंग्रेज़ कप्तान सपत्नीक समुद्री जहाज़ की यात्रा कर रहा था। संयोग वश समुद्र में तूफान आ गया जहाज़ खतरे में था। सबको अपने प्राणों की चिन्ता थी। अतिशीघ्रता से अपना सामान तथा जान लेकर दूसरी नौका में सवार होने लगा। उस साहब की मेम पतिव्रता एवं पति पर पूर्ण विश्वास रखती थीं। उसके धैर्य तथा विश्वास की परीक्षा पति ने लेनी चाही। उसने पत्नी से कहा हम दोनों के प्राण संकट में है। मैं मरने से पूर्व तुमको मारकर मरूंगा। ऐसा कहकर उसने अपनी पिस्तौल उसके सीने पर रख दी। वह उससे बिल्कुल घबराई नहीं, जोर जोर से हंसने लगी। पति ने बहुत भयभीत किया, परन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने पूछा "क्या तुम्हें मृत्यु का भय नहीं है?" उसने कहा—मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा पति मुझे मारेगा नहीं। विश्वास की परीक्षा के लिये भयभीत करेगा। पति ने छोड़ दिया। उससे कहा—जैसे तुम्हें अपने पति पर विश्वास है, वैसे ही मुझे भी परम पति पर पूर्ण विश्वास है कि मुझे समुद्र में डुबोयेगा नहीं, भयभीत करेगा। तब तूफान बन्द हो गया। जहाज़ तथा शेष यात्री सुरक्षित रहे। अतः भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

श्री स्वामी जी किसी भी सम्मेलन में स्वेच्छा से नहीं जाते थे। कोई भक्त विशेष प्रार्थना करे तो उसकी चोटी और यज्ञोपवीत देखते थे। यदि न हो तो साफ इन्कार कर देते थे। यदि शिखा, यज्ञोपवीत हो सन्ध्या आदि नित्य-नैमित्तिक कर्म न करता हो, वहां भी नहीं जाते थे। श्री गुरुदेव स्वामी सच्चिदानन्द आश्रम जी महाराज के ब्रह्मीभूत होने के पश्चात् कुछ वर्ष तक आपकी अध्यक्षता में "श्री गीता सत्संग लखनऊ" का श्री गीता जयन्ती सम्मेलन होता रहा। आप काशी में क्षेत्र संन्यास लेकर सिक्का घाट में ब्रह्म चिन्तन में संलग्न रहे। सन् १९९७ श्रावण मास में ब्रह्मीभूत हुये।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३७॥



अथ अष्ट त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(८३८) अनन्त श्री दण्डी स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती काशी

आपका जन्म अयोध्या की हनुमान गढ़ी में हुआ था। पितामह का नाम श्री शंकर प्रसाद जी उपाध्याय था। माता का नाम उमादेवी था। पिता का नाम भी भोलानाथ उपाध्याय था। पिता श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मीभूत ज० गुरु शंकराचार्य ब्रह्मानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे। ३५ वर्ष की आयु में जब उनके कोई सन्तान नहीं हुई तब इन्हें वैराग्य हो गया। २०० बीघा जमीन के स्वामी थे। काशी में आ गये। वहां संन्यासियों के लिये अन्न-क्षेत्र खोला। ३$\frac{1}{2}$ वर्ष बीत गये। एक दिन एक बृद्ध दण्डी महात्मा का दर्शन हुआ। पिता सपत्नीक बृहदारण्यक उपनिषद का पाठ कर रहे थे। उनका पाद्यादि से सत्कार करके भिक्षा करवाई। माता ने पुत्र की याचना की। स्वामी जी ने एक सेव निकाल कर दिया। कहा इससे भगवद् भक्त पुत्र उत्पन्न होगा। यह कहकर अन्तर्धान हो गये। सन् १९३२ बसन्त पंचमी के दिन पुत्र का जन्म हुआ। इसका नाम शिव नारायण रखा। अनेक दान किये गये। आप बचपन से ही भगवान् की भक्ति, कीर्तन, सन्तों के दर्शन करते थे। आठ वर्ष में उपनयन हुआ। वेदों का अध्ययन किया। नौ वर्ष की आयु में इनके पिता ने ब्रह्मनाल काशी में शरीर छोड़ा।

एक बार लक्ष्मण किला में स्वामी करपात्री जी आये। माता सहित दर्शन प्रणाम किया। पुत्र का हाथ पकड़ कर स्वामी जी के चरणों में समर्पित कर दिया। १९५० ई. राम नवमी के दिन महावाक्य लिया। योग पट्ट शिव चैतन्य ब्रह्मचारी रखा। दीक्षा देकर गुरु जी ने एक पत्र देकर श्री स्वामी योगानन्द के पास हरिद्वार में अष्टांग योग सीखने के लिये भेजा। वहां पर पिण्डदान किया। सबने देखा, जल में २५ काले रंग के पुरुष इसी रंग की स्त्रियों सहित दिखाई दिये। फिर अन्तर्धान हो गये। इनके पितर पिशाच हो गये थे। पिंडदान के प्रभाव से पिशाच योनि से छूट गये। सन् १९५२ ई. में काशी के शान्तेश्वर मन्दिर में माता स्वर्ग सिधार गईं। मृत्यु के बाद इन्होंने गांव में जाकर सारी चल-अचल सम्पत्ति ब्राह्मणों, नौकरों तथा पट्टीदारों को बांट दीया। फिर गायत्री का एक पुरश्चरण किया। एक ब्राह्मण इनसे द्वेष करता था। गायत्री देवी ने उसे दण्डित किया। फिर तीर्थ यात्रा की। एक लाख राम मंत्र का पुरश्चरण

किया। काशी केदार घाट पर करपात्री धाम में महाराज श्री से संन्यास लिया। संन्यास के बाद अग्निहोत्री ब्राह्मणों के घर से मधुकरी भिक्षा के लिये जाते थे। एक ही पात्र में दाल, भात, सब्जी, हलवा, खीर आदि लेते थे।

एक बार गुरु जी के द्वारा स्थापित मीर घाट पर जब नये विश्वनाथ जी के दर्शन के लिये गये, तो आकाशवाणी ने कहा, "शिवानन्द सरस्वती तुम काशी माहात्म्य, काशी दर्शन, काशी पंचकोशी परिक्रमा, काशी मोक्ष निर्णय आदि ग्रन्थ लिखो। यह घटना गुरु जी को बताई। उन्होंने कहा—तुम पर भगवान् विश्वनाथ जी प्रसन्न हैं। उनकी आज्ञा का पालन करो। इन्होंने कहा—मैं अनपढ़ हूं। गुरु जी ने सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुये कहा—"तुम्हें सब विद्यायें प्राप्त होंगी। फिर गुरु जी की आज्ञा से काशीवास का क्षेत्र संन्यास लिया। तब से काशी से बाहर नहीं जाते हैं। आज कल दुर्गाकुण्ड धर्म संघ में जप तप करते हुये काशी की महिमा से सम्बन्धित ग्रन्थ लिखते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने इनको गाली दी। लाठी लेकर मारने दौड़ा। संयोग से वह गंगा जी में डूबने लगा। इन्होंने उसके प्राण बचाये। पूछने पर कहा—महापुण्य से गाली देने वाला मिलता है।

(८३९) अनन्त श्री दण्डी स्वामी श्री शंकरानन्द जी सरस्वती महाराज

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद रायबरेली तहसील तिलोइ के पास पूरे भवानी प्रसाद त्रिपाठी ग्राम का है। इस ग्राम को श्री त्रिपाठी जी ने ही बसाया था। यह सन्तान हीन थे। श्री वद्रीनारायण की कृपा से इन्हें पुत्र प्राप्त हुआ। अतः इनका नाम बद्री प्रसाद त्रिपाठी हुआ। इनके चार पुत्र हुये। छोटे पुत्र का नाम जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठी था। इनके तीन पुत्र हुये। १. श्री अमर नाथ, २. श्री श्याम सुन्दर, ३. श्री सूर्य प्रसाद। श्री श्याम सुन्दर ही सुमेरु मठ के पीठाधीश्वर श्री शंकरानन्द सरस्वती हुये। वाल्यावस्था में मरणासन्न हो गये थे। सिद्ध सन्त की कृपा से जीवन रक्षा हुई। यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे। १० वर्ष की आयु में पिता जी की मृत्यु हुई। चाचा ने भरण-पोषण किया। संरक्षक ने विवाह निश्चित कर लिया था। आप घर से भागकर तीर्थों में भ्रमण करते हुये परम विरक्त सन्त श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी से १५ वर्ष की आयु में दीक्षा प्राप्त की। उन्होंने शंकरानन्द नाम दिया। आपने काशी में व्याकरण, नव्य न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, वेदान्त का विधिवत् अध्ययन किया।

सन् १९३८ में हरिद्वार का कुम्भ था। उसकी समाप्ति के बाद ज्येष्ठ शुक्ल १० को वाराणसी में आकर व्याकरण श्री हरिनारायण त्रिपाठी जी से, नव्य न्याय रामघाट सांगवेद विद्यालय के पं. श्री हरिराम शुक्ल जी से, शांकर वेदान्त म० म० पं० श्री हरिहर कृपालु द्विवेदी शास्त्रार्थ पंचानन से अध्ययन किया। पूर्व मीमांसा, सांख्य, योग की शिक्षा पं० श्री वालबोध जी से प्राप्त की। पं० श्री गोपीनाथ कवि राज जी से पांच वर्ष तक तन्त्र तथा काश्मीर दर्शनों का अध्ययन किया।

बाल्यावस्था में कुश्ती लड़ने का शौक था। काशी, अमृतसर आदि में व्याकरण सहित षड्दर्शनों तथा वेदों का अध्ययन किया। हृषीकेश वाले गुरु जी दण्डी स्वामी श्री सच्चिदानन्दाश्रम जी से महावाक्य लेकर सेवा करते हुये भागवत् महापुराण का अध्ययन किया। फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ५ वर्ष तक वेदान्त विभागाध्यक्ष रहे। जब सुमेरु पीठाधीश्वर स्वामी महेश्वरानन्द जी ब्रह्मीभूत हुये। तब आचार्य चयन की समस्या उत्पन्न हुई। वहां के अनेक विद्वानों ने व्याकरणचार्य गोरखपुर या बलिया निवासी शास्त्रार्थ महारथी पं० श्री दिवाकर शास्त्री जी का समर्थन किया। परन्तु आप बड़े विनयी, निरभिमान, सेवापरायण हैं। सबके प्रस्ताव को ठुकराते हुये कहा कि मैं इस पद के योग्य नहीं हूं। मुझे इसी रूप में सेवा करने दें। तब सब की दृष्टि इन पर पड़ी। आपने कहा कि मैं गुरु जी की आज्ञा बिना स्वीकार नहीं करूंगा। दूसरे वर्ष लखनऊ श्री गीता सत्संग की गीता जयन्ती में जब गुरु जी पहुंचे, तब आपने गुरु जी को प्रणाम करके कहा कि "श्री स्वामी करपात्री जी महाराज मुझे संन्यास देकर सुमेरु मठ के आचार्य पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। आपकी क्या आज्ञा है। गुरु जी सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने आशीर्वाद देते हुये कहा कि यदि किसी भिखारी के पुत्र को कोई महाराज गोद लेकर राजगद्दी पर बैठाता है, तो भिखारी अत्यन्त प्रसन्न होता है। तुम इस पद को सहर्ष स्वीकार करो।" फिर क्या था, काशी में महा विद्वानों के बीच में वेद मन्त्रों से दण्ड संन्यास के अनन्तर फरवरी सन् १९७५ ई. में अभिषेक कराया। आप ब्रह्मचारी शंकरानन्द से सुमेरु पीठाधीश्वर ज. शं. श्री शंकरानन्द सरस्वती के रूप में विख्यात हुये। संन्यास से पूर्व तथा बाद में आपने वेदान्त के अद्वैत सिद्धि, खण्डन खण्ड खाद्य, अद्वैत रत्न रक्षणम्, प्रत्यक् तत्त्व चिन्तामणि आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। लखनऊ गीता जयन्ती में वेद जयन्ती तथा गीता जयन्ती को लेकर हरिद्वार, कनखल वाले महामण्डलेश्वर श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी से शास्त्रार्थ हुआ।

महामण्डलेश्वर जी ने अपने भाषण में कहा कि श्रीमद् भगवद्गीता चारों वेदों, अष्टादश महापुराणों, सत्ताईस धर्मशास्त्रों, महाभारत, रामायण आदि समपूर्ण ग्रन्थों का सार है। अतः यह ग्रन्थ सनातन जगत् में वेदों से भी बढ़कर है।

आपने गीता को सम्पूर्ण ग्रन्थों का सार तो स्वीकार किया। परन्तु वेदों से बढ़कर इसको मान्यता नहीं दी, क्योंकि गीता स्वतः प्रमाण नहीं है। वह वैदिक तत्त्वों की व्याख्या करती है। वेद उसके उपजीव्य हैं। वह परतः प्रमाण है। आचार्यों ने **नास्तिको वेद निन्दकः** वेद निन्दक को नास्तिक कहा है। स्वामी प्रकाशानन्द जी ने कहा कि यदि गीता वेदों से निम्न है तो भारत में वेद जयन्ती क्यों नहीं मनाई जाती ? गीता सत्संग के सदस्यों से कहा। अगले वर्ष आप लोग गीता जयन्ती की जगह वेद जयन्ती मनायें।

इस पर जगत् गुरु जी ने कहा "वेद अपौरुषेय, अनादि हैं। प्रत्येक कल्प के आदि में पूर्व कल्प कालीन लुप्त हुई वेद संहिताओं का आविर्भाव नवीन कल्प की प्रथम सूर्य किरणों के साथ पूर्व कल्प की अनुक्रमणिकानुसार होता है। भाव यह है कि वेद उत्पत्ति रहित होने के कारण उसकी जयन्ती का कहीं उल्लेख नहीं है।" यह सुनकर महा मण्डलेश्वर मौन हो गये।

आप अपने भाषण में वेदादि शास्त्रों की गुत्थियों को सरल, सरस भाषा में समझाते थे। अंग्रेज़ी को व्यभिचारिणी भाषा कहते थे। उदाहरणार्थ यदि PUT **पुट उच्चारण होता है तो BUT बुट होना चाहिये। यदि BUT बट सही उच्चारण है, तो PUT पट होना चाहिये। SUN सन SON सन दोनों में बीच में यू और ओ आ जाने पर एक जैसा उच्चारण कैसे सही है इत्यादि**। उनके इन तर्कों का उत्तर अंग्रेज़ी का कोई विद्वान् नहीं दे पाता था।

इनका अभिषेक धर्म संघ शिक्षा मण्डल दुर्गाकुण्ड काशी में हुआ था। आपकी वहां पर कुछ कमरे बनवाने की इच्छा थी। शिक्षा मण्डल से पूछा—शिक्षा मण्डल ने सहर्ष स्वीकार किया। कहा कि यह सम्पत्ति शंकराचार्य की न होकर शिक्षा मण्डल की रहेगी। आपने स्वीकार नहीं किया। बाद में अस्सी घाट के समीप स्वतन्त्र रूप से जमीन लेकर सुमेरु मठ का निर्माण किया। इनके कई संन्यासी तथा ब्रह्मचारी शिष्य हैं। उनमें श्री स्वामी सम्भवानन्द सरस्वती, स्वामी शान्तानन्द सरस्वती आदि हैं। आपकी अवस्था अधिक हो चुकी थी। पेट का भयंकर आप्रेशन हुआ। उससे स्वास्थ्य अत्यन्त शिथिल हो चुका था। कई महात्माओं के उत्तराधिकारी नियुक्त करने तथा निजेच्छा होने पर भी कोई योग्य शिष्य नहीं मिला। उज्जैन के गत महाकुम्भ पर आप गये। वहीं पर स्वास्थ्य बिगड़ गया। सुना जाता है कि पुरी के वरिष्ठ शंकराचार्य

अ. श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी को यह भार सौंप कर काशी लौट गये। वहीं पर २८-१ सन् १९९२ ई. में ब्रह्मीभूत हुये। देहावसान के अनन्तर पद के लिये झगड़ा चला। दण्डी स्वामी श्री सम्भवानन्द जी सरस्वती, स्वामी श्री चिन्मयानन्द जी सरस्वती तथा स्वामी कपिलाचार्य जी इस पद के प्रत्याशी थे। पुरी से ज. गु. शं. श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी ने प्रतिनिधि के रूप में पूज्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी को भेजा। अन्त में काशी विद्वत् परिषद् ने अ. श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी को अभिषिक्त किया। अभी भी इस सम्बन्ध में न्यायालय में विवाद चल रहा है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे षष्ठ परिच्छेदे अष्ट त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३८ ॥

अथोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(८४०) अनन्त श्री दण्डी स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती महाराज

अनन्त श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती का जन्म मथुरा जिले में हुआ था। आप व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों के धुरन्धर विद्वान् भागवती पंडित थे। ठेंगना गठा हुआ भरा शरीर, गम्भीर मधुर वाणी जनता को आकर्षित करती थी। वैदिक सनातन धर्म के वर्णाश्रम व्यवस्था के परम पोषक तथा समर्थक थे। बड़े से बड़ा लोभ तथा भय आपको झुका नहीं सकता था। इनका प्रभाव राजा महाराजा, धनी, निर्धन सब पर था। भागवत की कथा करते हुये शब्द तथा अर्थ मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखते थे। युवावस्था में पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी से आपने संन्यास लिया। वर्ष सन् १९९५ ई. में आप ब्रह्मीभूत हो गये। आपके शिष्यों में पं० गौरी शंकर जी अनन्य गुरुभक्त, कट्टर सनातनी तथा सन्तसेवी थे।

(८४१) अनन्त श्री दण्डी स्वामी श्री चिन्मयानन्द जी सरस्वती

अनन्त श्री स्वामी चिन्मयानन्द जी सरस्वती श्री स्वामी करपात्री जी के शिष्य हैं। ब्रज भूमि, भगवान् श्री कृष्ण तथा भागवत् के परम रसिक हैं। पुरी पीठाधीश्वर अ० श्री स्वामी निश्चलानन्द जी के परम मित्र तथा गुरु भाई हैं। श्री स्वामी शंकरानन्द जी के ब्रह्मलीन हो जाने के बाद आपका अभिषेक सुमेरु पीठ पर हुआ।

(८४२) अनन्त श्री दण्डी स्वामी सदानन्द जी सरस्वती (वेदान्ती स्वामी)

अनन्त श्री स्वामी सदानन्द जी सरस्वती का जन्म जिला आजमगढ़ में हुआ था। सन् १९४१ ई. में वाराणसी में अध्ययन के लिये आये। उस समय स्वामी करपात्री जी नगवा में

गंगा तरंग में निवास करते थे। ब्रह्मचर्याश्रम में इनका नाम श्री सन्तशरण वेदान्ती था। वे रुइया संस्कृत पाठशाला में पढ़ते थे। प्रतिदिन सायंकाल स्वामी जी के दर्शन करते थे। सन् १९४५ ई. में महाराज श्री जी ने अस्सी घाट पर रामनगर के सामने विशाल यज्ञ सम्पन्न किया। उस यज्ञ में वे स्वयं सेवक थे। स्वामी जी यज्ञ में नित्य प्रति निरन्तर छः घण्टे तक शंका समाधान करते थे। वे प्रभावित होकर उनकी शरण में आये।

एक बार आप स्वामी जी के साथ दिल्ली पहुंचे। वहां पर १०४° ज्वर था। इन्होंने कहा आप स्नान न करें। स्वामी जी ने पूछा तुम शिष्य हो या गुरु। यदि शिष्य हो तो मैं आज्ञा देता हूं, कि जल लावो, स्नान करूंगा।

आपने निरन्तर स्वामी जी से वेदान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। कालान्तर में संन्यास लेकर काशी केदार नाथ के समीप करपात्र धाम में रहकर गुरु आज्ञानुसार वहां की व्यवस्था करने लगे। ब्रह्मीभूत जगद् गुरु श्री कृष्णबोधाश्रम ज्योतिष्पीठाधीश्वर ने अपनी वसीयत में आपका नाम भी लिखा था। परन्तु आपने विचार किया कि जब मेरे गुरु जी ने शंकराचार्य जी का पंद ठुकरा दिया है। मुझे भी आवश्यकता नहीं है।

भाषण शैली

आप वेदान्ती होने पर भी धर्म पर विशेष ज़ोर देते हैं। क्योंकि स्वधर्म का पालन करने से ही साधक का अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब यथार्थ बोध द्वारा जीव मुक्ति पाता है। पूर्व जन्म में अनाज की चोरी करने वाला चूहा, फल की चोरी से बन्दर, तथा जूठे बर्तन में भोजन करने से बिल्ली का जन्म पाता है इत्यादि। मनु आदि स्मृतियों के आधार पर आप धर्म की व्याख्या करते हैं। आज कल आप स्वामी जी के लुप्त तथा अप्रकाशित साहित्य के प्रकाशन में जुटे हुये हैं।

(८४३) अनन्त श्री दण्डी स्वामी विपिन चन्द्रानन्द जी सरस्वती (जजस्वामी)

श्री स्वामी जी संन्यास से पूर्व दिल्ली हाई कोर्ट के जज थे। गृहस्थ में ही अध्ययन शील तथा धार्मिक थे। आपका नाम पं० विपिन चन्द्र मिश्र था। सेवा निवृत्त होते ही श्री स्वामी करपात्री जी से संन्यास लिया। उन्होंने दण्डी स्वामी विपिन चन्द्रानन्द सरस्वती नाम से विभूषित किया। आपने हरिद्वार भूमा निकेतन में परम वीतरांग, जीवन्मुक्त यति स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज से वेदान्त का कुछ अध्ययन किया।

(८४४) अनन्त श्री डा० लक्ष्मण चैतन्य जी ब्रह्मचारी

आप श्री स्वामी करपात्री जी के परम कृपा पात्र शिष्य हैं। गुरु जी का इनके प्रति जैसे वशिष्ठ जी का राम के प्रति स्नेह था, वैसा ही स्नेह था। गुरु आज्ञा प्राप्त करके आपने देहली, कानपुर, मिर्जापुर, प्रयाग, काशी, नासिक, उज्जैन आदि अनेक स्थानों पर महायज्ञों का अनुष्ठान किया, करवाया। इन सम्मेलनों में जगद् गुरु शंकराचार्यों, विद्वान् संन्यासियों, ब्राह्मणों तथा सद् गृहस्थ शिष्यों के निवास तथा भोजन का सुप्रबन्ध किया। बचपन में आपका चंचल स्वभाव था। परन्तु जब से गुरु शरण ग्रहण की, तब से आपका जीवन बदल गया। आपने वेद व्याकरण, साहित्य आदि की शिक्षा प्राप्त की। गुरु जी से श्रीविद्या की दीक्षा ली। श्री काशी के **सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से व्याकरण पर परम प्रमाणित शोध ग्रन्थ लिखा। जो वहीं से प्रकाशित है। यह अद्वितीय ग्रन्थ व्याकरण के शोध कर्त्ताओं के लिये परमोपयोगी है।** आज कल काशी धर्म संघ दुर्गाकुण्ड में दिव्य भवन तथा मन्दिर का निर्माण करा रहे हैं तथा श्री स्वामी जी के साहित्य के प्रकाशन में भी लगे हैं।

(८४५-८४६) श्री प्रबल तथा आशुतोष ब्रह्मचारी

उपर्युक्त दोनों ब्रह्मचारी धर्म सम्राट् जी के कृपा पात्र तथा कुम्भ आदि महापर्वों पर धर्म संघ का पण्डाल लगाते हैं।

(८४७) श्री भगीरथ ब्रह्मचारी

आपने महाराज जी के साथ रहकर उनके समस्त साहित्य का अध्ययन किया। प्रत्येक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि की आप प्रेस कापी तैयार करने में सिद्ध हस्त हैं। अति बृद्ध होने पर भी आपका मनोबल युवकों जैसा है।

उपसंहार

मैंने ज्योतिर्मठ के आचार्यों का वर्णन इस मठ से सम्बन्धित ग्रन्थों, लिखित जीवन चरित्रों तथा मौखिक तथा श्रवण के आधार पर किया है। इसमें यदि किसी यति की जन्म तिथि, जन्म स्थान या जीवन चरित्रों में कोई त्रुटि हो, तो पाठक कृपया सूचित करें। जिससे अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलि० खण्डे, षष्ठ परिच्छेदे, ऊनचत्वारिशंत्तमोऽध्यायः ॥३९॥

॥ षष्ठ परिच्छेदं सम्पूर्णम् ॥

अथ सप्तमः परिच्छेदः प्रारम्भः

प्रथमोऽध्यायः

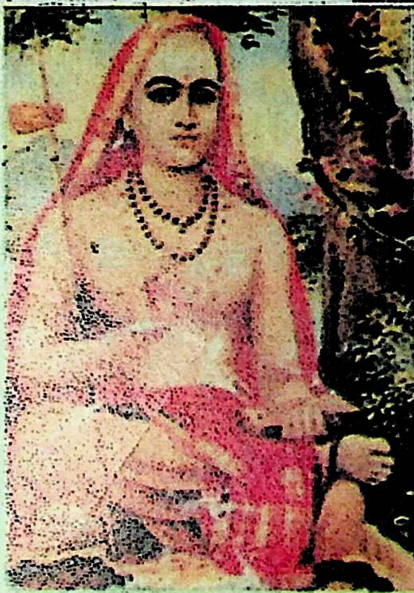
पंचम कामकोटि मठ के आचार्यों का संक्षिप्त परिचय

१. अनन्त श्री स्वामी सर्वज्ञात्म मुनि (८४८)

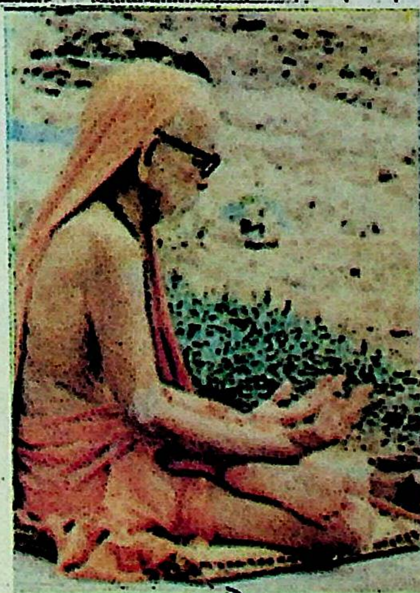
कुछ दिग्विजय कारों के मतानुसार तथा कूर्म पुराण, मार्कण्डेय संहिता, शिव रहस्य आदि ग्रन्थों के अनुसार आचार्य शंकर ने चार मठों पर चार शिष्यों को नियुक्त करके स्वयं काँचीपुरम् पहुंचे। वहां पर अपना निजी मठ स्थापित किया। वहां पर (कामाक्षी देवी के मन्दिर में) भगवती शारदाम्बा के सर्वज्ञ सिंहासन पर आरूढ़ हुये। बैठते ही ताम्रपर्णी के आस-पास के विद्वानों ने विरोध तथा शास्त्रार्थ किया। जगद् गुरु जी ने सबको परास्त कर दिया। उस विद्वत् मण्डली में "वर्द्धन". नामके ब्राह्मण के साथ उनका सात वर्ष का "महादेव" नाम का पुत्र था। उसने तीन दिन शास्त्रार्थ किया। चौथे दिन पराजय स्वीकार किया। भगवत्पाद उसकी प्रखर बुद्धि देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। संन्यास देकर उसे निजी सिंहासन पर अभिषिक्त किया। बालक की आयु कम थी; इसलिये श्री सुरेश्वराचार्य जी को संरक्षक नियुक्त किया। वे सर्वज्ञात्म मुनि के नाम से इस पीठ पर ११२ वर्ष रहे। इनकी जन्म भूमि पाण्ड्य प्रदेश थी। इन्होंने आचार्य के "ब्रह्मसूत्र" के भाष्य पर "संक्षिप्त शारीरिक भाष्यम्" तथा "सर्वज्ञ विलास" दो ग्रन्थों की रचना की। कुछ काल तक आपने द्वारिका में रहकर भी सुरेश्वराचार्य जी के उत्तराधिकारी श्री ब्रह्म स्वरूपाचार्य जी को व्याकरण आदि पढ़ाकर आचार्य पद पर अभिषिक्त किया। कलि सं० २७३७ वैशाख कृष्ण चतुर्दशी को काञ्ची पुरी में ब्रह्मलीन हुये।

२. श्री स्वामी सत्यबोध (८४९)

इनका जन्म चेर प्रदेश के अन्तर्गत श्री ताण्डव शर्मा द्राविड ब्राह्मण के घर हुआ था। इनका जन्म का नाम 'फलिनीश' था। इन्होंने कापिलों, बौद्धों तथा जैनियों को शास्त्रार्थ में हराया तथा प्रस्थानत्रयी, सुरेश्वराचार्य के वार्तिक पर टीका लिखी। 'पद शतक' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा। पीठ पर ९६ वर्ष रहकर वैशाख कृष्ण अष्टमी को "काञ्ची पुरम्" में ब्रह्मीभूत हुये।



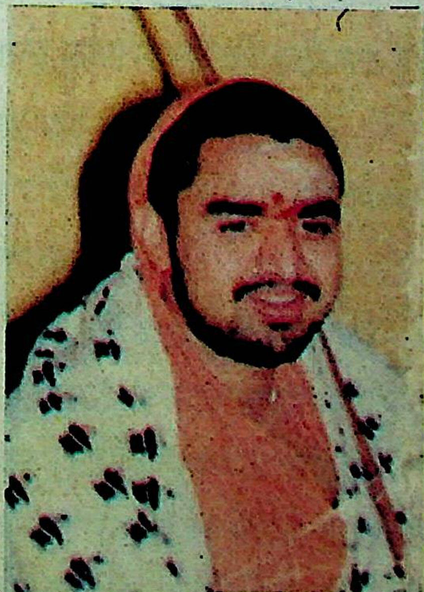
आर्य श्री शंकराचार्य



अ० श्री चन्द्र शेखरेन्द्र सरस्वती जी
काम कोटी मठ काँचीपुरम्



अ० श्री स्वामी जयेन्द्र सरस्वती जी



श्री स्वामी विजयेंद्र सरस्वती जी



३. श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी (८५०) (श्री ज्ञानोत्तम जी)

आपका जन्म चोल प्रदेश में मंगल नामक ग्राम के "नागेश" पिता के घर हुआ। जन्म का नाम 'ज्ञानोत्तम' था। बाल्यावस्था में बड़े तार्किक थे। श्री सुरेश्वराचार्य के "नैष्कर्म्यसिद्धि" ग्रन्थ पर चन्द्रिका नामक टीका की। ६३ वर्ष तक पीठ पर रहकर काञ्ची में मन्मथ सम्वत्सर में मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी को शरीर त्याग दिया।

४. श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी (८५१)

इनका जन्म तमिलनाडु प्रान्त के वेदारण्य वासी "भारव" नामक वैद्य के घर में हुआ। नास्तिकों का इन्होंने विरोध किया। ८१ वर्ष तक पीठ पर रहकर ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को काञ्ची में शरीर छोड़ा।

५. श्री स्वामी आनन्द ज्ञान जी (८५२)

इनका जन्म चेर प्रदेश में "सूर्य नारायण मखी" के घर में हुआ। पिछला नाम 'चिन्नाय' था। श्री पं० गौरी प्रसाद जी से विद्याध्ययन किया। आचार्य शंकर के भाष्यों एवं सुरेश्वराचार्य जी के वार्तिकों पर टीकायें लिखीं। ६९ वर्ष तक पीठासीन होकर तीर्थ यात्रा से लौटते समय श्री शैल पर्वत पर क्रोधन नामक सम्वत् में वैशाख कृष्ण नवमी को ब्रह्मीभूत हुये।

६. श्री स्वामी कैवल्यानन्द जी महाराज (८५३)

इनका दूसरा नाम कैवल्य योगी था। ८३ वर्ष तक पीठासीन होकर 'पुण्यरसा' स्थान में सर्वधारी सम्वत्सर में मकर संक्रान्ति में शरीर त्यागा।

७. अनन्त श्री स्वामी कृपाशंकर जी महाराज (८५४)

आपका जन्म आन्ध्र प्रदेश के गर्गगोत्रीय ब्राह्मण "श्री आत्मन् सोमयाजी" पिता के यहां हुआ। यह गाणपत्य, शाक्त, सौर, शैव, वैष्णव स्वामिकार्तिकेय षण्मत के प्रवर्तक थे। यह आद्य शंकर के ही अवतार कहे जाते हैं। इन्होंने तान्त्रिक उपासनाओं को वैदिक रूप देकर द्वैतवादियों को परास्त कर अद्वैतवाद की स्थापना की। अपने गुरु श्री स्वामी कैवल्य योगी की आज्ञा से सुभट विश्वरूप जी को शृंगेरी पीठ कर अभिषिक्त किया। आचार्य पद पर ४१ वर्ष रहकर विन्ध्याचल के वन में विभव सम्वत् में कार्तिक कृष्ण तृतीया को शरीर छोड़ा।

८. अनन्त श्री स्वामी सुरेश्वर जी महाराज (८५५)

इनका जन्म कोंकण प्रदेशान्तर्गत महाराष्ट्रीय ब्राह्मण श्री ईश्वर पंडित के यहां हुआ। जन्म नाम महेश्वर था। ५८ वर्ष तक पद पर रहकर काञ्ची में अक्षय सम्वत् में गुरु पूर्णिमा के दिन शरीर त्याग किया।

९. अनन्त श्री स्वामी चिद्घन (शिवानन्द जी) (८५६)

आप का जन्म कर्णाटकीय ब्राह्मण श्री उज्ज्वल भट्ट पिता के यहां हुआ। आप का जन्म नाम श्री ईश्वर वटु था। आप शिवाद्वैत सिद्धान्त के पोषक थे। ४५ वर्ष तक पीठ पर रहने के अनन्तर विरोधी सम्वत् गंगा दशहरा के दिन वृद्धाचल के निकट शरीर त्यागा।

१०. अनन्त श्री स्वामी चन्द्रशेखर (१) जी (८५७)

यह पालार प्रदेशीय वात्स्यायन गोत्रीय श्री वत्स भट्ट ब्राह्मण के पुत्र हरि के रूप में उत्पन्न हुये। ६३ वर्ष तक पीठासीन रहकर आनन्द सम्वत् में आषाढ़ शुक्ल नवमी को शेषाचल की गुफा में सशरीर लुप्त हो गये।

११. अनन्त श्री स्वामी सच्चिद्घन जी (८५८)

इनका जन्म गरुड़ नदी के निकट श्रीधर पंडित ब्राह्मण के यहां हुआ। पूर्वनाम शेवारी था। ३७ वर्ष तक पीठस्थ रहने के अनन्तर शिष्य को पद देकर ३३ वर्ष दिगम्बर मौनी होकर भ्रमण करते रहे। अन्त में खर सम्वत् में मार्ग शीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को एक मन्दिर में छिप गये। उस मन्दिर में इनका शरीर लिंग रूप में परिवर्तित हो गया।

१२. अनन्त श्री स्वामी विद्याघन (१) जी (८५९)

आप तैलंग ब्राह्मण वापन सोमयाजी के पुत्र नायन थे। एक बार आपने मलय पर्वत के समीपवर्ती कुछ ग्रामों पर कुपित उग्र भैरव को शान्त किया था। ४५ वर्ष तक पदासीन रहकर शक सम्वत् २३९ में मार्ग शीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को पर्वत के समीप शरीर त्यागा।

१३. अनन्त श्री स्वामी गंगाधर जी (१) (८६०)

इनका जन्म काञ्ची में भद्रगिरि के पुत्र सुभद्र के नाम से हुआ। विद्वत्ता के प्रभाव से गीष्पति की उपाधि मिली। मलय पर्वत पर इनको अगस्त्य ऋषि जी का दर्शन हुआ था। उन्होंने इन्हें पञ्चाक्षर मन्त्र की दीक्षा दी। १२ वर्ष की आयु में पीठासीन हुये। २४ वर्ष की आयु में सर्वधारी सम्वत् की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को शरीर त्याग दिया।

१४. अनन्त श्री स्वामी उज्ज्वल शंकर जी (८६१)

यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण केशव शंकर के पुत्र थे। इनका जन्म नाम अच्युत केशव था। इन्होंने दिग्विजय करके विरोधियों पर विजय प्राप्त की। इनके आशीर्वाद से स्यानान्दूरा के राजा कुलशेखर को कवित्व शक्ति प्राप्त हुई थी। यह आद्यशंकर के द्वितीय अवतार माने जाते हैं। जरदृष्टि नामक एक जैन आचार्य को अनुयायियों सहित जीतकर सिन्धु नदी के उस पार भगा दिया। ३८ वर्ष तक पीठासीन रहने के अनन्तर काश्मीर की दिग्विजय यात्रा की। कलि सम्वत् ३४६८ अक्षय नामक सम्वत् में वैशाख शुक्ल अष्टमी को कलापुरी में शरीर छोड़ा। तब से यह पुरी—महायति पुरी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

१५. अनन्त श्री स्वामी गौड़ सदाशिव (८६२)

इनका जन्म काश्मीर के देवमिश्रा नाम ब्राह्मण मंत्री के घर हुआ था। पिता जैनमत के अनुयायी थे। इनकी रुचि शांकर अद्वैत वेदान्त में थी। पिता ने बहुत समझाया। डांट-फटकार की; परन्तु जैसे हिरण्य कशिपु के दण्ड का प्रभाव प्रह्लाद पर नहीं हुआ, वैसे ही इन पर भी नहीं हुआ। तब पिता ने कुपित होकर सिन्धु नदी में फिकवा दिया। पाटलिपुत्र वासी भूरिवसु ने इनकी रक्षा की। तब से इनका पूरा नाम सिन्धु दत्त हुआ। भूरिवसु ने इनका भरण-पोषण किया। १७ वर्ष की आयु में संन्यास लेकर पीठासीन हुये। इन्होंने स्वर्ण की पालकी में बैठकर बाह्लीक में बौद्धों को परास्त किया। वे जहां भी जाते थे, हजार ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराते थे। पीठ पर केवल ८ वर्ष रहे। २५ वर्ष की आयु में भव सम्वत् ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को नासिक के समीप त्र्यम्बकेश्वर में ब्रह्मीभूत हुये।

१६. अनन्त श्री स्वामी सुरेन्द्र (८६३)

आपका उपनाम 'योग तिलक' था तथा जन्म नाम 'माधव' था महाराष्ट्रीय ब्राह्मण मथुरानाथ जी के पुत्र थे। काश्मीर के राजा नरेन्द्र आदित्य के भतीजे सुरेन्द्र के राज दरबार के आचार्य थे। "दुर्दीदिवि" नामक चार्वाक को परास्त किया। उस नास्तिक की सहायता देव गुरु बृहस्पति जी ने की थी। १० वर्ष तक पीठासीन रहे। तरुण सम्वतसर में कलि सम्वत् ३४८६ मार्ग शीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को उज्जैन के समीप ब्रह्मीभूत हुये।

१७. अनन्त श्री स्वामी विद्याघन (२) (८६४)

इनके मार्तण्ड तथा सूर्य दास दो उपनाम थे। जन्म का नाम श्रीकृष्ण तथा पिता का नाम उमेश शंकर था। यह प्रतिदिन १००८ बार सूर्य नमस्कार करते थे। इसके प्रभाव से इनका श्वेतकुष्ठ दूर हो गया था। आप १३ वर्ष १८ से ३१ वर्ष की आयु तक पीठस्थ रहे। बाद में गोदावरी के समीप भाद्र कृष्ण नवमी को स्वरूप में लीन हो गये।

१८. अनन्त श्री स्वामी मूकशंकर (४) (८६५)

आप विद्यावटी नामक गणितज्ञ ब्राह्मण के पुत्र थे। जन्म से गूंगे बहरे होने के कारण आपका नाम मूक था। परन्तु विद्याघन गुरु जी की कृपा से वाणी प्राप्त हुई। इन्होंने पिता जी से वेदों का अध्ययन किया। काश्मीर के महाराज मातृगुप्त तथा "सेतुबन्ध" काव्य के रचयिता प्रवर सेन आपके शिष्य थे। आपने मातृ गुप्त के विद्याभिमान को दूर करने के लिये घुड़सार के निरीक्षक तथा हस्तिशाला के निरीक्षक को विद्या प्रदान की। इन दोनों के द्वारा राजा का विद्याभिमान दूर हो गया। दोनों ने क्रमशः 'मणिप्रभा' एवं 'हयग्रीव वध' नामक दो नाटक लिखे। दोनों में एक का नाम रामिल तथा दूसरे का नाम मेण्ठ था। आपने प्रवर सेन और माण्ठ गुप्त से कहकर हिमालय पर्वत पर शुष्मा नाम का राजपथ निकलवाया। जो चन्द्रभागा (झेलम) से लेकर सिन्धु नदी तक था। 'हरिमिश्रीय' में लिखा है—

आ चन्द्र भवमा सिन्धु हिमालय महीभृतः।
श्री शंकरेन्द्रेण कृता पद्यासाद्यापि दृश्यते ॥

आप आद्य शंकर के चौथे अवतार कहे जाते हैं। आपने काञ्ची की अधिष्ठात्री देवी कामाक्षी की स्तुति "मूक पञ्चशती" तथा 'शंकर विजय' नामक पुस्तकों की रचना की। शक सम्वत् ३५९ श्रावणी पूर्णिमा के दिन गोदावरी के निकट ब्रह्मीभूत हुये।

१९. अनन्त श्री स्वामी चन्द्रशेखर (२) (८६६)

आप विक्रमादित्य के कृपा पात्र मातृ गुप्त नाम से विख्यात थे। आप कुछ काल तक काश्मीर के सिंहासन पर रहे। दूसरा नाम सार्वभौम था। कोंकण निवासी अच्युत ब्राह्मण के पुत्र थे। १० वर्ष तक काशी में रहे। श्रावण कृष्ण अष्टमी को "वय", सम्वत् में शरीर त्याग किया।

२०. अनन्त श्री स्वामी परिपूर्ण बोध जी (८६७)

आप रत्नगिरि निवासी वैद्यराज के पुत्र थे। आप धन्वन्तरि के अवतार माने जाते हैं। "असमाभिलापक" मन्त्र के जप से आपको योग सिद्धियां प्राप्त हुई। ३४ वर्ष तक पीठ पर रह कर "रौद्र" सम्वत् में कार्तिक शुक्ल नवमी को जगन्नाथ पुरी के समीप शरीर छोड़ा।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

२१. अनन्त श्री स्वामी सच्चित् सुख (८६८)

आप चिकाकोल वासी आन्ध्र ब्राह्मण सोमनाथ के पुत्र थे। आपका पूर्व नाम गिरीश था। स्वामी कार्तिक के उपासक थे। आपने नास्तिक शिरोमणि आर्यभट्ट को परास्त कर वैदिक मतावलम्बी बनाया। ३४ वर्ष तक पीठ पर रहकर हर सम्वत् वैशाख शुक्ल सप्तमी को जगन्नाथ के समीप शरीर त्यागा।

२२. अनन्त श्री स्वामी चित्सुख (१) (८६९)

आप कोंकण निवासी थे। जन्म नाम शिव शर्मा था। १५ वर्ष पीठासीन रहे। प्रभव सम्वत् श्रावण शुक्ल सप्तमी को शरीर छोड़ा।

२३. अनन्त श्री स्वामी सच्चिदानन्द घन (८७०)

आपका उपनाम सिद्ध गुरु था। श्री मुष्मणम् निवासी द्राविड़ ब्राह्मण कृष्ण के आत्मज थे। पूर्व नाम शिवसाम्ब था। कई बार सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। आप उच्चकोटि के योगी थे। चौपायों तथा कीड़ों तक की भाषा जानते थे। योग विद्या के प्रभाव से अपने शरीर को लिंग रूप में परिवर्तित कर दिया। "सिद्ध विजय" महाकाव्य में 'मेण्ट भट्ट' ने इनकी जीवनी लिखी है। शक सम्वत् ४७० में कोंकण के समीप आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को शरीर को लिंग रूप में परिवर्तित किया।

२४. अनन्त श्री स्वामी प्रज्ञाघन (८७१)

आप पिनाकिनी तट वासी प्रभाकर के पुत्र थे। जन्म नाम सोमगिरि था। १८ वर्ष तक पीठ पर रहकर सुभानु सम्वत् वैशाख शुक्ल अष्टमी को काञ्ची में शरीर छोड़ा।

२५. अनन्त श्री स्वामी चिद्विलास (८७२)

श्री स्वामी जी हस्तीगिरि निवासी 'श्री मधुसूदन' के पुत्र थे। पूर्वाश्रम का नाम 'हरिकेशव' था। १३ वर्ष तक पीठ पर रहकर दुर्मुख सम्वत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को काञ्ची में शरीर छोड़ा। इन्होंने "चिद्विलासीय शांकर दिग्विजय" की रचना की।

२६. अनन्त श्री स्वामी महादेव (१) (८७३)

ये भद्राचल वासी भानुमिश्र के पुत्र थे। पूर्व नाम शेष मिश्र था। आपके पूर्वज मैथिल ब्राह्मण आन्ध्र प्रदेश में बस गये थे। २४ वर्ष पीठस्थ रहकर रौद्र सम्वत् आश्विन कृष्ण दशमी को काञ्ची में ब्रह्मलीन हुये।

२७. अनन्त श्री स्वामी पूर्ण बोध (१) (८७४)

ये श्रीपति के पुत्र श्री कृष्ण के नाम से विख्यात थे। १७ वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर ईश्वर सम्वत् श्रावण शुक्ल एकादशी को काञ्ची में ब्रह्मलीन हुये।

२८. अनन्त श्री स्वामी बोध (१) (८७५)

इनके पिता का नाम कालहस्ती था तथा इनका नाम बालय्य था। ३७ वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर आनन्द सम्वत् में वैशाख शुक्ल चतुर्थी को काञ्ची में स्वरूप में लीन हो गये।

२९. अनन्त श्री स्वामी ब्रह्मानन्द घन (१) (८७६)

आपका उपनाम शीलनिधि था। गरुड़ नदी के समीपवर्ती अनन्त नामक द्राविड ब्राह्मण के पुत्र थे। जन्म का नाम ज्येष्ठ रुद्र था। षड्दर्शनों के ज्ञाता थे। काश्मीर नरेश ललितादित्य तथा भवभूति इनके शिष्य थे।

३०. अनन्त श्री स्वामी चिदानन्दघन (८७७)

ये कण्णुं शंकर के पुत्र थे। प्रथम नाम पद्मनाभ था। इन्होंने योग की "लम्बिका" क्रिया की साधना के अनन्तर सूखे पत्ते खाकर रहे। आचार्य पद पर केवल ४ वर्ष रहकर प्रजापति नामक संवत्सर में मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी को काञ्ची में ब्रह्मलीन हुये।

३१. अनन्त श्री स्वामी सच्चिदानन्द (२) (८७८)

आप "भाषा परमेष्ठी" नामक ग्रन्थ के कर्त्ता 'रामन्न' के पुत्र थे। पूर्व नाम 'टिम्पन्न' था। इनकी जन्म भूमि चन्द्रभागा नदी के आस-पास थी। आप कई भाषाओं के विद्वान् थे। कई

मठों का जीर्णोद्धार किया। २० वर्ष तक मठाधीश रहने के पश्चात् खर सम्वत् में काञ्ची में भाद्र शुक्ल षष्ठी को ब्रह्मलीन हुये।

३२. अनन्त श्री स्वामी चन्द्रशेखर (२) (८७९)

आपके पिता का नाम 'महादेव' तथा आपका नाम 'शम्भू' था। जन्म भूमि वेगवती नदी के पास थी। एक बार एक बालक की बन की अग्नि से रक्षा की। महाराज काश्मीर श्री ललितादित्य के बौद्ध मन्त्री को शास्त्रार्थ में हराया। १८ वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के अनन्तर अगहन शुक्ल प्रतिपदा को काञ्ची में शरीर छोड़ा।

३३. अनन्त श्री स्वामी चित्सुख (२) (८८०)

इनका उपनाम 'बहुरूप' था। वेदाचल निवासी 'विमलाक्ष' के पुत्र थे। जन्म का नाम 'सुशील कमलाक्ष' था। सह्याद्रि की काबेर गुफा में घोर तप किया। १७ वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के बाद "धाता" सम्वत् में आषाढ़ शुक्ल षष्ठी को उसी पर्वत पर शरीर छोड़ा।

३४. अनन्त श्री स्वामी चित्सुखाननन्द जी उपनाम चितानन्द (८८१)

इनके पिता का नाम 'सोमगिरि' था पालार नदी के समीप किसी ग्राम में जन्म हुआ। इनका जन्म नाम 'सुरेश' था। २१ वर्ष गद्दी पर रहने के पश्चात् हेमलम्ब सम्वत् आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को शरीर त्याग दिया।

३५. अनन्त श्री स्वामी विद्याघन (३) (८८२)

आपके पिता का नाम 'बालचन्द्र' तथा आपका नाम 'सूर्यनारायण' था। इनके समय में मुसलमानों ने मठ पर आक्रमण किया। बड़ी कठिनाई से मठ तथा धर्म की रक्षा की। ३० वर्ष तक पीठस्थ रहकर दिग्विजय यात्रा में चिदम्बरम् में प्रभव सम्वत् पौष शुक्ल द्वितीया को शरीर छोड़ा।

३६. अनन्त श्री स्वामी अभिनव शंकर (५) (८८३)

आपका जन्म चिदम्बरम् निवासी विश्वजित के यहां हुआ था। उपनाम 'धीर शंकर' था। श्री वाग्पति भट्ट जी ने "शंकरेन्द्र विलास" में इनका जीवन चरित्र लिखा था। इन्होंने काश्मीर में 'वाग्पति भट्ट' नामक धुरन्धर विद्वान् को परास्त किया। इनकी विद्वत्ता का लोहा चीनी, तुर्की तथा पारसी विद्वानों ने माना है। ५२ वर्ष तक पीठासीन रहकर कलि सम्वत् ३९४१ 'सिद्धार्थ'

सम्वत् आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को आत्रेय पर्वत की दत्तात्रेय गुफा में लीन हो गये। आप पांचवें शंकर कहे जाते हैं।

३७. अनन्त श्री स्वामी सच्चित् विलास (८८४)

यह कान्यकुब्ज निवासी कमलेश्वर पिता के श्रीपति नाम से प्रसिद्ध पुत्र थे। पद्मपुर में अधिक समय वास किया। इनके शिष्यों में आनन्द वर्द्धन, मुक्ता कर्ण, शिवस्वामी, राजानक, रत्नाकर प्रसिद्ध थे। २३ वर्ष तक मठ में रहकर नन्दन सम्वत् में वैशाख पूर्णिमा को ब्रह्मीभूत हुये।

३८. अनन्त श्री स्वामी महादेव (३) (८८५)

आप का जन्म कर्नाटक निवासी 'कन्नण्य' के यहां 'शिव-राम भट्ट' के नाम से हुआ। अति सुन्दर होने के कारण इन्हें उज्ज्वल और शोभन भी कहते थे। ४२ वर्ष तक पीठासीन रहकर भव सम्वत् बैशाख शुक्ल षष्ठी को काञ्ची में ब्रह्मीभूत हुये।

३९. अनन्त श्री स्वामी गंगाधर (२) (८८६)

इनका जन्म भीमा नदी के समीप हुआ। यह 'उमेश्वर भट्ट' के पुत्र 'अप्पन' नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी कृपा से जन्मान्ध कविवर राजेश्वर जी ने फिर से दृष्टि प्राप्त की। ३५ वर्ष तक पीठ पर रहकर सौम्य सम्वत् श्रावण शुक्ल प्रतिपदा को काञ्ची में ब्रह्मीभूत हुये।

४०. अनन्त श्री स्वामी आनन्दघन (८८७)

इनका जन्म तुङ्गभद्रा नदी के निकट सुदेव भट्ट पिता के घर शंकर पण्डित के रूप में हुआ। ३६ वर्ष तक गुरु पद पर रहने के पश्चात् प्रमाथी सम्वत् में रामनवमी के दिन काञ्ची में शरीर छोड़ा।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे, द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

४१. अनन्त श्री स्वामी पूर्णबोध (२) (८८८)

इनका पहला नाम हरी तथा पिता का नाम 'शिव' था। यह कर्नाटक निवासी थे। २६ वर्ष तक आचार्य पद पर रहने के बाद प्रमाथी सम्वत् भाद्रपद कृष्णा १३ को ब्रह्मलीन हुये।

४२. अनन्त श्री स्वामी परमशिव (१) (८८९)

आपके पिता का नाम "शिवसाम्ब पण्डित" था। इनका नाम श्री कण्ठ था। इन्होंने 'सोमदेव' के शिष्य के साथ सहयात्री गुफा में बहुत वर्षों तक तप किया। २१ वर्ष तक पीठ पर रहे शार्वरी सम्वत् में आश्विन शुक्ला सप्तमी को शरीर छोड़ा।

४३. अनन्त श्री स्वामी बोध (२) (८९०)

इनका दूसरा नाम शंकरानन्द जी तथा पिता का नाम 'सूर्य' था। "कथा सरित्सागर" के रचयिता "सोमदेव" आप ही थे। धारानरेश भोजराज ने मोतियों से जड़ी हुई एक पालकी भेंट की थी। उस पर बैठकर दक्षिण की यात्रा की। काश्मीर के राजा 'कलस' की सहायता से इन्होंने काञ्ची के आस-पास के मुसलमानों को भगाया। ३७ वर्ष तक पीठासीन होने के अनन्तर "ईश्वर" सम्वत् में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को अरुणाचलम् में शरीर त्यागा।

४४. अनन्त श्री स्वामी चन्द्रशेखर (३) (८९१)

इनका जन्म नाम चन्द्रचूड़ पिता का नाम श्री शुकदेव जी था। जन्मभूमि कुण्डी नदी के पास थी। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि 'मख' श्री कृष्ण मिश्र, श्री जयदेव तथा सुहल इनके कृपापात्र थे। इन्होंने "विद्यालोल कुमारपाल", के दरबार के प्रसिद्ध विद्वान् हेमाचार्य जी को शास्त्रार्थ में पराजित किया। काश्मीर नरेश जयसिंह इनके शिष्य थे। ६८ वर्ष तक पीठासीन रहकर "पार्थिव" नाम सम्वत् कलियुग ४२६७ में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को अरुणाचल के समीप शरीर त्यागा।

४५. अनन्त श्री स्वामी अद्वैतानन्द बोध (८९२)

इनका नाम 'चिद्विलास' तथा पिता का नाम 'प्रेमेश' था। जन्म भूमि पिनाकिनी नदी के तट पर थी। गृहस्थाश्रम का नाम 'सीतापति' था। १७ वर्ष की आयु में संन्यास लिया। इन्होंने 'नैषधीय चरित' के लेखक 'श्री हर्ष' तथा मन्त्रज्ञ 'अभिनव गुप्त' को परास्त किया। इनकी 'ब्रह्म विद्याभरण', 'शान्त विकर्ण' तथा 'गुरु प्रदीप' नामक तीन पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। ३४ वर्ष तक पीठस्थ होकर सिद्धार्थ सम्वत् गंगा दशहरा को चिदम्बरम् में ब्रह्मीभूत हुये।

४६. अनन्त श्री स्वामी महादेव (३) (८९३)

आप 'छायावनम्' निवासी 'अच्युत' नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। जन्म नाम 'गुरु मूर्ति' था।

यह शक्ति की वैदिक उपासना करते थे, तान्त्रिक नहीं। ४७ वर्ष तक पीठासीन रहकर 'प्रभव' सम्वत् श्रावण कृष्ण अष्टमी 'गडिलम्' नदी के तट पर शरीर छोड़ा।

४७. अनन्त श्री स्वामी चन्द्रचूड़ (२) (८९४)

इनके पिता का नाम 'अरुणगिरि' तथा इनका नाम 'गणेश' था। यह शाक्त थे। इन्होंने अपने गुरु जी के साथ शक्ति मन्त्र के जप के अनन्तर अग्नि में एक करोड़ आहुतियां दी थीं। ५० वर्ष तक गुरु पद पर रहने के बाद दुर्मुख सम्वत् ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी को गुडिलम् नदी के समीप शरीर त्यागा।

४८. अनन्त श्री स्वामी विद्यातीर्थ जी (८९५)

आप 'बिल्बारण्य' निवासी शार्ङ्गपाणि' के पुत्र थे। गृहस्थाश्रम का नाम 'सर्वज्ञ विष्णु' था। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य तथा माधवाचार्य (स्वामी विद्यारण्य जी) के गुरु थे। इन्होंने 'पूर्व मीमांसा' तथा उत्तर मीमांसा के सूत्रों की पद्य-गद्यमयी व्याख्या, 'जैमिनि न्याय माला' तथा 'वैय्यासिक न्याय माला' नामक ग्रन्थों में की है। पूर्वोक्त आचार्यों के गुरु सायणाचार्य कृत "ऋग्वेद भाष्य भूमिका" के मंगलाचरण के दो श्लोकों से इनके गुरु होने की पुष्टि होती है।

प्रणम्य परमात्मानं श्री विद्यातीर्थरूपिणम्।
जैमिनीय न्यायमाला श्लोकैः संगृह्यते स्फुटम्॥१॥
यस्य निश्वसितं वेदाः वेदेभ्यो योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥२॥

श्री विद्या तीर्थ रूपी परमात्मा को प्रणाम करके जैमिनीय न्याय माला का श्लोकों द्वारा स्पष्ट संग्रह किया जाता है॥१॥ जिसके निश्वास भूत चारों वेद हैं। जो वेदों से सम्पूर्ण जगत् का निर्माण करते हैं। उन विद्या तीर्थ महेश्वर को मैं प्रणाम करता हूं।

इन्होंने माध्वसम्प्रदाय द्वैतवाद तथा ईसाई, रोमन, कैथोलिक के प्रभाव को रोकने के लिये आठ नवीन मठों का निर्माण करके आठ शिष्यों को नियुक्त किया। जिनमें विरूपाक्ष का मठ श्री विद्यारण्य स्वामी जी के अधीन था। शृंगेरी मठ ८०० वर्षों से विच्छिन्न (लुप्त) था। इन्होंने शृंगेरी मठ की खण्डित परम्परा को पुनर्जीवित किया। भाव यह है कि सुरेश्वराचार्य जी से

लेकर ९वें उत्तराधिकारी के पश्चात् शृंगेरी की परम्परा ८०० वर्ष तक लुप्त रही। इसकी पूर्ति इन्होंने अपने शिष्य विद्यारण्य स्वामी द्वारा भारती कृष्ण जी को पीठाधीश्वर बनाकर की। आप पीठ पर ७३ वर्ष रहे। जीवन काल में ही उत्तराधिकारी बनाकर १५ वर्ष तक हिमालय में तपस्या की। उस तपस्या काल में इनके साथ श्री स्वामी शंकरानन्द जी थे। रक्ताक्ष सम्वत् माघ शुक्ल प्रतिपदा को शरीर छोड़ा।

मठीयश्रीमुखबिरुदावलीभेदाः

श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधिपानाम्—चन्द्रमौलीश्वर

श्रीः
चन्द्रमौलीश्वरायनमः
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-
श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रतिष्ठितश्रीका-
मकोटिपीठाधिपश्रीमहादेवेन्द्रसरस्व
तीसंयमीन्द्रो विजयते।

"स्वस्तिश्रीमदखिलभूमण्डलालङ्कारत्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतासेवितश्रीकामाक्षीदेवीसनाथश्रीमदेकाम्रनाथश्रीमहादेवीसनाथश्रीहस्तिगिरिनाथसाक्षात्कारपरमाधिष्ठानसत्यव्रतनामाङ्कितकाञ्चीदिव्यक्षेत्रेशारदामठसुस्थितानामतुलितसुधारसमाधुर्यकमलासनकामिनीधम्मिलसंफुल्लमल्लिकामालिकानिष्यन्दमकरन्दझरीसौवस्तिकवाङ्निगुम्भविजृम्भणानन्दतुन्दिलितमनीषिमण्डलानामनवरताद्वैतविद्याविनोदरसिकानांनिरन्तरालंकृतीकृतशान्तिदान्तिभूम्नांसकलभुवनचक्रप्रतिष्ठापकश्रीचक्रप्रतिष्ठाविख्यातयशोलंकृतानांनिखिलपाषण्डकण्टकोद्घाटनेनविशदीकृतवेदवेदान्तमगषणमतप्रतिष्ठापकाचार्याणांश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीमच्छङ्करभगवत्पादाचार्याणामधिष्ठाने सिंहासनाभिषिक्तश्रीमच्चन्द्रशेखरसरस्वती संयमीन्द्राणामन्तेवासिवर्य श्री मन्महादेवेन्द्रसरस्वती श्री पादैः।"

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे सप्तम परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

४९. अनन्त श्री स्वामी अवधूत आचार्य शिरोमणि भगवत्पाद श्री शंकरानन्द सरस्वती जी महाराज (८९६)

इनकी जन्म भूमि मध्यार्जुन (विरु विदैमरादूर) थी। पिता श्री का नाम 'श्री बालचन्द्र जी' था। इनका गृहस्थ का नाम 'महेश' था। माध्व सम्प्रदाय के द्वैतवाद को रोकने के लिये इन्होंने महान् कार्य किया। आपने गुरुदेव का नाम तात्पर्य वोधिनी गीता की टीका के मंगलाचरण में 'आनन्दात्म सरस्वती' लिखा है तथा शिष्यों में 'पंचदशी' कार विद्यारण्य स्वामी जी थे।

भक्त्या प्रणम्य स्वगुरुमानन्दात्म सरस्वतीम्।
क्रियते श्रीमद्भगवद्गीता तात्पर्य बोधिनी ॥१॥
नमः श्री शङ्करानन्द गुरु पादाम्बुजन्मने।
महामोह विलासैक ग्राहग्रासैक कर्मणे ॥२॥

इन दोनों श्लोकों से इनके गुरु तथा शिष्य का नाम स्पष्ट हो जाता है। इन्होंने ईश, केन, कठ, मुण्डक, प्रश्न, माण्डूक्य, श्वेताश्वतर, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि उपनिषदों पर दीपिका नामक टीकायें तथा ब्रह्मसूत्र पर भी दीपिका टीका की है। आरम्भ में २८ उपनिषदों का विस्तृत विवेचन आपने 'आत्म पुराण' नामक ग्रन्थ में किया है। यह श्लोक बद्ध है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त "पुराण दर्पणम्" आदि अनेक प्रकाशित अप्रकाशित ग्रन्थ हैं। ३२ वर्ष तक पीठस्थ रहकर "दुर्मुख" सम्वत् वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को ब्रह्मीभूत हुये। यह चरित्र कामकोटि की परम्परानुसार श्री आचार्य बलदेव उपाध्याय जी के श्री शंकराचार्य नामक ग्रन्थ से लिखा गया है।

निर्णय सागर से प्रकाशित मूलटीका की भूमिका में इनका चरित्र लुप्त है। इनके साहित्य के पढ़ने से पता चलता है कि यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। अवधूत कोटि के जीवन्मुक्त महात्मा थे। जालन्धर वाले गुरु अनन्त श्री स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज कहते थे कि सनकादि, शुकादि के समान आप इसी शरीर से आज भी विद्यमान हैं। इन्होंने गीता की टीका में समाधि भाषा का प्रयोग किया है। अधिकारी साधकों को इनका दर्शन होता है। परम अवधूत श्री कृष्णाश्रम जी महाराज गंगोत्री वालों की "ब्रह्मामृत लहरी" नामक पुस्तक में लिखा है, कि

स्वामी जी ने विचरण करते हुये गंगोत्री के ऊपरी पर्वतों पर एक परम सिद्ध जीवन्मुक्त महात्मा का दर्शन किया था। सम्भवतः वे स्वामी शंकरानन्द जी ही हों।

तात्पर्य बोधिनी की विशेषता

यद्यपि संस्कृत में श्रीमद् भगवद् गीता पर अनेक आचार्यों के भाष्य तथा उनके अनुयायियों द्वारा लिखी हुई संक्षिप्त, विस्तृत अनेक टीकायें हैं। परन्तु अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन करने वाले श्री शंकराचार्य जी के भाष्य पर मधुसूदनी (गूढार्थ दीपिका) तथा शङ्करानन्दी अद्वितीय व्याख्यायें हैं। इनमें शांकर भाष्य तथा मधुसूदनी की भाषा तथा प्रतिपादन शैली पाण्डित्य पूर्ण है। परन्तु तात्पर्य बोधिनी टीका सरल, सरस, रोचक तथा हृदय-स्पर्शी है। कुछ विद्वानों का मत है कि आद्य शंकर गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र का जैसा विशुद्ध अद्वैत परक भाष्य करना चाहते थे, उनकी इच्छा होने पर भी नहीं कर सके। उन्होंने तीनों ही भाष्यों में चार्वाक, जैन, बौद्ध तथा पंच दर्शनों की शंकाओं का समाधान करते हुये शास्त्रार्थ किया है।

यद्यपि शंकरानन्द जी ने भी अनेक विकल्प देते हुये पूर्व पक्षी के कुतर्कों का विस्तृत उत्तर दिया है। परन्तु अन्य आचार्यों की अपेक्षा इनकी टीका अति सुगम है। अतः 'गीता' तथा 'आत्म पुराण' के आधार पर पाठकों के लिये कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं। 'आत्म पुराण' पर अनन्त श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज काशी निवासी की आज्ञा प्राप्त कर "दत्त वंशावतंस पं० राज श्री काकाराम जी शास्त्री" ने संस्कृत टीका लिखी है।

उपदेश तथा सिद्धान्त

इन्होंने गीता के दूसरे अध्याय के १२वें श्लोक की व्याख्या करते हुये वेदान्त के एक जीववाद का युक्ति तर्क तथा प्रमाण से विशद विवेचन किया है। अवतरणिका में लिखते हैं कि भगवान् ने ११वें श्लोक में अर्जुन का शोक दूर करने के लिये अशोच्यानन्वशोचत्वं इत्यादि से अर्जुन को बताया कि तुम भीष्म, द्रोण आदि के वाच्यार्थ शरीर को लेकर शोक करते हो या लक्ष्यार्थ आत्मा को लेकर। यदि शरीरों के लिये शोक करते हो, तो वे नाशवान् हैं। ब्रह्मज्ञानी जीवित या मृतक शरीरों के लिये शोक नहीं करते। यदि इनके लक्ष्यार्थ आत्मा के लिये शोक करते हो, तो वह अविनाशी तथा एक है। यदि कहो कि जितने शरीर हैं, उतने ही जीव हैं, तो यह बात बनती नहीं। एक जीव होने पर भी शरीर भेद होने से अनेक प्रतीत होते हैं। जीव

की नित्यता खरगोश के सींग के समान नहीं है। जिसकी सत्ता का अभाव कालत्रय में नहीं होता, वह नित्य है। अतः आत्मा को शरीर इन्द्रिय आदि से भिन्न नित्यत्व सूचित करते हुये कहते हैं—

न त्वेवाऽहं जातु नाऽऽसं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥१२॥

अर्थ—हे अर्जुन !(तत् पदार्थ का लक्ष्यार्थ परमात्मा) मैं किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है अर्थात् मैं सदा हूं। वैसे ही तुम तथा ये सब राजा नहीं थे, ऐसा नहीं है, किन्तु थे। इस शरीर को त्यागने के बाद सब लोग नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है। किन्तु रहेंगे॥१२॥

ता० वो०—अहं तत्पदार्थ = परमात्मा सर्वज्ञ = सर्वतन्त्र स्वतन्त्रः = परमेश्वरः **जातु** कदाचित् **नासमिति** न, किन्तु सर्वदा आसमेव। मदसम्भवे जगत् सृष्टाद्यसम्भवात्। तथाहि—जन्माद्यस्य यतः, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते इति। **भा० टी०—अहं** तत्पदार्थ परमात्मा, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमात्मा। **जातु** कभी भी **नासमिति** नहीं था, किन्तु सदैव था। मेरे बिना जगत् की उत्पत्ति आदि असम्भव होने से; क्योंकि यदि मैं न होता तो जगत् भी न रहता। ब्रह्मसूत्र में भी कहा है—जिससे जगत् की उत्पत्ति आदि होती है। जिससे यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं।

शङ्का—आप परमेश्वर हैं, स्वतन्त्र हैं, आपका सद्भाव सदैव है। मरण धर्मा मेरा नित्यत्व कैसे सिद्ध होता है? इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—**न त्वमिति**—त्वं पद के लक्ष्यार्थं **जातु** कभी भी, नहीं थे। किन्तु मेरे समान तुम भी थे। अर्थात् भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों तथा जागृत् आदि तीनों अवस्थाओं में तुम थे। **इमे जनाधिपाः नासन् इति न,** किन्तु त्वं पदार्थत्वाविशेषात् त्रिषु कालेषु आसन्नेव। यथाहं तथैवेतेऽपि नित्य सिद्ध सत्व स्वभावः इत्यर्थः। जनाधिपा इति अविद्यावृत्ति भेदेन बहुवचनम् नत्वात्मभेदेन तद्भेदे प्रमाणाभावात्।

यह राजा लोग भी नहीं थे, ऐसा नहीं है किन्तु त्वम् पदार्थ के अविशेषता से तीनों कालों में थे ही। भाव यह है कि जैसे मैं नित्य हूं, वैसे ही ये भी नित्य सिद्ध स्वभाव है। भगवान् ने जनाधिपाः में बहुवचन का प्रयोग आत्म भेद से नहीं किया किन्तु अविद्या वृत्ति भेद से किया है। आत्म भेद में प्रमाण का अभाव होने से।

शङ्का—एक आत्मा से दूसरे आत्मा के भेद में प्रमाण का अभाव जो आपने कहा यह बात अति साहसपूर्ण है। आत्म तत्त्व पर विचार करने पर आत्मा में एकत्व सिद्ध नहीं होता। प्रत्यक्षादि छः प्रमाणों से विरोध होने से। व्यवहार में दो व्यक्ति बात करते हुये, दूसरे के लिये त्वं और अपने लिये अहम् शब्द का प्रयोग करते हैं। मैं त्वं का प्रयोग होने से प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा में भेद सिद्ध होता है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा एक सिद्ध नहीं होता। दूसरे अर्थापत्ति प्रमाण से भी आत्मा में भेद सिद्ध होता है। आत्मा प्रत्येक जीव में भिन्न है, व्यक्तियों के भिन्न होने से गौ, घोड़ा, गधा आदि के समान आत्मा भिन्न-भिन्न है। तीसरे अनुमान प्रमाण से भी प्रत्येक व्यक्ति की अहं प्रतीति का भेद होने से घटादि के समान भेद सिद्ध होता है। चौथे शब्द प्रमाण से भी **अदितिर्देवा गन्धर्वा मनुष्या पितरोऽसुराः इति श्रुतिः। देव दानव गन्धर्वा यक्ष राक्षस किन्नराः। इत्यादि पुराण वचन से**। उक्त प्रमाणों से भी आत्म भेद सिद्ध होता है। यदि आत्मा एक होता तो सुख-दुःखादि व्यवस्था सिद्ध नहीं होती। एक व्यक्ति के सुखी-दुःखी होने पर सभी सुखी-दुःखी होने चाहियें। यदि देवादि शरीरों में आत्मा एकत्व होने पर सभी सर्वज्ञ होने चाहियें। इससे विधि निषेधात्मक शास्त्र भी निरर्थक हो जाएगा। एक के बद्ध से सबका बंध, एक की मुक्ति से सबकी मुक्ति, एक के मूर्ख होने से सभी मूर्ख, एक के विद्वान् होने से सभी विद्वान् हो जाने चाहियें। इसलिये सर्व प्रमाण सिद्ध आपको अनेक आत्मा स्वीकार करना चाहिये।

समाधान—यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि व्याप्ति का व्यभिचार होने के कारण आत्मभेद में प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं होता। जहां-जहां प्रतीति का भेद है वहां-वहां आत्मा का भेद है यह व्याप्ति व्यभिचरित है। जैसे एक ही मनुष्य शरीर में 'मैं शिशु, कुमार, युवा, बृद्ध हूं।' इन अवस्थाओं में शैशवादि अवस्था का भेद होने पर भी अहं प्रतीति का भेद नहीं होता। कुमारावस्था में मैं शिशु हूं यह प्रतीति नहीं होती। प्रतीति की शैशवावस्था का अभाव होने से। वैसे ही युवा तथा वृद्धावस्था में भेद होने पर भी अहं प्रतीति में भेद नहीं है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा एक सिद्ध होता है।

शंका—विशेषण के भेद से विशिष्ट का भी भेद होता है। इस न्याय से अवस्था भेद से अवस्था वाले का भी भेद होना चाहिये।

समाधान—शिशुपना आदि अवस्था वाले का अहंकार ही भेद युक्त है। नित्य आत्मा में भेद नहीं है। यदि अवस्था के साथ आत्म भेद होता तो बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था

तक शरीर इन्द्रियों से किये हुये कर्मों का स्मरण न होता । जो बाल्यावस्था में गेंद आदि खेलता था, प्रपितामह की गोद में बैठता था, वही मैं पुत्र, पौत्र आदि को गोद में बिठाता हूं । आत्मा के अनेक होने में यह स्मरण नहीं हो सकता । क्योंकि दूसरे द्वारा किये गये कर्मों का दूसरे को स्मरण हो, ऐसा देखने में नहीं आता । क्योंकि बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक किये गये कर्मों का स्मरण होता है । इसलिये प्रत्यय के भेद से प्रत्यय के अर्थ का भेद है । यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होता है ।

व्यक्ति भेद से आत्मा में भी भेद है । यह अनुमान से सिद्ध नहीं होता । स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों का जागृत, स्वप्न के शरीरों से भेद सत्य होने पर भी अहं प्रतीति का आत्मा के साथ भेद का अभाव अनुमान प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता ।

श्रुतियों तथा स्मृतियों में जो देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि में भेद है, वह आत्म उपाधि भेद से है, आत्म भेद नहीं है । चैतन्य स्वरूप आत्मा सर्वत्र एक होने से आत्मा में भेद घटित नहीं होता है । देव गन्धर्व आदिकों के शरीर जीवों के जागृत्, स्वप्न आदि के शरीरों के समान आत्म भेद के द्योतक नहीं है । जैसे स्थूल आदि शरीरों से आत्मा के भिन्न-भिन्न भोग होते हैं; वैसे ही देव आदिकों के शरीरों में होते हैं । देव आदि के शरीर भोगने के साधन हैं । आत्मा नित्य, सर्वव्यापी एक है ।

जो आपने शंका की, यदि सब में एक आत्मा हो तो एक के सुखी होने से सबको सुखी तथा दुःखी होने से दुःखी होना चाहिये, इत्यादि यह ठीक नहीं है ।

सुख-दुःख की विचित्रता जीव के पुण्य-पाप, मिश्रित कर्म, पूर्व प्रज्ञा, संस्कार तथा वासना के अधीन हैं । वेद में कहा है **"यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते इति" "यथाचारी यथाकारी तथा भवति"** "जो जैसा कर्म करता है, वैसा फल पाता है ।" "जैसा कर्म या आचरण करता है वैसा होता है ।" अतः उसके अतिरिक्त दूसरा विज्ञाता नहीं है । अर्थात् उपाधि भेद से विज्ञानात्मा अनेक होने के कारण सुख-दुःख आदि में विचित्रता है । जैसे—किसी एक का दूरदर्शन सैट बिगड़ जाने पर, ट्रान्जिस्टर बिगड़ जाने पर सभी के नहीं बिगड़ते । परन्तु दूरदर्शन या आकाशवाणी केन्द्र में दोष आ जाने से सभी के निष्फल हो जाते हैं । वैसे ही व्यष्टि जीव का व्यष्टि जीव के साथ सम्बन्ध विशेष नहीं है । जब व्यष्टि का समष्टि से सम्बन्ध होता है, तब प्रभाव पड़ता है । यद्यपि आत्मा ही सर्वत्र सदा जानता है, तदपि उस-उस शरीर तथा बुद्धि को

लेकर स्वयं जानता है। देह भेद से बुद्धिभेद निश्चित होने के कारण प्रति शरीर में ज्ञान का भेद है। जिसके द्वारा जाना जाता है उसे ज्ञान कहते हैं या बुद्धि की वृत्ति का नाम ज्ञान है।

आत्मा महाकाश के समान सर्वत्र व्याप्त परिपूर्ण है। जहां-जहां आकाश है, वहां-वहां शब्द है। आकाश के समान शब्द सर्वव्यापी होने पर भी जहां-जहां ढोल, नगाड़ा, घण्टा पीटा जाता है, अथवा वंशी आदि में स्वर फूंका जाता है, वहीं-वहीं प्रकट होता है। वैसे ही परिपूर्ण एक आत्मा का भी जहां-जहां बुद्धि वृत्ति के अर्थ से सम्बन्ध है, वहीं पर ज्ञानोदय होता है, अन्यत्र नहीं। बुद्धि की वृत्तियां अनेक तथा परिच्छिन्न होने के कारण सब में सर्वज्ञता नहीं होती, यह सिद्ध हुआ। आत्मा के एकत्व में अनेक श्रुतियां प्रमाण हैं। **"आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः" "एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा" "एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः" "एकः सन् बहुधाविच्चचार" "एक एव हि भूतात्मा" "पुरुष एवेदं सर्वम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" ब्रह्मैवेदं सर्वम्, निरपेक्ष एक एव साक्षी, एकस्तेनेदं पूर्णं पुरूषेण सर्वम्, स्मृतियों का प्रमाण—"नित्यः सर्वगतः स्थाणु" "नित्यः सर्वगतोऽप्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जितः॥ एकः सन् विद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः"॥**

"आत्मा आकाश के समान सर्वव्यापी नित्य है।" "एक आत्मा सब प्राणियों में स्थित है।" "एक स्वयं प्रकाश आत्मा सब प्राणियों में छिपा है।" "एक होकर बहुत प्रकार से विचरा।" "एक ही भूतात्मा है।" "निरपेक्ष साक्षी एक पूर्ण पुरुष के द्वारा सब व्याप्त है।" "यह जगत् आत्मा से व्याप्त है।" "यह जगत् ब्रह्म से व्याप्त है।" "वह एक ब्रह्म देश काल, वस्तु की अपेक्षा रहित साक्षी है।" "(उससे) पूर्ण पुरुष से सारा जगत् व्याप्त है।" "आत्मा नित्य सर्वव्यापी, निर्विकार है।" "नित्य सर्वव्यापी आत्म दोष रहित कूटस्थ है।" "एक होते हुये भी माया या भ्रान्ति से अनेक प्रतीत होता है, स्वरूप से नहीं।" इन सभी प्रमाणों से आत्मा एक सिद्ध होता है। 'आदि ग्रन्थ साहिब' में भी एक ॐ कार कहा है। अतः भगवान् अर्जुन से कहते हैं—"मैं तुम तथा ये सब राजा लोग परब्रह्म ही हैं। सब को ब्रह्म रूप समझो" यह भाव है॥१२॥

तीसरे अध्याय के ३६वें श्लोक में जब अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३६॥

हे वृष्णि कुल उत्पन्न श्री कृष्ण ! किस बलवान् से प्रेरित होकर पुरुष इच्छा न होने पर भी पाप करता है। इसमें वार्ष्णेय शब्द की व्याख्या में लिखते हैं। **ब्रह्म विदां ब्रह्मानन्दामृतं वर्षति इति वृष्णि, सम्यग्बोधस्तेनावगम्यते इति वार्ष्णेयः परमात्मा श्री भगवान् तस्य सम्बुद्धि हे वार्ष्णेय।** ब्रह्म ज्ञानियों पर जो ब्रह्मानन्द रूपी अमृत बरसाता है उसे वृष्णि कहते हैं। अर्थात् सम्यग्बोध से जो जाना जाता है, वह वार्ष्णेय है अर्थात् परमात्मा श्री भगवान्। उनका सम्बोधन है। हे वार्ष्णेय ! ग्यारहवें अध्याय के दूसरे श्लोक में "कमल पत्राक्ष" तथा "माहात्म्यं" पदों की अपूर्व व्याख्या की है। **कमल पत्राक्ष—कं ब्रह्म सुखं, स्वरूपानन्दस्तमलति प्रकाशयतीति कमलमात्मज्ञानं यत्तदेव पतनात् त्रायत इति पत्रम्। कमलं च तत्पत्रं च कमल पत्रं तेनाऽक्ष्यते प्राप्यत इति हे कमल पत्राक्ष, ज्ञानैकगम्य परमात्मन् !।**

कं ब्रह्मसुख अर्थात् स्वरूपानन्द उसको जो प्रकाशित करता है वह कमल अर्थात् आत्म ज्ञान, पतन से रक्षा करता है वह पत्र है अर्थात् कमल पत्र। उससे जो देखा जाता है या प्राप्त किया जाता है वह कमल पत्राक्ष है अर्थात् एक मात्र ज्ञान से प्राप्त होने वाले परमात्मा **माहात्म्यं—महान् व्यापक आत्मा स्वरूपं यस्य स महात्मा, तस्य भावो माहात्म्यमिति।** महान् यानी सर्वव्यापक, आत्मा स्वरूप है जिसका, वह महात्मा है। उसका भाव माहात्म्यम् है।

श्री स्वामी शंकरानन्द जी की अपूर्व टीका के कुछ उद्धरण पाठकों की ज्ञान बृद्धि तथा अध्यात्म भाव को जागृत करने के लिये यहां दिये हैं। विशेष ज्ञान के लिये अधिकारी शिष्य को सद्गुरुओं की सेवा करते हुये अध्ययन करने से लाभ होगा।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे, चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

आत्म पुराण

भगवत् पाद श्री स्वामी शंकरानन्द सरस्वती जी महाराज ने आत्म पुराण की रचना १८ अध्यायों में की है। इसकी "सत्य प्रसवा" नामक संस्कृत टीका 'दत्त' वंशावतंस श्री पं० राज काकाराम जी शास्त्री ने अपने गुरुदेव अनन्त श्री मद्दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज की आज्ञा प्राप्त करके की है।

श्री शंकरानन्द जी ने 'आत्म पुराण' का प्रथम अध्याय ईशावास्योपनिषद् से आरम्भ न करके ऐतरेयोपनिषद् से आरम्भ किया है। यद्यपि उपनिषदों का आरम्भ शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयी संहिता के अन्तिम अध्याय (४० अध्याय) से आरम्भ होता है। अतः इनको ईशावस्योपनिषद् से प्रारम्भ करना चाहिये था। परन्तु वेदों में प्रथम ऋग्वेद है और उसकी पहली उपनिषद् ऐतरेय है। इसलिये इसी उपनिषद् से प्रारम्भ किया है।

प्रथम अध्याय में साधन चतुष्टय सम्पन्न जिज्ञासु शिष्य कावेरी तीर वासी श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरुओं की शरण में जाकर गुरुओं की सेवा करके प्रसन्न करता है। उनके प्रसन्न होने पर प्रश्न करता है, कि हे गुरुदेव ! संसार सागर में पड़ा हुआ जीव संसार से कैसे मुक्त होगा? संसार का कारण जो अज्ञान है, उसकी निवृत्ति कैसे होगी?

करुणानिधि गुरु जी ने कहा—हे शिष्य ! जैसे अन्धकार की निवृत्ति प्रकाश से होती है। वैसे ही अज्ञान की निवृत्ति आत्म ज्ञान से होती है। ज्ञान की प्राप्ति वेदान्त के श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से होती है। 'मैं वही ब्रह्म हूं' इस प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने ज्ञान रूपी तप करके जगत् की रचना की। रचना करके उसमें प्रवेश किया। सर्व प्रथम उन्होंने अण्डज, स्वदेज, उद्भिज प्राणियों की रचना की। इससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। फिर जेर से उत्पन्न होने वाले हाथ पैर वाले या बिना हाथ पैर वाले जीवों को जन्म दिया। तब भी प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने मनुष्य को रचा और बड़े प्रसन्न हुये। मनुष्य शरीर के कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय के गोलकों में उन-उन इन्द्रियों के देवताओं का प्रवेश करवाया। अर्थात् कानों में दिक् पाल, त्वचा में वायु, नेत्रों में सूर्य, रसना में वरुण, नासिका में पृथ्वी (अश्विनी कुमार) हाथों में इन्द्र, पैरों में विष्णु, लिङ्ग में प्रजापति, गुदा में मृत्यु, वाणी में सरस्वती या बृहस्पति का प्रवेश हुआ। मन में चन्द्रमा बुद्धि में ब्रह्मा, चित्त में क्षेत्रज्ञ, अहंकार में रुद्र ने प्रवेश किया। नाभि में समान वायु, हृदय में प्राण आदि ने प्रवेश किया। तब भी चेतना नहीं हुई। फिर पुराण पुरुष ने विचार किया कि यह सब देवता मेरे वशवर्त्ती हैं। मैं इनका स्वामी हूं। जिस मार्ग से सेवक जाते हैं। महाराज उस मार्ग से न जाकर विशेष मार्ग से जाता है। ऐसा विचार करके उसने दशम द्वार (ब्रह्म रन्ध्र) का भेदन कर प्रवेश किया।

इति संचिन्त्य विश्वात्मा प्रवेशाय कलेवरे।
आत्म चिन्तां विहायैव द्वारमेव व्यलोकयत्॥१७१॥

स देवो देव जनकः कपालत्रय मध्यगाम्।
सीमन्तिनीनां सीमन्ते सीमन्तां विदितां नृणाम्।
आत्म सन्निधि मात्रेण विदार्यात्र समाविशत्॥१७२॥
ततो मनुष्य मात्रस्य पुरी द्वारावती स्मृता।
अस्यां यस्मादयं कृष्णः पुराणः पुरुषोऽविशत्॥१७३॥
ऊर्ध्वभागे ततो द्वारं विद्वद्भिः कीर्त्यते बुधैः।
विदार्य मस्तकं यस्मात् पुरीमेष समाविशत्॥१७४॥
द्वारेणानेन निर्गत्य योगिनोऽर्चिषिमेवहि।
सम्भवन्ति यतस्तेन नान्दनं स्यादिदं ध्रुवम्॥१७५॥

ऐसा विचार करके विश्वात्मा ने शरीर में प्रवेश करने के लिये अपनी चिन्ता त्याग कर द्वार (दिव्य द्वार) को देखा। सबके उत्पादक देव ने तीन कपालों के बीच में स्त्रियों की मांग के अन्तिम भाग जो पुरुषों द्वारा ज्ञात है; अपने सन्निधि मात्र से तोड़ कर प्रवेश किया। तब ऊर्ध्व भाग से सभी मनुष्यों की द्वारावती पुरी, मनुष्यों के शरीर में पुराण पुरुष परमात्मा कृष्ण ने प्रवेश किया। टीकाकार ने स्पष्ट करते हुये लिखा है कि प्रसिद्ध द्वारकापुरी से समता होने के कारण इसे द्वारवती कहा है। भागवत् तथा विष्णु पुराण में प्रसिद्ध है कि जिस समय जरासन्ध ने कालयवन को सेना सहित साथ लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। तब भगवान् कृष्ण ने प्रवर्षण पर्वत से कूद कर द्वारका में प्रवेश किया था। उसी प्रकार आत्मा ने भी ग्यारह द्वारवती शरीर रूपी नगरी में प्रवेश किया। प्रसिद्ध नवद्वारों के अतिरिक्त दसवां ब्रह्मरन्ध्र तथा ग्यारहवां नाभिद्वार है। स्त्रियों के स्तनों के छिद्रों सहित तेरह द्वार होते हैं। **पुरमेकादश द्वारं प्राप्येन्द्रो देवराडयम्।** इस मार्ग से योगी जन निकल कर उत्तरायण मार्ग से (उत्तरायण के अभिमानी देवताओं से उपलक्षित) क्रम मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इस कारण से यह निश्चय ही आनन्द का द्वार है। **तेन हेतुनेदं द्वारं नान्दनं नन्द्यते आनन्दो लभ्यतेऽनेनेति नन्दनं, नन्दनमेवा नान्दनं॥१७१—१७५॥**

जीव पूर्व कल्प कालीन शुभाशुभ कर्म, वासना, संस्कार तथा पूर्व प्रज्ञानुसार स्वर्ग, नरक के भोग के अनन्तर मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। स्वर्गस्थ जीव पुण्य क्षीण होने पर कुहरा, बादल, अन्न आदि क्रम से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। इसका उपदेश वशिष्ठ, मरीचि,

सनकादिक तथा वामदेव आदि मुनियों के प्रति ब्रह्मा जी ने किया है। उनके जाने के बाद सनकादि ऋषि इसका मनन करते हैं। जीव पिता के शरीर में अन्न आदि के रूप में पिता के द्वारा जैसे कष्ट भोगता है। उसका वर्णन अति विस्तार से किया है। उसका दिग्दर्शन मात्र कराते हैं।

अनन्त जन्मों की वासना से युक्त मन स्वप्न द्रष्टा पुरुष के समान हितानाम की नाड़ी में जो अत्यन्त सूक्ष्म है सागर, मेरु पर्वत, सातों द्वीपों से युक्त पृथ्वी को जैसे देखता है, तथा सुखी-दुःखी होता है। वैसे ही जीव अज्ञान रूपी निद्रा में सोया हुआ सुख-दुःखों को भोगता है।

पिता के शरीर में जीव पिता के द्वारा खाये हुये अन्न फल आदि के रूप में सर्व प्रथम मुख में जाकर दांतों से उसके अंग-भंग होते हैं। मुख की दुर्गन्धि के साथ पेट में जाता है। गले में कफ आदि से लिपटा हुआ, गले के छोटे छिद्र से निकलने पर इन्द्रियां व्याकुल होती हैं। शक्तिहीन छोटे कीड़े के समान दुःखी होकर चेष्टा करता है।

गरुडस्य मुखे मत्स्यो यद्वच्चलति सर्वतः।
आत्मनो मुक्तिमिच्छन् सन्नेवं कण्ठे जनः सदा ॥३७० ॥

गरुड़ के मुख में स्थित मछली जैसे छूटने के लिये तड़पती है। वैसे ही जीव कण्ठ से छूटने के लिये तड़पता है ॥३७० ॥ कण्ठ से निकल कर जीव हृदय में प्रवेश करता है। जैसे खौलते हुये तेल में किसी की त्वचा निकाल कर डाल दिया जाए। वैसे ही यह जीव कफ से सना हुआ पेट की अग्नि में दुःखी होता है। पिता की प्राणाग्नि से सन्तप्त भागता हुआ यह बन्दर के समान पिता के हृदय में दुःख भोगता है। वहां पर कभी ऊपर कभी नीचे और कभी तिरछा चलता है। खौलते हुये तेल में पड़ी हुई जल की बूंद के समान उसकी गति होती है। पेट में पित्ताशय के अनन्तर यह वायु में आता है। वहां पर पर्वत पर विद्यमान किले के समान नाभि में पहुंचता है। वहां पर इसकी इन्द्रियां व्याकुल हो जाती हैं। वाताशय में भट्ठी में डाले गये तिनके के समान सन्तप्त होता है। वहां पर अग्नि के समान सन्तप्त वायु से व्याकुल होता है। वहां से पेट की अग्नि में जाकर पकता है। वहां मल मांस तथा अस्थि आदि में तीन भागों में विभक्त होता है। पूर्व-पूर्व रूप को क्रम से त्याग कर पर-पर रूप को प्राप्त करता है। अर्थात् त्वचा, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा रूपों को क्रमशः प्राप्त करता है। जीव सर्वप्रथम भोजन पकाने वाली समान वायु द्वारा अन्न से रस रूप से रहता है। वहां पर अतिकष्ट भोगता है। पेट

में विद्यमान केस के अग्रभाग के सौंवे भाग से सूक्ष्म हजारों नाड़ियों में से होते हुये रस रूप से त्वचा की ओर दौड़ता है। वहां मरण तुल्य दुःख प्राप्त करता है। त्वचा से खून में, फिर मांस में जाकर कष्ट से भयभीत होकर मूर्च्छित होता है। वहां पर सफेद चूर्ण के समान मेद रूप को प्राप्त करता है। फिर शरीर रूपी शाला में विद्यमान खम्भों के समान अस्थियों में जाता है। अन्त में वह वीर्य रूप में परिणत होता है। इस प्रकार एक वर्ष तक रहने के बाद पिता के कामाग्नि से सन्तप्त होने पर माता के पेट में जाता है। माता के पेट में नौ मास रहकर गर्भ से बाहर आता है। माता के उदर में गर्भस्थ शिशु के दुःखों का वर्णन पुराणों में सर्वत्र मिलता है। अतः विस्तार से नहीं लिखा जा रहा।

सारांश

इस पूरे आत्म पुराण में ग्रन्थ के अन्त में गुरु जी ने यह बताया कि जीव अनन्त जन्मों के पुण्यों के उदय होने पर देव दुर्लभ मनुष्य शरीर पाता है। इसमें भी पुंसत्व, इसमें भी द्विजाति, द्विजातियों में भी ब्राह्मणत्व, इनमें भी वेदज्ञ, वेदज्ञों में कर्मकाण्डी, उनमें आत्मज्ञानी होना अत्यन्त दुर्लभ है। जीव के अज्ञान की निवृत्ति अनुभूति जन्य ज्ञान के बिना नहीं होती। आत्मज्ञान अन्तःकरण के मल, विक्षेप, आवरण इन तीन दोषों की निवृत्ति बिना नहीं होता। अतः जन्म-मरण से छूटने के लिये नित्य, नैमित्तिक कर्मों तथा उपासना द्वारा अन्तःकरण शुद्ध करके आत्म ज्ञान में लगना चाहिये।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे, पंचमोऽध्यायः ॥५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

अ० श्री पूज्य पाद दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महा० तथा श्री पं० काकाराम जी शास्त्री (८९७—८९८)

आत्म पुराण की भूमिका से तथा श्री पं० काकाराम शास्त्री जी के प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका से पता चलता है कि श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज अहोबिल निवासी थे। संन्यास के अनन्तर काशी जी को आ गये। वहीं पर इनकी चरण सेवा करते हुये शास्त्री जी ने पूर्वोत्तर मीमांसा, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग दर्शन तथा गीता एवं उपनिषदों का शांकर भाष्य पढ़ा था। श्री स्वामी जी दूसरे दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी से भिन्न थे। जिनसे मेरे

गुरुदेव स्वामी महादेवाश्रम जी महाराज तथा स्वामी करपात्री जी महाराज ने अध्ययन किया था। **"किञ्चित् काशी क्षेत्र निवासाध्ययनकृतरुचयस्तत्र गत्वाहोवलसूरि विश्वेश्वराश्रम यति वर्यादिभ्योऽधीत पूर्वोत्तर मीमांसा, व्याकरण, तर्कादि समयाः काशीस्थ विद्वत्परिषत् प्राप्त पदवाक्य प्रमाण परावारदर्शित्व पदभाजः निज गुरूणां श्रीमद्विश्वेश्वराश्रम यतिवर्याणामात्मपुराण व्याख्या विषयादेशम-नुरुन्धानास्तत्परिशीलनफलभृताखण्डब्रह्मानन्दसुखसाक्षात्कारोपलम्भिकां सत्र-सवाख्यां व्याख्यां निरमासिषुः।**

काशी क्षेत्र में निवास तथा अध्ययन की रुचि होने से वहां जाकर अहोवल सूरि यति चक्र शिखामणि काशी विद्वत्परिषद् से प्राप्त पद (व्याकरण) वाक्य (पूर्वोत्तर मीमांसा) प्रमाण (न्याय, श्रुति स्मृति) में पारंगत, आदि पदों से विभूषित श्री मद्दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी के चरणों में बैठकर कर्म तथा ब्रह्म मीमांसा, व्याकरण, तर्क आदि का अध्ययन किया। अपने गुरुओं श्री मद्विश्वेश्वराश्रम जी महाराज की आज्ञा से 'आत्म पुराण' की 'सत्रसवा' नाम की व्याख्या शम दम आदि साधन सम्पन्न शास्त्र परिशीलनार्थ अखण्ड ब्रह्मानन्द सुख का साक्षात्कार करने के लिये टीका लिखी।

श्री पं० काकाराम जी शास्त्री का दूसरा नाम "श्री राम कृष्ण सूरि" था। आपकी टीका के प्रत्येक अध्याय के अन्त में लिखा मिलता है। **श्रीदत्त कुल तिलक कृष्णचन्द्रात्मज दिलाराम सूरि तनूज रामकृष्णस्य इत्यादि**। इससे पता चलता है कि इनका जन्म "दत्त" वंश में हुआ। इनके पितामह का नाम श्री कृष्णचन्द्र तथा पिता का नाम श्री दिलाराम सूरि तथा इनका नाम श्री राम कृष्ण सूरि सिद्ध होता है। आपके पूर्वज काश्मीरी ब्राह्मण थे। कालान्तर में वाराणसी के पूर्व भाग में आकर विराजमान हुये। मूल निवास व्यास गंगा के समीप 'बब्बर' ग्राम के निवासी सारस्वत ब्राह्मण थे। पंजाब में 'मझाल' नामक सात जातियां पाई जाती हैं। उनमें दत्त, वाली, मोहन, छिब्बर आदि हैं। इनका जन्म वि० सं० १८४२ पौष शुक्ल द्वादशी को हुआ था। इन्होंने **उपनिषद् रत्न 'आत्मपुराण' पर सत्रसवा नाम की टीका सं० १८८५ वि० में लिखी थी**। आपकी टीका अति गम्भीर, सारगर्भित तथा पाण्डित्य पूर्ण है। मुमुक्षु ब्रह्मचारियों, विरक्त सद्गृहस्थों, वानप्रस्थी एवं यतियों के लिये विदेह कैवल्य मुक्ति प्रदायिनी है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

५०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी पूर्णानन्दसदाशिव सरस्वती (८९९)

इनकी जन्म भूमि नागारण्य। पिता का नाम श्री नागनाथ। ८१ वर्ष पीठासीन रहे। गंगा दशहरा पिंगल सम्वत् में काञ्ची में शरीर त्यागा।

५१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव (४) (९००)

यह काञ्ची निवासी थे। पिता का नाम श्री कामेश्वर माता का नाम कमलाम्बा। पूर्व आश्रम का नाम कुप्पन था। व्यासाचल में रहने के कारण व्यासाचल भी नाम था। इन्होंने "व्यासाचलीय शंकर विजय" नामक ग्रन्थ की रचना की। ९ वर्ष तक सिंहासनासीन रहकर अक्षय सम्वत् आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा को व्यासाचल में शरीर छोड़ा।

५२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी चन्द्रचूड़ (तृतीय) (९०१)

इनका जन्म मणिमुक्ता नदी के समीप अशाशाला में हुआ। पिता का नाम पुरारि। माता का नाम श्रीमती था। जन्म नाम अरुणगिरि था। १६ वर्ष तक गुरु पद पर रहकर चैत्र शुक्ल ११ सुभानु सम्वत्सर में शरीर छोड़ा।

५३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सर्वज्ञ सदाशिवबोध (९०२)

इनका जन्म कण्णार नदी के पास हुआ। पिता का नाम चिरुत-चिक्कन था। रामनाथ के राजा प्रवीर इनके भक्त थे। १६ वर्ष तक सिंहासनासीन रहकर बिलम्बी सम्वत् चैत्र शुक्ल अष्टमी को रामेश्वरम् में शरीर त्यागा। इन्होंने **पुण्यश्लोक मञ्जरी** की रचना की थी।

५४. अनन्त श्री दण्डी स्वामी परम शिव (२) (९०३)

जन्म भूमि पम्पा नदी के आस-पास थी। पिता का नाम परमेश्वर। जन्म नाम शिव राम कृष्ण था। **आत्म विद्या विलास** नामक ग्रन्थ में श्री गुरु रत्न माला के रचयिता श्री सदाशिव ब्रह्म की प्रशंसा की गई है जिनके यह शिष्य थे। इन्होंने 'श्री शिव गीता' पर टीका की है। ४७ वर्ष तक सिंहासन पर रहकर पार्थिव सम्वत् श्रावण शुक्ल दशमी को श्वेतारण्य (वर्तमान तिरुवेङ्गाण्डु) में शरीर त्याग किया। वहां पर इनका समाधि मन्दिर अभी भी है।

५५. अनन्त श्री दण्डी स्वामी आत्मबोध जी (९०४)

इनका पूर्वनाम विश्वाधिका जन्म भूमि दक्षिणी आर्काट जिला के बृद्धाचल में थी। इन्होंने बड़ी लम्बी यात्रायें कीं। काशी में बहुत समय तक रहे। "रुद्र भाष्य" तथा "गुरु रत्न भाष्य" की रचना की। ५२ वर्ष तक पीठासीन रहे।

५६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी बोधे (३) (९०५)

इनका जन्म नाम पुरुषोत्तम। योगेन्द्र तथा भगवन्नाम बाद में हुये। ५० वर्ष तक पीठासीन रहे। रामेश्वरम् की तीर्थ यात्रा से लौटते समय इनका शरीर सं० १६९२ वि० में छूटा। वहां पर प्रतिवर्ष उत्सव मनाया जाता है।

५७. अनन्त श्री दण्डी स्वामी अद्वैत प्रकाश (गोविन्द) (९०६)

इनका पूर्व नाम श्रुति पण्डित था। तञ्जौर जिला के गोविन्द पुरम् में रहते थे। वहीं पर पूर्व आचार्य का शरीर छूटा था। तञ्जौर नरेश शाह जी इनके सेवक थे। अध्यक्ष पद पर १२ वर्ष रहे।

५८. अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव (५) (९०७)

यह सिद्ध पुरुष थे। इन्हीं के समय श्री आत्मबोध जी ने "गुरु रत्न माला" की टीका लिखी।

५९. अनन्त श्री दण्डी स्वामी चन्द्रशेखर (४) (९०८)

इनके समय में मुसलमानों के आतंक के कारण कामकोटि मठ काञ्ची पुरम् से हटाकर कुम्भ कोणम् में लाना पड़ा। उसी समय मठ में स्थित कामाक्षी भगवती की स्वर्ण मूर्ति तञ्जौर लाई गई। वहां के राजा प्रताप सिंह के विशेष निमन्त्रण पर मठ का केन्द्र तञ्जौर हुआ। परन्तु उस समय के आचार्यों ने कावेरी नदी पर स्थित कुम्भ कोणम् को समझा। अतः आचार्यों ने उसे केन्द्र बनाया।

६०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव (६) (९०९)

६१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी चन्द्रशेखर (५) (९१०)

इनका जन्म नाम वेंकट सुब्रह्मण्यम् दीक्षित था। तञ्जौर के नायक राजाओं के मन्त्री पद पर गोविन्द दीक्षित नाम के एक ब्राह्मण थे। ये कर्नाटक ब्राह्मण तंजौर में बस गये थे। बाद के आचार्य इन्हीं के वंशज थे। मन्त्र शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।

६२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव (७) (९११)

इनका उपनाम सुदर्शन तथा जन्म नाम महालिंग शास्त्री था। आपने बड़ी लम्बी तीर्थ यात्रायें कीं।

६३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी चन्द्रशेखर (६) (९१२)

जन्म नाम श्री स्वामी नाथ था। १७ वर्ष तक पीठासीन रहे।

६४. अनन्त श्री दण्डी स्वामी महादेव (८) (९१३)

इनका मूल नाम श्री लक्ष्मी नृसिंह था। केवल ७ दिन तक पीठासीन रहे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे सप्तम परिच्छेदे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

६५. अनन्त श्री दण्डी स्वामी जगद् गुरु कामकोटि पीठाधीश्वर श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती (९१४)

(अंग्रेजी पुस्तक परमाचार्य से)

श्री स्वामी जी का जन्म ३० मई सन् १८९४ ई. को दक्षिणी आर्काट ज़िले में हुआ था। इनके माता-पिता का नाम श्रीमती महालक्ष्मी, अम्मल, श्री सुब्रह्मण्य शास्त्रिंगल था। इन्होंने १३ वर्ष की आयु में परम योग्यता प्राप्त कर ली थी। पूर्वाश्रम का नाम श्री स्वामीनाथन् था। आप संस्कृत, तमिल, हिन्दी, अंग्रेजी, तैलगू आदि भाषाओं के विद्वान् थे। थोड़े ही समय में वेद-वेदान्त पर अधिकार कर लिया। १३ फरवरी, १९०७ ई. में १३ वर्ष की आयु में सिंहासनासीन हुये। इनके ४ भाई तथा १ बहन थी। इनके पितामह श्री गणपति शास्त्री जी ने ऋग्वेद का कन्नड, मराठी, तमिल तथा तैलगू में अनुवाद किया था। पितामह इस पीठ के ६४वें, ६५वें आचार्यों के प्रतिष्ठित, कृपापात्र विद्वान् थे। इन्होंने जैन, बौद्ध तथा ईसाई आदि के धर्म ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। इन्होंने तंजौर तथा कुम्भ कोणम् के मठों का जीर्णोद्धार किया। ९ मई, १९०७ में कुम्भ कोणम् में महा सम्मेलन किया। जिसमें हजारों भक्त सम्मिलित हुये। आचार्य ने त्रिचनापल्ली के समीप भगवती अखिलेश्वरी देवी तथा जम्बुकेश्वरम् मन्दिरों का एक लाख रुपये में जीर्णोद्धार किया। आद्य शंकराचार्य जी ने वहां पर देवी जी के ताटंक की प्रतिष्ठा की थी। सन् १८८९ में विद्यमान अपने परमेष्ठी गुरु श्री महादेवेन्द्र सरस्वती जी

के समाधि मन्दिर का सन् १९१६ में नवरात्रों में कुम्भाभिषेक किया। अगस्त १९१७ में अद्वैत सभा में भारतवर्ष के वेदान्त के विद्वानों को आमन्त्रित करके शांकर वेदान्त के सभी ग्रन्थों पर गहनतम विचार गोष्ठी हुई। उसी में सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को लेकर वर्णाश्रम धर्म की कैसे रक्षा हो, इस पर विशेष विचार हुआ।

२१ वर्ष की दिग्विजय यात्रा (१९१९—१९३९ तक)

महाराज श्री जी ने यह विजय यात्रा शिवरात्रि अमावस्या को आरम्भ की। इनके साथ २०० कर्मचारी ३३ बैल गाड़ियां, अनेक हाथी, घोड़े, ऊंट तथा गौएं थीं। यात्रा के आरम्भ में गणेश जी तथा चन्द्र मौलीश्वर जी की विशेष पूजा की। लगभग ४ माह में कुम्भ कोणम् पहुंचे। वहीं पर व्यास पूजा तथा चातुर्मास्य किया। इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों प्रकार के संन्यासी थे। आचार्य ने गुरु तथा व्यास जी का महत्त्व बताते हुये उनके कार्यों का विस्तार से वर्णन किया। १९२० ई. में बंगाल में वादरायणम् पहुंचे। वहीं पर व्यास पूजा तथा चातुर्मास्य किया। वहां की पाठशाला में ३०० छात्र वेदाध्ययन करते थे। आश्विन नवरात्र विष्णु पुरम् में किया। वहां से रामेश्वर के लिये चले। वहां समुद्र तट पर मठ का निर्माण करके चारों शिष्यों सहित श्री शंकराचार्य जी का मन्दिर बनवाया। इसके साथ श्री गणेश जी, स्वामी कार्तिक, अप्पय दीक्षित, माता आर्याम्बा, उभय भारती, लोपा मुद्रा, अगस्त्य, अरुन्धती, वशिष्ठ, विद्यारण्य स्वामी, तुलसीदास जी, मीराबाई, मधुसूदन सरस्वती आदि के चित्र हैं।

एक बार आचार्य पाद किसी गाड़ी से यात्रा कर रहे थे। गाड़ी के नीचे कुचल कर किसी जीव की मृत्यु हो गई। तब से आपने पैदल यात्रा की प्रतिज्ञा की। एक बार मद्रास प्रान्त में कई वर्षों तक पानी नहीं बरसा। इनके पहुंचते ही वर्षा हुई।

यात्रा में आपने इस पीठ के ५७वें गुरु श्री परम शिवेन्द्र सरस्वती तथा उनके गुरु गंगागुरु सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वती के स्थानों के दर्शन किये। श्री शिवेन्द्र सरस्वती जी का जन्म जहां हुआ था। इनके पूर्ववर्त्ती आचार्य गंगा धरेन्द्र जी ने 'प्रणव कल्प' पर संस्कृत व्याख्या लिखी है। सदाशिव ब्रह्मदेव सरस्वती जी ने श्री निश्चल दास जी के 'विचार सागर' ग्रन्थ का संस्कृत में अनुवाद किया है। इन्होंने १०८ उपनिषदों की संस्कृत में संक्षिप्त व्याख्या, योग सूत्र वृत्ति, ब्रह्मसूत्र वृत्ति, सिद्धान्त कल्पवल्ली, शिव मानस पूजा तथा आत्म विद्या विलासम् ग्रन्थ लिखे हैं।

इस प्रकार अनेकों स्थानों के क्षेत्रों में भ्रमण करते हुये तीर्थ राज प्रयाग पहुंचे। वहां से वाराणसी आकर अनेकों धुरन्धर विद्वानों और संन्यासियों ने स्वागत किया। जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है—

१. महामहोपाध्याय पञ्चानन तर्करत्न भट्टाचार्य।
२. श्री लक्ष्मण शास्त्री तैलंग महामहोपाध्याय सीनियर प्रोफेसर क्वींस कॉलेज काशी।
३. श्री मुकुन्द झा वख्शी महामहोपाध्याय।
४. श्री ऋषीकेश उपाध्याय ज्योतिषाचार्य।
५. श्री भालचन्द्र जी शास्त्री।
६. श्री बालबोध मिश्र, न्याय व्याकरणाचार्य।
७. श्री हरिनारायण त्रिपाठी व्याकरणाचार्य।
८. श्री गणपति शास्त्री मोकाटे व्याकरणाचार्य।
९. श्री शिवदत्त मिश्र न्यायाचार्य।
१०. श्री गंगाधर शास्त्री भारद्वाज साहित्याचार्य।
११. श्री अनन्त शास्त्री फड़के व्याकरणाचार्य।
१२. श्री महादेव शास्त्री साहित्याचार्य, काव्य, सांख्य, व्याकरण, वेदान्त तीर्थ काशिक राजकीय संस्कृत पाठशाला प्रधानाध्यापक। ब्रह्मीभूत काशी सुमेरु मठाधीश श्री महेश्वरानन्द सरस्वती महाराज।
१३. श्री देवनायकाचार्य व्याकरणाचार्य, प्रधान मंत्री अखिल भारतीय, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ।
१४. श्री वाचस्पति मिश्र।
१५. श्री चित्र स्वामी शास्त्री मीमांसा केसरी, वेद विशारद, मीमांसा प्रधानाध्यापक हिन्दू विश्व विद्यालय काशी।
१६. श्री मधुसूदन भट्टाचार्य, न्यायाचार्य, तर्क तीर्थ।
१७. श्री विश्वनाथ शास्त्री द्राविड।
१८. पं० मदनमोहन मालवीय जी।
१९. अनन्त श्री यतिचक्र श्री करपात्री जी महाराज।

इस प्रकार ८४ से अधिक विद्वानों ने हार्दिक स्वागत किया। विस्तारभय से परमाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन वृत्त लिखा है। **(श्री शंकर पीठतत्त्व दर्शनम् से)**

आचार्य पाद के भारत यात्रा का संक्षिप्त तिथि पत्र—

यात्रारम्भ वि० सम्वत् १९७९ आश्विन पूर्णिमा, सेतुबन्ध रामेश्वरम् में गंगा यात्रा के लिये वालुका ग्रहण

वि० सम्वत् १९९० कोल ग्राम से वाराणसी के लिये।

वि० सम्वत् १९९० मकर १५ रविवार श्री शैल पर्वतस्थ मल्लिकार्जुन।

वि० सम्वत् १९९० मकर १७ मंगल श्री कृष्णावेणी, पाताल गंगा स्नान।

वि० सम्वत् १९९० कुम्भ १ सोमवार अलंपुर तुंगभद्रा में महाशिव रात्रि स्नान।

बाल ब्रह्मेश्वर का दर्शन

वि० सम्वत् १९९१ मेष २३ रविवार स्वर्ण ग्राम गोदावरी स्नान।

वि० सम्वत् १९९१ वृष ६ रविवार पेण्डल बाड़ा में गोदावरी स्नान, आद्य शंकर जयन्ती महोत्सव।

वि० सम्वत् १९९१ मिथुन २० बुधवार जावालपुर गौरी घाट नर्मदा स्नान।

वि० सम्वत् १९९१ श्रावण ८ सोमवार प्रयाग में त्रिवेणी स्नान श्री भगवत्पाद के यन्त्र की स्थापना, अलोपी देवी का दर्शन

वि० सम्वत् १९९१ श्रावण १० बुधवार प्रयाग दशाश्वमेध घाट स्नान तथा सेतुबन्ध से लाई गई समुद्र बालुका का विसर्जन। सोमेश्वर दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ श्रावण ११ गुरुवार व्यास पूर्णिमा, चातुर्मास्य संकल्प।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या ३ मंगलवार प्रयाग में वासुकि, भरद्वाज दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या ५ गुरुवार शिवकोटि दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या ६ शुक्रवार प्रयाग से काशी प्रस्थान हेतु प्रार्थना।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या ७ शनिवार अक्षय वट दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या १८ बुधवार काशी पंचक्रोशी प्रवेश।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या २१ शनिवार काशी कामाक्षी देवी दर्शन, काशी नरेश द्वारा सहस्रपाद पूजन। श्री विश्वनाथ, अन्नपूर्णा दर्शन। सांग वेद विद्यालय में स्वागत समारोह, भाषण।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या २२ रविवार मणिकर्णिका स्नान, विशालाक्षी दर्शन, हनुमान घाट पर कामकोटि मठ की प्रतिष्ठा तथा आचार्य शंकर का प्रथम दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या २३ सोमवार गऊघाट काशी स्नान, केदार दर्शन।

वि० सम्वत् १९९१ कन्या ३१ मंगल यज्ञानुष्ठानानतर महानवमी को पूर्णाहुति, विश्वनाथ जी का अभिषेक। (शांकर तत्त्व दर्शन से)

उपसंहार

महाराज श्री कट्टर सनातनी होने पर भी सभी सम्प्रदायों, धर्मों तथा वर्णों का सम्मान करते थे। पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाने का भी पूर्ण प्रयास किया। एक बार आपके दर्शन के लिये महात्मा गांधी जी पहुंचे। समय निश्चित हुआ। दोनों में वेदादि शास्त्र प्रतिपादित धर्म तथा भगवच्चर्चा चली। गांधी जी समय का विशेष ध्यान रखते थे। भोजन का समय हो चुका था। रसोइये ने भोजन के लिये बुलाया। उत्तर में गांधी जी ने कहा—**"मैं आज आचार्य पाद के पाद पद्मों में बैठा ज्ञानामृत पान कर रहा हूं। इससे मेरी क्षुधा-पिपासा नष्ट हो गई है।"** आपने भारत के सभी तीर्थों में मठों की स्थापना की तथा मन्दिरों में दाक्षिणात्य पद्धति से वैदिक विधि से पूजा होती है। विशेष कर दक्षिण भारत में प्रत्येक ग्राम, नगर, घरों तथा दूकानों पर आचार्य पाद के शिष्य सहित चित्र लगे रहते हैं। आपने वेदादि शास्त्रों का विशेष प्रचार किया। काञ्ची पुरम् तथा उसके आस-पास अनेक वैदिक पाठशालायें हैं। उनमें पांच से लेकर २५—३० तक आयु के छात्र वैदिक संहिताओं का सस्वर पाठ करते हैं। वर्तमान मठ शिव काञ्ची में मस्जिद के समीप है। वहां पर तथा युवावस्था में जहां आपने घोर तप किया था, गोशाला तथा वेद पाठशाला है। विद्यार्थियों को भोजन, दूध, वस्त्र आदि की सभी सुविधायें दी जाती हैं। नगर से बाहर ६०,७० वर्ष के बृद्धों का सपत्नीक आश्रम है। उसके समीप बृद्ध बैलों तथा गायों की गौ शाला है। यहीं पर विज्ञान महाविद्यालय तथा संस्कृत

महाविद्यालय है। इसमें भाष्यों सहित चारों वेद पढ़ाये जाते हैं। वर्तमान पीठाधीश्वर श्री जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज ने उसी स्थान पर एक विशालतम पुस्तकालय बनाने का विचार किया है। जिसमें संसार के सभी पुस्तकालयों की दो-दो प्रतियां रहेगी। इसमें लगभग पांच लाख पुस्तकों का अनुमान है।

आपने पूरे भारत में आचार्य पाद के स्तोत्रों सहित, विष्णु सहस्रनाम आदि के कैसेट भी तैयार किये हैं। यत्र-तत्र शांकर दिग्विजय, प्रस्थानत्रयी के भाष्य सहित वाल्मीकि रामायण, महाभारत, अष्टादश महापुराणों के अनुष्ठान करवाते थे।

आज से तीन वर्ष पूर्व यह शरीर काञ्ची में पहुंचा। दर्शन कर कृतार्थ हुआ। आपने ग्रन्थ के लिए शुभाशीर्वाद प्रदान किया। सौवें वर्ष में प्रवेश कर विगत दो वर्ष पूर्व मठ में ब्रह्मीभूत हुये। इससे पूर्व काञ्ची पुरम् में तथा शृंगेरी के वर्तमान आचार्य महास्वामी श्री भारती तीर्थ जी महाराज ने शृंगेरी में कनकाभिषेक किया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

६६ अनन्त श्री दण्डी स्वामी जगद् गुरु शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज (९१५)

वर्तमान जगद् गुरु अनन्त श्री जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज के प्रपितामह श्री पंचमकेश अय्यर, पितामह श्री वैंकटरामअय्यर, के यहां ११ मई, १९०१ ई. को पिता श्री महादेवन का जन्म हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा अदीचपुरम् तथा मैनरगुडी में हुई। इनके दो पुत्र दो पुत्रियां हुईं।

१८ मई, १९३४ ई. में एक पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम सुब्रह्मण्यम् रखा। ८ वर्ष की आयु में वैदिक शिक्षा के लिये गये। एक दिन श्री महादेवन् काञ्ची पुरम् में जगद् गुरु जी के दर्शन के लिये गये। साथ में सुब्रह्मण्यम् भी थे। इनके पिता ने ऋग्वेद का विशेष अध्ययन करवाया। वैदिक आचार्य श्री कृष्णामूर्ति शास्त्री हैं। फरवरी सन् १९४४ में महादेवन् पुत्र सहित काञ्चीपुरम् में जगद् गुरु जी का कुम्भाभिषेक कामाक्षी देवी के मन्दिर में देखने गये। ७ फरवरी को पुत्र सहित महादेवन् वापस आये। परन्तु मार्ग में ही श्री कृष्ण मूर्ति उनको लेकर

विलूपुरम् पहुंचे। वहां गुरु कुल में वेदाभ्यास करने लगे। १६ वर्ष की आयु में ऋग्वेद की शाकल्य संहिता का पूर्ण रूपेण अध्ययन कर लिया। पिता जी वहां से त्रिचनापल्ली में रहने लगे।

परमाचार्य जी द्वारा १९२३ ई. में स्थापित श्री जगद् गुरु विद्यास्थानम् में अन्य वेदों तथा वेदान्त का अध्ययन करने लगे। वहां टी० वी० बाल कृष्ण शास्त्री जी प्रधानाचार्य थे। उनसे काव्य, धर्म शास्त्र तथा उपनिषदों का अध्ययन किया। इनके पिता की ७० वर्ष की आयु हो चुकी थी। उनकी इच्छा थी कि मेरा पुत्र देश में विद्या का प्रचार करे। वे उनको साथ लेकर पालानी, मदुरै, रामेश्वरम्, कुरुंटुलम्, कन्याकुमारी जो कि तमिलनाडु में है तथा नासिक, पंचवटी, पोरबन्दर, पूना, बम्बई, आगरा, मथुरा, दिल्ली, हरिद्वार-ऋषिकेश आदि तीर्थों की यात्रा करवाते हुये, गोदावरी, नर्मदा, गंगा-यमुना में स्नान किया। रामायण, महाभारत का अध्ययन किया।

आचार्य पद की प्राप्ति

यात्रा से लौटने के बाद मार्च १९५४ ई. को श्री महादेव जी को काञ्ची पुरम् से एक पत्र प्राप्त हुआ। उसमें सुब्रह्मण्यम् सहित काञ्ची पुरम् बुलाया गया था। २२ मार्च को आचार्य द्वारा सुब्रह्मण्यम् जी को विधि विधान से संन्यास दीक्षा प्राप्त हुई तथा आचार्य पद पर अभिषिक्त हुये।

विजय यात्रा

गुरु जी की आज्ञा प्राप्त करके आपने सन् १९७० ई. में कन्याकुमारी से हिमालय तक की यात्रा प्रारम्भ की। तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, नैपाल, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा इत्यादि की पैदल यात्रा की। सन् १९७३ में लखनऊ पहुंचे। वहां बेगम हजरत महल पार्क में आपका शिविर लगा था। वहां ग्रेन पार्क (गोस्वामी तुलसी दास पार्क) लखनऊ विश्व विद्यालय आदि में भाषण हुये। वहीं पर मेरा प्रथम परिचय हुआ था। २१ अप्रैल, १९७१ ई. में आद्य शंकर की जन्म भूमि में आचार्य पाद का पूजन हुआ। वहां आद्य शंकर कीर्तिस्तम्भ जो कि ९ मंजिल ऊंचा है, उसका निर्माण हुआ। उसमें अनेक देवताओं के मन्दिरों सहित आद्य शंकर का भव्य चित्रों से चित्रित आकर्षक, दर्शनीय चरित्र चित्रों के रूप में अंकित हैं। यह स्तम्भ १२ मई, १९७१ में निर्मित हुआ। इसमें एक विराट् सन्त सम्मेलन हुआ। जिसमें काशी से १०८ दण्डी स्वामी पहुंचे। सन् १९८४ ई. में परमाचार्य तथा जयेन्द्र सरस्वती जी काञ्ची पहुंचे। वहां पर ७०वें

आचार्य श्री विजयेन्द्र सरस्वती जी को संन्यास देकर आचार्य पद पर नियुक्त किया। संन्यास के बाद श्री जयेन्द्र जी ने मठ का पूरा भार इन पर छोड़ दिया। मठ से सचित्र एक "अद्वैत कोष" नाम का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। जिसमें आरम्भ से लेकर आज तक के अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों का परिचय दिया गया था। उसके मुखपृष्ठ पर भगवान् वेद व्यास जी का आद्य शंकराचार्य सहित अति प्राचीन चित्र था। कामाक्षी देवी के मन्दिर में परमाचार्य द्वारा निर्मित सर्वज्ञ सिंहासन है।

इस समय पीठ पर गुरुदेव के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर रत्न जटित सिंहासन पर बिठाकर विधि विधान से श्री जयेन्द्र सरस्वती जी का अभिषेक हुआ। आप गुरुवत् सनातन धर्म की विशेष सेवा कर रहे हैं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, सप्तम परिच्छेदे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

६७ अनन्त श्री विजयेन्द्र सरस्वती जी महाराज (९१६)

आपका जन्म सन् १९६८ में तमिल भाषी परिवार पं० कृष्णामूर्ति शास्त्री जी के यहां हुआ था। आप के पिता आन्ध्र प्रदेश से तामिलनाडु में जिला चिंगलपेटू के थन्डलम् नामक ग्राम में आकर वसे थे। वहीं पर आपका जन्म हुआ। श्री कृष्णामूर्ति शास्त्री जी वेद शास्त्रों के धुरन्धर विद्वान् हैं। कामकोटि की वैदिक पाठशाला में ऋग्वेद पढ़ाते हैं। श्री जयेन्द्र सरस्वती जी ने ऋग्वेद की शिक्षा आप से ही ली थी। उस बालक का नाम शंकर नारायण रखा। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में ही हुई। सन् १९७८ में श्री जयेन्द्र सरस्वती जी कर्नाटक तथा आन्ध्र में धर्म प्रचार के लिये गये। इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, तमिल, तैलगू आदि भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। पाण्डेचेरी में विशेष रूप से शास्त्रों का अध्ययन किया।

२७ मई सन् १९८३ ई. में यह परमाचार्य जी के दर्शन करने के लिये महबूब नगर के निकट शिविर में पहुंचे। उनकी ९०वीं जयन्ती थी। दोनों आचार्यों से इनकी भेंट तथा वार्त्तालाप हुआ। गुरु जी की आज्ञा प्राप्त कर जयेन्द्र जी ने इन्हें संन्यास देकर अपना उत्तराधिकारी निश्चित किया। तब यह शंकर नारायण से श्री विजयेन्द्र सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुये। गुरु जी ने इनको आन्ध्र प्रदेश में प्रचार के लिये भेजा। इनका दूसरा नाम श्री शंकरेन्द्र सरस्वती भी है।

आप भी गुरु जी के समान ही हंस-मुख, संस्कृत, तमिल, हिन्दी आदि भाषाओं में मातृभाषा के समान बोलते हैं। "श्री गुरुवंश पुराण" के प्रकाशनार्थ बहुत साहित्य आप से प्राप्त हुआ। विशेषतः "श्री शांकर विजय मकरन्द" "संक्षेप धर्मशास्त्रम्" तामिल व्याख्या सहित तथा अंग्रेजी में तीनों आचार्यों का जीवन चरित्र "परमाचार्य" पुस्तकें प्रदान कीं। ऋग्वेद का भाष्य सहित आपको पूर्ण ज्ञान है। आप परम गुरु जी के पद चिह्नों पर चलते हैं।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुगं खण्डे, सप्तम परिच्छेदे, दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

काम कोटि के आचार्यों का काल तथा परम्परा नामावलि

क्र. सं.	नाम आचार्य	कार्यकाल	तिथि	ब्रह्मीभूत
१.	सर्व श्री आचार्य आद्य शंकर	३२	बैशाख शु. ११	५०८ ई. पूर्व ४७६ ई. पूर्व
२.	आचार्य सुरेश्वराचार्य	७०	ज्येष्ठ शु १२	४०६ ई. पूर्व
३.	आचार्य सर्वज्ञात्म मुनि	४२—११२	बै० कृ० १४	३६४ ई. पूर्व
४.	आचार्य सत्यबोध	९६	मार्ग० कृ० ८	२६८ ई. पूर्व
५.	आचार्य ज्ञानानन्द जी	६३	मार्ग० कृ० ७	२०५ ई. पूर्व
६.	आचार्य शुद्धानन्द	८१	ज्ये० शु० ६	१२४ ई. पूर्व
७.	आचार्य आनन्द ज्ञान	६९	वै० कृ० ९	५५ ई. पूर्व
८.	आचार्य कैवल्यानन्द	८३	मकर कृ० १	२८ ई.
९.	आचार्य कृपा शंकर (२)	४१	का० कृ० ३	६९ ई.
१०.	आचार्य सुरेश्वर	५८	आषा० कृ० ३०	१२७ ई.
११.	आचार्य चिद्घन	४५	ज्ये० कृ० १०	१७२ ई.
१२.	आचार्य चन्द्रशेखर (१)	६३	आषा० शु ९	२३५ ई.
१३.	आचार्य सच्चित् घन	३७	मार्ग० शु० १	२७२ ई.
१४.	आचार्य विद्याघन I	४५	मार्ग० ३०	३१७ ई.
१५.	आचार्य गंगाधर I	१२	चैत्र शु १	३२९ ई.

क्र. सं.	नाम आचार्य	कार्यकाल	तिथि	ब्रह्मीभूत
१६.	आचार्य उज्ज्वल शंकर ३	३९	ज्ये० शु० ८	३६७ ई.
१७.	आचार्य सदाशिव	८	ज्ये० शु० १०	३७५ ई.
१८.	आचार्य सुरेन्द्र	१०	मार्ग शु० १	३८५ ई.
१९.	आचार्य विद्याघन II	१३	भाद्र० कृ० ९	३९८ ई.
२०.	आचार्य मूक शंकर ४	३८	श्रा० ३०	४३७ ई.
२१.	आचार्य चन्द्रचूड़ १	१०	श्रा कृ० ८	४४७ ई.
२२.	आचार्य परिपूर्णबोध	३४	का० शु० ९	४८१ ई.
२३.	आचार्य सच्चित् सुख	३१	वै० शु० ७	५१२ ई.
२४.	आचार्य चित्सुख	१५	श्रा० कृ० ९	५२७ ई.
२५.	आचार्य सच्चिदानन्द घन	२१	आषा० शु० १	५४८ ई.
२६.	आचार्य प्रज्ञान घन	१६	वै० शु० ८	५६४ ई.
२७.	आचार्य चिद्विलास	१३	वै० शु० १	५७७ ई.
२८.	आचार्य महादेव १	२४	का० कृ० १०	६०१ ई.
२९.	आचार्य पूर्णबोध	१७	श्रा० शु० १०	६१८ ई.
३०.	आचार्य बोध १	३७	वै० कृ० ४	६५५ ई.
३१.	आचार्य ब्रह्मानन्द घन १	१३	ज्ये० शु० १२	६६८ ई.
३२.	आचार्य चिदानन्द घन	४	मार्ग शु० ६	६७२ ई.
३३.	श्री सच्चिदानन्द २	२०	भाद्र कृ० ६	६९२ ई.
३४.	श्री चन्द्रशेखर २	१८	मार्ग० ३०	७१० ई.
३५.	श्री चित्सुख २	२७	आषा शु ६	७३७ ई.
३६.	श्री चित्सुखानन्द	२१	आश्वि० ३०	७५८ ई.
३७.	श्री विद्याघन ३	३०	पौ० शु २	७८८ ई.
३८.	श्री अभिनव शंकर २ (विद्या शंकर तीर्थ)	५२	आषा० शु० १	८४० ई.
३९.	श्री सच्चित् विलास	३३	वै० १५	८७३ ई.
४०.	श्री महादेव २	४२	वै० शु० ६	९१५ ई.

क्र. सं.	नाम आचार्य	कार्यकाल	तिथि	ब्रह्मीभूत
४१.	श्री गंगाधर २	३५	श्रा० शु० १	९५० ई.
४२.	श्री ब्रह्मानन्द घन	२८	का० शु० ८	९७८ ई.
४३.	श्री आनन्द घन	३६	चै० शु० ९	१०१४ ई.
४४.	श्री पूर्णबोध २	२६	भा० कृ० १३	१०४० ई.
४५.	श्री परम शिव १	२१	आश्वि० शु० ७	१०६१ ई.
४६.	श्री बोध २	३७	आषा० शु० १	१०९८ ई.
४७.	श्री चन्द्रशेखर ३	६८	चैत्र० शु० १	११६६ ई.
४८.	श्री अद्वैतानन्द बोध	३४	जे० शु० १०	१२०० ई.
४९.	श्री महादेव ३	४७	का० कृ ८	१२४७ ई.
५०.	श्री चन्द्रचूड़ २	५०	ज्ये० शु० ६	१२९७ ई.
५१.	श्री विद्यातीर्थ	८८	मा० कृ० १	१३८५ ई.
५२.	श्री शंकरानन्द	३२	वै० शु० १	१४२७ ई.
५३.	श्री पूर्णानन्द सदाशिव	८१	ज्ये० शु० १०	१४९८ ई.
५४.	श्री महादेव ४	९	आ० कृ० १	१५०७ ई.
५५.	श्री चन्द्रचूड़ ३	१७	चै० शु० ११	१५२४ ई.
५६.	श्री सर्वज्ञ सदाशिव बोध	१५	चै० शु० ८	१५३९ ई.
५७.	श्री परमशिव २	४७	श्रा० शु० १०	१५८६ ई.
५८.	श्री आत्मबोध	५२	का० कृ० ८	१६३८ ई.
५९.	श्री बोध ३	५४	भा० ०	१६९२ ई.
६०.	अद्वैतात्म प्रकाश	१२	चै० कृ० २	१७०४ ई.
६१.	श्री महादेव ५	४२	ज्ये० शु० ९	१७४६ ई.
६२.	श्री चन्द्रशेखर ४	३७	पौ० कृ० २	१७८३ ई.
६३.	श्री महादेव ६	३१	आषा० शु० १२	१८१४ ई.
६४.	श्री चन्द्रशेखर ५	३७	का० कृ० २	१८५१ ई.
६५.	श्री महादेव ७	४०	फा० ०	१८९१ ई.
६६.	श्री चन्द्रशेखर ६	१७	माघ कृ० ८	१९०८ ई.

क्र. सं.	नाम आचार्य	कार्यकाल	तिथि	ब्रह्मीभूत
६७.	श्री महादेव ८	७ दिन	फा० शु० १	१९०८ ई.
६८.	श्री चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती	८९	परमाचार्य १९०७ से शंकराचार्य १९०८ से	
६९.	श्री जयेन्द्र सरस्वती		१९५४ से	
७०.	श्री विजयेन्द्र सरस्वती		१९६३ से	

काम कोटि शब्दार्थ तथा मठ की प्रामाणिकता

जीव की करोड़ों कामनाओं की पूर्ति करने वाला काम कोटि है। अथवा ३३ कोटि देवताओं द्वारा सेवित मठ काम कोटि है। अथवा जीव की करोड़ों कामनाओं की पूर्ति करने वाली भगवती कामाक्षी देवी से सम्बन्धित मठ काम कोटि है।

प्राचीन मठ

मठ द्वारा प्रकाशित शिला लेखों से पता चलता है कि आदि मठ विष्णु काञ्ची में हस्ती शैलनाथ (वरदराज स्वामी) के मन्दिर के पश्चिम में था। **श्री हस्ती शैल नाथस्य निलयात्पश्चिमे मठः।** काम कोटि मठ की प्रामाणिकता में 'मार्कण्डेय संहिता', 'आनन्द गिरिकृत', 'शंकर विजय', 'व्यासाचलीय शांकर विजय' में प्रमाण मिलते हैं।

शिवलिंगं प्रतिष्ठाप्य चिदम्बर सभातले॥
मोक्षदं सर्वजन्तूनां भुवनत्रय सुन्दरम्॥
वैदिकान् दीक्षितान् शुद्धान् शिव सिद्धान्त पारगान्॥
पूजार्थं युयुजे शिष्यान् पुण्यारण्य विहारिणः॥
काञ्च्यां श्री कामकोटौ तु योगलिङ्गमनुत्तमम्॥
प्रतिष्ठाप्य सुरेशार्यं पूजार्थं युयुजे गुरुः॥

(मार्कण्डेय संहिता)

अर्थ—चिदम्बरम् की सभा भूमि में समस्त जीवों को मुक्ति देने वाले, त्रैलोक्य सुन्दर शिव लिंग की स्थापना करके, वहां शुद्ध कुल में उत्पन्न वैदिक दीक्षितों को जो कि शिव सिद्धान्त के पारंगत विद्वान्, पुण्य रूपी अरण्य में बिहार करने वाले शिष्यों को पूजा के लिये नियुक्त

किया। गुरु जी ने श्री काम कोटि काञ्ची पुरी में उत्तम योग लिंग की स्थापना करके पूजा के लिये सुरेश्वराचार्य जी को नियुक्त किया।

तत्रैव निजावास योग्यं मठमपि च परिकल्प्य तत्र निज सिद्धान्त पद्धतिं प्रकटयितुं अन्तेवासिनं सुरेश्वरमाहूय "योग नामकं लिंगंपूजयेति दत्त्वा" त्वमत्र काम कोटि पीठमधिवस इति संस्थाप्य॥

वहां पर (काम कोटि में) अपने निवास योग्य मठ बनाकर वहां अपनी सिद्धान्त पद्धति को प्रकट करते हुये; अपने आन्तरिक शिष्य श्री सुरेश्वराचार्य जी को बुलाकर योग नामक शिवलिंग देकर कहा कि "तुम काम कोटि में निवास करते हुये योग नामक लिंग का पूजन करो" यह कह कर वहीं पर स्थापित किया। **(आनन्द गिरिकृत शंकर विजय)**

**एवं निरुत्तरबदास विधाय देवीं। सर्वज्ञ पीठमधिरुह्य मठे स्वक्लृप्ते। मात्रा गिरामपि तथोपगतैश्च मिश्रैः। सम्भावितः कमपि कालमुवास काञ्च्याम्।
प्रागष्टमाविदितबेद्यमुदूढ वाल्यं, सर्वज्ञसंज्ञमथ हंसितमात्मनैव॥
श्री कामकोटि विरुदेन्यदधात् स्वपीठे। गुप्तं स्वशिष्य तिलकेन सुरेश्वरेण॥
इत्थं स शंकर गुरुः कृत कृत्यभावात्। भावान्प्रकाश्य निगमान्त गिरां निगूढाम्॥
काञ्च्यां विमुच्य वपुरादृतमिच्छयैव। स्वस्यैवधाम्नि परमे स्वत एव लिल्ये॥**

इस प्रकार प्रति पक्षियों को निरुत्तर करके स्वनिर्मित मठ में सर्वज्ञ सिंहासन पर बैठकर अपनी वाणी मात्र से सब विद्वानों को सन्तुष्ट करके और उनसे सम्मानित होकर कुछ काल काञ्ची में निवास किया। सात वर्ष की आयु वाले सर्वज्ञात्म मुनि ने बाल्यावस्था में ही वेद विदित परम तत्त्व को प्रत्यक्ष कर लिया था उनको अपने काम कोटि पीठ पर स्थापित करके श्रेष्ठ शिष्य सुरेश्वर द्वारा रक्षित किया। इस प्रकार जगद् गुरु शंकर ने कृतार्थ होकर वेदों की रहस्यमयी वाणी द्वारा अपनी भावनाओं को प्रकाशित करके अपनी इच्छा से शरीर छोड़कर अपने परमधाम में स्वतः लीन हो गये।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त प्राचीन शंकर विजय, बृहच्छंकर विजय, तथा शिव रहस्यादि ग्रन्थों में भी काञ्ची में ही परमधाम गमन की पुष्टि होती हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु०, कलि० खण्डे, सप्तम परिच्छेदे, एकादशोऽध्यायः ॥११॥

॥ समाप्तोऽयं सप्तमः परिच्छेदः ॥

अथाष्टम परिच्छेदः

प्रथमोऽध्यायः

सन्तों की महिमा तथा स्वभाव (९१७)

आदि गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है कि **"सन्त की महिमा वेद न जानै। जेते कर जानै तेते वखाने।"** सन्तों का जीवन चरित्र तथा लीला भिन्न-भिन्न होती है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जो आचरण करता है, वह उसका चरित्र है। उस चरित्र के अन्तर्गत उनकी लीला सर्वथा भिन्न होती है। भक्त या शिष्य का कल्याण करने के लिये वे ऊपर से कठोर होते हैं। परन्तु भीतर से मक्खन से भी अधिक कोमल होते हैं। तुलसी दास जी ने कहा है—

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवै नवनीता। परहित द्रवहिं सन्त सुपुनीता।।

यहां पर ऐसे ही जीवन्मुक्त योगेश्वर, परोपकारी सन्त की कथा लिखते हैं।

किसी समय एक परम तपस्वी, वीतराग, एकान्त निष्ठ सन्त निर्जन वन में समाधिस्थ थे। उन्होंने समाधि में एक रानी का भविष्य जानकर उसका परम हित करने के लिये उनके महल में पहुंचे। उस दम्पति के विवाह के योग्या एक पुत्री थी। स्वामी जी ने राजा से कहा—"मैं तुम्हारी पुत्री को देखना चाहता हूं।" राजकुमारी उपस्थित हुई। उसके सौन्दर्य को सन्त ने नख से शिख तक देखा। राजा से कहा—"इस राजकुमारी का मेरे साथ विवाह कर दो।" राजा धर्मज्ञ तथा साधु सेवी थे। सोचने लगे—"यदि मैं आज्ञा पालन नहीं करता, तो ऋषि मुझे शाप दे देंगे। यदि विवाह करता हूं तो इकलौती पुत्री जीवन पर्यन्त कष्ट पायेगी।" बहुत सोचने के बाद राजा ने एक समुद्री सबसे बड़ा, महामूल्यवान् मोती निकाल कर उनके आगे रखा। उसमें चन्द्रमा के समान किरणें निकल रही थीं। राजा ने कहा, "यदि आप मुझे ऐसे ही १०८ मोती जो मुर्गी के अण्डे के बराबर हों, दोगे, तो मैं पुत्री का विवाह आपके साथ कर दूंगा।"

ऋषि समुद्र तट पर पहुंचे। उसकी आराधना की। सागर ने दर्शन देकर वर मांगने को कहा। ऋषि ने उसी प्रकार के १०८ मोतियों की याचना की। सागर देव तुरन्त स्वर्ण के थाल में मोती ले आये। सन्त को भेंट किया। वे राजा के पास ले आये। राजा देखकर आश्चर्य में पड़ गया। बहुत सोचने के बाद राजा ने कहा, "अमुक देश का राजा मेरा शत्रु था। वह युद्ध

में मारा गया। उसका राजकुमार मेरी आंखों में खटक रहा है। वह बड़ा होकर मुझ से राज्य छीन लेगा। अतः आप उसका सिर काट कर मेरे पास लावें।" यह कह कर राजा ने तलवार सन्त को दी। वे तुरन्त उसके नगर में पहुंचे। विधवा रानी ने रोते हुये सारी गाथा सुनाई तथा आने का कारण पूछा। ऋषि ने राजकुमार का सिर मांगा। रानी ने सहर्ष पुत्र को देते हुये कहा, "आपने तो केवल सिर ही मांगा। मैं अपने तथा राज्य सहित पुत्र को आपके चरणों में समर्पित करती हूं।" ऋषि उसके त्याग तथा भक्ति से प्रसन्न होकर बालक को लेकर पहले राजा के दरबार में पहुंचे। राजा से कहा "राजकुमार उपस्थित है। मैंने आपकी दो शर्तें मानी हैं। तुम भी मेरी एक शर्त मानो। इस राजकुमार के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दो।"

राजा ने सहर्ष अपनी पुत्री का विवाह विधवा के पुत्र से कर दिया। दहेज में सम्पूर्ण राज्य देकर स्वयं पत्नी सहित वानप्रस्थी हो गये।

इस कथानक से सिद्ध होता है कि सन्तों में कितनी हार्दिक सहानुभूति, दया तथा कोमलता होती है। परन्तु ऊपरी व्यवहार उनका अत्यन्त कठोर होता है। **(संत अंक से)**

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे, प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

बनस्पति योनि के वृक्ष सन्त (श्री रामवृक्ष जी) (९१८)

जीव ८४ लाख योनियों के पश्चात् मनुष्य योनि में आकर भक्ति ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करता है। यह सामान्य सिद्धान्त है। कहीं-कहीं इसका अपवाद भी मिलता है। जैसे पशु योनि में गजराज, वानर, भालुओं ने पक्षी योनि में गरुड़, काकभुसुण्डि, जटायु आदि ने सद्गति प्राप्त की। केवल सत्य, त्रेता, द्वापर में ही नहीं बल्कि कलियुग में भी वृक्ष योनि में ऐसे सन्त हुये हैं। जिन्होंने मनुष्यों की अपेक्षा बहुत उपकार किया है। उनमें से इस योनि में उत्पन्न श्री रामवृक्ष की कथा लिखते हैं।

अयोध्या के अशोक वन में एक विलक्षण रामवृक्ष था। उसके छोटे पत्ते, घनी छाया देते थे। छोहारे के समान मीठे फल लगते थे। जो अत्यन्त पौष्टिक तथा मीठे थे। उसके पुष्प इन्दीवर के समान थे। उनके देखने मात्र से नेत्रों की दृष्टि तीव्र होती थी। सेवन करने से यक्ष्मा रोग नष्ट होता था। उसकी लता पीस कर बच्चों को पिलाने से सरलता से दांत निकल आते

थे। उसकी छाया में निरन्तर बैठने से मूर्ख, बुद्धिमान, निर्धन, धनी तथा साधक सिद्ध हो जाता था। जो झगड़ा कहीं समाप्त न होता हो, उसकी छाया में न्याय करने से शान्त हो जाता था। जैसे हनुमान जी के रोम-रोम में राम नाम लिखा था। वैसे ही उसकी छाल के भीतर प्रत्येक अंग में राम नाम लिखा था। सम्भवतः पाठक इस बात पर विश्वास न करें। परन्तु यह ऐतिहासिक सत्यता है। इसलिये इसे रामनामी वृक्ष कहते थे। देश-विदेश से इसके दर्शन करने लोग आते थे। परिचय प्राप्त करने पर आश्चर्य करते थे। उसकी जड़ के गुणों को अनुभवी सन्त जानते थे। पर बताते नहीं थे। उस बगीचे में आज भी ऐसे वृक्ष लतायें विद्यमान हैं, जो दिव्य धाम से आये सन्त हैं।

उस वृक्ष ने अपने पत्ते हिलाकर सात सतियों की कथा सुनाई थी। उन्हीं में से दूसरी सती की कथा नीचे लिखी जाती है। महाभारत के उद्योग पर्व में कथा आती है कि विदुर जी के प्रार्थना करने पर महाराज धृतराष्ट्र को ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिये सनत्सुजात जी आये थे। इस उपदेश का नाम 'सनत्सुजातीय' है। इस पर शांकर भाष्य तथा नील कण्ठ जी की चतुर्धरी टीका है। वे राजा को उपदेश देकर ब्रह्मलोक में जाने लगे। मार्ग में नारद जी मिले। उन्होंने कहा, "आज रामनवमी है। आवो स्नान तथा दर्शनार्थ अयोध्या चलें। उस वर्ष मेष संक्रान्ति के बाद रामनवमी पड़ी थी। अतः विशेष थी। दर्शनार्थ सभी देवता ऋषि भी आये थे और सब लोग चले गये। परन्तु सनत्सुजात जी का मन नागकेसर के वन में लग गया। उन्होंने आसन लगाकर समाधि लगाई। चैत्र बीत गया। वैशाख शुक्ल पक्ष में सीता नवमी आई। उस दिन उन्होंने देखा एक तपस्विनी नवयुवती दोनों हाथों से केश झाड़ती हुई परिक्रमा कर रही थी। उससे सैंकड़ों हीरे जवाहरात गिरने लगे। सनत्सुजात जी की दृष्टि पड़ते ही लुप्त हो जाते थे। सात प्रदक्षिणा करने के बाद **सन्त ही सुखधाम हैं। अत्यन्त वे निष्काम हैं। राम भक्त ललाम हैं। अथवा स्वयं श्री राम हैं।**

इसके बाद वह ऋषि को प्रणाम करने के लिये झुकी। तब सन्त (ऋषि) ने हाथ जोड़कर कहा, "माता जी ! मैं आपका बच्चा हूं। आपके वात्सल्य का भिखारी हूं। आप ऐसा न करें। आप तपस्विनी दिव्य विभूति सम्पन्न हैं। आपके चरण की धूलि पाने आया हूं। क्षमा करें।" तब सती ने कहा, "आज सीता जन्म महोत्सव है। उनकी बधाई में पधारी हूं। जो चाहे वर मांग ले। मुझे तो सबकी सेवा में आनन्द मिलता है। संकोच छोड़कर जो चाहो, मांग लो।"

सनत्सुजात जी ने कहा, "माता का स्नेह ही बालक के लिये सर्वस्व है । आपके मुखारबिन्द से आपकी कथा सुनना चाहता हूं ।"

सती ने कहा, "आप भगवत् स्वरूप, सर्वज्ञ, त्रिकालदर्शी हैं । फिर भी मुझसे आत्म कथा सुनना चाहते हैं तो सुनिये । हे मुनिवर ! मैं पूर्व जन्म में स्वारोचिष् मन्वन्तर में विन्ध्य प्रदेश के उत्तर में तुलसी के वन में उत्पन्न हुई थी । राजकुमारी थी । राज सुख में पली सिंहासनासीन हुई । तब भी मेरा मन प्रसन्न नहीं था । मैं नन्द पर्वत से गिर कर समुद्र में डूब गई । १२ वर्ष की अनावृष्टि में सूखे पत्ते खाकर वायु पीकर रही । तब भी दुःखी नहीं हुई । फिर मैं अयोध्या चली आई । एक दिन अमरेन्द्र मुनि पधारे । वे हृदय हीन प्राणी की खोज में थे । जिस पर सुख-दुःख आदि का प्रभाव न पड़े । मुझ से मिले । मैंने कहा, "मैं हृदय हीन जीव हूं ।" यह सुनकर सन्त अतिप्रसन्न हुये । उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हारा हृदय गोदावरी में देखा था । उसको ले लिया । इष्ट देव की आज्ञा हुई । कि इसको तुम्हारे पास पहुंचाये । इसे ले लो और धारण किया । मुनि चले गये । तब से मुझे सुख-दुःख व्यापने लगा । थोड़ी सी बात में अति सुखी-दुःखी हो जाती हूं । मेरी हृदय को वापस करने की इच्छा हुई । जिससे पूर्ववत् द्वन्द्वों से रहित हो जाऊं । इस वन में इसी चिन्ता में बैठी थी । इतने में मेरी दृष्टि दो घोड़ों पर स्थित दो व्यक्तियों पर पड़ी । मैंने देखा, दो राजकुमार घोड़ों पर बैठकर शिकार खेल रहे थे । दोनों धनुर्धारी थे । इनमें से एक श्याम सुन्दर तथा दूसरे गौर सुन्दर थे । श्याम सुन्दर ने अपनी विशाल भृकुटी को धनुष बनाकर बरौनी को प्रत्यंचा बनाया । दृष्टि को बाण बनाकर मेरे सन्तप्त हृदय पर प्रहार किया । तब मैं पूर्ववत् द्वन्द्वातीत हो गयी । परन्तु एक तीसरी समस्या खड़ी हो गई । मेरे त्रिकोण हृदय में जो सांवरे का बाण बिंध गया था । वह त्रिशंकु के समान आकाश में लटक गया । उसके साथ मैं भी टंग गई । अब मुझे पात-पात में, बात-बात में, सन्ध्या प्रभात में सर्वत्र सांवला दिखाई देने लगा । मैंने उनसे पूछा, "तुम कौन हो ।" उन्होंने कहा, "मैं वासुदेव हूं ।" मैंने पूछा, "अपना पूरा परिचय देकर ठिकाना बताओ । जिससे पूछती हुई तुम तक पहुंच जाऊं ।" तब उन्होंने कहा, "हे देवि ! मैं परमतत्त्व वासुदेव दशरथ नन्दन राम हूं । भरतादिक सहित मैंने अवतार लिया है । वशिष्ठ गोत्रीय रघुवंशी हूं ।" यहां पर भगवान् ने नादज तथा शारीरिक दोनों वंशों का गोत्र बताया है । गुरु वशिष्ठ जी ने उपनयन में गायत्री का नाद सुनाकर आध्यात्मिक जन्म दिया । इसलिये वशिष्ठ गोत्रीय कहा । श्री राम का रघुवंशी गोत्र प्रसिद्ध ही है । मैंने सब प्राणियों में वास करके उनको ज्ञान रूपी प्रकाश में ढका है । अतः मेरा नाम

वासुदेव है । मैं ही देवकी नन्दन श्री कृष्ण हूं । मैं ही सूर्य किरणों के द्वारा संसार को प्रकाश देता हूं । मैं धर्मपुत्र हरिनारायण, ऋग्वेद हूं । मैं सदैव तुम्हारे पास रहता हुआ खाता, पीता, सोता हूं । मैं जितना तुम्हारे निकट हूं तुम्हारा मन भी उतना निकट नहीं है । परन्तु तू मुझे न आंख से देख सकती है, न सुन सकती है, न सूंघ, चख सकती है । यहां पर भगवान् ने **अशव्दमस्पर्श इत्यादि** मन्त्र की व्याख्या की है । मैंने तेरे हृदय को अपनी ओर खींच लिया है । अब मेरा तुम्हारा हृदय मिलने में दो अंगुल का अन्तर अर्थात् त्याज्य रजो गुण तथा तमो गुण रूपी दो अंगुल का अन्तर (भेद) है । जब तू इन गुणों को त्याग कर पूर्ण सत्व में स्थित होगी । तो यह अन्तर दूर हो जाएगा । तब तू मुझ में लीन हो जाएगी ।"

देवी की बात सुनकर सनत्सुजात जी बड़े प्रसन्न हुये । उन्होंने कहा, "हे देवि ! मैं तथा तुम दोनों धन्य हैं । मैं आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ हो गया । उपदेश से भव बन्धन से छूट गया हूं । मैं बालक तेरी गोद में बैठकर अर्थात् अज्ञानी जीव ब्रह्म विद्या रूपी माता की गोद में बैठकर सर्वत्र परिपूर्ण, अखण्ड मण्डलकार वासुदेव की दिव्य झांकी देखना चाहता हूं । अर्थात् ज्ञान रूपी अमृत से तृप्त होना चाहता हूं । वास्तव में जो चतुर्व्यूह, चतुर्भुज, चतुर्मुख के रहस्य को समझ जाता है । वह निर्गुण श्याम सुन्दर के दर्शन करके कृतार्थ होकर परम पद प्राप्त करता है । भाव यह है कि **चतुर्व्यूह = वेदों में कहे हुये ब्रह्म के चार पाद विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय व्यष्टि में है । समष्टि में विराट्, हिरण्य गर्भ, ईश्वर, अन्तर्यामी । इन्हीं को नारद पाञ्चरात्र में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध कहा है । चतुर्मुख = ब्रह्मदर्शी की सर्वतोमुखी दृष्टि ही चतुर्मुख है । चतुर्भुज = वेद में कहा हुआ "विश्वतो मुख, विश्वतो वाहुरुत, विश्वतस्पात्" इत्यादि दिशा रूपी चार भगवान् की भुजायें हैं ।** हे वरदात्री ! इस निर्धन को तुमने निहाल कर दिया । जिस विषय का प्रतिपादन ब्रह्मा जी भी नहीं कर सकते । वही रहस्य आपकी कृपा से प्राप्त हुआ है । उससे मेरा हृदय कमल खिल उठा है । हे देवि ! अब विलम्ब मत करो । यह दो अंगुल का अन्तर मिटना चाहिये । तू दो अंगुलियों से चुटकी बजाकर अयोध्या की दक्षिण वाहिनी विरजा (पाप रहित) नदी में स्नान करके उत्तर बाहिनी सरयू में सती हो जा । यही परमगति है ।" उनकी बात सुनकर उस देवी ने चुटकी बजाकर विरजा में स्नान कर द्वन्द्वातीत, त्रिगुणातीत होकर धधकती हुई योगाग्नि में प्रविष्ट होकर भस्म हो गयी ।

इस कथा को श्री रामवृक्ष जी ने कुलवन्त राय राजा को सुनाते हुये कहा कि हे राजन् ! यह दूसरी सती की कथा तुम को सुनाई है। जिस स्थान पर देवी ने चुटकी बजाई थी। वह स्थान अयोध्या में चुटकी देवी के नाम से प्रसिद्ध तीर्थ हुआ। जिसके सेवन, स्नान तथा पूजन करने से मनोरथ पूर्ण होते हैं। **बोलो सन्त श्री रामवृक्ष एवं सती जी की जय। (कल्याण के सन्ताङ्क से /सम्वत् १९९४ वि०)**

कथा का अध्यात्म भाव

मनुष्य का शरीर नवद्वारों से युक्त अयोध्या है। इसमें जीव को शोक मोह रहित करने वाला आत्म ज्ञान रूपी अशोक वन है। शरीर में व्याप्त परमात्म तत्त्व जिसमें योगी जन रमण करते हैं, रामवृक्ष है। चारों वेदों के छन्दरूपी पत्ते हैं। **छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥** इसमें धर्म रूपी पुष्प तथा मोक्ष रूपी फल लगता है। इस रामवृक्ष का आश्रय लेने से दिव्य दृष्टि रूपी प्रकाश बढ़ता है। इसके सेवन से ८४ लाख योनि की प्राप्ति रूपी यक्ष्मा का नाश होता है। इसकी लता को देहाध्यासी अज्ञानी बच्चों को पिलाने से इन्द्रियदमन रूपी दांत निकलते हैं। राम रूपी वृक्ष के आश्रय में मूर्ख स्थितप्रज्ञ, दैवी सम्पदा से रहित धनवान् साधक सिद्ध हो जाते हैं। इसके प्रत्येक परमाणु में बाहर भीतर राम रमा हुआ है। जिसने दूसरे का राज्य अपहरण कर लिया है, उस धृतराष्ट्र को सनत्सुजात रूपी सद्‌गुरु ज्ञानोपदेश देते हैं। उस वृक्ष के नीचे ब्रह्मविद्या रूपी सती परिक्रमा करती है। उसके सन्तोष रूपी केश झाड़ने से आत्मज्ञान रूपी हीरे झड़ते हैं।

उस सती को जीव को अमर कथा सुनाने वाले अमरेन्द्र मुनि मिलते हैं। जीव का मन ही सुख-दुःख जन्म-मरण आदि का कारण है। जिसने अपने मन के संकल्प-विकल्प को मार दिया है। वह मन रहित साधक हृदय हीन है। उसी की वे खोज में थे। उस सती का हृदय गोदावरी तीर्थ में (गो = इन्द्रियां। दा = इन्द्रिय सुख देने वाला) प्राप्त हुआ था। अर्थात् वह मन द्वारा भौतिक सुख-दुःख में तल्लीन हो गयी। वह हृदय देने के लिये अयोध्या आई। वहां भगवान् का लक्ष्मण सहित दर्शन हुआ। उन्होंने भृकुटी को (प्रणव) धनुष आत्मा को बाण बनाकर मनहीन कर दिया। तब वह फिर जीवन्मुक्त दशा को प्राप्त हुई। शेष का भाव पीछे दिया जा चुका है। यह घटना सत्य या द्वापर की है। इसकी प्रसिद्धि कलियुग में हुई। अतः इस खण्ड में दिया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे द्वितीयोऽध्यायः ॥२ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

पशुयोनि में सन्त (श्री जानकी दास जी) (८१९)

एक वैष्णव तपस्वी महन्त ज्ञान दास जी की मण्डली में एक ऊंट था। महन्त जी को जहां जाना होता, उस पर सारा सामान लाद दिया जाता। यदि कोई सन्त पीछे रह जाता। वह पुकारता तो ऊंट रुक जाता था। बैठकर उसका सामान बड़े प्रेम से लाद लेता। उसका नाम जानकी दास रखा गया। उसके गले में तुलसी का कण्ठा पहनाया था। पूजा-आरती के समय और सन्तों के समान वह भी खड़ा होता। सब के प्रणाम करने पर वह भी प्रणाम करता था। चरणोदक तथा प्रसाद लेकर अपने स्थान पर चला जाता था। उसके इस स्वभाव से सभी सन्त प्रसन्न थे। भक्त के सभी लक्षण उसमें थे।

एक बार महन्त जी ने सन्त जानकी दास को बुलाया। वे महात्मा आसन पर नहीं थे। ऊंट तुरन्त पहुंचा। अरबी भाषा में मनुष्य के समान बोलकर खड़ा रहा। वहां अरबी कोई नहीं जानता था। महन्त जी प्रसन्न हुये। उसके गले में फूल की माला डाल दी। वह चला गया। उसका भोजन भी बड़ा विचित्र था। दोपहर में जब भगवान् का भोग लगता, सब भोजन पाते। उसके लिये भी एक बहुत ऊंचे तखत पर मिट्टी की नांद में दाल, चावल, रोटी, सब्जी आदि डाल दी जाती। वह बड़े प्रेम से सभ्यता से भोजन करता। जीभ से पूरी नांद चाट लेता। एक दाना भी नहीं गिरता था। इससे शिक्षा मिलती है कि भोजन में जूंठन तथा अन्न नीचे न गिरे। फिर उसी नांद में पानी भर दिया जाता। उसे पी जाता।

जीव अपने पूर्व जन्म के संस्कार, वासना तथा बुद्धि को लेकर दूसरे शरीर में आता है। वह ऊंट भी पूर्व जन्म में सुलफा गांजा पीता था। जब नया आया। तो भोजन के बाद उसने संकेत से गांजा पीने की इच्छा प्रकट की। महन्त जी उसके संकेत को समझ गये। उसके लिये, मिट्टी का बड़ा हुक्का जिसमें चार पांच बालटी पानी आता था मंगवाया। एक बड़ी चिलम में एक सेर गांजा रखकर आग रखी। उसी तखत पर रखकर बांस की एक बड़ी नली उसके मुंह में लगा दी। एक ही फूंक में पूरा गांजा सुलगा दिया। मेरा अभिप्रायः पाठकों को व्यसन में लगाने को नहीं है। किन्तु जीव की पूर्व प्रज्ञा का परिचय देने में है।

सायं कालीन आरती के बाद बचा हुआ भोजन तथा पांच पसेरी नीम की पत्ती उसका भोजन था। वह प्रतिदिन और सन्तों की भांति बड़े प्रेम से रामायण की कथा सुनता था।

एक बार वे महात्मा मण्डली के साथ हरिद्वार के कुम्भ में गये। उन दिनों बसें गाड़ियां अधिक नहीं थी। अधिकतर लोग बैलगाड़ी, तांगे, ऊंट आदि पर यात्रा करते थे। रास्ते में पड़ाव पड़ा। राम कथा में भरत मिलाप का प्रसंग था। श्रोता वक्ता बड़े आनन्द से आनन्दाश्रु बहाते थे। जानकी दास भी भाव विभोर होकर रोते हुये कथा सुन रहे थे। उस कथा में एक मौलवी भी बैठे थे। जानकी दास ने कथा की पूर्ति के बाद अरबी में कुछ कहा। तब मौलवी जी ने पूछा—आपका ऊंट तो कुरान शरीफ की आयतें बोलता है। इस विचित्र जीव को कहां से प्राप्त किया।

महन्त जी ने कहा—"पेशावर के एक मुगल सिपाही ने मुझे आज से कई वर्ष पूर्व दो गरम शाल, बहुत से मेवे, चांदी के २५ रुपये तथा यह ऊंट दिया था। हो सकता है यह पूर्व जन्म में मुसलमान हो। कुरान शरीफ जानता हो। मरने के बाद पापवश यह जन्म पाया हो।"

मौलवी जी ने कहा—"यद्यपि हम लोग पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते।" परन्तु मैंने प्रत्यक्ष देखा। मेरे पिता जी अरबी, फारसी के अतिरिक्त हिन्दी संस्कृत नहीं जानते थे। परन्तु आप हिन्दुओं की गीता तथा विष्णु सहस्रनाम का संस्कृत में जबानी पाठ करते थे। उनके मित्रों ने पूछा—"आप संस्कृत नहीं पढ़े हैं, फिर इन दोनों ग्रन्थों का पाठ करना किससे सीखा।" उत्तर देते थे—"इस जन्म में नहीं तो पिछले जन्म में पढ़ा होगा।"

हरिद्वार कुम्भ के कई वर्ष बाद जानकी दास ने अपनी चिलम तथा भोजन जल की नांद तोड़ दी। ऐसी शरारत उसने कभी नहीं की थी। महन्त जी के पास शिकायत की गई। उससे इन्होंने पूछा। उसने लेटकर अपने दोनों पैर उठा दिये। संकेत किया कि मेरा अन्तिम समय है। मन्त्र लेने की इच्छा प्रकट की। महन्त जी ने रेशमी वस्त्र तथा पूजन सामग्री मँगवाई। बाद में विधि-विधान से मंत्र दिया। मंत्र लेते ही उसके गले की गुरिया सरकने लगी। सब के देखते-देखते थोड़ी ही देर में उसका मस्तक फटा। उससे एक दिव्य तेज निकल कर आकाश में लीन हो गया। उसको जन्म देने वाले माता-पिता तथा भूमि धन्य हो गई। इस कथा से शिक्षा मिलती है कि जब घोर कलिकाल में पशु योनि में जन्म लेकर भगवद् भजन, श्रवण तथा परोपकार कर सकता है, तो हमें भी मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिये पूर्वोक्त गुणों को अपनाना चाहिये।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अनन्त श्री परमहंस गन्धा बाबा जी महाराज (९२०)

आपका जन्म बंगाल का था। इनकी आयु का किसी को पता नहीं है। आपके गुरुदेव एक सहस्र वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। बाल्यावस्था में ही गुरु सेवा करते हुये इन्होंने वेद प्रतिपादित सूर्य विज्ञान, वायु विज्ञान, चन्द्र विज्ञान आदि विद्यायें सिद्धान्त सहित क्रियात्मक प्राप्त कीं। एक बार आपने भक्तों के बीच ईश्वर की सर्वरूपता का वर्णन करते हुये कहा—वह सर्वरूप एवं सर्वशक्तिमान् है। जगत् उसी का विवर्त होने के कारण इसकी प्रत्येक जड, चैतन्य वस्तु भी सर्वरूप है। सर्व समर्थ युक्त योगी (सिद्ध) प्रत्येक वस्तु को प्रत्येक रूप में परिणत करने में समर्थ होता है। इसकी सैद्धान्तिक चर्चा बहुत देर तक की। उन्होंने कहा—"गाय घास आदि खाती है। वह घास दूध के रूप में, दूध दही, दही मक्खन, मक्खन घी के रूप में परिणत होता है। यह प्रकृति का सामान्य नियम है। परन्तु सिद्ध योगी घी को मक्खन, दही, दूध तथा घास के रूप में भी परिवर्तित कर सकता है।"

भक्तों ने कहा—आप गुलाब के फूल को गुड़हल के रूप में बदल दें। उन्होंने गुलाब हाथ में लेकर सूर्यकान्तमणि (आतशी शीशा) लेकर सूर्य के आगे किया। उसकी किरणें पड़ने पर वह इच्छित पुष्प के रूप में बदल गया। पूछने पर बताया यह सूर्य विज्ञान का चमत्कार है।

एक बार एक भक्त की माला टूट गयी। गोमुखी धागे सहित अपनी रुद्राक्ष की माला गुरु जी के पास ले आये तथा गांठे लगाने को कहा। उन्होंने गोमुखी को हाथ में लिया। मणियां तथा धागा उसी में रहने दिया। थोड़ी देर दोनों हाथों से ढका। दो-तीन मिनट बाद गोमुखी सहित माला दे दी। देखने पर शास्त्रानुसार सुमेरु सहित माला में गांठें लगी थीं। सब ने आश्चर्य सहित पूछा—यह किस विज्ञान का चमत्कार है? उन्होंने वायु विज्ञान बताया। उनके शरीर से विभिन्न प्रकार की केसर, चन्दन, कपूर आदि की सुगन्धि आती थी। इसलिये वे गन्धा बाबा के नाम से विख्यात थे। एक दिन हजारों भक्तों ने उनसे प्रश्न किया कि "पुराणों में भगवान् विष्णु की नाभि से कमल और उससे ब्रह्मा का जन्म बताया है। क्या यह कवि की कल्पना

मात्र है, या सत्य है ।" तब उन्होंने योग शक्ति का वर्णन करते हुये प्रत्यक्ष दिखाने के लिये विष्णु भगवान् की तरह लेट गये । नौली क्रिया करते हुये नाभि से डण्डी सहित कमल निकाला । बहुत देर बाद फिर अपने में लीन कर लिया ।

एक बार एक भक्त ने उन्हें स्फटिक की माला तथा पारे का शिवलिंग दिया । लिंग का पूजन करके उन्होंने माला सहित गले में रख लिया । प्रातः नित्यप्रति गले से निकाल कर पूजन करके फिर गले में रख लेते थे । इन्हीं के आश्रम में जाकर पूज्य पाद स्वामी विशुद्धानन्द जी ने नौ वर्ष की आयु में वेदादि शास्त्रों का सप्रयोग अध्ययन किया था । जो कि नीचे लिखा जाता है—

श्री गन्धा बाबा जी का चरित्र पूर्ण हुआ ।

पूज्य स्वामी श्री विशुद्धानन्द जी का पूर्व चरित्र

पूज्य पाद महाराज श्री जी का जन्म बंगाल में वर्द्धमान जिला के वंडूर ग्राम में हुआ था । पिता का नाम अखिलानन्द चट्टोपाध्याय तथा माता का नाम राजराजेश्वरी देवी था। बाल्यावस्था में इनकी माता को भयंकर रोग हुआ । आप अपने इष्ट श्यामराय की पूजा करते थे । उनमें पूर्ण निष्ठा थी । उनसे प्रार्थना की मेरी माता जी को स्वस्थ कर दो । चार दिन बीत गये । मां निरोग नहीं हुई । भक्त रुष्ट हो गया । भगवान् से कहा—"यदि रात भर में माता जी ठीक नहीं हुई, तो मैं तुम्हारी मूर्ति तोड़ दूंगा । भगवान् का सिंहासन हिला । प्रातःकाल माता स्वस्थ हो गई । इस घटना के कुछ दिन बाद इनको भयंकर बुखार हुआ । एक दिन श्री गन्धा बाबा का योगी शिष्य आपको उठाकर गुरु जी के आश्रम में ले गया । उनसे इन्होंने अनेकों विद्यायें प्राप्त कीं । जब आप काशीवास कर रहे थे । तब गंगा पार से **करौहना** गांव से एक नवयुवक सहदेव चतुर्वेदी ब्राह्मण आये । उन्होंने प्रणाम करके महावाक्य की दीक्षा मांगी । आपने बहुत समय तक उनकी सेवा देखकर परीक्षा के अनन्तर महावाक्य का उपदेश दिया । योगपट्ट श्री निवास चैतन्य हुआ । इन्होंने गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर अ. श्री दण्डी स्वामी केशवाश्रम जी महाराज से संन्यास लिया। आपका योग पट्ट दण्डी स्वामी श्री निवासाश्रम जी था । यही बाद में मछली बन्दर काशी के प्रथम महन्त हुये ।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः

(३) जन्म सन् १८१६ ई. स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती

वाराणसी धाम के प्रसिद्ध दण्डी स्वामी परमहंस परिब्राजकाचार्य श्री मद् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती ने सन् १८९८ ई. को बैशाख मास में अहल्या बाई घाट पर अपने आश्रम में ८२ वर्ष की वयस् में भौतिक देह का परित्याग कर निर्वाण प्राप्त किया था। उनके वेदान्त शास्त्र के अगाध पाण्डित्य की प्रशंसा आज भी समस्त भारत के विद्वान करते है। उनकी सर्वतोमुखी असाधारण प्रतिभा की बातें वृद्ध विद्वानों से सुनकर शिक्षित युवक विस्मित हो जाते हैं, परन्तु आज इस लेख में उन सब बातों की आलोचना नहीं की जाएगी। उनके आध्यात्मिक जीवन में ऐसी अनेकों आश्चर्यजनक घटनायें हैं, जिनकी आलोचना करने से हिन्दू मात्र से आध्यात्मिक जीवन में नवीन प्रकाश की किरणें प्रसारित होगीं और भारतीय प्राचीन साधु महात्माओं के प्रति श्रद्धा भक्ति बढ़ेगी। आज पाठकों के संतोषार्थ इसी सम्बन्ध में कुछ प्रत्यक्ष की हुयी बातें लिखी जाती हैं।

महामहोपाध्याय प्रमथनाथ पंचानन तर्क भूषण जी लिखते हैं कि प्राक्तन पुण्यबल से मुझे लगातार दस वर्ष तक उनके चरणों में बैठकर पूर्व और उत्तर मीमांसा पढ़ने का दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ था। अध्ययन आरम्भ करने के समय मेरी उम्र बीस वर्ष की थी। स्वाध्याय तिथियों में प्रतिदिन दो से तीन साढ़े तीन बजे तक मेरा पाठ चलता रहा। एक दिन वर्षाकाल श्रावण के अन्त में लगभग तीन बजे मैं अध्ययन कर रहा था। उस समय बड़े जोरों से वर्षा हो रही थी। अहल्याबाई घाट पर स्वामी जी का आश्रम था। उसमें ऊपर के तल्ले में एक छोटे घर में स्वामी जी उत्तराभिमुख अपने आसन पर विराजमान थे। मैं पूर्व की ओर मुंह करके बैठा था। सामने श्रावण की पूर्णावयवा उत्तरवाहिनी भागीरथी अपनी कलकल ध्वनि से अविश्रान्त वर्षा ध्वनि से मुखरित दिशाओं को प्रतिध्वनित करती हुयी प्रवाहित हो रही थी। स्वामी जी पद्मासन से बैठे थे, उनके विशाल प्रशान्त नेत्रों से हृदय स्थित ज्योत्स्ना द्वारा स्नात एक अननुभूतपूर्व समुज्ज्वल अध्यात्मज्योति विकसित हो रही थी, सामने द्रव ब्रह्ममयी भागीरथीं जी थीं। मेरे हाथ में "छान्दोग्योपनिषद्" की पुस्तक थी, स्वामी जी महाराज उसी की व्याख्या कर रहे थे। वह अपूर्व मनोहर दृश्य मेरे हृदय में आज भी स्मृति पट पर गाढ़ रूप से अंकित है।

छान्दोग्य उपनिषद के छठे अध्याय में प्रयाण के समय दक्षिण मार्ग की गति आज के दिन का पाठ्य विषय था।

'पुरुष ँसोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति। तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥१ ॥ अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥२ ॥ (छान्दोग्य ६ ॥१५ ।१—२ ॥)

अर्थात् मनुष्य जब मृत्यु शय्या पर पड़ा हुआ सन्ताप को प्राप्त होता है, तब उसके घर के लोग उसके समीप आकर व्याकुलता से पूछते हैं—'मुझको पहचानते हो क्या ? मुझे पहचान जायें तो इत्यादि। उसकी बहिरिन्द्रिय जब तक मन में नहीं मिल जाती, मन प्राण में विलीन नहीं हो जाता, प्राण तेजो धातु में परिणत नहीं हो जाते और तेज भी पर देवता में प्रवेश नहीं कर जाता तभी तक वह उन लोगों को पहचान सकता है। जब बहिरिन्द्रिय मन में मिल जाती है, मन प्राण में विलीन हो जाता है, प्राण तेजो धातु में परिणत हो जाते हैं और अन्त में जब, तेज भी पर देवता में प्रविष्ट हो जाता है तब वह किसी को भी नहीं पहचान सकता, उसका ज्ञान विलुप्त हो जाता है, यही उसका मरण है।

इस प्रसंग में स्वामी जी उस दिन देवयान या उत्तर मार्ग की बात चलाकर कहने लगे—"जो योगी है उसका प्रयाण इस तरह नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य के हृदय कमल के ऊपर कुछ सूक्ष्म नाड़ियां हैं, इन नाड़ियों को हिता कहते हैं। इनमें किसी का वर्ण लाल है, किसी का पीला आदि है। ये नाड़ियां अत्यन्त सूक्ष्म हैं। यहां तक कि केश के सौवें भाग के समान इनकी सूक्ष्मता है। इन सूक्ष्म नाड़ियों में एक का नाम है सुषुम्णा यह सुषुम्णा ऊर्ध्व में ब्रह्मरन्ध्र तक गयी है। इस सुषुम्णा में योग बल से अपना प्रवेश कराकर योगी प्रयाण करता है, वह फिर लौटकर इस संसार में नहीं आता। ब्रह्म लोक में उसकी गति होती और कल्पान्त के समय ब्रह्म लोक के अधिष्ठाता सगुण ब्रह्म के साथ वह निर्वाण को प्राप्त होता है।" सनातन धर्म की इन आध्यात्मिक बातों को पूज्यपाद स्वामी जी महाराज उस दिन बड़ी ही स्फूर्ति के साथ बड़े ही अभिनिवेश और उत्साह के साथ कह रहे थे। किन्तु न मालूम क्यों, मेरे मन में वे बातें मानो उस दिन गम्भीरता के साथ प्रवेश नहीं कर रहीं थीं, मेरी जानकारी में शायद गुरुदेव स्वामी जी महाराज ने मेरे चेहरे को या मेरी अन्य किसी शारीरिक चेष्टा को देखकर

मेरी अन्य मनस्कता की बात को जान लिया और बड़ी रुखाई के साथ जरा उत्तेजित से होकर मेरी ओर देखकर कम्पित स्वर से बोले प्रमथनाथ ! आज यहीं पाठ बन्द करो, तुम्हारा चेहरा देखकर मालूम होता है कि मैं तुम्हें जो कुछ दे रहा हूं वे सब बातें सत्य पर प्रतिष्ठित हैं या नहीं, तुम्हारे मन के इस सन्देह ने तुम्हारे चित्त को श्रद्धाहीन कर दिया है। जिसके मन में श्रद्धा नहीं है, उसके लिए इन बातों को न सुनना ही अच्छा है और कहने वाले के लिए भी यह विडम्बना मात्र है।

पूज्य स्वामी जी के मुख से ऐसी कड़ी बातें मैंने इससे पहले कभी नहीं सुनी थीं। इन बातों को सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, मैंने जल्दी से उठकर उनके चरणों पर गिरकर भक्ति भाव से अश्रुसिक्त नेत्रों से प्रणाम किया और कहा—"गुरुदेव ! मैं अज्ञ हूं, मेरे इस अज्ञानकृत प्रथम अपराध को आप यदि क्षमा नहीं करेंगे तो मेरा जीवित रहना भी विडम्बना मात्र है।" मेरे इन शब्दों को सुनकर स्वामी जी बहुत देर गम्भीरता से चुपचाप बैठे रहे, फिर बहुत धीरे से मेरी ओर देखकर कहने लगे—'अच्छी बात है' मैंने क्षमा किया। इस प्रसंग में मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूं खूब ध्यान देकर सुनो। स्वामी जी के इन शब्दों से आश्वस्त होकर मैं अपनी जगह हाथ जोड़े बैठा हुआ उनके चेहरे की ओर देखने लगा और बड़े आग्रह के साथ उनकी बातें सुनने के लिए उत्सुकता से बाट देखने लगा। कुछ देर बाद स्वामी जी कहने लगे—

'आजकल ज्यों-ज्यों पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा है, त्यों ही त्यों संस्कृत शिक्षा पद्धति का प्रचुर रूप में ह्रास हो रहा है। अध्यात्म शास्त्र के प्रति लोगों की अश्रद्धा ही हिन्दू समाज का सर्वनाश कर रही है। इस बात को याद रखना। मैं जो तुम्हें सुषुम्णा नाड़ी द्वारा उत्क्रमण की बात कह रहा था यह कोई कवि कल्पना या धर्मोन्माद नहीं है, ध्रुव सत्य है। इसकी ध्रुव सत्यता का मैंने निजमें अनुभव किया; और स्वयं जाना है तथा विश्वास किया है, इसी से तुमसे कह रहा था। तुम देखते हो, मैं प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के बाद आठ बजे के समय इस घर में प्रवेश करके सब दरवाजों को बंद करके दोपहर तक बैठता हूं। इन चार घंटों में मुझ से कोई भी मिल नहीं सकता, यहां तक इस घर की तरफ किसी का आने का भी अधिकार नहीं, जानते हो उस समय मैं रोज क्या करता हूं ? आठ वर्ष से भी अधिक काल हो गया, मैं योग प्रक्रिया के अनुसार सुषुम्णा के द्वारा उत्क्रान्ति के मार्ग का अनुसन्धान कर रहा हूं। सुनो

प्रमथ नाथ ! इतने परिश्रम का मेरा यह अनुसन्धान व्यर्थ नहीं गया। मैंने इस पथ को पा लिया है। कल्पना की दृष्टि से नहीं, सचमुच यह मेरे हस्तगत हो गया है। याद रखना, कुछ समय बाद उत्तरायण के बैशाख शुक्ल पक्ष में मैं इसी तरह सदा की भांति बद्धपद्मासन लगाये द्रव ब्रह्ममयी भगवती भागीरथी को देखते-देखते, हंसते-हंसते प्रशान्त चित्त से भौतिक देह को त्याग कर अमृत धाम में चला जाऊंगा।'

इतना कह कर स्वामी जी चुप हो गये। कुछ देर बाद फिर बोले—'आज पढ़ाई नहीं होगी, अब तुम घर जाओ। तुम्हारा उपनिषद पाठ कुछ समय के लिए बंद रहेगा। कल से मैं तुम्हें वेदान्त शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ "अद्वैत सिद्धि" को पढ़ाऊंगा।' इसके बाद मैं विस्मयाविष्ट चित्त से कांपते हुए भक्ति-भाव से श्री स्वामी जी के चरण कमलों में सिर नवाकर प्रणाम करके घर चला आया।

इस उत्तर मार्ग से प्रयाण के सम्बन्ध में स्वामी जी ने फिर कभी कोई संकेत नहीं किया। दूसरे दिन से मैं 'अद्वैत सिद्धि' पढ़ने लगा। इस घटना के पांच वर्ष बाद मेरी कलकत्ता के गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में धर्म शास्त्र अध्यापक पद पर नियुक्ति हो गयी, इससे बाध्य होकर मुझे काशी धाम छोड़ना पड़ा। स्वामी जी से अध्ययन करना भी समाप्त हो गया। सन् १८९७ ई. के नवम्बर महीने से मैं संस्कृत कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगा। सन् १८९८ के वैशाख महीने में स्वामी जी ने भौतिक देह का त्याग कर दिया। देह त्याग के दिन से तीन दिन पहले सन्ध्या को घूमकर आश्रम में आने पर आपने कहा—देवी प्रसाद (ये स्वामी जी के सर्वापेक्षा घनिष्ठ सेवक एक कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे) मेरा शरीर आज कुछ शिथिल सा मालूम होता है। तुम लोग घबराना नहीं। परसों मेरे प्रस्थान का दिन है। व्यर्थ हो हल्ला न करना, मुझ को तंग न करना, किसी वैद्य को न बुलाना, मुझे स्थिर रूप में बैठे रहने देना, मैं जो कुछ कहूं तो वही करना, अपनी इच्छा से कुछ भी करके मेरे चित्त में विक्षेप न करना।' इतना कहकर स्वामी जी बद्ध पद्मासन लगाकर बैठ गये और ध्यानस्थ हो गये। दूसरा दिन भी इसी तरह बीत गया। तीसरे दिन ठीक मध्याह्न काल में उसी तरह पद्मासन से बैठे-बैठे, हंसते-हंसते उत्तरवाहिनी त्रिलोक पावनी भगवती भागीरथी को देखते-देखते सुषुम्णारन्ध्र को भेदकर परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती ने उत्तर पथ से पुनरावृत्ति हीन महाप्रयाण किया।

उनके महाप्रयाण की बात तुरन्त सारी काशी में फैल गयी। हजारों नर-नारी आबाल बृद्ध स्वामी जी के गतप्राण पुण्य देह का दर्शन करके जीवन धन्य करने के लिए दौड़ आये। सब ने देखा, बद्धपद्मासन से विराजमान वर्तमान युग के सर्व श्रेष्ठ संन्यासी परमज्ञानी, परम विरक्त स्वामी जी का वही ललाई लिए सुन्दर गौर विग्रह है, मुख पर वही स्मित ज्योत्स्ना खेल रही है, और नेत्र अर्धनिमीलित हैं। प्राण निकल गये हैं परन्तु दैवी सुषमा अब भी उस सर्वाङ्ग सुन्दर देह को त्याग करने में मानो संकोच कर रही हो। वर्तमान काशिराज के पिता महाराज प्रभु नारायण सिंह जी उस समय जीवित थे, वे स्वामी जी के परम भक्त थे। समाचार सुनते ही वे दौड़े आये थे और उन्होंने उस समय का एक छाया चित्र लिया था। पता लगाने पर काशी की किसी चित्रशाला में वह चित्र मिल सकता है।

कल्याण-सम्पादक के अनुरोध के अनुसार मैंने अपने गुरुदेव परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत्स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज के विस्मयजनक महाप्रयाण की बात लिख दी। उन्होंने मुझे दीर्घ काल तक चरण सेवा करने का अधिकार दया करके दिया था। मैंने अपनी आंखों से जो कुछ देखा है और उनके मुंह से सुना है, उसी को यहां लिखा है। मेरा विश्वास है कि जो इस पर ध्यान देंगे वे भारतीय अध्यात्म विज्ञान सम्पन्न साधु महात्माओं के पुण्य चरित्र के प्रति विशेष श्रद्धा सम्पन्न हो सकेंगे और वैराग्य प्रधान सनातन धर्म के प्रति उनकी गाढ़ अनुरक्ति होगी।

महाराज श्री जी के योग-तप-विद्या के प्रभाव से राजा महाराजा तथा धनी सेठ अनेक भोग सामग्रियां लाते थे। आप के पास सोने के भिक्षा पात्र महामूल्यवान् वस्त्र एवं घी, दूध, बादाम आदि पौष्टिक पदार्थों की कमी नहीं थी। एक विरत सन्त ने कहा—

"यति को मिट्टी आदि के पात्रों में भिक्षा लेनी चाहिये आप सोने चांदी के पात्रों में भिक्षा क्यों लेते हो।"

श्री स्वामी जी ने कहा—"क्या करूं, मेरा प्रारब्ध ही ऐसा है।"

सन्त ने कहा—"इन पात्रों को किसी दूसरे को दे दें। इसमें प्रारब्ध क्या करेगी।"

इन्होंने निर्धन ब्राह्मण को पात्र दे दिये। इसके थोड़ी देर बाद एक नरेश आये। महाराज जी को प्रणाम करके बोले—"गुरुदेव ! मैं आप की भिक्षा करने के लिए सुवर्ण पात्र लाया हूं।"

स्वामी जी ने मुस्करा कर सन्त से कहा—"प्रारब्ध की लीला देख लिया।"

एक भक्त ने स्वामी जी से कहा—"आप तो संसार के पौष्टिक पदार्थों का सेवन करते हैं। सन्त को रूखा-सूखा खाना चाहिए।"

उसकी बात सुनकर आप ने तुरन्त बन की ओर प्रस्थान किया। एक सेठ महाराज जी को ढूंढता हुआ बन में पहुंचा। प्रणाम करके बोला—

"मैं काशी गया था। आप के दर्शन नहीं हुये। आप की भिक्षा लाया हूं। बन में ही यहीं पर भोजन बनने लगा। हलवा, खीर, पूड़ी, मालपुड़ा आदि बने। षट्रस भोजन बन कर तैयार हुआ। वह भक्त भी निरीक्षण के लिए पहुंचा।

श्री स्वामी जी ने कहा—"देख लिया मेरे प्रारब्ध का खेल।"

इन भोगों को भोगते हुये भी वे निर्लिप्त थे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे पंचमोऽध्यायः ॥५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

"काशी के चार जीवन्मुक्त यति"

(१) महात्मा तैलंग स्वामी (९२१)

आज से लगभग ११० वर्ष पूर्व काशी में तैलंग स्वामी नामक एक बहुत प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। आप एक परमसिद्ध योगी और जीवन्मुक्त पुरुष थे। सदा दिगम्बर वेश में रहा करते थे। वे भूत-भविष्य-वर्तमान की बातें जानते थे और किसी के आने पर बिना कुछ कहे उसके मन के प्रश्न का उत्तर दे दिया करते थे। जल-थल, मान-अपमान, शीत-उष्ण सब आप के लिए समान था। ये सदा पर दुःखकातर रहा करते थे। मान, प्रसिद्धि और ख्याति से बहुत दूर भागते थे। जल पर पद्मासन लगाना, गंगा जी में तीन-तीन दिन तक लगातार डूबे रहना, समाधि लगाकर दूर का समाचार जान लेना, आकाश में निराधार स्थित रहना इत्यादि बातें उनके लिए बहुत साधारण थीं। २८० वर्ष की अवस्था में आपने महासमाधि ली।

दक्षिण भारत के विजियाना ग्राम में विक्रमीय सम्वत् १६६४ के पौष मास में एक सुसम्पन्न ब्राह्मण परिवार में आपका जन्म हुआ था। बचपन में नाम रखा गया 'शिवराम'। आप अत्यन्त

कुशाग्रबुद्धि थे। बचपन से ही संसार के विषयों के प्रति वैराग्य और अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति इनमें देखी गयी। युवावस्था आते-आते इनकी उदासीनता स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। पिता का देहान्त पहले ही हो चुका था। माता ने इन्हें बहुत लाड-प्यार से पाला था और माता के उपदेशों से इन्हें अध्यात्म में बढ़ने का ही बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा। पिता के वियोग के बारह वर्ष पश्चात् माता का भी वियोग हो गया। इस समय इनकी उम्र ४८ वर्ष की थी। अब इन्होंने अपने को सांसारिक बंधनों से मुक्ति पायी। माता की अंत्येष्टि क्रिया करके वे घर नहीं लौटे। जिस स्थान पर अग्नि-संस्कार हुआ था उसी स्थान पर बैठ गये और पीछे इनके लिए कुटी भी बन गयी।

उस स्थान पर बीस वर्षों तक आपने कठोर साधना की। महापुरुष की खोज में अब आप वहां से बाहर निकले। भाग्यवश भगीरथ स्वामी के दर्शन हुए। पुष्कर क्षेत्र में गुरु से दीक्षा ली। दो वर्ष बाद गुरु भी इस लोक से चलते बने। तैलंग स्वामी कई स्थानों में घूमकर अन्त में रामेश्वरम् पहुंचे। इसके अनन्तर नेपाल, मानसरोवर, नर्मदातीर, प्रयाग आदि स्थानों पर बहुत दिनों तक साधना की। ख्याति होते ही एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाते। अन्त में काशीधाम पधारे। वहां महात्मा तैलंग स्वामी के सम्बन्ध में अनेकों बातें प्रचलित हैं। प्रयाग में आपने आदमियों से भरी हुई नाव को आंधी-पानी के कारण डूब जाने पर पुनः बाहर निकाल लिया। काशी में एक अंग्रेज़ अफसर ने इन्हें नंगा रहने के कारण हवालात में बन्द कर दिया। सबेरे देखा गया कि हवालात का ताला बन्द है और स्वामी जी बाहर टहल रहे हैं। पूछने पर आपने बताया कि ताला चाबी बंद कर देने से किसी का जीवन बांधा नहीं जा सकता। यदि ऐसा होता तो मृत्यु काल में हवालात में बन्द कर देने से मनुष्य मौत के मुंह से ही बच जाता।

जार्ज षष्ठ के पिता स्वामी जी के शिष्य थे। स्वामी जी के आशीर्वाद के फलस्वरूप जार्ज षष्ठ का जन्म हुआ था।

एक बार काशी में कुछ बालकों ने स्वामी जी को भिक्षा में ढेर सारी मिर्चें खिला दीं। इससे स्वामी जी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, बल्कि उन लड़कों के पेट में बहुत ही असहनीय जलन होने लगी और वे मरणासन्न हो गये। जब घर वालों ने पूरी बात बालकों से ज्ञात की तो कहा कि अब महात्मा तैलंग स्वामी को आधा सेर घी पिलाओ। जब स्वामी जी को घी पिलाया गया तो घी पीते ही लड़कों के पेट की जलन शांत हुई। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी जी के अन्दर समत्व-दर्शन का भाव था।

आपका दृढ़ विश्वास था कि भगवान् मनुष्य शरीर बनाकर स्वयं इसमें विराजते हैं। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर ईश्वरीय शक्ति ओत-प्रोत हो रही है। मनुष्य जितना संसार के लिए परिश्रम करता है उतना यदि भगवान् के लिए करे तो उसे प्राप्त कर सकता है और उस समय संसार में उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहेगा। उन्हें प्राप्त करने के लिए साधना चाहिए। उनकी भक्ति करनी चाहिए, गुरूपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। इस संसार में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। भगवान् को प्राप्त करने का यही सबसे उत्तम मार्ग है।

स्वामी जी दीर्घ शंका एवं लघुशंका २४ घंटे में एक बार जाते थे। यह कार्य करने के लिए वे काशी के बाहर गंगा जी के उस पार स्थान चुनते थे। काशी जैसी पवित्र जगह पर वे लघुशंका और दीर्घशंका करना वर्जित समझते थे।

विक्रमी सम्वत् १९४४ की पौष शुक्ला ११ को आप ब्रह्म में लीन हो गये। इनकी आज्ञा के अनुसार इनके शव को बक्स में बंद करके गंगा जी की बीच धारा में छोड़ दिया गया।

श्री तैलंग स्वामी जी का चरित्र सम्पूर्ण।

(२) स्वामी भास्करानन्द जी सरस्वती

कानपुर के सन्निकट किसी मैथाल लालपुर गांव में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में सन् १८३३ में इनका जन्म हुआ। पिता का नाम मिश्री लाल मिश्र था।

जिसके एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ था। माता-पिता ने उस होनहार बालक का नाम 'मतिराम' रखा था। यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराने के पश्चात् बड़ी आशा से बारह वर्ष की छोटी उम्र में ही उनकी शादी कर दी गयी थी। किन्तु इससे मतिराम जी के हृदय में जो बचपन से ही वैराग्य भाव का बीज विद्यमान था, उस पर कोई आघात नहीं पहुंचा, बल्कि उन्होंने विवाह के पांच वर्ष बाद ज्यों ही सत्रह वर्ष की उम्र में पदार्पण किया, त्यों ही उनके हृदय का वह वैराग्य भाव सहसा उद्वेलित हो उठा। मतिराम जी ने अपने समस्त प्रियजनों की माया ममता के प्रबल बंधनों को एक झोंके में ही छिन्न-भिन्न कर दिया। वे एक दिन सबसे नाता तोड़कर घर से निकल भागे। उसके अनन्तर अनेक स्थानों का परिभ्रमण करते हुए वे मलावा पहुंचे। मलावा में उनका मन रम गया, वहीं रहकर उन्होंने सात वर्षों तक वेदान्त शास्त्र का अध्ययन किया। किन्तु अध्ययन ही उनके जीवन का इष्ट नहीं था। अतः वे वहां से किसी सद्गुरु की शरण में

पहुंच कर उनके श्री चरणों में अपना समर्पण करने के लिए चल पड़े। उस समय के प्रसिद्ध महात्मा परमहंस स्वामी श्री पूर्णानन्द जी सरस्वती उज्जैन में थे। मतिराम जी उज्जैन पहुंच गये। उन्होंने उनसे एक शुभ मुहूर्त में संन्यास की दीक्षा ली और गुरुदेव की आज्ञा से अपना नाम बदल कर "भास्करानन्द" रख लिया।

दीक्षा लेने के बाद भास्करानन्द जी काशी चले आये और वहां कुछ समय तक निरन्तर रहकर साधना की।

उसके बाद इन्हें फिर तीर्थाटन करने की अभिलाषा हुई। अतएव वे काशी से चलकर भारत के विभिन्न तीर्थों में घूमे। इस भ्रमण काल में अनेक बड़े-बड़े साधु महात्माओं से उनकी भेंट हुई। जिनकी योग विद्या से उन्होंने बड़ा लाभ उठाया। योगाभ्यास के द्वारा अनेकों योग सिद्धियां इन्हें प्राप्त हो गयीं। उन्होंने अनेकों स्थानों पर उनका चमत्कार भी दिखाया। परन्तु इतना होने पर सांसारिक लाभ या प्रतिष्ठा से सर्वदा दूर रहते थे। उपदेश वे उन्हीं को देते थे, जो श्रद्धालु तथा सरल बनकर उनकी सेवा में स्वयं पहुंचते थे। अनेकों श्रद्धालु साधकों ने उनकी कृपा से कल्याण लाभ लिया। जीवन के अन्तिम दिनों में वे दिगम्बर वेश में ही रहते थे। इन्होंने ईशादि नौ उपनिषदों पर संस्कृत में भाष्य लिखा है।

सन् १८५१-५२ में गृह त्याग किया। १८६० ई. में दक्षिणी दण्डी स्वामी श्री पूर्णानन्द जी सरस्वती से दण्ड संन्यास लिया। सन् १८६८ में असनी में गंगा जी में दण्ड का विसर्जन किया।

यह विक्रमी सम्वत् १९६४ में काशी में ब्रह्मीभूत हुये। दुर्गा कुण्ड के समीप पार्क में स्वामी जी की समाधि है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे षष्ठोऽध्यायः ॥६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्री द्वारका शारदा मठ की शाखाएं

अनन्त श्री शिवाश्रम जी महाराज (९२४)

द्वारका शारदा मठ के आश्रम तथा तीर्थ नाम से विख्यात मठ काशी, प्रयाग, हरिद्वार, ऋषिकेश, व्रजघाट, गढ़ मुक्तेश्वर, मेरठ, बागपत, शाहजहांपुर, सीतापुर, वृन्दावन, कलकत्ता,

उज्जैन, नासिक, कुरुक्षेत्र, होशियारपुर, जालन्धर, लुधियाना, दिल्ली आदि अनेक जनपदों में हैं। इन जनपदों में भी अनेक शाखायें हैं।

आज से एक सौ छिहत्तर वर्ष पूर्व शारदा मठ में अनन्त श्री श्रीधर आश्रम नाम से प्रसिद्ध जगद गुरु शंकराचार्य हुये। जो इस मठ में विक्रमी सम्वत् १८७४ से १९१४ विक्रमी सम्वत् तक ४० वर्ष पदासीन रहे। उनसे उत्तर भारत के साधन चतुष्टय सम्पन्न श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण ने संन्यास दीक्षा ली। संन्यास लेकर काशी आ गये। इनका जन्म जिला प्रताप गढ़ ग्राम महिमा का पुरवा में हुआ था। गुरु जी ने योग पट्ट दण्डी स्वामी शिवाश्रम जी दिया।

(९३०) अनन्त श्री दण्डी स्वामी नारायणाश्रम, अनन्त श्री मधुसूदनाश्रम जी, स्वामी शिवाश्रम जी, स्वामी बेनी माधवाश्रम जी, गोविन्दाश्रम जी, विश्वरूपाश्रम जी।

१. अनन्त श्री नारायणाश्रम जी महाराज स्वामी श्री शिवाश्रम जी महाराज के शिष्य थे। इस परम्परा में दो **स्वामी शिवाश्रम** हुये हैं। उनमें पहले शिवाश्रम जी श्री नारायणाश्रम जी के गुरु थे। दूसरे उनके शिष्य हुये। धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज अत्यन्त भावावेश में आकर इनकी स्तुति करते थे। इन दोनों में से महिमा का पुरवा ग्राम वाले कौन थे। इसमें सन्देह है। दूसरे शिवाश्रम जी के शिष्य श्रीस्वामी चैतन्याश्रम जी हुये। यह ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के परम गुरु थे। स्वामी शिवाश्रम जी ने स्वामी दयानन्द जी से मूर्ति पूजा तथा जीवित श्राद्ध के विषय में शास्त्रार्थ करके पराजित किया था।

२. श्री मधुसूदनाश्रम जी महाराज का जन्म प्रभास क्षेत्र गुजरात था। सम्वत् १९४८ विक्रमी मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष पंचमी शुक्रवार दिन की लिखी हुई छोटी सी पुस्तिका प्राप्त हुई है। जिसमें यति के भिक्षा सम्बन्धी विचार हैं। इसके आरम्भ में **ॐ अस्य श्री भिक्षावृत्ति लिख्यते**। लिखा मिलता है। इसकी लिखाई अनन्त श्री दण्डी स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम जी महाराज की है। यह पंजाब जिला होशियारपुर के नैनोबाल में रहते थे। महाराज श्री चौंसट्ठी मठ काशी के संस्थापक प्रथम आचार्य थे। आप बारह वर्ष तक निर्विकल्प समाधि में रहे। इनकी जन्म भूमि के सम्बन्ध में सन्देह है। कुछ महात्माओं का कहना है कि आप जिला मिर्जापुर के थे। इनके अनेक उच्चकोटि के शिष्य थे। जिनमें अनन्त श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज (बंगाली स्वामी) दूसरे शान्ताश्रम जी महाराज।

३. स्वामी अनन्त विज्ञानाश्रम जी महाराज। कुछ संन्यासियों का कहना है कि स्वामी अनन्त विज्ञानाश्रम जी, मधुसूदनाश्रम जी के गुरु भाई थे। कुछ इन्हें शिष्य कहते हैं।

४. अनन्त श्री स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज (पंडित स्वामी) षड्दर्शनाचार्य।

५. अवधूत शिरोमणि अनन्त श्री स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज गंगोत्री वाले।

६. अनन्त श्री स्वामी शिवाश्रम जी महाराज।

७. अनन्त श्री अच्युताश्रम जी महाराज (अच्युत यति, मुनि) इन्होंने श्री सीतारामाष्टकम् तथा श्री हनुमदष्टकम् दो स्तोत्र लिखे हैं। दोनों के अन्त में **'इति श्री मधुसूदनाश्रम शिष्य अच्युत यति विरचितं लिखा है।** काशी में एक अच्युत मुनि अन्न क्षेत्र है तथा एक 'अच्युत ग्रन्थ माला' प्रेस है। यह अच्युत यति कश्मीर के बताये जाते हैं। किसी मधुसूदन आश्रम के शिष्य हैं। इसका पता नहीं है। सम्भवतः चौंसट्ठी मठ वाले स्वामी मधुसूदनाश्रम जी के हों।

गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर इनके उत्तराधिकारी स्वामी शिवाश्रम (द्वितीय) जी महाराज हुये। काशी के प्रतिष्ठित विद्वानों में से थे। परम दयालु, परोपकारी थे।

अनन्त श्री स्वामी बेणीमाधवाश्रम जी महाराज श्री स्वामी शिवाश्रम जी महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य थे। इनकी जन्म भूमि ग्राम-प्रसौड़ा जिला भोजपुर (बिहार) थी। भोजपुर का नाम आरा है।

अनन्त श्री स्वामी गोविन्दाश्रम जी महाराज काशी में इस मठ की दो शाखायें हो गईं। आप दूसरी शाखा के महन्त थे।

अनन्त श्री स्वामी विश्वरूपाश्रम जी महाराज। इनका जन्म मिर्जापुर जनपद में हुआ था। आप परम सज्जन मितभाषी शिष्ट महात्मा थे। इनका सत्संग मुझे मठ में, उज्जैन तथा काला कांकर में हुआ। समदर्शी महात्मा थे। मठ के पूर्ववर्ती आचार्यों की सूची आप से प्राप्त हुई थी। इसी वर्ष काशी में लगभग सौ वर्ष की आयु में आप ब्रह्मीभूत हुये। अगले अध्याय में श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी के प्रथम शिष्य श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी का चरित्र तथा परम्परा लिखेंगे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे सप्तमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

अनन्त श्री दण्डी स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज (९३१)

पदवाक्य प्रमाणज्ञ अनन्त श्री रामेश्वराश्रम जी का जन्म बंगाल में हुआ था। इन्होंने युवावस्था में गृहस्थी छोड़कर संन्यास लिया था। आप संस्कृत के प्रत्येक छन्द में श्लोक रचना करते थे। शक्ति के उपासक थे। सम्वत् १९३० विक्रमी में लाहौर में सनातन धर्म का विशाल अधिवेशन हुआ। उसकी अध्यक्षता आपने की। उसमें सम्पूर्ण भारत के दिग्गज विद्वान् पधारे थे। पंजाब के विद्वानों में श्री हरदत्त आचार्य, अमृतसर के धुरन्धर नैय्यायिक पं० हेमराज जी तथा जालन्धर से परम शाक्त पं० श्री जनार्दन जी पधारे थे।

महाराज श्री जी ने किसी कारण विशेष से गुरु आज्ञा प्राप्त करके दण्ड आदि चिह्न गुरु जी को समर्पित कर दिया था। कुछ महात्माओं का कहना है कि गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर आपने दुबारा संन्यास दण्डी स्वामी श्री निवासाश्रम जी से लिया था। विक्रमी सम्वत् १९४० में पंजाब के एक महात्मा स्वामी वेणीमाधवाश्रम जी ने आपसे संन्यास लिया था।

अनन्त श्री दण्डी स्वामी बेणीमाधवाश्रम जी महाराज (९३२)

गुरु वन्दना

शिवाश्रममहं वन्दे नारायणं तथैव च।
चतुष्षष्ठेश्च कर्तारं नमामि मधुसूदनम् ॥१॥
रामेश्वरं तथा कृष्णमनन्ताश्रममेव च।
शान्तं विश्वेश्वरं चैव भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥२॥
बेणीमाधवमाचार्यं काश्यां वै दण्डधारिणम्।
विष्णुमाश्रममप्येतं प्रणमामि पुनः पुनः ॥३॥

॥ योगेश्वर दशकम् ॥

श्वेत वर्ण समोद्दिष्टं वामनं कायधारिणम्।
पंचनद प्रदेशस्थं योगेश्वरं नमाम्यहम् ॥१॥
ब्रह्मदण्ड समायुक्तं हस्तन्यस्त कमण्डलुम्।
भाले विभूषितं भस्म योगेश्वरं नमाम्यहम् ॥२॥

कण्ठे शोभित रुद्राक्षं काषाय वस्त्र धारिणम्।
पादयोः पादुकाधारं योगेश्वरं नमाम्यहम्॥३॥
विष्णवाश्रम गुरुं बन्दे, शिष्यं रामेश्वरस्य हि।
शोधकं फम्बिग्रामस्य योगेश्वरं नमाम्यहम्॥४॥
त्रिकालदर्शिनां मान्यं तत्त्वज्ञानां तथैव च।
शीर्षासने सुयोग्यं च योगेश्वरं नमाम्यहम्॥५॥
अमोघ विक्रमं शान्तं यतीनां परमं यतिम्।
तपस्विनं तपस्वीनां योगेश्वरं नमाम्यहम्॥६॥
धर्म मेघे स्थितं यं वै पिप्पलां वाले जलाशये।
जंडु सिंघे सुजातं तं योगेश्वरं नमाम्यहम्॥७॥
क्ष्मासदृशं क्षमायां तु दुर्धर्षं पर्वतोपमम्।
वैराग्याम्बुधिमक्षोभ्यं योगेश्वरं नमाम्यहम्॥८॥
मृतसंजीवनज्ञं च ब्रह्मध्यान परायणम्।
सिद्धि प्रदं च भक्तानां योगेश्वरं नमाम्यहम्॥९॥
शेष शायी च यो विष्णुः स एव हि योगेश्वरः।
तौ हरिमाधवौ वन्दे योगेश्वरं नमाम्यहम्॥१०॥

॥ इति योगेश्वर दशकम् ॥

अर्थ—श्वेत वर्ण वाले, पूर्ण ब्रह्म में लगी हुई दृष्टि वाले, वामन शरीरधारी, पंजाब में स्थित दण्डी स्वामी श्री बेणी माधव योगेश्वर को मैं प्रणाम करता हूं॥१॥ अपने दाहिने हाथ में ब्रह्म दण्ड, बायें हाथ में कमण्डलु तथा मस्तक पर विभूति लगाये हैं। उन योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं॥२॥ शरीर पर काषाय वस्त्र, गले में रुद्राक्ष, चरणों में पादुकायें धारण की हैं। उन योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं॥३॥ दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम जी के गुरु तथा काशीवासी श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी के शिष्य हैं। फम्बियां ग्राम को पवित्र करने वाले योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं॥४॥ त्रिकाल दर्शियों तथा तत्त्व वेत्ताओं के माननीय, शीर्षासन में दक्ष हैं। अर्थात् जो घण्टों शीर्षासन से समाधि लगाते थे। उन योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं॥५॥ अमोघ पराक्रमी, शान्त, यतियों तथा तपस्वियों में शिरोमणि योगेश्वर

जी को प्रणाम करता हूं ॥६ ॥ धर्म मेघ समाधि में (परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप की ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा सिंचाई (पोषण) करने वाली समाधि धर्म मेघ समाधि है) पिप्पलां वाले (चो) बरसाती नाले में स्थित होने वाले। यह स्थान होशियारपुर से जालन्धर वाली सड़क पर है। वहां एक शिव मन्दिर है। यहां पर स्वामी जी बारह दिन की समाधि में रहे थे। जंडु सिंघा ग्राम में जन्म लेने वाले योगेश्वर को प्रणाम करता हूं ॥७ ॥ क्षमा में पृथ्वी के समान, महानता में पर्वत के समान, वैराग्य में सागर के समान योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं ॥८ ॥ अमृत संजीवनी विद्या के ज्ञाता, ब्रह्म ध्यान में स्थित, भक्तों को सिद्धियां देने वाले योगेश्वर जी को प्रणाम करता हूं ॥९ ॥ शेषनाग की शय्या पर शयन करने वाले ही योगेश्वर हैं। ऐसे हरि माधव (वेणीमाधव) योगेश्वर को प्रणाम करता हूं ॥१० ॥

॥ इति योगेश्वर दशकम् ॥

वंश परिचय

परम वीतराग, परम सिद्ध, पंजाब के प्रथम[१] दण्डी स्वामी वेणीमाधव आश्रम जी महाराज का जन्म मुद्गल गोत्र में हुआ था। मुद्गल ऋषि की कथा श्री गुरुवंश पुराण के द्वापर युग खण्ड में आ चुकी है।

स्वामी जी के पूर्वज "जंडु सिंघा" में आने से पहले जिला कपूरथला के "काला संघा" ग्राम में रहते थे। यह स्थान जालन्धर से २० कि.मी. की दूरी पर है। इस गांव से लगभग १० पीढ़ी पहले आपके पूर्वज जंडु सिंघा में आ गये थे। यह कस्बा जालन्धर छावनी से चार पांच कि. मी. दूर होशियारपुर रोड पर है। आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व पण्डित श्री भागराम जी प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य हुये। उनके पुत्र श्री राम कृष्ण, उनके साहिबराम, साहिब राम के तीन पुत्र

---

१. टिप्पणी—पंजाब में दो प्रकार के दण्डी स्वामी हो चुके हैं। कुछ ऐसे जिनका जन्म उत्तर प्रदेश आदि में हुआ। परन्तु पंचनद प्रदेश की भूमि को पवित्र किया। जैसे—लुधियाना सिद्ध पीठ वाले श्री स्वामी शंकराश्रम जी महाराज, अनन्त श्री स्वामी भास्करानन्द तीर्थ जी, अनन्त श्री रामाश्रम जी महाराज, श्री स्वामी गुरुदेव महादेवाश्रम जी महाराज आदि। कुछ ऐसे हुये जिनकी जन्म भूमि पंजाब थी। परन्तु संन्यास के बाद उत्तर प्रदेश आदि में रहे। उनमें से स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी, स्वामी अनन्त विज्ञानाश्रम जी, श्री स्वामी विरजानन्द जी महाराज, श्री पूर्णानन्द जी आदि। इन सबसे भी प्राचीन रावलपिंडी निवासी स्वामी गोपाल तीर्थ जी महाराज। परन्तु इनमें से महाराज श्री ने संन्यास लेकर पंजाब में धर्म आदि का प्रचार किया। इसलिये इन्हें पंजाब का आदि दण्डी स्वामी कहा है।

हुये। १ पण्डित बीसाराम, २. जीवन राम, ३. गुरुसू। इनमें बड़े स्वामी जी के पितामह श्री बीसाराम जी थे। इनके सुपुत्र पण्डित दयाल चन्द जी हुये। इनके दो सन्तानें पुत्र, पुत्री हुईं। पुत्र का नाम पण्डित ताबाराम जोशी, पुत्री का नाम जीनी था। स्वामी जी का जन्म सम्वत् १८८० विक्रमी में हुआ था।

एक वर्ष सहस्राणि वसु वर्षशतानि च।
शुभान्यशीति वर्षाणि भोजराज्याद् गतानि च॥
मासे तिथौ तथा वारे सानुकूले समागते।
जोशि वंशे समुद्भूतः परानन्द परात्परः॥

दोहा— सम्वत् अठारह सौ असी, शुभ वार तिथि मास।
जोशी कुल में प्रकट भयो, पूरण परम प्रकाश॥

स्वामी जी बाल्यावस्था से ही शान्त, श्रद्धालु, भक्त, परोपकारी तथा दयालु थे। नित्य प्रति त्रिकाल सन्ध्या, त्रिकाल स्नान, अग्निहोत्र, बलि वैश्वदेव आदि करते थे। आठ वर्ष की आयु में जालन्धर वाले पण्डित जनार्दन जी द्वारा उपनयन हुआ था। घर में धन, अन्न, भूमि आदि की कमी नहीं थी। इनके पास भगवद् भजन, ध्यान के अतिरिक्त कोई कार्य शेष नहीं था। कभी-कभी खेती-पाती देखने चले जाते थे। सत्य प्रिय, मधुर भाषी, यथार्थ वक्ता थे। अतः पूरे क्षेत्र में ऋषि के नाम से प्रसिद्ध थे। कुछ वर्ष बाद इनकी छोटी बहन जीनी का विवाह श्याम चौरासी के पास "जंडी" नाम ग्राम में आंगिरस गोत्रीय सुयोग्य बालक के साथ हुआ। पिता जी ने इनके विवाह का प्रस्ताव रखा। आपने स्वीकार नहीं किया। पिता ने कहा—तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। तुम्हारे विवाह न करने से मेरा वंश कैसे चलेगा। पुत्र ने कहा—पिता जी वंश दो प्रकार का होता है। एक शारीरिक दूसरा नादज। शारीरिक प्रसिद्ध है। गुरु के नाद से उत्पन्न शिष्य नादज पुत्र है। दैहिक पुत्र की अपेक्षा नादज पुत्र अनन्त पीढ़ियों को तारता है। उस नादज पुत्र से आपका वंश चलेगा। गीता में भी कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय ! न तेषु रमते बुधः॥५/२२॥

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! स्पर्श जन्य भोग दुःखों का कारण है। उत्पत्ति तथा विनाशवान् है। विवेकी उनकी इच्छा नहीं करते।

इस प्रकार अनेक तर्कों, युक्ति तथा प्रमाणों से पिता जी को समझाया। वे मौन हो गये। स्वामी जी बृद्ध पिता की सेवा श्रवण के समान करने लगे। स्वामी जी की ४९ वर्ष की आयु में सम्वत् १९२९ विक्रमी में पिता जी का देहान्त हो गया। इन्होंने पिता जी का शास्त्र विधि से संस्कार किया। हरिद्वार में अस्थियां विसर्जित कीं। इधर बहन, पिता की मृत्यु तथा भाई की उदासीनता से विशेष चिन्तित हुई। उनके मुंशी राम नामक बालक का जन्म हुआ। सम्वत् १९३६ विक्रमी में बहन भी स्वर्ग सिधारी। बालक बहुत छोटा था। वे उसको अपने यहां ले आये। उसका पालन-पोषण शिक्षा आदि की व्यवस्था की। जब इनकी ६० वर्ष की आयु हुई तब जीवन में परिवर्तन करने वाली घटना घटी।

सर्दियों के दिन अगहन मास था। नित्य प्रति नित्य कर्म करने के बाद खेतों में जाते थे। गन्ने से गुड़ निकाला जा रहा था। उन दिनों देशी गन्ने होते थे। रस पी लेते थे। तीसरे पहर भोजन करते थे। परिवार की भौजाई भोजन बनाती थी। एक दिन अस्वस्थ हो गये। भाभी से कहा—आज मैं अस्वस्थ हूं, रस नहीं पियूंगा। समय पर जल्दी भोजन ले आना। उसने अनसुनी कर दी। जानबूझ कर रोज से अधिक देर से भोजन लाई। स्वामी जी ने कारण पूछा। उसने क्रोध में तमतमा कर कहा, "समय पर भोजन करना है तो चूड़े वाली क्यों नहीं ले आते।" वह बात उनको बाण के समान लगी। उसी समय सर्वस्व त्याग कर खेतों से बिना भोजन किये जालन्धर पहुंचे। वहां कचहरी में जाकर भानजे मुंशीराम के नाम घर, खेत तथा रुपया पैसा करके पण्डित जनार्दन जी के पास पहुंचे। उनको सारी कथा सुनाकर संन्यास की इच्छा प्रकट की।

पण्डित जनार्दन जी पंजाब के धुरन्धर विद्वान् शाक्त थे। लाहौर में श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी से श्री विद्या की दीक्षा तथा शक्ति पात प्राप्त किया था। एक बार नवरात्रों में कुमारिका पूजन किया। प्रत्येक वर्ण की कन्यायें थीं। भगवती भाव से पूजन किया। ब्राह्मणों ने विरोध किया। पण्डित जी नहीं माने। विद्वानों ने कीचड़ उछालना आरम्भ किया। पण्डित जी ने कहा—मैंने साक्षात् जगदम्बा का पूजन किया है। वह बालिका निरक्षर थी। उन्होंने दो हाथ का डण्डा उसके मस्तक पर रखा। वह सप्तशती, गीता आदि जबानी सुनाने लगी। यह देखकर विद्वान् आश्चर्य करते हुये क्षमा मांगने लगे।

ऋषि जी की बात सुनकर पण्डित जी ने आश्वासन देकर भोजन कराया। आज से पांचवें दिन पुष्य नक्षत्र है। इसमें यात्रा करने से सभी कार्य सम्पूर्ण होते हैं। मैं काशी जाकर आपको दण्ड संन्यास दिलाऊंगा।

उन दिनों रेल बस आदि कोई साधन नहीं थे। पैदल कई महीनों में काशी पहुंचे। वहां पर वैष्णव व शैव आदि अनेक सम्प्रदायों के आचार्यों से भेंट की। कोई महात्मा नहीं जचा। उन दिनों श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज काशी से बाहर गये थे। आने पर उनसे मिले। दोनों ने प्रणाम किया। पण्डित जी ने संन्यास के लिये प्रार्थना की। उन्होंने साफ इंकार कर दिया। कहा कि "पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, जम्मू, काश्मीर आदि क्षेत्र के ब्राह्मण पवित्रता नहीं रखते। यदि यह सदाचार का पालन करते हैं तो भी जोशी होने के कारण संन्यास के अधिकारी नहीं हैं। पण्डित जी ने कहा—स्वामी जी शिष्ट तथा भ्रष्ट सभी देशों, कालों, समाजों में पाये जाते हैं। क्या आपके बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश आदि में सर्वभक्षी तथा भ्रष्टाचारी नहीं है? पंजाब में स्वामी गोपाल जी, स्वामी सम्पूर्णानन्द जी, स्वामी अमलानन्द जी, स्वामी गोपाल तीर्थ जी महाराज उत्तमोत्तम कोटि के ब्राह्मण संन्यासी हुये हैं। यदि आप जोशी होने के कारण संन्यास नहीं देते, तो भी ठीक नहीं। पण्डित जी ने व्याकरण के अनेक सूत्रों तथा धातुओं से जोशी शब्द ज्योतिषी शब्द का अपभ्रंश सिद्ध किया। अठारह दिन तक विचार होता रहा। अन्त में गुरु जी ने कहा—अभी दक्षिणायन है। मैं इनको महावाक्य दे रहा हूं। उत्तरायण आने पर माघ में प्रयाग राज में इनकी संन्यास दीक्षा होगी।

सम्वत् १९४० विक्रमी माघ में त्रिवेणी तट पर बड़े महाराज जी द्वारा संन्यास हुआ। स्वामी जी ने पण्डित ताबाराम जी से "दण्डी स्वामी बेणी माधवाश्रम" योगपट्ट दिया। संन्यास के पश्चात् आज्ञा की, दण्ड कमण्डलु का कभी त्याग न करना। इसी मिट्टी के पात्र में आप शौच स्नान आदि क्रिया कर सकते हैं। इसको कभी भी जल से रहित न करना। संन्यासी का पात्र उसके लिये शुद्ध है। दूसरे के लिये नहीं।

शंका—हिन्दुओं में मिट्टी का पात्र एक बार जूठा कर देने पर फेंक दिया जाता है। आचार्य कोटि के दण्डी स्वामी अशुद्ध क्यों नहीं मानते। यह प्रथा तो मुसलमानों जैसी है।

समाधान—संन्यासी

जलाग्निश्च कराग्निश्च महाग्निश्चैव सन्निधौ।
अग्नित्रय प्रभावेण शुद्धोभव कमण्डलो ॥१॥
कमण्डलो ! महातीर्थ ! पुण्योदक परायण।
अगस्त्यादि ऋषि श्रेष्ठैः धृतोऽसि त्वं कमण्डलो ॥२॥
स्नान सन्ध्यादिकृत्येषु त्वमेकः साधनं मम।

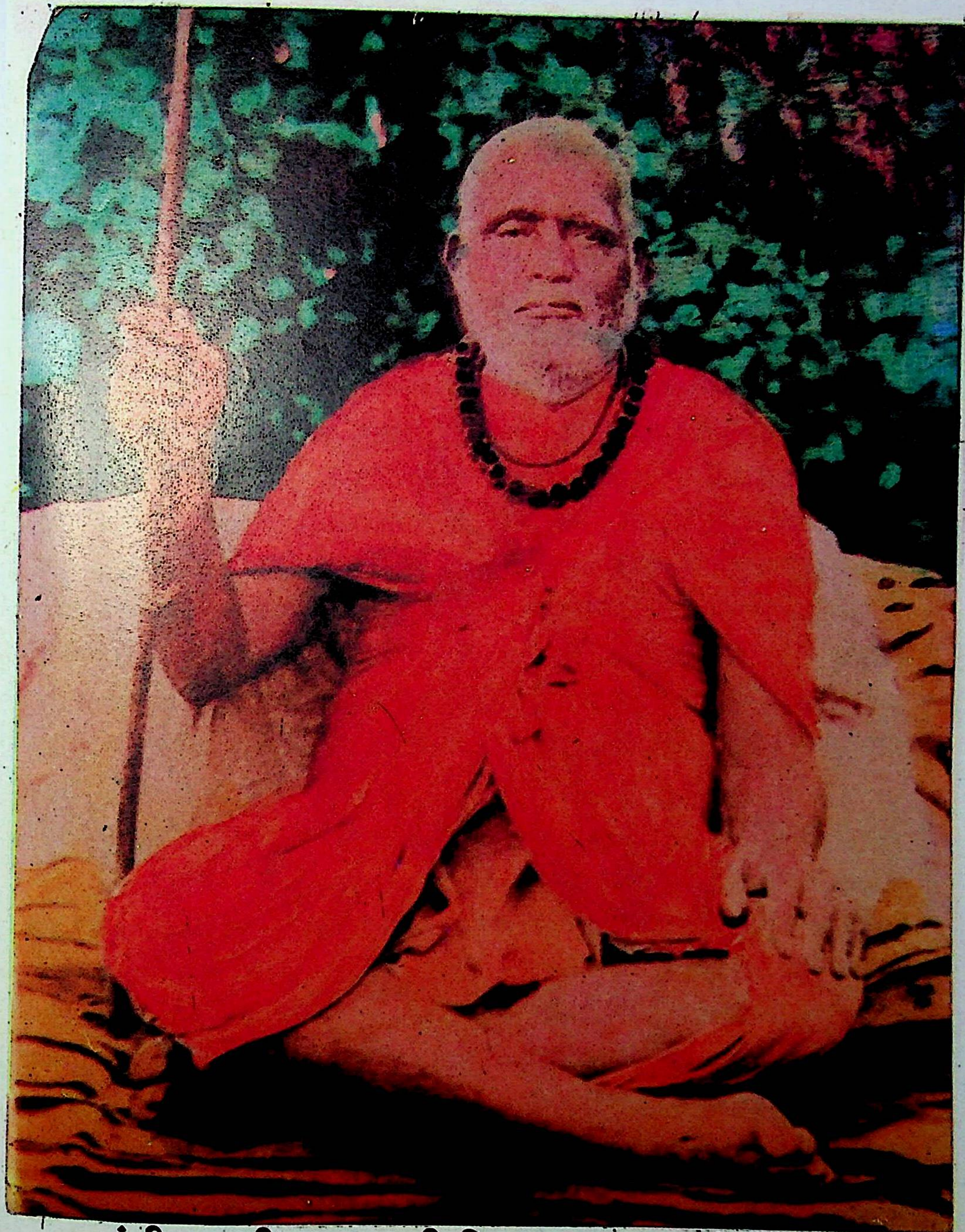
इन मंत्रों से तथा प्रणवोच्चारण से तीन अग्नियों द्वारा पात्र शुद्ध करते हैं। यदि गृहस्थ या ब्रह्मचारी संन्यासी का पात्र शुद्ध करें तो वह गायत्री मंत्र पढ़े। अथवा—जब किसी भी धातु का पात्र मृत्तिका से शुद्ध होता है तो क्या सबको शुद्ध करने वाली मृत्तिका का पात्र मिट्टी से शुद्ध नहीं हो सकता। गुरु जी ने यति धर्म की विशेष शिक्षायें भी दीं। एक महीने तक प्रयाग में रहने के बाद गुरु जी के साथ काशी आ गये। शिव रात्रि तक काशी में रहकर गुरु आज्ञा प्राप्त करके पंजाब लौट आये।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

पंचनद प्रदेश में

पंजाब में आने के बाद उपनिषदों की भाषा टीका मूल सहित, शांकर भाष्य सहित, ब्रह्मसूत्र, गीता, भागवत का एकादश स्कन्ध जो वैंकटेश्वर प्रैस बम्बई से मोटे अक्षरों में पीताम्बरी टीका सहित छपा था। श्रवण आदि करने लगे। सामान्य हिन्दी तथा पंजाबी जानते थे। यह पुस्तकें शान्ति आश्रम में सन् १९६२ तक रहीं। कुछ काल देवी तालाब जालन्धर में प्रथम चातुर्मास्य किया। फिर भ्रमण करते हुये पिप्पलां वाले चो में बारह दिन की समाधि लगाई। सेवकों ने समझा शरीर छूट गया समाधि देने की तैयारी होने लगी। अन्तिम दर्शन के लिये चारों ओर से भीड़ टूट पड़ी। उनमें एक अनुभवी महात्मा थे। उन्होंने कहा—यह जीवित हैं। तेज बूटी सुंघाई। छींक के साथ प्राण नीचे उतर आये। आंखे खोलकर कहा—पूर्ण आनन्द तो हमें आज ही मिला है। भक्तों ने कहा—बारह दिन बीत गये हैं। देव यजन कूप से बाहर निकाला। मृतक यति का दण्ड के नाप के अनुसार गड्ढा खोदा जाता है, उसे "देव यजन कूप" कहते हैं।



दंडी स्वामी अनन्त श्री विषणु आश्रम जी महाराज
शान्ति आश्रम लड़ोई, जिला जालन्धर (पजांब)



तब से आपकी ख्याति चारों ओर हो गयी। रात दिन मेला लगा रहता था। साधन में विक्षेप समझ कर वहां से चल दिये। आप प्रतिष्ठा को शूकरी विष्ठा वत्, गौरव को गौरव नरक वत्, मान को सदा सुरापान वत् समझते थे। आपने २१ चातुर्मास्य किये। प्रत्येक स्थान पर कुटी, हल्टी (रहटी) तालाब का निर्माण करवाते थे। गीगनो बाल, वरियाल, धमूली, सन्दरां, पिण्डोरी, भून्दियां, रामरंग की कुटी, बराम फम्वियां आदि में चातुर्मास्य किये।

एक बार भ्रमण करते हुये भोगपुर पहुंचे। उन दिनों लड़ोई वाले स्वामी जी के पिता जीवित थे। भोगपुर में दुकान करते थे। उस समय वहां तीन दुकानें थीं। पण्डित जी ने महाराज जी को साष्टांग प्रणाम किया। भिक्षा की प्रार्थना की। उनके साथ जाकर भिक्षा की। दोनों बालकों पण्डित अनन्तराम तथा पण्डित गूजर मल को प्रणाम करवाया। स्वामी जी ने आशीर्वाद देकर बड़े पुत्र का मस्तक देखकर अति प्रसन्न हुये। अन्यत्र चले गये। पांच सात वर्ष बाद फिर आये। पण्डित जी का शरीर छूट गया था। पत्नी जीवित थीं। भिक्षा करवाई। दक्षिणा में करुण क्रन्दन करते हुये तुलसी दल दिया। स्वामी जी ने आश्वासन देते हुये कहा। तेरे बड़े पुत्र में बड़े योगिराज के चिह्न पाये जाते हैं। तू इसे मुझे दे दे। माता ने कहा महाराज ! आपका ही सब कुछ है। मेरे जीवन का एक मात्र यही आधार है। स्वामी जी ने कहा जीवन पर्यन्त यह तुम्हारी सेवा करे। तुम्हारे बाद यह मेरा रहेगा। इन दोनों में ३३ वर्ष का अन्तर था।

माता की मृत्यु के बाद उनकी अन्त्येष्टि तथा बरसी आदि क्रियायें करने के अनन्तर श्री अनन्त राम जी ने गुरु जी को आत्म समर्पण कर दिया। इस घटना से पूर्व एक दिन स्वामी जी घूमते हुये शान्ति आश्रम के समीप पहुंचे। वहां पर एक वृद्धा गोबर उठाती हुई सप्त श्लोकी गीता का पाठ कर रही थी। स्वामी जी ने परिचय पूछा उसने कहा, मैं लड़ोई की कुम्हारिन हूं। पढ़ी लिखी नहीं हूं। मेरे गुरु जी ने जो परमहंस थे, गीता रटा दी है। स्वामी जी ने कहा जहां गधियां भी गीता का पाठ करें, वह भूमि धन्य है। वह बुढ़िया नन्दलाल कुम्हार की दादी थी।

बड़े स्वामी जी ने अनन्त राम जी को महावाक्य का उपदेश देकर "ब्रह्मचारी विष्णु स्वरूप" नाम दिया। वे तन, मन, धन से गुरु जी की सेवा करते हुये, भाषा में रामायण, गीता आदि गुरु जी से पढ़ने लगे। उन दिनों दोनों स्वामी जी गीगनोंवाल में रहते थे। आप अपने तथा गुरु जी के लिये वराम (बहिराम) से ब्राह्मणों के घर से भिक्षा लाते थे। फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष

में संन्यास का मुहूर्त निश्चित करके उनसे कहा—आज से चार दिन बाद मैं तुम को दण्डी स्वामी बनाकर शहन शाहों का शहनशाह बना दूंगा। उनकी ३६ वर्ष की आयु में विक्रमी सम्वत् १९४९ में दण्ड देकर उनका नाम दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम रखा। गुरु शिष्य गीगनोवाल में चौबारे पर रहते थे। चबूतरे पर छोटा सा कच्चा शिव मन्दिर था।

मृतक को जीवन दान

उसी कुटिया के समीपवर्ती "भून्दियां" ग्राम में बड़े स्वामी जी का अनन्य सिख भक्त रहता था। उसका इकलौता पुत्र शरीर छोड़ गया। वह सायं काल को सूर्यास्त के बाद रोता हुआ गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा। पुत्र की मृत्यु की सूचना दी। स्वामी जी ने दो घड़ी ध्यान के बाद शिष्य तथा पुत्र के पूर्व जन्मों के शुभाशुभ कर्मों को देखने के बाद उसने कहा—'स्वामी जी प्रत्येक स्त्री पुरुष को राम जी कहकर सम्बोधित करते थे। राम जी, मैं तुम को भस्म देता हूं। इस भस्म को इस मंत्र से पढ़कर बालक के मस्तक, पेट, भुजा, छाती आदि जिन अंगों में दर्द हो लगा देना। वह जीवित हो जाएगा। सेवक की सद्गुरुओं में, मंत्र में तथा इष्ट में पूर्ण निष्ठा थी।

भावे हि विद्यते देवः न काष्ठे नच मृणमये।
यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी॥

देवता लकड़ी, मिट्टी या पत्थर आदि में नहीं है। भक्त की भावना में है। जिसकी जैसी भावना है, उसको वैसी ही सिद्धि (सफलता) मिलती है।

शिष्य ने वैसे ही किया। कुछ क्षणों में जीवित होकर माता-पिता को प्रणाम किया। वह भक्त झूमता हुआ गाजे-बाजे के साथ गुरु चरणों में प्रणाम करवाने पहुंचा। वह सेवक मुझे सन् १९५८ में शान्ति आश्रम में मिला था। उसने स्वयं आप बीती यह घटना सुनायी थी।

गुरु जी की दी हुई वह भस्म उनके जीवन तक रही। कम हो जाने पर और मिला लेता था। परिवार में किसी को कैसा भी रोग क्यों न हो लगाने मात्र से ठीक हो जाता था। उसका शरीर छूटने के बाद वह बात नहीं रही। स्वामी जी ने अपने जीवन में न जाने कितनों को जीवित किया था। उनमें परकाय प्रवेश, वाकसिद्धि, अनेक रूप धारण करने आदि की सामर्थ्य थी।

कुछ समय वहां रहने के बाद दोनों मूर्तियां फम्बियां आ गयीं। वहां भी शिव मन्दिर आदि का निर्माण कराया। उनके समय ग्राम में करोड़ों की मूल्यवान् वस्तु भी मैदान में पड़ी

रहने पर भी कोई नहीं उठाता था। उसी ब्राह्मण के यहां भिक्षा करते थे। जो सन्ध्या, गायत्री आदि नित्य करता था। जिस ब्राह्मण के यज्ञोपवीत न हो। उसके लिये स्वयं यज्ञोपवीत बनाकर ब्राह्मण द्वारा प्रायश्चित्त कराकर पहनाते थे। हमारे प्रपितामह तीनों भाइयों के गुरु थे। हमारे पितामह पं० नन्द लाल जी के ३३ वर्ष की आयु तक कोई सन्तान नहीं थी। उनके पिता काशीराम जी उनको अपने गुरु जी के पास ले गये। उनके आशीर्वाद से एक मात्र पुत्र पं० ज्ञान चन्द जी का जन्म हुआ। भिक्षा के समय आप लुट्ट पै गइ, लुट्ट पै गइ (लूट पड़ गई-२) कहते हुये जाते थे। उस समय पं० रक्खाराम नामक बालक जो कि अपने ननिहाल में रहता था। बाद में दण्डी स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम के नाम से विख्यात हुये। उनके ऊपर स्वामी जी की साधना का विशेष प्रभाव पड़ा।

भाई जवाहर दास जी पर कृपा

एक दिन महाराज श्री भ्रमण करते हुये सूसां वाले सिद्ध महात्मा "भाई जवाहर दास" जी की कुटी में गये। ये शरीर से जाट थे। साधु सेवी, जीव मात्र की भगवद् बुद्धि से सेवा में परायण थे। उन दिनों सीमेन्ट की कमी थी। कच्ची मिट्टी की खुरली (कच्ची टंकी) बनाकर उसमें पीने के लिये पानी भरते थे। स्वामी जी को देखते ही महात्मा जी ने प्रणाम किया। उन्होंने पूछा, भाई की करदां। उत्तर दिया, महाराज हल चलाने वाले किसान धूप में हल चलाते हैं। उनको प्यास लगती है। उनके लिये पानी भरता हूं। स्वामी जी ने कहा, यह तो बड़ा अन्याय करते हो। वे पानी पीकर पशुओं को भूखा-प्यासा रखकर धूप में पिटाई करते हैं। तुम इन बेजबान पशुओं के लिये भी पानी का प्रनबध्ध करो। उन्होंने आज्ञा शिरोधार्य की। भजन साधन से निवृत्त होकर पशुओं के लिये कच्चा तालाब खोदा। स्वामी जी ने भजन साधन के विषय में पूछा। उनके गुरु उदासी महात्मा ने मन्त्र तथा साधन अधूरा बताया था। उनके गुरु तथा वे निरक्षर थे। मंत्र भी अशुद्ध था। स्वामी जी ने त्रुटि को पूर्ण करके शक्ति पात किया। शक्ति पात करते ही गुरु जी का तेज तथा शक्तियां भाई जी को प्राप्त हो गयीं। वे तब से अपने गुरु जी की अपेक्षा स्वामी जी के अधिक श्रद्धालु हो गये।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

पुनः गुरुदर्शन

एक बार छोटे स्वामी जी को साथ लेकर श्री महाराज गुरु दर्शनार्थ काशी पहुंचे। बहुत समय हो जाने के कारण पहचान नहीं पाये। एक सन्त दातून कर रहे थे। उनसे गुरु जी का पता पूछा। वे मौन रहे। कुल्ला आदि करने के बाद जब बोले। तब आवाज से पहचान कर दोनों ने दण्ड सहित प्रणाम किया। कुशल क्षेम पूछने के उपरान्त गुरु जी के पूछने पर अपने शिष्य विष्णु आश्रम जी का परिचय दिया। काशी वाले स्वामी जी अपने शिष्य से आयु में छोटे थे। कुछ साल वहां रहकर दोनों ने शास्त्र तथा साधन का अभ्यास किया। प्रणाम करके दोनों पंजाब लौट गये।

अन्तिम समय

श्री स्वामी जी के ब्रह्मीभूत सम्वत् के विषय में दो प्रकार के विचार मिलते हैं। मुझे फम्बियां वाले पं० अमर चन्द जी ने बताया कि स्वामी जी सम्वत् १९५७ विक्रमी सन् १९०० ई. में ब्रह्मीभूत हुये थे। उसी आधार पर मैंने श्लोक तथा दोहा बनाया।

परन्तु महाराज जी की समाधि में मिले उर्दू अक्षरों में विक्रमी सम्वत् १९६१ लिखा है। पहली धारणानुसार उन्हें शरीर त्यागे ९६ वर्ष हो चुके हैं। समाधि लेखानुसार ९२ वर्ष हो चुके हैं।

स्वामी जी अतिबृद्ध हो चुके थे। योगसाधना भी पूरी सधती नहीं थी। एक दिन भिक्षा के लिये गये। एक माई ने लाल मिर्चों से भरपूर रोटियां दे दीं। भस्त्रिका आदि प्राणायाम में लाल मिर्च, खटाई, दही, उड़द की दाल, घुइयां (अरबी) तथा बड़ा कद्दू, कफ प्रधान होने के कारण हानिकारक हैं। भिक्षा लाकर ब्रह्मार्पण कर चुके थे। वही रोटियां खा लीं। इससे उन्हें दमा हो गया। कई वैद्य, हकीमों के उपचार से भी ठीक नहीं हुये। एक वैद्य जी ने चिलम में रखकर हरड़ का धुआं पीने को कहा। यही उपचार चल रहा था। वे मृत्यु को अपने वश में किये थे। जब देखा कि शरीर रूपी रथ योगसाधना सहित यात्रा में असमर्थ है। समाधि में उन्होंने आयु को पूरी जानकर अपने शिष्य विष्णु आश्रम जी से कहा। "मैं परसों दोपहर पश्चात् सीता-नवमी को योग समाधि से शरीर त्याग दूंगा।" वे सुनकर चरणों पर मस्तक रखकर रोने लगे। उन्होंने फटकारते हुये कहा "यदि रोना धोना था, तो संन्यास क्यों लिया।"

तत्र कः मोहः, कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।
नाहं जातो जन्म मृत्यू कुतो मे,
नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ॥
नाहं चित्तं शोक मोहौ कुतो मे,
नाहं कर्ता बन्ध मोक्षौ कुतो मे ॥

अर्थ—परम पद में तीनों प्रकार की भ्रान्तियों से रहित जीवात्मा परमात्मा की एकता का प्रत्यक्ष करने वालों को शोक मोह नहीं रहता है । आचार्य पाद शंकर ने भी 'आत्मषट्क' में कहा है । मैं पैदा नहीं हुआ अतः मुझ में जन्म-मृत्यु नहीं है । भूख-प्यास प्राणों को लगती है । मैं प्राण नहीं हूं । इसलिये मुझ में भूख प्यास नहीं है । मैं चित्त नहीं हूं । अतः मुझ में शोक-मोह नहीं है । मैं कर्ता नहीं हूं (विज्ञानात्मा) अतः मुझ में बन्ध मोक्ष नहीं है । गुरु जी के बचन सुनकर शिष्य ने कहा । "गुरु जी मुझे आपके शरीर त्यागने का दुःख नहीं है । किन्तु आपका सत्संग कम मिला है ।" गुरु जी ने कहा, "तुम इस बात की चिन्ता मत करो । गृहस्थ होते हुये भी पण्डित जनार्दन जी मुझ से या किसी और योगी से किसी बात में कम नहीं हैं । तुम्हारी अधूरी साधना वे पूर्ण करा देंगे ।

शेष दो दिन का समय दोनों का ब्रह्मचर्चा में बीता । अन्तिम समय उन्होंने महाभारत शान्ति या अनुशासन पर्व की अनुस्मृति का पाठ सुना । विशेषतः ५४वें श्लोक से लेकर ७२वें श्लोक तक अनेक बार पाठ सुना । श्लोकों के अनुसार ही इन्द्रियों को विषय संयोग से रहित करने के लिये पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को मन में, मन को सभी को मोहित करने वाले अहंकार में, अहंकार को बुद्धि में, बुद्धि को अव्यक्त में, अव्यक्त को प्रधान में, प्रधान को तीनों गुणों की साम्यावस्था वाली प्रकृति में तथा इसको ब्रह्म में लय चिन्तन द्वारा लीन कर दिया ।

शरीर से सूक्ष्म कारण शरीर निकल कर किसी दूसरे लोक या शरीर में नहीं गया । प्रत्युत स्थूल शरीर के पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत विराट् में मिल गये । सूक्ष्म शरीर के अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत, हिरण्य गर्भ में, अज्ञान रूपी कारण शरीर महाकारण में लीन हुये । अधिष्ठान चैतन्य का उस समय करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाश हुआ तथा महाकाश में लीन हो गया । स्वामी जी ब्रह्मीभूत हुये ।

यह सूचना सर्वत्र जालन्धर और होशियारपुर जिले में फैल गयी। हजारों की संख्या में भक्त एकत्रित हुये। शास्त्रानुसार गांवों के चारों ओर शोभा यात्रा निकली। शास्त्रानुसार पूजन के अनन्तर समाधि दी गई। शरीर रखकर नमक चुना गया। इसके बाद पार्वण श्राद्ध विधि-विधान से पण्डित जनार्दन जी ने किया। इस ब्रह्मीभूत समय का श्लोक तथा दोहा इस प्रकार है—

एक वर्ष सहस्राणि नव वर्ष शतानि च।
एक षष्टि च वर्षाणि भोजराज्याद् गतानि च॥१॥
बैशाखस्य सिते पक्षे नवम्यां कुज वासरे।
ब्रह्मनिष्ठः महायोगी परे ब्रह्मण्यलीयत॥२॥

दोहा— चन्द्र[१] ग्रह[९] अरु तत्व[५] ऋषि[७], पावन अमल अनूप।
मेष मास सित नौमी तिथि कुजवार सुख रूप॥
ऐसे मुक्तिद योग में हुये प्रभु अन्तर्धान।
ब्रह्म निष्ठ वे परम गुरु कीन्हों जग कल्याण॥

विशेष—यद्यपि संस्कृत साहित्य में "अंकानां वामतो गतिः" अंकों की गति बायीं ओर कही है। जैसे—कहीं ५७२० लिखा हो तो पढ़ने में इकाई दहाई आदि क्रम से गिना जाता है। परन्तु पढ़ने में हजार, सैंकड़ा आदि क्रम से पढ़ा जाता है। अतः पाठकों की सुविधा के लिये विपरीत क्रम से संख्या की है।

गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर छोटे स्वामी जी जब तक समाधि पूर्ण नहीं बनी। तब तक एक वर्ष या चार वर्ष फम्बियां में ही रहे।

चित्रकला की दृष्टि से भी पंजाब में यह अद्वितीय समाधि है। इसके भीतर शेषशायी भगवान् विष्णु, दुर्गा, नृसिंह भगवान्, हिरण्यकशिपु को मारते हुये तथा प्रह्लाद द्वारा स्तुति किये जाते हुये दिखाये हैं। वामन भगवान संकल्प जल देते हुये, श्री कृष्ण का कलियनाग पर नृत्य, गणेश जी "गुरु नानक देव", वाला, मर्दाना, सहित, स्वामी जी के दो चित्र एक समाधि में बैठे हुये। दूसरे जगने के बाद बैशाखी (वैरागन) का सहारा लिये हुये आदि चित्र अंकित है। सामने भी दो चित्र दण्ड सहित थे। जो मसाला उड़ जाने से नष्ट हो गये। उनका चित्र मेरे पास है। ९६ वर्ष हो जाने पर भी सरसों का तेल लगा देने पर ज्यों का ज्यों चमकते हैं।

मूर्ति स्थापना तथा बेणी माधव मठ

विक्रमी सम्वत् २०४० में परम गुरु जी की संगमरमर की मूर्ति की स्थापना हुई । मूर्ति के निर्माण आदि का व्यय श्री गीता ज्ञान भवन आगरा के भक्तों द्वारा हुआ । संन्यास शताब्दी समारोह मनाया गया । गांव वालों तथा क्षेत्रीय जनता ने तन, मन, धन से सहयोग किया । इस शिव मन्दिर तथा समाधि के अतिरिक्त पण्डित श्री अयोध्या प्रसाद जी तथा पण्डित मूलराज जी ने समाधि के चारों ओर परिक्रमा बनाई । इतने पर भी अयोध्या प्रसाद जी को सन्तोष नहीं हुआ । उन्होंने शिव मन्दिर के चारों ओर लैन्टर डाल कर परिक्रमा बनाई । हनुमान तथा दुर्गा जी की स्थापना स्वामी जी के आगे की । स्वामी जी के समय तथा बाद में एक कमरा तथा बरामदा था । इस स्थांन की व्यवस्था छोटे स्वामी जी के जीवन में उनके द्वारा, श्री विष्णु आश्रम जी के बाद श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के द्वारा इनके बाद ग्रामीण जनता तथा स्वामी नारायणाश्रम द्वारा होती रही । स्वामी विष्णु आश्रम जी कुछ काल वहां रहने के बाद लड़ोई आ गये थे । विभाजन होने के बाद श्री सेवा नाथ जी ने समाधि की भिक्षा वृत्ति से ३५ वर्ष तक सेवा की । नाथ जी का शरीर छूटने के बाद दण्डी स्वामी ब्रह्मीभूत बद्रिकाश्रम जी महाराज लगभग ८ वर्ष तक रहे । भक्तों ने उनके लिये चार दीवारी बनाकर नया कमरा बनवाया । शताब्दी समारोह में एक यज्ञशाला, एक बड़ा हाल, आगे बरामदा, स्वामी जी के कमरे के आगे पक्का बरामदा, पण्डित श्याम लाल जी ने पुत्र की स्मृति में बनवाया । सन् १९९९ में, पण्डित श्री अयोध्या प्रसाद जी ने लक्ष्मी नारायण, गायत्री देवी का मन्दिर वरामदे तथा परिक्रमा सहित एवं इसके साथ श्री राम लक्ष्मण जानकी हनुमान जी का मन्दिर परिक्रमा बरामदे सहित कई लाख रुपये व्यय करके बनवाया । स्नान आदि के लिये नल लगा है ।

इस ग्राम में इस शिव मन्दिर तथा समाधि के अतिरिक्त एक पुराना ठाकुरद्वारा है । इसकी व्यवस्था विरक्त वैरागियों द्वारा होती थी । ठाकुरद्वारा महन्त हीरा दास जी ने बनवाया था । यह गद्दी लगभग दो ढाई सौ वर्ष पूर्व की है । यह ग्राम ब्राह्मण प्रधान है । इसमें भम्भी गोत्रीय ब्राह्मण अधिक हैं । भम्भी ऋषि का नाम महाभारत के "विष्णु सहस्रनाम" की "नीलकण्ठी भारत भावाख्य" टीका में आता है । इन्होंने किसी स्थान विशेष पर भगवान् के विशेष नाम का दस करोड़ जप करके सिद्धि प्राप्त की थी । यह भम्भी शब्द बिगड़ कर फम्बी हो गया । आज से १२ वर्ष पूर्व दण्डी स्वामी देवदेवेश्वराश्रम जी महाराज का शरीर जालन्धर में छूट

गया था। यह स्वामी बद्रिकाश्रम जी के धुरन्धर विद्वान् गुरुभाई थे। स्वामी जी उनका शरीर फम्विया ले आये। स्वामी जी की समाधि के पीछे उनकी समाधि बनी है। समाधि गांवों वालों तथा उनके शिष्यों ने बनाई है। इसमें पण्डित बलदेव प्रसाद जी तथा पण्डित फौजीराम शर्मा का भी सहयोग रहा। इस समय बिहार के सद्गृहस्थ पण्डित समाधि में पुजारी हैं। इसी वर्ष १९९६ की जुलाई में स्वामी जी की पुरानी हल्टी पर, लेण्टर पड़ना था। परन्तु स्वामी जी ने कड़ कड़ाती आवाज़ में मिस्त्री को डांटा। वह भयभीत हो गया। जाकर श्री अयोध्या प्रसाद जी को बताया। वहीं पर काम बन्द हो गया। वहां पर परिक्रमा बना दी। रोज पूजा होती है। उसकी सफाई करके उसी से स्नान आदि करवाया जाएगा।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

परम गुरु भक्त, परम सिद्ध बाबा जवाहर दास जी

आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व श्याम चौरासी के पास जनपद होशियारपुर में सूस ग्राम में परम तपस्वी, वीतराग, परम सिद्ध, सेवा परायण, अत्यन्त निरभिमानी, एक सन्त का जाट परिवार में जन्म हुआ। आप बाल्यावस्था में ही सरल, निश्छल स्वभाव के थे। उन दिनों हमारे ग्राम दादूपुर गरोया को छोड़कर उस क्षेत्र में दूसरा कोई स्कूल नहीं था। नन्दाचौर, बहिराम, श्यामचौरासी तथा सांदरा आदि में प्राइमरी या लोयर मिडिल स्कूल थे। पूर्वजों से सुना जाता है कि भाई जी हमारे गांव में हमारे प्रपितामह श्री फकीरचन्द श्री पण्डित काशीराम व पण्डित मुंशीराम जी के साथ पढ़ते थे। आप केवल छः महीने या एक साल तक स्कूल में पढ़े। परन्तु श्री गुरु नानक देव के समान पूर्व जन्म के संस्कारों से सब कुछ जानते थे। घर में निर्लिप्त भाव से रहते थे। सन्त ज़िस परिवार में जन्म लेता है, उसमें रहते हुये भी लस्सी में मक्खन के समान रहता है।

माता-पिता की मृत्यु के बाद वे अनाथ हो गये। परिवार वाले रक्षक की जगह भक्षक हुये। अतः उन्होंने इनका पोषण के बजाय शोषण किया। पैतृक चल-अचल सम्पत्ति सब हड़प ली। घर बार छोड़कर एक उदासीन महात्मा की शरण ली। वे "लाजड़ा" ग्राम या उसके आस-पास कहीं रहते थे। उनसे दीक्षा ली। गुरु आज्ञा लेकर सम्पूर्ण भारत के तीर्थों की यात्रा

की। ग्राम से बाहर दक्षिण दिशा में कुटी बनाकर साधना करने लगे। गांवों का जल तक न लेने की प्रतिज्ञा की। कुआं खोदकर हल्टी लगाई। एक बढ़ई इनका परम भक्त था। उसके प्रार्थना करने पर १२ वर्ष तक बिना नमक की कढ़ी लेते थे। बाद में उसको भी छोड़कर २४ वर्ष तक अन्न त्याग दिया। केवल जड़ी बूटी को पीस कर लेते हुये कठोर तप करने लगे। बान प्रस्थियों का धर्म पालन करते हुये, सर्दियों में जल में खड़े होकर वर्षा में मैदान में, गर्मी में पंचाग्नि तापते थे। फम्बियां वाले गुरु जी की विशेष कृपा होने से अनेक सिद्धियां प्राप्त हुईं। लड़ोई वाले स्वामी जी का भी गुरुवत् आदर करते थे। चुम्बक जैसे लोहे को खींचता है वैसे ही जनता इनकी ओर खिंची। बड़े गुरु जी की आज्ञा प्राप्त कर आपने स्वयं तालाब खोदा।

हरिद्वार कुम्भ स्नान

एक बार भक्तों ने आपसे हरिद्वार कुम्भ स्नान के लिये प्रार्थना की। इन्होंने मना कर दिया। कहा **"मन चंगा तो कठौती में गंगा"** सेवक हरिद्वार स्नान के लिये चले गये। उन्होंने इनको हर की पौड़ी पर स्नान करते देखा। आश्चर्य को प्राप्त हुये। वे दूसरे रूप में वहां गये थे।

दुष्ट सेवक को शाप

इनके पास बहुत सी गौयें थीं। सभी भरपूर दूध देती थीं। यह उस दूध को स्वयं नहीं पीते थे। जनता जनार्दन, साधु सेवा में लगा देते थे। गो सेवा स्वयं करते तथा सेवकों से करवाते थे। कुछ निठल्ले मुफ्त खोर सेवक भी थे। कैसी भी बांझ या बिना व्याई गऊ भी थापी देने पर जब चाहो दूध देती थी। एक दिन एक सन्त आये। इन्होंने गऊ दुहने के लिये सेवक से कहा। उसने कहा, महाराज वह तो दूध नहीं देती। इन्होंने जाकर गऊ की पीठ थपथपाई। कहा **जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी**॥ हे गऊ माता! आज से तुम न दूध देना, न ब्याना। गऊ ने बारह वर्ष तक उनकी आज्ञा का पालन किया। बारह वर्ष बाद सेवकों के प्रार्थना करने पर थापी देकर गऊ से कहा, हे कामधेनु ! अब तू पूर्ववत् दूध दे। भाई जी अति निरभिमानी सन्त थे। स्वप्न में भी पूजा प्रतिष्ठा नहीं चाहते थे। एक सेवक कैमरा लेकर पूजा के लिये उनका चित्र लेना चाहता था। उसने प्रार्थना की। वे नहीं माने। अति अनुनय विनय करने पर चित्र खिंचवाने के लिये खड़े हो गये। अनेक बार

बटन दबाने पर भी इनका चित्र नहीं आया। आस-पास का सब दृश्य आ गया। भक्तों को आश्चर्य तथा दुःख हुआ। विशेष प्रार्थना करने पर चित्र आया। इनके स्थान पर प्रत्येक वृष (ज्येष्ठ) की संक्रान्ति पर वार्षिक उत्सव होता है। झण्डा चढ़ता है। हजारों की भीड़ होती है। प्रत्येक मास की संक्रान्ति तथा अमावस्या पर छोटा मेला लगता है। सैंकड़ों मन अन्न, दूध इकट्ठा हो जाता है। जो कि अतिथि सत्कार में लगता है। इनकी समाधि पर जो मनौती मानी जाए पूरी होती है।

क्षत्रिय सेवक

इसी ग्राम का एक क्षत्रिय बालक सेवा में उपस्थित हुआ। इनका नाम "लाला मिलखी राम" था। सभी प्रकार से गुरु सेवा करने लगा। भाई जी पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ थे। पठित नहीं थे। अतः पठित बालक के तर्कों का उत्तर नहीं दे पाते थे। कुछ समय बाद लड़ोई वाले "स्वामी विष्णु आश्रम जी" पहुंचे। उनसे इनकी चर्चा की। स्वामी जी ने सन्तोषजनक समाधान किया। भाई जी ने कहा। इस बच्चे को मैं आप को सौंपता हूं। तब से वे स्वामी जी की सेवा करने लगे। वही बालक संन्यास लेने के बाद "स्वामी ब्रह्मानन्द" के नाम से प्रसिद्ध हुये।

भाई जी की जब कोई प्रशंसा करता। तो उत्तर देते कि साधक को अपने मन इन्द्रियों पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। इन्होंने कई जन्मों में धोखा दिया है। आगे भी धोखा दे सकती हैं। इस पर यदि कोई कहता, आप तो अति वृद्ध, परमसिद्ध, इन्द्रिय संयमी हैं। तो कहते थे, "खेती पक गयी है, कटने को तैयार है। कटकर खलिहान में आ जाए, मडाई ओसाई के बाद भूसा तथा गेहूं अर्थात् आत्मा, अनात्मा पृथक् हो जाए। तो जीव रूपी किसान को सफलता मिलती है। इस जीव रूपी किसान ने शरीर रूपी खेत में पुण्य पाप रूपी बीज बोकर सत्संग तथा कुसंग रूपी सिंचाई की है। जब सद्गुरु रूपी वायु से उड़कर पुण्य रूपी अन्न तथा पाप रूपी भूसा अलग हो जाय, तो जीव सफल होता है। अथवा आत्म ज्ञानी जीवन्मुक्त जीव रूपी किसान पुण्य और पाप रूपी बीज को ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध करके सफलता प्राप्त करता है। अहंकार तथा द्वेष इन्हें छू तक नहीं गया था। उनकी १०० वर्ष से अधिक अवस्था हो गयी थी। इनके दो शिष्य थे। पहले सन्त हरी दास, दूसरे "सींगड़ी" वाले सन्त। वे जालन्धर होशियारपुर सड़क पर सींगड़ी वाले ग्राम में रहते थे। पहले शिष्य इनके उत्तराधिकारी थे। विक्रमी सम्वत् १९७७ में आश्विन शुक्ल चतुर्थी को आज से ८० वर्ष पूर्व

परम पद को प्राप्त हुये थे। सभी भक्तों को जो जहां कहीं था। खेत, खलिहान, देश-विदेश में सर्वत्र बम के गोले के समान शब्द सुनाई पड़ा। ऐसे लगता था कि पास में ही गोला दगा है। सेवकों ने समाधि बनाई। श्री लाभ दास जी इनके साक्षात् शिष्य थे। यह कुछ काल सूस में रहने के बाद "पिंडोरी फगूडियां" में आ गये थे। वहीं शरीर छोड़ा। ग्राम के बाहर इनकी समाधि है। लाभ दास के बाद सन्त हरिनाम दास हुये। उनके बाद आजकल कमेटी है। उसने तालाब को पक्का बनवा दिया है। कई कमरे तथा नल लगे हैं। स्त्री पुरुषों के लिये स्नान की अलग-अलग व्यवस्था है। इनकी एक गद्दी पिंडोरी फगोडियां में है। वहां पर आषाढ़ की संक्रान्ति में मेला लगता है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

अनन्त श्री विभूषित, दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज (९३३)

॥ श्री विष्णवाश्रमाष्टकम् ॥

यस्य दक्ष करे दण्डं वामे चैव कमण्डलुम्।
गुरुं योगेश्वराणां च विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥१॥
शिवस्वरोदयज्ञं च शान्त्याश्रमस्य नायकम्।
शान्तिप्रदं स्वभक्तानां विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥२॥
त्रिकालज्ञमहं वन्दे दिव्य दृष्टिं पुनः पुनः।
भस्त्रिकायां प्रवीणं यः विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥३॥
विष्णूपमं गुरुं शान्तं गम्भीरं सागरोपमम्।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं तं विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥४॥
गौरवर्ण समायुक्तं नैष्ठिकं ब्रह्मचारिणम्।
यतिवरमहं वन्दे विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥५॥
गोविन्दस्य सुतं वन्दे लड़ोई ग्राम वासिनम्।
वेणीमाधव शिष्यं च विष्णवाश्रमं नमाम्यहम् ॥६॥

ज्ञान मुद्रा समायुक्तं पद्मासने. सुसंस्थितम् ।
आत्म ज्ञाने महानिष्ठं विष्ण्वाश्रमं नमाम्यहम् ॥७॥
यो विष्णु स यतीन्द्रो वै यो यतिः विष्णुरेव सः ।
विष्णु रूप धरं भिक्षुं विष्ण्वाश्रमं नमाम्यहम् ॥८॥
॥ इति विष्ण्वाश्रमाष्टकम् सम्पूर्णम् ॥

अर्थ—जिनके दाहिने हाथ में दण्ड एवं बायें हाथ में कमण्डलु है । उन योगेश्वरों के गुरु विष्णु आश्रम जी को मैं प्रणाम करता हूं । (यद्यपि योगेश्वर दशकम् में स्वामी जी के गुरु को योगेश्वर कहा है । अतः वे उनके गुरु नहीं हो सकते । श्री स्वामी जी के भी अनेक योगेश्वर शिष्य हो चुके हैं । इसलिये 'गुरु योगेश्वराणाम्' लिखा) ॥१॥ शिव स्वरोदय के जानने वाले, शान्ति आश्रम के नायक, भक्तों को सिद्धि देने वाले विष्णु आश्रम ...... ॥२॥ जो त्रिकाल दर्शी, दिव्य दृष्टि सम्पन्न, भस्त्रिका प्राणायाम (कपाल भाति) में निपुण हैं । उन विष्णु आश्रम जी ...... ॥३॥ जो विष्णु भगवान् के समान शान्त, सागरवत् गम्भीर, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हैं । उन स्वामी विष्णु आश्रम जी ...... ॥४॥ गौर वर्ण, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, यतियों में श्रेष्ठ विष्णु आश्रम जी ...... ॥५॥ जो पण्डित श्री गोविन्द राम जी के पुत्र लड़ोई ग्राम वासी एवं स्वामी श्री बेणी माधव जी के शिष्य हैं । उन स्वामी विष्णु आश्रम जी ...... ॥६॥ पद्मासन पर स्थित ज्ञान मुद्रा (अंगूठा तथा तर्जनी को बराबर मिलाने वाली मुद्रा) से युक्त, आत्म ज्ञान में प्रवीण स्वामी विष्णु आश्रम जी ...... ॥७॥ जो भगवान् विष्णु है वही यतिराज, जो यतिराज हैं वही विष्णु है । ऐसे विष्णु रूपधारी भिक्षु श्री विष्णु आश्रम जी को मैं प्रणाम करता हूं । इति विष्ण्वाश्रमाष्टक सम्पूर्ण हुआ ।

पंजाब में सैंकड़ों वर्षों से जनपद जालन्धर तथा होशियारपुर में अनेक योगी, तपस्वी, यति हो चुके हैं । उनमें से टांडा में भक्त बूटाराम दिगम्बर, नन्दाचौर में उदासीन महात्मा ओम् दास, रुड़का भुड़का में पण्डित पालाराम जी इन्होंने अपने मामा से भागवत् सप्ताह सुना । उसमें ऋषभदेव, जड़ भरत का चरित्र दत्तचित्त से सुना । इन पर उसी समय प्रभाव पड़ा । कथा के अन्त में विश्राम होने पर इन्होंने मामा से कहा कि "आज से आप मुझे जड़भरत समझो ।" उन्होंने कहा—तुम हजारों जन्मों में भी जड़भरत नहीं हो सकते । इन्होंने कहा—देख लेना । उसी समय से शीतोष्ण, भूख प्यास, मानापमान सहन करते हुये द्वन्द्वातीत दिगम्बर होकर

विचरण करने लगे। बालक छेड़-छाड़ करते रहे। परीक्षा के लिये पकड़ कर तांबे के बारीक तार से मूत्रेन्द्रिय बांध दी। सात दिन तक बंधी रही। न स्वयं खोला। न किसी से खुलवाया। मूत्र की गति रुक जाने से पेट घड़े के समान फूल गया। भक्तों को पेट फूलने का कारण पता नहीं चला। सामान्य दृष्टि से तार नहीं दिखाई पड़ी थी। किसी ने तार देखा, खोल दिया। खोलते ही सात-आठ सेर पेशाब निकला। एक मुसलमान ने द्वेष में उनके सर पर गंड़ासा मारा। आपने सी तक नहीं किया। ऐसे दोनों ज़िलों में अनेक सन्त हो चुके हैं।

अनन्त श्री विभूषित श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी स्वामी गुरुदेव विष्णु आश्रम जी महाराज का जन्म लड़ोई ग्राम में जनपद जालन्धर में श्री पण्डित कान्होराम जी के पुत्र पण्डित गोविन्द राम जी की धर्म पत्नी श्रीमती चन्दी देवी के गर्भ से विक्रमी सम्वत् १९१३ में हुआ था।

चन्द्र[१] खण्डशताब्दानि[९] वर्ष त्रयोदशानि[१३] च।
शुभे मासे शुभे पक्षे शुभे वारे शुभेतिथौ॥
परमहंसः महायोगि भक्तानामभयंकरः।
नौल वंशे समुद्भूतः चन्दी मोद सुधाकरः॥

दोहा— चन्द्र[१] नन्द[९] अरु उडगपति[१] वह्नि[३] मास अनुकूल।
सुष्ठवार अरु पुण्यतिथि, यतिवर सब सुखमूल॥
ऐसे दुर्लभ योग में प्रकट भयो यतिराज।
पतित उधारन के लिये आयो साधु समाज॥

जन्म से ही आपके दोनों पैर मुड़े हुये थे। माता-पिता को महती चिन्ता हुई। शास्त्रानुसार जात कर्म, नामकरण, अन्न प्राशन, उपवेशन, आदि संस्कार हुये। उन दिनों नन्दाचौर में प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य थे। माता पुत्र को गोद में लेकर जन्म कुण्डली (टेवा) सहित आचार्य जी के पास पहुंची। बालक का भविष्य पूछा। पण्डित जी ने कुण्डली तथा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार कहा, हे देवि ! यह पुत्र तुम्हारे वंश में चार चांद लगायेगा। यह सिद्ध योगी, विरक्त होने पर भी राजाओं के समान भोग भोगेगा। अनेक योगी यति इसकी सेवा करेंगे। पराक्रम में विष्णु के समान, ध्यान समाधि में शिव के समान होगा। यह तुम्हारी तीन सौ पीढ़ियां तारेगा।

पिता जी ने इनका नाम अनन्त राम रखा। लोग इन्हें पोल्हो कहते थे। पांच वर्ष बाद इनके दूसरे भाई का जन्म हुआ। उनका नाम "पण्डित गूजर मल" रखा। दूसरे पुत्र के जन्म के कुछ वर्ष बाद पिता जी स्वर्गवासी हो गये। दोनों बालकों के भरण-पोषण का भार माता पर पड़ा। इनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति कमजोर थी। माता को अनेक यातनायें सहनी पड़ीं। इनके गुरु जी जितने सम्पन्न थे। यह उतने ही निर्धन थे। लोगों के घरों में माता जी भोजन बनाकर निर्वाह करती थीं।

प्रारम्भिक शिक्षा—दो चमत्कारी सन्त

बालक को छः वर्ष की आयु में लड़ोआ के प्राइमरी स्कूल में भर्ती कराया। इनके सहपाठी पण्डित रामचन्द्र जी भारती थे। कबड्डी तथा दौड़ में वे इनको पैर पकड़ कर गिरा देते थे। यह ग्राम लड़ोई के समीप है। यहां पर एक शिव मन्दिर तथा एक सिद्ध महात्मा की समाधि है। एक सौ पचास वर्ष पूर्व यहां शंकर पुरी नामक के तपस्वी, त्यागी, सिद्ध पुरुष रहते थे। लड़ोआ से दो किलो मीटर दूर बुल्लोबाल बाली सड़क पर सन्त "श्री राम रंग" की कुटी है। वे भी बड़े सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने एक बार अनेक सन्तों सहित शंकर पुरी जी को निमन्त्रण दिया। दिन के १२ बजे का समय दिया। आप कौवे का रूप धारण करके पहुंचे। कुयें की ढिकुली (ढिंगली) पर बैठे। उन्होंने नहीं पहचाना। गुलेल मारकर लहू लुहान कर दिया। वे उसी रूप में उड़कर आश्रम में आये। कुछ दिन बाद दोनों की भेंट हुई। राम रंग जी ने कहा—आप भोजन में क्यों नहीं आये। इन्होंने कहा—मैं तो आया था। तुमने मारकर भगा दिया। उन्होंने कहा—झूठ बोलते हो। इन्होंने खून से लथपथ घाव दिखाया। कहा—मैं कौवे के रूप में आया। आपने गुलेल मार कर भगा दिया।

एक बार शंकर पुरी जी ने उन्हें आमन्त्रित किया। भिक्षा में इन्होंने दूध, घी दिया। उन्होंने पात्र आगे कर दिया। तीन चार घंटे तक लगातार उनके पात्रों से घी, दूध की धार गिरती रही। न पात्र में दूध, घी कम होता था न उनका भरता था। शंकर पुरी जी बंगाली सन्त थे।

लड़ोआ की शिक्षा के अनन्तर एक सुयोग्य ब्राह्मण ने आपको हिन्दी तथा थोड़ी संस्कृत पढ़ाई। फिर होडा चक्र, शीघ्र बोध, कर्म काण्ड कात्यायनी शान्ति आदि का ज्ञान दिया। बड़ी कठिनाई से तीनों का निर्वाह होता था। बाद में शिव स्वरोदय का अच्छा अभ्यास किया। २५ से ३० वर्ष की आयु तक श्री राम रंग की कुटी में दोनों समय सन्तों का भोजन बनाते थे। उन दिनों वहां बहुत से महात्मा रहते थे। बीच में कभी-कभी गुरु जी का दर्शन और आशीर्वाद

प्राप्त होता था। ३१वें वर्ष में माता चल बसी। उनकी क्रिया करने के अनन्तर पूर्णरूपेण तत्परता से गुरु सेवा करने लगे। श्री अनन्त राम जी में दैवी सम्पदा के सभी गुण थे। परन्तु राम रंग के सन्तों ने उन्हें भांग खाना सिखा दिया था। गुरु जी भांग नहीं खाते इस बात का इनको पता नहीं था। इन्होंने उसका मजून बनाकर गुरु जी को दिया। देखते ही बहुत फटकारा। कहा—तू इन व्यसनों के अधीन रहकर क्या साधू होगा। जा घर चला जा। आप गुरु चरणों में गिर कर रोने लगे। प्रतिज्ञा की आज से स्वप्न में भी सेवन नहीं करूगा।

संन्यास दीक्षा

सेवा से प्रसन्न होकर गुरु जी ने विक्रमी सम्वत् १९४९ में ३६ वर्ष की आयु में गीगनोवाल के तालाब पर दण्ड संन्यास देकर दण्डी स्वामी "विष्णु आश्रम" योगपट्ट दिया। गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद आप एक वर्ष तक फम्बियां रहे। फिर गरोवा, सूसां, पज्जोदित्ता, पिंडोरी आदि ग्रामों में विचरण करते हुये बाबा श्री जवाहर दास जी के पास पहुंचे। वहां पर उसी ग्राम के मिल्खी राम नामक क्षत्रिय बालक को जो तार्किक था, बाबा जी ने स्वामी जी को सौंपा। जब इनकी माता जी को पता चला, तो वे भागती हुई स्वामी जी के पास आईं। प्रणाम करके प्रार्थना की। कि यह मेरा छोटा पुत्र है। जब तक जीऊं इसे न लें। बाद में ग्रहण करें। स्वामी जी ने तथास्तु कहा। तब से वे माता तथा गुरु जी की कभी-कभी सेवा करते थे।

एक बार गर्मियों में जेठ के महीने में पज्जोदित्ता से भिक्षा करके पैदल फम्बियां लौट रहे थे। रास्ते में भयंकर आंधी आई। उसमें बेरी तथा पोली के कांटों में कपड़े उलझ गये। हवा तेज थी। जितना सुलझाते उतना और उलझ जाते। अति परेशान थे। शीतकाल में भी एक दो मील चलने में ही पसीने से भीग जाते थे। इतने में लड़ोई के भगत वहां पहुंचे। उन्होंने कांटे सुलझाये। प्रार्थना की कि हमारे गांव के दक्षिण में जो परमहंसों का स्थान है, वहां क्यों नहीं पधारते। हमें भी सेवा तथा सत्संग का सु-अवसर प्राप्त होगा। आपने कहा—संन्यासी को अपनी जन्म भूमि से १०० योजन दूर रहना चाहिये। यदि इतना नहीं कर सकता, तो कम से जिला तो छोड़ ही देना चाहिये। ऐसा न करने से संसर्ग दोष प्राप्त होता है। महाराज जी ने गुरुदेव से शिव स्वरोदय, योग की मधुमती आदि भूमिकाओं को प्राप्त किया था। परकाय प्रवेश वाक्सिद्धि, एक से अनेक रूप होना, दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि समस्त सिद्धियां प्राप्त कीं। किन्तु आपने गुप्त रखीं। भक्तों के विशेष आग्रह पर रहने की स्वीकृति दी।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

शान्ति आश्रम में

विक्रमी सम्वत् १९६२ मेष की (बैशाख) संक्रान्ति गुरुवार के दिन स्थान पर पदार्पण किया। यह स्थान स्वामी जी के आने के पूर्व महाराजा रणजीत सिंह के समय का है। लगभग १७५ वर्ष पहले का होगा। इस स्थान पर काशीपुरी से पढ़कर एक विद्वान् गिरि नाम वाले परमहंस रहते थे। उनके पास अनेक विद्यार्थी पढ़ते थे। अति तितिक्षु थे। एक बार अर्द्धरात्रि में लुटेरों ने इन पर आक्रमण किया। मारने लगे। वे जोर-जोर से राम का नाम लेने लगे। इनके शिष्य स्वामी शीतल गिरि हुये। उनके अनेक शिष्यों में अतिक्रूर स्वभाव के स्वर्णकार हुये। इनका नाम रामगिरि था।

प्राचीन काल में यहां पर व्यास नदी बहती थी। यहां मरुस्थल था। मूंगफली के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। परन्तु जब से स्वामी जी ने पदार्पण किया, तब से प्रत्येक फसल गन्ना, धान तक होता है। जब स्वामी जी को रहते दो महीने से अधिक हो गये, तब सूस का वही बालक मिल्खी राम आया। चरणों में प्रणाम किया। शिष्य बनाने की प्रार्थना की। इनके शिखा थी, यज्ञोपवीत नहीं था। आचार्य को बुलाकर विधिपूर्वक यज्ञोपवीत किया। नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाकर "ब्रह्म स्वरूप" नाम दिया। आप आश्रम की सफाई झाड़ बुहार करते थे। गांव से भिक्षा लाते थे। भिक्षा के बाद विश्राम, तीसरे पहर भक्त लोग आते थे, सत्संग होता था। कोई खाली हाथ नहीं आता था। स्वामी जी की विशेष आज्ञा थी, जो वस्तु आये उसका तुरन्त उपयोग हो। रात्रि में सोने से पहले सब पात्र खाली हो जाते थे। दूसरे दिन उसे दुगुनी सामग्री आती थी। सैंकड़ों कोस की बात तुरन्त बता देते थे।

एक दिन एक भक्त बादाम लाया। ठंडाई का विचार हुआ। स्वामी जी देशी खांड या गुड़ शक्कर का प्रयोग करते थे और सभी वस्तुयें थीं, परन्तु मीठा नहीं था। एक भक्त ने कहा, गुरु जी मैं गुड़ लाता हूं। घर में जाकर मां से गुड़ मांगा। मां मक्खी चूस थी। उसने मटकी में से कई वर्षों का पुराना गुड़ दिया। पुत्र ने मां को धिक्कारा। उसको उसी में डालकर ताजा गुड़ लेकर गुरु चरणों में पहुंचा। स्वामी जी यहीं बैठे थे। सब देख रहे थे, दूर से ही उसको देखकर चिल्लाकर कहा—तू साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा मां का तिरस्कार करके गुड़ लाया है।

वापस ले जा। तेरी मां ने जो गुड़ दिया था, वही ला। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। विशेष अनुनय-विनय करने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया। दूसरा भक्त गुड़ लाया। तब ठंडाई बनी।

पण्डित श्री रामदत्त जी

श्री स्वामी जी के गुरु भाई, बड़े स्वामी जी के परम कृपा पात्र पण्डित श्री रामदत्त जी बड़े विद्वान् थे। ग्राम "पांछटा" के रहने वाले थे। वृद्धावस्था में यहीं आ गये थे। परम सन्तोषी आश्रम में रामायण सुनाते थे। श्री स्वामी जी स्वयं भी रामायण के मर्मज्ञ थे। वे कहते थे। बाल काण्ड का आदि, अयोध्या का मध्य, उत्तर का अन्त, जो जाने सो सन्त। पण्डित जी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। क्षेत्र में यत्र तत्र कथा से जो धन मिलता था। आश्रम में लगाते थे। उन्होंने देखा। आश्रम में सन्तों को स्नान करने की बड़ी कठिनाई होती है। उन्होंने उस धन से छोटा कुआं बनवा कर रहटी बंगले के पास बनवाई। आश्रम में ही उन्होंने शरीर छोड़ा। कुयें के पास ही उनकी समाधि है।

पण्डित जी के बाद "अपरा" के सद्‌गृहस्थ "पण्डित मेला राम जी" आश्रम में रामायण सुनाते थे। स्वामी जी के अनन्य भक्त थे। कथा में भक्ति रस के अतिरिक्त वेदान्त तथा हास्य रस का भी पुट देते थे। इन्होंने "श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी" ने तथा "पण्डित किशन चन्द जी" ने श्री रामचरित मानस, विचार चन्द्रोदय एवं विचार सागर स्वामी जी से लगवाया था। पण्डित मेला राम जी के युवावस्था में बड़ी दरिद्रता थी, पत्नी नेत्रहीन हो गयी थी। दो बालक पण्डित हेमराज तथा मूलचन्द जी थे। गुरु जी ने अनुष्ठान बताया। वह सफल हुआ। छोटा पुत्र पढ़कर अफ्रीका चला गया। वहां से अपार धन-राशि पिता को भेजी। बड़े पुत्र मूलचन्द जी ने जालन्धर माईं हीरां गेट की संस्कृत पाठशाला में अध्ययन किया। वे साईं दास हाई स्कूल जालन्धर में संस्कृत के अध्यापक हुये। पण्डित जी की श्रद्धा का पारावार नहीं रहा। वे शास्त्री जी को साथ लेकर घर से चले। भोगपुर गाड़ी से उतर कर उन्होंने एक लंगोटी तथा अंगोछे को छोड़कर सब कपड़े पुत्र को दे दिये। जेठ का महीना था, कड़कड़ाती लू चल रही थी। दिन के १२ बजे थे। आप स्टेशन से ही साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, आश्रम की ओर चले। स्वामी जी आश्रम में ही भक्त की क्रियाओं को जान गये। जब ईंटों के भट्ठे के पास पहुंचे, तब सेवक को भेजकर आज्ञा दी कि तुम्हारी भक्ति से गुरु जी अत्यन्त प्रसन्न हैं। कपड़े

पहन कर मेरे पास आइये। इन्होंने गुरु आज्ञा शिरोधार्य की। आते ही गुरु चरणों में गिर कर रोने लगे। स्वामी जी ने अनेक आशीर्वाद दिये।

जिला होशियारपुर टांडा के पास "अहियापुर" ग्राम में "सरदार अमरीक सिंह" स्वामी जी के अनन्य भक्त थे। उन दिनों अम्बाला छावनी में मिलट्री में थे। सर्दियों के दिन थे। इनकी रात की डियुटी थी। रात्रि में इनकी पत्नी ने पत्थर के कोयले की अंगीठी सुलगाकर बच्चों के पास रख कर कमरा बन्द कर दिया। उसकी गैस से बालक मूर्च्छित हो गये। गुरु जी उसी रूप में वहां पहुंचे। खिड़की दरवाजा खोल दिया। जब दम्पति को इस बात का पता चला, उसी समय इन्होंने जालन्धर का टिकट कटवा कर स्वामी जी के पास पहुंचे। उस दिन संक्रान्ति थी। गुरु जी समाधि में थे। उनके आगे ताम्बे के धेला, पाई, पैसा आदि के ढेर लगे थे। कुछ भक्तों ने चांदी के एक या पांच रुपये चढ़ाये। इन दोनों ने दण्डवत् प्रणाम करके १०० रुपये का नोट चढ़ाया। वह आज के दस हजार के बराबर था। सब भक्त आश्चर्य से देखने लगे। परिचय पूछा। इन्होंने आद्योपान्त्य पूरी कथा सुना दी। समाधि से उठने पर गुरु जी को भी सब बताया। इन्होंने गुरु जी के स्नान तथा सिंचाई के लिये समाधियों के पास वाला रहट लगवाया। इसी कुयें से पहले देवताओं का स्नान पूजन होता था। स्वामी जी पैसे की ओर देखते तक नहीं थे। आश्रम का पूरा प्रबन्ध स्वामी ब्रह्मानन्द जी तथा छोटे भाई गूजर मल करते थे।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अनेक शिष्य, सद्गृहस्थ तथा संन्यासी

कालान्तर में "ब्रह्मचारी ब्रह्मस्वरूप" जी को क्षत्रिय होने के कारण बिना दण्ड के संन्यास दे चुके थे। उनका नाम स्वामी ब्रह्मानन्द जी रखा। इन्होंने गुरु सेवा बड़ी तन्मयता से की। विक्रमी सम्वत् १९६५ में गौर वर्ण, गठा शरीर, तेजस्वी चेहरा एक नवयुवक ब्राह्मण बालक गुरु चरणों में पहुंचा। गुरु जी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते हुये सेवा करने लगा। यह वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण पण्डित राम रक्खा थे। संन्यास की इच्छा से आये। शान्ति आश्रम के सर्व प्रथम भण्डारी आप थे। अति पवित्रता से भोजन बनाते तथा स्वामी जी को स्नान कराते

थे तथा ढिंगुली से खेत की सिंचाई करते थे। तीन महीने तक गुरु सेवा के अनन्तर संन्यास की प्रार्थना की। यह अपनी विधवा माता के एक मात्र पुत्र थे। माता की बिना आज्ञा के संन्यास लेना चाहते थे। माता निराधार, प्लेग रोग से ग्रस्त थी।

ब्रह्मचारी की प्रार्थना सुनकर स्वामी जी ने पूछा। क्या तुम माता की आज्ञा से आये हो, या स्वेच्छा से। इन्होंने निषेधात्मक उत्तर दिया। गुरु जी ने कहा—इस आपत्ति में मातृ सेवा ही तुम्हारा परमधर्म है। ब्रह्मचारी ने कहा—भगवत्पाद शंकर ने भी तो माता के होते संन्यास लिया था। गुरु जी ने कहा—यह ठीक है कि वे माता के एकमात्र पुत्र थे। परन्तु उन्होंने माता की आज्ञा से ही संन्यास लिया था। यदि तुम में उन जैसा विवेक वैराग्य हो तो मां की आज्ञा से ले सकते हो। शास्त्रों में ब्राह्मण के लिये पचहत्तर वर्ष बाद संन्यास कहा है। ब्रह्मचारी परम तार्किक थे। उन्होंने पूछा—इस समय आपकी क्या अवस्था है। उन्होंने ५२ वर्ष आयु बताई। इन्होंने पूछा—आपने कितनी आयु में संन्यास लिया। गुरु जी ने ३६ वर्ष में बताया। इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया। आपने ७५ में संन्यास क्यों नहीं लिया? मुझे क्यों मना करते हो। स्वामी जी ने कहा—मातृ आज्ञा प्राप्त कर लो। उनके स्वस्थ होने पर संन्यास ले सकते हो। स्वामी जी की बात इन्हें अच्छी नहीं लगी। प्रणाम करके चले गये। इनकी जीवनी आगे लिखी जाएगी।

१. श्री दण्डी स्वामी वासुदेवाश्रम जी, २. स्वामी शुकदेवाश्रम जी, ३. श्री स्वामी रामाश्रम जी, ४. ब्रह्मचारी अच्युत स्वरूप, ५. स्वामी नारायण गिरि।

१. श्री दण्डी स्वामी वासुदेवाश्रम जी—स्वामी जी के सर्वप्रथम शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी थे। इनका तथा ब्रह्मचारी चैतन्य स्वरूप जी की जीवनी आगे लिखेंगे। अम्बाला से एक ब्राह्मण ने आकर श्री गुरु जी को प्रणाम करके संन्यास के लिये याचना की। स्वामी जी ने कहा—मेरे पास रहकर साधना करो। अधिकारी होने पर दीक्षा देंगे। कुछ समय बाद उचित समझ कर बिना दण्ड के संन्यास दिया। उस समय दण्ड का समुचित प्रबन्ध नहीं था। स्वामी जी का शरीर छूटने के बाद नैनोवाल जट्टां ने अनन्त श्री स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम जी महाराज से दण्ड संन्यास लिया। उन्होंने इनका दिया हुआ योगपट्ट "वासुदेवाश्रम" रखा।

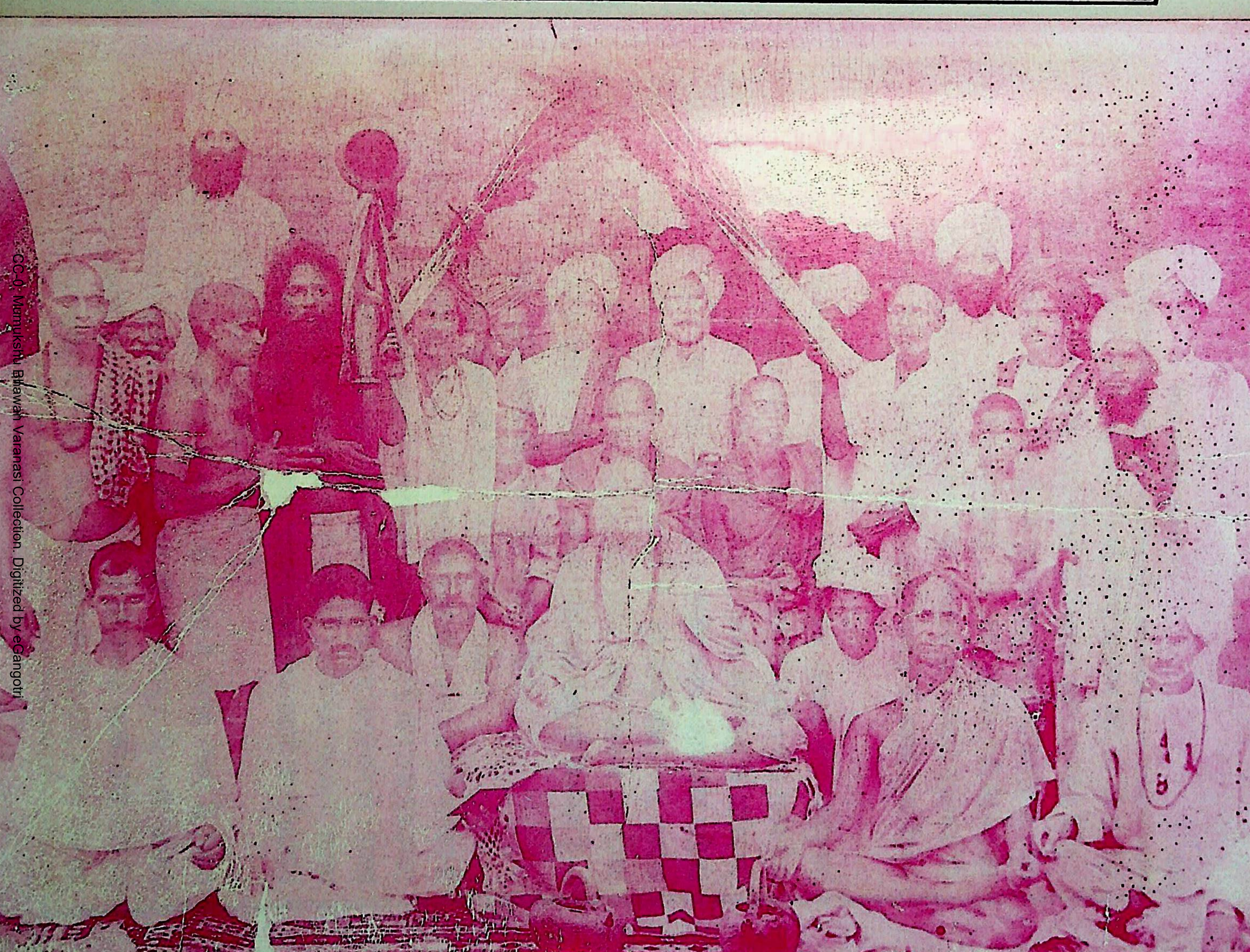
२. श्री स्वामी शुकदेवाश्रम जी—आप जिला होशियारपुर पहाड़ के रहने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। स्वामी जी से संन्यास लेकर आश्रम में श्रवण, ध्यान आदि साधन करने

लगे। गुरु जी के बाद ब्रह्मीभूत हुये। इनकी समाधि हल्टी के पास पंडित श्री रामदित्ता जी के बगल में है।

३. स्वामी रामाश्रम जी—इनका जन्म भी लड़ोई का था। स्वामी जी के पारिवारिक भाई थे। दो या तीन पुत्र थे। बृद्धावस्था में स्वामी जी से संन्यास की दीक्षा ली। योगपट्ट "श्री दण्डी स्वामी रामाश्रम" रखा।

४. ब्रह्मचारी अच्युत स्वरूप—इनका जन्म नन्दाचौर का था। उग्र स्वभाव के नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। अपनी बहन के साथ गांव में रहते थे। श्री स्वामी जी से मन्त्र दीक्षा ली। गुरु सेवा में सर्वोपरि थे। किन्तु तितिक्षा नहीं थीं। किसी कारण विशेष से गुरु जी से रुष्ट होकर नैनोवाल चले गये। वहां स्वामी जी की सेवा करने लगे। वहां भी गुरु जी से तथा आश्रमस्थ सेवकों से पटरी नहीं खाई। भगवा पहन कर जीवन पर्यन्त गांव में ही रहे। वहीं पर इनका शरीर छूटा।

५. स्वामी नारायण गिरि जी—इनका जन्म ग्राम सूंस का था। नैष्ठिक ब्रह्मचारी, लम्बे तगड़े, श्याम वर्ण के थे। उग्र तपस्वी, तितिक्षु तथा भजनानन्दी थे। गृह त्याग कर गुरु शरण में आये यह गद्दी पहले "गिरि परमहंसों" की थी। इस परम्परा का अन्तिम शिष्य राम गिरि उग्र दुष्ट-प्रकृति का था। किसी भी सेवक की उनके प्रति श्रद्धा नहीं थी। श्री स्वामी जी के प्रति अटूट श्रद्धा थी। स्वामी जी ने विचार किया यह आश्रम गिरि परम्परा का है। अतः इनको संन्यास देकर गिरि योग पट्ट देना चाहिये। यह विचार कर संन्यास देकर नारायण गिरि नाम रखा। श्री रामगिरि ऊपरी मन से स्वामी जी को गुरु मान कर सेवा करते रहे। मन में पाप था। इनके पास गांव के एक होनहार अति सुशील, सुकुमार बालक ब्रह्मचारी होने आया। उसका नाम बूटी राम था। प्रतिभा सम्पन्न था। छोटे स्वामी जी ने थोड़े दिनों में मूल गीता कण्ठ करवा दी। उसे शँका हुई। रात्रि में सोये हुये ब्रह्मचारी का गला घोट कर मार दिया। उसकी मृत्यु का स्वामी जी पर विशेष प्रभाव पड़ा। गुरु जी के जीवन काल में भागवत सप्ताह का निश्चय हुआ। सप्ताह का मुहूर्त तथा व्यवस्था हो गई। जालन्धर वाले पण्डित श्री राम जी शास्त्री जो कि जालन्धर में रहते थे, व्यास निश्चित हुये। दूसरे दिन कथा आरम्भ होनी थी। उस दुष्ट काल नेमि ने रात्रि में छप्पर फूंक दिया।





इन सब बातों का विचार करके महाराज जी ने श्री स्वामी नारायण गिरि जी को आसीन होने की आज्ञा दी। इन्होंने इन्कार किया परन्तु स्वामी जी ने आग्रह पूर्वक अभिषेक किया। इन्होंने तुरन्त स्वामी ब्रह्मानन्द जी को ज्येष्ठ होने के कारण उत्तराधिकारी घोषित किया। यह बात उन्हीं के पौत्र सूँस वाले पं० कालू राम जी ने सुनाई। श्री स्वामी नारायण गिरि जी यत्र-तत्र विचरण करते हुए फगूड़ियां पिन्डौरी चले गए। वहां अस्वस्थ हुए। स्वामी ब्रह्मानन्द जी आश्रम में लिवा लाए। यहीं पर उनका शरीर छूटा। इनकी समाधि भी स्वामी शुकदेवाश्रम जी के बायीं ओर है।

६. स्वामी अनन्ताश्रम जी—होशियारपुर ज़िले के एक महाधनी क्षत्रिय नवयुवक जिनमें उत्कट वैराग्य था, सम्पत्ति त्याग कर महाराज जी के चरणों में पहुंचे। कुछ समय रोक कर साधन सम्पन्न देखा। उन्होंने संन्यास की बात चलाई। स्वामी जी ने कहा कि क्षत्रिय का संन्यास में अधिकार नहीं है। वह दण्डी नहीं हो सकता। इन्होंने कहा—आप दण्ड भले ही न दें, पर मेरा नाम अपनी परम्परानुसार 'आश्रमान्त' कर दें। गुरु जी ने कहा—यह अत्यन्त असम्भव है। उन्होंने सोने-चांदी के सिक्कों का लोभ दिया। आप अत्यन्त रुष्ट होकर बोले—क्या तू मुझे धन से खरीदना चाहता है। धन की इच्छा वाले साधु को धिक्कार है—

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरे, सो तो साधू नाहिं॥

वे निराश हो कर अन्यत्र चले गए। किसी महात्मा से संन्यास लिया। उन्होंने संन्यास दे कर लाला अनन्त राम से स्वामी अनन्ताश्रम नाम रखा। आप कुण्डलिनी योग तथा सहजयोग के सिद्ध महात्मा थे। कइयों के दृष्टि मात्र से शक्तिपात करके कुण्डलिनी जागृत कर दी। इनका स्थान होशियारपुर कृष्ण नगर में अनन्ताश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। इनके सद्‌गृहस्थों में नडाला वाले 'पं० दौलत राम जी' परम सिद्ध हुए। इनके उत्तराधिकारी शिष्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी महाराज थे। इस समय तीनों ही शरीर छोड़ चुके हैं।

सद्‌गृहस्थ शिष्य—स्वामी जी के हज़ारों की संख्या में गृहस्थ शिष्य थे, जिनमें कालेबकरे वाले लाला तीर्थराम जी कपूर, फकीर चन्द जी, पं० जगन्नाथ जी, लाला भक्तराम जी, पं० रक्खाराम लडोई वाले, मेलाराम, जालन्धर में पं० श्री राम जी शास्त्री (माई हीरां गेट जालन्धर) पं० राम रतन सगरां वाले, मा० केदार नाथ, जालन्धर सूँस वाले, लाला रला राम,

आत्मा राम, हरी राम, साधू राम, पं० नन्दलाल गरोवा, पं० रक्खा राम सूस, पं० दीवान चन्द, पं० मेला राम अपरा, सरदार अमरीक सिंह अहियापुर, पं० किशन चन्द जी रामायणी आदि थे। इनमें से शिव सिंह तथा बड़े बन्ता राम, विशेष कृपा पात्र थे।

लड़ोई वासी मेलाराम बाती अति निर्धन थे। कर्जा बहुत था। गुरु चरणों में आ गए। प्रार्थना की। गुरु जी ने आज्ञा दी। मेला राम सन्तों की सेवा किया कर। जूठे बर्तन साफ किया कर। मालामाल हो जाएगा। इन्होंने जब जालन्धर से पठानकोट के लिए लाइन बनी, तब उसमें मज़दूरी की थी। अविवाहित थे। एक बहन तथा माता थी। पिता बाल्यास्था में चल बसे थे। गुरु कृपा से बहन का और उसकी छः सात पुत्रियों का विवाह इन्होंने किया। लगभग १०० वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा।

उपदेश

एक बार ब्रह्मानन्द जी ने पूछा—आपने मुझे रामायण तथा विचार चन्द्रोदय पढ़ने की आज्ञा दी है। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है। रामचरित मानस कथा प्रधान ग्रन्थ है। विचार चन्द्रोदय ज्ञान, विचार तथा वेदान्त प्रधान है। गुरु जी ने पहले रामायण पढ़ाई, फिर विचार चन्द्रोदय। इसको पढ़ाते समय मानस में जीवात्मा तथा परमात्मा से सम्बन्धित राम-लक्ष्मण सम्वाद, उमा महेश्वर सम्वाद, उत्तर काण्ड में काग-भुसुण्डि गरुड़ सम्वाद आदि में स्थित चौपाइयों का प्रमाण देकर विचार चन्द्रोदय से दोनों की एकता सिद्ध की।

एक दिन गुरु जी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी से जल मांगा। उन्होंने जल दिया। गुरु जी ने पूछा—जल किस ने मांगा और किसने पिलाया? इन्होंने कहा—आपने मांगा, मैंने पिलाया। गुरु जी ने पूछा—जिसको तुम और मैं कहते हो, वह कौन है? तुम और मैं भिन्न-भिन्न हैं या एक हैं? शिष्य ने उत्तर दिया। अपने शरीर पर हाथ लगाकर कहा—मैं। गुरु जी के शरीर पर हाथ लगाकर कहा—आप हैं। गुरु जी ने कहा—जिसको तुम और मैं कहते हो, वह तो शरीर है। हम दोनों का शरीर जन्म से पहले नहीं था। मृत्यु के बाद नहीं रहेगा। आज से ८० साल पहले, जिसको तुम कहते हो, वह तुम्हारा शरीर माता के पेट में था। इससे पहले पिता के पेट में, इससे पहले अपने शुभ-अशुभ कर्मानुसार स्वर्ग, नर्क या ८४ लाख योनियों में से किसी में होगा। मैं का अर्थ शुद्ध आत्मा है, शरीर नहीं। वह न पैदा होता है, न बढ़ता है, न घटता है, न नष्ट होता है। जो मैं का अर्थ है, वही तुम का अर्थ है। मैं तथा तुम का भेद शरीर

की उपाधि को लेकर है। उपाधि रहित मैं तू शुद्ध ब्रह्म है। शरीर कदापि आत्मा नहीं है। यह क्षणभंगुर है। शरीर के अतिरिक्त इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदि भी आत्मा नहीं हैं। आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। यदि कहो कि आपको प्यास लगी, मैंने पिलाया। पानी पीने से प्यास दूर हुई। यह कहना भी ठीक नहीं है। भूख, प्यास प्राणों को लगती है। कर्ता, भोक्ता विज्ञान मयकोष है। शुद्ध आत्मा इन सब से रहित है। व्यावहारिक सत्ता में यह सब सत्य है। परमार्थ में मिथ्या है। निरुपाधिक स्वरूप का चिन्तन करने से जीव मुक्त हो जाता है।

स्वामी जी अनपढ़ों को समझाते हुए 'बुल्लेशाह' की काफियां सुनाते थे। यह सूफी सन्त सैय्यद वंश में पैदा हुए। मुसलमानों में यह जाति, हिन्दुओं में ब्राह्मणों के समान ऊँची जाति है। इनके गुरु इनायतशाह राई परिवार में थे। भगवान को पाने के लिए उनके पास गए। भगवत् प्राप्ति का उपाय पूछा। वे उस समय लहसुन प्याज की पौध (पनीरी) एक क्यारी से निकाल कर दूसरी क्यारी में लगा रहे थे। उन्होंने कहा—**बुल्लेआ रबदा की पौना, एधरों कड़ के ओधर लौना**। अर्थात् हे बुल्लेशाह ! भगवान को पाने में कोई कठिनाई नहीं है। जैसे मैं एक क्यारी से पौध को दूसरी में लगाता हूं, वैसे ही तू भी अपने मन को संसार से हटाकर भगवान में लगा दे। स्वामी जी की उपदेश शैली अति सरल तथा रोचक थी।

इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पंचदशोऽध्यायः

एक दिन किसी जिज्ञासु भक्त ने पूछा। गुरु जी ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में जब भक्त साधक जप, तप, साधन करते थे तो इन्द्र स्वर्ग से परीक्षा के लिए अप्सरायें भेजते थे। देव दर्शन से पूर्व आकाशवाणी होती थी। आजकल क्यों नहीं होती है?

गुरु जी ने उत्तर दिया—आजकल का भक्त तो किसी नीच जाति की चूड़ी-चमारी जब सज-धजकर निकलती है, तो उसी में आसक्त हो जाता है। जब लौकिक किसी भी सुन्दरी को देखकर न फंसे, तब देवता अप्सरायें भेजते हैं। नारदपुराण में लिखा है कि—ब्रह्मा जी ने उपदेश देते हुए कहा, "जो माता, पुत्री, पुत्रवधू, भौजाई, नानी आदि का कामभाव से चिन्तन करता है, वह नरक में जाता है। जो पुत्रवधू अपने ससुर के आगे खुले अंग दिखाती है, उसके हाथ-पैर गल जाते हैं। वह कृमिभक्ष नरक में गिरती है। जो पापी मनुष्य अपनी पुत्रवधू से पैर

दबाता है, स्नान कराता है या शरीर में तेल की मालिश कराता है, उसकी भी यही गति होती है। वह एक कल्प तक काले रंग के सूची मुख नाम के कीड़े का भोजन बनता है। इसलिए मनुष्य को सकाम भाव से किसी भी नारी को विशेषतः पुत्री या पुत्रवधू को नहीं देखना चाहिए।" इत्यादि। आधुनिक साधक आकाशवाणी (रेडियो) निरन्तर सुनता है। अतः भक्त को भगवान की आकाशवाणी सुनाई नहीं देती है।

स्वामी जी के पास ग्राम झाँमा से पं० किशन चन्द रामायणी जी ने, जो पं० मेला राम जी के बाद आश्रम में तथा आश्रम की ओर से क्षेत्र में रामायण सुनाते थे; इन्होंने भी गुरु चरणों में रामायण, विचार चन्द्रोदय तथा ज्योतिष का अध्ययन किया।

ग्राम नडाला के पंडित खुशी राम जी कभी-कभी आश्रम में आकर गुरु सेवा करते थे। वे हठी थे। गुरु जी के कई बार कहने पर भी आज्ञा नहीं मानते थे। एक मिलिट्री से सेवा निवृत्त अति सरल गुरु भक्त बड़े बन्ता राम थे। इनका गुरु जी में पूर्ण श्रद्धा विश्वास था। प्राणों की बाज़ी लगाकर भी गुरु आज्ञा का पालन करते थे। इसलिए गुरु जी की इन पर विशेष कृपा थी। खुशी राम जी जलते थे। एक दिन स्वामी जी को उलाहना दिया। आप जाट को बहुत चाहते हैं। उसे सब कुछ दे दिया। मुझें कुछ नहीं दिया। स्वामी जी ने कहा—वह मेरी प्रत्येक आज्ञा का पालन करता है। तू एक बात भी नहीं मानता। ज़िद करता है। उसने कहा कि महाराज आप परीक्षा करके देख लें। उन्हें शौच जाना था। उससे कहा—कमण्डलु उठाओ। वह कमण्डलु लेकर स्वामी जी के साथ चला। अति शीत काल था। लौटते समय उससे कहा—यह भखड़े का पौधा (गोखुरू) उखाड़ लो। इसकी दवा बनेगी। उसने कहा—गुरु जी! आश्रम में बहुत हैं। जितने चाहो उखाड़ दूँगा। स्वामी जी ने कई बार कहा। उसने एक नहीं सुनी। प्रातःकाल था। बन्ता राम स्नान करके कपड़े पहन चुके थे। गुरु जी ने पूछा—बन्ता राम नहा चुके? उन्होंने कहा—जी महाराज। स्वामी जी ने कहा—होर नालो (और नहा लो)। जो आज्ञा कह कर कपड़े फिर उतार दिए। हल्टी के तीन-चार चक्कर लगाकर फिर नहाने लगे। दुबला पतला शरीर था। शरीर की चिन्ता न करके आज्ञा पालन किया। स्वामी जी ने डन्डा उठा लिया। ख़ुशी राम को सैंकड़ों गालियां देते हुए मारने दौड़े। वह भागा। उन्होंने कहा—दुष्टराज! यही तेरी गुरु भक्ति है। देख इस रोगी भक्त ने मेरी आज्ञा का तुरन्त पालन किया। तूने सैंकड़ों बार कहने पर भी मेरी एक नहीं सुनी। मेरी कृपा इस पर होगी कि तुम पर।

लड़ोई के पास 'चुदैड़ां' नाम का ग्राम था। वहां के लोग स्वामी जी के पास आकर बोले। यह नाम बहुत खराब है। दूसरा नाम रख दें। वे सन्त मण्डली सहित पहुँचे। शास्त्र विधि से पूजन हवन के अनन्तर उसका नाम 'राम पुर' रखा। ग्राम सगरांवाली के पं० मूलराज जो नेत्रहीन थे, मंत्र दीक्षा लेकर गुरु चरणों में रहे। आयुर्वैदिक औषधि देते थे, कर्मकाण्डी भी थे।

सम्बत् १९८३ में सेवकों की इच्छा शिव मन्दिर निर्माण की हुई। सेवकों ने बड़ी श्रद्धा से मन्दिर का निर्माण किया। इसमें गणेश, गौरी और नन्दीश्वर की मूर्तियां आईं। नर्मदेश्वर की चर्चा हुई। उन दिनों मेरे पितामह पं० नन्दलाल जी जम्मू में विशेषाधिकारी थे। वहां के महाराज ने अनेक नर्मदेश्वर अमर कण्टक से मंगवाए थे। उनमें दो शेष थे। इन्होंने कहा—गुरु जी! महाराज के यहां दो नर्मदेश्वर बचे हैं। वे सेवा में प्रस्तुत करूंगा। उनमें एक शिव मन्दिर में स्थापित हुआ। दूसरा स्वामी जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद समाधि में स्थापित हुआ।

एक बार धन्नो वाली ग्राम के भक्त के यहां एक पुत्र का जन्म हुआ। ढाई तीन वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। पिता को स्वामी जी पर पूर्ण विश्वास था। वे रोते हुए सपरिवार लाश को आश्रम में ले आए। उनके आगे रखकर रोने लगे। स्वामी जी ने आज्ञा दी। इसको तालाब में स्नान कराओ। वे स्वयं पहुंचे। कमण्डल (चिप्पी) से जल ले कर बालक पर छींटा दिया। वह आंखें खोल कर बैठ गया। पिता से जलेबी मांगने लगा। उसे आशीर्वाद दिया। ७५-७६ वर्ष की आयु होगी। इतनी आयु भोगकर उन्होंने शरीर छोड़ा। उनका नाम 'फेरुमल' था। ऐसे न जाने कितने भक्तों को उन्होंने जीवन दान दिया था। मेरे पितामह तथा लाला भक्तराम दोनों ने एक साथ मंत्र लिया था। उनके इकलौते पुत्र पं० ज्ञान चन्द के दो पुत्रियां तथा एक पुत्र था। दस वर्ष तक कोई सन्तान नहीं हुई। उपाय पूछने पर रामायण का नवाह्न पारायण **'व्यापक ब्रह्मनिरंजन निर्गुण विगत विनोद। सोई अज प्रेम भक्ति बस कौसल्या की गोद॥'** इस दोहे का सम्पुट लगा कर करने की आज्ञा दी। गुरु जी स्वयं उपस्थित थे। पं० किशन चन्द जी ने मूल पाठ और स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने व्याख्या की। दशवें दिन हवन भण्डारा साधु ब्राह्मणों का हुआ। बावा जी ने सभी को वस्त्र, बड़ा तकिया तथा स्वामी जी को पालकी दी। वे चलने में असमर्थ थे। अतः पालकी में भक्त ले जाते थे। साथ में कई प्रकार के बाजे बजते थे। इस अनुष्ठान के ३१ महीने बाद उन्हें एक पौत्र की प्राप्ति हुई।

भागवत सप्ताह

वि० सं० १९८७-८८ के बीच में पं० श्रीराम शास्त्री जी ने भागवत सप्ताह किया था। सन्तों तथा सेवकों की अपार भीड़ थी। अनेक गांवों से बैल गाड़ियों पर ग्रामीण जनता आटा, दाल, चावल, सब्ज़ी, घी, गुड़-शक्कर आदि आने लगा। आश्रम में किसी भी प्रकार का अनुष्ठान होता, तो स्वामी जी अपने भाई गूजरमल से कहते, जप या पाठकर्ता ब्राह्मणों को कम से कम दो छटांक मक्खन अवश्य देना। इससे कम देने पर निश्चय ही तू नरक में जाएगा। इससे अधिक जितना चाहो दे सकते हो। वे आश्रम में भण्डारी थे। लोग इन्हें 'ताया गुज्जर मल' कहते थे। कथा आरम्भ हुई। पं० श्रीराम जी चूर्णिका के आधार पर सरल रोचक व्याख्या करते थे। जिस दिन दशम स्कन्ध आरम्भ होना था, उससे एक दिन पहले शास्त्री जी ने कहा—कल मैं आप सब को श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन तथा वंशी सुनवाऊँगा। उस दिन भीड़ का कोई ठिकाना नहीं रहा। जैसी वस्तु वैसे ही लुटाई जाती। दूसरे दिन फिर आती थी।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे पंचदशोऽध्यायः॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

विविध घटनाएं

स्वामी जी के गुरु के ब्रह्मीभूत होने के बाद शान्ति आश्रम में जाने से पूर्व कुछ काल आप बहिराम में रहे। वहां एक ब्राह्मण के घर सेवक सीदा दे जाते थे। वहीं भिक्षा बनती थी। वह कृपण था। भक्तों का सामान समाप्त हो गया। उसने कहा जब सामग्री आवेगी, तब भिक्षा मिलेगी अन्यथा नहीं। महाराज जी भ्रमण के लिए निकले। रास्ते में चाँदी की एक चवन्नी पड़ी थी। पैसा छूते नहीं थे। उस पर मिट्टी डाल कर ब्राह्मण को बुला लाए। चवन्नी पाकर बड़ा खुश हुआ। भिक्षा दी।

गुरु जी परम समदृष्टि सन्त थे। एक दिन एक निर्धन ब्राह्मण ने घर में पदार्पण का निमंत्रण दिया। स्वामी जी ने समय दे दिया। उसी दिन जालन्धर के मारवाड़ी 'नगर सेठ देवी सहाय जी' ने स्वामी जी की स्तुति सुनी थी। बग्घी लेकर आ गए। ब्राह्मण भी बैलगाड़ी लाया। सेठ जी ने विशेष आग्रह किया। लोभ दिखाया। स्वामी जी ने फटकार कर बग्घी खाली वापस

कर दी। उस ब्राह्मण के घर से लौटने के बाद सेठ जी के यहां गए। यह 'सेठ श्री हुकुम चन्द जी' के बाबा थे। इनका सनातन धर्म हायर सेकेण्डरी स्कूल, क़ालेज तथा प्राइमरी पाठशाला जालन्धर में है। स्वामी जी के दर्शनार्थ सेवक तथा महिलाएं आती थीं। कोई सेवक जिज्ञासा करता, तो उत्तर दे देते। विशेष तर्क करने पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी के पास भेज देते थे। स्त्रियां प्रणाम करके बैठतीं। वंह कहते, जावो शिवालय में ब्रह्मानन्द हैं। उससे पूछो। फिर भी यदि कोई न जाती,तो घूँघट निकाल कर ध्यान जप में बैठ जाते।

उनके समय में भिक्षा, जलपान में कोई विषमता नहीं होती थी। एक दिन चाय के लिए गुड़ नहीं रहा। सेवक गांव में लेने गया। ब्रह्मानन्द जी की आज्ञा से केवल स्वामी जी के लिए देशी खाँड की चाय बनवा कर बड़े बन्ताराम ले आए। उन्होंने पूछा—बन्ताराम तुम्हारी चाय बन गई। उसने कहा—नहीं महाराज। सेवक गुड़ लेने को गांव में गया है। आने पर बनेगी। गुरु जी ने रुष्ट होकर कहा, जब सबकी चाय गुड़ की बनती है तो मेरे लिए खाँड की चाय किसकी आज्ञा से बनी। उसने कहा—छोटे स्वामी जी की आज्ञा से। उन्होंने चाय वहीं छोड़ दी। डन्डा लेकर ब्रह्मानन्द जी के पास भागे। सैंकड़ों गालियां देते हुए कहा—तू भण्डारे में ऐसी विषमता क्यों करता है। याद रख सीधा नरक में जाएगा। स्वामी ब्रह्मानन्द जी क्षत्रिय स्वभाव—रजोगुणी, होने के कारण आश्रम के चारों ओर मेंड़ बाँधने लगे। पेड़ लगाए। दूध के लिए गऊ आई। गुरु जी कहते, यदि यही आडम्बर करना था तो घर क्यों छोड़ा। पेड़ों में फल लगने पर लड़के पत्थर मारेंगे। फुलवाड़ी को पशु खा जाएंगे। रात-दिन पशु पक्षियों से तू बचायेगा। तुम्हें एक पाव दूध चाहिए। गाय रखकर रात दिन चारे पानी की चिन्ता। कहीं धूप छाया में बांधना। इसी प्रपञ्च में पड़ा रहेगा। ध्यान भजन कब करेगा। किन्तु वे अनुनय विनय करके मना लेते थे। भोले महात्मा थे, मान जाते थे।

एक दिन एक भक्त सट्टा लाटरी पूछने आया। स्वामी जी रुष्ट हुए। गालियां देने लगे। उसकी सच्ची श्रद्धा थी। गालियां गिनता रहा। नौ गालियां दीं। नौ का नम्बर लगाया। बहुत धन मिला। बाजे-गाजे के साथ मत्था टेकने आया। उसने कहा—आपका बताया हुआ नम्बर निकल आया। इन्होंने कहा कि मैंने तो नम्बर बताया नहीं। उसने उत्तर दिया, आपने नौ गालियां दीं। वही नम्बर सफल हुआ। हँसते हुए गुरु जी ने कहा कि मैं गालियां देना भी छोड़ दूंगा।

श्री स्वामी जी की दिनचर्या शिवस्वरोदय पर निर्भर थी। वे अनुकूल स्वर में जलपान भिक्षा लेते थे। स्वर देखकर लघु दीर्घशंका करते थे। स्नान भजन आदि भी इसी के अनुसार चलता। अपनी सिद्धियों पर पश्चात्ताप करते हुए कहते थे, मैंने इस में पड़कर अपने आध्यात्मिक जीवन को बर्वाद कर दिया। भक्तों की इच्छा से ग्राम में भी एक शिवालय बना। उसके नाम भी कुछ ज़मीन है। आश्रम में भी २१ किल्ले ज़मीन है। स्वामी जी के जीवन काल में ही उनके पारिवारिक भाई की बाल बिधवा पुत्रबधू दुर्गा देवी स्वामी जी के दर्शन के लिए अपनी पतीस (चचेरी सास) भागो के साथ आती थी। उन्होंने भी स्वामी जी से मन्त्र लिया था। तीन पीढ़ियों की निरन्तर सेवा की। मरने से पूर्व आश्रम के नाम ज़मीन लगा दी।

महाराज जी समय-समय पर मनोरंजन भी करते थे। एक पहेली पूछते थे। **पाँच शीयां, पाँच मीयां, पाँच शियां न मियां।** पाँच शीयां, शी अन्तवाली तिथियां, जैसे एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पंचदशी। पाँच मी अन्त वाली तिथियां जैसे पंचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी। पाँच वे तिथियां जिनमें न शी है और न मी है। जैसे एकम (प्रतिपदा), दूज, तीज, चौथ, छठ। महाराज जी की आयु ७६ से अधिक हो चुकी थी। उनका शरीर अत्यन्त कठोर था। त्वचा सटी हुई थी। प्लास से भी पकड़ में नहीं आती थी। इतनी कठोर थी कि जैसे पत्थर पर मारने से सूई टूट जाती है, ऐसे ही इनके शरीर में सुई टूट जाती थी। परन्तु वृद्धावस्था में लोहा भी हाथ से टूट जाता है। अन्तिम समय में शरीर की भी यही दशा थी।

अन्तिम समय

सन् १९३२ ई० बैशाख में दादूपुर गरोआ से लौटने के बाद स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। तेज बुखार हुआ। शरीर को हाथ नहीं लगता था। वैद्य हकीमों ने बताया कि इतना बुखार हाथी को चढ़ता है। एक-दो महीने के बाद खूनी ववासीर हो गई। निरन्तर गुदा मार्ग से खून निकलता रहा। नित्य प्रति सेवकों की भीड़ लगी रहती थी। उनके पूछने पर कि आप जैसे योगिराज को इतना दुःख मिल रहा है तो हमारी क्या गति होगी। आप उत्तर देते कि मेरा यह अन्तिम जन्म है। अतः संचित कर्मानुसार कई जन्मों में जो दुःख भोगने थे, वह इस शरीर से ही भोग रहा हूं। दूसरा कारण बताते थे कि जो भी भक्त बढ़िया खाद्य पदार्थ लाता है, उसकी यही इच्छा रहती है कि गुरु जी ही खाएं। और को कुछ न मिले। यह पाप की कमाई मेरे पेट में डालकर कष्ट देते हैं।

दिन प्रतिदिन रोग बढ़ता गया। पांच मिनट के अन्दर नीचे रखी रूई खून से लथ-पथ हो जाती थी। शरीर सूख कर कांटा हो गया था। इसके रखने में असहनीय वेदना थी। आश्विन कृष्णा चतुर्दशी को स्वामी ब्रह्मानन्द जी से कहा—देवता ! मुझे कष्ट हो रहा है। मैं आज शरीर छोड़ना चाहता हूं। उन्होंने कहा—गुरु जी ! श्राद्धों में शरीर त्यागने से भक्तों के मन में अश्रद्धा होगी। यही कहेंगे कि गुरु जी इतने समर्थ होने पर भी श्राद्धों में ब्रह्मीभूत हुए। स्वामी जी ने कहा—मुझे शरीर रखने में अपार कष्ट हो रहा है। यदि तुम लोगों की यही इच्छा है तो मैं योगबल से समाधि द्वारा चार दिन प्राणों को रोके रहूंगा। चौथे नवरात्र में भाई जवाहर दास ने शरीर त्यागा था। देवी के मंगलमय नवरात्रे हैं, इसी दिन देह त्यागूंगा। वे मृत्यु को वश में किये हुए थे। २०-२० भस्त्रिका करके केवली कुम्भक के अनन्तर शरीर में स्थित सभी प्राणों को खींच कर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर चार दिन रोका। चौथे दिन तीसरे पहर तीनों शरीरों को त्याग कर परमपद प्राप्त किया। दिन सोमवार आश्विन शुक्ल चतुर्थी सम्वत् १९८९ वि० था।

एक वर्ष सहस्त्राणि नव वर्ष शतानि च।
नैको नवति वर्षाणि भोजराज्याद्गतानि च॥
आश्विनस्य सिते पक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रवासरे।
जीनन्मुक्त महायोगी कैवल्यमोक्षमवाप्नुयात्॥

दोहा— सम्वत् उन्नीस सौ असी, चन्द्रवार अरु नन्द।
आश्विन शुक्ला चतुर्थी, पायो परमानन्द॥

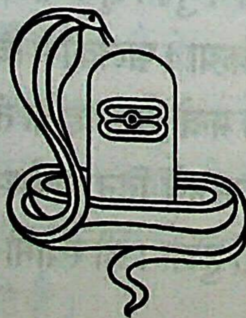
गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर पं० श्रीराम जी शास्त्री, पं० मेला राम, पं० मूल चन्द शास्त्री, पं० किशन चन्द आदि विद्वानों ने पुरुष सूक्त से पंच गव्य आदि द्वारा स्नान करवाया। वस्त्र पहनाये। ३२ उपचारों से पूजन किया। पालकी में बिठाकर आश्रम के चारों ओर परिक्रमा करवायी। बाजे-गाजों के साथ वैदिक मन्त्रों से दण्ड के तीन भाग करके कमर में बांधा। जल से परिपूर्ण कमण्डल आगे रखा। ग्यारहवें दिन पार्वणश्राद्ध हवन आदि हुआ। उसी दिन यतियों, ब्राह्मणों की भिक्षा तथा भण्डारा हुआ। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी को इस पद पर आसीन किया।

अद्‌भुत चमत्कार

एक वर्ष पश्चात् समाधि बननी आरम्भ हुई । कुछ महीनों में तैयार हुई । दरवाजे के दोनों ओर दाहिने बायें क्रम से भैरव तथा हनुमान जी की मूर्तियां बनीं । द्वार के ऊपर शिलालेख अंकित हुआ । जिसमें पहले काशी वाले परमेष्ठी गुरु अ० श्री रामेश्वराश्रम जी महाराज का, फिर परम गुरु अ० श्री स्वामी वेणी माधव आश्रम जी का, बाद में स्वामी जी का नाम लिखकर उनका ब्रह्मीभूत सम्वत् एवं सबसे ऊपर शान्ति आश्रम में विराजने की तिथी लिखी है । अन्त में श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी का नाम लिखा है । समाधि बनने के डेढ़ वर्ष पश्चात् एक घटना घटी । सायं काल को समाधि के आगे आश्रम के भक्त, साधु-सन्त श्री गुरुदेव जी की, जयजगदीश, जय शिव ओंकारा की आरती हो रही थी । उस समय आश्रम के सब लोगों ने समीपस्थ तथा ग्राम वासियों ने देखा कि समाधि पर स्थापित नर्मदेश्वर से एक दिव्य नीले रंग का सफेदी लिए हुए तेज प्रकाश निकला । वह नर्मदेश्वर की चार परिक्रमा करके आकाश में स्थित हुआ । वह अमावस्या की रात्रि श्रावण की घटाओं से परिपूर्ण थी । सबके देखते-देखते आकाश में विलीन हो गया । उस समय के प्रत्यक्ष दर्शियों मे वैद्य पं० मूल राज, स्वामी ब्रह्मानन्द जी थे । इस विषय में अनेक योगियों, सिद्ध महात्माओं से पूछा । परन्तु सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला ।

दोनों गुरुओं का चरित्र श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी, स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी, पं० मूलराज जी तथा उनके समकालीन सन्तों तथा गृहस्थों से जैसा सुना, वैसा लिखा । यह दोनों जीवन्मुक्त यति पंजाब में राम-कृष्ण के समान पूजनीय, बन्दनीय, अर्चनीय हैं । दोनों के पादपद्मों में प्रणाम करते हुए लेख को पूर्ण करता हूं ।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे षोडशोऽध्याय ॥१६ ॥



अथ सप्तदशोऽध्याय:

पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान् तथा स्वामी जी के तीनों प्रकार के शिष्य

१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी वासुदेवाश्रम जी महाराज ९३४
२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी शुकदेवाश्रम जी महाराज ९३५
३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी श्री रामाश्रम जी महाराज ९३६
४. परमहंस स्वामी नारायण गिरि जी महाराज सूस ९३७
५. ब्रह्मचारी अच्युत स्वरूप जी महाराज नन्दा चौर ९३८
६. पं० जनार्दन जी महाराज जालन्धर ९३९
७. पं० हरदत्त आचार्य जी महाराज अमृतसर ९४०
८. पं० हेमराज नैयायिक जी महाराज अमृतसर ९४१
९. पं० रामदत्त आचार्य जी महाराज पांछटा ९४२
१०. पं० श्रीराम शास्त्री जी महाराज जालन्धर ९४३
११. पं० श्रावणदत्त नैयायिक जी महाराज जालन्धर ९४४
१२. पं० मूलचन्द शास्त्री जी महाराज जालन्धर ९४५
१३. पं० विष्णुदत्त आचार्य जी महाराज लड़ोई ९४६
१४. पं० रामरक्खा जी महाराज लड़ोई ९४७
१५. पं० ठाकुर दत्त जी महाराज लड़ोवा ९४८
१६. पं० किशनचन्द जी महाराज झांमा ९४९

अनन्त श्री ब्रह्मचारी चेतन स्वरूप जी (ब्रह्म जी) ९५०

ब्रह्मचारी जी का जन्म लड़ोई में भरद्वाज गोत्र में हुआ था। आपका जन्म का नाम पण्डित श्री रलाराम था। आप बाल्यावस्था में ही सुशील, शान्त, साधुसेवी थे. उपनयन के अनन्तर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करने के लिये काशी पहुंचे। वहां पर जालन्धर वाले मेरे गुरुदेव श्री दण्डी स्वामी महादेवाश्रम जी से टेढ़ीनीम में व्याकरण, दर्शन तथा वेदान्त का अध्ययन किया। लौटकर घर में आये। माता-पिता की विवाह करने की इच्छा हुई। यह नहीं माने।

पिता जी ने बिना इनको बताये सम्बन्ध निश्चित कर लिया। विवाह का समय आने पर भी स्वीकार नहीं किया। कालान्तर में जब विवाह मण्डप में बैठे थे, उसी समय लघुशंका के बहाने भाग गये। कई वर्ष लापता रहे। बाद में शान्ति आश्रम में आकर बड़े महाराज जी से महावाक्य लेकर सत्संग तथा सेवा की। फिर ऋषीकेश मुनि की रेती कैलाश आश्रम के पास शान्ति भवन में रहने लगे। वहां विद्यार्थियों को साहित्य, व्याकरण, वेदान्त, न्याय आदि पढ़ाते थे। वहां के विद्वानों ने इन्हें 'ब्रह्म जी' की उपाधि दी थी, जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। संन्यास नहीं लिया। वृद्धावस्था में परिवर्तन ब्रह्मचारी (परिवर्तन स्वामी) क्रान्तिकारी महात्मा भिक्षादि की सेवा करते थे। इनसे नडाला वाले पण्डित खुशीराम जी ने महावाक्य लिया था। इनका नाम ब्रह्मचारी आनन्द स्वरूप रखा। बड़े विकट महात्मा थे। जिला जालन्धर काला बकरा के पास कराड़ी ग्राम के एक नवयुवक छीम्बा जाति के कर्म सिंह जी ने भी इनसे मंत्र लिया था। ऋषीकेश के विद्वानों में किसी भी शास्त्र की कोई भी शंका होती, तो समाधान के लिये इनके पास आते थे।

एक बार हृषीकेश में गीता प्रेस के स्वामी गर्मियों में गीता भवन स्वर्गाश्रम में ठहरे थे। वे प्रतिवर्ष सत्संग के लिये इसी ऋतु में दो-तीन महीने के लिये आते थे। सत्संग में सेठ जयदयालगोयन्दका जी ने भक्तों से पूछा, जिसको किसी भी ग्रन्थ में जो शंका हो, पूछ सकता है। उन दिनों भवन नहीं बना था। सायं काल के समय श्रोता वक्ता गंगा जी की रेती में बैठते थे। वक्ता के लिये ऊंची बालू में स्थान होता था। इसमें अनेक मनीषी ब्रह्मचारी, संन्यासी, गृहस्थ तथा अनेक सम्प्रदायों के श्रोता थे।

एक जिज्ञासु ने पूछा—सेठ जी, गीता के ८वें अध्याय में भगवान् ने कहा है कि जो योगी ब्रह्म चिन्तन करते हुये योग के माध्यम से परम गति प्राप्त करता है।

अभ्यास योगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥८॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मेरद्यः।
सर्वस्यधातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥९॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन, भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्, स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति, विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्ध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

गीतोक्त उपर्युक्त श्लोकों का शब्दार्थ लिखने के बाद इसका समधान श्री ब्रह्मचारी जी तथा सेठ जी ने जो किया। वह लिखा जाएगा।

शब्दार्थ—हे पृथापुत्र अर्जुन ! अभ्यास योग से युक्त चित्त वाला, योगी, अन्यत्र न जाने देने वाले चित्त से चिन्तन करते हुये, दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है। परम पुरुष का लक्षण करते हैं—त्रिकालज्ञ, अनादि, सबका शासक, अणु से अणु, सब को धारण करने वाला, अचिन्त्य स्वरूप, अज्ञान रूपी अन्धकार से रहित, स्वयं प्रकाश, परम पुरुष का शरीर त्यागते समय निश्चल मन से भक्ति और योग बल से दोनों भृकुटियों के बीच में अच्छी प्रकार से प्राणों को स्थापित करने वाला योगी उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है। वेद वेत्ता पुरुष जिसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं। मुक्ति के लिये यत्न करने वाले वीतराग यति जिसमें प्रवेश करते हैं। जिसकी प्राप्ति की इच्छा वाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उस पद को मैं संक्षेप से कहूंगा। सभी द्वारों को भली प्रकार से रोक कर अर्थात् ऊपर के प्रसिद्ध सात द्वार तथा नीचे के दो द्वारों को रोक कर अथवा सभी द्वारों में योग शास्त्र में वर्णित धारणा, ध्यान रूपी संयम करके मन को हृदय में रोक कर योग धारणा में स्थित मूर्ध्ना में प्राणों को स्थापित करके, ॐ इस एकाक्षर नाम वाले ब्रह्म का स्पष्ट उच्चारण तथा मेरा स्मरण करते हुये जो यति शरीर त्यागता है। वह परमगति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार जब श्री सेठ जी ने व्याख्या की। तो उस भक्त ने पूछा—जब प्राण भृकुटी के बीच में स्थित हो जाएंगे। चित्त का भी निरोध हो जाएगा। वाणी मन में लीन हो जाएगी। तब वाणी बन्द हो जाएगी। मन चित्त की वृत्ति भी रुक जाएगी। तब वाणी से उच्च स्वर में ॐ का उच्चारण कैसे होगा? जब प्राण भी मूर्धा में रुक जाएंगे। तब बुद्धि सहित मन भी निश्चल हो जाएगा। वाणी, प्राण, मन तथा बुद्धि चारों के रुक जाने पर यति ॐ का उच्चारण करते हुये

शरीर कैसे छोड़ सकता है। 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' यह मंत्र पाठ भेद से कठोपनिषद् में भी आया है। आप इसका समाधान करें।

इन प्रश्नों को सुनते ही सम्पूर्ण श्रोताओं में सन्नाटा छा गया। सेठ जी के शरीर से पसीना छूटने लगा। उन्होंने कहा, यहां **'व्याहरन्'** शब्द का अर्थ मन से उच्चारण करते हुये हो सकता है।

तब ब्रह्मचारी जी ने कहा—जब भगवान् ने स्पष्ट कह दिया कि **मनसाचलेन** तो मन से भी उच्चारण नहीं हो सकता। जब मन चलायमान होगा, तभी चिन्तन होगा। अचल मन से भगवान का चिन्तन नहीं हो सकता। तब भगवान् ने ॐ कार का स्पष्ट उच्चारण करते हुये कैसे कहा। ब्रह्मचारी जी की बात सुनकर सेठ जी निरुत्तर हो गये। विनीत भाव से बोले। "मुझ में तो साधारण गृहस्थों की जिज्ञासा का समाधान करने की सामर्थ्य है। प्रस्थानत्रयी के गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र में तो आप जैसे अनुभव सम्पन्न योगीन्द्र मुनीन्द्रों की ही गति है। हम तो व्यापार करने वाले बनियां व्यापार में ही दक्ष हैं। ब्रह्म विद्या में हमारा अधिकार कहां।

तब ब्रह्मचारी जी ने कहा—योग तथा वेदान्त के ग्रन्थों में हठ योग, लय योग, मन्त्र योग, सहजयोग, ज्ञान योग आदि पाये जाते हैं। मन को वश में करने के योगवशिष्ठ में, हठ योग तथा ज्ञान योग दो योग बताये गये हैं।

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय योगो ज्ञानञ्च राघव।
योगो वृत्तिनिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्॥
वृत्ति हीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञे परमात्मनि।
एकीकृत्य विमुच्यन्ते योगोऽयं मुख्य उच्यते॥

हे राघव ! चित्त की चंचलता का नाश करने के दो उपाय हैं। पहला योग तथा दूसरा ज्ञान। चित्त वृत्ति के रोकने का नाम योग है और सर्वत्र ब्रह्म दर्शन ज्ञान है। जीवात्मा और परमात्मा में मन को चंचलता रहित करके एकीकरण को मुख्य योग कहते हैं। तत्त्व सारायणम, जीवन्मुक्ति विवेकः, संन्यास गीता आदि ग्रन्थों में तीन प्रकार के योगी कहे हैं। जिनमें दो प्रकार के योगी प्रसिद्ध हैं। तीसरे प्रकार के नहीं। १. जीवन्मुक्त, २. विदेहमुक्त, ३. महाविदेह मुक्त।

१. जीवन्मुक्त—जो ज्ञान योगी जीवन काल में शरीर में रहते हुये भी तीनों शरीरों के त्याग के अनन्तर विदेह मुक्ति में जो आनन्द मिलता है। वह जिसको जीवन में प्राप्त हो उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

२. विदेहमुक्त—यह दो प्रकार के हैं। इनमें पहले विदेह मुक्तों को तीनों शरीरों के त्याग के अनन्तर कैवल्य मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार के विदेहमुक्त जिनको तीनों शरीरों के रहते हुये भी तीनों शरीरों तथा अवस्थाओं का भान नहीं होता, पूर्ण परमानन्द प्राप्त होता है। वे दूसरे प्रकार के विदेहमुक्त हैं।

३. महाविदेह मुक्त—जो तीनों प्रकार के ज्ञान योगियों से विलक्षण हैं। इस अवस्था के प्राप्त होने पर प्राण, मन, वाणी तथा बुद्धि इन चारों के पूर्ण रूपेण निरुद्ध होने पर भी ईश्वर से तथा प्रारब्ध रूपी वायु से प्रेरित होकर उस स्थिति में उनके द्वारा ॐ कार का स्पष्ट उच्चारण होता है। जैसे गाढ़ निद्रा में सोया व्यक्ति मच्छर आदि काटने पर खुजलाता है। काटने का भान न होने पर भी खुजलाता है। अथवा जैसे मदिरा मदान्ध व्यक्ति नाली आदि में गिर जाने पर भी उसे शरीर वस्त्र आदि का भान नहीं रहता, किन्तु बड़बड़ाता है। वैसे ही ऐसी स्थिति में ॐ कार का स्पष्ट उच्चारण होता है। यदि मन से उच्चारण यह अर्थ किया जाए, तो यह आचार्य शंकर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभाचार्य तथा इनके भाष्यों के टीकाकार आनन्द गिरि, नील कण्ठ, मधुसूदन स्वामी, श्रीधर स्वामी, स्वामी शंकरानन्द जी, हनुमान, रामानन्दाचार्य, जयतीर्थ, श्रीनिवास तीर्थ, श्री कृष्णाचार्य जी आदि भाष्यों के टीकाकारों में से किसी ने भी मन से उच्चारण करते हुये अर्थ नहीं किया है। सभी ने स्पष्ट उच्चारण करते हुये व्याख्या की है। इसका विशद वर्णन "मधुसूदनी गूढार्थ दीपिका" के तीसरे अध्याय के १७-१८ वें तथा तेरहवें अध्याय के ज्ञानी के लक्षण प्रकरण में ७वें से ११वें श्लोक तक देखें।

ब्रह्म जी की इस व्याख्या से सभी विद्वान् सन्तुष्ट हुये। आप शान्ति भवन में बहुत काल तक रहे। ३० वर्ष पूर्व ऋषिकेश में शरीर त्यागा। उच्चतम कोटि के विद्वान् होने पर भी उनमें अभिमान छू तक नहीं गया था। सादा जीवन, सादा भोजन तथा वस्त्र थे। सरलता कूट-कूट कर भरी थी।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

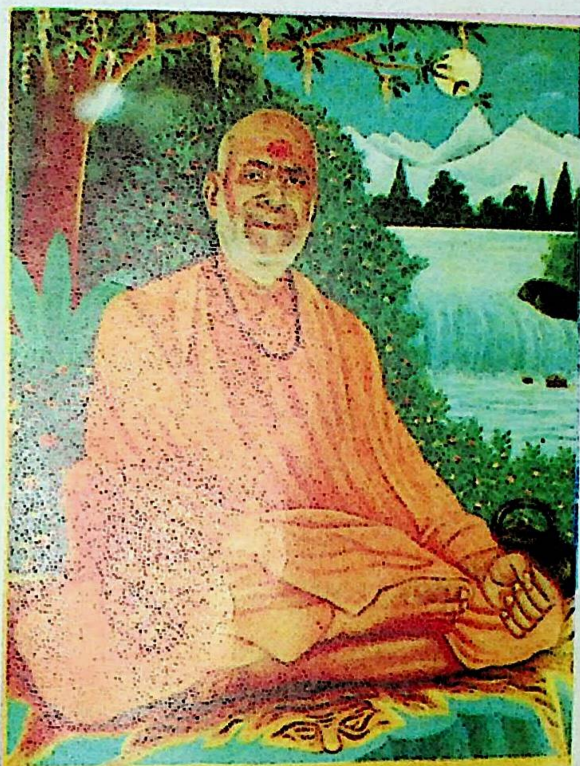
अथ अष्टादशोऽध्यायः

अ० श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी का जन्म सूस ग्राम में लाला श्याम दास जी के घर में श्री गुरु नानक देव जी के वंश में वेदी क्षत्रिय परिवार में सम्वत् १९३९ विक्रमी में मकर संक्रान्ति के दिन हुआ। आप चार भाई थे। १. श्री लाला रला राम, २. श्री आत्मा राम, ३. श्री हरी राम, ४. श्री मिल्खी राम। आप चौथे भाई थे। इनके एक चचेरे अनुज लाला साधूराम थे। इनमें भक्ति के संस्कार पूर्व जन्म के तथा इस जन्म में फम्बियां वाले स्वामी जी एवं भाई जवाहर दास को देखकर जागृत हुये। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम दादूपुर गरोआ में हुई थी। उसमें छठी तक उर्दू पढ़ा था। इनके सहपाठी मेरे बड़े ताऊ पंडित हंसराज जी, लाला दुर्गादास जी, ग्राम पज्जोदित्ता के पंडित राम लाल तथा सालिग राम जी थे। शिक्षा के पश्चात् कुछ दिनों तक खेतीबाड़ी का काम देखते रहे। जहां भी सत्संग या सन्त हों, अपनी माता के साथ जाते थे। माता के साथ सन्त जवाहर दास जी की बहुत सेवा की। उनसे भक्त फरीद, साईं चंग शाह, गोपीचन्द भरथरी हरि की वैराग्य वर्द्धक कथायें सुनी थीं। कुछ हिन्दी का भी अभ्यास करने लगे थे। भाषा में रामायण भागवत पढ़ते थे। अध्ययन काल में ही कई बार भाग कर होशियारपुर लाहौर चले गये। रलाराम जी ढूंढकर लाते थे। सांसारिक कार्यों में रुचि नहीं थी। १० वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो गयी। इनके जन्म से पहले पिता को बड़ी भारी जागीर मिली थी। इसलिये उन्होंने इनका नाम मिल्खी राम रखा। कई बार परम गुरु फम्बियां बालों का दर्शन तथा सत्संग किया। अनेक बार लड़ोई वालों का दर्शन तथा सत्संग किया। माता के जीवन में ही भाई जी ने इन्हें स्वामी जी को सौंप दिया था। तब से कई दिन आश्रम में रहकर गुरु सेवा करते थे। माता की विशेष ममता थी। वह विवाह बन्धन में बांधना चाहती थी। जब-जब प्रस्ताव आता भाग जाते थे। निराश होकर सबने विवाह का हठ छोड़ दिया। बड़े स्वामी जी की समाधि पूर्ण होने के बाद जब सेवक उन्हें शान्ति आश्रम में ले आये, तो पूर्ण रूप से गुरु सेवा करने लगे।

दिनचर्या

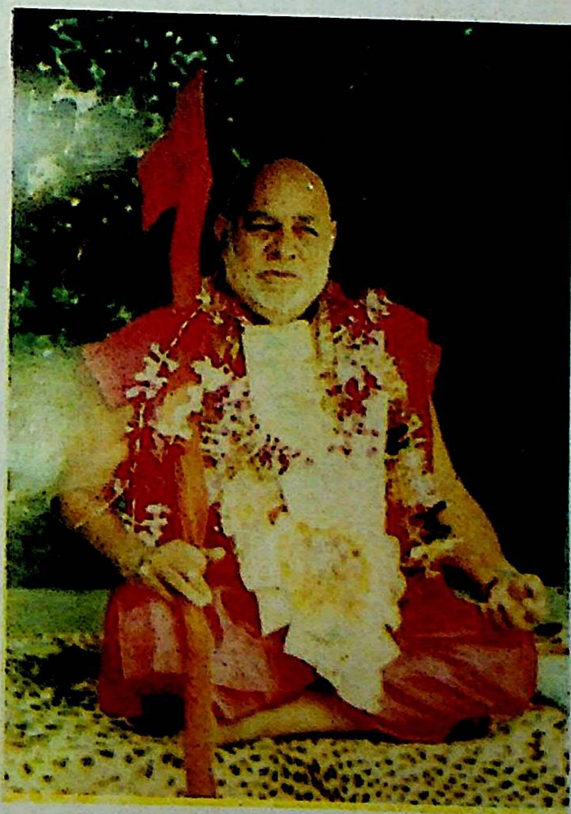
ब्रह्मचारी मिल्खी राम प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठते थे। गुरु वन्दना, आश्रम की सफाई आदि से निवृत्त होकर स्नान, सन्ध्या, पूजन, गुरु जी को स्नान कराना आदि कार्य थे। फिर गुरु चरणों



श्रीमत्परम हंस परिव्राजक- आचार्य ब्रह्मलीन महन्त श्री १०८
स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज- शान्ति आश्रम लडोई (भोगपुर)







श्रीमद् दण्डी स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज,



में बैठकर गीता, उपनिषद्, रामायण, विचार चन्द्रोदय का अध्ययन करते थे। गुरु आज्ञा प्राप्त कर झोली तथा पात्र लेकर गुरु जी के लिये, अपने तथा अभ्यागतों के लिये गांव में भिक्षा लेने जाते थे। मातायें उनके सुन्दर रूप, स्वभाव तथा मीठी वाणी से प्रसन्न होकर रोटी, दाल, चावल, सब्जी, मक्खन आदि देती थीं। भिक्षा लाकर गुरु जी को समर्पित करते थे। संस्कृत पढ़ने की इच्छा हुई। उस समय ग्राम में पण्डित विष्णु दत्त जी व्याकरण ज्योतिष आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने भी स्वामी जी से दीक्षा ली थी। परिवार में ही थे। परन्तु उनकी दिनचर्या शास्त्र विरुद्ध थी। वे दिन के १०, ११ बजे शौच स्नान आदि करते थे। ज्योतिष आदि का कार्य करते थे। चार पांच बजे शाम को स्नान करके सन्ध्या करते। रात के ७-८ बजे से लेकर रात्रि के ३-४ बजे तक पूजन होता था। इसके बाद भौजाई ताज़ा भोजन करवाती थीं। फिर ४ बजे प्रातः से ८ बजे दिन तक सोते थे। गुरु जी ने पूछा—उल्टा क्यों करते हो? उन्होंने कहा—कि मेरा मत है। गुरु जी ने शाप दिया—तू जन्म भर उल्लू ही बना रहेगा। ब्रह्मचारी उन्हीं से व्याकरण पढ़ने लगे। परन्तु अइ उण आदि सूत्रों से आगे नहीं चल पाये। अति रूक्ष विषय जान कर छोड़ दिया। वह बालक गुरु कृपा से संस्कृत में गीता, दुर्गा सप्तशती, विष्णु सहस्रनाम तथा उपनिषद का पाठ करने लगा। थोड़े ही दिनों में कण्ठस्थ कर लिया। फिर पंचदशी, आत्म पंचक, निर्वाण दशक, विवेक चूड़ामणि आदि प्रकरण ग्रन्थों का अभ्यास किया। भाषा के ग्रन्थ में विचार माला, सारुक्तावली (सभाजित) विचार सागर, वृत्ति प्रभाकर, गर्ग संहिता, पद्म पुराण, शिव पुराण, वाल्मीकीय रामायण आदि का अध्ययन किया। एक दो बार देखने में कण्ठस्थ हो जाता था। वर्षों इनका प्रवचन सुनने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं आता था।

जब किसी ग्रन्थ की कथा कहते, तो वेदान्त की रहस्य पूर्ण बातों को सुनकर गुरु जी को आश्चर्य होता था। बीच में पूछते थे, यह सब कहां से पढ़कर आये हो। ऐसा रहस्य तो काशी में पढ़े महात्मा बताते हैं। इनकी गुरु जी में पूर्ण निष्ठा थी। प्रणाम करके कहते—यह सब श्री चरणों की कृपा, सेवा तथा आशीर्वाद का फल है। यदि कोई ब्राह्मण शिष्य बनने आता, तो कहते कि तुम तो मेरे गुरु हो। उसके बहुत हठ करने पर स्वामी जी की समाधि में या उनके चित्र के सामने मंत्र देते थे।

तीर्थ की खुदाई

आश्रम में पशुओं के पानी पीने के लिये कोई जलाशय नहीं था। सेवकों की इच्छा विशेष देखकर तालाब की खोदाई होने लगी। इससे पहले स्वामी जी ने ब्रह्मचारी को संन्यास देकर

स्वामी ब्रह्मानन्द नाम रख दिया था। वे स्वयं तालाब की मिट्टी निकाल कर बाहर डालते थे। गुरु जी के समय में कच्चा था। उनके ब्रह्मीभूत होने के बाद एक लाख ईंटों की चारों ओर सीढ़ियां बनी। पक्का हुआ। वरुण, वास्तु पूजन, सरोवर प्रतिष्ठा विधिपूर्वक करके अनेक तीर्थों का जल लाकर छोड़ा गया।

गुरु गद्दी पर

गुरु जी के ब्रह्मीभूत होने के अनन्तर गद्दी के लिये बड़ा विवाद छिड़ा। स्वामी जी के समय में ही रामगिरि ने कई उपद्रव किये थे। बाद में उसने उग्ररूप धारण किया। ब्रह्मानन्द जी शक्ति के उपासक थे। अनुष्ठान किया, विजय प्राप्त हुई। इनके घर छोड़ने के बाद भाइयों तथा भतीजों में अति निर्धनता आई। आपने स्थान से किसी प्रकार की सहायता करना तो दूर छाया तक नहीं आने दी। यदि घर का कोई गर्मी में भूखा प्यासा आ जाता, आश्रम वाले लोग जल या भोजन देते, तो उन पर बिगड़ जाते, कहते तुमने ऐसा क्यों किया। इस आदर्श से जो ब्रह्मचारी या संन्यासी होकर रुपया या वस्त्र आदि घर में देते हैं। आश्रम में उनको गद्दी पर बिठाते हैं। उनको शिक्षा लेनी चाहिये। आश्रम के सेवक छिपाकर उन्हें भोजन आदि देते थे। यदि कोई पूछता, इन बेचारों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, थोडी देर विश्राम करके चले जाएंगे। जैसे और सेवक हैं वैसे इन्हें भी समझो। तो उत्तर देते थे—अधिक सत्कार करने से मोह ममता जागृत होंगी। इनका सुख-दुःख सुनना पड़ेगा। संसर्ग दोष से ध्यान साधन में मन नहीं लगेगा। इससे संन्यासी का पतन हो जाता है। लोग यही कहेंगे, यह कुछ लेने आते हैं। स्वामी जी अवश्य कुछ देते होंगे। वे केवल सबसे बड़ी भौजाई को मातृवत् मानते थे। उनसे ही बात करते थे, और किसी से नहीं। कालान्तर में माता दुर्गा देवी प्रातः भिक्षा बनाकर शाम को चली जाती थीं। उनकी सेवा २७ वर्ष तक निरन्तर चली।

एक दिन इनके पास लोहे की पिंडोरी का धनी ब्राह्मण बालक मंत्र दीक्षा के लिये आया। विवाहित नहीं था। उसका नाम पण्डित जगन्नाथ था। लड़-झगड़ कर आया था। कुछ समय पूर्व मेरे गांव के लाला भगत राम के घर में रहा था। उनका धर्म पुत्र बन गया था। यूनानी हिकमत जानता था। उनके साथ लाला जी भी थे। वह हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू जानते थे। बी०ए० पास था। इनमें तम्बाकू पीने की आदत थी। इनकी बातें सुनकर ब्रह्मानन्द जी ने कहा—तुम

चार बातें मान लो, मैं दीक्षा दे दूंगा । १. गृहस्थ के यहां रहना छोड़ दो, २. तम्बाकू त्यागो, ३. काशी में जाकर वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करो, ४. स्त्रियों के बीच में न रहो, न बात चीत ही करो । ब्रह्मचारी ने चारों शर्तें स्वीकार कर लीं । इन्होंने भगवा देकर मन्त्र दिया । वे कुछ समय आश्रम में रहे । फिर भ्रमण के लिये निकल गये । किसी आज्ञा का पालन नहीं किया । इन्हीं वस्त्रों में लाला के यहां रहे । गुरु के पास जाना छोड़ दिया । इनका नाम ब्र० आनन्द स्वरूप था ।

सन् १९४८ ई० ३० जनवरी को जब महात्मा गांधी की मृत्यु हुई । उस समय उन्होंने ग्राम के स्कूल में शोक सभा में भाषण दिया । उस समय उनकी ४५ वर्ष की आयु थी । काम वासना ने आक्रमण किया । पथ भ्रष्ट हो गये । हरिद्वार रहने लगे । पूरा पंजाब छोड़ दिया ।

गुरु जी के बाद ब्रह्मानन्द जी ने आश्रम की बड़ी उन्नति की । सन् १९४१, ४२ में लाला भक्तराम के यहां गरोआ में रामायण का नवाह किया । वहीं पर सर्वप्रथम मैंने दर्शन किये । पंडित किशन चन्द जी हारमोनियम पर रामायण गाते थे । स्वामी जी व्याख्या करते थे ।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

उपदेश

सन् १९५७ कुम्भ की संक्रान्ति में मैं ग्राम से लड़ोई पहुंचा । बहुत भीड़ थी । सत्संग चल रहा था । समय प्राप्त कर ईशावास्योपनिषद् के तीसरे मंत्र का भाव जानना चाहा । **असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।** आत्म हत्यारे मनुष्य अर्थात् शरीर में आत्म बुद्धि करने वाले अथवा शरीर आत्मा को एक समझने वाले असुर्या नामक नरक में जाते हैं । जो अज्ञान रूपी अन्धकार से आवृत है । ऐसे नरक को प्राप्त करते हैं । इसके अतिरिक्त अविद्या की उपासना करने वाले अन्ध तामिस्त्र को प्राप्त करते हैं और विद्या की उपासना करने वाले उससे भी अधिक अन्धकार को प्राप्त होते हैं । सम्भूति तथा असम्भूति के विषय में अनेक प्रश्न किये थे । इन तीन मंत्रों की व्याख्या आपने तीन घण्टों में की थी । बीच में अनेक प्रश्न भी पूछे थे । उनका सन्तोषजनक समाधान किया था ।

स्पष्टीकरण—जो अविद्या (सकाम कर्मकाण्ड) में जीवन पर्यन्त लगे रहते हैं। वे शरीर की अहंता ममतामूलक अज्ञान रूपी अन्धकार को प्राप्त करते हैं। अर्थात् पुण्य क्षीण होने पर ८६ लाख योनियों को प्राप्त करते हैं। जो विद्या (सकाम उपासना) में ही जन्म बिताते हैं। वे उनसे भी अधिक अज्ञान को प्राप्त करते हैं। अथवा जो वाचिक ज्ञान में लगे हैं। लक्ष्यार्थ को नहीं जानते। वे जन्म-मरण को प्राप्त करते हैं। सम्भूति एवं असम्भूति का भी यही भाव है। **सम्भूति**—जीवों के जन्म-मरण की कारणभूता हिरण्यगर्भ = समष्टि सूक्ष्म शरीर के अभिमानी की जो उपासना करते हैं, वे जन्म-मरण को प्राप्त करते हैं। इनसे भी अधिक अन्धकार को प्राप्त करते हैं, जो अव्याकृत **असम्भूति** अनादि अविद्या समष्टि कारण शरीर के अभिमानी की उपासना करते हैं।

उनकी हार्दिक इच्छा थी, कि मैं आश्रम में रहकर वेद वेदान्त की कथा सुनाऊं। कहते थे—आश्रम में मेरी भाषा को कोई नहीं समझता इसलिये मैं तुलसी रामायण सुनाता हूं। उन्होंने बताया—तुम्हारे पितामह ने गुरु जी की विशेष सेवा पूजा करके तुम को प्राप्त किया था। उन दिनों पिता जी दो साल से पक्षाघात के रोग से पीड़ित थे। भोजन, लघु शंका या दीर्घ शंका के लिये भी पकड़ कर बिठाना पड़ता था। करवट तक अपने हाथ नहीं ले पाते थे। इसलिये मैं आश्रम में रहने में विवश था। एक दिन गर्भोपनिषद् की जबानी व्याख्या करते हुये कहा, स्वर्गीय या नारकीय जीव जब मनुष्य शरीर में आता है, तो पिता के द्वारा अन्न आदि के रूप में पेट में जाकर चार दिन तक पेट की अग्नि में पक कर उसका रस बनता है। फिर चार दिन में रक्त, मांस, हड्डी, मेद, मज्जा तथा शुक्र के रूप में क्रमशः चार-चार दिन के अन्तर से परिणत होता है। अर्थात् आज का खाया अन्न २८ दिन में वीर्य रूप में परिणत होता है।

सन् १९५८ वैशाख कृष्ण षष्ठी को पिता जी का देहान्त हुआ। उनकी १६ दिन में होने वाली क्रियायें सम्पादित करके कर्क की संक्रान्ति के दिन यह शरीर शान्ति आश्रम में आ गया। स्वामी जी प्रसन्न हुये। प्रातः काल अध्यात्म रामायण, सायं काल विष्णु पुराण की कथा मुझ से सुनकर व्याख्या करते थे।

बड़ा शिव मन्दिर तथा गांव का मन्दिर बड़े स्वामी जी के समय में बन गया था। एक दिन किसी ग्राम की कुछ मातायें एक शिवलिंग कालेश्वर महादेव को लेकर गाती बजाती हुईं आश्रम में पहुंचीं। यह लिंग किसी वन में था। विधिवत् पूजा न होने के कारण बीच में दरार

आ गई थी। यहां स्थापना से पूर्व शास्त्रानुसार पूजन करके पंचामृत में रखा। वह पूर्ववत् हो गया। चौथा शिवलिंग केदारेश्वर महादेव भूरे रंग का है। यह पीपल के नीचे स्थापित था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी के बाद वह पीपल सूख गया। तब तालाब के पास वाले मन्दिर में स्थापित हुये।

उत्तराधिकारी—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी को उत्तराधिकारी की चिन्ता हुई। इनके पास सगरांवाली वाले पण्डित मूलराज जी के अग्रज के पौत्र पण्डित रामरतन जी के बड़े पुत्र पण्डित तिलक राज जी एवं इनके अनुज पण्डित पुरुषोत्तम लाल आश्रम में संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। कालान्तर में सनातन धर्म संस्कृत पाठशाला जालन्धर में पढ़े। अच्छे सरल सुयोग्य ब्राह्मण थे। स्वामी जी की दृष्टि इन पर पड़ी। जब इनकी माता को पता चला कि महात्मा मेरा बच्चा हथियाना चाहते हैं, तो कई साल तक आश्रम में आने नहीं दिया। इनके साथ ममेरे भाई पण्डित श्री कृष्ण तथा सूंस का बालक सुखदेव भी रहते थे। इसके कई वर्ष पश्चात् ग्राम मानकढेरी से गृहस्थ वैरागी का पुत्र यमुना दास आया। गीता आदि पढ़ने लगा। बड़ा सुन्दर था। बड़ा होने पर अपने घर चला गया।

उसके कई वर्ष बाद जिला गुरदास पुर ग्राम झण्डा से अमरनाथ नाम का बालक गुरु सेवा करने लगा। दो वर्ष तक सेवा की। इनकी सेवा से सन्तुष्ट होकर गुरु जी की समाधि में ले जाकर महावाक्य तथा भगवा दे दिया। इनका नाम ब्रह्मचारी नारायण स्वरूप रखा। इसके कुछ समय बाद लड़ोई ग्राम के शाही खत्री परिवार में से एक अधेड़ ब्रह्मचारी जिसने बड़े स्वामी जी से नाम लिया था। निरक्षर था। सेवा करने लगा। प्रयाग के कुम्भ में इन्हें काषाय वस्त्र देकर "त्रिवेणी स्वरूप" नाम रखा। पहला नाम कान्ह था। बड़े गुरु जी के समय पहाड़ से आकर एक बाती सुरजन सिंह ने नाम प्राप्त किया। यह भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। आश्रम में झाड़ बोहार आदि की सेवा करते थे। इनको संन्यास देकर ब्रह्मानन्द जी ने इनका नाम "शिव गिरि" रखा। एक नाथ विचरण करते हुये आश्रम में आये। अस्वस्थ हो गये। यहीं शरीर छोड़ा। स्वामी जी ने हल्टी के पास इनको समाधि दी।

अन्तिम बीमारी

सन् १९५८ ई. में श्रावण में पुरुषोत्तम मास बीत चुका था। शुद्ध श्रावणी पूर्णिमा के दिन खीर, मालपुवा आदि का भण्डारा था। स्वामी जी स्नान पूजन के अनन्तर जब गद्दी पर बैठे

तो सिर में जोर का चक्कर आया। वहीं मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। पल्टी हुई। सब लोगों ने दौड़कर उठाया। थोड़ी देर बाद होश में आये। वैद्य मूलराज का उपचार होने लगा। स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। मुकेरियां में बड़े स्वामी जी के कृपा पात्र शिष्य पण्डित अमरनाथ जी सुयोग्य वैद्य थे। साधु सेवी, परोपकारी थे। उनको सूचना दी। उन्होंने सर्वोत्तम औषधियां दीं। १५-२० दिन तक ठीक रहे। नवरात्रों में हमसे दुर्गा सप्तशती पाठ आरम्भ करवाया। गुरु जी की पुण्य तिथि आराधना धूम-धाम से मनाई गई। विजय दशमी तक पूर्ण स्वस्थ थे। एकादशी, द्वादशी के बीच में रोग उग्र हो गया। इनकी सेवा में ब्रह्मचारी नारायण स्वरूप, मा० लाल सिंह, सन्त सिंह, माता दुर्गा देवी, वेगोवाल की मलावी देवी थीं। पंजाब में "लवाना" जाति पाई जाती है। इन लोगों का कहना है कि हम लोग श्री राम के छोटे पुत्र लव की सन्तान हैं। मा० लाल सिंह अति भद्र पुरुष सेवा किये बिना एक क्षण भी नहीं रहते। आश्रम में जितना खाते थे, उससे दस गुना देते थे। इनका शान्त स्वभाव मधुरवाणी तथा तितिक्षा सैंकड़ों साधु, ब्राह्मणों को भी मात करती थी। ब्रह्मचारी ने रात-दिन जगकर अन्तिम समय तक मन इन्द्रियों को जीत कर गुरु सेवा की।

ब्र० नारायण स्वरूप जी से कई साल पहले लड़ोई के बड़े स्वामी जी के शिष्य शिव सिंह बड़े सरल, गुरु भक्त, आदर्श पुरुष थे इनके पांच पुत्रों में से चौथे का नाम "बन्ताराम" था। इनको छोटा बन्ता कहते थे। बाल्यावस्था में बड़े स्वामी जी ने इनके सिर पर हाथ फेर कर साधु होने का आशीर्वाद दिया। इन्होंने विवाह नहीं किया। घर छोड़कर आश्रम में स्वामी ब्रह्मानन्द की सेवा करने लगे। बहुत समय सेवा की, उनसे गीता, विचार चन्द्रोदय आदि भाषा के ग्रन्थ पढ़ते थे। किसी कारण विशेष से गुरु जी से रुष्ट होकर अथवा गुरु ने रुष्ट होकर आश्रम से निकाल दिया। यह तीर्थ यात्रा में चले गये। हृषीकेश में "ब्रह्मचारी चेतन स्वरूप जी" से, जालन्धर वाले दण्डी स्वामी जी महादेवाश्रम जी महाराज का परिचय प्राप्त हुआ। उन्होंने गुरु जी की प्रशंसा की। प्रभावित होकर जालन्धर आये। उन दिनों "ब्र० हरी स्वरूप जी" गुरु जी की सेवा करते थे। इन्होंने स्वामी जी को प्रणाम करके अपना परिचय दिया। महावाक्य लेकर कपूरथला में आश्रम बनाकर रहते थे। इनका नाम "विष्णु स्वरूप" था।

कार्तिक कृष्ण अष्टमी से रोग ने भयंकर रूप धारण किया। सब को निराशा हुई। रोते हुये "वैद्य अमरनाथ जी" ने भी कहा—मेरी औषधि असफल हुई। किसी और को दिखाओ। तब जालन्धर से डाक्टर को लेकर अमरनाथ जी कक्कड़ दोनों भाइयों, बहन, माता तथा मा०

केदारनाथ जी सहित आये। डाक्टर ने ब्लड टेस्ट किया, इन्जेक्शन दिया। कोई लाभ नहीं हुआ। सब को आश्रम की चिन्ता थी। सभी ने कहा—आगे गद्दी कैसे चलेगी। किसी पर हाथ रख दो। उन्होंने कहा—कोई योग्य दिखाई नहीं देता। उस समय पण्डित किशन चन्द जी भी थे। वे ब्रह्मचारी के फूफा थे। ब्रह्मचारी खड़े रो रहे थे। कई बार पूछने पर भी स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पण्डित जी ने ब्रह्मचारी को बुलाकर स्वामी जी के पास बिठा दिया। उनका हाथ पकड़ कर ब्रह्मचारी के सिर पर रख दिया। तब स्वामी जी ने कहा—यह ब्राह्मणों की गद्दी है। उन्हीं को सौंपता हूं। नारायण स्वरूप समाधि की सेवा करें। इस शरीर को कथावार्ता के लिये कहा। इनको कभी भी कदापि न छोड़ना। कान्ह ब्रह्मचारी भण्डार की सेवा, कर्मचन्द बाहर आने-जाने बाजार आदि का कार्य देखें। इन सबका नवमी की रात्रि में निश्चय हुआ था। दशमी को प्रातः सूर्योदय होने पर शरीर त्याग दिया। तुरन्त आदमी भेजकर ग्राम से पटवारी तथा कागजात लाये गये। अंगूठा लगा। सभी सेवकों को सूचना हुई। भीड़ उमड़ने लगी। जालन्धर से पण्डित श्रीराम जी शास्त्री आये। उन्होंने विधि विधान से स्नान आदि करवा कर आश्रम की परिक्रमा के अनन्तर भू समाधि दी। ग्यारहवें, १२वें दिन का कर्म शास्त्री जी द्वारा सम्पन्न हुआ। भण्डारे का दिन निश्चित हुआ। दण्डियों को सूचना हुई। नवांशहर से दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमश्रम जी कई दिन पूर्व आ गये थे। पण्डित किशन चन्द जी ने रामायण का नवाह सुनाया। नैनोबालजट्टां से दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी अस्वस्थ होने के कारण नहीं आ पाये। जालन्धर दण्डी आश्रम प्रभात नगर में गुरु जी को सूचना मिली। वे कहीं आते जाते नहीं थे। कक्कड़ों के विशेष आग्रह से ब्रह्मचारी हरि स्वरूप जी को लेकर आये। उनके आने से पूर्व नवांशहर वाले स्वामी जी ने कहा—ब्रह्मचारी को बिना संन्यास के गद्दी पर न बैठना चाहिये। आतुर संन्यास की तैयारी होने लगी। इतने में गुरु जी पहुंच गये। उनके सामने संन्यास का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा—दक्षिणायन में संन्यास वर्जित है। हृष्ट-पुष्ट युवा होने के कारण आतुर संन्यास के अधिकारी नहीं हैं। इसी रूप में बैठना चाहिये। कालान्तर में योग्यता के अनुसार संन्यास ले सकते हैं। संन्यास का प्रस्ताव रद्द हो गया। सन् १९५८ कार्तिकी पूर्णिमा विक्रमी सम्वत् २०१५ को गुरु जी ने महन्ती की चद्दर ओढ़ाई। इससे पूर्व पण्डित श्री राम शास्त्री जी ने भाषण में कहा, ब्रह्मचारी जी त्रिकाल सन्ध्या, गायत्री जप करते हुये, खान-पान पर नियन्त्रण रख कर, नित्य नैमित्तिक कर्म करें। घी, दूध, बादाम

आदि न खायें। पूर्ववर्त्ती गुरुओं का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया। पण्डित तिलक राज शास्त्री जी ने हिन्दी में स्वामी ब्रह्मानन्द जी की स्तुति में कविता सुनाई। गुरु जी ने गृहस्थों के लिये वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुये दोनों समय भगवद् भजन की आज्ञा दी। भगवान् का भोग लगायें। ब्रह्मचारी के नियम बताते हुये कहा, कि वह तेल, साबुन आदि सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग न करें। स्त्रियों से दूर रहें।

॥ इति श्री गु० वं० पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे एकोनविंशोऽध्यायः।।१९॥

अथ अथविंशत्तमोऽध्यायः

दण्डी स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज

बड़े स्वामी जी के जीवन काल में जिला गुरदास पुर झण्डा गांव से स्वामी जी की महिमा सुनकर उनके अन्तिम दिनों में दर्शनार्थ आया था। वह ब्राह्मण ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनका नाम पण्डित राजाराम था। इनके चार पुत्र दो पुत्रियां थीं। बड़ी पुत्री के बाद एक पुत्र हुआ। उसका नाम "बीर बल" रखा। वह छः साल में मृत्यु को प्राप्त हुआ। पिता बहुत दुःखी थे। रोते रहे। कालान्तर में कुछ नाथ सम्प्रदाय के महात्मा यात्रा के लिये जा रहे थे। उन्होंने आशीर्वाद दिया, तुम्हें तीन पुत्र प्राप्त होंगे। तब एक पुत्री के बाद तीन पुत्र हुये। उनके नाम क्रमशः, वीरभान, अमरनाथ तथा जगन्नाथ रखा। पण्डित जी के पिता का नाम "पण्डित रामयश" तथा पत्नी का नाम "पुन्नो देवी" था। सन् १९२८ अगहन प्रविष्टे २८ को अमरनाथ जी का जन्म हुआ। पिता ने पाठशाला भेजा। साधारण पढ़ाई की। माता की मृत्यु बचपन में हो गयी थी। पिता की मृत्यु भी शीघ्र हुई। अनाथ बालक रोता था। छोटी बहन 'मेलो' इन बच्चों को ससुराल ले आई। वहीं भरण-पोषण हुआ। माता की मृत्यु के समय जगन्नाथ एक साल का था। बड़ी बहन बुआ दित्ती ने अपने तथा बकरी के दूध से छोटे भाई का पालन किया। कुछ समय अमरनाथ वहां "लद्दा भुण्डा" ग्राम में छोटी बहन के यहां रहे। रहने के बाद पण्डित किशन चन्द जी के साथ "नंगल लवाना" में आ गये। वहां पर उनसे पढ़ते हुये गो सेवा करते थे। बाद में एक गरीबदासियों के आश्रम में रहकर उनसे लघु सिद्धान्त कौमुदी पढ़ना शुरु किया। बुद्धि कुण्ठित होने के कारण अच्संधि तक पढ़ पाये। बाद में "पण्डित किशन चन्द जी" इनको लड़ोई ले आये। स्वामी ब्रह्मानन्द से दीक्षित होकर आश्रम की सेवा

करने लगे। सन् १९५८ में गुरु जी के बाद गद्दी पर बैठे। पहले शरीर दुबला था। परन्तु दुर्गा देवी ने इन्हें घी मक्खन, बादाम खिलाया। शारीरिक परिश्रम नहीं किया। पेट फूल गया। इन्होंने आश्रम की उन्नति की। भण्डार की छत बदली तथा आस-पास के कमरों की छतें बदलीं। सभी कमरों में फर्श पक्का कराया। एक साल में गुरु जी की समाधि बनबाई। दोनों समाधियों के चारों ओर परिक्रमा में पक्का लिंटर तथा जंगला लगा। गौओं के लिये दो कमरों पर टीन तथा एक बड़ा कमरा बना। आश्रम में पहले एक हैंड पम्प था। इन्होंने चार और लगवाये। दो बार मोटर का बोर हुआ। हल्टी पर मोटर, आटा पीसने की मशीन, चारा काटने की मशीन लगी। पुराने गुरुओं की समाधि फिर से बनवाकर उन पर लिंटर डाला। भण्डार में कुवां खोदकर मोटर लगवायी। आश्रम में बिजली, पंखा, फ्रिज, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, टेलीफोन तथा मैटाडोर आया। एक कूलर, जेनरेटर सन्तों की सुविधा के लिये लगा। दो शौचालय, शंकर जी के मन्दिर के पास कथा भवन एवं शिव मन्दिर के सामने यज्ञ शाला बनवाई। तालाब की सीढ़ियां टूट गयीं थीं, फिर से पक्की करवाईं। गद्दी के समीप हवादार बरसाती बनी। पुराने बंगले में तीन चार कमरे बने। आश्रम के दोनों ओर की चार दीवारी बनी। भण्डार के ऊपर तीन कमरे और उसके आगे सीमेंट की टीन का बरामदा बना। बड़े स्वामी जी के समय का चौबारा टूट गया था। उसके नीचे के चार कमरे बेकार हो गये थे। उन्हें तोड़कर मुख्य पूर्वी द्वार के पास पक्के तीन कमरे आगे बरामदे सहित बन ही रहे थे। बीच में ही इनका शरीर छूट गया।

ब्रह्मचारी जी ने चार भागवत् सप्ताह करवाये। प्रति वर्ष बड़े तथा छोटे स्वामी जी की तिथिपर एवं गुरु पूर्णिमा पर तीन दिन की रामायण होती थी। इन्होंने सन् १९८० फाल्गुन कृष्ण पक्ष में नैनोवाल वाले बड़े स्वामी जी की तिथि पर उनके शिष्य वकील कृष्णाश्रम जी महाराज से दण्ड ग्रहण किया।

सन् १९८३ ई. में तीन स्वामियों की परम सेविका माता दुर्गा देवी का शरीर माइके पिप्पलां वाले में श्रावण कृष्णा तृतीया को छूट गया। इनसे लगभग बीस वर्ष पूर्व टांडा के पास गांव जौली से एक कुमारी कन्या कान्ता आई। आश्रम तथा आश्रम वासियों की बड़ी तत्परता से सेवा कर रही है। स्वामी नारायणाश्रम जी को जब उनके भयंकर फोड़ा हो गया था, विशेष सेवा की। स्वामी ब्रह्मानन्द जी का शरीर छूटने के बाद "दर्शन लाल" ब्राह्मण बालक "लद्दा

मुण्डा" ग्राम से आकर १३ साल तक आश्रम की सेवा करता रहा। बाद में होम गार्ड में सेवा कार्य किया। १४ वर्ष पश्चात् अब १२ वर्ष से मन्दिर तथा आश्रम की सेवा कर रहा है। इस आश्रम के गृहस्थ भक्तों में विशेष कर श्री हरीराम कोहली, पण्डित टेकचन्द, मदन लाल कोहली जमशेर, सरदारी लाल, देवराज शर्मा वेगोवाल, पण्डित अयोध्या प्रसाद जी शर्मा फम्बियां ने आश्रम की विशेष सेवा की। इनमें सर्वोपरि गरोये वाले लाला भक्त राम के सुपुत्र लाला राममूर्ति जी इंग्लैंड वालों ने चार दीवारी, तालाब तथा एक कमरा बनवाया। आश्रम का सभी प्रकार का खर्च जितने महीने रहते हैं, अपने पास से करते हैं। जालन्धर में खन्ना क्लाथ वाले, श्री अमरनाथ जी कक्कड़ के तीनों पुत्र, होशियारपुर के पण्डित शान्ति स्वरूप शर्मा, पण्डित मदन लाल शर्मा, लड़ोई के नन्द लाल का परिवार, लड़ोवा के किशोरी लाल भारती तहसीलदार, भोगपुर के पण्डित कालूराम शर्मा इत्यादि आश्रम के विशेष भक्त हैं। इनके जीवन में आश्रम की भौतिक उन्नति तो बहुत हुई, परन्तु आध्यात्मिक उन्नति नहीं हुई।

अन्तिम क्षण

सन् १९९५ ई. विक्रमी सम्वत् २०५२ जन्माष्टमी के दिन इनकी पीठ पर छोटी सी फुंसी हुई। शूगर तथा रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) के पुराने रोगी थे। थोड़े ही दिनों में उसने भयानक रूप धारण किया। जालन्धर कपिला हस्पताल में भरती हुये। अपार कष्ट था। सवा महीने में कुछ स्वस्थ हुये। धीरे-धीरे फोड़ा पूरा ठीक हो गया। शिवरात्रि के बाद दिल्ली गये। वहां से लौटने पर पुराने रोग ने फिर आक्रमण किया। ७ मार्च, चैत्र कृष्ण तृतीया जालन्धर, लड़ोवा, भोगपुर आदि में सब से मिलकर आये। रात्रि साढ़े आठ के बाद भिक्षा दूध लिया। शिकायत बढ़ गई। रात्रि के १०.३० बजे घबराहट बेचैनी तथा शरीर में जलन हुई। डॉक्टर को बुलाया, वे काबू न पा सके। दिखाने के लिये अपनी गाड़ी से भोगपुर जा रहे थे। आश्रम से बाहर पहुंचते ही दो बार हरी ॐ कहकर शरीर छोड़ दिया। देश-विदेश में उसी समय तार, फोन आदि द्वारा सूचना दी। दो महात्मा भी आये थे। दूसरे दिन आश्रम की परिक्रमा के अनन्तर भू-समाधि दी गई। २३ मार्च, १९९६ ई. को षोडशी भण्डारा हुआ। इसमें ३० के लगभग दण्डी स्वामी २५०, ३०० दूसरे महात्मा, दो ढाई हजार के लगभग गृहस्थ थे।

॥ इति श्री गु० वं० पुराणे, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे विंशतितमोऽध्यायः।।२०॥

अथ एकविंशति तमोऽध्यायः

स्वामी शंकरबोध आश्रम जी महाराज ९५१ (बड़े बाबा)

निर्वाण १६४५

अवधूत शिरोमणि, सर्वशास्त्र निष्णात पूज्यपाद महाराज श्री स्वामी शङ्करबोधाश्रम जी महाराज, द्वादश वर्षीय निर्विकल्प समाधि में स्थित चौसट्ठी मठ काशी प्रथम गुरु श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी महाराज के परम तितिक्षु अद्वितीय शिष्य थे। आप अश्विनी गंगातटवर्ती जीवन्मुक्त सन्त थे। उनका जीवन चरित्र यहां दिया जा रहा है।

पूज्य महापुरुषों का पूरा नाम लेने की प्रथा नहीं है इसलिये पूज्य स्वामी शंकरबोधाश्रम जी को प्रायः लोग "श्री शंकर आश्रम जी" "बड़े बाबा" "बड़े स्वामी जी" आदि नामों से याद करते थे।

आपका जन्म किस सन्—सम्वत् में हुआ किसी को ठीक पता नहीं, परन्तु वृद्ध लोगों के अनुसार जब शरीर पूरा हुआ उनकी आयु १०० वर्ष से अधिक थी। पूज्य प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी भी एक स्थान पर लिखते हैं "उनके (पूज्य अनंगबोध जी के) गुरु स्वामी शंकरबोध आश्रम थे। १०० वर्ष की अवस्था में भी वे हृष्ट-पुष्ट थे।" इस प्रकार प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के अनुसार भी बड़े बाबा की आयु १०० वर्ष से अधिक थी। बड़े बाबा का शरीर शरद् पूर्णिमा सम्वत् २००२ (२१ अक्तूबर, १९४५) को पूरा हुआ। आपका जन्म सन् १८४५ के आसपास हुआ होगा ऐसा अनुमान लगता है। आपका जन्म कुछ सूत्रों से पता चला कि दिल्ली-हरियाणा रेलवे लाइन के पास कहीं हुआ था। कुछ सूत्रों के अनुसार 'ननेरा' स्टेशन के पास, कुछ सूत्रों ने बताया 'नरौरा' स्टेशन के पास आपका जन्म हुआ। गांव का नाम मडौली—मडौला था। परन्तु रेलवे टाइम टेबुल के अनुसार ननेरा कोई स्टेशन नहीं है, नरौरा भी स्टेशन नहीं है। मिलते-जुलते स्टेशन देखने पर 'नरैना बिहार' दिल्ली का एक स्टेशन है। नरैना स्टेशन राजस्थान में है। 'नरौना जोधपुर' पंजाब में है। 'नरोडा' गुजरात में है। पूज्य परशुराम जी ने

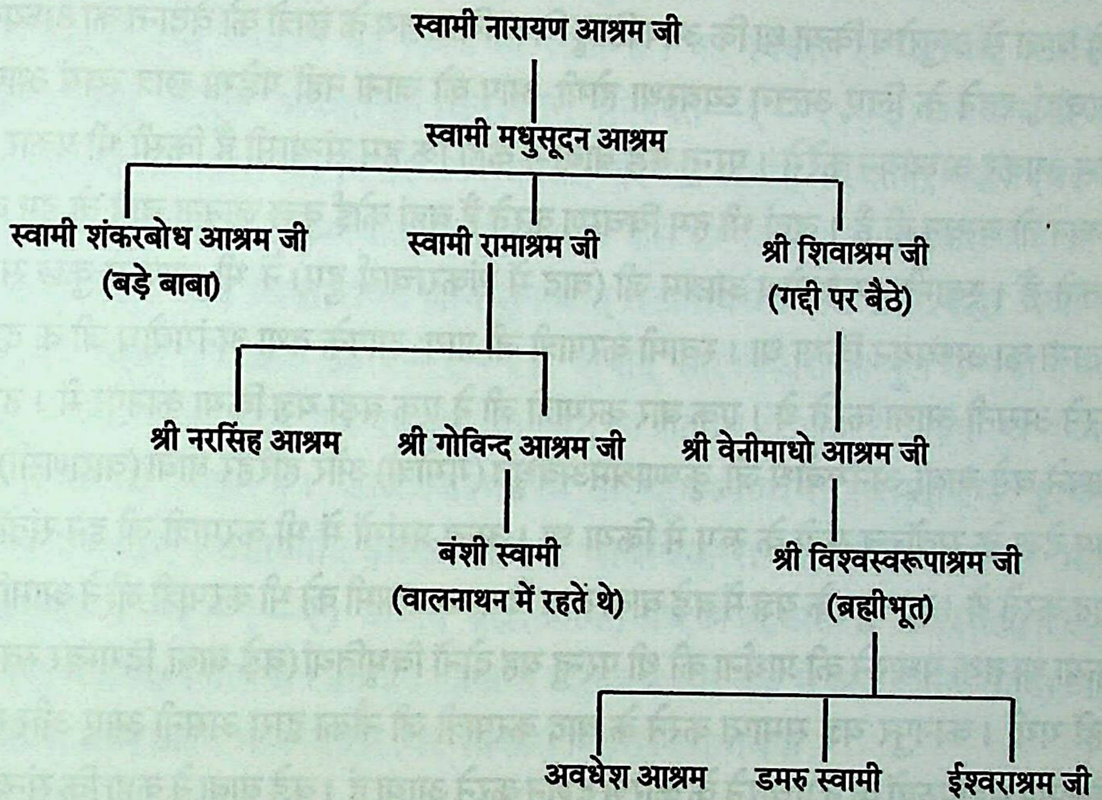
एक बार बताया था कि बड़े बाबा का जन्म दिल्ली के पास हुआ था। एक स्टेशन 'नरेला' मिलता है जो दिल्ली से सोनीपत—पानीपत—करनाल—कुरुक्षेत्र लाइन पर पड़ता है, दिल्ली से २६ किलो मीटर दूर है। मेरा अनुमान है यही 'नरेला' स्टेशन बड़े बाबा की जन्म भूमि के पास का स्टेशन है। जो दिल्ली के पास है। दिल्ली हरियाणा लाइन पर है सोनीपत नरेला से २० किलो मीटर दूर है। पाठकों को यदि सही स्टेशन का ज्ञान हो तो सूचित करने की कृपा करें।

गांव मडोली-मडोला में बड़े बाबा का जन्म गौड ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप माता-पिता के इकलौते पुत्र थे, आजीवन ब्रह्मचारी रहे। संन्यास लेने के बाद एक बार बड़े बाबा ब्रह्मचारी महानन्द जी के साथ जन्म भूमि गये थे परन्तु माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था।

बचपन में किस आयु में घर छोड़ा ठीक पता नहीं है परन्तु आप घर से काशी आ गये। यहां आपने चौसट्ठी मठ में स्वामी मधुसूदन आश्रम से ब्रह्मचर्य तथा संन्यास ग्रहण किया। आपके दो गुरु भाइयों का पता चलता है श्री स्वामी रामाश्रम जी (संक्षिप्त परिचय आगे पढ़ें) तथा स्वामी शिवआश्रम जी महाराज। शिवआश्रम जी चौंसठी मठ की गद्दी पर बैठे उसके बाद उनके शिष्य वेनीमाधोआश्रम उसके बाद स्वामी विश्वस्वरूपाश्रम गद्दी पर बैठे थे। ३ या ४ वर्ष पूर्व विश्वस्वरूपाश्रम जी संचालक चौंसट्ठीमठ के थे। स्वामी विश्वस्वरूपाश्रम के शिष्य हैं अवधेश आश्रम, डमरुस्वामी, स्वामी ईश्वराश्रम जी (आगे संक्षिप्त परिचय पढ़े)। १ अब ब्रह्मीभूत हो चुके हैं।

बड़े बाबा के कई शिष्य थे सभी बड़े त्यागी, तपस्वी थे। स्वामी अनंग बोध जी महाराज, स्वामी ब्रह्माश्रम जी, स्वामी रामचन्द्राश्रम जी, मुक्तबोध आश्रम जी (वनकट में रहते थे, स्वामी निजबोध आश्रम (कानपुर भगवद् दास आश्रम में रहते थे)। स्वामी मुक्तानन्द जी, स्वामी चिद्घनानन्द, स्वामी भूमाश्रम जी, (वागेश्वर-वक्सर में रहते थे) आपके प्रमुख ब्रह्मचारी थे ब्र० महानन्द जी, ब्र० शिवशंकर स्वरूप जी, (स्वामी शिवशंकर आश्रम), ब्र० चैतन्य स्वरूप जी, (स्वामी चैतन्य देव आश्रम) आदि।

चौंसठीमठ की परम्परा—



बड़े बाबा विद्या के अथाह सागर थे। आपने ३६ वर्ष तक अपने गुरु स्वामी मधुसूदन आश्रम से तथा काशी की प्रसिद्ध पीठ सुमेरु पीठ में व्याकरण, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, गीता, भागवत, न्याय दर्शन, ज्योतिष आदि का गम्भीर अध्ययन किया। आपका पल्लवग्राही पांडित्य पर विश्वास नहीं था। ३६ वर्ष शास्त्र चिन्तन, विद्याध्ययन के लिये लगाना बड़े धैर्य का कार्य है। आपका गहन अध्ययन तथा सूक्ष्म चिन्तन जीवन में आ चुका था तभी तों जब पूज्य करपात्री जी, अनंग बोध जी, कृष्णबोधाश्रम जी (शंकराचार्य), स्वामी रामदेव जी आते थे और शास्त्र पर विचार करते थे तो पांच-पांच, छह-छह घण्टे विचार चलता रहता था। साधारण व्यक्ति इस विचार को समझं नहीं पाता था।

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, गीता का अध्ययन, शांकर भाष्य पर भाष्य, टीकाएं सब का पूर्ण अध्ययन आपको था। गौरवर्ण सुगठित शरीर अवधूत वेष तप-त्याग की मूर्ति थे। जो भी आपके पास विद्याध्ययन के लिए आता था। विद्याध्ययन करवाते थे। आपने गंगोत्री से गंगासागर तक कई बार पैदल यात्राएं कीं।

पंडित मदनमोहन मालवीय जी आपके चिन्तन से बहुत प्रभावित थे । मालवीय जी ने बड़े बाबा से अनुरोध किया था कि आप हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों को वेदान्त का अध्ययन करवाएं, रहने के लिए अलग व्यवस्था होगी, आप को जाना नहीं पड़ेगा छात्र स्वयं आपके पास आकर अध्ययन करेंगे । परन्तु बड़े बाबा ने कहा कि हम संन्यासी हैं किसी भी प्रकार का बन्धन तो बन्धन ही है । जहां भी हम विचरण करते हैं वहां कोई कुछ जानना चाहे तो हम बता सकते हैं । स्वामी कृष्ण बोध आश्रम जी (बाद में शंकराचार्य हुए) ने भी आप से कुछ समय वेदान्त का अध्ययन किया था । स्वामी करपात्री जी प्रायः आपके तथा अनंगबोध जी के दर्शन करने असनी आया करते थे । एक बार करपात्री जी ने एक बड़ा यज्ञ किया कानपुर में । उसमें आपने बड़े बाबा, अनंगबोध जी, कृष्णाश्रमअवधूत (गंगोत्री) और हरिहर बाबा (वाराणसी) का नाम देश के सर्वोच्च संतों के रूप में किया था । अन्य प्रसंगों में भी करपात्री जी इन संतों को याद करते थे । कानपुर के यज्ञ में बड़े बाबा तथा दिगम्बर स्वामी को भी करपात्री जी ने आमन्त्रित किया था तथा पधारने की प्रार्थना की थी परन्तु यह दोनों विभूतियां (बड़े बाबा, दिगम्बर स्वामी) नहीं गयीं । कानपुर यज्ञ समाप्त करने के बाद करपात्री जी नौका द्वारा असनी आए और कहा कि आप महापुरुषों के न पधारने के कारण दर्शन करने आया हूं । बड़े बाबा ने कहा कि संन्यासी को यज्ञ-यागादि से क्या मतलब, संन्यासी के लिये तो निवृत्ति का विधान है । पूज्य करपात्री जी ने कहा कि लोकसेवा की दृष्टि से यज्ञ किया था । बड़े बाबा ने कहा संन्यास लोकसेवा के लिये नहीं स्वयं के ज्ञान के लिये है । करपात्री जी ने हाथ जोड़कर कहा कि मेरी स्थिति आप दोनों महापुरुषों जैसी नहीं है । ऐसे थे लोकेषणा से दूर बड़े बाबा । बड़े बाबा प्रायः गंगा किनारे-किनारे पैदल भ्रमण करते थे । अन्तिम समय में आप असनी में आकर रुक गये यहीं पर शरीर पूरा हुआ । वाराणसी में तो आपने अध्ययन किया ही था, अन्य स्थानों पर भी आप कुछ समय के लिये रुक जाते थे । वाराणसी जिले में सीतामढ़ी, वनकट, मिर्जापुर जिले में बालनाथन कुटी, सीखर कुटी, भगवान राम ने जहां से गंगा पार किया था शृंगवेरपुर, बक्सर (जिला उन्नाव) के पास वागेश्वर कुटी आदि में प्रायः आते जाते रुक जाते थे ।

आपका सूत्र था 'न जायते' प्रायः आप कहा करते थे 'न जायते' अर्थात् आत्मा का जन्म नहीं होता । यदि किसी को अपनी आत्मा के अजन्मा होने का अनुभव (मैं जन्म से रहित

हूं) हो जाए तो स्वयं को शुद्ध ब्रह्म के रूप में अनुभव करेगा। क्योंकि जायते के निषेध से सभी विकारों (षट् विकार) का निषेध हो जाता है। षट् विकार हैं **"जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते विनश्यति"** (निरुक्त—१—१—३) जब जन्म ही नहीं है आत्मा को तो अस्ति (है), विपरिणाम (विपरीत परिणाम अर्थात् परिवर्तन), वर्द्धते (बढ़ना), अपक्षीयते (क्षीण होना), विनश्यति (विनाश) आदि कैसे सम्भव हैं। आद्यशंकराचार्य जी के शब्दों में **"सर्व भाव विकाराणां जनिमूलत्वात् तत्प्रतिषेधेन सर्वे प्रतिषिद्धा भवन्ति" (शांकर भाष्य मुण्डक० उ० २—१—२)** अर्थात् 'सारे विकारों का मूल जन्म ही है अतः जन्म का प्रतिषेध कर दिये जाने पर सभी (विकारों) का प्रतिषेध हो जाता है।' ब्रह्मसूत्र में आद्य शंकराचार्य जी लिखते हैं। **"अजमजरममरम् अस्थूलमनण्वमह्रस्वमदीर्घम्" इत्यादि शास्त्र प्रसिद्धम्। तत्राजादि शब्दैर्जन्मादयो भावविकारा निवर्तिताः (शांकर भाष्य ब्रह्मसूत्र—४—१—१—२)** अर्थात् 'ब्रह्म (आत्मा) अज, अजर, अमर है' 'वह (ब्रह्म) न स्थूल, न अणु, न ह्रस्व, न दीर्घ है। इत्यादि शास्त्र से प्रसिद्ध है उस ब्रह्म में अज (जन्म रहित) आदि शब्दों से जन्म आदि भाव विकार (षट्-विकार) निवृत्त किये गये हैं।'

बड़े बाबा शास्त्र के चिन्तक तो थे ही बाह्य त्याग भी बहुत था कोई आश्रम नहीं बनाया, कोई सम्पत्ति नहीं, तप-त्याग ही उनकी सम्पत्ति थी। मान सम्मान से सर्वथा दूर एक विरक्त सन्त थे। बड़े-बड़े साधक विद्वान आपके पास शास्त्र सम्बन्धी समाधान के लिये आते थे।

आपका निर्वाण सम्वत् २००२ शरदपूर्णिमा दिन रविवार (२१ अक्तूबर, सन् १९४५) को तीसरे प्रहर असनी कुटी में हुआ। आपके ब्रह्मलीन होने का समाचार आकाशवाणी दिल्ली द्वारा प्रसारित किया गया। आपके निर्वाण पर असनी के ही प्रसिद्ध कवि श्री सूरज प्रसाद का निम्न पद प्रसिद्ध है।

संयम नियम योग त्याग तप तुंग तूर्य,
लय कैवल्यज्ञान भक्तिवीज वै गये॥
परमहंस स्वामी शंकराश्रम जी,
हमसे अपावन को कृत कृत्य कै गये॥

पक्ष[२] व्योम[०]—व्योम[०] पक्ष[२] अब्द रवि शरदपूनो,
प्रहर तृतीय पार ब्रह्म लीन ह्वै गये ।।
करि "ॐ—ॐ" नाद प्राणवल्लभेश गुरू,
निर्विकार रूप निराकार रूप ह्वै गये ।।

पंक्ष = २, व्योम = ०, पक्ष = २ सम्वत् २००२

रविवार = दिन रविवार, शरदपूनो = शरद् पूर्णिमा

ब्रह्मलीन होते समय आप आसन लगाकर बैठ गये और अनंगबोध जी से कहा समय पूरा हो गया । ॐ का उच्चरण किया और ब्रह्मलीन हो गये । आपके ब्रह्मलीन होने पर विशेष बात थी, बहुत समय तक शरीर का गरम रहना । पूरी असनी में शोभा यात्रा निकाली गई परन्तु शरीर की उष्णता बनी रही । पूज्य अनंगबोध जी ने अपने विषय़ में कोई शोभा यात्रा निकालने से मना कर दिया था इसलिये तुरन्त शरीर गंगा में प्रवाहित कर दिया गया था । शरीर की उष्णता का पता नहीं चल सका ।

ब्रह्मलीन होने के बाद भी शरीर का उष्ण (गरम) रहना एक विशेष महत्त्व की बात है । मेरी जानकारी के अनुसार-बड़े बाबा के अतिरिक्त दो और महापुरुषों का शरीर काफी समय तक गरम रहा । एक थे विवेकानन्द जी के गुरु श्री रामकृष्ण पररमहंस जिनका रात में एक बजे शरीर (सन् १८८६) पूरा हुआ प्रातः तक उष्ण रहा । शिष्यों को ब्रह्मलीन होने का विश्वास नहीं हो रहा था डाक्टर के बताने पर विश्वास हुआ ।

दूसरे स्वामी चैतन्य भारती जी (संक्षिप्त परिचय आगे पढ़ें) का शरीर वाराणसी में ललिता घाट राजराजेश्वरी मन्दिर में सन् १९५८ में पूरा हुआ था बनारस में शोभा यात्रा निकाली गयी परन्तु शरीर उष्ण ही रहा । तीसरे शान्ति आश्रम लड़ोई (जालन्धर) के स्वामी विष्णु आश्रम जी के शिष्य ब्रह्मानन्द जी के शरीर में भी उष्णता बनी रही ।

प्रश्न—ज्ञानी महापुरुष का शरीर उष्ण क्यों रहता है ?

उत्तर—जिस महापुरुष के प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता उसके शरीर की उष्णता काफी समय तक बनी रहती है । जिस किसी को निर्गुण, निर्विशेष, अज, अविनाशी ब्रह्म से तदाकारता हो जाती है उसके प्राणों का गमन कहीं नहीं होता, शेष सभी के प्राणों का गमन कर्मानुसार होता है । **"न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति"** (वृ० उ०—४—४—६) अर्थात्

उस ज्ञानी के प्राणों का उत्क्रमण नहीं होता, ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। **"न विशेष गतिनिष्क्रियस्य"** (सांख्य दर्शन ५—७६) अर्थात् निष्क्रिय (क्रियाहीन) पुरुष से एकता को प्राप्त ज्ञानी के प्राणों की गति (गमन) नहीं होती।

प्रश्न—क्या सभी ज्ञानियों के प्राणों का गमन नहीं होता?

उत्तर—जो ज्ञानी निर्गुण निर्विकार शुद्ध ब्रह्म को प्राप्त हो गया है उसके प्राणों का गमन नहीं होता यदि कार्यब्रह्म (सविशेष ब्रह्म) से तदाकार हुआ है तो प्राणों का गमन उत्तरायण मार्ग से होता है, ब्रह्म लोक जाकर मुक्त हो जाता है, उसे इस संसार में नहीं आना पड़ता, इसे क्रम मुक्ति कहते हैं। सामान्य जीवों के प्राण कर्म—उपासना के अनुसार गमन करते हैं और फल भोगते हैं।

प्रश्न—ज्ञानी-अज्ञानी के शरीर पूरा होने का प्रकार क्या भिन्न-भिन्न है?

उत्तर—अज्ञानी प्रारब्ध पूरा होने पर शरीर छोड़ता है इन्द्रियां मन में लीन हो जाती हैं, मन, प्राण में लीन हो जाता है, प्राण अन्तिम संकल्प के अनुसार निकल कर अगला शरीर प्राप्त करता है। ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं। सगुण ब्रह्म (सविशेष) का साक्षात्कार प्राप्त ज्ञानी इनके प्राण उत्क्रमण करते हैं, क्रममुक्ति से ब्रह्मलोक जाकर शुद्ध ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं और मुक्त होते हैं। परन्तु शुद्ध ब्रह्म से तदाकार ज्ञानी के प्राणों का उत्क्रमण ही नहीं होता। यह ज्ञानी प्रारब्ध पूरा होने पर प्राण वायु को अन्तिम समय में अन्दर लाकर पुनः बाहर नहीं छोड़ता इस प्रकार उसके प्राणों का गमन नहीं होता बल्कि प्राण शान्त हो जाते हैं जैसे तेल समाप्त हो जाने पर दीपक शान्त हो (बुझ) जाता है। ज्ञानी का प्रारब्ध रूपी तेल समाप्त होते ही प्राण शान्त हो जाते हैं। परन्तु अज्ञानी अन्तिम समय में प्राण वायु को बाहर छोड़कर शरीर पूरा करता है। अन्दर प्राण नहीं आते इस प्रकार प्राणों का गमन हो जाता है। ज्ञानी के प्राणों का गमन नहीं होता **"याज्ञवल्क्येति होवाच यत्रायं पुरुषो म्रियत उदस्मात् प्राणाः क्रामयन्त्याहो नेति—नेति होवाच याज्ञवल्क्यो अत्रैव समवनीयन्ते स उच्छ्वयत्या ध्मायत्याध्मातो मृतः शेते"** (बृ० उ०—३—२—११) अर्थात् आर्तभाग ने कहा "हे याज्ञवल्क्य जिस समय यह मनुष्य (ज्ञानी) मरता है उस समय इसके प्राणों का उत्क्रमण होता है या नहीं? याज्ञवल्क्य ने कहा "नहीं-नहीं" वे (प्राण) यहां ही लीन हो जाते है वह स्थूल (शरीर) फूल जाता है अर्थात् वायु को भीतर खींचता है और वायु से पूर्ण हुआ ही मृत पड़ा रहता है" इसी मंत्र के भाष्य में

श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं "……**उच्छूनतां प्रतिपद्यते, अध्मायति बाह्येनवायुनापूर्यते दृतिवत्, आध्मातो मृतः शेते निश्चेष्टः। बन्धनाशे मुक्तस्य न क्वचित् गमनम् इति वाक्यार्थः**" अर्थात् वह उच्छून भाव को प्राप्त हो जाता है अर्थात् फूल जाता है। वह धौकनी के समान शरीर को बाह्य वायु से भरता है इस प्रकार भरकर मरा हुआ निश्चेष्ट पड़ा रहता है। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि बन्ध का नाश हो जाने पर मुक्त पुरुष का कहीं गमन नहीं होता' (शांकर भाष्य—३—२—११) ज्ञानी के निर्वाण के विषय में—

"गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा, देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा, परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति॥"

(मुण्डक उ० ३—२—७)

"पन्द्रह कलाएं देह आरम्भक तत्त्व (प्राण-श्रद्धा-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी-इन्द्रियां-मन-अन्न-वीर्य-तप-मन्त्र-कर्म-लोक) अपने आश्रयों (कारण) में स्थित हो जाते हैं, समस्त देवता (चक्षु आदि इन्द्रियों के अधिष्ठाता) अपने प्रति देवता (आदित्य आदि) में लीन हो जाते हैं तथा उसके कर्म (संचित आदि) और विज्ञानमय आत्मा (जीव) आदि सबके सब, पर-अव्ययदेव (ब्रह्म) में एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं।" इस प्रकार ज्ञानी का स्थूल शरीर पंच तत्त्वों में, इन्द्रियां तथा मन आदि अपने अधिदैव में मिल जाते हैं। स्वयं ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म ही हो जाता है **"ब्रह्मवेदब्रह्मैव भवति"** (मु० उ०—३-२-९) 'ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।'

प्रश्न—सविशेष ब्रह्म को जानने वाले ज्ञानी के प्राणों का क्या होता है?

उत्तर—ऐसे ज्ञानी के प्राणों का गमन होता है परन्तु लौटकर पुनः मृत्यु लोक नहीं आना पड़ता। ब्रह्मलोक जाते हैं वहां शुद्ध, निरुपाधिक ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। सोपाधिक ब्रह्म का ज्ञानी निम्न प्रकार गमन करता है—

"वाङ् मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च" (ब्रह्म सूत्र—४-२-१) अर्थात् 'वाणी (इन्द्रियों) का लय मन में होता है।, **"तन्मनः प्राण उत्तरात्"** (ब्रह्म सूत्र—४-२-३) अर्थात् 'मन का लय प्राण में हो जाता है' **"सो ऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्य"** (ब्रह्म सूत्र—४-२-४) अर्थात् "प्राण जीवात्मा में अवस्थित होता है क्योंकि जीव में प्राण के उपगम, अनुगम और अवस्थान श्रुत

है" जीवात्मा ऊर्ध्व गमन ऊर्ध्व नाड़ी से करता है । विशेष जानकारी के लिए ब्रह्मसूत्र (अ० ४ पाद २, ३, ४) देखें । इस प्रकार उत्तरायण से गये हुए प्राणी को पुनः नहीं लौटना पड़ता । **"अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्"** (ब्र० सू०—४-४-२२) अर्थात् 'उत्तरायण मार्ग से ब्रह्मलोक गये ज्ञानी की पुनरावृत्ति नहीं है ।' **"न च पुनरावर्तते"** (छा०—८-१५-१) अर्थात् 'पुनः नहीं लौटते' दक्षिणायन से पितृलोक गया जीव वापस लौट आता है । अशुभ कर्म करने वाले को न उत्तरायण मार्ग मिलता है, न दक्षिणायन मार्ग, वह बार-बार जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता रहता है **"जायस्व म्रियस्व"** (छा० ५-१०-८) ।

ज्ञान हो जाने पर ही जन्म-मरण से निवृत्ति है, आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति है । सारे वन्धन समाप्त हो जाते हैं । ईर्ष्या-द्वेष, शोक, मोह, जरा-मरण सब की समाप्ति है, यही ज्ञान जीव का अन्तिम पुरुषार्थ है । **"त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः"** (सांख्य सूत्र—१-१) अर्थात् 'त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति होना अत्यन्त पुरुषार्थ है ।'

मुञ्च पुरा मुञ्च पश्चात् मध्ये, मुञ्च भवस्य पारगः ।
सर्वत्र विमुक्तमानसो, न पुनः जातिजरामुपेष्यसि ॥

(धम्मपद—तण्हावग्गो—१५)

अर्थात् 'भूत, भविष्य, वर्तमान के बन्धनों को त्याग दो और संसार के पार चले जाओ । जब तुम्हारा मन सब ओर से मुक्त हो जायेगा तब पुनः जन्म-जरा को प्राप्त नहीं करोगे ।

निष्ठां गतोऽसंत्रासी, वीतृष्णोऽनङ्गनः ।
अच्छिनद् भवशल्यानि, अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः ॥

(धम्मपद—तण्हावग्गो—१८)

अर्थात् 'जो निष्ठा को प्राप्त हो चुका है जो निर्भय-तृष्णा रहित, दोष रहित है, उसने संसार के बन्धनों को काट दिया है, उसके लिए यह अन्तिम शरीर है (पुनः जन्म मरण नहीं होता) ।'

दक्षिणायन मार्ग से पितृलोक गया जीव पुनः लौट आता है । जन्म मरण के चक्र में पड़ जाता है । किस प्रकार लौटता है ब्रह्मसूत्र (अ० ३ पाद—१) देखें ।

बड़े बावा का शरीर पूरा होने पर शोभा यात्रा निकालने के बाद पूज्य स्वामी अनंगबोध जी के निर्देशानुसार सैंकड़ों लोगों की उपस्थिति में असनी में पवित्र गंगा में समाधि दे दी गयी ।

प्रमुख घटनाएं एवं संस्मरण

एक बार स्वामी करपात्री जी असनी कुटी आए। कुटी में बड़े बाबा तथा तितिक्षामूर्ति स्वामी अनंगबोध जी महाराज थे। बड़े बावा ने कहा, भागवत सुनाइए। पूज्य करपात्री जी भी साधारण विद्वान नहीं थे। भागवत के प्रथम श्लोक की व्याख्या प्रतिदिन करते रहे। लगभग एक सप्ताह हो गया, एक श्लोक में ही। अब करपात्री जी ने चलने की आज्ञा मांगी। बड़े बावा ने कहा किं अभी प्रथम श्लोक की व्याख्या पूरी नहीं हुई, इसे पूरा करके जाना। करपात्री जी ने कहा कि आप दोनों महापुरुष बड़े महान् हैं। आप एक ही श्लोक की व्याख्या वर्षों तक कर सकते हैं। आज्ञा लेकर करपात्री जी कुटी से विदा हो गए।

एक बार एक षट्शास्त्री बड़े बाबा का नाम सुनकर बहुत सी पुस्तकें नाव पर लेकर असनी कुटी आए। बड़े बाबा शास्त्रार्थ की दृष्टि से बात नहीं करते थे। शास्त्री जी जो भी पूछते बाबा बड़े ही सरल भाव से उत्तर दे देते। अन्त में शास्त्री जी समझ गए कि बड़े बाबा के शास्त्र चिन्तन तक पहुंच पाना बड़ा कठिन है। बड़ी विनम्रतापूर्वक बड़े बावा को प्रणाम किया और चले गए। पुस्तकीय ज्ञान का अहंकार समाप्त हो गया।

विरंजी देवी की कृपा

द्वारा—श्री रामकिशोर दुबे; ग्राम खेमापुर, पो० सीतामढी, ज़ि० वाराणसी

हमारे गांव (खेमापुर) की विरंजी देवी को पुत्र होकर मर जाया करते थे। बहुत दुःखी थी। स्वामी शंकरबोध आश्रम पर उसकी अपार श्रद्धा थी। प्रार्थना करने पर बड़े बाबा ने उसे दीक्षा दे दी। फिर भी पुत्र मर जाते थे। एक दिन विरंजी देवी को अत्यन्त दुःखी देखकर बड़े बावा ने आशीर्वाद दिया, बेटी परिवार सहित प्रफुल्लित रहो। बड़े बावा के आशीर्वाद से एक लड़का एक लड़की जीवित बची। निर्धनता भी दूर हो गई। आज इस परिवार में ३५ सदस्य हैं। शंकरबोध आश्रम (बड़े बावा) तथा अनंगबोध जी साथ में और भी महात्मा गंगा जी के किनारे रुकते थे। (मैं रामकिशोर दुबे) अपने पिता (देवकीनन्दन दुबे) के साथ दर्शन करने जाया करता था। अपने जीवन में मैंने ऐसे महात्मा त्यागी, तपस्वी नहीं देखे। मेरे माता-पिता बड़े बावा के शिष्य थे।

एक भक्त पर अनुग्रह

एक भक्त बड़े बावा पर अनन्य श्रद्धा रखते थे परन्तु कोई पुत्र नहीं था। एक दिन दोपहर में स्वामी जी के पास तरबूज़ लेकर गए। स्वामी जी ने प्रसाद पाया सबको बंटवा दिया। चलते समय प्रसाद रूप में मिठाई दी और कहा रास्ते में कहीं नहीं रुकना। प्रसाद घर में दे देना। इसके बाद भक्त के पुत्र हुए। चार अभी जीवित हैं।

ग्रन्थ—तितिक्षा मूर्ति श्री अनंगवोधाश्रम जी महाराज
सम्पादक—ठा० श्री शिववरण सिंह।

॥इति श्री गु० वं० पु०, कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

(९५२) स्वामी अनंगबोध जी महाराज

निर्वाण—१९५२

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः
सारंगा सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः।
येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्यै च विद्यांगनाः
मन्यन्ते परमेश्वराः शिरशियैर्वद्धो न सेवाञ्जलिः॥

(वैराग्य शतक—८०)

हम उनको परमेश्वर समझते हैं जिनके लिए पर्वतशिला शय्या है, पर्वत-कन्दरा घर है, वल्कल वस्त्र हैं, जंगल के पशुपक्षी सुहृद हैं, वृक्षों के फल भोजन हैं, झरनों का जल है, विद्या से अनुराग है और जो कभी सेवा के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते।

स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिबनिता संगमुदितः
महीरम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता।
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः
सुखंशान्तः शेते मुनिरतनुभूतिनृपइव॥

(वैराग्य शतक—६६)

वह मुनि ऐश्वर्यशाली राजा के समान सुख व शान्ति से सोता है जिसकी उत्तम शय्या पृथ्वी है, भुजा तकिया है, आकाश वितान है, अनुकूल वायु ही पंखा है, चन्द्रमा प्रदीप्तमान दीपक है और विरक्ति रूपी वनिता के साथ प्रसन्न रहता है।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।
येषां निःसंगतांगीकरण परिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते,
धन्या संन्यस्ता दैन्यव्यतिकर निकरा कर्मनिर्मूलयन्ति ॥

(वैराग्य शतक—४७)

वे धन्य हैं जिनका हाथ ही पवित्र पात्र है, भ्रमण द्वारा प्राप्त भिक्षा ही अक्षय भोजन है, लम्बी चौड़ी दिशाएं ही वस्त्र हैं, पृथ्वी ही शय्या है, अनासक्ति के कारण सदा संतुष्ट रहते हैं और दीनता से रहित कर्म का नाश करते हैं।

गंगा तीरे हिमगिरि शिलावद्धपद्मासनस्य,
ब्रह्म ध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः स्वांगमंगे मदीयें॥

(वैराग्य शतक—३८)

क्या मेरे वे अच्छे दिन आएंगे जब मैं गंगा के तट पर हिमालय पर्वत की चट्टान पर पद्मासन लगाकर बैठूंगा। उस समय निर्भय होकर वृद्धहिरण खुजलाहट मिटाने के लिए हमारे शरीर से अपना शरीर रगड़ने हेतु आया करेंगे (अर्थात् बनचर बिना भय के मेरे पास विचरण करेंगे)।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो ! भविष्यामि कर्मभिर्मूलनाशयः॥

(वैराग्य शतक—५९)

हे शम्भो ! कब मैं अकेला, कामना रहित, शान्त, करपात्री दिगम्बर तथा भवबन्धन को निर्मूल करने वाला होऊँगा।

आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व जिस स्थिति की प्रशंसा तथा जिस जीवन की कामना उज्जैन का राजपाट छोड़कर जंगलवासी बने भर्तृहरि (विक्रमादित्य के भाई) ने की थी उसका प्रत्यक्ष उन सौभाग्यशाली लोगों ने किया है जिन्होंने अवधूत शिरोमणि, दिगम्बर श्री स्वामी अनंगवोध जी को कभी गंगा की गरम बालू पर, कभी मूसलाधार वर्षा में, कभी घोर सर्दी में वस्त्र विहीन स्थिति में, कभी किसी वृक्ष के नीचे लेटे, कभी नदी-नालों के पार करते, कभी सन्त समूह के साथ, कभी अकेले, सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित (सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, मान-अपमान) ब्रह्मभाव में विचरण करते देखा है।

प्रातः स्मरणीय दिगम्बर स्वामी ऐसी दिव्य विभूति थे जो तप, त्याग, वैराग्य और शास्त्र चिन्तन के शिखर थे। जिनके पास सिंह भी अहिंसावादी बन जाता था, सर्प काटना भूल जाता था। जिसने जिस कामना से सेवा की वही उसे मिला। ऐसे महान सन्त के जीवन तथा दर्शन का वर्णन सामर्थ्य से बाहर है फिर भी यथाशक्ति दो भागों में हम वर्णन कर रहे हैं। एक संन्यास से पूर्व का भाग, दूसरा संन्यास के बाद का।

ब्रह्मलीन अनंग बोध जी के तीन स्वरूप हैं। पहला व्यक्त स्वरूप—इस स्वरूप में छड़ी लिये दिगम्बर वेश में तप-तितिक्षा में संलग्न हैं। दूसरे अव्यक्त स्वरूप में क्षमा, अक्रोध अनासक्ति, अहिंसा और शान्ति के रूप हैं। तीसरा स्वरूप व्यक्त अव्यक्त से परे शुद्ध ब्रह्म है, यही आपका लक्ष्यार्थ है।

अनंग अर्थात् अन्-अंग, अंग शब्द शरीर, सम्पूर्णकर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, अन्तःकरण, पंच प्राण का उप लक्षण है। जो इन सबसे रहित है वही अनंग है अर्थात् सत् तत्त्व है। परन्तु यह तत्त्व जड़ न समझ लिया जाए। इस जड़ता का खण्डन करने के लिए बोध शब्द है। **"ईक्षतेर्नाशब्दम्"** (ब्रह्म सूत्र—१-१-५) जगत का मूल कारण जड़ (प्रधान) नहीं हो सकता है क्योंकि श्रुति में उसे ईक्षण कर्ता कहा गया है। जड़ में ईक्षण (इच्छा) का होना असम्भव है। इस प्रकार अनंगबोध शब्द का अर्थ है सम्पूर्ण उपाधियों (इन्द्रिय-अन्तःकरण-प्राण) से रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप ब्रह्म।

आपका घर का नाम श्री माताशरण मिश्र था। आपका जन्म कब, किस सन्-सम्वत् में हुआ किसी को ज्ञात नहीं है। परन्तु वृद्ध लोगों के अनुसार जब शरीर असनी नें (आठ फरवरी,

१९५२) को पूरा हुआ था उस समय आयु १०० वर्ष से अधिक थी। इससे अनुमान लगता है कि आपका जन्म सन् १८५२ से पूर्व हुआ होगा।

उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर ज़िले में मिर्जापुर से बनारस-चुनार रोड पर (५ कि० मी०) रोड से १ कि०मी० उत्तर एक छोटा सा गांव है लाहोली (मिश्रन)। इसी गांव में आपका जन्म हुआ था। पिता जी का नाम श्री रामपदारथ मिश्र (वेचू मिश्र) तथा माता जी का नाम मुकुन्दी देवी था। आपका ननिहाल मिर्जापुर जिले में ही ग्राम-मोहारी में था। नानाजी का नाम श्री गिरधारी लाल मिश्र था। पिता तथा नाना दोनों मिश्र थे परन्तु गोत्र भिन्न-भिन्न थे।

आप अपने पिता के अकेले पुत्र थे। घर पर खेती लगभग ५० बीघे थी। अकेले पुत्र होने के कारण माता-पिता को अधिक प्यारे थे। इसी मिश्र परिवार के एक सदस्य श्री शिव मूर्ति मिश्र से प्राप्त वंशावली अगले पृष्ठ पर देखें।

श्री मधुसूदनाश्रम चौसट्ठी वालों के शिष्य

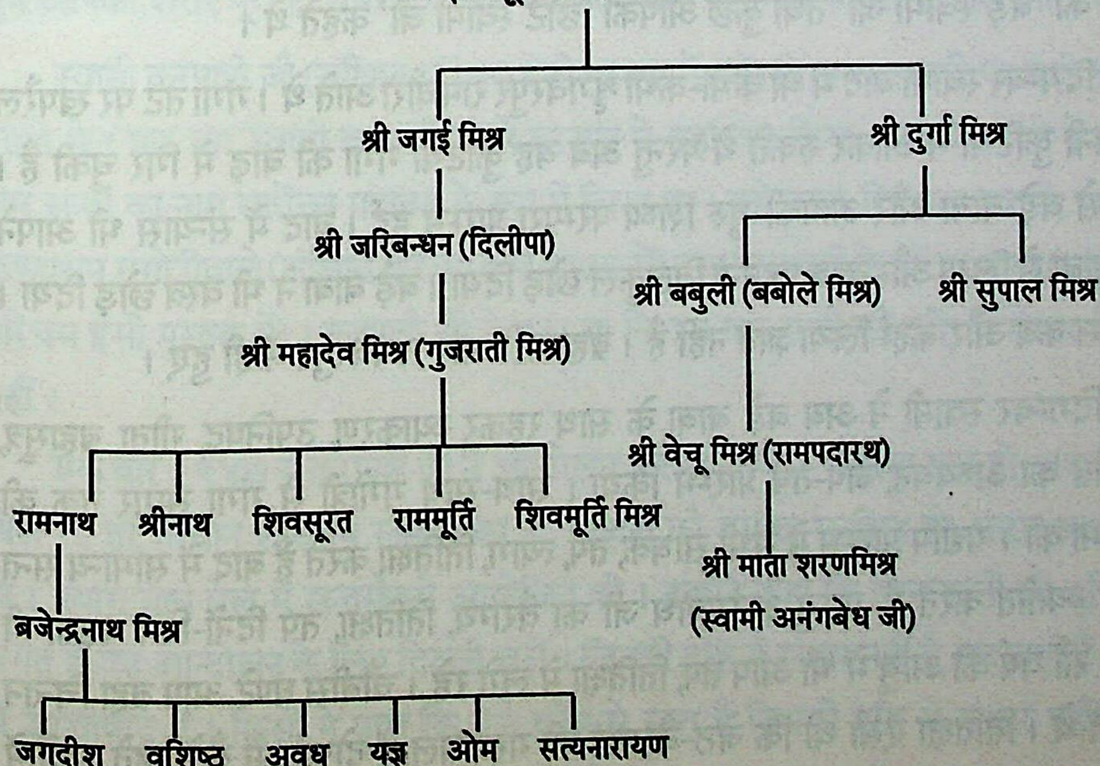
बचपने से ही आप खेलने में रुचि रखते थे। किशोरावस्था में व्यायाम करते थे। शिक्षा भी प्राप्त की, परन्तु स्कूल में पढ़ा या घर में कोई जानकारी नहीं है। आपके बगीचे में एक कुटी बनी थी जिसमें स्वामी रामाश्रम जी (बड़े बावा के गुरु भाई) निवास करते थे। किशोरावस्था में आप व्यायाम करते तथा रामाश्रम जी के पास जाते थे। आपके पितामह (बावा) तथा दादी (आजी) दोनों स्वामी रामाश्रम जी के शिष्य थे। रामाश्रम जी (संक्षिप्त परिचय आगे पढ़ें) की ख्याति मिर्जापुर तथा बनारस जिलों में दूर-दूर तक फैली थी।

श्री माताशरण जी स्वामी रामाश्रम जी के पास प्रतिदिन जाते, पूजा, भजन, भागवत, स्वाध्याय करते थे। त्रिकाल गायत्री भी प्रतिदिन कुटी में ही करते थे। दिन प्रतिदिन आप अधिक समय स्वामी रामाश्रम जी के पास लगाने लगे। केवल माता के बुलाने पर घर जाते थे। किसी-किसी दिन जब आप जप करते थे तो एक काला सांप आपके पास आ जाता था और आस-पास घूमा करता था। जब स्वामी रामाश्रम जी से आपने सर्प के विषय में बताया तो स्वामी जी ने कहा कि डरना नहीं शंकर जी हैं। आपकी रुचि अध्यात्म की ओर बढ़ती गयी।

आपके माता-पिता इकलौते पुत्र होने के कारण चिन्तित होने लगे क्योंकि आपके ऊपर ही परिवार का भविष्य निर्भर था। आपको समझा बुझाकर आपका विवाह मिर्जापुर जिले में

ही ग्राम नदिगहना (लालगंज के पास) में कर दिया गया। स्वामी रामाश्रम जी ने भी आपको विवाह के लिए कहा था। परन्तु आपकी रुचि पूजा, जप, व्यायाम करने में अधिक थी। इसी बीच आपने एक आम का बगीचा लगाया जो अब भी है। कच्चा कूप बनवायां बाद में पक्का करवाया। इसी कूप का आपके शरीर न रहने पर अवधूत स्वामी परशुराम जी (अनंगबोध जी के शिष्य) ने जीर्णोद्धार करवाया, बड़ा विशाल यज्ञ करवाया तथा रामलीला करवायी थी।

कुछ वर्ष बाद मृत कन्या का जन्म हुआ। दस-पन्द्रह मिनट बाद आपकी सहधर्मिणी का भी देहान्त हो गया। इस घटना के बाद माता शरण जी घर, परिवार से उपराम हो गये और भी अधिक अध्यात्म की ओर बढ़ने लगे। आपके माता-पिता इस घटना से बहुत दुःखी हुए क्योंकि आपके बाद वंश परम्परा ही समाप्त हो रही थी। दूसरी शादी करने के लिए बड़ा प्रयत्न किया परन्तु किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुए। स्वामी रामाश्रम जी से आप बार-बार संन्यास देने का अनुरोध करते रहे। प्रायः कुटी में ही रहने लगे, गृहस्थ आश्रम में पुनः जाने से इन्कार कर दिया परन्तु स्वामी रामाश्रम जी ने संन्यास नहीं दिया।



एक दिन स्वामी रामाश्रम जी बिना किसी को बताए ही भ्रमण हेतु निकल गये। इधर माताशरण जी और भी अधिक पूजा, पाठ, मंत्र-जप में लग गए। एक दिन आपकी माता जी भोजन के लिए बुलाने आयीं तो आपने कहा कि मैं बैंगन लेकर आता हूं, आप घर चलें। बस यहीं से आपने घर का रास्ता छोड़ दिया। पूर्व जन्म के संस्कार प्रबल हो गए। आप घूमते-फिरते गंगा के किनारे शृंगवेरपुर आ गए। यहीं से भगवान राम, सीता, लक्ष्मण ने वन गमन करते समय गंगा को पार किया था।

यहां आपको रामाश्रम जी तथा स्वामी शंकर आश्रम जी के दर्शन हुए। स्वामी रामाश्रम जी पूर्व परिचित थे ही, दीक्षा की प्रबल इच्छा देखकर श्री स्वामी रामाश्रम जी के कहने पर बड़े बाबा ने आपको ब्रह्मचारी की दीक्षा दी। आपकी ब्रह्मचारी की दीक्षा शृंगवेरपुर में हुई। कुछ समय बाद आप टाट की लंगोटी लगाने लगे। तब से लोग आपको 'टटहाबाबा' कहने लगे। संन्यास के बाद आपने सभी कपड़े छोड़ दिये। लोग 'दिगम्बर स्वामी' कहने लगे। सिर के बाल जटाओं में बदल गए, इसलिए भक्त आपको 'जटीले स्वामी' कहने लगे। कुछ लोग बाबा को 'बड़े स्वामी जी' तथा कुछ आपको 'छोटे स्वामी जी' कहते थे।

दिगम्बर स्वामी बाद में भी कभी-कभी शृंगवेरपुर रामचौरा आते थे। गंगा तट पर खपरैल की बनी कुटिया में आकर रुकते थे परन्तु अब यह कुटिया गंगा की बाढ़ में गिर चुकी है। यहीं से बड़े बाबा और आपकी गुरु शिष्य परम्परा प्रारम्भ हुई। बाद में संन्यास भी आपने बड़े बाबा से लिया और वस्त्र पहनना बिलकुल छोड़ दिया। बड़े बाबा ने भी वस्त्र छोड़ दिया। संन्यास कब और कहां लिया ज्ञात नहीं है। ब्रह्मचारी आप शृंगवेरपुर में ही हुए।

दिगम्बर स्वामी ने अब बड़े बाबा के साथ रहकर व्याकरण, उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवत का अध्ययन, जप-तप प्रारम्भ किया। साथ-साथ गंगोत्री से गंगा सागर तक की परिक्रमा की। यद्यपि प्रारम्भ में सभी साधक, तप, त्याग, तितिक्षा करते हैं बाद में सामान्य सन्त जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु अनंगबोध जी का वैराग्य, तितिक्षा, तप दिनों-दिन बढ़ता ही गया। सौ वर्ष की आयु में भी आप तप, तितिक्षा में लगे रहे। चौबीस घण्टे आप ब्रह्म चिन्तन में रहते थे। तितिक्षा ऐसी थी कि जेठ-बैसाख की गरमवालू में दोपहर में बैठे रहते, सर्दी में

आप बिना वस्त्र गंगा के किनारे पड़े रहते। संपत्ति के नाम पर आपके पास एक छड़ी को छोड़कर कुछ भी नहीं था। वैराग्य ऐसा कि संसार की किसी भी वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं।

एक बार लाहोली में शिवमूर्ति मिश्र को घर से वैराग्य हो गया। सोचा कि अनंगबोध जी के पास जाकर साधना करेंगे। वहां से असनी कुटी आए। पता चला कि दिगम्बर स्वामी वागेश्वर (वक्सर) में हैं। मिश्र जी वागेश्वर गए। दिगम्बर स्वामी बारादरी में बिना कुछ बिछाए ज़मीन पर लेटे हैं। सिर के नीचे रखा पत्थर तकिए का कार्य कर रहा है। इस रूप में लेटे देखकर मिश्र जीका वैराग्य ठण्डा हो गया। ३-४ दिन बाद वापस घर लौट आए। ऐसे त्यागी सन्त की तरह का जीवन व्यक्ति के लिए जीना बड़ा कठिन है।

शास्त्र चिन्तन ऐसा था कि आपके पास बड़े-बड़े विद्वान् दर्शन के लिए आते तथा अपने को धन्य मानते थे। आप पर श्रद्धा करने वालों में प्रमुख सन्त थे स्वामी करपात्री जी, शंकराचार्य कृष्णवोध आश्रम जी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी, स्वामी रामदेव जी। स्वामी रामदेव जी विरक्त तथा विद्वान महात्मा थे। कानपुर, फरुखाबाद, हरदोई जिलों में प्रायः विचरण करते थे। कुछ वर्ष पूर्व आपका शरीर पूरा हो गया है। आप बड़े बाबा तथा दिगम्बर स्वामी के पास आते थे।

स्वामी करपात्री जी (संक्षिप्त परिचय इसी पुस्तक में पढ़ें) दिगम्बर स्वामी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। एक बार स्वामी करपात्री जी ने कानपुर में बड़ा यज्ञ किया। उसमें आपने देश के चार सन्तों का नाम सर्वोच्च महात्मा के रूप में लिया था। बड़े बाबा, दिगम्बर स्वामी, स्वामी कृष्णाश्रम गंगोत्रीवाले (संक्षिप्त परिचय इसी पुस्तक में) तथा वाराणसी के हरिहर बाबा (संक्षिप्त परिचय इसी पुस्तक में)। करपात्री जी ने कहा था कि इन चार सन्तों की दृष्टि में संसार है ही नहीं।

एक बार १९४७ में करपात्री जी ने आन्दोलन प्रारम्भ किया। गौहत्या बन्द हो, अधार्मिक बिल रद्द हों, विधान शास्त्रीय स्वरूप का हो, मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित हो, भारत अखण्ड हो। प्रयाग माघ मेले में सन्तगोष्ठी आयोजित की। उन्होंने कहा कि जिन सन्तों की दृष्टि में जगत् है, वह आन्दोलन के लिए दिल्ली चलें। जिनकी दृष्टि में संसार नहीं है, वह जहां हैं वहीं से आशीर्वाद दें। किसी ने पूछा कि ऐसे कौन-से सन्त हैं जिनकी दृष्टि में संसार नहीं है।

करपात्री जी ने सर्वप्रथम नाम अनंगबोध जी का लिया (बड़े बाबा का शरीर पूरा हो चुका था)। परिचय दिया कि अनंगबोध जी प्रायः असनी (जिला फतेहपुर) में गंगा के किनारे रहते हैं। उनकी दृष्टि में संसार नहीं है। अन्य कृष्णाश्रम (गंगोत्री), हरिहर बाबा (काशी) के नाम गिनाए और कहा कि कन्दराओं और गुफाओं में और भी सन्त इसी कोटि के हो सकते हैं परन्तु मेरी (करपात्री की) दृष्टि में यही सन्त इस समय महान सन्त हैं। प्रायः करपात्री जी दर्शन करने असनी आते रहते थे। बातें प्रायः शास्त्र, प्रस्थान त्रयी पर होती थीं, व्यावहारिक बहुत कम।

शंकराचार्यकृष्णबोध आश्रम जी (शंकराचार्य बाद में १९५३ में बने, दिगम्बर स्वामी का शरीर १९५२ में पूरा हो गया) ने विद्या अध्ययन बड़े बाबा से किया था। दिगम्बर स्वामी पर बड़ी श्रद्धा थी।

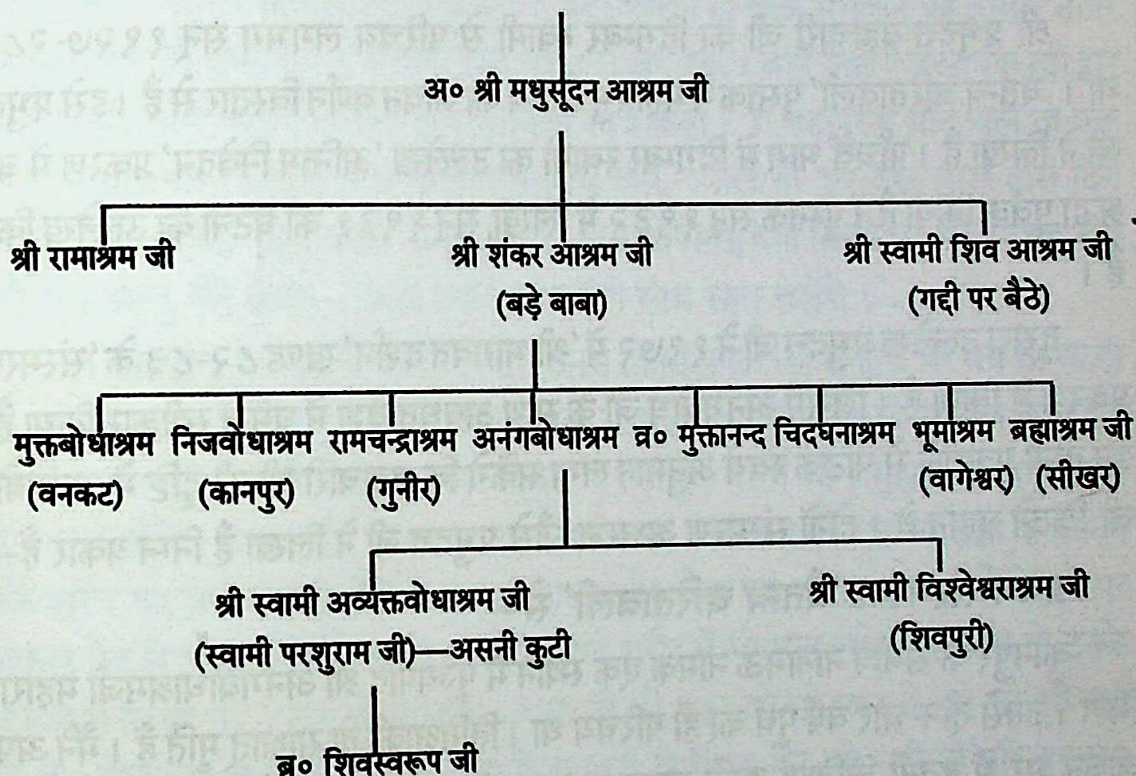
आप एक बार स्वामी करपात्री जी के साथ असनी आए। दिगम्बर स्वामी एक मचान पर बैठे थे। गांव के लोग इन सन्तों के लिए दरी, आसन ले आए परन्तु कृष्णबोध जी ज़मीन पर ही बैठ गए। गांव के वृद्धों द्वारा अनुरोध करने पर कि ऐसे महान तपस्वी सन्त के पास भूमि पर बैठना ही शोभा देता है। बाद में अनंगबोध जी के कहने पर बड़े संकोच के साथ आसन ग्रहण किया।

॥इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥



अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

गुरु शिष्य परम्परा निम्न प्रकार है—



धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी की श्रद्धा

सन् १९४९ या १९५० की बात है। भिटोरा (भृगु मुनि के नाम पर बसा भृगुठोरा जो असनी के २ कि० मी० पश्चिम में है) में गंगा के किनारे एक बड़ा यज्ञ हुआ था जिसमें कृष्णबोध आश्रम जी और स्वामी करपात्री जी पधारे हुए थे। दिगम्बर स्वामी विरक्त सन्त थे। किसी यज्ञ सम्मेलन में नहीं जाते थे। किसी गृहस्थ के किसी उत्सव, कार्यक्रम में शामिल होने का तो प्रश्न ही नहीं था। भिटोरा के यज्ञ में भी नहीं गए। किसी ने कृष्णबोध जी से कहा कि पास में ही अनंगबोध जी असनी में हैं परन्तु यज्ञ में क्यों नहीं आए। स्वामी कृष्णाबोध जी ने कहा कि "आप लोग अनंगबोध जी को सन्तों की श्रेणी में गिनते हैं, वे तो साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं। सर्वत्र व्यापक हैं, कहां नहीं हैं? उन्हें कहां आना-जाना। भाग्य है असनी के निवासियों का तथा उस भूमि का जहां अनंगबोध जी रहते हैं। ऐसा सन्त दूसरा भारत भर में नहीं है।"

परमविरक्त स्वामी भिक्षुकमुनि (कन्नौज वाले) के अनुसार अनंगबोध जी की दृष्टि में सब ब्रह्म ही था द्वैत था ही नहीं। 'शेर के साथ खेल' शीर्षक आगे इसी पुस्तक में पढ़ें।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का अनुभव

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का दिगम्बर स्वामी से परिचय लगभग सन् १९२७-२८ से था। 'चैतन्य चरितावली' पुस्तक में महाप्रभु चैतन्य का जीवन वर्णन विस्तार से है। इसे प्रभुदत्त जी ने लिखा है। पाँचवें भाग में दिगम्बर स्वामी का उल्लेख 'अन्तिम निवेदन' प्रकरण में बड़ी श्रद्धा पूर्वक किया है। पुस्तक सन् १९३२ में लिखी, सन् १९३१ की घटना का उल्लेख किया है।

दूसरा उल्लेख प्रभुदत्त जी ने १९७२ में 'श्री भागवत दर्शन' खण्ड ८२-८३ के 'संस्मरण' प्रकरण में किया है। जिसमें अनंगबोध जी के साथ अबधूत वेश में घूमना स्वीकार किया है। इन दोनों प्रकरणों से पाठक स्वयं अनुमान लगा सकेंगे कि ब्रह्मचारी जी की दृष्टि में अनंगबोध जी कितने महान थे। दोनों संस्मरण अक्षरशः जैसे प्रभुदत्त जी ने लिखा है निम्न प्रकार हैं—

प्रथम संस्मरण 'चैतन्य चरितावली' से—

कानपुर के समीप नानामऊ नामक एक स्थान में पूज्यपाद श्री अनंगबोधाश्रमजी महाराज मिले। उनसे तीन-चार वर्ष पूर्व का ही परिचय था। तितिक्षाकी तो साक्षात् मूर्ति हैं। मैंने अपने जीवन भर में इतनी तितिक्षा करने वाला दूसरा व्यक्ति आज तक नहीं देखा। वे महापुरुष १०-१५ वर्ष से सदा दिगम्बर वेश में ही रहते हैं। जाड़ा हो, गर्मी हो, चाहे मूसलाधार जल गिरता हो, वे सदा नंगे ही रहते हैं। माघ-पूस के जाड़े में गंगा जी के किनारे कितनी सर्दी होती है, इसे गंगा किनारे पर रहने वाले व्यक्ति ही समझ सकते हैं, परन्तु वहां नंगे रहने वाले व्यक्ति मैंने और भी बहुत से देखे हैं, किन्तु ये महापुरुष तो ज्येष्ठ-वैशाख की धूप में बारह बजे से चार बजे तक गंगा जी की दहकती बालू में जानबूझ कर पड़े रहते हैं। कोई पुरुष इसका अनुमान भी नहीं लगा सकता। किन्तु यह कवि कल्पना थोड़े ही है, प्रत्यक्ष बात है। वे महापुरुष कहीं चले थोड़े ही गए हैं, अब भी गंगा किनारे वे कहीं तपी हुई बालू में पड़े होंगे। वे अधिकतर कानपुर (या शायद उन्नाव) ज़िले के बक्सर नामक ग्राम में कभी-कभी दो-चार महीने के लिए ठहर जाते हैं। नहीं तो काशी से ऋषिकेश तक गंगा के किनारे-किनारे ही विचरते हैं। काशी से आगे नहीं बढ़ते और ऋषिकेश से ऊपर नहीं चढ़ते, सहसा पड़े हुए मिल गए। मुझे टाट

की लंगोटी पहने देखकर हंसने लगे, बोले—लिखना-पढ़ना बिल्कुल छोड़ दिया न? अब तो लिखने पढ़ने की कोई वासना नहीं है। मैंने कुछ गर्वपूर्ण नम्रता के साथ कहा—जी नहीं, अब कोई वासना नहीं, सब फेंक फांक आया। आप हंसने लगे और बोले—यह शास्त्र वासना भी बड़ी प्रबल वासना होती है। इसका छूटना बड़ा कठिन है, चलो भगवान् की तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा हुई जो तुम्हारी यह वासना छूट गई। मैं चुप रहा। वहीं निश्चय हुआ कि हरिद्वार तक साथ-ही-साथ चलेंगे। किन्तु हमारा उनका साथ कैसा? वे महापुरुष यदि चलें तो एक दिन में पचास-पचास, साठ-साठ मील चले जायें और न चलें तो दस-दस, बीस-बीस दिन एक ही स्थान पर पड़े रहें। चलते समय में रात्रि, दिन, दोपहरी, वर्षा किसी की भी परवाह नहीं करते थे। अस्तु, मैंने कहा—"जहां तक चल सकेंगे साथ-साथ चलेंगे।"

"उन महापुरुष के साथ मैं चलने लगा। उनसे किसी प्रकार का संकोच या भय तो था ही नहीं। जिस प्रकार निर्भीक पुत्र अपने सरल पिता से सभी बातें बिना किसी संकोच के करता है, उसी प्रकार उनसे बातें होतीं। उनके जीवन में सचमुच मस्ती थी। मुझसे वे अनुमान में दुगुने लम्बे होंगे। लम्बा और इकहारा पतला शरीर था, चिरकाल की घोर तितिक्षा के कारण उनके शरीर का चर्म जंगली भैंसे के समान काला और मोटा पड़ गया था। दूर से देखने पर बिल्कुल प्रेत से प्रतीत होते। जब वे अपने सम्पूर्ण शरीर में गंगारज लपेट लेते तब तो उनके देव होने में किसी को सन्देह ही न रहता। गंगा जी की धारा को छोड़कर वे पग भर भी नहीं जाते थे। बिल्कुल तीर पर जो कोई गांव मिल जाए तो भिक्षा कर ली, नहीं तो हरि-इच्छा। गंगा माता के दर्शनों से वे अपने को वंचित रखना नहीं चाहते थे। विरक्ति मस्ती ही तो ठहरी। दिन में बीसों बार गंगा जी को पार करते, कभी इस पार चलने लगते तो कभी उस पार पहुंच जाते। गर्मियों में प्रायः सर्वत्र ही गंगा जी पार उतरने योग्य हो जाती है, वे घाट-कुघाट की कुछ परवाह नहीं करते, जहां मौज आयी वहीं पार हो गये। भय तो उन्हें होना ही किसका था। मैं भी उनका अनुकरण और अनुसरण करने लगा। एक स्थान पर उतर रहे थे, उनके पास तो कुछ वस्त्र या पात्र था ही नहीं, जल्दी से पार हो गये। मेरे पास जल-पात्र था, लंगोटी थी और एक टाट की चादर थी। जल अधिक था, मेरी लंगोटी आधी भीग गई। वे महापुरुष हंसकर बोले—ब्रह्मचारी! इस लंगोटी की भी इल्लत ही है, इसे भी फेंक दो। बस, इतना सुनना था कि मैंने लंगोटी फेंक दी। चादर फेंक दिया और कमण्डल भी इधर-उधर लुढ़कने लगा। उस समय मुझे दिगम्बर वेश में देखकर बड़ा ही आनन्द आया। वे महापुरुष ज़ोर से हंसते हुए

कहने लगे—अभी नहीं भाई-अभी नहीं। अभी तो इतने वस्त्र ठीक ही हैं। जब लंगोटी छोड़ने का समय आवेगा, तब मैं बताऊंगा। मैंने भी कुछ बिल्कुल छोड़ने की इच्छा से लंगोटी नहीं फेंकी थी, उनकी आज्ञा पाते ही लंगोटी पहन ली।"

"इस बात का कटु अनुभव मुझे वहीं हुआ कि शरीर का प्रारब्ध महापुरुषों को भी नहीं छोड़ता। शारीरिक दुःख-सुख सभी को भोगने पड़ते हैं, किन्तु भगवत्परायण विज्ञानी पुरुष उन्हें अपने में नहीं समझता। वह द्रष्टा की भांति खड़ा होकर दुःख-सुख को देखता रहता है। इतने बड़े तितिक्षु महापुरुष को भी शारीरिक पीड़ा बेचैन बनाये हुए थी, उनके आधे मस्तक में घोर दर्द हो रहा था, उनकी पीड़ा असह्य थी, किन्तु वे उसे बड़े साहस के साथ सहन कर रहे थे। मुझे पेट की भयंकर पीड़ा प्रायः होती है, उसी अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि उनकी पीड़ा बड़ी ही भयंकर थी, वे उसके कारण बेचैन थे। उन्हें कहीं लक्ष्य बनाकर आना-जाना तो था ही नहीं। उनकी मौज-मस्ती, फिर पीछे लौट आते। मेरा तो लक्ष्य अतिशीघ्र श्री बदरीनारायण प्रहुंचना था, अतः वे महात्मा एक स्थान पर डट गए। मैं रामपाल जी के साथ उनकी चरण-वन्दना करके आगे चल पड़ा। मैं उनके दुःख को किसी प्रकार बटा नहीं सकता था, जाने की शीघ्रता के कारण मैं उनको साथ लिए नहीं रुक सका।"

दूसरा संस्मरण भागवत दर्शन भाग ८२-८३ के 'संस्मरण' प्रकरण से—"एक महात्मा अनंगबोधाश्रम जी थे। उनके गुरु स्वामी शंकरबोधाश्रम जी थे। १०० वर्ष की अवस्था में भी वे हृष्ट-पुष्ट थे। अपने जीवन में मैंने स्वामी अनंगबोधाश्रम के समान दूसरा कोई तितिक्षु नहीं देखा। ज्येष्ठ-बैशाख की धूप में गंगा जी की बालू इतनी गर्म हो जाती है कि उसमें चना डालो तो भुन जाए। ऐसी दोपहर में वे दिन के दस बजे से चार बजे तक गर्म बालू में बैठे रहते थे। भैंसे के चर्म की भांति उनके शरीर की खाल हो गई थी। मेरे ऊपर उनकी बड़ी कृपा थी। कुछ दिन मुझे भी त्याग का भूत स्वार हुआ तो मैं उनके साथ-साथ नंगा घूमा था। वे किसी से भिक्षा की याचना नहीं करते थे। किसी ने दे दिया तो खा लिया नहीं तो दो-दो, तीन-तीन दिन भूखे ही रह जाते।

उन दिनों मैं झूसी के हंस तीर्थ वाली वट के नीचे की कुटी में रह कर अनुष्ठान कर रहा था। एक दिन रात्रि में स्वामी जी पधारे। मैं कुटिया की छत पर सो रहा था। उन्होंने पुकारा "ब्रह्मचारी! ब्रह्मचारी!"

ॐ



तितिक्षामूर्ति ब्रह्मलीन
स्वामी अनंगबोध जी महाराज

मैं उतर कर नीचे आया, चरण स्पर्श किये। पूछा—"महाराज ! भिक्षा करोगे ?"

हँसते हुए बोले—"हां, क्यों नहीं, कराओगे तो करेंगे।"

मैं समझ गया कि स्वामी जी कई दिनों से भूखे हैं। शीघ्रता से अंगीठी में कोयले डालकर आग जलाई। शीघ्रता से शाक छोंक कर परांठे बनाने लगा। मैंने कहा, "आईये स्वामी जी ! प्रसाद पाइये।" अब स्वामी जी प्रसाद पाने बैठे। अब याद तो नहीं कि कितनी बार मैंने आटा मांड़ा और क़ितने परांठे उन्होंने खाये। खाते जाएं और हँसते जाएं। बार-बार कहते जाएं, 'साधुः स्वादं विजानाति' अर्थात् अन्न का स्वाद तो साधु ही जानता है।

इस दूसरे संस्करण में ही ब्रह्मचारी जी ने दौलतपुर जाकर प्रसिद्ध साहित्यकार श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी से मिलने की बात, फरूखावाद में बरगदिया घाट तथा पुराने सन्त "कू" बाबा का उल्लेख किया है।

एक बार स्वामी परशुराम जी महाराज अवधूत वेश में जा रहे थे। दूर से प्रभुदत्त जी ने देखा तो समझा कि अनंगबोध जी आ रहे हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपने परमश्रद्धेय पुरुष को अचानक आते देख ले तो श्रद्धा-प्रेम के कारण भावावेश में आकर कहता कुछ है निकलता कुछ और है, ऐसा ही इस समय भी हुआ। प्रभुदत्त जी भावावेश में आ गए। तेजी से कुछ कहते हुए दर्शन करने के लिये आगे बढ़े। पास जाने पर कहा कि मैंने तो आपको अनंगबोध ही समझ रखा था। परशुराम जी ने कहा कि मैं तो उनका ही कलंक (दास भाव से तात्पर्य) हूँ। उसी समय ब्रह्मचारी जी ने चैतन्य चरितावली का प्रसंग दिगम्बर स्वामी के सम्बन्ध में लिखा हुआ दिखाया।

स्वामी सत्संगानन्द जी (बक्सर) अनंगबोध जी की बड़ी प्रशंसा करते थे तथा दिगम्बर स्वामी सत्संगानन्द जी की प्रशंसा करते थे।

पूज्य दिगम्बर स्वामी पैदल ही भ्रमण करते थे। गंगोत्री से गंगा सागर तक बड़े बाबा के साथ यात्रा की। हरिद्वार, ऋषिकेश, इलाहाबाद, कानपुर, बनारस, सीतामढ़ी, शृंगवेरपुर आते जाते थे। असनी कुटी, वागेश्वर (बक्सर), शिवपुरी कुटी, टेढ़वा कुटी, गुनीर कुटी, निबुआघाट, दरियापुर, तृनकुटिया (रावतपुर) आदि स्थानों पर कभी-कभी रुकते थे। गंगा के किनारे झाऊ के पेड़ों के बीच कभी पड़े रहते, कभी किसी पेड़ के नीचे रहते थे।

पहले असनी-गेगासों को जोड़ने वाला पुल नहीं था। असनी में जंगल तथा बाग बहुत थे। यहां के जंगल, बाग, नदी, नाले अनंगबोध जी को प्रिय थे। जब बड़े बाबा असनी कुटी में रहने लगे दिगम्बर स्वामी दिन में असनी कुटी में रहते थे और रात में इससे पश्चिम जहां अब पुल बना है, इस पुल के पूर्व एक कुटी बनी है, इस में रहते थे। उस समय यह जंगल के बीच सुनसान स्थान था। बड़े बाबा का शरीर जब (२१ अक्तूबर, १९४५) पूरा हो गया तो भक्तों के आग्रह करने पर असनी कुटी में रहने लगे। दिगम्बर स्वामी को कोई भय नहीं था, न किसी जीव को दिगम्बर स्वामी से। उनकी दृष्टि में सब एक ही तत्त्व था। वहां न शोक, न भय, न मोह, न दुःख का नामोनिशान। "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" (ईशा—७)। उस समय (ज्ञान की स्थिति में) उसको क्या शोक, क्या मोह क्योंकि उसकी दृष्टि में सब ब्रह्म (आत्मा) हो जाता है।

दिगम्बर स्वामी जी को कभी क्रोध नहीं आता था, शान्त मूर्ति थे। मान-अपमान से दूर, निन्दा-स्तुति से रहित, सुख-दुःख में समान, अहंकार रहित, ईर्ष्या-द्वेष के द्वन्द्वों से परे थे। शास्त्र जैसा ज्ञानी का लक्षण कहता है वैसे ही दिगम्बर स्वामी थे।

"निः स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च।
चलाचल निकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत्॥"

(कारिका-वैतथ्य—३७)

यति को स्तुति, नमस्कार, स्वधाकार (पैत्र कर्म) से रहित, चल (शरीर) अचल (आत्मा) में विश्राम करने वाला—अनायास प्राप्ति से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए।

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः सम दुःख-सुखः क्षमी॥ (गीता—१२-१३)

ज्ञानी सभी भूतों में द्वेष रहित, स्वार्थ रहित, प्रेम, करुणा-युक्त ममता, अहंकार से रहित, सुख-दुःख में समान और क्षमाशील होता है।

शीतोष्ण सुख दुःखेषु तथा मानापमानयोः" (गीता—६-७)

शीत (सर्दी), उष्ण (गर्मी), सुख-दुःख, मान-अपमान सब में ज्ञानी समान रहता है, समाहित चित्त होता है।

असनी के ही प्रसिद्ध कवि सूरज प्रसाद जी के शब्दों में अनंगबोध जी की छवि का सुन्दर तथा अक्षरशः सत्य वर्णन किया गया है ।

पिंगल अलोल लट लटकति मौलि मंजु,
छलकति शान्ति कान्ति माकर करोर की ॥
रीझै रोम-रोम भव भंगकरि भव्यभूति,
भूतपति भोलानाथ कीरति अछोर की ॥
कोटिन अनंग जीति अंगन अनंगवोध,
बोधपति 'सूरज प्रसाद' चित चोर की ॥
झांकि झांकि झांकी छकिपियत पियूष ज्ञान,
भाग्य असनी की असनी के चहुं ओर की ॥ (सूरज प्रसाद)

दिगम्बर स्वामी के परम भक्त वाराणसी निवासी श्री जगमोहन लाल पाण्डेय ने सुन्दर वर्णन किया है ।

स्वामी अनंगबोध नंग, अंग गंग तीर,
असनी घाट कुटी, कूल कलित किनारे हैं ॥
सघन बन झाऊ जहां हाऊ का न पौर-दौर,
दर्शत रज गंग अंग लोटत कछारे हैं ॥
नैन मूँदि बैठत, आसन सुगंगगोद,
भक्तन मन मन्दिर बैठि खोलत किवारे हैं ॥
गंगा की कछारन में प्रेम भरे नारन में,
सोई गुरुदेव ब्रह्म विचरत उघारे हैं ॥
—जगमोहन लाल

आपके गुरु भाइयों में प्रमुख थे स्वामी ब्रह्माश्रम जी (सीखर) मुक्तबोधाश्रम (बनकट-सीतामढ़ी), निजबोधाश्रम (कानपुर), रामचन्द्राश्रम (गुनीर), स्वामी भूमाश्रम (वागेश्वर), चिद्घनाश्रम, ब्र० मुक्तानन्द जी ।

आपके गृहस्थ शिष्य बहुत से थे । कुछ दीक्षित शिष्यों का पता चला है, बहुतों का पता नहीं है । श्री शिवेन्दु प्रताप सिंह की पत्नी (शशिधर की माता जी) मूसापुर, श्री जगदेव सिंह की माता जी सिधौरतारा तथा रामसिंह पूरे औदान सिंह ।

दिगम्बर स्वामी क्षमा की मूर्ति थे, क्रोध कभी देखा नहीं गया। कोई भी महात्मा जब पैदल विचरण करता है, हर प्रकार के लोग मिलते हैं। कुछ सत्वगुणी, कुछ रजोगुणी, कुछ तमोगुणी, कुछ प्रशंसक, कुछ निन्दक, कुछ उदासीन। जो महात्मा अवधूत वेश में विचरण करें, उसको निन्दक अधिक मिलेंगे। दिगम्बर स्वामी जी को भी ऐसे अनेकों लोग मिले होंगे। आगे 'प्रमुख घटनाएं एवं संस्मरण' प्रकरण में पाठक देखेंगे कि स्वामी जी में कितनी तपस्या की शक्ति थी। पुत्रहीनों को पुत्र, धनहीनों को धन, मृत्यु के पास गए तो नया जीवन मिला। परन्तु एक भी घटना ऐसी नहीं सुनी गई कि दिगम्बर स्वामी ने किसी को श्राप दिया हो। शक्ति होते हुए भी प्रतिकूलताओं को सहनकर लेना यही वास्तविक क्षमा है, अहिंसा है, अक्रोध और साधुता है।

पूज्य स्वामी अनंगबोध जी लोकैषणा (मान-सम्मान की इच्छा) से रहित थे, लोकैषणा छोड़ पाना ही सबसे कठिन है। अनंगबोध जी किसी यज्ञ, उत्सव में नहीं जाते थे। कोई आश्रम कुटी नहीं बनायी, कोई पुस्तक नहीं लिखी, अपने नाम से कोई कार्य किया ही नहीं। करपात्री जी, कृष्णवोध जी, प्रभुदत्त जी जैसे देश के प्रसिद्ध सन्त आपके पास आते थे परन्तु कभी किसी से नहीं कहा कि ऐसे प्रसिद्ध सन्त मेरे पास आते हैं। इसी तरह किसी सिद्धि की बात भी कभी किसी से नहीं करते थे।

एक वृद्ध सन्त बता रहे थे कि एक बार किसी महात्मा ने दिगम्बर स्वामी से पूछा कि महात्मा को कब तक, कब-कब जप करना चाहिए। दिगम्बर स्वामी ने कहा कि जब तक जीवन है तब तक चौबीस घण्टे जप करना चाहिए। महात्मा ने कहा कि यह तो असम्भव है। सोते समय कैसे सम्भव है। दिगम्बर स्वामी ने कहा कि जो जाग्रत में जप करता रहेगा उसका जप सोते समय भी होगा। महात्मा ने सोचा कि यह दिगम्बर स्वामी ने कैसे कहा परीक्षा ली जाए। जब दिगम्बर स्वामी सो रहे थे ध्यान लगाकर पास जाकर सुना तो हर सांस के साथ 'ॐ नमः शिवाय' का जप चल रहा था। ऐसा अजपा-जप दिगम्बर स्वामी का था।

लगभग १०० वर्ष से अधिक आयु हो चुकी थी। प्रारब्ध पूरा होने वाला था। आपका निर्वाण असनी कुटी में माघ शुक्ल त्रयोदशी, दिन शुक्रवार, सम्वत् (२००८), (आठ फरवरी सन् १९५२) को हुआ। व्यवहार की दृष्टि से पंच भौतिक शरीर, इन्द्रियां, अन्तःकरण अपने-अपने कारण तथा अधिदैव में लीन हो गए। आध्यात्मिक दृष्टि से सब ब्रह्म में लीन हो

गए। आपने पहले ही कोई शोभा यात्रा निकालने से मना कर दिया था। इसलिए शीघ्र आपके शिष्य स्वामी परशुराम जी की उपस्थिति में शरीर गंगा में प्रवाहित कर दिया गया। त्यागी, तपस्वी, तितिक्षामूर्ति, ज्ञान-भण्डार, सदैव ब्रह्मभाव में रहने वाले भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, दिगम्बर स्वामी से असनी क्षेत्र रहित हो गया।

आपकी समाधि असनी कुटी में बना दी गई। आपके उपदेशों में प्रमुख बात होती थी कि सब ब्रह्म ही है। इसका अनुभव होना ही साधना का फल है। वास्तव में आपकी दृष्टि से सब ब्रह्म ही था, दूसरा कुछ था ही नहीं। इसलिए आपकी समाधि पर "वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" गीता का प्रसिद्ध श्लोक अंकित कर दिया गया है। आपकी समाधि के पश्चिम में बड़े बाबा की समाधि है। इन दोनों महान सन्तों के दर्शन जिसने एक बार कर लिये वह पूरे जीवन कभी भूल नहीं सकता। आज भी श्रद्धालु इन दोनों समाधियों को जाकर नमन करते हैं।

दिगम्बर स्वामी के प्रमुख शिष्य थे स्वामी परशुराम जी (संक्षिप्त परिचय इसी पुस्तक में) जो अब नहीं हैं। परशुराम जी कभी-कभी असनी आते थे। परशुराम जी की अनंगबोध जी पर अपार श्रद्धा थी। कुछ पद गुरु महिमा पर परशुराम जी ने लिखा था **"चरण कमल भजु गुरु के प्यारे" "सद्गुरु की कौन बड़ाई गाऊँ". "टटहा! तुमको मोरी लाज" "मो सम को मति मन्द अभागी"** यह पूरे पद परशुराम जी के जीवन प्रकरण में इसी पुस्तक में लिखे गए हैं। दूसरे शिष्य थे स्वामी विश्वेश्वराश्रम। परन्तु विश्वेश्वराश्रम जी ने वृद्धावस्था में संन्यास लिया था। अनंगबोध जी के निर्वाण के २ वर्ष बाद ही इनका शरीर सन् १९५४ में पूरा हो गया।

कुछ अन्य सन्त व ब्रह्मचारी दिगम्बर स्वामी पर श्रद्धा रखते थे जैसे वद्री बाबा, मौनी स्वामी, स्वामी चैतन्य देव जी, स्वामी शिवशंकर आश्रम जी, गंगाश्रम, श्यामाश्रम, ब्रह्मचारी महानन्द आदि। ब्रह्मचारी महानन्द तथा बद्रीबाबा ने सर्वाधिक समय दिगम्बर स्वामी तथा बड़े बाबा के पास बिताया तथा आदर्श सेवा किया।

॥इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

प्रमुख घटनाएं एवं संस्मरण :

शेर के साथ खेल

(द्वारा—शिवशंकर मास्टर सैरापुर, पो०-मूसापुर जिला—रायबरेली)

सन् १९६२ से १९६७ के मध्य एक विरक्त महात्मा भिक्षुक मुनि जी (कन्नौज ज़िला फरूखाबाद) कन्नौज वाले लालू के पुरवा (वेनीमाधोगंज के पास) भीट पर आते थे । उस समय मैं वेनीमाधो गंज में प्रधानाचार्य था, प्रतिदिन भिक्षुक मुनि के दर्शन करता था । सूर्यास्त तक उनके पास रहता था और भी बहुत से लोग दर्शन हेतु आ जाते थे । एक दिन प्रसंग वश मेरे मुख से पूज्य स्वामी अनंगबोध जी का नाम आ गया । नाम सुनते ही भिक्षुक मुनि बोले, कि मास्टर जी ! वह तो भारत के माने हुए वीतरागी संन्यासी थे । उनकी दृष्टि में संसार नहीं था सब ब्रह्म ही था । एक बार का हरिद्वार का प्रसंग बताता हूं मैं (भिक्षुक मुनि) स्वयं उस घटना के समय उनके साथ था ।

मैं (भिक्षुक) मुनि ब्रह्मचारी रूप में हरिद्वार में था । वहीं पर स्वामी अनंगबोध जी महाराज का सान्निध्य प्राप्त हुआ । प्रातः काल १०—१२ मूर्तियों के साथ हम लोग शौचादि के लिए जंगल की ओर चले गये । २—३ दिगम्बर सन्त थे जिनमें अनंगबोध जी भी थे,६—७ दण्डी महात्मा तथा २—३ ब्रह्मचारी थे जिनमें मैं (भिक्षुक मुनि) भी था, घूमते-घूमते गंगा के किनारे पहाड़ियों में काफी दूर चले गये । एकाएक जंगल में बड़े जोर से शेर की गर्जना सुनाई दी । सभी लोग भय से कांप गए । जो जहां था वहीं पर प्राण रक्षा के लिए पेड़ों पर चढ़ने लगा । देखते ही देखते शेर आ गया । सभी लोग पेड़ों पर चढ़ गये । मैं (भिक्षुक मुनि) भी पेड़ पर चढ़ गया । सभी महात्मा अनंगबोध जी से पेड़ पर चढ़ने के लिए कहते रहे । परन्तु जब स्वामी जी वहीं पर खड़े रहे सभी ने सोचा कि अब शेर अवश्य अनंगबोध जी को खा जायेगा । ऐसा सोचकर पेड़ों पर से अन्तिम दर्शन और नमन किया । शेर अनंगबोध जी के सामने आकर खड़ा हो गया । स्वामी जी उससे खेलते रहे, सहलाते रहे काफी समय तक ऐसा होता रहा । एक बार शेर ने आपकी पूरी परिक्रमा की और खड़ा हो गया । पुनः स्वामी जी उसके साथ खेलते रहे । स्वामी जी ने कहा, "अच्छा बेटा ! अब तुम जाओ बहुत देर हो गई ।" शेर घूमा

आपकी ओर एक दृष्टि से देखा और जंगल की ओर चला गया। हम सब पेड़ों से उतरे और चरणों में गिर पड़े। एक सन्त ने कहा कि स्वामी जी हम सब आपके जीवन से निराश हो गए थे। अन्तिम नमन कर लिया था। क्या आपको भय नहीं लगा, स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा कि भय किसका—क्यों भय, भय तब होता है जब दो हों। जब सब एक ही हैं तब किससे भय, कौन किसे खायेगा।

भिक्षुक मुनि ने कहा कि यह घटना मेरी आंखों के सामने हुई, किसी की बताई हुई नहीं है।

वास्तव में दिगम्बर स्वामी **"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"** (योगसूत्र साधन पाद—३५) की व्याख्या थे। अर्थात् जब योगी अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है उनके सन्निधि (पास) में जीव वैर त्याग देते हैं। उसके पास शेर तथा बकरी एक साथ रहने लगते हैं। उसके अहिंसा, तप, त्याग के प्रभाव से दूसरे जीवों के अशुभ संकल्प दब जाते हैं, पूरा वातावरण अहिंसामय हो जाता है।

भिक्षुक मुनि प्रायः वेनीमाधोगंज के पास आते थे। आस-पास के लोग दर्शन करने जाते थे। अवधूत वेश में रहते थे। विरक्त सन्त थे। जब वह वस्त्र पहनते थे उस समय लालगंज के पास किसी गांव में आते थे, परन्तु काफी समय से नहीं आए। पता नहीं शरीर है या नहीं। कन्नौज के पास बस्ती से दूर जंगल में अधिक समय रुकते थे।

अनंगबोध जी और शेर

संस्मरणः—एक महात्मा द्वारा बताया गया संस्मरण

एक महात्मा जी ने किसी गृहस्थ भक्त को एक घटना सुनायी थी। इस घटना में महात्मा श्री अनंगबोध जी के साथ थे। एक बार अनंगबोध जी कुछ महात्माओं के साथ उत्तराखण्ड (गंगोत्री) के पास पैदल जा रहे थे। सामने से उसी मार्ग पर शेर आ रहा था। अनंगबोध जी ने कहा कि आप सब महात्मा पेड़ पर चढ़ जायें स्वयं छड़ी लिये रास्ते में ही खड़े हो गये। शेर पास आकर पालतू कुत्ते की तरह चरणों के पास बैठ गया। थोड़े समय बाद स्वामी जी ने कहा अब दर्शन हो गये, चले जाओ। शेर दर्शन कर जंगल की ओर चला गया। महात्मा शेर के चले जाने पर पेड़ से उतरकर आ गये और अपनी यात्रा पर चल पड़े। सभी महात्मा इस घटना को देखकर आश्चर्य में पड़ गये।

अनंग और भुजंग

तपोमूर्ति अनंगबोध जी के जीवन की तीन घटनाएं भुजंग (सर्प) से सम्बन्धित प्रकाश में आयी हैं।

(१) अपने गांव लाहौरी में आप प्रायः स्वामी रामाश्रम जी (बड़े बाबा के गुरु भाई) के पास रहकर जप—स्वाध्याय करते थे। किसी-किसी दिन जब आप जप करते थे एक काला सर्प आपके पास घूमा करता था। यह घटना जब स्वामी रामाश्रम जी को बतायी तो रामाश्रम जी ने कहा कि यह शंकर जी हैं डरना नहीं। उस समय तक अनंगबोध जी ने संन्यास नहीं लिया था।

(२) एक बार दिगम्बर स्वामी भीटार (जिला रायबरेली) से देवखेड़ा जा रहे थे, रास्ते में एक विषधर सर्प ने आकर चरण छुए बार-बार चरणों पर सिर पटकता रहा। स्वामी जी के चले जाने पर ही वापस लौटा।

(३) एक बार स्वामी जी शिष्यों के मध्य बैठे थे। एक सर्प आकर सिर पर चढ़ गया। शिष्यों को हटाने से टटहाबाबा ने रोक दिया। कुछ समय बाद स्वामी जी ने कहा कि शेष अब जाओ। आज्ञा पाते ही सर्प उतर कर चला गया।

इन्हीं घटनाओं को ध्यान में रखकर असनी कुटी में आपकी सामधि पर दो सर्प विराजमान दिखाये गये हैं।

बच्चे की प्राण रक्षा

टटहाबाबा टेढ़वा वाली कुटी में थे। जंगल में मल्लाह के एक लड़के को भेड़िये ने पकड़ लिया। बच्चे ने टटहाबाबा को पुकारा, बाबा बचाओं-बचाओं। इधर दिगम्बर स्वामी भक्तों के बीच बैठे-बैठे कहने लगे कि अपने माता-पिता को नहीं बुलाता मुझे परेशान करता है। परन्तु भक्त रहस्य नहीं समझ सके। थोड़ी देर बाद उस बच्चे के पिता ने बच्चे को लेकर आपके चरणों पर रख दिया। बच्चे ने कहा बाबा आप न आकर बचाते तो भेडिया मुझे उठा ले जाता। तब भक्तों को रहस्य का पता चला।

दृष्टव्यः— "मनोमयि सुसंयोज्य देहं तदनुवायुना।
मद्धारणात्तु भावेन तत्रात्मना यत्र वै मनः॥

(भागवत ११—१५—२१)

मन और शरीर को प्राण वायु के सहित मेरे साथ संयुक्त कर दे और मेरी धारणा करे तो इससे 'मनोजब' नामक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जहां जाने का संकल्प करता है वहां सशरीर उसी क्षण पहुंच जाता है।

२. **"निर्माण चित्तान्यस्मितामात्रात्" (योगसूत्र (४—४)**

३. **"प्रवृत्ति भेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम्" (योग सूत्र ४—५)**

उपरोक्त सूत्रों में कई शरीर धारण करने की बात स्वीकार की गयी है। २. अस्मितामात्र में चित के कारण को प्राप्त करके चित्त के द्वारा योगी अनेक रूप धारण कर सकते हैं। ३. बहुत से चित्तों का एकचित्त के अभिप्रायपूर्वक प्रवृत्ति अर्थात् सभी चित्तों का प्रयोजक एक चित्त का निर्माण प्रवृत्ति भेद से है।

शीतलाप्रसाद पर कृपा

(द्वारा रामकरण तिवारी—वनकट)

(सीतामढ़ी पोस्ट कटरा, जिला वाराणसी)

बाल्मीक आश्रम के दक्षिण गंगा के किनारे आम के बगीचे में उत्तर की ओर एक गुफा थी। इसी गुफा में पूज्य स्वामी (टटहाबाबा) जी रहते थे। पास की मड़ैया में अन्य सन्त (सच्चिदानन्द, कृतकृत्यानन्द (पंडित स्वामी) ब्र०—मुक्तानन्द (रायबरेली के थे), ब्र० महानन्द जी आदि रहते थे। स्वामी मुक्तबोध आश्रम (बड़े बाबा के शिष्य) की कुटिया भी यहीं थी। हमारे गांव (वनकट) की माता सरस्वती देवी का इकलौता पुत्र शीतला प्रसाद कठिन बीमारी से मरणासन्न था। बचने की कोई आशा नहीं थी। सरस्वती देवी की स्वामी जी पर बड़ी श्रद्धा थी। पुत्र को स्वामी जी के चरणों में लिटा दिया और दुःखी होकर विलाप करने लगी। सन्त हृदय ने दया की बच्चे को केवल स्पर्श किया उसी समय से बच्चा ठीक होने लगा, कुछ दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गया। आज शीतला प्रसाद के चार बच्चे हैं। पूरा परिवार स्वामी जी का कृतज्ञ है। शीतला प्रसाद जी का जन्म दिवस उस दिन नहीं मनाया जाता जिस दिन जन्म हुआ था बल्कि उस दिन मनाया जाता है जिस दिन टटहाबाबा का आशीर्वाद मिला था। यदि स्वामी जी की कृपा न होती तो सरस्वती देवी का परिवार ही समाप्त हो गया होता। इस घटना के बाद बड़ी भीड़ आने लगी जिसके कारण स्वामी जी स्थान छोड़कर अन्यत्र चले गये।

श्री गंगाप्रसाद मिश्र पर कृपा

(द्वारा भगौती प्रसाद मिश्र—बाल्मीक आश्रम वनकट (सीतामढ़ी) जिला वाराणसी)

गंगा के तट पर एक विशाल गूलर का वृक्ष था जिसमें कभी फल नहीं लगते थे। गांव के भक्तों द्वारा प्रार्थना करने पर पूज्य स्वामी अनंगबोध जी ने मिट्टी के कमण्डल से पेड़ की जड़ पर पानी डाला तबसे वृक्ष प्रतिवर्ष फल देने लगा। कभी-कभी भिक्षा बनती कम लोगों के लिये परन्तु भिक्षा के समय बहुत अधिक महात्मा, भक्त हो जाते, कभी भिक्षा कम नहीं होती थी। हमारे गांव बनकट में स्वामी जी के भक्त श्री गंगाप्रसाद मिश्र थे। इनके पुत्र नहीं था और न कोई आशा थी। टटहाबाबा की कृपा से एक पुत्र प्राप्त हुआ। आज यह परिवार स्वामी जी की कृपा से बड़ा परिवार हो गया। यहीं पर गंगातट पर स्वामी जी कंकरीली पथरीली भूमि पर वैशाख ज्येष्ठ की कड़ी धूप में वस्त्र विहीन पड़े रहते थे। ऐसे तितिक्षु तपस्वी महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हैं।

"**न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः** (गीता ५—१४) 'मुझ में न कर्तृत्व है न कर्म, न लोक की रचना है।"

"**ना दत्ते कस्यचित्पापं, न चैव सुकृतम् विभुः** (गीता (५—१५) 'न मैं किसी का पुण्य लेता हूं न पाप।'

अर्थात् ब्रह्म शुद्ध है पुण्य, पाप से परे है। इस प्रकार न बरदान है, न श्राप सब प्रतीतिमात्र है।

व्यवहारिक जगत में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, जीव सब सत्य है। कर्म तथा कर्मफल भी सत्य है। इसी कर्म सिद्धान्त को सामने रखकर समाधान वरदान तथा श्राप का किया गया है। प्रश्न भी व्यावहारिक दृष्टि से कर्म सिद्धान्त को मान कर किया गया था।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥



अथ पंचविंशतितमोऽध्यायः

स्वामी अव्यक्तबोध आश्रम जी महाराज

(स्वामी परशुराम जी)

स्वामी परशुराम जी का संन्यास का नाम अव्यक्त बोध आश्रम था। पूर्व आश्रम में आप रामलीला में परशुराम जी की भूमिका करते थे, उसी वेश में जंगल चले गए थे। इसलिए सभी भक्त आप को स्वामी परशुराम जी के नाम से जानते हैं।

आपका जन्म किस सन् में हुआ निश्चित पता नहीं है परन्तु सन् १९०५ के आसपास आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में ग्राम गौरो अमारा (जसपुरा के निकट) में हुआ था। आपके पिता बड़े ही सदाचारी सनातनी थे। पिता जी का नाम पण्डित बड़े महाराज मिश्र माता का नाम रुक्मिणी देवी था। कहा जाता है कि रुक्मिणी देवी के गर्भ में यह आपका दूसरा जन्म है। पहले जन्म का शरीर केवल ५ वर्ष रहा। दूसरे जन्म में अपने पहले जन्म की कुछ घटनाएं बताकर पुनः जन्म की पुष्टि की। आपका नाम माता-पिता ने श्री वलदेव प्रसाद मिश्र रखा। बचपन से ही आप में वैराग्य के लक्षण थे। आठ वर्ष की आयु में एक बार एक सन्त की कुटिया (६ किलो मीटर दूर) की ओर अकेले चल दिए परन्तु रास्ते से ही घर के लोग पकड़ लाए। पिता जी का देहावासन आपके बचपन में ही हो गया। आपका यज्ञोपवीत संस्कार ९ वर्ष की आयु में हुआ, उसके बाद विवाह ग्राम-नादादेवा (जिला बांदा) में किया गया। एक पुत्र श्री राम विशाल मिश्र हुए, माता नेत्रहीन हो गई, पिता जी का देहावासन हो ही गया था इसलिए किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं मिल पायी। गांव में ही एक सन्त ठा० महाराज सिंह रहते थे, उन्हीं से हिन्दी संस्कृत का अध्ययन किया। ठा० महाराज सिंह ने अनेक आध्यात्मिक भजन बनाए थे।

आपको पहलवानी वाद्यकला रामलीला में परशुराम की भूमिका में विशेष रुचि थी। आपने बाद में अनेकों भजन जो स्वयं तथा आपके भक्त गाते थे। आपके शरीर की बनावट परशुराम जी की भूमिका के लिए सर्वथा अनुकूल थी। गौरवर्ण लम्बाशरीर ओजस्वी चेहरा उस पर परशुराम की वेशभूषा देखते ही बनती थी। पहली परशुरामी आपने सिन्धनकला (वांदा) में की। यहीं से आपकी ख्याति हुई। अनेक स्थानों से आपके लिए आमन्त्रण आने

लगे। आपके नाम से ही दर्शकों की भीड़ जमा हो जातीथी। आप भूमिका करने पर कोई पारिश्रमिक नहीं लेते थे। अनेकों स्थानों पर परशुराम की भूमिका की। अन्तिम परशुरामी चित्रकूट कर्वी में सम्वत् २००१ (१६ सितम्बर, १९४४) में की। १९ सितम्बर को प्रातः **"कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए वनहि तप हेतु।"** कहते ही आप परशुराम वेश में ही चित्रकूट के जंगल में प्रवेश कर गए। लोगों का समूह ढूंढने के लिए निकल पड़ा, परन्तु सब व्यर्थ। कुछ काल आप वैराग्य की इसी स्थिति में भ्रमण करते-करते चित्रकूट में श्री भरत शरण (रामधाम) रामायणी के पास पहुंचे। रामायणी जी ने आपका स्वागत किया। परशुराम जी ने रामायणी जी की कुटी में तपस्या प्रारम्भ की।

चित्रकूट में आपका सम्पर्क अन्य सन्तों से हुआ। पीली कोठी के प्रसिद्ध सन्त अखण्डानन्द जी से भी सम्पर्क हुआ। जीवन पर्यन्त परशुराम जी अखण्डानन्द जी के प्रशंसक रहे।

अब आपकी इच्छा हुई किसी योग्य सन्त से दीक्षा लेने की। किसी वैष्णव सन्त ने कहा कि असनी (जिला फतेहपुर) में दो महान् विभूतियां हैं, उन्हीं से दीक्षा लें। आप चल पड़े असनी की ओर। असनी पहुंचने पर आपने दोनों महापुरुषों (बड़े बाबा तथा पूज्य अनंगबोध जी) के दर्शन किए। यहां निश्चय कर लिया कि दीक्षा दिगम्बरस्वामी से लेनी है।

दिगम्बर स्वामी किसी को दीक्षा नहीं देते थे। जो भी दीक्षा के लिए आता आप उसे बड़े बाबा के पास भेज देते थे। बड़े बाबा ही योग्य अधिकारी देखकर दीक्षा देते थे। इधर परशुराम स्वामी का निश्चय था कि दीक्षा दिगम्बर स्वामी से ही लेनी है। परशुराम स्वामी पूरी लगन से सेवा में लग गए। उस समय अनंगबोध जी की सेवा में बद्री बाबा थे। बद्री बाबा ने आश्वासन दिया कि धैर्य पूर्वक डटे रहो, कृपा अवश्य होगी। आप गांव से आटा मांगकर लाते, स्वयं भोजन बनाते और तप में लग जाते। आपकी स्मरण शक्ति तथा श्रद्धा देखकर एक दिन बड़े बाबा दिगम्बर स्वामी के पास आए और परशुराम जी को दीक्षा देने को कहा। गुरु जी की आज्ञा होने पर दिगम्बर स्वामी ने असनी कुटी में शुभ महूर्त में ब्रह्मचारी को दीक्षा दी। नामकरण हुआ 'अव्यक्त स्वरूप' ब्रह्मचारी। बाद में आपको हजारों व्यक्तियों के समक्ष दिगम्बर स्वामी ने संन्यास दिया और नामकरण किया "स्वामी अव्यक्तबोध आश्रम।"

दिगम्बर स्वामी जी से आपका सम्पर्क ६—७ वर्ष ही रहा। दिगम्बर स्वामी का शरीर सन् १९५२ में पूरा हो गया। बड़े बाबा से सम्पर्क कुछ माह ही रहा। बड़े बाबा का शरीर १९४५ में पूरा हो गया। दिगम्बर स्वामी द्वारा आपको दिया गया संन्यास पहला संन्यास था। बाद में दिगम्बर स्वामी ने एक और संन्यास सन् १९४६ में शिवपुरी के दद्दू (रजनू गुरु के पिता) जी को "विश्वेश्वर आश्रम" नाम से दिया।

अपने गुरु के प्रति सभी को श्रद्धा करनी चाहिए और लोग करते भी हैं। परन्तु परशुराम जी जैसी श्रद्धा अपने गुरुदेव दिगम्बर स्वामी पर रखते हैं वैसी शायद ही कोई रखता हो। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन आप दिगम्बर स्वामी का कोई संस्मरण न सुनाते हों। आप कहते रहते थे कि मैं तो बिना पढ़ा लिखा था आज जो कुछ है, टटहा बाबा की कृपा से है। उन्हीं के आशीर्वाद से मुझे लोग जानते हैं। दिगम्बर स्वामी का शरीर पूरा होने के बाद आपने गुरुदेव की जन्म भूमि ग्राम लहोली (जिला मिर्जापुर) में विशाल यज्ञ किया। जिससें अनेकों विद्वानों—संगीतचार्यों ने भाग लिया। कुएं का जीर्णोद्धार व रामलीला करवाई। वहां के लोग बताते हैं कि ऐसी विशाल तथा अच्छी रामलीला फिर कभी नहीं हुई, जैसी स्वामी परशुराम जी ने करवायी थी।

आपने भजन भी बनाए हैं जिनमें गुरु भक्ति स्पष्ट प्रकट होती है। वेदान्त परक, रामभक्ति, कृष्ण भक्ति और वैराग्य के भजन भी बनाए है। कुछ निम्न हैं—

चरण कमल भजु

चरण कमल भजु गुरु के प्यारे कोमल उजियारे॥
सेतुरूप भवसागर माहीं, उतर जात छिन माहीं।
ध्यावत सदा एक रसनीके श्रुति सिद्धान्त निचोरे॥
तीन अवस्था तीन गुणों से तुरीयातीत परे।
अर्ध-इन्दु औ विन्दुपार गुरु समरस उजियारे॥
कलातीत कल्याण काल गति कर्मन फल दाता।
अगुण सगुण चेतन घटसाक्षी अखिल लोक विस्तारे॥
अ उ म के सिरजन हारे ओंकार से न्यारे।
हिरदे जटिल कमल पद धारे "अव्यक्ता" हो भव पारे॥ (१)

सद्‌गुरु की कौन बड़ाई गाऊँ

श्याम शरीर विभूति विराजै हृदयासन बैठाऊँ।
हेरत हंसत मिटतत्रय ज्वाला केहि विधि अंग लिपटाऊँ॥
नहिं विद्या नहि तप कछु साधन, केहि विधि तुम्हें रिझाऊँ।
हम अस अधम अनेकों तारे केहि-केहि गाय बताऊँ॥
"अव्यक्त स्वरूप" तुम्हारा दर्शन मैं अणु-अणु में पाऊँ।
सत्गुरु की कौन बड़ाई गाऊँ॥ (२)

टटहा ! तुमको मोरी लाज

टटहा तुमको मोरी लाज॥
सदा सदा तै स्वामि हमारो मैं तुम्हारो पदराज।
तुम्हरे मिलत द्वैत भ्रम भागत काम होत निष्काम॥
जैसे लवण कंकड़ी जल मह पड़ते रूप विलात।
"अव्यक्त स्वरूप" स्वामि जब देख्यो तब पायो विश्राम॥ (३)

मो सम को मतिमंद अभागी

मो सम को मतिमंद अभागी।
काम क्रोध मद लोभ दम्भ की निशिदिन करत गुलामी॥
वर्ण धर्म आश्रम नहिं चीन्हेयो, ऐसो निपट हरामी।
तुम सन काह छिपी करुणानिधि, जानत अन्तर्यामी॥
ऐसे दीन मलीन हीन के, तुम ही एक असामी।
"अव्यक्त स्वरूप" जाऊँ कहां तजिके, तुम्हें दिगम्बर स्वामी॥ (४)

इसी प्रकार के अनेकों भजन बनाए। कृष्ण भक्ति के पद हैं, "कान मुरली की तान परी" "सखीरी श्याम सनेही काको" "सलोना रूप" "लाल तोरी हेरन गजबकरी" ! राम भक्ति के पद हैं, "रानी हम न जियब बिनुराम" वैराग्य के पद हैं "मन ! तूं तनिक नहीं सरमावते" "अब न आउब रामयाही बजरिया" "यहां न रहिवे जइवे देश" "जब मैं भूल्यो पथिक अनाड़ी" वेदान्त के पद हैं "प्यारे मन ! रण में चौक सजाना" "मन ! तू हुईजा स्वरूप दिवाना" "मन !

तू निज स्वरूप में डटना" "अलख निरंजन रूप हमारो, नाम रूप ना कोई" "अजर अमर अज अविनाशी" ऐसे ही अनेकों पद स्वामी परशुराम जी ने बनाए हैं।

आप में दिगम्बर स्वामी के प्रति अनन्य भक्ति थी। सन् १९९२ में आप चित्रकूट के पास बीमार थे। लगभग ४० दिन अन्न ग्रहण नहीं किया। बहुत कमजोर हो गए। आयु लगभग ९० वर्ष थी। आपने वहां भक्तों से कह दिया कि यदि मेरा शरीर पूरा हो जाए तो मेरा अन्तिम संस्कार यहां न करना। शरीर को असनी ले जाकर बड़े बाबा तथा दिगम्बर स्वामी जी की समाधि के पास रखकर उन्हें गंगा में प्रवाहित कर देना। गुरु के प्रति आपकी बड़ी श्रद्धा थी।

वेद थके, ब्रह्मा थके, थाके शेष महेश।
गीता की जहां गम नहीं वहां सन्त गुरु देश॥

स्वामी जी तपस्वी, त्यागी, स्पष्टवादी तथा प्रभावोत्पादक उपदेश देते थे। वांदा के कई गांवों में केवल आपके जाने मात्र से हिंसात्मक वृत्तियां शान्त हो गयीं। चित्रकूट में भक्तों ने "मोक्ष धाम" नामक आश्रम का निर्माण किया। बड़े समारोह के साथ उद्घाटन हुआ। गुरुदेव जी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा तू फिर माया में फंस गया, छोड़ दे। तुरन्त भागवत सप्ताह के पश्चात् पं० शिव मणिशास्त्री जी को आश्रम सौंपकर असनी चले आये। स्वामी जी की प्रेरणा से भिठौरा, टिपरहरी (पिप्पलाद मुनि की तपस्थली) पचनेही, भम्मौडी आदि स्थानों में आश्रम बनाये। चित्रकूट के महन्त प्रेम पुजारी जी की आप पर महती श्रद्धा थी। हमीरपुर, कानपुर फतेहपुर, रायबरेली में आपके बहुत भक्त थे। कुछ वर्ष पूर्व आप ने शरीर छोड़ दिया।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥२५॥

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

जन्म—१८८० ई. निर्वाण—१९९० ई.

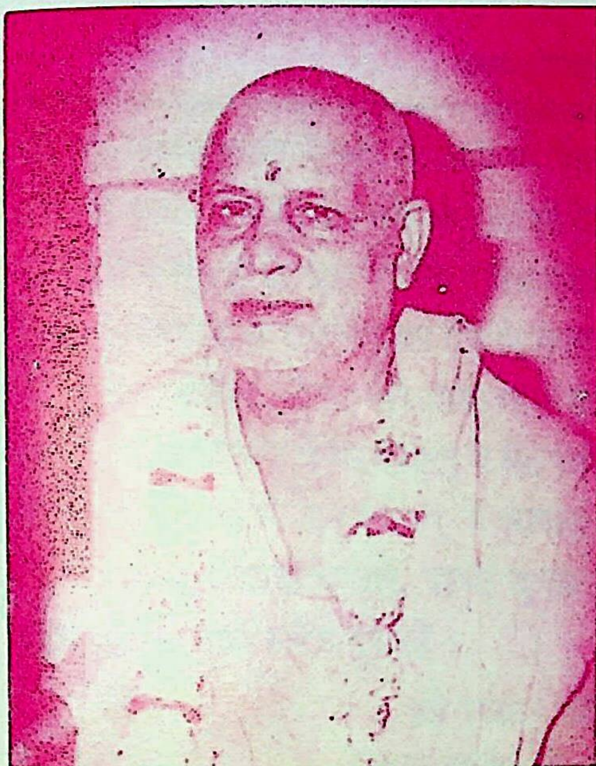
ब्रह्मचारी प्रभुदत्त जी को देश का हर व्यक्ति जानता है। आप स्वामी अनंगबोध पर अपार श्रद्धा रखते थे। कुछ समय आप भी अवधूतवेश में अनंगबोध जी के साथ घूमे थे। अनंगबोध जी के तप, तितिक्षा, त्याग की प्रशंसा किया करते थे। विस्तृत वर्णन अनंगबोध जी के प्रकरण में हम कर आए हैं।

आपका जन्म अलीगढ़ जिले में सन् १८८० में हुआ था। निर्वाण ११० वर्ष की आयु में सन् १९९० में हुआ। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़कर भाग लिया। कई बार जेल गए। आजादी के बाद भी कुछ समय तक राजनीति में रहे। सनातन धर्म तथा गौ रक्षा के लिए आन्दोलनों का नेतृत्व किया। कृष्ण भक्ति तथा भागवत का प्रचार किया। आप अच्छे लेखक भी थे। प्रयाग (झूंसी) में "संकीर्तन भवन", प्रतिष्ठान की स्थापना कर बहुत सी पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कीं। प्रमुख पुस्तकें हैं—श्री भागवत दर्शन (भागवती कथा—१०० से भी अधिक भागों में) भागवत चरित, श्री चैतन्य चरितावली (पांच भागों में), कृष्ण चरित, मतवाली मीरा, महात्मा कर्ण, श्री शुकदेव, मेरे महामना मालवीय जी, भक्तचरितावली तथा वृन्दावन माहात्म्य आदि।

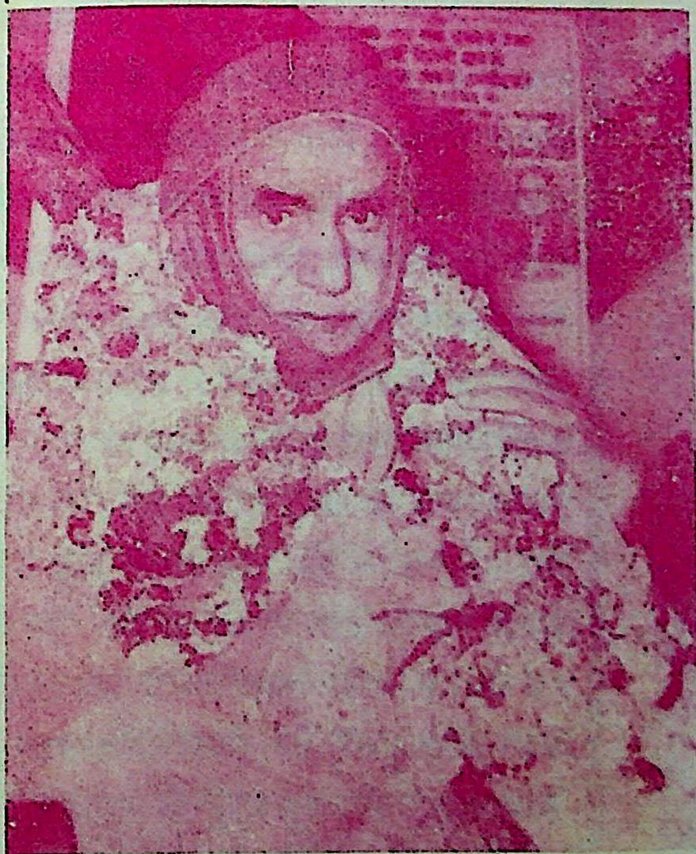
आपके असनी कुटी आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता परन्तु चैतन्य चरितावली भाग—५ के अन्तिम निवेदन प्रकरण के अनुसार अनंगबोध जी से परिचय उस समय से है जब अनंगबोध जी वक्सर के पास वागेश्वर मन्दिर में रुकते थे। अनंगबोध जी के विषय में आप लिखते हैं "मैंने अपने जीवन भर में इतनी तितिक्षा करने वाला दूसरा व्यक्ति आज तक नहीं देखा।" आपकी श्रद्धा रोटी वाले बाबा (रायबरेली) पर भी बहुत थी।

९५५ हरिहर बाबा
(बनारस) निर्वाण १९४९ ई.

आपका संन्यास का नाम स्वामी हरिहरानन्द जी था लेकिन हरिहर बाबा के नाम से ही प्रसिद्ध थे। आपका जन्म ग्राम जाफरपुरा जिला छपरा (बिहार) में हुआ था। बचपन का नाम सेनापति तिवारी था। पटना में संस्कृत शिक्षा पूर्णकर घर छोड़ दिया। वाराणसी में साधना प्रारम्भ की। कुछ समय अयोध्या में भी रहे पुनः वाराणसी लौट आए। स्वामी करपात्री जी आपका नाम भी आदर्श सन्त के रूप में लेते थे। हरिहर बाबा चौबीस घण्टे भगवान् शंकर, भगवान् राम के ध्यान में बिताते थे। उन्हें काशी अत्यन्त प्रिय थी। मलमूत्र त्याग काशी की सीमा के बाहर करते थे। सदैव दिगम्बर वेश में रहते थे। नौका पर आप निवास करते थे। बरसात, गर्मी, ठण्डी में सदैव उसी में रहते थे। आपके तप, त्याग, क्षमा, भक्ति की ख्याति पूरे काशी में फैल गयी। कुछ समय आप हिन्दू विश्वविद्यालय के पास गंगा घाट पर रहे। कुछ छात्रों ने उद्दण्डता की तो आप बिना कुछ कहे स्थान छोड़कर असीघाट चले गए। मालवीय



अनन्त श्री विभूषित परमभागवत सन्त श्री स्वामी विष्णुआश्रम जी महाराज श्री गंगातट, शुकताल (मु० नगर) एवं विहारघाट बुलन्दशहर ।



अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती जी महाराज (भूतपूर्व श्री नन्दलाल शास्त्री, एम० ए०, एल० एल० बी, संसद सदस्य) प्रधान सम्पादक-दैनिक सन्मार्ग, काशी ।



जी उस समय काशी में नहीं थे, आने पर पैदल हरिहर बाबा के पास क्षमा मांगने गए परन्तु आप तो पहले ही क्षमा कर चुके थे। काशी के बीतरागानन्द जी के पास भी काफी समय रहे। काशी में वनपुरवा के पास भी रहे। जब पैदल आप ठण्डी में गंगा के किनारे चलते तो भक्त कम्बल आदि ऊपर रात में डाल देते थे, परन्तु आप जब इच्छा होती उठकर चल देते। वस्त्र वहीं पड़े रहते कोई भी उठा ले जाता था। भयंकर सर्दी, गर्मी में आप नौका पर नंगे पड़े रहते, जेठ-बैशाख की गर्मी में गरम बालू में बैठे रहते, कभी भयंकर ठण्डी में गंगा जी में खड़े होकर जप करते थे। आपने सन् १९४९ में आषाढ़ मास में शरीर छोड़ा। आपका मुख्य उपदेश था **"इच्छा से छुटकारा पाओ, सभी दुःख समाप्त हो जाएंगे।"** लोकैषणा (मान सम्मान की इच्छा) से आप सदैव दूर रहें।

श्री शंकर चैतन्य भारती जी
(जन्म १९१६ ई. निर्वाण १९५८ ई.)

परम विरक्त शास्त्र चिन्तक स्वामी शंकर चैतन्य भारती जी का जन्म सन् १९१६ में जम्मू के पास हुआ था। संस्कृत भाषा जम्मू के किसी संस्कृत विद्यालय में पायी। आपने संन्यास बनारस में जयेन्द्रपुरी जी महाराज से लिया। आप परम तपस्वी थे तथा वेदान्त, न्याय, शैवाद्वैत, शून्यवाद तथा विज्ञानवाद आदि पर गम्भीर चिन्तन किया। सदैव गम्भीर चिन्तन में डूबे रहना आपका स्वभाव बन गया था। हर्ष मिश्र प्रणीत "खण्डन खण्डखाद्य" पर शारदा टीका लिखी, जिसमें लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व तक जितने आक्षेप अद्वैत विरोधियों ने लगाये थे, सबका युक्ति एवं शास्त्र के आधार पर खण्डन किया। परन्तु विषय इतने अन्तर्मुख होकर आपने लिखे कि बड़े-बड़े विद्वानों की भी समझ में नहीं आता था। पुनः शारदा टीका की टीका आपने राजहंस नाम से लिखी परन्तु राजहंस भी सामान्य बुद्धि की समझ में नहीं आ सकती। इसी "खण्डन" की टीका के मध्य एक "दर्शन सर्वस्वम्" नाम का स्वतन्त्र लेख अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ जो अलग से छापा गया। बनारस में ललिता घाट राजराजेश्वरी मन्दिर में रहते थे। १९५८ में शरीर पूरा हुआ बनारस में अन्तिम शोभायात्रा निकाली गई, परन्तु शरीर काफी समय तक गरम रहा। श्री शंकर आश्रम जी (बड़े बाबा) का भी शरीर पूरा होने के बाद काफी समय तक गरम रहा था। भारती जी महाराज कुछ समय कनखल (हरिद्वार) में भी रहे थे। आप उपासना और अनुष्ठान भी करते थे। साधारण भोजन (नमक मीठा रहित) करते थे।

माता गंगा पर बड़ी श्रद्धा थी। ठण्डी, गर्मी, बरसात में एक जैसे ही रहते थे, आपके तप, त्याग, चिन्तन ने बड़े-बड़े विद्वानों को प्रभावित किया। आप से अध्ययन करने वाले कई महापुरुष वाद में महामण्डलेश्वर हुए सभी आपकी प्रशंसा आदर्श सन्त के रूप में करते हैं।

साधना सदन (हरिद्वार) के संस्थापक महामण्डलेश्वर त्याग मूर्ति स्वामी गणेशानन्द जी ने न्याय दर्शन की प्रसिद्ध पुस्तक "गोलोकी" भारती जी से पढ़ी थी, जिस समय भारती जी कनखल में निवास कर रहे थे। मण्डलेश्वर जी अब भी भारती जी के त्याग, आदर्श चिन्तन की प्रशंसा करते हैं। आप से पढ़ने वालों में ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर कृष्णा नन्द जी (बनारस), ब्रह्मलीन महामण्डलेश्वर स्वामी अखण्डानन्द जी (नासिक), महामण्डलेश्वर गणेशानन्द गिरि जी भारती विद्यालय (हरिद्वार) प्रमुख हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे षड्विंशतितमोऽध्यायः।।२६॥

अथ सप्तविंशीतमोऽध्यायः

स्वामी रामाश्रम जी महाराज

स्वामी रामाश्रम जी स्वामी शंकरबोधाश्रम जी (बड़े बाबा) के गुरु भाई थे। जन्म किस सन् में हुआ ठीक किसी को पता नहीं है। जन्म मिर्जापुर जिले के भैंसा नामक ग्राम में हुआ था। घर का नाम रामस्वरूप द्विवेदी था। पिता जी का नाम रामलाल द्विवेदी था।

आप अनंगबोध जी की जन्म भूमि (लाहोली) में अनंगबोध जी के बगीचे की कुटी में कभी-कभी रुकते थे। अनंगबोध जी आपके पास बचपन से ही आते जाते थे, आप से ही संन्यास लेना चाहते थे। परन्तु स्वामी रामाश्रम जी बड़े बाबा का बड़ा सम्मान करते थे इसलिए अनंगबोध जी महाराज को बड़े बाबा से ही ब्रह्मचारी तथा संन्यास की दीक्षा दिलाई।

स्वामी रामाश्रम जी ने गंगा के किनारे-किनारे १०८ कुटियों की स्थापना की। आप शास्त्र के विद्वान् तथा बड़े ही तपस्वी सन्त थे। आपके दो शिष्य श्री नरहरि आश्रम तथा गोविन्दाश्रम थे। गोविन्द आश्रम के शिष्य वंशी स्वामी थे जो बालनाथन में रहते थे।

स्वामी रामाश्रम जी ने निःसन्तान बहादुरलाल मुख्त्यार को आशीर्वाद दिया, दो पुत्र, एक लड़की प्राप्त हुए। जगनूलोनिहा को सन्तान प्राप्त हुई। लालमन पाण्डेय (पाठकवरो के पास) निःसन्तान थे आपके आशीर्वाद से दो लड़के, दो लड़कियों का जन्म हुआ।

आपके शिष्य गोविन्दाश्रम वालनाथन में रहते थे। इस कुटी का जीर्णोद्धार पूज्य स्वामी परशुराम जी ने बाद में करवाया। वंशी स्वामी भी यहीं रहते थे। वालनाथन कुटी मिर्जापुर जिले में झींगुर स्टेशन के पास ३ किलो मीटर दक्षिण में है। यहां बड़े बाबा, रामाश्रम जी, टटहा बाबा भी आते जाते रहते थे। बक्सर के पास वागेश्वर की बारादरी भी स्वामी रामाश्रम जी की प्रेरणा से चहोतर के श्री गंगादीन शुक्ल ने सन् १९३२ में बनवाया था परन्तु यह वही रामाश्रम (बड़े बाबा के गुरु भाई) थे या कोई अन्य ठीक-ठीक पता नहीं चल सका।

९५८ स्वामी ब्रह्माश्रम जी दण्डी

स्वामी ब्रह्माश्रम जी बड़े बाबा के शिष्य तथा दिगम्बर स्वामी के गुरु भाई थे। आप भागवत, व्याकरण, प्रस्थानत्रयी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। सामाजिक कार्यों में भी रुचि लेते थे। १९६७ में आप गैपुरा (जिला मिर्जापुर) से विधायक जनसंघ के टिकट पर हुए। सीखर (जिला मिर्जापुर) में आपने अपने गुरुदेव की स्मृति में शंकर इण्टर कॉलेज (कुछ लोगों के अनुसार डिग्री कॉलेज) बनवाया। अपनी जन्म भूमि पाठकवरीपुर (बेहसड़ा) जिला मिर्जापुर में भी एक इण्टर कॉलेज बनवाया। दोनों कॉलेज अब भी चल रहे हैं। हाथीवन (जिला मिर्जापुर) में गौ शाला बनवायी।

आपका जन्म जिला मिर्जापुर में ग्राम पाठकवरीपुर (बेहसड़ा) में हुआ था जो विन्ध्याचल से पश्चिम में हैं। पाठक परिवार में जन्म हुआ, किशोर अवस्था में ही माता-पिता का देहान्त हो गया। आप गायें चराते, लघु सिद्धान्त कौमुदी, भागवत पढ़ते थे। धीरे-धीरे आपका सम्पर्क महात्माओं से बढ़ गया, वैराग्य बढ़ता गया। आप सत्गुरु की खोज में लग गए। स्वामी शंकराश्रम जी (बड़े बाबा) से आप सर्वाधिक प्रभावित हुए। बड़े बाबा के त्याग, व्याकरण, भागवत, उपनिषद के ज्ञान से आप प्रभावित हुए। बनकट—सीतामढ़ी (जिला बनारस) में बड़े बाबा से संन्यास ले लिया। आपने बड़े बाबा की सेवा करते हुए गंगोत्री से कन्याकुमारी तक भ्रमण किया। आपकी गणना बड़े बाबा के विद्वान् शिष्यों में की जाती है। अब शरीर पूरा हो चुका है। आपका प्रमुख कार्य क्षेत्र सीखर ग्राम रहा। सीखर डगमग स्टेशन (चुनार के पास) से दो-ढाई किलो मीटर उत्तर में गंगा के किनारे स्थित है। आप प्रायः असनी कुटी आते रहते थे।

९५९ स्वामी रामचन्द्र आश्रम
(जन्म .... निर्वाण १९५१ ई.)

स्वामी रामचन्द्राश्रम बड़े बाबा के शिष्य स्वामी अनंगबोध जी के गुरु भाई थे। अवधूत वेश में अनंगबोध जी की तरह रहते थे। गीता, भागवत, उपनिषदों का गहन अध्ययन किया।

आपका जन्म ग्राम कुम्हरावां (शिवगढ़ से पूर्व एक किलो मीटर) जिला रायबरेली में हुआ था। आपके पिताश्री रामचरण तिवारी बड़े ही धार्मिक व्यक्ति थे। आपका गृहस्थका नाम रामजियावन तिवारी था। १७ वर्ष की आयु में विवाह हो गया। आपके दो पुत्र हुए, दोनों साधु हो गये। बड़े पुत्र रामदुलारे तिवारी ने १३—१४ वर्ष की आयु में ही घर छोड़ दिया। नाम अखण्ड स्वरूप ब्रह्मचारी हुआ। छोटे पुत्र रामप्यारे तिवारी संगीत के प्रेमी थे, यह भी साधु वेश में आ गए, नाम अनन्त स्वरूप ब्रह्मचारी हो गया। आपकी चचेरी बहन (राजदेवी) भी स्वामी ज्ञानानन्द (चित्रकूट वाले अखण्डानन्द जी के शिष्य) से दीक्षा लेकर गांव में कुटी बनवाकर साधु वेश में रहती है। अब नाम आनन्द देवी है। आयु लगभग ९६ वर्ष की है।

स्वामी रामचन्द्राश्रम जी की शिक्षा उर्दू सहित मिडिल स्कूल तक थी। पुलिस में सिपाही, हेडकान्स्टेविल तथा थानेदार आदि पदों पर रहे। वैराग्य के संस्कारों के कारण नौकरी छोड़कर अपने गांव चले आए। गांव में ही छप्पर की कुटी बनाकर रहने लगे, यहीं पर पत्नी भी रहने लगी। कुछ वर्ष बाद पत्नी का निधन हो गया। पुत्र का पालन आपकी माता जी ने किया। शिवगढ़ के राजा स्व० रमेशर सिंह आपके सहपाठी थे। वस्त्र, भोजन का प्रबन्ध राजा साहब करवाते थे।

कुछ समय बाद आपने गांव भी छोड़ दिया। भ्रमण करते-करते काशी पहुंचे। वहां आप वेदों, उपनिषदों, भागवत, व्याकरण के विद्वान त्यागी-तपस्वी सन्त श्री शंकर आश्रम (बड़े बाबा) से अत्यधिक प्रभावित हुए और काशी में ही बड़े बाबा से संन्यास ग्रहण कर दण्ड ले लिया, नामकरण रामजियावन तिवारी से स्वामी रामचन्द्राश्रम हो गया। १२ वर्ष बाद गांव आए, वृद्ध माता से आशीर्वाद लिया। माता के जन्म (आगामी) के विषय में बता दिया तथा कहा कि एक वर्ष के अन्दर माता का शरीर पूरा हो जायेगा।

बाद में रामचन्द्राश्रम जी दिगम्बर हो गए। भगवान् शंकर के भक्त थे। आप अनंगबोध जी के बड़े प्रशंसक थे। एक बार गंगोत्री से गंगा सागर तक गंगा जी की पैदल परिक्रमा की

थी। जमुरावां, द्वारिकापुरी, कुटिया गुनीर (सभी फतेहपुर जिले में), कोरिहरा, चकमलिकपुर भीटी, सहजोरा, फल्टीखेड़ा (सभी रायबरेली जिले में) तथा उन्नाव जिले के गांवों में भ्रमण करते थे। बहुत से गृहस्थ आपके शिष्य थे। आपका निर्वाण सन् १९५१ में द्वारिकापुरी (जिला फतेहपुर) में गंगा के किनारे हुआ।

आपके गांव के ही दस व्यक्ति आपके शिष्य थे। जिनमें कुछ देवतादीन विश्वकर्मा, रामगुलाम तिवारी आज भी जीवित हैं अन्य गांवों में भी आपके बहुत से शिष्य थे। आपके तप, त्याग ने बहुत से लोगों को प्रभावित किया।

श्री बद्रीबाबा
(जन्म १८८८ ई. निर्वाण १९७२ ई.)

पूज्य अनंगबोध जी के निकटतम सन्तों में सर्वाधिक निकट बद्री बाबा का नाम आता है। यद्यपि आप वैष्णव सन्त थे, परन्तु तप, त्याग, साधुता एवं सेवा के कारण आप बड़े बाबा तथा अनंगबोध महाराज जी के कृपा पात्र बने।

आपका नाम बद्रीनारायणदास था परन्तु बद्रीबाबा के नाम से ही प्रसिद्ध थे। बड़े बाबा आपको "स्फूर्णा' कहा करते थे।

आपका जन्म सन् १८८८ में श्री फतेहबहादुर सिंह चौहान के घर ग्राम मानपुर, पो० लच्छीपुर, ज़िला रायबरेली में हुआ था। माता-पिता की बद्रीनाथ (उत्तराखण्ड) यात्रा के पश्चात् जन्म हुआ था। इसलिए आपका नाम श्री बद्री सिंह चौहान रखा गया। आप छह माह के थे तभी आप के पिता जी का निधन हो गया। माता जी ने पालन पोषण किया। आर्थिक दृष्टि से आपका परिवार सम्पन्न था। सोलह वर्ष की आयु में आपका विवाह हो गया। श्री शिवमोहन सिंह चौहान तथा शिवबहादुर सिंह चौहान दो पुत्र हुए। इस समय आप के दो पौत्र श्री गणेश बख्शसिंह (अध्यापक वैसवारा इण्टर कालेज—लालगंज) तथा दिनेश बहादुर सिंह (कृषि कार्य में संलग्न) हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥



अथ अष्टविंशतितमोऽध्यायः

स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी ९६०

(जन्म १८६८ ई. निर्वाण १९५४ ई.)

स्वामी अनंगबोध जी के प्रमुख शिष्य स्वामी परशुराम जी का वर्णन हम पहले कर आए हैं। दिगम्बर स्वामी के दूसरे शिष्य थे विश्वेश्वराश्रम जी। दिगम्बर स्वामी ने इन्हीं दो को दीक्षा देकर संन्यास दिया था।

स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी का जन्म सन् १८६८ में ग्राम शिवपुरी (गेगासों) में कान्यकुब्ज पाण्डेय परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय थे। आपका घर का नाम विश्वेश्वर पाण्डेय था बचपन से ही ईश्वरपूजा तथा महात्माओं के दर्शन करते थे। बचपन में शिक्षा गांव की पाठशाला में प्राप्त की। आपने षट्शास्त्री में रामकुमार पाण्डेय, बलभद्र प्रसाद मिश्र से अध्ययन किया। श्री माधवाचार्य (रीवा नरेश के राजगुरु) से भी सम्पर्क हुआ। आप खजूर गांव के राणा साहब श्री उमानाथ सिंह के यहां राजपुरोहित हो गये, पूजा-पाठ करते, घर पर आकर भागवत कहते थे। वृद्धावस्था में आपने सन् १९४९ में अवधूत शिरोमणि दिगम्बर स्वामी से संन्यास ले लिया। शिवपुरी में ही गंगा के किनारे पूर्व से ही निर्मित 'शिवपुरी पक्की कुटी' में रहकर भगवत भजन करने लगे। आपका शरीर १३ जनवरी, १९५४ को पूरा हुआ।

आपके चार पुत्र थे एक पुत्र रजनू गुरु अब भी आश्रम की सेवा में संलग्न रहते हैं। अपने हाथ से झाड़ू तक लगाते हैं। आपके ही प्रयास से गंगा जी में पक्का घाट, जनाना घाट, सत्संग भवन धर्मशाला आदि का निर्माण हुआ।

९६१ स्वामी शिवशंकर आश्रम जी

स्वामी शिवशंकर आश्रम जी भी बड़े बाबा के ब्रह्मचारी थे, संन्यास बाद में किसी और से लिया। आप प्रायः शिवपुरी कुटी में रहते थे। यहीं पर आपका शरीर ९० वर्ष से अधिक आयु में पूरा हुआ। अन्तिम वर्षों में आपकी सेवा स्वामी जगदीश्वरानन्द जी (वक्सर) ने बड़ी लगन के साथ की। शिवशंकराश्रम जी स्वतन्त्रता सेनानी भी थे। आप ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु बड़े बाबा के आशीर्वाद से वेदान्त का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। आपको कभी क्रोध नहीं आता था।

आपका जन्म ग्राम कुटिया राउतपुर (जिला फतेहपुर) में हुआ था। घर का नाम शिवनन्दन था। आपके कोई सन्तान नहीं थी। आप तीन भाई थे।

९६२ स्वामी चैतन्यदेव आश्रम जी
(जन्म १९०१ ई. निर्वाण १९९२ ई.)

स्वामी चैतन्यदेवाश्रम जी बड़े बाबा के ब्रह्मचारी थे। अनंगबोध जी महाराज संन्यास प्रायः किसी को देते नहीं थे। बड़े बाबा का शरीर पूरा होने के बाद आपके ब्रह्मचारी ने संन्यास बनारस के किस मठ से लिया था। अनंगबोध जी तथा बड़े बाबा पर आपकी अनन्य भक्ति थी। प्रायः आप निंबुआ घाट (जिला फतेहपुर) में रहते थे, यहीं शरीर पूरा हुआ।

आपका जन्म सन् १९०१ में ग्राम रावतपुरकुटिया जिला फतेहपुर में हुआ था। पिता जी का नाम बद्री प्रसाद दुबे था। आपके घर का नाम चन्द्रिका प्रसाद दुबे था। आपकी एक लड़की अभी भी जीवित है। आपका शरीर आषाढ़ माह सन् १९९२ में लगभग ९१ वर्ष की आयु में पूरा हुआ। निंबुआघाट प्रायः अनंगबोध महाराज भी जाया करते थे।

९६३ महानन्द जी

बड़े बाबा तथा अनंगबोध जी महाराज की सेवा बहुतों ने की परन्तु दो नाम प्रमुख रूप से लिए जाते हैं ब्र० महानन्द जी तथा बद्रीबाबा।

ब्र० महानन्द जी ने दोनों महापुरुषों की बड़ी सेवा की। सदैव छाया की तरह साथ रहते थे। आपका जन्म ग्राम खानपुर, जिला बनारस में हुआ था। पिता जी का नाम भी रामदीन था। आप तीन भाई थे महानन्द, सदानन्द, लक्ष्मी नारायण। पूज्य अनंगबोध जी के पास जो भी दीक्षा के लिए आता था बड़े बाबा के पास भेज देते थे। ब्र० महानन्द जी बड़े बाबा के ब्रह्मचारी थे। अब आपका शरीर पूरा हो चुका है।

९६४ श्री बंशी स्वामी चौसठीमठ काशी

आप गोविन्द आश्रम जी के शिष्य थे। गोविन्द आश्रम जी स्वामी रामाश्रम जी (बड़े बाबा के गुरु भाई) के शिष्य थे। वंशी स्वामी प्रायः वालनाथन में रहते थे। आपका जन्म ग्राम दपतपुर जिला कानपुर में हुआ था। १९४७ में फौज से रिटायर हुए। १९५६ में स्वामी गोविन्द आश्रम जी के सम्पर्क में आये। आपका शरीर १९९१ या १९९२ में पूरा हुआ।

वालनाथन की कुटी मिर्जापुर जिले में झिगुरा स्टेशन से ३ किलो मीटर दक्षिण में है। इस कुटी का जीर्णोद्धार परशुराम स्वामी जी ने करवाया था। इस कुटी में बड़े बाबा तथा दिगम्बर स्वामी प्रायः आते जाते रहते थे।

९६५ स्वामी ईश्वराश्रम जी

स्वामी ईश्वराश्रम जी का पूर्व आश्रम का नाम पंडित ईश्वरदीन दुबे था। जन्म ग्राम मूसापुर, जिला रायबरेली में हुआ। आपने व्याकरण, भागवत, ज्योतिष का अध्ययन बड़े बाबा से किया। गांव से पैदल ३ किलो मीटर जाकर, नौका द्वारा गंगा पार कर असनी जाना, अध्ययन करना, उस समय कठिन कार्य था। उस समय असनी से गेगासों को जोड़ने वाला पुल नहीं था। गृहस्थ आश्रम में आप ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान् थे। भागवत की कथा करते थे। शुद्ध सात्विक जीवन था। बड़े बाबा तथा दिगम्बर स्वामी पर आपकी विशेष श्रद्धा है। १९८६ में आपने चौसठीमठ बनारस के वर्तमान संचालक स्वामी विश्वस्वरूपाश्रम जी महाराज से दण्ड ग्रहण कर संन्यास ले लिया। वर्तमान में आप शिवपुरी कुटी, असनी कुटी, निंबुआघाट, कानपुर, बनारस आदि में भ्रमण करते रहते हैं। आयु लगभग ८० वर्ष की हो चुकी है। बड़े बाबा तथा जटीले स्वामी के संस्मरण आप सुनाते रहते हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलि० खण्डे, अष्टम परिच्छेदे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोन त्रिंशतितमोऽध्यायः

९६६ स्वामी शिवारामाश्रम जी (मौनी स्वामी)

सिधौर तारा

(जन्म १९०७ ई. निर्वाण १९६६ ई.)

आपका नाम स्वामी शिवारामाश्रम संन्यास का था। परन्तु सभी भक्त मौनी स्वामी (सिधौर तारा) के नाम से जानते हैं।

आपका जन्म सन् १९०७ में फतेहपुर जिले में ग्राम भैरमपुर (हथगांव से १० किलो मीटर थरियांवा से ६ किलो मीटर) पो० मण्डासराय तहसील खागा में द्विवेदी परिवार में हुआ था। पिता श्री मोहन प्रसाद द्विवेदी थे। आपका घर का नाम श्री शिवराम द्विवेदी था। चार भाई थे श्री रामपाल द्विवेदी, श्री रामकृष्ण द्विवेदी, श्री शिवराम द्विवेदी (मौनी स्वामी) और श्री स्वयंवर प्रसाद द्विवेदी।

आपका विवाह १९ वर्ष की आयु में हुआ। बम्बई में रेलवे विभाग में टेलीफोन आपरेटर की नौकरी मिल गई। छोटे भाई श्री स्वयंवर द्विवेदी को भी रेलवे विभाग की नौकरी मिल गई। आप से एक पुत्र-पुत्री ने जन्म लिया।

गृहस्थी से आपको उपरामता हो गई, बिना किसी को बताए बम्बई छोड़ दिया। छोटे भाई स्वयंवर द्विवेदी ने बहुत खोजा परन्तु कोई पता नहीं मिला। घर में जमीन २०—२२ बीघा थी। बच्चे परिवार के साथ रहने लगे। आप तीर्थों में भ्रमण करते रहे, सत्संग सेवा में लगे रहे। तीन वर्ष बाद उत्तरकाशी से एक कुशलता का पत्र घर भेजा। कुछ वर्ष बाद एकाएक घर वालों से मुलाकात रसूलावाद स्टेशन (फतेहपुर से २० किलो मीटर इलाहाबाद लाइन पर) पर हो गई। घर वाले बड़ा आग्रह कर घर ले गए। ४—५ दिन बाद बिना बताए घर छोड़ दिया। काफी समय बाद आप संन्यासी वेश में दण्ड धारण किए हुए शिवपुरी कुटी आए।

संन्यास आपने सन् १९३२ में लिया। गुरु कौन थे ठीक पता नहीं है। एक बार परशुराम जी ने बताया था कि मौनी स्वामी के गुरु विरक्त सन्त यमुना के किनारे किसी गांव की कुटी में रहते थे। स्वामी दिव्यानन्द जी के अनुसार मौनी स्वामी जी के गुरु चौंसठीमठ (वाराणसी) की परम्परा के थे जो देवल गांव (जिला वांदा) में रहते थे। मौनी स्वामी कुछ समय शिवपुरी कुटी में रहकर टुटिया बाबा की कुटी (गंगा किनारे, शिवपुरी में पश्चिम तथा सिंघौर तारा से पूर्व) सन् १९४८ में आ गये। यहां आपने ७ वर्ष तप किया। टुटिया बाबा की कुटी से आप दिन में एक बार शिवपुरी जाकर भिक्षा मांग लाते थे। कुटी में एक छप्पर रख दिया गया, एक गुफा बन गई, यहीं साधना में लग गए। भिक्षा ५ या ७ घरों में मांगते थे जो मिल जाता वहीं पा लेते थे।

एक दिन आंधी आ गई, आम के पेड़ से बहुत से आम गिर गए। आपने आम उठाकर कुटी में रखा और भिक्षा के लिए शिवपुरी चले गए। किसी भक्त ने कहा कि स्वामी जी आज देर कैसे हो गई। स्वामी जी ने आम रखने की बात बताई। भक्त ने व्यंग किया कि आपको भी गृहस्थों जैसी चिन्ता सताती रहती है। उसी दिन स्वामी जी टुटिया बाबा की कुटी, छप्पर, कनदरा तथा आम का पेड़ सब छोड़कर सिंघौर तारा से आधा किलो मीटर पूर्व सन् १९५५ में आ गए।

सिंघौर तारा के लोगों ने छप्पर रखवा दिया। यहीं पर तप, जप, स्वाध्याय करने लगे। कुछ समय बाद दण्ड छोड़ दिया। मौन रहने लगे, लिखकर बताते थे। आप में बड़ा त्याग था, रुपया-पैसा तो छूते ही नहीं थे। क्षेत्र संन्यास ले लिया इसलिए कुटी में ही रहना गंगा स्नान करना यही दिनचर्या हो गई। दमा आपको हो गया था परन्तु आप कोई दवा नहीं लेते थे प्रारब्ध भोग समझकर भोगते थे। कोई गृहस्थ कोई वस्तु बाजार से खरीदकर लाता तो नाराज होते थे। दूध-घी नहीं खाते थे। मट्ठा, गुड़, आम, सत्तू आदि जो हर गरीब के यहां उपलब्ध होता है वही खाते। विशेष भोजन नहीं पसन्द था, जो भोजन घर के सभी सदस्य खाए वही भोजन स्वामी जी पसन्द करते थे।

आपका श्वास रोग (दमा) बढ़ता गया सम्वत् २०२३ श्रावण शुक्ला षष्ठी सन् १९६६ (२१ अगस्त दिन रविवार) को आपका शरीर ५९ वर्ष की आयु में पूरा हो गया। आप अन्तिम समय में बेहोश जैसे थे परन्तु हर सांस के साथ-साथ ॐ का जप पास खड़े लोगों को सुनाई पड़ रहा था। ऐसी अजपा-जप की साधना थी आपकी। आप अनंगबोध जी से भी मिलते रहते थे। स्वामी करपात्री जी के साथ ऋषिकेश में (कोयल घाटी) एक चातुर्मास किया था। आप बद्रीबाबा की साधुता की बड़ी प्रशंसा करते थे। कहते थे कि बद्रीबाबा जैसा सन्त इस क्षेत्र में नहीं है। आपने किसी को दीक्षा मन्त्र देकर संन्यास नहीं दिया और न किसी गृहस्थ को मन्त्र देकर शिष्य बनाया फिर भी बहुत से गृहस्थ आपके तप, त्याग से प्रभावित थे। आपके प्रभाव से कुटी के सामने गंगा में मछली पकड़ने वालों ने मछली पकड़ना छोड़ दिया। यह परम्परा अब भी चल रही है। जब आप मौन नहीं थे उस समय कोई वेदान्त का अध्ययन करने आता था तो अध्ययन करवाते थे। आप अपने नियमों पर बड़े दृढ़ रहते थे। सिंघौर तारा में ११ वर्ष तथा टुटिया बाबा की कुटी में ७ वर्ष तपस्या की।

प्रमुख घटनाएं

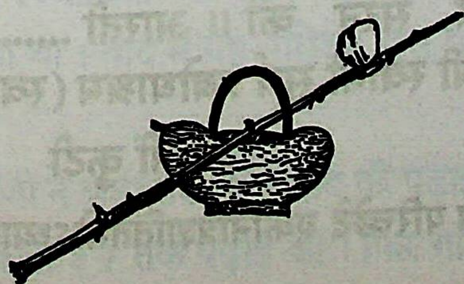
(१) श्री चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी के दामाद कलकत्ते में अनाज के व्यापार में दलाली का काम करते थे। एक बार पुलिस द्वारा दलाली काम में पकड़ लिए गए। जमानत नहीं हो रही थी। चन्द्रिका प्रसाद जी के यहां सूचना आई। पूरा परिवार चिन्तित हो गया। इतनी दूर से क्या किया जाए? त्रिपाठी जी मौनी स्वामी पर श्रद्धा रखते थे। सीधे कुटी गए, प्रणाम करते ही मौनी स्वामी जी बोले कि तुम्हारा दामाद छूट गया है। परेशान बेकार हो रहे हो।

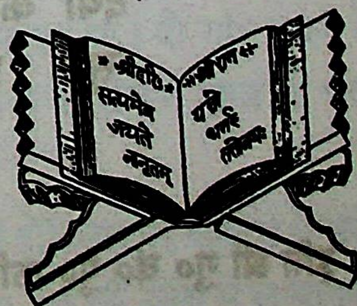
(२) एक बार एक सज्जन घर से कुछ आम लेकर स्वामी जी के लिए चले। रास्ते में पड़े हुए दूसरे के पेड़ के नीचे आम मिले उन्हें भी रख लिया। स्वामी जी को सारे आम दे दिये। स्वामी जी ने वह आम छांटकर अपने पास रख लिया जो घर से लेकर आए थे। वह आम वापस कर दिया जो रास्ते से उठा लिया था। सज्जन के बड़ा आग्रह करने पर कहा कि यह आम हमारे मतलब के नहीं हैं। क्या दूसरे के पेड़ से उठाते समय पेड़ के मालिक से पूछा था, पूछे बिना चोरी है। ऐसी कोई भी वस्तु कभी मेरे पास नहीं लाना। उस सज्जन ने स्वामी जी से क्षमा मांगी।

(३) एक बार एक सज्जन भिक्षा ला रहे थे। रास्ते में लघुशंका हेतु गए, भोजन रख दिया। जल उपलब्ध नहीं था। बिना हाथ-पैर धोए भिक्षा लेकर आ गए। स्वामी जी ने लिखकर कहा कि यह भिक्षा हमारे मतलब की नहीं है। सज्जन द्वारा विशेष आग्रह करने पर मौनी स्वामी जी ने लिखकर बताया कि रास्ते में लघुशंका के बाद बिना हाथ-पैर धोए लेकर आ गए इसलिए हमारे लिए अशुद्ध है। सज्जन ने अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी।

(४) ग्राम सिंघौर तारा के भक्त भिक्षा क्रमशः देते थे। एक घर से सप्ताह या पन्द्रह दिन भिक्षा लाता, उसके बाद दूसरे घर से।

एक बार स्वामी परशुराम जी ने अनंगबोध जी की जन्म भूमि लाहौली (जिला मिर्जापुर) में सन् १९७१ में निर्वाण दिवस अवसर पर उसी बाग में रामलीला करवायी जिसे बचपन में टटहा बाबा ने अपने हाथ से लगाया था। जो जनक की भूमिका कर रहे थे। रामलीला के समय रात में लघुशंका हेतु बाहर गये देखा एक अवधूत छड़ी लिए हुए दूर खड़े हैं। जनक की भूमिका करने वाले सज्जन ने कभी अनंगबोध जी को देखा नहीं था। जब अन्य लोगों को बताया तो लोग देखने गये कोई दिखाई नहीं पड़ा। जब टटहा बाबा का छड़ी लिए अवधूत वेष का फोटो दिखाया तो कहा कि यही अवधूत जी खड़े थे।





गुरु आरती

आरती स्वामी अनंग सद्गुरु की।
रूप तितिक्षु सब सिद्धि धर की॥ आरती ....

करम धरम श्रुति शास्त्र प्रकाशक।
जप तप नेम ज्ञान सुख दायक॥
ब्रह्म स्वरूप सन्त मुनि नायक।
शिष्य हृदय अघ हर-हर वर की॥ आरती ....

ज्ञान रूप अज्ञान निवारक।
दर्शन दुर्लभ सुलभ सुधारक॥
आदि अन्त विच बिनु जन भावक।
मद-हर मनसिज रूप सुधर की॥ आरती ....

लोक मान्य पावन मम स्वामी।
सहज स्वरूप अनूप अकामी॥
जय–जयकारी जगत–अनुगामी।
जयति दिगम्बर टटहा पद की॥ आरती ....

कैसे ध्यावें स्वामिचरण रज।
मम मन गति नहि मति अति अचरज॥
दया करहु हे हर हरि विधि हर।
'सूर्य प्रबोध' सुधार सरन की॥ आरती ....

श्री स्वामी सूर्य प्रबोधाश्रम (स्वात्मानन्द)

असनीं कुटी

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलि० खण्डे अष्टम परिच्छेदे एकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशतितमोऽध्यायः

काशी ईशानेश्वरमठ की परम्परा

अनन्त श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री मद्दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी महाराज (८७२)

पंजाब के सिद्ध परम तपस्वी संन्यासियों में स्वामी पुरुषोत्तम जी महाराज थे। अभी तक चौसट्ठी मठ के आद्याचार्य स्वामी मधुसूदनाश्रम जी महाराज के प्रथम शिष्य स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज की शिष्य परम्परा लिखी। अब ईशानमठ के सद्गुरु स्वामी शान्ताश्रम जी महाराज की परम्परा लिख रहा हूं। उनके एकमात्र शिष्य स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी महाराज थे। इनका जन्म विक्रमी सम्वत् १९४३ माघ कृष्ण प्रतिपदा को वशिष्ठ गोत्री ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जिला जालन्धर बंगा के पास "मेहलां गैलां" नामक ग्राम में हुआ था। यह सहजपाल ब्राह्मण थे। माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। माता का नाम मालन था, यह फम्बियां ग्राम की भम्बी गोत्रीय ब्राह्मण की पुत्री थी। पिता की बाल्यावस्था में मृत्यु हो गई। बहनोई की मृत्यु को सुनकर इनके मामे माता सहित अपने पास ले आये थे। वहीं पर इनका पालन-पोषण हुआ। छः वर्ष की आयु में दादूपुर गरोआ ग्राम के लोअर मिडिल स्कूल में भर्ती कराया। परन्तु मदन लाल जी ने जो स्वामी जी के अनन्य भक्त हैं, ने **गुरु महिमा** नामक पुस्तक में "गरोआ" की जगह "सूस" लिखा है। उनको स्वामी जी के प्रारम्भिक जीवन का ज्ञान नहीं है। मैंने यह गलती दुहराई। स्वामी जी "गरोआ" में मेरे छोटे ताया पंडित जमुना दास जी के साथ पढ़ते थे। सूस में उस समय कोई स्कूल नहीं था। सन् ४२ में मेरे वृद्ध प्रपितामह के स्थान में जिस को बुड्ढों का स्थान कहते थे, वहां पर बालिकाओं का स्कूल खुला था। वहां पर मेरी दो बहिनें पढ़ती थीं। सन् १९४७ में **"खालसा हाई स्कूल पज्जोदित्ता सूस"** नाम "पज्जोदित्ता" के बाहर महाराज पंडित की कोठी में खुला था। दो गांव वालों ने सहयोग दिया था। बाद में यह गरोआ, सूस, पज्जोदित्ता तीन गांवों के बीच में आज भी चल रहा है।

स्वामी जी ने छठी तक उर्दू आदि की पढ़ाई की थी। बाद में होशियारपुर कालेज में भर्ती हुये। वहां कक्षा १२ तक पढ़ाई की। फिर गांव चले गये। २० वर्ष की आयु में लायलपुर

में नहर विभाग के ओवरसियर हुये। यह स्थान अब पाकिस्तान में है। कुछ समय बाद विवाह हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि पहले आर्य समाजी विचारधारा के थे। आर्य समाजी पद्धति से विवाह हुआ। माता को यह स्वीकार नहीं था। इसके बाद एक दिन सास बहू हरिद्वार गंगा स्नान के लिये गईं। हरकी पौड़ी पर धर्मपत्नी जल में बह गयीं। वहीं मृत्यु हो गई। तब से आप मौनी हो गये। नौकरी छोड़ दीं। उसी समय घोड़े पर चढ़ कर चार नौकरों सहित ननिहाल आये थे। सब कुछ छोड़कर सद्गुरु की खोज में निकले।

गुरु की खोज, संन्यास दीक्षा

२४ वर्ष की आयु में कठोर साधना में लग गये। अपने पास दो धोती रखते थे। वैराग्य की तीव्रता में माता से मिलने, प्रणाम करने तथा आज्ञा लेने की आवश्यकता भी नहीं समझी। नैनोवाल जट्टां का मेहरचन्द नाम का ब्राह्मण इनका मित्र था। उनके साथ नैनोवाल आ गये। वहां पर चोई के किनारे ग्राम से उत्तर में बाबाभानु की सदियों पुराने ब्राह्मणों के गुरु की समाधि है। वह स्थान इनके मन को भाया। मामाओं ने साधना में विघ्न डाला, परन्तु सफल नहीं हुये। जन्म का नाम पंडित राम रक्खा था। जिन दिनों नैनोवाल रहते थे। सुलफा गांजा पीते थे। स्वामी जी ने मुझे स्वयं बताया। एक दिन मैं ने अपने को स्वयं धिक्कारा तू साधू होने चला है। मां, धन, सम्पत्ति त्यागी। तुझ से यह व्यसन नहीं छूटता। मैंने जोर-जोर से अपने तमाचे मारे, पश्चात्ताप किया। तब से ग्रहण नहीं किया। बालक का हठी स्वभाव था। वाल्यावस्था में फम्बियां वालों की कठोर तपस्या साधना देखी थी। वैसे ही दण्डी होने का निश्चय किया। वे कहते थे—"पानी पीजिए छान के। गुरु कीजिए जान के। शिष्य गुरु को गुरु शिष्य को एक से तीन वर्ष के भीतर खूब परखे। दो पैसे का घड़ा खरीदने में भी उसे ठोक पीट कर देखा जाता है। अतः शिष्य को गुरु सूझ-बूझ से करना चाहिये। गुरु शिष्य के अनन्त जन्मों के पापों को अपने सिर पर रखता है। अतः शिष्य की खूब परीक्षा करनी चाहिये। गुरु रेल का इंजन है। चेले डिब्बा हैं। डिब्बे की सारी खराबी का भार इंजन को जैसे खींचना पड़ता है, वैसे ही डिब्बा रूपी शिष्य के भार को गुरु रूपी इंजन को खींचना पड़ता है। परन्तु काले कोयले पड़ने से इंजन काला हो जाता है।"

सर्व प्रथम लड़ोई में विक्रमी सम्वत् १९६५ में आये। वहां का विस्तार से वर्णन लड़ोई वाले स्वामी जी के चरित्र में किया जा चुका है। वहां दीक्षा नहीं हुई। वहां से चलते समय १४ वर्ष तक अन्न त्यागने की प्रतिज्ञा की। लड़ोई से सीधे हरिद्वार पहुंचे। वहां पर "दण्डी स्वामी उपेन्द्राश्रम जी" महाराज प्रतिष्ठित सन्त थे। ब्रह्मचारी वहां पहुंचे। वहां से भी निराश होना पड़ा। स्वामी जी की भिक्षा बनाने वाली ब्राह्मणी नहीं थी। दण्डी को ब्राह्मण से ही भिक्षा लेना चाहिये। वहां से ऋषीकेश गये। वहां के गुरु ब्याज पर धन देते थे। दण्डी को पैसा रखना दोष है, इससे विकार उत्पन्न होता है। ऋषीकेश से पैदल काशी पहुंचे। अनेकों दण्डियों का दर्शन तथा वार्तालाप किया। कोई महात्मा नहीं जंचा। गंगातट पर ईशानेश्वर महादेव के मन्दिर में दर्शन किया। वहां पता चला कि एक मारवाड़ी तपस्वी दण्डी स्वामी पास में ही रहते हैं। वे प्रातः ३ बजे गंगा स्नान करके साधना में लग जाते हैं। वे "स्वामी मधुसूदनाश्रम जी" महाराज के द्वितीय शिष्य स्वामी "अनन्त श्री शान्ताश्रम जी महाराज" थे। समाधि से निवृत्त होकर प्रस्थानत्रयी के पठन-पाठन में लग जाते थे। दोपहर में एक समय भिक्षा लेते थे। इनके कुटीर में छोटी सी खिड़की थी। वह खोलकर उसमें भिक्षा रख दी जाती थी। ब्रह्मचारी को मनोऽभिलषित गुरु की प्राप्ति हुई। दोनों में वार्तालाप हुआ। संन्यास का मुहूर्त निश्चय हुआ। सम्वत् १९७० विक्रमी ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन संन्यास हुआ। अब गुरु जी ने "दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम" योग पट्ट दिया। संन्यास से पूर्व जब इन्होंने यह निश्चय किया कि इन्हीं को गुरु बनाऊंगा। सारी रात बैठे रहे। ३ बजे गुरु जी जब गंगा स्नान जाने लगे। तब प्रणाम करके सब बातें सुनाईं। संन्यास के बाद संन्यासी के सब नियम यति सन्ध्या, दण्ड तर्पण आदि अपनी डायरी में लिखे। उनके पास२५ दिन रहे। जलवायु अनुकूल नहीं था। दस्त लग गये। गुरु जी ने पंजाब जाने की आज्ञा दी। प्रणाम करके नैनोवाल वापस आ गये। बाबा भानु के चोई के उस पार तपस्या करने लगे। काशी से आने से पूर्व इन्होंने अपनी गुरु परम्परा गुरु जी से पूछ कर अपनी डायरी में लिखी।

गुरु परम्परा

१. सद्गुरु जी महाराज श्री स्वमी शान्ताश्रम जी ९७१

२. परम गुरु जी श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी

३. परमेष्ठी गुरु श्री स्वामी आनन्दाश्रम जी ९७०

४. परात्पर गुरु श्री स्वामी भौमाश्रम जी ९६९

५. परपरात्पर गुरु श्री स्वामी दामोदराश्रम जी ९६८

६. तत्पर परात्पर श्री स्वामी वामनाश्रम जी (९६७)

इस गुरु परम्परा के अतिरिक्त उनके गुरु द्वारा लिखाई हुई यति भिक्षा वृत्ति इनके परम गुरु मधुसूदनाश्रम जी महाराज द्वारा लिखित प्राप्त हुई है। जिसके अन्त में सम्वत् १९४८ मार्ग शीर्ष पंचमी भृगुवासरायाम्।। शुभ मस्तु। लिखा है।

ॐ मधुसूदनाश्रम स्वामी पठनार्थं।। ॐ तत्सत्।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

इस परम्परा से सिद्ध होता है कि चौंसट्ठी मठ के प्रथम गुरु स्वामी मधुसूदनाश्रम जी से यहां के मधुसूदनाश्रम जी महाराज भिन्न प्रतीत होते हैं। क्योंकि दोनों की गुरु परम्परा मिलती नहीं है। चौंसट्ठी मठ के श्री मधुसूदनाश्रमजी के गुरु श्री नारायणाश्रम जी थे। इनके गुरु श्री आनन्द आश्रम जी सिद्ध होते हैं। चौंसट्ठी वालों की जन्म भूमि जिला मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) की बताई जाती है। स्वामी शान्ताश्रम जी के गुरु मधुसूदनाश्रम की जन्म भूमि पाटन प्रभास क्षेत्र सिद्ध होती है। दोनों का नाम एक होने पर भी व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। परन्तु स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम जी कहते थे कि फम्बियां वाले स्वामी बेणी माधवाश्रम जी महाराज मेरे गुरु भाई थे। श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज उनके गुरु मेरे ताया गुरु थे। उनके आश्रम में गुरु जी का चित्र नहीं था। गुरु का उन्होंने एक बार ही दर्शन किया था। इनके संन्यास के बाद जल्दी ही ब्रह्मीभूत हो गये थे। उनके कक्ष में पंडित स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज का चित्र था। उसकी वे नित्य पूजा करते थे। उनको वे अपना "चाचा गुरु" कहते थे। स्वामी जी के इस कथनानुसार उनकी गुरु परम्परा चौंसट्ठी वाले मधुसूदनाश्रम जी की सिद्ध होती है। परन्तु इनकी दोनों डायरियों में लिखी परम्परानुसार चौंसट्ठी के मधुसूदनाश्रम जी से भिन्न सिद्ध होती है। हो सकता है उनका कथन भ्रान्ति मूलक हो।

।। इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे
अष्टम परिच्छेदे त्रिंशतितमोऽध्यायः ।।३०।।



अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

उग्र तप

१२ महीने बहने वाली चोई के पास एक पेड़ के नीचे अल्प मात्रा में फलाहार लेते हुये तप करने लगे। एक वर्ष तक वहां रात दिन साधना करते रहे। गर्मियों में जिधर छाया होती थी। उधर हो जाते थे। वहां के ब्राह्मणों में पंडित मेलाराम तथा बिहारी लाल की उधर जमीन थी। उन दिनों वहां ऊसर अधिक था। उन्होंने वहां कमरा तथा बरामदा बनवा दिया। गांव का एक जाट "फकीर चन्द" नैष्ठिक ब्रह्मचारी था। कुसंग में पड़कर पहले चोरी, डकैती खूब करता था। स्वामी जी को कभी प्रणाम नहीं किया। परन्तु उनकी तपस्या त्याग को देखकर श्रद्धा हुई। स्वामी जी की सेवा करने लगा। सभी दुर्गुण त्याग दिये। मन्त्र लिया। अन्न त्याग कर स्वामी जी के पास बैठकर समाधि का अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे समाधि लगने लगी। दोनों भाइयों ने कुटी के नाम जमीन लगा दी। भक्त ने भी अपना भाग स्वामी जी को अर्पण कर दिया। वह जमीन उसने संभाल ली। स्वामी जी के दूध के लिये गाय आई। कई भक्तों ने कुटिया के वगल का कमरा, बरामदा पुरानी कुटिया के पास रसोई घर तथा उसके साथ "कोटला नौहर सिंह" वालों ने पक्का कमरा बनवा दिया। स्वामी जी के कमरे के सामने फुलवाड़ी तथा कुआं बना।

नैनोवाल के पास "बैन्सा" गांव में एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसके एकमात्र पुत्री "दुर्गा देवी" थी। उसका विवाह जालन्धर छावनी के पास "कुक्कड़" पिंड में हुआ। जब विवाह के बाद घर में पहुंची अभी पति घर नहीं पहुंचा था। बाहर ही उसकी मृत्यु हो गई। लौटकर जीवन पर्यन्त मां के पास रही। मां बेटी ने स्वामी जी से मंत्र लिया। मां के साथ पर्वों में आती थी। बाद में आश्रम में रहने लगी। स्वामी जी पहले स्त्री दर्शन नहीं करते थे। स्वामी जी अपने नाम कुटी नहीं करवाना चाहते थे। तहसीलदार पटवारी तथा सेवकों की विशेष प्रार्थना पर स्वीकार किया। वहां की भूमि कुटी और कुयें के नाम पर हुई। अन्तिम समय में दण्डी स्वामी "पुरुषोत्तमाश्रम" के नाम हो गई।

ग्राम में एक परम सात्विक, अत्यन्त सीधा ब्राह्मण रहता था। उनका नाम "पंडित दौलत राम लखनपाल" था। स्वामी जी से मन्त्र दीक्षा ली। आजीवन नल का पानी नहीं पिया। गुरु दर्शन के बिना अन्न जल नहीं लेते थे। एक बार तीर्थ यात्रा में सात दिन तक बिना जल के

रहे। शुद्ध कुआं मिलने पर पानी पिया। इनके पिता का नाम पोलोराम, पितामह का नाम गणपति था। दौलत राम रेलवे में नौकर था।

कठोर नियम तथा दिनचर्या

स्वामी जी के नियम अति कठोर थे। वे वस्त्रों सहित चोई में स्नान करके कुयें पर फिर करते थे। कोई भी ब्राह्मण ब्रह्मचारी या संन्यासी उनके नियमानुसार स्नान किये बिना उनके कमरे की चौखट, बाहर बरामदे के खम्भे, बाहर का तखत छू नहीं सकता था। यदि जान-अनजान में किसी ने छू लिया, तो तखत आदि धुलवाते थे। उसमें लगी पत्तियां और कीलें भी मिट्टी से साफ की जाती थीं। उनकी पुस्तक को भी कोई छू नहीं सकता था। पुस्तकों पर प्लास्टिक चढ़ा रहता था। पुस्तकालय की सभी पुस्तकें धोकर रखते थे। किसी का पत्र दूसरे से पढ़ाते थे। यहां तक कि उनकी गाय, बैल, खूंटे आदि को कोई छू देता नहवाते, धुलाते थे। खेती के औजार खुरपा, हंसिया, कुल्हाड़ी आदि धोई तथा मांजी जाती थी। बिना वस्त्रों सहित स्नान किये कोई भी ब्राह्मण आदि खुरपा, हंसिया, चारा काटने की मशीन आदि छू नहीं सकता था। किसी सेवक के घर या तीर्थ यात्रा में भी नियम की कठोरता में कमी नहीं आती थी। वे उसी कुयें का पानी लेते थे, जिस पर कोई भंगी, चमार या मुसलमान न चढ़ा हो। तीर्थ यात्रा में भी पवित्र नंदी का घाट धोकर जल लेते थे। यहां तक कि बद्री केदार की यात्रा में भी माता दुर्गी वस्त्र सहित स्नान करके भीगे वस्त्रों से भिक्षा बनाती थीं।

स्वामी जी नित्यप्रति तीन बजे उठकर हाथ मुंह आदि धोकर ध्यान समाधि में बैठते थे। ८, ९ बजे के बीच में उठकर शौच आदि क्रिया के अनन्तर स्नान करते थे। फिर यति सन्ध्या, दण्ड तर्पण, प्रणव जप, स्तोत्ररत्नावली, पंचीकरण वार्तिक सहित, उपनिषदों के पाठ के पश्चात् ११, १२ बजे जलपान करते थे। उसके बाद अन्यान्य ग्रन्थों का स्वाध्याय, भक्तों से वार्तालाप आदि करते थे। ४ या ५ बजे के बीच में भिक्षा लेते थे। सोमवार के दिन मौनव्रत तथा फलाहार लेते थे। सायं काल यति सन्ध्या, नमामीशमीशान स्तोत्र का पाठ करते थे। गर्मियों में रात्रि के ९ बजे, शीत काल में ८ बजे कमरे में जाकर जब तक निद्रा नहीं आती थीं, स्वरूप चिन्तन करते थे। कुटी में शीर्षासन पद्मासन करके समाधि लगाते थे। केवल गुरु पूर्णिमा के दिन उनकी प्रकट समाधि लगती थी। स्वामी जी के लिये भक्त जी गोबर की खाद डालकर गेहूं, मक्की, आलू आदि सब्जी तथा गन्ना बोते थे। उनके लिये गुड़ शक्कर बनाने के लिये गन्ने, कोल्हू बैल, हांकने वाला तथा कड़ाहा भली प्रकार से धोया मांजा जाता था।

श्याम चौरासी तथा चान्थू में इनके दो ब्राह्मण शिष्य भी आदर्श पुरुष थे। श्याम चौरासी वाले पंडित अमर चन्द जी पांधा स्वामी जी के अनन्य सेवक थे। सरल, सात्विक तथा परम सन्तोषी थे। किसी प्रकार का प्रदर्शन नहीं करते थे।

बड़ी बसी के पास होशियारपुर जनपद में चान्थू नामक ग्राम में एक भगवद् भक्त तथा गुरु भक्त परम सात्विक ब्राह्मण रामचन्द्र यथा नाम तथा गुण थे। उनकी धर्म पत्नी युवावस्था में स्वर्ग सिधार गई थी। इकलौती पुत्री विद्यावती थी। आप रेलवे में स्टेशन मास्टर रहे। इन्हें चापलूसी तथा रिश्वत पसन्द नहीं थी। इनकी बदली नसराला की हुई। विद्यावती छोटी थी। वह पिता के साथ स्टेशन आई। प्लेटफार्म पर घूमने लगी। पेड़ा बेचने वाले दुकानदार ने इसे एक पेड़ा दिया। वह भागती हुई पिता को पेड़ा दिखाने लगी। पिता तुरन्त उसके पास पहुचें। डांटते हुये कहा, तू मेरी लड़की को खराब करना चाहता है। इसकी आदत बिगड़ जाएगी। इतना रुष्ट हुये कि उसके अनेक प्रार्थना करने पर भी उसकी नहीं सुनी। दुकान उठवा दी। पंडित जी सरकारी किसी भी वस्तु तथा समय को अपने घरेलू काम में नहीं लेते थे। यहां तक कि अपने कार्यकाल में सरकारी कलम, दावात या कागज से किसी सम्बन्धी को पत्र नहीं लिखा। एक बार वे भयंकर रोग से ग्रसित हुये, बचने की कोई आशा न थी। इन्होंने भगवान् से प्रार्थना की, मैंने मनुष्य शरीर पाकर आपका भजन नहीं किया है। आप मुझे समय दें। जिससे गायत्री का अनुष्ठान कर सकूं। भगवान् ने स्वीकार किया। ५५ वर्ष की आयु और प्राप्त की। सेवा निवृत्त होने के बाद त्रिकाल सन्ध्या गायत्री जप तथा शास्त्र चिन्तन में समय बिताया।

शिष्याओं में सांदरा गांव की परमेश्वरी देवी, अनन्य सेविका थी। मेरे पिता जी की मौसी थीं। निरक्षर थीं। गुरु जी ने विष्णु-सहस्रनाम कण्ठ करवा दिया था। भगवान् को नित्य भोग लगाती थीं। एक दिन उसकी मूर्ति खो गयी। अति दुःखी हुई। रोती हुई गुरु जी के पास गई। गुरु जी ने कहा—जब मैं स्नान के लिये चोई में पहुंचा, गोता लगाया, तो मेरे पैरों में कोई चीज अटकी। हाथ से निकाला तो भगवान् की मूर्ति निकली। क्या यह तुम्हारी तो नहीं है। वह मूर्ति उन्हीं की थी। पाकर बड़ी प्रसन्न हुई।

नैनोवाल के पास नंगल ग्राम में सरदार दिलीप सिंह अनन्य गुरु भक्त थे। ईश्वर और गुरु में कभी भेद नहीं माना। दोनों समय बिना गुरु दर्शन के जल तक नहीं लेते थे। माता सहित गुरु मंत्र लिया था।

देहाध्यास रहित संन्यासी

स्वामी जी ने भगवान् आद्य शंकराचार्य के **नाहं देहो न मे देहः केवलोऽहं सनातनः।** इस श्लोक को जीवन में पूरा उतारा था। प्रत्येक गुरु पूर्णिमा पर सेवकों का भारी जमघट हो जाता था। वे कोलाहल सहन नहीं कर पाते थे। अतः उस दिन तखत पर बैठने के बाद समाधि लगाते थे। व्यास पूजा बरगद के पेड़ के नीचे चबूतरे पर मनाई जाती थी। एक बार वे समाधि में बैठे थे। एक माता तन्मय होकर धूप दीप से गुरु जी की आरती कर रही थी। पात्र से दोनों वस्तुयें स्वामी जी की जांघ पर (पट्ट) गिर गईं। त्वचा, मांस जलने लगा। स्वामी जी तथा माई को इस बात का पता नहीं चला। बाद में किसी ने देखा, तो माता को डांटा। उनकी समाधि फिर भी नहीं खुली।

प्रथम दर्शन

सन् १९४० गर्मियों में स्वामी जी महाराज फम्बियां में पंडित तोताराम के यहां पधारे थे। वहां प्रथम दर्शन हुये। इसके दो वर्ष बाद यह शरीर छोटी दादी के साथ आश्रम में व्यास पूजा को दर्शनार्थ पहुंचा। सन् १९५७ में पिता जी को जो पक्षाघात के रोगी थे। हकीम ने कबूतर का मांस बताया। मुझ से सहन नहीं हुआ। निराश होकर पुस्तकों की पेटी लेकर स्वामी जी के पास पहुंचा। उस समय स्वामी जी ने स्नान नहीं किया था। उसमें अध्यात्म रामायण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण सटीक थे। उन्हें देखकर स्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये। परिचय पूछा—सब बातें मैंने बतायीं। सुनकर बोले—ठीक किया। यदि फेरु राम हकीम यह लिख दें कि कबूतर का मांस खाने से कभी भी मृत्यु नहीं होगी। खाने पर यदि शरीर नष्ट होता है, तो अपना धर्म क्यों छोड़े। सन् १९६० में इस शरीर को सात महीने तक स्वामी जी का संग तथा सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने आज्ञा दी। यदि साधना करनी है, तो चोई के उस पार बाबा भानू में हम सेवक से कहकर घास की कुटिया बनवा देंगे। ब्राह्मण का कल्याण गायत्री सन्ध्या से है। त्रिकाल स्नान, त्रिकाल सन्ध्या करते हुये २४ लाख गायत्री का पुरश्चरण करो। गांव से एक-एक मुट्ठी अन्न मांग कर अपने हाथ से भिक्षा बनाओ। आश्रम में रहकर दुर्गी तथा फकीर चन्द के साथ भजन न कर पावोगे। उन्होंने गायत्री मंत्र सुना। सुनकर आदि अन्त में प्रणव लगाने की आज्ञा दी। मैंने आज्ञा शिरोधार्य की। वे स्पष्टवादी थे। यह चर्चा हमने दोनों से की। उन्होंने कहा—३०, ३५ किल्ले जमीन होते हुये ब्रह्मचारी भिक्षा मांगकर

खाये। हम सब की नाक कट जाएगी। बहुत दुःखी हुये। उनकी बात माननी पड़ी। मैं समय निकाल कर कोई बात पूछता, तो दोनों में से कोई बुलाकर काम में लगा देता। उस समय आश्रम में ७ गाय तथा बैल थे। उनका चारा काटना, लाना, गोबर आदि उठाना दिन भर काम रहता था। अन्त में विवश होकर हमें जाना पड़ा।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे एक त्रिंशततमोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशततमोऽध्यायः

सन् १९२५ ई. में रुलिया राम नामक भक्त सेना में था। उस पर विपत्ति पड़ी। उसने कुटी में जाकर स्वामी जी को अपना दुःख सुनाया। आशीर्वाद दिया, भगवान् कृपा करेंगे। इच्छा पूरी होने पर आश्रम की गोशाला बनवाना। स्वामी जी तपस्वी त्यागी तो थे। परन्तु बहुत शीघ्र उत्तेजना आ जाती थी। जब मैं लड़ोई में था। एक बार नैनोवाल पहुंचा। स्वामी जी दण्ड तथा संन्यास की बातें बताने लगे। मैंने पूछा—सुना है कि दण्ड की ब्रह्म मुद्रा प्राचीन है। परशु मुद्रा श्री शंकराचार्य से चली है। उन्होंने इसकी कल्पना शास्त्र सम्मत की या मनमानी ? यह सुनते एकदम उत्तेजित होकर बोले। तुम ब्रह्मचारी हो। अपने आश्रम की बात पूछो। दण्ड की बात क्यों पूछते हो ? मैं समझता हूं, किसने तुम्हें बहकाया है। स्वामी जी जब से लड़ोई से निराश होकर लौटे। तब से बड़े स्वामी जी तथा ब्रह्मानन्द के प्रति विशेष रुष्ट थे। उनके मन में था कि ब्रह्मानन्द जी ने मेरे संन्यास में बाधा पहुंचाई है। यदि वे संन्यासी हो जाते, तो ब्रह्मानन्द जी की प्रतिष्ठा कम हो जाती। उनके मन में था। ब्रह्मानन्द का तर्क यह कर रहा है। परन्तु यह बात नहीं थी। मैंने क्षमा मांगी। यदि स्वामी जी से कोई पूछता, आप पुराने महात्मा हैं। ब्रह्मानुभूति की होगी। मुझे भी करा दो। तो उत्तर देते। घर छोड़े ६५ वर्ष हो गये सिर पर राख डाले ६० वर्ष हो गये हैं। अर्थात् संन्यास लिये ६० वर्ष हो गये। अभी तक फकीरी का तथा ब्रह्म का अनुभव नहीं हुआ। कई ग्रन्थ देखे। सिद्धों का सत्संग किया। मैं पूर्ण सत्यता से कहता हूं। साधुता का पता नहीं चला। पर गुरुओं के भक्त अपने-अपने गुरु को सातवें आसमान पर महिमा गाकर उठा देते हैं। किसी भी सिद्ध महात्मा का चमत्कार नहीं देखा। मेरे चेले भी मेरी प्रशंसा करके राई का पहाड़ बनाते हैं। पंजाबी में कहते थे—"असी तां जट्टां दे पिंड विच रहदें हैं ना एनां नु ज्ञान है ना मैनूं है। झगड़ा मुक्का राह चुक्की।"

संन्यासी शिष्य

श्री स्वामी जी के दो प्रकार के संन्यासी शिष्य थे। एक-दूसरे गुरु के शिष्य होने पर भी इनके प्रति गुरुवत् श्रद्धा थी। उनमें से पहाड़ के "पंडित श्री हरिराम" थे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर सेवा करते थे। कालान्तर में गुरु आज्ञा प्राप्त कर काशी में जाकर "श्री स्वामी श्री निवास आश्रम जी" से संन्यास लिया। इनका नाम "स्वामी हरदेवाश्रम जी" था। इन्होंने स्वामी जी से योगाभ्यास सीखा था। काशी में योगिराज के नाम से प्रसिद्ध थे। क्षेत्र संन्यास लेकर काशीवास किया। तुलसी घाट पर रहते थे। काशी में शरीर छोड़ा।

२. श्री स्वामी वासुदेवाश्रम जी महाराज—इनका परिचय लड़ोई वाले स्वामी जी के चरित्र में दिया है।

३. श्री स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज (वकील स्वामी) इन्होंने स्वामी जी से सन् १९३५ में संन्यास लिया था। आगे इनकी जीवनी लिखी जाएगी।

४. श्री स्वामी पद्मनाभाश्रम जी महाराज—इनका भी चरित्र आगे लिखा जाएगा।

ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ शिष्य

१. ब्र० अच्युत स्वरूप जी—परिचय पीछे लिखा है।

२. श्री पंडित सालिग राम जी—यह स्वामी जी के बाल मित्र थे। उनकी जन्म भूमि के पास पद्दी ग्राम के थे। गुरु के विशेष कृपापात्र थे। कोई भी भक्त स्वामी जी से भविष्य की बात पूछता, तो इनके पास भेज देते थे। इनसे पूछे बिना कोई काम नहीं करते थे। युवावस्था में इन्होंने गुरु की आशातीत सेवा की। वृद्धावस्था में सामर्थ्य न होने पर फूट-फूट कर बच्चों की तरह रोने लगते थे।

३. पंडित श्रवण लाल जी ने अपने तन-मन-धन से गुरु सेवा की। जिला होशियारपुर में गोंदपुर के रहने वाले हैं। सन्तानहीन हैं। घर में चल-अचल अपार सम्पत्ति थी। पत्नी की मृत्यु के अनन्तर सब सम्पत्ति भतीजों को दे दी। होशियारपुर में दूकान थी और भी कई दूकानें किराये पर उठी हुई थीं। सबको गुरु चरणों में समर्पित कर दिया। समय निकाल कर विशेषतः रविवार के दिन आश्रम में अवश्य जाते थे। स्वामी जी की भिक्षा बनाते थे। उनके जीवन काल तक गुरुओं के समान खान-पान में नियम का पालन किया। स्वामी जी से समाधि आदि

का अभ्यास किया। बिना सीखे नौली तथा कुण्डलिनी जागृत की। स्वामी जी के ब्रह्मीभूत होने के कुछ समय बाद आंख में भयंकर दर्द हुआ। आंख की पुतली निकल कर बाहर गिर गयी। आजकल होशियारपुर छोड़कर लगभग २० वर्ष से हरिद्वार खड़खड़ी में कमरा बनाकर साधनारत हैं। परम सात्विक शान्त साधक हैं। बाद में दूसरी आंख भी जाती रही। उसका आप्रेशन कराने में थोड़ा दिखाई देता है। इस समय कोई सेवक न होने के कारण हरिद्वार से आकर ग्राम में रहते हैं।

४. श्री मदन लाल जी आहलूवालिया—इनका जन्म आश्रम के समीपवर्ती ग्राम शेखूपुरा में हुआ। बाल्यावस्था में गुरु जी के यहां आते थे। उर्दू, अंग्रेज़ी में अच्छी योग्यता थी। गजटेड आफिसर रहे। गुरु चरणों में अटूट श्रद्धा है। 'श्री गुरु महिमा' में गुरु जी की जीवनी लिखी थी। इनके पिता तथा इन्होंने आश्रम में बहुत कुछ निर्माण कराया है। आजकल गुरु स्थान पर अनधिकारी पतित संन्यासी के विरुद्ध केस लड़ रहे हैं। आजकल देहली में साउथ इन्स्ट्रेक्शन में कोठी बनाकर रहते हैं। आश्रम का ट्रस्ट बनाया है। प्रत्येक गुरु पूर्णिमा, वार्षिक आराधनाओं में वर्ष में तीन बार अवश्य आते हैं।

५. पंडित तीर्थ राम जी शर्मा, ६. पंडित विश्वेश्वर दयाल—यह होशियारपुर के रहने वाले स्वामी जी के पुराने सेवकों में से है। कुटी में रामायण आदि का प्रचार तथा कीर्तन ५०, ६० वर्ष से कर रहे हैं।

७. भक्त श्री खण्डाराम जी, ८. श्री ठाकुर दास जी आदि अनेक भक्त हैं।

शिष्यायें

शिष्याओं में देवी दुर्गा के अतिरिक्त, "वैद्य स्वामी धर्मेन्द्राश्रम जी की माता मलावी देवी (प्रीतम देवी)" स्वामी जी की अनन्य सेविका थीं। इनका ननिहाल भी फम्बियां में था। देवकी खलबानावाली, शान्ती देवी पक्का बडाला, सावित्री देवी सांदरा, दुर्गी देवी की दो भतीजियां कैलाश तथा मोहिनी देवी आदि। जिनमें से मोहिनी देवी शान्ती देवी तथा सावित्री देवी हैं।

मित्र संन्यासी

इनके मित्रों में दण्डी स्वामी गोपालाश्रम जी बड़ीवसी तथा श्री स्वरूपाश्रम जी दण्डी आश्रम जालन्धर थे।

एक बार हरिद्वार के महाकुम्भ में चारों शंकराचार्यों सहित दण्डी स्वामियों की शोभायात्रा निकली। सभी जगद् गुरु स्वामी जी को जानते थे। मौनी स्वामी कहते थे। प्रश्न हुआ कि शंकराचार्यों के आगे दण्डियों में से सबसे पहले कौन संन्यासी चले। सभी ने अपना-अपना मत व्यक्त किया। परन्तु पुरी पीठाधीश्वर जगद् गुरु ब्रह्मीभूत मधुसूदन तीर्थ जी ने कहा कि सबसे आगे मौनी स्वामी रहेंगे। दण्डी समाज में स्वामी जी का विशेष सम्मान था।

सन् १९५९ में पंडित गिरधारी लाल जी जालन्धर वाले को स्वामी जी ने राम नवमी के दिन आश्रम में संन्यास दिया। इनका योग पट्ट "दण्डी स्वामी पद्म नाभाश्रम" था।

चमत्कार

एक बार बद्री नारायण जी की यात्रा में स्वामी जी गये। १४ वर्ष के लिये अन्न त्यागा था। वहीं अन्न तथा मौन व्रत तोड़ने का निश्चय किया। साथ में सेवक थे। मार्ग में एक सेवक का बच्चा गहरी खड्ड में गिरकर मर गया। सब रोने लगे। इन्होंने कमण्डलु से जल लेकर उस पर छिड़क कर तीन बार नाम लेकर पुकारा। बच्चा जीवित हो गया। मौन व्रत भङ्ग हो गया। तीन वर्ष के बाद मौन व्रत तोड़ा।

एक बार स्वामी जी फकीर चन्द के साथ भक्त स्टेशन मास्टर के यहां पहुंचे। उसके घर पहुंचने पर रोने की आवाज सुनाई दी। वे ऊपर रहते थे। भगत जी को ऊपर भेजा। उन्होंने बताया कि स्टेशन मास्टर का इकलौता पुत्र मर गया है। सब लोग बच्चे को लेकर नीचे उतरे। चरणों में गिर कर रोने लगे। उन्होंने सान्त्वना दी। वे दरवाजे पर आंखे बन्द करके कुछ देर खड़े रहे। फिर कहा—नारायण हम ईश्वर से प्रार्थना करेंगे। वे प्रत्येक को नारायण कहकर बुलाते थे। बालक जीवित हो जाएगा। तुम जीने पर गऊ दान करना। भक्त ने कहा—गोदान के अतिरिक्त जो भी आज्ञा होगी, करूंगा। उन्होंने गोदान का संकल्प कराया। भगवान् से प्रार्थना की। कमण्डलु का जल छिड़क कर नाम लेकर कहा—उठो नारायण। वह कुछ हिला और उठकर बैठ गया।

सन् १९५७ जून के महीने में मदन लाल को भी पक्षाघात आदि कई रोगों से मुक्त किया। अपने शिष्य की बीमारी गुरु जी ने अपने ऊपर ली। कान बहने लगा। सिर पर फोड़ा हो गया। ७९ वर्ष की आयु में स्वामी जी की आंखों का आप्रेशन हुआ। दृष्टि मन्द होने के कारण चबूतरे से गिर गये। सिर में चोट आई। उपचार से ठीक हो गयी। एक बार सेवक के बुखार

को दूर कर स्वयं ४१ दिन तक बुखार से पीड़ित रहे। एक दिन भिक्षा के बाद तखत पर आराम कर रहे थे। उनके पास सांप आकर लेट गया। भुजाओं तथा गले में लिपट गया। वे घबराये नहीं। उससे कहा—नारायण जाओ, बहुत हो गया। वह चला गया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशततमोऽध्यायः

स्वामी जी की डायरी से विशेष बातें

प्रणव—ज्ञान प्रणव की ३ $\frac{१}{२}$ मात्रायें

	अ	उ	म्	
ओम्कार	अकार	उकार	मकार	अर्द्धमात्रा जीव साक्षी
आत्मा	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	ईश्वर साक्षी
ब्रह्मा	विराट्	हिरण्यगर्भ	ईश्वर	महाकारण
शरीर	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	
अवस्था	जागृत	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरीय
स्थान	नेत्र	हृदय	नाभि	मस्तक में ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करे
प्राणायाम	पूरक	कुम्भक	रेचक	
ध्यान	ब्रह्मा	विष्णु	महादेव	
आसन	दृढ़	उड्डियान	ठोडी, कण्ठ के चार अंगुल ऊपर	

सूर्यचन्द्र ग्रहण में दण्ड की मर्यादा

दण्डी स्वामी सूर्य चन्द्र ग्रहण पड़ने पर दण्ड हाथ में रखे। अथवा जल में या परशुमुद्रा तथा ब्रह्ममुद्रा में कुशा रखे। न रखने से ब्रह्ममुद्रा काटकर नई बनायें।

शिव स्वरोदय में स्वर परीक्षा

इस ग्रन्थ में शिव पार्वती सम्वाद है। स्वर का विस्तृत विवेचन है। प्रत्येक पुरुष का सर्वप्रथम प्रातः काल वायु तत्त्व चलता है। स्वर चाहे दाहिना चले या बायां वायु तत्त्व रहता है। उसके बाद प्रत्येक तत्त्व १० पल के बाद बदल जाता है। पांचों तत्त्वों का समय, रंग तथा क्रम नीचे तालिका में दिया है।

तत्त्व	समय	रंग	क्रम
आकाश	१० पल	नीला	१ घंटा पहले के समान ही सभी तत्त्व चलते हैं।
वायु	२० पल	हरा	
अग्नि	३० पल	लाल	
जल	४० पल	सफेद	
पृथ्वी	५० पल	पीला	

विशेष—शुक्ल पक्ष १, २, ३, ७, ८, ९, १३, १४, १५ इन तिथियों में प्रातः काल स्वर (दाहिना) चलता है। प्रत्येक पुरुष का प्रातः पहले वायु तत्त्व चलता है। प्रातः सूर्योदय से पूर्व उषः जलपान को अमरौली मुद्रा कहते हैं।

१. वृत्ति को एकाग्र करने की विधि—साधक को वृत्ति एकाग्र करने के लिये पद्मासन से बैठना चाहिये। दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में रखकर बायीं हथेली को दायीं हथेली पर रखकर जलन्धर बन्ध लगाये। नेत्रों के ऊपर की दोनों नाड़ियों को पकड़ कर जीभ को तालू से लगाकर वृत्ति को भृकुटी में जमाने से सुषुम्णा नाड़ी चलने लगती है। इससे वृत्ति एकाग्र होती है।

भूचरी मुद्रा

२. पद्मासन लगाकर दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जाकर पैर के दोनों अंगूठों को पकड़े। इसे बद्ध पद्मासन कहते हैं। फिर मूलाधार चक्र में श्वेत वर्ण का त्रिकोणाकार चक्र है, इसके बाईं ओर इडा दाहिनी ओर पिंगला तथा बीच में सुषुम्णा नाम की नाड़ी है। वह अति महीन कुण्डलाकार दायें, बायें ओर साढे

तीन लपेटा लगाकर सर्प के समान बैठी है, उसका ध्यान करें। फिर दृष्टि को आकाश में जमाकर जलन्धर बन्ध के बाद, अंगूठा अथवा तर्जनी निकाल कर घुटने पर रखें। इसे शयन मुद्रा कहते हैं। फिर शरीर सीधा करके बैठकर समाधि का अभ्यास करें।

कपालासन तथा खेचरी मुद्रा

३. पहले सिर नीचा करके पैर ऊपर करके शीर्षासन करके जीभ को मोड़कर तालू के साथ ऊपर कण्ठ कूप में लगावे। यह खेचरी मुद्रा है।

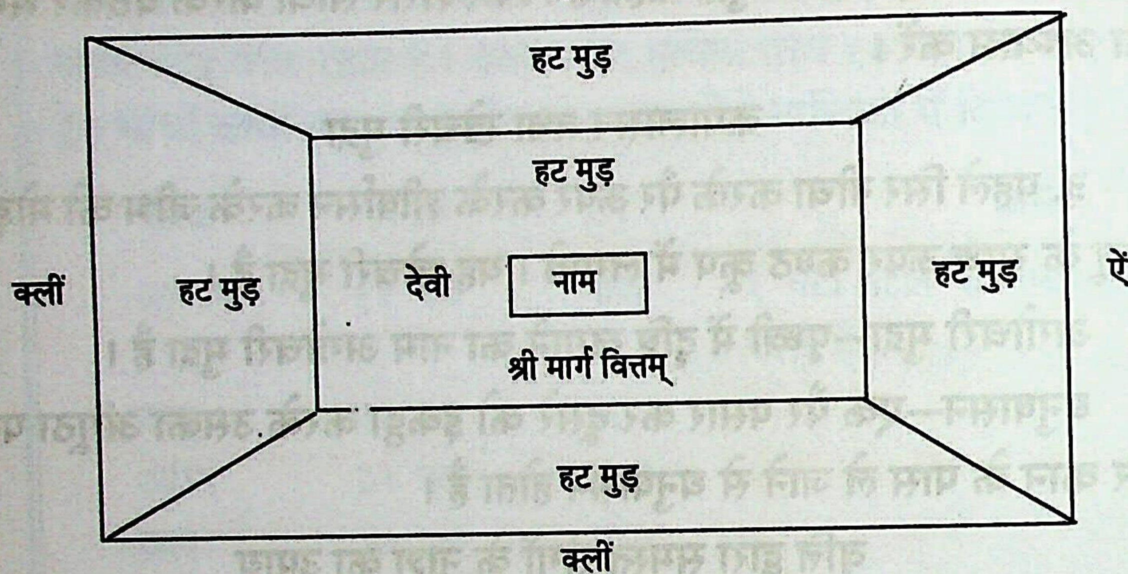
अगोचरी मुद्रा—पृथ्वी में दृष्टि लगाने का नाम अगोचरी मुद्रा है।

धनुषासन—एक पैर पसार कर दूसरे को इकट्ठा करके उसका अंगूठा पकड़ कर कान के पास ले जाने से धनुषासन होता है।

वृत्ति द्वारा समस्त रोगों के नाश का उपाय

बद्ध पद्मासन लगाकर ब्रह्म में वृत्ति स्थापित करने से सभी रोग नष्ट होते हैं। अथवा भस्त्रिका प्राणायाम करके कुण्डलिनी को जागृत करें। फिर सुषुम्णा मार्ग से कुण्डलिनी को खींचकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित करने से भी सभी रोग दूर हो जाते हैं। अथवा मुख बन्द करके श्वास को भीतर खींचने से या दिन में वृत्ति को आकाश में लगाकर नासिका के अग्रभाग में दृष्टि जमाने से भी सभी रोग नष्ट होते हैं। योग की सभी क्रियायें सुयोग्य गुरु की देखरेख में ही करें। शाम्भवी मुद्रा—दृष्टि को सामने स्थापित कर के लय करें। साथ में प्रणव का जप करने से शाम्भवी मुद्रा होती है। परदेश गये को बुलाने की यन्त्र विधि—यदि कोई परदेश से न लौटा हो या लापता हो। तो उसके कपड़े का कोड़ा बनाकर, नीचे लिखा यन्त्र बनाकर सौ बार उसका नाम लेकर ध्यान करते हुये कोड़ा मारे। मन में हट मुड़ कहता जाए। यह ४० दिन करने से खोया व्यक्ति लौट आता है। इसके साथ-साथ नीचे लिखे मंत्रों का जप करें। ॐ नमो माता भद्रे चेटकाय सर्वार्थ सिद्धिकर्त्री मम स्वप्ने दर्शय कुरु कुरु स्वाहा।

यह यन्त्र के बायीं ओर का मन्त्र है। दायीं ओर का मन्त्र—ॐ नमो भगवते रुद्राय जल स्तम्भिने ठः ठः स्वाहा।



पुत्रोत्पति का उपाय—१. भंग के बीज छः मासे। नाग केसर १ तोला काला, पुराना कन्द २ तोला। इन सब को कूट कर २१ गोलियां बनाकर नित्य प्रातः काले बछड़े वाली गऊ के दूध के साथ लेना चाहिये। गर्भ के ४० दिन सेवन करने से निश्चय ही पुत्र होता है। गोली छः-छः मासे की बनाये।

२. आक की बोड़ी (डोडियां) शुद्ध शहद मिलाकर जंगली वेर के बराबर गोलियां बना ले। २ महीने का गर्भ होने पर ४० दिन सेवन करे। साथ में बछड़े वाली गाय का दूध पिये।

३. नया मकान बनाने की विधि—मालिक मकान अपने हाथ के नाप से मकान जितना लम्बा चौड़ा बनाना हो, नापे। इसकी लम्बाई चौड़ाई को जोड़कर तीन से गुणा कर दे। १ घटा कर ८ से भाग दे। १ शेष बचे तो राजा, ३ बजे तो शेर, ५ या ७ बचे तो लक्ष्मी, २ बचे तो राक्षस, ४ बजे तो कुत्ता, ६ बजे तो गधा, शून्य बचे तो कौवा। इनमें से राजा, लक्ष्मी, शुभ, शेष अशुभ है।

पृथ्वी—सूर्य संक्रान्ति से ५, ७, ९, २१, २४ में पृथ्वी सोती है। इन दिनों में बीज बोना, कुआं आदि खोदना मना है।

शुभाशुभ मूहुर्त

राशि से पहले घर में चन्द्रमा हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति । २ में मन में प्रसन्नता । ३ में सम्पत्ति । ४ में कलह । ५ में ज्ञान । ६ में उत्तम सम्पत्ति । ७वें राज सम्मान । ८वें मृत्यु । ९वें धर्मलाभ । १०वें मनोवांछित फल । ११वें सर्वलाभ । १२वें में हानि होती है ।

घात चन्द्र

मेष राशि वाले का १ वृष ५वां मिथुन ९वां कर्क १०वां तुला ३ वृश्चिक ७वां धन ४था मकर ८वां कुम्भ ११वां मीन का १२वां चन्द्रमा घाती है ।

घात चन्द्र का फल—इसमें रोग हो तो अवश्य मृत्यु, युद्ध हो तो हानि, यात्रा में धन हानि, विवाह में स्त्री विधवा होती है ।

।। इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे त्रयस्त्रिंशततमोऽध्यायः । ।३३ ।।

अथ चतुस्त्रिंशततमोऽध्यायः

किसी ने स्वामी जी से प्रश्न किया, कि समदर्शी किसे कहते है ? उत्तर दिया—समदर्शी तथा समवर्ती में अन्तर है । ब्रह्मदर्शी समदर्शी है । व्यवहार में समवर्ती नहीं हो सकता । कोई भी मनुष्य अपनी मां, बहन, पुत्री तथा पत्नी से एक जैसा व्यवहार नहीं करता । चारों में ब्रह्मदर्शी हो सकता है । उन्होंने प्रत्यक्ष दिखाया । वहां से चल दिये । एक काले रंग का पांच इंच का बिच्छू बैठा था । उसको अपने हाथ में उठा लिया । वह डंक उठाकर हाथ पर से शरीर पर चढ़ने लगा । उससे कहा—अब तू चला जा । मैं स्नान को जाता हूं । वह शरीर पर से उतर कर दीवार पर चला गया । बताया कि चेतन सत्ता सब में समान है ।

अन्तिम समाधि

जिस दिन महाराज जी को शरीर त्यागना था । उस दिन प्रातः स्नान, सन्ध्या, दण्ड तर्पण आदि करके बरगद के नीचे चबूतरे पर बैठ गये । नैनोवाल के एक भक्त ने आकर प्रणाम किया । आरम्भ में आने की कथा सुनाई । फिर कहा कि योगी को उत्तरायण में शरीर त्यागना चाहिये । उसमें भी एकादशी मुख्य है और बातें करते रहे । दो बजे भिक्षा की । विश्राम किया । जिस पुरानी कुटी में पहले रहते थे, वहीं बैठकर माला लेकर जप करने लगे । ११ बजे जप पूर्ण हुआ । फिर दुर्गी देवी से कहा—मुझे चोई पर ले चलो । उसने कहा, इस समय वहां क्या

करोगे। इतनी ठंड में वहां क्या काम। वे नहीं माने, कहा मेरी आज्ञा का पालन करो। फाल्गुन कृष्ण पक्ष था, शीत अधिक थी। वहां स्नान करके कपड़े पहने। उसी तखत पर आ गये। भगत जी तथा माता को पास में सोने की आज्ञा दी। वे थोड़ा सोये ही थे। कि आवाज़ लगाई। शीत लग रही थी। हाथ पैर ठण्डे हो रहे थे। उन्होंने हाथ पैरों में मालिश की। उठकर पद्मासन लगाया। प्राणों को खींचकर ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ाया। उनसे कहा, हम जाते हैं। तुम लोग भजन करो। यह कहकर शरीर त्याग दिया। शरीर से एक प्रकाश पुञ्ज निकला। आकाश में लीन हो गया। योग की प्रक्रियानुसार उन्होंने शरीर त्यागा। उस दिन सन् १९६५ फाल्गुन कृष्ण एकादशी थी।

दूसरे दिन प्रातः काल को सूचना दी गई। भक्तों की भीड़ उमड़ने लगी। उस समय उनके दोनों शिष्यों में से कोई भी नहीं थे। वकील स्वामी लापता थे। स्वामी पद्मनाभ आश्रम जी फगवाड़ा के पास हदियाबाद में थे। भक्त को भेजकर बुलाया। जालन्धर दण्डी आश्रम में भी सूचना मिली। मैं तथा स्वामी जी काशी में थे। ब्रह्मचारी विष्णु स्वरूप गये थे। स्वामी जी ने शरीर को गंगा में प्रवाहित करने की आज्ञा दी थी। किन्तु भक्तों ने उनकी कुटी के सामने बगीचे में भू समाधि दी। सूचना मिलने पर स्वामी कृष्णाश्रम जी भी आ गये थे। विशाल भव्य समाधि का निर्माण हुआ। जयपुर में मूर्ति का आर्डर दिया गया। जिस कारीगर ने मूर्ति बनाई, उसने बताया, कि जब मैं चेहरा बना रहा था, उस समय स्वामी जी के आकार के दण्डी स्वामी वहां पहुंचे। उससे कहा—मैं उस महात्मा को अच्छी प्रकार से जानता हूं। तुम चेहरा गलत बना रहे हो। अच्छी प्रकार से समझा कर लुप्त हो गये। मूर्ति बनने पर अच्छे मुहूर्त में स्थापना हुई। विशाल भण्डारा किया गया। स्वामी कृष्णाश्रम जी प्रत्येक वार्षिक आराधना में भागवत् सप्ताह तथा भण्डारा करते थे।

स्वामी जी जैसे तपस्वी, त्यागी तथा योगिराज सन्त विरले ही पाये जाते हैं।

सहजं राजयोगज्ञं, योगिनां परमं गुरुम्।
शान्ताश्रमस्य शिष्यं तं नमामि पुरुषोत्तमम्॥

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे चतुःत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्री मद्दण्डी स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज ९७३

(वकील स्वामी)

श्री मद्दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी के द्वितीय शिष्य स्वामी कृष्णाश्रम जी का जन्म कण्व गोत्रीय शुक्ल ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पितामह का नाम श्री राम प्रताप, पिता का नाम मुताव जी, माता का नाम प्रसिन्नी था। जन्म भूमि नाभा पटियाला के पास थी। जन्म सन् १८८६ था। पिता, पितामह के परिवार में कोई सन्तान नहीं थी। इनके पिता ७ भाई थे। पिता अत्यन्त धनाढ्य थे। अनेक देवी-देवताओं की मनौती के बाद इनका जन्म हुआ। इनके कई अग्रज मर चुके थे। जन्म नाम पंडित मथुरा प्रसाद था। बी० ए० तक आपने पंजाब में पढ़ाई की। फिर लन्दन जाकर एम० ए०, एल० एल० बी० की डिग्री प्राप्त की। भारत लौटने पर सरकारी वकील हुये। इनके पिता के कई विवाह हुये। माता की मृत्यु हो चुकी थी। सौतेली माता देखकर जलती थी। आपका विवाह पिण्डोरी महतापुर ग्राम में हुआ था। सं० १९७९ विक्रमी में एक पुत्र पंडित महेन्द्र पाल का जन्म हआ। माता के व्यवहार से ऊबकर सं० १९८० विक्रमी में संन्यास ले लिया। भागवन्ती पत्नी की सं० १९८४ विक्रमी में मृत्यु हो गई। घर छोड़कर कुछ वर्ष तक भ्रमण के बाद उदासी महात्मा होकर श्याम चौरासी में रहे। वहीं पर इनको नैनोवाल वाले स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम जी का पता चला। यह बात जालन्धर वाले गुरु जी तथा और कई लोगों से सुनी थीं। परन्तु गुरु महिमा में मदन लाल जी लिखते हैं। जब वकालत करते थे। तो एक दिन अपने मित्रों के साथ शिकार खेलने गये। सायं काल के समय शेरनी का शिकार किया, प्रतीक्षा में मचान पर बैठे थे। थोड़ी ही देर में शेरनी दिखाई दी। इन्होंने गोली चलाई। गोली उसके माथे पर लगी। उसने नीचे गिरने से पहले क्रोध में आकर इतनी ऊंची छलांग लगाई कि झपटा मारकर मचान को गिरा दिया। तीनों साथी भयभीत होकर मूर्च्छित होकर नीचे गिर गये। उस बेहोशी में इन्होंने एक गौर वर्ण नवयुवक दण्डी स्वामी को दण्ड कमण्डल लिये देखा। शेरनी जब भाग गई। तब उन्होंने गले लगा लिया। तीनों के प्राण बच गये। होश में आने पर इन्होंने मित्रों से कहा—मुझे दण्डी स्वामी ने दर्शन दिये थे। मित्रों ने कहा—हमने नहीं देखा। यह सुनते ही उस मांसाहारी ब्राह्मण का जीवन बदल गया। उसी सन्त की खोज में निकल पड़े। अनेकों दण्डियों से भेंट होने पर भी सन्तोष

नहीं हुआ। घण्टों रोते थे। श्याम चौरासी में इनके साथ एक महात्मा और थे। एक दिन जेठ के महीने में दोपहर में उस सन्त के साथ स्वामी जी नैनोवाल आश्रम पहुंचे। पूर्ण युवावस्था थी। आकर्षक चेहरा था। इन्होंने दण्डवत् प्रणाम करके रुदन किया। परिचय पूछने पर बताया। जन्म से लेकर शिकार तक की घटना सुनाई। उनसे संन्यास के लिये प्रार्थना की। गुरु जी ने पद नख से शिखा पर्यन्त देखकर कहा—नारायण, तुम युवावस्था में संन्यास क्यों लेना चाहते हो। ऐसी भरी जवानी में संन्यास लेकर यदि तुम मन इन्द्रियों पर संयम न कर पाये, पतित हो गये, तो हम दोनों नरकगामी होंगे। **हरइ शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महं परई।** जो गुरु शिष्य का धन तो लेता है। उसका शोक दूर नहीं करता। वह गुरु घोर नरक में पड़ता है। इन्होंने उत्तर दिया। गुरु जी मुझ में सामर्थ्य नहीं है। आपकी दी हुई शक्ति तथा आशीर्वाद से इसका निर्वाह अवश्य करूंगा। स्वामी जी ने दो-तीन वर्ष की कठोर परीक्षा के बाद संन्यास दिया। नाम दण्डी स्वामी कृष्णाश्रम जी रखा। इस प्रकार चरित्र गुरु महिमा में लिखा है।

परन्तु भक्त फकीर चन्द तथा माता दुर्गी कहते थे; कि सौतेली माता का व्यवहार ठीक नहीं था। घर छोड़कर स्वामी जी के पास पहुंचे। संन्यास की प्रार्थना की। उनके कारण पूछने पर बताया। मेरी माता तथा पत्नी का देहान्त हो गया था। मुझे संसार सूना लगा। मैं दोनों के हरिद्वार में अस्थि प्रवाहित करके संन्यास के लिये आया हूं। गुरु जी ने संन्यास दिया। कुछ दिन वहां रहकर चले गये। कुछ काल बाद जब माता पत्नी को इनके संन्यास का पता चला। तो वे आश्रम पहुंची। होशियारपुर से तांगे में बैठकर आ रहे थे। संयोग से वकील स्वामी वहीं थे। उनको देखते ही भाग खड़े हुये। जब उनसे पता चला कि झूठ बोलकर संन्यास लिया है, तब गुरु जी को बड़ा पाश्चात्ताप हुआ। कई वर्ष आश्रम में नहीं आये। वैभव छोड़कर संन्यासी हुये थे। संन्यास में भी वैसा ही ठाट-बाट था। एक दिन चमड़े का जूता पहने हुये आश्रम में आये। गुरु जी भिक्षा करके जब बाहर निकले। नया जूता देखकर पूछा, जूता किसका है? माता ने कहा—स्वामी जी का। स्वामी जी बहुत रुष्ट हुये। डंडा लेकर दौड़े। नंगे पैर तुरन्त भाग खड़े हुये। गुरु चरणों में उनकी अटूट श्रद्धा थी। आज्ञा का पालन करते थे। तब से ये ४०, ४५ वर्ष तक कपड़े का जूता या खड़ाऊँ तक नहीं पहिनते थे। सर्दी गर्मी कीचड़ पानी में नंगे पैरों भारत की अनेक बार यात्रा की। जीवन पर्यन्त पैसा नहीं छुआ। अन्तिम समय गुरु आज्ञा प्राप्त होने पर कपड़े का जूता तथा खड़ाऊँ का प्रयोग करते थे।

चातुर्मास्य में तथा दोनों नवरात्रों में कठोर व्रत करते थे। २१ दिन का पराक् व्रत करते थे। इसमें केवल जल लेकर मौन रहकर साधना करते थे। अन्तिम दिनों में गुरु के आश्रम पर ५, ६ वर्ष तक रहे। एक बार नर्मदा तट पर एक हरीश द्विवेदी ब्राह्मण ने संन्यास की प्रार्थना की। बिना जांच पड़ताल के दण्ड दे दिया। जिस समय कर्म हो रहा था। एक भक्त ने कहा, इनको संन्यास न दो। देकर पछताओगे। भावीवश उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। देकर जन्म भर पछताते रहे। इनका योगपट्ट हरीश आश्रम दिया। स्वामी जी ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी के समय में उनका इनके गुरु जी के साथ जो मतभेद था उसको दूर करने का पूर्ण प्रयास किया। किन्तु सफल नहीं हुये। इनके गृहस्थ शिष्यों में श्री कर्म चन्द थापर तथा नंगल वाले प्रमुख थे।

सन् १९८० में शिवरात्रि पर नैनोवाल आश्रम में लड़ोई के ब्रह्मचारी नारायण स्वरूप जी को संन्यास दिया। नाम दण्डी स्वामी नारायण आश्रम रखा। स्वामी जी को रक्त चाप आदि कई रोग हो गये थे। सर्दी गर्मी सहन नहीं होती थी। उपचार के लिये दिल्ली गये। स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ। गुरु जी में पूर्ण निष्ठा थी। सेवकों से कहा, मुझे आश्रम ले चलो। मैं गुरु चरणों में शरीर छोड़ूंगा। आश्रम में आ गये। वृष ज्येष्ठ की संक्रान्ति थी। स्नान आदि से निवृत्त होकर महीना सुनाया। लेट गये। थोड़ी देर बाद शरीर छोड़ दिया। उस समय "हरीश आश्रम" वहीं थे। उन्हें आश्रम में आने की आज्ञा नहीं थी। उन्होंने बाबा भानु के पास अपना आश्रम बनाया था। वहीं रहते थे। सूचना प्राप्त कर तुरन्त पहुंचे। गुरु के मृतक शरीर को छूते ही बिजली जैसा करन्ट लगा। तुरन्त बेहोश हो गये। स्वामी जी का डाक्टर वहीं था। शक्तिशाली टीका लगाने पर मूर्च्छा दूर हुई। इनकी भी इच्छा शरीर को गंगा में प्रवाहित करने की थी। सभी सेवक तैयार थे। गाड़ी आदि का प्रबन्ध हो गया। किन्तु स्वामी हरीश आश्रम अपनी जिद पर अड़े थे। समाधि यहीं दूंगा। किसी की नहीं चली। आश्रम में ही समाधि दी गई। सूचना पाते ही शान्ति आश्रम से स्वामी नारायणाश्रम जी पहुंचे। षोडशी भण्डारा हुआ। स्वामी जी ने ९५ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा सुना जाता है स्वामी हरीश आश्रम से उनके गुरु जी ने जीवन में ही दण्ड छीनकर आश्रम से निकाल दिया था। परन्तु यह इस बात का खण्डन करते हैं। सन् १९८१ में शरीर छोड़ा था।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे, पंचत्रिंशततमोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशततमोऽध्याय:

दण्डी स्वामी अनन्त श्री पद्मनाभाश्रम जी (९७४)

दण्डी स्वामी पद्मनाभाश्रम जी का जन्म मुद्गल गोत्र के शारदा परिवार में सन् १८९४ ई. में पंडित नत्थूराम पिता माता गंगा देवी के गर्भ से जालन्धर में हुआ था। माता-पिता धार्मिक, सन्त सेवी थे। पिता स्वामी राम तीर्थ के शिष्य एवं माता अनन्त श्री पूज्यपाद दण्डी स्वामी आत्मबोधाश्रम जी की शिष्या थीं। इनके बाबा तथा परबाबा पंडित गूजर मल तथा छत्ताराम महाराज कपूरथला के राज पुरोहित थे। इनका गृहस्थ का नाम पंडित गिरधारी लाल था। दशम कक्षा पास करके जालन्धर की नगर पालिका में प्रमुख लेखक थे। बाद में सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गये थे। सभी पदों पर परम सत्यता तथा परम कर्त्तव्य बुद्धि से कार्य किया। बाल्यावस्था में माता की मृत्यु हो गई थी। इसी आयु में वेदान्त में निष्ठा हुई। गीता, उपनिषद्, रामायण, भागवत, योग वशिष्ठ आदि का हिन्दी अनुवाद में अध्ययन किया। सन् १९१३ में इनका विवाह जिला कपूरथला ग्राम ब्रह्मबाल में मलावी देवी के साथ हुआ। स्वामी जी ५ भाई थे। ज्येष्ठ यही थे। उनके नाम १. पंडित सलामतराय, २. हरिश्चन्द्र, ३. ज्ञान चन्द्र, ४. राज कुमार थे।

इनके पांच पुत्र हुये। बड़े का नाम धर्मपाल था। सन् १९८४ में घर छोड़कर हम से महावाक्य लिया। सन् १९९० में कुरुक्षेत्र में संन्यास लिया। योग पट्ट दण्डी स्वामी धर्मेन्द्राश्रम हुआ। पंडित गिरधारी लाल जी १९५३ में सेवा मुक्त हुये। इनकी धर्म पत्नी ने स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी से पहले ही दीक्षा ले रखी थी। सेवा मुक्त होने के बाद आश्रम में जाकर महीनों सेवा करते थे। चैत्र की राम नवमी सन् १९५८ ई. में दण्डी स्वामी पुरुषोत्तम आश्रम जी से संन्यास लेकर पहला चातुर्मास्य जालन्धर सिद्ध पीठ देवी तालाब में किया। कुछ समय हरिद्वार, हृषीकेश रहकर बाद में पंजाब में फगवाड़ा के पास हदियाबाद में ६ वर्ष रहे। सन् १९६५-६६ में प्रयाग महाकुम्भ में गये थे। वहां से बसन्त पंचमी के दिन दिल्ली आ गये। दिल्ली में नई दिल्ली पहाड़ गंज चूना मण्डी में स्वामी पूर्णानन्द गिरि जी के आश्रम में अति अस्वस्थ हुये। दमे का रोग था। माघ शुक्ल सप्तमी को ब्रह्मीभूत हुये। वहां के सन्तों ने यमुना जी में जल समाधि दी। बाद में जालन्धर में सूचना मिली। तब सब लोग दिल्ली गये। दण्डी

आश्रम जालन्धर में वैद्य धर्म पाल जी ने उनके निमित्त भागवत का अखण्ड पाठ करवाया। प्रतिमास स्वामी श्री महादेवाश्रम जी से पूछकर उनकी मासिक आराधना वर्ष भर की। अब प्रति वर्ष वार्षिक आराधना होती है।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे षट्त्रिंशततमोऽध्यायः ॥३६ ॥

अथ सप्त त्रिंशततमोऽध्यायः

स्वामी हरीशाश्रम जी (जज स्वामी)

वकील स्वामी जी का शरीर छूटने के बाद आश्रम की बागडोर इनके हाथ में आई। कुछ काल तक आश्रम सुचारु रूप से चला। फिर इन्होंने जालन्धर के एक ब्राह्मण बालक ब्रह्मचारी पुष्पेन्द्रस्वरूप जी को काषाय वस्त्र देकर मौखिक तथा लिखित रूप में पूर्णाधिकार देकर निश्चिन्त हो गए। ब्रह्मचारी ज़ी ने बड़े स्वामी जी के बाद वकील स्वामी तथा जज स्वामी के समय जो मर्यादा नष्ट हो गई थी। इन्होंने फिर से स्थापित की। जज स्वामी विदेश यात्रा में चले गये। पीछे से ब्रह्मचारी जी ने भक्तों को संगठित करके आश्रम में बहुत निर्माण कार्य किया। ब्रह्मचारी जी के आने से पूर्व हरीशाश्रम जी का बड़े स्वामी जी के पुराने सेवकों भक्त फकीरचन्द जी तथा माता दुर्गा देवी से झगड़ा रहता था। जज स्वामी एक बार विदेश यात्रा से लौट आये थे। इसी अन्तराल में जिन दिनों उग्रवादियों का जोर था। उग्रवादियों का नेता भिंडरांवाला मारा गया था। उसी समय जेठ के महीने में रात्रि में किसी अज्ञात व्यक्ति ने भक्त फकीर चन्द, दुर्गा देवी तथा अतिदीनहीन, अंगहीन, अनाथ बालिका जिसका बड़े स्वामी जी बडा आदर करते थे, तीनों मारे गये। प्रातः सूर्य उदय के बाद आश्रम के पास खेत बोने वाले एक जाट ने किसी कुत्ते को किसी की टांग मुंह में दवाये हुये जाते देखा। उसने हल छोड़कर देखा कि वहां पर तीनों के तलवार से टुकड़े-टुकड़े किये हुए थे। जज स्वामी को पता चला। वे घटना स्थल पर पहुंचे। गांव के सब लोग इकट्ठा हो गये। कई लोगों ने इन पर आशंका की। बड़ा करुणापूर्ण दृश्य था। पुलिस आई। पोस्ट मार्टम के लिए तीनों लाशों की गठरियां बांधकर होशियारपुर गयीं। तब से आश्रम की सुरक्षा के लिये पुलिस का पहरा लग गया। भक्तों ने चारों ओर चार दीवारी बनाकर दक्षिण, उत्तर में दो फाटक लगवाये। तब से किसी महात्मा का साहस आश्रम में रहने का नहीं हुआ।

हरीशाश्रम जी ने शिव सेना में रहकर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये बहुत कार्य किया। श्री पुष्पेन्द्र शर्मा, साईंदास इन्टर कॉलेज जालन्धर में अध्यापक थे। इनके आवाहन करने पर नौकरी छोड़कर देश धर्म की रक्षा के लिये इस क्षेत्र में आये। स्वामी हरीशाश्रम जी का भाषण अति मधुर, रोचक तथा आकर्षक प्रभावशाली था। पुष्पेन्द्र पर इसका प्रभाव पड़ा। इन्होंने नैनोवाल आश्रम की चर्चा की। वहां पर नियुक्त किया।

पुष्पेन्द्र पर आश्रम का भार छोड़ कर यह दुबारा अमरीका गये। उस बार इनके जीवन चरित्र पर विदेशियों का हानिकारक प्रभाव पड़ा। शराब आदि का सेवन करने लगे। अपने परम गुरु जी की वार्षिक आराधना में आये। उस दिन दो-तीन हजार सेवक तथा ३० के लगभग दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी थे। मदिरा पान करके कभी नाचने गाने लगते। कभी गालियां देने, रोने लगते थे। जनता पर विशेष करके कमेटी के सदस्यों पर कुप्रभाव पड़ा। सभी की यहां तक कि बड़े स्वामी तथा छोटे स्वामी जी के सेवकों के अतिरिक्त इनके शिष्यों की भी इनके प्रति अश्रद्धा हो गयी। सभी ने मिलकर इनका तिरस्कार करते हुये बहिष्कार कर दिया। प्रतिदिन इनके प्रति जैसे श्रद्धा कम होती जाती थी। पुष्पेन्द्र के प्रति उतनी ही बढ़ती जाती थी। ब्रह्मचारी तथा कमेटी ने मिलकर वकील स्वामी जी की समाधि बनाई एवं बड़े स्वामी ने जहां शरीर छोड़ा था, वहां मन्दिर बनाकर गणेश तथा शिव की स्थापना की। स्वामी हरीशाश्रम जी का ब्रह्मचारी के प्रति द्वेष बढ़ता गया। सेवकों का भी सहयोग कम हो गया। जान को खतरा था। अतः अपने प्राण बचाकर चले गये। स्वामी जी ने एक-दो ब्रह्मचारियों को जो इनके सगे भतीजे हैं, रखा। आजकल उनकी यही सेवा करते हैं। आश्रम का ट्रस्ट एवं मदन लाल जी अभी भी संघर्षरत हैं।

ब्रह्मचारी पुष्पेन्द्र सदाचारी, शिष्ट तथा बड़ों का सम्मान करने वाले व्यक्ति हैं। पर वे विशेष रूप से गुणग्राही तथा गुणों का सम्मान करते हैं। नई उमर तथा इसके जोश में कभी-कभी होश भूलकर उत्तेजनात्मक शब्द कह देते हैं। स्वाभिमानी, तार्किक व्यक्ति हैं। जब से गृह त्याग किया, तब से माता-पिता या भाइयों की ओर से तटस्थ तथा उदासीन रहे। इन्होंने विवाह नहीं किया। नित्य प्रति त्रिकाल स्नान, त्रिकाल सन्ध्या, गायत्री जप, नर्मदेश्वर शालिग्राम पूजन करते हैं। आज कल इस शरीर से महावाक्य लेकर होशियारपुर सुक्की चोई पर मिश्रों की

कुटी में एकान्त सेवन करते हुये उपासना रत हैं। संगीत प्रिय हैं, यत्र तत्र सम्मेलनों में जाते हैं। अभी हाल में अनेक ब्राह्मण बालकों का इन्होंने सामूहिक यज्ञोपवीत करवा कर वेदाभ्यास में लगाया।

स्वामी हरीशाश्रम के छोटे गुरु भाई, शान्ति आश्रम लड़ोई के महन्त स्वामी नारायणाश्रम जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद इस शान्ति प्रधान आश्रम में भी जज स्वामी अशान्ति पैदा करना चाहते हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे सप्त त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३७॥

अनन्त श्री मद्दण्डी स्वामी शान्ताश्रम जी महाराज, ईशान मठ काशी की परम्परा पूर्ण हुई।

अथ अष्टात्रिंशततमोऽध्यायः

अनन्त श्री दण्डी स्वामी अनन्त विज्ञानाश्रम, अनन्त विज्ञान मठ, काशी (९७५)

अनन्तानन्द बोधाय त्वनन्त गुरवे नमः।
वेद वेदान्त सिद्धान्त दायिने मुक्ति दायिने ॥

अनन्त श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी महाराज के तीसरे शिष्य अनन्त विज्ञान मठ के संस्थापक अनन्त श्री अनन्त विज्ञान आश्रम जी महाराज का जन्म पंचनद प्रदेश में पटियाला के समीप हुआ था। कुछ सन्तों के मत से आप श्री दण्डी स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज के शिष्य एवं चौसट्ठी मठ के प्रथम गुरु श्री मंधुसूदन आश्रम जी के गुरु भाई थे। संन्यास के बाद आपने काशी वास किया। इनके शिष्य **श्री स्वामी पूर्णाश्रम जी, श्री स्वामी कमलाश्रम जी, श्री स्वामी शान्ताश्रम जी** महाराज तथा श्री स्वामी अच्युत आश्रमजी थे। इन्होंने अपने पुरुषार्थ से अन्य चार मठों की स्थापना की। स्वामी आनन्दाश्रम जी महाराज, स्वामी वासुदेवाश्रम जी भी इनके शिष्य थे। स्वामी जी ने वृद्धावस्था में संन्यास देना छोड़ दिया था। परन्तु नवयुवक, परमयोग्यतम, विवेक वैराग्य सम्पन्न, वेदान्त महाकेसरी, दण्डी स्वामी ओंकाराश्रम जी महाराज को सहर्ष संन्यास दिया। यह इनके अन्तिम शिष्य थे। इनका चरित्र लिखा जा रहा है।

अनन्त श्री पूज्य पाद परम गुरुदेव महावेदान्त केसरी दण्डी स्वामी ॐकाराश्रम जी (९७६)

ओंकाराय नमो नित्यं गुरवे शान्तमूर्तये।
अखण्डानन्दबोधाय, शिष्य सन्ताप हारिणे ॥

पूज्य पाद महाराज श्री का जन्म विक्रमी सम्वत् १९४५ में दिल्ली से १६ मील पश्चिम में "कंझावला" ग्राम में हुआ था। इनके पिता वैदिक मर्यादा रक्षक, शिव भक्त पंडित श्री राम जी थे। इनके दो भाई जिनमें बड़े का नाम यज्ञदत्त तथा छोटे का नाम चंदगी राम था। तीनों निःसन्तान थे। अनुज ने इनसे संन्यास लिया। योग पट्ट स्वामी चन्द्रशेखराश्रम रखा। यह गुरु जी से पहले फरवरी १९५४ ई. में ब्रह्मलीन हुये। स्वामी जी का जन्म का नाम पंडित देवदत्त था।

आपने प्रारम्भिकी शिक्षा ग्राम में मिडिल तक प्राप्त की। फिर काशी जाकर ४ वर्ष तक व्याकरण आदि का अध्ययन किया। फिर लाहौर के ओरियन्टियल कॉलेज में भर्ती हुये। फिर गंगा तट पर विद्यमान ब्रह्मचारी जीवन दत्त जी की पाठशाला में षड्दर्शनाचार्य पूज्य पाद स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी से नरवर में वेदान्त आदि दर्शनों का अध्ययन किया। इनका विवाह ११ वर्ष की आयु में हो गया था। विवाह के तीन वर्ष बाद पत्नी का देहावसान हो गया। कुछ के मतानुसार युवावस्था में पत्नी का त्याग करने के कारण उनके शाप से मूत्र सम्बन्धी रोग हो गया। तीर्थ यात्रा के लिये निकले लौटकर संन्यास की इच्छा से काशी पहुंचे। वहां के अनेक मठों में गये। कोई गुरु नहीं जंचे। अन्त में अनन्त विज्ञान मठ में पहुंचे। वहां के अध्यक्ष पूज्यपाद परमेष्ठी गुरु अनन्त विज्ञानाश्रम जी महाराज बृद्ध संन्यासियों को वेदान्त पढ़ा रहे थे। सभी स्वामी कथा के बाद गुरु वन्दना करके अपने आसनों पर आ गये। गौर वर्ण के नवयुवक देवदत्त ब्रह्मचारी गुरु जी के पास पहुंचे।

देवदत्त—स्वामिन् ॐ नमो नारायणाय। अष्टाक्षर मंत्र से तीन बार गुरु वन्दना की।

गुरु जी—नारायण ब्रह्मचारिन्? कैसे आगमन हुआ।

देवदत्त—गुरु जी ! मैं आपसे संन्यास लेने आया हूं।

गुरु जी—संन्यास, मैं इतनी छोटी आयु वाले को संन्यास नहीं दे सकता। बहुत समय से संन्यास देना छोड़ रखा है।

देवदत्त—गुरुदेव, मैंने तो उपनिषदों में पढ़ा है कि—यदहरेव विरज्येत्, तदहरेव परिव्रजेत्। यदा मनसि वैतृष्ण्यं जायते सर्ववस्तुषु। ब्राह्मण को जिस दिन विवेक सहित वैराग्य हो जाए, उसी दिन संन्यास ले ले। जब मन में सभी वस्तुओं में उत्कट वैराग्य हो तब संन्यास ले ले।

गुरु जी—बेटा, क्या तुम उपनिषदें जानते हो?

देवदत्त—जी हां, कुछ जानता हूं।

गुरु जी—कौन सी उनिषद् जानते हो।

देवदत्त—गुरुदेव १०८ उपनिषदें।

गुरु जी—१०८ एक सौ आठ, आश्चर्य करते हुये, ताली बजाते हुये कहा। दौड़ो रे संन्यासियो। गुरु जी की पुकार सुनकर संन्यासी दौड़ते हुये पहुंचे।

संन्यासी गण—क्या हुआ स्वामिन्।

गुरु जी—अरे काशी में साक्षात् विश्वनाथ आये हैं। ऐसा कहकर देवदत्त की ओर संकेत करके कहा—देखो यह ब्रह्मचारी १०८ उपनिषदें जानता है।

संन्यासी गण—१०८, हाथ कंगन को आरसी क्या। उपनिषदें मंगाकर परीक्षा लीजिये।

देवदत्त—मुझे पुस्तकों की आवश्यकता नहीं है। सब कण्ठस्थ हैं।

गुरु जी—सब कण्ठस्थ (ध्यानावस्थित हो जाते हैं—गुरु जी)

संन्यासी गण—उपनिषदें लेकर आते हैं।

एक बृद्ध स्वामी—अच्छा, कठोपनिषद् सुनाइये।

देवदत्त—सुलटी सुनाऊँ कि उलटी।

संन्यासी गण—बाप रे बाप, यह तो बड़ा विचित्र ब्रह्मचारी है। अच्छा उलटी सुनाओ।

देवदत्त उलटी उपनिषदें सुनाने लगते हैं।

गुरु जी ध्यान से जगकर बोले। अब सुनाना बन्द कर दो। फिर प्रेम से पूछा। वत्स, क्या तुमने गीता और ब्रह्मसूत्र भी पढ़ा है।

देवदत्त—हां गुरु जी, मुझे आपकी महती कृपा से गीता तथा ब्रह्मसूत्र, भगवत् पाद के भाष्य सहित कण्ठस्थ हैं।

गुरु जी—रे वत्स, मैंने बहुत काल से संन्यास देना छोड़ दिया है। परन्तु तुम्हें संन्यास अवश्य दूंगा। तुम स्वयं ज्योति हो।

संन्यासी गण—धन्य हो, धन्य हो।

परम गुरुदेव संन्यास के अनन्तर गुरु सेवा में रहे। साधना तथा संन्यास सम्बन्धी नियमों को जानकर विचरण करने लगे।

स्वामी जी प्रतिवर्ष जनवरी में कलकत्ता जाते थे। वहां के मुमुक्षु भक्तों को तीन घण्टे वेदान्त सुनाते थे। ज्ञान गंगा में सब स्नान करते थे। उन्होंने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके अद्वैत वेदान्त का प्रचार किया। परन्तु अधिकतर दिल्ली यमुनातट पर निवास किया। बाद में आपने परम कृपा पात्र शिष्य "दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज" को लेकर ऋषीकेश माया कुण्ड में लकड़ी की कुटी में रहे। यदा-कदा मेरठ, रोहतक, गुडगांव आदि क्षेत्रों में भी प्रचार किया। अन्तिम समय में इन्होंने ब्रजघाट (गढ़ मुक्तेश्वर) में गंगातट पर ओंकार मठ की स्थापना बैशाख शुक्ल त्रयोदशी दिन गुरुवार सम्वत् २०१५ विक्रमी सन् १ मई, १९५८ ई. में की। साथ ही भगवान् भाष्यकार की प्रतिमा भी स्थापित हुई।

दण्डी शिष्य—१. श्री वेद स्वामी जी, २. दण्डी स्वामी आनन्दाश्रम जी महाराज ऋषीकेश, ३. दण्डी स्वामी पूर्णाश्रम जी महाराज, ४. दण्डी स्वामी चैतन्याश्रम जी, ५. श्रीभगवदाश्रम जी, ६. दण्डी स्वामी बुद्ध देवाश्रम जी, बुलन्द शहर, ७. दण्डी स्वामी चन्द्र शेखराश्रम जी (नैपाली स्वामी), ८. दण्डी स्वामी माधवाश्रम जी, ९. दण्डी स्वामी वामनाश्रम जी, १० दण्डी स्वामी स्वानन्दाश्रम जी। स्वामी जी ने जीवन काल में ही स्वामी माधवाश्रम जी को उत्तराधिकार दे दिया था। परम गुरु जी की कथनी करनी एक थी। सरलता में बालक के समान, तेज में सूर्यवत्, भक्तों के परम हितकारी थे। अपने भाषणों में कर्म, उपासना, ज्ञान का क्रम समुच्चय मानते हुये समन्वय करते थे। आप दहाड़ते हुये कहते थे, "जीव के लिये शास्त्रानुगम निष्कंटक मार्ग है।

अद्वैत वेदान्त की गुत्थियों को सुलझाने में दक्ष थे। देश के कोने-कोने से अद्वैत वेदान्त का सार समझने के लिये आते थे। ऐषणात्रय से निर्मुक्त थे। इनके गृहस्थ भक्तों में परम कृपा पात्र पंडित मनोहर लाल शर्मा जी थे। उनके चरणों में बैठकर इन्होंने विवेक चूड़ामणि, पंचदशी ब्रह्मानुचिन्तनम्, अपरोक्षानुभूति आदि ग्रन्थों को लगाया था। इन ग्रन्थों की शर्मा जी ने हिन्दी में सरल तथा विशद 'ओंकारी' नाम की व्याख्या लिखी है।

एक बार इनके पास स्वामी जी ने चातुर्मास्य किया। जन्माष्टमी के दिन "भगवान् कृष्ण कौन थे" इस विषय पर बोलने के लिये कहा। आपने तीन घण्टे तक श्री कृष्ण तत्त्व की विशद व्याख्या की। इसको शर्मा जी तथा अन्य जिज्ञासुओं ने टेप रिकार्ड किया था।

अनेक बार आप से वेदान्त पर ग्रन्थ लिखने की प्रार्थना की। इसके उत्तर में आप कहते थे कि पूर्ववर्त्ती आचार्यों ने सूक्ष्म दृष्टि से अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। वही पर्याप्त हैं। नवीन ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं हैं। लाहौर कॉलेज में पढ़ते समय इन्होंने डायरी में वेदान्त के कुछ श्लोकों का संग्रह किया है। वह लखनऊ से "वेदान्त मणिमाला" के रूप में हिन्दी व्याख्या सहित पंडित रामशंकर जी द्विवेदी ने प्रकाशित किया है। यह आगे दिया जाएगा। स्वामी जी के इष्ट गीता के योगेश्वर कृष्ण थे। उन्होंने कई बार प्रत्यक्ष दर्शन दिया। बहुमूत्र रोग के कारण किसी को भी चरण स्पर्श की आज्ञा नहीं थी। किसी अंग को छूते ही तुरन्त लघुशंका हो जाती थी। नैमिषारण्य में एक भक्त पर शक्तिपात किया था।

आप केवल वाचिक ज्ञानी ही नहीं थे। ब्रह्मनिष्ठ भी थे। जिसको हाथ से स्पर्श करते थे। वह रोग मुक्त हो जाता था। ला० टेक चन्द को १०२ बुखार था। स्पर्श करते ही जाता रहा।

सन् १९५६ फरवरी में स्वामी जी कलकत्ता में तारकेश्वर के दर्शन के लिये गये। वह मन्दिर ३९ मील दूर था। भक्त परमेश्वरी लाल स्वयं गाड़ी चला रहे थे। लौटने पर उन्होंने बहुत तेज कार चलाई। आपने डांटकर धीरे चलाने को कहा। उसने कहा—गुरु जी ! आप गाड़ी में बैठें हैं, अमंगल कैसे हो सकता है। ८ मील निकलने के बाद सड़क के किनारे से गौयें जा रही थीं। सहसा एक गाय का बछड़ा उछल कर गाड़ी के सामने आ गया। ब्रेक लगाकर बचाने का पूर्ण प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिली। वह भयंकर रूप से चिल्लाया। हड्डी टूटने का शब्द हुआ। परमेश्वरी लाल बहुत घबराये। गो हत्या का पाप

लगा। तुरन्त गाड़ी को पीछे किया। वह निर्जीव बछड़ा उठा, तथा भाग खड़ा हुआ। सभी की जान में जान आई। सन् १९५७ में शिवरात्रि के समय एक भक्त जगन्नाथ पुरी में ले गया। मन्दिर में दर्शन किया। स्वामी जी ने दण्ड प्रणाम किया, ध्यानावस्थित हो गये। भक्त ने देखा, भगवान् से एक तेज निकलकर स्वामी जी के मस्तक में लीन हो गया। इन घटनाओं से महाराज जी में ब्रह्मश्रोत्रियत्व तथा निष्ठत्व की सिद्धि होती है। सितम्बर सन् १९५८ में दिल्ली में थे। चातुर्मास्य में अस्वस्थ हो गये। दिल्ली में गंगा तट आश्रम में जाने की इच्छा व्यक्त की। ब्रज घाट पहुंचने पर गाड़ी में ही जन्माष्टमी के दिन १७ सितम्बर को ब्रह्मलीन हो गये। गंगा जी में जल समाधि दी गई। भण्डारा हुआ। दण्डी स्वामी माधवाश्रम जी मठ के महन्त हुये।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे अष्ट त्रिंशततमोऽध्यायः ॥३८॥

अथ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

उपदेश, वेदान्त मणि माला से

जिन दिनों परम गुरुदेव जी लाहौर संस्कृत विद्यालय में अध्ययन करते थे। उस समय के उनकी डायरी के कुछ श्लोक प्राप्त हुये हैं।

यो व्यष्ट्युपाधौ च समष्ट्युपाधौ। शमः शुचिः शान्ततमश्चिदंशः।
तमेकमादाय जडांशहानाच्छिष्टश्चिदंशो मम तत्स्वरूपम् ॥१॥
यद्यात्मनि त्वं सुख दुःख प्रयत्न धर्मादि गुणान् ब्रवीषि।
सुषुप्ति कालेऽनुभवो न तेषामात्मा तदानीं तब निर्विशेषः ॥२॥
ज्ञानेन मोक्षः श्रुतिषु प्रसिद्धः न कर्मणा जन्य तथा ह्यनित्यः।
शिष्टैः समस्तैः सुपरिग्रहेण दुस्तार्किकानां च मतं न चारु ॥३॥
अज्ञानमेतत्सकलं व्यलीकं तज्जं सुखं दुःखमपि व्यलीकम् ॥४॥
मृगोदकं सर्वमपि व्यलीकं तज्जास्तरङ्गा अपि ते व्यलीकाः ॥५॥
अविद्या निवृत्यर्थ मेवेह शास्त्रं प्रवृत्तं न तत्स्व प्रकाश बोधने।
तिरोधान नाशाद्यथादीप भानं स्वयं जायते तत्र नान्यापेक्षा ॥६॥
जीव ईशो विशुद्ध चित् तथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तयोः संयोगः षडस्माकमनादयः ॥७॥

अष्टौरसान् मधुरादि षड्रसान् पीत्वा पिपासा परिवर्द्धते भृशम्।
एकस्य शान्ताख्य रसस्य पानतो न नः पिपासा लवलेश विभ्रमः ॥८ ॥
आत्मनः सच्चिदंशस्य बुद्धि वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्या विवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥९ ॥
आत्मनस्तु क्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जातुचित्।
जीवः स्वरूपमज्ञात्वा ज्ञाता दृष्टेति मुह्यति ॥१० ॥
ब्रह्माकारा तत्त्व मस्यादि वाक्यैर्याधीवृत्तिर्ब्रह्मविद्याभिधाना।
वेदे उक्ता मूलमज्ञानमेषा दग्ध्वात्मानं घातयेत्पूर्णबह्मौ ॥११ ॥
अविरोधितया कर्म नाविद्यां निवारयेत्।
विद्याविद्यान्तु हन्त्येव तेजस्तिमिर संघवत् ॥१२ ॥
तोय प्रदानं मही प्रदानं न चान्नदानं तथा प्रधानम्।
यथा वदन्तीह बुधाः प्रदानं सर्व प्रदानेष्वभय प्रदानम् ॥१३ ॥
अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्षान्नात्मानमात्मन्याधाय निष्फले ॥१४ ॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः।
न द्रक्ष्यसि शरीरञ्च विश्वञ्च पृथगात्मनः ॥१५ ॥
शवाकार के भजन से अशुचि तथा शिवाकार के भजन से मुक्ति ॥१६ ॥
सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥१७ ॥
सर्व धर्मान् धर्म रूपाणि सर्व कर्माणि,
परित्यज्य संन्यस्य, शरणं
ब्रज नमत्तः अन्यत् किञ्चिदस्तीत्यवधारय,
सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि धर्माधर्म बन्धनेभ्यो
मोक्षयिष्यामि स्वात्मभाव प्रकाश करणेन ॥१८ ॥
कुर्वन्ति कर्माणि फलमश्नुते च तेषाम्।
साक्षी त्वमन्तर्विलुप्त चिदेक रूपः ॥१९ ॥

प्रपञ्चमिथ्यात्वात् विजातीय भेदः ब्रह्मात्मैक्यात् सजातीय भेदः।
प्रज्ञान घनत्वात् स्वगतभेदो नास्ति, तस्मादखण्डं परमात्मनस्तु
तदेव चाहं नहि भेदलेशः ॥२० ॥
अखण्ड रूपस्थितिरेव मोक्षः ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम्।
भूतानि पञ्च तव मोह समुद्भवानि संघातरूप परिणाम मुपागतानि ॥२१ ॥
नाहं मनुष्यो नच देव यक्षो, न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रः।
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो, भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥२२ ॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिंप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योभिचाकशीति ॥२३ ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशयाशोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥२४ ॥
ये द्वासुपर्णेति वचो बलेन जीवेशयो भेंदमुशन्ति मन्दाः।
जीवस्य भोक्तृत्वमथेश्वरस्य नास्तीति तात्पर्यमिदं श्रुतेः ॥२५ ॥
वैराग्य बोधाय हि कामिनां तदज्ञानिनां सा श्रुतिराह माता।
साहंकृतित्वान्निरहंकृतेस्तदीशस्य नास्तीत्यभिसंधिरत्र ॥२६ ॥
बहुभिरन्याभिरभेद बोधे वलीयसीभिः श्रुतिभिर्विरोधात्।
उपेक्षणीयानवकाश हेतोस्तासां श्रुतीनां च विचारणेन ॥२७ ॥
न सदृशं तिष्ठति मे स्वरूपं न चक्षुषा पश्यति मां कश्चन।
हृदामन्वीशं मनसाभिक्लृप्तं ये मां विदुस्ते ह्यमृता भवन्ति ॥२८ ॥
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्त्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मैतत्।
जीवेशानौ सृज्यमानं जगच्च शुद्धं ब्रह्मेत्याह वेदान्त वाक्यम् ॥२९ ॥
न मेऽस्ति देहेन्द्रिय वुद्धियोगः न पुण्य लेशोऽपि न पापलेशः।
क्षुधापिपासादि षडूर्मिदूरः सदाविमुक्तोऽस्मि चिदेव केवलः ॥३० ॥

अर्थ—जो अविद्या उपाधि वाले जीव में तथा माया उपाधि वाले ईश्वर में सम, पवित्र, शान्त, चेतनांश है। उस एक को ग्रहण करके जडांश का बाध कर देने से जो अवशिष्ट चेतन अंश बचता है, वह मेरा स्वरूप है ॥१ ॥ यदि तुम आत्मा में सुख, दुःख, प्रयत्न तथा धर्मादि

गुणों को कहते हो; नैयायिक से वेदान्ती उत्तर देते हुये कहते हैं। तो सुषुप्ति की घोर निद्रा में पूर्वोक्त गुणों का अभाव होता है। तब तुम्हारा आत्मा गुण रहित सिद्ध होता है ॥२ ॥ श्रुति में ज्ञान से मुक्ति प्रसिद्ध है। कर्म से नहीं, क्योंकि कर्म अनित्य है। सभी शिष्ट विज्ञजनों ने यह स्वीकार किया है। अतः कुतार्किकों का मत ठीक नहीं है ॥३ ॥ श्रुति ने **"असङ्गोह्ययं पुरुषः"** यह पुरुष असंग है, कहा है। असंग का बन्धन सम्भव नहीं है। नित्य मुक्त की मुक्ति पूर्व सिद्ध है। जीव के बन्धन का कारण अज्ञान है और वह मिथ्या है। यह सब मृग तृष्णा के जल से समान प्रतीत होने वाली तरंगों के समान मिथ्या है ॥४ ॥५ ॥ वेदान्त शास्त्र यहां अविद्या की निवृत्ति के लिये प्रवृत्त है। वह स्वयं प्रकाश आत्मा के साक्षात्कार कराने में प्रवृत्त नहीं है। जैसे दीपक का प्रकाश उसके आवरण हटा देने से स्वयं प्रकाशित हो जाता है। वैसे ही यहां भी आवरण भंग होते ही ब्रह्मानुभूति होती है ॥६ ॥ जीव, ईश्वर तथा शुद्ध चैतन्य (अविद्यामाया के सम्बन्ध से रहित) चेतन तथा अविद्या दोनों का संयोग, माया से चेतन का संयोग, अविद्या का जीव से सम्बन्ध, यह छः वस्तुयें वेदान्तियों की अनादि हैं। भाव यह है कि शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर जीव, माया, ईश्वर माया का सम्बन्ध, ईश्वर जीव का सम्बन्ध अथवा इनका पारस्परिक सम्बन्ध अनादि है। इनमें से ईश्वर, जीव; माया, ईश्वर जीव का सम्बन्ध, इन सबका परस्पर सम्बन्ध यह पांचों अनादि तथा सान्त हैं। इनका बाध होता है। एक मात्र शुद्ध ब्रह्म अनादि तथा अनन्त है ॥७ ॥ जिन आठ रसों को, मीठा आदि छः रसों को पीकर प्यास बढ़ती है। एक मात्र शान्त रस का पान करने से हम लोगों की प्यास लेश मात्र नहीं रहती। भाव यह है कि साहित्य में नौ रस कहे हैं। इनमें से शान्त रस को छोड़कर शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीभत्स, वीर, भयानक तथा अद्भुत इन रसों से विषय वासना की वृद्धि होती है। केवल शान्त रस से विषय अभिलाषा नहीं रहती। खाद्य, पेय पदार्थों से प्राप्त छः रस मधुर, अम्ल, कटु, तीक्ष्ण, कषाय, लवण आदि के सेवन करने से भी तृप्ति नहीं होती। इन १४ रसों के सेवन से दुःख की वृद्धि होती है। केवल शान्त रस से ही त्रितापों की आत्यन्तिक निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥८ ॥ आत्मानात्म का विवेक न करने से आत्मा के सत् तथा चिदंश, बुद्धि वृत्ति सहित, इन दोनों को जोड़कर, मैं जानता हूं, मैं खाता, सोता, सुखी-दुःखी हूं, जीव व्यवहार करता है ॥९ ॥ किन्तु आत्मा में क्रिया नहीं होती। कभी भी बुद्धि को आत्म शक्ति बिना ज्ञान नहीं होता। जीव अपने निष्क्रिय स्वरूप को न जान कर "मैं सबका द्रष्टा हूं, ज्ञाता हूं" इस अज्ञान को प्राप्त करता है ॥१० ॥

वेदों में ब्रह्म विद्या जिसको कहा है। वह बुद्धि वृत्ति "तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्यों द्वारा कही गई है। "मैं ब्रह्म हूं" यह बुद्धि वृत्ति, अज्ञान को जलाकर स्वयं भी ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध हो जाती है ॥११॥ अविद्या से उत्पन्न कर्म, विद्या को उसी प्रकार दूर नहीं कर सकते, जिस प्रकार अन्धकार अन्धकार को दूर नहीं कर सकता। जैसे प्रकाश अन्धकार को दूर करता है। वैसे ही ब्रह्म विद्या, अविद्या को नष्ट करती है ॥१२॥ जलदान, भूमिदान, अन्नदान, मुख्य नहीं हैं। सब दानों में अभयदान (जन्म मरण के भय को निवृत्त करने वाला) को विद्वानों ने प्रधान दान कहा है ॥१३॥ मैं परंब्रह्म, परमधाम, परम पद हूं। इस प्रकार आत्म स्वरूप का चिन्तन करके निष्फल ब्रह्म में चित्त को स्थापित करके स्थिर हो जाओ। हे परीक्षित ! शुकदेव जी मृत्युकाल उपस्थित होने पर राजा को सावधान करते हुये कहते हैं कि मुखों से विष वमन करते हुये, ओंठ चाटते हुये, पैरो में काटते हुये तक्षक को अपने शरीर को तथा विश्व को आत्मा से पृथक् नहीं देखोगे। अर्थात् तुम्हें सर्वत्र आत्म दर्शन होगा ॥१४॥१५॥ शवाकार के भजन से जीव अपवित्र है। अर्थात् देहाध्यासी निर्जीव शरीर के समान जड़ वस्तुयें धन, भूमि आदि का यदि चिन्तन करता है, तो शव के स्पर्श के समान अपवित्र होता है। शिवाकार के भजन से मुक्ति मिलती है। अर्थात् परम कल्याण स्वरूप परमात्म चिन्तन से मुक्ति मिलती है ॥१६॥ हे अर्जुन ! सभी धर्मों के अभिमान को त्याग कर एक मेरी शरण में जाओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूंगा। शोक मत करो। यह श्लोक या मंत्र अक्षरशः "शिव गीता" में शिव जी ने राम के प्रति कहा है तथा कई उपनिषदों में भी आया है ॥१७॥ **सर्वधर्मान्**—धर्म रूपी सम्पूर्ण कर्मों को **परित्यज्य** विधि विधान से त्याग कर **शरणं ब्रज** मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ऐसा निश्चय करके **सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि** धर्माधर्म के सभी बन्धनों से स्वात्मभाव प्रकाश द्वारा, अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा मुक्त कर दूंगा। अथवा धर्माधर्म की शुभाशुभ वासनाओं से मुक्त कर दूंगा। **माशुचः** तुम शोक मत करो ॥१८॥ जीव कर्मों को करते हैं तथा उनका शुभाशुभ फल भोगते हैं। तुम सब के भीतर छिपे हुये चैतन्य स्वरूप साक्षी हो ॥१९॥ जीव तीन प्रकार की भ्रान्ति में पड़ा है। तीन प्रकार के विचारों से उक्त भ्रान्तियों से मुक्त होता है। जगत् के मिथ्या होने के विचार से विजातीय भेद से, जीव ब्रह्म की एकता से सजातीय भेद से वह प्रज्ञानघन स्वरूप है। स्वगत भेद से रहित होता है। इसलिये मैं वह अखण्ड परमात्मा हूं। मुझ में लेश मात्र भी भेद नहीं है। इस निश्चय से जीव मुक्त होता है ॥२०॥

ब्रह्म में अखण्ड रूप से स्थित होना ही मुक्ति है। एक ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरा नहीं है। इसमें श्रुतियां प्रमाण हैं। पञ्च महाभूत तुम्हारी अविद्या से उत्पन्न हुये हैं। जो शरीर रूप में परिणत हैं ॥२१॥ मैं मनुष्य देव, यक्ष, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, न संन्यासी हूं। मैं आत्म स्वरूप हूं ॥२२॥ (शरीर रूपी) वृक्ष पर जीवात्मा तथा परमात्मा रूपी दो पक्षी, जो परस्पर सटे हुये, सखा भाव से, सुन्दर पंखों वाले रहते हैं। इन दोनों में से एक (जीव) इसके सुख-दुःख रूपी स्वादिष्ट फलों को खाता है। दूसरा फल न खाकर देखता है ॥२३॥ उस एक ही देह रूपी वृक्ष पर जीव रूपी पक्षी देहात्म बुद्धि में मोहित होकर दीन भाव से शोक करता है। जब वह जीव योग मार्ग से सेवित दूसरे ईश्वर रूपी पक्षी की महिमा को देखता है। तब शोक रहित होकर फलोपभोग का त्याग करता है ॥२४॥ इन दोनों मंत्रों को देखकर द्वैतवादी जीव ईश्वर में भेद सिद्ध करते हैं। परन्तु मन्त्र में आये हुये सुपर्णा, सयुजा, सखाया, समानं शब्दों से अभेद सिद्ध होता है। **सुपर्णा—शौभनौ पक्षौ यस्य सः। सयुजा-सम्यक् युक्तौ, संयुक्तौ, सखाया-सख्य भावं गतः। समानं-तुल्यं।** ईश्वर तथा जीव दोनों ही ज्ञान वैराग्य रूपी दो पक्षों से युक्त हैं। दोनों परस्पर जल में जल, दूध में दूध के समान मिले हुये हैं। समान स्थिति वालों में परस्पर मित्रता होती है। अतः दोनों में उपर्युक्त पदों से अभेद सिद्ध होता है। इन मंत्रों में जीव कर्त्ता, भोक्ता, ईश्वर अकर्त्ता सिद्ध होता है। इसी भाव को लेकर नीचे व्याख्या की है।

जो मन्द बुद्धि मूर्ख दो पक्षी इस बचन के बल से जीव तथा ईश्वर में भेद मानते हैं वह ठीक नहीं है। इन मंत्रों से जीव का कर्त्ता भोक्तापना सिद्ध किया है, ईश्वर का नहीं है। ऐसा श्रुति का तात्पर्य है। क्योंकि अज्ञानी कामनाओं से ग्रस्त व्यक्तियों के लिये ज्ञान वैराग्य के लिये श्रुति माता ने कहा है। अज्ञानी देहाभिमानी होने के कारण उनका भोक्तापना कहा है। ईश्वर अहंकार से रहित होने के कारण कर्त्ता भोक्ता नहीं है। यही इस श्रुति क़ा गूढ अभिप्रायः है ॥२५॥२६॥ अभेद ज्ञान में और भी बहुत सी श्रुतियां बलवती हैं। श्रुतियों का परस्पर विरोध होने के कारण, उन विरोधी श्रुतियों का विचार करने से, यहां स्थान या अवसर न होने के कारण उक्त श्रुतियां उपेक्षा करने योग्य है ॥२७॥ मेरा स्वरूप आकार हीन होने के कारण नेत्रों का विषय नहीं है। हृदय में स्थित, मन से सुरक्षित सब ज्ञानों के स्वामी मुझ को जो जानते

हैं। वे निश्चय ही जन्म-मरण से छूट जाते हैं ॥२८॥ यह ब्रह्म भोक्ता, भोगने योग्य, प्रारब्ध भोग के लिये प्रेरणा करता है। तीन प्रकार का है। ऐसा मानकर जीव तथा ईश्वर द्वारा रचित जगत् शुद्ध ब्रह्म है। यह वेदान्त में कहा है ॥२९॥ मुझ में शरीर इन्द्रिय आदिकों का योग नहीं है। मुझ में पुण्य पाप का भी लेश नहीं है। भूख, प्यास, जन्म, मरण, शोक, मोह इन छः ऊर्मियों से रहित नित्य मुक्त केवल ज्ञान स्वरूप हूं ॥३०॥

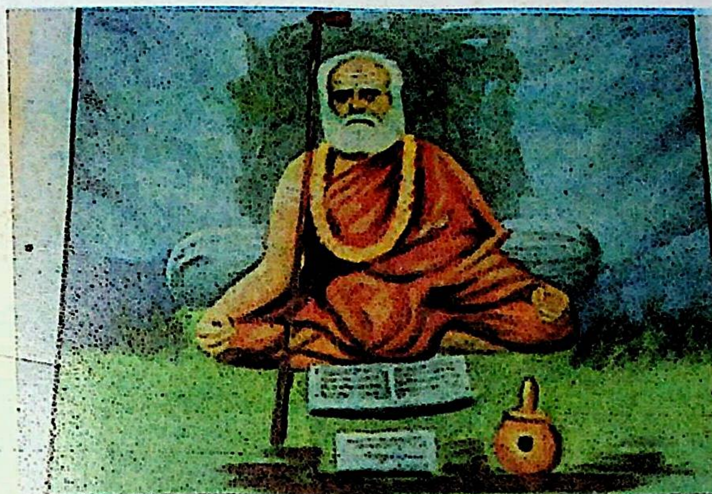
महावेदान्त केसरी की उपाधि

आप वेदान्त के अभूतपूर्व अद्वितीय विद्वान् थे। प्रयाग राज के एक महाकुम्भ में आपका चारों शंकराचार्यों एवं धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज के समक्ष हजारों की भीड़ में वेदान्त पर अद्वितीय भाषण हुआ। इसको सुनकर चारों जगद्गुरुओं, श्री स्वामी करपात्री जी, मंचस्थ विद्वानों, यतियों एवं जनता ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। सभी जगद् गुरुओं तथा करपात्री जी ने आपका विशेष सम्मान करना चाहा। सभी ने मिलकर परम गुरु जी का अभिनन्दन किया। धर्माचार्यों ने संस्कृत में अपने अपने भाव व्यक्त करने के अनन्तर महाराज श्री जी को "महा वेदान्त केसरी" की उपाधि से अलंकृत किया। उनका अन्तिम लक्ष्य "गेहे गेहे जने जने" प्रस्थानत्रयी के माध्यम से (गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषद् के शाङ्करभाष्य) अद्वैत वेदान्त का सन्देश पहुंचा कर इनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन से आत्म साक्षात्कार करवाकर आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों प्रकार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति सहित परमानन्द की प्राप्ति कराकर जीव का परम कल्याण करना था। आपने अन्तिम श्वास तक इस कार्य को मनसा, बाचा, कर्मणा तीनों प्रकोर से पूर्ण किया।

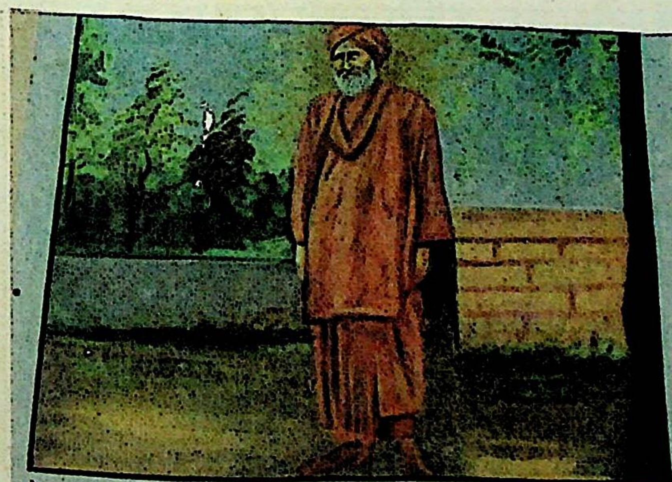
ओंकारं विंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलि० ख०, अष्टम परि०, एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३९॥

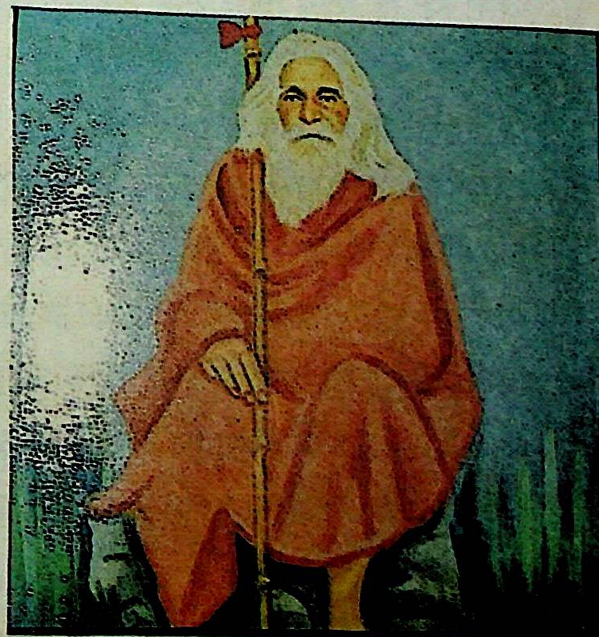




महन्त श्री दण्डी स्वामी अनन्तविज्ञान मठ
अनन्ताश्रम-काशी



वेदान्तमहाकेसरी ब्रह्मीभूत स्वामी ओंकाराश्रम जी महाराज
ब्रजघाट, गढ़ मुक्तेश्वर



दण्डी स्वामी श्री सच्चिदानन्दाश्रम जी
(ऋषीकेश) देहरादून



अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

पूज्य पाद दण्डी स्वामी श्री चतुर्भुजाश्रम जी

अनन्त श्री दण्डी स्वामी वेद स्वामी जी महाराज, दण्डी स्वामी आनन्दाश्रम जी, दण्डी स्वामी पूज्य पाद गुरुदेव सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज (९७७—९८०)

दण्डी स्वामी वेद स्वामी जी वेदज्ञ तथा वेदपाठी होने के कारण इनको वेद स्वामी कहते थे। स्वामी आनन्दाश्रम जी हृषीकेश माया कुण्ड में स्वामी जी के आश्रम "सद्‌गुरु सदन" के समीप एक कुटीर में रहते थे। फक्कड़ निरभिमानी महात्मा थे। सादा जीवन था। क्षेत्रों में भिक्षा करते थे। विशेष पठित नहीं थे। संन्यास में गुरु जी से बड़े होने पर भी नित्य प्रणाम करते थे।

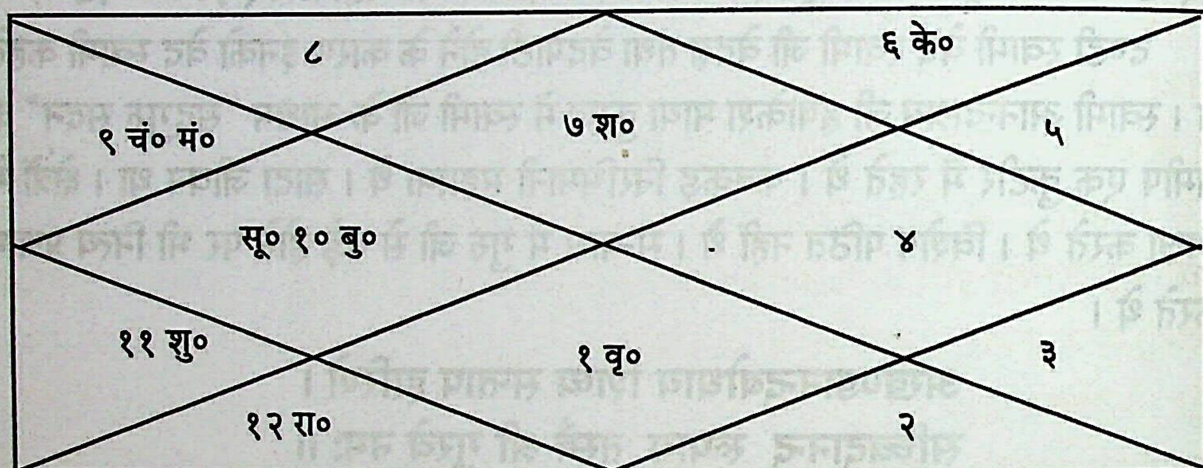
अखण्डानन्दबोधाय शिष्य सन्ताप हारिणे।
सच्चिदानन्द रूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरुदेव अनन्त श्री दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज—पूज्यपाद महाराज श्री का जन्म गौतम गोत्रीय सरयू पारीण ब्राह्मण पंडित श्रीवागेश्वर मिश्र के पुत्र पंडित श्री रामलखन मिश्र के यहां हुआ था। इनका जन्म का नाम श्री चन्द्रिका प्रसाद मिश्र था। जन्म स्थान ज़िला गोंडा ग्राम 'महिनवन' में हुआ था। इस ग्राम के दक्षिण मे एक सरोवर था। उस पर देवी का मन्दिर था। मन्दिर के सामने वट तथा पीपल के पेड़ थे। इसके नीचे एक तपस्वी वीतराग महात्मा रहते थे। गौर वर्ण, शम-दम आदि साधन सम्पन्न थे। सभी लोग इनको 'क्रिया बाबा' कहते थे। पंडित वागेश्वर जी भी भगवती के दर्शन के लिए नित्य जाते थे। वहां पर इन्होंने अनुष्ठान किया। फिर क्रिया बाबा की सेवा करते थे। सत्संग होता था। इसमें इनके पुत्र श्री रामलखन जी भी आते थे। एक दिन क्रिया बाबा ने श्रोताओं से कहा—मैं शरीर त्यागने के बाद इसी ग्राम के किसी पवित्र ब्राह्मण के यहां जन्म लूंगा। कालान्तर में बाबा ने शरीर छोड़ा। भक्तों ने वहां समाधि बनाई।

जिस दिन सन्त ने शरीर छोड़ा, उसी रात्रि को श्री पं० रामलखन की पत्नी को स्वप्न हुआ। देखा कि एक परम मनोहर बालक बैठा है। उसके चारों ओर दिव्य प्रकाश है। दोनों ने यही स्वप्न देखा। जगने पर एक-दूसरे को बताया। सं० १९५० वि० माघ कृष्ण त्रयोदशी शनिवार

को तुला लग्न में इनका जन्म हुआ था। बालक को देखते ही सभी के मन प्रफुल्लित तथा आनन्द मगन हो जाते थे। अतः पितामह ने इनका नाम 'चन्द्रिका प्रसाद' रखा। नीचे जन्म-पत्री दी जाती है।

अनन्त श्री दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी महाराज का जन्माङ्ग चक्रम्



इस जन्माङ्ग को देखने से अनेक योगों तथा फलों का ज्ञान होता है।

चन्द्रेण मंगलो युक्तो जन्म काले यदा भवेत्।
तत्र जातस्य जायेत कुवेरादधिकं धनम्॥
सुतपेऽङ्गे ऽङ्गेशे सुते मनस्वी विद्वान् मानी च।
लग्ने पापे शुभदृष्टि युते संन्यासी, स्त्री ना-शोवा॥

जिसके जन्म काल में चन्द्रमा मंगल से युक्त हो। इस योग में उत्पन्न पुत्र कुबेर से भी अधिक धनी होता है। पंचमेश लग्न में तथा लग्नेश पंचम में हो तो जातक मनस्वी, विद्वान तथा माननीय होता है। लग्न में पाप ग्रह शुभ ग्रह की दृष्टि से युक्त हो तो वह जातक संन्यासी अथवा स्त्री का नाश होता है।

उस बालक से सभी प्रेम करते थे। शास्त्रानुकूल सभी संस्कार हुए। उपनयन के बाद वेदाध्यापन आरम्भ हुआ। बुद्धि तीव्र थी। एक बार पढ़ने सुनने से कण्ठस्थ हो जाता था। व्याकरण, धर्मशास्त्र, ज्योतिष आदि का अध्ययन किया। परन्तु मन अध्यात्म शास्त्र में अधिक लगता था। एकान्त प्रिय थे। दो अनुज थे। एक का नाम 'पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र' तथा दूसरे का नाम 'चन्द्र प्रकाश मिश्र' था। चन्द्र प्रकाश जी ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे लखनऊ

में रहते थे। बाबा ने इनको उदासीन देखकर १४ वर्ष में सं० १९६४ वि० सन् १९०८ में विवाह कर दिया। धर्मपत्नी अनुकूल मिली।

अध्ययन के बाद घानेपुर राज्य में दो राजकुमारों के शिक्षक हुए। वहीं राजगुरु जी पं० रामेश्वर दत्त जी त्रिपाठी विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाते थे। एक दिन त्रिपाठी जी से एक छात्र ने पूछा—आपने अज शब्द का अर्थ अजन्मा किया है। पुराणों में ब्रह्मा जी को अज कहा है। उनका जन्म विष्णु की नाभि कमल से हुआ, यह कैसे? इसे सुनकर त्रिपाठी जी बहुत सोचने पर भी उत्तर न दे सके। वहीं पर श्री चन्द्रिका प्रसाद जी भी थे। उन्हें अद्‌भुत प्रकाश दिखाई दिया। आकाश में मोटे अक्षरों में देखा **'अकारो वासुदेवः स्यात्-आत् वासुदेवात् सकाशाज्जायते इति अजः**। उपनिषदों में अकार को वासुदेव कहा है। उस अकार वासुदेव (विष्णु) से जन्म होने से ब्रह्मा जी को अज कहा है। यह देखकर मिश्र जी का मुख कमल खिल उठा। त्रैलोक्य राज्य की प्राप्ति के समान आनन्द मिला। प्रसन्न मुख मिश्र जी को देखकर त्रिपाठी जी ने पूछा—क्या बात है। उन्होंने कहा—कोई बात नहीं। विद्यार्थियों का अध्ययन पूर्ण कर लें। उसी विद्यार्थी के फिर पूछने पर मिश्र जी ने उत्तर दे दिया। त्रिपाठी जी अति प्रसन्न हुए। सिर पर वरदहस्त रख कर कहा—मेरी सम्पूर्ण विद्या तुम्हें प्राप्त होगी। गुरु जी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ।

कालान्तर में मिश्र जी के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम जाह्नवी प्रसाद मिश्र तथा छोटे का नाम जयदेव प्रसाद था। सन् १९२२ में पत्नी स्वर्ग सिधार गई। दोनों बालकों का भरण पोषण इन्हें करना पड़ा। पत्नी के बाद पितामह भी शरीर छोड़ गए। पिता के ऊपर परिवार का बोझ आ पड़ा। अपने बड़े पुत्र पर परिवार का भार डाल कर पिता जी ब्रह्मा चले गये। तब भागवत के माध्यम से परिवार का भरण पोषण करने लगे। कोनिया निवासी पं० बलदेव प्रसाद जी भागवत सुनाने लगे। एकादश स्कन्ध आने पर रुक गए। कहा यह अनुभव का विषय है। अब ऐसे अनुभवी गुरु जी की खोज की इच्छा हुई।

गुरु की खोज तथा संन्यास

सम्बत् १९७८ हरि प्रबोधिनी एकादशी को प्रातःकाल पण्डित जी शौच जा रहे थे। मार्ग में शब्द हुआ। **सब अधूरा ही छोड़ कर जाते हैं**। पीछे मुड़कर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया। मन का भ्रम समझ कर आगे बढ़े। दो बार यही शब्द सुना। इन्होंने विचार किया,

मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य परमपद की प्राप्ति है। किन्तु लोभ में आकर जीव भोगों में लिप्त हो जाता है। अभी समय है, ऐसा विचार कर उन्होंने गृह त्याग का निश्चय किया। ३८ वर्ष की आयु में लोटा घर रखकर अनिश्चित दिशा की ओर निकल पड़े। शरीर पर धोती, पैरों में खड़ाऊँ के अतिरिक्त कुछ नहीं था। धोती फाड़कर तीन टुकड़े किये। एक को नीचे धारण किया, दूसरा उत्तरीय, तीसरे का शिरोवेष्टन बनाया। ऐषणात्रय से निर्मुक्त होकर विचरण करने लगे। सायं काल ग्राम के बाहर रुकते। सूखा सीधा लेकर स्वयं बनाकर भोजन करते थे। पिता तथा भाई बड़े चिन्तित थे। खोजकर लाने में मिलने पर भी सफल नहीं हुए। सान्त्वना देकर लौटा दिया। हरिद्वार होते हुए ऋषीकेश पहुंचे। वहां पर गंगा के इस पार ऋषीकेश से छः मील आगे ब्रह्मपुरी में एक प्राकृत गुफा में साधनारत हो गए। गायत्री का एक पुरश्चरण किया। बेल फ़ल खाकर गंगाजल पीते थे। कुछ मास बाद काली कमली क्षेत्र के प्रबन्धकों ने किशमिश तथा दूध का प्रबन्ध कर दिया। यदि कोई मुनक्का लाता तो स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था, फलादिकों के बीज में जीव रहता है। किशमिश और दूध पूर्ण अहिंसात्मक भोजन है। एक सीतापुर के नगर 'सेठ' लाला प्रयाग नारायण सहगल ने दूध आदि की अच्छी व्यवस्था की। छः महीने बाद एक मारवाड़ी सेठ आए। उन्होंने अपने साथ तीर्थ यात्रा के लिए प्रार्थना की। उनके साथ प्रमुख तीर्थों की यात्रा की।

उन दिनों हरिद्वार में भीम गोडे के पास काशी चौसट्ठी मठ के एक परम विरक्त, परमसिद्ध दण्डी स्वामी चतुर्भुज आश्रम जी रहते थे। उस वर्ष हरिद्वार का अर्द्धकुम्भ तथा उज्जैन का महाकुम्भ था। सं० १९८९ वि० सन् १९३३ ई. में हरिद्वार में उनसे संन्यास लिया। उन्होंने दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम नाम रखा।

उनकी आज्ञा प्राप्त कर उज्जैन महाकुम्भ में पहुंचे। वहां दण्डी स्वामी क्षिप्रा में दण्ड गाड़कर शौचादि के लिए जाते थे। आपने भी ऐसा ही किया। दण्ड नदी में बह गया। खोजने पर भी नहीं मिला। लगभग तीन महीने बिना दण्ड के रहे। ऋषीकेश लौटने पर अद्वैत वेदान्त के मूर्द्धन्य विद्वान स्वामी ओंकाराश्रम जी से दुबारा दण्ड ग्रहण किया। हरिद्वार लौटने पर स्वामी चतुर्भुजाश्रमजी ब्रह्मीभूत हो चुके थे। तब से गुरु जी स्वामी ओंकाराश्रम जी को ही अपना गुरु मानते, कहते तथा लिखते रहे।

माया कुण्ड ऋषीकेश में वट वृक्ष के नीचे लकड़ी की कुटीर में श्री गुरु जी की सेवा करते हुए वेदान्त ग्रन्थों का अध्ययन तथा समाधि का अभ्यास करते थे। सभी ग्रन्थों से गीता पर श्री शंकरानन्दी व्याख्या अधिक पसन्द थी। कृषक के समान साधन में स्थिति थी। जैसे किसान खेत में घास-फूस निकाल कर, खाद डालकर, भूमि तैयार करके बीज बोता है, वैसे ही आप ने भी वैराग्य रूपी मनोभूमि में कामना रूपी घास निकाल कर ईश्वर उपासना रूपी खाद देकर उपजाऊ बनाया। तब ब्रह्म ज्ञान रूपी बीज बोने से उसमें मुक्ति रूपी फल लगा। आपने अजपा जप तथा प्राणायाम विशेष रूप से किया। वहीं पर एक परम स्वस्थ नवयुवक दर्शन के लिए आया। उसने प्रश्न किया—आप का परिचय क्या है? स्वामी जी ने कहा, "मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं।" वे विवेकी थे। उन्होंने स्वामी जी से संन्यास लिया। यह "स्वामी ओमाश्रम" के नाम से विख्यात हुए। स्वामी जी ने इनके तथा अम्बिका प्रसाद ब्रह्मचारी के साथ मानस सरोवर की यात्रा की। जब 'दरचिनं' नामक स्थान पर पहुंचे, तब आकाशवाणी हुई। "तुम क्या चाहते हो।" यह तीन बार सुनाई पड़ा। स्वामी जी ने कहा, "जो मुझ से प्रश्न करे, उसे यथार्थ उत्तर देने की क्षमता हो।" तब से स्वामी जी प्रत्येक प्रकार की शंका समाधान करने में अद्वितीय हुए।

परम गुरु जी अस्वस्थ हुए। गुरु जी की पूर्ण तत्परता से सेवा करने लगे। कहीं से मनीआर्डर आया। इनके गुरु जी ने हस्ताक्षर करके द्रव्य लेने की आज्ञा दी। उस समय आप पैसा नहीं छूते थे। मना कर दिया। गुरु जी ने कहा, "मैं आज्ञा देता हूं। अतः तुम्हें कोई दोष नहीं है।" आशीर्वाद दिया—तुम्हारे पास धन की कमी नहीं रहेगी। तब से पैसा रखने लगे।

कुछ समय बाद लकड़ी की कुटी में आग लग गई। तब सद्गुरु सदन का निर्माण हुआ। बारह महीने वहां पर सत्संग होता था।

एक बार आप अनेक दण्डी महात्माओं के बीच में बैठे थे। स्वामियों से पूछा, आश्रम, तीर्थ, सरस्वती सब की परशुमुद्रा सम्प्रदायनुसार (गुरु परम्परा) विभिन्न प्रकार की है। यह परशुमुद्रा अनादि है या आद्यशंकराचार्य से चली है। यदि शंकराचार्य से पूर्व की है तो गोविन्द तथा गौड़ पादाचार्य के दण्ड में भी होनी चाहिए। यदि आचार्य शंकर से चली है तो उनके दण्ड की मुद्रा में कितने यज्ञोपवीत थे। तथा वे दण्ड सूत्र आश्रमों, तीर्थों या सरस्वतियों इन तीनों में से किस-किस प्रकार बांधते थे। इसकी पुष्प मुद्रा नीचे, ऊपर या वीच में खोंसी हुई

रहती थी। यदि शंकराचार्य का दण्ड आश्रमों जैसा था, वे आश्रमों के शिष्य हुए। क्योंकि उन्हीं के चार शिष्यों में से दस नामी संन्यासी हुए हैं। यदि तीर्थों या सरस्वतियों जैसा था तो वे उनके मतावलम्बी हुए। इन तर्कों से परशुमुद्राबाद की सिद्धि होती है। भाव यह है कि आश्रमों के दण्ड सूत्र में २४ यज्ञोपवीत, तीर्थों के १८ सरस्वतियों के १६ यज्ञोपवीत होते हैं। आश्रमों की पुष्प मुद्रा नीचे, तीर्थों की बीच में खोंसी हुई तथा सरस्वतियों की ऊपर होती है। अतः परशुमुद्रा शंकराचार्य से परवर्ती सिद्ध हुई। ऐसा कहकर गुरु जी मौन हो गए। विद्वान् यतियों में से किसी ने सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। सब के आगे महाराज जी ने अपने दण्ड से परशुमुद्रा खोल दी। आजीवन ब्रह्ममुद्रा युक्त दण्ड रखा। परशुमुद्राधारी दण्डी स्वामी को गुरु जी मुसकराते हुए परशुराम कहते थे। यह स्वामी जी का निजी मत था। वे भी संन्यास देने के बाद अपने शिष्यों के परशुमुद्रा बांधते थे। उनके गुरु परमगुरु के चित्रों में भी परशुमुद्रा सहित दण्ड है। यति धर्म निर्णय, यति धर्म संग्रह, यति धर्म समुच्चय, यति धर्म प्रकाश, यति धर्म समुच्चय सार आदि ग्रन्थों में भी तीनों की परम्परा भेद से दण्ड के ऊपरी भाग में परशुमुद्रा ब्रांधने के श्लोक आते हैं। यदि कोई कहे कि ये सब ग्रन्थ शंकराचार्य के बाद के स्वामी विश्वेश्वर सरस्वती आदि द्वारा रचित हैं, तो ऐसा नहीं है। भगवान् आद्य शंकराचार्य द्वारा लिखित "यति दण्डैश्वर्य विधानम्" नामक ग्रन्थ, जो अभी हाल ही में पाया गया है, उसमें भी तीनों प्रकार के दण्डों तथा परशुमुद्राओं का उल्लेख है। आज से ३०-४० वर्ष पहले के आचार्यों के समय में प्राप्त नहीं था। **ब्रह्म मुद्रा परशुमुद्रा नाम्नामुद्रा द्वयं स्मृतम्। मुद्रां बिना यतो दण्डः केवलं काष्ठमेव च ॥४६॥** यति के दण्ड में ब्रह्म मुद्रा तथा परशुमुद्रा दो मुद्रा कही गई हैं। बिना मुद्रा के दण्ड केवल काष्ठ मात्र है।

यति दण्डे ब्रह्मसूत्र विचारः

किं चात्र ब्रह्मसूत्राणां चतुरुत्तर विंशतेः।
दण्ड सूत्रं भवेदेकमिति संन्यासिनां मतम् ॥४७॥
अष्टादश द्वाविंशति सूत्राणामपि भेदतः।
दण्ड सूत्राणि जायन्ते तीर्थ वाणी (तीर्थाश्रम) विभागतः ॥४८॥

यहां दण्ड सूत्र में २४ यज्ञोपवीतों का दण्ड सूत्र एक प्रकार के (आश्रम) यतियों का मत है। अठारह तथा बाइस सूत्रों का भेद तीर्थ तथा सरस्वतियों के दण्ड में होता है। (यति दण्डैश्वर्य विधानम्, विभूतिपाद)

इन ग्रन्थों के प्रमाणों से ब्रह्म मुद्रा के समान परशुमुद्रा भी शंकराचार्य से पूर्ववर्ती सिद्ध होती है।

स्वामी जी का युक्तिवाद परम प्रसिद्ध है। आपने अन्य आचार्यों के समान एक नया सम्प्रदाय चलाने की इच्छा की। आप का मत प्राचीन आचार्यों से विलक्षण था। वेदान्त के समस्त ग्रन्थों में अन्तःकरण चतुष्टय माना है। आप अन्तःकरण पंचक कहते थे। पांचवां ज्ञानी का अनुभव। अनुभव जन्य वृत्ति का स्थान ग्रीवा के पृष्ठ भाग में कहते थे। गायत्री मंत्र में १० पद है। स्वामी जी ९ बताते थे। आप गिनती ० से प्रारम्भ करते थे। कहते थे, जैसे गुरु नानक देव ने नया पंथ चला कर 'गुरुमुखी लिपि' तैयार की है, वैसे ही मैं भी 'सच्चिदानन्द लिपि' तैयार करूंगा। उन्होंने शून्य से लेकर ९ तक दस अंक तथा वर्णमाला की लिपि नई तैयार की। उनका लक्ष्य था कि ऐसी भाषा होनी चाहिए जिसमें कागज़, रोशनाई तथा समय कम लगे। वे अपने शिष्यों को दण्ड को खोल में रखने की आज्ञा न देकर लपेटने की आज्ञा देते थे तथा स्वयं भी लपेटते थे। जहां कहीं जाते थे, वहां पर कट्टर नास्तिकों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे। अष्टादश महापुराणों, रामायण, महाभारत तथा वेद वेदान्त के एवं इस से अतिरिक्त प्रत्येक प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान करते थे। प्रश्न व्यावहारिक हो या पारमार्थिक। उनको गुरु जी ने नया मत चलाने की आज्ञा नहीं दी। नहीं तो वे अपना मत चला देते।

एक बार आप एक भक्त की कन्या के विवाह में लखनऊ गये। कन्या एम० ए० पास तथा वर बी० ए० था। मण्डप में विवाह का कर्म आरम्भ हुआ। वर के दायें भाग की क्रिया के अनन्तर जब दोनों पक्षों के ब्राह्मणों ने कन्या को बायीं ओर बैठने को कहा, तो वह बिगड़ गई। बोली—मुझे पति के बायीं ओर बिठाकर मेरा अपमान करते हो। विद्वानों, माता-पिता, मामा आदि सम्बन्धियों ने बहुत समझाया। वह नहीं मानी। यहां तक कि बारात लौटने की नौबत आ गई। माता-पिता निराश होकर गुरु जी के चरणों में गिरकर रोने लगे। स्वामी जी तुरन्त विवाह मण्डप में पहुंचे। कन्या से कहा—ये लोग तुम्हें बायीं ओर बिठाकर तुम्हारा अपमान नहीं, बल्कि आदर करते हैं। तू बता निर्वल की सहायता करनी चाहिए या सबल की। उसने निर्वल की सहायता कहा। गुरु जी ने कहा, तेरा पति विद्या में तेरे से निर्वल है। उसका वामांग दक्षिणांग की अपेक्षा निर्वल है। अतः विद्या में निर्वल पति के निर्वल वामांग में बैठकर

उसे सबल करना चाहिए। लड़की अत्यन्त प्रसन्न हुई। सहर्ष पति के वामांग में बैठी। इस प्रकार कुशलता से विवाह सम्पन्न हुआ। माता-पिता भी बड़े प्रसन्न हुए। इस शैली से गुरु जी लौकिक तथा पारमार्थिक समस्याओं का समाधान करके जगत् का हित करते थे।

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगखण्डे, अष्टम परिच्छेदे चत्वारिंशत् तमोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

एक बार स्वामी जी अपने शिष्य स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी के साथ उनकी जन्मभूमि "गढ़दीवाला" ज़िला होशियारपुर (पंजाब) पहुंचे। वहां महिलाएं प्रणव का जप करती थीं। छोटे स्वामी जी के समझाने पर नहीं मानीं। शास्त्रप्रमाण का आदर नहीं करती थीं। स्वामी जी ने युक्ति और तर्क का आश्रय लेकर कहा—क्या तुम अपने ससुर या पति का नाम लेकर पुकारती हो। प्रणव पुरुष वाचक है। **तस्य वाचकः प्रणवः** उस पुरुष का नाम ॐ है। तुम स्त्री हो। जब अपने लौकिक पति का नाम नहीं लेती तो परमपति परमेश्वर का नाम कैसे ले सकती हो। स्त्रियों की समझ में आ गया। ॐ का जप छोड़ दिया। **ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म** ॐ का वही जप कर सकता है, जिसने जीते जी अपने तीनों शरीरों को विरजा होम की अग्नि में भस्म कर दिया हो। अकेले ॐ का जप आगे पीछे, माता पिता तथा पति के कुल का नाश करता है। इसलिए अकेले प्रणव का जप संन्यासी के अतिरिक्त दूसरा नहीं कर सकता है।

एक दिन स्वामी जी एक गांव में पहुंचे, जिसमें कबीर पंथी भक्त रहते थे। वे निर्गुण के उपासक थे। उनमें से एक ज्ञानी भक्त था, वे उनके गुरु थे। कबीर का निर्गुण भजन सुनाते थे। भक्तों ने स्वामी जी से कहा—यह आपको निर्गुण सुनाएंगे। स्वामी जी बहरे थे। जानकर और बहरे हो गए। कहा क्या कहते हो। उन्होंने फिर दोहराया। गुरु जी ने कहा—निर्गुण के लिए तो मैंने घर छोड़ा है। ८० वर्ष की आयु में अभी तक निर्गुण नहीं सुना। जो मुझे निर्गुण सुनायेगा, मैं उसे गुरु मान लूंगा। ज्ञानी ने निर्गुण भजन कान में सुना दिया। स्वामी जी ने कहा कि मैंने तो निर्गुण नहीं सुना। उसने कहा—सुना तो दिया। यही निर्गुण है। स्वामी जी बोले—यह निर्गुण कहां है। यह तो सगुण आकाश का गुण शब्द है। तू निर्गुण सुना। वह लज्जित हुआ और क्षमा मांगी।

स्वामी जी नियम के बड़े पक्के थे। उनका प्रत्येक कार्य समय पर होता था। उसका उल्लंघन करने वाले को फटकार मिलती थी। स्वयं भी वचन का पूरा पालन करते थे। जिसको जो समय दे दिया, चाहे कितनी सर्दी, गर्मी, वर्षा या अस्वस्थता हो, वहां अवश्य पहुंचते थे।

नास्तिक से शास्त्रार्थ

लखनऊ में स्वामी जी का एक अनन्य भक्त रहता था। उसका छोटा भाई वकील महानास्तिक था। उसकी भगवान, वेदादि शास्त्रों तथा सन्तों में श्रद्धा नहीं थी। किसी भी महात्मा को प्रणाम नहीं करता था। बड़ा भाई स्वामी जी को अपने घर ले गया। नित्य सत्संग होता था। बहुत भीड़ थी। पर वह कभी नहीं पहुंचा। एक दिन अग्रज ने विनय की। कृपा करके उसे आस्तिक बना दो। स्वामी जी ने कहा—वह मेरे पास आता ही नहीं, तो किसे समझाऊँ। उसने कहा—आप ही उसके कमरे में जाकर उसका कल्याण करें। स्वामी जी प्रातः ८ बजे उसके कक्ष में गए। वह फाइलें देखनें में इतना व्यस्त था कि उसे स्वामी जी के आने का पता ही नहीं चला। वे डेढ़ घंटे कुर्सी पर बैठे रहे। इसके बाद उसने दीवार की घड़ी पर टाइम देखा। ९-३० बज चुका था। वृद्ध सन्त को देखकर उसने श्रद्धा से प्रणाम किया। गुरु जी ने नारायण आशीर्वाद के बाद कहा—जितनी एकाग्रता से तुम अपने कार्य में व्यस्त थे, उतनी एकाग्रता यदि ब्रह्म चिन्तन में हमारी हो जाती तो जन्म कृतार्थ हो जाता। उसने कहा—मैं ईश्वर को नहीं मानता। स्वामी जी ने कहा—"तुम अपने आपको मानते हो कि नहीं; अर्थात् तुम हो या नहीं?"

वकील—मैं हूं।

स्वामी जी—जब तुम मानते हो, मैं हूं। तो तुम्हारा कारण ईश्वर कैसे नहीं है। यदि ईश्वर नहीं तो सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, तारागण, समुद्र, पर्वत आदि का निर्माण किसने किया। आस्तिक कहता है, ईश्वर है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है। अस्ति या है, इसका आश्रय आस्तिक के समान नास्तिक भी लेता है। तो नास्तिक भी अस्ति का आश्रय लेने के कारण आस्तिक सिद्ध हुआ। ऋषियों ने तो **नास्तिकोवेद निन्दकः** वेद निन्दक को नास्तिक कहा है। जो यह स्वीकार करता है कि मैं हूं, परन्तु मुझे जन्म देने वाला पिता नहीं है। ऐसा संसार में कोई नहीं है। जीव ईश्वर का अंश होने के कारण उसका पुत्र है। ईश्वर अंशी होने के कारण उसका पिता है। बिना पिता के पुत्र हो नहीं सकता। बिना ईश्वर के जीव भी नहीं हो सकता। जो शक्ति विशेष जड़ प्रकृति में प्रवेश करके इसको चैतन्य कर जगत की उत्पत्ति, पालन, संहार

करती है; उसी को वेदादि शास्त्रों में ईश्वर कहा है। यह सुनकर वकील ने कहा—यह तो सब प्रकृति का खेल है, ईश्वर का नहीं। इस पर स्वामी जी ने कहा—ईश्वर में दो प्रकार की चैतन्यता है। एक सामान्य चैतन्य दूसरा विशेष चैतन्य। सामान्य चैतन्य प्रत्येक वस्तु में विद्यमान अग्नि के समान है। विशेष चैतन्य रगड़ से प्रकट हुई विशेष अग्नि के समान है। सामान्य चैतन्य रूप से ईश्वर जड़ चैतन्य दोनों में है। जैसे जीवित शरीर में विशेष चैतन्य है, मृतक शरीर में सामान्य चैतन्य है। यदि उसमें चेतनता नहीं होती तो उसमें कीड़े नहीं पड़ने चाहिए। इससे सामान्य चैतन्य में ईश्वर की सर्वव्यापकता सिद्ध होती है। गुरु जी के शब्दों का वकील पर विशेष प्रभाव पड़ा। घड़ी में १० बज चुका था। प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा—अब मेरी कचहरी का समय हो चुका है। मैं क्षमा मांगता हूं। सायं काल को मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर विशेष प्रश्नोत्तर करूँगा। सायं काल को उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। वह दो-तीन दिन तक वाद-विवाद करता रहा। बाद में अपने भाई की अपेक्षा भी स्वामीजी का विशेष श्रद्धालु भक्त हुआ।

क्षय रोग का प्रकोप

स्वामी जी युवावस्था में क्षय रोग (टी० वी०) से पीड़ित थे। लखनऊ गोमती तट पर रहते थे। बचने की कोई आशा नहीं थी। उस समय ज़िला सीतापुर ग्राम गौरीहार जो खैरावाद के निकट था। उसमें रहने वाले श्रीकान्त ब्रह्मचारी जी ने पूर्ण तत्परता से स्वामी जी की सेवा की। लखनऊ के भक्तों ने भी पूर्ण सहयोग किया। कुछ समय बाद ठीक हुए। परन्तु बाल सफेद हो गए तथा कानों से सुनाई कम पड़ता था। चलने की शक्ति भी कम रह गई थी। उन दिनों गृहस्थ, संन्यासी या ब्रह्मचारी को कठोर परीक्षा के अनन्तर बड़ी कठिनाई से दीक्षा मिलती थी। इन्होंने दूसरा या तीसरा चातुर्मास्य ज़िला सीतापुर में ग्राम 'बछवल' में किया था। उसी ब्राह्मण के यहां भिक्षा करते थे जो त्रिकाल सन्ध्या, गायत्री जप करता हो। भिक्षा से पूर्व दातून देकर एक दिन पहले ही आमंत्रित करे। दक्षिणा में एक दुर्गुण त्यागने तथा एक सद्गुण ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करवाते थे।

यति शिष्य

श्री स्वामी जी के १३५ के लगभग दण्डी शिष्य, एवं दो अवधूत शिष्य थे। इनमें से प्रमुखों के नाम नीचे दिये जाते हैं।

१. अवधूत शिरोमणि श्री ओमाश्रम जी महाराज गंगोत्री

२. अवधूत शिरोमणि श्री जगत ज्योतिस्वरूप उज्जैन
३. अवधूत शिरोमणि श्री विद्यारण्य जी महाराज जयपुर
४. अवधूत शिरोमणि श्री कल्कि अवतार परशुराम
५. अवधूत शिरोमणि श्री गणेशाश्रम जी महाराज कालाकांकर प्रतापगढ़
६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी पुरुषोत्तमाश्रमजी महाराज नवांशहर, जालन्धर
७. अनन्त श्री दण्डी स्वामी उपेन्द्राश्रम जी महाराज ऊना, हरिद्वार
८. अनन्त श्री दण्डी स्वामी ब्रह्मवोधाश्रम जी महाराज ऋषीकेश
९. अनन्त श्री दण्डी स्वामी डाक्टर स्वामी जी महाराज ऋषीकेश
१०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी कृष्णवोधाश्रम जी (त्यागी स्वामी) महाराज हरदोई बनी
११. अनन्त श्री दण्डी स्वामी निरालम्बाश्रम जी महाराज सिरसा (हरियाणा)
१२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी प्रणववोधाश्रम जी महाराज
१३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी प्रकाशाश्रम जी महाराज
१४. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सिद्धेश्वराश्रम जी महाराज कालाकांकर (प्रतापगढ़)
१५. अनन्त श्री दण्डी स्वामी आशुतोषाश्रम जी महाराज कालाकांकर (प्रतापगढ़)
१६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी रामचन्द्राश्रम जी महाराज कालाकांकर (प्रतापगढ़)
१७. अनन्त श्री दण्डी स्वामी गुणातीताश्रम जी महाराज देहली
१८. अनन्त श्री दण्डी स्वामी हलधराश्रम जी महाराज
१९. अनन्त श्री दण्डी स्वामी तत्त्वबोधाश्रम जी महाराज हल्द्वानी
२०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सदाशिवाश्रम जी महाराज
२१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज
२२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी रामेश्वराश्रम जी महाराज
२३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी रामेशाश्रम जी महाराज गौरीहार- सीतापुर
२४. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सनन्दनाश्रम जी महाराज जालन्धर (पंजाब)
२५. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सनातनाश्रम जी महाराज मुरादाबाद

२६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी कमलनाभाश्रम जी महाराज मद्रास
२७. अनन्त श्री दण्डी स्वामी अजेशाश्रम जी महाराज काशी
२८. अनन्त श्री दण्डी स्वामी ब्रह्मण्याश्रम जी महाराज
२९. अनन्त श्री दण्डी स्वामी दत्तात्रेयाश्रम जी महाराज ऋषीकेश
३०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी गुणेश्वराश्रम जी महाराज ऋषीकेश
३१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज हरदोई
३२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज अमर कण्टक (म० प्र०)
३३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी उमेशाश्रम जी महाराज कृष्णाधाम हरिद्वार
३४. अनन्त श्री दण्डी स्वामी नरेन्द्राश्रम जी महाराज
३५. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सनत्कुमाराश्रम जी महाराज
३६. अनन्त श्री दण्डी स्वामी जनेश्वराश्रम जी महाराज कानपुर
३७. अनन्त श्री दण्डी स्वामी आनन्द देवाश्रम जी महाराज
३८. अनन्त श्री दण्डी स्वामी निर्वाणाश्रम जी महाराज हरियाणा
३९. अनन्त श्री दण्डी स्वामी सुदामास्वामी जी महाराज हरिद्वार मणिद्वीप
४०. अनन्त श्री दण्डी स्वामी कोषातीताश्रम (बंगाली स्वामी) जी महाराज ऋषीकेश
४१. अनन्त श्री दण्डी स्वामी आत्मदेवाश्रम जी महाराज कानपुर
४२. अनन्त श्री दण्डी स्वामी रमेशाश्रम जी महाराज जालन्धर
४३. अनन्त श्री दण्डी स्वामी दिनेश्वराश्रम जी महाराज कानपुर

ब्रह्मचारी शिष्य

१. श्री रामस्वरूप ब्रह्मचारी६. श्री प्रणवस्वरूप ब्रह्मचारी
२. श्री श्रीकान्त स्वरूप७. श्री स्वयंप्रकाशस्वरूप ब्रह्मचारी
३. श्री गणेशस्वरूप ब्रह्मचारी ८. श्री शिवस्वरूप ब्रह्मचारी
४. श्री भगवत् स्वरूप ब्रह्मचारी ९. श्री शंकरानन्द ब्रह्मचारी
५. श्री चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मचारी (राकेश)

इति श्री गुरुवंश पुराणे, कलियुगखण्डे, अष्टम परिच्छेदे एकचत्वारिंशत्तमोध्यायः ॥४१॥

अथ द्वाचेत्वरिंशत्तमोऽध्यायः

श्री सद्गुरु सेवक संघ तथा सद्गृहस्थ शिष्य

स्वामी जी के पास अनेक ब्रह्मचारी एवं संन्यासी सेवा के लिये आये। कुछ समय रहे। परन्तु स्वामी जी के अति कठोर स्वभाव के कारण रुक नहीं पाये। सहसा उनको किसी पर विश्वास नहीं होता था। वृद्धावस्था आने पर काशी का एक नवयुवक बालक इन्टर पास गुरु जी के पास आया। इन्होंने उसे पुत्रवत् पाला। पढ़ाया तथा संन्यास दिया। विशेषतः भागवत पढ़ाया। कुछ काल सेवा के अनन्तर उनसे पटरी मेल नहीं खायी। माया कुण्ड में पास ही आश्रम बनाया। स्वामी जी के अत्यन्त समाज सेवी तार्किक तथा वेदान्त निष्ठ दण्डी स्वामी आत्म देवाश्रम जी के पास एक मराठी बालक था। स्वामी जी ने उसे गुरु सेवा में भेजा। उसका नाम "पंजाबराय" था। महाराज जी ने महावाक्य देकर उसका नाम ब्रह्मचारी "राम स्वरूप" रखा। आश्रम में गौयें भी थीं। वह पूरी तत्परता से आश्रम की सफाई, गो सेवा तथा गुरु जी के लिये क्षेत्र से भिक्षा लाना आदि सेवा करता था। परन्तु वे हठी, कठोर स्वभाव के हैं। गुरु जी को छोड़कर किसी ब्रह्मचारी या संन्यासी से उनकी नहीं बनती थी। दीन-हीन निर्धन का तिरस्कार तथा धनी की चापलूसी करता था। कई यतियों से उसने झगड़ा किया, मारा तथा मार खायी। कई बार आश्रम से निकाला। स्वामी जी को ऐसी सेवा करने वाला कोई नहीं मिला। फिर रख लिया। गुरु जी के पास असंख्य पुस्तक भण्डार, कार, चांदी के पात्र, टेलीफोन तथा बैंक में लगभग सात लाख से ऊपर रुपया था। जिन शिष्यों को स्वामी जी चाहते थे। वे इस पद के इच्छुक नहीं थे। जो इच्छुक थे, उनको देना नहीं चाहते थे। स्वामी जी प्रति वर्ष श्री गीता सत्संग लखनऊ, गीता जयन्ती की अध्यक्षता तथा श्री राम चरित मानस सम्मेलन के सभापति लगभग ४० वर्षों तक रहे। कानपुर, उन्नाव, लखनऊ, सीतापुर, लखीमपुर, जौनपुर, होशियारपुर में टांडा आदि के भक्तों की मीटिंग की। उसमें विचार हुआ कि स्वामी जी के बाद आश्रम कैसे चलेगा। सर्वसम्मति से कमेटी बनाई। इसकी नियमावली सेक्रेट्रियेट से सेवा निवृत्त हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी के धुरन्धर विद्वान् पंडित राम शंकर जी द्विवेदी ने तैयार की। स्वामी जी इसके आजीवन परमाचार्य तथा परमाध्यक्ष रहे। इनके नीचे

मंत्री, उपमंत्री, सचिव तथा सदस्य नियुक्त हुये। इनमें से अधिक स्वामी जी के शिष्य थे। प्रमुखों के नाम इस प्रकार हैं—

सद्‌गुरु सेवक संघ के सदस्य तथा शिष्य

१. पंडित श्री राम शंकर जी द्विवेदी लखनऊ, २. पंडित श्री जगतनारायण मिश्र लखनऊ, ३. श्री बालेदीन गुप्ता लखनऊ, ४. श्री ब्रजनन्दन लखनऊ, ५. श्री भक्त आनन्द माधव जी लखनऊ, ६. श्री चन्द्र किशोर गुप्त कानपुर, ७. श्री पूर्णचन्द्र गुप्त इंजीनियर लखनऊ, ८. श्री लाला काशी प्रसाद जी उन्नाव, ९. ठाकुर जी उन्नाव, १०. ठाकुर राय साहब उन्नाव, ११. लाला पोहकरमल अग्रवाल लखनऊ, १२. लाला कृष्ण मुरारी लाल लखनऊ, १३. श्रीमती बिमला देवी उडमुड टांडा (पंजाब), १४. श्रीमती शान्ती देवी लुधियाना (पंजाब), १५. श्रीमती भागवन्ती टांडा (पंजाब), १६. श्री राम स्वरूप जी ब्रह्मचारी ऋषीकेश, १७. श्री श्री कान्त जी ब्रह्मचारी सीतापुर आदि।

स्वामी जी ने कमेटी को आज्ञा दी, कि तुम लोग स्वयं चन्दा करके सारा प्रबन्ध करो। तुम लोगों की योग्यता तथा कार्य देखकर चल-अचल सम्पत्ति का अधिकार दूंगा। कमेटी ने एक-दो केस भी लड़े।

पूर्व गीता तथा उत्तर गीता का प्रकाशन

योग वाशिष्ठ तथा महाभारत की दो गीताओं पर स्वामी जी ने टीकायें की हैं। इनके नाम "सच्चिदानन्द दायिनी" एवं "सच्चिदानन्द प्रभा" हैं। योग वाशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में गुरु वशिष्ठ जी ने श्री राम को 'अपूर्व गीता' सुनाई। इसमें गुरु जी ने भविष्यवाणी करते हुये श्री राम जी से कहा—कि तुम द्वापर के अन्त में जब कृष्णावतार लोगे, तब धृतराष्ट्र तथा पाण्डु के पुत्रों में युद्ध होगा। उस युद्ध में पाण्डु का मंझला पुत्र अर्जुन युद्ध भूमि में जब मोह को प्राप्त होगा, तब तुम इस प्रकार का ज्ञानोपदेश करोगे।

महाभारत में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व भगवान् ने जो गीता अर्जुन को सुनाई थी। उसे वे भूल गये। भगवान् से प्रार्थना करने पर भगवद् गीता के बाद की गीता होने के कारण इसका नाम "उत्तर गीता" हुआ। वर्तमान महाभारत में "अनुगीता" तो मिलती है। परन्तु उत्तर गीता नहीं है। इसमें प्रणव की व्याख्या तथा यति के लक्षण आदि दिये हैं। इस पर "श्री गौड

पादाचार्य जी" की संस्कृत में मार्मिक टीका है। उसी का अनुवाद शब्दार्थ सहित स्वामी जी ने हिन्दी में किया है। जब स्वामी जी इन दोनों ग्रन्थों पर टीका कर चुके, तब इसके प्रकाशन का प्रश्न उठा। प्रूफ देखने का काम पंडित राम शंकर जी द्विवेदी ने किया। इसके दोनों संस्करण शुद्ध प्रकाशित हुये। पूर्व गीता के प्रकाशन के लिये व्यास पूजा में आये हुये, द्विवेदी जी से कहा, उन्हें कार्य विशेष से शीघ्र लखनऊ जाना था। उन्होंने गुरु जी से कहा—अब तो मैं जा रहा हूं। फिर समय निकाल कर आऊंगा, तब प्रैस में दूंगा। स्वामी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनके जाने के बाद विचार किया, कि यह कार्य अगले साल तक टल जाएगा। प्रैस वाले को बुलाकर पाण्डु लिपि दे दी। स्वामी जी की दृष्टि अति मन्द थी। वे इतना परिश्रम नहीं कर सकते थे। किसी ने प्रूफ नहीं देखा। अति अशुद्ध छपी। हिन्दी तथा संस्कृत दोनों में ऐसी कोई पंक्ति नहीं थी, जिसमें तीन चार अशुद्धियां न हों।

अन्तिम यात्रा

गुरु जी लगभग ८० वर्ष के हो चुके थे। शरीर में अनेक रोग थे। चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया था। अकारण रोने लगते थे। यह सब होने पर भी वाणी में पूर्ववत् शक्ति थी। एक दिन भिक्षा के पश्चात् विश्राम कर रहे थे। आंख लग गई। स्वप्न में लखनऊ गीता सत्संग के पंडाल में भाषण देने लगे। गीता के श्रोताओ, श्रवण करने से पूर्व अपने-अपने हृदय कमल में अपने इष्ट देव का ध्यान करो। आज गीता का चौथा दिन है। तीन दिनों में वक्ताओं ने गीता के कर्म, उपासना तथा ज्ञान पर प्रकाश डाला। आज कर्म, उपासना, ज्ञान की त्रिवेणी मिलेगी। इसी को समन्वय कहते हैं। जैसे गृहस्थी चलाने के लिये गृहस्थ को सुई से लेकर तलवार आदि सभी वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वैसे ही वेदादि ग्रन्थों तथा गीता में अधिकारी भेद से कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों की आवश्यकता है। जो लोग कर्म को स्वीकार करके भक्ति, ज्ञान का खण्डन करते हैं। वे अपने शरीर में पंच प्राण तथा कर्मेन्द्रियों को रहने दें। हृदय और ज्ञानेन्द्रियों को निकाल दें। तो वे जी नहीं सकते। जो भक्ति का समर्थन करते हैं, वे बुद्धि सहित, कर्मेन्द्रियों को निकाल दें। जो ज्ञान का समर्थन करते हैं, वे बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों को रहने दें, कर्मेन्द्रियों, प्राण को निकाल दें, तो वे जी नहीं सकते। भाव यह है कि कर्मेन्द्रिय तथा प्राण कर्म प्रधान हैं। भक्ति हृदय प्रधान है तथा ज्ञान ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि प्रधान है। इन तीनों के बिना किसी का काम नहीं चलता। अतः क्रमानुसार अधिकारी भेद से पहले कर्म फिर भक्ति तब

ज्ञान है। कोई भी व्यक्ति क्रमानुसार तीनों का अनुष्ठान कर सकता है। एक काल में नहीं। अतः आचार्यों ने (अद्वैत) कर्म, उपासना तथा ज्ञान का क्रम समुच्चय माना है। सम समुच्चय नहीं।"

गुरु जी स्वप्न में यह भाषण दे रहे थे। मैं और राम स्वरूप जी खड़े सुन रहे थे। इससे सिद्ध होता है कि गुरु जी बाहरी लोभ और क्रोध का नाटक करते थे। भीतर से सावधान स्वरूप में स्थित थे।

शरीर दिन प्रतिदिन शिथिल होता जाता था। ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया विक्रमी सम्वत् २०४० में ऋषिकेश आश्रम में ब्रह्मीभूत हुये। सेवकों तथा यतियों को सूचना हुई। गुरु जी ने किसी के नाम वसीयत नहीं की थी। अतः उत्तराधिकारी की समस्या विकट हुई। षोडशी भण्डारे से पूर्व आश्रम में गृहस्थों ने विचार किया। दण्डी आश्रम में संन्यासियों की सभा हुई। सभी सेवक भक्त इस शरीर को बिठाना चाहते थे, पर मेरी इच्छा नहीं थी। सभी दण्डी स्वामी भी सहमत थे। उस सभा में दण्डी स्वामी ब्रह्मबोधाश्रम, श्री निरालम्बाश्रम, मुनेश्वराश्रम, श्री दत्तात्रेयाश्रम, श्री अंगद ब्रह्मचारी, देवातीताश्रम तथा दण्डी आश्रम के संन्यासी थे। स्वामी गुणेश्वराश्रम तथा दत्तात्रेयाश्रम इन दोनों का नाम रखा गया। कुछ ने पक्ष में तथा कुछ ने विपक्ष में मत दिया। उस सभा में सेवक संघ का कोई सदस्य नहीं था। पंडित राम शंकर द्विवेदी, पूर्ण चन्द्र गुप्ता आदि ने यहां तक कहा कि आप बैठें। दण्डी स्वामी भी सहमत हैं। गुरु जी के पूर्ण अधिकार आपको देंगे। किन्तु मेरी इच्छा नहीं थी। उस समय स्वामी जी के गुरु भाई स्वामी भगवदाश्रम जी भी थे। मैंने उनसे बैठने की प्रार्थना की। दण्डी स्वामी उनके पक्ष में नहीं थे। कमेटी से अनुरोध करने पर उसने स्वामी भगवदाश्रम जी से प्रार्थना की। सभी सेवकों ने तथा मैंने स्वामी जी को राजी कर लिया। दण्डी समाज इनके विपक्षी स्वामी गुणेश्वराश्रम को बैठाना चाहते थे। उन्हें बैठाने से पूर्व मुझे दण्डी आश्रम में यतियों को बुलाने के लिये भेजा। यतियों के आने से पूर्व ही कमेटी ने श्री स्वामी भगवदाश्रम जी को बैठा दिया। यतियों ने जब देखा तो सब नाखुश हो गये। सब उन पर टूट पड़े। धक्का देकर उठाने लगे। तीन चार यतियों ने उनका दण्ड छीनना चाहा। वे छुड़ा न सके। बीच से टूट गया। गृहस्थों तथा यतियों में बहुत विवाद हुआ। स्वामी जी को जबरदस्ती उतार कर स्वामी गुणेश्वर को बिठाया। सभी ने भण्डारा का बहिष्कार किया। अन्त में केस चला। कमेटी दूर के सदस्यों की थी। प्रत्येक पैरवी में आ नहीं सकते थे। अतः कमेटी हार गई।

पहले गुणेश्वर तथा दत्तात्रेय एक थे। बाद में फूट पड़ गयी। दत्तात्रेय ने गुणेश्वर को भगा दिया। बाद में बीच में दीवार करके आधा-आधा आपस में बांट लिया। गुणेश्वर ने अपना भाग बेच दिया। उस पर किसी परम हंस का कब्जा है। दत्तात्रेय भी मनमानी कर रहे हैं। इस समय स्वामी जी द्वारा अर्जित चल-अचल सम्पत्ति में से कुछ भी नहीं बचा।

॥ इति श्री गु० वं० पु०, कलि० खण्डे, अष्टम परिच्छेदे द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(९८१–९८५)

१. अवधूत शिरोमणि श्री ओमाश्रम जी महाराज, स्वामी जगज्ज्योति स्वरूप जी
२. स्वामी विद्यारण्य जी, स्वामी कल्कि अवतार परशुराम, स्वामी गणेशाश्रम जी

१. स्वामी ओमाश्रम जी महाराज देहाध्यास रहित स्वामी जी के जीवन्मुक्त शिष्य थे। जिस समय इन्होंने गंगा जी में खड़े करके शिखा यज्ञोपवीत त्यागने के अनन्तर कौपीन भी गंगा जी ने प्रवाहित कर दी। तब गुरु जी ने सात कदम गंगा जी में उत्तर की ओर चलने की आज्ञा दी। उन्होंने विनय की। अब मैं जीवन में कौपीन भी धारण नहीं करूंगा। दिगम्बर होकर उत्तराखण्ड में चले गये। जब कभी नीचे भी आते, तो वस्त्र रहित रहे। वहीं पर आपने सर्प की केंचुली के समान शरीर त्यागा। आप स्वामी जी के प्रथम शिष्य थे।

२. स्वामी जी उज्जैन वाले श्री जगज्ज्योति स्वरूप जी

श्री स्वामी जी का जन्म सिन्ध प्रान्त में सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था। आपने संन्यास लेकर विश्वामित्र के समान कठोर तप किया। जैसे विश्वामित्र के तप में इन्द्र ने परीक्षार्थ मेनका अप्सरा को भेजा था। वैसे ही इनके पास एक सिन्ध प्रान्त की ही युवती ब्राह्मणी जिसका नाम जगज्ज्योति था आई। सेवा करने लगी। आपने कमल पत्रवत् निर्लिप्त भाव से सेवा ग्रहण की। तप में कोई अन्तर नहीं आया। कालान्तर में आप उज्जैन चले गये। वहां महाकालेश्वर रोडपर, 'भव निवृत्ति' नामक आश्रम बनाया। हिन्दी में 'भव निवृत्ति' नामक ग्रन्थ लिखा। उसके प्रकाशनार्थ 'भव निवृत्ति' नामक प्रेस लगाया। उसके उद्घाटन में ऋषीकेश से गुरु जी को बुलाया। उन्हीं के कर कमलों से मुद्रण यन्त्र का उद्घाटन हुआ। आपका तथा माता जी का स्वभाव अति सरल, शान्त तथा मधुर था। क्षण भर के मेल से आत्मीयता प्रतीत होती थी। इस समय दोनों ही शरीर छोड़ चुके हैं।

३. स्वामी विद्यारण्य जी महाराज

श्री स्वामी जी का जन्म काशी के कुलीन ब्राह्मण कुल में हुआ था। युवावस्था में गृह त्याग करके अयाचक, अपरिग्रही तथा संन्यासी होकर योग साधना द्वारा शरीर को खूब कसा। आपने मानव शरीर से विराट् की खोज की। अज्ञानान्धकार में सोये हुये जगद् को ज्ञान रूपी प्रकाश से आलोकित किया। मानव शरीर में विद्यमान ७२,००० नाड़ियों की खोज, उनकी उत्पत्ति, विकास, प्रभाव तथा शक्ति का ज्ञान किया। दिव्य नाड़ियों के जागरण की विधि तन्त्र शास्त्र के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव करके साधकों का कल्याण किया। आप तन्त्र शिरोमणि थे। आपके पास जो भी जिज्ञासु पहुंचता उसे सागर वत् अमूल्य रत्न प्रदान करते थे। जिसकी जितनी श्रद्धा विश्वास था उसने उतना ही प्राप्त किया। आप नेपाल को वृहत्तर भारत का अंग मानते थे। वहां जाकर अनेक ग्रन्थों की खोज की। वे लोग अपने गुप्त साहित्य को बाहर नहीं जाने देते थे। कोई साधक उनके पुस्तकालय में बैठकर ग्रन्थों का अध्ययन कर सकता था। किसी ग्रन्थ की कोई भी बात नकल करने की आज्ञा नहीं थी। पुस्तकालय में प्रवेश से पूर्व कागज पेंसिल की छानबीन के बाद प्रवेश देते थे। ऐसे कठिन नियन्त्रण में भी आपने न जाने कितने संस्कृत के प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों को कैसे प्राप्त किया इसको आप ही जानते थे। उन्हीं ग्रन्थों में से **यतिदण्डैश्वर्य विधानम्** नामक ग्रन्थ मूल मात्र प्राप्त किया। जो आद्य शंकराचार्य जी ने ज्योतिर्मठ में लिखना आरम्भ किया था। इसकी पूर्ति नेपाल में हुई। इन्होंने विधिवत् दण्ड ग्रहण किया था। बाद में त्याग दिया। स्वामी जी ने दक्षिण भारत की यात्रा आद्य शंकर की जन्म भूमि कालटी से आरम्भ करके की। सम्पूर्ण भारत में स्थापित चार मठों के आठ-आठ उप पीठों की खोज करना आपका ही काम था। इन्होंने नेपाल में, आद्य शंकर एक वर्ष तक रहकर कहां-कहां गये। उनकी दिनचर्या सहित खोज की। श्री पशुपति नाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार भाष्यकार की आज्ञा से राजा द्वारा हुआ। श्रीविद्या पर स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। श्री स्वामी जी बहुत समय से जयपुर में दो स्थानों पर ठहरते थे। पहला "लाल हाथियों का मन्दिर" नाहरगढ़ रोड़, दूसरा जयपुर से बाहर "नवरत्न कल्प" में आपका खुला आश्रम था। अन्तिम अवस्था में आप अपने हस्त लिखित ग्रन्थों को किसी अधिकारी को देना चाहते थे। कोई मिला या नहीं इसका मुझे ज्ञान नहीं है। ऐसे जीवन्मुक्त महात्मा को कोटिशः प्रणाम। कुछ वर्ष पूर्व आपने विदेह मुक्ति प्राप्त की।

४. स्वामी कल्कि अवतार परशुराम

आप स्वामी जी के अवधूत शिष्यों में से अद्वितीय थे। इनके दर्शन मात्र से ज्ञान, वैराग्य तथा वीर रस टपकता था। दिगम्बर रहते थे। दुष्टों के बिनाशार्थ परशुराम जी के समान फरसा हाथ में रखते थे। अपने को कल्कि अवतार बताते थे। इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अब आप ब्रह्मीभूत हो चुके हैं।

५. स्वामी गणेशाश्रम जी महाराज

श्री स्वामी गणेशाश्रम जी महाराज श्री स्वामी जी महाराज के ब्रह्मचारी थे। श्री गुरु जी के प्रति अनन्य श्रद्धा थी। महावाक्य के बाद इनका नाम गणेश स्वरूप ब्रह्मचारी रखा। इनकी संन्यास की इच्छा हुई। उस समय परम गुरु जी भी जीवित थे। गुरु जी के पास एक और ब्रह्मचारी आये थे। उनको महावाक्य देकर उनका नाम भगवत्स्वरूप ब्रह्मचारी रखा। उनकी भी इच्छा संन्यास की हुई। दोनों को बुलाकर आज्ञा दी। मेरी आज्ञा से मेरे गुरु जी से संन्यास लेकर मेरे गुरु भाई हो जाओ। श्री भगवत् स्वरूप जी ने आज्ञा शिरोधार्य की। परन्तु गणेश स्वरूप जी बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगे। चरण पकड़ कर कहा—चाहे ब्रह्मा ही क्यों न हो, आपके सिवा मैं और किसी से संन्यास नहीं लूंगा। अतः परम गुरु जी के आगे ऐसी आज्ञा देकर मुझे लज्जित तथा परम गुरु जी को अपमानित न करें। परम गुरु जी के सामने दोनों का संन्यास हुआ। ब्रह्मचारी भगवत् स्वरूप जी को परम गुरु जी ने संन्यास देकर दण्डी स्वामी भगवदाश्रम नाम रखा तथा इनको स्वामी जी ने दण्ड देकर दण्डी स्वामी गणेशाश्रम योगपट्ट दिया। संन्यास के बाद आप दोनों गुरुओं की सेवा करने लगे। गुरु आज्ञा प्राप्त करके आप काला कांकर में महावीर घाट पर आश्रम बनाकर गंगा तट पर ब्रह्म चिन्तन करने लगे। कुछ समय बाद गुरु आज्ञा प्राप्त कर दण्ड कोपीन आदि का त्याग कर दिगम्बर हो गये। अन्तिम समय भयंकर रोग हुआ। रोगी अंग में मक्खियां आदि तंग करती थीं, गुरु जी से मिले। उन्होंने कोपीन धारण करने की आज्ञा दी। इन्होंने कहा—मैं त्यागी वस्तु ग्रहण नहीं करूंगा। गुरु जी ने कहा—यदि किसी के हाथ पैर आदि किसी अंग में फोड़ा या घाव हो जाता है। तो वह पट्टी बांधता है। अतः पट्टी समझ कर कोपीन धारण करो। तब से कोपीन पहनने लगे। कई वर्ष पूर्व महावीर घाट में ही शरीर त्यागा।

१. दण्डी स्वामी पुरुषोत्तम जी, २. दण्डी स्वामी उपेन्द्राश्रम जी ३. दण्डी स्वामी ब्रह्मबोधाश्रम जी, ४. डाक्टर स्वामी जी, ५. रुद्रू बाबा जी

दण्डी स्वामी श्री पुरुषोत्तमाश्रम जी नवांशहर

श्री स्वामी जी का जन्म जिला होशियारपुर गढ़दीवाला में वत्स गोत्रीय ब्राह्मण, काईं परिवार में हुआ था। पूर्वाश्रम का नाम पंडित इन्दु था। प्रारम्भिक शिक्षा कस्बे में ही हुई। इनके सहपाठी राजा कलां वाले पंडित लब्बू राम जी थे। पढ़ने के बाद पंडिताई तथा राजगिरि का काम करते थे। महावाक्य लेकर फम्बियां में बड़े स्वामी जी की समाधि में तथा पंडित तोताराम के कुयें पर गायत्री मन्त्र का पुरश्चरण किया। बाद में परम गुरु जी की उपस्थिति में गुरु जी से संन्यास लिया। योग पट्ट स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम हुआ। संन्यास के बाद भी कुछ समय फम्बियां रहे। फिर नवांशहर में मिश्रों के शिवालय में रहे। सन् १९४२ में फम्बियां आये। ग्राम में विवाह के कारण हमारे ग्राम, परिवार में भिक्षा करते थे। बड़े सरल, शान्त, द्वन्द्वातीत सन्त थे। आंशिक वाक्‌सिद्धि थी। सन् १९५८ में जब स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने शरीर छोड़ा, तो आप लगभग १५ दिन तक शान्ति आश्रम में रहे थे। सन् १९७२ ई. के लगभग ब्रह्मीभूत हुये।

दण्डी स्वामी श्री उपेन्द्राश्रम जी

इनका जन्म पंजाब जिला होशियारपुर ऊना के पास का था। ऊना पहले होशियारपुर की तहसील थी। पंजाबी सूबा बनने पर यह हिमाचल प्रदेश का जिला हो गया। बड़ा भोला स्वभाव था। संयमशील थे। संन्यास के बाद सप्त सरोवर रोड हरिद्वार में भूमा निकेतन से आगे आश्रम बनाकर रहते थे। कुटी का नाम विष्णु कुटी था। इस स्थान को शान्ति आश्रम के महन्त स्वामी नारायणाश्रम को दे रहे थे। उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनसे तथा इस शरीर से अति स्नेह था। कहीं गिर कर चोट लग जाने से आने जाने में असमर्थ थे। एक पहाड़ी ब्राह्मण सेवा करता था। शरीर छोड़ने से पूर्व ऊना के पास नारी ग्राम के बाबा रुद्रु डेरे के महन्त वेदान्ती ब्रह्मचारी सुग्रीवानन्द जी को सौंप दिया। आजकल वही इसका संचालन कर रहे हैं।

बाबा रुद्र जी महाराज

इनका जन्म आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व पर्वतीय क्षेत्र में हुआ था। परम सिद्ध महापुरुष थे। इन्होंने शास्त्रोक्त वानप्रस्थियों के नियमों का पूर्ण रूपेण पालन किया। बाबा

बालक नाथ जी के समान अमर सन्त हैं। इनके अखण्ड धुयें में अग्नि अभी तक प्रज्वलित है। उसमें नित्य प्रति दोनों समय हवन होता है। आश्रम में बारह मासी अन्न क्षेत्र चलता है। एक संस्कृत पाठशाला भी है। यहां की गद्दी आज भी चल रही है। इसका उत्तराधिकारी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही होता है। आज कल इस पर महन्त सुग्रीवानन्द जी महाराज विराजमान हैं। इन्होंने काशी में वेद वेदान्त व्याकरण आदि का अध्ययन किया था। बड़े सरल सदाचारी महात्मा हैं। यह हिमाचल का आदर्श तपस्वियों का स्थान है। भीष्म पंचक पर पांच दिन तक मेला लगता है। वेदान्त सम्मेलन होता है, जिसमें भारत के उच्चकोटि के विद्वान् भाग लेते हैं।

श्री ब्रह्मबोधाश्रम जी (पटवारी स्वामी) तथा डाक्टर स्वामी जी

दोनों सन्तों का जन्म जनपद स्यालकोट के एक ही ग्राम में एक ही तिथि को हुआ था। दोनों ही साथ-साथ पढ़े। दोनों ने एक साथ घर छोड़कर एक ही गुरु से संन्यास लिया। दोनों का व्यवसाय भिन्न-भिन्न था। संन्यास के बाद दोनों ही मायाकुण्ड में "ब्रह्मबोध सदन" हृषीकेश में रहे। दोनों के शरीर त्याग की तिथियां भी लगभग एक ही थीं। पटवारी स्वामी वेदान्त-निष्ठ होने पर भी कर्मकाण्ड, उपासना को महत्त्व देते थे। शास्त्रीयं आचार-विचार का पूर्णतः पालन करते थे। इनसे "ब्रह्मचारी स्वयं प्रकाश स्वरूप" जी ने दण्ड संन्यास लिया। उनका योग पट्ट स्वयं बोधाश्रम रखा। स्वयं बोध जी ने महावाक्य किसी दूसरे महात्मा से लिया था। पूर्ण निष्ठा गुरु जी पर थी। यह पंजाबी थे। गुरु जी के कठोर नियम होने के कारण उनसे संन्यास नहीं लिया। यह नियम के पक्के तथा सत्य निष्ठ थे। झूठ से महाचिढ़ थी।

स्वामी गणेश्वराश्रम जी ने गुरु जी से संन्यास लिया था। किसी कारण विशेष से गुरु जी कुपित हो गये। इन्होंने भी क्रोध में आकर दण्ड स्वामी को सौंप दिया। कुछ समय बाद पटवारी स्वामी जी से फिर दण्ड ग्रहण किया।



॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे,
अष्टम परिच्छेदे
त्रयश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अ० श्री पूज्य पाद दण्डी स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज

(त्यागी जी—९९१)

अथ योगेश्वराष्टकम्

कृष्ण बोधाश्रमस्त्यागी लोके त्यागीत्युपाधिधृक्।
मानापमानयोस्त्यागी ह्यनन्तश्री विभूषितः ॥१ ॥
वैदिक कर्मकाण्डी च पौराणिकस्तु पण्डितः।
गायत्र्याः वेदमातुश्च परमोपासकः हृदा ॥२ ॥
कामक्रोध विनिर्मुक्तो ब्रह्मध्यान परायणः।
ज्ञातोपनिषदांश्चैव रागद्वेषविवर्जितः ॥३ ॥
ज्ञानशक्ति समायुक्तः सर्वानन्दप्रदायकः।
दण्डि स्वामी दयालुश्च तत्त्वज्ञानविभूषितः ॥४ ॥
विद्वान् विद्वद्वरेण्यश्च ब्रह्मज्ञानरतः सदा।
गुरुतुल्यो महायोगी शरणागत वत्सलः ॥५ ॥
सदा मायापरित्यक्तः लघुकायः स्वरूपवान्।
गुरु भ्राता कृपालुश्च नारायण परायणः ॥६ ॥
ब्रह्मलीनो महाज्ञानी सोऽहमस्मीति जापकः।
प्रवक्ता योगशास्त्रस्य भक्तिकाज्ञानदायकः ॥७ ॥
एवं सर्वगुणोपेतं संन्यासाश्रमरक्षकम्।
सतीर्थ्यं गुरुतुल्यं तं योगेश्वरं स्मराम्यहम् ॥८ ॥
योगेश्वराष्टकं नित्यं कृष्णबोध प्रदायकम्।
साधको यः पठेद् भक्त्या संन्यासी जायते ध्रुवम् ॥९ ॥

—श्री दुर्गेश ब्रह्मचारी

पूज्य पाद गुरुदेव जी महाराज के १३३ से अधिक दण्डी शिष्य हुये। इन सभी शिष्यों की अपेक्षा आरम्भ के ५ शिष्यों को छोड़कर अन्य सभी सद्गुरु सदन रूपी आकाश में तारा

गणों के समान हैं तथा अनन्त श्री विभूषित, पदवाक्य प्रमाणज्ञ अष्टांग योग सम्पन्न, श्रवण, मनन, निदिध्यासन शील, साधन चतुष्टय सम्पन्न, परम वीतराग, परम दर्शनशास्त्रज्ञ, कर्म काण्ड, वेदान्त आदि के विशेषज्ञ, श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज (त्यागी स्वामी) चन्द्रमा के समान हैं। जैसे करोड़ों तारागण रात्रि के अन्धकार को दूर नहीं कर सकते, किन्तु एक चन्द्रमा अन्धकार को दूर करता है। उन्हीं परम पुरुष का परम पावन जीवन चरित्र लिखकर अपने को परम कृतार्थ मानता हूं। महारांज जी का जन्म विक्रमी सम्वत् १९४० आश्विन कृष्ण षष्ठी को, गोबर्धन के तिवारी कुल में सीतापुर जनपद के रघुनाथपुर (कल्ली) में हुआ था। संयोग से इनके पिता, पितामह तथा बड़े पुत्र का जन्म भी षष्ठी को ही हुआ था। स्वामी जी अपने भाइयों में मंझले थे। पिता तथा चाचाओं को अधिक प्रिय थे। जन्म का नाम पंडित राम स्वरूप तिवारी था। इनके कुल परम्परा से पंडिताई चली आ रही है। आठ वर्ष में यज्ञोपवीत हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके संस्कृत पाठशाला में सारस्वत व्याकरण पढ़ा था। हिन्दी, संस्कृत तथा उर्दू जानते थे। आठ वर्ष की आयु से ही त्रिकाल सन्ध्या गायत्री जप करते थे। २५ वर्ष की आयु में विवाह हुआ। आपके ३ पुत्र, श्री कैलाश शंकर त्रिपाठी, श्री हरी शंकर त्रिपाठी तथा राम शंकर त्रिपाठी हुये। ३२ वर्ष की आयु तक गृहस्थ में रहे। फिर नैमिष की परिक्रमा में गोमती तट पर कैलाशाश्रम में गायत्री का पुरश्चरण २४ लाख का, दूसरा वृन्दावन में किया। फिर ४४ वर्ष की अवस्था में गृहस्थ त्याग कर जीवन्मुक्त अवधूत शिरोमणि अनंगबोधाश्रम जी महाराज से महावाक्य लिया। त्रिकाल सन्ध्या, त्रिकाल स्नान, पंच महायज्ञ करते हुये, कन्द मूल का सेवन करते हुये तीसरा, चौथा पुरश्चरण किया। चौथा पुरश्चरण द्वादशाक्षर मंत्र के सम्पुट सहित श्री स्वामी नारदानन्द जी के आश्रम नैमिषारण्य में किया। कार्तिक से लेकर फाल्गुन तक गोमती में नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर, गर्मियों में पंचाग्नि तापते हुये तथा वर्षा में जल धारा में किया।

संन्यास

सन् १९५३ में तीर्थराज प्रयाग के महाकुम्भ में पूज्य पाद गुरु जी से संन्यास लिया। संन्यास में आपके साथ ब्रह्मचारी रामकुमार (विष्णु स्वरूप) थे। संन्यास के बाद भ्रमण करने लगे। नैमिषारण्य में कई चातुर्मास्य किये। सन् १९५८ में, जिस वर्ष परम गुरु जी ने शरीर छोड़ा, चातुर्मास्य कलकत्ता में पंडित मनोहर लाल शर्मा जी के यहां किया था। इनसे विष्णु

स्वरूप के अलावा, छोटे राम कुमार (नारायण स्वरूप ब्रह्मचारी, गोविन्द स्वरूप ब्रह्मचारी, चैतन्य स्वरूप ब्रह्मचारी आदि ने महावाक्य लेकर सेवा की। सर्वाधिक सेवा श्री दण्डी स्वामी स्वयम्भू तीर्थ जी के ब्रह्मचारी शिव स्वरूप जी ने की थी। यह सीतापुर जिले के रहने वाले थे। ज्योतिष, कर्मकाण्ड के विद्वान् थे। स्वामी जी के बाद इन्होंने अपने गुरु जी से दण्ड लिया। इनसे स्वामी जी के बड़े पुत्र कैलाश शंकर जी ने संन्यास लिया। दो साल पूर्व शरीर छोड़ दिया।

सन् १९७२ में आपने स्वामी श्री रामदेव जी ने तथा इस शरीर ने नैमिषारण्य सहगल क्षेत्र में चातुर्मास्य किया था। त्यागी जी का प्रथम दर्शन शान्ति आश्रम लड़ोई में हुआ था। फिर ओयल तथा प्रयाग राज में हुआ। विशेष सान्निध्य उपर्युक्त चातुर्मास्य में ही हुआ। आपने योग तथा वेदान्त के अनेक ग्रन्थों की शंकाओं का समाधान किया था। कुण्डलिनी जागरण में सहायक जानु शिरासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तान आसन, बद्ध पद्मासन आदि सिखाये। साथ ही चालनी, नौली, भस्त्रिका, उज्जायी, केवलीकुम्भक, भ्रामरी, सूर्य भेदी, चन्द्र भेदी, काक मुखीय, शीतली, अग्नि सार आदि प्राणायामों का अभ्यास अपने सामने करवाया। स्वामी जी ने नाड़ी शोधन आदि क्रियाओं का भी अभ्यास कराया। आपने हरदोई जिला के बनी में एवं रघुनाथ पुर अपने जन्म स्थान पर मन्दिरों तथा आश्रम का निर्माण किया। बनी में नारायण सरोवर की स्थापना की। इस चातुर्मास्य के बाद शीत काल के चार महीनों में भी बनी आश्रम में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां पर आनन्द रामायण सुनाई। इसी बीच ५, ६ दिन के लिये वहां गुरु जी भी पधारे थे। पूर्वोक्त सभी आसनों तथा प्राणायामों का अभ्यास ब्रह्मचारी नारायण स्वरूप को भी कराया। यह भी एकान्त सेवी महात्मा हैं। गुरु आज्ञा प्राप्त करके इन्होंने भी अष्टाक्षर नारायण मंत्र सहित गायत्री के दो तीन पुरश्चरण किये थे। आरम्भ में विष्णु स्वरूप जी ने भी इन आसनों का अभ्यास किया था। बाद में छोड़ दिया। ब्रह्मचारी गोविन्द स्वरूप ने भी आरम्भ में दीक्षा लेकर कठोर साधना की थी। बाद में अवहेलना कर दी। विक्रमी सम्वत् २०४० में मेरी विशेष प्रार्थना से पंजाब में फम्बियां में आकर परमयोगेश्वर स्वामी वेणी-माधव आश्रम जी महाराज की मूर्ति की स्थापना "प्रतिष्ठा प्रकाश" के अनुसार विधान से करवाई थी त्यागी जी ने अनेक ब्रह्मचारियों तथा सद्गृहस्थों से गायत्री के पुरश्चरण, पर्वत दान तथा मन्दिर आदि बनवाये। इनमें से बनी के बच्चूराम, पंडित भगवती प्रसाद, पंडित नन्हेलाल, पंडित शालिग्राम, पंडित गणेश प्रसाद आंमाघाट आदि हैं। पंडित बच्चू राम जी से

अन्न का पर्वत दान करवाया। पंडित भगवती प्रसाद डकैत थे। इनके कोई पुत्र नहीं था। त्यागी जी के आशीर्वाद से पुत्र हुआ। इन्होंने लक्ष्मी नारायण मन्दिर का निर्माण करके त्यागी जी की मूर्ति सहित मूर्तियों की स्थापना की। गायत्री पुरश्चरण पंडित नन्हें लाल जी ने एक तथा शालिग्राम जी ने चार किये। त्यागी जी का स्वभाव, स्वरूप, वाणी, कद पंजाब के बड़े स्वामी फम्बियां वाले बेणी माधव आश्रम जैसा ही था। भटपुर घाट के श्री पंडित सुन्दर लाल जी जो अत्यन्त सरल ब्राह्मण थे, त्यागी जी के शिष्य थे।

काशीवास तथा देह त्याग

सन् १९७७ में आप काशीवास करने के लिये समाधि भवन में आये। एक वर्ष वहां रहकर, फिर मधुसूदन मठ चले गये। वहां डेढ़ वर्ष रहे। वहां से बनी के भक्त फिर आश्रम में ले आये। यह स्थान नहर के किनारे एकान्त है। आश्रम में एक विशाल पीपल है। स्वामी जी के आने से पूर्व दो गुरु शिष्य दण्डी स्वामी रह चुके थे। मैंने इसका नाम "ज्ञान वैराग्य वर्द्धक आश्रम" रखा है। वहां कुछ समय रहने के बाद जिला फर्रुखाबाद मेहंदी घाट के समीप दुर्जन पुर में रहे। शरीर त्यागने से चार दिन पहले ही भिक्षा आदि छोड़ दी थी। स्वामी जी अकेले ही कुटी में थे। रात्रि के ८ बजे भक्त लोग आये। कुछ देर रुक कर लौट गये। उनके जाने के तुरन्त बाद ही आपने अग्नि सार प्रणायाम करके स्थूल शरीर को भस्म कर दिया। भीतर की ज्ञानाग्नि से दोनों शरीरों को भस्म करके ब्रह्मीभूत हुये। विक्रमी सम्वत् २०४३ मार्ग शीर्ष कृष्ण षष्ठी तिथि थी। स्वामी जी का बालवत् स्वभाव था। बाल्येन तिष्ठासे मन्त्र के भाष्य में भगवत्पाद जी ने आत्म बल वाले को बालवत् कहा है। वहीं पर समाधि दी गई। प्रति वर्ष वहां तथा बनी में कार्तिकी पूर्णिमा से षष्ठी तक शतचण्डी यज्ञ तथा आराधना की जाती है।

गुरु जी के सामने ही स्वामी नारायणाश्रम जी विवेक वैराग्य सम्पन्न, ज्ञानयोग निष्ठ महात्मा हैं। नैमिषारण्य में इनको संन्यास दिया। स्वामी जी के उत्तराधिकारी नियुक्त हुये। यह व्यवहार कुशल न होने पर भी साधन सम्पन्न हैं। विवाह नहीं किया। पिता नहीं रहे। तीन भाई, सबसे बड़े यही हैं। विरक्त होकर गुरु सेवा में आ गये। इस समय इनकी ६३ वर्ष की आयु है। इनकी जन्म भूमि अतरौली (हरदोई) है। इनकी माता जी अभी जीवित हैं। स्वामी जी ने १०३ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा।

स्वामी जी के दण्डी स्वामी ब्रह्माश्रम, चैतन्याश्रम सुखदेवाश्रम, शिष्य थे।

स्वामी जी के उपदेश

स्वामी जी विरक्त साधकों को उपदेश देते हुये कहते थे। साधुओं को सुन्दर भोजन, सुन्दर वस्त्र एवं स्त्रियों से सदैव दूर रहना चाहिये। यह तीनों वस्तुयें सच्चे महात्मा को पथ भ्रष्ट कर देती हैं। वह मानापमान में सम रहे। किसी का अपमान होने पर समझाते थे। यदि तुम कहते हो कि मेरा अपमान किया। तो उत्तर में कहते थे। भैया तुम्हारे भीतर कौन सी ऐसी वस्तु है, जिसका अपमान किया। कौन सी ऐसी वस्तु है जिसका सम्मान होना चाहिये। तुम यदि कहते हो, कि मेरे शरीर का अपमान किया तो शरीर में हड्डी, चमड़ा, रक्त, मांस आदि में कौन वस्तु है जो सम्मान के योग्य है। इनसे तो सभी घृणा करके अपमान करते हैं। इसके मानापमान से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता। यदि कहो कि मेरी आत्मा का अपमान किया। तो आत्मा का अपमान करने की क्षमता किसी में नहीं है। वह मानापमान से रहित है। इस विचार से सन्त मानापमान को सहन करे।

एक दिन एक गृहस्थ अपनी पत्नी, माता-पिता से लड़कर स्वामी जी के पास आया। सन्त होने की इच्छा की। वह खसरौल का रहने वाला था। बनी ग्राम जिला हरदोई, तहसील सण्डीला से मलीहाबाद माल होते हुये, माल अतरौली रोड पर नहर के किनारे है, माल रोड पर पुलिया के पास खसरौल है। गुरु जी ने कारण पूछा—उसने कहा—मेरे माता-पिता तथा पत्नी बहुत दुष्ट हैं। मुझे दुःख देते हैं। उत्तर में स्वामी जी ने कहा, जिस माता-पिता ने तुम्हें जन्म दिया उनसे तुम्हारी नहीं बनती। उनकी सेवा नहीं कर सके, तो मेरी और भगवान् की सेवा क्या करोगे। मैं उनसे भी अधिक दुष्ट हूं। दुष्टों में तुम सर्वाधिक हो। माता-पिता से उसकी सन्धि करा दी।

वे कहते थे—**"सभास्थलं श्मशानवत् परित्यजेत्"** यति सभा मण्डप को श्मशान के समान त्याग दे। उपदेश देहाध्यास के बिना नहीं होता। अद्वैत निष्ठ यति को द्वैत में उतरना पड़ता है। भाषण देने से देहाध्यास की निवृत्ति नहीं होती। उसे सदैव अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में तल्लीन रहना चाहिये यदि ब्रह्माकार वृत्ति न बन सके। तो भी सिंह की तरह दहाड़ते हुये **नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूपोऽहम्** का उच्चारण करे। संन्यासी की यदि निराकार निर्गुण स्वरूप में स्थिति न हो, तो वह सगुण साकार स्वरूप का ध्यान करे। बाद में निराकार स्वरूप में मन लग जाएगा। निराकार का ध्यान खुले आकाश में जहां कोई पेड़, पौधा, मकान

आदि दिखाई न दे, वहां पर आकाश के सर्वव्यापी रूप का ध्यान करते हुये, भावना करे, कि जैसे आकाश पूर्ण अखण्ड मण्डलाकार है। वैसे मैं भी चिदाकाश, परिपूर्ण; परब्रह्म परमात्मा हूं। तब मन शान्त होकर परमात्मा में समाहित हो जाएगा। यति को अपने पास मूल्यवान् एवं आवश्यकता से अधिक वस्तुयें नहीं रखना चाहियें। यदि रखता है, तो चोर आदि का भय बना रहता है। ध्यान भगवान् में न लगकर वस्तुओं में लग जाता है। उसके लिये मैले कुचैले वस्त्र कहे हैं। स्वामी जी के सामने यदि कोई संन्यासी या ब्रह्मचारी मूल्यवान्, चमकीले या धुले वस्त्र पहिनता था, तो रुष्ट होकर कहते थे। क्या तुम्हें दूल्हा बनकर ससुराल जाना है। जो लोग कहते हैं, मैले कपड़ों में खुजली होती है, तो उत्तर देते थे, खुजली रक्त विकार से होती है, मलिन वस्त्रों से नहीं। व्यर्थ की वार्ता तथा चेष्टा से दूर रहते थे।

सद्गृहस्थों को उपदेश देते हुये तीन वर्णों को सन्ध्या अग्निहोत्र, पंचमहायज्ञ, गायत्री का जप बताते थे।

ब्रह्मचारी विष्णु स्वरूप जी ने गुरु जी से संन्यास लिया। उनका योग पट्ट "स्वामी विष्णु आश्रम" दिया। यह जिला सीतापुर के हुमायूं पुर गांव के हैं। ब्रह्मचारी गोविन्द स्वरूप करिखला के हैं। इनका पूर्व नाम पंडित गया प्रसाद था। स्वामी जी यद्यपि स्थूल शरीर से नहीं हैं। परन्तु यशो मय रूप से आज भी हैं।

॥इति श्री गु० वं० पु०, कलि० ख०, अष्टम परिच्छेदे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

अथ पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(९९२—९९५)

१. अनन्त श्री स्वामी निरालम्बाश्रम जी, २. स्वामी प्रणव बोधाश्रम जी, ३. श्री स्वामी प्रकाशाश्रम जी तथा ४. स्वामी सिद्धेश्वराश्रम जी महाराज

अनन्त श्री स्वामी निरालम्बाश्रम जी

श्री स्वामीं जी का जन्म काशी जनपद का था। कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्म हुआ था। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी अच्छी प्रकार से बोल तथा लिख लेते हैं। कॉलेज छोड़ने के बाद स्वामी जी की सेवा में आये। उनसे भागवत, वेदान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। महावाक्य लेकर गुरु सेवा की। उन्होंने संन्यास देकर "श्री दण्डी स्वामी निरालम्बाश्रम" योग पट्ट दिया।

कालान्तर में माया कुण्ड में सद्गुरु सदन के समीप आश्रम बनाया। यह जमीन किसी दूसरे की थी। लागत इनकी लगी थी। छोड़ना पड़ा। हरिद्वार या ऋषीकेश में यत्र-तत्र रहे। सिरसा की एक शिष्या "चन्द्रमणि" ने आपकी सेवा की। आज-कल वहीं बड़े गणेश जी के मन्दिर में रह रहे हैं। गम्भीर सन्त हैं। प्रभावशाली वक्ता हैं।

स्वामी प्रणव बोधाश्रम जी—इनका केवल नाम मात्र सुना है।

स्वामी प्रकाशाश्रम जी

श्री गुरु जी के पुराने शिष्यों में से थे। बहुश्रुत सन्त, अध्ययन शील, शान्त तथा गम्भीर प्रकृति के थे। इनका हरिद्वार के महाकुम्भ में एक बार दर्शन मात्र प्राप्त हुआ था।

दण्डी स्वामी सिद्धेश्वराश्रम जी

अनन्त श्री दण्डी स्वामी सिद्धेश्वराश्रम जी महाराज के पितामह पंडित भगवानदीन जी तिवारी सरयू पारीण ब्राह्मण थे। देवरिया जनपद के सिंह जोरी से इनके प्रपितामह प्रताप गढ़ जनपद के जलीलपुर ग्राम से आये थे। इनके दो सौ वर्ष के पूर्वज जिला देवरिया के रहने वाले थे। जलीलपुर में पिता का ननिहाल था। पिता जी का नाम सत्य नारायण तिवारी था। इनके दूसरे भाई द्वारका प्रसाद थे। स्वामी जी ५ भाई थे। पंडित देवी प्रसाद तिवारी, शीतला प्रसाद, माताप्रसाद, राजनारायण तथा स्वामी जी का नाम पंडित वारेदीन तिवारी था। एक पुत्री तथा पत्नी को छोड़कर संन्यास लिया। आरम्भ में कुछ पठित नहीं थे। सन् १९५४ में संन्यास लिया। योग पट्ट दण्डी स्वामी सिद्धेश्वराश्रम रखा। स्वामी जी से अक्षरों का ज्ञान किया। धीरे-धीरे हिन्दी, संस्कृत का थोड़ा अभ्यास किया। गुरु कृपा से गीता, रामायण आदि ग्रन्थ पढ़ने लगे। अन्य शास्त्रों का भी हिन्दी अनुवाद सहित अध्ययन किया। काला कांकर में जब श्री दण्डी स्वामी गणेशाश्रम जी ब्रह्मीभूत हुये तो महावीर घाट का वह स्थान रिक्त हो गया। आप गुरु सेवा में थे। उन्होंने आशीर्वाद देकर वहां भेजा। उस समय छोटी सी कुटी थी। इनके द्वारा शिव मन्दिर, हनुमान मन्दिर, कुआं, चार पांच कमरे नीचे तथा तीन कमरे ऊपर बने। दोनों ओर सीढ़ियां हैं। कमरों के चारों ओर तथा आश्रम के चारों ओर दो चार दीवारी है। गांव की ओर एक बड़ा फाटक, गंगा जी की ओर पश्चिम में छोटा लोहे का द्वार बना है। आप शास्त्रीय आचार विचार का पालन करते तथा करवाते हैं। आपने "श्री सनातन धर्म मार्तण्ड" ग्रन्थ लिखा है। कालान्तर में उसी को बृहत् रूप दिया। वह बृहत् सनातन धर्म मार्तण्ड" काशी

में मास्टर खेलाडी लाल के यहां से प्रकाशित हुआ। इसमें चारों वर्णों, आश्रमों के धर्म, कुमारी कन्या धर्म, पातिव्रत्य धर्म, विधवा धर्म, ज्योतिष्, इतिहास, पुराण, कर्मकाण्ड वेदान्त आदि अनेक विषयों का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, महाभारत, रामायण आदि के प्रमाण दिये हैं। गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ किया है। केवल सैद्धान्तिक चर्चा ही नहीं की, जीवन में उतारा भी है। आप कितने भूखे प्यासे क्यों न हो। कुयें या नदी के जल को छोड़कर अन्य जल ग्रहण नहीं करते थे। ब्रह्मचारी या गृहस्थ में रहते हुये स्वयंपाकी थे। संन्यास के बाद शुद्ध वंश में उत्पन्न हुये ब्राह्मण या ब्राह्मणी के हाथ का परम पवित्रता से बनायी भिक्षा लेते हैं। यह भोजन भी लकड़ी या उपले का बना हुआ ही लेते हैं, गैस का या स्टोव आदि का नहीं।

महारुद्र यज्ञ

कई वर्ष पूर्व आपने परम आदर्श, सात्विक महायज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ की तैयारी दो तीन वर्ष पूर्व से आरम्भ की। इसमें हवन तथा ब्राह्मण सन्तों के भोजन के लिये अपने भक्तों की गाय भैंसों का घी एकत्रित किया। चार पीपा गाय का तथा १२ पीपा भैंस का था। यज्ञ में प्रयाग, काशी तथा दक्षिण भारत से चारों वेदों का सस्वर पाठ करने वाले कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों से दक्षिणा आदि पहले ही पूछ लिया था। याज्ञिक ब्राह्मण, प्रवचन कर्ता तथा व्यास वही बुलाये गये थे, जो परिचित शुद्ध वंश के थे। उनमें भी उन्हीं को निश्चित किया, जो पान, सुपारी, तम्बाकू, चाय, काफी आदि का सेवन न करते हों, कोई भी ब्राह्मण इनमें से किसी के घर से वस्तु मंगवा कर सेवन नहीं कर सकता था। ११ दिन का यज्ञ शिवरात्रि को पूर्ण हुआ था। उस वर्ष कड़कड़ाती ठंढक थी। कोई भी ब्राह्मण सिला वस्त्र पहन कर यज्ञशाला में नहीं जा सकता था। ब्राह्मणों को २, २ गांतियां तथा कम्बल दिये थे। ११ दिन तक शिव महापुराण का मूलपाठ होता था। मध्याह्नोत्तर २ से साढे छः तक उपदेश प्रवचन होता रहा। सैंकड़ों गृहस्थों ने भाग लिया था। काशी आदि से दण्डी स्वामी तथा ब्रह्मचारी आये थे। प्रत्येक यति की व्याकरण, साहित्य आदि से आचार्य तथा शास्त्री सेवा करते थे। सभी लोग सिले वस्त्र उतार कर भोजन करते, करवाते थे। इस यज्ञ के मुख्य अतिथि "धर्म सम्राट् पूज्य पाद स्वामी करपात्री जी महाराज" एवं उनके शिष्य, सुमेरु काशी पीठाधीश्वर "स्वामी शंकरानन्द जी" पधारे थे। काशी चौंसट्ठी मठ के महन्त स्वामी विश्वरूपाश्रम जी मण्डल सहित आये थे।

श्री करपात्री जी वहां की सारी व्यवस्था देखकर अति प्रसन्न हुये। मुक्त कण्ठ से ब्राह्मणों, व्यवस्थापकों तथा स्वामी जी की प्रशंसा की। कहा—ऐसे आदर्श यज्ञ बहुत कम होते हैं। सिद्धेश्वर स्वामी जी की सेवा में भटनी के पास की वृद्धा माता तथा एक शास्त्री जी ने विशेष सेवा की। अमावस्या को शुद्ध भैंस के घी का विशाल भण्डारा हुआ। हजारों की भीड़ थी। स्वामी जी की आज्ञानुसार परसने तथा खाने वाले सिले वस्त्रों से रहित थे। यहां तक कि मुसलमान, मेहतर, चमार पासी आदि ने भी आज्ञा का पालन किया।

इसी यज्ञ की स्मृति में दूसरे वर्ष भी लघु रूप में यज्ञ हुआ। इसकी स्मृति में पक्की यज्ञशाला तथा शिव मन्दिर बना। आजकल एक परम सदाचारी ब्राह्मण सपत्नीक आश्रम तथा स्वामी जी की सेवा करते हैं। उस निर्धन ब्राह्मण को स्वामी जी ने अपने खर्चे से पक्का मकान बनवा दिया। चातुर्मास्य को छोड़कर आप भ्रमण में रहते हैं। प्रत्येक अमावस और पूर्णिमा को आश्रम पर मिलते हैं। इनकी अनुपस्थिति में मन्दिर के पुजारी आश्रम की देखभाल करते हैं।

शिष्य

स्वामी जी के संन्यासी शिष्योंमें श्री स्वामी कृष्णेश्वराश्रम एवं स्वामी राघवेन्द्राश्रम को मैं जानता हूं। राघवेन्द्र स्वामी हरदोई जनपद के माधव गंज के निवासी थे। आपका गृहस्थी का नाम पंडित रामादीन शास्त्री था। आपने एक संस्कृत पाठशाला का निर्माण किया। इण्टर कॉलेज में संस्कृत के अध्यापक थे। व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, कर्मकाण्ड के विद्वान् हैं। सेवा निवृत्ति के बाद सपत्नीक त्यागी स्वामी जी से वानप्रस्थ की दीक्षा ली। उनके ब्रह्मीभूत होने के बाद प्रयागराज के कल्प वास में श्री स्वामी सिद्धेश्वराश्रम जी से संन्यास लिया। योग पट्ट स्वामी राघवेन्द्राश्रम दिया। इस समय आप धर्म का वेदान्त, पुराणों का प्रचार करते हुए सनातन धर्म की सेवा करते हैं। आपकी वाणी बड़ी ओज पूर्ण तथा विनोद से युक्त है। आजकल सपत्नीक श्री करपात्र धाम काशी में वास कर रहे हैं।

॥ इति श्री गु० वं० पु०, कलि० खण्डे अष्टम परिच्छेदे पंचचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।।४५ ॥



अथ षट्चत्वरिंशत्तमोऽध्याय:

अनन्त श्री दण्डी स्वामी गुणातीताश्रम जी महाराज, श्री तत्त्वबोधाश्रम जी, श्री सदाशिवाश्रम, श्री रामेशाश्रम जी, श्री सनन्दनाश्रम जी, श्री निर्वाणाश्रम जी, श्री आत्मदेवाश्रम।

श्री स्वामी गुणातीताश्रम जी (९९६)

स्वामी जी का जन्म जिला सीतापुर अटरिया के पास एक ग्राम में हुआ था। बचपन से ही अति सरल तथा सुशील थे। हिन्दी संस्कृत आदि की पढ़ाई के बाद गुरु जी से संन्यास लिया। समदर्शी महात्मा थे। भागवत् आदि की कथा करते थे। दिल्ली यमुना बाजार दण्डी आश्रम के महन्त थे। भिक्षा आदि में कोई विषमता नहीं थी। आश्रम में जो भी वस्तु आती, सबको बराबर मिलती थी। भक्तों से मांगकर आश्रम का खर्च चलाते थे। इनके समय आश्रम में उन्नति हुई। परन्तु इनका गुरु भाई स्वामी जी से जलता था। गुणों में दोष दर्शन उसका स्वभाव था। किसी खाद्य पदार्थ में विष देकर इनकी हत्या की। इनका नाम स्वामी लक्ष्मीकान्ताश्रम था। स्वामी जी के शरीर छूटने के बाद श्री स्वामी भूमानन्द तीर्थ जी के ब्रह्मचारी देवेन्द्र स्वरूप जी गुणातीत स्वामी जी से संन्यास ले चुके थे। उनका नाम देवातीताश्रम था। वे महन्त हो गंये। उन्होंने कुछ काल तक आश्रम को सुचारु रूप से चलाया। बाद में पथ भ्रष्ट महात्मा के कुसंग से मदिरा आदि पीने लगे। सब कुछ बेचकर बराबर कर दिया। पेट भर भोजन भी नहीं मिलता था। पहले भारी शरीर था। बाद में शिथिल हो गया। सेवकों ने निकाल दिया। ऋषीकेश में दीनहीन दशा में शरीर छोड़ा। इस समय यह दण्डी आश्रम स्वामी भूमानन्द जी के शिष्य श्री अच्युतानन्द तीर्थ जी के अधिकार में है। श्री गुणातीताश्रम जी के दो चार और भी शिष्य हैं। उनमें एक का नाम नारायणाश्रम है। वे प्रतिवर्ष गुरु जी की आराधना करते हैं।

श्री तत्त्वबोधाश्रम जी

इनका जन्म जिला हरदोई का था। यदा कदा हलद्वानी तथा उत्तराखण्ड में भी रहते थे। फिर ऋषीकेश में रहने लगे। इनको अवधूत स्वामी विद्यारण्य जी महाराज द्वारा हस्त लिखित "श्री यति दण्डैश्वर्य विधानम्" पुस्तक तथा कुछ और साहित्य भी प्राप्त हुआ था। अब यह शरीर छोड़ चुके हैं।

श्री सदाशिवाश्रम (९९७)

अनन्त श्री पूज्य पाद सदाशिवाश्रम जी महाराज का जन्म जनपद अलमोड़ा में हुआ था। आप अति सरल, सौम्य सन्त थे। श्री गुरु जी के समकालीन थे। अपने गुरु भाई के समान आदर करते थे। इन्होंने "श्रीराम चरित मानस" के नवाह तथा मास पारायण के विश्राम सही ढंग से दिये हैं। गोरखपुर से प्रकाशित रामायणों में दोनों प्रकार के विश्राम बराबर नहीं है इन्होंने सही ढंग से लगाया है। मानस पर आपने गम्भीर, खोज पूर्ण लेख लिखे हैं। विशेषतः "शत पंच चौपाई" की व्याख्या मार्मिक है। मानस के योग तथा अद्वैत वेदान्त से सम्बन्धित चौपाइयों की व्याख्या की है। अब यह ब्रह्मीभूत हो चुके हैं।

श्री रामेशाश्रम जी

इनका जन्म सीतापुर जनपद के खैराबाद के निकट गौरिया में हुआ था। यह अध्यापक थे। गुरु जी से सेवा निवृत्ति के बाद संन्यास लिया। इनके पुत्र श्री कान्त जी ने रुग्णावस्था में गुरु जी की महती सेवा की थी। इनके बड़े पुत्र भी संन्यासी हुये। इस समय दोनों शरीर छोड़ चुके हैं।

श्री सनन्दनाश्रम जी (९९८)

आपका जन्म पश्चिमी पंजाब का था। वहां लेखपाल (पटवारी) थे। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेज़ी जानते थे। संस्कृत का ज्ञान न होने पर भी इसमें लिखे ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा थी। वेदादि शास्त्रों के संस्कृत भाष्यों की हिन्दी पढ़ते थे। भाषा के ग्रन्थों में श्रद्धा नहीं थी। यहां तक कि तुलसी के राम चरित को कभी नहीं पढ़ा। इस ग्रन्थ के प्रति श्रद्धा तो थी। पर प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण पढ़ते नहीं थे। इसका पश्चात्ताप भी करते थे। विभाजन के बाद पक्का वाग जालन्धर में आ गये। दण्डी आश्रम में गुरु जी की रविवार को कथा सुनते थे। उनके प्रति अनन्य श्रद्धा थी। जब ८० वर्ष से ऊपर हो गये, तो संन्यास की प्रार्थना की। वे गृहस्थ थे, संन्यासी होना चाहते थे। गुरु जी ने कहा, संन्यास गीता में गृहस्थ से संन्यास घोर कलि का लक्षण है। हम से महावाक्य लेकर साल दो साल गायत्री जप करो। कालान्तर में आपको संन्यास देंगे। इनका नाम पंडित जगन्नाथ था। इन्होंने कहा, मैं अतिवृद्ध हो चुका हूं। शरीर का कोई ठिकाना नहीं है। स्वामी जी नहीं माने। तब ऋषीकेश में जाकर स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम जी से संन्यास लिया। संन्यास के बाद कुछ समय ऋषीकेश, हरिद्वार रहे। क्षेत्रों की भिक्षा प्रतिकूल होने पर

भी सहन किया। एक दिन भिक्षा ला रहे थे, ईटों से लदे हुये गधे की टक्कर से कमर टूट गई। पुत्र घर में ले आये। ठीक होने पर स्वामी पद्नाभाश्रम जी के साथ हदियावाद में रहे। अन्त में बीमार होने पर मृत्यु हो गई।

श्री निर्वाणाश्रम जी

इनका जन्म हरियाणा में हुआ। संन्यास के बाद हरिद्वार में कृष्णाधाम में रहने लगे। आपने संक्षिप्त यति संन्ध्या की पुस्तक लिखी थी। हरिद्वार में शरीर छोड़ा।

श्री आत्म देवाश्रम जी (९९९)

श्रीमद् दण्डी स्वामी आत्मदेवाश्रम जी महाराज का जन्म पंजाब के होशियारपुर जिला के गढ़दीवाला कस्बे में सन् १९४६ विक्रमी कार्तिक मास में हुआ। आपके पिता श्री तुलसीराम तथा माता का नाम हुकमी देवी था। यह दालभ्य गोत्रीय, सामवेदीय उदीच्य ब्राह्मण थे। इनके पांच पीढ़ी पहले के पूर्वज गुजरात के सिद्धपुर से महाराज जम्मू के निमन्त्रण पर यज्ञ करवाने आये थे। फिर पंजाब में बस गये। जन्म का नाम पंडित श्रीराम था। इनका पालन पोषण बड़े लाड़ प्यार से हुआ। पिता की इच्छा विद्वान् बनाने की थी। रुड़की से इंजीनियरिंग पास की थी। वे तेजस्वी मेधावी छात्र थे। धर्म, देश तथा समाज सेवा में विशेष रुचि थी। स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़े। पहले विदेशी वस्तुयें बहुत प्रिय थीं। बाद में त्याग कर स्वदेशी वस्त्र आदिकों का उपयोग एवं प्रचार करने लगे। असहयोग आन्दोलन में दो वर्ष जेल में रहकर भयंकर यातनायें भोगीं। गीता का पठन-पाठन किया तथा जीवन में उतारा। **सर्व धर्मान् परित्यज्य** इस श्लोक के अनुसार ऋषीकेश में जाकर गुरु जी से घंटों तर्क किया। अन्त में उनसे प्रभावित होकर सं० २००६ विक्रमी में दण्डी स्वामी हुये। संन्यास लेकर कानपुर में मौलीघाट पर संस्कृत पाठशाला में रहे। पाठशाला की अत्यन्त शोचनीय दशा थी। वहां के प्रधानाचार्य विनोद जी ने कहा, यहां तो विद्यार्थियों की पढ़ाई तथा भोजन बड़ी कठिनाई से होता है। आपने कहा—मैं सेवा करवाने नहीं, करने आया हूं। नवाब गंज में आपका प्रवचन हुआ। भाषण में आपने कहा—गृहस्थों को दोनों समय आटा, दाल, चावल आदि एक-एक मुट्ठी निकाल कर अलग-अलग पात्रों में रखें। इससे किसी को कठिनाई नहीं होगी और निर्धन बालकों का काम भी चल जाएगा। गृहस्थ का यह मधुमाखी धर्म है। जैसे मधुमक्खी प्रत्येक

पुष्प से मधु लेती है। इससे पुष्प की सुगन्धि में अन्तर नहीं आता। ऐसा ही हुआ। १५ दिन के बाद विद्यार्थी जाकर अन्न ले आते थे। इस प्रकार विद्यार्थियों की सेवा की। स्वामी जी का उद्घोष था—**बार-बार यह विनय प्रभू जी हरदम तेरा ध्यान रहे। त्याग तपोमय जीवन होवे, लक्ष्य विश्व कल्याण रहे।**

कानपुर कारखाना प्रधान नगर है। यहां निर्धन मजदूर अधिक रहते हैं। उनकी दयनीय दशा पर स्वामी जी द्रवीभूत हुये। वे कहते थे, जिस समाज या देश ने मेरा जन्म से अब तक भरण-पोषण किया है, उसकी सेवा करना मेरा धर्म है। दीनों की सेवार्थ "विश्व कल्याण मण्डल" की स्थापना की। दीन-हीन श्रमिक सर्दियों में वस्त्राभाव में कष्ट पाते थे। आपने भाषण में कहा—आप लोगों के घरों में पुराने ऊनी सूती कपड़े जो बेकार हो गये हैं, लाकर एक जगह एकत्रित करो। उसी दिन ऊनी, सूती कपड़ों का ढेर लग गया। वह शीत पीड़ित निर्धनों में बांटे गये।

स्वामी जी ने सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा की। उत्तराखण्ड की यात्रा नंगे पैरों की। पैरों में कांटे लग गये थे। भगवत् कृपा से सड़क पर एक नया जूते का जोड़ा पड़ा था। जोर से चिल्लाकर घूमते हुये कहा—जिसका जूता हो ले ले। तीन घण्टे की प्रतीक्षा में कोई नहीं आया। भगवान् का प्रसाद समझ कर पहना, पैर में ठीक हुआ। विक्रमी सम्वत् २०२९ वैशाख के अन्त में बम्बई गये। ज्येष्ठ के आरम्भ में कानपुर आना था। ब्रह्मचारी राम स्वरूप सेवा में थे। उन्होंने आरक्षण करवा लिया था। उसने कहा—आपकी सीट बुक हो गई है। स्वामी जी बोले—मेरी कानपुर की सीट कैंसिल हो गयी है। भगवान् के यहां सीट बुक हुई है। ऐसा कहकर समाधिस्थ हो गये। ब्रह्मचारी से गीता के १८वें अध्याय का **ईश्वरः सर्वभूतानां** इस श्लोक का जोर-जोर से पाठ करने की आज्ञा दी। वे स्वयं भी इस श्लोक का जोर-जोर से उच्चारण करने लगे। धीरे-धीरे वाणी शिथिल होने लगी। ईश्वर चिन्तन करते-करते विलीन हो गये।

॥ इति श्री गु० वं० पु०, कलि० खण्डे, अष्टम परि० षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥



अथ सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

(१०००—१००४)

अनन्त श्री स्वामी पूर्णाश्रम जी, श्री चैतन्याश्रम जी, श्री भगवदाश्रम जी, श्री बुद्ध देवाश्रम जी, श्री चन्द्रशेखराश्रम जी (नेपाली स्वामी)

ऊपर लिखे दण्डी स्वामी पूर्णाश्रम जी, चैतन्याश्रम जी ये दोनों व्रजघाट में इकट्ठे रहते थे। श्री स्वामी भगवदाश्रम जी का जन्म विक्रमी सम्वत् १९५३ फाल्गुन पूर्णिमा को जिला शाहजहां पुर, नाहिल ग्राम में पंडित छोटे लाल जी अवस्थी के यहां हुआ था। आप चार भाइयों में सबसे बड़े थे। दशम कक्षा के बाद वाराणसी में अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। युवावस्था में कचहरी में काम किया। फिर विरक्त होकर गुरु जी के पास महावाक्य लिया। उन्होंने ब्रह्मचारी भगवत् स्वरूप नाम रखा। इन्होंने विवाह नहीं किया। कालान्तर में परम गुरु जी द्वारा संन्यास दीक्षा हुई। उन्होंने स्वामी भगवदाश्रम नाम रखा। गुरु जी में भी इनकी गुरुवत् श्रद्धा थी। प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा को गुरु दक्षिणा भेजतें थे। स्वामी भगवदाश्रम जी ने घोर तपस्या करते हुये, गीता, रामायण का प्रचार किया। विशेष कर आगरा, अलीगढ़, बुलन्द शहर, बरेली, मुजफ्फर नगर हरियाणा, लखनऊ, लखीमपुर, पीलीभीत, ओयल, बछरावां आदि स्थानों पर प्रचार किया। आपका प्रथम दर्शन सन् १९७३ में श्री गीता सत्संग भवन लखनऊ के गीता जयन्ती में हुआ था। स्वामी जी की भाषा अति सरल, रोचक तथा हृदय पर प्रभाव डालने वाली थी। लिखाई भी अत्यन्त सुन्दर थी। पितावत् स्नेह करते थे। आगरा आदि स्थानों पर आपने परिचय कराया।

विक्रमी सम्वत् २०४० में पूज्य पाद अनन्त श्री बेणी माधवाश्रम जी महाराज की संन्यास शताब्दी समारोह का उद्घाटन फम्बियां में इन्हीं के द्वारा हुआ था। सन् १९८३ में जालन्धर में श्री गुरुदेव महादेवाश्रम महाराज की मूर्ति स्थापना में पधारे थे। ५ दिन के सम्मेलन की अध्यक्षता आपने की। स्वामी जी बड़े दयालु तथा उदार थे। कभी-कभी अकारण क्रोध आ जाता था। तत्काल शान्त हो जाते थे। इनका क्रोध पानी की लकीर थी। समय का स्वयं पालन करते हुये, वक्ताओं से भी पालन करवाते थे। कोई भी वक्ता अधिक समय नहीं बोल पाता था।

स्वामी जी की एक छोटी सौतेली बहन बाल विधवा हो गई थी। उसके एक पुत्र और एक पुत्री कृष्ण दत्त और कृष्णा हैं। तीनों को कोई आश्रय नहीं था। इनकी शरण में गये। सबका भरण पोषण अलीगढ़ में किया। दोनों बच्चों को पढ़ा लिखाकर विवाह किया। इन तीनों ने प्राण पण से स्वामी जी की सेवा की। वहां पर पहले टूटे-फूटे दो कमरे थे। बाद में सेठ ने इनको प्लाट बेच दिया। स्वामी जी ने वहां पर छः कमरे रसोई, आदि का निर्माण करके तीन नल लगाये। एक शिव मन्दिर बनवाया। उसमें राम लक्ष्मण, सीता, दुर्गा, शंकर, नन्दी, पार्वती आदि की स्थापना अक्षय तृतीया सन् १९८६ को करायी। उसके एक वर्ष बाद आप आगरा गये थे। उस वर्ष ज्येष्ठ अधिक मास था। ३० मई पुरुषोत्तम शुक्ल द्वादशी को आगरा से प्रातः कालीन गाड़ी में प्रथम श्रेणी में अलीगढ़ के लिये चले। उन दिनों लू अधिक थी। दो तीन दिन पूर्व से अस्वस्थ थे। ज्वर था, वह उतर गया था। मार्ग में टुंडला से आगे स्वास्थ्य भयानक रूप में बिगड़ा। साथ में एक ब्रह्मचारी थे। अलीगढ़ पहुंचने के पहले ही मूर्च्छित हो गये। स्टेशन से रिक्शा द्वारा अस्पताल लिये जा रहे थे, मार्ग में ही प्राण त्याग दिये। कृष्ण दत्त तथा सत्यवती को आने की सूचना पहले हो चुकी थी। वे आश्रम में ले आये। मृत्यु के बाद शरीर में फफोले हो गये थे। हाथ लगते ही फूट कर पानी बहता था। शरीर अधिक रखने योग्य नहीं था। उसी दिन गंगा जी में राज घाट पर जल समाधि दी गई। बाद में भक्तों को सूचना हुई। शरीर छोड़ने से दो ढाई वर्ष पूर्व आश्रम की वसीयत सत्यवती तथा कृष्णदत्त के नाम कर दी थी। भक्तों ने आपत्ति की। किन्तु सफल नहीं हुये। षोडशी भण्डारा हुआ। प्रति वर्ष आश्रम में स्वामी जी की आराधना तथा व्यास पूजा पर सम्मेलन होता है। यह स्थान दिल्ली जी० टी० रोड पर चुंगी चौंकी से पहले बीमा नगर सूत मिल में है।

प्रवचन शैली तथा उपदेश

आप वेद वेदान्त, गीता रामायण के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन अति सरल, व्यावहारिक, मंजी हुई भाषा में, युक्ति, तर्क प्रमाण एवं दृष्टान्तों द्वारा करते थे। उनका भाषण धुरन्धर विद्वान् तथा महामूर्ख सरलता से समझ कर आनन्द सागर में डूब जाता था। वेदान्त के गूढ़ रहस्यों को हास्य रस के दृष्टान्त द्वारा समझाना आपका स्वभाव था। कहते थे, परमार्थ में कुछ नहीं बिगड़ा, व्यवहार बिगड़ा है। जिसने अपना व्यवहार सुधार लिया, परमार्थ स्वयमेव बन जाता है। सभी को अपने माता-पिता के प्रति, पत्नी को पति के प्रति, शिष्य को गुरु के प्रति, सेवक

को स्वामी के प्रति, प्रजा को राजा के प्रति निष्कपट भाव से प्रेमपूर्वक आज्ञा का पालन करते हुये सेवा करनी चाहिये। ऐसा होने पर भारत स्वर्ग हो जाएगा।

योग वाशिष्ठ में गुरु जी ने राम के प्रति कहा—हे राम जी ! जिसने अपना व्यवहार शुद्ध करके मन सहित इन्द्रियों का संयम कर लिया है। वासनाओं को क्षय कर दिया है। उसे भगवत् प्राप्ति में देर नहीं लगती। एक पहलवान को कमल की पंखुड़ी छेदने में देर लगती है, किन्तु ब्रह्म प्राप्ति में विलम्ब नहीं। ऐसे साधक के पास भगवान अत्यन्त निकटतम हैं। आंखों में लगा अंजन आंखों से दूर है, पर भगवान् भक्त से दूर नहीं है। भाव यह है कि अंजन और आंख विजातीय वस्तु है। ब्रह्म तीनों भेदों से रहित होने के कारण साधक ब्रह्म ही है। भ्रान्ति से अपने से भिन्न मानता है।

गीता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये कहते थे, मनुष्य को अहंकार रहित निष्काम भाव से विवेकवती श्रद्धा सहित अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना चाहिये। उपदेश के अन्त में दोहे कहलाते थे। **जब तू आया जगत में जगत सराहै तोहि। ऐसी करनी कर चलै पीछे हंसी न होय॥ जब तू आया जगत में जगत हंसे तू रोता था। बना लो जीवनी ऐसी जगत रोवे तू हंसता जा॥ चार वेद छः शास्त्र में बात मिली है दोय। दुःख दीने दुःख होत है, सुख दीने सुख होय॥ सबका भला करो भगवान। सबका सब विधि हो कल्यान। असतो मा सद्गमय। तमसो र्माज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।** हे प्रभो मुझे असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले चलें।

स्वामी जी के सेवकों भक्तों में आगरा वाले ओंकार नाथ खण्डेलवाल, दाल मिल वाली माई, कृष्णा देवी, वकील नरोत्तम लाल, माया देवी आगरा, छोटे लाल, सेठ पन्नालाल—बुलन्द शहर में खचेडू मल मुनीम, भक्त अंगन लाल, सेठ लक्ष्मी नारायण आदि थे। स्वामी जी ने दो ब्रह्मचारियों श्री ब्रह्मस्वरूप, राम स्वरूप को महावाक्य दिया। आगरा वाले लक्ष्मणाश्रम जी को संन्यास दिया।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

अथाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

स्वामी बुद्ध देवाश्रम जी, श्री चन्द्रशेखराश्रम जी, श्री माधवाश्रम जी, श्री वामनाश्रम जी, श्री स्वानन्दाश्रम जी (१००५—१००९)

अनन्त श्री स्वामी बुद्ध देवाश्रम जी महाराज बुलन्द शहर के रहने वाले थे। आप अत्यन्त शान्त, सरल, सदाचारी महात्मा थे।

श्री स्वामी चन्द्रशेखराश्रम जी नेपाल काठमाण्डू में भगवती के मन्दिर में दुर्गा पाठ, मन्त्रों का अनुष्ठान आदि करते थे।

श्री स्वामी माधवाश्रम जी परम गुरु जी के बाद ओंकार मठ में विराजमान हुये। इनका हरियाणा का जन्म था। विशेष पठित नहीं थे। श्री शंकर जी, आद्य शंकराचार्य तथा गुरु जी की दोनों समय पूजा आदि करते थे। हरियाणा की एक नवयुवती महिला राममूर्ति जो परम गुरु जी की शिष्या थीं, अपनी माता सहित भिक्षा बनाती थी। स्वामी जी के कई दण्डी स्वामी शिष्य थे। उनमें स्वामी श्री रामबोधाश्रम जी कुछ पठित थे। उन्होंने अपना ब्रिजघाट में निजी आश्रम बनाया है। स्वामी जी का शरीर छूटने के बाद राममूर्ति आश्रम की व्यवस्था करती रहीं। स्वामी माधवाश्रम जी के समय से कार्तिक में प्रतिवर्ष भागवत् सप्ताह होता था। अब राममूर्ति अत्यन्त वृद्धा हो गई हैं। इन्होंने श्री रामबोधाश्रम जी के शिष्य को मठ सौंप दिया है। यह वृज के रहने वाले थे। इन्होंने एक प्राइमरी पाठशाला की स्थापना की। मठ से कुछ ही दूरी पर निजी स्थान बनाया है। यह फलाहारी हैं। दोनों स्थानों का संचालन करते हैं। श्री रामबोधाश्रम जी के दूसरे शिष्य मेरठ के ठिंगने बाबा स्वामी हरिहराश्रम जी हैं। इन्होंने भी ब्रजघाट में गऊशाला के समीप स्वामी राघवाश्रम जी के बगल में आश्रम बनाया है।

श्री स्वामी वामनाश्रम जी

इनका जन्म हरियाणा का था। वेदादि शास्त्रों के धुरन्धर विद्वान् थे। विद्या के प्रभाव से अनेक शिष्य बनाकर ब्रिजघाट में ही नवीन आश्रम बनाया। शरीर बौना था। युवावस्था में संन्यास लिया। थोड़े समय बाद शरीर छोड़ दिया।

श्री स्वामी स्वानन्दाश्रम जी

इनका जन्म बंगाल में हुआ था। हिन्दी, अंग्रेज़ी के विद्वान् तथा कुछ संस्कृत का ज्ञान है। इन्होंने गंगोत्री में आश्रम बनवाया है। वहां योगाभ्यास करते करवाते हैं। श्रीनगर में शंकराचार्य

पर्वत के नीचे दुर्गानाग (मंदिर) में भी आया जाया करते हैं । विदेशों में जर्मन, इंग्लैंड, अमरीका आदि स्थानों में भारतीय संस्कृति, धर्म तथा वेदों का प्रचार करते हैं ।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलि० खण्डे, अष्टम परि० अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४८ ॥

अथोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

अनन्त श्री पूजयपाद षड्दर्शनाचार्य श्री मद्दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज (पंडित स्वामी जी) (१०१०)

येनानन्दीकृतं सर्वं व्याप्तं सत्स्वरूपिणा ।
तं बन्दे क्लिष्ट कर्माणं श्री कृष्णं भक्तवत्सलम् ॥१ ॥
प्रत्यक् स्वरूपं भवबन्ध भेदनम्,
वेदान्त गम्यं वाक्यैक लक्ष्यम्
श्री सच्चिदानन्दमनन्तमाद्यं,
हृदयाब्ज मध्ये च दधे स्वरूपम् ॥२ ॥
श्री विश्वेश्वराश्रम गुरुं नत्वा सच्चिदानन्द विग्रहम् ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च शरणानामभयप्रदम् ॥३ ॥
परिपूर्णं निरीहं च दण्डहस्तधरं शुभम् ।
गुर्वष्टकं शुभं स्तोत्रमात्मबोधः करोत्ययम् ॥४ ॥

॥ श्री गुर्वष्टकम् ॥

श्री विश्वेश्वराश्रम गुरूंश्च हृदयाब्ज संस्थं,
सच्चित् स्वरूप सुखदं परमेशमीड्यम् ।
षट्शास्त्र वेद कुशलं च शिवस्वरूपं,
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥१ ॥
पूर्णं सनातन विभुं पुरुषोत्तमाख्यं,
ज्योतिःस्वरूपममलं तमनाशकं च ।
करुणाकरं भवहरं प्रणतार्तिपालं
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥२ ॥

वेदान्तवेद्यमखिलं सदसद्विहीनम्,
आद्यन्त मध्य रहितं परिच्छेद शून्यम्।
सर्वेन्द्रियातीतमवेद्यरूपं,
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥३॥
वेदान्त पाठन परं यतिसंघजुष्ट-,
मानन्दमूर्तिमनघं च वरेण्यरूपम्।
शान्तं च मानरहितं नरवरस्थं
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥४॥
संसारतापपरिदग्धं तु शिष्यवर्गं,
वाक्यामृतेन परिषेचनतत्परं च।
मुक्तिप्रदं भवच्छिदं करुणाकरं च,
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥५॥
तापत्रयैर्विमुक्तं त्रिगुणैर्विरहितं
यत्युक्त सुन्दर गुणं वरदण्ड हस्तम्।
शान्ति प्रदं जनिमरण भीतिहरं सुदक्षं,
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥६॥
ये ये जनाः भवसुदुस्तर तापतप्ताः,
आयान्ति चरण युगलेषु वरेषु सन्तः ॥
तान् तान् नरान् ह्यहेतुक तारयन्तं
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥७॥
आनन्दघन पूर्ण समष्टिरूप-
माकाशवन्न लिप्तं परमं पवित्रम्।
वाक्यैक वेद्यं परमं सुखदं सतां हि,
ब्रह्मस्वरूपमचलं च गुरुं स्मरामि ॥८॥
गुर्वष्टकं स्तोत्रमिदं सुरम्यं
मुक्तिप्रदं वाञ्छितमर्थदं च।

गुरोस्तु पादाम्बुजचञ्चरीकः
अकारि बोधाश्रम आत्मपूर्वः ॥९ ॥
गुर्वष्टकं भवहरं भुक्तिप्रदं च ·
यच्चात्मबोधाश्रम भिक्षु गीतम्।
श्रद्धया हि सम्यक् तथा प्रपठन्ति ये वै,
लीयन्ते ब्रह्मणि पदे न पुनर्भवाय ॥१० ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्य भगवत्पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी विश्वेश्वराश्रम शिष्येण आत्मबोध भिक्षुणा कृतं गुर्वष्टकं समाप्तम्

अर्थ—जिसके आनन्द से सम्पूर्ण जगत् आनन्दित होता है। जिस सत् स्वरूप से सारा जगत् व्याप्त है। ऐसे कठिन कर्मकर्त्ता भक्त वत्सल भगवान् कृष्ण को प्रणाम करता हूं ॥१ ॥ प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले जगत् के बन्धन को काटने वाले, वेदान्त के द्वारा जानने योग्य, महावाक्य से लक्षित सच्चिदानन्द स्वरूप, उत्पत्ति विनाश रहित, चराचर जगत् में परिपूर्ण परमात्मा के स्वरूप को मैं हृदय कमल में धारण करता हूं ॥२ ॥ सच्चिदानन्द स्वरूप, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, शरणागत भक्तों को जन्म मरण से रहित करने वाले, परिपूर्ण, इच्छा रहित, हाथ में दण्ड धारण करने वाले, श्री विश्वेश्वराश्रम गुरु को प्रणाम करके आत्मबोध संन्यासी इस मांगलिक गुरु अष्टक की रचना करता है ॥३-४ ॥

॥ श्री गुरु अष्टकम् ॥

हृदय रूपी कमल में स्थित सब को सुख देने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर, स्तुति करने योग्य, वेदशास्त्र के जानने वाले, कल्याण स्वरूप, ब्रह्मस्वरूप, अचल गुरु श्री विश्वेश्वराश्रम जी का स्मरण करता हूं ॥१ ॥ सर्व व्यापक, पूर्ण, सनातन, पुरुषोत्तम नाम वाले, प्रकाश स्वरूप, मल से रहित, अज्ञान नाशक दयालु, संसार के भय को दूर करने वाले, शरणागत रक्षक, ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥२ ॥ उपनिषदों द्वारा जानने योग्य, समस्त जगत् के कारण, सत्-असत् से रहित, उत्पत्ति विनाश रहित, देश काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित, सर्व इन्द्रिय अतीत स्वरूप वाले ऐसे अचल ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥३ ॥ जो संन्यासियों के समूह को वेदान्त पढ़ाते हैं, आनन्द स्वरूप, निष्पाप, सर्वश्रेष्ठ, परमशान्त, अभिमान रहित, गंगातट नरवर के रहने वाले ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥४ ॥ जो अपने वाक्य रूपी अमृत से सिंचन कर शिष्यों के तीनों तापों तथा पापों को दग्ध करते हैं। ऐसे मुक्ति देने

वाले, जन्म-मरण का छेदन करने वाले ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥५ ॥ जो आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन ताप तथा तीन गुणों से रहित हैं, यति धर्म में कहे हुये सुन्दर गुणों से युक्त हैं। उत्तम दण्ड को धारण करने वाले, शान्ति दायक, जन्म-मरण के भय को हरण करने में कुशल ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥६ ॥ जो-जो पुरुष कठिनाई से तरने वाले, संसार के जन्म-मरण आदि ताप से संतप्त, जिनके चरणों में आते हैं। उन-उन मनुष्यों को निःस्वार्थ तारने वाले ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥७ ॥ जो आनन्द मूर्ति, सर्व व्यापी आकाश के समान निर्लिप्त हैं। समष्टि रूप परम पवित्र, महावाक्य से जानने योग्य, परम सुख देने वाले, ब्रह्म स्वरूप गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥८ ॥ अति सुन्दर इस गुरु अष्टक स्तोत्र का जो भुक्ति देने वाला, सर्व कामनाओं की पूर्ति करने वाला है, इस स्तोत्र को गुरु चरण कमल के भौंरे आत्मबोध यति ने रचा है ॥९ ॥ आत्मबोध यति द्वारा गाये हुये, जन्म-मरण के भय को हरने वाले, भोग देने वाले, गुरु अष्टक का जो श्रद्धा सहित भली प्रकार से समझते हुये पाठ करते हैं, वे जन्म-मरण से रहित होकर ब्रह्म के परम पद में लीन हो जाते हैं ॥१० ॥

चरित्रम्

अनन्त श्री विभूषित, ज्ञान कुल दिवाकर, षड्दर्शनाचार्य, दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी महाराज का जन्म विक्रमी सम्वत् १९३३ में पंजाब प्रान्त के पटियाला राज्य में हुआ था। पितृ दत्त नाम श्री रामफल जी शास्त्री था। आपने घर में तथा काशी में पंडित श्री राम शास्त्री जी, पंडित लक्ष्मण जी शास्त्री, श्री कैलाश चन्द्र भट्टाचार्य तथा त्रिलोक नाथ जी जैसे धुरन्धर विद्वानों से वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया था। वाल्यावस्था में विवाह हुआ। पत्नी की मृत्यु के अनन्तर अनन्त श्री पूज्यपाद चौंसट्ठी मठ के प्रथम आचार्य स्वामी मधुसूदन आश्रम जी से संन्यास लिया। उन्होंने दण्डी स्वामी विश्वेश्वराश्रम नाम दिया। संन्यास के बाद तीर्थों की यात्रा करते हुये जम्मू में वहां के ब्राह्मणों को उच्च शिक्षा दी। वहां के नरेश की अति श्रद्धा भक्ति होने पर भी अमृतसर में आकर संस्कृत पाठशाला में अध्यापन किया। फिर नैष्ठिक ब्रह्मचारी पंडित जीवन दत्त जी शास्त्री की विशेष विनय से गंगातट नरवर के साङ्ग वेद विद्यालय में ८ माह रहे। श्री दौलत राम जी के विशेष आग्रह पर मेरिया नामक स्थान पर गये। वहां अधिक न रुककर नरवर वापस आ गये।

एक बार महामण्डलेश्वर श्री जयेन्द्र पुरी जी के विशेष निमन्त्रण पर शास्त्रार्थ के लिये काशी पहुंचे। विद्वत् मण्डली विशेष प्रभावित हुई, काशी वास के लिये प्रार्थना की। परन्तु आपको नरवर की शान्त भूमि अधिक प्रिय थी, अतः वहां लौट आये। इन्होंने इस विद्यालय को विशेष परिश्रम करके प्राचीन ऋषियों के आश्रम जैसा बना दिया। महाराज श्री ३ बजे उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर ध्यानाभ्यास करते थे। सूर्योदय होने पर अपने मधुर स्तोत्रों के पाठ से मधुर संगीत भर देते थे। गंगा जी में विशेष श्रद्धा थी। वर्णाश्रम का स्वयं पालन करते हुये शिष्यों से भी करवाते थे। आप कथा कीर्तन के साथ-साथ नित्य नैमित्तिक कर्मों पर विशेष जोर देते थे। इनके ध्यान, अध्ययन या अध्यापन काल में यदि कोई जोर-जोर से कीर्तन करता तो उसे डांटकर कुटी से निकाल देते थे।

धर्म सम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज ने नरवर पाठशाला का संस्कृत श्लोकों में विशद वर्णन किया है। उन्होंने अपने वेदान्ती गुरुवर वेदान्ती स्वामी जी के पादपद्मों में भावमय कुसुमाञ्जलि निम्नलिखित शब्दों में समर्पित की है। आप के चरणों में बैठकर भारत के महामनीषी सन्तों ने वेदों, षड्दर्शनों का अध्ययन किया। जिनमें से अच्युत मुनि, श्री उड़िया बाबा, धर्म सम्राट् पूज्य करपात्री जी महाराज, जालन्धर वाले गुरुवर श्री महादेवाश्रम जी, श्री आत्मबोधाश्रम (प्रभास भिक्षुक जी), स्वामी सोमेश्वराश्रम जी आदि थे। आप नित्य गंगा स्नान, यति सन्ध्या, दण्ड तर्पण, जप, ध्यान के अनन्तर अधिकारी विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। शास्त्रीय सदाचार में अद्वितीय थे। जो भक्त भक्ति के अभिमान में सन्ध्या आदि न करके कीर्तन करते थे या सन्ध्या के समय कीर्तन करते थे। स्वामी जी उनका विरोध करते थे।

स्वामी जी के गुरु के विषय में महात्माओं में दो प्रकार की बात पाई जाती है। पंजाब की गुरु परम्परानुसार स्वामी जी मधुसूदनाश्रम जी के शिष्य सिद्ध होते हैं। नैनोवाल वाले स्वामी पुरुषोत्तमाश्रम जी के पास उनके कमरे में इनका चित्र था। वे नित्य प्रति दोनों समय इनका पूजन करते थे। अधिकारी को दर्शन भी कराते थे। पूछने पर कहते थे, कि यह मेरे चाचा गुरु जी का चित्र है। गुरु जी का मुझे एक बार ही दर्शन हुआ था। इनके चित्र से मैं सन्तोष कर लेता हूं। परन्तु शुकताल के दण्डी स्वामी विशेषतः स्वामी नारायणाश्रम जी, श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी का कहना है कि विश्वेश्वराश्रम जी देहरादून के पास चन्द्रवनी वाले स्वामी महादेवाश्रम जी के शिष्य एवं लुधियाने वाले स्वामी शंकराश्रम जी महाराज के गुरु भाई थे। स्वामी

पुरुषोत्तमाश्रम जी के पास छः गुरुओं की परम्परा लिखी है। शुकताल में कोई लिखित प्रमाण नहीं है। इससे आप श्री मधुसूदनाश्रम जी के शिष्य सिद्ध हुये। सम्भवतः यह ब्रह्मचारी तथा संन्यास के नाते दोनों के शिष्य हों।

स्वामी जी के संन्यासी दो शिष्यों का मुझे पता है। इनमें प्रथम अनन्त श्री सोमेश्वराश्रम जी महाराज, दूसरे श्री स्वामी आत्मबोधाश्रम महाराज हैं। दो छात्रों ने आप से संन्यास न लेकर श्री स्वामी महादेवाश्रम जी ने काशी में श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी से संन्यास लिया, श्री करपात्री जी अध्ययन के अनन्तर स्वामी रामदेव जी के साथ रहे। वे विद्वत संन्यासी थे। इन्होंने भी विद्वत् संन्यास लिया। कुछ समय बाद गुरु दर्शन के लिये जब नरवर गये, ब्रह्मचारी को शिखा सूत्र से रहित देखकर पूछा, "किससे तुमने संन्यास लिया है ?" इन्होंने कहा—"सूर्य नारायण को गुरु मानकर गंगा जी में विद्वत् संन्यास लिया है।" गुरु जी ने पूछा, विद्वत् संन्यास तो आत्मदर्शी लेता है। यदि कलियुग में इस संन्यास की आज्ञा होती, तो भगवान् शंकर विद्वत् संन्यासी होने पर भी कालटी से गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी से दण्ड संन्यास न लेते। क्या तुम आचार्य शंकर से अधिक तत्त्वदर्शी हो।" यद्यपि मैं विद्यार्थियों को शांकर भाष्य सहित प्रस्थानत्रयी पढ़ाता हूं। मेरे पढ़ाये हुये विद्यार्थी भारत के धुरन्धर विद्वान् हैं। मैं पढ़ाने से पूर्व जब प्रत्येक पंक्ति को समझने का प्रयास करता हूं। तो उसको समझने के लिये मुझे घंटों लगते हैं। गुरु भाव जानकर शिष्य निरुत्तर हुआ। दण्डवत् प्रणाम करके बोला, "कृपया त्रुटि क्षमा करें। दण्ड संन्यास दें।" उन्होंने उत्तर में कहा, जिनसे महावाक्य लिया है तथा जिनकी आज्ञा से मेरे पास पढ़ने आये हो, उन्हीं के पास जाकर विधिवत् दण्ड ग्रहण करो। गुरु आज्ञा प्राप्त कर धर्म सम्राट् जी ने प्रयाग के महाकुम्भ में दण्ड संन्यास स्वामी ब्रह्मानन्द जी से ग्रहण किया।

एक बार महाराज श्री जीवनदत्त ब्रह्मचारी को साथ लेकर वृन्दावन पहुंचे। दोनों रुद्राक्ष विभूति धारण किये हुये थे। मन्दिर के पुजारियों ने दर्शन करने से रोका—कहा, रुद्राक्ष, विभूति त्याग कर तुलसी की माला तथा चन्दन लगाकर दर्शन कर सकते हो। ये दोनों अवैदिक हैं। दोनों विद्वान् शास्त्रार्थ के लिये अड़ गये। कहा—"हम दोनों विभूति रुद्राक्ष को वैदिक सिद्ध करेंगे। तुम दोनों की मानी हुई चन्दन तथा तुलसी को अवैदिक सिद्ध करेंगे।" दो घण्टे तक जम कर शास्त्रार्थ हुआ। दोनों के आगे पुजारी तथा अन्य विद्वान् परास्त हो गये। क्षमा मांगी, देववत् दोनों का पूजन किया।

महाराज श्री ने विक्रमी सम्वत् १९९३ में मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को गंगातट पर ६० वर्ष की आयु में तीनों शरीरों का त्याग कर विदेह कैवल्य मुक्ति प्राप्त की। उनके ब्रह्मीभूत होने पर सनातन धर्म की महती क्षति हुई। नरवर में आपकी वार्षिक आराधना समारोह पूर्वक मनायी जाती है।

विदेह मुक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार

महाराज जी के ब्रह्मीभूत होने के कई वर्ष बाद श्री स्वामी करपात्री जी दिल्ली गये। उनकी जन्म कुण्डली संदिग्ध थी। वहां पर एक तांत्रिक जो प्रेतात्माओं को बुलाकर पूर्वजों से बातचीत करा देता था। उनका कहना था, जो प्रेतात्मा भटक रही है, अथवा इन्द्र के स्वर्ग तक है, उसको बुलाकर ५, ७ मिनट के भीतर बातचीत करा सकता हूं। जो ब्रह्म या विष्णु लोक में जा चुके हैं या मुक्त हो चुके हैं, उनसे नहीं। स्वामी जी ने कहा—आद्य शंकराचार्य जी से बात करवाओ। वह नहीं करा सका। फिर कहा—तुलसी दास जी से मिला दो। बताया वह मुक्त हो चुके हैं। फिर कहा—अच्छा मुझे गुरु जी स्वामी विश्वेश्वराश्रम जी से मिला दो। उसने एक घण्टे के परिश्रम के बाद आवाहन करके महाराज जी को बुलाया—लड़खड़ाती वाणी में गुरु जी ने कहा—जल्दी करो, तुम्हें क्या पूछना है ? मैं बड़ी कठिनाई से ब्रह्मलोक से आया हूं। करपात्री जी ने पूछा—क्या आप मुक्त नहीं हुये। उन्होंने कहा—मुक्त होने पर भी आकर्षण मंत्र के प्रभाव से मैं आया हूं। अति आवश्यक प्रष्टव्य बात पूछो—मुझे अपार कष्ट हो रहा है। मैं शीघ्र जाऊंगा। निंत्य मुक्त राम कृष्ण आदि जैसे भक्तों से बातचीत करते हैं। वैसे मैं कर रहा हूं। गुरु जी उनकी कुण्डली का संशोधन करके तुरन्त चले गये। इस प्रमाण से स्वामी जी की विदेह कैवल्य मुक्ति सिद्ध होती है।

यद्यपि स्वामी करपात्री जी के महावाक्य तथा संन्यास के गुरु ब्रह्मानन्द जी थे, तदपि इनके प्रति उनसे कम श्रद्धा नहीं थी।

महाराज श्री जीवन दत्त स्मृति ग्रन्थ से

पूज्यवर्याः माननीयाः परमागुरवो मम।
विश्वेश्वराश्रमाः लोके ख्याता श्री विदुषां वरः ॥२७॥
नानानवद्यविद्याभि द्योत्यमानाः शुकादिवत्।
आन्वीक्षिक्यां नूतनायां प्रत्नायां पारदर्शिनः ॥२८॥

मीमांसायां मर्मविधौ वेदान्तानां महर्द्धयः।
दुर्भेदग्रन्थिभेत्तारः सिद्धिखण्डनदुर्गयोः ॥२९॥
महाराजश्रियः शान्तः पूर्वदृष्टिपथं गतः।
अन्योऽन्यं मानयन्तिस्म सममन्योऽन्य दर्शिनः ॥३०॥
तावुभौ शान्त संकल्पौ शास्त्रचर्या मनोहरान्।
विदध्यानौ घनानन्द प्रवाहरसपेशलैः ॥३१॥
शृण्वतो जन जातस्यापुष्यतां परमांमुदम्।
आस्वादे मज्जयन्तौ हि ददतुः शान्तिमुत्तमाम् ॥३२॥
महतां विदुषां तत्र विवर्धत समागमः।
समाध्यर्थं च शंकानां पठनार्थं समादरात् ॥३३॥
श्री स्वामि पादाः सन्तोषामृतदानं व्यधुर्मुदा।
तदानीमाश्रमः सोऽयम् प्राक्तान् दीव्यतः शुभान् ॥३४॥

अर्थ—परम पूजनीय, सम्माननीय, संसार में विख्यात विद्वद्वर वरिष्ठ, मेरे परम गुरु श्री विश्वेश्वराश्रम जी महाराज प्रसिद्ध थे ॥२७॥ शुकादिकों के समान अनेक निर्दोष विद्याओं से प्रकाशमान नवीन तथा प्राचीन न्याय शास्त्र में पारंगत थे ॥२८॥ मीमांसा शास्त्र के मर्मज्ञ उपनिषदों के रहस्य वेत्ता, "अद्वैत सिद्धि" मधुसूदन जी की, श्रीहर्षजी का "खण्डनखण्डखाद्य" तथा श्री सदानन्द जी की "प्रत्यक् तत्त्व चिन्तामणि" की कठिन शंकाओं का समाधान करते थे ॥२९॥ महाराज श्री जीवन दत्त ब्रह्मचारी जी ने सर्वप्रथम अत्यन्त शान्त महाराज श्री विश्वेश्वराश्रम जी को देखा। वे दोनों एक-दूसरे का सम्मान करने वाले तथा समदर्शी थे ॥३०॥ दोनों ही महापुरुष शान्त संकल्प, मनोहर शास्त्रचर्या में कुशल, परमानन्द रस के प्रवाह करने में कुशल थे ॥३१॥ इन दोनों की शास्त्र चर्चा को सुनकर जनता परमानन्द तथा उत्तम शान्ति को प्राप्त करती थी ॥३२॥ नरवर में महान् विद्वान् अपनी शंकाओं का समाधान करने तथा अध्ययन करने के लिये आदरपूर्वक आकर सन्तोष प्राप्त करते थे ॥३३॥ श्री स्वामी पाद प्रसन्नतापूर्वक सन्तोष रूपी अमृत का दान करके प्राचीन काल के आश्रमों के समान सुशोभित करते थे ॥३४॥

विश्वेश्वर बन्दन

महाराज श्री के ब्रह्मीभूत होने पर आचार्य श्री शिवदत्त शर्मा जी ने उनके प्रति छन्दोबद्ध भाषा में उद्गार व्यक्त किये हैं—

कोउ कहै बोध चन्द्र चन्द्र में समायो जाय,
कोऊ कहै देव देवधाम को पठानो है।
कोऊ कहै विद्या पपी मिले हैं पपी में जाय,
देव गुरु अस्त देववाणी में वरवानों है॥
कोऊ तप सत्य महजन को बतावे गये,
स्वामी गण कहें ब्रह्म ब्रह्म में समानों है।
'सारस्वत' सार मुनि मध्य सोच अघ कहें,
विद्या ही को सार आज विद्या में विलानों हैं॥
कोऊ कहै गंगा तीर आश्रम अनाथ भयो,
विद्या ही के कुंज को ठिकाने जो उठानों है॥
कोऊ कहै जीवन को जीवन बिलानो आज,
ब्रह्मीभूत स्वामी को वियोग दरसानो है॥
युद्ध कर वुद्धिन तें हार कवि लोग गये,
तत्त्व भूत हेतु उन्हें हाथ नहीं आनो है॥
'सारस्वत' सार कहे सब के समझ सोच,
दरसन के साथ सार दरसन विलानो है॥

(महाराज श्री जीवनदत्त स्मृति ग्रन्थ से)

स्वामी जी के शिष्य अनन्त श्री स्वामी सोमनाथाश्रम जी प्रभास भिक्षुक

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे ऊनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

अनन्त श्री स्वामी सोमेश्वराश्रम जी महाराज (प्रभास भिक्षुक) (१०११)

महाराज श्री का जन्म गुजरात प्रभास क्षेत्र में हुआ था। आपने गृहस्थ से संन्यास लिया। विद्याध्ययन काशी में किया। वहां से गंगा तट पर पैदल यात्रा करते हुये जनपद बुलन्द शहर

में राजघाट, कर्णवास, राम घाट, अनूप शहर आदि स्थानों में विचरण करते हुये नरवर पहुंचे। ब्रह्मचारी तथा स्वामी जी के प्रेम से आकर्षित होकर वहां पर २० वर्ष रहे। कनखल के संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। बाद में पूज्य श्री स्वामी नारायणाश्रम जी तथा श्री विष्णु आश्रम जी की प्रार्थना स्वीकार करके अन्तिम समय तक शुकताल दण्डी आश्रम में रहे। ९० वर्ष की आयु होने पर भी लाठी लेकर गंगा स्नान व दर्शन के लिये जाते थे। आपने उत्तराखण्ड में घोर तपस्या की। आपका जीवन चरित्र सिद्ध, साधकों के लिये अनुकरणीय है। आप वेदज्ञ, तंत्राचार्य एवं हठ योगी थे। गुरु जी की तिथि धूम-धाम से मनाते थे। श्री स्वामी गुरु जी विश्वेश्वराश्रम जी के विशेष कृपा पात्र शिष्य थे। इनके चरणों में बैठकर पूर्वोक्त शास्त्रों का अध्ययन किया था। अति तेजस्वी तथा धर्म की साक्षात् मूर्ति थे। दिग्गज विद्वानों की शंकाओं का समाधान तुरन्त करते थे। ब्रह्मीभूत जगद् गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी आपके प्रति गुरुवत् श्रद्धा रखते थे। एक बार लखनऊ पुराण भवन के आचार्य पंडित पतञ्जलि द्विवेदी ने पूछा—गायत्री में २४ अक्षर हैं या २३ ? आपने उत्तर दिया—जप के समय २३ अक्षर, अर्थ के समय २४। भाव यह है कि जप करते समय 'वरेण्यम्' कहना अर्थ करते समय 'वरेणीयम्।' वास्तव में यह निचृत गायत्री छन्द है। जिस छन्द में एक अक्षर कम हो वह निचृत्त छन्द होता है। दक्षिण भारत में विद्वान् 'वरेणियम्' कहकर जप भी करते हैं। आपने दण्डी स्वामी (१०१२) राम कृष्ण आश्रम जी महाराज को संन्यास दिया था।

इनके चार शिष्य हुये। १. श्री स्वामी ब्रह्माश्रम जी महाराज, २. स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज, ३. स्वामी गोपालाश्रम जी महाराज, ४. स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज भागवती पंडित।

(१०१३) शुकताल दण्डी आश्रम की परम्परा तथा इतिहास

१. श्री स्वामी ब्रह्माश्रम जी महाराज—बिहार के थे। इन्होंने दण्डी स्वामी राघवाश्रम जी को संन्यास दिया। एक नेपाली ब्राह्मण विष्णुस्वरूप जी को महावाक्य दिया।

२. (१०१४) श्री स्वामी नारायणाश्रम जी—स्वामी जी का जन्म अलीगढ़ जनपद का था। बाल्यावस्था से ही अध्ययन के अनन्तर गायत्री, सन्ध्या आदि ब्राह्मणोचित कर्म करते थे। आप तीन भाई थे। श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी अनुज हैं। दोनों ने स्वामी कृष्णेश्वर आश्रम

जी महाराज से एक दिन संन्यास लिया था। आप परम सदाचारी वर्णाश्रम धर्म के कट्टर अनुयायी, परम तपस्वी थे। आजीवन प्रत्येक एकादशी का निर्जल व्रत करते थे। विशेष संस्कृतज्ञ न होने पर भी संस्कृत के आर्ष ग्रन्थों का भाष्यों सहित पठन-पाठन सहित विशेष अनुराग था। दण्डी आश्रम शुकताल में दोनों समय कथा होती है। भागवत १२ महीने चलता है। दूसरे समय वेदान्त का कोई ग्रन्थ। दोनों समय मन्दिर में आरती आदि में सभी यतियों, ब्रह्मचारियों तथा सद्गृहस्थों की उपस्थिति अनिवार्य है। कुछ वर्ष पूर्व आप ब्रह्मीभूत हुये।

(१०१५) अनन्त श्री परम तपस्वी त्याग मूर्ति स्वामी गोपालाश्रम जी

श्री स्वामी जी का जन्म जिला बुलन्द शहर में हुआ था। आप तितिक्षा, वैराग्य, सेवा की साक्षात् मूर्ति थे। विशेष पठित न होने पर भी शीतोष्ण, वर्षा, मक्खी, सांप बिच्छू आदि द्वन्द्वों को सहन करते थे। युवावस्था में वृद्ध एवं रोगी सन्तों के लिये जो गंगा जी नहीं जा सकते थे। शुकताल दण्डी आश्रम में कांवर में गंगा जल भरकर स्नान कराते थे। श्री स्वामी रामकृष्णाश्रम जी से संन्यास लिया था। वृद्धावस्था में आंखों का आप्रेशन हुआ। अस्पताल से जब लौटकर आये। छत पर टहल रहे थे। आकाश में तारे दिखाई दिये। ध्यान नहीं दिया। तीसरी मंजिल से गिर गये। कमर टूट गई। अति कष्ट पाया। दो वैसाखियों के सहारे चलते थे। कुछ वर्ष पूर्व शुकताल दण्डी आश्रम में ब्रह्मीभूत हुये।

(१०१६) अनन्त श्री दण्डी स्वामी विष्णु आश्रम महाराज (शुकताल)

महाराज श्री जी का जन्म जनपद अलीगढ़ में हुआ था। आप स्वामी नारायणाश्रम जी के अनुज हैं। उपनयन के बाद नरवर सांग वेद विद्यालय में व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन किया। वृन्दावन में श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज से भागवत पढ़ा। जगत् गुरु श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी तथा धर्म सम्राट् जी का साथ किया। जगद् गुरु जी की इन पर विशेष कृपा थी। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, लखनऊ, आगरा, काशी प्रयाग, बरेली, शुकताल, वृजघाट आदि अनेकों स्थानों पर भागवत के पाक्षिक तथा साप्ताहिक पारायण किये। आनन्दमयी माता जी को भागवत सुनाया। शुकताल का दण्डी आश्रम आपने बनवाया। दण्डी आश्रम मेरठ में भी कई कमरों तथा बड़े हाल का निर्माण करवाया। आप हित मितभाषी तथा भिक्षा में बहुत विचार करते हैं। यत्र-तत्र ब्रह्मचारी के हाथ की भिक्षा तथा कूप का जल पीते हैं।

शुकताल दण्डी आश्रम का इतिहास

शुकताल में गंगातट पर आमरण अनशन में स्थित महाराज परीक्षित को परम अवधूत शुकदेव जी ने श्री मद्भागवत सुनाया था। यह तीर्थ जिला मुजफ्फर नगर में शहर से ३० किलो मीटर की दूरी पर विजनौर रोड़ पर है। भोपा बस स्टैंड से बस में बैठने पर मोरना कस्बे से शुकताल को सड़क जाती है। वहां से यह ३ किलो मीटर है। मुजफ्फर नगर से ३ बसें सीधे शुकताल में दण्डी आश्रम तक जाती हैं। यहां पर प्रत्येक पूर्णिमा को मेला लगता है। ज्येष्ठ में गंगा दशहरा तथा कार्तिकी पूर्णिमा को विशेष मेला होता है। इन दिनों स्पैशल बसें छूटती हैं। शुकताल में प्रत्येक जाति—जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कबीर, पन्थी, गरीब दासी, त्यागी, कुम्हार, चमार आदि प्रत्येक वर्ण की धर्मशालाएं तथा मन्दिर बने हैं। जहां पर शुकदेव जी ने भागवत की कथा सुनाई थीं, वहां एक ऊंचा टीला है। जाने के लिये सीढ़ियां बनी हैं। ऊपर वट वृक्ष के नीचे शुकदेव जी का मन्दिर हैं। प्राचीन मन्दिर छोटा है। नये मन्दिर का निर्माण सन्त कल्याण देव जी ने करवाया है। उसमें शुकदेव जी, परीक्षित सहित अनेक ऋषियों की संगमरमर की मूर्तियां हैं। इसके ऊपर दुर्गा देवी जी का मन्दिर है। अधिक लोगों की यही धारणा है कि यहीं शुकदेव जी ने भागवत सुनाया था। परन्तु भागवत के प्रथम स्कन्ध के १९वें अध्याय के अनुसार वहां पर वशिष्ठ, पराशर, व्यास आदि अनेक ऋषि शिष्यों तथा परिवार सहित तथा अनेक राजा सपरिवार सेना सहित आये थे। ऊपर के टीले पर उतना स्थान नहीं है। न ही राजाओं के रथ घोड़े हाथी ही आ सकते थे। दण्डी आश्रम में उससे भी विशाल प्राचीन वट वृक्ष है। यहां पर समतल भूमि अति विस्तृत है। अतः अनुमान से यहीं पर भागवत की कथा परीक्षित ने सुनी होगी। प्रत्येक कार्तिकी पूर्णिमा को शुकदेव जी आते हैं। अधिकारी पुरुषों को आज भी दर्शन होता है।

यह दण्डी आश्रम बहुत पुराना हो चुका था। बहुत समय तक जीर्ण-शीर्ण रहा। चारों ओर अनेक छोटे बड़े पेड़-पौधे तथा झाड़ियां थीं। श्री स्वामी रामेश्वराश्रम जी के कथनानुसार ज्योतिष्पीठाधीश्वर कृष्णबोधाश्रम जी ने कुछ निर्माण करके एक ब्रजवासी ब्राह्मण को रखा। किन्तु वह ब्राह्मण लोभी था। अपना घर भरता रहा। आश्रम का विकास नहीं हुआ। दूसरे ब्रजवासी ब्राह्मण को बिठाया। वह भी वैसा ही निकला। बाद में स्वामी विष्णु आश्रम को सौंपा।

परन्तु स्वामी विष्णु आश्रम जी के कथनानुसार वे अकेले पहले आये थे। एक फूस की झोंपड़ी बनी थी। आस-पास का जंगल साफ करवाया। भगवान् का मन्दिर बनवाने के लिये धन एकत्रित हुआ। जिसके पास धन रखा था, वह लेकर चम्पत हो गया। शीतोष्ण वर्षा में शौच आदि का कष्ट होता था। बाद में प्राप्त धन से पक्की कुटी, शौचालय, स्नानागार तैयार हुआ। फिर धीरे-धीरे कमरे, बरामदे, मन्दिर, अधिक कमरों में संलग्न, शौचालय, स्नानागार आदि का निर्माण बड़े द्वार के पास हुआ। बाद में अनेक सेठों के सहयोग से भागवत भवन, गौशाला, स्वामी जी के वर्तमान निवास के आस-पास ऊपर नीचे के कक्ष बरामदे, हैण्ड-पम्प, ट्यूबवेल, रसोई, भण्डार गृह आदि का निर्माण हुआ। कालान्तर में श्री स्वामी नारायणाश्रम जी, श्री गोपालाश्रम जी, मौनी स्वामी जगन्नाथाश्रम जी तथा राघवाश्रम जी आदि महात्मा आये। आश्रम का पूरा प्रबन्ध उड़िया स्वामी जी के कर्मठ शिष्य गुरुदत्त ब्रह्मचारी जी करते हैं। आश्रम के नाम बहुत सी जमीन है। स्वामी जी के अधीन एक ट्रस्ट बना है। उसके सदस्य मुजफ्फर नगर के ब्रह्मचारी गृहस्थ एवं संन्यासी हैं। स्वामी विष्णु आश्रम जी का एक स्थान गंगातट पर बिहार घाट जिला बुलन्द शहर में है। इसका निर्माण आनन्दमयी मां तथा अन्य भक्तों ने किया। इसमें एक संस्कृत पाठशाला भी चलती है। शुकताल में सायं काल वैदिक मंत्रों से पूजन के अनन्तर शिव महिम्नः स्तोत्र, देव्यपराध क्षमापन स्तोत्र आदि का पाठ होता है। आश्रम में प्रत्येक दण्डी को दण्ड सहित दोनों समय आरती आदि में सम्मिलित होना आवश्यक है। भिक्षा लेने जाने में भी दण्ड अनिवार्य है।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे, कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथैक पंचाशत्तमोऽध्यायः

(१०१७) दण्डी स्वामी तथा ब्रह्मचारी शिष्य

स्वामी जी के दण्डी शिष्यों में सर्वप्रथम ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ मौनी स्वामी श्री जगन्नाथाश्रम जी हैं। आपने श्री स्वामी नारायणाश्रम जी के तप त्याग को पूर्ण रूपेण जीवन में धारण किया। इनका जन्म मथुरा का है। संन्यास से पूर्व तथा बाद श्री यमुनातट पर गायत्री आदि मंत्रों का अनुष्ठान किया। बाद में शुकताल में आकर शास्त्रों का श्रवण तथा प्रणव का अनुष्ठान किया। अति सरल तथा शान्त सन्त हैं।

२. स्वामी विश्वरूपाश्रम जी—आप ब्रह्मचारी रूप में भागवत पढ़ते थे। कुछ वर्ष पूर्व संन्यास लेकर ब्रह्मीभूत हुये।

३. स्वामी श्रीधराश्रम जी—आपका महावाक्य के बाद नाम ब्रह्मचारी श्री निवास स्वरूप था। स्वामी जी के साथ सर्वत्र रहकर भिक्षा बनाते थे। बाद में संन्यास लिया। कुछ वर्ष पूर्व शरीर छोड़ा।

४. स्वामी सुखदेवाश्रम जी—आप संन्यास से पूर्व इंजीनियर थे। अंग्रेज़ी, हिन्दी के जानकार हैं। संन्यास के बाद योग सम्बन्धी कैम्प लगाते हैं। प्राकृत चिकित्सा भी करते हैं। अपने भाषण में इन्हीं बातों का प्रचार करते हैं।

५. स्वामी हरवल्लभाश्रम जी—इनका जन्म अलीगढ़ जिला में हुआ था। अलीगढ़ चुंगी चौकी में नौकरी की। स्वामी जी से संन्यास लेकर साधन भजन करते हैं। आजकल गंगातट कर्णवास में साधनारत हैं।

६. स्वामी रवीन्द्राश्रम जी (डॉक्टर स्वामी) यह गृहस्थाश्रम में एलोपैथिक चिकित्सक थे। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी के ज्ञाता तथा संगीत प्रिय है। डाक्टरी छोड़कर स्वामी जी से संन्यास लिया।

ब्रह्मचारी शिष्य

१. श्री प्रमोद स्वरूप जी—इनका जन्म मेरठ जिले का है। ब्रह्मचारी श्री निवास जी के संन्यास के बाद स्वामी जी की भिक्षादि सेवा करते थे। जब स्वामी जी के गर्दन में चोट लगी तो मेरठ तथा मोदी नगर आदि में अपने शरीर की चिन्ता न करते हुये, रात-दिन जागकर गुरु सेवा करते रहे। कालान्तर में जगद् गुरु श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती की सेवा में आये। उन्होंने इन्हें प्रभास क्षेत्र के शारदा मठ में नियुक्त कर दिया। इस समय वहां की सारी व्यवस्था यही करते हैं। इनकी देखभाल में मठ की विशेष उन्नति हुई है।

२. श्री भगवतशरण वानप्रस्थी—यह मेरठ के निवासी हैं। इस आश्रम में दीक्षित होकर एक वर्ष तक गायत्री का जप किया। इन के संन्यास की प्रार्थना करने पर स्वीकार नहीं किया। बाद में मुझ से संन्यास लिया। योग पट्ट दण्डी स्वामी भगवदाश्रम है।

एक बार ग्रीष्म ऋतु में रात्रि में सोते समय करवट लेने पर तखत से गिर पड़े। गर्दन में चोट आई। भयानक पीड़ा थी। तुरन्त मेरठ चिकित्सार्थ आये। अस्पताल में भर्ती हुये। बहुत दिनों के उपचार से ठीक हुये। उस समय प्रमोद ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी रामलोचन स्वरूप, बुलन्द शहर इण्टर कॉलेज के प्रधानाचार्य तथा उनके सुपुत्र विजय कुमार आदि ने सेवा की।

३. श्री रामलोचन स्वरूप ब्रह्मचारी—ब्रह्मचारी जी का जन्म अयोध्या का है। राम जन्म भूमि वैष्णव प्रधान होने पर भी आप में जन्म से ही शिव भक्ति है। सदैव अपने पास शिवलिंग रखकर विधिवत् पूजा करते हैं। शिव जी का ध्यान, मन्त्र जप, चरित्र श्रवण आदि में विशेष श्रद्धा है। यह उदार प्रकृति के तेजस्वी महात्मा हैं। इन्होंने एक बार लखीमपुर के पास ललौटी नाथ में बृहत् यज्ञ किया था। जिसमें धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी, स्वामी विष्णु आश्रम जी आदि दिग्गज विद्वान् पधारे थे। कुम्भ आदि अवसरों पर हरिद्वार, प्रयाग, नासिक आदि स्थानों पर महत्त्वपूर्ण यज्ञ किये। स्वामी जी ने कई स्थानों के उत्तराधिकारी नियुक्त किये। बिहार घाट के अध्यक्ष स्वामी राघवाश्रम जी, शुकताल के गुरुदत्त ब्रह्मचारी जी हैं। इस समय नासिक में अति विशाल आश्रम का निर्माण किया है। महाकुम्भ के समय दण्डी स्वामी वहीं रुकते हैं।

७. स्वामी सोमाश्रम जी—नई आयु के ब्राह्मण बालक को स्वामी जी ने संन्यास दिया। यह विवेकशील, वैराग्यवान् तथा पठित हैं। अधिकतर उत्तराखण्ड में रहते हैं।

इस समय स्वामी जी ८० वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। इनकी सेवा में बालक दिनेश कुमार तथा एक वृद्ध ब्रजवासी हैं। दिनेश जी को स्वामी जी भागवत तथा अध्यात्म रामायण के ज्ञान प्रधान स्थल कण्ठ करा रहे हैं। वे ज्यों के त्यों सभा में सुनाते हैं। आजकल कई वर्षों से स्वामी जी ने भागवत कथा तथा प्रवचन देना छोड़ दिया है। उनके स्थान पर ब्रह्मचारी सुनाते हैं। होनहार बुद्धिमान बालक हैं। यत्र तत्र महाराज जी की अध्यक्षता में शास्त्री आचार्यों द्वारा भागवत के सप्ताह होते हैं। स्वामी जी ने शुकताल में कई बार स्वामी अखण्डानन्द जी से तथा दो बार जगद् गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी से भागवत करवाया।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे अष्टम परिच्छेदे एक पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

उपदेश

स्वामी जी ने रास पञ्चाध्यायी, वेणुगीतम्, युगल गीतम्, भ्रमर गीतम् पर संस्कृत में मधुवर्षिणी नामक टीका की है। इसके दूसरे अध्याय में भगवान् के अन्तर्हित होने के बाद भगवान् को ढूंढती हुई गोपांगनायें अश्वत्थ, न्यग्रोध आदि पेड़ों से पता पूछती हैं। इस टीका में इन पेड़ों के विलक्षण अर्थ किये हैं। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक यहां दिये जाते हैं—

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोधनो मनः।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेम हासावलोकनैः ॥१०।३०।५॥

हे पीपल, हे पाकर, हे बरगद क्या तुमने प्रेम हास अवलोकन द्वारा हमारे मन को चुराकर गए हुए नन्द कुमार को देखा है।

व्याख्या—यद्यपि यह पेड़ों के नाम हैं। यहां पर यौगिक अर्थ किये हैं। **हे अश्वत्थ! श्री भगवद् विभूतित्वात् उच्चशिखरत्वात् च प्राथम्यं श्लेषेण न श्वः**—प्रभात पर्यन्तमपि न स्थास्यति इति निर्वेद सूचनं, अतएव भगवत्स्वरूपातिरिक्तस्य सर्वस्यानित्यत्व बुद्ध्या स्वीकृत परोपकारः। पीपल भगवान् की विभूति होने से, अति ऊँचा होने से विष्णु भक्त होने से प्रथम पीपल से पूछा है। श्लोषार्थ अगले प्रातः काल तक रहेगा या नहीं, इस वैराग्य को सूचित किया। भाव यह है कि भगवत् स्वरूप के अतिरिक्त सब अनित्यत्व बुद्धि से परोपकार स्वीकार किया है। **हे प्लक्ष! प्रकृष्टे अक्षिणी यस्य इत्यकारस्य पूर्व रूपत्वमार्षम् रलयोरेक्यमिति प्रसिद्धम्। यद्वा-रलयोः सावर्ण्यात्प्रक्ष प्रकृष्टतया परोपकारार्थे तीर्थे क्षयति निवसति इति प्लक्षः तत्सम्बुद्धौ हे प्लक्ष।** सर्वोत्तम इन्द्रियां हैं जिसकी इस अकार का पूर्व रूप आर्ष है। रकार लकार की एकता प्रसिद्ध है, अथवा र ल का स्थान प्रयत्न एक होने से प्रकृष्ट रूप से परोपकार के लिये तीर्थ में वास करता है, इसलिये प्लक्ष कहा, उसका सम्बोधन में हे प्लक्ष हुआ। **हे न्यग्रोध! नव पल्लवानि जिह्वा कारण्यस्य प्रकल्प्यन्यञ्चि च अधः कृतानि रोधांस्यग्राणि येनेति व्युत्पत्तेः, अस्मासु तत्स्थितिं सूचयितुमेव नम्रो जातः इति भावः। यद्वा न्यक्कारं**

याञ्चानङ्गीकारं-रोधयतीति तथा परोपकारित्वेन अस्मादुपकारोऽपि विधेय इति एवं सम्बोध्य सप्तयोजनमाहुः । हे न्यग्रोध ! जिह्वा के आकार के नवीन पत्ते परिकल्पित हैं जिसके नीचे की ओर हैं अग्रभाग जिनके इस व्युत्पत्ति से, हमको उस नन्द कुमार की स्थिति को सूचित करने के लिये मानो झुके हैं अथवा मेरी मांग को स्वीकार करते हैं । क्योंकि परोपकारी होने से हमारा उपकार करना ही चाहिये । इस सम्बोधन से अपने प्रयोजन को कहा—क्या आपने नन्दपुत्र को देखा है । परमभक्त नन्द ने जन्मान्तर में उपासना करके पुत्र रूप में प्राप्त किया है अथवा हम पर कृपा करने के लिये उनके पुत्र रूप से अवतरित हुये हैं । इसलिये उन्होंने **नो** हमारे **मनः प्रेमहासावलोकनै र्हत्वा गतः अन्तर्हितः** मन को प्रेमपूर्वक हंसने तथा निरीक्षण द्वारा हर कर छिप गया । यद्यपि वह सर्वत्र व्याप्त है, तथापि नन्द पुत्र होने से हमारा प्रियतम है, इसलिए उनके स्वरूप की खोज करती हैं । तुमने यदि उन्हें देखा है तो कृपया बताना चाहिये । उसको प्राप्त करके हम सुखी हो जाएं यह भाव है अथवा वह तो साक्षात् क्षीरशायी विष्णु है । उसने कैसे चोरी की ? इस शंका को दूर करती हुई कहती है—**नन्द सूनुः** जैसे उन्होंने दही दूध आदि की चोरी की, वैसे ही मेरा मन भी चुरा लिया ।

वट वृक्ष से पूछती है, हे बट ! क्या तुमने नन्दनन्दन को देखा है ? उसने पूछा—क्यों पूछती हो ? वह चुराकर भाग गया । तुम्हारा क्या चुराया ? क्या दूध, दही, मक्खन, फलादि को चुरा ले गये । इन तुच्छ वस्तुओं के लिये क्यों ढूंढती हो । मन, सर्व प्रधान होने से उसके चुरा लेने पर हमारे पास कुछ नहीं बचा । तब वृक्षों ने पूछा—हृदय में स्थित मन को कैसे चुरा लिया ? **प्रेम हासावलोकनैरिति, प्रेम्णा वशीकृतं, हासेन हस्ते कृतं, अवलोकनेन वहिर्निष्काशितं यद्वा-प्रेम्णा चित्तावरणं भेदितम्, हास्येन बुद्ध्यावरणं, अवलोकने न अहंकारं भित्वा मनोरत्न मंजूषां चोरयित्वा पलायितोऽतस्तं प्रच्छामीत्यर्थः** । प्रेम से वश में किया, हंस कर हाथ में किया, देखने मात्र से बाहर निकाल लिया अथवा प्रेम से चित्त का परदा दूर किया, हंस कर बुद्धि का परदा भंग किया, देखने से अहंकार का भेदन करके सद्‌गुण रूपी रत्नों से परिपूर्ण मन रूप पेटी को चुराकर भाग गया । इसलिये हम उसे पूछती हैं । गोप जाति स्वभाव से ही चोरी करती है । फिर तुम क्यों पूछती हो । इसके उत्तर में कहती है । **नन्द सुनूः** वह साधारण गोप बालक नहीं है । गोपराज नन्द का पुत्र है । अपनी सजातीय

की चोरी करना अनुचित है। ऐसा प्रश्न करने पर जब पेड़ों ने उत्तर नहीं दिया। तब गोपियों ने विचार किया। ये वृन्दावन के पेड़ हैं इनका चित्त शुद्ध नहीं है अर्थात् इनमें परोपकार की भावना नहीं है। ऐसा विचार कर आगे चली गयीं। ये तीनों पेड़ माखन तथा मन चोर श्री कृष्ण की विभूति हैं। अतः यह भी चोर हैं। कौये, उल्लू, गीध के आश्रय हैं। छोटे फल वाले हैं। ऐसा विचार कर आगे बढ़ीं ॥५ ॥

कच्चित् कुरबका शोक नाग पुंनाग चम्पकाः।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६ ॥

हे कुरबक, हे अशोक, हे नाग, हे पुंनाग, हे चम्पक ! अपनी मन्द मुसुकान से मानिनियों को अभिमान को हरण करने वाले बलराम के छोटे भाई को आपने देखा है ॥६ ॥

व्याख्या—इसके बाद गोपियां फूलों के बागीचे में जाकर कुरबक आदि फूल के वृक्षों क देखकर विचार करने लगीं। उन पेड़ों की अपेक्षा ये महान् हैं। सुगन्धि युक्त पुष्प से युक्त हैं। मधु द्वारा रात दिन अतिथियों की सेवा करते हैं। शुद्ध अन्तःकरण वाले हैं। यह भगवान् के बारे में अवश्य बतायेंगे। उनसे पूछती हैं। हे कुरबक ! लाल निर्मल पुष्प से युक्त, हे नागकेसर ! तुमने श्री कृष्ण को इस रास्ते से जाते हुये देखा है क्या? श्री राम ने रामावतार में की हुई लक्ष्मण की सेवा को देखकर, उसका फल देने के लिये कृष्णावतार में त्रेता का अपना नाम राम देकर बलराम को अपना बड़ा भाई बनाया। हम भक्तों को उन्होंने क्यों त्यागा। अतः यदि रामानुज को देखा हो, तो कृपया बतायें। करुणा सागर होने पर भी भगवान् कठोर क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने के कारण कठोर हैं। गोपांगनाओं के पूछने पर जब उन्होंने अपने सिर हिलाकर मना कर दिया। तो वे विचार करने लगीं। ये तो सिर हिलाकर कहते हैं, हम नहीं जानते। **असाधारण व्याख्या—कुरबक**—अति मधु होने पर भी कुत्सित भौरों के झुंड मंडराते हैं। अतः कुरबक ने कहा। या **कुत्सितात् रवात् रोदन शब्दात् कं सुखं यस्य स रोदन प्रियः। अशोक, शोक रहित पीड़ानभिज्ञत्वात् दया वर्जितः। नागोऽयं नाम्नैव भयानकः। अयं तु पुंसामपि नागः।** निंदनीय से जिसकी उत्पत्ति हुई है, रोदन प्रिय को कुरबक कहा है। **अशोकः** दया, पीड़ा तथा शोक से रहित है। **नाग**—नाग नाम से ही भयानक है। **पुंनाग** पुरुषों में जो नाग के समान है अथवा जिसका सुयश पृथ्वी पर परोपकार के लिये

है वह कुर्व है। कः शब्द स्वार्थ में आया है। **चम्पकः-चम्पक को देखने से कृष्ण के** पीताम्बर के समान रंग जिसका है अथवा 'चपि चापल्ये' धातु से कृष्ण के समान चंचल होने से चम्पक कहा है—मानिनी गोपियों के पक्ष में कुरबक तथा अशोक काम-वासना को बढ़ाते हैं। नाग आदि कामदेव के पुष्प वाण हैं ॥६ ॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्द चरणप्रिये।
सहत्वालि कुलैर्विभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७ ॥

हे कल्याणी, हे तुलसी, हे गोविन्द चरण प्रिये ! भौरों के सहित तुम्हें धारण करने वाले अत्यन्त प्रिय अच्युत को क्या तुमने देखा है।

व्याख्या—निराश हुई गोपियों ने आगे जाकर तुलसी को देखा। यह भगवान् की अतिप्रिया, सदैव साथ रहने वाली उनको अवश्य जानती होगीं। दयावती, स्त्रियों के हृदय की पीड़ा को जानने वाली, समस्त सज्जनों द्वारा सेवित है।

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

भक्त वत्सल भगवान् भक्तों के द्वारा तुलसी दल मात्र तथा चुल्लू भर जल से अपने को बेच देते हैं। यह तुलसी स्त्री होने से हमारे पक्ष में रहेगी। ऐसा विचार कर तुलसी के पास जाकर पूछती हैं, हे तुलसी ! स्वरूप से कभी च्युत न होने वाले भगवान् को तुमने देखा है। क्योंकि तुम कल्याणी हो। भगवत् प्राप्ति का साधन, पुण्य पुंज के अनुष्ठान वाली हो अथवा दर्शन, भगवच्चरणार्पण आदि से हे सर्व लोक का कल्याण करने वाली। हमारा कृष्ण से वियोग हो जाने से हम अकल्याणी हैं। तुम तो गोविन्द चरण प्रिय होने से कुशलिनी हो। क्या तुमने अच्युत भगवान् को देखा है। तुम्हारा कृष्ण से कभी वियोग नहीं होता। यहां चरण शब्द आदर मात्र का सूचक है। तुमको भगवान् भौरों के मंडराने पर भी अर्थात् अनेक विक्षेप होने पर भी धारण करते हैं। अनेक प्रियाओं में तुम अतिप्रिय हो, यह भाव है। जब तुलसी ने भी कोई उत्तर नहीं दिया, तो सोचने लगीं। यह तो सौभाग्य के गर्व में उन्मत्त होने के कारण न देखती हैं न कुछ कहती हैं। अतः साधारण स्त्रियां हमारा कल्याण करेंगी। यह विचार कर मालती आदि से पूछती हैं ॥७ ॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथके।
प्रीतिं वो जनयन् यातः कर स्पर्शेन माधवः ॥८ ॥

हे मालती, मल्लिके, जाति, यूथिके ! क्या हाथ से स्पर्श करके तुम्हें सुख देते हुये, जाते हुये माधव को तुमने देखा है।

व्याख्या—मालती—मां लक्ष्मीं लतति वेष्टयति इति मालती मां = लक्ष्मी को लपेटती है इसलिये मालती है। **मल्लिके—रति रणमल्ला सर्वा अवयवा सन्ति यस्येति मल्ली हरिः, तस्य कं सुखं यस्याः तस्माद्वा सुखं यस्याः तत्सुख कारित्वं तल्लब्ध सुखत्वं वा इति मल्लिका**। रति रण क्रीडा में कुशल हैं सब अवयव जिसके अर्थात् हरि, उसकी प्राप्ति का सुख है जिसको अथवा, उससे सुख प्राप्त होता है जिसको इस व्युत्पत्ति से उसको सुख देने वाली या उससे सुख प्राप्त करने वाली को मल्लिका कहा है। **जाति-जायते इति जाती सुख जनकत्वात् सफल जन्मवती**। जन्म लेती है इसलिये जाति है। सुख की उत्पादक होने से या सफल जन्म वाली होने से जाति है। **यूथिका—सखीनां यूथोऽस्यास्तीति यूथी कृष्ण तस्य यूथिन तस्माद्वाकं सुखं यस्याः सा यूथिका**—सखियों के झुण्ड के स्वामी होने से कृष्ण को यूथी कहा। उस यूथी कृष्ण से सुख प्राप्त होता है जिसको वह यूथिका है। कृष्ण यामल तन्त्र में प्रधान गोपियों के ये नाम भी हैं। **तासां मध्ये प्रधानायास्तासां नामानि मे शृणु। माधवी मालती जाती लवंगा मल्लिकाह्वया॥ अशोक लतिका कुन्दीशेवनीशत पर्विका॥ माधवः—मायाः श्री राधायाः धवः स्वामी इति माधवः। श्री राधावल्लभ इत्यर्थः**। माधव में मां का अर्थ श्री राधा है। उनके स्वामी पति होने से अर्थात् राधा प्रिय होने से श्री कृष्ण को माधव कहा। ये सब फलों के पेड़ छोटे हैं, फल रहित हैं, लक्ष्मी के पक्ष पाती हैं। हमें कृष्ण का पता नहीं बतायेंगे। ऐसा विचार कर निराश होकर वे आगे चलीं। मालती एवं जाति एक के ही अवान्तर भेद हैं। जूही को यूथिका कहा ॥८ ॥

चूतप्रियाल पनसासन कोविदार,
जम्बर्क बिल्व बकुलाम्र कदम्ब नीपाः।
येऽन्ये परार्थ भवका यमुनोपकूलाः,
शंसन्तु कृष्ण पदवीं रहितात्मनां नः ॥९ ॥

आम, साल विशेष, कटहल, पीले छिलके वाला साल, कचनार जामुन, आक, बेल, श्वेत, पुष्प वाला बकुल, आम्र, कदम्ब, नीप एवं यमुना तट पर उत्पन्न हुये परोपकारी अन्य वृक्ष, मन से रहित हम लोगों से सदानन्द स्वरूप भगवान् कृष्ण का मार्ग कहें।

व्याख्या—गोपिकाएं विचार करती हैं। ये यमुनातट पर विद्यमान परोपकारी स्वभाव वाले तपस्वी आम आदि पेड़ अपने फलों द्वारा सभी प्राणियों को तृप्त करते हैं। ये भगवान् का पता अवश्य बतायेंगे। अतः पूछती हैं। चूत तथा आम में क्रमशः मीठे तथा खट्टेपनं का भेद हैं। बड़े पुष्प वाला धूलि (पराग केसर) युक्त कदम्बनीप है तथा अति सुगन्धित छोटे फूल वाला कदम्ब है। प्रियाल तथा असन दोनों के शाल भेद से भेद है। पीले छिलके वाला असन है। कचनार, आक गोपेश्वर शिव को प्रिय होने के कारण, चूत जिस आम में मीठा रस अधिक हो। अथवा **चूतः, 'च्युति रक्षणे' रक्षा अर्थ में। प्रीणातीति प्रियालः। प्रीञ् तर्पणे। पनस्यते-स्तूयते इति पनसः। अस्यति पर दुःखमिति असनः, असु क्षेपणे। कुं भूमिं विदारयति इति कोविंदारः। दृ विदारणे परोपकारार्थं झटिति भूमिं निर्भिद्य निःसृतः। जमति पर दुःखमिति जम्बूः। जमु अदने। अर्कः भानुवत् जाड्य हरः इत्यर्कः। बिलति पर दुःखमिति बिल्बः, बिल भेदने। बंकते अवगच्छति पर दुःखमिति बकुलः। बकि गत्यर्थः। अम्यते स्वदुःख निरासार्थं जनैरित्याम्रः। अम गत्यादौ। कन्दति हिनस्ति पर दुःखमिति कदम्बः। नयति सुखं प्रापयतीति नीपः, णीञ् प्रापणे।**

चूत च्युति रक्षा अर्थ में है। प्रियाल प्रसन्न करने वाला है। 'प्रीञ्' धातु तृप्त करने अर्थ में होती है। पनस, प्रशंसनीय होने से पनस है। दूसरे के दुःख को दूर करता है इसलिये असन है, असु धातु, फेंकने अर्थ में है। भूमि को फोड़ता है, इसलिये कोविदार है। दृधातु फोड़ने के अर्थ में है। भाव यह है कि परोपकार के लिये शीघ्र भूमि को फोड़कर निकलता है। दूसरे के दुःख को दूर करता है; इसलिये जम्बू है। जमु धातु खाने के अर्थ में आती है। सूर्य के समान शीत को हरता है इसलिये अर्क है। दूसरे के दुःख को दूर करता है, इसलिये "बिल्ब" है। बिल धातु भेदन करने में है। दूसरे के दुःख को दूर करता है। इसलिये विल्व है। विल् धातु भेदन करने अर्थ में है। दूसरे के दुःख को दूर करने के लिये दौड़ता है, इसलिये "बकुल" है।

बकि धातु चलने के अर्थ में है। अपने दुःख को दूर करने के लिये लोग जाते हैं, इसलिये "आम्र" है। अम धातु गति अर्थ में है। दूसरों के दुःख को नष्ट करता है, इसलिये "कदम्ब" है। लोगों को सुख प्राप्त कराता है, इसलिये "नीप" है। णीञ् धातु प्राप्त कराने अर्थ में है। ऊपर कहे हुये सभी पेड़ अपने पुष्प, फल, रस, लकड़ी, छाल, छाया, पत्ते आदि द्वारा परोपकार के लिये जन्म लेते हैं। इसलिये परार्थ भवकाः हैं। तीर्थ रूप यमुना के तट पर वर्तमान हैं। अतः सत्यवादी हैं। तीर्थों में असत्यभाषी का जन्म-जन्म का पुण्य नष्ट होता है। अतः सदानन्द स्वरूप कृष्ण की प्राप्ति का सही मार्ग बतायेंगे। कुछ साधक गृह रहित, कुछ धन रहित, कुछ स्त्री पुत्र रहित होते हैं। हम लोग मन रहित हैं अथवा श्री कृष्ण जी के वियोग जनित दुःख से व्याकुल मन रहित होकर उनकी खोज करती हैं। जब इन पेड़ों ने भी कोई उत्तर नहीं दिया, तो कहने लगीं, ये तो समाधि निष्ठ महात्मा प्रतीत होते हैं। यह न तो कुछ बोलते हैं न सुनते हैं। कृष्ण यामल तन्त्र में इनको बलभद्र का अंश बताया है।

द्रुमाश्च कल्प पूर्वा ये नाना मोद विधायकाः।
वृन्दावनस्थाः तान् विद्धि बलभद्रांश सम्भवान्॥

पूर्व कल्प के नाना प्रकार का आनन्द देने वाले, वृन्दावन में स्थित वृक्षों को बलभद्र के अंश से उत्पन्न हुआ जानो॥९॥

॥ इति श्री गु० वं० पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

महाराज जी गृहस्थों को वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुये भगवत् भजन का उपदेश करते हैं। वे कहते हैं मनुष्य जन्म देव दुर्लभ हैं। भगवद् भजन बिना एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। दक्षिण भारत के बैल के सींग की नोक पर सरसों का दाना जितनी देर टिकता है, उतनी देर भी यदि किसी ने हरि स्मरण कर लिया, तो उसका जन्म सफल हो गया। यह बात एक सन्त दूसरे सन्त को सुना रहे थे। भाव यह है कि बैल के सींग पर सरसों का दाना एक क्षण भी रुक नहीं सकता। बाद में उस सन्त ने श्रोता सन्त से तात्पर्य पूछा—उन्होंने कहा—जब जीव का इतनी देर के भजन से भी कल्याण हो जाता है, तो उसे जीवन में इतना समय भी व्यर्थ

नहीं करना चाहिये। साधक को तब तक भजन में आनन्द नहीं मिलता, जब तक वह विषय सुख को नहीं छोड़ता। आपकी हिन्दी की एक छोटी सी पुस्तक "ज्ञान, भक्ति, वैराग्य वर्द्धक" में कथा आती है। दो चीटियां परस्पर बातचीत कर रही थीं। इनमें एक चीटीं मिश्री के पहाड़ पर रहती थी। दूसरी नमक के पहाड़ पर। मिश्री के पहाड़ की चींटी मीठा खूब खाती थी। मोटी ताजी थी। नमक चींटी को प्रिय नहीं है। वह नमक सेवन करती थी। भूखी दुबली रहती थी। उसने मिश्री वाली चींटी से कहा—तू हृष्ट-पुष्ट है। क्या खाती है? कहां रहती है? उसने कहा—मैं मिश्री के पर्वत पर रहती हूं। मीठा खूब खाती हूं, इसलिये स्वस्थ हूं। नमक वाली ने कहा—तू मुझे भी ले चल। उसने स्वीकार किया—वह चल दी। परन्तु उसकी बात पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। कि मुझे मिश्री मिलेगी। इसलिये वह नमक की कंकड़ी मुख में दाब कर उसके साथ चल पड़ी। वहां पहुंचने पर मीठे वाली ने कहा—मिश्री का स्वाद चख ले। नमक की कंकड़ी को बिना निकाले मिश्री का स्वाद चखने लगी। उसे आनन्द नहीं मिला। उसने कहा—तू झूठ बोलती है। यह तो नमक का पहाड़ है, मिश्री का नहीं। इसमें नमक जैसा स्वाद है। उसकी बात सुनकर मिश्री वाली को आश्चर्य हुआ। उसके मुंह में नमक की कंकड़ी देखकर कहा—पगली इसको थूककर तब चख। उसने ऐसा ही किया। उसे आनन्द प्राप्त हुआ।

कलियुग के साधक की नमक वाली चींटी जैसी दशा है। वह पांच विषयों से प्राप्त होने वाले वैषयिक सुख को त्यागे बिना ब्रह्मानन्द प्राप्त करना चाहता है। इसलिये उसका भजन, ध्यान, चिन्तन में न मन लगता है, न आनन्द ही प्राप्त होता है।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे, त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥



अथ चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः

अनन्त श्री स्वामी आत्मबोधाश्रम जी महाराज (१०१८)

श्री स्वामी जी का जन्म पंचनद प्रदेश जनपद होशियारपुर के मुकेरियां उपनगर में हुआ था। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। जन्म का नाम पंडित लीलाधर था। पंडित जी ने स्वामी जी के चरणों में वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करके संन्यास लिया। संन्यास का नाम स्वामी आत्मबोधाश्रम था। हृषीकेश में रहते थे। इन्होंने तत्त्वमसि महावाक्य की श्लोकबद्ध गुरु शिष्य के संवाद रूप में व्याख्या की है। दण्डी स्वामी धर्मेन्द्राश्रम जी की दादी के गुरु थे। अद्वैत वेदान्त में पूर्ण निष्ठा थी।

शिष्य—श्री स्वामी जी से दण्डी स्वामी नरोत्तम आश्रम जी (१०१९) महाराज ने संन्यास लिया था। वह मन्त्री स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे। आपका जन्म सादाबाद तहसील के सलेमपुर ग्राम में हुआ था। पिता श्री रूपराम जी परम सात्विक थे। वृन्दावन में पंडित दुर्गादत्त शास्त्री से भागवत तथा अन्य पुराणों का अध्ययन किया। सम्वत् १९७८ से १९८० विक्रमी तक नरवर में रहे। सम्वत् १९९८ में पंजाबी स्वामी आत्मबोधाश्रम जी से संन्यास लिया। सम्पूर्ण भारत में धर्म प्रचार किया। नरवर आश्रम का भी प्रबन्ध किया। रामराज्य परिषद की ओर से केन्द्र में चुनाव जीत कर मंत्री हुये थे। ज्योतिष पीठाधीश्वर जगद् गुरु शंकराचार्य कृष्ण बोधाश्रम जी के साथ काया की छाया की भांति रहते थे। जगद् गुरु जी का प्रत्येक कार्यक्रम इनके पास होता था। मंत्री स्वामी जी ने एक शिष्य को संन्यास दिया। उनके शिष्य मेरठ वाले "दण्डी स्वामी राघवाश्रम जी" हुये। यह रामचरित मानस के वक्ता हैं। पहले दण्डी आश्रम मेरठ में रहते थे। आजकल ब्रजघाट में गोशाला के पास आश्रम का निर्माण करवा रहे हैं। मौन तथा फलाहारी हैं। एक अन्नपूर्णा क्षेत्र खोलने की तथा माता अन्नपूर्णा की अति विशालतम मूर्ति तथा मन्दिर निर्माण का विचार है।

सिद्धान्त (तत्त्वमसि महावाक्य मार्तण्डम्)

वैराग्य प्रतिपादनम्—जैसे प्याऊ पर जल पीने के लिये यात्री एकत्रित होते हैं। जलपान के बाद अपने-अपने मार्गों पर चले जाते हैं। वैसे ही घरों में माता, पिता, पत्नी, पुत्र आदि एकत्रित

होते हैं तथा जिसको जिसका जो ऋण चुकाना हो। बह लेकर चला जाता है। प्रत्येक जीव सुख के लिये दिन रात कर्म करता है। किन्तु उसे सुख न मिल कर बार-बार दुःख मिलता है।

सुखस्य कारणं पुण्यं न वै पुण्यं कृतं तु यैः।
दुःखमेव पुनर्दुःखं भुक्तं दुःखं पुनस्तु तैः॥९॥

सुख का कारण पुण्य है। जिन्होंने पुण्य नहीं किया, उन्हें बार-बार दुःख की प्राप्ति होती है। काल ने पिता, माता, भाई, बन्धु सब को खा लिया। संसार में किसी की स्थिति नहीं है। फिर भी मूर्ख जीने की इच्छा करते हैं। जीव के साथ स्त्री, पुत्र, माता, पिता साथ नहीं जाते। जीव का किया हुआ पुण्य पाप ही साथ जाता है। जिसके चित्त में हरि भक्ति, दानशीलता तथा धर्म नहीं है वे मनुष्य पृथ्वी पर पशु के समान नरक में गिरते हैं। जो परम दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भगवद् भक्ति नहीं करते, वे दारुण नरक को प्राप्त करते हैं। इसलिये हरि भक्ति करते हुये सत्संग करे। तब साधन चतुष्टय से युक्त होकर स्वरूप साक्षात्कार करता है। अपने वर्णाश्रम के अनुकूल स्वधर्म का पालन करने से भगवान् के प्रसन्न होने पर वैराग्य विवेक, षट् सम्पत्ति, मुमुक्षता की प्राप्ति होती है।

साधनेन बिना ये तु ज्ञातुमिच्छन्ति वै परम्।
आत्मानं ते न जानन्ति उलूका भास्करं यथा॥

बिना चार साधनों के जो परम तत्त्व को जानने की इच्छा करते हैं। वे जैसे उल्लू सूर्य को नहीं जानता वैसे ही आत्मा को नहीं जानते है। चार साधनों के परिपक्व होने पर एक बार महावाक्य के श्रवण मात्र से आत्मबोध हो जाता है। जो मन्द मति साधक है वह गुरु चरणों की सेवा करने से धीरे-धीरे प्रणव के अभ्यास से 'मैं ब्रह्म हूं' इस चिन्तन से ब्रह्मानुभूति करता है। तत्त्ववेत्ता गुरु साक्षात् परमात्मा ही हैं। उनको प्रसन्न चित्त देखने के अनन्तर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके प्रश्न करे। हे गुरुदेव ! मैं संसार के त्रिताप से दग्ध हुआ, आपकी कृपा से शरण में आकर कृतार्थ हो गया हूं। आप ज्ञान रूपी जल से सींचकर त्रि ताप को शान्त करें।

गुरुरुवाच— देहे ह्यात्ममतिं मुञ्च दृश्यत्वात् विनाशितः।
आत्मा दृष्टाऽविनाशी वै वेदान्ते प्रतिपादितः॥

शरीर में आत्म बुद्धि दृश्य तथा विनाशी होने से छोड़ दो। वेदान्त में आत्मा को द्रष्टा तथा अविनाशी कहा है। आत्मा एक है। इन्द्रियां अनेक हैं। अनेकत्व के दोष से इन्द्रियां

आत्मा नहीं हो सकतीं। मेरे प्राण, मेरी बुद्धि मेरा मन भी विरोधी दृश्य होने के कारण आत्मा नहीं हो सकते। हे शिष्य ! तत्त्वमसि महावाक्य का उत्तम व्याख्यान सुनो। इसी के श्रवण, मनन निदिध्यासन से संसार के त्रिताप की अग्नि शान्त होकर मुक्ति प्राप्त होगी। जैसे करोड़ों यत्न करने पर भी बिना सूर्य के अन्धकार दूर नहीं होता। वैसे ही विज्ञान रूपी सूर्य के बिना अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होकर परम शान्ति प्राप्त नहीं होती।

तत्त्वमसि—इस महावाक्य का लक्षणा से ज्ञान तथा अनुभूति जन्य विज्ञान के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। 'तुम वही ब्रह्म हो' इस वचन से परोक्ष ज्ञान होता है। जीव ईश्वर के विरोधी अंशों का त्याग करने पर ईश्वर तथा जीव की चैतन्यता में एकता है। इसको दृष्टान्त से कहते हैं। किसी ग्राम से १० पुरुष नदी पार करके एक ग्राम में काम करने के लिये गये।नदी पार करने का साधन नौका या पुल नहीं था। नदी में जल कम तथा बहाव तेज था। उन्होंने नदी पार की। दूसरे तट पर जाकर गिनती करने लगे। कहीं हममें से कोई बह न गया हो। दशों ने बारी-बारी से गणना की। सभी ने अपने को नहीं गिना। नौ तक संख्या हुई। रोने लगे कि हम में से एक बह गया। वहीं पर एक सज्जन खड़े थे। उनके पूछने पर कारण बताया। उन्होंने गिनकर कहा, दसवां है। उनके इस वाक्य से परोक्ष ज्ञान हुआ। दसवां कहां है ? कौन है ? इसका पता नहीं चला। तब उन्होंने कहा—**दशमस्त्वमसि** दसवें तुम हो। इस वाक्य से उन्हें प्रत्यक्ष दशम का ज्ञान हुआ। इसी प्रकार महावाक्य के बिना स्वरूप ज्ञान तथा शान्ति नहीं हो सकती। दशम पुरुष की तरह भ्रम में पड़ा हुआ जीव "मैं ब्रह्म नहीं, कर्त्ता भोक्ता जीव हूं।" जन्म-मरण में पड़ा है। **त्वं ब्रह्मासि** गुरु कृपा करके जब यह उपदेश करते हैं। तो प्रत्यक्ष अनुभूति से ब्रह्म बोध होता है और इससे संसार बन्धन कटता है।

पदानि त्रीणि सन्त्यस्मिन् तत् त्वं असि इति नामतः।
ऐक्यं लक्षणयाज्ञात्वा परमानन्दमवाप्स्यति॥

हे शिष्य ! 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य में तत्, त्वं, असि इस नाम के तीन पद हैं। इनकी भाग त्याग लक्षणा से एकता जान कर परमानन्द को प्राप्त करोगे। तत् पद का अर्थ—इस जगत् का कर्ता सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, भक्त वत्सल, परिपूर्ण, चिदानन्द, परोक्ष, विश्व का द्रष्टा, शुद्ध, मायिक, ईश्वर, तत् पद का वाच्यार्थ है। त्वं पद का वाच्यार्थ—मलिन, मायिक, अपरोक्ष,

अल्पज्ञ, व्यष्टि उपाधि वाला जीव है। असि शब्द से दोनों की एकता कही है। गुरु का वचन सुनकर संशय युक्त मन से ब्रह्मनिष्ठ गुरु जीको प्रणाम करके शिष्य ने कहा—

हे विद्वन् ! जीव ईश्वर दोनों विरोधी धर्म वाले हैं। ईश्वर अप्रत्यक्ष जीव प्रत्यक्ष, ईश्वर सर्वज्ञ जीव अल्पज्ञ होने से दोनों में एकता कैसे हो सकती है। जैसे राजा तथा सेवक में, सूर्य और जुगुनू में, अन्धकार तथा प्रकाश में न एकता हुई, न होगी। अतः दोनों में एकता नहीं हो सकती है।

गुरु जी बोले—हे पुत्र ! तुमने ठीक कहा। दोनों के वाच्यार्थ में, अर्थात् दोनों के स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में एकता नहीं हो सकती। परन्तु भाग त्याग लक्षणा से विरोधी अंश को त्यागने से चैतन्य मात्र में एकता है। ईश्वर में माया अंश का परित्याग करने से तथा जीव में अविद्या अंश का परित्याग करने से दोनों में एकता कही गई है अर्थात् मैं तीन शरीर, पांच कोश, तीन अवस्थाओं से रहित साक्षी शुद्ध ब्रह्म हूं। जैसे किसी ने तीन वर्ष की आयु वाले विष्णु मित्र को हरिद्वार में देखा था। कालान्तर में उसी को ४० वर्ष बाद कोई काशी में देखता है। नहीं पहचाना। उसने कहा—मुझ को आपने हरिद्वार में इतने साल पहले देखा था। वही मैं यहां हूं। जानने वाला हरिद्वार काशी देश, बाल्य तथा युवावस्था तथा ४० वर्ष के काल का त्याग करके उसको पहचान कर कहता है। **सोऽयं विष्णु मित्रः** यह वही विष्णु मित्र है। वैसे ही ईश्वर और जीव के विरोधी अंश के त्यागने से एकता सिद्ध होती है। ज्ञान, अज्ञान, कर्ता, भोक्ता, सुख-दुःख चिदाभास को होता है। वह अविद्या मूलक कल्पित है। कूटस्थ ब्रह्म सत्य है। इसकी ब्रह्माकार वृत्ति भी सत्य है। इससे अविद्या निवृत्त होती है। इस प्रकार स्वरूप साक्षात्कार द्वारा यति तीनों कर्मों को जलाकर फिर जन्म-मरण को प्राप्त नहीं होता।

जैसे भाग त्याग लक्षणा द्वारा 'तत्त्वमसि' महावाक्य से एकता होती है। वैसे ही **अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्माब्रह्म, सोऽहमस्मि, इत्यादि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ में एकता सिद्ध होती है। विद्वानों को लगा लेना चाहिये। इसका विस्तार प्रथम भाग में देखें।**

श्री विश्वेश्वराश्रम पूज्येन गुरुणा सम्प्रबोधितः।
आत्मबोधाश्रमोऽकारि तत्त्वमस्या विवेचनम्॥७५॥

यदुक्तं सुष्ठु शब्दं वै गुरोर्वाक्यं हि सम्मतम्।
दुरुक्तं पुस्तके यद् वै तन्ममैव ममैव च ॥७६॥
क्षम्यतां यतयः सर्वे सन्तः प्रणति पूर्वकम्।
यदशुद्धं तु ग्रन्थेऽस्मिन् पठनीयं शुद्धि पूर्वकम् ॥७७॥

परम पूजनीय गुरुदेव श्री विश्वेश्वराश्रम जी द्वारा ज्ञान प्राप्त करके, आत्मबोधाश्रम यति मैंने "तत्त्वमसि" महावाक्य का विवेचन किया है। इसमें जो सुन्दर शब्द हैं वह गुरु जी के हैं और जो अशुद्ध है वह निश्चित ही मेरा है। सभी संन्यासियों को मैं प्रणाम करके प्रार्थना करता हूं कि अशुद्धियों के लिये क्षमा करें तथा शुद्ध करके पढ़ें।

स्वामी जी ने "स्वरूपाष्टकम्" नाम का स्तोत्र भी लिखा है। इस ग्रन्थ की पूर्ति विक्रमी सम्वत् १९९३ श्रावण कृष्ण दशमी तिथि को जालन्धर जनपद के नवांशहर में की थी।

॥ इति श्री गु० वं० पु० कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

अनन्त श्री अवधूत शिरोमणि परम तपस्वी वीतराग श्री स्वामी कृष्णाश्रम जी महाराज गंगोत्री (१०२०)

परम वीतराग, महातपस्वी महाराज श्री कृष्णाश्रम जी क़ा जन्म विक्रमी सम्वत् १८७० माघ शुक्ल बसन्त पंचमी को हुआ था। इनके माता-पिता महाधनी थे। आप २५ वर्ष की आयु में ही पन्ना, पुखराज, हीरे जवाहरात, सोने, चांदी से परिपूर्ण घर को छोड़कर तीर्थाटन करने लगे। घर में २५ सेर प्रतिदिन दूध देने वाली कभी न ब्याने वाली कामधेनु गौ थी। इनके दो भाई और एक बहन थी। जमींदारी में कई गांव शहर थे। घर में ही शिव मन्दिर भी था। सर्वप्रथम आगरा पहुंचे। इनके वियोग में माता ने शरीर छोड़ दिया। उनके निमित्त हृषीकेश के पंचायत क्षेत्र में आभूषण बेचकर १००० एक हजार रुपये का दान किया। शरीर पर मूल्यवान् आभूषण थे। पिता ढूंढ कर घर ले आये। कड़ा पहरा लगा दिया। अकेले कहीं नहीं जा सकते थे। तब इनका वैराग्य और तीव्र हुआ। इससे छूटने का उपाय सोचने लगे। जिस कमरे में बन्द थे। उसकी खिड़की में सीकचें नहीं थीं। कमरा ऊपर था। आपने तीन चार पगड़ियां खिड़की से बांधकर नीचे लटका दीं। उसके सहारे नीचे उतर कर भाग खड़े

हुये। बाहर आकर अपना नाम बदल दिया। शरीर पर कानों में कुण्डल, गले में पन्ने पुखराज से चमकता हुआ हार आदि आभूषणों का दान कर दिया। चांदी के दो सौ पचास रुपये थे, वह भी खर्च हो गया। भूख सता रही थी। मांगने में शरमाते थे। किसी की नौकरी करने लगे। फिर विन्ध्याचल चले गये। दुर्गा पाठ में ज्योति प्रकट हुई। मूर्च्छित होकर गिर गये। एक घंटा बाद होश में आये। घूमते हुये काशी पहुंचे। ब्रह्मचारी मनीराम से मिले। उनसे विधिवत् वेदान्त पढ़ा। उनकी आज्ञा से चौंसट्ठी मठ के प्रथम गुरु अनन्त श्री स्वामी मधुसूदनाश्रम जी महाराज से दण्ड संन्यास ग्रहण किया। इनका योगपट्ट स्वामी कृष्णाश्रम हुआ। गुरु जी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ यति थे। १२ वर्ष समाधि में रहे। इन्होंने चौंसट्ठी घाट पर चौंसट्ठी देवी की स्थापना की। उनके यह अन्तिम शिष्य थे। गुरु जी ने अन्य शिष्यों तथा अपनी इच्छानुसार इन्हें मठ सौंपना चाहा। आपने स्वीकार नहीं किया। गुरु जी का शरीर शान्त हो गया। उनके बाद भी गुरु भाइयों ने इन्हें बिठाने का प्रयास किया। इन्होंने कहा, यदि मुझे मठाधीश होना होता, तो मैं घर क्यों छोड़ता। मुझे प्रपंच अच्छा नहीं लगता है। काशी छोड़कर गंगातट से विचरते हुये हरिद्वार पहुंचे। उस समय इनके पास एक कौपीन, एक कटिवस्त्र, दण्ड, कमण्डलु, १०८ उपनिषदों का गुटका, ब्रह्मसूत्र तथा गीता शांकर भाष्य सहित थे। हृषीकेश से ऊपर सब वस्तुयें गंगा जी में डालकर दिगम्बर रूप में उत्तराखण्ड की ओर चल पड़े। भिक्षा नहीं मांगी। किसी ने भिक्षा जल दे दिया, तो ले लेते थे। नहीं तो भूखे पड़े रहते थे। अधिक भूख लगने पर कन्द मूल खा लेते थे। **प्रारब्धं पुष्यति वपुः** इस बचन में उन्हें पूर्ण विश्वास था। चलते-चलते जहां रात हो जाती, वहीं मुट्ठी बांधकर लेट जाते। समाधि में अधिक रहने लगे। तीन दिन समाधि में बीत गये। एक सन्त ने देखा। वे रोटी लाकर स्वामी जी के पास रख गये। वह ज्यों की त्यों पड़ी रही। दूसरे दिन भी ऐसा हुआ। गाय आकर रोटी खा जाती थी। तब महात्मा को पता चला, कि वे अपने हाथ से भोजन नहीं करते। फिर वे अपने हाथ से कराकर जाते थे।

सात दिन के बाद उत्तर काशी से एक मारवाड़ी आये। उसी कुटी में ठहरे। जिसमें स्वामी जी मुट्ठी बांधे बैठे थे। दूसरे दिन सेठ चले गये। वहीं एक ब्राह्मण चौकींदार रहता था। वह भिक्षा स्वामी जी के पास रख जाता था। वह वैसे ही पड़ी रहती थी। तीन दिन बीत गये। तब

स्वामी जी के मुख में ग्रास तोड़कर खिलाता था। एक दिन एक भक्त ने रोटियों में अधिक लाल मिर्च डाल दिये। सरसों के शाक में नमक अधिक था। जल कोई नहीं पिलाता था। तब स्वामी जी अधिक प्यास में डूडू में गंगा के किनारे जल पीते थे। उसी समय पैर फिसल गया। गंगा जी में बहने लगे। दो तीन मील के बाद मला चट्टी के किनारे उस समय अनुभव किया जब एक दिव्य कन्या खड़ी है। उसने उनका हाथ खोलकर पत्थर के किनारे लगा दिया। वह कन्या अन्तर्धान हो गई। फिर गंगोत्री पहुंचे। वहां जाकर आपने मौन धारण किया। अन्न क्षेत्रों का भोजन छूते तक नहीं थे। एक बार १८ दिन के बाद भिक्षा की। पर्वतीय गुफाओं में रहते थे। टिहरी नरेश वीरेन्द्र शाह को जब पता चला, तो दर्शनार्थ स्वामी जी के पास आये। बाद में भिक्षा में रोटी, दाल, चावल, चीनी सब आने लगा। फिर यमुनोत्तरी गये। वहां खरस्थाल्या गुफा के पास मौन दिगम्बर होकर रहने लगे। वहां कोई उनके पास नहीं जाता था। आठवें दिन लोग मारने के लिये बन्दूक लेकर आये। इन्होंने जटा उठाकर देखा। उनके हाथ से बन्दूक गिर गई। उसका घोड़ा टूट गया। भयभीत होकर भाग गये। वहां पर रामदाने की रोटी खाकर यमुना जल पीते थे। माघ के महीने में चार फीट की बर्फ में वे जा रहे थे। पैर फिसलने पर यमुना जी में तीन मील बहते चले गये। बाद में कुटी के किनारे लग गये। चोट बहुत आई थी। एक गूजर ने कमर दबाई। बड़ी कठिनाई से घसीटते हुये गुफा में पहुंचे। १६ दिन बिना खाये रहे। वहां से बद्री नारायण कैलाश की यात्रा की। खुले मैदान में कई-कई घंटे समाधि में बैठे रहते, बर्फ पड़ने का भी कोई पता नहीं चलता। ४ फुट बर्फ के भीतर जब उठते तो बर्फीले पत्थर शरीर में लगे रहते थे। सिर पर बर्फ का बोझ होने पर सिर हिला देते थे। वहां से थूलिंग मठ में पहुंचे।

वहां के राजा स्वामी जी की तपस्या से प्रभावित हुये। विशेष श्रद्धा हुई। मकान नहीं था। खोदे हुये पहाड़ के भीतर मखमल के गलीचे बिछे थे। उसने स्वामी जी को कुर्सी पर बिठाकर चाय सत्तू से स्वागत किया। फिर एक व्यापारी ने पूड़ी बनाकर खिलाई। २५ दिन के बाद भिक्षा की। बाद में गुड़ की भेली जब नहीं टूटी तो स्वामीजी ने हाथ से तोड़ दी। जो भी भिक्षा लाता, पत्थर पर रख देता।

पंडितमदन मोहन मालवीय जी ने जब उनके विषय में सुना, तब उनकी इच्छा स्वामी जी से विश्वनाथ मन्दिर का शिलान्यास करवाने की हुई। ऐसे वीतराग यति को लाना बड़ा कठिन

था। खुर्जा के सेठ गौरी शंकर जी ने तो यहां तक कहा कि यदि कोई हनुमान जी की तरह उस पहाड़ को उठा ले जिस पर स्वामी जी रहते हैं तब तो इनका ले जाना सम्भव है, अन्यथा नहीं। मालवीय जी ने अपने मित्र गोस्वामी गणेश दत्त जी से कहा—मैं आपको सच्चा मित्र तब जानूंगा, जब आप स्वामी जी को ले आवें। मालवीय गोस्वामी श्री गणेश दत्त जी के साथ कई बार गये। सेवा करके अनुनय विनय की। स्वामी जी ने अनुमति नहीं दी। तब वहां के ब्रह्मचारी राजा राम जी से प्रतिज्ञा करवायी। वे स्वामी जी को अवश्य लावेंगे। ब्रह्मचारी जी ने स्वामी जी से काशी चलने की प्रार्थना की। तब उन्होंने संकेत में कहा—मुझे धन या मान की आवश्यकता नहीं है। फिर मैं काशी क्यों जाऊँ। रोते हुये ब्रह्मचारी ने कहा, मैं गोस्वामी जी को बचन दे चुका हूं। मेरी लाज रखो। चार दिन तक ब्रह्मचारी रोते धोते रहे। तब उन्होंने स्वीकृति दी। काशी में सूचना हुई। वहां से गोस्वामी जी तथा दो भक्त और वर्षा बर्फ में भीगते हुये ऋषीकेश पहुंचे। उस समय पहाड़ पर चार फुट बर्फ गिरी थी। गोस्वामी जी ने स्वामी जी के लिये ऋषीकेश से काशी तक डब्बा रिजर्व करवाया।

काशी में पहुंच कर शिलान्यास किया। बड़ी भीड़ थी। उन दिनों वे पसीने से तर-बतर रहते थे। चारों ओर बर्फ लगाई गई। वहां ३ दिन रहे। गंगाजल को छोड़कर और कुछ सेवन नहीं किया। इतने दिन शौच भी वहां नहीं किया। लौटते समय मालवीय जी ने एक सहस्त्र मुद्रा तथा एक मुलायम बाघम्बर भेंट किया। उन्होंने इलायची तक नहीं ली। तब मालवीय जी गद्-गद् हो आंसू भर कर बोले, हमने आप को बहुत कष्ट दिया। क्षमा करें। गोस्वामी जी ने काशी से हृषीकेश तक डिब्बा आरक्षित कराया था। नरेन्द्र नगर पहुंचने पर शौच आदि किया।

अनन्य गुरु भक्त बालिका

एक बार स्वामी जी "भंगेली" ग्राम में एक मन्दिर में थे। "सुनगर" गांव के कुछ लोग वहां पहुंचे। उस गांव के लोगों ने एक लड़की के विषय में बताया। वह गीता पाठ करती थी। स्वामी जी को आश्चर्य हुआ पहाड़ में कोई पढ़ी लिखी लड़की नहीं थी। एक दिन वहां पहुंचे। ग्राम वासियों ने स्वामी जी का स्वागत पूजन किया। ११ वर्ष की बालिका ने गीता, रामायण सुनाई। जटाओं को देखकर भयभीत भी थी। भीतर से शिव भावना भी थी। उसने

पूछा—महाराज ! स्त्री भजन कर सकती है, या नहीं। स्वामी जी ने सिर हिलाकर समर्थन किया। एक दिन रुककर स्वामी जी वहां से चले गये। वह माता-पिता की इकलौती पुत्री थी। उसने स्वामी जी के साथ जाने का निश्चय किया। घर वालों ने रोका। उसका मन घर में नहीं लगा। वह पता लगाकर स्वामी जी के पास पहुंची। दीक्षा के लिये प्रार्थना की। इन्होंने मना कर दिया। कहा—साधू बनने में कष्ट है। जो मिल जाए, उसी में सन्तोष करना पड़ता है। वन में रहकर सूखी पत्ती खानी पड़ती है। शेर आदि का भय बना रहता है। मैं किसी को मंत्र नहीं देता। वह निराश होकर लौट गई। भगवान् से प्रार्थना करने लगी, कि स्वामी जी दीक्षा दें। घर में कठोर साधना करके गुरु का ध्यान करने लगी। चौथे वर्ष रोते हुये जाकर फिर प्रार्थना की। स्वामी जी ने मन्त्र देकर "भगवत्स्वरूप" नाम रखा।

सेठ मोदी की दीक्षा तथा मोदी नगर में आगमन

एक बार सेठ गूजर मल मोदी गंगोत्री यात्रा में आये। स्वामी जी पाषाण वत् कुटी में बैठे थे। उसने प्रणाम करके भेंट रखी। उन्होंने न देखा, न स्वीकार किया। दूसरे दिन फिर आकर गुरु दीक्षा के लिये प्रार्थना की। वे ३० वर्षों से गुरु की खोज में थे। कोई जंचा नहीं। स्वामी जी ने मनाकर दिया। उन्होंने ब्रह्मचारी से कहा, ब्रह्मचारी ने प्रार्थना की, किन्तु स्वीकृति नहीं मिली। सेठ जी हठ करके बैठ गये। जब तक महाराज कृपा नहीं करेंगे, मैं नहीं हिलूंगा। पचासों नौकर उनके साथ थे। चौथे दिन ५ ब्राह्मणों को साथ लेकर पूजन सामग्री सहित पहुंचे। प्रार्थना की कि मैं गुरु बना चुका हूं। बड़ी कठिनाई से मंत्र दीक्षा दी तथा भिक्षा करवायी। उनकी इच्छा अपने द्वारा निर्मित नगर में मन्दिर बनवा कर स्वामी जी को पदार्पण करवाने की थी। सात वर्ष में मन्दिर बना। इसी बीच पांच-दश बार दर्शनार्थ गये। गुरु जी से मन्दिर में पधारने की प्रार्थना की। उन्होंने संकेत से बताया। कि जाने पर बहुत भीड़ होती हैं, मुझे कष्ट होता है। किसी शंकराचार्य से स्थापना करवा लो।

मोदी ने कहा—आपके पदार्पण करने के लिये मैंने मन्दिर बनवाया है। अतः कृपा करें। जाना स्वीकार किया। किन्तु किसी तरह कोई चढ़ावा न चढ़ाये। स्वामी जी वहां पहुंचे। श्री लक्ष्मी नारायण मन्दिर, दुर्गा मन्दिर तथा शिव मन्दिर में स्वामी जी के कर कमलों द्वारा मूर्तियां स्थापित की गईं। स्वामी जी पर फल-फूल खूब चढ़ते थे। मोदी जी की माता गुरु जी के

आशीर्वाद से स्वस्थ हो गईं । बाबा काली कमली के अन्न क्षेत्र का उद्‌घाटन भी स्वामी जी के कर कमलों से हुआ ।

एक बार दिल्ली के पुञ्ज परिवार ने स्वामी जी से दीक्षा ली । उन्होंने किसी देव मन्दिर में घण्टा चढ़ाने के लिये दिया । स्वामी जी तथा ब्रह्मचारी वहां देना भूल गये । उस वर्ष भादों के महीने में गंगोत्री में चार दिन तक निरन्तर वर्षा तथा बर्फ पड़ती रही । स्वामी जी की लकड़ी की कुटी पहाड़ी के नीचे थी । रात्रि के लगभग १२.३० बजे पहाड़ी पर से एक भयंकर शिला कुटी पर गिरी । छत ध्वस्त हो गई । स्वामी जी के भयंकर चोट आई । दीपक भी बुझ गया था । शिष्या ने दूसरा दीपक जलाया । उसने देखा, स्वामी जी का सिर फट गया था । चार अंगुल चौड़ा घाव था । उससे बरसाती नाले की तरह खून बह रहा था । शिष्या ने रजाई से रुई निकाल कर खून बन्द किया । गंगनानी में जाकर दूसरे दिन दिल्ली, कलकत्ता, मोदी नगर के सेठों को टेलीफोन द्वारा सूचना दी । तीनों सेठ तुरन्त तीन सिविल सर्जनों को लेकर विमान द्वारा गंगोत्री पहुंचे । उपचार के लिये प्रार्थना की । उन्होंने साफ मना कर दिया । अति हठ करने पर संकेत से कहा, किसी जंगली पशु के पत्थर लगने पर चोट लग जाती है । तब जो सिविल सर्जन उसका उपचार करता है । वही मेरी भी करेगा । बहुत प्रार्थना करने पर खून बन्द करने के लिये रुई के फाये का प्रयोग किया ।

स्वामी जी दो तीन बार गंगा, यमुना में बहते हुये बहुत दूर तक चले गये । चार-पांच घण्टे बहते रहे । जबकि एक मिनट में शरीर शून्य हो जाता है । एकबार विषैली बूटी खाने पर भी शरीर नहीं छूटा । एक दिन लकड़ी के पुल पर स्वामी जी खड़े थे । उधर से एक सिंह आ रहा था । स्वामी जी की ओर टकटकी लगाये देखता रहा । कुछ देर बाद सिर झुका कर बन में लौट गया । किसी वर्ष बर्फ अधिक पड़ने के कारण पौष माघ में भयंकर वर्षा हुई । भिक्षा में अरहर की दाल को छोड़कर कोई सब्जी नहीं थी । आलू पर्याप्त मात्रा में थे । वे भी बर्फ हो गये थे । चाकू से काटने पर नहीं कटते थे । पानी में उबालने पर निरा पानी हो जाता था । दाल भी समाप्त हो गयी । कई दिन भूखे रहना पड़ा । किसी कारण विशेष से अन्यत्र जाना पड़ा । शिष्या भी साथ में थी । निरा बर्फ में चलना पड़ा । स्वामी जी के पैर की उंगलियां कटकर गिरने लगीं । एक बार भयंकर सांप आकर उनकी गोद में बैठ गया ।

अन्तिम समाधि

ऐसी भयंकर परिस्थितियां प्राप्त होने पर भी इनके स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। १५७ वर्ष से अधिक आयु हो चुकी थी। शरीर छोड़ना चाहते थे। तीन दिन के सामान्य ज्वर तथा जुकाम से शरीर छोड़ दिया। ब्रह्मचारी उनकी सांकेतिक भाषा का भाष्य करती थी। सभी भक्तों को सूचना दी गई। घास के आसन पर बैठाया। कपूर मिश्रित चन्दन का लेप, आरती पूजा हुई। पालकी बनाई गयी। ऊपर रेशमी चद्दर थी। चांदी के २० रुपये ऊपर से लुटाये गये। गंगनानी में गंगा जी में जल समाधि दी गई। षोडशी भण्डारा हुआ। महाराज जी ने विक्रमी सम्वत् २०२७ सन् १९७० ई. में १५७ वर्ष की आयु में शरीर छोड़ा। स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने षोडशी भण्डारा की व्यवस्था की। गंगनानी में गंगातट पर स्वामी जी की काले रंग की पत्थर की मूर्ति स्थापित हुई। सेठ गूजर मल जी ने अपने बगीचे में गुरु जी की स्मृति में श्री कृष्णाश्रम का निर्माण कराकर सन्तों के लिये कई कमरे बनवाये। स्वामी जी के ब्रह्मीभूत होने के बाद श्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज तथा अन्य कई प्रतिष्ठित सन्त वहां पधार कर वचनामृत से कृतार्थ करते हैं। लक्ष्मी नारायण मन्दिर में भी श्री गुरु जी की मूर्ति बनी हुई है। बाद में सुनगर में भागवत का सप्ताह करवाया। स्वामी जी के बाद आश्रम की व्यवस्था उनकी शिष्या करती रही। इन्होंने गुरु जी की जीवनी "ब्रह्मामृत लहरी" नामक पुस्तक में लिखी है। इसी आधार पर यह चरित्र लिखा गया। स्वामी जी ने एक बार गोमुख से ऊपर की भी यात्रा की थी। वहां पर कई युगों के चिरंजीवी सिद्धों का दर्शन तथा वार्तालाप किया था। उनमें से सम्भवतः श्री स्वामी विद्यारण्य जी के गुरु स्वामी शंकरानन्द जी का भी दर्शन किया था। महाराज श्री जी का शीत के कारण शरीर चर्म हाथी के चर्म के समान कठोर तथा काला हो गया था। ये साक्षात् वेदव्यास जी का ही स्वरूप थे।

॥ इति श्री गु० वं० पु०, कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥



अथ षट् पंचाशत्तमोऽध्यायः

निर्वासनं निर्विकारं गंगोत्री वासिनं यतिम्।
शिव रूपं ब्रह्मलीनं कृष्णाश्रमं भजाम्यहम्॥
त्याग मूर्तिं तपो मूर्तिं त्यक्त दण्डं दिगम्बरम्।
यस्य स्मरण मात्रेण सर्व व्याधि विनाशनम्॥

आरती

ॐ जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव।
अन्तर्यामी नाम तुम्हारा। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
भक्त वत्सल नाम तुम्हारा। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
श्री कृष्णाश्रम नाम तुम्हारा। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
दसों दिशा हैं वस्त्र जिनके। हिम बर्फ में रहने वाले॥
मौन वृत्ति में रहने वाले। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
अविद्या अज्ञान मिटाने वाले। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
ज्ञान दीप जगाने वाले। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
भक्तों के तुम हो रखवाले। जय गुरुदेव जय जय गुरुदेव॥
ॐ जय गुरुदेव जय जय गुरु देव॥

उपदेश, कर्म, उपासना

स्वामी जी संकेत द्वारा सूचित करते थे। आजकल लोग, धर्म, कर्म छोड़कर ज्ञान में छलांग लगाते हैं। वहां डगमगाते हैं। चित्त चंचल होने के कारण। अन्तःकरण शुद्ध न होने के कारण चित्त स्थित नहीं रहता। परन्तु समाधि का ढोंग करते हैं। यथार्थ बोध के बिना शान्ति नहीं मिलती। अधिकारी भेद से शास्त्र में अनेक प्रकार के वाक्य मिलते हैं। गृहस्थ को कर्म, उपासना में लगना चाहिये। उन्हें अन्न धन की आवश्यकता है। दोनों का अनुष्ठान सकाम भाव से कर सकते हैं। बिना कर्म के चींटी से लेकर ब्रह्मा तक कोई जीवन धारण नहीं कर सकता। गृहस्थ पाप की निवृत्ति के लिये वरुण की, विद्या के लिये सरस्वती की, धन के लिये लक्ष्मी की, अन्न के लिए अन्नपूर्णा की, मुक्ति के लिये शिव शक्ति की उपासना करें। मुमुक्षु विषयों को विष के समान त्याग दें। सद्गुरुओं की शरण में जाए। उनकी सेवा से अज्ञान निवृत्त होकर ज्ञान प्राप्त

होता है । उससे शान्ति मिलती है । ब्रह्म ज्ञान हो जाने पर ब्रह्मवित् यति नाम रूपी संसार से अतीत हो जाता है । साधन सम्पन्न मुमुक्षु के लिये यह उपदेश दिया गया । इसके श्रवण, मनन, निदिध्यासन से शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि मुमुक्षु जन्म-मरण आदि क्लेशों से छूट कर परम पद प्राप्त करता है ।

ब्रह्मचारिणी भगवत्स्वरूप

इन्होंने वाल्यावस्था से ही भक्ति मार्ग अपनाया था । बिना पढ़े-लिखे गीता रामायण पढ़ लेती थीं । माता-पिता की एकमात्र सन्तान थी । ११ वर्ष की आयु में गुरु दर्शन हुआ । १५ वर्ष में गुरु दीक्षा प्राप्त हुई । इतने बड़े तपस्वी सन्त की सेवा का अवसर ५० वर्ष तक प्राप्त हुआ । गंगोत्री में टिहरी नरेश नरेन्द्र शाह ने कुटी का निर्माण किया । वे नंगे पैर नंगे सिर दो परातों में मेवा लेकर गुरु जी के पास पहुंचे । बड़े मार्मिक प्रश्न किये । गुरु जी ने लिखकर समझाया । शिष्या जब गुरु जी के पास पहुंची । एक धोती एक कमीज एक अलफी तथा एक रुपया साथ लाई थी । रुपया गंगा मन्दिर में चढ़ा दिया । वे नित्य प्रति तीन बजे प्रातः भगवान् के मन्दिर में पूजा के लिये जाती थीं । एक दिन मन्दिर में किसी ने शालिग्राम की सोने, चांदी के आभूषणों सहित चोरी की । इन्हीं पर लोगों को शक हुआ । लोग पकड़ने लगे । वह बहुत दुःखी हुई । उस समय गुरु जी शरीर छोड़ चुके थे । भगवान् तथा गुरु का ध्यान करने लगी । प्रार्थना की जैसे आपने द्रोपदी की लाज रखी, मेरी भी रखो । रोती हुई ध्यानस्थ हो गयी । ध्यान में गुरु दर्शन हुआ । बोले, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा । संयोग से किसी कार्यवश पहाड़ी कस्बे में पहुंची । वहीं पर उस क्षेत्र का बड़ा चोर करीम मुल्ला भी किसी की चावल की बोरी चुराकर बेच रहा था । जिस महिला की चोरी हुई, उसने माल पहचान लिया । पुलिस को बताया । पुलिस ने पिटाई की । तीसरे दिन उसने साथियों का नाम बताया । चौथे दिन मन्दिर की सारी चोरी बताई । सारा समान दे दिया । "भगवत्स्वरूप" की इस प्रकार से रक्षा हुई । आप अत्यन्त सरल, अतिथि सत्कार में निपुण तथा दयालु थीं । वृद्धावस्था में एक पहाड़ी नवयुवक ब्रह्मचारी के रूप में आश्रम तथा इनकी सेवा करता था । इनका शरीर छूटने के बाद वही आश्रम का उत्तराधिकारी हुआ । चौसट्ठी के प्रथम आचार्य जगद् गुरु स्वामी मधुसूदन आश्रम जी के पांचों शिष्यों की परम्परा पूर्ण हुई । आगे काशी गऊघाट की मछली बन्दर गणेश बाड़ा की परम्परा लिखी गाएगी ।

॥ इति श्री गुरु वंश पुराणे कलियुग खण्डे, अष्टम परिच्छेदे, षट् पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥
समाप्तोऽयमष्टम परिच्छेदः ।

कृतिकार—एक विवेचन

—कृष्णानन्द शास्त्री

भारत वर्ष आर्यों का महान् राष्ट्र रहा है। भरतवंशियों के इस देश में वैदिक काल के मन्त्र द्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रदत्त ऋतम्भरा प्रज्ञा को धारण किये हज़ारों-हज़ार मनीषियों ने इस पावन धरा को अपने ज्ञान-विज्ञान से आप्लावित किया। ऋषियों की यह मातृभूमि ज्ञान भण्डार से समस्त संसार को अनन्त विद्याओं के माध्यम से शिक्षित करती आ रही है। ऐसी कोई विद्या-विधा शेष नहीं रहीं जो इस महान् देश के गुरुओं से अछूती रही हो।

आद्य शंकराचार्य के पश्चात् उन द्वारा स्थापित मठों के पूज्य आचार्यों की शृंखला आज तक गंगाधारावत् अजस्र प्रवाह से चलती हुई अध्यात्म की ऊंचाइयों को छूती हुई आज भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है।

भारत की समस्त दिशाओं से अध्यात्म के स्वर गुंजित होते हुए सुनाई दे रहे हैं। उन्हीं शंकराचार्यों की परम्परा त्रिगर्त प्रदेश के महत्त्वपूर्ण शक्तिपीठ जालन्धर मण्डल में सैंकड़ों वर्षों से चली आ रही आज भी दिखाई दे रही है। पंचनद के जालन्धर मण्डल में अनेकानेक महान् सिद्ध परिव्राजक अपनी गाथाओं को छोड़कर ब्रह्मीभूत हो चुके हैं, उनकी विद्वत्ता, साधना, ब्रह्मनिष्ठा को आज भी आध्यात्मिक जगत स्मरण करते हुए अभिभूत हो जाता है।

उन्हीं परिव्राजकों की परम्परा में सर्वशास्त्र निष्णात, साधन चतुष्टय सम्पन्न, श्रवण, मनन, निदिध्यासनशील, ब्रह्मनिष्ठ, परिव्राजकाचार्य अनन्त श्री विभूषित श्री मद् दण्डी स्वामी शिवबोधाश्रम जी महाराज आज अपने ज्ञानार्जित कोष से, वाग्वादिनी वेदमाता गायत्री की साधना से एक महत्त्वपूर्ण लेखन द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान करते आ रहे हैं।

महाराज श्री का आविर्भाव कार्तिक शुक्ल अष्टमी (गोपाष्टमी) १४ नवम्बर १९३४ ई. को दादूपुर गरोआ जिला होशियारपुर में पण्डित ज्ञान चन्द सहजपाल जी के यहां हुआ। मातु श्रीमती मलावी (प्रीतमदेई) ने अपनी कोख से इस बालक को जन्म देकर अपने को कृतार्थ किया। बालक अपने पूर्व जन्म के पुण्यों को साथ लेकर धरती पर आया।

बालक की प्रारम्भिक शिक्षा लोअर मिडिल स्कूल गरोआ, खालसा हाई स्कूल पज्जोदित्ता सूस में हुई। तदनन्तर सनातन धर्म विद्यालय साहूकार पेट मद्रास एवं महानन्द मिशन डिग्री कालेज गाजियावाद में हुई। आप सारस्वत ब्राह्मण हैं।

१९४७ में पूज्य माता श्री एवं १९५८ में पिता श्री ब्रह्मलीन हो गये। आपका यज्ञोपवीत संस्कार १९५५ में हुआ।

श्रावण मास की कर्क संक्रान्ति के दिन गृहत्याग कर शान्ति आश्रम लड़ोई भोग पुर जालन्धर (पंजाब) में चले गये। कुछ समय वहां व्यतीत कर दण्डी स्वामी श्री पुरुषोत्तमाश्रम जी महाराज के दण्डी आश्रम नैनोवाल (जिला होशियारपुर) में रहकर शिव मन्दर डेरा, हरयाणा के पास चले गये।

१९६० में फम्बियां में दण्डी स्वामी वेणीमाधवाश्रम जी महाराज की समाधि पर १७ घण्टे एक आसन पर बैठकर अध्यात्म रामायण का पाठ किया।

१९६१ में दण्डी आश्रम प्रभात नगर (गाज़ीगुल्ला) जालन्धर में दण्डी स्वामी पूज्यपाद महादेवाश्रम जी महाराज से अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर महावाक्य प्राप्त किया। १९७० ई० में दण्डी स्वामी सच्चिदानन्दाश्रम ऋषिकेश से संन्यास दीक्षा ग्रहण की।

१९७० से लेकर आज तक प्रतिवर्ष चातुर्मास व्रत करते चले आ रहे हैं।

अनन्त श्री विभूषित स्वामी नारायणाश्रम जी महाराज, शान्ति आश्रम, लड़ोई के ब्रह्मलीन हो जाने पर, वैदिक धर्म की सुरक्षा के निमित्त प्रतिष्ठित नागरिकों के आग्रह पर महाराज श्री को पीठाधीश्वर (महन्त) पद पर स्थापित किया गया। उसी दिन सन्तों, महात्माओं, विद्वानों एवं भक्तों के मध्य सर्व-सम्मति से अनन्त श्री विभूषित निगमबोध तीर्थ, वेदान्ताचार्य, एम.ए., पी.एच.डी. परमाधिष्ठाता वेद मन्दिर लुधियाना ने तिलक एवं चादर देकर पीठाधीश्वर बनाया।

पूज्य स्वामी जी वेद-वेदांग एव दर्शन शास्त्र के प्रभावी विद्वान् हैं। अपने जीवन को स्वाध्याय निरत रखते हुए गहन अध्ययन करते हुए भारत की महान् गुरु परम्परा को जीवित रखने के लिये "गुरुवंश पुराण" लिखने की योजना ने साकार रूप ग्रहण किया।

महाराज श्री ने "गुरुवंश पुराण" प्रथम खण्ड, सत्ययुग, त्रेतायुग एवं द्वापर युग के महान् ऋषियों, आचार्यों, गुरुओं का चरित, उपदेश एवं कृतित्व से एक महत्त्वपूर्ण लेखन दिया।

पूज्यपाद अब उसी "गुरुवंश पुराण" को आगे बढ़ाते हुए कलियुग के आचार्यों, विद्वानों, एवं गुरुओं के जीवन, उपदेश, सन्देश एवं उनके कृतित्व को मूर्तरूप देते हुए इस द्वितीय भाग को तीन खण्डों के द्वारा महत्त्वपूर्ण लेखन से एक महाकोश के रूप में जनता को समादृत कर रहे हैं।

यह पुराण न होकर महापुराण का रूप धारण कर चुका है। महाराज श्री ने विद्वानों की उस उक्ति को "महाभारत में प्रतपादित वंश, वंशानुचरित, इतिवृत्त उपदेश, संदेश, दर्शन आदि का जो उल्लेख हुआ है, वह अन्यत्र नहीं मिलेगा, जो महाभारत में कहा गया है जो अन्य लोगों ने प्रतिपादित किया है, वही सभी कुछ इसमें है, इसी प्रकार महाभारत के प्रति विद्वानों की निष्ठा का वह कथन, इस "गुरु वंश पुराण" में भी आप को मिलेगा।

इस द्वितीय भाग के तीन खण्ड लगभग तीन हजार पृष्ठों को घेरने में समर्थ होंगे। यह महाकोश प्रज्ञामहर्षि, विद्वद्वरेण्य परिव्राजकाचार्य के प्रगाढ अध्ययन एवं महत्त्वपूर्ण लेखन का प्रतिफल है।

महाराज श्री की विद्वत्ता, साधना, ब्रह्मनिष्ठता प्रशंसनीय है। इनके कारण जालन्धर ही नहीं अपितु भारत देश की धरा पावन हो गई है। सन्तों की यह धरती, योगियों की यह भूमि, साधकों की यह पावन धरा इनके कारण कृतकृत्य हो गयी है।

भारत का यह महान् इतिहास है, एक महान् परम्परा है, एक महती गरिमा है, जो इस महाकोश के रूप में विद्वानों के समक्ष उपस्थित की जा रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है विद्वद्वर्ग इसे श्रद्धा के साथ सम्मान देगा एवं इस के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

इन विद्वान् परिव्राजक को परमात्मा दीर्घायु प्रदान करें, ताकि वैदिक धर्म की सनातन ध्वजा चारों दिशाओं में सतत प्रवहमान रहे।

श्री गुरुवंश पुराण की आरती

आरती श्री गुरुवंश पुराण

अमल, अकल, अज, अक्षय, अनुपम,
पावन परम पुराण ।
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥

ब्रह्म, विष्णु, शिव चरित समाहित,
अखिल सृष्टि आधार ।
सर्जक और विनाशक जग के,
सबके पालन-हार ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥

नेति, नेति, कहि वेद पुकारत,
सुर, नर मुनि अनजान ।
केवल अनुभव-गम्य बतावत,
श्री गुरुवंश पुराण ॥
आरती श्री गुरु वंश पुराण ॥

धर्म प्रकाशक, पाप विनाशक
कलिमल मिटत निशान ।
युग-युग के गुरुओं के जीवन,
से परिपूर्ण महान् ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥

गुरु वशिष्ठ अरु शक्ति, पराशर,
जीवन वृत्त महान् ।
पाराशर, शुक, गौडपाद का,
जीवन करे बखान ।
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥

श्री गोबिन्द, आदि गुरु शंकर,
पद्मपाद गुण-गान ।
हस्तामलक, सुरेश्वर, तोटक,
जीवन-वृत्त महन् ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥
जन-गन-मन सन्ताप विनाशक,
भक्ति ज्ञान की खान ।
सत्य सनातन धर्म प्रकाशक,
साधन हेतु विमान ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥
यह आरती विनाशन कलिमल,
मिटत ताप-त्रय भान ।
भव-बन्धन से मुक्ति प्रदायक,
श्री गुरुवंश पुराण ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥
करें आरती पावन मन से,
गावें गुरु गुण-गान ।
ज्ञान भास्कर के प्रकाश से,
दूर करें अज्ञान ॥
आरती श्री गुरुवंश पुराण ॥
जयति, जय, जय गुरुवंश पुराण ॥

स्थान
दण्डी आश्रम
गाजी गुल्ला
(प्रभात नगर)
जालन्धर शहर

आश्विन कृष्ण ११
सम्वत् २०५६

रचयिता
श्रीमद्गुरु चरण कमल चंचरीक
चन्द्र किशोर अवस्थी "चन्द्रेश"
शास्त्री एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी) एल० टी०
अवकाश प्राप्त संस्कृत प्रवक्ता
नि० ग्रा० सिकन्दर पुर सरोसी
पो० सिकन्दर पुर सिहुरा
जि० उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

श्री गुरुवंश पुराण द्वितीय भाग

दान दाताओं की सूची		रुपये
१.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी वेदाचार्य निगम बोधतीर्थ जी महाराज लुधियाना	३,१००
२.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी आनन्द आश्रम जी	१४,०००
३.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी भगवदाश्रम जी मेरठ	५,०००
४.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी चिदानन्दाश्रम जी मेरठ	२,१००
५.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी सदानन्द जी सरस्वती (वेदान्ती स्वामी) केदार घाट कर पात्र धाम काशी	२,०००
६.	अनन्त श्री राघवाश्रम जी केदार धाम काशी घाट कर पात्र	१,०००
७.	दौलत राम जी दत्ता जालन्धर	२,१००
८.	अनन्त श्री पंडित श्री आदित्य प्रकाशा जी शुक्ल राधाकृष्ण मन्दिर सय्यैदां गेट जालन्धर	२,१००
९.	पंडित श्री शंकर दयाल जी सेवा निवृत जिला विद्यालय निरीक्षक	५,०००
१०.	पंडित श्री नारायण दत्त जी शर्मा वेगोवाल, कपूरथला	५,१००
११.	श्रीमती पुष्पारानी त्रिवेदी न्यू विजय नगर कालेनी जालन्धर	२,१००
१२.	श्री सूर्य प्रकाश जी गुप्त	२,१००
१३.	श्री चन्द्र किशोर जी अवस्थी उन्नाव	१,१००
१४.	श्री मनमोहन जी कपूर जालन्धर	१,१००
१५.	श्रीमती कान्ता देवी शान्ति आश्रम लड़ोई	२,१००
१६.	महिला मण्डल दण्डी आश्रम जालन्धर	५,१००
१७.	धर्मपत्नी श्री गुरुचरण दास जी सेठ जालन्धर	५,१००
१८.	श्री सोमनाथ जी शर्मा जालन्धर	१,१००
१९.	श्री हरिराम जी शर्मा होशियारपुर	३,१००
२०.	श्री मदन मोहन जी शर्मा होशियारपुर	३,१००
२१.	श्री रामावाक्स फैक्टरी जालन्धर बस्ती शेख	(तीनों भागों के चित्रों का पूरा व्यय)
२२.	श्री ब्र० पुष्पेन्द्र स्वरूप सुक्कीचोई, होशियारपुर	५००
२३.	श्री खुशी राम जी शर्मा जालन्धर	५००

श्री गुरुवंश पुराण द्वितीय भाग

	दान दाताओं की सूची	रुपये
१.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी वेदाचार्य निगम बोधतीर्थ जी महाराज लुधियाना	३,१००
२.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी आनन्द आश्रम जी	१४,०००
३.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी भगवदाश्रम जी मेरठ	५,०००
४.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी चिदानन्दाश्रम जी मेरठ	२,१००
५.	अनन्त श्री दण्डी स्वामी सदानन्द जी सरस्वती (वेदान्ती स्वामी) केदार घाट कर पात्र धाम काशी	२,०००
६.	अनन्त श्री राघवाश्रम जी केदार धाम काशी घाट कर पात्र	१,०००
७.	दौलत राम जी दत्ता जालन्धर	२,१००
८.	अनन्त श्री पंडित श्री आदित्य प्रकाशा जी शुक्ल राधाकृष्ण मन्दिर सय्यैदां गेट जालन्धर	२,१००
९.	पंडित श्री शंकर दयाल जी सेवा निवृत जिला विद्यालय निरीक्षक	५,०००
१०.	पंडित श्री नारायण दत्त जी शर्मा वेगो्वाल, कपूरथला	५,१००
११.	श्रीमती पुष्पारानी त्रिवेदी न्यू विजय नगर कालेनी जालन्धर	२,१००
१२.	श्री सूर्य प्रकाश जी गुप्त	२,१००
१३.	श्री चन्द्र किशोर जी अवस्थी उन्नाव	१,१००
१४.	श्री मनमोहन जी कपूर जालन्धर	१,१००
१५.	श्रीमती कान्ता देवी शान्ति आश्रम लड़ोई	२,१००
१६.	महिला मण्डल दण्डी आश्रम जालन्धर	५,१००
१७.	धर्मपत्नी श्री गुरुचरण दास जी सेठ जालन्धर	५,१००
१८.	श्री सोमनाथ जी शर्मा जालन्धर	१,१००
१९.	श्री हरिराम जी शर्मा होशियारपुर	३,१००
२०.	श्री मदन मोहन जी शर्मा होशियारपुर	३,१००
२१.	श्री रामावाक्स फैक्टरी जालन्धर बस्ती शेख	(तीनों भागों के चित्रों का पूरा व्यय)
२२.	श्री ब्र० पुष्पेन्द्र स्वरूप सुक्कीचोई, होशियारपुर	५००
२३.	श्री खुशी राम जी शर्मा जालन्धर	५००